श्रीमद्

वाल्मीकीयरामायण-

[illegible]।

श्रीयुतविद्वद्वरपण्डितज्वालाप्रसादजीमिश्रकृत।

पूर्वखण्ड

इसमें

१ बालकाण्ड। ३ आरण्यकाण्ड।
२ अयोध्याकाण्ड। ४ किष्किन्धाकाण्ड।

हैं

जिसको

खेमराज श्रीकृष्णदासने

निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखानामें छापकर

प्रसिद्ध किया

बंबई.

आश्विन शु. १० मी संवत् १९५० . शके १८१९

धन्यवादः ।

संतु कोटिशस्तस्यानन्तजगदुत्पादकस्य भगवतः श्रीरामचंद्रस्य धन्यवादाः यस्यात्र सकल
कलुषमयकलिमलविध्वंसनाय कृतावतारस्य विचित्राणि पवित्राणि चरित्राणि सर्वसद्भक्तजो
घुष्यमाणानि निखिलैहिकामुष्मिकचतुर्विधपरमपुरुषार्थसार्थसंसाधकानि भवंति । तस्यच भूत
भाविवर्तमाननिःशेषगुणगणगुम्फनैकनिपुणो भगवान्महर्षिर्वाल्मीकिर्नाम सकलजगज्जनपाव
नैकपरायणतया रामायणनाम्ना प्रसिद्धं चरित्रकाव्यप्रबंधं निबबंध । सैषा हि श्रीरामचंद्रकी
र्तिरक्षरनिबद्धा भुवनत्रयं पवित्रयति "कीर्तिरक्षरसंबद्धा पुनाति भुवनत्रयम् ।" इति का
व्यादर्शप्रामाण्यात् । अतश्च "स्वयं तरन्नन्यांश्च तारयति" इति शास्त्रोपलक्षितादिकाव्यर
चनागुरुलक्षणाय भगवत्प्रेमरसविचक्षणाय जगज्जननीजानकीदेवीसुरक्षणदक्षिणाय सच्छि
ष्यकुशलवशिक्षणप्रख्यातविलक्षणावलक्षभूरियशसे काव्यरचनाचतुराय भगवते वाल्मीकये
संतु शतशो धन्यवादाः । यदीयां काव्यरचनां गुरूकृत्य भूतलेऽस्मिन्वृत्तनिबंधनपुरःसरकाव्य
रचनासरणिरप्रतिहता सर्वतः प्रवृत्तास्ति । तदेतच्छ्रीमद्वाल्मीकीयरामायणमद्यावधि सर्वैरपि
परमपवित्रतया पंडितजनैः नित्यनियमविहितप्रबंधादिवाचनावसरे पापठ्यमानं सकलसद्भक्त
गृहस्थप्रभृतिभिः श्रोतृजनसमाजैः शोश्रूयमाणं च दरीदृश्यते तत्तद्भक्तजनसमाजेषु । अस्माच्च
रामायणादनंतरं बहूनि रामायणानि महानुभावैर्विरचितानि निखिलापौघविघातकानि सर्व
त्र जेगीयमानानि संति । तेषां संख्यापि कर्तुं कश्चिदपि न शक्यते । किं पुनः प्रत्येकशो
वाचयितुमिति विजयते समन्ततः सन्तोषजनको जानकीजानेश्चरित्रस्य गरिमा ! अस्तु
प्रकृतमनुसरामः । अस्य ग्रंथस्य भाषानुवादपूर्वकं मुद्रणं भविष्यति चेज्जनोपरि भूयानेवोपकारः
स्यादितीच्छा अस्माकं बहुदिनावधि आसीत् । परंतु तादृशः पंडितो न मिलितः यः सम
र्थो यथार्थभाषार्थकरणे । सांप्रतं हि आसेतुशीताचलमध्यवर्तिभरतभूमिजन्मभाजां भक्तसज्जना
नां भाग्योदयेन अस्य श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणाभिधानस्यादिकाव्यस्यापामरपण्डितजनमनो
हारिणी भाषाटीका श्रीमत्पण्डितमण्डलीमण्डनश्रीमुरादाबादनगरनिवासिकात्यायनगो
त्रालंकरण **श्रीज्वालाप्रसाद**मिश्रैः प्रणीतास्ति, इयं च भाषाटीका **पीयूषधाराभिधा**
सरलसुबोधमधुरललितप्रामाणिकपदयोजनापुरःसरं सुस्पष्टार्थप्रबोधनैकधुरीणास्ति । अनया च
भाषाटीकया स्वल्पसंस्कृतज्ञोऽसंस्कृतज्ञोऽपि वा वाचनैकनिपुणोऽपि पौराणिकः श्रीरामचन्द्रचरित्रं
सभामध्ये व्याख्यातुं शक्नोत्येव । किं पुनः साधारणसंस्कृतज्ञः सन्नपि । अस्तु । एष हि प्रोक्तपं
डितैः समस्तभव्यजनोपरि महानेवोपकारोऽकारि । अतस्तेभ्यो यावंतो धन्यवादा देयास्तावंतो
पि स्वल्पा एवातोऽनन्ता एव धन्यवादाः संतु । एभिश्च पंडितैरेतद्रामायणभाषाटीकापुस्तकं अ
स्माकं समीपे परमविद्यानुरागितया सर्वाधिकारसमर्पणपूर्वकं प्रेषितम् । तदस्माभिः स्वकीये
"श्रीवेंकटेश्वर" मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशितम् ॥

इदंच पुस्तकं ये सज्जनाः सादरं संगृह्य प्रतिदिनं वाचयिष्यंति तेभ्यः सर्वेभ्योऽपि
संतु सहस्रशो धन्यवादाः सुमंगलं वर्द्धतां श्रीरामचन्द्रो जयताद्भक्तपक्षपाती भगवा
निति शं सर्वतः ।

खेमराज श्रीकृष्णदास
"श्रीवेंकटेश्वर" छापखाना. मुंबई.

श्रीः ।

धन्यवाद ।

दोहा ॥

धन्य सच्चिदानंद प्रभु, रावणारि यशभूरि ॥
नर चरित्र आनंदनिधि, पावन मंगल मूरि ॥ १ ॥
सत त्रेता द्वापर कलिः, चारौ युग परमान ॥
श्रीमद्रामायण श्रवण, सुर नर मुनि लह ज्ञान ॥ २ ॥

यह श्रीमद्रामायण तपोधन महामुनि वाल्मीकिद्वारा कथितहो इस अथाह संसार सागरके भवभय दूर करनेकी अतुलनीय सामग्री है कि जिसके पठन श्रवण मात्रसेही महापापी सुरापी-भी इस असार संसारमें नानाप्रकारके सुखभोगकर अन्तमें परमहर्ष पूर्वक स्वर्गधामको प्राप्त होताहै इस आदिकाव्यकी महिमा परम अगाध और अकथनीयहै इससे हमारे मनमें परम इच्छाथी कि जैसे स्वर्गलोकमें देवगण और नरलोकमें संस्कृतज्ञविद्वान पण्डित लोग इसका अपार आनंद लूटकर भक्ति मुक्तिके भागी होते हैं वैसेही हरि चरणारविंदावलम्बी भाषाके रसज्ञभी इस महान पुण्यमय ग्रंथका परमलाभ उठावें और घर घर इसका प्रचार हो हरीच्छासे यह हमारी सफल कामना पूर्ण हुई इस महान् ग्रंथके भाषान्तर करनेका भार "गुणिगण मण्डली मण्डन सकल पाखण्ड खण्डन विद्वद्वर वरिष्ठ सुप्रसिद्ध श्रीयुत पण्डित ज्वालाप्रसादजी मिश्रने" अत्यन्त उत्साह पूर्वक अंगीकार किया और ऐसा सुमधुर ललित रोचक मनोविलास मनहरण पीयूषधारा भाषामृतकिया कि जिसकी प्रशंसा करना मन और लेखनीसे बाहरहै जिसकी प्रशंसाका अनुभव प्रत्येक श्लोकानुवादकी लालित्यता विचित्रता भाषा भंडार मात्रका परम सराहनीय गौरवहै हम सहर्ष श्रीयुत उक्त पण्डितजीके अनेक धन्यवादक और कृतज्ञहैं और उनकी दीर्घायु सुख संपत्ति व संततिके सदैव अयोध्यानाथ रघुनाथजीके प्रार्थी हैं जिससे संसारोपकारी ऐसेही महा पुण्यमय कार्य निर्गत होतेरहें ॥

खेमराज श्रीकृष्णदास.
श्रीवेङ्कटेश्वर छापखाना मुंबई.

माहात्म्यचित्र.

सुमतिराजा
विभांडकऋषि
उत्तंकऋ
कलिक व्याध.
श्रोतृजन

श्रीगणेशाय नमः ।
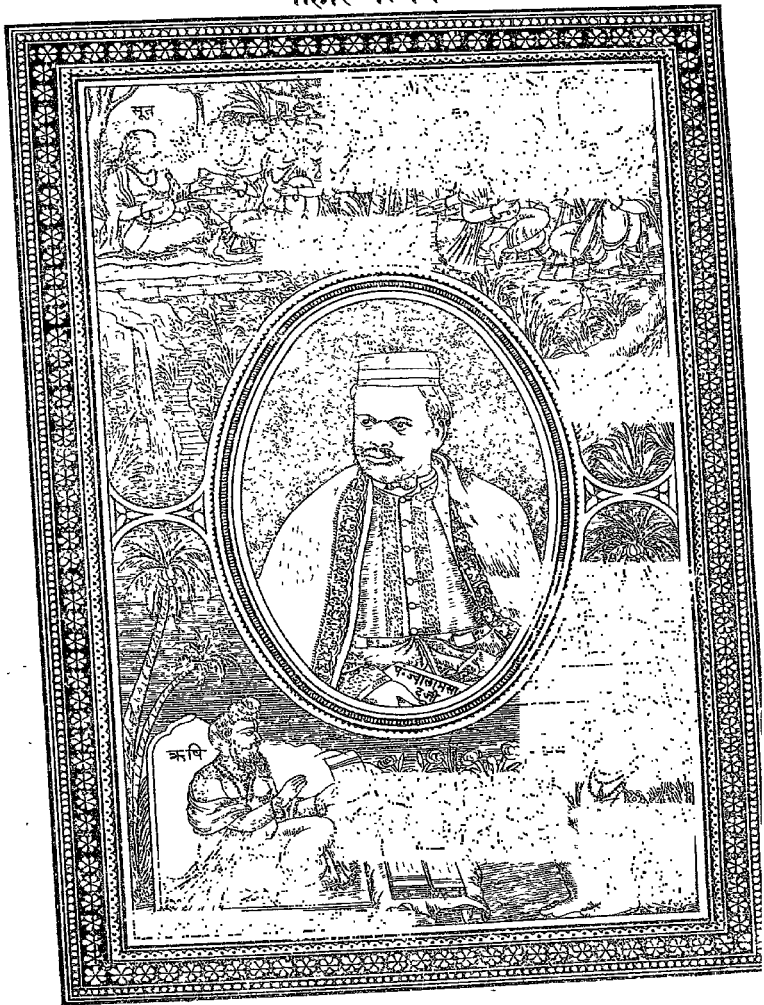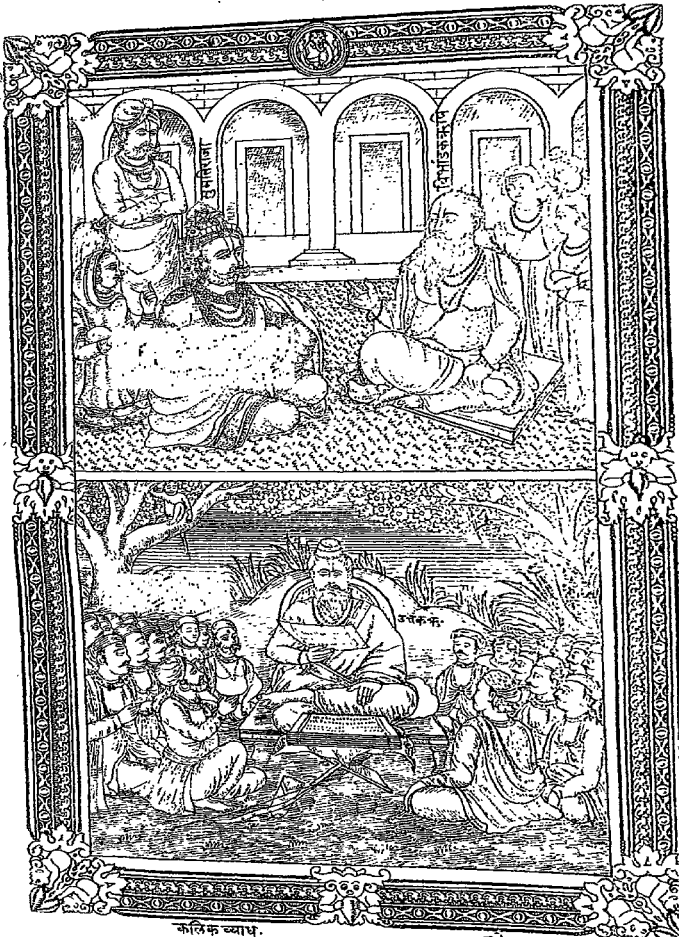
भूमिका.

यह वाल्मीकिरामायण इस देशके आबालवृद्धवनिताओंके निकट परम पूज्य और अत्यन्तही श्रद्धाकी सामग्रीहै, इसका परिचय धर्मविप्लव, राज्यविप्लव सामाजिक परिवर्तन प्रभृति नानाविधनैसर्गिक बाधाओंके होनें और कभी कभी विभक्त वा विध्वस्त और विच्छिन्न होनेसेभी अबतक भारतवासियोंके हृदय पर अधिकार जमा रहाहै, समयके हेरफेर होनेके आधीन, व भाग्यकी ताडनासे देश विदेशोंमें नई नई आकृति असामञ्जस्य भावसे प्रकाशित होनेंपरभी, इस देशके लोगोंकी भक्ति, श्रद्धा, सन्मान, कल्याण और अनुशीलनके अनुग्रहसे, सबसे ऊंचेस्थानपर स्थापित हुई है, इसके विषयमें यद्यपि अब विशेष कुछ कहने को नहीहै, किन्तु न कहनेसे फिर महर्षिके निकट घोर अकृतज्ञ बनना पडे और पीछे वर्तमान कालमें ग्रंथप्रचार करके, भूमिका न लिखनेंसे कालोचित सभ्यता जाती रहै, फिर नवरुचिसम्पन्न नये ग्राहक गणके सामने इस कसरके लिये लजाना पड़े इसही कारण थोड़ी भूमिका लिखनेंका प्रयोजनहै। वास्तवमें कुछ थोड़ाही सोच विचार और ढूंढभाल करनेंसे यह बात एकवारही मनमें पैठतीहै कि भारतवर्ष जिस्के खेलका स्थान, भाषा जिसकी दासी, सरस्वती जिसकी आज्ञा कारिणी कविकुलगुरु वाल्मीकीजीके सम्बन्धमें—उनकी अनुपम शक्तिके सम्बन्धमें—उनकी असाधारण प्रतिमाके सम्बन्धमें—उनके विचित्रभावोंके सम्बन्धमें हमारा जहांतक ज्ञान—जहांतक विचार—जहांतक ढूंढ भाल होसकै, कुछ कहनाही चाहिये जिस रामायणको पढ सुनकर मनुष्य स्वर्गसुखभोग करतेहैं, जिसके प्रत्येक स्थानसे पीयूपकी लजानेहारी सुधा निकलती है, जिसको परम पवित्र अमृत पीकर मृत्यु लोकवासी अमरगतिलाभ करते हैं, इस अनुपम ग्रन्थके रचयिता वही अतुलनीय महामहिमान्वित महर्षि वाल्मीकिहैं । हमारे कविगुरु प्रशस्त मन व स्वाधीन भावसे सरस्वतीकी कृपा पाय काव्य काननमें प्रवेशकर, नित्य सुगन्धभरे शोभायुक्त खिले हुवे फूलोंसे कैसी दिव्यमाला गूंथ गये हैं जैसे त्रिलोकतारिणीगंगाने हिमालयसे निकलकर मनुष्योंके वासस्थान मृत्यलोक को पवित्र किया, उसीभांति वाल्मीकि रामायणने महीमंडलको धन्य, पवित्र और विख्यात कर दिया है। हमही कुछ

रामायणकी प्रतिष्ठा बढानेको यह बात नहीं कहते, किन्तु प्रसिद्ध टीका करने वाले रामानुजस्वामीनेभी टीकाके मंगलाचरणमें कहा है कि।

"वाल्मीकिगिरिसम्भूता रामाम्भोनिधिसंगता ॥
श्रीमद्रामायणी गंगा पुनाति भुवनत्रयम् ॥ "

तात्पर्य्य–" रामायणरूपी गंगा वाल्मीकिरूपी पहाड़से उत्पन्न हो रामरूप समुद्रमें गिरी है, और उस्से त्रिलोक पवित्र हुआहै"

जो हो, महर्षि वाल्मीकिके रसभावसमन्वित, अपूर्व ग्रंथके संबंधमें कुछ कहनेसे पहिले, उनकी अनुपम शक्ति, असाधारणचिन्ताशीलता, अपूर्वरचनाप्रणालीके विषयकी आलोचना करनेसे पहिले, यह विचारना चाहिये कि वाल्मीकिरामायण क्यों इतनी श्रद्धा, भक्ति व गौरवकी सामग्री हुई है। यद्यपि यह अनुपम मनोहर ग्रंथ अपौरुषेय नहीं, तथापि इसको अनुच, अप्रमाणिक, अलीक, कभी कोई नहीं कहसकता; हां इतना मानते हैं कि-स्वाधीनलेखक और सहज कवियोंके पक्षमें जो स्वाधीनता खुली और फैली रहनी चाहिये वाल्मीकीजीने भी उसका अन्यथाचरण नहीं किया है। उन्होने कवि होकर काव्य लिखा तो है।परन्तु मनुष्योंके प्रसन्नार्थ लक्ष्यभ्रष्ट होकर खुशामद में प्रवृत्त नहीं हुए हैं । बहुतोंका यह विश्वास है कि रामायण एक ऊंची श्रेणीका महाकाव्यहै, आलङ्कारिकभी ऐसेही मानते हैं। वह कहते हैं कि जो काव्य आठसै अधिक सर्गोंमें लिखागया वह महाकाव्योंमें गिनाजाता है, परन्तु हम इन अलङ्कारियों की सम्मतिमें अपनी सम्मति नहीं देसकते। वह औरोंके काव्यों में जो इच्छा हो कहैं हमारा कुछ हानि लाभ नहीं-परन्तु रामायणके संबंधमें हम उनकी उक्तिका समर्थन नहीं करसकते क्योंकि उनके लक्षणोंसे प्रगटहै.

" काव्यं–यशसेऽर्थकृते व्यवहारविदे शिवेतरक्षतये ।
सद्यः परनिर्वृतये कान्तासम्मिततयोपदेशयुजे॥ "

तात्पर्य्य–,,काव्यानुशीलनमें यशकीप्राप्ति, अर्थलाभ; अमंगलविनाश, आवृत्तिमात्रमें परम सुखानुभव, इतना क्या (वरन) मोक्ष प्राप्ति; इन रसोंमें यह सुरसिका स्त्रीकी तुल्य और उपदेशविधायी है."

सहृदय पाठकगण ! विचारिये । इन्ही लक्षणोंसे क्या वाल्मीकिजीकी उक्तिका पर्य्यवसान होना संभवहै ? उपलखंड और पहाड़को यदि एकही वस्तु समझे

तो कहिये कि बड़े छोटे का तारतम्य कहां रहा ? पंख रहनेहीसे पक्षी कहलाताहै, इस लक्षणके अनुसार यह कहदें कि बगले और राजहंसमें कुछ फरक नहीं राहा!

शास्त्रमें लिखाहै कि ।

" वेदे रामायणे पुण्ये पुराणे भारते तथा "

क्या इस अर्द्ध श्लोकसे यह प्रमाण नही होता कि रामामण वेदसम होनेसे अति पवित्रहै । क्योंकि पुण्य अर्थात् पवित्रका विशेषण दियाहै, यदि आप इस बातको नमाननाचाहैं, तो वाल्मीकिजीकी उक्तिकी तरफ दृष्टि फेरिये मूलमें लिखाहै-

"श्रृण्वन् रामायणं भक्त्यायःपादंपदमेववा ।
सयाति ब्रह्मणःस्थानं ब्रह्मणापूज्यते सदा" ॥

अर्थात्—" जो भक्तिभावसे सम्पूर्ण रामायण, वा पदमात्र, वा उस्सेभी थोड़ा श्रवण करतेहैं, वह सदा ब्रह्मासे पूजे जाकर ब्रह्म लोकमें वास करतेहैं ॥ "

इसी ग्रंथमें और जगह वर्णन हुवाहै कि

"प्रयागाद्यानि तीर्थानि गंगाद्याःसरितस्तथा ।
नैमिषादीन्यरण्यानि कुरुक्षेत्रादिकान्यपि ॥
कृतानि तेन लोकेस्मिन् येन रामायणं श्रुतम् ॥"

अर्थात्—"जिन्होंने रामायण श्रवण कीहै, उनके प्रयागादि तीर्थ, गंगादि पवित्र नदी नैमिषारण्य और कुरुक्षेत्रादि पवित्र अरण्य दर्शन, और वहांकी क्रियादि सब सिद्ध होगई"

जो हो, यह तो मानलियागया कि रामायण पवित्र और पुण्यजनक ग्रंथहै परन्तु क्यों इसकी इतनी पवित्रता और इतना माहात्म्यहै उसके संबंधमें कुछ कहे विना, इस कालमें ऊनविंशशताब्दीके सभ्यताके अधिकारमें, मनुष्योंके मनमें नाना संदेह नाना कुतर्क और नाना जल्पनाकी सृष्टि होना कुछ असंभव नहींहै; इस कारण, इस संबंधमें कुछ कहना चाहिये । वाल्मीकिजीके कहे हुए ग्रंथमें प्रतिपाद्य विषय रामोपाख्यान है । इन्ही रामको वर्त्तमान समयमें कोई मनुष्य, कोई लोकातीत शक्तिसम्पन्न, कोई एक राजाही कहकर मन समझाते हैं, परन्तु शास्त्रसमूहके मथनेसे जाना जाताहै कि रामचन्द्र ब्रह्म पदार्थ स्वयंही ईश्वर हैं "अवतारा ह्यनेकशः" यह जो शास्त्रीय वचन सुना जाताहै, भगवान् रामचन्द्र उसी अवतारके अन्यितमहैं । गीतामें लिखाहै कि ।

परित्राणायसाधूनां, विनाशायचदुष्कृतां ।
धर्मसंस्थापनार्थाय, संभवामियुगेयुगे ॥

अर्थात्—"साधुओंकी रक्षा करनेके निमित्त, दुष्टोंके नाश करने और धर्मस्थापन करनेके उद्देशसे युग युगमें अवताररूपसे अवतीर्ण होताहूं"

इसही महद्वाक्यकी रक्षा करनेको भगवान् रामचन्द्रका अवतार हुआ । यहां पर ऐसा प्रश्न उठना अनुचित नहींहै कि रामचन्द्रही अवतारहैं इसका प्रमाण क्या इसके उत्तरमें कहा जाताहै कि वेदमें लिखाहै कि भगवान ईश्वर सृष्टिके कार्य संभालनेको दश अवतारोंमें अवतीर्ण हुए हैं; यथा—

"रूपंरूपं प्रतिरूपो बभूव । तदस्यरूपं प्रतिचक्षणाय ।
इंद्रो मायाभिः पुरुरूपइयते । युक्ता ह्यस्य हरयःशतादश ॥" ऋग्वेदे.

अर्थात्— परमात्मा अपनी शक्तिओंसे मन्वन्तरादिमें अनेक रूपोंसे प्रतीत होताहै क्योंकि "तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय" इस अपने उस रूपके बोधन करनेके निमित्त रूपरूपके प्रति अर्थात् अपनी संकल्पजनित प्रकृतिसे मिलकर तत्सदृश होतेहुए आशय यह है कि जब परमात्मा संकल्पकर दिव्य रूपको प्रगट करैगा, तब अपने भक्तवात्सल्यादिगुणविशिष्ट रूपका प्रकाशक होगा (वोह ऐसे अवताररूप कितने हैं उसका उत्तर स्वयं वेदमें है) "युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश" संसारके दुःखहरनेसे वोह हरिहै वे रूप निश्चय करके संसाररक्षामें नियुक्तहैं सन्नद्ध बद्धकर सर्वदा "शता" अनन्तहैं और दश अवतार तो अति प्रसिद्धहैं, इस प्रकार वेदमें अवतार होना लिखाहै उसीकी पुष्टता पुराण करते हैं । वोह दश अवतार यहहैं ।

"मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नृसिंहो वामनस्तथा ।
रामो रामश्च रामश्च बुद्धः कल्की दश स्मृताः ॥"

अर्थात्—"मत्स्य, कूर्म, वराह, नृसिंह, वामन, बलराम, परशुराम, रामचन्द्र, बुद्ध और कल्की यह दश भगवानके अवतारहैं"

बहुतसे महात्मा इसमेंभी मीनमेख लगावेंगे. कि दश अवतारोंमे रामका नाम निर्दिष्टहै, परन्तु राम ईश्वरहैं, इसका क्या प्रमाणहै? तो सुनो

राशब्दो विश्ववचनो मश्चापीश्वरवाचकः ।
विश्वेषामीश्वरो यो हि तेन रामः प्रकीर्तितः ॥

परिपूर्णतमो रामो ब्रह्मशापात्स विस्मृतः।
ब्रह्मवैवर्तपुराण श्रीकृष्णजन्मखंड ११०। ११६।

अर्थात्—"राशब्दका अर्थ विश्व मशब्दका अर्थ ईश्वर। जो विश्वके ईश्वर सोही रामनामेंहैं" पद्म पुराणमें वर्णितहै।

" रामोदाशरथिश्शूरो लक्ष्मणानुचरोबली ।
काकुत्स्थःपुरुषःपूर्णः कौशल्येयोरघूत्तमः ॥ "

अर्थात्—"रामचंद्रजी दशरथके पुत्र, यह शौर्य वीर्यसंपन्न लक्ष्मण इनके अनुवर्ती, कौशल्याके गर्भमें इनका जन्म,यह पूर्ण पुरुषहैं"

अध्यात्म रामायणमें लंकाकाण्डके पंद्रहवें सर्गमें शिवकी उक्तिमें प्रकाशहै कि।

"ब्रह्मादयस्तेनविदुःस्वरूपंचिदात्मतत्त्वंबहिरर्थभावाः ।
ततोबुधस्त्वामिदमेवरूपं भक्त्याभजन्मुक्तिमुपैत्यदुःखम् ॥ "

अर्थात्—"ब्रह्मादि देवतागणभी तुम्हारी आकृति मात्र चिन्तना करके प्रकृत स्वरूप को नहीं जान्ते किन्तु जब भक्तिके प्रभावसे तुम्हारे रूपको जान जातेहैं, तब वे सुखपूर्वक, मुक्तिमार्ग पालेतेहैं।"

रामायणके टीकाकार सूक्ष्म दर्शी रामानुजने अपने टीकेके मंगलाचरणमें कहाहै कि।

" जयति रघुवंशतिलकः कौशल्याहृदयनन्दनो रामः ॥
दशवदननिधनकारी दाशरथिःपुण्डरीकाक्षः ॥
जितं भगवता तेन हरिणा लोकधारिणा ॥
अजेन विश्वरूपेण निर्गुणेन गुणात्मना ॥ "

अर्थात्,—"जिन रामचंद्रनें रघुवंशमें जन्म ग्रहण कियाहै। जो माता कौशल्याके आनंद बढानेहारेहैं, जो दशरथजीके पुत्रहैं, जिनके हाथसे रावण मारा गयाहै उन्ही कमलनयन रामचंद्रजीकी जयहो। वोह लोक धारण करनेंवाले भगवान् हरि त्रिलोकीको आक्रमणपूर्वक अवस्थिति करतेहैं, वह निर्गुण और अज होनेंसेभी गुणके आश्रयद्वारा संसारमें व्याप रहेहैं।"

इसी भांति अगस्त्यसंहितामें लिखाहै कि—
"आविरासीत् स कलया कौशल्यायांपरःपुमान् ॥

सुविज्ञ पाठक गण ! यहां " परःपुमान् " इस शब्दके प्रयोगको एकवार देखिये आपही कहिये कि क्या इस्से रामचंद्रजीका ईश्वर होना प्रमाण नहीं होता !

श्रीमद्भागवतके ग्यारवें स्कंधके पांचवें अध्यायमे तेईसवें श्लोकार्धकी ओर एकवार दृष्टि कीजिये । वहां लिखाहै

"एवंविधानि कर्माणि जन्मानिच जगत्पतेः । "

अर्थात्—"जगत्पति जगदीश्वरके जन्म और कर्म व्यापार इसी प्रकारहैं । "

सृष्टिरक्षा, दुष्टदमन, और शिष्टपालन इत्यादि कार्यही उनकी लीलाके परिचयहैं । जबही प्रयोजन हुआ, तब ही वह निर्गुण पुरुष सत्व, रज और तम इन गुणोंके आधीन होकर प्रगटतेहैं । अपने सुखकी इच्छा और भोग वृत्ति चरितार्थ करनेके लिये ईश्वरका अवताररूपमे अवतरण नहींहै; लोकोंको शिक्षा देनाही इनका उद्देश्यहै ।

हम प्रथमही लिख आयेहैं कि रामायण केवल लक्षणाक्रान्त महाकाव्य होनेके कारण इतनी प्रसिद्ध नहीं है, किन्तु जैसे श्रुति, स्मृतियोंके विहितमत, जिस प्रकार विधि निषेधसे रचे गयेहैं , यहभी कुछ २ उसी आकारके संकेतमें है ॥ "एकादश्यां न भुञ्जीत, निद्रां जह्यात् गृही राम, नित्यमेवारुणोदये । " अर्थात्— एकादशीको भोजन न करै; हे रामचन्द्र ! गृही लोगोंको नित्य अरुणोदय होतेही निद्रापरित्याग करना चाहिये; यह वाक्य जैसा विधिवद्धहै, सो इसके न करनेसे जैसा पापग्रस्त होना होताहै, रामायणके सुननेका फलभी इसकीही समानहै । प्रमाण स्वरूप नीचे लिखाहै ।

"रामायणंवेदसमंश्राद्धेषुश्रावयेद्बुधः"

उत्तरकांड (१२४) । (३)

अर्थात्— " यह रामायण वेदके सम तुल्य है, श्राद्धके समय इसे पण्डितके मुखसे सुनै" ।

जो हो, वर्त्तमान समयमें जो भक्ति विश्वासको दूर रखकर, शुष्क हृदयसे शुष्क धर्मके खोजनेवाले हैं,जो प्रत्यक्षके अतिरिक्त परोक्ष प्रमाणका विश्वास नहीं करते । जिनकी युक्तिमें भूतेश्वर महादेवजीकी रजतगिरिके समान आकृति, मशानमें वास चिता भस्मका लगाना, इत्यादि पर्यालोचना की दीर्घ गवेषणाके फलसे, चीन या तिब्बतके मनुष्य जानेगये हैं । जिन्होंने भाषातत्वके उद्धार करनेमें कमर बांध कश्यपके वासके नामानुसार " कास्पियानसि " नाम करनेका कारण निकालाहै.

जिन्होंने ऐतिहासिक तत्त्व अनुसंधान करते करते दश कालिदास ढूंढकर निकाले हैं, जो दूरदर्शिताके प्रभावसे मनुष्यको सर्व नाशका कारण कह, गुप्त प्रगट स्थानोंमें चिल्लाकरमसें भींगते हुये बालकोंसे यश पा सकते हैं, उनके सामने हमारी शास्त्रीय कथा कितनी देर ठहर सकेगी और वह उनको कहांतक पक्षपातरहित होकर सुनैंगे, इसके कहनेका तो कुछ प्रयोजनही नहीं! तौ भी संक्षेपसे इतनाही कहेसे काम चल जायगा कि जिसको वसन्त रोग हो जाताहै । वह जहां देखेगा पीले रंगके अतिरिक्त कुछ नहीं देखेगा मूल बात यहहै कि इन विधिर्म्मियोंकी बात मानताही कौनहै हम यहभी जानते हैं कि हमारा इन लोगोंके कहनेसे लाभके अतिरिक्त हानि नहीं है। क्योंकि, आक्रमण और कटुवचन न कहनेसे हम काहेको शास्त्र देखते, जो हो इस विषयमें अधिक कहना वृथाहै ।

कहना बाहुल्यमात्रहै कि शिक्षाके संग धर्मज्ञान और सदाचार जैसा प्रार्थनीय है, और उस्से मनुष्यका मन इस प्रकारसे उन्नत होताहै, जैसे आकाशमें पूर्ण शशिधरकी शोभा, जैसे दक्षिणानिलके संग कुसुमसौरभका संयोग होताहै, इसी भांति यदि सुयोग्य कवि वा ग्रंथकारके हाथ वर्णन करनेका उपयुक्त विषय पड़े, तौ सोने और सुगंधका संयोग कहा जासकताहै! वाल्मीकिजी जैसे असाधारण कवि थे, उनकी दृष्टिमें उनके भाग्यसे वैसाही वर्णनीय विषयभी पड़ाथा। बहुत मनुष्य कहसकतेहैं, कि जो निर्जीवको सजीव करनेको समर्थहैं । जो नगरको श्मशान बनानेकी प्रतिज्ञा करनेवालेहैं, जो सुख दुःखके विधाताहैं, उनकी शक्तिकी निपुणतासे सब विषय कवित्वमें आसकतेहैं हम इसके उत्तरमें कह सकतेहैं कि खीर बनानेमें जिस सब सामानका प्रयोजनहै, उस सब सामग्रीके इकठाहोनेसेभी, जो पाक बनाना नहीं जानता, उसको वह खीर बनानी जैसी कठिन है, हमारी समझमें कवियोंके पक्षमें भी यही बातहै । वह यदि न हो तौ कोई स्वभावके वर्णनमें कोई भावकी तेजीमें, कोई रचना सौन्दर्य्यमें, ऊंचे नीचे क्यों होते? एक उद्भट श्लोक में लिखाहै कि

"पयसः कमलं कमलेन पयः पयसा कमलेन विभाति सरः ।
मणिना वलयं वलयेन मणिर्मणिना वलयेन विभाति करः" ॥

अर्थात्—"जलसे कमल, और कमलसे जलकी शोभा होतीहै किन्तु जल युक्त कमलसे सरोवर शोभा पाताहै । मणिके संयोगसे वलयकी और वलय के संयोगसे

मणिकी शोभा होतीहै. किन्तु इन दोनोंका संयोग होनेसे हाथकी शोभा होतीहै ॥ "

हमारे विचारमें वाल्मीकिजीसे वर्णनीय विषयके उत्कर्ष और वर्णनीय विषयसे कविके कवित्व, इन दोनोंके गुणसे रामायणका जन्महुआहै । रत्नावली नाटककारनें अभिनयकी प्रस्तावनामें नटके मुखसे प्रकाश करवायाहै—

" श्रीहर्षो निपुणः कविः परिषदप्येषा गुणग्राहिणी
लोके हारि च वत्सराजचरितं नाट्ये च दक्षा वयं ।
वस्त्वेकैकमपीह वांछितफलं प्राप्तं पदं किं पुन-
र्मद्भाग्योपचयादयं समुदितः सर्वो गुणानां गणः ॥"

अर्थात्—"श्रीहर्ष एक उपयुक्त कविहै, यह सभा गुणीजनोंसे पूर्णहै, वत्सराज जीमूतवाहनके चरित्र अति मनोहरहैं ॥—(और फिर)—नाटक करनेहारे हमभी अनोखेहैं, जब ऊपर कहेहुए गुण समावेशके मध्य एकके होनेसे भी मनवांछित फल मिलसकताहै, तब यहां जो इतने गुणोंका समावेश देखतेहैं, यह हमारे भाग्यका फलहै । "

हमभी कहते हैं कि वाल्मीकिजीका कवित्व, वर्णनीय विषय और कुशलवद्वारा वीणा झंकार, वह संगीतके संयोगसे श्लोकाकारमें रचित और गीत होनेसे, सर्वत्र अतिशय प्रशंसाका विषय होगयाहै ।

संस्कृतभाषामें जो रामायणहैं उन चारका अधिक प्रचारहै, उनमें अध्यात्मरामायण वेदव्यासजीकी बनाई हुई कहकर प्रचारितहै । वह ब्रह्मांडपुराणके अन्तर्गतहै,उमामहेश्वरके संवादसे ग्रंथ पुष्ट कलेवरहै । संक्षेपसे रामचंद्रजीकी लीलाओंका परिचयदेकर, उनका ब्रह्मत्व प्रतिपादन करनाही ग्रंथकारका उद्देश्यहै, उसके अनुसार वाल्मीकिजीकी मूलघटनासे मिलाकर यह ग्रंथ बनाया गयाहै, शेष तीन रामायणोंके नाम—योगवाशिष्ठ, वाल्मीकि और अद्भुतरामायण । सबही महर्षिकी चिन्ताशीलताकी निदर्शनहैं । वैराग्य, मुमुक्षु, उत्पत्ति, स्थिति, उपशम और निर्वाण इत्यादि कई विषय लेकर, रामचंद्रजी और वशिष्ठजीके प्रश्नकी मीमांसाके मिससे यह ग्रंथ बनायागयाहै । यद्यपि, वशिष्ठजीके मुखसे रामचंद्रजीके सब प्रश्न मीमांसित और संदेहजाल दूर होगये किन्तु महर्षि वाल्मीकिजीही इस अनुपम ग्रंथके बनानेवाले हैं । रामायण और अद्भुतरामायणभी वाल्मीकिजीके हाथसे प्रकाशित हुई हैं; । उनमें यह पिछला ग्रंथ सहस्र मुख रावण विनाश

विषयावलम्बनसे लिखा गयाहै "पुरुष निश्चेष्ट, प्रकृतिही प्रधानहै" यह दिखलानेको सीताजीके हाथसे उक्त दुरात्मा मारागयाहै ।

वाल्मीकिरामायणके सात कांडहैं—प्रथम बालकाण्ड । दूसरा अयोध्याकाण्ड । तीसरा आरण्यकाण्ड । चौथा किष्किन्धा । पांचवा सुन्दर । छठा लंका वा युद्धकाण्ड । और सातवां उत्तरकाण्डके नामसे परिचितहै । रामका जन्म, ताडकावध, अहिल्याउद्धार, विवाह, परशुरामका गर्व तोडना विवाहके होजानेपर गृह प्रवेश इत्यादि घटनाओंसे बालकाण्ड पूरा हुआहै इस कांडमें ७७ सर्गहैं । अयोध्याकाण्ड ११९ सर्गोमें पूर्ण हुआहै । रामके राजतिलककी तैयारी, मन्थराकी सम्मतिसे कैकेयी का वर पाना, सीता लक्ष्मण सहित रामचंद्रजीका बनगवन करना, निषाद पुरीमें प्रवेश भरद्वाजजीके आश्रममें जाना, चित्रकूटपर वास, महर्षिसे मिलना, दशरथजीका तनुत्याग करना, भरतमिलाप, फिर आगेके वनोंको जाना, प्रभृति कथाओंमें अयोध्याकांड वर्णन किया गयाहै । आरण्यकांडमें ७५ सर्गहैं । विराधवध, महर्षि शरभंगकी स्वर्ग प्राप्ति,राम जीका सुतीक्ष्णके आश्रममें जाना, महर्षि अगस्त्यसे मिलना शूर्पणखाके नाक कान काटना, खर, दूषण, और मारीचका, प्राणसंहार, सीताहरण, जटायुमरण, सीताजीका ढूंढना इत्यादि विषय इसकाण्डमें हैं । किष्किन्धामें ६७ सर्गहैं । इस काण्डमें सुग्रीवसे मित्रताई, वालिवध, वन्दरोंकी सैनाको एकत्र होना, और बंदरोंका सीताजीको खोजने जाना, सम्पातिसे सीताजीकी सुधिपाना वर्णन कियाहै । सुन्दरकाण्डमें ६८ सर्ग हैं । हनुमानजीका समुद्र पार होना, लंकादाह, अक्षविनाश, रामको सीताजीकी निशानी दिखाना, इत्यादिक घटना लेकर इस कांडकी उत्पत्तिहै । युद्ध कांडमें १३० सर्ग हैं । सेतुबांधना, विभीषणसे रामचंद्रजीकी मैत्री, अतिकाय, अकम्पन, प्रहस्त, धूम्राक्ष, इन्द्रजीत, कुम्भकर्ण, रावणवध, विभीषणको राज्य, सीताकी अग्निपरीक्षा, प्रभृति कथा इस कांडमें वर्णन कीगई हैं । उत्तर कांडमें १११ सर्ग हैं । रामजीका अगस्त्यजीके मुखसे कुबेर और राक्षसोंकी उत्पत्ति श्रवण करना, देवताओंसे युद्ध करनेमें माल्यवान राक्षसोंकी मृत्यु, रावणकी तपस्या, कुबेरकी प राजय, रावणका वरुण लोक देखना, कुम्भीनसी हरण, नल कुबेरका शाप, वालिसे रावणकी सख्यता, सीतावनवास, नैमि वशिष्ठका संवाद, लवणवध, शूद्र तपस्वीका वध, अश्वमेधयज्ञारम्भ, सीताजीका पृथ्वीमें समाना, कौशल्यादि रानियोंका देह

त्याग, दुर्वासासमागम, लक्ष्मण विसर्जन, और श्रीरामचंद्रजीका साकेतगमन प्रभृति प्रधान प्रधान घटनाओंसे उत्तर कांडका अंग पुष्टहै ।

रामायण सुननेके फलमें ग्रंथकारने अपने कहे ग्रंथमें जो वर्णन कियाहै, इस स्थानपर उसके लिखनेकाभी प्रयोजनहै ।

" धर्म्यं यशस्यमायुष्यं राज्यश्च विजयावहम् ॥
आदिकाव्यमिदं चार्पं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥ १ ॥
यः शृणोति सदा लोके नरः पापात्प्रमुच्यते ॥
पुत्रकामश्च पुत्रान्वै धनकामो धनानिच ॥ २ ॥
लभते मनुजो लोके श्रुत्वा रामाभिषेचनम् ॥
महीं विजयते राजा रिपूंश्चाप्यधितिष्ठति ॥ ३ ॥
श्रुत्वा रामायणमिदं दीर्घमायुश्च विन्दति ॥
रामस्य विजयं चेमं सर्वमक्लिष्टकर्मणः ॥ ४ ॥
शृणोति य इदं काव्यं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ॥
श्रद्दधानो जितक्रोधो दुर्गाण्यतितरत्यसौ ॥ ५ ॥
शृण्वन्ति य इदं काव्यं पुरा वाल्मीकिना कृतम् ।
ते प्रार्थितान् वरान् सर्वान् प्राप्नुवंतीह राघवात् ॥ ६ ॥
विजयते महीं राजा प्रवासी स्वस्तिमान्भवेत् ।
स्त्रियो रजस्वलाः श्रुत्वा पुत्रान् सूयुरनुत्तमान् ॥ ७ ॥
पूजयंश्च पठंश्चैनमितिहासं पुरातनम् ।
सर्वपापैः प्रमुच्येत दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥ ८ ॥
रामायणमिदं कृत्स्नं शृण्वतः पठतः सदा ॥
प्रीयते सततं रामः स हि विष्णुः सनातनः ॥ ९ ॥
भक्त्या रामस्य ये चेमां संहितामृषिणा कृतां ॥
ये लिखन्तीह च नरास्तेषां वासस्त्रिविष्टपे ॥ १० ॥
इदमाख्यानमायुष्यं सौभाग्यं पापनाशनं ॥
रामायणं वेदसमं श्राद्धेषु श्रावयेद्बुधः ॥ ११ ॥
अपुत्रो लभते पुत्रमधनो लभते धनं ॥
सर्वपापैः प्रमुच्येत पादमप्यस्य यः पठेत् ॥ १२ ॥

पापान्यपि च यः कुर्यादहन्यहनि मानवः ॥
पठत्येकमपि श्लोकं स पापात्परिमुच्यते ॥ १३ ॥
अश्वमेधसहस्रस्य वाजपेयशतस्यच ॥
लभते श्रवणादेवाध्यायस्यैकस्य मानवः ॥ १४ ॥
हेमभारं कुरुक्षेत्रे ग्रस्ते भानौ प्रयच्छति ॥
यश्च रामायणं लोके शृणोति सम एव सः ॥ १५ ॥
सम्यक् श्रद्धासमायुक्तो लभते राघवीं कथां ॥
सर्वपापात्प्रमुच्येत विष्णुलोकं स गच्छति ॥ १६ ॥"

अर्थात्–"पूर्वकालमे महर्षि वाल्मीकिजीने इस महाकाव्यको बनायाहै, यह धर्मका उत्पन्न करनेवाला, आयु बढानेवाला, यश देनेवाला, और राजाओंको जयदायकहै जो मनुष्य रामायण श्रवण करतेहैं, वह पापसें छूटजातेहैं । पुत्र और धनके चाहनेवाले मनुष्य, इसको श्रवणकर पुत्र और धन पातेहैं । राजा रामचंद्रजीके राज्यकी कथा श्रवण करनेसे, पृथ्वीको जय विजय, और शत्रुको क्षय कर सकतेहैं । अक्लिष्टकर्मा रामचंद्रजीकी कथा श्रवण करै तो लोकमें दीर्घायु प्राप्त करताहै । जो मनुष्य क्रोधको जीतकर श्रद्धासे वाल्मीकिकृत रामायण सुनै वह कठिन संकटोंसे उत्तीर्ण होजाय । जो रामायण श्रवण करतेहैं, वह श्रीरामचंद्रजीसे मनोवांछित फल पाते हैं । रामायणके श्रवणसे राजा पृथ्वीजय, और परदेशी मंगल लाभ करतेहैं । रजस्वला स्त्री इसके श्रवण करनेसे पुत्र प्रसव करती है । रामायणकी पूजा या पाठ करनेसे मनुष्य सब पापोंसे छूटकर बडी आयु पाते हैं । जो समस्त रामायण पाठ या श्रवण करतेहैं, भगवान् सनातन रामचंद्र उनपर प्रसन्न होजातेहैं । जो भक्तिपूर्वक ऋषिकी बनाई यह संहिता लिखतेहैं, उनका स्वर्गमें वास होताहै । यह उपाख्यान आयुका बढानेवाला, सौभाग्यजनक और पापनाशक है । श्राद्धकालमे पंडितके मुखसे वेदतुल्य यह रामायण ग्रंथ सुनैं जो मनुष्य इसका एक चरण भी पढै, वह अपुत्र होनेसे पुत्रवान निर्धन होनेसे धनवान्, और पापी होनेसे पुण्यवान् होजाताहै । जो मनुष्य दिन रात पाप करता है, वहभी यदि ध्यानधरके इसका एक श्लोक पढले तो सब पाप ताप विलापसे छूटजाय । अश्वमेध वाजपेय यज्ञ करनेसे जो फल मिलताहै, रामायणके एक अध्याय पढनेसे उसी फलकी प्राप्ति होती है । ग्रहणके समय कुरु-

क्षेत्रमें सुवर्णदान करनेंसे जो पुण्य होताहै, रामायणके श्रवण करनेंका फलभी वैसा-ही है। जो मनुष्य श्रद्धासे रामचरित्र श्रवण करतेहैं, वह सब पापोंसे छूटकर विष्णु लोकको चले जाते हैं।"

अब रामायणके बनानेवाले महर्षि वाल्मीकिजीके सम्बन्धमें कुछ कहना चाहतेहैं। आलंकारिक कहते हैं कि—उपमा और उपमेय पदार्थोंके बीचमें निकृष्ट वस्तुकि तुलना उत्कृष्टके सहित होसकतीहै, और यही गौरवका परिचय है, परन्तु इस कहनेंसे उत्कृष्ट वस्तु निकृष्टके साथ बराबरीमें तो नहीं आसकती, और होनेसे अलंकारका दोष कहा जायगा। इमली स्वभावसेही अम्लरसपूर्ण (खट्टी) होतीहै, परन्तु इसका गुण वर्णन करते हुऐ बूरासे बराबरी करदी, यह हमभी मानतेहैं;परन्तु इस कहनेंसे बूरा इसकी समान यह उपमा ठीक नहीं। हमनें जहांतक ढूंढ खोजके मालूम कियाहै, वहांतक कहसकतेहैं। कि जिससे रामायणकी तुलना होसके, ऐसा ग्रंथ हमारे नेत्रोंके सामने अबतक नहीं आया, और होगा, यहभी नहीं कह सकते। हम इस सम्बन्धमें इतनाही कहैंगे कि वाल्मीकिजीनें राम रावणका युद्ध वर्णन करनेके संबन्धमें कोई उपमा न देख करकै,

"रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव"

यह बात कहीहै इसी प्रकार रामायणकी रचना वाल्मीकिजीकोही सोहतीहै, और वाल्मीकिजीभी रामायणके प्रकृत अनुरूप प्रणयनकर्ताहै।टीकाकार रामानुजनें कहाहै

"कूजन्तं राम रामेति मधुरं मधुराक्षरं।
आरूढं कविताशाखां वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्॥"

अर्थात् "—मैंवाल्मीकि स्वरूप कोकिलको अभिवादन करता हूं, यह कोकिल कविता शाखापर आरोहण करकै, मीठे स्वरसे राम राम शब्दसें कूजन करताहै"

हम पक्षपातरहित होकर इस बातके पक्षपातीहैं यथार्थमें विचार कर देखनेसे रामायणको एक प्रधान पेड़ मनमें समझ सकतेहैं। सच्चिदानंद ब्रह्म इसके अमल बीज, चिन्मय इसका अंकुर, यह विस्तारित वृक्ष सप्त काण्डोंमें विभक्तहै ऋषिगण इसके आलवाल स्वरूपमें मूलकी रक्षा करतेहैं, तत्वज्ञानपूर्ण चौबीस सहस्र पत्रोंसे यह शोभायमानहै, इसमें छःसौग्यारह शाखास्वरूप सर्ग विराजमानहैं, यह वृक्ष ब्रह्म प्राप्ति फल देताहै इसके फल नित्यपकेहुए, और अनन्त कालतक र

सनाको तृप्ति करतेहैं, और इस ग्रंथमे जैसे सूक्ष्म और सदुपदेश मिलेहुएहैं और कहीं ऐसे उपदेश मिलतेहैं अथवा नहीं, इस्में संदेह है, केवल ऐसा नही कि ग्रंथ रसभावपूर्ण, चित्तचमत्कारक, और मनोहारकहीहै, नही इसमें प्राचीन कालके आचार, व्योहार, जातिधर्म, पातिव्रत्य, सौभ्रात्र, और राजधर्म इत्यादिक भरे पड़ेहैं। यद्यपि भाग्यदोषसे वह सब चिन्ह, वह अनुष्ठान, वह सुखके दिन इस समय नहींहैं। परन्तु रामायणकी ओर दृष्टि फिराननेसे, स्मृति की सहायमें,—कविके सुचित्रमें—रचनाकी पंडिताईमें, वह स्पष्ट भावसे अबभी मानों प्रत्यक्ष कीनांई मूर्ति धारण किये खड़ेहैं। किसी किसी सूक्ष्मदर्शी पंडितके मतसे यह ग्रंथ करुणारसकाहै; अर्थात्— इस्में करुणारस प्रधानहै। परन्तु सुप्रसिद्ध-टीकाकार नागोजीभट्टनें कहाहै कि—

"वयं तु शृंगार एव प्रधानःसीतायाश्चरितं महदित्युक्तेः"

यह कहतेहैं,—हम शृंगाररसको प्रधान मानतेहैं, क्योंकि सीताजीका महत् चरित्रही इसका मुख्य अंगहै।

हमारे विचारमेंभी नागोजी भट्टकी उक्ति अप्रमाणिक नही जानपड़ती। अलंकारिकोंनें शृंगारको संयोग और विप्रलंभ इन दो भागोंमें विभक्त कियाहै, सुतराम् उनके कथनसें सीताजीके सहित सीतापतिका सहवास काल संयोग, और फिर उसके उपरान्त सीता हरणसे उद्धारके पूर्व कालतक विप्रलंभका प्रत्यक्ष दृष्टान्तहै। इस ग्रंथमें रामचंद्रजीके विरहमें दशरथ और कौशल्यादिका विलाप और परिताप करुणारसका झरना, शूर्पणखाके संयोगसे हास्य रसका प्रदीप्त चित्र, हनुमान प्रभृति वानर गणोंके वीरकार्योंमें वीर रसका नमूना, राम रावणके युद्धमे वीररसकी दिव्य मूर्ति, विराध और कबंधके चरित्रमें अद्भुत पराकाष्ठा, रामके चरित्र, और परस्पर व्यवहारमें शान्तिरसका अपूर्व अनुपम निदर्शनहै। जो हो रामायणकी बड़ी समालोचना करनेंका हमारा आशय नहींहै तौभी संक्षेपसे कुछ बातोंकी पर्य्यालोचना करनेसे ग्रंथकर्ताकी शक्तिकी कुछ आभा देनाही हमारा उद्देश्यहै। मनुसंहिताके दशवें अध्यायके ८१। ८२। श्लोकमें लिखाहै कि—

"अजीवंस्तुयथोक्तेन ब्राह्मणा स्वेन कर्मणा।
जीवेत् क्षत्रियधर्मेण सह्यस्त्यप्रत्यनन्तरः॥ १॥

उभाभ्यामथजीवंस्तु कथंस्यादितिचेद्भवेत् ।
कृषिगोरक्षमास्थाय जीवेद्वैश्यस्य जीविकाम् ॥ ”

अर्थात्–“यदि ब्राह्मण अध्यापनादि नियत कर्म करके कुटुम्बप्रतिपालन पूर्वक जीविका निर्वाह नही कर सकै तौ क्षत्रिय धर्म,–अर्थात्–ग्रामादिकी रक्षामें दिन रात व्यतीत करै। यदि निज धर्म वा क्षत्रियधर्मभी ग्रहण करके जीविकान चलै तो खेती और गोरक्षादि वैश्यवृत्ति करै।”

रामायणमेंभी इन नियमोंके विरुद्ध दृष्टि नहीं आता उस समय गर्गवंशसम्भूत त्रिजट नाम ब्राह्मण वैश्यवृत्ति अवलम्बन करकै दिन व्यतीत करताथा । ब्राह्मण, क्षत्रिय, और वैश्यादि सभी अपने निर्दिष्ट धर्मकार्यमें जीवनयात्रा निर्वाह करतेथे और जो तपस्वी या संसारत्यागीहैं उनका विषय प्रस्तावनाके बाहर समझ कर हम वर्णन नहीं करेंगे। उससमय मुख्य और गौण दो प्रकारका ब्रह्मचर्यथा । ब्राह्मणोकी अपने धर्ममें अवस्थिति और उसके अनुष्ठानका नाम ब्रह्मचर्यहै । मनुजीके मतसे यजन, याजन, अध्ययन, अध्यापन, दान और प्रतिग्रह, यह कई एक ब्राह्मणोंके निर्दिष्ट काम गौण ब्रह्मचर्य कहातेहैं । यही ब्रह्मचर्यावलम्बी ब्राह्मण संसारी हो गृहधर्म पालन करते, और श्रुति स्मृति, आचारोंके अनुसार चलतेहैं । अपर सम्प्रदायमें मुख्य ब्रह्मचारीहैं । यह संसारत्यागी, परिव्राजक, छत्र, खडाऊं,–और कमंडलधारी होतेहैं। रामायणमें लिखाहै–

“ श्लक्ष्णकाषायसंवीतः शिखी छत्री उपानही ।
वामेचांसेऽवसज्याथ शुभेयष्टिकमंडलू ॥ ”

अर्थात्–“उनके पहिरनेंके मनोहर वल्कल वस्त्र, मस्तकपर चुटिया और छत्र, पैरोंमें खडाऊं, वायें कन्धे पर लकडी और कमंडलु” ।

तपस्वियोंके आश्रम सवंधमें वाल्मीकिजीने क्या सुन्दर वर्णना कीहै ।

“ प्रविश्यतु महारण्यं दण्डकारण्यमात्मवान् ।
रामो ददर्शदुर्द्धर्षस्तापसाश्रममण्डलम् ॥
कुशचीरपरिक्षिप्तं ब्राह्मया लक्ष्म्यासमावृतम् ।
यथाप्रदीप्तं दुर्दर्शं गगनेसूर्यमंडलम् ॥ २ ॥
शरण्यं सर्वभूतानां सुसंमृष्टाजिरंसदा ।

मृगैर्बहुभिराकीर्णं पक्षिसंघैस्समावृतं ॥ ३ ॥
पूजितश्चोपनृत्यंच नित्यमप्सरसांगणैः ।
विशालैरग्निशरणैःस्रुग्भांडैरजिनैःकुशैः ॥ ४ ॥
सूर्यवैश्वानराभैश्च पुराणैर्मुनिभिर्युतं ।
पुण्यैश्च नियताहारैःशोभितं परमर्षिभिः ॥ ५ ॥

अर्थात् । "आत्मवान् दुर्द्धर्ष रामचंद्रजी महारण्य दंडकवनमें प्रवेश करके तपस्वियोंके आश्रमसमूह देखनें लगे । जहांकि कुश चीर इधर उधर पडेहैं । ब्रह्म संबंधी लक्ष्मीसे युक्तहैं जिसप्रकार आकाश मध्यवर्ती भगवान भास्करको तेजके कारण कोई नही देख सक्ता, इसी प्रकार तपस्वीभी कठिनसे देखने योग्यहैं । उनके आश्रमोंके आंगन शोभित और सब प्राणियोंके शरणदेने वालेहैं वहां नाना प्रकारके पक्षी और मृगगण विचरण करतेहैं । अप्सराओंके गण इन स्थानोंमे नित्य नृत्य करतेहैं । विशाल अग्निहोत्र, स्रुग्भांड, अजिन और कुशसमूह उस स्थानमें व्याप्तहैं । सूर्य और अग्नि तुल्य तेजस्वी फलमूलाहारी परमकारुणिक परम पुण्यवान् महर्षिगण शोभा पारहेहैं ।"

हे चतुर सहृदय पाठक ! एक वार संसार विषसे जले शान्तिमय मनुष्यकी वास भूमि और इस पुण्यभूमिकी तुलना करनेसे जान जाइयेगा कि—स्वर्ग और नरकमें जितना अंतरहै,संसारसे और ऋषिलोगोंके आश्रमोंमें उस्से ज्यादा अंतरहै।वहां मिथ्या प्रलोभन, विषयचर्चा, अधर्म स्रोत, पाप पहाड, इन सबका नामतक नहीं । सरलता, दया, पवित्रता, शांति, और अच्छे अनुष्ठान, सबही मानो स्वाभाविक सहोदरताके सूतमे सदा एक स्थानमें अवस्थिति करतेहैं । विचार देखिये, कि उस समयके ब्राह्मण कैसे देवभावापन्न, कैसे विद्यावान्, कैसे शास्त्रदर्शी, और कैसे सन्मान पाने योग्यथे ! यह प्रभातही नियमित सन्ध्या वंदनादि, मध्याह्नमें योगादि और सायाह्नमें देवकार्योंके अनुष्ठानमें लगे रहतेथे । इनके शिष्य नौकर चाकरकी समान सब निर्दिष्ट कर्म करतेथे । पवित्रभाव, पवित्रकाय और पवित्र आचारमें वृत्ति रहनेसे इन्होंने असंतोषका मुखभी नही देखाथा । हाय ! कालके दोषसे अब इनके वंश घरोंका क्या परिणाम होरहाहै! जो हो, उस समयमें राजधर्मके साथ, संक्षेपसे कुछेक उसकाभी परिचय देतेहैं । उसके अनुसार चित्रकूट पर्वतपर भरतको रामका दर्शन होनेपर रामचंद्रजीने बूझाथा;—

"कच्चिदर्थेनवा धर्ममर्थं धर्मेणवा पुनः ॥
उभौवा प्रतिलोमेन कामेननविबाधसे ॥ १ ॥
कच्चिदर्थश्च कामश्च धर्मश्च जयतांवर ।
विभज्य कालिकालज्ञ सर्वान् वरद सेवसे ॥ २ ॥
मंत्रिभिस्त्वं यथोद्दिष्टं चतुर्भिस्त्रिभिरेववा ।
कच्चित् समस्तैर्व्यस्तैश्च मंत्रंमंत्रयसेबुध ॥ ३ ॥
कश्चिद्देवान् पितॄन् भृत्यान्गुरून् पितृसमानपि ।
वृद्धांश्च तात वैद्यांश्च ब्राह्मणांश्चाभिमन्यसे ॥ ४ ॥"

भूमिका बढनेके भयसे केवल इतनेहीं श्लोक उद्धृत किये, इनका अर्थ यहहैकि- "तुम अर्थद्वारा धर्म, धर्म द्वारा अर्थ, और काम द्वारा इन दोनोंको निपीडित तो नहीं करते? तुम यथा कालमें धर्म, अर्थ, और कामको समभावसे तो ग्रहण करतेहो? तुम देवता, पितृ, पितृतुल्य, गुरुव्यक्ति वृद्ध, वैद्य, और नौकर चाकरोंका अनुरूप सन्मान तो करतेहो?"

उस समयके राजधर्म संबंधमें और क्या कहैं, रामके राज्यकी बडाई अबतक आबाल वृद्ध वनिताओंके हृदयमें जाग रहीहै। चोर या ठगोंका भय तो दूसरी बातहै, उन सबकी ऐसी धर्मपर दृष्टि और ऐसे निष्पाप अनुष्ठान थे कि अकाल मृत्युभी अपनी प्रभुता जमानेमें समर्थ नहीं हुईथी। समाजधर्मके विषयमें केवल इतनाही कहनेसे काम चलजायगा, कि, उस समय वैर हिंसा— प्रभृति कुभावोंने मनुष्योंके मनमें स्थान नहीं पायाथा। मनुष्यके तीन शासनके वश होंने उपरान्त उसको निरापदकी भावना और उन्नतिकी बाधा नहीं होतीथी, उस समय वही तीन अर्थात् राजशासन, धर्मशासन, समाजशासन अटलभावसे स्थिर करतेथे, यदि ऐसा न होता, तौ रामचंद्रकी समान भूपति, सामान्यलोकापवादके भयसे गृहलक्ष्मी प्राणोंसेभी अधिक प्यारी जानकीको क्यौं त्यागन करते? इस समयके नये सभ्योंको इस कार्यका अनुचित कहना कुछ असंभव नहींहै, परन्तु जो राजपदके कर्म, कर्तव्य कर्म को जानतेहैं जो सब उपायोंसे प्रजाको प्रसन्न करनाही राजाशब्दका अर्थ बतातेहैं, वह लोग कहसकतेहैं कि यह कार्य अनुचित वा उचितहै। यदि हमारी प्रकृति कुछभी वैसी होती यदि उन मर्य्यादा पुरुषोत्तमकी अवस्था हमारे ऊपर बीचती, यदि हमारा और सीतापतिका दायित्व एक सा

होता, यदि हम उस समयकी रुचि, प्रवृत्ति और अवस्था जान्ते होते, अधिक क्या कहैं, यदि उस समयके मनुष्यभी होते तो नहीं समझमें आती कि ऐसे स्थानमें रामचन्द्रको कहां तक अनुचित कहते? जो हो, अब हमें यह बतानेंका प्रयोजन हुवाहै कि रामायणसे संसारी मनुष्योंके अर्थ क्या क्या उपदेश निकलतेहैं; और हमारा विश्वासहै कि इससे वाल्मीकिजीकी शक्तिकी सीमा अवधारित होजायगी। अलंकार ग्रंथमें लिखाहै कि-

"रामादिवत् प्रवर्तितव्यं न रावणादिवत्"

अर्थात्—हमें रामचंद्रजीकी समान चलना उचितहै, रावण आदिकका अनुवर्ती होना उचित नहीं। अब रामचंद्रजीके कार्यसंबंधमें कुछ पर्य्यालोचना करनी चाहिये, महर्षि वाल्मीकिजीने रामचंद्रको सर्व गुणोंके आधार, सर्वके प्रिय, और अमानुषीप्रकृतिसे सजायाहै। देखिये, माता कौशल्याका अनुरोध, भ्राता लक्ष्मणका अतिशय निर्बन्ध, सीताजीकी प्रार्थना, पुरवासियोंका निषेध, वरन महाराज दशरथजीकीभी आकांक्षापरित्याग करकै, राजतिलकको जलांजलि दे वह विकाररहित चित्तसे जटा वल्कल धारण कर वनवासी हुये। 'पितृदेवोभव''मातृदेवोभव' इस श्रुतिकी महिमा पूर्ण रूपसे प्रगट कर दिखाई। पिताका सत्य पालनही उनका मूलमंत्र और प्रधान धर्म होगया। उन्होने उस सधर्मके आगे सबको सामान्य समझा। उनकी केवल यही उक्ति रही "रामोद्विर्नाभिभाषते"। "राम किसी बातमें द्विरुक्ति नहीं करता"। कैकेयीका चरित्र यहांतक अंकित हुआ कि उससे विमातृ शब्दही भली प्रकार शक्ति संपन्न हुआहै पुरुषकी वृद्ध वयसमें स्त्रियोंमे आसक्त होनेंसे कैसी दुर्गति होतीहै, कैकेयीकी उक्ति, और कार्य व उस्के किये पुत्रशोकसे दशरथजीका प्राण त्यागन करना, इस घटनाका सर्व श्रेष्ठ नमूना है। नीच और पराये विभवको देखकर जलनेंवालोंके परामर्शसे जैसी इष्टसिद्धि होतीहै, यहां मंथराका स्वभाव उसको बता रहाहै। जो जीव मात्रमेंही श्रद्धा करते हैं। उनके बडप्पनकी सीमा नहीं रहती, इसी कारण निषादाधिपति गुहसे रामचंद्रजीकी मित्रता हुई।

अब कुछ लक्ष्मणजीके चरित्रका अनुसंधान करें, यदि परिचय जाननेंका सुभीता न होता तो कौन लक्ष्मणजीको सौतेला भाई समझता अबभी दो भाइयोंकी परस्पर बड़ी प्रीत देख आदमी कहा करतेहैं" जैसे राम लक्ष्मणकी जोडी" अर्थात्—इनमें कुछ भिन्नता नहींथी भाई बनको जायँगे; लक्ष्मणभी तैय्यार हुये; रामके वारंवार निषेध करनेसेभी लक्ष्मण न मानें। आहार, निद्रा, भोग, इन सबोंका त्यागन

कर परछांहीकी समान संगी होंना, ऐसा भाव क्या अबभी दृष्टि आताहै? मनुष्य क्रोधोदय होंनेपर गुरुजनोकोभी अनुचित वाक्य, कह बैठतेहैं, किन्तु लक्ष्मणजीनें एक दिनभी राम वा सीताजीके ऊपर व्यवहार विरुद्ध आचरण वा और युक्ति प्रयोग नहीं की। और इसी प्रकार रामचन्द्रभी लक्ष्मणको देखतेथे दोनोंका व्यवहार समान न होनेंसे मनका मिलना, व अनुगामी होना नहीं होसकता? लोकव्यवहार दर्पणमें मुख देखनेकी समानहै, तुम यदि मुझसे प्रीत चाहो, तो प्रथम प्रीत देनी होगी, जब लक्ष्मणजीके शक्ति लगी, तब उनकी अवस्था देख रामचंद्रजीका अंतःकरण कैसा व्याकुल हुआथा? और उस समय उन्होंनें कैसा शोक परिताप कियाथा, इस स्थानपर प्रमाणार्थ महर्षिजीकी उक्ति उद्धृत करके लिखी गईहैं;।

विजयोऽपिहि मे शूर न प्रियायोपकल्पते ।
अचक्षुर्विषयश्चंद्रः कां प्रीतिं जनयिष्यति ॥ १ ॥
किं मे युद्धेन किं प्राणैर्युद्धकार्यं न विद्यते ।
यत्रायं निहतः शेते रणमूर्द्धनि लक्ष्मणः ॥ २ ॥
देशे देशे कलत्राणि देशे देशे च बान्धवाः ।
तन्तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ॥ ३ ॥
युद्ध० १०२ स० १०। ११। १४ ।

अर्थात्—हे शूर! रणमें जय पाना मुझे अच्छा नहीं लगता, क्योंकि यदि आंखोंसे चंद्रमाके दर्शन न किये जा सकैं, तो संतोष कैसे होगा, जब भ्राता लक्ष्मणही रणभूमिमें निहत हो शयन करतेहैं, तो मेरा युद्ध वा जीवन धारण करनेंसे क्या प्रयोजन है? देश देशमें कलत्र, वा बंधु, बांधव मिल सकतेहैं, परन्तु ऐसा देश दृष्टि नहीं आता कि जहां सहोदर भ्राता मिलजाय।"

आहा! अबभी कहीं भाइयोंमें इस प्रकारका स्नेह देखनेमें आताहै? राम लक्ष्मण भिन्न यह भायप और किसीमें संभव होसकता है? हम साधारण भूमि धन दौलतके लिये भाईका त्यागन करतेहैं। परन्तु लक्ष्मण सौतेले भाई होकरभी रामचंद्रके कार्यके अर्थ धराशायी हुये।

पाठक गण! सीता महारानीका सदय भाव और महत्व देखनेको और जगह विचारिये। रावणके विनाश होंनेपर रामचंद्रजीकी आज्ञासे रामभक्त केशरीनंदन हनुमान अशोकवनमें प्रवेश करकै, शुभ संवाद दे सीताजीसे कहनें लगे,—देवि! खोटी वृत्तिवाली राक्षसियोंनें रावणकी आज्ञासे तुमारे प्रति तर्जन, गर्जन और नाना

प्रकारकी पीडा दीहै; अतएव अनुमति हो तो, मैं उन्हे यमलोककी यात्रा कराऊं, सीताजीने निषेध पूर्वक इसके उत्तरमें जो कुछ कहाहै, उसे एकवार देख लीजिये;—

भाग्यवैषम्यदोषेण पुरस्ताद्दुष्कृतेन च ॥
मयैतत्प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते ॥ ३७ ॥
मैवं वद महाबाहो दैवी ह्येषा परागतिः ॥
प्राप्तव्यन्तु दशायोगान्मयैतदिति निश्चितं ॥ ३८ ॥
यु० ११९ । ३७ । ३८ ।

तात्पर्य—"मेरे जन्मांतरकी दुष्कृति और दुर्भाग्योंके निबन्धनसे मुझे यह फल भोगना पडा। तुमने राक्षसराजके नौकर चाकरोंको वध करनेंको जो कहा, यह बात अब मत कहना, हे महाबाहो! दैवकी गति जो निर्द्धारितहै, उसको कौन खंडन कर सकताहै, सुतरान्तक दशाके योग होनेसे यह अवश्यही हमें भोगना पडेगा।"

क्या चमत्कार, साधुता, क्या असाधारण सद्व्यवहार, क्या अलौकिक महत्त्व, और क्या देवभावमय दृष्टांतहै!

अब रावणके चरित्रकी कुछ आलोचना करनी उचितहै। किसी २ ग्रंथमें लिखाहै कि—रावण एक भक्त था। द्वेषभावसे वैर कर उद्धार होनाही उसकी इच्छाथी। कोई कोई रावणके कार्योंको देख उसे वर्व्वर, अत्याचारी, अधार्मि-क, और लोककंटक कहतेहैं हमारे मतमें महात्मा बिभीषणके मुख और वाल्मीकिजीकी उक्तिसे रावण एक सुपंडित, शास्त्रज्ञ कर्मी, वेदान्तवित्, नीतिज्ञ, और विक्रान्त, कहके परिचितहै। प्रमाणके लिये नीचे श्लोक लिखाहै;—

"एषोऽहिताग्निश्च महातपाश्च वेदान्तगःकर्मसुचाग्र्यशूरः
एतस्ययत् प्रेतगतस्यकृत्यं तत्कर्तुमिच्छामितवप्रसादात् ॥"

अर्थात्—"यह रावण अग्निहोत्री, महातपा, वेदान्तवित्, कर्मी एवं वीरचूणाम-णि था। अब इसकी प्रेतावस्थामें जो कर्तव्यहै, आपकी अनुमतिसे करनेंकी इच्छा करताहूं।"

जो कुछभीहो, हजार गुणरहतेभी, जैसे, "दारिद्र्यदोषो गुणराशिनाशी" यह एक महा वाक्य सुन्नेमे आताहै, रावणके पक्षमेंभी इसी भांति नाना प्रकारके गुणोंका समावेश

होनेंसेभी अत्याचार, पीडन, देवब्राह्मणकी हिंसा और कामुकतानें उसके गुणोंको ग्रासकर लिया था,वह भक्तहो, अथवा नहो, इस बातमें हमारा वाद विवाद व्यर्थहै; परन्तु हम कहना चाहतेहैं कि उसके जैसे कर्म, व्यवहार और प्रवृत्ति थी, वैसाही फलभी उसने पाया। विश्वविचारक विश्वेश्वरके निकट आजहो, कलहो,—अवश्यही सुविचार होतारहा और होगा। पापकी उत्तेजना और अधर्मकी वृद्धि न होनेसे क्षयपानेकी संभावना नहीं रहती।

उपसंहारमें श्रीसीताजीके गुण और उनके निष्कलंक चरित्रोंकीभी कुछ समालोचना करनी चाहिये। यति जटावल्कलधारी और वनवासी हुये, अतएव पतिप्राणा जानकीजी उनकी अनुवर्तनी होंगी, इसमें आश्चर्यही क्याहे। सो हम यह बात नहीं कहते। पाठकगण! विचारकर देखिये कि जगत्‌जननी सीताजीके उद्धार करनेको वालिवध, वन्दरोंकी सैनाका एकत्र करना, समुद्रमें पुल बांधना, वंशसहित रावणको ध्वंस करना इनसब घोर कार्योंके पीछे, विभीषणके साथ रामचंद्रजीकी आज्ञासे, उनके सन्मुख वही सीताजी उपस्थित हुईं, वैसेही सीतानाथनें दुर्वाक्य रूपी बाणोंसे उनको जर्जरित किया और उनको किसी प्रकारसे ग्रहण करनेमें सम्मत न हुये। तब सती साध्वी जानकीजीने अग्निमें प्रवेश करनेंको उद्यतहो जो प्रार्थनाकीथी,एकवार उस स्थलकी पर्य्यालोचना करनेंका प्रयोजनहै

"यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात्।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥१॥
कर्मणा मनसा वाचा यथा नातिचराम्यहम्।
राघवं सर्वधर्मज्ञं तथा मां पातु पावकः ॥ २ ॥"

अर्थात्—"जो मेरे हृदयनें किसी प्रकारसेभी रामके निकटसे अन्यत्र गमन नहीं किया तो लोकसाक्षी अग्नि मेरी रक्षाकरै। जो मैंने काय, मन और वाक्य, किसी भांतिसे रामको अतिक्रम नहीं कियाहै, तो अग्नि देव मेरी रक्षाकरैं।" फिर रामचंद्रजीके राजतिलकहोंनेपर, लोकापवादके भयसे सीताजी वाल्मीकिजीके आश्रमके निकट तपोवनमें त्यागीगई। और फिर यज्ञके समय उनको तपोवनसे बुलायागया, उससमय देवता, गंधर्व, मनुष्य, और सर्व साधारणके सामने फिर उनकी परीक्षाका विषय छिडनेपर उन्होने जो प्रार्थनाकीथी,- वह नीचे लिखी जातीहै;—

"यथाहं राघवादन्यं मनसापि न चिन्तये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हसि ॥ १ ॥
मनसा कर्मणा वाचा यथारामं समर्चये ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हसि ॥ २ ॥
यथैतत् सत्यमुक्तं मे वेद्मि रामात् परंनच ।
तथा मे माधवी देवी विवरं दातुमर्हसि ॥ ३ ॥"

अर्थात्—"जो मैंने रामके अतिरिक्त मनसेभी और किसीका चिन्तवन नहीं किया, तो हे देवि पृथ्वी ! तुम विदीर्ण होकर मुझे स्थानदान दो । जो मैंने काय, मनो, वाक्यसे केवल रामकीही अर्चनाकीहै, तौ हे देवि ! मुझे स्थानदान दो । जो मैं सत्य सत्यही कहतीहूं कि—मैं रामके अतिरिक्त और किसीको नही जानती तो हे पृथ्वी ! मुझे स्थानदान दे ।"

हाय! इतना कष्ट—इतनी यंत्रणा—इतनी लांछना—और इतना अपमान भोगकरके, जिस स्त्रीने पतिको त्यागकरना, रूठ जाना तो क्या, पुरुषवाक्यतक कहनेकी इच्छा नहींकी, उसकी उपमा, उसका दृष्टान्त, उसका गौरव, क्या किसी लोकमें मिलसकताहै? सीताका ऐसा कष्टपाना, और ऐसा व्यवहार सहना देखकर भारतवासियोंनें सीताजीका नाम स्त्रियोंमेंसे उठा दियाहै ।

जोहो, रामायण साधारणके निकटमें सत्कृत और परिचित होनेंपरभी संस्कृत भाषाके कारण सर्वसाधारणोंकी समझमें नहीं आती "इस देशमे श्रीगोस्वामी तुलसीदासजीकी रामायण भाषाछंदोंमें विरचितहै. सब छोटे बडे उसीको पढ़कर आनंदमें मग्न रहतेहैं । इसकारण हम गुसांई तुलसीदासजीके कृतज्ञ और ऋणीहैं" वाल्मीकीयरामायण सम्पूर्ण भाषामें न देखकर इसका सरल देशभाषामें टीका कियाहै, जिन्होने भाषामें थोडाभी अभ्यास कियाहै, वहभी इसको पाठकर अपना मनवांछित फल प्राप्त करसकते हैं । विशेषतः मूल श्लोकसे कोईभी बात इसमें नहीं छोडीगई, किन्तु जहांकहीं संस्कृतटीकाकारनें कुछ विशेष लिखाहै वहां इस्मेभी अधिक टिप्पणी करदी गई है, यह सब परिश्रम आपको रामभक्त बनानेके निमित्तहैं, यदि शास्त्रपर विश्वासहै तो रघुनाथजीको परब्रह्म जानकर इससे आप अर्थ धर्म काम मोक्ष चारों पदार्थ पासकते हैं, यदि और कुछ भावना हो तो आप उनके आचरणही ग्रहणकीजिये, उसीसे धर्मार्थकी प्राप्ति

हो जातीहै क्योंकि वोह सच्चिदानंद कल्प वृक्षहैं, जैसी आपकी भावना होगी उसीके अनुसार फल मिलैगा.

तुलसीकृत रामायणकी टीका करके आपको रघुनाथजीके उदार चरितोंका परिचय देचुकेहैं परन्तु यह वह संहिताहै जिस्से स्वयं महाराज रामचंद्रने अपने पुत्रोंके मुखसे श्रवणकियाहै गायत्रीके २४ अक्षरोंपर प्रत्येक अक्षरकी सहस्र श्लोकोंमे महिमा वर्णन कर महर्षिने सगुण ब्रह्मका निरूपण कियाहै, यद्यपि इसके अनुवाद करनेका वहुत कालसे मनोरथ था, परन्तु गुणग्राहक न मिलनेसे यह अभिलाषा मनहीं मनमें रही, जबकि गुणिगणमंडलीमण्डन सज्जनमनरंजन वेङ्कटेश्वर यंत्राधीश, वैश्यवरिष्ठ, श्रीकृष्णदासात्मज खेमराजजीने इसमें पूर्ण कृतज्ञता दिखाकर इसके भाषान्तर करनेमें पूर्ण उत्साह दिया, तब उनकी उत्तेजनासे मैंने प्रति श्लोक प्रतिचरण प्रतिपदकी भाषाकर अनुवाद कियाहै वेङ्कटेश्वर यंत्रालयकी उत्तमताको सब जान्तेहैं, जो ग्रंथ इस यंत्रालयसे निर्गत होताहै वह कैसा सुन्दर होताहै अतएव यह रामायण सर्वांगसुन्दर इसी यंत्रालयमें मुद्रित हुई है जहां कहीं संस्कृत टीकाकारने अधिक लिखाहै इसमें भी अनुवादकर वह विषय लिख दियाहै, और बडी सावधानीसे अनुवाद किया गयाहै, तथापि जहां कहीं कुछ त्रुटि रहगई हो उसे सज्जन महात्मा क्षमाकर मेरे परिश्रमको सफल करें,

हमारे छोटे भ्राता बलदेवप्रसादने इस ग्रंथके निर्माण करनेमें वहुत कुछ सहायता कीहै यद्यपि वह छोटेहैं तथापि उनको धन्यवाद दियेविना चित्तमें सन्तोष नहीं होता.

यह वहुत पुण्यमय ग्रंथ वहुत बड़ा होनेंसे दो खंडोमें विभक्त किया गयाहै प्रथम भागमें (वालका०—अयोध्याका०—आरण्यका०—और किष्किन्धाकाण्डहैं) एवम् दूसरे भागमें (सुंन्दरका०—लङ्काका०—और उत्तर काण्डहै.)

पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्र.

मोहल्लादिनदारपुरा

मुरादाबाद.

धन्यवादः ।

श्रीः ।
सन्तुशतशो
धन्यवादाःपरोपका
रनिरताय सद्ग्रन्थप्रचार
कायगुणग्राहिणे श्रीवेङ्कटेशयंत्रा
धीशाय श्रीकृष्णदासात्मजखेमराजश्रे
ष्ठिने येनापरिमितधनव्ययंस्वीकृत्य जगद्धिता
य परोपकाराय-ऋषिमुनिप्रणीतप्राचीनग्रंथानां भा
षानुवादं कारयित्वा निजयंत्रालये मुद्रापयित्वा चास्मिन्
भारते वर्षे प्रचारःकृतः । उपर्युक्तस्य सद्गुणसम्पन्नस्या
नुरोधात् विविधदानमानपरितुष्टचेतसा मया श्री
मद्वाल्मीकीयरामायणस्य "पीयूषधारा"
नामकतिलकं कृत्वाऽस्य पुनर्मुद्रणा
धिकारं सर्वस्वत्वं च तस्मै सम
र्पितमग्रे परब्रह्मसच्चि
दानंदसनातन
देवरामचं
द्रात्

श्रेष्ठिनः श्रीकृष्णदासात्मज खेमराजस्य कीर्त्या
युर्लक्ष्मीसन्ततीनांवृद्धिं प्रार्थयामहे ॥

ज्वालाप्रसादमिश्रः ।

श्रीगणेशाय नमः ।

श्रीमद्वाल्मीकीयरामायणभाषाविषयानुक्रमणिका ॥

अथ बालकाण्डम् ।

इति बालकाण्डम्.

अथ अयोध्या काण्डम्.

इत्ययोध्याकाण्डम् ।

अथ आरण्य काण्डम् ।

इत्यरण्यकाण्डम् ।

किष्किंधा काण्डम्

इति किष्किंधाकाण्डम्।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना
खेमराज श्रीकृष्णदास
"श्रीवेंकटेश्वर छापाखाना"
बंबई.

श्रीगणेशाय नमः ।

अथ श्रीवाल्मीकीय रामायण माहात्म्य प्रारम्भ।

अध्यायः १

श्रीरामःशरणंसमस्तजगतांरामंविनाका गतिः
रामेणप्रतिहन्यतेकलिमलंरामायकार्यंनमः ॥
रामात्त्रस्यतिकालभीमभुजगोरामस्यसर्वंवशे
रामेभक्तिरखंडिताभवतुमेरामत्वमेवाश्रयः ॥ १ ॥

दोहा—विधि हरि हर गणपति गिरा गौरि, भवानि मनाय ॥
करत महातमको तिलक, कीजे आय सहाय ॥ १ ॥

रामचंद्रही समस्त जगत्के शरण देने वालेहैं; रामके विना दूसरी गति नहीं है, रामके ही नामसे सम्पूर्ण कलिमल नाश होतेहैं, रामहीको नमस्कार करना योग्यहै, कालरूपी भयंकर काल रामसेही भयभीत होताहै, रामहीके वशमें सब कुछहै, मेरे रामही आश्रयहैं, और मैं रामचंद्रमेंहीं अखण्ड भक्ति चाहताहूं ॥ १ ॥ लक्ष्मीके आनंद देनेहारे चित्रकूट पर्वतमें विहार करनेवाले भक्तोंके अभय देनेवाले परमानंद स्वरूप रामकी मैं वंदना करताहूं ॥ २ ॥ जिनके अंशसे ब्रह्मा विष्णु महेश लोककी उत्पत्ति पालन संहार करतेहैं उन परम विशुद्ध आदि देव रघुनाथजीका मैं भजन करताहूं ॥ ३ ॥ ऋषिबोले हे सूतजी जो कुछ हमने आपसे पूछा वह सबही आपने वर्णन किया, परन्तु संसारके पाशमे बंधे हुआंको बड़े २ दुःख होतेहैं ॥ ४ ॥ इन संसारके पाशोंका उच्छेद किस प्रकारसे हो सक्ताहै, और आपने कहाहै कि कलियुगमें वेदोक्त मार्ग नष्ट हो जायगा ॥ ५ ॥ अधर्मी पुरुषोंके निमित्त बड़े २ दुःख वर्णन किये घोर कलियुगके प्राप्त होनेपर वेदमार्गके नष्ट होनेपर ॥ ६ ॥ जिस प्रकारसे पाखंड फैल जायगा, वह सब कुछ आप कहही चुकेहैं, कि कामके वशीभूत छोटी देहवाले लोभी परस्पर द्वेषी ॥ ७ ॥ बहुधा धन-हीन, इस प्रकारके मनुष्य कलियुगमें उत्पन्न होंगे, स्त्री अपनीही पालना करेगी, और वेश्या रूप यौवन संपन्न होंगी ॥ ८ ॥ स्त्री अपने पतिका

कहना न मानकर सदा दूसरोंके घरोंमें निवास करेंगी, दुष्ट स्वभाव दुष्ट शील सदा दूसरोंसे विरोध करेंगी ॥ ९ ॥ कुलकी स्त्री पुरुषोंमें भय रहित रहेंगी और कठोर वचन झूठ भाषणमें तत्पर शुद्धता रहित ॥ १० ॥ बहुत बोलने हारी, कलियुगमें स्त्रियें होंगी, भिक्षुक लोक कुटुम्ब मित्रोंके स्नेहोंमें फँसे रहेंगे ॥ ११ ॥ अनेक उपाधियोंसे भरे धन लेकर शिष्योंपर कृपा करने हारे, अनेक पाखंडकी बातें बनानेवाले, पाखंडियोंके साथी ॥ १२ ॥ इस प्रकारके जब ब्राह्मण होंगे तभी कलियुगकी वृद्धि होगी, ब्राह्मण वंशमें उत्पन्न होकर शिखा और सूत्र (यज्ञोपवीत) को त्यागन कर देंगे ॥ १३ ॥ हे सूतजी उनका उद्धार किस प्रकार होगा, सो कहो क्यों-कि कलियुगमें राक्षस ब्राह्मणकी योनियोंमें जन्म लेकर ॥ १४ ॥ भगवत् धर्ममें विरोधकर आपसमें द्वेष करेंगे कहेंगे "पूजा मत करो, श्राद्ध मतकरो ईश्वरका नाम मतलो; नियोग करो" इस प्रकार ईश्वरधर्म रहित और अनुष्ठान रहित ब्राह्मण होंगे ॥ १५ ॥ कलियुगमें ब्राह्मण बंडी वास्कट पहरे और मुडासा बांधे फिरेंगे हे ब्रह्मन् इस प्रकार घोर कलियुगके आनेसे पापी मनुष्य ॥ १६ ॥ जिनके मन शुद्ध नहींहैं उनका उद्धार कैसे होगा, क्योंकि उस समय वह शूद्रके हाथका जल और शूद्रके यहांका पक्वान्न तक भोजन करेंगे ॥ १७ ॥ इन शूद्रके अन्न खानेवालोंका उद्धार कैसे होगा, इनके ऊपर देव गुरुनारायण कैसे संतुष्ट होंगे ॥ १८ ॥ हे करुणासागर सूतजी हमसे आप यह सब सुनाइये ॥ १९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ सूतजी हमसे आप यह सब सुनाइये; हमारी तुष्टी आपके वचनामृतसे किसी प्रकार नहीं होती ॥ २० ॥ सूतजी बोले हे ऋषियो सुनो हम तुम्हें सब सुनातेहैं, जो कुछ महात्मा नारदजीने सनत्कुमारसे कहाहै ॥ २१ ॥ महाकाव्य रामायण जो सम्पूर्ण वेदार्थ सम्मतहै यही सब पापका दूर करनेवाला और दुष्ट ग्रहकाभी निवारण करने हाराहै ॥ २२ ॥ दुःस्वप्नका नाशक, यश दायक, भुक्तिमुक्तिके फलका देनेहारा और सबही कल्याण सिद्धिका देनेहारा रामचंद्रके गुणोंसे युक्त है ॥ २३ ॥ धर्म अर्थ काम मोक्षके महाफलका देनेहारा यहीहै, यह अपूर्व पुण्योंके फलका देने हारा है, आप सावधान होकर सुनिये ॥ २४ ॥ चाहे महापातक वा पातक लगाहो इस दिव्य आर्ष काव्यको सुन्तेही शुद्ध हो जाताहै ॥ २५ ॥ जो

सज्जन रामायणके श्रवण और पाठमें प्रवृत्त होतेहैं, वेही कृतकृत्य और सब शास्त्रार्थके जान्नेवाले हैं ॥ २६ ॥ हे ब्राह्मणो धर्म अर्थ काम मोक्ष का यही साधन है कि सदा भक्तिपूर्वक रामायणको श्रवण करें ॥ २७ ॥ जिसके पूर्व जन्मोंके पाप नष्ट हो जातेहैं, तब उसकी रामायणमें अवश्य प्रीतिहै ॥ २८ ॥ जब रामायण विद्यमानहै तो महापापसे युक्त पुरुष और ग्रंथ छोड़ इसमें अपना मन लगावें ॥ २९ ॥ इस कारणसे हे ऋषियो इस रामायणही परम काव्यको सुन्ना उचितहै इसके श्रवण करनेसे वारंवार जन्म और जराका नाश होकर मनुष्य दोष रहित और अच्युत होजाताहै ॥ ३० ॥ यह वर दायक काव्य जिसने कि अपनी कान्तिसे सब लोकोंको प्रकाशित कर रक्खाहै, यह संकल्पित अर्थ और आनंद दायक काव्यहै, इसके सुन्नेसे मनुष्य मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ ३१ ॥ ब्रह्मा विष्णु शिव इन शरीरोंसें वही परमात्मा जगत्‌की उत्पत्ति पालन और संहार करतेहैं, उन्हीं आदि देव परब्रह्म परमेश्वरको हृदयमें धारणकर मनुष्य मुक्तिको प्राप्त होताहै ॥ ३२॥ जो परमात्मा नाम जाति और कल्पना रहित परेसेपरे वेदान्त गम्य स्वप्रकाशमान है, वह सब पुराण जान्नेवालोंसे कथंचित् जाना जाताहै ॥ ३३ ॥ हे ब्राह्मणो कार्तिक माघ और चैत्रमही-नेके शुक्लपक्षमें नव दिन इस काव्यको सुने ॥ ३४ ॥ इस प्रकार जो इस उत्तम काव्य रामायणको श्रवण करतेहैं, वे इस लोक और परलोकमें सम्पूर्ण मनोरथोंको प्राप्त होतेहैं ॥ ३५ ॥ उसके सातो कुल पवित्र हो जातेहैं, और साकेत लोकको प्राप्त होताहै, जहां जाकर मनुष्य किसी प्रकारके दुःखसे युक्त नहीं होता ॥ ३६ ॥ चैत्र माघ कार्तिक मासके शुक्लपक्षमे नौ दिन नियमित हो इस ग्रंथको बांचे और नियमसे सुने ॥ ३७ ॥ यह आदि काव्य रामायण स्वर्ग और मोक्षका देनेहारा है, इस कारण घोर कलियुगमें जिसमें कि कुछभी धर्म नहीं है ॥ ३८ ॥ नौ-दिनतक रामायणरूपी कथामृत श्रवण करना चाहिये इस घोर कलि-युगमेंभी जो ब्राह्मण रामायणके भक्त हैं ॥ ३९ ॥ वही मनुष्य कृतकृत्य हैं, कलियुग उनको किसी प्रकारकी बाधा नहीं देगा ॥४०॥ हेमुनियो! जब तक सम्यक् प्रकारसे मनुष्य रामायण नहीं श्रवण करते हैं, तभीतक देहमें पाप निवास करते हैं ॥४१ ॥ जबतक मनुष्य रामायणकी कथा श्रवण नहीं

करतेहैं, लोकमें श्रीमद्रामायणकी कथा बड़ी दुर्लभहै॥ ४२॥करोड़ जन्मोंके पुण्योंसेही इसका सुन्ना मिलताहै कार्तिक चैत्र माघ शुक्ल पक्षमें इसका श्रवण करना उचितहै ॥ ४३ ॥ इस रामायणके श्रवणमात्रसेही सौदास राजा जो गौतमके शापसे राक्षस होगयेथे मुक्त होगये ॥ ४४ ॥

रामायणप्रभावेनविमुक्तिंप्राप्तवान्पुनः ॥ यस्त्वे
तच्छृणुयाद्भक्त्यारामभक्तिपरायणः ॥ ४५ ॥
समुच्यतेमहापापैरुपपातकराशिभिः ॥ ४६ ॥

रामायणके प्रभावसेही उनकी मुक्ति हुई जो कोई रामभक्तिपरायण होकर इस्से भक्तिसे श्रवण करेंगे ॥ ४५ ॥ वह महापातक और अनगिन्त उपपातकोंसे छूट जांयगे ॥ ४६ ॥ इति श्रीस्कंदपुराणे उत्तरखण्डे नारद सनत्कुमार संवादे रामायण माहात्म्ये पण्डित ज्वालाप्रसाद मिश्रकृत भाषाऽनुवादे प्रथमोध्यायः ॥ १ ॥

द्वीतीयोऽध्यायः ॥

कथंसनत्कुमारायदेवर्षिर्नारदोमुनिः॥ प्रोक्त
वान्सकलान्धर्मान्कथंचामिलितावुभौ ॥ १ ॥

ऋषि बोले हे सूतजी किस प्रकारसे सनत्कुमारसे नारदजीनें सम्पूर्ण धर्म रामायण संबन्धी कहेथे और उन दोनोंका समागम कहाँ हुआ ॥ १ ॥ हे सूत! वह दोनों ब्रह्मवादी किस क्षेत्रमें स्थित होकर यह कथोपकथन करतेथे, हे सूत जो कुछ नारदजीने सनत्कुमारसे कहाथा, वह आप हमें सुनाइये ॥ २ ॥ सूतजी बोले सनकादि महात्मा ब्रह्माजीके पुत्रहैं, यह निर्मम निरहंकार और ऊर्ध्वरेतस हैं ॥ ३ ॥ उनके नाम सनक, सनंदन, सनत्कुमार और सनातन हैं ॥ ४ ॥ यह चारों महात्मा विष्णुभक्त और विष्णुके ध्यानपरायणहैं, इनका प्रकाश सहस्र सूर्यकी समान और यह सत्यवंत तथा मुमुक्षुहैं॥ ५ ॥ एक समय यह महातेजस्वी ब्रह्माके पुत्र सनकादि सुमेरु पर्वतपर ब्रह्माजीकी सभा देखनेको आये ॥ ६ ॥ वहां निर्मल नीर विष्णुके चरणोंसे उत्पन्न हुई गंगानदीमें जो वहां सीतानामसे विख्यातहैं उसमें स्नान करनेको उद्यत हुए ॥ ७ ॥ हे ब्राह्मणो इसी अव-

सरमें नारदजी नारायणका नाम उच्चारण करते वहां आये ॥८॥ नारायण, अच्युतानंद, वासुदेव, जनार्दन, यज्ञेश, यज्ञपुरुष, राम, विष्णु, आपको नमस्कारहै ॥९॥इस प्रकार नारदजी भगवान्का नाम स्मरण करते सम्पूर्ण जगत्को पावन करते, लोक पावनी गंगाजीकी स्तुति करते उस स्थानमें आये ॥ १० ॥ नारदजीको आया देखकर महातेजस्वी सनकादिक अर्घ्यादिक देकर उनकी पूजा करते हुए, और नारदजीने उनकी पूजा की ॥ ११ ॥ उस समय सभाके बीचमें नारायणके भक्त नारदजीसे सनत्कुमारजी पूछने लगे ॥ १२ ॥ सनत्कुमारजी बोले हे नारदजी आप पंडित और सर्वज्ञ हो, नारायणके भक्तोंमें तुमसे अधिक कोई नहीं है ॥ १३ ॥ यह तो कहिये जिस्से यह स्थावर जंगमात्मक जगत् उत्पन्न हुआहै, और जिनके चरणोंसे गंगाजी निकलीहैं वह नारायण किस प्रकार जाने जाते हैं ॥ १४ ॥ यदि आप कृपा करते हैं तो तत्त्वसे यह कहिये नारदजी बोले परेसे परे रहनेहारे देवको नमस्कारहै ॥ १५ ॥ परेसे परे निवास करनें हारे सगुण निर्गुण ज्ञान अज्ञान धर्माधर्मस्वरूप ॥ १६ ॥ विद्या अविद्या स्वरूप, स्वस्वरूप ईश्वरके निमित्त नमस्कार है जो दैत्योंके मारने वाले नरकासुरके मारनेवाले जिन्होंनें अपनी एक उंगली परही पर्वतको उठा लिया ॥ १७ ॥ उन पृथ्वीके भार दूर करने हारे आनंद करता रघुवंशके दीपक नारायणको नमस्कार करता हूं ॥ १८ ॥ जो वानरोंके सहित चार प्रकारसे उत्पन्न हुए, और राक्षसोंको मारा, उनको मैं भजन करताहूं, इस प्रकारके उन महात्माके अनेक चरित्रहैं ॥ १९ ॥ उन चरित्रोंकी संख्या एक करोड़ वर्षमेंभी नहीं होसक्ती उनके नामकी महिमाके पार कोई नहीं होसक्ता ॥ २० ॥ मनुष्य मुनीश्वर किसीप्रकार पार नहीं पासक्ते फिर मैं एक क्षुद्र क्या कहूं जिनके नाम श्रवण करनेसे महापातकी पापीभी ॥ २१ ॥ पवित्र होजातेहैं फिर मैं क्षुद्रबुद्धि किस प्रकारसे उनके गुण कहकर तुम्हें संतुष्ट करूं ॥ २२ ॥ घोर कलियुगमें जो ब्राह्मण रामायणके भक्त होंगे, वेही कृतकृत्यहैं, ऐसे ब्राह्मणोंको नित्य नमस्कारहै ॥ २३ ॥ कार्त्तिक चैत्र माघ मासके शुक्ल पक्षमें नौ दिनतक यह कथामृत श्रवण करना उचितहै ॥ २४ ॥ राजा सौदासजो गौतमके शापसे राक्षस होगयाथा, इस रामायणके प्रभावसेही

मुक्त हुआ ॥ २५ ॥ सनत्कुमार बोले सब धर्मोंके फल देनेहारी रामायण किसने कहीहै और गौतम मुनिनें किस प्रकारसे सौदास राजाको शाप दियाथा ॥ २६ ॥ रामायणके प्रभावसे वह कैसे मुक्त हुआ, जो आप हमारे ऊपर कृपा और अनुग्रह करतेहो तो ॥ २७ ॥ हे मुनिराज यह सब कुछ आप सुनाइये, यह कथा कहने सुन्नेवालोंका पाप नाश करती है ॥ २८ ॥ नारदजी बोले हे ऋषिजी वाल्मीकिजीकी बनाई रामायण कथा जो अमृतकी समानहै नौ दिन सुन्नी चाहिये ॥ २९ ॥ सतयुगमें धर्म कर्म विशारद एक धर्म परायण सोमदत्त ब्राह्मणथे ॥ ३० ॥ इन ब्राह्मणने ब्रह्मवादी गौतम मुनिसे गंगाके किनारे अनेक धर्म सुने, और उन्होंनें पुराण शास्त्रकी कथासे इनको बहुत समझायाभी ॥ ३१ ॥ इन ऋषिराजसे संपूर्ण धर्म श्रवणकरके किसी समय वह ब्राह्मण परमेश्वर शंकरकी पूजा कर रहाथा ॥ ३२ ॥ उसी समय गौतमजीको आये देखकर इनको प्रणाम नहीं किया वह महातेजस्वी गौतमजी शांत स्वभाव थे ॥ ३३ ॥ यह विचारकर कि यह मेरे बताये हुएही कर्म करताहै प्रसन्न हुए परन्तु वह जगत्के गुरू महादेव जिनका वह पूजन कर रहेथे ॥ ३४ ॥ उन महादेवने गौतमके आनेसे और ब्राह्मणके अभिवादन न करनेसे इस गुरू निरादर करनेंके पापसे उसे राक्षस हो जानेका शाप दिया ॥ ३५ ॥ तब वह ब्राह्मण हे सर्वधर्मज्ञ सर्वदर्शी देवेश्वर क्षमा करो, इस प्रकारसे नीति पालक शिवजीकी करजोड़ स्तुति करने लगा ॥ ३६ ॥ हे भगवन् मेरे अपराधको क्षमा करिये, तब गौतमजीनें उससे कहा कार्तिक शुक्लपक्षकी नौमिके दिन रामायण भक्ति और आदरसे श्रवण करो ॥ ३७ ॥ कल्याण होगा बारहही वर्षमें तुम्हारा राक्षसपन नष्ट होजायगा ॥ ३८ ॥ ब्राह्मण बोला हे गुरूजी ! मैं प्रीतिसे आपके चरण वंदन करके कहताहूं, कि रामायण किसने बनाई, और उसमें किसका चरित्रहै ॥ ३९ ॥ हे महाप्राज्ञ ! यह सब संक्षेपसे मुझे सुनाइये, यह सुन गौतमजी बोले हे ब्राह्मण वाल्मीकिजीकी बनाई हुई रामायणहै ॥ ४० ॥ इसके श्रवण करनेसे पापोंसे रहितहो फिर अपने स्वरूपकी तुझे प्राप्ति होगी, जिन्होने राम अवतार लेकर रावणादि राक्षसोंको ॥ ४१ ॥ देवताओंके कार्य निमित्त मारा, उनके चारित्र तू श्रवण कर, कार्तिकके शुक्ल पक्षमें रामायणकी क-

था ॥ ४२ ॥जो सब पापोंकी दूर करनेहारी है, नौ दिन सुन्नी चाहिये यह वचन कह समर्थ गौतमजी अपने आश्रमको चले गये ॥ ४३ ॥ और ब्राह्मण बडे दुःखको प्राप्त होकर राक्षसी शरीरको प्राप्त हुआ भूंख प्याससे व्याकुल नित्य क्रोधित रहने लगा ॥ ४४ ॥ काले सांपकी समान भयंकर शरीर यह राक्षस निर्जन वनमें घूमने लगा वहां पर अनेक प्रकारके मृग मनुष्य सरीसृप ॥ ४५ ॥ पक्षी पशु कूदने हारा जीव (वानर) इनको खाने लगा, इनके पीले लाल शरीर और अस्थियोंके ढेरसें ॥ ४६ ॥ और विना मरोंके रुधिरसे इसने पृथ्वीको भयंकर कर दिया तीन ऋतुमें इसने सौ योजन विस्तारवाली पृथ्वीको ॥ ४७ ॥ दूषित किया फिर दूसरे वन-में गया और वहांभी नित्य मनुष्योंका मांस भक्षण करनें लगा ॥ ४८ ॥ सब प्राणियोंको भय देनेहारा यह राक्षस नर्मदा नदीके किनारे आया उसी समय वहां कोई धर्मात्मा ब्राह्मण आया ॥ ४९ ॥ कलिंगदेशमें इसका जन्म गर्ग नाम था गंगाजलका कलश कंधेमें लिये परमेश्वरकी स्तुति करते ॥ ५० ॥ वडी प्रसन्नतासे रामके गुणानुवाद गाते उस स्थानमें मुनि आये सुदामा राक्षसने मुनिको आया देखकर कहा ॥५१॥ आज हमारे भोजनके करनेको यह आया ऐसा कह भुजा उठायकर दौडा, परन्तु उनके उच्चारण किये नामको सुनकर दूरही खडा होगया ॥ ५२ ॥ और उस ब्राह्मणके मारनेको समर्थ न होकर वह राक्षस कहने लगा हे महाभागी महामुनि आपको नमस्कार है ॥ ५३ ॥ नाम स्मरणके माहात्म्यसे राक्षस-भी आपसे दूररहते हैं मैंने पूर्वकालमें सहस्रों करोड़ ब्राह्मण भक्षण कर लिये ॥ ५४ ॥ परन्तु हे ब्राह्मण यह ईश्वरके नाम तुम्हारी महाभयसे रक्षा करते हैं हे प्रभो! नामस्मरण करतेही हम राक्षसभी तो ॥ ५५ ॥ महा शांतिको प्राप्त हुए, उन नारायणकी महिमा कैसी होगी, हे बडभागी! हम जान्तेहैं कि आप सब प्रकारसे रागादि दोष रहितहैं ॥ ५६ ॥ रघुनाथ-जीकी कथाके प्रभावसे मुझेभी इस अधमपनसे छुड़ाओ हे मुनिराज! पूर्व-कालमें मुझसे गुरूका तिरस्कार होगया था ॥५७॥ पीछे गुरूने कृपा क-रके मुझसे यह कहा कि पूर्वकालमें जो रामायण वाल्मीकिजीने बनाई है ॥ ५८ ॥ उसे तू कार्तिक मासके शुक्लपक्षमें सावधानीसे श्रवण करना, यह कह फिर गुरूजी सुन्दर वचन बोले ॥ ५९ ॥ यह रामायण कथामृत

नवदिन पर्यन्त श्रवणकरना, इसकारण हे सम्पूर्ण शास्त्रार्थके जान्नेवाले ॥ ॥ ६० ॥ कथा सुनानेमात्रसे हमारी इस पापसे रक्षा करो, नारदजी बोले जब इसप्रकार राक्षसने रामका उत्तम माहात्म्य वर्णन किया ॥ ६१ ॥ तब सुनकर वह ब्राह्मण बड़ा विस्मित हुआ, तब वह राम नाम परायण ब्राह्मण अत्यन्त कृपा करके ॥ ६२ ॥ सुदाम नाम राक्षससे इस प्रकार वचन बोले,ब्राह्मणने कहाकि हे महाभागी राक्षस! तुम्हारी मति बडी विमल है ॥ ६३ ॥ इस कार्तिकके शुक्लपक्षमें रामायणकी कथा श्रवण कर अत्यन्त भक्तिसे रामका माहात्म्य सुन ॥ ६४॥ रामके ध्यान करनेवालोंको कोईभी बाधा करनेको समर्थ नहीं है जहां राम भक्तहैं, उसी स्थानपर ब्रह्मा विष्णु शिव निवास करतेहैं ॥ ६५ ॥ उसीस्थानमें देवता सिद्ध और रामभक्त निवास करतेहैं, इस कारण कार्तिकशुक्लपक्षमें रामायण सुन ॥ ॥ ६६ ॥ नौदिनतक सावधान होकर श्रवणकर कथा श्रवण करतेही उसका राक्षसपन दूर हो गया॥६७॥और वह राक्षसभावको त्यागकर देवताकी समान हो गया, और वह करोडों सूर्यकीसमान देवतामें उत्तम स्वरूपवान होगया॥६८॥शंख, चक्र, गदा, पद्म हाथमें लिये रामचंद्रभी उस स्थानमें आये और ब्राह्मण उनकी स्तुतिकर वैकुंठलोकको गया ॥ ६९ ॥ नारदजी बोले हे ब्राह्मणो! इसकारण कार्तिक शुक्ल पक्षमें नवदिनतक रामायण जो अमृतकी समानहै कहनी सुन्नी चाहिये॥७०॥ जिनके नामस्मरण करतेही मनुष्य करोडों पापोंसे छूटकर परमगतिको प्राप्त होताहै 'रामायण, यह शब्द जो एकवारभी उच्चारण किया जाय तो ॥ ७१ ॥

तदैवपापनिर्मुक्तोविष्णुलोकंसगच्छति ॥
येपठंतीदमाख्यानंभक्त्याशृण्वंतिवानराः ॥
गंगास्नानफलंपुण्यंतेषांसंजायतेनवम् ॥ ७२ ॥

उसी समय पापरहित होकर मनुष्य अन्तकालमें विष्णुलोकको जाताहै जो मनुष्य इस आख्यानको पढते या भक्तिसे श्रवण करतेहैं, उनको निश्चय गंगास्नानके पुण्यका फल प्राप्त होताहै ॥ ७२ ॥ इति श्रीस्कंद पुराणेउत्तरखण्डे नारद सनत्कुमार संवादे रामायणमाहात्म्ये राक्षस विमोचनं नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

तृतीयोऽध्यायः॥

अहोचित्रमिदंप्रोक्तंमुनिमानदनारद ॥
रामायणस्यमाहात्म्यंपुनस्त्वंवदविस्तरात् ॥ १ ॥

सनत्कुमारजी बोले; हे नारदजी ! यह अपने बहुत उत्तम वार्ता कही, औरभी आप विस्तारसहित रामायणका माहात्म्य कहिये ॥१॥ आप और महीनोका व्रत माहात्म्यभी सुनाइये, आपके वचनसे हमारी तृप्ति नहीं होती ॥२॥ नारदजी बोले निःसंदेह तुम सब महाभाग्यवान और कृतार्थहो, इसमें सन्देह नहीं जो रामचंद्रकी महिमा श्रवण करनेको उद्यतहो ॥ ३ ॥ जिन रामचंद्रके माहात्म्यका सुन्ना बड़े २ ज्ञानी महात्माओंने दुर्लभ मानाहै ॥ ४ ॥ हे ऋषियो! एक अद्भुत प्राचीन इतिहास श्रवणकरो, जो संपूर्ण पाप और सम्पूर्ण रोगोंका नाश करनेहाराहै ॥ ५ ॥ पहले द्वापरमें एक सुमति नाम राजाथा, जो चंद्रवंशमें उत्पन्न और सब भूमंडलका अधिपतिथा ॥ ६ ॥ वह धर्मात्मा सत्यसागर सब सम्पत्तिसे पूर्ण सदा रामकी कथा सुन्ने और पूजन करनेहाराथा ॥ ७ ॥ अहंकाररहित हो रामभक्तोंकी शुश्रूषा करता, पूजनीयोंकी पूजा करता, समदर्शी और गुणयुक्तथा ॥ ॥८॥ सब प्राणियोंका हितकारी शान्त कृतज्ञ कीर्तिमान्था इसी प्रकार उसकी भार्याभी सबलक्षणसम्पन्नथी ॥ ९ ॥ वह पतिव्रता पतिको प्राणोंकी समानप्यारी, सत्यवती नाम युक्तथी यह दोनों स्त्री पुरुष सदा रामायण सुन्ते ॥ १० ॥ अन्नदान जलदान करते असंख्य सरोवर बावड़ी और कुयें इन्होंने बनवाये ॥ ११॥ इस प्रकार यह बड़भागी राजा बड़े प्रेमसे कभी रामायण पढते, और कभी सुन्तेथे, मनमें बड़ी भक्ति धारण करते ॥ १२ ॥ इसप्रकारसे धर्मपरायण रामभक्त राजाकी रानी सत्यवतीभीथी, सदा उसकी देवता बड़ाई करते ॥ १३ ॥ वह दोनों स्त्री पुरुष भक्तिके कारण त्रिलोकीमें विख्यात होगये, एक समय उनके देखनेको बहुत चेलों सहित विभांडक ऋषि आये ॥ १४ ॥ विभांडकको आते देख पुरवासियों और अपनी भार्यासहित राजा उनके निकट गये,और उनकी बड़ी पूजा की ॥ १५ ॥ उनका अतिथि सत्कारकर आसनपर बैठाया, और उनसे नीचे आसनपर बैठ वोह राजा हाथ जोड़कर कहने

लगे ॥ १६ ॥ हे भगवन्! आपके इस स्थानपर पधारनेसे मैं कृतकृत्य हूं संत कहतेहैं सत्पुरुषोंका आगमन बड़े भाग्यसे होताहै ॥ १७ ॥ जहां बड़े पुरुषोंका प्रेम होताहै, वहीं सब संपत्तिभी होतीहैं, वहीं तेज कीर्त्ति और धन होताहै, इसप्रकार पंडित कहतेहैं ॥ १८॥ हे मुनिराज! वहां ही प्रतिदिन कल्याण वृद्धिको प्राप्त होतेहैं, वहीं बड़े सज्जन पुरुष आकर कृपा करतेहैं ॥ १९ ॥ हे ब्रह्मन्! जो ब्राह्मणके चरणोंका जल अपने मस्तकपर धारण करतेहैं, वह बड़े पुण्यात्माहैं, और निश्चय सब तीर्थोंमें स्नान कर चुके ॥ २० ॥ मेरे पुत्र स्त्री धन सम्पत्ति सब आपहीकी है, हे शांत स्वरूप मुनिराज! आज्ञा दीजिये हम आपका कौन प्रिय कार्य करें ॥ २१॥ मुनिराज राजाको इसप्रकार विनय देख हाथ से राजाको स्पर्शकर, बड़ी प्रसन्नतासे बोले ॥ २२॥ ऋषि बोले, राजन्! जो कुछ तुमने कहाहै वह सब तुम्हारे कुलके उचितही है, विनयी पुरुष परमकल्याणको पातेहैं ॥ २३ ॥ हे राजन् तुम सत्मार्गमें चलतेहो, इस कारण मैं तुमसे बहुत प्रसन्न हूं, हेमहाभाग! तुम्हारा मंगलहो जो मैं तुमसे पूछताहूं सो कहो ॥ २४ ॥ नारायणके संतोष करनेहारे बहुत पुराण विद्यमानहैं, और तुम रामायणके भक्त माघमासमें अधिक अनुष्ठान करते हो तुम्हारी यह भार्याभी नित्य रामचंद्रके ध्यानमें रहतीहै यह क्या बातहै वह सब वृत्तान्त हमें सुनाओ ॥२५ ॥ २६॥ राजा बोले हे भगवन् यह जो आपनें पूछाहै सो मैं सब वर्णन करता हूं हे मुनि हमारा चरित्र लोकोंको आश्चर्यदायक है मैं प्रथम जन्ममें मालिनी नाम शूद्रथा नित्य कुमार्गगामी सब लोकोंका अहितकारीथा ॥ २७ ॥ २८॥ चुगल, धर्मद्वेषी, देवताओंका द्रव्य हरनेहारा, महापातकियोंके निकट रहनेहारा देवद्रव्यसेही जीविका करनेहारा गोघाती ब्रह्महत्यारा चोर नित्य प्राणियों का वध करनेहारा नित्य निष्ठुरभाषी पापी वेश्यापरायण ॥ २९ ॥ ३० ॥ यह सब मैं आचरण करताथा इस प्रकार मुझे देख बडे पुरुषोंने समझाया जब मैंने उनका वचन न माना इसपर उन्होंने मुझे त्यागन कर दिया तब मैं दुःखी हो वनमें चला आया ॥ ३१ ॥ वनमें नित्य मृग मांस खाता मार्ग लूटता एकाकी बडे दुःखसे मैं उस वनमें रहताथा ॥ ३२ ॥ एक समय भूंखसे व्याकुल श्रमी, निद्राके आनेसे दुःखी प्यासा होकर मैंने निर्जन वनमें

वशिष्ठजीका आश्रम देखा ॥२३॥ वहां मैंने हंसकारण्डव पक्षियोंसे सेवित उसके समीपमें बड़ा सरोवर देखा उसके चारों ओर वन और बहुतसे मुनि-जन वहां वास करतेथे ॥ २४ ॥ उस सरोवरके तटमें श्रमरहित हो मैंने जल पिया और वृक्षोंके फल तोड़कर मैंने क्षुधा निवारण की ॥२५॥ और उस वशिष्ठजीके आश्रममेंही मैंने निवास किया वहां मैंने टूटे फूटे स्फटिकोंको इकट्ठा करके ॥ २६ ॥पत्ते तृण और काष्ठोंसे अच्छी प्रकार घर बनाया और व्याधेके कर्मकर बहुत प्रकारके पशुओंको मारकर॥२७॥ आजीवका करके वीस अवतारतक निवास करा उसीसमय विंध्यदेश-देसे यह साध्वी आयकर प्राप्तहुई॥२८॥इसका जन्म निषाद कुलमें था कालीनाम कुटुम्बियोंसे त्यागी हुई दुःखित शरीर ॥ २९ ॥ भूंख प्यास-से व्याकुल अपने कर्त्तव्यकर्मका सोच करती दैवयोगसे यह उस निर्जन वनमें आनकर प्राप्त हुई ॥४०॥ ग्रीष्म कालमें धूपसे व्याकुल इस दुखिया-को देखकर मुझे करुणा उत्पन्न हुई ॥ ४१ ॥ मैंने इसे जल मांस और वनके फल दिये हे मुनिराज ! जब यह भोजन कर श्रमरहित हुई तब यथा तथ्य ॥ ४२ ॥ इसने अपना वृत्तान्त मुझे सुनाया सो आप सुनिये काली नामवाली निषादकुलमें उत्पन्न हुई॥४३॥हे ब्रह्मन् यह दाविककी कन्याथी जो विंध्यपर्वतपर रहताथा,यह नित्य पराया धन हरती, और चुगली क-रतीथी ॥ ४४ ॥ इसने अपने पतिको मारडाला इस कारण कुटुम्बियोंने इसे त्यागन करदिया, हे ब्रह्मन्! तब यह निर्जन वनमें मेरे समीप आई ॥ ॥ ४५ ॥ इस प्रकारके इसने अपना कर्म मुझसे सुनादिया, वशिष्ठके सु-न्दर आश्रमके निकटही यह और मैं ॥ ४६ ॥ वनके जीवोंका मांस खाते पति भार्याके भावसे निवास करनेलगे, एक समयमैं उच्छिष्ट लेनेके नि-मित्त वसिष्ठके आश्रमके निकट गया ॥४७॥ वहां मैंने देवता और ऋषियों-का समाज देखा, माघमासमें वहां प्रतिदिन रामायण होतीथी, श्रोता प्रेम भक्तिसे सुन्तेथे ॥ ४८ ॥ उस समय हम दोनो निराहार भूंखप्यास-से व्याकुल थकेहुए वशिष्ठके आश्रमके निकट बैठगये ॥ ४९ ॥ नौदिन तक रामायणकी कथा वैसेही बैठे सुन्ते रहे, हे मुनिराज। उसी समय हमारा दोनोंका शरीर छूट गया ॥ ५० ॥ इस कर्मसे हमारे भगवान मधुसूदन प्रसन्न हुए, और इस भार्याके सहित मेरे लेनेको दूतोंको

भेजा ॥ ५१ ॥ वह हम दोनोंको विमानपर चढाय परमपदको ले गये जब हम देवदेव चक्रधारी नारायणके समीप पहुंचे ॥ ५२ ॥ तब करोड़ हजार और करोड़ सौ युग हमनें स्वर्गलोकमें अनेक प्रकारके भोग भोगे ॥ ५३ ॥ रामके भवनमें इतनें काल रहकर फिर ब्रह्मलोकको गये, उतनेही समय वहांपरभी निवास किया ॥ ५४ ॥ वहां-से शिवलोकको जाय और उतनाहीं काल बिताय अनेक सुख भोग अब यहां पृथ्वी लोकके राजा हुएहैं ॥ ५५ ॥ यहांभी रामायणके प्रतापसे हमारे अतुल संपत्तिहै, हे मुनिराज! यह सब वस्तु हमें अनिच्छा-सेही प्राप्तहैं ॥ ५६ ॥ हे ब्रह्मन्! जन्म मृत्यु जराकी नाश करनेहारी अमृत समान रामायणकी कथा भक्तिसे नौ दिनतक श्रवण करनी चाहिये॥५७॥ हे मुनीश्वर! रामायणके प्रभावसे परवश किये कर्मभी मनुष्योंको बहुत फल देतेहैं ॥ ५८ ॥ नारदजी बोले विभांडक ऋषि राजासे यह सब कथा श्रवणकर राजाको अभिवादनकर अपने तपोवनको गये ॥ ५९ ॥ इस कारण हे ब्राह्मणो! कामधेनुकी समान चक्रधारी जनार्दनके गुणोंसे युक्त रामायण कथा अवश्य सुन्नी चाहिये ॥ ६० ॥ माघमासके शुक्लपक्षमें भक्तिपूर्वक नौ दिन रामायण सुन्नेसे सब धर्मोंके फलकी प्राप्ति होतीहै ॥६१॥

यइदंपुण्यमाख्यानंसर्वपापप्रणाशनम् ॥
वाचयेच्छृणुयाद्वापिरामेभक्तिश्चजायते ॥ ६२ ॥

जो कोई सब पापोंकी दूर करनेहारी इस पवित्र कथाको श्रवण करते हैं, या बाँचतेहैं उनकी रामचंद्रमें भक्ति होतीहै ॥६२॥ इति श्रीस्कंदपुराणे उत्तरखण्डे नारद सनत्कुमार संवादे रामायणमाहात्म्ये तृतीयोध्यायः ॥३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः ॥

अन्यमासेप्रवक्ष्यामिशृणुध्वंसुसमाहिताः ॥
सर्वपापहरंपुण्यंसर्वदुःखनिवारणम् ॥ १ ॥

नारदजी बोले हे मुनीश्वरो ! सावधान होकर सुनो, और महीनोंमेंभी इसके श्रवण करनेंसे सब पाप और दुःख दूर होतेहैं ॥ १ ॥ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य शूद्र स्त्री सबकी सब कामना पूर्ण करने और सब व्रतोंका फल देने-

हारी राम कथाहै ॥२॥ दुस्स्वप्नका नाशक और धन धान्य भक्ति मुक्तिका दाता रामायणका माहात्म्य सावधान होकर सुन्ना चाहिये ॥ ३ ॥ जिस-प्रकार इसके पढने सुन्नेसे सब पाप दूर होतेहैं इस विषयमें हम एक पुरातन कथाका उदाहरण कहतेहैं ॥ ४ ॥ एक कलिक नाम लुब्धक विंध्याचलके वनमें रहताथा, वह सदा पराई स्त्री और पराया द्रव्य हरण करता ॥ ५ ॥ सदा पराई निंदा करता, जीवोंको दुःख देताथा, उसने सहस्रों गौ ब्राह्मणोंका घात कियाथा ॥ ६ ॥ सदा देवताओंका तथा दूसरोंका द्रव्य हरताथा, इस प्रकारके उसने अनेक बड़े २ पाप किये ॥ ७ ॥ जो करोड़ वर्षमेंभी न कहे जांय, किसी समय जन्तुओंको कालकी समान वह ॥ ८ ॥ सम्पूर्ण ऐश्वर्य युक्त सौ वीर नगरमें आनकर प्राप्त हुआ, जहां वस्त्रालंकार पहरे अनेक स्त्री और निर्मल नीरके अनेक सरोवर विद्यमानथे ॥ ९ ॥ सुन्दर बजारोंसे शोभायमान वह देव नगरकी समानथा, उसके उपवनमें एक बडा शोभायमान नारायणका मंदिरथा ॥ १० ॥ जिसके ऊपर सोनेके कलश चढेथे, यह देख वह व्याधा बड़ा प्रसन्न हुआ कि यहां हीरे मोती और सोना बहुत होगा, यह निश्चय किया ॥ ११ ॥ धन चुरानेकी इच्छासे वह राम मंदिरमें गया वहां एक शान्त तत्त्वज्ञानी ब्राह्मणको उसने देखा ॥ १२ ॥ जिनका नाम उत्तंक नारायणकी सेवामें तत्पर इकले इच्छा रहित दयालु ध्यानमें लवलीन ॥ १३ ॥ इनको इसप्रकार देखकर लुब्धकने विचाराकि यही हमारी चोरीमें बाधा करैगा, इसकारण रात्रिमें इसे मार चोरी करेंगे ॥ १४ ॥ तब महा गर्वसे तलवार हाथमें ले मारनेको दौड़ा, पैरसे छाती दाब, और उन ऋषिके बाल हाथसे पकड़े इसप्रकार मारनेको उद्यत उस व्याधसे उत्तंक बोले ॥ १५ ॥ उत्तंक बोले, हे साधू तू निरपराध हमें क्यों मारताहै, हे लुब्धक हमने तेरा क्या अप-राध कियाहै संसारमें अपराध करनेंवालेहीको मारतेहैं ॥ १६ ॥ हे सौम्य सज्जन पुरुष निरपराध किसीको नहीं मारते ॥ १७ ॥ और विरोधी मूर्खोंमेंभी गुण देखकर शांत तेजस्वी सज्जन किसीसे विरोधन नहीं करते ॥ १८ ॥ बहुत प्रकारसे क्रूर वचन सुनकरभी जो मनुष्य शान्ति करै, उसी उत्तम मनुष्यको नारायणका भक्त कहतेहैं ॥ १९ ॥ पराया हित करनेंवाले सज्जन पुरुष विनाशकाल उपस्थित होनेसेभी किसीके

संग वैर नहीं करते, चंदन अपने काटनेवाले कुहाड़ेकाभी मुख सुगंधित कर देताहै ॥ २० ॥ अहो प्रारब्धही बलवानहै जो मनुष्योंको बाधा देतीहै, उसमेंभी संसारके दुर्जन साधुओंकोही अधिक पीड़ा देतेहैं ॥ २१॥ मृग मीन सज्जन जोकि तृण और जल और संतोषके भोजनसेही संतुष्ट रहतेहैं उनसेभी जगतमें लुब्धक धीवर और चुगल निष्प्रयोजन वैर करतेहैं ॥ २२ ॥ अहो माया बड़ी बलवान्है जिसने इस सब जगत्को अधिक मोहितकर दियाहै, पुत्र मित्र कलत्र सबही दुःखकी खानहैं ॥ २३ ॥ जो स्त्री पराये द्रव्य हरणकर पुष्ट की हैं, अन्तमें वह सब छोड़कर इकलेही जाना होता है ॥ २४ ॥ मेरी मा मेरा पिता मेरी स्त्री मेरे पुत्र यह सब मेराहै, प्राणियोंको यह वृथा ममताही दुःख देतीहै ॥ २५ ॥ जबतक द्रव्य उत्पन्न करके लाताहै तभीतक कुटुम्बके लोग सार्थीहैं परन्तु यथार्थमें यहां और दूसरे लोकमें धर्म और अधर्मही सार्थीहै ॥ २६ ॥ उत्पन्न किये हुए धनकूं सदा कुटुम्बीही भोगतेहैं, परन्तु इसके उपार्जनका पाप यह मूर्ख इकलाही भोगताहै ॥ २७ ॥ ऋषिके यह वचन सुनकर और विचार कर वह कलिक लुब्धक भयभीतहो हाथ जोड़ वार २ कहने लगा, हे मुनिराज! क्षमा करिये क्षमा करिये ॥ २८॥ उनकी संगति और नारायण मंदिरमें स्थितिके प्रभावसे वह लुब्धक पापरहितहो अत्यन्त पछतानेलगा, और बोला ॥ २९ ॥ हे ब्राह्मण! मैंने बहुत कुत्सित कर्म कियेहैं, वह सब आज आपके दर्शनके प्रभावसे नष्ट होगये ॥ ३० ॥ हे स्वामी! मैंने नित्य पाप और महापाप कियेहैं, किसकी शरणमें जानेसे किसप्रकार उनसे छुटकारा होगा ॥ ३१ ॥ पहले जन्मके पापसे तो मैं लुब्धक हुआ, अब यहांभी अनेक पाप करनेसे मैं किस गतिकूं प्राप्तहूंगा ॥ ३२ ॥ इस प्रकार महात्मा कलिकके वचन सुनकर उत्तंक नामक विप्रर्षि उस्से कहने लगे ॥ ३३ ॥ उत्तंकजीबोले धन्य धन्य कलिक तुम बड़े बुद्धिमान हो जो तुम्हारी मति ऐसी उज्ज्वल है जो संसारके दुःखोंके नाश होनेके उपायकी इच्छा करते हो ॥ ३४ ॥ तौ चैत्र महीनेके शुक्लपक्षमें भक्ति भावसे आदर पूर्वक नौ दिनतक रामायणकी कथा सुनो ॥ ३५ ॥ इसके श्रवण मात्रसेही तेरे सब पाप नाश होजांयगे, उसी क्षणमें यह लुब्धक कलिक सब पापोंसे रहित होगया ॥ ३६ ॥

रामायणकी कथा सुनकर शीघ्रही शरीर त्यागन करदिया, उत्तंक लुब्धकको गिरा हुआ देख दयासे ॥ ३७ ॥ उसका यह दशा देख विस्मित होय नारायणकी स्तुति करनें लगे, और वह रामायणकी कथा सुन्नेसे पाप रहित हो दिव्य विमानमे चढकर मुनिराजसे कहने लगा ॥ ३८ ॥ कलिक बोला, हे मुनिशार्दूल उत्तंक सुव्रत! तुम मेरे गुरुहो, आपहीके प्रसादसे मैं दुःख संकटसे मुक्त हुआहूं ॥ ३९ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ आपहीके प्रसादसे मुझे ज्ञानकी प्राप्ति हुई जिस्से शीघ्रही मेरे पापसमूह नष्ट होगये ॥ ४० ॥ हे मुनि रामायणकी कथा सुनकर तुम्हारे उपदेशसे मैं मुक्त हुआ, हे भगवन्! तुमनेंही मुझे विष्णु भगवान्के परमपदको प्राप्त किया है ॥ ४१ ॥ हे करुणासागर गुरूजी आपने मुझे कृतकृत्य करदिया हे भगवन् मैं आपको प्रणाम करताहूं, आप मेरे कृत्यको क्षमा करना॥४२॥ यह कह मुनिश्रेष्ठके ऊपर दिव्य पुष्पोंकी वर्षा करके और तीन प्रदक्षिण करके नमस्कार किया ॥ ४३ ॥ पीछे सर्व कामनादायक विमानमें चढकर अप्सराओंसे सेवित वैकुंठ लोककूं चला गया ॥ ४४ ॥ हे ब्राह्मणो! इस कारण चैत्रमासके शुक्ल पक्षमें सावधानहो रामायणको सुन्ना चाहिये ॥ ४५॥ नौ दिनतक रामायणकी कथारूपी अमृत श्रवण करना चाहिये, सबही ऋतुओंमें इसके सुन्ने और नारायणके पूजनसे कल्याण होताहै ॥ ४६ ॥

ईप्सितंमनसायद्यत्तत्तदाप्नोत्यसंशयम् ॥
सनत्कुमारैर्यत्पृष्टंतत्सर्वंगदितंमया ॥ ४७ ॥
रामायणस्यमाहात्म्यंकिमन्यच्छ्रोतुमर्हसि ॥ ४८ ॥

इसके श्रवण करनेसे मनके सबही मनोरथ पूर्ण होतेहैं, हे सनत्कुमार! जो कुछ आपने पूछा वह हमने सब सुनाया ॥ ४७ ॥ और अब रामायणके अन्य माहात्म्य सुन्नेकी इच्छा करते होतो बताओ ॥ ४८ ॥

॥ ॥ इति श्री स्कंदपुराणोत्तरखण्डे नारदसनत्कुमारसंवादे रामायणमाहात्म्ये चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पंचमोऽध्यायः ॥

रामायणस्यमाहात्म्यंश्रुत्वाप्रीतोमुनीश्वरः ॥
सनत्कुमारःपप्रच्छनारदंमुनिसत्तमम् ॥ १ ॥

रामायणका माहात्म्य सुनकर मुनि अत्यन्त प्रसन्न हुए, और फिर मुनिश्रेष्ठ नारदजीसे पूछनें लगे ॥ १ ॥ सनत्कुमारजी बोले हे मुनिराज! आपने रामायणका माहात्म्य कहाहै, इस समय हम रामायणकी विधि सुन्ना चाहतेहैं ॥ २ ॥ हे तत्त्वके जान्नेहारे महाभागी मुनीश्वर! यह विधिभी आप कृपा करकै सुनाइये ॥ ३ ॥ नारदजी बोले आप सावधान होकर रामायणकी विधि सुनिये, यह सम्पूर्ण लोकमें विख्यात और स्वर्ग मोक्षकी वृद्धि करनेंहारी है ॥ ४ ॥ उसका विधान मैं कहताहूं, आप सावधान होकर सुनिये, जो रामायणकी कथा भक्ति भावसे कहलाते हैं ॥ ५ ॥ उनके जन्मजन्मान्तरके पाप नष्ट होजाते हैं, चैत्र माघ कार्तिकके शुक्लपक्षकी पंचमीसे सुन्नेका आरंभकरे ॥ ६ ॥ पुनः स्वस्तिवाचनपूर्वक संकल्प करे, पुनः नौ दिनतक रामायणकी कथा श्रवण करे ॥ ७ ॥ और कहै हे भगवन्! आजसे मैं आपकी कथा श्रवण करताहूं आपके प्रसादसे मैं प्रतिदिन पूर्णतासे श्रवण करूं ऐसी कृपा करो॥८॥अपामार्ग (चिंचिढा) की दतौन प्रतिदिन करै, पीछे रामका ध्यानकर विधि पूर्वक स्नान कर अपने बंधुओंके सहित जितेन्द्रिय हो कथा श्रवण करै ॥ ९ ॥ स्नान कर दंतधावनसे शुद्ध हो श्वेत वस्त्र धारणकर मौनता सहित स्थानमें आय ॥१०॥ चरण धोय आचमनकर प्रभु नारायणको स्मरण करे, संकल्पपूर्वक नित्य देवताओंका पूजन करकै ॥ ११ ॥ भक्ति भावसे रामायणकी पुस्तकका पूजन करै, पीछे धूप दीप नैवेद्यकर आसन दे आवाहन करै ॥ १२ ॥ " ॐनमो नारायणाय " इस मंत्रसे भक्तिपूर्वक पूजन करे, एकवार दो वार तीन वार यथाशक्ति पूजन करै ॥ १३ ॥ फिर सब पापके दूर करनेके निमित्त होम करै, इस प्रकारसे जो नियमपूर्वक रामायणकी विधिकू करै ॥ १४ ॥ वह विष्णु लोकको चला जाताहै, जहांसे फिर लौटकर नहीं आता, रामायणका व्रत धारण करनेवाला धर्मपूर्वक रहै ॥ १५ ॥ चण्डाल पतित इनके साथ बातभी न करै, नास्तिक, मर्यादारहित, निंदक चुगल ॥ १६ ॥ इनसे रामायणका व्रती बातभी न करै कुंडी वा हंडियामें खानेहारे, तापक–तापदेनेहारे और देव द्रव्यके लेनेहारोंके यहां भोजन करने हारे तथा वैद्य, कुत्सित काव्यकार देवता ब्राह्मणके विरोधी, परान्न भोजी, लोलुप, परस्त्रीमें रति करनेहारे ॥१७॥ १८॥ रामायणके व्रतोकी

इनसे नौ दिनतक बात नहीं करनी चाहिये, इस प्रकार शुद्धतापूर्वक सबका हित करता हुआ ॥ १९ ॥ रामायणका भक्त परम सिद्धिको प्राप्त होताहै, गंगाकीसमान तीर्थ और माताकी समान गुरू नहीं है, ॥ २० ॥ विष्णुकीसमान देवता, और रामायणकी समान परम धर्म, वेदकीसमान शास्त्र और शांतिकीसमान सुख नहीं है ॥ २१ ॥ सूर्यकी समान ज्योति नहीं, और रामायणसे अधिक कुछ नहीं है, क्षमाकी समान सार और कीर्तिकीसमान धन नहीं है ॥ २२ ॥ ज्ञानकीसमान लाभ और रामायणसे अधिक कुछ नहीं है, श्रवण कर चुकनेपर वेदवादी वांचनेहारे पंडितकू दक्षिणा देनी चाहिये ॥ २३ ॥ रामायणकी पुस्तक वस्त्र आभरण रामायण वांचनेहारेको जो देताहै ॥ २४ ॥ वह विष्णुलोकको जाताहै,जहां जाकर फिर शोच करना नहीं पड़ता, हे धर्मात्मन् आप इसके नौ दिन श्रवण करनेहारेको फल सुनिये ॥ २५ ॥ पंचमीके दिनसे राम कथामृत सुन्नेका आरंभ करे, श्रवण मात्रहीसे सब पाप दूर होजाते हैं ॥ २६ ॥ यदि दूसरे दिन इसी प्रकार सुन्ने तो पुंडरीक यज्ञके फलकी प्राप्ती होती है, तीसरी वार जितेन्द्रिय होकर व्रत धारणकर कथा सुन्नेसे ॥ २७ ॥ अश्वमेधयज्ञके दूने फलकी प्राप्ति होती है, हे मुनिश्रेष्ठ जिसने चौथे दिन सुनी ॥ २८ ॥ वह आठ अग्निष्टोमके किये पुण्य फलको प्राप्त होताहै, और जिसने पांचवां व्रत करके सुना ॥ २९ ॥ वह अति अग्निष्टोमके दूने फलको प्राप्त होताहै, और जो सावधानहो छठे दिन व्रतकर सुन्ताहै ॥ ३० ॥ उस्से अग्निष्टोम यज्ञका आठ गुणा फल होताहै, और जो व्रतधारी धर्मात्मा सप्तमवार सुने तो ॥ ३१ ॥ आठ गुणा अश्वमेध यज्ञके फलको पाताहै, हे मुनीश्वरो जो नारी या पुरुष आठवें दिन सुने ॥ ३२ ॥ उसको अश्वमेध यज्ञका पांच गुणा फल होताहै, रामभक्त मनुष्य इस्से नव दिन श्रवण करनेंसे॥३३॥गोमेध यज्ञके त्रिगुणे फलको प्राप्त होतेहैं जो शांत स्वभावसे जितेन्द्रिय रामायणकी कथा कहते हैं ॥ ३४ ॥ वह परमानंदको प्राप्त होतेहैं जहां जाकर फिर शोच नहीं करना पड़ता रामायण सुन्नेहारोंको गंगास्नान कर्त्तव्यहै ॥ ३५ ॥ धर्म मार्गके कथन करनेंहारे निःसंदेह मुक्तहैं, हे ऋषिश्रेष्ठ! यति ब्रह्मचारी और दिगम्बरोंको ॥ ३६ ॥ नौ दिन कथा श्रवण करनी उचितहै राम कथाको श्रवण

करनेंसे और भक्तिसे प्रदीप्त हो ॥ ३७ ॥ यह प्राणी ब्रह्मलोकको प्राप्तहो ब्रह्माके साथ मुक्त होजाताहै सुन्नै योग्य यही परम वस्तुहै, पवित्रोंमें पवित्रहै ॥ ३८ ॥ दुःस्वप्न नाशक, स्तुति योग्य, यह रामायण यत्नसे सुन्नी चाहिये, जो मनुष्य श्रद्धासे एक श्लोक या आधा श्लोक ॥ ३९ ॥ पाठ करताहै, वह करोडों उपपातकसे छुट जाताहै यह गुप्तसेभी गुप्त सत्पुरुषोंके निकट कहना चाहिये ॥ ४० ॥ राममें प्रीति करके पुण्यक्षेत्र और सभामें इस ग्रंथका बांचना उचितहै,जो ब्राह्मण द्वेषी पाखंडाचारी ॥ ४१ ॥ वकलेकी समान व्रत करनेहारेहैं, उन पुरुषोंको यह कथा सुनानी उचित नहीं, जो कामादि दोष रहित रामभक्त ॥ ४२ ॥ गुरुभक्तिपरायणहैं उनसे यह मोक्ष साधन कथा कहनी चाहिये, रामचंद्रही सब देवताओंके स्वरूप हैं, अपने स्मरण करनेवालोंके दुःख दूर करतेहैं ॥ ४३ ॥ सद्भक्तोंके ऊपर वह नारायण कृपा करतेहैं, इसमें संदेह नहीं भक्तिसेही प्रसन्न होतेहैं, जो अवश्य होकरभी उनका नामका कीर्तन करते वा स्मरण करतेहैं ॥ ४४ ॥ वहभी पातकसे रहित हो परम पदको प्राप्त होतेहैं, संसाररूपी घोर वनकू नारायण दावाग्निकी समान हैं ॥ ४५ ॥ अपने स्मरण करनेवालोंके पापोंको वह शीघ्रही नाश कर देतेहैं, इस कारण इस पुण्यरूप काव्यका श्रवण करना उचितहै ॥ ४६ ॥ श्रवण पठन करनेसे यह सब पापोंका नाश करताहै, जिस पुरुषकी इस सरस कथामें भक्ति और प्रीतिहो ॥ ४७ ॥ वही कृतकृत्य और सम्पूर्ण शास्त्रार्थका जान्नेवालाहै, उसने जो कुछ पुण्य कियाहै, उसका वह सफल है ॥ ४८ ॥ हे ब्राह्मणो! जिसकी श्रवण करनेको जिस अर्थसे प्रीति होतीहै, वह कार्य उसका अन्यथा नहीं होता जो रामायणके सुन्नेहारे और रामके भक्तहैं ॥ ४९ ॥ हे ब्राह्मणो! वही इस घोर कलियुगमें कृतकृत्य हैं, जो रामकथामृतको नौ दिन कर्णपुटसे पान करतेहैं ॥ ५० ॥ वह महात्मा कृतार्थहैं, उन्हीके वास्ते नित्य नमस्कारहै, रामका नामही नामहै, यह नामही हमारा जीवन है ॥ ५१ ॥ संसारके विषयोंमें अंधे हुए पापात्मा मनुष्योंको कलियुगमें इस नामके सिवाय दूसरी गति नहींहै ॥ ५२ ॥ सूतजी बोले -महात्मा नारदजी इस प्रकार सनत्कुमारादिकोंको सम्यक् प्रकारसे माहात्म्य श्रवण कराय अत्यन्त शान्तिको प्राप्त हुए ॥ ५३ ॥

इस कारण हे ब्राह्मणो! इस कथाकू श्रवण करनेसें प्राणी विष्णु लोकको जातेहैं जहांसे फिर आगमन नहीं होता ॥ ५४ ॥ इस घोर कलियुगमें रामायण परायणही सब पापरहित हो परमपदको प्राप्त होतेहैं ॥ ५५ ॥ इस कारण यह रामायण कथा सब पापोंके दूर करनेहारी नौ दिनतक सुन्नी चाहिये ॥ ५६ ॥ इस महाकाव्यको श्रवणकर जो वाचकका पूजन करै हे ब्राह्मणो! उसके ऊपर लक्ष्मी सहित नारायण प्रसन्न होतेहैं ॥ ५७ ॥ वांचनेंवालोंके प्रसन्न होनेपर ब्रम्हा विष्णु महेश प्रसन्न होतेहैं, इसमें संदेह नहीं ॥ ५८ ॥ रामायणके वांचनेवालेको गौ वस्त्र सुवर्ण रामायणकी पुस्तक अपने वित्तके अनुसार देनी चाहिये ॥ ५९ ॥ जो ऐसा करतेहैं उनके पुण्य फलको आप श्रवण कीजिये, उनके घरोंमें भूत वेतालादि कोई बाधा नहीं करतेहैं ॥ ६० ॥ उनके सब मंगल वृद्धिको प्राप्त होतेहैं, अग्नि और चोरोंका भय उनके यहां नहीं होता ॥ ६१ ॥ करोड़ों जन्मके उत्पन्न किये पाप शीघ्रही नष्ट होजातेहैं, देहान्तमें वे सात कुल सहित मुक्ति को प्राप्त होतेहैं, ॥ ६२ ॥ यह नारदजीका विधान कहा हमने तुमसे सुनाया जो कुछ सनत्कुमारके पूछनेपर मुनिने भक्तिपूर्वक सुनायाथा ॥ ६३ ॥ इस रामायण आदिकाव्यमें वेदार्थका सम्मतहै, यह सब पाप दुःखका दूर करनेहारा और पुण्यरूपहै ॥ ६४ ॥ यही काव्य समस्त पुण्य और सब यज्ञोंके फलका देनेहाराहै, जो विद्वान् इसका एक या आधा श्लोक पढतेहैं ॥ ६५ ॥ उनको कभी पापबंधन नहीं होताहै यह रामार्पण किया हुआ काव्य समस्त पुण्य और सब कामनाओंका देनेहारा है ॥ ६६ ॥ जो इसको भक्तिसे सुन्ते और गातेहैं, उनके पुण्य फलको सुनो, सौ जन्मके संचित किये पाप तत्कालहीमें छूट जातेहैं ॥ ६७ ॥ और सहस्र कुलके सहित वह परमपदको प्राप्त होतेहैं उनको तीर्थ गोदान तप यज्ञ करनेसे क्याहै ॥ ६८ ॥ जो प्रतिदिन रामकथाका कीर्तन सुन्तेहैं, चैत्र माघ और कार्तिकमें रामकी अमृत समान कथा ॥ ६९ ॥ नौ दिन सुन्नेसे सब पाप छूट जातेहैं, उनके ऊपर रामचंद्रकी कृपा और रामभक्तिकी वृद्धि होतीहै ॥ ७० ॥

सर्वपापक्षयकरंसर्वसंपद्विवर्द्धनम् ॥

यस्त्वेतच्छृणुयाद्वापिपठेद्वासुसमाहितः ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तोविष्णुलोकंसगच्छति ॥ ७१ ॥

सब पापनाशक और सब संपत्तिका बढ़ानेहारा यह ग्रंथहै, जो इसे सावधान होकर सुन्ते या पढतेहैं, वे सब पापोंसे रहित होकर विष्णु लोकको प्राप्त होतेहैं ॥ ७१ ॥ इति श्रीस्कंद पुराणे उत्तरखंडे श्रीमद्रामायण माहात्म्ये नारदसनत्कुमारसंवादे पंण्डितवर मिश्र सुखानंदसूनु पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां पंचमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

इदं स्कंदोत्तरखण्डस्थ श्रीमद्वाल्मीकीय रामायण
माहात्म्यं समाप्तम् ॥

व्योम बाणाङ्क चन्द्रेब्दे श्रावणस्य सितेदले शुक्रवारे त्रयोदश्यां
टीका पूर्ति मुपागमत् शुभमस्तु ।

दोहा—पढहिं सुनहिं कर प्रेम जो, पावहिं सब मन काम ॥
नित ज्वाला प्रसादपर, कृपा करहु श्रीराम ॥ १ ॥

शुभमस्तु.

इदं पुस्तकं श्रीकृष्णदासात्मजखेमराजेन मोहमय्यां
स्वकीये श्रीवेङ्कटेश्वर मुद्रणालये मुद्रयित्वा प्रकाशं नीतं

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—
खेमराज श्रीकृष्णदास
" श्रीवेङ्कटेश्वर " छापाखाना—
बम्बई.

बालकांड.
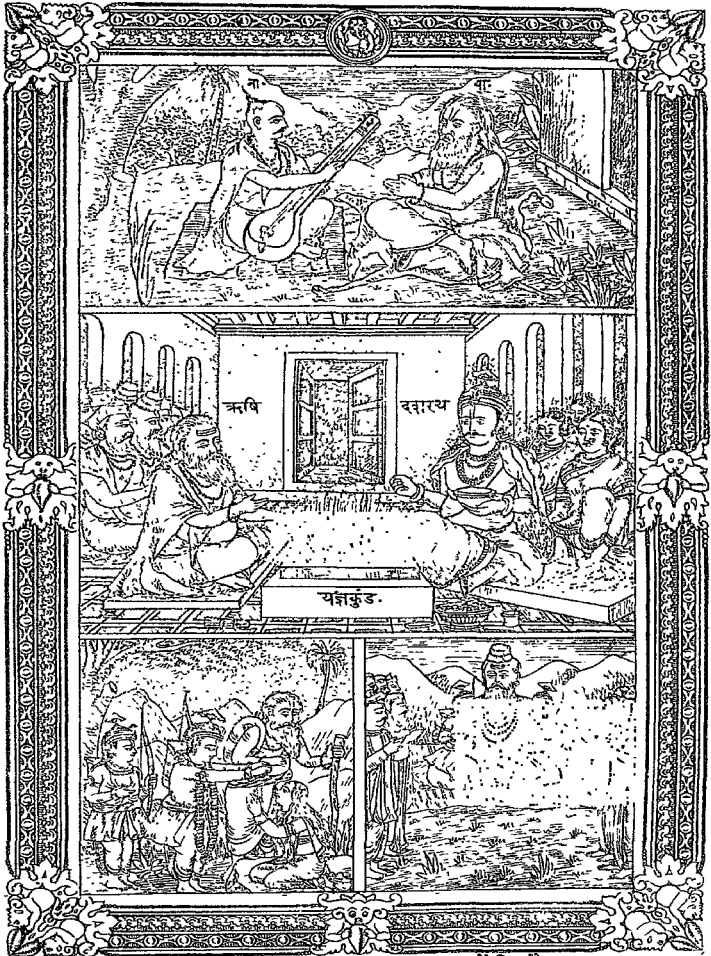
अहल्योद्धार.

कौशिकगौरव.

सीता
राम
परशुराम
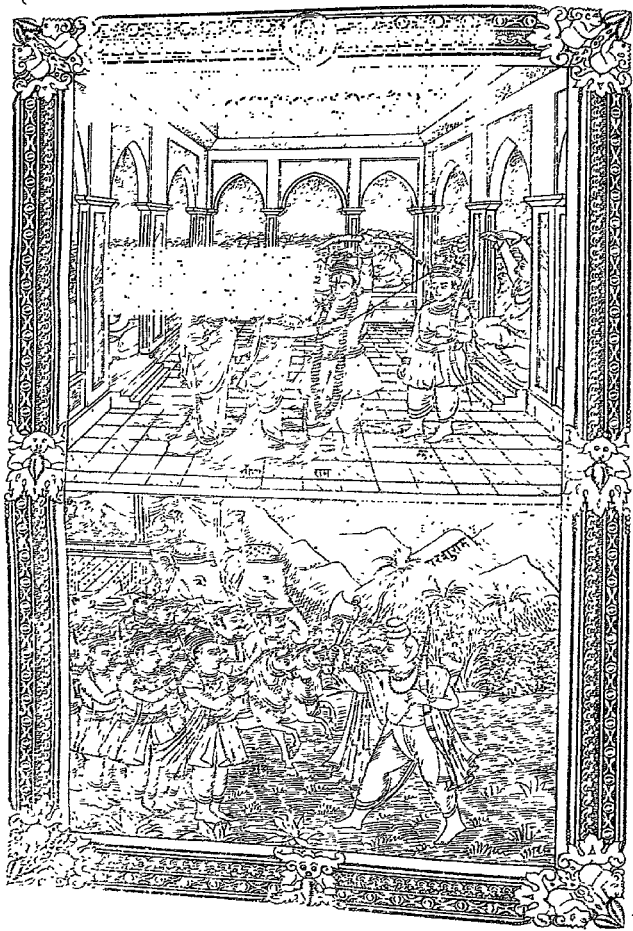
श्रीगणेशाय नमः ।

मंगलाचरणम् ।

श्रीगणेशायनमः ॥ श्रीसीतारामचंद्रायनमः ॥ श्रीमद्राघवपादपद्मयुगलंपद्मार्चितं पद्मयापद्मस्थेनतुपद्मजेनविनुतंपद्माश्रयस्याप्तये ॥ यद्वेदैश्चनुतंसुखैकनिलयंसर्वाश्रयंनिष्क्रियंशश्वच्छंकरशंकरं मुहुरहो सन्नौमितल्लब्धये ॥ १ ॥

दोहा– श्रीमद्रामसुजानकेचरणकमलसुखदान । पद्मजपद्मापद्मसेपूजितप्रीतिमहान ॥ १ ॥ वेदनुतंसुखधामनितभक्तनसुखदातार । शंकरनिष्क्रियशान्तिमयद्रवहुसोकृपाअगार ॥ २ ॥ ब्रह्मबीजनिर्मलमहत् चिन्मयअंकुरपीन । सप्तकाण्डविस्तारयुतआलवालऋषिकीन्ह ॥ ३ ॥ गुणसहस्रजेहिपत्रशुभशाखाजेहिशतपंच । आत्मप्राप्तिफलदेतयहरामायणतरुमंच ॥ ॥ ४ ॥ वाल्मीकिगिरिसैप्रगटरामोदधिकेसंग । तीनलोकपावनकरतयहरामायणगंग ॥ ५ ॥ वेदवेद्यपूरणपुरुषदशरथराजकुमार । रामायणको आत्माजानोऋषिनविचार ॥ ६ ॥ रामलषणसीताभरतरिपुहनपवनकुमार । कीशराजसुग्रीवकोवन्दौंवारंवार ॥ ७ ॥ कविताशाखापरचढेकोकिलरूपमुनीश ॥ रामरामबोलतमधुरवन्दौंमहिधरिशीश ॥ ८ ॥ कविता वनविहरतफिरतवाल्मीकिमृगराज । रामकथाकीनादसुनिजातमृत्युभयभाज ॥ ९ ॥ प्रभुचरितामृतउदधिकोनितकीनोजिनपान । तृप्तनप्राचेतसभयेनमोनमःसुज्ञान ॥ १० ॥ गोखुरसमसागरकियोनिशिचरमशकसमान । रामायणमालारतनवंदौंश्रीहनुमान ॥ ११ ॥ अक्षमारलंकादहीजनकसुतादुखटार । वीरअंजनानंदकोवंदौंवारंवार ॥ १२ ॥ लीलासैलांघोजलधिसियदुःखानललीन । ताहीसौंलंकादहीनमोनमःपरवीण ॥ १३ ॥ मनसारुतसमवेगजेहिइन्द्रियजितमतिमान । रामचंद्रकेदूतशुभवायुसूनुहनुमान॥

॥ १४ ॥ रामचंद्ररघुनाथश्रीरामभद्रसुखधाम । सीतापतिकेचरणमेंकोटि २ परणाम ॥१५॥ रघुवंशिनकेतिलकहियकौशल्यासुखदान । रामपुण्डरीकाक्षदशवदननिधनभगवान ॥ १६ ॥ लोकधारिहरिअजअगुणविश्वरूपभगवन्त । जगज्जितंगुणआत्माइमिगावतश्रुतिसंत ॥ १७ ॥ शिवंसांवरघुनाथकोपुनि २ शीशनवाय । करततिलकप्रभुमुदितहोकीजेआयसहाय ॥ १८ ॥ वाल्मीकिनारदऋषिजिमिकीनोसंवाद । सोसबभाषामें कहत वुधज्वालापरसाद ॥ १९ ॥ रघुपतिकेगुणगणअमितकोकविपावैपार । तदपियथामति भाषिहौं वाल्मीकि अनुसार ॥ २० ॥ कृपाकरहिंसबभक्त जन पढहिं प्रेमकर नेम । रामभक्तिममहियबढे संततपावहुंक्षेम ॥ २१ ॥

इति मंगलाचरणसंपूर्ण ।

श्रीगणेशाय नमः ।

वाल्मीकिरामायण भाषावार्तिक प्रारंभः ।

श्लोकः ।

ॐतपःस्वाध्यायनिरतंतपस्वीवाग्विदांवरम् ॥
नारदंपरिपप्रच्छवाल्मीकिर्मुनिपुंगवम् ॥ १ ॥

तप औ स्वाध्याय (वेद) इनमे सदा तत्पर वेदके जाननेवाले पुरुषोंमे श्रेष्ठ ऐसे मुनियोमें श्रेष्ठ नारदजीसे ऋषिवाल्मीक पूछतेभये ॥ १ ॥ हेमुने इस लोकमे इससमय गुणवान् वीर्यवान् धर्मज्ञ कृतज्ञ सत्यवाक्य बोलने वाला दृढव्रत ॥ २ ॥ सुंदर चरित्र करके युक्त सर्व प्राणियोंकेविषय हितके करनेवाला विद्वान् (सर्व शास्त्रके जाननेवाला) सर्व कार्यमे समर्थ एक (अद्वितीय) प्रियदर्शन ॥ ३ ॥ क्रोधको जीतनेवाला कांतिमान् औ असूया (गुणोमे दोषका आरोप करना) तिस करके रहित ऐसा कौन पुरुषहै तथा रणके बीचमे क्रुद्धहुवेसे किस्से सर्व देवता भय मानते है ॥ ४ ॥ मेरे बडाआश्चर्यहै इस्से मै श्रवण करनेकी इच्छा करताहूं हे महर्षे आप इस विध नरके जाननेमे समर्थ होअर्थात् निश्चय करके जानते हो ॥ ५ ॥ त्रिलोक (सकल ब्रह्मांड) के जाननेवाले नारद मुनि इसवाल्मीकके वचनको श्रवण करके सुनो इस प्रकार अपने अभिमुख करके संतुष्ट हो वाक्य बोलते भये ॥ ६ ॥ हे मुने जो गुण तुमने कीर्त्तन किये वे बहुत दुर्लभहैं परंतु बुद्धिसे विचारके मै कहताहूँ तिन गुणो करके युक्त नरको तुम श्रवण करो ॥ ७ ॥ वैवस्वत मनुका ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकु नाम तिसके वंशमे उत्पन्न रामनाम जनो करके विख्यात नियतात्मा महावीर्य द्युतिमान् धृतिमान् वशी(सर्वका स्वामी) ॥ ८ ॥ बुद्धिमान् नीतिमान् (मर्यादापालक) सुंदरवाणी श्रीमान् शत्रुहंता ऊचेहै कंधे जिसके ऐसा आजानुभुज शंखसमान ग्रीव महाहनु (सुंदर ऊचीठोडीवाला) ॥ ९ ॥ विशालहै व

क्षःस्थल जिसका ऐसा बडे धनुष को धारे गूढजत्रु अर्थात् मांसमे छिपी हुईहै दोनो हसली जिसकी ऐसा शत्रुवोंका दमन करनेवाला जानु पर्यंत लंबी भुजावाला सुंदर शिर औ ललाट करके शोभित गजके समान सुंदर गतिमान ॥ १० ॥ सम (नछोटा न बडा) तुल्य (एक आकार) जुदे २ है अंग (करचरण आदि) जिसके ऐसा स्निग्धवर्ण अर्थात् जिसका वर्ण स्नेह युक्तहै औ पीन (मांसल) है वक्षःस्थल जिसका ऐसा विशाल नेत्र लक्ष्मीवान् शुभ लक्षणो करके युक्त ॥ ११ ॥ धर्मज्ञ अर्थात् प्रजा पालनादिरूप अपने धर्मके जाननेवाला सत्य संध अर्थात् सत्य प्रतिज्ञा के करनेवाला प्रजाके हित करनेमे तत्पर उत्तम कीर्त्तिमान् ज्ञानसंपन्न सर्वका पावन वशंगत समाधिमान् ॥ १२ ॥ प्रजापति (ब्रह्मा) के तुल्य श्रीमान् सर्वका पोषक शत्रुवोके हनन करनेवाला सर्व प्राणिमात्रका रक्षक तथा धर्मका परिरक्षण करनेवाला ॥ १३ ॥ शरणागत रक्षण रूप अपने धर्मका पालक तथा अपने जनकी रक्षा करनेवाला वेद औ वेदांगके तत्वके जाननेवाला ऐसा धनुर्वेदमे निष्ठावान् ॥ १४ ॥ सर्व शास्त्रोके अर्थतत्व (गूढ आशय) का जाननेवाला सदा स्मृतिमान् अर्थात् ज्ञात अर्थमे विस्मरणक्लेशरहित प्रतिभानवान् अर्थात् व्यव हार कालमे श्रुत औ अश्रुत का झट जिसको भान होताहै ऐसा सर्व लोकका प्रिय साधु (परकार्यका साधक) औ कृपणता करके रहित औ सर्व विषय मे विचक्षण विद्वान् ॥ १५ ॥ जैसे नदियों करके समुद्र तैसे सर्वकाल सत्पुरुषों करके परिवारित ऐसा आर्य अर्थात् सर्व श्रेष्ठ औ सर्व शत्रु औ मित्रो के विषय सम (एकरस) औ सर्व काल एक प्रिय दर्शन ॥ १६ ॥ ऐसा वह सर्व गुणो करके युक्त कौशल्याके आनंदका वर्द्धक गंभीरतामे समुद्रके समान, औ धैर्य करके हिमाचलके समान ॥ ॥ १७ ॥ वीर्यमे विष्णुके तुल्य सोम (चंद्र) के समान प्रियदर्शन क्रोधमे कालाग्निके सम औ क्षमा करके पृथिवीके समान ॥ १८ ॥ त्यागमे कुवेर के तुल्य सत्य भाषणमे अपर अर्थात् उत्कृष्ट अन्य वस्तु रहित धर्मके समान स्थित इसविध गुण संपन्न सत्यपराक्रम श्रेष्ठ गुणो करके युक्त तथा प्रजाके हित करणो करके युक्त ऐसे सर्व पुत्रो- मे ज्येष्ठ तिस प्रिय पुत्र रामचंद्रको युवराज पदमे युक्त करने को प्रकृति

(अमात्यआदि) के प्रियकरने की इच्छा करके महीपति दशरथ प्रीतिसे इच्छा करते भये तिस रामचंद्रके राज्याभिषेकके संभारोंको देखके अनंतर कैकेयी जिसे पूर्वमें वरदिया वह देवी इस राजा दशरथसे रामका वनवास औ भरतका अभिषेक ऐसा वर मागती भयी ॥ १९ ॥ ॥ २० ॥ २१ ॥ २२ ॥ वह राजा दशरथ सत्यवचनसे धर्म पाश करके बंधा हुवा प्रियसुत रामको वन वास देताभया ॥ २३ ॥ वह वीर रामचंद्र कैकेयीके समक्ष करी प्रतिज्ञाको पालन करता हुवा कैकयीकी प्रीति का हेतुभूत ऐसे पिताके वचन निर्देशसे वनको जाताभया ॥ २४ ॥ औ सुमित्राके आनंदका वर्द्धकस्नेह औ विनय करके संपन्न ऐसा अति इष्ट प्रिय भ्राता लक्ष्मण भ्राताके सौभ्रात्र भावको दर्शित करताहुवा वनको जातेहुवे तिस भ्राता रामचन्द्रके पीछे जाताभया ॥ २५ ॥ नित्यप्राणके तुल्य हितकारिणी जनकके कुलमें उत्पन्न भयी मानो निर्माण करी देवमाया होय ऐसी सर्व लक्षणोंकरके युक्त नारियोंमे उत्तम वधू ऐसी रामकी प्रिया भार्या सीताभी जैसे चंद्रमाके पीछे रोहिणी तैसे पीछे २ जाती भयी ॥ २६ ॥ २७ ॥ औ सर्व पुरवासी जन औ राजा दशरथ पीछे आवतेहैं जिनके ऐसे दूर प्राप्त हुवे रामचंद्र शृंगवेर पुरमे गंगाके तटपर निषादोंके अधिपति धर्मात्मा प्रिय गुहके प्रति मिलके सूतको विसर्जन करते भये ॥ २८ ॥ २९ ॥लक्ष्मण सीता औ गुह इन करके सहित रामचंद्र वहुत है जल जिसमें ऐसी नदी गंगाको उतर के सवजने वनसे अन्य वनमे जाय के ॥ ३० ॥ पश्चात् भरद्वाजजीसे मिल के भरद्वाजजीके अनुशासन (आज्ञा) से चित्रकूटको प्राप्त होके तहाँ रमणीक पर्णशाला रूप गृह बनायके वन विषय तीनोजने रमण क रते हुवे देव गंधर्वोंके समान प्रकाशते हुवे तहां सुखसे वसते भये तिस प्रकार रामचंद्रके चित्रकूटके प्राप्त होनेपर पुत्रशोक करके आतुर ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ राजादशरथ सुतके उद्देश करके हा सुत ऐसा वि लाप करते हुवे स्वर्गको जाते भये औ राजा दशरथके मरने पर वशिष्ठादि द्विजों करके ॥ ३३ ॥ राज्यके वास्ते नियुक्त हुवाभी महाबल भरत राज्यकी नही इच्छा करता भया औ रामचंद्रके चरणोका सेवक वह वीर वनको जाता भया ॥ ३४ ॥ वनमे जायके आर्यभाव करके

पूजित ऐसा वह भरत अति महान् आत्मा (अंतःकरण) जिनका ऐसे सत्य पराक्रमी रामचंद्रके समीप जायके भ्राता रामचंद्रसे अपना इष्ट मनोरथ याचन करता भया ॥ ३५ ॥ औ रामचंद्रके प्रति इस वचन को बोलता भया हेधर्मज्ञ राजा तो तुही हो औ सुमुख परम उदार अतिमहा यशस्वी महाबलवान् रामचंद्र तो पिताके आदेशसे राज्य की नही इच्छा करते भये ॥ ३६ ॥ तदनंतर भरताग्रज (रामचंद्र) राज्यके अर्थ अर्थात् राज्य करने को इस भरतको अपनी प्रतिनिधि रूप पादुका देके भरतको वारंवार तिस देशसे लौटावते भये ॥ ३७ ॥ वह भरत अपने काम (मनोरथ) को नही प्राप्तहो के रामचंद्रके दोनो पादोको अर्थात् दोनो पादुकाओंकी नित्य सेवा करता हुवा रामचंद्रके आगमनकी आशा करके नंदिग्राम मे राज्य करता भया ॥३८॥ भरतके जाने पर सत्यसंध जितेंद्रिय श्रीमान्रामचंद्र नगरके जनोका तिस चित्रकूटमे फिर आगमन देखके सावधान हो दंडकारण्य मे प्रवेश करते भये ॥ ३९ ॥ कमल लोचन श्रीरामचंद्र महावनमे प्रवेश करके विराध नाम राक्षसको हनन करके शरभंग मुनिको देखते भये अर्थात् शरभंग मुनिके दर्शन करते भये ॥ ४० ॥ ४१ ॥ फिर सुतीक्ष्णके औ अगस्त्यके तथा अगस्त्य मुनिके भ्राताके दर्शन करते भये औ अगस्त्य मुनिके वचनसे परम प्रसन्नहुवे श्रीरामचंद्र इंद्रके धनुष को ॥ ४२ ॥ तथा खड्ग औ अक्षय सायक (बाण) जिनमे ऐसे दो तूणीरोको ग्रहण करते भये तथा तिस वनमे वनचारी जीवोंके साथ वसते हुवे रामचंद्रजीके ॥ ४३ ॥ समीप कवंध आदि असुरोंके तथा खरदूषण आदि राक्षसोंके वधके अर्थ सर्व ऋषिजन आवते भये औ वह रामचंद्र तिससमय वनमे तिनऋषिजनोसे तिन राक्षसादिकोंके वध को अंगीकार करते भये ॥ ४४ ॥ औ अग्निके समान देदीप्यमान ऐसे दंडकारण्य के वास करनेवाले ऋषिजनोंके समीप रामचंद्रजीने युद्धमे राक्षसोंके वधकी प्रतिज्ञाभी करी ॥ ४५ ॥ तिसी दंडकारण्यमे वासकरते हुवे तिन रामचंद्रजीने जनस्थानके वास करनेवाली ऐसी कामरूपिणी अर्थात् यथेच्छा रूपके धारनेवाली शूर्पणखा नाम राक्षसी नाक कान छेदन करके विरूपिणी करी ॥ ४६ ॥ तिस शूर्पनखा के विरूप करनेके अनंतर शूर्पनखा

केवाक्यसे युद्ध करनेको सन्नद्ध (उद्यत) हुवे सर्व राक्षसोंको औ खरको त्रिशिराको तथा दूषण नाम राक्षसको तथा तिनके सर्व अनुचरोंको रणमे रामचंद्र संहार करते भये ॥ ४७ ॥ तिस वनमे बसनेवाले जनस्थानके निवास करनेवाले चौदह सहस्र राक्षस मारे जाते भये ॥ ४८ ॥ तिसके अनंतर खर दूखण आदि बंधुजनोंके वधको सुनके क्रोध करके व्याप्त (भरा) हुवा रावण जायके मारीच नाम राक्षससे सहाय मागताभया४९ मारीबोला हे रावण बलवान् तिस रामचंद्रके साथ तेरा विरोध करना उचित नही है ऐसे बहुत वार मारीचने वरजा भी काल करके प्रेरित वह रावण तिस मारीचके वाक्यको अनादर करके मारीच सहित तिस समय तिन रामचंद्रजीके आश्रम पद (स्थान) को जाता भया ॥ ५० ॥ ५१ ॥ और जब रामचंद्रजी की पर्णशाला (कुटी) के समीप प्राप्त भया तब तिस मायावीने अर्थात् विचित्र कनक मृगरूप धारी मारीचने नृपके पुत्र (रामलक्ष्मण) दोनो को दूर निकाशके प्राण त्याग किया औ रावण अवसर पाय सीताको लेके चला मार्गमे सीताके रुदनको श्रवण करके जटायुने रोका तब रावण जटायुनाम गृध्रको मारके रामकी भार्याको हरण करता भया ॥ ५२ ॥ मारीचको मारके आये लक्ष्मण सहित रामचंद्र पर्णशालामे सीताको नही देखके ढूंढते हुवे चले आगे मार्गमे मारे हुवे गृध्रको देखके और रावण करके हरी मैथिलीको सुनके व्याकुल है इंद्रिये जिनकी ऐसे शोक करके संतप्त राघव विलापको करते भये ॥ ५३ ॥ तिसके अनंतर तिस शोक करके युक्त रामचंद्रजी जटायुनाम गृध्रको दाह करके वनमे सीताको खोजते हुवे रूप करके विकराल ऐसे घोर दर्शन कबंध नाम राक्षसको देखते भये औ तिसको मारके महाबाहु रामचन्द्र दाह करते भये स्वर्गको जाता हुआ वह कबंध ॥ ५४ ॥ ५५ ॥ इनसे यह कहता भया कि हे राघव अपने धर्ममे निपुण ऐसी श्रमणी (परिव्राजिका) अर्थात् परिव्राजक रूप चतुर्थ आश्रमको प्राप्त हुई ऐसी शबरी नाम धर्मचारिणी ह्रियासे थोडी दूर परहै तिसके प्रति आप जाओ ॥ ५६ ॥ वह महा तेजस्वी शत्रुवोंके नाशक रामचंद्रजी शबरीके प्रति जाते भये औ शबरी करके सम्यक् प्रकार पूजित हुवे दशरथ सुत रामचंद्र तहाँसे पंपासरको जाते भये ॥ ५७ ॥ औ पंपासरके तीर

पर हनुमान नाम वानरके साथ मिले हनुमानके वचनसे सुग्रीवके साथ मिले ॥ ५८ ॥ महाबलवान् रामचंद्रजी जन्मसे लेके जो जिस प्रकार भया वृत्तांत तथा विशेष करके सीताका वृत्तांत सो सब सुग्रीवके तै निवेदन करते भये ॥ ५९ ॥ औ सुग्रीव वानरभी रामचंद्रके तिस सर्व वृत्तांतको श्रवण करके प्रसन्न हुवा अग्निको साक्षी करके रामचंद्रजीके साथ मैत्री करता भया ॥ ६० ॥ तिसके अनंतर दुखित हुवे वानरराज सुग्रीवने स्नेहसे वालीके विरोधका अनुकथन (रामचंद्रके प्रश्नके अनुकूल उत्तर) संपूर्ण रामचंद्रजीके तै निवेदन किया ॥ ६१ ॥ तब रामचंद्रजीने वालीके वधकी प्रतिज्ञा करी तब तिस ऋष्यमूक पर्वत पर वानर (सुग्रीव) वालीके बलको रामचंद्रजीसे वर्णन करता भया ॥ ६२ ॥ औ सुग्रीवदुंदुभिके शरीर दिखाने पर्यंत नित्यराघव (रामचंद्र) विषय बलके निमित्त शंकित होता भया इसीसे सुग्रीव राघव (रामचंद्र) के बल जाननेके अर्थ पर्वतके सन्निभ दुंदुभिके उत्तम काया(शरीर)को उन्हें दिखाता भया ॥ ६३ ॥ ६४ ॥ महाबाहु ऐसे अमित बलवान्रामचंद्रजी दुंदुभिके शरीरको देखके यह कितनाहै ऐसा अनादर करके बाम पादके अंगुष्ठकी ठोकरसे संपूर्णको दश योजन पर फेंक देते भये ॥ ६५ ॥ औ तिस समय फिर प्रत्यय जननके अर्थ रामचंद्र एक महाबाण करके सततालोको अर्थात् ताल वृक्षोंको औ तिनके समीपवर्त्ती गिरि और रसातल लोकको भेदन करते भये ॥ ६६ ॥ तिसके अनंतर तिस कर्म करके रामचंद्रजीमे विश्वासी (होके) प्रसन्न चित्त ऐसा वह महाकपी (सुग्रीव) राम सहित तिस समय किष्किंधा गुहाको जाता भया ॥ ६७ ॥ तदनंतर सुवर्णके समान पिंगलवर्ण ऐसा कपियोंमे श्रेष्ठ सुग्रीव किष्किंधामे गर्जता भया तब तिस नाद करके कपीश्वर वाली गृहसे निकसके बाहर चलता भया ॥ ६८ ॥ तिस समय वर्जती हुई ताराको परिसांतकरके सुग्रीवके साथ आन समागत होता भया अर्थात् युद्ध करता भया तिस युद्धमे राघव (रामचंद्र) इस वालीको एक बाण करके हननकरते भये ॥ ६९ ॥ तदनंतर रामचंद्र सुग्रीवके प्रार्थना वचनसे वालीको संग्राममे मारके तिस वालीके राज्य पर सुग्रीवको स्थापन करते भये ॥ ७० ॥ वानरोंमे श्रेष्ठ वह सुग्रीव जनकात्मजा (जानकी)

के दर्शनकी इच्छा करता हुवा सर्व वानरोको बुलायके जानकीके ढूंढनेके अर्थ सर्वदिशाओंमे भेजता भया ॥ ७१ ॥ सुग्रीवके समीपसे विदाहोनेके अनंतर समुद्रके तीर पर प्राप्त हुवे सर्व बांदर तिनके मध्यमे वली हनुमान् संपाति नाम गृध्रके वचनसे शतयोजन विस्तीर्ण (विस्तारयुक्त) ऐसे लवणार्णव (समुद्र) को उल्लंघन करता भया ॥ ७२ ॥ औ रावणकरके पालित लंकापुरीमे प्राप्त होके तहाँ अंतःपुरकी अशोकवाटिकामे प्राप्त हुई रामचंद्रके ध्यानको करती हुई सीताको देखता भया ॥ ७३ ॥ रामचंद्रके अंगुलीयक (अंगूठी) रूप चिन्हको निवेदन करके तथा रामचंद्रकी कुशल वार्त्ता आदि कहके वैदेहीको समाश्वासन कर अर्थात् सर्व प्रकारसे धैर्य देके अशोक वटिकाके बहिर्द्वारको चूर्ण कर डालता भया ॥ ७४ ॥ सेनाके पंच अग्रगामियोको अर्थात् प्रधान सेनापतियोको औ सप्त मंत्रियोके सुतोको मारके तथा शूर अक्षय कुमार नाम रावणके पुत्रको निष्पेपण (चूर्ण) करके इंद्रजितके मारे हुवे ब्रह्मास्त्र करके बंधनको प्राप्त होताभया ॥ ७५ ॥ पितामह (ब्रह्मा) के वरदानसे प्रयत्नके विना ब्रह्मास्त्र करके मुक्त अपने आत्मा (शरीर) को जानके जो अपनेको बाँधके इधर उधर खीचते हुवे तिन राक्षसो को अर्थात् तिन यंत्रना करनेवाले राक्षसोके अपराधोको सहन करता हुवा वह वीर हनुमान ॥ ७६ ॥ एक मिथिल राजसुता सीताको अर्थात् सीताके स्थानको छोडके संपूर्ण लंका पुरीको दग्ध करके रामचंद्रजीसे सीताका दर्शनरूप प्रिय आख्यान के कहनेके अर्थ फिर लौटके आवता भया ॥७७॥ तिसके अनंतर अनंतबुद्धि वह वीर हनुमान् महात्मा रामचंद्रजीकी प्रदक्षिणा करके सन्मुख स्थित हो हेभगवन् मैने सीता देखी यह सत्यतासे निवेदन करता भया ॥ ७८ ॥ तिसके निवेदनके अनंतर सुग्रीवसहित रामचंद्र महोदधि समुद्रके तीरपर जाय सूर्यके समान प्रकाशते हुवे बाणो करके समुद्रको क्षोभित (व्याकुलित) करते भये ॥ ७९ ॥ नदियोंका पति समुद्र रामचंद्रजीको अपना आत्मा (निजरूप) दिखाता भया समुद्रके वचनसे नल बांदरके द्वारा सेतुको निर्माण करावते भये ॥ ८० ॥ तिस सेतुरूप मार्ग करके पुरी लंकाको जाय युद्धमे रावण को मार सीताको पाय पीछे परम लज्जा को रामचंद्र प्राप्त होते भ

थे ॥ ८१ ॥ तिसके अनंतर रामचंद्र देवजनोंकी सभामें तिस पतिव्रता सीताको परुष वचन बोलते भये औ नही सहन करती हुई वह सती सीता अग्निमे प्रवेश कर जाती भयी ॥ ८२ ॥ तिसके अनंतर अग्नि के वचनसे कल्मष रहित सीताको जानके अति प्रसन्न हुवे रामचंद्र सर्व देवतों करके पूजित हुवे शोभते भये ॥ ८३ ॥ महात्मा राघव रामचंद्रके तिस बडे महान् कर्म करके देव ऋषि गणो करके सहित चराचर संपूर्ण त्रैलोक्य संतुष्ट होता भया ॥ ८४ ॥ लंकाके विपय राज्य गद्दीपर राक्षसेंद्र विभीपणको अभिषिक्त करके रामचंद्र कृतकृत्य औ विगतज्वरहो मुदित होते भये ॥ ८५ ॥ सर्व देवोंसे वरदान पायके तथा संग्राममे मरे पडें हुवे बाँदरोको सम्यक् प्रकारसे उठायके अर्थात् जिवायके पुष्पक विमान करके विभीपण आदि सुहृदजनोकरके आवृत रामचंद्र अयोध्याको प्रस्थान करते भये ॥ ८६ ॥ मार्गमे प्राप्त हुवे मुनि भरद्वाजके आश्रमको जायके सत्य पराक्रम रामचंद्र भरतजीके समीप हनुमंतको भेजते भये ॥ ८७ ॥ भरद्वाजजीके आश्रमसे तिस पुष्पक विमान पर चढके तब फिर आख्यायिका (पूर्वहुवे वृत्तांत) को कहते हुवे रामचंद्र सुग्रीव सहित नंदीग्रामको जाते भये ॥ ८८ ॥ औ जायके नंदीग्राममे भ्राताओं करके सहित निष्पाप रामचंद्र जटाको त्याग करके सीताको समीप ले फिर राज्य को प्राप्त होते भये ॥ ८९ ॥ तिस समय सर्वलोक (जन) प्रहृष्ट मुदित तुष्ट पुष्ट सुंदर धर्माचरणके करनेवाला निरामय (शरीरके रोगरहित) अरोग अर्थात् मानसी व्यथा रहित दुर्भिक्षके भय करके रहित होता भया ॥९०॥ औ पुरुष कदाचित् भी कही पुत्र के मरण को नही देखेगे औ स्त्रियेभी पतिव्रता वैधव्य दोपरहित सदा होयगी ॥ ९१ ॥ औ न अग्निसे उत्पन्न भय कदाचित् होगा औ न जीव जलमें डूबेगे औ न कदाचित् वायुजन्य भय होगा औ न ज्वर का किया भय औ न क्षुधाका भय औ न चौरकृत भय होयगा ॥ ९२ ॥ औ नगर राष्ट्र धन धान्य करके युक्त तथा जैसे कृत युगमे तैसे सर्व नित्य प्रमुदित होयगे ॥ ९३ ॥ औ सैकडों अश्वमेधों करके तथा बहुसुवर्णक नाम यज्ञो करके ईश्वर का यजन करके दश सहस्र कोटि परिमित गौवे तथा असंख्यात धन ब्राह्मणोको देके महा यशस्वी श्रीरामजी ब्रह्मलोकको जायगे

॥ ९४ ॥ ९५ ॥ औ रामचंद्र शत गुण राजवंशो को स्थापन करेगे तथा इस लोकमे चातुर्वर्ण्य (चारोवर्णो)को अपने २ धर्ममे नियुक्त करेंगे९६ दश सहस्र दशसौ वर्ष पर्यंत राज्य उपासन करके रामचंद्र ब्रह्मलोक को जायगे ॥ ९७ ॥ पवित्र पापके नाशक पुण्य औ वेदोके संमत ऐसे इस रामचरितको जो पुरुष पठन करै वह सर्व पापोंसे प्रमुक्त होताहै ॥९८ ॥ आयुकारक इस रामायण रूप आख्यानको पठन करता हुवा नर पुत्र पौत्र औ बंधु भृत्यगण करके सहित परलोकमे स्वर्ग विषय पुजताहै ॥९९॥

पठन्द्विजोवागृषभत्वमीयात्स्यात्क्षत्रियोभूमिपतित्वमीयात् ॥ वणिग्जनःपुण्यफलत्वमीयाज्जनश्चशूद्रोपिमहत्त्वमीयात् ॥ १०० ॥

इस संक्षेप रामायणको पठन करता हुवा द्विज ब्राह्मण वाणीविषय श्रेष्ठताको प्राप्त होय अर्थात् समस्त वेदवेदांग का पारगामी होय क्षत्रिय भूमिपति होय व णिकजन (वैश्य) पुण्यफलको प्राप्त होय औ शूद्र महत्त्वको प्राप्त होय ॥ १०० ॥

इति श्री वाल्मीकीय रामायण भाषार्थानुवादे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

अथ द्वितीयसर्गः ।

श्लोकः ।

नारदस्यतुतद्वाक्यंश्रुत्वावाक्यविशारदः ॥पूजयामासधर्मात्मासहशिष्योमहामुनिम् ॥ १ ॥

वाक्यविशारद सशिष्य वाल्मीकिजी देवर्षि नारद जीसें यह श्रवण करकै उनकी पूजा करते हुये ॥ १ ॥ वाल्मीकिजीके नारदजीको यथा विधि पूजा करनें पर, वह उनसें संभाषण करकै बिदाले देवलोकको च लेगये ॥ २ ॥ अनन्तर वाल्मीकिजी क्षण कालतक आश्रम में रहकर गंगाके निकटवाली तमसा नदीके निकट उपस्थित हुए ॥ ३ ॥ वह

वहाँ जा नदीका अवतरण स्थान कर्दम(कीच)विहीन देखकर पार्श्वमें खडे हुए शिष्यसें यह कहने लगे ॥४॥ हेवत्स भरद्वाज! यह अवतरणस्थान कैसा कर्दम(कीच) शून्य और रमणीयहै देखो इसका जल सज्जन मनुष्योंके चित्तकी नांई निर्मलहै ॥ ५ ॥ जो हो तुम कलश रखके मुझे वल्कलदो कि इस उत्तम तमसा तीर्थमें स्नानकरूं ॥ ६ ॥ अनुगत शिष्य भरद्वाजनें गुरु मुखसें यह वाक्य श्रवणकर उनको वल्कल प्रदान किया ॥ ७ ॥ वाल्मीकिजी शिष्यसें वल्कल ग्रहण करके तीर स्थित निविड अरण्य दर्शन पूर्वक इधर उधर फिरनें लगे ॥ ८ ॥ उस वनके निकट एक चकवा चकवीका जोडा सुस्वरसें गान करकै विचरण करता देखा ॥ ९ ॥ इसी अवसरमें एक महापापी अकारण वैर करने वाले निषादने आकर वाल्मीकिजीके देखते देखते उस जोडेमेंसे चकवे को मारडाला ॥ १० ॥ उसको रुधिरमें डुबे हुये पृथ्वीमें लोटते देखकर मरा जान उसकी भार्या क्रौंची अतिशय रोदन करनें लगी ॥ ११ ॥ उस कामसें उन्मत्त रुधिरसें लालसिरवाले दिनरात साथ रहने वाले पतिके संग जिसके शरीरमें बाण लगाहै अब सहवास न होगा यही कारण उसके इतना विस्मय करनेका हुआ ॥ १२ ॥ धार्मिक महामुनि वाल्मीकिजी कामसें मत्त हुए विहंगमको व्याधके हाथसें मरा हुआ देख करुणा के वश हुए ॥ १३ ॥ तब चकवीको रोता हुआ सुनकर कहनें लगे कि यह कार्य्य अति अधर्म जनकहै और यह वचन बोले ॥१४॥ रेनिषाद तैंने जब इस क्रौंच मिथुनके जोडेमेंसें कामके वशहुएको एक क्रौंचको मारडाला इस कारण तू बहुत वर्षोंतक प्रतिष्ठा नही पासकैंगा अथवा हेरमा निवास राम तुमनेजो क्रौंच रूप रावणमंदोदरीके मध्यसै एक कामरूपी रावणको माराहै इसकारण संसारमें बहुत वर्षोंतक प्रतिष्ठाको प्राप्त हूजिये अथवा हेलोकरावण रावण तूने क्रौंच वनवासादिकसै दुःखित रामजानकी के मध्यसै काममोहित सीताको हरणादिक के दुःखसे रामको मारनेकी तुल्यकिया अत एव बहुत दिनोंतक प्रतिष्ठा विनापाये मरणको प्राप्तहो इस श्लोकमें रामायणकी और कथाभी विद्यमानहैं पहले भृगुजीने भी विष्णु भगवानको शाप दियाथा कि तुमने मेरी स्त्रीका वियोग कियाहै तौ तुम्हारी स्त्रीकाभी तुमसै वियोगहोगा इसी कारण भगवान-

व्याधरूप धारण कर वाल्मीकिजीके देखते २ क्रौंचरूपी राक्षस को मा-
रडाला तब सर्वान्तर्यामी भगवानकी प्रेरणासे वाल्मीकि जी यह विचारनेल-
गे कि यह इसने महा अधर्म कियाहै यह विचार शापदिया कि जैसे तुमने
काम मोहित इसक्रौंचको माराहै इसीप्रकार तुम्हारा भी बहुत कालतक
स्त्रीसे वियोगहो इसी बातको पद्म पुराणमें शिव पार्वती के सम्वाद में कहा-
है कि कोई लकडहेरा अपनी स्त्रीको मारता २ बोला कि मैं राम नहीं हूं
जो तुझे रावण के घरमें रही हुई जानकी की तरह रखूं यह सुन लो-
कापवाद से डरकर रामचंद्र ने लक्ष्मणजीसे कहा कि तुम जानकी को
वनमें छोडि आओ जिसकारण मैं जानकी को त्यागन करताहूं वहभी तु-
म सुनो कि पूर्वकालमें भृगु और वाल्मीकि जीने मुझे शाप दियाहै कि
तुमसे स्त्रीका वियोग होगा इसकारण मैं इन्हैं त्यागन करताहूं इसी का-
रण स्कंदपुराणके पातालखण्डमें अयोध्यामाहात्म्यमें लिखाहै कि
महातपस्वी वाल्मीकिजी जब निषादको शाप देकर दुःखी हुए तब ब्र-
ह्माजी आनकर कहने लगे हे मुनि जिनको तुमने शाप दियाहै वह नि-
षादनहींहैं किन्तु वह रामही वनमें मृगया खेलने आये हैं उनका चरित्र
वर्णन करो तुह्मारा यह छंद पुण्यरूप श्लोक नामसे जगतमें विख्यात
होगा यह कहकर ब्रह्माजी तो चले गये वाल्मीकिजीने सौ करोड श्लो-
कोंमें रामायण बनाई वोह सब ब्रह्मलोकमें है यहां चौवीस सहस्र ल-
वकुशने सुनाई योगवाशिष्टमें और भी अवतार होनेके कारणहै एक
समय वैकुंठसे भगवान विष्णुजी ब्रह्माजीकी सभामें आये सब देवता-
ओंनें उठकर सन्मान किया केवल कुमार नहीं उठे और ज्योंके त्यों
बैठरहे ज्ञानका मनमें बडा अभिमानथा यह देख भगवानने कहा कि
तुमको निष्कामताका अभिमानहै इस कारण तुम शरसे उत्पन्न होकर
कामी होगे तब कुमार कहने लगे कि तुमको निष्कामताका अभिमा
नहै सो इसे त्याग करके कुछ कालतक तुम अज्ञानी होगे इसी प्रकार
विष्णुजीके कर्तव्यसे अपनी भार्याको मृतक देख भृगुने शाप दिया
था कि तुह्माराभी भार्यासे वियोग होगा इसी प्रकार जब वृंदाके प-
तिने उपद्रव मचाया तब विष्णुजीनें छलसे उसके पतिका रूप ब-
नाकर उससे अपने चरण दबवाये पर पुरुषके अंग स्पर्शसे उसका

पातिव्रत्यनष्ट हुआ तवही शिवजीके हाथसै उसका पति मारा गया तव उसने यह भेद जानकर शापदिया कि तुमको स्त्रीका वियोग होगा एक समय देवदत्त ब्राह्मणकी भार्या सागरके तीर बैठीथी वह वहां नृसिंहजीका भयंकर रूप देख भयसै मरगई तव उसने विष्णुको शाप दिया कि तुमभी भार्याके वियोगमें मेरी समान दुखी होगे फिर जो ताराने शाप दियाहै वह किष्किधा में कहैंगे इसी प्रकार और २ पुराणोंमें भी लिखाहै कि तमसाके किनारे वाल्मीकिजीने व्याधरूप रामको शाप दियाथा चौपाई " इहि विधि जन्म कर्म हरिकेरे । सुन्दर सुखद विचित्र घनेरे ॥ कल्प २ प्रति प्रभु अवतरहीं । चारु चरित नाना विधि करहीं ॥ तव तव कथा मुनीशनगाई ॥ परम विचित्र प्रवन्ध बनाई ॥ परम अनूप प्रसंग बखानै।करहिं न सुनि आश्चर्य सयानै दोहा॥असुरमार थापहिं सुरहिं, राखहिं निजश्रुतिसेतु॥जग विस्तारहिं विमल यश, रामजन्म करहेतु" ॥ १५ ॥ वाल्मीकिजी व्याधेको इस प्रकार शापदेकर वारंवार यह चिन्ता करने लगे कि मैंने पक्षीके लिये व्याकुल चित्तहो क्या कार्य्य किया ॥ १६ ॥ मुनिपुङ्गव बुद्धिमान महर्षि मनहीं मन यह चिन्ता करते हुए अपने शिष्यसें इस प्रकार वचन बोले ॥ १७ ॥ हे वत्स जब मेरा यह वाक्य पादबद्ध समान अक्षर वाला वीणाकी लयसें युक्त शोक द्वारा कंठसें उच्चारित हुआहै तो यह श्लोक रूप होगा इसमें सन्देह नहि ॥ १७ ॥ वाल्मीकिजीके यह वचन सुन भरद्वाजने उनकी वडी वडाई की इस्सै वाल्मीकिजी परम सन्तुष्ट हुये ॥ १९ ॥ तदनन्तर महामुनि वाल्मीकि जी यथाविधि तमसामें स्नानकर श्लोक उत्पत्ति विषयकी चिन्ता करते हुए अपने आश्रमको लौटे ॥ २० ॥ शास्त्राधिकारी विनीत शिष्यभी कंधेपर जलका भरा कलशा ले उनके पीछे पीछे आश्रमको लौटे ॥ २१ ॥ धर्मके जान्नेवाले वाल्मीकि जी शिष्यके सहित आश्रममें उपस्थित हो बैठनें उपरान्त नाना प्रकारके कथोपकथन होनेंपर ध्यानमें मनको लगाते हुये ॥ २२ ॥ इतनेमें सृष्टि कर्त्ता शक्तिमान महातेजस्वी चतुर्मुख ब्रह्मा उन मुनिश्रेष्ठको देखनेके अर्थ वहां आये ॥ २३ ॥ ऋषि देखतेही अतिशय विस्मय हो सहसा उठ कर कृताञ्जलिपुटमें सविनय खडे होगये ॥ २४ ॥ फिर पाद्य, अर्घ्य आ-

सन और स्तुति द्वारा अर्चना करके उनके चरणोंमें प्रणाम करके कु-
शल पूछी ॥ २५ ॥ भगवान् पितामहनें दिव्य आसनपर बैठ महर्षि
जीसें कुशल प्रश्न पूछ आसनपर बैठनेकों कहा ॥ २६ ॥ तब साक्षात्
ब्रह्माजीकें आसनपर बैठनेके उपरान्त ब्रह्माजीकी आज्ञासें वह आसन
पर बैठें ॥२७॥ वाल्मीकिजी उस समयभी उसी ध्यानमें क्रौंच वधकी वा-
र्ता याद कर मनही मन चिन्ता करनें लगे कि, हाय, बेचारी उस व्याधे
नें कैसा पाप कार्य्य किया ॥२८॥उसनें अकारण अच्छे कंठवालें क्रौंचको
मारा इस आशयसें मन मनमें उसी श्लोकोको स्मरण करते शोक करनें लगे
और फिर मन मनमेंही कहनेकी बात छुपा कर शोक करने लगे तब
प्रजापति ब्रह्माने मुनिश्रेष्ठसें हंस कर कहा ॥ ३० ॥ हे महामुने तु-
ह्मारे कंठसे जो वाक्य निर्गत हुआहै वह श्लोकरूपहो ख्यातिलाभ
करेगा इस्में कुछ सन्देह नहि, हे ब्रह्मन् मेरी इच्छासेंही तुह्मारे मुखमें
सरस्वतीका आविर्भाव हुआहै ॥ ३१ ॥ हे ऋषिश्रेष्ठ ! तुम धर्मात्मा
गुणवान् बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजीके सब चरित्र वर्णन करो ॥ ३२ ॥
नारद जीसें रामके संबंधमें जोकुछ सुनाहै, उसके अनुसार रहस्य च-
रित्र, और प्रकाशित चरित्र जगतमें प्रकाशित करो ॥ ३३ ॥ इसी
प्रकार लक्ष्मण, सीता, और राक्षसोंका जानाअजाना सब विषय वर्णन
करो ॥ ३४ ॥ जिन सब वातोंको कोई नहि जानता तुम उनके जा-
ननेंको समर्थ होगे, और तौ क्या इस काव्यमें तुह्मारी युक्तिभी मिथ्या
नहीं होगी ॥ ३५ ॥ तुम रमणीय रामायण श्लोकोंमें बनाओं, जान
लेना-कि—जब तक जीव लोकमें नदी व पहाड रहेंगे, तब तक तुह्मारी
बनाई रामकथा संसारमें प्रकाशित रहेगी ॥ ३६ ॥ और तब तक
तुम ऊंचेसें ऊंचे मेरे लोकमें निवास करोगे जबतक तुह्मारी बनाई राम
कथा संसार में रहेगी ॥ ३७ ॥ यह कहकर भगवान् ब्रह्माजी अन्तर्ध्या-
न होगये ॥ ३८ ॥ तब भगवान् वाल्मीकिजी शिष्य सहित परम आ-
श्चर्यको प्राप्तहुए और उनके शिष्य गण क्रमसे सबही वारंवार यह श्लो-
क गान करने लगे, जब वह गामें तब उनके सन्तोष और विस्मयकी
सीमा न रहे ॥ ३९ ॥ समान युक्त अक्षरवाले चार पदकी जो रचना
वाल्मीकिजीनें गाईहै, वह श्लोक नामसे कहीगईहै ॥ ४० ॥ उन ज्ञानी

महात्मा महर्षिकी यह इच्छा हुयी कि समग्र रामायण इसी भांति श्लोकों में बनावेंगे ॥ ४१ ॥ उदार दृष्टि असीम कीर्तिमान वाल्मीकि जीने सुन्दर छन्द उत्कृष्ट अर्थ और भले पदों करके युक्त बराबर अक्षरोंसे पूर्ण बहुत से श्लोकोंके आकारमें इस महाकाव्यको रचना किया ॥ ४२ ॥

तदुपगतसमाससंधियोगंसममधुरोपनतार्थवाक्यबद्धम् ॥ रघुवरचरितंमुनिप्रणीतंदशशिरसश्चवधंनिशामयध्वम् ॥ ४३ ॥

अब सब सन्धि समास प्रकृति और प्रत्यय साध्य दोष विहीन मधुरता करके युक्त प्रसन्नताके गुणका अवलम्बन करने वाला ऋषिका कहा हुआ रामचरित्र और रावणके नाशका वृत्तांत श्रवण करो ॥ ४३ ॥

इति श्रीमद्वाल्मीकिरामायणे आदिकाव्ये बालकाण्डे द्वितीयःसर्गः॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ।

श्रुत्वावस्तुसमग्रंतद्धर्मार्थसहितंहितम् ॥ व्यक्तमन्वेषतेभूयोयच्छ्रुतंतस्यधीमतः ॥ १ ॥

रामायणके रचनकी, इच्छा कर मुनि राज । योगासन से बैठ कर, रचन लगे सब साज॥

महामुनि वाल्मीकिजीने नारदजीसें जो धर्मार्थ युक्त हितजनक रामचरित्र श्रवण कियाथा इस समय फिर उसे भली प्रकार जाननेंको मुनिराज इच्छुक हुए ॥ १ ॥ तब वह पूर्वमुखहो कुशासन पर बैठ यथाविधि आचमन कर हाथ जोडके योगके प्रभाव करके उस विषयमें सन्धान विधार करने लगे ॥२॥ देखते हुए कि राम लक्ष्मण और सीता और राजा दशरथकी कौशल्यादि रानियोंनें व अयोध्याके राज्यके निवासियोंने जो संबन्ध पायाथा वह सब मुनिराजने ध्यान देके देखा व जाना ॥ ३ ॥ जो कुछ हास परिहास खेल इन लोगों का था कहा सब धर्मात्मा मुनि जी प्रत्यक्ष की समान देखने लगे सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले रामचन्द्रजीने लक्ष्मण और सीताजीके सहित वनमें जो कष्ट भोगकियाथा वह सब देखने लगे तब धर्मात्मा वाल्मीकिजी योगमें स्थित होकर जो कुछकथा हुयीथी वह सब हाथमें स्थित आमलक

फलके नाईं देखने लगे ॥६॥ इसभांति योग मार्ग अवलम्बन किये महामति महर्षि श्रुतिसुखकर रामचरित्र वर्णन करने लगे ॥७॥ जिस प्रकार रत्नाकर रत्नोंके समूहोंका आधारहै इसी भांति रामायणभी मनोहर व श्रुतिसुखकर सन्दर्भसें पूर्ण है इसमें धर्मार्थ और कामार्थकी कमी नहि इसके अतिरिक्त इसमें ओरभी बहुतसें गुणहैं॥८॥महामुनिजीने इसग्रंथमें जैसा पहले नारद मुनिने कहाथा उसीके अनुसार रघुवंशका चरित्र वर्णन कियाहै ॥९॥ इसमें रामचन्द्रजीका जन्म वृत्तांत शक्तिका परिचय, लोकानुराग, सर्वजनप्रियता, क्षमा, सौम्यता, सत्यनिष्ठा ॥ १० ॥ महामुनि उग्रतपा विश्वामित्र जीके साथ जानेके समय मार्गमें जोजोअपूर्व कथा हुयीथी और शिवका धनुष तोडनें पर जानकीजोका विवाह वर्णन कियाहै ॥ ११ ॥ फिर परशुरामजीसें रामका विवाद, रामचन्द्रजीके गुण, रामचन्द्रजीका राज्याभिषेकके विषे केकईकी दुष्टता॥१२॥राज्याभिषेक के रंगका भंग होना,रामचन्द्रजीका वनको जाना, राजा दशरथका विलाप और शोक करके परलोक गमन ॥ १३ ॥ प्रजाको क्षोभ, प्रजाको विदादैना निषादाधिपतिका संवाद सारथी सुमन्तजीका लौटना ॥ १४ ॥ गंगाजीका उतरना, भरद्वाजजीके दर्शन, भरद्वाजजीकी आज्ञासें चित्रकूटका दर्शन, ॥ १५ ॥ वहां कुटी बनाकर रहना भरतजीका आना भरतजीका लौट चलनें को कहनां, रामचन्द्रजीका दशरथ पिताको तर्पण करना, ॥ १६ ॥ पादुकाका अभिषेक भरतजीका नन्दिग्राममें रहना, श्रीरामचन्द्रजीका दण्डकारण्यमें जाना, विराध राक्षस को वधकरना,॥१७॥ शरभंगदर्शन सुतीक्ष्णसें मिलना, अनुसूयासें जानकीजीका मिलना, अनसूया का अंगराग दैना ॥ १८ ॥ रामचन्द्र जीका अगस्तजीका दर्शन करना, और उनसें शर ग्रहणकरना शूर्पणखा संवाद और उसके नाक कानों का कटना, ॥ १९ ॥ खर, त्रिशिराका संहार, रावणका सीताजीके हरणको उद्योग करना; मारीचका मारा जाना, जानकी का हरण ॥ २० ॥ रामचन्द्रजीका विलाप, जटायुका मरण, कबन्ध दर्शन, शबरीका दर्शन-फल मूल भोजन और पम्पाके किनारे पहुँचना रामका विलाप करना,हनुमानजीसें साक्षात् होना ॥ २१ ॥ २२ ॥ ऋष्यमूक पर्वत पर जाना, सु-

ग्रीवसें समागम, सुग्रीवका विश्वास दिलाना और उस्सै मित्रता करना, वाली सुग्रीवकी लडाई, ॥ २३ ॥ वालि वध, सुग्रीवको राजतिलक, तारा का विलाप, सुग्रीव के कहने सें वर्षा कालमें प्रवर्षण गिरि पर रहना॥ ॥ २४ ॥ पुरुष सिंह रामचन्द्र जीका क्रोध वानर सैन्यका संग्रह सम्पूर्ण दिशाओंमें दूतोंका भेजना पृथ्वीकी स्थिति कहना ॥ २५ ॥ हनुमानजीको अंगूठी दैना जाम्बवन्तका बिल देखना वानरोंका मरणके निमित्त बैठना, संपातिको देखना ॥ २६ ॥ पर्वतपै चढना, हनुमान जीका समुद्र को लांघना, समुद्रके वचनसें मैनाक के दर्शन, ॥ २७ ॥ राक्षसीका डरवाना, छाया पकडने वालेको देखना, सिंहिका संहार, लङ्का दर्शन, ॥ २८ ॥ निशा समय लंकामें प्रवेश और बाकी कार्य्यकी चिन्ताकरना, मद्यपानकी जगह जाना, अन्तःपुरका दर्शन करना,॥ २९ ॥ रावण को देखना, पुष्पक विमानको देखना, अशोक वनमे गमन, तहाँ सीताजीके दर्शन, ॥ ३० ॥ अँगूठी दैना, सीताजीसें वार्तालाप, राक्षसियों का डरवाना, त्रिजटाका स्वप्न देखना, सीताजीका मणि दैना, पेडोंका उजाडना, राक्षसियोंका डरसें भागना, किंकरोंका मान मर्दन, ॥ ॥ ३१ ॥ ३२ ॥ हनुमानजीका बंध जाना, लंका जलाने के समय भयंकर गर्जन करना, फिर समुद्र पार होना, मधु हरण अर्थात् मधु वनके फल खाना, रामचन्द्रजीको धैर्य देकर मणि दैना, समुद्र समागम, नलके हाथसें पुलका बंधना ॥३३॥३४॥ समुद्रको उतरना, रात्रिमें लंकाको घेरना, विभीषणका आना, और रावणके मरनेका उपाय बताना, ॥ ३५ ॥ कुंभकर्ण व मेघनादका वध, रावणनिधन, रामचन्द्रजीको सीताजीका मिलना ॥ ३६ ॥ विभीषणका राजतिलक, पुष्पक दर्शन, अयोध्याकी यात्रा, भरद्वाजजीके आश्रम पर आना, हनुमानजीका भेजना, भरत जीसे महावीरजीकी भेट ॥ ३७ ॥ रामाभिषेकका उत्सव, सैनाको विदा दैना, अपनी प्रजाओंको प्रसन्न रखना सीताजीको त्यागना ॥ ३८ ॥

अनागतंचयत्किंचिद्रामस्यवसुधातले ॥
तच्चकारोत्तरेकाव्येवाल्मीकिर्भगवानृषिः ॥ ३९ ॥

इत्यादि और भी जो पृथ्वीमें भविष्य राम चरित्र होना था व और अ

प्रचारित विषयभी महामुनि वाल्मीकिजीने अपने बनाये रमणीय का-
व्यमें वर्णन किये ॥ ३९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ-
दिकाव्ये बालकांडे तृतीयःसर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थःसर्गः ।

प्राप्तराज्यस्यरामस्यवाल्मीकिर्भगवानृषिः॥
चकारचरितंकृत्स्नंविचित्रपदमर्थवत् ॥ १ ॥

भगवान् वाल्मीकिजीने रामचन्द्रजीके सिंहासनपर बैठने उपरान्त
विचित्रपदपूर्ण और अर्थयुक्त रामचरित्रसम्बन्धी काव्य रचना किया
ऋषि राजने यह काव्य चौवीस हजार श्लोकोंमें बनायाहै पांचसों सर्ग इ-
समें हैं छैकांड और पिछला उत्तर इन सात कांडों में यह काव्य रचा गया
है ॥ २ ॥ भविष्य सहित उत्तर कांडको महामुनि वाल्मीकि जीने बना-
कर किस भांति प्रकाशित होगा यह शोच रहेथे ॥ ३ ॥ महामुनि यह
शोच रहेही थे कि इतनेमें मुनिवेषधारी लवकुशने आनकर मुनिके चर-
णोंकी वन्दनाकी ॥ ४ ॥ वे दोनो भाई धर्मज्ञ राज पुत्र यशस्वी गानेके
सुरसे युक्त आमश्रवासीथे वाल्मीकिजीने इन्हें काव्य ग्रहण करनेके
योग्य देखा ॥ ५ ॥ वह जैसे बुद्धिवान्थे उसी प्रकार वेदमें उनकी
निष्ठाथी करुणामय मुनिजीने उनकी शक्ति देख वेदका तात्पर्य विदित
होनेके निमित्त ऋषिने इनको यह काव्य पढाया रावणवध नामक सी-
ता चरित्रके संबन्धमें अपनी बनाई सम्पूर्ण रामायण उनको पढाई ॥
॥ ६॥७ ॥ पढने और गानेमें मधुर और तीन प्रमाणोंसें अर्थात् द्रुत मध्य
विलंबितसें युक्त सुन्दर अधिक ताल लय मिले हुए संगीतके साथ स्वरसें
पूर्ण ॥ ८ ॥ शृङ्गार करुणा हास्य रौद्र भयानक वीर बीभत्स अद्भुत
शान्त इन नवरसों समेत बनाय पढाया इसमें राम सीताका रमण शृंगार,
राजा दशरथका विलाप इत्यादि करुणा, शूर्पनखा विकृत्य इत्यादि हा-
स्य, लक्ष्मण वह हनुमानके कर्म वीररसमय हैं रावण इत्यादिके काम
रौद्ररस, मारीचलीला भयानकरस, कबन्धका वृत्तांत इत्यादि बीभत्सरस,
रामरावणकि युद्धमें अद्भुतरस, और श्रवण करनेमें सुखद होनेके कारण
शान्तरस हैं ऐसे काव्यको दोनो जने गाने लगे ॥ ९ ॥ क्योंकि वे दोनो

आता गान विद्यामें बडे दक्ष वह सब ताल स्वर लयआदिमें प्रवीण मानों गन्धर्वोंकी मूर्तिहैं ॥ १० ॥ अधिक क्या कहैं उनका सुन्दर स्वर और सुलक्षण देखनेसें जिस प्रकार बिम्बसें प्रतिबिम्ब उठ आताहै वैसेही रामचन्द्र जीकी समान वह जान पडनेलगे ॥ ११ ॥ इसप्रकार अनिन्दित उनदोनोभाइयोंने सर्व श्रेष्ठ रामायण ग्रंथअध्ययन किया और अपनी शिक्षाकी निपुणतासें पढने के समय और गीत गानेके कालमें ॥ १२ ॥ ऋषिद्विजाति और साधुओंके संगमें जैसा पढायाथा वह दोनो तत्वके जान्नेवाले सावधानतासें गाकर संतुष्ट करने लगे ॥ १३ ॥ सर्व लक्षण सम्पन्न वह दौनोभाई महात्मा महाभाग किसी समय इकट्ठे ऋषियोंके समाजमें ॥ ॥ १४ ॥ बैठकर यह काव्य गानेलगे श्रवण करतेही सुन्नेवाले सर्वधर्मवत्सलमुनि नेत्रोंमें जलभरकर ॥ १५ ॥ विस्मय युक्त हो परम प्रीति मनसें धन्यहो धन्यहो एकवाक्यसें गायक बालकोंकी प्रशंसा करनेलगे उनमें कोयीकोयी गानेवालोंकी प्रशंसा कोयीकोयी गीतोंको मधुरायी कोयीगीत रचनाकी पंडिताई की बडाई करने लगे ॥ १६॥ १७ ॥किबहुत कालका हुआभी यह प्रत्यक्षकी समान दीखताहै ऐसे वे दौनो काव्यको गानेलगेवे दौनो मीठे स्वरसें ऊचे स्वरसें मनोहर गानेलगे महातपस्वी ऋषियोंने उनकी बडाई की ॥ १८ ॥ १९ ॥ तब वे औरभी विशेष गानविद्याके भावोंसें गाने लगे और तौ क्या किसी मुनिने प्रसन्न होकर इन्हे अपना कलसा देदिया ॥ २० ॥ किसीने प्रसन्न होकर अपना बल्कल देदिया किसीने मृग छाला किसीने यज्ञोपवीत देदिया ॥ २१ ॥ किसी मुनिने कमंडल किसीने मौंजीबंधन किसीने आसन किसीने कौपीन देदी ॥ २२ ॥ इसप्रकार किसीने कुठार किसीने गेरुवारंगे हुये वस्त्र किसीने चीरवस्त्र ॥ २३ ॥ किसीने जटा बांधनेके लिये डोरा काठ संग्रह करनेकेलिये रस्सी किसीने यज्ञपात्र किसीने काष्ठ भार किसीने ॥ २४ ॥ गूलरकी रस्सी दीदी जिन्हौने द्रव्यादि नहीदिया उनमें भी किसीने स्वस्ति किसीने दीर्घजीवी कहकर आशिर्वाद दिया ॥२५॥ इसभांति सत्यवादी ऋषियोंने लव कुशको वरदिया और सब अचंभेसेंहो एक वाक्यसें वाल्मीकिजीकी अनुपम कविताकी प्रशंसा करने लगे कि उत्तम काव्य बनायाहै ॥ २६ ॥ ऋषिकहने लगे यह काव्य कवियोंका आधार होगा यह कथाके क्रमसे

समाप्त हुआहै फिर जैसा यह अद्भुत काव्यहै वैसेही गान विद्यामें कुशल इन दोनो भाइयोंने गायाहै सो सुन्तेही मनको हरलेताहै ॥ २७ ॥ तुमने जो गान गायाहै यह उमरका बढाने वाला पुष्टि जनक और सुखोद्दीपकहै, इस प्रकार दोनो भाई चारों ओरसे सुख्याति संग्रह करने लगे ॥२८॥ एक दिन दोनो भ्राता अयोध्याके राज मार्गमें गाकर घूम रहेथे, इतने में रामचन्द्र जीने उन्हें देखा, और कुश लव दोनो भाइयोंको घरमें बुला लाये ॥ २९ ॥ शत्रुओंको मारनेवाले रामचन्द्रने उनका भली प्रकार आदर किया और आप प्रभु सोनेके दिव्य सिंहासन पर बिराजे ॥३० ॥ उनके बैठतेही लक्ष्मण प्रभृति भ्राताभी और मंत्रिभी उनके निकटही बैठगये, रामचन्द्र जीने उन दोनो भाइयोंको रूपवान विनीत और बलवान् देखकर ॥ ३१ ॥ लक्ष्मण भरत शत्रुघ्नसें कहने लगे- कि तुम इन देव समान तेजस्वी दोनो भ्राता ओंसें अपूर्व आख्यान श्रवण करो ॥ ३२ ॥ यह कह उन्होंने इनदोनो भाइयोंको गानेकी आज्ञादी तब दोनोभाई ऊंचेस्वरसें राग रागिनी सहित वीणाकी समान मधुर और स्पष्ट भावसें श्रवण करनें वालोंके शरीर रोमांचित और हृदय उद्वेलित कर संगीतमें प्रवृत्त हुये ॥ ३३ ॥ यह कानों का सुखदायक गाना जनसमाजमें शोभित हुआ ॥३४॥ तब रामचन्द्रजी अनुजोंसें बोले. कि हे भ्रातृगण! यद्यपि यह गानेवाले कुशऔर लव महातपस्वी मुनि वेश धारण कियेहैं तोभी इनके शरीरमें राजचिन्ह शोभा पातेहैं यह गानेवाले और उपाख्यान दोनो माधुर्य गुण संपन्नहैं और मेरे यशसें परिपूरित यह चरित्र कल्याण करनेवाला हैं इसलिये तुम स्थिर होके श्रवणकरो ॥ ३५ ॥

ततस्तुतौ रामवचःप्रचोदितावगायतांमार्ग
विधानसंपदा ॥ सचापिरामःपरिषद्गतःशनैर्बु
भूषयासक्तमनाबभूव ॥ ३६ ॥

रामचन्द्रजीने भ्राताओंसें यहकहकर फिर दोनो गायकों सें गानेको कहा आज्ञानुसार वे दोनोभाई सुन्दर गीत गाने लगे,रामचन्द्रजी सभामें बैठगीतश्रवणमें आसक्तचित्त होगये ३६ इति श्रीम०वा०आ०बालकांडे चतुर्थःसर्गः ४॥

अथ पंचमसर्गः।

सर्वापूर्वमियंयेषामासीत्कृत्स्नावसुंधरा ॥ प्र
जापतिमुपादायनृपाणांजयशालिनाम् ॥ १ ॥

महात्मा मनुजीसें लेकर जो सब नरपति इस समुद्रसें घिरी वसुमतिको एक क्षत्र शासन करते आयेहैं ॥ १ ॥ जिन्के गमन समय साठ हजार सन्तान उनका अनुगमन करतीथीं जो सागर खोदकर सगरनामसें पुकारे गये. जिसवंशसें सागरकी उत्पत्ति हुयी. ॥ २ ॥ इस रामायणमें उन्ही इक्ष्वाकु नृप श्रेष्ठोंके वंशका चरित्र वर्णनकिया गयाहै ॥ ३ ॥ अब हम अर्थ धर्म कामकी देनेंवाली इसकथा को आदिसें अंत तक गावेंगे आप लोग निन्द्राको त्याग एकाग्र चित्तहोकर सुनिये ॥ ४ ॥ सरजूके तीरपर धनधान्यसें भरापुरा आनन्दके कुलाहलसें पूर्ण कोशलनाम एक देशहै ॥ ५ ॥ जगत् प्रसिद्ध अयोध्या उसकी राजधानी बनी, और वह पुरी महाराज मनुजीकी स्वयं बसाई हुयीहै॥६॥वह बारह योजनकी लम्बी तीन योजनकी चौडीहै देखनेमें बडी सुन्दर और इस राजधानीसें तीन प्रधान मार्गहैं॥७॥राजमार्ग सब शोभायुक्त फूल मालाओंसें शोभायमान और नित्य जहां छिडकावहोताहै।८।जिस प्रकार देवेंद्र देवलोकमें वास करतेहैं इसी भांति इस पुरीमें राज्यके बढानेवाले प्रतापशाली राजा दशरथजी वास करतेथे ॥९॥ इस नगरीके चारों ओर किवाड व तोरण लगे हुये सब प्रकारके यंत्र व आयुध धरे हुये कही कही शिल्पी लोग बैठे हुएहैं॥१०॥पुरीमें सूत और मागध सब रहतेहैं, देखने वंडी, धनधान्यसे पूर्ण और अतुलित शोभा वाली ऊंची अटारीयोंकी झंडी सब पवनसें उडती हुई किलेकी रक्षा के लिये तोपें लगी हुयीहै ॥११॥ कहीं स्त्रियोंकी नाटकशाला विराजमान उद्यानोमें फुलवाडी और आमोंके पेड लगे हुए, साल वृक्ष मानों जिस नगरीकी कांचीहै ॥ १२ ॥ किलेके चारों ओर गहरी परीखा खुदी हुयी, उनमें पानी भराहुआ, सर्व साधारणके न पहुंचने योग्य, वहाँ कहीं कहीं हाथी, घोडे, ऊंट, खिच्चड, गाय, बैल, बँधे हुएहैं ॥ १३॥ कहीं नृपतिवृन्द खडे हुये, कहीं नाना प्रकारके वणिकगण वाणिज्यकी वस्तुए सजाय हुयेहैं ॥ १४ ॥ वहांके रत्नमय राजमहल सब पर्वतोंकी समान शोभाय-

मानहैं कहीं स्त्रियोंके क्रीडाकरनेके स्थान दूसरी अमरावतीकी नाई सो-हरहिहैं चित्र विचित्र जिनका आकारहै ॥ १५ ॥ कहीं कहीं ऐसीश्रेष्ठ स्त्रियें शोभितहैं वहांके सब स्थानोंपर सोनेका झोल फिरा हुआहै, अनेक प्रकारके रत्नो से विमानग्रह परिपूर्ण हो शोभित होरहेहै ॥१६॥ भूमि सब बराबरहै यहाकी जमीन चावल और धानोंसे पूर्ण है और जल ऊखके रसकी समान मीठाहै ॥ १७ ॥ नगरीमें बहुत स्थानोंपर नगाडे मृदङ्ग वीणा और शंख बज रहे हैं ॥१८॥ अधिक क्या सिद्ध पुरुष इस स्थानको तपस्याके उपयुक्त जान विमानकी समान आश्रय करतेहैं यहां श्रेष्ठ पुरुष गण सुन्दर भेष धरे सदा शोभा पातेहैं ॥ १९ ॥ जो विविक्त अर्थात् सहाय रहितहै जो पिता और पुत्रसे रहितहै जो विरोध डलवाकर भाग जातेहैं ऐसोंकीभी जो बाणोसे विद्ध नहि होसक्ते उनको लघुहस्त वाले चतुर शब्द वेधी शिकार खेलके मार डालतेहैं जहां ऐसे सहस्रों वीर हैं ॥ २० ॥ मतवाले और शब्द करते हुऐ सिंह व्याघ्र और सुअरोंको वनमें तीक्ष्ण अस्त्र और बाहुबलसे मारनेवाले ॥ २१ ॥ ऐसे अनगिन्त म-हारथी इस नगरीकी निरन्तर रक्षा करतेहैं ऐसी पुरीमें राजा दशरथ वास करतेहैं ॥ २२ ॥

तामग्निमद्भिर्गुणवद्भिरावृतांद्विजोत्तमैर्वेदषडं
गपारगैः ॥ सहस्रदैःसत्यरतैर्महात्मभिर्महर्षि
कल्पैर्ऋषिभिश्चकेवलैः ॥ २३ ॥

साग्निक गुणवान् वेदवेदाङ्ग और षडङ्गके जान्नेवाले सत्य परायण महर्षि गणकी समान ऋषि और ब्राह्मण दशरथजीकी राजधानीमें वास करतेहैं ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डे पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठःसर्गः ।

तस्यांपुर्यामयोध्यायांवेदवित्सर्वसंग्रहः ॥
दीर्घदर्शीमहातेजाःपौरजानपदप्रियः ॥ १ ॥

उस अयोध्यामें वेदके जान्नेवाले सम्पूर्ण वस्तुओंके संग्रह करनेवाले

दूरदर्शी महातेजस्वी अयोध्या और सब देशमें रहनेवालेके प्रिय ॥ १ ॥ इक्ष्वाकुवंशमें महारथी यज्ञ करनेवाले इन्द्रियजित परमधर्मात्मा महर्षियों का समान राजर्षि त्रिलोकामें विख्यात ॥ २ ॥ बलवान जिन्होने शत्रुओं-को मारडाला जिनके बहुतसारे मित्र अधिकतौ क्या कहैं धनधान्यके इक-ट्ठा करनेमें इन्द्र और कुबेरकी समान विख्यात ॥ ३ ॥ जैसे मनुजी महा-तेजस्वी लोकका रक्षाकरने वालेहैं वैसेही महाराज दशरथजी प्रजाकी र-क्षाकरतेथे ॥ ४ ॥ जिस प्रकार अमरावती अमरनाथसें रक्षित होतीहै वै-सेही सत्यप्रतिज्ञ महाराज दशरथजी अर्थ धर्म कामकी सेवाकरतेहुये अ-योध्याका पालन करतेथे ॥ ५ ॥ उनके राज्यमें नगरीकी प्रजा धर्म परा-यण शास्त्रवित्, निर्लोभ और सत्य बोलनेवालीथी ॥ ६ ॥ सब आवश्य-कतानुसार उत्तमोत्तम द्रव्य इकट्ठे कररखते घरघरमें गौ घोड़े और धन धान्य संचय रहताथा उनके शासनकालमें जिसकी जो अभिलाषा होती वह पूर्ण होजाती ॥ ७ ॥ कोई मनुष्य कामी कादर नृशंस क्रूर नहिथा न वहां कोई नास्तिक और मूर्ख था ॥८॥ सब नरनारी धर्म शील और जि-तेन्द्रियथे और सबहि महर्षियोंके समान निर्मल स्वभाव और प्रसन्नथे ॥ ॥ ९ ॥ सबही कुण्डल किरीट और माला धारणकरते पवित्रभोजन खाते-पीते इतर सुगन्ध चन्दनादिक लगातेथे ॥ १० ॥ नकोयी ऐसा वसताथा जो सुन्दर भोजन न करताहो दातानहो. कंठा बाजू और कंकणादि सब प-हिरेथे सबका अन्तःकरण पवित्रथा ॥ ११ ॥ नकोयी ऐसा वसताथा जो अग्निहोत्र और बलिवैश्वदेव नकरताहो सब हि यज्ञमें दीक्षितथे राजमें को-ई नीच, तस्कर, और सर्वसंकर नहिथा ॥ १२ ॥ ब्राह्मण इंद्रियोके जीत-नेवाले आत्मकर्ममें रत रहनेवाले, दान ध्यानमें परायण और दाननहि लेतेथे ॥ १३ ॥कोईभी झूट बोलने वाला थोडा पढाहुआ निन्दाकरने वा-ला और व्रतादि कार्य्योंसें हीन मूर्ख नहीथा सबही॥१४॥षडङ्ग सहित वे-द पढतेथे कोई दरिद्र. पागल. या व्यथित नहिथा ॥ १५ ॥ नरनारी को-यीभी रूप लावण्यहीन व कुरूप दृष्टि नही आताथा किसीके मनका भाव राजभक्तिके विरुद्ध नहींथा ऐसे पुरुष अयोध्यामें वास करतेथे ॥ १६ ॥ ब्राह्मणादि चारों वर्ण देवता और अतिथिकी पूजा करतेथे यहां तक कि सभी कृतज्ञ दाता और शूरथे पराक्रम करके संयुक्तथे ॥ १७ ॥ सभी

मनुष्य बडी उमर वाले और सत्य धर्मावलम्बीथे किसीकी अकाल मृत्यु नहीं होतीथी. पुत्र पौत्र कलत्र सहित सब सुख पूर्वक कालयापन करतेथे ॥ १८ ॥ क्षत्रिय ब्राह्मणोंकी आज्ञासें चलते वैश्य गण क्षत्रियोंके अनुवर्ती रहते इसी भांति शूद्र अपने कर्ममें अनुरक्त रहकर ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्योंकी सेवामें नियुक्त रहतेथे ॥ १९ ॥ जैसे पूर्वकालमें प्रजापति मनुजीसें यह राजधानी रक्षित हुयीथी इसी प्रकार दशरथजी ने उसका शासन कियाथा ॥२०॥ जिस प्रकार सिंहोंद्वारा पर्वतों की गुफायें पूर्ण होजाती हैं वैसेही यह राजधानी अग्नि तुल्य तेजस्वी असहिष्णु सरल स्वभाव धनुर्विद्यापारदर्शी वीरोंसें परि पूर्णथी ॥ २१ ॥ यह पुरी कम्बोज वाल्हीक जातिके श्रेष्ठ घोडोंसें भरी रहती वनायु देश और सिंधु नदके समीप देशके घोडोसें जो ऊच्चैःश्रवाके तुल्यथे पूर्णथी ॥२२॥ इसी प्रकार विन्ध्यपर्वतजात हिमालयोत्पन्न पर्वताकार मतवाले हाथियोंसें अयोध्या भली भांति रक्षित रहतीथी ॥ २३ ॥ ऐरावतके कुलके महापद्मके कुलके अञ्जन और वामन वंशके हाथियोसे ॥ २४ ॥ भद्र मन्द. भद्र मृग. और मृग भद्र. नामक संकर हाथियोंसें यह पुरी ढकी रहती थी ॥ २५ ॥ सब हाथी मतवाले और पर्वतोंके समान रहते ऐसे हाथियोंसे यह पुरी पूर्णथी कोई यहा युद्ध करने नहि आता इस कारण अयोध्या इसका नाम सार्थकहीहै यद्यपि विस्तार इसका तीनही योजनकाहै परन्तु दो योजनके मध्यमेंभी कोइ युद्ध करनेका साहसी नहीं होताथा ॥ २६ ॥ तारानाथ जिस प्रकार उडुगणका शासन करतेहैं वैसेही शत्रुमर्दन कारी महातेजस्वी राजा दशरथजो इस पुरीको पालन करतेथे ॥ २७ ॥

तांसत्यनामांदृढतोरणार्गलांगृहैर्विचित्रैरुप
शोभितांशिवां ॥ पुरीमयोध्यांनृसहस्रसंकु
लांशशासवैशक्रसमोमहीपतिः ॥ २८ ॥

उस सत्य नाम वाली सुदृढ तोरण विशिष्ट अर्गल युक्त दिव्य विचित्र गृह शोभित कल्याणरूपा लोकाकीर्ण अयोध्या पुरीको राजादशरथ इन्द्रकी

समान पालन करतेथे ॥ २८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये बालकांडे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

अथ सप्तमःसर्गः ॥

तस्यामात्यागुणैरासन्निक्ष्वाकोःसुमहात्मनः॥
मंत्रज्ञाश्चेंगितज्ञाश्चनित्यंप्रियहितेरताः ॥ १ ॥

इक्ष्वाकु वंशीय नृपति महात्मा दशरथजीके प्यारे मंत्र देनेवाले और चेष्टाके जाननेवाले नित्यहितकारी ॥ १ ॥ शुद्ध और यशस्वी निरंतर राज कामसें तत्पर ऐसे आठ अमात्य अर्थात् मंत्रीथे यह सब जैसे पवित्रथे वैसेही राज कार्य्यमें नित्य लगेहुयेथे ॥ २ ॥ धृष्टि, जयन्त, विजय, सुराष्ट्र राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल और अर्थवित् सुमंत्र यही आठ अमात्य थे ॥ ३ ॥ ऋषिश्रेष्ठ वशिष्ठ और वामदेव यह राजाको यज्ञ कराया करतेथे, ऐसेही औरभी ऋषि मंत्रीका कार्य्य करतेथे ॥ ४ ॥ इनके सिवाय सुयज्ञ, जाबालि, कश्यप, गौतम बडी उमरवाले मार्कण्डेय व कात्यायन यह सब ऋषि लोगभी मंत्रीथे ॥ ५ ॥ राजाके पीढियोंके चले आये यह मंत्री सब ब्रह्मर्षियोंके साथ मिलितहो राजकार्यमें सहाय करते यह सब विद्वान् विनीत लज्जा शील और जितेन्द्रियथे ॥ ६ ॥ यह देखनेमें सुन्दर शास्त्रनिपुण बडे पराक्रमी व कीर्त्तिमान् राज काजमें सावधान जो कहैं सो करनेवालेथे ॥ ७ ॥ इनमें तेज, क्षमा, यश, भरपूरथा यह सब हँस मुखहो बात करतेथे क्रोध व दुष्ट मतिसे बाध्य होकर यह झूंठ नहीं बोलतेथे ॥ ८ ॥ वह आत्मा और अनात्माका सब विषय जानते निज पक्ष व शत्रु पक्षके जो कुछ कार्य्य करतेहैं, करदियेहैं, व करैंगे, दूतद्वारा यह सब जान लेतेथे ॥ ९ ॥ यह व्यवहारी कार्योंमें चतुरथे प्रथमही राजाने इन की परीक्षा कर लीथी यदि पुत्रभी अपराधी होतोभी यह लोग दंड देनेमें कसर नहीं करतेथे ॥ १० ॥ खजाना इकट्ठा करने और सैन्य संग्रह करनेमें यह लोग बडे यत्नवानथे निरपराध शत्रुकाभी बुरा चाहनेका इनका स्वभाव नहींथा ॥ ११ ॥ यह सबही उत्साहवाले वीर नीति शास्त्रके अनुष्ठान करने वाले पवित्र लोग जो देशमें वास करतेहै सदा उनकी रक्षा करते ॥ १२ ॥ यह सब मंत्री दोषीका दोष विचारके उसे दंडदे श्रा-

ह्मण क्षत्रियोंके प्रति हिंसाका परिचय न देकर राजाकोष पूर्ण करते थे ॥ १३ ॥ निर्मल बुद्धि सब एकमतावलम्बी मंत्रियोंके विचारसें कोईभी मिथ्यावादी उस पुरी व देशमें नहींथा ॥ १४ ॥ खोटे स्वभाववाला दुष्ट व पराई स्त्रीसे प्रीति करनेवाला खोटे व्रत वाला या कुप्रकृतिका पुरुष न हींथा नगरमें सब जगह शांति विराजमानथी ॥ १५ ॥ राजमंत्री गण सदा पवित्र वस्त्र पहिनते वह राजाका हित करनेके लिये सदा तत्पर रहते न्याय शास्त्रके अनुसार सदा काम करतेथे ॥ १६ ॥ वह गुरु जनोंके गुण ग्रहण करते और अपने विक्रमके प्रभावसें विख्यातथे दूसरे देशोंकी घटना इन्हें ज्ञात रहती और यह सब जगह अपनी बुद्धिमानीसें प्रसिद्ध-थे ॥ १७ ॥ यह नाना गुणोंसे सुपंडित तोथे परन्तु सत्व, रज, तम, इन तीन गुणोंसेभी हीन नहींथे यह जैसे सन्धि विग्रहमें निपुणथे व मेल मि-लापीभी वडेथे ॥ १८ ॥ इन लोगोंकी गूढ मंत्रणा शक्ति जैसी प्रबलथी ऐ-सेही सूक्ष्म बुद्धिभी थी यह नीति शास्त्रके जाननेवाले और सदा प्रियभा-षीथे ॥ १९ ॥ इस भांति पाप रहित राजा दशरथजी ऐसे गुणवान् मंत्रि-योंके साथ पृथ्वीका पालन करतेथे ॥ २० ॥ उन्होने दूतके मुखसे पर-राष्ट्रोंका तत्त्व जानकर धर्मानुसार प्रजा पालन पूर्वक अधर्मको त्याग दियाथा ॥ २१ ॥ वह तीनों लोकोंमें दाता प्रसिद्धथे युद्धोंमें अपनी प्र-तिज्ञा सत्य करतेथे इस भांति वह पृथ्वीको शासन करतेथे देवनायक जैसे देवलोकका शासन करतेहैं वैसेही उन्होंने जगत्में राज्य किया-था उन्होंने अधिक बलवान व समान शत्रुका मुख नहीं देखा उनके मित्र जैसे प्रबलथे आधीनके राजाभी वैसेही उनको नवतेथे और अधिक क्या कहैं उनका राज्य निष्कण्टक था ॥ २२ ॥ २३ ॥

तैर्मंत्रिभिर्मंत्रहितेनिविष्टैर्वृतोऽनुरक्तःकुशलैः
समर्थैः ॥ सपार्थिवोदीप्तिमवापयुक्तस्तेजोम
येर्गोभिरिवोदितोऽर्कः ॥ २४ ॥

वह किरण माला मंडित सूर्य देवकी समान परहितकारी अनुरागी सूक्ष्म दर्शी सामर्थ्य युक्त मंत्रियोंके साथ अति शोभा पातेथे॥२४॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० बालकाण्डे सप्तमःसर्गः ॥ ७ ॥

अथ अष्टमः सर्गः ।

तस्यचैवंप्रभावस्यधर्मज्ञस्यमहात्मनः ॥ सुतार्थंतप्यमानस्यनासीद्वंशकरःसुतः ॥ १ ॥

ऐसे प्रभाव शाली महात्मा धार्मिक दशरथ जीने पुत्रकी कामनाके अर्थ तपभी किया तौभी उनके वंशधर कुमार उत्पन्न नहीं हुआ ॥ १ ॥ एक समय यही चिन्ता करते२उन्होंने मनमें विचारा कि पुत्रार्थ अश्वमेध यज्ञका अनुष्ठान मैं क्यों नहीं करताहूं ॥ २ ॥ फिर वह बुद्धिमान् राजा दशरथजीने नीति कुशल मंत्रियोंके साथ यज्ञ करना चाहिये ऐसा दृढ निश्चय किया ॥ ३ ॥ तब श्रेष्ठ मंत्री सुमन्त्रसे संभाषण करके कहा कि हे सुमन्त्र तुम गुरुजी और सब पुरोहितोंको मेरे पास लाओ ॥ ४ ॥ तब सुन्तेही शीघ्र चलने वाले सुमंत्र शीघ्र जाकर वेद परायण गुरु वशिष्ठजी पुरोहितोंको राजाके पास लाये ॥ ५ ॥ तब सुयज्ञ वामदेव जावालि कश्यप, वशिष्ठ और अन्य ऋषि श्रेष्ठ गण वहां उपस्थित हुये तब महात्मा दशरथजीने उनकी पूजा करके इस प्रकारके धर्म युक्त मनोहर वचन कहे ॥ ६ ॥ ७ ॥ मैं पुत्रकी कामना करताहूं मेरे अंतःकरणमें सुखका लेश मात्रभी नहीं अतएव मैं पुत्रके लिये अश्वमेध यज्ञ करनेकी वासना करताहूं ॥ ८ ॥ मैं शास्त्रके अनुसार कार्य्य करना चाहताहूं अब आप लोग यह बात बतलाइये कि किस प्रकार मेरी मनो वांछा पूर्ण होगी ॥ ९ ॥ राजाके मुखसे यह बात सुनकर वशिष्ठादि मुनिगण राजाको वारंवार धन्यवाद व साधुवाद देनेलगे ॥ १० ॥ उन्होंने परम प्रीति युक्तहो राजासे कहा कि यज्ञकी सब सामग्री मगाकर यज्ञका घोडा छोडा जावे ॥ ११ ॥ सरयूके उत्तर किनारे यज्ञ भूमि बने हे पार्थिव हम कहते हैं कि इस अनुष्ठानके करनेसे आपके पुत्र होंगे ॥ १२ ॥ जब आपकी बुद्धि धर्ममें प्रवृत्त हुईहै तो अवश्यही शुभ फल होगा ब्राह्मणोंकी यह वार्त्ता सुन राजा अति सन्तुष्ट हुये ॥ १३ ॥ तदनन्तर हर्ष विकसित नेत्रोंसे मंत्रियोंको सम्बोधन कर कहा आप गुरु देवकी आज्ञासे यज्ञका प्रयोजनीय सामान इकट्ठाकरैं ॥ १४ ॥ अच्छे रक्षकोंसे रक्षित व उपाध्यायके

सहित अच्छा समर्थ घोडा छोडा जावे सरयूके तीर यज्ञ भूमि बनाई जावै और कल्प तथा विधिके अनुसार शान्तिकी कल्पना की जाय क्योंकि प्रत्येक राजा इस यज्ञको नहीं कर सक्ते ॥ १५ ॥ १६ ॥ इस यज्ञमें बहुतसें विघ्नोंके होनेकी सम्भावनाहै विशेषतः इसको जानकर ब्रह्मराक्षस इसमें छिद्र ढुंढाकरते हैं॥१७॥विधि विहीन यज्ञ करनेसे यज्ञ कर्त्ताका नाश होजाताहै अतएव ऐसा उपाय करना चाहिये कि यज्ञका कार्य्य विधि पूर्वक हो जाय मंत्रियोंने जो आज्ञा महाराज कहके राजाज्ञा शिरोधारकी ॥ १८ ॥ १९ ॥ नरनाथका वाक्य श्रवण करके धर्मज्ञ द्विजगण इन्हे आशीर्वाद देने लगे ॥ २० ॥ अनन्तर विप्र मंडली उनकी आज्ञाले अपने अपने आश्रमको गई राजा उनको विदाकर सचिवोंसे बोले॥२१ ॥ ऋत्विजोंने जैसी आज्ञादीहै यज्ञके अर्थ वैसोही सामग्रीका विधान करो राजोंमें सिंह समान राजा दशरथजी उन आये हुए मंत्रियोंसे यह वचन कहकर ॥ २२ ॥ उनको विदादे बुद्धिमान राजा अपने रनिवासको चले गये और वहां जाकर अपनी हृदयको आनन्द देने वाली रानियोंसे ॥२३॥

उवाचदीक्षांविशतयक्ष्येहंसुतकारणात् ॥ ता
सांतेनातिकांतेनवचनेनसुवर्चसाम् ॥ २४ ॥
मुखपद्मान्यशोभंतपद्मानीवहिमात्यये ॥ २५ ॥

यह वचन बोले कि मैं पुत्रकी कामनासे यज्ञ करूंगा तुमभी इस कार्यमें दृढ निश्चय हो वे रानियें राजा दशरथके ऐसे मनोहर वचन श्रवण कर ॥ २४ ॥ वसन्तकालमें कमलिनी जैसे शोभाको प्राप्त होतीहै वैसेही उनका मुख कमल खिलगया ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे आ०बा०अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ।

एतच्छ्रुत्वारहःसूतोराजानमिदमब्रवीत् ॥ श्रू
यतांतत्पुरावृत्तंपुराणेचमयाश्रुतम् ॥ १ ॥

राजा यज्ञ निश्चय करेंगे यह जानकर सुमन्त्रने उनसे अकेलेमें कहा, महाराज मैंने इस यज्ञके विषयमें पुराणोंमें जो कुछ सुनाहै वह सुनिये॥१॥

सन्तानके अर्थ यज्ञकरना ऋषियोंका मतहै परंतु मैंने इसमें कुछ विशेष सुनाहै पूर्वकालमें भगवान सनत्कुमारजीने ऋषियोंके निकटआयके पुत्रउत्पत्तिके विषयमें यह कथा कहीथी कि महर्षि कश्यपजीके विभाण्ड नामक एकपुत्रहै ॥ २ ॥ ३ ॥ उनके पुत्र ऋष्यशृङ्ग नाम वाले होंगे वह पिताके यत्नसे बड़े होकर वनवासी की भांति काल व्यतीत करैंगे ॥४॥ उन ब्राह्मणश्रेष्ठको पिताकी आज्ञा पालन करनेके सिवाय और कुछ ज्ञाननहीं होगा वह महात्मा दो प्रकारका ब्रह्मचर्य्य करैंगे ॥ ५ ॥ यह बात द्विजाति गण सदा कहतेहैं और यह लोकप्रसिद्ध वार्त्ताहै इस प्रकारसे अग्निकी परिचर्या और पितृसेवामें ऋष्यशृङ्गको कुछ काल बीतैगा उसी समय रोम पाद नाम एक बडा प्रतापी राजा ॥ ६ ॥७॥ अंगदेशमें प्रसिद्ध महाबलशाली होगा इस राजाके दोषसे अत्यन्त राज्यमें दारुण सर्व लोकोंको भय देनेवाली ॥ ८ ॥ घोर अनावृष्टि होगी उससे सबलोक व्याकुल होजांयगे अनावृष्टिसे राजा अति चिन्तितहो ॥ ९ ॥ शास्त्रवेत्ता विप्रोंको बुलाकर कहैंगा आप लोकाचार श्रुति विहित कार्य्यों को जानतेहैं ॥ १० ॥ अतएव इस मेरे पापका जो प्रायश्चित्तहो सो मुझे बताइये इस रीतिसें उस राजाकी बात सुनकर वे श्रेष्ठ ब्राह्मण ॥ ११ ॥ वे सब वेद पारग ब्राह्मण कहैंगे हे महीपाल ! आप विभाण्डकके पुत्रको किसी उपायसें यहां लिवालाइये ॥ १२ ॥ हेराजन् उन वेद पारग विभाण्डक मुनिके पुत्र ऋष्य शृंगको लाय विधि पूर्वक सतकार कर ॥ १३ ॥ उनको अपनी कन्या शान्ता विधि पूर्वक देदीजिये उनकी बात सुन राजाको चिन्ता होगी ॥ १४ ॥ कि किस उपायसे उस वीर्यवान् ऋषिको यहां बुलाऊं उसको यह चिन्ता प्रबल होजायगी ॥ १५ ॥ तदनन्तर मंत्रियों से सलाहकरकै पुरोहित व और २ सेवकोंको वहां जानेकी आज्ञा देंगे ॥१६॥ वह लोग राजाके वचन सुन व्यथितहो और माथा नवा हम लोग महर्षि विभाण्डकके डरसे ऋष्यशृंगके पास नहीं जा सक्ते यह कह राजाकी बहुत विनती करैंगे ॥ १७ ॥ फिर वे सब शोच कर इसका उपाय कहैंगे कि हम ऋष्यशृंगका यहां ले आवेंगे. हमने जो उपाय स्थिर कियाहै उस्से कोई दोषभी नहीं होगा ॥ १८ ॥ तदनन्तर अंगनाथने सुन्दर सुन्दर वे-

इया गणकी सहायसें ऋष्यशृंगको अपने देशमें ला शास्त्रानुसार शान्ता अपनी कन्याको उन्हें विवाहकर अनावृष्टि दूरकराई ॥ १९ ॥ आपके जामाता ऋष्यशृंग आपकी पुत्र कामना पूर्णकरेंगे सनतकुमार जीने जो कहाथा. वही मैंने आपको सुनाया ॥ २० ॥

अथहृष्टोदशरथःसुमंत्रंप्रत्यभाषत ॥ यथर्ष्य
शृंगस्त्वानीतोयेनोपायेनसोच्यताम् ॥ २१ ॥

राजा दशरथ जी सुमन्त्रकी सलाहसे सन्तुष्टहो उससे कहने लगे हेसूत जैसे ऋष्यशृंग आये तुम वही उपाय कहो ॥ २१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः ।

सुमंत्रश्चोदितोराज्ञाप्रोवाचेदंवचस्तदा ॥ यथ
र्ष्यशृंगस्त्वानीतोयेनोपायेनमंत्रिभिः ॥ त
न्मेनिगदितंसर्वंशृणुमेमंत्रिभिःसह ॥ १ ॥

अनंतर राजा दशरथजीने हर्ष चित्तहो सुमन्त्रसे कहा. कि जिस प्रकार अंगराज ऋष्यशृंगको लायेथे वह तुम मुझसें कहो सुमंत्र बोलेकि जिस भांति राजालोमपाद ऋष्यशृंगको अपने राज्यमे लायेथे आप मंत्रियों के सहित उसे श्रवण कीजिये ॥ १ ॥ राजा लोमपादकी बात सुनके उनके कुल पुरोहित और मंत्री उनसें कहने लगे. कि ऋष्यशृंगको लानेको हमने जो उपाय ठीक कियाहै वह कभी विफल नहीं होगा ॥२॥ वह मुनीन्द्र वेदाध्ययन संपन्न व वनमें रहतेहैं वह स्त्रीसहवासके सुख और विषयको नहीं जानते ॥ ३ ॥ हमलोग चित्तको उन्माद करनेवाले लोभनीय पदार्थोंके द्वारा उनको यहां ले आनेमें समर्थ होंगे सो आप जल्दी उनको इकट्ठा कीजिये ॥ ४ ॥ परम सुंदर वेश्यायें वहां शृंगार करके जावें, वह बहुतसे उपाय करके उन्हें यहां ले आवेंगी ॥ ५ ॥ राजाने यह बात श्रवणकर पुरोहितोंपर इसकार्यका भार सौंपा पुरोहितोंके सम्मतहोनेसें मंत्री गण राजीहो इसकार्य का सामान करने लगे ॥ ६ ॥ वाराङ्गनाओंने मंत्रियोंकी आज्ञासे वनमें प्रवेशकर महर्षिके आश्रम-

के निकट रह उनके देखने का यत्न करने लगीं वह ऋषिं कुमार अति-शय धीर स्वभाव नित्य आश्रम में रहते और पिताके प्यारेथे इसकार-ण कभी आश्रम छोड कहीं न जातेथे ॥७॥८॥ जन्मावधि स्त्री पुरुष या वहां का कोयी जन्तु नगरका अथवा राष्ट्रका मनुष्य मात्र इन्होंने नहींदेखाथा॥९॥ एक दिन वह विभांडके पुत्र यहां अपनी इच्छासें घूमते हुये चले आये जहां यह वारविलासिनियें विराजतीथीं ॥ १० ॥ उनको आता हुआ देख गणिकायें गीत गाने लगीं और ऋषि पुत्रके पास आकर बोलीं हे ब्राह्मण आप कौनहैं ? क्याकरतेहैं ? और इस वनमें इकले घूमनेका क्या कारण है ? यह हमको कहो ॥११॥१२॥ तब ऋषिकुमार उन अनदेखी कामरूप अंगनाओंको वनमें देख प्रीति सहित अपना नाम धाम बतानेको अग्रसर हुये ॥ १३ ॥ उन्होंने कहा मै विभाण्डक मुनिका औरस पुत्रहूं नाम ऋ-ष्यशृङ्गहै तप करना जो हमारा कार्य्यहै वोह तौ लोकमें प्रसिद्धहै ॥१४॥ हे चित्र दर्शनों यहांसे निकटही हमारा आश्रमहै चलो वहाँ मैं तुम्हारा य-था विधि आदर सन्मान करूंगा ॥ १५ ॥ ऋषि कुमारके कहे जानेपर वह सब वेश्या उनके आश्रमको देखनेकी इच्छा करती हुईं और फिर वे सब वेश्या लोग उनके आश्रममें गईं ॥ १६ ॥ उनके पहुँचतेही यह अर्घ्य यह पाद्य, यह फल मूल, इत्यादि उपचार देकर ऋषिनंदनने अतिथि सत्कार किया ॥ १७ ॥ उन्होंने सत्कार पाकर विभाण्डकके भयसे भी-तहो शीघ्र वहांसें लौटना चाहा ॥ १८ ॥ उन्होंने फिरनेके समय हेद्विज! आपभी हमारे यह मीठे फल अंगीकार कीजिये आपका मंगल होगा॥१९॥ फिर उन सबने बहुत प्रफुल्ल मनसे ऋषि कुमारको छातीसें लगा उनको अनेक प्रकारके स्वाद युक्त लड्डू इत्यादि खानेके पदार्थ दिये ॥ २० ॥ वह सब खाकर ऋषि कुमारने विचारा कि ऐसे सुन्दर मीठे फल वन वा-सियोंने कभी नहीं खाये ॥२१ ॥ तदनन्तर महर्षि विभाण्डकके भयसे भीत हो वह वाराङ्गनायें किसी प्रकारका व्रत कह ऋषि कुमारसे विदाले उनके आश्रमसे चलीं आईं ॥ २२ ॥ उनके चले जाने पर कश्यप पुत्र ऋष्यशृं-गका हृदय उनके विरहसे अति व्याकुल हुआ ॥ २३ ॥ अनन्तर चिंता करते करते पहिले दिन जहां वह सब स्त्रियें मिलीथीं दूसरे दिन फिर वहीं आये ॥ २४ ॥ मन मुग्ध करनेवाली शृंगार किये हुये वह स्त्रियें इनको

देखतेही अति सन्तुष्ट हुईं ॥ २५ ॥ और आगे बढकर कहा हे सौम्य ! यहांसे कुछ दूर हमारा आश्रमहै आप वहां चलिये ॥ २६ ॥ हमारे आश्रममें विचित्र कन्द मूल फल और भोजन यहांसे अधिकहैं वहां यहांके अपेक्षासे आपका अतिथि सत्कार कुछ विशेष होगा ॥ २७ ॥ उनकी हृदयानन्ददायिनी वात श्रवण कर ऋषि पुत्र उसी समय वहां जानेको सम्मत हुये, और वार नारियें उनको लेकर नगरमें चलीं आईं ॥ २८ ॥ इस भांति उन ऋषि कुमारके रोम पादके राज्यमें पहुँचतेही प्रजा आनंदमें मग्न होगई और शचीनाथभी अनर्गल वृष्टि करने लगे ॥ २९ ॥ राजाने वर्षाके साथ ऋषिकुमारको आता देख सविनय आगे वढ उनके चरणोंमें वन्दनाकी ॥ ३० ॥ फिर उनको यथा विधि अर्घ्य देनेपर छलसे लाये गये हैं पीछे यह जानकर कुपित नहोजाँय इस कारण उनकी प्रसन्नताके हेतु प्रार्थना करने लगे ॥ ३१ ॥ अनन्तर इन्हें रनिवासमें लेजाने और कन्या शान्ताको यथाविधि समर्प्पण कर देनेपर वह अति सन्तुष्ट हुये ॥ ३२ ॥

एवंसंन्यवसत्तत्रसर्वकामैःसुपूजितः ॥ ऋष्यशृं
गोमहातेजाःशांतयासहभार्यया ॥ ३३ ॥

हे नरेन्द्र इस भांति महातेजा ऋष्यशृङ्ग सर्व काम पूर्णहो सह धर्मिणी शान्ताके सहित वहां रहने लगे ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये वालकाण्डे दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ॥

भूयएवहिराजेंद्रशृणुमेवचनंहितम् ॥
यथासदेवप्रवरःकथयामासबुद्धिमान् ॥ १ ॥

हे राजेन्द्र ! देवप्रवर धीमान् सनत्कुमारजीने जो कहाथा आप फिर मुझसें वह हित कर वाक्य श्रवण कीजिये ॥ १ ॥ उन्होंने कहाथा कि इक्ष्वाकु वंशमें धर्मात्मा सत्यवादी श्रीमान् दशरथ नाम एक राजा जन्म लेंगे ॥ २ ॥ अंगराजसें उनकी मित्रता होगी, उन्ही दशरथके शान्ता नाम एक कन्या उत्पन्न होगी ॥ ३ ॥

फिर अंग राजाके पुत्र रोमपादसे राजा दशरथकी मित्रता होगी एक समय यशस्वी अवधनाथ अंगनाथके पास जाकर कहैंगे ॥ ४ ॥ किहे राजन् मेरे सन्तान नहींहै इसलिये आपके जामाता ऋष्यशृङ्गको लेजाकर यज्ञ किया चाहताहूं आप अनुमति दीजिये जिस्से मेरे वंशकी रक्षाहो ॥ ५ ॥ सुहृद् वाक्य श्रवण करके अंगराज मनमें शोच समझ स्त्रीपुत्र सहित ऋष्यशृङ्गको उनके समर्पण करदेंगे ॥ ६ ॥ नरनाथ प्रसन्न मनसें उनको ले चिन्तारहितहो पुत्रेष्टि यज्ञका अनुष्ठान करैंगे ॥ ७ ॥ और सन्तानके द्वारा यशकी इच्छा करने वाले धर्मवेत्ता राजा दशरथजी हाथ जोडकर उन ऋष्यशृङ्ग मुनिको यज्ञमें वरण करैंगे ॥ ८ ॥ पुत्रार्थ और स्वर्ग प्राप्तिके निमित्तसें जो दशरथ राजाको यज्ञकी कामना होगी वह कामना विप्रवर ऋष्यशृङ्गसें पूर्ण होगी ॥ ९ ॥ उस्सेही त्रिलोकविख्यात अमिततेज वंशधर सर्व प्राणी मात्रोंमें प्रसिद्ध ऐसे चार पुत्र उत्पन्न होंगे ॥ ॥ १० ॥ इस प्रकारसे वह देवप्रधान सनत्कुमार पूर्वकालमें सत्ययुगमें ऋषियोंसें मिलनेपर यही बोलेथे ॥ ११ ॥ इसलिये आप अब सबल वाहनोंसे वेष्टितहो बहुत आदर सन्मानसें उन महर्षिजीको ले आइये ॥ १२॥ सुमन्त्रके वचन सुन राजा दशरथ अतिशय प्रफुल्ल हुये और सुमन्त्रका कथन सुन वसिष्ठजी सेभीपूछकर ॥ १३ ॥ उनसें अनुमतिले मंत्री और अंतःपुरचारियोंके सहित अंगराज्यमें रानी सहित गये जाते जाते वन और नदियोंको अतिक्रम करने लगे ॥ १४ ॥ तदनन्तर जहां वह मुनिपुंगव रहतेथे वहां पहुँचे और रोमपादके समीप रहनेवाले उन ब्राह्मण श्रेष्ठको प्राप्तहो ॥ १५ ॥ वहां दिपते हुये अनलकी समान लोमपादके निकट वर्ती उन ऋषिको दर्शन कर यथाविधि अर्चनाकी ॥ १६ ॥ फिर रोमपाद राजा दशरथ महराजकी मित्रताके कारणसें अत्यन्त सन्तुष्ट अंतः करण होकर बुद्धिमान उन विभाण्डक ऋषिके पुत्र ऋष्यशृङ्ग महर्षिको ॥ १७ ॥ परस्परकी मित्रताका संबंध कहा तब ऋष्यशृङ्ग ऋषिनेभी उन दशरथजीका यथोचित सत्कार किया इस प्रकार राजा दशरथ रोमपादसें सत्कृतहो ॥ १८ ॥ सात आठ दिन पर्य्यंत एकत्र वास करके रोमपाद राजासें बोलेकि हेमित्र, नरनाथ रोमपाद! आप-

की शान्ता नामक कन्याहै उसको भर्त्ता सहित दीजिये ॥ १९ ॥ हे राजन्! एक कार्य्य उपस्थितहुआहै अर्थात् मुझे यज्ञ करनाहै इसवास्ते स्वामी सहित शान्ताको मेरे यहां भेजदीजिये मित्रका अभिप्राय समझ अंगराज इस बातमें सम्मतहुये ॥ २० ॥ शान्ता समेत जामाताको मित्रके गृहमें जानेको कहा ऋष्यशृङ्गनेभी इस विषयको स्वीकार किया ॥ २१ ॥ अनन्तर लोमपादके वचन मान ऋषिप्रधान ऋष्यशृङ्ग सह धर्मिणीको संगले अयोध्याको गये जानेके समय दोनो मित्र हाथ पकड़ एक दूसरेको आलिंगन कर ॥ २२ ॥ फिर दशरथजी और बलवान रोमपाद बडे आनन्दको प्राप्त हुए फिर कौशल राजमित्रसे पूछकर अयोध्याको चले॥२३॥२४॥फिर राजाने अयोध्यामें शीघ्रगामी दूतको खबर करनेके लिये भेजा उसने कहाकि नगर को भली भांति सजाओ ॥ २५ ॥ धूपजलाओ छिडकाव करो पताकाओंको लगाओ इस प्रकार नगर सजाओ पुरवासियोंने यह सुनकर कि राजा आतेहैं प्रसन्नहो भली प्रकार नगरको सजादिया ॥ २६ ॥ तदनन्तर नृपति सजी सजाई राजधानीमें प्रवेश करते हुये ॥ २७ ॥ उस समय सबने शंख और दुन्दुभी बजाकर उन ऋषिश्रेष्ठको आगे जाकर लिया और उनको पाकर अपार आनन्द अनुभव करने लगे जैसे सुरराज वामन देवको स्वर्गमें लेगयेथे उस समय जैसी उनकी शोभा हुईथी इन्द्रके सहकारी नरेन्द्र भी ऋष्यशृङ्गके साथ ऐसेही शोभित हुये ॥ २८ ॥ अनन्तर स्त्रीसहित ऋष्यशृङ्गको रनवासमें लेजाकर राजानें भली भांतिसें उनकी पूजाकी और उनके आनेसें अपनेको कृतकृत्य जाना ॥२९॥ सब रनवास पतिके संग आई हुई बडे नेत्र वाली शान्ताको देख प्रेमसें आनन्द प्राप्तहुआ३०

पूज्यमाना तु ताभिःसाराज्ञाचैवविशेषतः ॥
उवासतत्रसुखिताकंचित्कालंसहद्विजा ॥ ३१ ॥

नृप नंदिनी शान्ता नृपति दशरथ और अन्यान्य अंतःपुरवासिनीयोंके प्रीतिसें यत्नकिये जाकर पति सहित वहां परमसुखसें कुछदिन बसी ॥ ॥ ३१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बालकाण्डे एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः ॥

ततःकालेबहुतिथेकस्मिंश्चित्सुमनोहरे ॥
वसंतेसमनुप्राप्तेराज्ञोयष्टुंमनोभवत् ॥ १ ॥

तदनन्तर बहुतदिन व्यतीत होनेपर मनोरम वसन्तकाल आपहुँचा और तभी राजा दशरथने अपना यज्ञ करना विचारा ॥ १ ॥ उस समय उन्हीने महर्षि ऋष्यशृङ्गके चरण कमलोंकी वंदनाकी और कुलरक्षा और सन्तानकी कामनासें उनको यज्ञमें वरण किया ॥ २ ॥ यज्ञ कार्यमें वृती होकर उन्होंने राजाको आज्ञादी कि यज्ञका सब सामान होकर घोडा छोडा जाय ॥ ३ ॥ सरयूके उत्तर तीर यज्ञ भूमि बनाई जाय तब राजाने सुमन्त्रको वेदके जान्नेवाले ब्राह्मणोंके ॥ ४ ॥ लानेकी आज्ञादी सुमन्त्रने राजाकी आज्ञासे सुयज्ञ वामदेव जाबालि कश्यप ॥ ५ ॥ वशिष्ठ और भी यज्ञ करानेवाले ब्राह्मणोंको शीघ्र चलने वाले सुमन्त्र जल्दीसें जाकर बुलालाये ॥ ६ ॥ जब वे सम्पूर्ण वेदके जान्नेवाले ब्राह्मण आगये तब धर्मात्मा राजा दशरथ पूजनकर ॥ ७ ॥ धर्मानुगत मधुर वाक्य कहने लगे हे विप्रगण! मैं पुत्रकी कामनासे बडा व्याकुलहूं और मुझे कुछ सुखनहींहै ॥ ८ ॥ सो मैंने पुत्रार्थ अश्वमेध यज्ञ करना विचाराहै सो उसको हयमेधके कर्मानुसार करूंगा ॥ ९ ॥ मुझे विश्वास है कि इन ऋष्यशृंगके प्रभावसे मेरी मनःकामना सिद्ध होगी, राजाके वचन सुन ब्राह्मण बहुत अच्छा कहने लगे ॥ १० ॥ राजाके वचन सुन वशिष्ठादि सब वह विभाण्डक जीके पुत्रको आगे करके कहने लगे ॥ ११ ॥ आप यज्ञका सामान कीजिये घोड़ा छोड़िये सरयूके उत्तरतीर यज्ञभूमि बनवाइये ॥ १२ ॥ जब ऐसे धर्मानुष्ठान कर नेमें आपकी प्रवृत्ति हुईहै तब भले प्रकारसें इस कार्यका अनुष्ठान होने पर ॥ ॥ १३ ॥ विपुल विक्रम शाली चार पुत्र आपके होंगे तब राजेन्द्र ब्राह्मणोंके यह वाक्य श्रवण कर बहुत प्रसन्न हुये और प्रसन्नहो मंत्रियोंसें यह वचन बोले ॥ १४ ॥ तुम सब इन गुरु देवोंका वचन सुन जल्दीसे यज्ञकी सब सामग्री लाओ और होशियार पुरुष यज्ञीय घोडेकी रक्षामें नियुक्तहों श्रेष्ठ

यज्ञ करने वाले ऋषि मंत्रपूत करके घोडेको छोडें ॥ १५ ॥ सरयूके उत्तर भागमें यज्ञभूमि बनाओ और विधिपूर्वक शान्ति करो देखो सब राजाओंको ॥ १६ ॥ यह यज्ञ करनेका अधिकार है परंतु यह सरलतासे नहीं होता विशेष करके इस कार्य्यमें अनेक विघ्न व बाधायें पड़ जातीहैं॥ १७ ॥ ब्रह्मराक्षस विघ्न करने को इसमें छिद्र ढूंढा करते हैं विधिको उलंघन करके यज्ञ करनेसें यज्ञकर्ताका नाशहोजाताहै ॥ १८ ॥ अतएव जिस्से मेरा यह यज्ञ विधिपूर्वक पूर्णहोजाय तुम इस विषयमें सावधान रहना क्योंकि तुमलोग विधि पूर्वक यज्ञ करने करानेमें समर्थहो ॥ १९ ॥ मंत्रीगण राजाज्ञा सुन जो आज्ञा महाराज कह उनके वाक्यानुसार कार्य्य करनेमें प्रवृत्त हुये तदनन्तर विप्रवर्ग धर्मात्मा राजाकी स्तुतिकरके उनसें विदा मांग अपने २ आश्रमोंको लौटे ॥ २० ॥

ततोद्विजास्तेधर्मज्ञमस्तुवन्पार्थिवर्षभम् ॥
अनुज्ञातास्ततःसर्वेपुनर्जग्मुर्यथागतम् ॥ २१ ॥

ब्राह्मणोंके जाने पर मंत्रियोंको विदादे महा बुद्धिमान् राजाने अपने रनवासको गमन किया ॥ २१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये वालकांडे द्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः ॥

पुनःप्राप्तेवसंतेतुपूर्णःसंवत्सरोभवत् ॥
प्रसवार्थंततोयष्टुंहयमेनेनवीर्यवान् ॥ १ ॥

देखते देखते वर्ष वीतने पर राजा दशरथ जीभी संतानके निमित्त यज्ञकरनेको उद्यत हुए ॥ १ ॥ तव महीपालने ब्राह्मणों में श्रेष्ठ वशिष्ठ जीको यथा विधि प्रणाम और पूजा कर पुत्रके निमित्त कहा ॥ २ ॥ हे ब्रह्मन् मुनिश्रेष्ठ आप शास्त्रानुसार मेरा यज्ञ कार्य्य समापन कीजिये आपसें यही प्रार्थना है कि ऐसा उपाय कीजिये कि जिस्से यज्ञमें कोई विघ्न नहो ॥ ३ ॥ आप हमारे हितकारी बन्धु और परम गुरुहैं अतएव इस उपस्थित कार्य्यमें सब बोझ आपकोही ग्रहण करना पडेगा ॥४॥ राजाकी बात सुन वशिष्ठजी बोले कि आपकी प्रार्थना अवश्य पूरी होगी मैं यह

सब करूंगा॥५॥तदनन्तर उन्होंने यज्ञ कार्य कुशल वृद्ध सुधार्मिक स्थापत्य कर्ममें निष्ठ ब्राह्मणोंको ॥ ६ ॥ तथा शिल्पकर भृत्य तक्ष्ण कूपादि खोदने वाला तथा ज्योतिषी तथा चर्मकारादि नट नर्त्तक॥७॥और पवित्र शास्त्रज्ञ बहुत पढे पुरुषोंको बुलाकर कहाकि तुम राजाकी आज्ञासे यज्ञ कार्यमें नियुक्तहो ॥ ८ ॥ शिल्पियोंसे कहा कि जल्दीसे सहस्रों सो ईंट लाओ उनसें राजाओंके रहने लायक घर बना उन्हें बहुत सी वस्तुओंसे सजाओ ॥ ९ ॥ ब्राह्मणोंके लिये नाना प्रकारके खाने पीनेकी वस्तुओंसे भरे पुरे असंख्य आश्रम बनाओ ॥ १० ॥ पुरवासी व राज्य निवासियोंके व अनेक देशोंसे आयेहुये नरनाथोंके निमित्त पृथक् पृथक् स्थान बनाओ ॥ ११ ॥ अश्वशाला, हस्तिशाला, शयनागार व विदेशी योद्धाओंके रहनेकेस्थान प्रस्तुतकरो ॥१२॥ रहनेके स्थानोंमें सब आवश्यक वस्तु तैयार रहै इस यज्ञमें औरभी बहुत मनुष्य आवैंगे उनके वास्तेभी सजे सजाये घर निर्माण करो ॥ १३ ॥ शास्त्रकी विधिसे परलोक प्रयोजनकी बुद्धिसें आदर पूर्वक योगपात्रको दान देना उत्सव मात्रकी बुद्धिसे व आदरतासें अनिच्छुकको दान न देना ऐसा करनाकि जिस्से सब यही जानेकि हमारा उचित सत्कार हुआ ॥ १४ ॥ और कामक्रोधके वशमें होकर किसीका निरादर न करना व जो पुरुष थवई आदिके कर्ममें लगेहों ॥ १५ ॥ तिनकी पूजाभी क्रमसे कीजाय और सबका आदर भोजनादिसे भली भांति किया जाय ॥ १६ ॥ जो अच्छी तरह चित्त लगाय काम करतेहैं उनका कोई काम नहीं बिगडता इस्से तुम प्रीतिसें काम करो ॥ १७ ॥ तब सबआनकर वशिष्ठजीसें बोले आपजो आज्ञा करते हैं उसमें कुछ कसर नहीं की जायगी॥१८॥हम सब जैसा आपने कहाहै विधिसे इन सब कार्योंके करनेको तैयारहैं तदनन्तर सुमन्तको बुला वशिष्ठजीने कहा॥१९॥कि पृथ्वीपर जितने धार्मिक नृपति ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र बसतेहैं उन सबको इस कार्यमें विशेष आदर सन्मानसे न्योताभेजो॥२०॥विशेष करके बली मिथिलाधिपति व महामति सत्यवादी राजा जनकको तुम जाकर स्वयं न्यौता देआओ ॥ २१ ॥ वह हमारे प्राचीन मित्रहैं इसी कारण उनको सबसे आगे आदर पूर्वक न्योतनेका प्र-

योजनहै ॥ २२ ॥ फिर विशुद्ध स्वभाव प्रियवादी देवोपम काशीराजको भी तुम्हीं जाकर न्योत आओ ॥ २३ ॥ वहां से फिर महाराजके श्वशुर परम धार्मिक वृद्ध पुत्र सहित कैकय राजको निमंत्रणदो ॥ २४ ॥ फिर राजाके परममित्र महा धनुर्द्धारी अङ्गाधिप लोमपादको न्यौतादो॥२५॥फिर कौशलराज भानुमान् और सर्व शास्त्र विशारद शूर मगधराजाको बुलावा दो॥२६॥अनेक प्रकारके ज्ञाता परम उदार पुरुष श्रेष्ठ राजाओंको राजा दशरथकी आज्ञासें आदर पूर्वक लाओ और दक्षिण देशके रहनेवाले सम्पूर्ण राजाओंको बुलाओ ॥२७॥फिर पूर्वदेश,व सिन्धु. सौवीरदेश, सौराष्ट्र और दाक्षिणात्यके राजाओं कोभी वहां जाके नौता देआओ॥२८॥अधिकक्या कहूं भूमण्डल में जितने आत्मीयहैं तुम उनको अनुचर और भाई बन्धुओं समेत जल्दी बुलाओ॥२९॥राजाकी आज्ञासें इन सबके पास दूत भेज दो ॥ ३० ॥ वशिष्ठ जीके वाक्यसुन सुमन्त जीने शीघ्रगामी उपयुक्त दूत राजाओंको बुलानेके लिये भेजे ॥ ३१ ॥ और मुनि जीके वचनानुसार आपभी बुद्धिमान सुमन्त शीघ्र बहुत नरनाथोंको बुलानेके लिये गये ॥३२॥ कर्मकार नौकरों चाकरोंने वशिष्ठ जीके पास आकर वह सब यज्ञके कार्य उन्होंने जो कियेथे सबकहे-॥३३॥ तदनन्तर विप्रवरने प्रसन्नहो उनसे कहाकि तुम किसीको भी कोयी वस्तु निरादर व खेलके साथ नदेना ॥३४॥क्योंकि अवज्ञा पूर्वक जो दान दियाजाताहै तो दाता उस्से निःसंदेह नष्ट होताहै अनन्तर दो एकदिनके बीचमें ही राजालोग आने लगे३५॥ राजा दशरथजीकी भेंटके लिये अनगिन्त रत्नभार लेकर न्योते हुए राजा आये तब वशिष्ठ जी प्रफुल्लहो नरनाथसे कहनेलगे ॥ ३६ ॥ हे राजन्! आपकी आज्ञासे सब निर्मंत्रित राजा लोग आयेहैं मैंने उन सबका उचित सन्मान करदियाहै ॥ ३७ ॥ नौकर चाकरों ने सब यज्ञकी सामग्री प्रस्तुत कर रक्खीहै अतएव अब आप यज्ञमें दीक्षित होनेके लिये यज्ञस्थलमें गमन कीजिये ॥ ३८॥ हे राजेन्द्र! यज्ञस्थल सब प्रकारसे अभीष्ट वस्तुओंसे भरापुरा है देखनेसें बोध होगा कि मानो मनकी कल्पनाही इनकी रचने वालीहैं प्रत्यक्ष देखने पर आपको विदित हो जायगा ॥ ३९ ॥ अनन्तर वसिष्ठ और ऋष्यशृङ्गके वचनसें शुभनक्षत्रयुक्त दिनमें राजानें

यज्ञ स्थलमें गमन किया ॥ ४० ॥ इसके उपरान्त वसिष्ठादिऋषि गणोंने ऋष्यशृंगको आगे करके यज्ञ आरम्भ किया ॥ ४१ ॥

यज्ञवाटंगताःसर्वेयथाशास्त्रंयथाविधि ॥
श्रीमांश्चसहपत्नीभीराजदीक्षामुपाविशत ॥४२॥

सबविधान शास्त्रानुसार होताथा इसभांति नरनाथ दशरथ रानियोंके सहित यज्ञमें दीक्षितहुये ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०त्रयोदशःसर्गः१३

चतुर्दशः सर्गः ॥

अथसंवत्सरेपूर्णेतस्मिन्प्राप्तेतुरंगमे ॥
सरय्वाश्चोत्तरेतीरेराज्ञोयज्ञोभ्यवर्तत ॥ १ ॥

अनन्तर संवत्सर वीत गया तब यज्ञका घोडा घूमकरआया तब सरयूके उत्तर किनारेके भागमें यज्ञ होनेलगा महात्मा दशरथजी महायज्ञमें श्रेष्ठ ब्राह्मण ऋष्यशृंगको आगे करके यज्ञकरने लगे ॥ १ ॥ वेदपाठी व्रतीगण यथाविधि और मीमांसादिके अनुसार यथाकाल अनुसरण करके कर्म करनेलगे ॥२॥३॥ जैसा शास्त्रमें लिखाहै वोह विधान करनेलगे प्रथम उन्होंने प्रवर्ग्य नामक कार्य्य समाप्त करके शास्त्रानुसार उपसद् नामक इष्टि कार्य्य करना प्रारम्भ किया ॥४॥ तदनन्तर देवताओंकी पूजाकरके प्रफुल्ल मनसे वे सब ब्राह्मण मुनिश्रेष्ठ प्रातःसवनादि कार्य करने लगे॥५॥प्रथम इन्द्रको आहुति दीगई तदनंतर राजाकी स्तुति कीगई फिर मध्यन्दिन सवनादि कार्य्यका अनुष्ठान हुआ ॥६॥ इसके उपरान्त महात्मा राजाका तृतीय सवन उन ब्राह्मण श्रेष्ठोंने शास्त्रानुसार पूर्ण कराया ॥७॥ तब ऋष्यशृंग प्रभृतिऋषि वेदके मंत्र शिक्षा अक्षर स्वर सहित पाठकरके इन्द्रादि श्रेष्ठ देवताओंका आह्वान करनेलगे ॥८॥ देवता उनके शिक्षा संयुक्त वेदमंत्रादि द्वारा आह्वान किये जाकर अपना अपना यज्ञ भाग ग्रहण करने लगे ॥ ९ ॥ इसकार्य में कोई आहुति व्यर्थ न दी गई न कोई कार्य छोडागया मंत्रपूत होकर कार्य्य होने से सब मंगलमें ही हुआथा ॥ १० ॥ कोयी ब्राह्मण यज्ञके कार्यका न जाननेंवाला नहीं था विशेषतः किसी दिनभी याचक ब्राह्मणोंको थकावट या क्षुधाबोध

नहुई इन सबकी सेवा करनेके लिये सैकडों सेवक रक्खे गयेथे ॥ ११ ॥ यज्ञभूमिमें ब्राह्मण, शूद्र, तपस्वी व संन्यासधर्मावलम्बी व्यक्ति नित्यभोजन पाने लगे॥१२॥वृद्ध, व्याधिग्रस्त, स्त्री, और बालकतक इच्छा भोजन पाने लगे परन्तु रातदिन भोजन करनेसेभी किसीको तृप्ति नहीं होतीथी ॥ १३ ॥ अन्नदो अन्नदो वस्त्रदो संतत सबके मुखमें यही वाक्य निकलनेलगे ॥ १४ ॥ दिन २ पर्वत तुल्य ढेरके ढेर पक्के कच्चे अन्नके दृष्टि आने लगे ॥ १५॥ अनेक देशोंके नरनारी गण इन महात्मा राजाके यज्ञमें आकर बहुतसी खाने पीनेका अन्न खानेलगे ॥ १६ ॥ भोजनके समय ब्राह्मण लोग दिव्य स्वादयुक्त भोजनकी प्रशंसा करनेलगे और हम अघा गये हेराजन् आपकी जयहो कहकर राजाका यश विस्तार करने लगे ॥ १७ ॥ सुवेशधारी ब्राह्मण गण द्विजातियोंको परोसने लगे और व्यक्ति गण मणिमय कुण्डलादि धारण करके परसनेवालोंकी सहाय करने लगे॥१८॥इस कर्मके होने पर धीर पंडित गणोंने औरोंको पराजित करनेके अभिप्राय से हेतुवाद सहित विचार करना आरम्भ किया॥१९॥ इधर कर्मकुशल ब्राह्मण लोगभी शास्त्रानुसार सांकेतिक शब्दोंके वशवर्ती प्रतिदिन यज्ञके कर्म करने कराने लगे ॥ २० ॥ मूल बात यहहै कि जिस ब्राह्मणने षडङ्ग सहित वेद नहीं पढाथा व जो व्रतपरायण व शास्त्रजान्ने वाला नहींथा व जिसको शास्त्रके विचारमें चतुरता नही ऐसा कोई ब्राह्मण राजाके यज्ञमें व्रती व सदस्य नहीं हुआथा ॥ २१ ॥ यूप रचना कालमें इस यज्ञमें छः बेलके, छः खैरके, छः पलाशके खंभे गाडे गये ॥२२॥ व एक बहेडाका, व देवदारुके दो खंभ गाडे गयेथे यहखंभ फैलीहुई भुजा ओंकी बराबर लम्बेथे॥२३॥शिल्प व यज्ञ कर्मोंमें निपुण शास्त्रके जान्नेवाले पुरुषोंने यह बनायेथे यज्ञकी शोभाके लिये इनपर सोना मढा व इसका पानी फेरा गयाथा ॥ २४ ॥ इक्कीस खंभ इक्कीस २ अरत्नि (चौबीस अंगुलकी १ अरत्नि) ऊंचे थे हरेकपर कपडा लपेटा गया ॥२५॥ यह सब विधि पूर्वक करके शिल्पियोंने मनोहर और दृढ यह आठ पहलू थम्भ विधि पूर्वक बनाये यह देखनेमें बड़े शोभायमानथे ॥ २६ ॥ वे कपडेसें ढके जाकर और गन्ध फूलोंसे पूजित हो दीप्तिमान् सप्तर्षि जैसे

आकाशमें शोभा पातेहैं तैसे शोभा पानेलगे ॥ २७ ॥ इस यज्ञमें जित नी ईटोंका प्रयोजनथा वह सब बन गई शिल्प निपुण ब्राह्मणोंने इनईटोंसें अग्निकुण्ड बनाया इस कुण्डके हरेक जगह ईटोंसें बनीथी ॥ २८ ॥ इस भांति राजसिंह महाराज दशरथजीके यज्ञमें कुशल ब्राह्मणोंने वेदी बनाई उसपर सोनेंकी ईटोंसे पंख बनाय आठारह प्रस्तारका एक गरुड बनाया अश्वमेधमें इसकी विधिहै ॥ २९ ॥ यज्ञस्थलमें शास्त्रानुसार देवताओंके लिये अनेक प्रकारके सर्प विहङ्ग तुरङ्ग स्थापनकिये ॥३०॥ और जलचर प्रभृति जन्तु जहांतक इकट्ठे कियेगयेथे यज्ञकराने वालोंने उन्हें बलि देनेके अर्थ यथा स्थानमें शास्त्रानुसार बांधा ॥ ३१ ॥ पहले कहे हुये थंभोमें तीनसौ पशु और महाराजका अश्वरत्न बंधाथा ॥ ३२ ॥ पटरानी कौशल्याजीने उस अश्वकी परिचर्य्या करके तीन खड्गसें प्रसन्नता पूर्वक उसको वधकिया ॥ ३३ ॥ तदनन्तर कौशल्याजी वहां धर्म प्राप्तिकी कामनासें उस अश्वके निकट एक रात्रि तकरहीं ॥ ३४ ॥ तब होता अध्वर्यु व उद्गाता ओंने राजमहिषी व परिवृत्ति सहित वावाताको "क्षत्रिय राजकी वैश्या स्त्री वावाता और शूद्रा स्त्री परिवृत्ति कही जातीहै" यज्ञीय अश्वके साथ नियोजित किया ॥ ३५ ॥ तब श्रुतिकार्य्यवित् जितेंद्रिय ऋत्विज उस घोडेकी चरबीले शास्त्रानुसार होम करनेलगे ॥ ॥ ३६ ॥ नरपतिगण यथा समय न्यायपूर्वक अपने पाप कटनेंके अर्थ वसागन्धमय धूमगन्ध सूंघने लगे ॥ ३७ ॥ अनन्तर सोलह ऋत्विज ब्राह्मण घोडेके सब अंग प्रत्यंगादि काट काटकर अग्निमें विधि पूर्वक आहुति देने लगे ॥ ३८ ॥ और यज्ञोंमें पाकरकी शाखामें हव्य स्थापन करके आहुति दीजातीहै परन्तु इस अश्वमेध यज्ञमें वेंतमें स्थापित करनेका नियमहै ॥ ३९ ॥ तदनुसार ऋत्विज गण वेंतके दंडकी आहुति देने लगे, अश्वमेध यज्ञमें जो तीन दिन सवन क्रिया करनी होतीहै वह कल्प सूत्र और ब्राह्मणोंकी समर्थनको हुयीहै पूर्वोक्त तीन दिनके मध्यमें प्रथम दिन अग्निष्टोम ॥ ४० ॥ द्वितीय उक्थ और तीसरे दिन अतिरात्र यज्ञ शास्त्र विधिके अनुसार अनुष्ठित हुआ. ॥४१॥ फिर ज्योतिष्टोम, आयुष्टोम, अतिरात्र, अभिजित्, विश्वजित व आप्तोर्याम शास्त्रानुसार

यह सब महायज्ञको कार्य्य होने लगे ॥ ४२ ॥ इस यज्ञमें कुलवर्द्धन राजा दशरथजीने होताको पूर्व दिशा अध्वर्य्युको पश्चिम दिशा ब्रह्माको दक्षिण दिशा ॥ ४३ ॥ उद्गाताको उत्तर दिशा दक्षिणामें देदी पूर्वकालमें स्वायम्भुव मनुजीने जिस प्रकारका यज्ञ अनुष्ठानकर दक्षिणा दीथी वैसेही यह यज्ञ हुवा ॥ ४४ ॥ न्यायपूर्वक समाप्तकर पुरुषसिंह राजा दशरथजीने ऋत्विजोंको पृथ्वी दान करदी॥४४॥ श्रीमान् इक्ष्वाकुकुलनन्दन इस भांति दानकार्य समाप्त करके अतिशय प्रसन्न हुये ॥ ४५ ॥ तब ऋत्विज उन निष्पाप नरनाथसें कहने लगे ॥ ४६ ॥ हे राजेंद्र ! आप एकाकी इस समस्त भूमंडलकी रक्षा करनेके लायकहैं हमें पृथ्वी नहीं चाहिये॥४७॥क्योंकि हम इसके पालन करनेमें असमर्थहैं हे महिपाल हम सदा वेद पढनेमें लगे रहतेहैं अतएव हमें कुछ धन दे दीजिये ॥ ४८ ॥ हमहा आपसें मणि रत्न सुवर्ण, गोधनादि कुछ थोडासा ले सक्ते हैं। वोही आप हमें देदीजिये परन्तु पृथ्वीका आधिपत्य ले हमें क्या करना है ॥ ॥ ४९ ॥ ऋत्विजोंके यह कहे जाने पर राजाने उन वेदपारग ब्राह्मणोंको एक लाख गाय दीं ॥ ५० ॥ और दश करोड सोनेकी मोहरें और इस्से चौगुनी चांदीकी मुद्राभी उन ऋत्विजोंको देदी ऋत्विजोंने यह सब वस्तु धन ऋषि ऋष्यशृंग और बुद्धिमान वशिष्ठजीके हाथमें समर्प्पण करदिया ॥ ५१ ॥ तदनन्तर उन दोनों ऋषियोंके न्यायानुसार भाग कर देने पर यह सब विप्रवर अपना अपना भाग लेकर ॥ ५२ ॥ प्रफुल्ल चित्तहो राजासें बोले महाराज हम दक्षिणा पाकर बडे सन्तुष्ट हुयेहैं. अनन्तर अभ्यागतों के निमित्त बहुत धन दिया ॥ ५३ ॥ तदनन्तर राजा दशरथजीनें जम्बूदेशका सोना ब्राह्मणोंको दिया इसमें कई करोड सुवर्ण खर्च हुआ फिर एक अकिंचन ब्राह्मण धन मांगनेपर ॥ ५४ ॥ राजाने उसें हाथ का कंगन देदिया उस ब्राह्मणके अभिलाषित पदार्थ पाकर चले जाने पर द्विजवत्सल ॥ ५५ ॥ महिपालने प्रसन्नतासे व्याकुलइन्द्रिय हो सब विप्रोंके चरणोंमें प्रणाम किया ब्राह्मणोंने भी प्रणाम करते हुए राजाको बहुत सारे आशीर्वाद दिये ॥ ५६ ॥ इस प्रकार परम उदार महावीर पृथ्वीमें झुके हुए राजाको आशीर्वाद दिये तब वे बडे प्रसन्न होकर यज्ञको समाप्त

करते हुए ॥ ५७ ॥ राजा दशरथजीने इस भांति पापहारी स्वर्गकारी अश्वमेध यज्ञ जो और राजाओंसे नहोसके समापन करके परम प्रीतिसें मुनिवर ऋष्यशृंगसें कहा हे सुव्रत जिस्से मेरे वंशकी रक्षाहो आप उसकाही अनुष्ठान कीजिये ऋष्यशृंगने तथास्तु कहकर कहा ॥ ५८ ॥ हे राजन् ! तुम्हारे चार पुत्र वंशके बढाने वाले होंगे ॥ ६० ॥

सतस्यवाक्यंमधुरंनिशम्यप्रणम्यतस्मैप्रयतोनृपेंद्रः ॥
जगामहर्षंपरमंमहात्मातमृष्यशृंगंपुनरप्युवाच ॥ ६१ ॥

राजा उनके मुखसे यह मधुर आश्वास्य वाक्य श्रवण करके उनको शिर नवा, अतिशय प्रफुल्ल हुए और परम प्रीतिसे ऋष्यशृंगसें फिर यह वचन बोले ॥ ६१ ॥ इतिश्रीम० वा० आ० वा० चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः ॥

मेधावीतुततोध्यात्वासकिंचिदिदमुत्तरम् ॥
लब्धसंज्ञस्ततस्तंतुवेदज्ञोनृपमब्रवीत् ॥ १ ॥

तदनन्तर मेधावी वेदज्ञ महर्षि कुछ देरतक चिन्ता करके राजासे बोले ॥ १ ॥ हे राजन् मैं आपको पुत्र उत्पन्न होनेके लिये अथर्वणमें कहे हुये मंत्रोमें सिद्धि देनेवाला पुत्रेष्टि यज्ञ कराऊंगा ॥ २ ॥ यह कहकर महातेजस्वी ऋषि पुत्रेष्टि यज्ञ आरंभ करके अथर्व वेदके विधानानुसार होम करने लगे ॥ ३ ॥ तदनन्तर यज्ञ स्थलमें देवता गन्धर्व सिद्ध और महर्षि मिलित होकर अपना २ यज्ञ भाग लेनेको आये ॥४॥ इस यज्ञमें इकट्ठे होने पर सब देवता एकत्रहो न्यायानुसार सृष्टिकर्ता विधाता से यह वचन बोले ॥ ५ ॥ हे भगवन् आपके वरके प्रभावसे बलवान् रावण हमें व्यथित करताहै आपसे अधिक क्या कहैं हम उस्से लडनेमें असमर्थहैं॥ ॥ ६ ॥ हे भगवन् आपने प्रसन्नहो उसे वरदान दियाहै यही कारणहै कि उस अत्याचारीके हम सब अत्याचार सहन करते हैं यह दुर्मति राक्षस नाथ त्रिलोकीको व्याकुल कर्ता फिरताहै और सौभाग्य शालियोंसे घोरतर घृणा करताहै ॥७॥ उसके घमंडकी वार्त्ता कहांतक कहैं; कि वह देवेन्द्रके पराभवकी वासना करताहै इसीभांति वह महर्षि यक्ष, गन्धर्व, ब्राह्मण

व असुरोंको ताडन करताहै महावरदान पानेसे वह मोहित हो किसीको नही गिन्ता ॥९॥ अधिकतौ क्या कहैं न तो इस रावणको सूर्य सन्तापित करते न वायु कभी जोरसे चलतीहै तरंगमाला संकुल समुद्रभी इसको देखकर अचल होजाताहै ॥ १० ॥ आपसें अधिक क्या कहैं हम विकटमूर्ति उस निशाचरसें बडे शंकितहो भय पारहेहैं अव हे भगवन् ! यह प्रार्थनाहै कि उसके वधका उपाय कहिये ॥ ११ ॥ स्वायम्भुव यह वात सुन कर देवताओंसे बोले किमैंने उस दुरात्माके वधका उपाय स्थिर कर लियाहै ॥ १२ ॥ उसने मुझसें यह वर मांगाथा किदेवता गन्धर्व यक्ष और राक्षससें नमरूं मैंनेभी उसें यहवर देदियाहै ॥ १३ ॥ मनुष्यों को कुछनसमझ कर उसने अज्ञानसे इनसें अवध्य नही मांगा अतएव मनुष्योंको हाथसें ही उसकी मृत्यु होगी ॥ १४ ॥ प्रजापति ब्रह्माजी की वह वाणी सुन देवता व महर्षि गण परम प्रसन्न हुये॥१५॥इतनेहीमें भगवान् कमलापति वहां आये उनके अंगकी शोभा शोभाको मान करतीथी शङ्ख, चक्र गदा पद्म धारण किये वह पीताम्बर पहरे हुयेथे ॥ १६॥ गरुडपै चढे हुयेथे वादलके ऊपर सूर्य नारायण की जैसी शोभाहोतीहै इसी भांति रमापति शोभितथे अंगोमें तपाये सुवर्णकेबाजू पहरेथे देखतेही सुरगण उनकी स्तुति करने लगे ॥१७॥ वह आते ही ब्रह्मा जीके सहित आसन पर वैठे देवगण उनको अभिवादन पूर्वक उनकी स्तुति करने लगे ॥ १८॥ बोले कि हे विभो सब लोगोंके मंगलार्थ हम लोग आपको किसीकार्यमें नियुक्त करेंगे राजा दशरथजी जो अयोध्याके राजाहैं वह बडे दानी धर्मज्ञ और महर्षि तुल्य तेजस्वी हैं ह्री श्री और कीर्ति समान उनकी तीन स्त्रियोंके गर्भसे आप पुत्रभावको प्राप्तहूजिये ॥ १९ ॥ २० ॥ आप अंश सहित चार भागोंमें विभक्तहो उनको पुत्र होना स्वीकार कीजिये और मनुष्य अवतार धारण कर देवता ओंसे अवध्य लोक कंटक ॥२१॥ देवता ओंसे अवध्य रावणका युद्धमें नाश कीजिये॥२२॥ यह देवता गन्धर्व सिद्ध और श्रेष्ठ ऋषियोंको ब्रह्माके वरसें मूढ रावण महापराक्रमी हो निरन्तर सता रहाहै और उसने ऋषि गन्धर्व और अप्सरा ओंको सतायाहै ॥ २३॥ जो गन्धर्व और अप्सरागण नंदनकाननमें अमोद प्रमोद किया करतेथे वह भी इस भयानक रावणके हाथसे मारे गये उसीके नाशकरनेके अर्थ

॥ २४ ॥ हम सिद्ध, गन्धर्व, यक्ष और मुनि गणोंके सहित आपके शरण आयेहैं क्योंकि हे परंतप आपही हमारे परम गतिहैं ॥ २५ ॥ आप उस देव वैरी रावणके मारनेको मनुष्य अवतार लीजिये इस प्रकारसे देवताओंके ईश्वर भगवान् विष्णुजीकी ऐसी अमर गणोंसे स्तुति होनेपर २६॥ सर्व लोकोंके नमस्कार करने योग्य भगवान् धर्म युक्त शरणमें आये हुये ब्रह्मादि देवताओंसे कहने लगे ॥ २७ ॥ हे सुरगण तुम कुछ शंका मतकरो तुम्हारा मंगल होगा, मैं युद्धमें पुत्र पौत्र मंत्री भाई बन्धु और जाति सहित ॥ २८ ॥ दूसरेके नजीतें जानेके योग्य देवर्षियोंके भयदायक उस असुरको निर्मूलकर ग्यारह हजार वर्ष तक ॥ २९ ॥ पृथ्वी पालन करते हुये मनुष्य लोकमें वास करूंगा भगवान् नारायण आत्मस्वरूप देवताओंको ऐसा वर देकर ॥ ३० ॥ भूलोकमें अपने जन्म स्थानके सम्बन्धमें चिन्ता करने लगे इस प्रकार वह पद्म पलाश लोचन अपनेको चार अंशोंमें विभक्तकर ॥३१॥ राजा दशरथके यहां जन्मलेनेकी इच्छा करते हुये, तब देवर्षि गन्धर्व व अप्सरा गण यह जान प्रसन्नहो दिव्य स्तुतियोंसे मधुसूदन भगवानको प्रसन्न करने लगे ॥ ३२ ॥ कहा हे भगवन् आप उस वर पानेसे गर्वित सुरेन्द्रशत्रु बडे उद्धत साधु तपस्वी और लोकके कंटक रावणको कुल सहित संहार कीजिये ॥ ३३ ॥

तमेवहत्वासबलंसबांधवंविरावणंरावणमुग्रपौरुषम् ॥ स्वर्लोकमागच्छगतज्वरश्चिरंसुरेंद्रगुप्तंगतदोषकल्मषम् ॥ ३४ ॥

अब यही प्रार्थना है कि आप शीघ्रही उसभयानक बडे पुरुषार्थी रावणको सेना बन्धु बान्धव सहित संहार करके निश्चिन्ताईसे इन्द्रपालित पाप और दोष रहित स्वर्गमें फिर लौट आइये ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीम० आ० वा० पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः ॥

ततोनारायणोविष्णुर्नियुक्तःसुरसत्तमैः ॥
जानन्नपिसुरानेवंश्लक्ष्णंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

तदनन्तर भगवान् नारायण रावणके विनाशका यद्यपि सब उपाय जान्तेथें तदपि नम्रतासे देवताओंसे कहने लगे ॥ १ ॥ हे देवगण मैं कौनसे उपायसे उसदेव कंटक राक्षसको संहार करूंगा इस विषयमें तुमनेभी कोई उपाय शोच रक्खाहै ॥ २ ॥ तब अमरगण अव्यय विष्णुजीकी यह बात सुन उनसें कहने लगे कि इस समय आपको मनुष्य तनु धारणकर उस रावणको वध करना होगा ॥ ३ ॥ हे शत्रुओंके मारने वाले उस निशाचरने पूर्वकालमें बहुत तप कियाथा इस्से संसारसे पहले उत्पन्न हुये संसारके रचने वाले ब्रह्माजी उसके ऊपर प्रसन्न हुये ॥ ४ ॥ व सन्तुष्ट हो उन्होंने यह वर दिया कि तुझको किसी प्राणीमें डर न होगा, सिवाय मनुष्यके ॥ ५ ॥ वह मनुष्योंको तुच्छ समझताथा इसकारण उसने मनुष्योंसे अभय नहीं माँगा इसभांति पितामहके वरसें वह रावण दर्पित हुआहै ॥ ६ ॥ इस समय वह तीनों लोकको उजाडकर नर नारियोंको बलपूर्वक आकर्षण करताहै परन्तप निश्चय मनुष्यके हाथसे उसकी मृत्यु होगी यही उपायहै ॥ ७ ॥ भगवान विष्णु देवगणोंके मुखसे ऐसा वाक्य श्रवण करके दशरथजीको पिता कहकर जताया ॥८॥ जिस समय निःसन्तान राजादशरथजी पुत्रेष्टि यज्ञमें दीक्षित हुए उसी समय नारायण उनके यहां अवतार लैनेंको कृतनिश्चय हुए इस प्रकार विष्णु भगवान् निश्चयकर और ब्रह्माजीसें आमंत्रणकर वह महर्षियोंसे पूजितहो देवताओंमेंसे अंतर्ध्यान होगये ॥ ९ ॥ १० ॥ तदनन्तर यज्ञदीक्षित दशरथजीके यज्ञ कुण्डकी अग्निसें महा वीर्यबलशाली रक्तांबरधारी अतुल प्रभाव वाले रक्तमुख कृष्णवर्ण दुन्दुभीकी समान शब्द करते एक पुरुष निकला इनका शरीर सिंहके समान रोमवाला डाढी मूँछ करके युक्त और केश चिकनेथे ॥ ११ ॥ १२ ॥ वह शुभलक्षण युक्त व दिव्य अलंकारसे शोभित उनका शरीर शैल शृंगकी समान उतङ्ग विक्रम केशरी समान ॥ १३ ॥ इनकी आकृति सूर्य्यकी व चन्द्र किरणोंकी समान तेज अग्नि सम जाज्वल्यमान पोशाक तपाये सोनेकी नाईं राज चिह्नोसें विभूषित ॥ १४ ॥ उनके हाथमें प्रिय पत्नीकी नाईं दिव्य खीरका पात्र वह उसको अच्छी तरह अपने करोंमें लियेहुये ॥ १५ ॥

राजा दशरथको देखकर उनसें कहने लगे हेनृप मुझ आये पुरुषको प्र-जापतिजीका भेजाहुआ पुरुष जानों ॥ १६ ॥तदनन्तर राजा उनका वा-क्य श्रवण करके अति विन्ती कर हाथ जोड बोले हे भगवन् आप नि-रापद तो आये जो हो आज्ञा कीजिये मुझे क्या कार्य्य करना होगा॥१७॥ तदनन्तर वह पुरुष फिर कहने लगे हे राजा आपने देवताओंकी आराधना करके अव यह पायस पायी॥ १८॥ हे राजन् यह वस्तु देव निर्मित वंश दायक और आरोग्य दायकहै यह प्रशंसित पायस आरोग्यकी करने वा-लीहै अतएव इसे आप ग्रहण कीजिये १९ ॥ इसे अपनी रानियोंके खाने-को देदीजिये इस्से अवश्य तुम्हारे पुत्रहोंगे जिनके निमित्त आपने यह यज्ञ कियाहै ॥ २० ॥ तव राजाने वहुत अच्छाकह उनके कहनेको शिर चढा उस देवान्न परिपूर्ण देवताके दिये सुवर्ण पात्रको प्रसन्नहो लेलिया ॥ २१ ॥ और इस अद्भुत दिव्य प्रियदर्शन पुरुषको परम प्रसन्नतासें शिर नवा उसकी प्रदक्षिणा करने लगे ॥ २२ ॥ थोडेसे धन पानेसे दरिद्रको जो आनन्द होताहै इसी प्रकार उस देवतासे वनी हुयी पायस को पाकर दश रथ जीभी प्रमुदित हुये ॥ २३ ॥ तव वह अद्भुत आकारवाला परम शो भायमान दिव्य पुरुष अपना काम कर अग्नि कुंडमें अन्तर्धान होगया ॥२४॥शरदकालके पूर्ण शशिकी जैसी शोभा होतीहै ऐसी खीर पानेसे वैसेही राजा दशरथजीकी रानियोंका वदन मण्डल शोभाको प्राप्त हुआ॥ ॥ २५ ॥उन अवनीनाथने रनवासमें प्रवेश करतेही कौशल्यासे जाकरक-हनेलगे यह पायस तुम ग्रहणकरो इससे तुह्मारे पुत्रहोगा ॥ २६ ॥ प्रथम उस खीरका आधाभाग कौशल्याको दिया तदन्तर अवध नाथने उस आधी खीरके दो भाग कर एक भाग सुमित्राको दिया ॥ २७ ॥ पुत्रहोनेके निमत्त वाकी जो अमृतकी समान खीरका आधाभाग वचा वह आधाभाग पुत्र होनेके निमित्त राजाने कैकयीको दिया ॥ २८ ॥ फिर राजाने विचारकर कैकयीके भागमेंसे उसके अर्द्धांशका आधा सुमित्राको दिवाया इस भांति राजाने वह प्रजापतिकी दी हुई पायस रानियों को वांटदी ॥ २९ ॥ राजाकी वह उत्तम स्त्रियें उस दिव्य पायसको प्राप्तहो सव अपने आपको वडी भाग्यवान स

मझनें लगीं और प्रसन्नहुईं ॥ ३० ॥ तदनन्तर वे उत्तम रानियें राजप्रदत्त वह पायस भोजन करके गर्भवती हुईं तब उनका तेज हुताशन व आदित्य तुल्य बोध होने लगा ॥ ३१ ॥

ततस्तुराजाप्रतिवीक्ष्यताःस्त्रियःप्ररूढगर्भाःप्रतिलब्धमानसः बभूवहृष्टस्त्रिदिवेयथाहरिःसुरेंद्रसिद्धर्षिगणाभिपूजितः३२॥

अनन्तर राजादशरथजी रानियोंको गर्भवती देख मनोरथको प्राप्तहो बडे सन्तुष्ट हुए जिस प्रकारसे देवता और इन्द्रादिकसे पूजित होकर नारायण स्वर्ग लोकमें प्रसन्नहों ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः ॥

पुत्रत्वंतुगतेविष्णौराज्ञस्तस्यमहात्मनः ॥
उवाचदेवताःसर्वाःस्वयंभूर्भगवानिदम्॥ १ ॥

भगवान् नारायणजीका महात्मा दशरथजीके पुत्र होना स्वीकार करनेपर ब्रह्माजी सब देवताओंसे इस प्रकार कहने लगे ॥ १ ॥ देवगण ! हम सबके हितकारी सत्यसंध महावीर विष्णुजीकी कामरूपी सहाय सब सृजन करो ॥ २ ॥ मायावी, शूर, चलनेमें पवन तुल्य, नीतिके जाननेवाले, बुद्धिवान्, विष्णुकी तुल्य बलवाले पराक्रान्त, किसीसें नहारने वाले, बहुत उपायोंके जानने वाले व सर्व गुण संपन्न सब अस्त्रोंके जानने वाले व अमृत पीने वालोंकी समान ॥३॥४॥तुम मुख्य २ अप्सराओंमें गन्धर्वियोंमें यक्ष और पन्नगोंकी कन्याओंमें ऋक्ष, और विद्या धरियोंमें ॥ ५ ॥ किन्नरियोंमें और वानरियोंमें अपने समान बलशाली वानरोंके आकार वाले पुत्रोंको उत्पन्न करो ॥ ६ ॥ मैंने प्रथमही ऋक्ष प्रधान जाम्बवन्तको उत्पन्न कियाहै, मेरे जँभाई लेनेके समय एक समय एक रीछकी उत्पत्ति हुईथी॥७॥ ब्रह्माजीकी ऐसी आज्ञा श्रवण करके वह सब उनकी बात माननेपर तत्पर हुए और कपि रूपधारी पुत्र सब उत्पन्न करने लगे॥८॥ तैसेही ऋषि महात्मा सिद्ध, विद्याधर, सर्प, चारण, उरग इन लोगोंनेभी वानर रूपी पुत्र उत्पन्न किये॥९॥ऐसेही देवेन्द्रसे महेन्द्र समान वालिकी उ-

त्पत्ति हुई, सूर्य भगवानके औरससें सुग्रीवका जन्म हुआ ॥ १० ॥ बृहस्पतिजीसे बुद्धिमान तारक नाम महाकपिकी उत्पत्ति हुई यह सम्पूर्ण वानरोंमें मुख्य और श्रेष्ठ बुद्धिमानथा ॥ ११ ॥ धनदका पुत्र श्रीमान् गंधमादन वानरहुआ विश्वकर्मानें नल नाम महा कपिको उत्पन्न किया१२ पावकका वेटा श्रीमान नील अग्निकी समान कान्ति वाला हुआ जो तेजमें यशमें वीर्यमें अपने पितासेभी अधिक हुआ ॥ १३ ॥ विचित्र रूप सम्पन्न दोनों आश्विनी कुमारोंसे मयन्द व द्विविद नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए ॥ १४॥ वरुणसे सुषेण नाम वानर की उत्पत्ति हुई मेघ देवतासे शरभ नाम महाबली वानर उत्पन्न हुआ ॥ १५ ॥ और पवनसें श्रीमान् हनुमान जीकी उत्पत्ति हुई, इस वीरकी देह अशनिसे कडी व चाल पक्षी राज गरुडके समान हुई ॥ १६ ॥ हनुमानजी सब वानरोंमें मुख्य हुये बल वीर्यमें सर्वसे अधिक इस प्रकार रावणके विनाशार्थ असंख्य वानरोंकी सृष्टि उत्पन्न हुई ॥ १७ ॥ वह सबही अमित बलशाली कामरूपी मातङ्ग व पर्वत तुल्य देह धारी हुये ॥ १८ ॥ इस प्रकार ऋक्ष वानर और गोपुच्छ सब क्रमशः उत्पन्न हुये जिस देवताका जैसा रूप जैसा भेष जैसा पराक्रमथा ॥१९॥ वैसेही सबकी सन्तान पृथक् २ हुई जो गौ पुच्छसें पैदा हुये उनका बल विक्रम और दूसरोंसे अधिक हुआ ॥ २० ॥ इसभांति ऋषि और किन्नरियोंमें वानर रीछ उत्पन्न हुए देवता, महर्षि, गंधर्व, वरुण ॥२१॥ नाग, किम्पुरुष, सिद्ध, विद्याधर, उरग इन्होंने सैंकडो, पुत्र उत्पन्नकिये ॥ २२ ॥ बंदी देव चारणभी वनचारी बलवान् पुत्रोंको उत्पन्न करते हुए यह सब वानर बडे शरीरवाले हुए ॥ २३ ॥ उनकी उत्पत्ति मुख्य २ अप्सरा विद्याधरी गन्धर्वी और नाग कन्याओंके गर्भोंमें हुई यह सब कामरूप इच्छाचारीथे ॥ २४ ॥ यह लोग दर्प व बलमें सिंह अथवा शार्दूल समान हुए; शिला और पर्वत इनके सब अस्त्र शस्त्र हुए यह शिलाओंसे युद्ध करने वालेथे ॥ २५ ॥ यह सब दांतोंसे काटनेमें चतुर सब अस्त्र शस्त्र चलाने में पंडित, इनके घोर नादसें शैलेन्द्र कंपायमान व बडे २ पेड चूर्ण होजातेथे ॥ २६ ॥ वेगसे यह नदी और समुद्रको क्षुभित करसक्तेथे पैरोंसे पृथ्वीको विदारित और सब समुद्रोंको खलबलातेथे ॥ २७ ॥ अधिक क्या कहें यह नभोमंडलमें

प्रवेशकर बादलोंको चीर फाडडालें ॥ २८ ॥ और इसीभांति मत्त मातंगोको वनमें फिरते २ निपातित करदें, जिस समय गरजैं तौ नादसें पक्षी गिरजाँय इस प्रकार कामरूपी वानरोंकी उत्पत्ति हुई ॥२९॥ ऐसे महापराक्रमी सहस्रों सैकडों लाखों वानर हुये । इनमें कुछ यूथपति और उनमें प्रधानयूथपतिभी बहुत होगये ॥ ३० ॥ इस प्रकार महा बलवान् यूथनाथोंकी उत्पत्ति हुई इनमें कुछ ऋक्षवान् पर्वतोंमें रहते कुछ पर्वतोंके प्रस्थके ऊपर वासकरते ॥ ३१ ॥ व दूसरे और २ पर्वतों व वनोंमें रहने लगे इन वन्दरों में कितने सुग्रीव सूर्यनन्दनके; व कितने मघवासुत वालि ॥ ३२ ॥ इन दोनोंके आश्रममें रहने लगे और वन्दरोंनें नल नील व हनुमान जीकी आधीनता स्वीकार करली ॥३३॥ इस प्रकारसे अमित बलशाली युद्धविद्या विशारद वह सब वानर गण सिंह व्याघ्र व उरगोंको मर्दित करते विचरण करने लगे ॥३४॥ महाबली कपिनाथ वालि अपनी भुजाओंके बलसें ऋक्ष गोपुच्छ आदि वानरोंकी रक्षा करने लगे॥ ॥ ३५ ॥ इस प्रकारसे उन बहुतसे स्थानोंमें रहते हुये वीर्यवान् वानरोंसें जिनके अनेक प्रकारके रूप रंगथे पर्वत वन और सागर सहित पृथ्वी परिपूर्ण होगई ॥ ३६ ॥

तैर्मेघवृंदाचलकूटसन्निभैर्महाबलैर्वानरयूथपाधिपैः ॥
बभूवभूर्भीमशरीररूपैःसमावृतारामसहायहेतोः ॥३७॥

उनके आकार मेघमाला व पहाडोंकी चोटियोंके समानथे उन महाबली वानरोंके यूथोंसें जिनके शरीर वडे भयंकरथे पृथ्वी व्याप्त होगई यह रामकी सहायताके हेतु उत्पन्न हुये वह रामचन्द्रकी सहायताको उत्पन्नहो पृथ्वीको समाच्छन्न करने लगे ॥ ३७ ॥ इति०श्रीरा०रा०व० आ०वा०सप्तदशःसर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशःसर्गः ॥

निर्वृत्तेतुक्रतौतस्मिन्हयमेधेमहात्मनः ॥
प्रतिगृह्यामराभागान्प्रतिजग्मुर्यथागतम् ॥ १ ॥

महात्मा दशरथजीका यज्ञ समाप्त होनेपर देवता लोग स्व स्व भाग

स्थानको चले गये॥ १॥ राजाभी दीक्षाकी विधि ग्रहण कर अपने २ स्थानको चले गये ॥ १ ॥ राजाभी दीक्षाकी विधि समाप्तकर रानियों सहित बल वाहन व भृत्योंको साथले अयोध्या पुरी में जानेका सामान करने लगे ॥ २ ॥ इधर विदेशीय नृपति गण यथोचित् सन्मानितहो ऋषि श्रेष्ठ ऋष्यशृंगको प्रणाम कर अपने २ देशोंको चलेगये ॥ ३ ॥ श्रीसम्पन्न उन नरनाथोंके अपने २ देशोंमें जानेके समय उनकी सेना सजी धजीहुई गमन करनेलगी और शोभित होने लगी ॥ ४ ॥ उन राजाओंके चले जानेपर राजादशरथजी ब्राह्मणोंको आगे करके अयोध्या पुरीमें पैठे ॥ ५ ॥ तब ऋषि ऋष्यशृंग शान्ता सहित पूजे जाकर अपने घरको लौटे राजा दशरथजी नौकर चाकरों समेत उन्हें कुछ दूर पहुँचाने आये ॥ ६ ॥ इस प्रकार राजा दशरथजी सब आये हुए पाहनोंको विदा देकर सिद्ध कामहो पुत्र होनेको चिन्ता करते सुखसे कालव्यतीत करने लगे ॥ ७ ॥ तदनन्तर यज्ञ समाप्त होने पर छः ऋतु अर्थात् द्वादश मास बीत जानेपर चैत्र मासकी नौमी तिथिमें ॥८॥ पुनर्वसु नक्षत्रमें रवि, मंगल, शनि, गुरु, शुक्र इन ग्रहोंके मेष, मकर, तुला, कर्क, मीन राशिमें आनेसे पंच ग्रहोंको मेष और बृहस्पति चन्द्रमाके सहित कर्क राशिमें उदित होनेपर ॥ ९ ॥ रानी कौशल्याजीनें दिव्य लक्षण युक्त सर्व लोकोंके नमस्कार करने योग्य जगन्नाथ दिव्य लक्षणसे युक्त रामचन्द्र जीको उत्पन्नकिया ॥१०॥ ❋ यह राजा दशरथके पुत्र विष्णुके

❋ राग आसावरी॥आज सुदिन शुभघरी सुहाई।रूपशील गुणधाम राम नृप भवन प्रगट भये आई १ अति पुनीत मधुमास लग्न ग्रह वार योग समुदाई। वर्षहिं विबुध निकर कुसुमावलि नभदुंदुभी बजाई २ कौशल्यादि मातु सब हर्षित यह सुख वर्णि न जाई। सुन दशरथ सुत जन्मलिये सब गुरुजन विप्र बुलाई ३ वेद विहित कर क्रिया परम शुचि आनंद उर न समाई। सदन वेद ध्वनि करत मधुर मुनि बहु विधि बाज बधाई ४ पुरवासिन प्रिय नाथ हेतु निज निज संपदा लुटाई। मणि तोरन बहु केतु पताकन पुरी रुचिर कर छाई ५ मागध सूत द्वार वंदीजन जहँ तहँ करत बडाई। सहज शृंगार किये वनिता चलि मंगल विपुल बनाई ६ गावहिं देहिं अशीश मुदित चिरजियो तनय सुखदाई। वीथिन कुमकुम कीच अरगजा अगर अबीर उडाई ७ नाचहिं पुर नर नारि प्रेमभरि देह दशा बिसराई। अमित धेनु गज तुरंग बसनमणि जातरूप अधिकाई ८ देत भूप अनुरूप जाहि जोइ सकल सिद्धि गृह आई। सुखी भये सुर संत भूमिसुर खलगण मन मलिनाई ९ सबहिं सुमन विकसत रवि निकसत विपिन कुमुद विलखाई। जो सुख सिंधु सुकृत सीकरते शिव विरंचि प्रभुताई १० सोसुख उमग अवधरह्यो दशदिशि कवन जतन कहौं गाई। जो रघुवीर चरण चिन्तक तिनकी गति प्रगट दिखाई। अविरल अमल अनूप भक्ति दृढ तुलसीदास तब पाई ११ ॥

अर्धांशमें उत्पन्न हुये ओष्ठलाल २ नेत्रलाल २ व इनका स्वर नगाडेको स-मान गंभीर हुआ ॥११॥देव माता अदिति जैसें वज्रपाणिको पाकर शोभित हुईथी वैसेही बडे तेजस्वी पुत्ररत्नको प्राप्त होनेसे कौशल्याजी शोभान्वित हुईं ॥ १२ ॥ तदन्तर कैकेयीके गर्भसें विष्णुके चतुर्थांश सर्व गुणालंकृत महाबल शाली भरतजी उत्पन्न हुये ॥ १३ ॥ विष्णुके अर्द्धांश मिलनेसे और सम्पूर्ण अस्त्रोंके जान्नेमें चतुर वीर लक्ष्मण व शत्रुघ्न सुमित्राजीके गर्भसें उत्पन्न हुये ॥ १४ ॥ भरतजी पुष्य नक्षत्रमें हुयेतो परलग्न उस समय मीनथी इसीकारण सदा प्रसन्न चित्त बने रहे व लक्ष्मण शत्रुघ्न आश्लेषा नक्षत्र कर्क लग्नमें मध्याह्न समय जन्मे ॥ १५ ॥ इस भांति राजा दशरथ जीके पृथक् २ चार पुत्र हुये; यह चारोही गुण-वान् व रूपवान् व पूर्वा व उत्तरा भाद्रपद नक्षत्रकी नांई प्रभा सम्पन्न हुये ॥ १६ ॥ उस अवसरमें गन्धर्व मधुर संगीत और अप्सरायें नृत्य करने लगीं देवदुन्दभी बाजने व आकाशसे सुमन वृष्टि होने लगी ॥ १७॥ अयो-ध्या नगरीसे उत्सवका सोता बहनें लगा; मार्गमें घाटोंमें नट नर्तक इकट्ठे हुये व बडीही भीड होगई ॥ १८॥ गायक और वादक गण गीत और बाजे बजाने लगे और सम्पूर्ण रत्नों करकै गलियें शोभाको प्राप्त हुईं ॥ १९ ॥ राजाने इस उत्सव सें सूत, मागध, और बंदियोंको बहुत धन-दान दिया, ब्राह्मणोंको भी असंख्य गायेंदीं ॥ २० ॥ इसभांति ग्यारह दिन बीत जानें पर अवनीनाथने पुत्रोंका नाम करण करवाया, महात्मा वशिष्ठजीने ज्येष्ठका नाम राम और कैकेयीके पुत्रका नाम भरत रक्खा ॥ २१ ॥ सुमित्राके लड़कोंमेंसे एकका नाम लक्ष्मण व दूसरेका नाम शत्रुघ्न कहकर पुकारा गया परम प्रीतिसें वशिष्ठ जीने सब पुत्रोंका नामकरण किया ॥ २२ ॥ नामकरणके दिन राजाने पुरवासी व और राज्योंके रहने वाले ब्राह्मणोंको भोजन करवाके दक्षिणामें अनेक प्रकारके रत्नदिये ॥ २३ ॥ इस भांति पुत्रोंके जातकर्म और नामकरण क्रिया हुई इन पुत्रोंमें रा-मचन्द्रजी पताका रूप व पिताके सबसें अधिक प्यारे हुये ॥ २४ ॥ ब्रह्माजो जिस प्रकार सब प्राणियोंके प्रिय होतेहैं ऐसेही रामचन्द्रजी हुयें, सब भ्राताभी शूर वेदवित् और सबके उपकारी हुए ॥ २५ ॥

सबही ज्ञान सम्पन्न और सर्व गुणोंके आधार हुये तिनमें भी रामचंद्रजी ही सत्यपराक्रमी हुये ॥ २६ ॥ चन्द्रमा जैसा निर्मल और सबका प्यारा होताहै वैसेही यह हुए, हाथी घोड़े व रथपर बैठने में यह बड़े चतुर हुए ॥ २७ ॥ यह जैसे धनुर्विद्यामें पारदर्शीथे वैसेही पितृ सेवामें रतहुये लक्ष्मीके बढाने वाले लक्ष्मण जीभी बालकपनसें रामचन्द्र जीके अनुरागी हुये ॥ २८ ॥ यह सदा लोकोंके आनन्ददेनेवाले श्रीरामचन्द्रजी जेष्ठ माताकी आज्ञाको मानते अपने शरीरसेंभी अधिक मानों रामचन्द्रको प्यार करने लगे ॥ २९ ॥ लक्ष्मी सम्पन्न लक्ष्मणजी मानों रामचन्द्रजीके दूसरे प्राणही हुये यह विना रामचन्द्रजी सोये शयन नहीं करते ॥ ३० ॥ मिष्ठान्न इत्यादि जो खानेको पाते सो विना रामके नहीं खाते जब रामचन्द्रजी अश्वारूढहो शिकारको जाते ॥ ३१ ॥ तब लक्ष्मणजी धनुष धारण कर उनके साथ रहते लक्ष्मणकी नाईं शत्रुघ्नभी भरतजीके प्राणोंसेअधिक प्यारेहोगये ॥ ३२ ॥ जिस प्रकारसें शत्रुघ्नजी भरतजीको प्यारकरतेथे इसीप्रकार भरतजी शत्रुघ्नजीको प्यार करतेथे उन चार महाभाग प्यारे पुत्रोंको पाकर दशरथजी ॥ ३३ ॥ देवगणों से ब्रह्माजी जैसे सन्तुष्ट हुएथे वैसेही नरनाथ दशरथजी अपनी समान पुत्रोंको पा प्रसन्न हुये जिस समय वे ज्ञान युक्त और सम्पूर्ण गुणोंसें युक्त हुए ॥ ३४ ॥ जब कुमार लज्जा कीर्ति सर्वज्ञ और दूरदर्शितासम्पन्न हुए तब ऐसे उन प्रभाव शाली और मनोहर कान्ति वाले पुत्रोंको देखकर ॥३५॥ * दशरथजी महाराज लोकोंके स्वामी ब्रह्माजीकी समान परम प्रसन्न हुये और जिस समय वे पुरुष सिंह मन लगाकर वेद पढने लगे ॥ ३६ ॥ जब वह धनुर्विद्यामें पारदर्शी और पिताकी सेवामें रत हुये तब राजा दशरथजी उनके विवाह करनेकी चिन्ता करने लगे ॥ ३७ ॥ राजाकी समान उनके मंत्री मित्र व पुरोहितोंने भी इस विषयकी चिन्ताकी इसप्रकार वह महात्मा मंत्रियोंके बीचमें इस प्रकारकी चिन्ता करतेही थेकि ॥ ३८ ॥

---

* पगिया शिरलाल हरी कलँगी उर चंदन केशर खोर दिये। मनमोहन रामकुमार सखीं अनुहार नहीं जगजन्म लिये। पगनूपुर पीत कसे कछनी वनमालती की वनमालहिये। बिहंरें सरयूतट कुंजनमें तहां राम सखे चित चोर लिये ॥३५॥

इसी अवसरमें महातेज धारी मुनिवर विश्वामित्र जी आये उन्होंने राजाके दर्शनकी प्रार्थनासे उपस्थित हो द्वारपालोंसे कहा ॥ ३९ ॥ मैं गाधिका-पुत्र विश्वामित्रहूं, तुम लोग जल्दीसें मेरे आनेका संवाद राजाको दो द्वार-पालों ने विश्वामित्रजीकी वार्ता सुन राजभवनमें प्रवेशकिया ॥ ४० ॥ विश्वामित्रजीके वचन सुन व्याकुल होकर द्वारपालोंने राज भवनमें उप-स्थितहो विश्वामित्रजीके आनेका समाचार॥ ४१ ॥ इक्ष्वाकु वंशमें उत्प-न्न हुए राजा दशरथजीसें कहा द्वारपालोंके वचन सुन राजा दशरथ-जी पुरोहित और मंत्रियोंको साथले ॥ ४२ ॥ जिस प्रकार ब्रह्माजीकी अगुआनी इन्द्रजी करतेहैं वैसेही राजा संवाद पातेही विश्वामित्रजीको लिवानेगये जाकर देखाकि वह ऋषि श्रेष्ठ अपनी दीप्तिसें दीप्ति मानहैं अ-ति तीक्ष्ण कठोर व्रतधारीहैं ॥ ४३ ॥ अत्यन्त प्रसन्नहो राजाने मुनिजीको अर्घ्य दिया मुनिजीने शास्त्रानुसार राजाका दिया अर्घ्य ग्रहणकर ॥ ४४ ॥ राजासें कुशल प्रश्नकिया और पुर, कोश, देश, और बन्धु बान्धवोंका मंगल संवाद पूछा ॥ ४५ ॥ तदनन्तर फिर धर्मात्मा विश्वामित्रजी राजासें कुशल पूछनेलगे हे अवनीनाथ ! आपके सामन्त नृपति और रिपुदल वंशमेंतो हैं ॥ ४६ ॥ देव और मनुष्योंके कार्यतो सुखसें होते रहतेहैं ! यह बूझकर वशिष्ठजीसें मिलकर कुशल पूछी ॥ ४७ ॥ फिर उन महात्मा विश्वामित्रजी ने और ऋषियोंसें कुशल पूंछी तदन्तर सबके सब प्रफुल्ल मनसे राज भवनमें प्रवेशकर ॥ ४८ ॥ यथोचित् पूजे जाकर आसनों पर बैठे फिर प्रजानाथने प्रसन्न मनसें विश्वामित्र जीको अच्छी तरहसें उन की पूजाकर प्रसन्न होकर उनसें बोले ॥ ४९ ॥ आपका समागम अ-मृत प्राप्तिकी समान निर्जल प्रदेशमें जल वर्षनेकी समानहै ॥ ५० ॥ अप-ने समान रूप गुण अवस्था वाली स्त्रियोंमें पुत्र रहितको पुत्र होनेके समान, खोई हुई वस्तुको फिर पानेके समान, हर्षकालकी अव-स्था के समान, इस समयमें आनन्दित हुआहूं॥५१॥५२॥इसी प्रकार-से मैं आपका आना मान्ताहूं हे महामुनि आप अच्छीतरहमें तो आये अब आज्ञा कीजिये कि आपका कौनसा प्रिय कार्य करूं ॥ आप सेवा शुश्रूषा करनेके योग्य पात्रहैं हे ब्रह्मण! मेरे भाग्यसे ही आपका यहाँ आना हुआ है; जो होय आज मैंने जाना कि मेरा जीवन जन्म सफल

हुआ ॥ ५३ ॥ हे विप्रेन्द्र ! आज मेरे जीवनकी रजनी का सुप्रभातहै क्यों कि आप सरीखे महात्मासे साक्षात् हुआ आप प्रथम राजर्षिथे तभी बडी तपस्यासें महा तेजस्वी हुयेथे॥५४॥अब आप तपस्याके प्रभावसें ब्रह्मर्षि होगयेहैं सबही प्रकारसें आप हमारे पूज्यहैं और तौ क्या कहूं आपके आगमनसें मुझे पवित्रता और विस्मय प्राप्त हुआहै ॥ ५५॥ हे प्रभो ! आपका दर्शन पाकर मैं कृतकृत्य होगया अब किस कारण आपका आना हुआ सो कहिये मेरी यही प्रार्थनाहै ॥ ५६ ॥ यह अनुग्रहीत व्यक्ति आपकी आज्ञा पालनेको प्रस्तुतहैं अतएव ऐसे दाससें संकोच करनेका कुछ प्रयोजन नहीं है ॥ ५७ ॥ मैं बहुत भांतिसें कर्तृत्व करता तौहूं किन्तु आप हमारे देवता हैं आपने जो यहां आगमन कियाहै इसमे मेरा वडा भाग्य व मुझे वडा पुण्य हुआ ॥ ५८ ॥

इतिहृदयसुखंनिशम्यवाक्यंश्रुतिसुखमात्मवता
विनीतमुक्तम् ॥ प्रथितगुणयशागुणैर्विशिष्टःपर
मऋषिःपरमंजगामहर्षम् ॥ ५९ ॥

श्रेष्ठ गुणोंकी राशि महा यशस्वी परम ऋषि विश्वामित्रजी दशरथजी के ऐसे हृदयके आनन्द देने वाले श्रवणसुखकर और मनोहर स्वाधीन नम्रतायुक्त वचन श्रवण कर अतिशय सन्तुष्ट हुये ॥ ५९ ॥ इति श्री मद्रा०वा०आ० वा०अष्टादशःसर्गः ॥ १८ ॥

ऊनविंशः सर्गः ॥

तच्छ्रुत्वाराजसिंहस्यवाक्यमद्भुतविस्तरम् ॥
हृष्टरोमामहातेजाविश्वामित्रोभ्यभाषत ॥ १ ॥

महातेजा महर्षि विश्वामित्रजी महिपाल दशरथ जीके विचित्र विस्तृत वाक्य श्रवण करके पुलकितहो उनसें कहने लगे ॥ १ ॥ आपने जिस वंशमें जन्म ग्रहण कियाहै इसकारण ऐसे वचन और से संभव नहीं विशेषतः जब परम ज्ञानी वशिष्ठजी आपके गुरुहैं तब तौ ऐसा शिष्टाचार आपहीको शोभा देताहै ॥ २ ॥ आपको अनुरोध करताहूं कि जिस कार्यको मैं आपसे कहूं हे पुरुषशार्दूल वह आपको करना पडेगा आप प्रतिज्ञा

कीजिये ॥ ३ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ मैं आज कल एक महा यज्ञमें दीक्षित हुआ-हूं कामरूपी दो राक्षस उसकी समाप्ति नहोते होतेही विघ्न करदेते हैं ॥ ॥ ४ ॥ उनका नाम सुबाहु व मारीचहै वह जैसे वीर्यवानहैं वैसेही अस्त्र शिक्षितहैं व्रतकी समाप्तिके समयही विघ्न करतेहैं ॥ ५ ॥ दुःखकी बात क्या कहूं जभी मैं यज्ञ कार्यमें नियुक्त होताहूं तभी वह यज्ञ वेदीपर माँसके टुकडे फेंक कर रुधिरकी वर्षा करतेहैं ॥ ६ ॥ जब हमारे यज्ञकी प्रतिज्ञा उनके ऐसा करनेसें भ्रष्ट होजातीहै तौ हमें केवल श्रमही श्रम होताहै इसकारण भग्नोत्साह होकर मैं यहां चला आयाहूं हे पार्थिव ! मैं उनको शाप देसक्ताहूं परन्तु इस यज्ञमें क्रोध करना वर्जितहै ॥ ७ ॥ कारण कि ऐसे यज्ञके साधन कालमें किसीको शाप नहीं देना चाहिये; हे राजोंमें सिंह अब आपसें यह प्रार्थनाहै कि सत्य पराक्रमी रामचन्द्रजीको जो ॥ ८ ॥ काक पक्ष धारण किये महावीर श्रेष्ठहैं उनको मेरे हाथमें सौंप दीजिये यह मेरे दिव्य तेजके प्रभावसें मुझसे रक्षित किये जाकर मेरे यज्ञकी रक्षा करनेमें समर्थ होंगे ॥ ९ ॥ मैं जान्ताहूं कि रामचन्द्रके हाथसे यज्ञ विद्वेषी निशाचर अवश्य मारे जायँगे और यह आप मान लीजिये कि मुझसें यह अनेक प्रकारके मंगल लाभ करेंगे इसमें कुछ सन्देह नहीं क्योंकि यह समर्त्थ हैं ॥ १० ॥ विशेषतः मैं वह अनुष्ठान करूंगा कि जिससें रामचंद्रजीका नाम त्रिलोकमें विख्यात होजाय आप निश्चय जानिये कि रामके सामने वह दो निशाचर कभी नहीं ठहर सकेंगे ॥ ११ ॥ मैं जान्ताहूं रामके अतिरिक्त उन दुष्टात्माओंको मारनेमें और कोयी समर्थ नहींहै यद्यपि पराक्रमसें अहंकारी होगये हैं तथापि पापी होनेके कारण कालहीके वशहैं ॥ १२ ॥ हे राजशार्दूल ! वह निशाचर किसी प्रकारसें रामकी बराबरी नहीं कर सक्ते जोहो आप किसी प्रकारकी चिन्ता पुत्रोंके लिये मतकीजिये ॥ १३ ॥ यज्ञकी दशरात्रितक मेरे निकट यज्ञ वैरी राक्षसोंका संहार करनेके लिये रामचन्द्रको भेज दीजिये मैं इन महात्मा रामचन्द्रजीके विक्रमको भली प्रकार जान्ताहूं कि यह विष्णु भगवानके अवतारहैं ॥ १४ ॥ और वशिष्ठादि अन्यान्य तापसगणभी रामचंद्रजीकी विलक्षण शक्तिको जान्तेहैं हे राजेंद्र यदि इस संसारमें धर्म और अक्षय यश लाभकी आपको कामनाहो ॥ १५ ॥ तौ रामचंद्रको मेरे कार्य्यके

लिये मुझको प्रदान करो हे काकुत्स्थ! यदि तुम्हारे मंत्री ॥१६॥ वशिष्ठादि मेरी प्रार्थनाका समर्थन करैं तौ रामचन्द्रको मेरे साथ भेज दीजिये ॥१७॥ मैं कहताहूं कि यह रामचन्द्र यज्ञकी दशरात्रिसें अधिक मेरे यहां रहैंगे अब आप ऐसा कीजिये जिससें मेरे यज्ञका समय वीत न जाय ॥ १८ ॥ आपका मंगलहो आप रामचन्द्रको मेरे साथ भेजदीजिये अकारण शोक नकीजिये; धर्मात्मा विश्वामित्रजी इस प्रकार धर्मानुगत वाक्य कहकर महातेजस्वी महा बुद्धिमान विश्वामित्रजी मौनावलम्बी हुए ॥१९॥ राजेन्द्र दशरथजी विश्वामित्रजीके यह वचन सुन ॥ २० ॥ अतिशय शोकसे मोहित हुये और चलायमान हुए तदन्तर चैतन्य लाभ करके भयभीतहो विपन्न भावसे बैठे रहगये ॥ २१ ॥

इतिसहृदयमनोविदारणंमुनिवचनंतदतीवशुश्रुवान् ॥ नरपतिरभवन्महान्महात्माव्यथितमनाःप्रचचालचासनात् ॥

नरनाथ इस प्रकार विश्वामित्रजीके मुखसें हृदय विदारण और मनके मथित करनेवाले वचनोंको सुन महा बुद्धिमान महात्मा अतिशय व्यथित और आसन च्युत होगये ॥ २२ ॥ इति श्री मद्रा० वा० आ० वा० एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशःसर्गः ॥

तच्छ्रुत्वाराजशार्दूलोविश्वामित्रस्यभाषितम् ॥
मुहूर्तमिवनिःसञ्ज्ञःसंज्ञावानिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

महीपति राजा दशरथजी विश्वामित्रजीके वचन सुन मुहूर्त भरतक मूर्च्छित रहे तदनन्तर संज्ञा प्राप्त करके यह बोले ॥१॥ हे राजर्षे! इस समय हमारे कमलसे नेत्रवाले राम बारह वर्षकेहैं राक्षसोंसें युद्ध करनेमें यह समर्थ नहींहैं ॥ २ ॥ मैं इन कई अक्षौहिणी सैनाका अधिपतिहूं इस सेनाको साथ लेकर मैं राक्षसोंसें संग्रामकरूंगा ॥ ३ ॥ यह सब अस्त्र विद्या निपुण महाबलवान वीर मेरे आधीनहैं यह राक्षसोंसें युद्ध करनेमें चतुरहैं अतएव रामको नलेजाइये ॥ ४ ॥ जबतक मेरी देहमें प्राण रहैंगे तबतक मैं धनुष धारण पूर्वक राक्षसोंसे युद्ध करकै आपके यज्ञकी रक्षा

करूंगा ॥ ५ ॥ मेरे उपस्थित रहनेसें निर्विघ्न आपके यज्ञकी रक्षा होगी अतएव मैं चलूंगा रामको नलेजाइये ॥ ६ ॥ मेरा राम बालकहै विशेष करके धनुर्विद्यादि पढी नहीं दूसरोंका बलाबल जान्ता नहीं अबतक अ-स्त्र चलानेंमें चतुर हुआ नहीं और न युद्धविद्या अच्छी तरह जानताहै॥ ॥ ७ ॥ विशेषतः राम उन राक्षसोंसें युद्ध करनेके लायक नहीं क्योंकि राक्षस माया युद्ध करतेहैं महाराज मैं रामके विना एक पल नहीं जीसक्ता ॥ ८ ॥ हे मुनिवर मेरे जीवन स्वरूप रामको आप नलेजाइये और यदि रामचन्द्रको आप लेही जाना चाहतेहैं ॥९॥ (सब सुत प्रिय मोहिं प्राणकी नांई । रामदेत नहिं बने गोसाई)॥तौ चतुरङ्गिनि सेना समेत मुझे भी साथ लीजिये, हे कौशिक ॥ इस समय मेरी उमर ६०००० साठ हजार वर्षकी हुईहै ॥ १० ॥ मैंने बडे कष्टसे रामको पायाहै अतएव रामको नलेजाइये चारों पुत्रोंमें रामकेही ऊपर मेरी भारी प्रीतिहै ॥ ११ ॥ विशेषतः सब पुत्रोंमें रामही बडे और प्रधानहैं अतएव उन्हें नलेजाइये मैं आपसें यह पूछताहूं कि वह राक्षस कौन और किसके पुत्रहैं ॥ १२ ॥ हे मुनिवर उनका आकार प्रकार व शक्ति कैसीहै और रामचन्द्र किस उपायसें उन-को जीत सक्तेहैं ॥१३॥ हे भगवान् मैं या मेरी सैना किसतरह उन माया-वी राक्षसोंसे संग्राम करनेमें समर्थ होगी. यह सब वृत्तांत मुझसें कहिये ॥ १४ ॥ मैं जान्ताहूं वह बडे बलवान्हैं उन सब दुष्टाचारियोंके निकट किस प्रकारसे स्थिति करनी होगी राजाकी बात सुनकर मुनिवर वि-श्वामित्रजी कहने लगे ॥ १५ ॥ पौलस्त वंशमें पैदा हुआ रावण नाम एक राक्षसहै वह ब्रह्माके वरसें बलीहो त्रिलोकीको सतारहाहै ॥ १६ ॥ विपुल बलशाली निशाचर गण सदा उसको घेरे रहतेहैं हे महाराज मैंने रावणका नाम सुनाहै वह राक्षसोंका राजाहै ॥ १७ ॥ व साक्षात् कुवेरका भाईहै विश्रवा मुनिका पुत्रहै वह यह विचारकर कि छोटे यज्ञोंको मैं क्या विध्वंस करूं ॥ १८ ॥ यज्ञध्वंस करनेके लिये सुबाहु और मारीच नाम महाबली दो राक्षसोंको भेज देताहै ॥ १९ ॥ तब मुनिवरके वचन सुनकर नृपवरने कहा कि मैं उस भयंकर दुरात्मा रावणसें संग्राम नहीं कर सक्ता ॥२०॥आप इस समय मेरे रामपर प्रसन्न हूजिये जान लीजिये कि आपही मुझ हतभाग्यके देवता व गुरुहैं॥२१॥जब देव, दानव, गन्धर्व, यक्ष व पन्नग

गण प्रभृति रावणके प्रतापको नहीं सहसके तब मनुष्यतो हैं ही क्या ॥ ॥ २२ ॥ वह रावण रणक्षेत्रमें वीर्यवानोंका वीर्यभी क्षय कर देताहै अतएव उसके और उसकी सेनाके साथ सामना करनेको मेरा हियावनहीं पडता ॥ २३ ॥ आप सेना सहित मेरे पुत्रके साथ उस रावणसे लडनेको समर्थ नहीं किस प्रकारसें मैं देवता ओंके समान रूपवाले संग्रामके नहीं जान्नेवाले रामको तुम्हारे साथभेजदूं ॥ २४ ॥ हे ब्रह्मन् ! मेरा राम बालकहै मैं उसे मारीच व सुबाहु सुन्द और उपसुन्दके पुत्रके साथ कभी संग्राम में नहीं भेजूंगा ॥ २५ ॥ मैं जान्ताहूं कि वह दोनों राक्षस आपके यज्ञमें विघ्न करतेहैं पर मैं उनके सामने रामको नहीं भेजसक्ता मारीच और सुबाहु बड़े बलवान् और अस्त्रविद्यामें निपुणहैं ॥ २६ ॥ आपकी इच्छा होनेसे बन्धु बान्धवों समेत मैं राक्षसोंसें युद्ध करसक्ताहूं अन्यथा मैं सबांधव सकुटम्ब आपकी शरणहूं ॥ २७ ॥

इतिनरपतिजल्पनाद्विजेंद्रंकुशिकसुतंसुमहा
न्विवेशमन्युः ॥ सुहुतइवमखेग्निराज्यसिक्तःस
मभवदुज्ज्वलितोमहर्षिवन्हिः ॥ २८ ॥

राजादशरथके ऐसे कातर वचन सुनके आशा भंग जानकर महर्षि विश्वामित्र ऐसे क्रोधसे प्रज्वलित होगये जैसे होमकी अग्नि सूखे काष्ठमें प्राप्तहुई घी छिडकनेसें अधिक भडक उठतीहै इसप्रकार महर्षि अग्निकी समान प्रदीप्त होगये ॥ २८ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे विंशःसर्गः ॥ २० ॥

एकविंशःसर्गः ॥

तच्छ्रुत्वावचनंतस्यस्नेहपर्याकुलाक्षरम् ॥
समन्युःकौशिकोवाक्यंप्रत्युवाचमहीपतिम् ॥ १ ॥

अनन्तर महर्षि विश्वामित्र दशरथजीके ऐसे स्नेहसाने वचन श्रवणकर क्रोधयुक्तहो राजासे बोले ॥ १ ॥ आप मेरे निकट प्रथम वचन देकर अब प्रतिज्ञाभंग करतेहैं, यह रघुवंशियोंके लिये अयुक्तहै और ऐसा करनेसें क्या आश्चर्यहै कि कुलका नाश होजाय ॥ २ ॥ यदि प्रतिज्ञा भंग और वंशध्वंस होनेमेंही आप राजीहैं तो मैं अपने स्थानको जाताहूं आप बन्धु

बान्धवों सहित सुखसे प्रतिज्ञा भंगकर समय व्यतीत कीजिये ॥ ३ ॥ उन बुद्धिमान विश्वामित्रजीके ऐसा क्रोध होनेसे सब पृथ्वी विचलित और देव लोक शंकित हुए ॥ ४ ॥ सब संसारको भयभीत जानकर उस समय श्रेष्ठ व्रतवाले धीर धारण करने वाले वशिष्ठजीने राजासे कहा ॥ ५ ॥ हे राजन् ! आप साक्षात् धर्मकीनाईं इक्ष्वाकु कुलमें जन्मेहैं आप श्रीमान् व धीमान्हैं ; आपको धर्मत्याग करना उचित नहीं ॥ ६ ॥ त्रिलोकमें यह वात विख्यातहै कि राजा दशरथजी बड़े धर्मात्माहैं इसकारण धर्मको त्याग करके अधर्मानुवर्त्ती होना आपका कर्तव्य नहींहै ॥ ७ ॥ यदि प्रतिज्ञा करके आप पालन नहीं करैंगे तौ जानलीजिये आपके किये सब पुण्यकर्म नष्ट होजांयगे, अतएव रामको भेजदीजिये ॥ ८ ॥ अग्नि जैसे अमृतकी रक्षाकरतेहैं; वैसेही रामचन्द्र अस्त्र जानतेहों या न जान्तेहों विश्वामित्र जीसे रक्षित होनेपर राक्षस इनका कुछ नहीं कर सकैंगे ॥९॥ रामचन्द्र साक्षात् धर्मस्वरूपहैं; वे लोकमें सबसे अधिक बलवान् विद्वान् और तपस्याके आश्रयस्थानहैं ॥ १० ॥ त्रिलोकीमें अनेकअस्त्रोंके जान्ने वाले यह एकहीहैं इनको चर अचरमें पृथ्वीपर कोई नहीं जानता न कभी जानेगा॥११॥ देवता, ऋषि, राक्षस, गन्धर्व, यक्ष, किन्नर व उरग गणतक रामको नहीं जानसके ॥ १२ ॥ यह विश्वामित्रजी जब राज्य करतेथे तब परम धर्मात्मा कृशाश्वके पुत्रोंने इन्हें सम्पूर्ण अस्त्र प्रदान किये ॥ १३ ॥ यह सब अस्त्र कृशाश्वके पुत्र प्रजापतियोंकी कन्याके पुत्रहैं यह अनेक प्रकारके रूपवालेहैं व महापराक्रमी तेजस्वी सबको जीतनेमें समर्थहैं ॥ १४ ॥ वे जया व सुप्रभा दक्षप्रजापतिजीके उत्पन्नहुईं जिन्होंने सैकडों अस्त्र शस्त्र परम कान्तिमान उत्पन्न किये ॥ १५ ॥ वर लाभ करके असुरोंके संहारार्थ जयाने पाँचसौ अस्त्र असुरोंकी सैना मारनेको उत्पन्न किये जिनका गुण अपरिमित और जिनका रूप अदृश्यहै ॥ १६ ॥ और पाँचसौही अस्त्र सुप्रभाने प्रसव किये यह सब अस्त्र दुर्द्धर्ष और बलसंपन्न हुये वे संहार नामसे ख्यातहैं ॥ १७ ॥ यह कुशिकनंदन महर्षि उन सब अस्त्र शस्त्रोंको जान्तेहैं इनके अतिरिक्त यह धर्मात्मा और नये नये दिव्यास्त्र बनासक्तेहैं ॥ १८ ॥ अधिकतौक्या इसी

कारणसे यह धर्मात्मा मुनि श्रेष्ठ राजर्षि भूत, भविष्यत्, वर्त्तमानकी वार्ता सब जानतेहैं ॥ १९ ॥ यह वीर्यवान् महातेजा व महायशस्वीहैं अतएव इनके साथ रामके भेजनेमें कोई सन्देह मनमें न कीजिये ॥ २० ॥ यह विश्वामित्र जी आपही उन निशाचरोंका नाश करसक्तेहैं केवल रामचन्द्रके उपकारार्थही आपसे उनको मांगतेहैं ॥ २१ ॥

इतिमुनिवचनात्प्रसन्नचित्तोरघुवृषभश्चमुमो
दपार्थिवः ॥ गमनमभिरुरोचराघवस्यप्रथि
तयशाःकुशिकात्मजायबुद्धया ॥ २२ ॥

वशिष्ठजीके यह कहने पर नरदेव दशरथजी प्रसन्न होगये तब वह विख्यात यश राजा कुशिकनन्दन के सहित रामके भेजनेमें सन्देह रहित होगये॥२२॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ०वा०एकविंशःसर्गः२१

द्वाविंशःसर्गः ॥

तथावसिष्ठेब्रुवतिराजादशरथःस्वयम् ॥ प्रहृ
ष्टवदनोराममाजुहावसलक्ष्मणम् ॥ १ ॥

वशिष्ठजीके यह कहने पर राजा दशरथजीने प्रसन्न होकर लक्ष्मण समेत रामचन्द्र जीको बुलाया ॥ १ ॥ तब राजा दशरथ व रानी कौशल्याजी रामचन्द्र जीका मंगलाचरण करनेलगे वशिष्ठजीभी मंगल पाठ करनेमें नियुक्त हुये ॥ २ ॥ फिर दशरथजीने दोनों पुत्रोंका शिर सूंघकर परम प्रीतिसे उन्हें विश्वामित्र जीके हाथ सौंपदिया ॥ ३ ॥ कमल नेत्र रामचन्द्रजीको विश्वामित्रजीके साथ देख धूल रहित समीर मन्द मन्द चलने लगा ॥ ४ ॥ रामके गमन समय पुष्पवृष्टि और दुन्दुभी ध्वनि होने लगी उन महात्माके जानेमें शंखका शब्द सम्पूर्ण अयोध्यामें छागया आगे आगे विश्वामित्र उनके पीछे महा यशस्वी रामचन्द्र उनके पीछे काकपक्षधारी धनुर्धारी लक्ष्मणजी गमन करनें लगे ॥ ६ ॥ दोनों भ्राता दोदो तूण बांधे दशो दिशाओंको शोभित करते महात्मा विश्वामित्रके पीछे पीछे चले मानों तीन शिरके सर्पहों ॥ ७ ॥ दोनों अश्विनी कुमार ब्रह्माजीके साथ जाते हुए जिसप्रकार शोभित हो-

तेहैं इसी प्रकार यह दोनों पराक्रमी लक्ष्मीसे दीप्यमान निन्दारहित वि-
श्वामित्रजीके साथ शोभित हुये ॥ ८ ॥ वह पैना खड्ग, दिव्य धनुष व
गोहके चमडेसे मढा हुआ विचित्र अंगुलि त्राण धारण किये विश्वामित्रजी-
के साथ गमन करनेलगे ॥ ९ ॥ राम लक्ष्मण कुमारका शरीर अतिशय
शोभितथा वह निन्दा रहित परस्पर अनिंद्रित शोभाको धारणकर गमन
करने लगे ॥ १० ॥ वह उससमय ऐसे शोभित हुये मानों कार्तिक व वि-
शाष शिवजीके साथ जातेहों अनंतर महर्षि विश्वामित्र अयोध्यासे दो-
कोश चल सरयूके दक्षिण किनारे उपस्थितहो ॥ ११ ॥ राम यह मधुर
नाम उच्चारण पूर्वक विश्वामित्रजी बोले तुम बहुत शीघ्र इस नदीके ज-
लसे आचमन करो समय मत विताओ ॥ १२ ॥ मुझसे बला व अतिब-
ला नामक मंत्र ग्रहण करो इसके ग्रहण करनेसें तुम्हें शान्तिहोगी ज्वर
या रूपकी विवर्णतादि नहीं होगी न किसी कार्यके करनेसे परिश्रम ही
होगा ॥ १३ ॥ निद्राभिभूत या चित्तकी विकलता रहनेसेभी राक्षस तु-
म्हें नहीं जीत सकेंगे, तुम्हारी भुजाओंके समक्ष धरातलमें कोई अपना
विक्रम नहीं दिखासकैंगे ॥१४॥ इन बला अतिबला नामक मंत्रोंके ग्रहण
करनेसे पृथ्वीमें ही क्या वरन त्रिलोकीमें तुम्हारी समान वीर्यवान दृष्टि नहीं
आवेगा ॥ १५ ॥ अधिक तौ क्याकहूं सौभाग्यमें कुशलतामें ज्ञानमें बु-
द्धिमें कोई तुम्हारी समान नहीं हो सकैगा ॥ १६ ॥ मेरी बला और अति-
बला नामक दोनों विद्याओंके लाभ करनेसे कोई तुम्हारे समान नहीं हो-
गा यह दोनों विद्या सब ज्ञानोंकी माताहैं हे नरोत्तम ! बला अतिबला पा-
ठ करनेमें भूंख प्यासभी नलगेगी॥१७॥१८॥तेजसमन्वित यह दोनों वि-
द्या पितामह ब्रह्माजीकी पुत्रीहैं इन दोनों विद्याओंको विधिपूर्वक पढनेसें
तुह्मारे यश फैलनेमें कुछ शंका नहीं रहेगी ॥ १९ ॥ हेकाकुत्स्थ ! तुम
इन विद्याओंको ग्रहण करनेके योग्यहो क्योंकि तुम सब गुणोंकी खानि-
हो इसमें सन्देह नहीं ॥ २० ॥ तपस्याके प्रभावसें यह दोनो विद्या मैंने
पाईहैं यह बहुत रूप धारण करसक्तीहैं । तदन्तर रामचन्द्रजीने प्रसन्न-
वदनहो आचमन किया और पवित्रहो ॥ २१ ॥ महर्षिमें जो त्रिकालज्ञहैं
यह दोनों विद्या पढलीं विद्याको प्राप्त करकै भीमविक्रम रामचन्द्रजी

शोभाको प्राप्त हुये ॥ २२ ॥ जैसे शरत् कालके सूर्य तेजवानहोतेहैं दशरथात्मज समस्त गुरुकार्य विश्वामित्रजीके ऊपर छोड मनमें सुखमान विश्वामित्र व लक्ष्मणजी सहित वह रात्रि सरयूपर व्यतीत करतेहुये ॥२३॥

दशरथनृपसूनुसत्तमाभ्यांतृणशयनेऽनुचितेतदोषिताभ्याम् ॥ कुशिकसुतवचोनुलालिताभ्यांसुखमिवसाविबभौविभावरी ॥ २४ ॥

यद्यपि अनुज सहित रामचन्द्रजी तृणशय्या पर सोतेथे जो उनके योग्य नहींथी परन्तु मुनिजीके मनोरम कथा कहनेसे उन्हें कुछ क्लेश नहीं हुआ सुतरां वह रात्रि सुखसे बीती ॥ २४ ॥ इ०श्री मद्रा० वा०आ०बा०द्वविंशःसर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशःसर्गः ॥

प्रभातायांतुशर्वर्यांविश्वामित्रोमहामुनिः ॥
अभ्यभाषतकाकुत्स्थौशयानौपर्णसंस्तरे ॥ १ ॥

अनन्तर रजनी बीत प्रभात होजानेपर महामुनि विश्वामित्रजी कुश के विस्तर पर सोते हुये रामचन्द्रजीसे बोले ॥ १ ॥ हे रामचन्द्रजी तुमसें कौशल्या पुत्रवती हुई प्रात सन्ध्या का समय उपस्थितहै अतएव उठकरः शौचक्रिया व आह्निककार्य करो ॥ २ ॥ राम लक्ष्मण महर्षिके यह उदार वाक्य श्रवण कर शय्या परित्यागपूर्वक स्नानान्तमें अर्घ्य आदि प्रदानकर गायत्री जप करने लगे ॥ ३ ॥ महावीर राम लक्ष्मण आह्निकादि सम्पन्न करके महर्षि विश्वामित्रको अभिवादन पूर्वक हर्ष सहित आगे चलनेका उद्योग करने लगे ॥ ४ ॥ उन दोना महावीरोंने जाते २ देखा कि त्रिपथ गामिनी गंगाजीके साथ सरयू मिल गईहै ॥ ५ ॥ इस शुभसंगमके स्थलमें एक आश्रम देखा जिस्में बहुत ऋषि हजारों वर्षसे तपस्या करतेथे ॥ ६ ॥ उसको देख आनन्द मनसें रामचन्द्रजी महात्मा विश्वामित्रजीसें यह वचन बोले ॥ ७ ॥ हे भगवन् ! यह पवित्र आश्रम किस काहै? और कौन यहां वास करताहै? इसके जान्नेको हम दोनों कौतूहला-

क्रान्त हुएहैं ॥ ८ ॥ विश्वामित्रजी यह सुन कुछेक हँस रामचन्द्रजीसे बोले हेराम ! जिसका यह आश्रम था वह कहताहूं सुनो ॥ ९ ॥ जिसको सब कामदेव कहतेहैं, वह देवता यहां मूर्तिमानथे एकसमय यहां नियम पूर्वक महादेवजी तप करतेथे ॥ १० ॥ जब कि उन्होनें अपना विवाह कियाथा व सब सुरगणोंके संग विवाह किये चले जातेथे उससमय मन्मथने चाहाकि भूतनाथका भी मन मथित करैं.॥११॥परन्तु वहां मीनके तनुका बल नहीं चला शिवजोनें नयन खोल हुम् ऐसा शब्द करदिया व कोप करके उसकी ओर देखा वह उस्सेही कामदेवका अंग भस्म होगया और उस दुर्मतिके सब शरीर विखर गये ॥ १२ ॥ जब महादेवजीकी क्रोध दृष्टिसे कामदेवके अंग भस्म होगये तबसें वह अतनु होगया ॥ १३ ॥ हेराघव ! उसदिनसें कामदेवका नाम अनंग होगयाहै जिस स्थानमें भागते हुये उसके अंग गिरेथे वहदेश अंगदेश करके गिना गयाहै ॥ १४ ॥ इस आश्रममें रहने वाले धर्म परायण मुनिगण आगेहीसे कामदेवके शिष्यहैं ॥ १५ ॥ हे शुभदर्शन राम अब हम इस पुण्य संगम में रात्रि व्यतीतकर कल [illegible] उतरेंगे ॥ १६ ॥ अतएव हम पवित्र भावसें इस पुण्य आश्रममें प्रवे[illegible] करें यहां वास करना मुझे श्रेष्ठ बोध होताहै, यहां रहकर सुखसें रात्रि व्यतीत करैंगे ॥ १७ ॥ यह कहकर सबनें वहां स्नान,जप, व अग्निमें हो[illegible] किया [illegible]श्रमके ऋषि गणने यद्यपि इन्हें नहीं देखाथा तौभी दिव्य [illegible] ॥ १८ ॥ इनकी कथा वार्त्ताका मर्म जानकर बडे प्रीतिहुए और [illegible]र प्रथम विश्वामित्र जीको अर्घ्य व पाद्यादि और अतिथि सत्कारकी सामग्री प्रदानकी ॥ १९ ॥ फिर पीछे मुनियोंने राम व लक्ष्मण जीका उचित सत्कार किया उन्होंनें सत्कारको प्राप्तहोकर नाना कथा वार्त्ता सुनकर प्रसन्नहुये ॥२०॥ फिर विश्वामित्र आदि सब ऋषि इकट्ठे होकर संध्या करने लगे फिर वे अच्छे व्रतवाले मुनि इन्हें अपने आश्रममें लिवालाये ॥ २१ ॥

न्यवसत्ससुखंतत्रकामाश्रमपदेतथा ॥ कथा
भिरभिरामाभिरभिरामौनृपात्मजौ ॥ २२ ॥

रमयामासधर्मात्माकौशिकोमुनिपुंगवः ॥ २३ ॥

वह इस प्रकार उस कामाश्रममें विश्वामित्र व और मुनियों समेत वसे ऋषियोंके सहित अनेक मनोहर कथा कहकहाकर मुनिश्रेष्ठ धर्मात्मा विश्वामित्रने शोभायमान रामचंद्र लक्ष्मण को प्रसन्नकिया ॥ २२ ॥ इ० श्री मद्रा०वा०आ०बा० त्रयो विंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः ॥

ततःप्रभातेविमलेकृताह्निकमरिंदमौ ॥ वि श्वामित्रंपुरस्कृत्यनद्यास्तीरमुपागतौ ॥ १ ॥

अनन्तर प्रभातहोनेपर वे दोनों भाई आह्निकादिकर्म समाप्त करके विश्वामित्रजीके साथ नदीके तीरमें उपस्थित हुये ॥ १ ॥ इस अवसरमें आश्रमके रहनेवाले वे महात्मा व्रतधारण करनेवाले मुनि एक सुन्दर नौका लाकर विश्वामित्रजीसे बोले ॥ २ ॥ आप दोनो राज कुमारों को संगले इस नौकामें बैठिये.अब देर नकरके शीघ्र यात्रा कीजिये आपके मार्ग विघ्न रहित हैं ॥३॥ विश्वामित्र जी उनके कहनेपर सम्मतिहो व मुनि लोगोंकी पूजाकर दोनो राजपुत्रों समेत सागरगामिनी गंगाके पार होने लगे ॥ ४ ॥ जब नौका भागीरथीके बीचो बीचमें पहुँचा उस समय तरंग सम्बन्ध वर्द्धित तुमुल शब्द श्रवण गोचरहोने लगा ॥ ५ ॥ महातेजवान् रामचंद्रजी गंगाके बीचमें उस शब्दके जान्नेकी इच्छासे अनुज सहित ऋषिसे कहने लगे कि इस शब्द होनेका क्याकारणहै ॥६॥ हेमुने! जलराशिको भेद करताहुआ यह तुमुल शब्द कैसा होताहै ? ऐसे रामके कौतूहल समय वचन सुनकर विश्वामित्रजी ॥ ७ ॥ धर्मात्मा उस शब्दके होनेका कारण कहने लगे कि पूर्वकालमें ब्रह्माजीने कैलाश पर्वत पर मनसे एक दिव्य सरोवरबनाया ॥ ८ ॥ हेमनुष्योंमें सिंह रामचंद्रजी इसीसें तिसका नाम मानस सरोवर हुआ उस्से जो नदी निकलीहै वही अयोध्या के नीचे वहतीहै उसकाही नाम सरयूहै ॥ ९ ॥ यह ब्रह्माजीके शरसे निकलीहै इस्से अतीव पुण्यकी देनेवालीहै यह सरयूका जल यहां गंगाजीमें आकर गिरताहै देखो यह उसकाही तुमुल

शब्दहै ॥ १०॥ यह देखो इन दोनों नदियोंका जल कैसा उछल रहाहै तुम चित्त लगाये इन दोनो नदियोंको प्रणाम करो यह सुनकर उनदोनो धर्मात्मा ओंनें प्रणाम किया ॥ ११ ॥ अनन्तर दक्षिण किनारे पहुंच नाव परसे उतर वे बडे पराक्रमी तीनोंजन मंद गतिसे जाने लगे जाते जाते सामने एक निबिड अरण्य दृष्टिगोचर हुआ ॥ १२ ॥ अतएव साथ चलते २ तब रामचन्द्रजीनें विश्वामित्रजीसें कहा यह वन कैसा दुर्गमहै झिल्लीका झनकार इसमें होरहाहै ॥ १३ ॥ भयानक हिंसक जन्तु व बाज दारुण शब्द कर रहेहैं अनेक प्रकारके पक्षिगणोंके नादसे यह वन–गूंज रहाहै ॥ १४ ॥ इधर उधर सिंह व्याघ्र वराह हाथी भी इसमें दौड रहेहैं खैर असगन्ध, कुम्भी, वेल त्युँदुआ पाडरि ॥ १५ ॥ व वेर आदि नाना प्रकारके पेड इस्में सघन लगेहैं हेमुने! सो मैं आपसें जाना चाहताहूं कि यह वन किसकाहै ॥ १६ ॥ यह बात सुन महातेजस्वी विश्वामित्रजी बोले! हे वत्स! जिसका यह निबिड वनहै. उसका परिचय श्रवण कीजिये हे नरोत्तम पूर्वमें यह जनपद ॥ १७ ॥ देव रचित सुख संपत्ति युक्त मलद व कारुष नामसें विख्यातथे आगे जब इन्द्र वृत्रासुरको मार मलसें दूषित हो ॥ १८ ॥ क्षुधार्त व ब्रह्महत्यामे लिप्त हुयेथे तब इन्द्रका मलिन भाव देखकर तपोधन ऋषि और देवताओंने ॥ १९ ॥ गंगा जलके भरे कलशों से स्नान करा उनका मलदूर करते हुये देवता व ऋषि इस भूमिमें इन्द्रका मल व क्षुधा अर्थात् कारुष ॥२०॥ छुटा देखकर अति हर्षित हुये जब इन्द्रके शरीर का मैल छुटा तब इन्द्र विशुद्ध अवस्थाको प्राप्तहो पूर्ववत् होगये ॥ २१ ॥ प्रसन्नहो इस स्थानको यह धन धान्य पूर्ण जन पद विख्यात तीनलोकमें होगा यह वर दिया ॥ २२ ॥ व हमारे अंगोंके मल व कारुष धारण करनेसें इनका मलद व कारुष नामहोगा देवतालोग इन्द्रका यह वाक्य श्रवण करके साधु २ करनेलगे ॥ २३ ॥ इन देशोंकी इन्द्रकी करी हुई ऐसी प्रजाहुई हे राजकुमार! पूर्वकालमें यह दोनो जनपद मलद व कारुष धनधान्यसें ॥ २४ ॥ अतिशय समृद्ध शालीथे कुछ दिन बीतने पर कामरूपिणी एक यक्ष पत्नीने इनपर अधिकार किया ॥ २५ ॥ उसका नाम ताडका वह हजार हाथियोंका बल रखतीहै वह सुंदकी भार्याहै आपका कल्याणहो ॥ २६ ॥ मारीच राक्षस इसकाही पुत्रहै वह मा-

रीच इन्द्र समान बलवान्है इस राक्षसके बडे २ बाहु बडा भारी शिर व बडा मुँह और सब देहहै ॥ २७ ॥ यह भैरव निशाचर नित्य प्रजा पुंजोंको सताया करताहै इसनेही पहले कहे हुये दोनो जनपदोंका नाश कियाहै ॥ २८ ॥ दुष्टचारिणी ताडकानेही मलद व कारुष जनपदोंको उजाडाहै वही ताडका अब आधेयोजनसे अधिक मार्ग रोके पड़ी रहतीहै ॥ २९ ॥ हमें उसी ताड़का वनमें होकर जाना पडेगा अतएव तुम अपने भुज बलके प्रभावसे इस दुष्टनीका प्राण संहार करो ॥ ३० ॥ मेरी आज्ञासे तुम इस स्थानको निष्कंटक करदो- यहां ताडकाके भयसे कोई आनेका साहस नहीं करता ॥ ३१ ॥

यक्षिण्याघोरयारामउत्सादितमसह्यया ॥
एतत्तेसर्वमाख्यातंयथैतद्दारुणंवनम् ॥ य
क्ष्याचोत्सादितंसर्वमद्यापिननिवर्तते ॥ ३२ ॥

विकटाकार यह राक्षसी इस वनका नाश किये डालतीहै जिस्से यह वन भयावना दृष्टि आताहै यह मैंने तुमसे सब कहा अबतक यह निशाचरी वनके उजाडनेसें निवृत्त नहीं होती ॥ ३२ ॥ इ० श्रीमद्रा० वा० आ० वा० चतुर्विंशःसर्गः ॥ २४ ॥

पंचविंशःसर्गः ॥

अथतस्याप्रमेयस्यमुनेर्वचनमुत्तमम् ॥ श्रुत्वा
पुरुषशार्दूलःप्रत्युवाचशुभांगिरम् ॥ १ ॥

उन उपमारहित विश्वामित्रजीके यह वचन श्रवणकर पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्रजी सुन्दर वाणीबोले ॥ १ ॥ हे मुनीश्वर मैंने सुनाहै कि यक्ष जातिमें रणवीर्य साधारण होताहै अतएव मैं आपसें यह पूंछने चाहताहूं कि इस अबला निशाचरीमें हजार हाथीका बल कैसे हुआ॥२॥बडे पराक्रमी रामचन्द्रजीकी यह उक्ति सुनकर विश्वामित्रजी प्रसन्नहो लक्ष्मण सहित शत्रुओंके मारनेवाले रामचन्द्रसे बोले ॥ ३ ॥ कि जिस कारणसे ताडका राक्षसीमें अमित बल हुआहै वह कहताहूं तुम श्रवण करो ॥ ४ ॥ यह अबलाभी जिस प्रकार वरदानके प्रभावसे इतना बल धारण करतीहै पूर्वकालमें सुकेतुनाम एक महावीर्य्यवान् यक्षथा उसके कोई सन्तान

नथी वह अच्छे आचरण वालाथा इसकारणसें घोर तप किया हे राम तब यक्षको ॥ ५ ॥ तपस्यासें प्रसन्नहो ब्रह्माजीने उसे ताड़का नाम्नी कन्या प्रदानकी ॥ ६ ॥ ब्रह्माजीनें उस कन्याको हजार हाथीका बलदिया पुत्र इतने बल वाला इसकारण नहीं दिया कि इतना बल पाकर कदाचित् वह देशको सतावै ॥ ७ ॥ क्रमसें बाल्य काल बिताकर कन्या यौवनावस्थाको प्राप्त हुई, तब उस लावण्य मयी ललनाके साथ जम्भके बेटे सुन्दका विवाह होगया ॥ ८ ॥ कुछ समय बीत जानेपर इस यक्षिणीके गर्भसें दुर्धर्ष राक्षस मारीचका जन्म हुआ शापवश मारीचको राक्षस योनि मिली ॥ ९ ॥ किसी कारण वश महर्षि अगस्त्यजीके हाथसे सुन्द मारागया वैसेही ताडका अपने पुत्र मारीच सहित मुनिवर को मारनेके लिये दौडी ॥ १० ॥ जब उस ताडकाने लाल नेत्रकर उस मुनिपर आक्रमण किया और गर्जती हुई खानेको दौडी भगवान् अगस्त्यजी उसको अपने ऊपर आती हुई देख ॥ ११ ॥ तब मुनिने मारीचको तो यह शापदिया कि तू राक्षस होगा और ताडकाकोभी बडेक्रोधसे शापदियाकि ॥१२॥ तूभी विकट मुख व विकृत भावसें नर शोणित पीनेंको दौडीथी इसकारण तेराभी यह सुन्दर शरीर राक्षसीकेसा शरीर होजाय ॥ १३ ॥ अब वही निशाचरी ऋषिके शापसें मारे क्रोधके उन्हीका आश्रम उजाड़े डालतीहै ॥ १४ ॥ हे राघव वह निशाचरी घोर अनिष्ट कर रहीहै तुम उस विपुल विक्रमा ताडकाको मार डालो ॥ १५ ॥ हे रघुनंदन तुम्हारे सिवाय त्रिलोक में कोई पुरुष शापसे मोहित हुई उस राक्षसीको नहीं मारसक्ता ॥ १६ ॥ हे नरवर! स्त्रीवधके विषय में तुम कोई चिन्ता मतकरना क्योंकि राज कुमारोंको चारों वर्ण का हित करना चाहिये ॥ १७ ॥ नृशंसहो वा अनृशंस पापजनकहो या पुण्यजनक, प्रजाके लिये सबही कार्य्य राजाको करने ॥ १८ ॥ क्योंकि राज कार्यमें नियुक्त मनुष्योंका यही सनातन धर्महै अतएव हेकाकुत्स्थ! तुम अधर्मचारिणी निशाचरीको मारही डालो इस राक्षसीमें धर्मका लेशभी नहींहै॥ १९ ॥मैने सुनाहै कि पूर्वकालमें विरोचन सुता मन्थराने पृथ्वीका नाश करने की चेष्टाकीथी तब राजा इन्द्रने उसका संहार किया ॥२०॥ महर्षि शुक्राचार्यकी माताने दैत्योंका कार्य साधन करनेके लिये देवेन्द्र-

के विनाशकी वासनाकीथी किन्तु स्वयं भगवान् नारायणने उसको मार डाला ॥ २१ ॥

एतैश्चान्यैश्चबहुभीराजपुत्रैर्महात्मभिः ॥ अ
धर्मसहितानार्योहताःपुरुषसत्तमैः ॥ तस्मा
देनांघृणांत्यक्त्वाजहिमच्छासनान्नृप ॥ २२ ॥

हे राघव! इस प्रकार देवगण व अनेक धार्मिक श्रेष्ठ राजाओंने अधर्म चारिणी स्त्रियोंका वध कियाहै, अतएव घिन छोडकर मेरे नियोगसें इस निशाचराङ्गनाका प्राण संहार करो ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा० आ० बालकांडे पंचविंशःसर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशःसर्गः ॥

मुनेर्वचनमक्लीबंश्रुत्वानरवरात्मजः ॥
राघवःप्रांजलिर्भूत्वाप्रत्युवाचदृढव्रतः ॥ १ ॥

महर्षि विश्वामित्रजीके वीरतासे भरे ऐसे वचन सुनकर दृढ व्रत रामचन्द्रजी कृताञ्जलि पुट हो बोले ॥ १ ॥ पिताकी आज्ञा व वचन देनेके गौरवसे आप जो मुझे करनें कहेंगे मैं निःशंक चित्तसे उसे करनेको तैयारहूं ॥ २ अयोध्यामें सभाके बीच वशिष्ठादि गुरुओंके मध्यमें जो पिता महात्माजीने मुझे आज्ञा दीहै उसके अनुसार मैं आपके कार्यमें अवहेला नहीं करूंगा ॥ ३ ॥ सो मैं पिताके वचन सुन व वेद जानने वाले आपकी आज्ञासें निश्चयही उस निशाचरीका प्राण लेनेके लिये उसके सन्मुख हूंगा ॥ ४ ॥ गो ब्राह्मण के हितार्थ व देशके उपकारार्थ मैंने महातेजस्वी आपके वचन शिरोधार किये ॥ ५ ॥ यह कहकर रामचन्द्रजीने दृढ मुष्टिसे शरासन ग्रहण किया और धनुषकी टंकारसें दशोंदिशा समाच्छन्न करने लगे ॥ ६ ॥ उस टंकारके विकट शब्दसें ताडका वनके सब वनवासी जीव चकित व शंकितहो उठे शब्द सुन्तेही निशाचरीभी कुपित व मोहित होगई ॥ ७ ॥ तदनन्तर क्रोधमें भरके जहांसें शब्द आयाथा उसे लक्ष्य कर उसी ओर दौडने लगी ॥ ८ ॥ तब रामचन्द्रजी विकटाकार विकृत मुख क्रोध करते हुये ताडका राक्ष-

सीको दौडी आती देख जिसका बडा शरीरथा और बूढीथी लक्ष्मणजीसें बोले॥९॥ हे भइया! इस यक्षनीका भयंकर दारुण शरीर और रूप-तो देखो वास्तविक इस मूर्तिको देख सबकाही हृदय कांप जाय ॥१०॥ तुम देखो कि दूरसेही इस कठिनता से वशमें आनेवाली माया जानने वा-लीके नाक कान काटकर लौटाये देताहूं ॥ ११ ॥ यह स्त्रीहै सुतरां इसके वध करनेको मेरी इच्छा नहीं होती बस मैं यही चाहताहूं कि इस का पराक्रम रोध करदूं ॥ १२ ॥ रामचंद्रजी यह बात कहही रहेथे कि इतनेमें वह निशाचरी क्रोधसे मूर्छितहो दोनों हाथ फैलाये तर्जन गर्जन करते २रामचन्द्रजीके सामनें आही गई॥१३॥ तब विश्वामित्रजीने हुङ्कार पूर्वक उसको फटकारा व राम लक्ष्मणको आशीर्वाद दिया कि आपकी जयहो स्वस्तिहो ॥ १४ ॥ तब ताडकाने आकाशमें बहुत धूल वर्षाकर धूलके प्रभावसे एक मुहूर्त्त राम लक्ष्मणको मोहित करदिया ॥ १५ ॥ तदनन्तर मायाबलसे शिला वर्षणकर रामचन्द्रजीको व्यस्त कर दिया तब रघुनाथजी क्रोधित हुये ॥ १६ ॥ रामचन्द्रजीने बाणोंकी वर्षासें उस-की शिला वृष्टि निवारणकर बाणोंसेही उसके दोनों हाथ काट डाले ॥ ॥ १८ ॥ कामरूपिणी राक्षसी बहुतसें रूप धारणकर अंतर्ध्यान होगई व राक्षसीने माया करकै रामचन्द्रजीको मोहित करदिया ॥ १९ ॥ अन-न्तर निरन्तर शिला वर्षण पूर्वक भयंकर भावसें इधर उधर घूमने लगी और शिला वर्षाकर अनेक प्रकार उन दोनोपर चोट करने लगी ॥ ॥ २० ॥ यह देख विश्वामित्रजीने रामचन्द्रसें कहा कि इस दुष्टा नि-शाचरीको स्त्री जानकर वध करनेमें घृणा मत करो ॥ २१ ॥ यज्ञ विद्वेषिनी यह निशाचरी धीरे २ और माया फैलावेगी अतएव संध्या हो-नेसें पहिलेही तुम इसको मारडालो ॥ २२ ॥ क्योंकि संध्या कालमें राक्षस अजेय होजातेहैं, यह श्रवणकर रामचन्द्रजीनें पत्थर वर्षाती राक्षसीको ॥ २३ ॥ तब रामचन्द्रने शब्दवेधीपन दिखाकर बाणोंकी वर्षासें उसकी गति रोकदी वह मायाके बलसें युक्त जब बाणोंके जालसे रुकगई ॥ २४ ॥ तब राक्षसी गुप्तभाव छोडकर वेगसें गर्जन करती हुई राम और लक्ष्मणके ऊपर दौडी उस समय वह इन्द्रके वज्र समान बोध होने लगी ॥ २५ ॥ रामचन्द्रजीने आते हुये देख एक बाण उसके हृदयमें मारा जिसके लगते-

ही वह गिरी और मरगई इन्द्रने आय उस भयानक राक्षसीको मरी देख ॥ ॥ २६ ॥ साधु २ किया व देवताभी आनन्द प्रकाश करने लगे तब सहस्र लोचनने परम प्रसन्न हो कहा ॥ २७ ॥ इन्द्र सहित देवता व मरुत गण विश्वामित्रजीसे प्रसन्नहो बोले हे विश्वामित्रजी आपके कार्यसें हम उत्कण्ठा रहित हुये तुम्हारा मंगलहो ॥ २८ ॥ इस कर्मसे रामचन्द्रसें हम बहुत सन्तुष्ट हुये आप इस समय रामचन्द्रजीपर परम स्नेह दिखाइये प्रजापति कृशाश्वके अस्त्र रूपी जो सत्य पराक्रमी पुत्रहैं वह ॥ २९ ॥ तपस्वी बल युक्त रामचन्द्रजीकोही देदीजिये क्योंकि इसके देने योग्य यहीहैं व तुम्हारी सेवा शुश्रूषाके करनेवालेहैं ॥ ३० ॥ यह दोनों राजकुमार देवताओंका बडा कार्य साधन करैंगे यह कह देवता गण सन्तुष्टहो विश्वामित्रजीका आदर सत्कारकर देवलोकको चले गये ॥ ३१ ॥ इधर संध्याहो आई तब महर्षि विश्वामित्रजी ताडकाके मारे जानेसे अति सन्तुष्टहो ॥३२ ॥ श्रीरामचन्द्रजीका शिर सूंघकर कहने लगे हे सौम्य ! हम आजकी रातको यहीं व्यतीत करैंगे ॥ ३३ ॥ व प्रभात होतेही हम अपने आश्रमकी ओर चलेंगे विश्वामित्रजीके यह वचन सुन रामचन्द्रजी प्रफुल्ल हुये ॥ ३४ ॥ वह रात्रि तीनो जनोंने उस ताडकाके वनमेंही विताई और उसी दिनसें वह वन उपद्रव रहित होगया. अधिक क्याकहैं तबसें वहां चैत्ररथ वनकी समान मनोहर शोभा होगई ॥ ३५ ॥

निहत्यतांयक्षसुतांसरामःप्रशस्यमानः
सुरसिद्धसंघैः॥उवासतस्मिन्मुनिनासहैव
प्रभातवेलांप्रतिबोध्यमानः ॥ ३६ ॥

इस प्रकार रामचन्द्रजी उस यक्षकी कन्या ताडकाको संहारकर व देवताओंकी प्रशंसा ग्रहण पूर्वक मुनिके सहित उस रात्रिको वहीं रहे और रात्रि व्यतीतकर प्रातही जागे ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः॥

अथतांरजनीमुष्यविश्वामित्रोमहायशाः ॥

प्रहस्यराघवंवाक्यमुवाचमधुरस्वरम् ॥ १ ॥

रजनी प्रभातहोने पर महा यशस्वी महर्षि विश्वामित्रजी कुछ हँसते हुये मधुर वाक्यसे यह बोले ॥ १ ॥ हेराजपुत्र!मैं तुमसे वहुत प्रसन्न हुआहूं तुम्हारा मंगलहो मैं तुम्हें सब अस्त्र दूंगा॥२॥इन सब अस्त्रों का प्रभाव ऐसाहै कि देवता, असुर, गन्धर्व तक तुम्हारे सामने लडने को आवें तौ तुम उनको भी इन अस्त्रोंके प्रभावसे परास्त कर दोगे ॥ ३ ॥ जो हो मैं तुम्हें सब दिव्य अस्त्र व दिव्यदंड चक्रादि प्रदान करूंगा ॥ ४ ॥ हेवीर धर्म! चक्र, कालचक्र, विष्णु चक्र तथा उग्र इन्द्रचक्र ॥ ५ ॥ हेनरश्रेष्ठ वज्र अस्त्र शिव शूल, ब्रह्म शिर, ऐषीकास्त्र ॥ ६ ॥ हे बडी बाहोंवाले मैं तुमको ब्रह्मास्त्र देताहूं हे काकुस्थ कौमोदकी और शिखरी नाम्नी दो प्रदीप्त गदा॥७॥ हे नर शार्दूल प्रदीप्तमान धर्मपाश व कालपाश आपको देताहूं ॥ ८ ॥ वरुण पाश उत्तम अस्त्र आपको देताहूं शुष्क व आर्द्र नामक दो अशनि अर्थात् वज्र ॥ ९ ॥ पिनाकास्त्र देताहूं नारायणास्त्र और शिखर नाम वाला बडा श्रेष्ठ आग्नेयास्त्र देताहूं ॥ १० ॥ मथन नाम वायवास्त्र हेराघव तुमको देताहूं हयशिर और क्रौञ्च अस्त्र देताहूं हे राम दो शक्तियें आपको देताहूं कंकाल, मूषल, कापाल व किंकिणी लीजिये ॥ १२ ॥ यह सब अस्त्र राक्षसोंके संहारार्थ प्रदान करूंगा; तदनन्तर वैद्याधरास्त्र नन्दन नामवाला ॥ १३ ॥ असिरत्न हे बडीबाहों वाले राजपुत्र! गान्धर्वास्त्र मोहनास्त्र ॥ १४ ॥ हेराघव! सौम्य, प्रस्वापन, प्रशमन अस्त्र आपको देताहूं सौम्य वर्षण, शोषण अस्त्र तथा संतापन और विलापन अस्त्र ॥ ॥ १५ ॥ शत्रुओंको मद करानेवाला दुर्द्धर्ष कामोत्पन्न करने वाला मदनास्त्र और मानव नामवाला गंधर्वास्त्र ॥ १६ ॥ मोहन नामक भाला पैशाचास्त्र, हे मनुष्योंमें सिंह राजपुत्र यह आप ग्रहण कीजिये ॥ १७ ॥ तामसास्त्र, सौमनास्त्र जो वडे बल युक्तहैं हे नृपपुत्र सम्वर्त दुर्द्धर्ष मौसलास्त्र ॥१८॥हे महाभुज सत्यास्त्र इसी प्रकार मायास्त्र शत्रुके तेजको खैंचने वाला सौरास्त्र ॥ १९ ॥ शिशिरास्त्र और दारुण ताष्ट्र और भग अर्थात् सूर्यका अस्त्रभी यह महा भयंकरहै इस्से शीत दूरहोताहै ॥ २० ॥ हे महा भुजावाले रामचन्द्रजी हे राजपुत्र! इन कामरूपी परम उदार महाबली

अस्त्रोंको मुझसें ग्रहण कीजिये ॥ २१ ॥ तदनन्तर यह बात कह कर मुनिजीने पूर्वमुख बैठ प्रसन्न मनसे रामचन्द्रजीको वह मंत्र मय सब अस्त्र देदिये ॥२२॥ जो सब दुर्लभ अस्त्र देवताओंकोभी दुर्लभथे वही सब अस्त्र मुनिजीने रामचन्द्रजीको देदिये ॥२३॥जब अस्त्र देनेके समय विश्वामित्रजी ध्यान जप करने लगे वैसेही अस्त्रसमूह अपना २ रूप धारण कर रामचन्द्रजीके सन्मुख उपस्थित हुये ॥ २४ ॥ सब अस्त्रोंने प्रफुल्ल मनसे हाथ जोड रामचन्द्रजीसे कहा हे रामचन्द्र ! हमसब आपके आज्ञा कारी दासहैं ॥ २५ ॥ आपका कल्याणहो हमको क्या आज्ञाहै जो आप कहैंगे सोकरैंगे उनमहाबलियोंके यह कहने पर प्रसन्नता पूर्वक रामचन्द्रजी बहुत प्रसन्न हुये ॥ २६ ॥ रघुनाथजीने एक २ को अपने कर कमलसे स्पर्शकर सबको ग्रहण किया व कहा कि हे अस्त्रो ! जब मैं स्मरणकरूं तब उपस्थित होजायाकरो तुम सब मेरे मानसीहो ॥ २७ ॥

ततःप्रीतमनारामोविश्वामित्रंमहामुनिम् ॥
अभिवाद्यमहातेजागमनायोपचक्रमे ॥ २८ ॥

तदनन्तर लोकमित्र महातेजस्वी रामचन्द्रजी विश्वामित्रजीको प्रणामकर आगे चलनेका उद्योग करने लगे ॥ २८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे सप्तविंशःसर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशः सर्गः ॥

प्रतिगृह्यततोस्त्राणिप्रहृष्टवदनःशुचिः॥
गच्छन्नेवचकाकुत्स्थोविश्वामित्रमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

तदनन्तर रामचन्द्रजी पवित्रभावसें अस्त्रग्रहण करके जाते हुये प्रफुल्लहो विश्वामित्रजी से बोले ॥ १ ॥ हे भगवन् मैं अस्त्र ग्रहण करके देवताओंसेभी दुर्द्धर्ष होगयाहूं परन्तु अस्त्रका संहार करना मैंने अब तक नहीं जाना कृपा करकै बताइये ॥ २ ॥ रामचन्द्रके ऐसा कहने पर महातपस्वी धैर्यशाली सुव्रत विश्वामित्रजीने रामचन्द्रजीको मंत्र देकर कहा ॥ ३ ॥ तुम सत्यवान् सत्यकीर्ति पराङ्मुख प्रतिहार तर धृष्टिरभ अवांमुख ॥४॥ लक्ष्य अलक्ष्य, विमोच, दृढ नाभ,सुनाभ,दशाक्ष,शत वक्र,दशशीर्ष, शतो

दूर ॥५॥ पद्मनाभ, महानाभ, इन्दुनाभ, स्वनाभ, ज्योतिष, शकुन, विमल, वैराश्य॥६॥यौगन्धर, विनिद्र, दैत्य, प्रमथन, शुचिबाहु,महाबाहु, निष्कलि, विरुचि, अर्चिमाली, धृतिमाली, वृतिमान्, रुचिर ॥७॥ पित्र्य, सौमन, सविधूत, मकर, पर वीर, रति, धन, धान्य ॥ ८ ॥ कामरूप, कामरुचि, मोह, आवरण, जृम्भक, सर्पनाथ, पन्थान, व वरुण ॥९॥ हे रामचन्द्र! इनसब कृशाश्व पुत्र, सम्भूत, दीप्तिशील, व कामरूपी, अस्त्रोंको तुम ग्रहण करो, तुम्हारा, मंगलहो तुम्हीं इनको ग्रहण करने योग्य पात्रहो ॥ १० ॥ रघुवीरने प्रसन्नहो बहुत अच्छा कहकर उन सबको ग्रहणकिया यह सब सुखप्रद अस्त्र दिव्य मूर्त्तिमान् ॥ ११ ॥ देखनेमें बहुतसारे अङ्गारतुल्य कुछ धुयेंकी समान कोई २ चन्द्र सूर्यकी समान हाथ जोडे व माथा झुकायेथे ॥ १२ ॥ वह सब अस्त्र हाथ जोड कर रामचन्द्रजीसे मधुरवचन बोले, हे नरश्रेष्ठ! हम आपके आगे उपस्थितहैं कहिये हमको क्या आज्ञा होतीहै! क्या आपका कार्य करैं ॥ १३ ॥ रामचन्द्रजीने कहा अबतौ तुम जहां इच्छाहो जाओ कार्य समय याद करनेसें आकर मेरी सहाय करना॥ ॥ १४ ॥ तब वह रामकी आज्ञा शिरोधार्य कर उनकी परिक्रमाकर उनका मतले वहांसें अनेक २ स्थानको चलेगये ॥ १५ ॥ इस ओर रामचन्द्र अस्त्र प्रयोग व संहार विषय जानकर गमन करते २ मार्गमें महर्षि विश्वामित्रजीसे मधुरवाणी बोले ॥ १६ ॥ हे मुने! पर्वतके अति निकट मेघमालाकी समान वृक्षोंका समूहदेख पडताहै वह क्याहै ॥ १७ ॥ यह स्थान बडा मनोहर दिखाई देताहै उसके चारों ओर मृग गण फिर रहेहैं, व अतीव मनोरम वाणी बोलनेंवाले नाना प्रकारके पक्षी शोर कर रहेहैं ॥ १८॥ हम यद्यपि अभी भयावह व निबिड वन खूंद कर आयेहैं, परन्तु तौभी यह स्थान सुख शान्ति कर बोध होताहै ॥ १९ ॥ हे भगवन्; यह आश्रम किसकाहै आपसे पूछताहूं यह सब बताइये वे ब्राह्मण द्वेषी दुष्ट राक्षस कहांहैं ॥ २० ॥ हे भगवन् महामुनिराज तुम्हारे यज्ञमें विघ्न करने वाले वे दुरात्मा राक्षस कहांहैं जहां आपका यज्ञ होताहै वह स्थान कौनसाहै ॥ २१ ॥

एतत्सर्वंमुनिश्रेष्ठश्रोतुमिच्छाम्यहंप्रभो ॥ २२ ॥

मुझे जहां आपका यज्ञ रक्षण व निशाचरोंका वध साधन करना होगा वह स्थान अब कितनी दूरहै यह सब मेरी जाननेकी इच्छाहै॥ २२ ॥
इति श्रीमद्रा०वा०आ०बा०अष्टाविंशःसर्गः ॥ २८ ॥

ऊनत्रिंशः सर्गः ॥

अथतस्याप्रमेयस्यवचनंपरिपृच्छतः ॥
विश्वामित्रोमहातेजाव्याख्यातुमुपचक्रमे ॥ १ ॥

अनंतर अमित तेजवान् रामचन्द्रजीसे यह पूछे जाने पर महातेजस्वी महर्षि विश्वामित्रजी कहने लगे ॥१॥ इस स्थानपर सब देवताओंके वन्दन करने योग्य भगवान विष्णुजीनें बहुत वर्षों व युगोंतक तपस्याकीथी॥२॥ यह आश्रम महात्मा वामनका पूर्वाश्रमहै; यह तप करनेके लायक स्थानहै पहले यहां बडे तपस्वी रहते थे ॥ ३ ॥ इसका नाम सिद्धाश्रमहै जब यहां विष्णुजी तप कर रहेथे, उसकाल विरोचन सुत बलिने ॥ ४ ॥ अपने बल पराक्रमसें इन्द्रादि देवताओंको मरुतों सहित पराजित कर अपने राज्यको त्रिलोक विख्यात कियाथा ॥ ५ ॥ अनन्तर एक समय असुरोंके राजा बलिनें एक बडे यज्ञका अनुष्ठान किया तब देवता गण अग्निको आगेकर भगवान् विष्णुजीके पास इस आश्रममें आकर कहनें लगे ॥ ६ ॥ हे विष्णुजी विरोचन पुत्र बलिने एक यज्ञका आरम्भ कियाहै इस कारण उस यज्ञके समाप्त होनेसें प्रथम आपको एक देवकार्य करना होगा ॥ ७ ॥ राजा बलिके यज्ञमें अनेक देशोंसें याचक उपस्थित होतेहैं यज्ञकर्त्ताभी जिसकी जो प्रार्थना होतीहै उसको वही देताहै ॥८॥ आप इस समय देवताओंका कार्य सिद्ध करनेके लिये योगमायाका आश्रय ग्रहण पूर्वक वामन मूर्ति धारणकर हमारा कल्याण कीजिये ॥ ॥ ९ ॥ सो अवतार लेनेका उपयुक्त स्थानभी बतातेहैं कि आज कल अग्नि तुल्य तेजस्वी कश्यप, देवी अदिति जीके सहित तेजसे देदीप्यमान ॥ १० ॥ देवीके सहित कश्यपजी सहस्र वर्षका व्रत समाप्त करके वरदाता मधुसूदन का स्तव करने लगेहैं ॥ ११ ॥ वह कह

रहेहैं हेप्रभो आप तपोमय, तपोराशि, तपोमूर्ति व ज्ञानस्वरूपहैं हे पुरुषोत्तम मैंने तपके प्रभावसे आपको साक्षात् पायाहै ॥ १२ ॥ हे प्रभो! आपके शरीरमें सब संसार प्रत्यक्ष दीख रहाहै आप अनादि आनन्द मय व ऐश्वर्यसम्पन्नहैं अतएव मैं आपके शरणहूं ॥ १३ ॥ तब भगवान् हरिजी प्रसन्नहो पाप रहित कश्यपजीसें बोलेकि हे भगवन् हे मुने, तुम्हारा क्या अभिलाषहै, कहो. तुम वर देनेके योग्य पात्रहो तुम्हारा मंगलहो ॥ १४ ॥ नारायणजीके यह वचन श्रवण करकै मरीचि नन्दन कश्यपजी कहने लगे कि अदिति देवीमें पुत्र रूपसे प्रगट होनेकी आपसे सब देवगण यह प्रार्थना करतेहैं ॥ १५ ॥ प्रसन्नहो सबका अभिलाष पूर्ण कीजिये हमारीभी यह प्रार्थनाहै कि आप पुत्ररूपसें अदितिके गर्भसें अवतार लीजिये ॥ १६ ॥ हे दानव दलन; आप उपेन्द्ररूपहो इन्द्रके छोटे भाई हूजिये और महादुःखमें पडेहुये सुरगणोंकी सहाय कीजिये ॥ १७ ॥ आपके प्रसादसे यह स्थान सिद्धाश्रम नामसें कीर्तित होगा. हे देवेश! आपका कार्य सिद्ध होगया अब इस स्थानसें उठिये ॥१८॥ अनन्तर महातेजस्वी विष्णुजी अदितिके गर्भसें वामन अवतारले बलिके निकट उपस्थित हुये ॥ १९ ॥ सर्व लोकोंका हित करनेमें अनुरक्त अच्युत भगवान् ने राजा बलिसें तीनपग पृथ्वी भिक्षा मांग तीन पगमें तीनों लोक नापलिये ॥ २० ॥ उन्होने बल प्रभावसें बलिको बांधकर पुनः सुरनाथको त्रिलोकीका राज्य दियाथा ॥ २१ ॥ पूर्वकालमें वामनजी इसी स्थान पर रहतेथे इस समय उनके प्रति भक्तिमान् हो मैं यहीं वास करताहूं ॥ २२ ॥ इसी आश्रममें यज्ञ विरोधी निशाचर आया करतेहैं व यहीं रहकर तुम्हें उन दुष्टोंको संहार करना होगा ॥ २३ ॥ हे राम हम अभी सिद्धाश्रमको चलेंगे इस आश्रममें जैसा मेरा वैसेही तुम्हारा अधिकारहै ॥ २४ ॥ ऋषि यह कहकर रामचन्द्र सौमित्र सहित उस आश्रम में प्रवेश पूर्वक शोभा देखने लगे पुनर्वसु नक्षत्रमें शरदके बादलोंमें नियुक्तहो चन्द्रमाकी जैसी शोभा होतीहै, वैसेही विश्वामित्रजी शोभा पाने

लगे ॥ २५ ॥ सिद्धाश्रमवासी तपस्वियों ने देखतेही बहुत शीघ्रतासें उ-ठ विश्वामित्रजीकी पूजाकी ॥ २६ ॥ उन लोगोंने विश्वामित्रजीकी पूजा करकै, फिर उचित प्रकारसें राम लक्ष्मणका सन्मान किया ॥ २७ ॥ शत्रुओंके मारने वाले रघुनाथ व लक्ष्मण जीनें थोडी देर विश्राम कर हाथजोड विश्वामित्रजीसें कहा ॥ २८॥आप आजही यज्ञमें दीक्षित हुजिये आपका मंगल होगा;यह सिद्धाश्रम सिद्ध और आपका वाक्य सत्यहो२९॥ रघुनन्दन जीके वचन सुन महातेजस्वी महर्षि विश्वामित्रजी तभी उस यज्ञमें दीक्षित हुये और अंतःकरणको निग्रहकर यज्ञ करने लगे ॥३०॥ दोनों राज कुमार वह रात्रि व्यतीतकर सवेरेही उठे पवित्रहो सन्ध्योपासन कर ॥ ३१ ॥

प्रशुचीपरमंजाप्यंसमाप्यानियमेनच ॥
हुताग्निहोत्रमासीनंविश्वामित्रमवंदताम् ॥ ३२ ॥

नियम पूर्वक जप समाप्तकर जहां महर्षि विश्वामित्रजी सुखसे बैठे यज्ञ कररहेथे वहां जाकर सुखसे मुनिजीको प्रणामकिया ॥३२॥ इ० श्री०म० वा०आ०बा०एकोनत्रिंशःसर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशः सर्गः ॥

अथतौदेशकालज्ञौराजपुत्रावरिंदमौ ॥
देशेकालेचवाक्यज्ञावब्रूतांकौशिकंवचः ॥ १ ॥

अनन्तर देशकालके जानने वाले शत्रुओंके मारने वाले दोनों राज कुमार समयोचित् वचन मुनिजीसे बोले ॥ १ ॥ हे भगवन्! यह हमारे सुननेकी इच्छाहै कि वह निशाचर किस समय आतेहैं जिस समय उन मारीच व सुबाहुकी गति रोध करनी होगी वह समय हमें बता दीजिये जिस्से वह अतिक्रमन कर सकैं ॥ २ ॥ काकुत्स्थ रामचन्द्रजीके यह कहने पर व युद्धके लिये दोनों भाइयोंको तैयार देख आश्रमके रहनें वाले सब मुनि उन कुमारोंकी प्रशंसा करनेलगे ॥ ३ ॥ आजसे लेकर छः दिन तुम्हें यज्ञ कार्यकी रक्षा करनी होगी महर्षि विश्वामित्र अब न बोलेंगे क्योंकि वह मौन भावसें यज्ञमें दीक्षितहैं ॥ ४ ॥ यशस्वी राम लक्ष्मण जी

मुनियोंसे ऐसा सुन कर निद्रा परित्याग पूर्वक तपोवनको रक्षा करने लगे ॥ ५ ॥ महावीर रामचंद्र व लक्ष्मणजी धनुष धारण पूर्वक मुनिवर विश्वामित्रजीकी सावधानी से रक्षा करने लगे ॥ ६ ॥ अनन्तर छठादिन आने पर रामचन्द्रजी लक्ष्मण जीसे बोले अब सतर्क रहो ॥ ७ ॥ रामचन्द्रजीको युद्धके वास्ते तैयार रहनेको कहतेही यज्ञ वेदीमें अग्नि प्रज्वलित होगई तब उपाध्याय व पुरोहितादि घबडा उठे ॥ ८ ॥ और यज्ञ कार्यके समिध, कुश, काश, पुष्प और विश्वामित्रजी भी ऋत्विजोंके साथ प्रदीप्त हो उठे वेदी जलने लगी ॥ ९ ॥ मंत्र पढकर यज्ञ आरम्भ हो रहा था तभी आकाशसे भयंकर शब्द होने लगा ॥ १० ॥ वर्षा कालीन मेघ जिस प्रकार आकाशको समाछन्नकर तुमुल वृष्टिपात व वारंवार वज्र पात करतेहैं ऐसे ही निशाचरगण अनेक प्रकारको माया करके धावमान हुये ॥ ११ ॥ मारीच, सुबाहु और उनके अनुचर भयंकर आकारसे उपस्थितहो यज्ञस्थलमें रुधिरको वर्षा करने लगे ॥ १२ ॥ वेदीको रुधिरसे भीगी देखकर रामचन्द्रजीने शीघ्रतासे यज्ञके चारों ओर घूमकर आकाशको देखा ॥१३॥ कमल लोचन रामचन्द्रजीनें देखाकि निशाचर आरहे हैं तब लक्ष्मणजीको ओर देखकर यह वचन बोले ॥ १४ ॥ हे लक्ष्मण देखोतो मांसाहारो दुराचारी राक्षस कैसे वेगसे दौडे आतेहैं, इनको अपने मानव अस्त्रोंसे ऐसा उडाते हैं जैसे पवन वादलोंको छिन्न भिन्न कर देताहै ॥ १५ ॥ वैसेही मैं इनको मानवास्त्रसे भगाये देताहूं इनको प्राणसे मारनेकी मेरी इच्छा नहींहै यह कहकर रामचन्द्रजीने धनुष पर बाण चढाया ॥ १६ ॥ वह बहुत श्रेष्ठ मानवास्त्रथा वह दीप्यमान शस्त्र मारीचके ऊपर क्रोधकर रामचन्द्रजीने निक्षेप किया ॥ १७ ॥ मारीच उस अस्त्रके लगनेसे घायलहो शतयोजन दूरवर्ती महासागरके बीचमें गिरा ॥ १८ ॥ तब उसे चेतना रहित घूमते हुए अस्त्रमें पीडित व युद्धमें फिरा हुआ गिरता देख रामचन्द्रजीने अनुजसे कहा ॥ १९ ॥ देखो लक्ष्मण मेरे इस मानवास्त्रनें मारीचको मोहित कर दियाहै परन्तु प्राणसें नहीं माराहै ॥ २० ॥ जो हो अब मैं बचेहुये यज्ञके विघ्न करनें हारे दुष्टाचारी पापात्मा राक्षसोंको जानसें मार डालूंगा ॥ २१ ॥ यह कह लक्ष्मणजी को अपनी लघु हस्तता दिखाते हुये रामचन्द्रजीने म-

हान् आग्नेयास्त्र लिया ॥ २२ ॥ यह अस्त्र सुबाहुकी छातीमें जाकर ल-गा और लगते ही वह पृथ्वी पर गिरगया ऐसेही और दूसरे राक्षसोंको वायवास्त्रसें मारडाला महायशस्वी परमोदार रामचन्द्रजीनें मुनियोंका कार्य किया ॥ २३ ॥ असुरोंको मारकर सुरनाथ जिस प्रकार सन्मानित हुयेथे वैसेही यज्ञके नाश करनें वाले राक्षसोंको विनाश करकै रामच-न्द्रजी ऋषियों करके पूजे गये ॥ २४ ॥ यज्ञ समाप्त होनेपर महर्षि वि-श्वामित्रजी वह प्रदेश उपद्रव रहित देखकर रामचन्द्रजीसे बोले ॥ २५ ॥

कृतार्थोस्मिमहाबाहोकृतंगुरुवचस्त्वया ॥
सिद्धाश्रममिदंसत्यंकृतंवीरमहायशः ॥
सहिरामंप्रशस्यैवंताभ्यांसंध्यामुपागमत् ॥२६॥

हे कमललोचन वडी भुजा वाले मैं कृतार्थ होगया हे वीर यशस्वी तुमने गुरु वाक्य सत्यकिया यह आश्रम तुम्हारे प्रभावसें वास्तवमें सिद्धा-श्रम होगया इस प्रकार रामचन्द्रजी की प्रशंसा कर व उनको साथले स-न्ध्या वन्दनादि करनेके निमित गये ॥ २६ ॥ इ०श्रीमद्रा०वा०आ०वा० त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः ॥

अथतांरजनींतत्रकृतार्थौरामलक्ष्मणौ ॥
ऊषतुर्मुदितौवीरौप्रहृष्टेनांतरात्मना ॥ १ ॥

अनन्तर राम लक्ष्मणने इस प्रकार राक्षसोंका विनाश करके प्रमुदि-त मनसे वहीं रात्रि बिताई ॥१॥ प्रभात होनेपर आह्निकादि कार्य्य समा-प्त कर अन्यान्य महर्षियोंके समीप विश्वामित्र जीको बैठाहुआ देख दो-नों कुमार उनके पास गये ॥ २ ॥ अग्निकी समान दीप्तिमान् मुनि वि-श्वामित्र जीको रामचन्द्रजी व लक्ष्मणजीनें प्रणाम किया और उन दो-नोंने मीठे वचनसें कहा ॥ ३ ॥ हेमुनिशार्दूल ! आपके दोनों दास उपस्थितहैं कहिये अब हमें क्या करना होगा ॥ ४ ॥ दोनो भाइयोंके ऐसे वचन सुनकर ऋषि गण विश्वामित्रजीको आगेकर राम लक्ष्मणसें कहने लगे हे मनुष्योंमें श्रेष्ठ ! मिथिलाधिपति परमधर्मात्मा राजा जनक एक यज्ञ करेंगे हम लोग उसको देखने वहां जायँगे ॥६॥ हे पुरुषसिंह ! रामचन्द्रजी

तुमभी हमारे साथ वहां चलकर राजा जनकके अद्भुत धनुष रत्नका दर्शन करो ॥ ७ ॥ देवताओंसे पूर्वकालमें वह धनुष देवराजको सभामें उन्हें मिलाथा उसमें अप्रमेय बलहै देखनेमें द्युतिमानहै वह उस यज्ञमें धराहै ॥ ८ ॥ आदमोको तो बातही क्याहै उसमें देवता, गन्धर्व, असुर, व राक्षस तक मौर वी नहीं चढा सक्ते ॥ ९ ॥ उसकी शक्तिका परिमाण जाननेके लिये अनेकानेक बलशालीराजा वहां उपस्थित हुयेथे किन्तु कोई उसपै रोदा नहीं चढा सक्ता ॥ १० ॥ हे काकुत्स्थ! पुरुषश्रेष्ठ वही धनुष महात्मा मिथिलाधिपतिके भवनमेंहै तुम वह श्रेष्ठ धनुष और वह महत यज्ञ देखना ॥ ११ ॥ जनक राजाने एक समय यज्ञ कियाथा तब शिव प्रभृति सब देवता प्रसन्न हुये तब यज्ञके फलकी भांति शत्रुओंका नाश करनेके लिये राजाने उस धनुषको देवताओंसे माँग लियाथा ॥ १२ ॥ तबसे अब वह धनुष राजाके यहां स्थापितहै देवताकी तरह पुजताहै और गन्ध, धूप, व अगर द्वारा उसकी पूजाहोतोहै ॥ १३ ॥ यह कहकर महर्षि विश्वामित्र ऋषिगणोंसे परिवेष्टितहो रामचन्द्र व लक्ष्मणजीको संगले जनकपुरको चले चलनेके समय वन देवताओंसे कहा ॥ १४ ॥ हे वनदेव गण! मैं इस समय सिद्ध कामहो सिद्धाश्रमसें राम लक्ष्मण और ऋषियोंके साथ उत्तर दिशामें गंगाके तीर जाताहूं, तुम्हारा कल्याणहो ॥ १५ ॥ यह कह तपोधन विश्वामित्रजी उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान करते हुये ॥ १६ ॥ तब ब्रह्मवादी ऋषि गण सौ छकडोंमें अग्निहोत्रकी सामग्रोले विश्वामित्रजीके पीछे २ चले ॥ १७ ॥ सिद्धाश्रमके रहने वाले महात्मा मृग पक्षी गणभी तपोधन विश्वामित्रजीके पीछे २ चले ॥ १८ ॥ जब मृग पक्षियोंको विश्वामित्र और ऋषियोंने आते देखा तब उन्हें लौटने कहा तब वह सब लौट गये और मुनि समाजभी दूर निकल गया कि इतनेमें सूर्य भगवान्भी अस्ताचलके निकट पहुँचे ॥ १९ ॥ महर्षि गणोंने बहुत मार्ग चलकर शोणनदीके किनारे पर वास किया. और सन्ध्याकाल आया जान स्नानकर होम कार्य करने लगे ॥ २० ॥ तदनन्तर विश्वामित्रजीको आगे करके सब बैठगये तब बडे पराक्रमी रामचन्द्रजी भी सब ऋषियोंको प्रणामकर ॥ २१ ॥ बुद्धिमान महर्षिके सन्मुख बैठे कुछ ध-

डी बीतनेके पीछे तेजस्वी रामचन्द्रजीने महात्मा मुनि श्रेष्ठ विश्वामित्र-जीसे ॥ २२ ॥ बडे हर्षके साथ रामचन्द्रजीने कौतूहलाक्रान्तहो यह कहा कि हे मुनिवर! इस समृद्धि वन शोभित स्थानका नाम क्याहै ॥ २३ ॥

श्रोतुमिच्छामिभद्रंतेवक्तुमर्हसितत्त्वतः ॥
नोदितोरामवाक्येनकथयामाससुव्रतः ॥
तस्यदेशस्यनिखिलमृषिमध्येमहातपाः ॥ २४ ॥

मैं इस स्थानका वृत्तांत भली भांति जाननेको उत्सुक हुआहूं सो आप कहिये महातपा विश्वामित्रजी रामचन्द्रजीसें यह पूछे जानेपर ऋषियोंके बीचमें बैठे उस स्थानका परिचय देने लगे ॥ २४ ॥ इ० श्रीमद्रा० वा० आ० वा० एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः ॥

ब्रह्मयोनिर्महानासीत्कुशोनाममहातपाः ॥
अक्लिष्टव्रतधर्मज्ञःसज्जनप्रतिपूषकः ॥ १ ॥

पूर्वकालमें महा तपस्वी सज्जन प्रति पालक ब्रह्माके पुत्र कुशनाम एक धार्मिक राजाथे ॥ १ ॥ उन महात्माने अच्छे कुलमें उत्पन्न हुै वैदर्भी नामक रानीके गर्भसें अपने समान चार पुत्र उत्पन्न किये ॥ २ ॥ इन पुत्रोंके नाम कुशाम्ब, कुशनाभ, आसूर्तरज और वसुथे ॥ ३ ॥ एक समय राजाने क्षत्रिय धर्मके प्रचारार्थ सत्यवादी उत्साही व दीप्तिमान् पुत्रोंको बुलाकर कहा कि हे पुत्रो! प्रजा पालन करो तुम्हें बडा धर्म होगा ॥ ४ ॥ तदनन्तर राजा कुशकी अनुमतिसे उनचारों श्रेष्ठ पुत्रोंने अपने२ नामसे एक एक नगर बसाया ॥ ५ ॥ महा तेजस्वी कुशाम्बने कौशाम्बी नगरी और धर्मात्मा कुशनाभने महोदय नाम नगर बसाया ॥ ६ ॥ आसूर्तरजनें धर्मारण्य और वसुने गिरिवज्रनामक नगरकी प्रतिष्ठाकी ॥ ॥ ७ ॥ इसी गिरि वज्रका वसुमतीभी नाम हुआ सो यह उन्ही पुण्यात्मा नृपति वसुकी वसुमती नाम पुरीहै, इसके चारों ओर पांच पर्वतहैं जोकि इसे प्रकाशित करतेहैं ॥ ८ ॥ शोणा नदीका दूसरा नाम मागधीहै यह पांच पहाड़ोंके बीचमें मालाके समान शोभा पारहीहै ॥ ९ ॥

यह नदी मगधसे निकल कर पूर्वकी ओरको बहीहै इसके किनारे वाले खेतोंमें बहुत नाज उपजताहै ॥ १० ॥ हेराघव! राजर्षि कुशनाभसे घृताचीके गर्भमें अनुत्तम सौ कन्या उत्पन्न हुईं ॥ ११ ॥ क्रमसे वे कन्या रूप यौवनवाली और गुणवती होकर वर्षा कालीन बिजलीकी नाईं उद्यानमें विहार करने लगीं ॥ १२ ॥ हे राम! वहाँ फुलवाडीमें सबकी सब गानें बजानें व नाचनें लगीं व सब गहनोंसे सज धजकर परमानन्दित हुईं ॥ ॥ १३ ॥ उनके सब अंग अतिरमणीकथे व उस समय उनके समान कोई स्त्री पृथ्वीतल पर सुन्दरी नथी इसकारण वह सब उस उद्यानमें ऐसी शोभाको प्राप्त हुईं जैसे बादरोंके बीचमें तारे शोभित होतेहैं ॥ १४ ॥ ऐसे समयमें उनको रूपयौवन संयुक्त देख सबमें टिकने वाला वायु उनसें बोला ॥ १५ ॥ हे सुन्दर नारियो! तुम मनुष्य भाव परित्याग करके दीर्घ जीवनीहो तुम सबसें व्याह करनेकी मेरी इच्छाहै ॥ १६ ॥ विचार करकै देखो कि यौवन सदा नहीं रहता और विशेषकर मनुष्योंकी युवावस्थातो बहुत थोडे दिन रहतीहै इस कारण मेरे संसर्गमें अक्षय यौवन सुखको प्राप्त होकर असुर पत्नीकी भांति सुखसे रहो ॥ १७ ॥ पराक्रमी पवनकी ऐसी बात सुन वह सब सौ कंन्या हँसकर कहने लगीं ॥ १८ ॥ हे देवताओंमें श्रेष्ठ! आप सब जीवोंके भीतर टिके रहतेहैं और हम भी आपका प्रभाव भली भांति जानतीहैं अतएव विवाहकी प्रार्थना करकै हमें क्यों अपमानित किया ॥ १९ ॥ हे प्रभञ्जन देव हम महाराजा कुशनाभकी कन्याहैं यदि इच्छा करैं तो आपका प्रभाव नष्ट कर सक्तीहैं परन्तु इस्सै ऐसा करनेमें प्रवृत्त नहीं होतीं कि तपस्याका फल नष्ट हो जायगा हमारे भाग्यमें ऐसा कुसमय कभी न आवे कि हम सत्यवादी पिताको अपमानित करके स्वयंवशाहोवें ॥२१॥ पिता हमारे प्रभुहैं और वही हमारे परम देवताहैं वह जिसके हाथमें समर्पण करैंगें वही हमारे स्वामी होंगे॥२२॥ कन्याओंके ऐसे वचन सुनकर पवन देव कुपित हुये और कन्याओंके अंग प्रत्यंगमें प्रवेश करके उन सबको कुबरी करडाला ॥ २३ ॥ कन्यायें इस प्रकार कुबरीहो संभ्रमसे लाजयुक्त और रोती हुई अपने घर आईं ॥२४॥ राजाकुशनाभने उन अत्यन्त प्यारी बेटियोंको कुबडी और दीन देखकर आश्चर्यसें कहा हे बेटियो! तुम्हारी अवस्था क्यों ऐसी हुई? किस व्यक्तिने ध-

में की अवमाननाकी ! किसने तुम्हें कुबरी करदिया तुम्हारा इसतरह दीन भावापन्न होनेका क्या हेतुहै ? जोतुम पूंछनेसें नहीं कहती ॥२५॥ २६ ॥

एवंराजाविनिःश्वस्यसमाधिंसंदधेततः ॥२७॥

कुशनाभ इस प्रकार कह दीर्घ निःश्वास परित्याग पूर्वक कारण जाननेके लियें समाधि परायण हुये ॥ २ ॥ इति श्री मद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाडे द्वात्रिंशःसर्गः॥३२॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥

तस्यतद्वचनंश्रुत्वाकुशनाभस्यधीमतः॥शिरोभिश्चरणौस्पृष्ट्वाकन्याशतमभाषत ॥ १ ॥

कन्यागण बुद्धिमान् पिता कुशनाभजीकी यह उक्ति श्रवण करकै उनके चरण वन्दन करकै बोलीं ॥ १ ॥ पितः सर्वव्यापी वायुनें कुपथावलम्बन पूर्वक हमको अवमानित करनेकी इच्छाकीथी धर्मकी ओर उन्होंने कुछ दृष्टि नहींकी ॥२ ॥ हम सबने उसका खोटा अभिप्राय जानकर उस्से कहाथा—कि हमारे पिता वर्तमानहैं अतएव हम उनके आधीनहैं तुम अपना अभिप्राय पिताजीसे कहो जैसे उनकी इच्छा होगी वह वैसा करैंगे ॥ ३ ॥ परन्तु उस पापीने हमारी बात नहीं सुनी और हमको विकृताङ्ग करदिया ॥ ४ ॥ तेज वधर्मवान् राजा पुत्रियोंके ऐसे वचन श्रवणकर उन सौकन्याओंसे बोले ॥ ५ ॥ तुमने वायुके ऊपर एकमतावलम्बीहोकर क्षमा वालोंको करनें योग्य जो क्षमा दर्शाईहै इस्से मेरे कुल गौरवकी रक्षाहुईहै ॥ ६ ॥ स्त्री और पुरुष दोनोंका क्षमाही भूषणहै क्षमा अति प्रशंसाका विषयहै विशेष करकै इसका गौरव स्वर्गमें भीहै ॥ ७ ॥ हे पुत्रियो ! तुमने स्वेच्छा चारिणी नहोकर वायुके ऊपर जो क्षमा दिखाई वह अतीव प्रशंसाके योग्यहै वास्तवमें क्षमाही दान क्षमाही सत्य और क्षमाही यज्ञ कहीगईहै ॥ ८ ॥ क्षमाही यश और क्षमाही धर्म और क्षमाही केवल जगत् प्रतिष्ठितहै हेराम ! इन्द्रकी समान

पराक्रम वाले राजाने यह कहकर कन्याओंको विदा करदिया ॥ ९ ॥ फिर राजा देश काल और अच्छे पात्रसें विवाह कन्याओंका होजाय इस विषयकी सलाह मंत्रियोंको बुला करने लगे ॥ १० ॥ उसी समय चूली नामक ऊर्द्धरेता महाकांतिमान् ब्रह्मचारी ब्रह्मयोग साधन करनेमें प्रवृत्तहुयेथे ॥ ११ ॥ उन ऋषिके वहां तपस्या करने पर उर्मिलाकी कन्या सोमदा नाम गंधर्वी उनकी उपासना करनें लगी ॥ १२ ॥ वह गंधर्वी उन ब्रह्मचारीकी नम्रतासें उपासना करनें लगी इस प्रकार जब उसने बडी सेवाकी तौ उस समय ऋषि उसके ऊपर प्रसन्न हुये ॥ १३ ॥ हेरघुनंदन ! इस प्रकार कुछ समय वीतने पर ब्रह्मचारी जी बोले—कि हे सोमदे मैं तुझसे प्रसन्नहूं अब कह कि तेरा क्या प्रिय कार्य करूं॥१४॥चतुर गन्धर्व कन्या वाक्य बोलनेंमें चतुर ऋषिको प्रसन्न जान मधुर वाणीसें बोली॥ ॥१५॥ आप महातपा ब्रह्म श्री सम्पन्न व साक्षात् ब्रह्म स्वरूपहैं आपकी कृपासें ब्रह्मयोगी एक पुत्र पानेंकी मेरी अभिलाषाहै ॥ १६ ॥ आपका कल्याणहो मैंने अबतक किसीको स्वामी कहकर स्वीकार नहीं कियाहै अतएव जिस्से मेरी प्रार्थना पूर्णहो ऐसा तपके प्रभावसे मुझे पुत्रदो ऐसी कृपाकीजिये ॥ १७ ॥ ब्रह्मर्षिने प्रसन्न होकर उसको अतिश्रेष्ठ ब्रह्मदत्त नामक एक मानसी पुत्रदिया वह चूलिके पुत्र कहलाये ॥ १८ ॥ अमरनाथनें जिस प्रकार अमरावतीकी प्रतिष्ठा कीथी वैसेही ब्रह्मदत्तनें काम्पिल नाम नगर बसाया और यह राजा ब्रह्मदत्त उसमें वास करनेलगे ॥ १९ ॥ हे रघुनन्दन! परम धर्मात्मा राजा कुशनाभने यह विचारा कि अपनी सौओं कन्याओंका विवाह ब्रह्मदत्तके साथ करदूं ॥ २० ॥ अनन्तर महातेजस्वी राजानें ब्रह्मदत्तको बुलाकर प्रसन्न मनसें अपनी सौ कन्या उनके समर्पण करदीं ॥ २१ ॥ हे राम! देवराज इन्द्रकी समान ब्रह्मदत्त राजानें यथाविधि उन कन्याओंका पाणिग्रहण किया ब्रह्मदत्त का हाथ लगतेही कन्याओंका कुबरापन छूटगया तब वह सब परम सुन्दर रूपवतीहो शोभा पानें लगीं ॥ २३ ॥ महिपाल कुशनाभ कन्याओंको वायुके हाथसें छुटा जान बहुत प्रसन्न और हर्षित हुये ॥ २४ ॥ राजाने विवाह कार्य समाप्त करके ब्रह्मदत्तको परिवार समेत काम्पिल नगरको भेजदिया जानेंके समय उपाध्यायभी पहुँचानें गयेथे ॥ २५ ॥

सोमदापिसुतंदृष्ट्वापुत्रस्यसदृशींक्रियाम् ॥ यथा न्यायंचगंधर्वीस्नुषास्ताःप्रत्यनंदत ॥ २६ ॥ स्पृष्ट्वास्पृष्ट्वाचताःकन्याःकुशनाभंप्रशस्यच ॥ २७ ॥

तब सोमदा गंधर्वी पुत्रके योग्य पत्नियोंको देख परम सन्तुष्ट हुई और सत्कार किया ॥ २६ ॥ और बहुओंका अंग स्पर्श करके वारंवार राजा कुशनाभकी प्रशंसा करने लगीं ॥ २७ ॥ इ०श्रीम०वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे त्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः।

कृतोद्वाहेगतेतस्मिन्ब्रह्मदत्तेचराघव ॥ अपुत्रः पुत्रलाभायपौत्रीमिष्टिमकल्पयत् ॥ १ ॥

हेराघव!ब्रह्मदत्तके विवाहका कार्य समाप्त होजानें पर अपुत्र कुशनाभने पुत्र पानेंके लिये पुत्रेष्टियज्ञका सामानकिया॥१॥जब वह यज्ञ विधिपूर्वक होने लगा तब ब्रह्माजीके पुत्र उदारस्वभाव वाले कुशनें अपनें पुत्रराजा कुशनाभसें कहा ॥ २॥ तुम्हारे समान गाधिनामक एक धार्मिक पुत्रहोगा वास्तवमें उस्से इसलोकमें तुम्हारी कीर्त्ति स्थिर रहेगी ॥ ३ ॥ हेराम वे ब्रह्माके पुत्र कुश इस प्रकार कुशनाभसें कहकर आकाश मार्गसें सनातन ब्रह्मलोकको चलेगये ॥ ४ ॥ अनन्तर कुछ समय बीतनें पर नृपति कुशनाभके परम धार्मिक गाधि नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥ वही परम धर्मात्मा मेरे पिताहैं हेरघुनन्दन ! मैं कुशवंशमें उत्पन्न हुआ इस कारण कौशिक नामसें परिचितहूं ॥ ६ ॥ सत्यवादी नाम मेरी एक सुन्दर व्रत धारन करने वाली बडी बहनथी उसका महर्षि ऋचीकके साथ विवाह हुआ ॥ ७ ॥ मेरी वह कौशिकी बहन पतिकी अनुगामिनी होकर शरीर सहित स्वर्गको चलीगई अब उसनें नदीरूप धारण कियाहै यहां नदीरूपसे बहतीहै ॥ ८ ॥ मेरी बहननें लोकका हित करनेके वास्ते नदीरूप धारण किया वह नदी अति रमणीय और उसका जल पवित्रहै उसका प्रवाह हिमगिरिसे उत्पन्न हुआहै ॥ ९ ॥ हे रघुनंदन मैं बहनके स्ने-

हसे हिमवान् पर्वतके समीप कौशिकी नदीके किनारे रहताथा ॥ १० ॥ नदियोंयें श्रेष्ठ कौशिकी अति पुण्यवती व सत्य धर्ममें अनुरक्त महाभाग और पतिव्रताहै ॥ ११ ॥ मैं केवल यज्ञकी सिद्धिके अर्थ उसको छोड़ सिद्धाश्रममें आयाहूं अब तुम्हारे प्रभावसें यज्ञ करके सिद्ध हुआ ॥१२॥ हे रामचन्द्र मैंने तुमसें अपनी उत्पत्ति और अपनें वंशका वृत्तांत कहा हे बडी भुजावाले उस देशकी कथाभी कही जिसको तुमने पूंछाथा ॥ १३ ॥ हे काकुत्स्थ ! वातोंहीं वातोंमें आधीरात होनेको आई अब शयन करो नहीं तो मार्ग चलनेमें क्लेश होगा ॥ १४ ॥ देखो इस समय वृक्ष नहीं हिलते डुलते मृग पक्षीगण चुपचाप सोतेहैं और निशाके घोर अंधकारसें आकाश छारहाहै ॥१५॥ आधीरात वीतनें पर आई, गगनमंडल तारोंसे भर रहाहै मानों हजारों नेत्रोंसें व्याप्तहै और उनकी ज्योतिसे निशायें प्रभासितहैं ॥ १६ ॥ देखो इस ओरसे शीतल किरणों वाले निशानाथ अपनी किरण जाल विस्तार करके लोकोंका चित्त प्रफुल्लित करते तिमिरका संहार करते हुये उदय होरहेहैं ॥१७॥ रातके फिरने वाले प्राणी मांस खाने वाले यक्ष राक्षस और अन्यान्य निशाचर जन्तु सब इधर उधर फिर रहेहैं ॥ १८ ॥ वडे तेजस्वी महामुनिजी यह कहकर चुपहोगये तब और ऋषियोंने साधु, साधु, कहकर उनका आदर किया ॥ १९ ॥ और पूजा करके कहा कि यह कुशिकवंश अतिशय धर्म परायणहै जिन्होंनें इस वंशमें जन्म ग्रहण कियाहै वह सबही महात्मा और ब्रह्म तुल्य हुयेहैं ॥ विशेषतः हे विश्वामित्रजी ! आप इस वंशमें एक प्रकृत महाशय वाले और ब्रह्म स्वरूपहैं आपकी बहन नदी श्रेष्ठकौशिकीनें भी पिताका कुल उजाला करनेंमें कोई कसर नहीं की ॥२० ॥ २१ ॥ ऋषियोंके मुखसे ऐसी प्रशंसा सुन्ते सुन्ते अस्तगत अंशुमानकी समान विश्वामित्रजीको निद्राका संचारहुआ ॥ २२ ॥

रामोपिसहसौमित्रःकिंचिदागतविस्मयः ॥
प्रशस्यमुनिशार्दूलंनिद्रांसमुपसेवते ॥ २३ ॥

तव लक्ष्मण सहित रामचन्द्र जी कुछ विस्मय प्रकाश पूर्वक महर्षि जीको स्तुति व बडाई करते २ सोगये ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०वा० चतुस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥

उपास्यरात्रिशेषंतुशोणाकूलेमहर्षिभिः ॥
निशायांसुप्रभातायांविश्वामित्रोभ्यभाषत ॥ १ ॥

अनन्तर महर्षि विश्वामित्रजी ऋषियोंके सहित शोण नदीके किनारे रात्रि व्यतीत करकै प्रातःकाल होने पर विश्वामित्रजी रामचन्द्रजीसें बोले ॥ १ ॥ हेराम! प्रभात होगयाहै प्रातः संध्या करनेका समय आगया तुम्हारा मंगलहो अतएव विस्तर परसे उठो और चलनेके लिये तैयार होजाओ ॥ २ ॥ रामचन्द्रजी ऋषिके ऐसें वचन सुन पूर्वाह्णिक कार्य समाप्त करकै उन ऋषि विश्वामित्रजीके संग जाते २ यह बोले ॥३॥ यह शोण नद अगाध स्वच्छ सलिल सम्पन्न और वालू मयहै अब यह बताइये कि कौनसें मार्गसे चलनाहोगा ॥ ४ ॥ तब विश्वामित्रजी बोले कि मुनिलोग जिस मार्गसे जातेहैं मैं वही मार्ग दिखाये देताहूं ॥ ५ ॥ इस प्रकार सब मंडली चली और दुपहरके समय मुनिजन सेवित पवित्र गंगाजीको देखा ॥ ६ ॥ इन्होंने देखा कि जाह्नवीका जल अतिशय निर्मलहै और उसमें हंस व सारस किलोलैं कर रहेहैं यह शोभा देखकर मुनि व राम लक्ष्मणजी परमानन्दितहुये ॥ ७ ॥ मुनि लोगोंने गंगाके तीर अवस्थान पूर्वक यथा विधि स्नान और पित्रोंओ देवतों को तर्पण किया ॥ ८ ॥ तदनन्तर अग्निहोत्र का अनुष्ठान करकै अमृत तुल्य खीर भोजन पूर्वक प्रसन्न मनसें गंगाजीके किनारे बैठे ॥ ९॥ विश्वामित्रजीको घेर कर सबकोई न्यायानुसार यथायोग्य बैठ गये रामचन्द्रजी मुदित चित्तहो विश्वामित्रजीसें पूछने लगे ॥ १० ॥ हेब्रह्मन् त्रिपथ गामिनी गंगाजीकी त्रिलोकको लाँघनें और समुद्रमें गिरनेंकी कथा मुझसें कहिये ॥ ११ ॥ महर्षि विश्वामित्रजीउन के कहने अनुसार उनसे गंगाजीकी उत्पात्ति और त्रिलोक लांघनेकी कथा कहने लगे ॥ १२ ॥ हेराम! सुवर्ण आदि धातुओंके स्थान हिमालय पर्वतके दोकन्या उत्पन्नहुईं वह दोनों महा सुन्दरीभईं ॥ १३ ॥ हे राम ! मैना इन दोनों की माताहुई यह सुन्दर कटिवाली सुमेरुकी कन्या और हिमालय की प्रियभार्याहैं ॥ १४॥ हे राघव मैनाकी दोनोंकन्याओंमें गंगा वडी हुई मैना और उसी मैनाकी उमा नाम वाली छोटी कन्या

हुई ॥ १५ ॥ इसके उपरान्त सम्पूर्ण देवताओंने अपने कार्य साधन करनेके निमित्त तीन मार्गमें जानेवाली नदीको हिमालयसे मांगा ॥ १६ ॥ देवता प्रथम गंगाजीको मांग कर ब्रह्माजीके पास लेगये ब्रह्माजीने कहा कि यह शिवजीका गर्भ धारण करनेमें समर्थ नहीं होगी तब गंगाने कहा मैं धारण करसकूंगी इस बात पर ब्रह्माजी क्रुद्ध होकर बोले कि तैंने हमारे वाक्यकी अवज्ञाकी इस कारण मैं शापदेताहूं कि तू जलरूप होजा तब यह ब्रह्माण्ड ऊर्द्ध्वकटाहमें जल रूप लगी रहीं उसीमें अग्निनें शिवका वीर्य त्यागन कियाथा जब वामनजीका चरण कटाह भेदन कर ऊपरको चला तब यह जल उनके चरणसें लगकरगिरा उस्से गंगाका विष्णु पदीभी नाम हुआ गिरनेंके समय वही जल ब्रह्माजीनें अपने कमंडलमें धारण किया उसी जलसे वामनजीके चरण धोये फिर भागीरथके प्रार्थना करने पर भूतलमें आई वामन पुराणमें यह कथा प्रसिद्धहै हिमालयने भी लोक पावनी स्वच्छन्द चलने वाली गंगाजीको त्रिलोकका हित करनेंके लिये देवता ओंको धर्म पूर्वक समर्पण कर दिया ॥ १७ ॥ त्रिलोकका मंगल चाहने वाले देवता त्रिलोकके उपकारके अर्थ गंगाको ग्रहण कर कृतार्थ हो स्वर्गको चले गये ॥ १८ ॥ हे रघुनंदन जो हिमालय की दूसरी कन्या उमा नाम वालीथी उसनें कठिन व्रत अवलंबन करके घोरतप कियाथा ॥ १९ ॥ हिमालयने त्रिलोक पूजित महातप करने वाली योग शालिनी दुहिताको योगीश्वर शांत मूर्ति शिवजीको दान करदिया ॥ ॥ २० ॥ हे राघव ! इस प्रकार लोकसें नमस्कार की हुई हिमालयकी दोनों कन्या ओंका चरित्र वर्णन किया हे राघव ! नदियोंमें श्रेष्ठ गंगाजी और उमादेवी की यह कथा है ॥ २१ ॥

एतत्तेसर्वमाख्यातंयथात्रिपथगामिनी ॥ खं
गताप्रथमंतातगतिंगतिमतांवर ॥ २२ ॥ सुर
लोकंसमारूढाविपापाजलवाहिनी ॥ २३ ॥

हे रामचन्द्र ! जिस प्रकार यह त्रिपथगामिनी प्रथम आकाश को गईहै चलने वालोंमें श्रेष्ठ यह गंगाकी कथा तुमसे कही ॥ २२ ॥ जिस प्रकार पाप नाश करने वाले जलोंकी वहाने वाली स्वर्गको गई वह कथा सुनाई ॥ २३ ॥ इ०श्रीम०बा०आ०वा०पंचत्रिंशःसर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशःसर्गः ॥

उक्तवाक्येमुनौतस्मिन्नुभौराघवलक्ष्मणौ ॥
प्रतिनंद्यकथांवीरावूचतुर्मुनिपुंगवम् ॥ १ ॥

मुनि विश्वामित्रजीके ऐसा कहने पर राम लक्ष्मण जी उनकी बडाई क-रकै फिर उनसे कहने लगे ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन्! आपने धर्म युक्त उत्तम कथा सुनाई अब यह प्रार्थनाहै कि शैलराजकी बड़ी बेटी गंगाका वृत्तांत वि-स्तार पूर्वक मुझसें कहिये क्योंकि आप देवता मनुष्योंके चरित्र विस्तार पूर्वक जानतेहो ॥२॥ आप सब जान्तेहैं. अतएव आपसे पूछताहूं कि त्रि-लोककी पावन करनेवाली गंगा स्वर्ग मृत्यु पातालमें क्यों गई और यह उत्तम नदी त्रिपथ गामिनी तीनमार्ग में जाने वाली क्यों कहलाई ॥ ३ ॥ हे धर्मके जान्नेवाले त्रिलोकीमें किसकरकै गंगाका त्रिपथगामिनी नाम हुआ जब रामचन्द्रजीने ऐसा पूछा तौ तपोधन विश्वामित्रजी ॥ ४ ॥ ऋषियोंके मध्यमें बैठे हुये गंगाजीका सम्पूर्ण वृत्तांत कहने लगे कि पहले समयमें महा तप करनेवाले भगवान् नीलकंठ विवाह कार्य स-माप्त करके ॥ ५ ॥ देवी पार्वतीजीके साथ विहार करनेमें प्रवृत्त हुये उन बुद्धिमान शितकंठ वाले देव देव महादेवको इसप्रकार विहारकरते सौवर्ष बीत गये ॥ ६ ॥ हे राम ! परन्तु इनके कोई पुत्रनहीं हुआ तब सब देवता इकट्ठे होकर ब्रह्माजीके निकट उपस्थित हुये ॥ ७ ॥ और सब यह चिन्ता करने लगे कि यदि शिव पार्वतीके संयोगसे संतान उत्प-न्न हुई तौ उस तेजको कौन सहन कर सकैगा! तदनन्तर सर्व देवता शिव-जीके पास जा उनकी बडाई कर बोले ॥ ८ ॥ हे देव देव महादेव आप लोकोंका हित करने वालेहैं देवता आपको प्रणाम करतेहैं अतएव प्रसन्न हूजिये ॥ ९ ॥ हे सुरोत्तम यह त्रिलोक मंडल आपका तेज धारणकरनेमें समर्थ नहींहै अतएव आप योगावलम्बन पूर्वक देवी पार्वती समेत तप कीजिये ॥ १० ॥ आपत्रिलोकीके मंगलार्थ अपनातेज अपनेही शरीरमें धारण करे रहिये इन सब लोगोंकी रक्षा कीजिये जगत्का नाश करना उचित नहीं ॥ ११ ॥ देवताओंके ऐसे वचन सुनकर देवादिदेव महादेव

तथास्तु कहकर फिरभी इस प्रकार कहने लगे ॥ १२ ॥ महादेवजी बोले. कि हे अमर गण! मैं उमा सहित अपने तेजोमय शरीरमें यहतेज धारण करूंगा स्वर्ग और पृथ्वीको शांति प्राप्तहो ॥ १३ ॥ परन्तु एक बातहै कि यदि अकस्मात् मेरा दिव्यतेज स्थानसे चलायमान होजाय तौ उसको कौन धारण करैगा हे देवताओ यह बताओ ॥ १४ ॥ तब देवताओंने यह बात सुन वृषध्वज महादेवजीसें कहा कि यदि आपका तेज चलायमान होही जायगा तौपृथ्वी उसको धारण करैगी ॥१५॥ अनन्तर यहवार्त्ता सुनशूलपाणिने तेजको छोडदिया देखते२उसनेशैल कानन सहित पृथ्वीको व्याप्त करदिया॥१६॥तब देवताओंने हुताशनसे कहा कि तुम हमारे कहनेसे वायुके सहित इस रौद्रतेजको धारणकरो॥१७॥अग्निके उस तेजको धारण करने पर सूर्याग्नि तुल्य वह तेज श्वेत गिरि और दिव्य सरपतके वनमें व्याप्त होगया ॥१८॥ उस्सेही महातेज वाले कार्तिकेय जीकी उत्पत्ति हुई तब देवता और ऋषि गण उमा महेश्वरकी ॥ १९ ॥ अत्यन्त प्रसन्न मनसें पूजा करने लगे हेराम तब पार्वतीजी देवताओंसे यह वचन बोलीं ॥ २० ॥ और क्रोधितहो लाल२नेत्रकर यह शाप देती हुई बोलीं हे अमरगण मैं पुत्र कामनासें स्वामीके सहित संगमें प्रवृत्तथी सो तुमने उसमें बाधादी ॥२१॥ अतएव तुम्हें यह शाप देतीहू कि आजसें तुम अपनी स्त्रियोंमें संतानोत्पत्ति नहीं कर सकोगे तुम्हारी रमणियें अपुत्रक रहैंगी ॥२२॥ सम्पूर्ण देवताओंको यह शाप देकर फिर पृथ्वीको यह शाप दिया कि हे पृथ्वी! आजसें तू अनेक रूपा और बहुतों की भार्याहोगी ॥ २३ ॥ हेखोटी बुद्धिवाली तैंने मेरे पुत्र होनेसें बाधा दीहै अतएव तू मेरे क्रोधसें कलुषित अर्थात् ऊषरादिकभी होजायगी और पुत्रका की हुई प्रीतिकोभी नपावैगी ॥ २४ ॥ अनन्तर भगवान् भवानी पति देवता ओंको अतिशय पीडित देखकर वरुणसे पालित पश्चिम दिशाकी ओरको चले गये ॥ २५ ॥ महेश्वर वहां जाकर हिमाचलके उत्तरभागमें हिमवत् प्रभव नामक शिखर पर पार्वती सहित तप करने लगे ॥ २६ ॥

एषतेविस्तरोरामशैलपुत्र्यानिवेदितः ॥
गंगायाःप्रभवंचैवशृणुमेसहलक्ष्मण ॥ २७ ॥

हेरामचन्द्र मैंने तुमको शैलसुताकी यह विस्तार पूर्वक कथा सुनाई अब लक्ष्मण सहित गंगाकी उत्पत्तिका वृत्तांत सुनो ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०बा०षट्त्रिंशःसर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः ॥

तप्यमानेतदादेवेसेंद्राःसाग्निपुरोगमाः ॥
सेनापतिमभीप्संतःपितामहमुपागमन् ॥ १ ॥

पशुपतिजीके तप करनेपर इन्द्रादि देवगण सेनापति प्राप्त होनेकी अभिलाषासे ब्रह्माजीके पासगये ॥ १ ॥ हेरामचन्द्र!अनंतर संपूर्ण देवता अग्नि और इन्द्रको आगे करके पहुँचतेही भगवान् प्रजापतिके चरणोंमें प्रणाम करके यह कहने लगे ॥ २ ॥ हेदेव ! आपने हमें जिस सेनापतिको देने कहाथा अवतक उसका जन्म नहीं हुआ उसके पिता अब उमाके साथ तप कर रहेहैं ॥ ३ ॥ अतएव लोक हितार्थ जो कर्त्तव्यहो आप उसका विधान कीजिये क्योंकि हमारी पहुंच आपही तकहै ॥ ४ ॥ देवताओंके ऐसे वचन सुनकर सबसंसारके पितामह ब्रह्माजी देवतोंको धीरज धराते व समझाते मधुर वाक्यसे यह बोले ॥ ५ ॥ हेसुरगण शैलसुता पार्वती जीने जो तुमसे कहाहै वह झूँठ नहीं होसक्ता अतएव निश्चयही तुम्हारी स्त्रियें निःसन्तान होंगी उसका वचन अमोघ और सत्यहै इसमें सन्देह नहीं ॥ ६ ॥ यह जो आकाश गंगा दृष्टि आतीहै इसके गर्भमें हुताशनके तेजसे देवशत्रुओंके मारनेवाले सेनापतिकी उत्पत्ति होगी ॥ ७ ॥ बडी पर्वतकी पुत्री गंगा उस पुत्रको अपनी छोटी बहन उमाका पुत्रसमझ अपने पुत्रके समान पालन करेंगी और उमाभी उस पुत्रको बहुत मानेगी हेरघुनंदन ब्रह्माजीके यह वचन सुनकर सब देवता कृतार्थ हुए और ब्रह्माजीको प्रणामकर सब देवता उनकी स्तुति करने लगे ॥ ८ ॥ हे राम तदनन्तर सब देवता लोगोंने धातु ओंसें शोभित कैलास पर जाकर ॥ ९ ॥ अग्निको पुत्रके लिये प्रेरणाकी ॥ १० ॥ देवताओंने कहा हेअग्ने!तुम देवताओंका अभिलाषित यह कार्य पूराकरो, और शैलजा गंगाजीमें पाशुपत तेज छोड़दो ॥ ११ ॥ अग्नि देवता ओंसें प्रतिज्ञा करके गंगाजीके निकट

उपस्थित हुये और उनसे कहने लगे हे देवी देवताओंके कार्यार्थ यह गर्भ धारण करो ॥ १२ ॥ जाह्नवीने अग्निको यह बात सुन सुन्दर दिव्य स्त्री का रूप बनाया जिस रूपकी महिमाको देख वैश्वानर विस्मित होगये ॥ ॥१३॥ तदन्तर अग्निनें शिवजीका वह तेज गंगाजीमें छोडदिया तेजके प्रभावसें जाह्नवीके सब श्रोत पूर्ण होगये ॥ १४ ॥ तब सम्पूर्ण देवताओं के सन्मुख गंगाजीने अग्निसे कहाकि हेदेव मैं तुम्हारा तेज धारण करनें में असमर्थहूं ॥ १५ ॥ तुम्हारा तेज जो शिवके तेजसें मिला वही मेरे न सह सकनें का कारण हुआ और इसी कारण मैं इस अग्नि रूप तेजसें व्याकुल और हत चेतन हुईहूं यह बात सुनकर तब अग्नि देवता गंगाजीसें बोले ॥ १६ ॥ तुम हिमालयके निकट इस गर्भको छोडदो अग्निके यह वचन सुन गंगाजीनें वह दीप्तिमान तेज ॥ १७ ॥ छोडदिया उस तेजको सोतेमें छोड देनेसें जांबूनदके तप्त सोनेकी नाईं प्रभा निकलने लगी॥१८॥ इस तेजके प्रभावसे निकट और दूरके सब पदार्थ कंचन और चांदीके होग-ये उसकी तीक्ष्णता जहां २ पहुँची वहां २ तांबे व लोहेकी उत्पत्तिइई१९॥ ऐसेही उस गर्भके मलसे रांग औ शीशा हुआ वही सब पृथ्वी पर प्राप्तहो जानेसे नानाप्रकारके धातुहो बढे ॥ २० ॥ गर्भके छोडतेही उसके तेजसे सब पर्वत वन प्रदेश सुवर्णमय होगया ॥ २१ ॥ जातवस्तुके रूप सें उत्पन्नहोनेसें सुवर्णका एक नाम जातरूप हुआ हे पुरुष सिंह इस प्रकार अग्निकी समान कान्तिवाला सोना उस दिनसे विख्यात हुआ ॥ ॥ २२ ॥ जोहो शिवजीके तेजसे एक पुत्रकी उत्पत्ति हुई तब मरुत, दे-वताओंने इन्द्रके सहित मिलकर उस पुत्रको दूध पिलानेके लिये कृत्ति काओंको पठाया ॥ २३ ॥ वे सब कृत्तिकायें उस तुरतके जन्मे कुमारको यह नियम कर दूध पिलाने लगीं कि यह हमारा सबका पुत्रहो ॥ २४ ॥ तब देवताओंनें कहाकि कृत्तिकागण! तुम्हारा यह पुत्र कार्तिकेय नाम-सें त्रिलोकमें विख्यात होगा इसमें कुछ संशय नहींहै ॥ २५ ॥ कृत्तिका ओंने देवताओंके इस प्रकारके वचन सुन उनके कहनेके अनुसार अ-ग्नि समान दीप्तिमान कुमारको स्नानकराया ॥ २६ ॥ गंगाके गर्भसें निकलनेके कारण सम्पूर्ण देवता ओंने इनका एक स्कन्दभी नाम र-

रखा हे राम यह कार्त्तिकेय बडी बाहों वाले अग्निकी समान हुये ॥ २७ ॥ जब कृत्तिका ओंके स्तनों में दूध उतरा तब कुमारःछः मुख धारण कर एक साथ छः कृत्तिकाओंका दूध पीनें लगे ॥२८ ॥ इन कार्त्तिकेय जीनें सुकुमार कलेवर होनेसें भी अपने पराक्रमके प्रभावसें दैत्योंकी सेनाके गणोंको निर्मूलित कियाथा ॥ २९ ॥ अनन्तर अमर गणोंने अग्निको आगे करकै महाकान्ति वाले कुमारकोही देवसेनापति पदमें वरण कियाथा ॥ ३० ॥ हे रामचन्द्र मैंने तुमको गंगाका विस्तार सहित वृत्तांत और कार्तिकेयके पवित्र जन्मकी कथा सुनाई यह कथा पुण्य रूपहै ॥ ३१ ॥

भक्तश्चयःकार्तिकेयेकाकुत्स्थभुविमानवः ॥
आयुष्मान्पुत्रपौत्रैश्चस्कंदसालोक्यतांव्रजेत् ॥२३॥

हे राम ! जो मनुष्य पृथ्वीमें कार्त्तिकेयकी भक्ति करैगा वह आयुष्मान्हो पुत्र पुत्रादि समेत स्कंदलोकको प्राप्तहोगा ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे सप्तत्रिंशःसर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशः सर्गः ॥

तांकथांकौशिकोरामेनिवेद्यमधुराक्षराम् ॥
पुनरेवापरंवाक्यंकाकुत्स्थमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

महर्षि विश्वामित्रजीने यह मधुर कथा कह कर फिर भी मधुर वचन रामचन्द्रजीसे कहने लगे ॥ १ ॥ पूर्वकाल अयोध्या नगरीमें एक महावीर सगर नामक धर्मवान् राजाथे वह प्रजाको भली भांति पालतेथे परन्तु उनके कोई पुत्रनथा ॥ २ ॥ हे राम उनकी दो स्त्रियें थी,बडी विदर्भराजकन्या केशिनी नामथी यह रानी जैसी धर्मात्मा वैसोही सत्यवादीथी ॥ ३ ॥ दूसरी स्त्रीका नाम सुमतिथा यह अरिष्टनेमिकी कन्या और सुपर्णकी बहिनथी यह सुमति राजा सगरकी दूसरी रानीथी ॥ ४ ॥ भूमिनाथ सगर दोनों स्त्रियोंके साथ हिमगिरिके नीचे एक पर्वत पर तपस्या करने लगे जहां भृगुमुनि तप करतेथे ॥ ५ ॥ इस प्रकार मुनिकी आराधना करते २ सौवर्ष पूर्ण होजाने पर सत्यवान् भृगुनें उनके तपसें प्रसन्न होकर उन्हें वरदिया ॥ ६ ॥ हे राजन्! पाप रहित तुम्हारे महान् पुत्र उत्प-

त्र होगा हे पुरुषश्रेष्ठ तुम लोकोंमें अनुपमकीर्ति पाओगे ॥ ७ ॥ हे पुरुष पुङ्गव! तुम्हारी एक स्त्रीके वंश चलानेवाला एक पुत्र और दूसरीके साठहजार सन्तान होगी ॥ ८ ॥ नरश्रेष्ठ भृगुजीके यह कहने पर दोनों स्त्रियें उन ऋषि वरको प्रसन्न कर प्रीति पूर्ण मनसें हाथ जोडके बोलीं ॥ ९ ॥ हे ब्रह्मन् आपका कहना सत्यहो हम आपसे यह सुना चाहतीहैं कि किसके गर्भसें एक व किसके गर्भसें साठहजार पुत्र उत्पन्न होंगे ॥१०॥ रानियोंके ऐसे वचन सुनकर धर्म परायण भृगुजी परमश्रेष्ठ वाणी कहने लगे कि इन दोनोंमें जो जैसा पुत्र चाहो वह स्वच्छन्द होकर मांगलो ॥ ११ ॥ एक पुत्र वंश धर होगा और दूसरे साठहजार महारण सम्पन्न कीर्तिमान् परमोत्साही होंगे सो तुम इनमेंसें कौन २ सा चाहतीहो ॥१२॥ हे रघुनंदन मुनिजीके वचन सुन केशिनिने राजाके सन्मुख वंशधर पुत्रकी कामनाकी ॥ १३ ॥ और सुमतिनें परमोत्साही कीर्तिमान बलवान् साठ हजार पुत्रोंकी प्रार्थनाकी ॥ १४ ॥ हे रघुनंदन तब महाराज सगर मुनिवरके चरणोंमें प्रणाम और प्रदक्षिणा करकै रानियोंके सहित अपने घरको चलेगये ॥१५॥ अनन्तर कुछकाल बीतने पर बडी रानी केशनीनें एक पुत्र उत्पन्न किया जिसका असमंजस नाम हुआ ॥ १६ ॥ हे नरश्रेष्ठ । सुमतिके गर्भसें एक तोंबी उत्पन्नहुई जिसको भेदकर साठ हजार पुत्र उत्पन्न हुये ॥ १७ ॥ धात्री उन्हें घीके भरे हुये घडोंमें रक्षा करके वडा करने लगी कुछ समय बीतनें पर उन्होंने जवानी की अवस्था प्राप्तकी ॥ १८ ॥ अनन्तर दीर्घ काल बीतनें पर सगरके साठ हजार पुत्र रूप यौवन सम्पन्न हो उठे ॥ १९ ॥ वह सगरकी ज्येष्ठ रानीका पुत्र असमंजस नामक था वह खेलके समय बालकोंको पकड कर सरयूमें लेजाकर ॥ २० ॥ पुरवासियोंके बालकोंको बहाय देता और उनको डूबते हुये देखकर हँसता इस भांति असमंजस पापाचरण परायण और सज्जनोंका द्रोह करने लगा ॥ २१ ॥ पिता सगरनें उसको पुरवासियोंका अनिष्टकारक जानके नगरसें निकाल दिया उसका असमंजस पुत्र अंशुमान नाम बडा वीर्यवानथा यह जैसे सर्व लोकके प्रियथे वैसेही प्रिय भाषीथे अनन्तर बहुत काल बीतने पर ॥ २२ ॥ २३ ॥

सगरस्यनरश्रेष्ठयजेयमितिनिश्चिता ॥
सकृत्वानिश्चयंराजासोपाध्यायगणस्तदा ॥ २४ ॥
यज्ञकर्मणिवेदज्ञोयष्टुंसमुपचक्रमे ॥ २५ ॥

राजा सगरने यह विचार किया कि हम अश्वमेध यज्ञ करें वह कृत संकल्पहो उपाध्यायोंसे मिले और यज्ञको वेद विधिसे करनेकी इच्छा की॥२४॥२५॥इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आदिकाव्ये बा०अष्टत्रिंशः सर्गः ३८॥

एकोनचत्वारिंशःसर्गः ॥

विश्वामित्रवचःश्रुत्वाकथांतेरघुनंदनः ॥
उवाचपरमप्रीतोमुनिंदीप्तमिवानलम् ॥ १ ॥

रामचन्द्रजी प्रदीप्त अग्नि तुल्य महर्षि विश्वामित्रजीसे यह कथा श्रवणकर परम प्रीति पूर्वक बोले ॥ १ ॥ किस प्रकार हमारे पूर्व पुरुष सगर राजने यज्ञ कियाथा हे भगवन् ! आपका मंगलहो वह वृत्तांत विस्तार सहित मैं आपसे सुना चाहताहूं ॥ २ ॥ तब रामचन्द्रजीका वाक्य श्रवणकर मुनि विश्वामित्रजी कौतूहलाक्रांत रामचन्द्रजीसे हँसकर बोले ॥३॥ हे राम महात्मा सगरका माहात्म्य विस्तार सहित सुनो शंकरजीके श्वशुर हिमवान नाम विख्यातहैं ॥ ४ ॥ व विन्ध्याचल नाम पर्वत आपसमें निहारतेहैं हे पुरुषोत्तम ! दोनों पर्वतोंके बीचमें महाराज सगरका यज्ञहुआथा ॥ ५ ॥ हे नरव्याघ्र वही देश यज्ञ कर्ममें श्रेष्ठहै हे राम ! उस यज्ञके घोडेकी रक्षा करनेके लिये दृढताई सें धनुष धारण करने वाले ॥ ६ ॥ अंशुमान राजा सगरके आदेशसें नियुक्त हुये अनन्तर उस यजमानके पर्वके दिन इन्द्रजी ॥ ७ ॥ राक्षसी मूर्त्ति धारण कर यज्ञके घोडेको हरके लेगये हे राम! उस महात्मा राजाके घोडे हरे जानेंपर॥ ८ ॥ तब उपाध्यायोंने राजासें शीघ्रता पूर्वक यह निवेदन किया कि पर्वके दिन घोडा हरागया ॥ ९ ॥ उस समय सबही एक वाक्यसें अश्व हरने वालेको संहार करके जलदी घोडेको लाओ यह कहने लगे क्योंकि यज्ञमें विघ्न होनेसें हमारा मंगल नहीं होगा ॥ १० ॥ इस्से हे राजन्! ऐसा कीजियेकि विघ्न रहित यज्ञ होजाय तुरंगरक्षकों व ऋत्विजोंके सभामें ऐसे वचन सुन रा-

जाने ॥ ११ ॥ अपनें साठ हजार पुत्रोंसे यह वचन कहा कि मैं यज्ञमें दी- क्षित होरहाहूं सो इस यज्ञमें राक्षसोंके द्वारा विघ्न होनेसें मेरी गति नहीं हो- गी ॥ १२ ॥ मैं मंत्र ग्रहण पूर्वक पवित्र हव्य भाग देवता ओंको देनेको बैठाहूं अतएव तुम लोग यज्ञीय अश्वका अन्वेषण करो तुम्हारा मंगल- हो ॥१३॥ तुम सब समुद्र युक्त पृथ्वीमें खोज करो हे पुत्रो क्रम २ से एक२ योजन अच्छी तरह ढूंढो ॥ १४ ॥ जब तक घोडा न मिले या उसका हरने वाला न पायाजावे तब तक पृथ्वीको खोदते रहना ॥ १५ ॥ मैं य- ज्ञमें दीक्षितहो पौत्र और ऋत्विकों पुरोहितोंके साथ अश्वके दर्शनकी प्रतीक्षा करता यहां रहूंगा तुम्हारा मंगलहो ॥ १६ ॥ हे राम! पिताके वचन सुनके महा बलवान् वह साठ हजार पुत्र प्रफुल्ल मनसे घोडेकी खो- जके अर्थ सब पृथ्वीपर घूमनें लगे ॥ १७ ॥ वह पुरुष सिंह वज्रकी स- मान देह वाले अपने हाथोंसे एक योजन लम्बी चौडी पृथ्वी खोदने लगे ॥ ॥ १८ ॥ हे रघुनंदन! उस समय पृथ्वी अशनि सदृश शूल और तीक्ष्ण हलद्वारा भेदी जाकर आर्त्त नाद करने लगी ॥ १९ ॥ हे राघव! क्रमसें मारेहुये हाथी, सर्प, निशाचर और जो किसीसें न जीतें जायँ ऐसे असुर व और भूचरोंके करुणा स्वरसें दिग्मंडल परिपूर्ण होगया ॥ २० ॥ हे राम!इसभांति उन सगरके पुत्रोंने साठहजार योजन पृथ्वी खोदडाली और खोदते२ पातालमें जाय पहुंचे २१ ॥ इस प्रकार अनेक पर्वतोंसें युक्त समस्त जंबूद्वीप उन राजकुमारोंने खोदडाला ॥ २२ ॥ हे रक्षा करन हारोंमें श्रेष्ठ इस प्रकारसें वे खोदते २ चारों ओरसें धावमान हुये ॥ २३ ॥ तदनन्तर देवता, गन्धर्व, असुर और पन्नग सब चकित होकर पितामह ब्रह्माजीके पास गये और शोक ग्रसित मनसें ब्रह्माजीको प्रसन्न करते अत्यन्त व्याकुल मनसे इस प्रकार ब्रह्माजीसे बोले ॥ २४ ॥ हे भगवन्! दुराचारी सगरके पुत्र सब पृथ्वीको खोदे डालते हैं और नाना जलजन्तु व सिद्धोंतकका प्राण संहार करतेहैं ॥ २५ ॥

अयंयज्ञहरोस्माकमनेनाश्वोपनीयते ॥
इतितेसर्वभूतानिहिंसंतिसगरात्मजाः ॥ २६ ॥

जिसे देखतेहैं उसेही अपने यज्ञका विद्वेषी समझतेहैं मारडालतेहैं॥ कहतेहैं यही हमारे यज्ञमें बाधा करनेवालाहै इसीने घोडा लियाहै ॥ २६ ॥ इ० श्रीमद्रा० वा० आ० बा० एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशःसर्गः ॥

देवतानांवचःश्रुत्वाभगवान्वैपितामहः ॥
प्रत्युवाचसुमंत्रस्तान्कृतांतबलमोहितान् ॥ १ ॥

भगवान् कमलासन ब्रह्माजी देवताओंकी वात सुन और उसका विचार करके सगर संतानसे डरे हुये व विमोहित हुये देवताओंसे बोले ॥ ॥ १ ॥ यह वसुन्धरा जिन भगवान् वासुदेवकी स्त्रीहै व जो माधव इसके अधिपतिहैं वही भगवान नारायण ॥ २ ॥ कपिलमूर्त्ति धारण करकै दिन रात पृथ्वीको धारण करतेहैं उन्हींकी क्रोधाग्निसें यह दुष्ट राजपुत्र भस्म हो जाँयगे ॥ ३॥ पृथ्वीका खोदनाही पूर्वकालसें निश्चय किया गयाहै अर्थात् यह ऐसेही होनाथा महात्माओंने जानाहै कि अदूरदर्शी सगर सन्तानोंके मरनेका कारण होगा ॥ ४ ॥ पितामहजीका वचन सुन ८ वसु ११ रुद्र १२ आदित्य २ अश्विनी कुमार यह सब ३३ देवता शत्रुओंको मारने वाले प्रफुल्ल मनसे अपने २ स्थानको चले गये ॥ ५ ॥ इधर पृथ्वी खोदनेके कालमें सगर सन्तानोंको जो वज्र गिरनेकी समान कुलाहल उठाथा जब सब पृथ्वी खुदगई तब वह कोलाहल नहीं रहा॥ ६॥ तब सगरके साठ हजार पुत्र मनमारे जी हारे सब पृथ्वीकी प्रदक्षिणा देकर अपने पिताके पास आये और उनसे सब वृत्तांत कहा ॥ ७॥ कि हम लोग समस्त पृथ्वीपर घूम आये देव दानव और पिशाचादिकोंको जानतकर्से मारडाला प्राणियोंको अनेक दुःख दिये ॥ ८ ॥ परन्तु कहीं घोडे और उसके हरनेवालेका पता न पाया आपका कल्याणहो अब हमें क्या आज्ञा होतीहै सो विचार करके कहिये ॥ ९ ॥ हे राम! पुत्रके ऐसे वचन सुन नृपति श्रेष्ठ सगर क्रोधितहो यह वाक्य बोले ॥ १० ॥ तुम लोग मेरा कहना मानकर फिर वसुधाको खोदडालो और अबकी तुम्हें अवश्यही घोडेका पता लगाना होगा और उसके हरनें वालेका पता लगाकर कृ-

तार्थ होकर लौटना ॥ ११ ॥ महात्मा सगरराजकी आज्ञासे६००००सगर पुत्र पातालको चले ॥ १२ ॥ उन्होंने पृथ्वी खोदते २ पर्वत समान विरू-पाक्षनामक एक दिग्गजको पृथ्वी धारण किये हुये देखा ॥ १३ ॥ हेराम ! यह विरूपाक्षनामक महाहाथी कानन पर्वतों सहित उस दिशाकी पृथ्वीको अपने ऊपर धारण कियेही रहताहै ॥ १४ ॥ हेकाकुत्स्थ जिससमय कभी यह हाथी भारबोझके थककर विश्रामार्थ शिर इधर उ-धर हिलाताहै तभी भूकम्प होताहै ॥ १५ ॥ हेराम सगरके पुत्र इस दिशाके पालने वाले महागजको प्रदक्षिणाकर और आदर करके रसा-तलको भेदन पूर्वक गमन करने लगे ॥ १६ ॥ तदनन्तर पूर्व दिशा भेदकर फिर दक्षिण दिशा खोदने लगे इस दक्षिण दिशामेंभी उन्होंनें एक वैसाही हाथी देखा ॥ १७ ॥ इस महात्मा हाथीका नाम महापद्महै आकारमें बडे पर्वतकी तुल्यहै यहभी अपने शिरपर पृथ्वीको धारण किये रहताहै इसको देखकर सगर पुत्र विस्मित होगये ॥१८॥ वे महात्मा सगर पुत्र इस गजकीभी प्रदक्षिणा करके यह साठ हजार बलवान् पश्चिम दिशा खोदनें लगे ॥१९॥ उन महा बलियोंनें पश्चिम दिशामेंभी बडा पर्व-ताकार सौमनस नाम महागजको देखा ॥ २० ॥ सगर पुत्र उसकी प्रद-क्षिणा व कुशल प्रश्न जिज्ञासाकर पृथ्वी खोदते २ उत्तर दिशाको चले गये॥२१॥हे रघुवंशमें श्रेष्ठ महा भद्र नामक तुषारवत् श्वेत वर्ण श्रेष्ठ श-रीर एक महा हस्तीको भूभार वहन करते देखा वे सब उस्से मिले॥२२॥ और उसकी परिक्रमा देकर फिर सगर सुत पृथ्वीको खोदने लगे ॥ २३ ॥ क्रमसे उन लोगोंने सब दिशाओंकी पुहुमी खोद फिर क्रोध सहित उत्तर पश्चिम दिशामें जाकर पृथ्वी खोदनी प्रारम्भकी ॥ २४ ॥ और यहां उन बली तीक्ष्ण वेगवालोंने सनातन वासुदेव कपिल देवजीको विराजमान दे-खा॥२५॥और उन भगवान्के स्थानसें थोडीही दूर घोडेको देख यह सब परमानन्दित हुये॥२६॥और कपिल देवजीहीको यज्ञका विघ्नकारी जान क्रोधसें आंखें लाल २ कर हल कुदार वृक्ष शिलादि धारण कर ॥ २७ ॥ खडाहो खडाहो कहते हुये क्रोधसें दौडे व कहने लगे कि हमारे यज्ञका घोडा तैंनेंही चुरायाहै ॥ २८ ॥ हे दुर्मति अबतू जानले कि सगर पुत्र आगये हे रघुनंदन ! उनके ऐसे वचन सुनकर कपिल भगवान्जीनें॥२९॥

रोषेणमहताविष्टोहुंकारमकरोत्तदा ॥
ततस्तेनाप्रमेयेणकपिलेनमहात्मना ॥
भस्मराशीकृताःसर्वेकाकुत्स्थसगरात्मजाः ॥ ३० ॥

क्रोधितहो हुंकार किया हे राम बस उन महात्मा महातपस्वी कपिल देवजीके हुंकारसेही अप्रमेय बलशाली सगर सन्तान जलकर राखकी ढेरी होगये ॥ ३० ॥ इति श्रीमद्रामायणे वा० आ० बालकांडे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ॥

पुत्रांश्चिरगताञ्ज्ञात्वासगरोरघुनंदन ॥
नप्तारमब्रवीद्राजादीप्यमानंस्वतेजसा ॥ १ ॥

हे रघुनंदन ! राजा सगर अपने पुत्रोंको बहुत दिनसे गये हुये जान वीर्यवान अपने तेजसें दीप्तमान पौत्र अंशुमानसे बोले ॥ १ ॥ हे वत्स तुम वीर और सब विद्या पढे लिखे व अपने पितृव्योंकी समान तेजशालीहो अतएव पितृव्यों सहित घोडेको ढूंढकर आओ ॥ २ ॥ पृथ्वीके भीतर जो सब महाबली जीवहैं उनको हरनेके लिये धनुर्बाण और असि ग्रहण करो ॥ ३ ॥ जो कोई वन्दना करनेंके योग्यहो उनको प्रणाम और विघ्न कारियोंका नाशकर जल्दी लौटो अधिक क्याकहूं मेरे यज्ञपूर्ण होनेके एक तुम्ही प्रधान सहायहो ॥ ४ ॥ इस भांति महात्मा सगरके कहनेपर अंशुमान धनुष और खड्ग धारण पूर्वक द्रुत गतिसें चले गये ॥५॥ हे मनुष्योंमें श्रेष्ठ मार्गमें जाते २ पृथ्वीके भीतर अपने महात्मा पितृव्योंका खोदा हुआ एक मार्ग देखा वह उस मार्गके देखनेको उसमें प्रवेशित हुये ॥ ६ ॥ इसी मार्गमें जाते २ देखा कि बीच २ में एक २ दिग्गज खडाहै और देव,दानव,राक्षस,पिशाच,उरग गण उसकी पूजा कर रहेहैं॥७॥ अंशुमानने उसकी प्रदक्षिणा करके उनसें कुशल प्रश्न पूछकर पितृव्यों सहित यज्ञीय अश्वके हरने वालेका वृत्तांत पूछा ॥ ८ ॥ यह वार्त्ता सुनकर उस महा बुद्धिमान् दिग्गजने कहा कि तुम कार्य सिद्धकर अश्व सहित शीघ्रही लौटोगे ॥ ९ ॥ दिग्गजका ऐसा वचन सुनकर यही बात

न्याय पूर्वक क्रमसें अंशुमानजीनें और सब दिशाओंके दिग्गजोंसें पूं-छो ॥ १० ॥ सब परम चतुर वाक्य जाननें वाले पंडित दिक्पालोंनें यही उत्तर दिया कि अश्व लेकर शीघ्र लौटोगे ॥११॥ तिनका वचन सुन अंशुमानजी वेगसें चले और वहां पहुँचे जहां उनके पितृव्यगण सगर पुत्र भस्म होगयेथे ॥ १२ ॥ तब असमंजसके पुत्र अंशुमान् अपने पितृव्यों-का मरण सम्वाद सुन बहुत दुःखी हुये और कुछ देरतक उनके अर्थ बडे करुणा स्वरसें विलाप करके शोक करते रहे ॥ १३ ॥ फिर उस पुरुष सिंहने दुःख शोकाभिभूतहो दृष्टि संचारण करके देखा कि इस स्थानके निकटही यज्ञीय अश्व विचरण कर रहाहै ॥ १४॥ तब वह पितृ पुरुषोंको जल देनेके लिये कृत संकल्प हुये किन्तु उस महातेजस्वीको कहीं जला-शय नहीं दीख पडा ॥ १५ ॥ हे राम! तब दृष्टि पसारकर उसनें अपने पितृव्योंके मामा अग्नि समान प्रदीप्तमान पक्षियोंके राजा गरुडजीको वहां बैठे देखा ॥ १६ ॥ महाबली विनतानंदननें असमंजसनंदनको दुःखो देखकर कहा,हे पुरुष श्रेष्ठ शोक मत करो यह मृत्यु संसारकी स-म्मतिसे हुईहै ॥ १७ ॥ महाबलशाली तुम्हारे पितृव्य महात्मा कपिल-जीके शापसें भस्म हुयेहैं अतएव उनकी सद्गतिके अर्थ लौकिक जलमें तर्पण करना ठीक नहीं ॥ १८ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ हिमाचलके गंगा नामक एक बडी पुत्रीहै तुम उसकेही पवित्र जलसें पितृव्योंका तर्पण करो॥१९॥ त्रिलोक पावन गंगाजीही भस्म राशि हुए तुम्हारे पितृव्योंके कलेवरको बहावैंगी उन पवित्र करनेंवाली गंगाजीके यह भस्म वहानेंसें ॥ २० ॥ व गंगाके प्रभावसे ६०००० साठ हजार पुत्र स्वर्गको जायंगे हे पुरुष श्रेष्ठ तुम अब महा भाग यज्ञीय अश्व ग्रहण पूर्वक घरको लौट जाओ और ऐसा करो जिस्से तुम्हारे पितामहका यज्ञ पूर्ण होजाय ॥ २१ ॥ गरुड-जीसें ऐसा सुनकर वीर तपस्वी अंशुमानजी शीघ्रतासें अश्व सहित अ-पने घर आ पहुँचे ॥२२॥ हे रघुनंदन! तदनन्तर यज्ञमें दीक्षितहुये सगर राजसें यह वृत्तांत और गरुडकी सब वार्त्ता कही ॥ २३ ॥ महाराज सगर-नें अंशुमानसे दारुण सम्वाद श्रवण करके यथाविधि यज्ञकार्य पूराकिया अनन्तर यज्ञ प्रिय लक्ष्मीवान राजासगर नगरमें प्रवेश करके किस प्रका-

र गंगाजी पृथ्वी पर आवेंगी इस विषयकी चिन्ता करनें लगे परन्तु कोई निश्चय नकरसके ॥ २४ ॥ २५ ॥

अगत्वानिश्चयंराजाकालेनमहतामहान् ॥
त्रिंशद्वर्षसहस्राणिराज्यंकृत्वादिवंगतः ॥ २६ ॥

अंतको राजा इस सम्बन्धमें बहुत दिनों तक चिन्ता करकै कोई उपाय नकरसके और तीस हजार वर्ष राज्य करकै स्वर्गको सिधारे ॥ २६ ॥
इ०श्रीमद्वा०वा०आ०बा०एकचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४१ ॥

द्वाचत्वारिंशः सर्गः ॥

कालधर्मंगतेरामसगरेप्रकृतीजनाः ॥
राजानंरोचयामासुरंशुमंतंसुधार्मिकम् ॥ १ ॥

हेराम! काल धर्मानुसार महाराज सगरके स्वर्गवासी होनेपर प्रजानें धार्मिक अंशुमानको राजसिंहासन पर प्रतिष्ठित किया ॥ १ ॥ हे रघुनंदन! राजा अंशुमाननें बहुत अच्छा राज्य किया इनके पुत्र महा प्रतापी दिलीपहुये ॥ २ अंशुमान पुत्रको राजभार सौंप रमणीक हिमालय पहाडके शिखर पर दारुण तप करने लगे ॥ ३ ॥ और बत्तीस हजार वर्षतक घोर तप करकै वे महायशस्वी तपस्वी स्वर्गको प्राप्त हुये॥ ४ ॥ महातेजस्वी महाराज दिलीपभी अपने पितामहोंका विनाश वृत्तान्त श्रवण करकै दुःखसे पीडित रहे परन्तु गंगालानेका कुछ निश्चय न करसके ॥५॥ किस प्रकार गंगाको लावें कैसे पितामहों की जल क्रिया कीजावे किस भांति उनका उद्धार हो यही चिन्ता रात दिवस महाराज दिलीप करते रहे ॥ ॥६॥इस धार्मिक राजाके यही चिन्ता करते२भगीरथ नाम एकपुत्र उत्पन्न हुआ यह परम धार्मिक प्रसिद्ध हुये ॥ ७ ॥ महातेजस्वी महाराज दिलीपने बहुत यज्ञोंके अनुष्ठान कियेथे व न्याय सहित ३२००० वर्षतक राज्य किया ॥ ८ ॥ इनको पितामहादिकोंके उद्धारका उपाय चिन्ता करते २ रोगने आघेरा और उसी रोगमें मृत्युको प्राप्त हुये ॥ ९ ॥ वह नर श्रेष्ठ अपने सिंहासन पर भगीरथको बिठलाकर अपने कर्म फलसें इन्द्रलोकको चलेगये ॥ १० ॥ हे रघुनंदन! उनके पीछे महाराज भगीरथ बड़े

धार्मिक राजर्षि हुये इनके कोई पुत्र नहींथा चाहतेथे कि सन्तान होजाय तब गंगाजीके लानेका उपाय किया जाय ॥ ११ ॥ हे राम ! जब कोई सन्तान न हुई तौ मंत्रियोंको राज्य भार समर्पण कर गोकर्ण नामक स्थान में गंगाजीके आनेके लिये दीर्घकाल तक तपस्या करते रहे ॥ १२ ॥ वह इन्द्रियोंको जीतकर कभी महीनेंके अंतमें आहार करते कभी पंचाग्नि तापते व कभी ऊर्द्ध्वबाहु रहते इसी भांति घोर तप करते२ हजारों वर्षवीते ॥ १३ ॥ जब उन महात्मा महाबाहु राजाको तप करते बहुत समय बीत गया तब प्रजापति ब्रह्माजी उनके ऊपर प्रसन्न हुये ॥ १४ ॥ तब ब्रह्माजी सुरगणों समेत तपस्या करते हुये महात्मा भगीरथके निकट उपस्थित होकर उनसें बोले ॥ १५ ॥ हे वत्स भगीरथ महाराज प्रजाके स्वामी मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हुआ अब तुम वरमांगो ॥ १६ ॥ तब वह बडी भुजावाले अधिक तेजस्वी राजा भगीरथजी हाथ जोड़कर खडेहो उन सब लोकके पितामह ब्रह्माजीसे बोले ॥ १७ ॥ हे भगवन्! यदि आप मेरे ऊपर प्रसन्न हुयेहैं यदि मेरे तपसे कुछ फल होनेंकी सम्भावना हो तौ महाराज सगरके सब पुत्र मुझसें गंगाजीका जलपावें ॥ १८ ॥ क्योंकि जब उन महात्मा प्रपितामहाओंकी भस्म गंगाजलमें भीगेगी तभी वे स्वर्गको जायँगे और उपाय उनके तरनेका नहीं ॥ १९ ॥ और हे देव ! दूसरी प्रार्थना मेरी यह है कि इक्ष्वाकुकुल लुप्तनहो सो मेरे पुत्र नहींहै अतएव पुत्र दीजिये ॥ २० ॥ जब राजाने ऐसा वचन कहा तो सम्पूर्ण संसारके पितामह ब्रह्माजी मनोहर अक्षर वाली अति शुभ मधुर वाणी बोले ॥ २१ ॥ हे महारथी भगीरथ यह तुम्हारा बड़ा मनोरथ है सो तुम्हारी मनोकामना पूर्ण होगी तुम्हारा मंगलहो ॥ २२ ॥ हिमालयकी ज्येष्ठ पुत्री गंगा पृथ्वी पर आवैंगी सो हे राजन् उनका वेग धारण करनेके अर्थ शिवजीकी प्रार्थना करो ॥ २३॥ हे राजन् गंगाजीका गिरना पृथ्वी नहीं सह सकैगी इस कारण शूलपाणिके अतिरिक्त गंगाजीका वेग धारण करनेको और कोई समर्थ नहींहै ॥ २४ ॥

तमेवमुक्त्वाराजानंगंगांचाभाष्यलोककृत् ॥
जगामत्रिदिवंदेवैःसर्वैःसहमरुद्गणैः ॥ २५ ॥

सृष्टिकर्त्ता ब्रह्माजी राजा भगीरथसे ऐसा कह और गंगाजीसे यह वचन कहकर कि यथा समय राजाके ऊपर अनुग्रह करना तब सब देवता और भी मरुत गणोंके सहित स्वर्गको चलेगये ॥ २५ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० बा०द्विचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४२ ॥

त्रयश्चत्वारिंशःसर्गः ॥

देवदेवेगतेतस्मिन्सोंगुष्ठाग्रनिपीडिताम् ॥
कृत्वावसुमतींरामवत्सरंसमुपासत ॥ १ ॥

देवदेव प्रजापतिके देवलोक जानें पर भगीरथ पैरके एक अंगूठेसें खडे रहकर एक वर्ष तक शिवजीका तप करते रहे ॥ १॥ सम्वतके बीत जाने पर सर्व लोक वन्दित उमाके पति पशुपति महादेवजी भागीरथसे बोले ॥२॥ हे नर श्रेष्ठ मैं तुमसें प्रसन्न हुआ हू मैं तुम्हारा प्रियकरके हिमालय की पुत्री गंगाको अपने शिरपर धारण करूंगा ॥ ३ ॥ उस समय नगेन्द्र नन्दिनी गंगाजी अत्यन्त शोभायमान रूप धारण करकै प्रबल वेगसे ॥ ॥ ४ ॥ हे राम! आकाशसे कल्याण रूपी शिवजीके शिरपर गिरीं आकाशसे गिरनेके समय वह परम दुर्धरा गंगादेवी चिन्तना करने लगीं कि ॥ ५ ॥ मैं प्रबल प्रवाहसें शिव सहित पातालमें बैठ जाऊंगी धूर्जट महादेवजी गंगाका यह अभिप्राय जानकर मनमें कुपित हुये ॥ ६ ॥ तिनका ऐसा घमंड जान महादेवजीने चाहाकि ऐसा करैं जिससे हमारी जटामें ही भूल रहैं तब गंगाजी उन पवित्र शिवजी महाराजके शरीरमें गिरीं ॥७॥ गंगाजीनें बहुतेरा चाहाकि निकल कर भूतलको चली जायँ पर हिमालयकी समान अतिगंभीर जटाओंमें ऐसी घूमी कि किसी यत्नसें बाहर न निकल सकीं ॥ ८ ॥ वे गंगाजी इस भांति जटा मंडलमें मंडित हो इस प्रकार बहुत कालतक उसमें घूमती रहीं कहीं न निकल सकीं ॥ ॥ ९ ॥ भगीरथने यह देखकर फिर शिवजीका तप आरंभ किया हे राम भगीरथने अत्यन्त तपस्या कर शिवजीको प्रसन्न किया ॥ १० ॥ उनकी तपस्यासे प्रसन्नहो गंगाधरनें गंगाजीको जटाजालसे निकाल कर विन्दु सरोवर की ओर को छोड दिया उसके छोडनेसे सात धाराओंकी उत्पत्ति

हुई॥ ११॥ ह्लादिनी पाविनी और नलिनी यह तीन गंगाके सुन्दरजलकी धारा तौ पूर्व दिशाको वहीं॥१२॥सुचक्षु, सीता और सिन्धुनामक महानदी तीन सुन्दर धारा पश्चिमको गईं॥१३॥ अवशिष्ट धार सातवीं महाराज भगीरथके पीछे २ चली राजर्षि भगीरथभी दिव्यरथ पर चढकर आगे २ जानेलगे ॥ १४ ॥ वह महा तेजस्वी आगे २ और गंगा उनके पीछे २ चली गंगाजी प्रथम शिवजीके जटाजूटमें और वहांसे पृथ्वीपर उतरीं ॥ १५ ॥ उनके गमन करने के समय महाकुलाह उठा और उनकी सलिल राशिमें मत्स्य, कछुए, नाके आदिक जलजन्तु ओंको अपनी धारामें वहाया ॥ १६ ॥ उनके गिरनेसे पृथ्वी शोभित होने लगी उस समय व्योम मंडलसें व्योम विहारी देवर्षि गन्धर्व व सिद्धादि ॥१७॥ आकाशसे गंगाके आनेका यह व्यापार देखनें लगे वे देव गण नगराकार विमान हय और हाथी पर चढे हुये गंगाजीके दर्शन करने को आये॥१८॥ जैसे २ गंगाजीकी धारा आगेको बढतीथी यह लोगभी आश्चर्य से देखते हुये संग चले जातेथे मानो इसलोकमें गंगाजीका आना अद्भुत ही था ॥ १९॥ महातेजस्वी देवताओंके गंगाजीके देखनेके निमित्त आनेसे और उन देवताओंके गहनों की चमकसे॥ २० ॥ विना वादरका नभ ऐसा शोभायमान होताथा मानो सैकडों सूर्य निकलेहैं चंचल स्वभाव सर्प शिशुमार औसस्यादि जन्तुओंसे॥२१॥ चारों ओर आकाशसें विजलीकीसी प्रभा उछलतीथी तब उस समय पीले वर्णका फेन हजारों टुकडे २ हो इधर उधर फैलगया ॥ २२ ॥ तोऐसा बोध हुआ मानो हंस श्रेणी समन्वित शरद्के मेघोंसें दिग्मंडल छारहाहै इसी समय जाह्नवी का वेग कहीं द्रुत कहीं टेढा॥२३॥कहीं चौडे फाटका कहीं नीचा कहीं ऊंचा होताजाताथा स्थान विशेष वा सलिलके संयोगसे गंगाका जल ताडितहो उछलने लगा॥ २४॥ किसी स्थानमें जलका प्रवाह ऊपर चढकर फिर नीचे गिरा वह शंकरके शिरसे गिरा और फिर पृथ्वी पर आयाहुआजल ॥ २५ ॥ सर्व पापका नाश करने वाला वह गंगाका जल निर्मल भावसे शोभा पाने लगा तब ऋषि और गन्धर्व व पृथ्वीके रहने वाले ॥ २६ ॥ सभी शिवजीके शिर परसे गिरेहुये पवित्र जलको

स्पर्शकर व स्नानादि करते कराते जो शापसे आकाशसे भूतलमें आये- थे ॥ २७ वह भी पवित्र नीरके छूतेही स्नानकर पापरहितहो शापसें छूटे उस पवित्र जलके स्पर्श आचमनसें पवित्रहो ॥ २८ ॥ व फिर आ- काशमें पहुँच अपने स्वर्गलोकको पहुँचे गंगाजीके दर्शन करनेसे सब आनन्दितहो॥२९॥स्नानादि समापन पूर्वक भली प्रकारसें निष्पाप होगये राजर्षि भगीरथजीभी ॥ ३० ॥ दिव्यरथपर चढकर आगे २ गमन करनें लगे गंगाजी उनके पीछे २ जाने लगीं देवतालोग ऋषि गण समस्त दैत्य दानव राक्षस ॥ ३१ ॥ गन्धर्व श्रेष्ठ यक्ष किन्नर, नाग, सर्प व अप्सरायें हे राम यह सब भगीरथजीके पीछे चले जातेथे ॥ ३२ ॥ इस भांति जल चरतक प्रीतियुक्त हो गंगाजीका अनुसरण करते चले. जिस मार्गसे भगी- रथ जाते उसी पंथसे यशस्विनी गंगाजी गमन करने लगीं ॥ ३३ ॥ त- दनन्तर त्रिलोक पावन करनेवाली गंगाजी जाते२विचित्र कर्म करनेवाले जह्नु मुनिके यज्ञक्षेत्रमें वेग सहित उपस्थित हुई ॥ ३४ ॥ इनके आनेसेही ऋषि का यज्ञ स्थल बहगया गंगाको गर्व हुआ जान जह्नु अति क्रोधित हुये ॥ ३५ ॥ वह मुनि क्षण कालमें भागीरथीका सब अद्भुत जल पीगये इसको देख देवता, गन्धर्व व ऋषिगण विस्मित होगये ॥ ३६ ॥ और ऋ- षि जह्नुकी पूजा स्तुतिकर बोले कि हे महात्मा आजसे सरिद्वारा गंगाजी आपकी कन्या हुई ॥ ३७ ॥ तदनन्तर तेजस्वी महात्मा जह्नुने सन्तुष्ट होकर अपने कानोंके मार्गसे जलको निकाल दिया तबसे गंगाजीका नाम जाह्नवी हुआ जह्नुसुता तभीसें कहलातीहैं ॥ ३८ ॥ तदनन्तर गंगाजी फिर भगीरथकी अनुगामिनी हो गमन करने लगीं और तब यह श्रेष्ठ नदी समुद्रमें मिलीं ॥ ३९ ॥ फिर वहांसे राजा भगीरथका कार्य सिद्ध करनेंको रसातलमें प्रवेश किया राजा भगीरथभी अति- यत्नसें पूर्व पुरुषोंका उद्धार करनेके लिये उनको वहां लेगये ॥ ४० ॥

पितामहान्भस्मकृतानपश्यद्गतचेतनः ॥
अथतद्भस्मनांराशिंगंगासलिलमुत्तमम् ॥ ४१ ॥
प्लावयत्पूतपाप्मानःस्वर्गंप्राप्तारघूत्तम ॥ ४२ ॥

अपने पूर्व पुरुषोंको भस्म हुआ देख राजा भगीरथ अचेत होगये

हेराम! तब श्री गंगाजीका पवित्र सलिल उस भस्म राशि पर पडतेही वह सगरके साठहजार पुत्र देवलोकको चलेगये ॥ ४१ ॥ ४२ ॥ इ० श्रीमद्रा० वा० आ० बा० त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशःसर्गः ॥

सगत्वा सागरंराजागंगयानुगतस्तदा ॥
प्रविवेशतलंभूमेर्यत्रतेभस्मसात्कृताः ॥ १ ॥

इस सर्गके अंतमें संक्षेप रीतिसें राजा सगरके पुत्रोंका तरनाकहा गया सो अब विस्तार सहित कहतेहैं कि महाराज भगीरथ समुद्रके किनारे पर जहां सगर पुत्रोंकी भस्म पडीथी वहां पहुंचे और उनके पश्चात् २ गंगाजीभी पहुँची ॥ १ ॥ हेरामचन्द्र! जब गंगाजल सब भस्म राशिपर पडा तब लोकपितामह ब्रह्माजी भगीरथसे आकर बोले ॥ २ ॥ हे राजर्षे! तुमसें तुम्हारे पूर्वजोंका उद्धार होगया अब वह सब देवताओंकी समान स्वर्ग लोकको चलेगये महात्मा सगरके साठ हजार पुत्र तरगये ॥ ३ ॥ हे राजा जबतक समुद्रमें जल रहेगा तब तक सगर सन्तान गण देवताओंकी समान स्वर्गलोकमें वास करैंगे अबसें यह गंगा तुम्हारी ज्येष्ठ कन्या हुई तुम्हारा नाम संसारमें चिरकालतक प्रसिद्ध रहेगा और तुम्हारे नाम से गंगा भागीरथी नामसे ख्यात होगी ॥ ४ ॥ ५ ॥ इनके दूसरे नाम त्रिपथगा दिव्या भागीरथी होंगे जिस्से स्वर्ग मृत्यु पाताल तीन लोकोंके मार्गमेंहो गंगाजी वहीं इसी कारण उनका त्रिपथगा नाम हुआ ॥ ६ ॥ हेराजन्! अब तुम अपने पूर्व पुरुषोंका तर्पण यहीं करो और अपनेको प्रतिज्ञासें छुडाओ ॥ ७ ॥ तुम्हारे पूर्वज धर्म करनेवालोंमें श्रेष्ठ महाराज सगर इच्छा करनेमेंभी यह मनोरथ सिद्ध नहीं कर सकेथे ॥ ८ ॥ हेवत्स! उनके पश्चात् इसी प्रकार अमित तेजवान अंशुमानने गंगा लानेकी प्रतिज्ञाकीथी किन्तु वह भी कृतकार्य नहीं हुये ॥ ९ ॥ तदनन्तर राजर्षि महर्षि तुल्य तेजस्वी मेरी समान तपस्वी क्षत्रियधर्मके प्रतिपालक ॥ १० ॥ हे बड़भागी पापरहित तुम्हारे तेजस्वी पिता राजादिलीपभी प्रार्थना गंगाजीकी करते रहे पर सफल कार्य न हुये।११। हेपुरुष श्रेष्ठ! तुमने वह प्रतिज्ञा

पूर्ण करके संसारमें निष्कलंक यश प्राप्त कियाहै॥१२॥हेशत्रुके मारनेंवाले तुमने जो पृथ्वीपर गंगाजीको उताराहै इसमें तुमको महान् धर्मकी प्राप्ति हुईहै पवित्र या अपवित्रकालमें गंगास्नान करनें में कोई हानि नहीं(और नदियों का जल सावन भादों में दूषित होजाताहै है)अतएव पुरुषश्रेष्ठ!तुम इसमें नहाकर पवित्रहो और दिव्य फल पाओ॥१३॥१४॥तुम अपने पितृ पुरुषोंके लिये तर्पण करो हेराजन्! तुम्हारा मंगलहो अब मैं अपने स्थानको जाताहूं ॥ १५ ॥ देवताओंके ईश्वर सम्पूर्ण लोकोंके पितामह प्रजापति ब्रह्माजी यह कहकर जहांसे आयेथे उसी स्थानको चलेगये॥१६॥ राजर्षि भगीरथने राजासगरके पुत्र अपने पूर्व पुरुषोंकी जलक्रिया यथा विधि न्याय सहित की ॥१७॥वह जलक्रिया सम्पन्नकर पवित्रहो राजा अपनी राजधानीमें आये और वह मनुष्य श्रेष्ठ परमानन्दसें राजकार्य करने लगे ॥ १८ ॥ हेराघव ! सब लोकनाथके दर्शन करकै अति सन्तुष्टहुये उस समय किसीके मनमें शोक व दुश्चिन्ताका आधिपत्य नहीं रहा सब धनवान् व विगत ज्वर होगये ॥ १९ ॥ हे रामचन्द्र यह तुमसें गंगाजीका वृत्तांत विस्तार सहित कहा तुम्हारा मंगलहो देखो कथा कहते २ संध्या होंने आई ॥ २० ॥ जो ब्राह्मण क्षत्रिय या अपर जातिको यशस्कर आयुष्कर पुत्रदायक व स्वर्गदायक यह वृत्तांत सुनेंगे अथवा जो ब्राह्मण दूसरोंको सुनावेंगे ॥ २१॥ उनसे पितृ व देवगण प्रसन्न रहैंगे यह गंगाजीके आनेका व्याख्यान शुभ और आयुका देने वाला है ॥ २२ ॥

यःशृणोतिचकाकुत्स्थसर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥
सर्वेपापाःप्रणश्यंतिआयुःकीर्तिश्चवर्धते ॥ २३ ॥

हे राम ! जो मनुष्य इस वृत्तांतको श्रवण करताहै वह सब पापोंसे छूटकर दीर्घायुको लाभ करताहै मन वांछित फल प्राप्त होतेहैं और उसकी कीर्ति फैल जातीहै ❀ ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीये आ० वा० चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

❀ कवित्त ॥ गंगाको चरित्र लख कहत यमराजयों एरे चित्रगुप्त मेरे हुकममें कानदे ॥ कहत पद्माकर सब नळनको मूंदराख बंदकर दरवाजे तज यह स्थानदे ॥ देख यह देवनदी महिमा सब देवतान दूतनको बुलाय विदाके वेग पानदे ॥ फारडार फरदैं न राख रोजनामचे खातैं खतिजाँय तौ महीको वह जानदे.

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥

विश्वामित्रवचःश्रुत्वाराघवःसहलक्ष्मणः ॥
विस्मयंपरमंगत्वाविश्वामित्रमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

विश्वामित्रजीसे यह कथा सुन राम लक्ष्मण सहित अत्यन्त विस्मित-हो विश्वामित्र ऋषिजीसे बोले ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन्! पृथ्वीपर गंगाका आना और गंगाजलसे समुद्रका पूर्ण होना जो आपनें कहा सो अत्यन्त अद्भुत घटनाहै ॥ २ ॥ हे परंतप आपकी इस सम्पूर्ण मधुर कथाकी चिन्ता करते २ हमको यह रात्रि एक पलकी समान जान परी ॥ ३ ॥ हे विश्वामित्रजी रात्रिमें हमने और कुछ नहीं किया केवल उसी कथाकी चिन्तनामें लगे रहे मुझे और लक्ष्मणको सारीरात इसी कथाका ध्यान रहा॥४॥ अनन्तर प्रभातकाल होतेही सन्ध्यादिक प्रभृतिकार्य करकै शत्रुओंके मारने वाले रामचन्द्रजीसे तपोधन विश्वामित्रजी बोले ॥ ५ ॥ हे भगवन् रात्रि बीत गई प्रभात होगया, अब चलिये नदियोंमें श्रेष्ठ पुण्य देने वाली त्रिपथगामिनी गंगाजीको उतरैं ॥ ६ ॥ पुण्य कर्मवाले ऋषियोंने हमारे लिये सुन्दर बिछौने युक्त नाव तैयार कर रक्खीहै आपको यहां आये हुये जान वह लोग जल्दीसे यहां आयेहैं ॥ ७ ॥ महात्मा रामचन्द्रजीने यह सुनकर महर्षि विश्वामित्रजी ऋषियों समेत गंगा पारहुये ॥ ८ ॥ क्रमसे उन लोगोंने उत्तर तीर उपस्थितहो अभ्यागत ऋषियोंका आदर सन्मान कर वहां कुछ देर बैठ एक विशाला नाम पुरी देखते हुये ॥ ९ ॥ तदनन्तर शीघ्रतासे स्वर्ग सदृश उस दिव्य विशाला पुरीके सामनेको रामचन्द्र लक्ष्मण सहित मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजी गमन करने लगे ॥ १० ॥ तब उस समय महाप्राज्ञ रामचन्द्रजीने हाथ जोडकर विश्वामित्रजीसें इस विशाला नगरीके समाचार पूछे ॥ ११ ॥ हे महामुने! इस विशाला पुरीमें कौन राज वंशी राज्य करताहै मैं इसके श्रवण करनेको कौतूहलाक्रान्त हुआहूं अतएव आपका मंगलहो यह सब वृत्तांत कहिये ॥ १२ ॥ तब महर्षि विश्वामित्रजी रामचन्द्रजीके यह वचन सुनकर इस पुरीका प्राचीन इतिहास कहने लगे हेरामचन्द्र सुनिये ॥ १३ ॥ सुराधिप इन्द्रसें मैंने इस पुरीका वृत्तान्त जानाहै सो सम्पूर्ण कहताहूं श्रवण करो॥

॥ १४ ॥ हेराम ! पहले सतयुगमें दितिके पुत्र महाबलवान् असुर गण और अदिति पुत्र महाभाग बली धार्मिक ॥ १५ ॥ महात्मा देवताओंकी यह वासना हुई कि किस उपायसे हम लोग अजर अमर और निरोगहो सक्तेहैं ॥ १६ ॥ तदनन्तर विचार करके यह उपाय ठहराया गया कि समुद्र मथकर अमृत पान करनेसे हमारी मनोकामना पूर्ण होगी ॥१७॥ वह लोग यह ठहराकर समुद्र मंथन करनेमें प्रवृत्त हुये तब मन्दराचल मथानी और वासुकीको रस्सी बनाकर मंथन कार्य आरंभ हुआ ॥ ॥ १८ ॥ इस प्रकार सहस्र वर्ष बीत जानेपर वासुकी जहर उछालने और दांतोंसे मन्दराचलकी शिलायें काटने लगे ॥ १९ ॥ उनके शिला काटनेसें उस सागरमेंसे ऐसा हलाहल महाविष अग्नि समान निकला कि उसके तेजसे सुरासुर और नरों सहित विश्व संसार दग्ध होने लगा ॥ ॥ २० ॥ तब देवता महादेव शंकर शिवजीकी शरण जानेकी इच्छा कर पशुपति रुद्रके पास जाकर रक्षा करो! रक्षा करो! कहकर उनकी स्तुति करने लगे ॥ २१ ॥ जब देवता ओंने शिवजीकी ऐसी स्तुतिकी तब देवदेव महादेवजी वहां प्रगट हुये व इतनेहीमें शंख चक्रधारी भगवान् हरिभी वहां प्रगट हुये ॥ २२ ॥ तब मुसकाकर विष्णुजी शूल धारण करने वाले शिवजीसे बोले कि समुद्र मथनेसे देवतोंके द्वारा से जो चीज प्रथम निकली ॥ २३ ॥ हे देवतोंमें श्रेष्ठ वह तुम्हें मिलनी चाहिये क्योंकि आप सब देवताओंमें अग्रणीहो अतएव यहां विराजकर आप प्रथम पूजनीय होनेके कारण यह प्रथम निकला हुआ विष ग्रहण कीजिये ॥ २४ ॥ इतना कह माधव तो वहांसे अन्तर्ध्यान होगये महादेवजी देवगणोंको भयभीत देख व श्रीविष्णुजीके वचन सुन ॥ २५ ॥ नीलकंठ विष ग्रहण करनेमें सम्मत हुये और अमृत जानकर उसको पी गये फिर देवताओंके ईश्वर भगवान् शिवजी देवताओंको विदाकर आप अपने स्थानको चले गये ॥ २६ ॥ हे राम ! तब सब देवता और असुर फिर समुद्र मथने लगे तब मन्दराचल जो मथानी बनाया गयाथा वह धीरे २ पातालको चलने लगा ॥ २७ ॥ तब अमर गण गन्धर्वों समेत मधुसूदनको यह कहकर स्तुति करनें लगे ! हे प्रभो ! आपही सब जीवोंके

स्वामी विशेष करकै देवताओंके एक मात्र सहाय हो ॥ २८ ॥ अत-एव मन्दराचलको उद्धार करकै हमारी रक्षाकरो कमलापतिनें यह सुनकर कच्छप रूप धारण किया ॥ २९ ॥ वह पीठ पर मन्दराचलको धारण कर सागरशायी रहे व पर्वतका शिखर ग्रहण करकै श्रीभगवान् दूसरे रूपसें ॥ ३० ॥ समुद्र मथने लगे इस भांति हजार वर्ष वीत गये तो आयुर्वेदके आचार्य ॥ ॥ ३१ ॥ दंड और कमंडलु लिये धर्मात्मा धन्वन्तरि जी और सुन्दरी अप्सरायें समुद्र से निकलीं ॥ ३२ ॥ हे नर श्रेष्ठ मथन करनेके समय जलके स्वरूप रससे जो इनकी उत्पत्ति हुई इस कारण अप्सरा कही गईं ॥ ३३ ॥ हे काकुत्स्थ ! वह सुन्दर अप्सरायें गिनतीमें साठ करोड हुईं परन्तु उनकी दासियोंकी संख्या नहीं हो सक्ती ॥ ३४ ॥ समुद्रकी निकली अप्सराओंको न दैत्योंने न देवताओंने ग्रहण किया इस कारण वह साधारण स्त्रियां हुईं देवता, असुर, मनुष्योंसें उनको जो चाहें ग्रहण करले ॥ ३५ ॥ हे रघुनंदन तदनन्तर वरुण की कन्या सुरा रूपिणी वारुणी निकली वह निकलतेही अपने अंगीकार करने वालेको खोजनें लगी ॥ ३६ ॥ हे राम ! दिति पुत्र असुरोंने उसे ग्रहण नहीं किया परन्तु देवता ओंने आनन्द दायिनी जान उसको स्वीकार करलिया ॥ ३७ ॥ इसी कारण सुरा जो मदिरा तिसके न ग्रहण करनेसे दैत्यगण असुर व ग्रहण करनेसें देवता सुर कहाये वारुणीको ग्रहण कर देवता लोक बहुत आनन्दित हुये ॥ ३८ ॥ फिर समुद्रसे उच्चैःश्रवा श्रेष्ठ घोडा, कौस्तुभ मणि, हे नरश्रेष्ठ और पीछेसें अमृत निकला ॥ ३९ ॥व तिसके अर्थेही महा भयंकर कुल क्षय हुये इसमें देव दानव बहुतेरे मारे गये क्योंकि अदितिके पुत्रोंने दितिके पुत्रोंके साथ बड़ा युद्ध किया ॥ ४० ॥ इस लड़ाईमें देवता राक्षस सब एक होगये इसमें त्रिलोक्यका मोहने वाला महाभयंकर युद्ध हुआ ॥ ४१ ॥ जब भयंकर युद्ध होने लगा तब भगवान् विष्णु मायासे मोहिनी रूप धारण कर अमृत हरण कर लेगये ॥४२॥ उस समय ओंकार रूप सनातन अविनाशी विष्णु जीके प्रतिकूल जो असुर खडा हुआ उस कोही विष्णुजीने वैष्णवी चक्रसे चूर्णकरडाला॥४३॥इस प्रकार अदितिके वीर पुत्र अगणित दैत्य इस देवासुर संग्राममें मारे गये ॥ ४४ ॥

निहत्यदितिपुत्रांस्तुराज्यंप्राप्यपुरंदरः ॥
शशासमुदितोलोकान्सर्षिसंघान्सचारणान्॥४५॥

अंतमें पुरन्दर दितिके पुत्र असुरोंका संहार करके अपना राज्य अधिकार करते हुये और प्रफुल्ल मनसे ऋषि समूह और चारण सब लोकोंका शासन करने लगे॥४५॥इ०श्री०वा०आ०बा०पंच चत्वारिंशः सर्गः ॥४५॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥

हतेषुतेषुपुत्रेषुदितिःपरमदुःखिता ॥
मारीचंकश्यपंनामभर्तारमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

दैत्य जननी दिति पुत्रोंके मारे जानेसे दुःखीहो मरीच पुत्र अपने पति कश्यपजीसे बोली ॥ १ ॥ हे भगवन् ! आपके पुत्र देवता लोग मेरे पुत्रोंका नाश कर रहे हैं अतएव तपस्या करके इन्द्र विनाशकारी पुत्रके प्राप्ति होने की इच्छा करतीहूं आप मेरे गर्भसे एक इन्द्रका मारने वाला पुत्र उत्पन्न कीजिये मैं इसके अर्थ तप भी करूंगी उसमें आप आज्ञा दीजिये ॥२॥ ३ ॥ महामुनि मरीचपुत्र कश्यपजी उसका ऐसा वचन श्रवण कर व महा तेजस्वी परम दुःखित हो दितिसे बोले ॥४ ॥ हे भद्रे तुम्हारी वाञ्छा पूर्णहो तुम्हारा मंगलहो तब तक तुमको पवित्र तासें तप करना होगा जब तक गर्भके चिह्न प्रकट नहीं संग्राममें इन्द्रका मारने वाला तुम्हारे पुत्र होगा ॥५॥ इस भांति हजार वर्ष बीत जाने पर व पवित्रता पूर्वक रहनेसे त्रिलोकीके संहार करनेमें समर्थ सन्तान तुम प्राप्त कर सकोगी ॥ ६ ॥ कश्यपजी यह कह अपने हाथसें दितिके शरीरको स्पर्श कर स्वस्ति पढकर तप करनेको चलेगये ॥ ७ ॥ हे मनुष्यश्रेष्ठ महर्षिके चले जाने पर उनकी स्त्री दिति प्रसन्न हो कुशप्लव नामक स्थानमें जाकर घोर तप करने लगी ॥ ८ ॥ हे नर श्रेष्ठ तब सुरराज इन्द्र आकर तपस्यानुरक्ता दितिकी परम सावधानीसे सेवा करने लगे ॥ ९ ॥ अग्नि, कुश, काष्ठ, जल, फल, मूल जिस वस्तुकी दितिको आवश्यकता होत सहस्र लोचन वह सब इकट्ठा कर देते ॥ १० ॥ यहांतक कि इन्द्र जब दिति तप करते २ थकती तौ उसके अंग मीज देकर सब श्रम दूरकर देते ॥ ११ ॥ ऐसें ९९० वर्ष बीत जानें पर दितिने दान [illegible] हो-

कर कहा ॥ १२ ॥ हे बलवानोंमें श्रेष्ठ मेरी तपस्याके दशवर्ष और वीत जाने पर तुम भाईका मुंह देखोगे तुम्हारा मंगल होगा ॥१३ ॥ हे पुत्र मैं-ने तुमको जीतनेके लिये पुत्र पाने की प्रार्थना कीथी अब उस्से तुम्हारी मित्रता करा दूंगी यह होनेसे विवाद दोनोंमें नहीं होगा व उसके साथ तुम सब सुख भोगोगे व तीनों लोकोंको विजय करोगे ॥ १४ ॥ हेसुरश्रेष्ठ जब हमने बडी यांचाकी थी तब तुम्हारे महात्मा पिताजीने हमको वरदान दियाथा कि सहस्र वर्ष पीछे तुम्हारी वांछा दायक पुत्रहो-गा ॥ १५ ॥ देवी दितिजीको इस प्रकार कहते २ दुपहरी होगई और, दितिजी यहकह शिरहाने की तरफ पैर फैलाकर सोगई ॥ १६ ॥ इन्द्रने उसको अपवित्र शिरहानेकी ओर पैर और पैरों की ओर शिर किये हुयेदेख मनमें बडे प्रसन्न हुये और हँसने लगे॥१७॥इन्द्र उसी समय दितिके शरीर में प्रवेश करगये हेरामचन्द्र वहाँ जाकर सावधान इन्द्रने गर्भके सात टुकडे करडाले ॥ १८ ॥ जब इन्द्रन असंख्य धारावाले वज्रसे गर्भको काटा तब हे रामजी वह गर्भ का बालक रोने लगा और दिति जागी ॥ १९ ॥ तब "देवराज" नरोओं नरोओं कहकर बालकको समझाने लगे फिर महातेजस्वी इन्द्रने चुप न होनेसें उस गर्भको और छिन्न भिन्न करडाला ॥ २० ॥ "अमनमारो २ " दितिके ऐसा कहने पर माताका गौरव रक्षाकरनेके लिये वासव गर्भसे बाहर आये ॥ २१ ॥ और वज्र सहित हाथ जोडकर इन्द्र दि-तिसे बोले माता! तुम अपवित्रतासें पैरोंको ओर शिर किये उलटी सोरहीथी ॥ २२ ॥

तदंतरमहंलब्ध्वाशक्रहंतारमाहवे ॥
अभिंदंसप्तधादेवितन्मेत्वंक्षंतुमुर्हसि ॥ २३ ॥

मैंने इस अवसरमें अपने भावी शत्रुके सात टुकडे करडाले हेदेवी! अब आप प्रसन्न मनसे मेरा यह अपराध क्षमा करदें ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वाल्मीकीये आ० बा० षट्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥

सप्तधातुकृतेगर्भेदितिःपरमदुःखिता ॥

सहस्राक्षंदुराधर्षंवाक्यंसानुनयाब्रवीत् ॥ १ ॥

दिति गर्भके सात खंड जानकर अतिशय दुःखितहो दुर्द्धर्ष हजार नेत्र वाले देवराजसें विनय पूर्वक कहने लगी ॥ १ ॥ हे देवेश ! तुमने मेरी अपवित्रताके दोषसे गर्भको खण्ड २ किया इस्से तुम्हारा कुछ दोष नहीं॥ २॥अब अपने गर्भके नाश होनेपर भी मैं तुम्हारा प्रिय कार्य करना चाहतीहूं कि तुम्हारेकिये यह सात खंड सातों पवनोंके स्थानपालकहों ॥ ३ ॥ महातेजस्वी दिव्य रूप धारण करनें वाले यह मेरे पुत्र मारुत नामसे ख्यातहों वात स्कन्ध नामक सप्त लोकमें विचरण करतेरहैं ॥ ॥ ४॥ इन पुत्रोंमेंसें प्रथम ब्रह्मलोक दूसरा इन्द्रलोक व तीसरे दिव्य वायु नामसे ख्यात होकर विचरण करते रहैं ॥ ५ ॥ हे देवताओंमें श्रेष्ठ बाकी मेरे चार पुत्र एकत्र तुम्हारी आज्ञासें चारों दिशामें विचरण करते रहैंगे अब तुम्हारा मंगलहो ॥ ६ ॥ तुमनें इनको " मारुद " यह कहाथा इसीकारण यह तुम्हारे कहे मारुत नामसें परिचितहोंगे हजार नेत्रवाले पुरन्दर दितिके ऐसे वचन सुन ॥ ७ ॥ हाथ जोडकर बोले कि आपने जो कहा सोई होगा इसमें कुछ संशय नहीं ॥ ८ ॥ आपके पुत्र देवरूपीहो विचरेंगे तपोवनमें यह सम्मतकर इन्द्र और दिति ॥ ॥ ९ ॥ कृतार्थ होकर स्वर्गको चलेगये हे राम ! हमने यह सुनाहै इन्द्र ने जहां पहले ॥ १० ॥ स्थितहो तपस्यासें सिद्धहुई दितिकी सेवाकी थी वह स्थान यहीहै हे नरसिंह राजा इक्ष्वाकुके परम धार्मिक पुत्र ॥ ॥ ११ ॥ अलम्बुषा नाम स्त्रीके गर्भसें विशाल नामक उत्पन्न हुआ उसनेही यहां विशाला नामक पुरी बसाई ॥ १२ ॥ हे राम! उस विशालका हेमचन्द्र नाम बडा बलवान् पुत्र उत्पन्न हुआ हेमचन्द्रके सुचन्द्र हुये ॥ १३ ॥ हे राम! सुचन्द्रके पुत्र धूम्राश्व हुये इनके कुल प्रदीप सृञ्जय हुये ॥ १४॥ सृञ्जयके महा प्रताप शाली श्रीमान् सहदेव हुये सहदेवके परम धार्मिक कुशाश्व हुये ॥ १५ ॥ कुशाश्वके पुत्र महातेजस्वी प्रतापी सोमदत्तहुये सोमदत्तके काकुत्स्थ हुये ॥ ॥ १६ ॥ इनके पुत्र महातेजवान जो किसीसे जीते न जायँ ऐसे सुमति राजा आज कल राज्य कर रहेहैं ॥ १७॥ इक्ष्वाकुके अनुग्रहसें इस विशाला पुरीके राजा सबही

बली धार्मिक और दीर्घजीवी हुये हैं १८ ॥ आज हम यहां सुख पूर्वक रात्रि व्यतीत करेंगे हे नरोंमें श्रेष्ठ कल प्रभात जाकर राजा जनककी पुरीको देखेंगे ॥ १९ ॥ नरश्रेष्ठ महा यशस्वी सुमतिनें विश्वामित्रके शुभागमनका समाचार पाकर ऋषि जीको आगे आकर लिया ॥ ॥ २० ॥ फिर उपाध्याय व बान्धवों समेत भली भांति आदरसे पूजा करके विश्वामित्रजीसे हाथ जोडकर राजा बोले ॥ २१ ॥

धन्योस्म्यनुगृहीतोस्मियस्यमेविषयंमुने ॥
संप्राप्तोदर्शनंचैवनास्तिधन्यतरोमम ॥ २२ ॥

हे मुने! आपके शुभागमनसें मैं अनुगृहीत धन्य २ हुआहूं आपके दर्शनसें मेरा जन्म सफल होगया आजदिन मुझसे अधिक दूसरेका भाग्य नहीं ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आ०बा० सप्तचत्वारिंशःसर्गः॥४७॥

अष्टचत्वारिंशःसर्गः।

पृष्ट्वातुकुशलंतत्रपरस्परसमागमे ॥
कथांतेसुमतिर्वाक्यंव्याजहारमहामुनिम् ॥ १ ॥

परस्पर साक्षात् होने पर कुशल समाचार जिज्ञासाकर महामति सुमतिने महामुनि विश्वामित्रजीसें कहा ॥ १ ॥ हे महाराज आपका मंगल हो मैं यह पूछताहूं कि यह दो राजकुमार देवतुल्य पराक्रमी गज, व सिंह शार्दूल वृषभकी समान चाल चलनेवाले ॥ २ ॥ इनके नेत्र कमलके समान बडे, हाथमें धनुर्बाण और खड्ग धारण किये, अश्विनी कुमारकी समान रूप धारी यौवनावस्थाको पहुंचाही चाहते हैं ॥ ३ ॥ इनको देखकर मुझे यह ज्ञात होताहै कि मानो देवलोकसें दो देवता अपनी इच्छासे पृथ्वीतलपर उतर आयेहैं यह यहां पैदल क्यों आये और यह किसके पुत्रहैं ? ॥ ४ ॥ दिवाकर और निशाकर जैसे आकाशको शोभित करतेहैं वैसेही यह इस स्थानकी शोभाको बढा रहेहैं सब प्रकार दोनो जन एकही आकार व स्वभाव प्रभाव के दृष्टि आतेहैं ॥ ५ ॥ हेनर श्रेष्ठ यह इस दुर्गम मार्गमें किसकारण आये और श्रेष्ठ अस्त्र शस्त्र बांधे किस महाराजाधिराजके वंशधरहैं ॥ ६ ॥ राजाके यह वचन सुन महर्षि

विश्वामित्रजीनें राम लक्ष्मणजीका सब वृत्तांत कहा इस वृत्तांत को नृपति सुमति सुनकर बहुतही विस्मितहुये ॥ ७ ॥ दशरथात्मज महाबली राम लक्ष्मणको अतिथि भावसें आयाहुआ जानकर राजा सुमतिने इनका समुचित सत्कार किया ॥ ८ ॥ राजा सुमतिसे पूजे जाकर विश्वामित्र व राम लक्ष्मणजी वह रात्रि वहां व्यतीत कर भोर हुये मिथिला पुरीकी ओर चले ॥ ९ ॥ वहां पहुंचकर मिथिला पुरीकी अनुपम शोभा देख महर्षि गण साधु साधु कहने लगे और मिथिला पुरीकी बडाई करने लगे ॥ १० ॥ इतनेही में रामचन्द्रजीनें वहां एक उपवनमें निर्जन पुराना तपस्याका स्थान देखकर महर्षि विश्वामित्रजीसें पूछा ॥ ११ ॥ हेमुने! यह स्थान आश्रम जान पडताहै परन्तु इस स्थान पर कोई ऋषि मुनि दृष्टि नहीं आते; यह पहले किसका आश्रमथा यह जाननेकी मेरी इच्छा हुईहै ॥ १२ ॥ वाक्य कहनेमें चतुर विश्वामित्रजी राघव का वाक्य श्रवण करके महातेजस्वी मुनि कहनेलगे ॥ १३ ॥ हेरामचन्द्र! जिस महात्माके कोपसे आश्रमकी यह दशा हुईहै मैं वह सब कथा कहताहूं श्रवणकरो ॥ १४ ॥ हेनरश्रेष्ठ इस स्थानमें देव पूजित महात्मा गौतम जीका आश्रमथा उस समय इसके सौन्दर्यकी सीमानहींथी देवताभी इसकी बडाई करतेथे ॥ १५ ॥ उन्होंने यहां अनेक वर्षोंतक अहल्या अपनी स्त्री सहित तप कियाथा ॥ १६ ॥ हेरामचन्द्र एकदिन सुयोग पाकर सुरराज-इन्द्र गौतम ऋषिका वेष धारण कर अहल्यासे यह बोले ॥ १७ ॥ रति चाहने वाले ऋतुकालकी बाट नहीं जोहते अतएव हे सुन्दरी मेरी मनो कामना पूर्णकरो मैं तुम्हारे साथ संगम किया चाहताहूं ॥ १८ ॥ हेराम दुर्बुद्धि अहल्या स्वामी वेषधारी इन्द्रको जानकरभी देवराजके साथ विहार करनेमें प्रवृत्त हुई अहल्यानें इस कारण जानलिया कि इन्द्रहीहै ऋषिलोग कभीभी अनऋतुमें भार्याका समागम नहीं करते ॥ १९ ॥ अनन्तर हर्ष सहित शचिपतिसे कहा हे सुरोत्तम मैं कृतार्थ होगई अब तुम जल्दी यहांसे चलेजाओ ॥ २० ॥ हे देवराज! तुम अपनेको और मुझे गौतमके शापसे रक्षा करो तब इन्द्र हँसकर अहल्यासे बोले ॥ २१ ॥ हेनितम्बिनि मैं परम प्रसन्न हुआहूं अब मैं देवलोकको चला यह कहकर पाकशासन महर्षि गौतमजीके आश्रमसें बाहरआये ॥ २२ ॥ यद्यपि इन्द्र गौतमजीके भ-

यसे बहुत शीघ्रता पूर्वक जारहेथे परन्तु देखाकि महामुनि गौतम ऋषि आश्रममें प्रवेश करतेहैं ॥२३॥ गौतमजी तेज प्रभावसें देव दानवोंको दु- र्द्धर्ष मूर्तिमान अग्नि शिखा तुल्य तीर्थके जलमें स्नानकियेहुये आश्रममें चलेआतेहैं ॥ २४ ॥ उन मुनिश्रेष्ठके हाथमें समिध और कुश थे उनको देखतेही देवराज इन्द्र पीले पडगये और घबडागये ॥ २५ ॥ सदा- चार परायण मुनि असदाचारी इन्द्रको निजवेश धारण किये आश्रमसे निकलते देख क्रोधसहित बोले ॥ २६ ॥ हेदुर्मते! तैंने मेरा रूप धार- ण करके अकर्तव्यकार्य कर मेरी भार्याको हरणकिया अतएव मेरे शाप से तू नपुंसक होजायगा ॥ २७ ॥ गौतमजीके क्रोधसहित इतना कह- तेही इन्द्रके अंडकोश उसी समय पृथ्वी पर गिर पडे ॥ २८ ॥ गौत- मजीने इस प्रकार इन्द्रकोशापदे फिर अहल्यासे कहा रे दुराचारिणि ! तुझको इस आश्रममें हजारों वर्षतक रहना होगा ॥ २९ ॥ रेदुःशीला तुझे अदृश्य भावसें अर्थात् कोई प्राणी तुझे न देखनेसकैंगे अनाहार रह- ना वायु भक्षण करना और पृथ्वीपर शयन करके यहां रहनाहोगा ॥३०॥ जब महाराज कुमार दुर्द्धर्ष रामचन्द्रजी इस घोर वनमें आवेंगे तब उनके चरण स्पर्शसे तू पाप मुक्त होगी॥३१॥ उस समय तू लोभ मोहन करके उनका आतिथ्य करैगी और फिर तेरा ऐसाही रूप जैसा अबहै हो- जायगा और फिर मेरे आश्रम में आवैगी ॥ ३२ ॥

एवमुक्त्वामहातेजागौतमोदुष्टचारिणीम् ॥
इममाश्रममुत्सृज्यसिद्धचारणसेविते ॥ ३३ ॥
हिमवच्छिखरेरम्येतपस्तेपेमहातपाः ॥ ३४ ॥

महातपा महर्षि गौतमजी दुष्टचारिणी अहल्यासें यह कह इस आश्र- मको परित्याग कर सिद्धों करके सेवित॥३३॥रमणीय हिमालय पर्वतके शिखरपर जाकर तप करने लगे ॥ ३४ ॥ इ०श्री० वा०आ०वा०अष्ट- चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपंचाशः सर्गः ॥

अफलस्तुततःशक्रोदेवानग्निपुरोगमान् ॥

अब्रवीत्त्रस्तनयनः सिद्धगंधर्वचारणान् ॥ १ ॥

तदनन्तर इन्द्र गौतमके शापसे चकित व नपुंसकहो अग्नि प्रभृति देवता व सिद्ध चारण और गन्धर्वोंसे बोले ॥ १ ॥ मैंने महर्षि गौतमजीको क्रोध उपजा और उनकी तपस्यामें विघ्न डालकर देवकार्य साधन कियाहै नहींतो वह सब देवतोंके स्थान छीनलेते शापदेने हीसें उनका तप क्षीण हुआहै ॥ २ ॥ उन महर्षिने क्रोध परवशहो हमें नपुंसक कर दियाहै और अहल्याभी अपने किये कर्मका फल भोगरहीहै शापदेने हीसे उनका बडातप मैंने हर लियाहै ॥ ३ ॥ हे देवगण! मैंने तुम्हारा कार्य साधन कियाहै इस कारण तुम सब देवता ऋषि चारण जिस्से हम अच्छे होजांय ऐसा उपाय ठहराना तुम्हारा कर्तव्यहै ॥ ४ ॥ इन्द्रजीके ऐसे वचन सुन अग्नि प्रभृति देवता गण मरुद्गण सहित पितरोंके देवता कव्यवाहनादिकोंके निकट जाय उपस्थित हुये ॥ ५ ॥ तब अग्नि बोले कि इन्द्र अंडकोश हीन हुयेहैं और तुम्हारे इस मेंढेके अंडकोशहैं अतएव यह उखाडकर इन्द्रको देदीजिये ॥ ६ ॥ मेषके अंडकोश हीन होनेसें तुम्हारे सन्तोष साधन करनेमें किसी भांतिकी कसर नहीं की जायगी अबसें जो तुम्हारी प्रसन्नताके हेतु ऐसा मेंढादान करेंगे उनको अक्षय फलकी प्राप्ति होगी इस कारण तुम इसके वृषण देदो ॥ ७ ॥ अग्निके ऐसे वचन सुन काव्यवाहनादि पितृ देवोंने मेंढेके अंडकोश उखाड़ इन्द्र को देदिये ॥ ८ ॥ हे रामचन्द्र उस समय सेंही पितृ देवगणोंको अंडकोश हीन मेंढे भक्षणका नियम हुआ और अंडकोश इन्द्रके लगाये गये ॥ ॥ ९ ॥ हे राघव! इस प्रकारसें उस दिनसें इसभांति इन्द्रनें गौतमजीके तपके प्रभावके शापसे मेंढेके अंडकोश धारण कियेथे ॥ १० ॥ हे राघव! अब तुम पुण्य कीर्ति महातेजस्वी महर्षिके आश्रममें प्रवेश करके महाभागा देवरूपवाली अहल्याका उद्धार करो ॥ ११ ॥ रामचन्द्रजी विश्वामित्रजीकी आज्ञानुसार मुनिको आगेकर लक्ष्मण सहित गौतमजीके आश्रममें प्रवेश करते हुये ॥ १२ ॥ रामचन्द्रजीने वहाँ जाकर उस महाभाग वालीको देखा कि तपस्याके तेजसे गौतमजीकी प्रभा अधिकतर फैल रहीहै आदमीकीतो बातही क्या देव दानव गणतक उसकी ओर दृ-

ष्टि नहीं करसक्के ॥ १३ ॥ रामचन्द्रके आश्रममें प्रवेश करतेहो यह प-वित्र हुई और दीप्तिमान आश्रम होगया यह अभिप्रायहै उसको देखनेसें बोध हुआकि विधातानें अतियत्नसें यह मायामयी मोहिनी मूर्ति र-चना कीहै उसकी दीप्ति धूम पूर्ण अग्निकी शिखाके समानथी ॥ १४ ॥ जैसे हिम संयुक्त वा मेघ मिश्रित चन्द्रमाका लावण्य होजाताहै जलमें तीव्र प्रदीप्त सूर्य प्रभा जिस प्रकार शोभा पातीहै वैसेही अहल्याकी आ-कृति होरहीथी ॥ १५ ॥ वह जबहीतक गौतमके शापसें त्रिलोकीको अदृष्टथी जबतक रामका दर्शन नहो गौतमीने शापान्तमें जैसेही रामच-न्द्रजीको सन्मुख देखा वैसेही पवित्रहो त्रिलोककी दर्शनीय होगई॥१६॥ ॥ १७ ॥ तब राम लक्ष्मण जीने प्रहृष्ट मनसें अहल्याके चरणोंकी वन्द-नाकी गौतमीनेभी गौतमजीके वचन और पूर्व वृत्तान्त स्मरण पूर्वक उ-नका सत्कार किया अर्घ्य पाद्याचमनी आदिदे भलीभांति पूजा करने लगी आर विधिकृत कर्मानुसार राम लक्ष्मणको पाकर बडी हर्षोत्फुल्ल हुई रामचन्द्रने शास्त्रानुसार उसकी पूजा ग्रहणकी इसी अवसरमें आकाशसे पुष्प वृष्टि और दुन्दुभी नाद होने लगा गन्धर्व और अप्सरा ओंमें महा महोत्सव उपस्थित हुआ ॥१८॥१९॥२०॥तब देव गण तपोबलसम्पन्ना प-ति परायण निर्मल शरीरवाली अहल्याको साधु साधु कहकर पूजा करने लगे ॥ २१ ॥ कहने लगे गौतमजीभो अपने योगबलसें श्रीरामचन्द्रजी को आये हुये जान अतिशीघ्र तप करना छोड अपने आश्रमपर आये और प्रथमके समान रूपवती अहल्याको पाय परम सुखीहुये व राम चन्द्रजीकी विधि विधानसे पूजाकर फिर तप करनेंमें मन लगाते हुये२२

रामोपिपरमांपूजांगौतमस्यमहामुनेः ॥
सकाशाद्विधिवत्प्राप्यजगाममिथिलांततः ॥ २३ ॥

रामचन्द्रजी गौतमजीसे भली प्रकार पूजा पाकर मिथिलापुराकी ओर को चले ॥२३॥ इ०श्रीमद्रा०वा०आ०बा० एकोनपंचाशःसर्गः ॥४९॥

पंचाशःसर्गः ॥

ततःप्रागुत्तरांगत्वारामःसौमित्रिणासह ॥

विश्वामित्रंपुरस्कृत्ययज्ञवाटमुपागमत् ॥ १ ॥

अनन्तर रामचन्द्रजी लक्ष्मण सहित विश्वामित्रजीके साथ उत्तर पूर्वाभिमुखहो राजर्षि जनकजीकी यज्ञभूमिमें उपस्थित हुये ॥ १ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजीने मुनि सिंह विश्वामित्रजीसे कहा कि राजा जनकजीके यज्ञकी सामग्रीतो बहुत उत्तमहै ॥ २ ॥ इस यज्ञके उपलक्षमें वेदज्ञानसम्पन्न नाना देशीय असंख्य ब्राह्मण गण उपस्थित हुये हैं॥ ३ ॥ यह सब ऋषियोंके वासस्थान दृष्टि आतेहैं यह सब स्थान सैकड़ों छकडोसें भरेहैं जिनपर ऋषियोंकी सामग्री लदीहै हे ब्रह्मन् ! हमारे रहने लायक स्थानभी आप बता दीजिये जहां हम ठहरैं ॥ ४ ॥ रामचन्द्रजीके ऐसे वचन सुन महामुनि विश्वामित्रजीने निर्जन सजल प्रदेश रहनेंके लिये ठहराया ॥ ५ ॥ निन्दारहित राजा जनकजी विश्वामित्रजीका आना सुन करकै पुरोहित शतानन्द और ऋत्विजोंको संगले ॥ ६ ॥ और महात्मा ऋत्विक पूजाकी सामग्री शीघ्रतासें लेकर वहां उपस्थित हुये और अर्घ्यले जल्दीसे उनको आगेले सविनय पूजा करते हुये ॥ ७॥ राजाने धर्म पूर्वक विश्वामित्रजीको अर्घ्य दिया महात्मा राजा जनककी पूजा ग्रहणकर ॥ ८ ॥ विश्वामित्रजीने उनकी और उनके यज्ञकी कुशल वार्त्ता पूछी तदनन्तर उपाध्याओं और पुरोहित गणोंसेभी कुशल प्रश्न किया कराया ॥ ९ ॥ और सबके संग मिले भेंटे फिर सब ऋषियोंसें सादर संभाषण किया तब राजा जनकजी मुनि श्रेष्ठ विश्वामित्रजीसे हाथ जोडकर बोले ॥ १० ॥ आप अपने संगी ऋषियोंके संग इन आसनों पर विराजिये जनकजीके ऐसा कहने पर महामुनि विश्वामित्रजी बैठे ॥ ११ ॥ तब शतानंद, ऋत्विज लोग! राजमंत्री व राजा जनकजी यथा योग्य आसनों पर उनके चारों ओर बैठगये ॥ १२ ॥ और राजा जनकजीने देखकर महर्षि विश्वामित्रजीसे कहाकि आज देवताओंकी कृपासे हमारा यज्ञ करना सफल हुआ ॥ १३ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ जब यहां आपसे साक्षात् हुआ तब मुझे यज्ञका फल मिलही गया और कहां तक कहूं मैं धन्य और कृतकृत्य होगया ॥ १४ ॥ हे ब्रह्मर्षे जो आप ऋषियों समेत मेरे यज्ञमें पधारे यह मेरा बडा भाग्यहै हे महर्षे पंडित गणोंने बा-

रहदिन दीक्षा कालके नियत कियेहैं ॥ १५ ॥ हे कौशिक ! आप तभी यज्ञ भागार्थी देवता ओंको देखेंगे राजा मुनिसिंहसे यह वचन कहकर मुदित मनसे ॥ १६ ॥ हाथ जोड फिर विश्वामित्रजीसे बोले हे महाराज आपका कल्याणहो यह तो बताओ यह दोकुमार देव तुल्य पराक्रमी ॥ १७ ॥ वृषभ व शार्दूल हाथीकी समान चाल चलने वाले अश्विनी कुमारके समान रूपवान् जिनकी युवा अवस्था आयाही चाहतीहै॥१८॥ बोध होताहै कि यह इच्छा पूर्वक देवलोकका त्यागन करके पृथ्वीपर उतर आयेहैं हे मुने! यह किस कारण यहां आयेहैं किसके पुत्र हैं क्यों पैदल चलतेहैं ॥ १९ ॥ इन दोनों वीरोंके हाथोंमें दिव्य शरासनहै हे महामुने! यह किसके पुत्रहैं! चन्द्र, सूर्य जिस प्रकार गगन मंडलको सुशोभित करतेहैं वैसेही इन्होंने यह प्रदेश अलंकृत कियाहै ॥ २० ॥ इन दोनोंके आकार इङ्गित स्वभाव प्रभावमें कुछ भेद नहीं जाना जाता यह दोनों झुल्फैं रखाये महावीर कौनहैं मैं इनका नाम ग्राम सुना चाहताहूं ॥ २१॥ महात्मा उन राजा जनकके वचन सुन दीप्तात्मा विश्वामित्रजीनें कहा यह राजा दशरथके पुत्रहैं ॥ २२ ॥ विश्वामित्रजीने इनका ऐसा परिचय प्रदान करके सिद्धाश्रममें अवस्थान राक्षस, मारीच, ताडका का वध दुर्गम पंथमें आगमन विशाला दर्शन ॥ २३ ॥ अहल्या उद्धार गौतम सम्मिलन शिवका यज्ञ और महा धनुष देखने के लिये आगमन२४

एतत्सर्वंमहातेजाजनकायमहात्मने ॥
निवेद्यविररामाथविश्वामित्रोमहामुनिः ॥ २५ ॥

इत्यादि सब वृत्तान्त महात्मा राजा जनकजीसे कहकर महामुनि विश्वामित्रजी चुप हुये ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे पंचाशःसर्गः ॥ ५० ॥

एकपंचाशः सर्गः॥ ५१ ॥

तस्यद्वचनंश्रुत्वाविश्वामित्रस्यधीमतः ॥
हृष्टरोमामहातेजाःशतानंदोमहातपाः ॥ १ ॥

परम बुद्धिमान विश्वामित्रजीके इस प्रकार वचन सुन शरीरसें पुल-

कितहो महातेजस्वी महा तपस्वी शतानंदजी ॥ १ ॥ अपने तपोवलसें प्रभासित गौतम मुनिके बडे बेटे शतानंदजी रामचन्द्रजीके दर्शन कर हृष्टचित्त और विस्मित हुये ॥ २ ॥ शतानंदजी राजकुमार राम लक्ष्मणको सुखसें बैठा हुआ देख सुखसें बैठे हुये महर्षि विश्वामित्रजीसें बोले ॥ ३ ॥ हे मुनि पुङ्गव भला हमारी यशस्विनी माता बहुत दिनोंसें तपस्या करतीथी उसको अपने महाराज कुमार रामचन्द्रजीको दिखायाथा ॥ ४ ॥ भला हमारी परम यशस्विनी मातानें देव तुल्य कृति सबसें पूजने योग्य रामचन्द्रजीकी वन फल पुष्पादि द्वारा पूजाकीथी ॥ ५ ॥ हे मुने! आपनें रामचन्द्रजीसें देवराज इन्द्रके व्यवहार विषयक पुरातन कथा कही है ॥ ६ ॥ हे विश्वामित्रजी आपका मंगलहो हे मुनिश्रेष्ठ क्या मेरी माता शापसें छुटकर पिताजीसें मिलगई? ॥ ७ ॥ महाराज विश्वामित्रजी क्या रामचन्द्रजी मेरे पितासें भली भांति पूजेतो गयेहैं! और यह महा तेजस्वी पूजा ग्रहणकर यहां आयेहैं ॥ ८॥ मैं आपसें पूछना चाहताहूं कि श्री रामचन्द्रजीने शान्तचित मेरे पिता महर्षि गौतमजीकी पूजा ग्रहण कर उनका कुछ सन्मान कियाथा वा नहीं? ॥ ९ ॥ वाक्य बोलने वाले तिनके ऐसे वचन सुनकर वाक्य विशारद महामुनि विश्वामित्रजी शतानंदजीसे बोले ॥ १० ॥ हेतपोधन जो कर्त्तव्यथा उसमें किसी भांतिकी कमी नहीं हुईहै जमदग्निसे जैसे रेणुका मिलितहो वैसेही गौतमजीसे तुम्हारी माता मिलीहै ॥ ११॥ बुद्धिमान विश्वामित्रजीसे यह सुनकर गौतमपुत्र महा तेजस्वी शतानंदजी रामचन्द्रजीसे बोले ॥ १२ ॥ हे नरश्रेष्ठ तुम अजित महर्षि विश्वामित्रजी तथा और ऋषियोंके साथ यहांतक निर्विघ्नतो आये। तुम्हारा आना हमारे सौभाग्यका कारणहै ॥ १३ ॥ मैं महामुनि महातेजस्वी विश्वामित्रजीको विचित्र कर्मा और अमित प्रभाव शाली जानताहूं यही हमारे एकमात्र परम गतिहैं ॥ १४ ॥ हे रामचन्द्रजी! संसारमें तुमसे अधिक पृथ्वी पर धन्य और कौनहै कारण कि महर्षि विश्वामित्रजी तुम्हारे रक्षकहैं जिन्होंने बडी तपस्याकीहै ॥१५॥ इस समय तुम मुझसे महात्मा कौशिकका तपोवल और अन्यान्य परिचय श्रवण करो ॥ १६ ॥ हे परन्तप! यह महामति बहुत समय तक राजा कहकर परिचित रहचुके हैं यह धार्मिक विद्या जान्नेवाले

और प्रजाके हित करनेमें प्रीतिमानथे ॥ १७ ॥ पूर्वकालमें कुश नामक प्रजापतिके एक पुत्र उत्पन्न हुआ उनके पुत्र बलवान् सुधार्मिक कुशनाभ हुये॥१८॥कुशनाभके गाधि पुत्र हुये जो विख्यातथे और गाधिके महामुनि बड़े तेजस्वी विश्वामित्रजी हुये ॥ १९ ॥ यह महा तेजस्वी विश्वामित्रजी बहुत दिनोंतक पृथ्वीका पालन करतेरहे और यह कई हजार वर्षोंतक राजशासन करते रहे ॥ २० ॥ यह तेजस्वी विश्वामित्रजी एक समय चतुरङ्गिनी सेना सहित जो कई अक्षौहिणीथी पृथ्वी पर घूम रहेथे ॥ २१ ॥ यह यथाक्रमसे अनेक राज्य, नगर, नदी व पर्वत प्रभृतिमें फिर फिरा कर आश्रमोंमें आये ॥ २२ ॥ क्रमसे वशिष्ठजीके आश्रम पर इन्होंने देखा कि यह स्थान अनेक प्रकारकी वेल फूल और पौधोंसे सुशोभितहै अनेक संख मृग यहां विचरण कर रहेहैं और सिद्ध चारण करके आश्रम सेवितहै ॥ २३ ॥ देव, दानव, गन्धर्वोंसे यह स्थान शोभायमान और प्रशान्त चित्त हरिणोंसे भरा पुराहै स्थान २ में ब्राह्मण गण शोभा पारहेहैं ॥ २४ ॥ ब्रह्मर्षि गणोंसे संकीर्ण देवर्षियों करकै सेवित जितने ब्राह्मण यहां बैठेहैं सब तपके मारे अग्निकी समान देदीप्यमानहैं॥२५॥ यह स्थान ब्रह्मय महात्मागणोंके जल पान वायु भोजन और पर्णाशन पर तपस्याके पक्षमें अनुकूलहैं ॥ २६॥ फल मूल खाकर इन्द्रियोंके दोष जीतकर स्थान २ पर महात्मा बालखिल्य ऋषिगण तप कर रहेहैं कहीं जप होम ऋषिगण कर रहेहैं ॥ २७ ॥

अन्यैर्वैखानसैश्चैवसमंतादुपशोभितम् ॥
वसिष्ठस्याश्रमपदंब्रह्मलोकमिवापरम् ॥ २८॥
ददर्शजयतांश्रेष्ठोविश्वामित्रोमहाबलः ॥२९॥

वैखानस गण स्थान २ में शोभा पारहेहैं वशिष्ठ जीका ऐसा आश्रम मानो दूसरा ब्रह्मलोकहीहै ॥ २८ ॥ ऐसा ब्रह्मलोक वत् आश्रम देखकर महाराज विश्वामित्रजी परम प्रसन्न हुये ॥ २९ ॥ इ०श्रीमद्रा०वा०आ० बा० एकपंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्वापंचाशः सर्गः ॥

तंदृष्ट्वापरमप्रीतोविश्वामित्रोमहाबलः ॥

प्रणतोविनयाद्वीरोवसिष्ठंजपतांवरम् ॥ १ ॥

इस शोभाको देख परम प्रसन्नहो महाबलवान वीर विश्वामित्रजी विनय पूर्वक जप करने वालों में श्रेष्ठ वशिष्ठजीको प्रणाम करते हुये॥१॥ तब भगवान् मुनिवर वशिष्ठजीने उनसे स्वागत पूछ पाछ बैठनेंके लिये आसन प्रदान किया ॥ २ ॥ बुद्धिमान विश्वामित्रजीके बैठनें पर मुनि श्रेष्ठ वशिष्ठजीनें यथाविधि फल मूल प्रदान करकै विश्वामित्रजी-की पहुनईकी ॥ ३ ॥ राजाओंमें श्रेष्ठ विश्वामित्रजीने वशिष्ठजीसें वह पूजा सत्कार ग्रहण करकै अग्निहोत्र औ शिष्योंकी कुशल पूछी ॥ ४ ॥ और फिरभी महा तेजस्वी विश्वामित्रजीने आश्रमके वृक्ष व वनस्पति योंकी कुशल पूछी वशिष्ठजीने भी राजासे सबकी कुशल कही ॥ ५ ॥ तब सुखसे बैठे हुये राजा विश्वामित्रजीसे जप करने वालोंमें श्रेष्ठ ब्रह्माके पुत्र वशिष्ठजी बोले ॥ ६ ॥ हे राजन् ! तुम मंगलसे तो हो तुम राजाके कर्त्तव्यानुसार धर्म सहित प्रजाकी पालना तौ करतेहो ॥ ७ ॥ तुम्हारे नौकर चाकर नियत समय पर वेतन पाकर तुम्हारी शिक्षामें चलतेहैं अपने रिपुलोगोंको तौ तुमने जीत लियाहै ॥ ८ ॥ हे परंतप ! तुम्हारा बल खजाना व भाई बन्धुओंपर तौ कोई आपद नहींहै हेपापरहित तुम्हारे पुत्र पौत्रादि सन्तान सन्ततिमें कोई दुःखी तौ नहीं? ॥ ९ ॥ महातेजवान् विश्वामित्रजीने सबकी कुशल वशिष्ठजीसें विनय पूर्वक सुनाई ॥ १० ॥ तदनन्तर उन दोनों धर्मात्माओंने बहुत कथा कह कहा कर कुछ घडियें बिताई और दोनों परस्पर प्रीति व प्रसन्नता लाभ करते हुये ॥ ११ ॥ हे रघुनंदन इस अवसरमें भगवान् वशिष्ठजी हँसते२ विश्वामित्रजीसे कहने लगे ॥१२ ॥ हे महाबल अमित पराक्रमी मैं तुम्हारी और तुम्हारी सब सैनाकी पहुनई करना चाहताहूं तुम यह मेरा प्रस्ताव ग्रहणकरो ॥ १३ ॥ इस मेरे किये हुये सत्कारको ग्रहणकरो तुम अतिथि प्रवर और सब भांति पूजनीय हो अतएव मेरे इस अभिप्रायमें सम्मतिदो ॥ १४ ॥ तब विश्वामित्रजीनें कहा कि जब आपका अभिलाष पहुनईका हुआ तो जानिये कि मेरी पहुनई होगई ॥ १५ ॥ हे भगवन् ! आपके आश्रममें फल मूल और अर्घ्य इत्यादि पाकर वि-

शेष करके आपके दर्शन मात्रसेही सन्तुष्ट हुआहूं ॥ १६ ॥ हे महाप्राज्ञ आप हमारे पूजनीयहैं मेरा जैसा आदर होना चाहिये वैसा आपने किया अब मैं आपको प्रणाम करके जाताहूं मुझपर कृपा दृष्टि रखियेगा ॥ ॥ १७ ॥ विश्वामित्रजीके यह विनय करने परभी जप करने वाले मुनिवर वशिष्ठजी वारंवार उनकी पहुनई ग्रहण करनेके लिये कहने लगे ॥ १८ ॥ तब विश्वामित्रजी वशिष्ठजीसे कहने लगे कि हमें तुम्हारा कहना अंगीकारहै जो आपको प्रियहो वही हम करैंगे ॥ १९ ॥ ज्योंहीं विश्वामित्रजीने यह वचन कहे तभी जप करने वाले वशिष्ठजीनें परम प्रसन्न होकर विचित्र वर्ण विभूषित पाप नाश करनेवाली होम धेनुको यह कहकर बुलाया ॥ २० ॥ कि हे शबले ! तुम शीघ्र आ करके मेरे वचन सुनो कि सेना सहित इन राजर्षि राजाकी पहुनई भली भांति करो ॥ २१ ॥ अनेक प्रकार सुन्दर स्वादिष्ट भोजनोंसें सत्कार करो जिसकी जैसी रुचिहो उस को तुम षट्रस भोजन द्वारा तृप्त करो क्योंकि तुम क्या नहीं देसक्तीहो हे यथा काम अन्न देनेवाली वह दिव्य भोजनोंकी आज मेरे कहनेंसें वर्षा करदे ॥ २२ ॥

तत्सर्वंकामधुग्दिव्येअभिवर्षकृतेमम ॥
रसेनान्नेनपानेनलेह्यचोष्येणसंयुतम् ॥
अन्नानांनिचयंसर्वंसृजस्वशबलेत्वर ॥ २३ ॥

फिर रसोंमें भी खानें पीनें चाटने सूंघने आदिके सब पदार्थ तैयार करो अब विलम्ब नहो इसके अतिरिक्त सब प्रकारके अन्नोंके ढेर लगादो जिस्में जो जिसे भावै सो वही लेले ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० बालकांडे द्विपंचाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशः सर्गः ॥

एवमुक्तावशिष्ठेनशबलाशत्रुसूदन ॥ वि
दधेकामधुक्कामान्यस्ययस्येप्सितंयथा ॥ १ ॥

अनन्तर वशिष्ठजीके आदेशसे जिसको जैसी वासना हुई शबलाने उसको वही पदार्थ पहुँचाया ॥ १ ॥ जैसे गन्नेके जितने विकार सब भां-

तिके मिष्टान्न, दिव्यमद महामूल्यवान पानीय और उत्कृष्ट निकृष्ट अनेक प्रकारके भक्ष भोज्य ॥ २ ॥ गर्म भातके ढेर पर्वताकार, पायस, सूप, अनेक प्रकारकी दाल, दहीके ढेरके ढेर ॥ ३ ॥ नाना प्रकारके बडे सवाद युक्त खांडके विकार इसके अतिरिक्त नाना प्रकारके पदार्थोंसे भोजन पात्र पूर्ण कर दिये ॥ ४ ॥ हेराम ! वशिष्ठजीके प्रभावसे विश्वामित्रजीकी सेना उपयुक्त भोजन पाकर परम संतुष्ट हुई ॥ ५ ॥ राजर्षि नृपति विश्वामित्रजीभी रानी ब्राह्मण पुरोहित व मंत्रियों सहित ऋषिकी पहुनईसे प्रसन्न हुये ॥ ६ ॥ फिर अमात्य मंत्री नौकर चाकरों समेत तृप्त होकर परम प्रसन्न होकर ऋषि वशिष्ठजीसे बोले ॥ ७ ॥ हे मुने ! आपकी कृपासे जैसी पहुनई होनी संभवहै उसमें किसी प्रकारकी कमी नहीं हुई हे वाक्यजान्ने वालोंमें चतुर इस समय आप मेरा एक निवेदन श्रवण कीजिये ॥८॥ हे भगवन् मैं आपको लाख गाय दान किये देताहूं उसके बदलेमें मुझे शवला दे दीजिये यह गाय एकरत्नहै और रत्न भोगनेमें राजाहीका अधिकार होताहै ॥ ९ ॥ अतएव मुझे शवला दे दीजिये क्योंकि न्यायानुसार इसपर हमाराही अधिकारहै जब विश्वामित्रजीने भगवान् वशिष्ठजीसे ऐसा कहातो ॥ १० ॥ विश्वामित्रजीसे महात्मा धार्म्मिक वशिष्ठजी बोलेकि लाख या करोड गायें देनेसेभी मैं शवलाको नहीं देसक्ता ॥११॥ हे राजन् न चांदीकी राशि देनेसे हमसे कोई यह गाय ले सके हे शत्रु तापन यही कारणहै कि यह हमारे त्यागने योग्य नहींहै ॥ १२ ॥ इस गायको अपनी कीर्तिके समान हम रक्षा करतेहैं विशेषतः इस्से हमारे हव्य कव्य और प्राणयात्रा होतीहै ॥ १३ ॥ व इससेही अग्नि होत्र होम और बलि कार्य कियेजातेहैं अधिक क्या कहैं स्वाहाकार वषट्कार अनेक प्रकारके यज्ञ और सब विद्या इसकेही आधीनहैं ॥ १४ ॥ हे राजन् यह शवलाही हमारी सर्वस्वहै यही तुष्ट करन वालीहै इस पर मेरी जैसी प्रीतिहै ॥ १५ ॥ और किसी वस्तुपर इतनी नहींहै मैं इन सब कारणोंसे तुम्हारे कार्यके लिये इसको नहीं देसक्ता जब वशिष्ठजीने इस प्रकारके वचनकहे ॥ १६ ॥ तब विश्वामित्रजी बडे आग्रहसें वाक्यके जाननेवाले यह वाक्य बोले मैं आपको स्वर्ण शृङ्खलसे बंधे हमेलोंसें मंडित सुवर्ण कुमकुम भूषित ॥ १७ ॥ चौदह

हजार हाथी देताहूं व सुवर्णमयरथ जिनमें सफेद चार २ घोडे जुते हुये ॥ १८ ॥ सुवर्णकी किंकणी बंधे आठसै रथ आपको देंगे, काम्बोज वाल्हीक अरब आदि देशोंमें उत्पन्न अच्छे कुलके॥१९॥११००० ग्यारह-हजार श्रेष्ठ घोडे नाना वर्णों करके युक्त व नई उमर वाली ॥ २० ॥ एक करोड गायें आपको देताहूं हे द्विजोत्तम! आप मुझे शबला देदीजिये हे ब्राह्मण ! इसके अतिरिक्त रत्न या सुवर्ण जो चाहिये ॥२१॥ सो मैं सब देनेको तैयारहूं परन्तु आप मुझे शबला देदें बुद्धिमान विश्वामित्र जीके ऐसा कहनें पर वशिष्ठजी बोलेकि ॥ २२ ॥ हे राजन् मैं शबला किसी प्रकार नहीं दूंगा कि यह धेनुही हमारा धनहै और यही हमारा सुन्दर रत्नहै ॥ २३ ॥ यही सर्वस्व वरन यही हमारी जीवनहै मैं इसकीही सहायसें दर्शमख और पौर्णमासयज्ञ दक्षिणाके सहित करताहूं ॥ २४ ॥

एतदेवहिमेराजन्विविधाश्चक्रियास्तथा ॥
अतोमूलाःक्रियाःसर्वाममराजन्नसंशयः ॥ २५ ॥
वहुनाकिंप्रलापेननदास्येकामदोहिनीम् ॥ २६ ॥

हे राजन् इसीसेंही अन्यान्य देवक्रिया साधन करताहूं हे विश्वामित्र यही सब क्रियाकी मूलहै इसमें कुछ संशय नहीं ॥ २५ ॥ और अधिक बकवादसें क्याहै मैं किसी भांति अपनी इस शबलाको नहीं देसक्ता ॥२६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आ०बा०त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुःपंचाशः सर्गः ॥

कामधेनुंवसिष्ठोपियदानत्यजतेमुनिः ॥
तदाऽस्यशबलांरामविश्वामित्रोन्वकर्षत ॥ १ ॥

हे राम! जब मुनि वशिष्ठ जीनें किसी प्रकार होम धेनु न दी तब नृपति विश्वामित्रजी उसको बल पूर्वक लेचले ॥१॥हे राम जिस समय महात्मा राजा उस गायको ले जानेलगे उस समय गायकी आँखोंसें आंसू गिरनें लगे और वह दुःखी हो अपनें मनमें सोचनें लगी ॥ २ ॥ क्या महात्मा महर्षिजीनें मुझे त्यागन ही करदिया यह राजपुरुष मुझ दीनको ऐसा कष्ट देकर क्यों लिये जातेहैं ॥ ३ ॥ मैंने धर्मात्मा उन

महर्षिका क्या अपराध किया जो अपराध रहित और भक्त जानकरभी निरपराध मुझको उन्होंने त्याग दिया ॥ ४ ॥ वह धेनु इस भांतिकी चिन्ता करके घने २ निःश्वास परित्याग पूर्वक उन सैकड़ों राज पुरुषोंके हाथसें अपनेको छुडा कर वेगसें बडे प्रतापी वशिष्ठजीके निकट आई और उनके चरणों में गिर पडी ॥ ५ ॥ उस समय उसके नेत्रोंमें आंसू भर रहेथे वह मुनिके आगे खडी होकर हुंकार कर रोती वशिष्ठजीसे मेघकी समान शब्दमें यह बोली ॥६॥ ७ ॥ हे ब्रह्माके पुत्र भगवान् वशिष्ठजी राजाके नौकर चाकर मुझे तुम्हारे निकटसे क्यों लिये जातेहैं? आपनें मुझे क्या परित्याग करदिया जब शबलानें इस प्रकारके वचन कहे ॥ ॥ ८ ॥ तब महर्षि वशिष्ठजी शोक सन्तप्त भगिनीकी नाई शोकाकुला शबलासें बोले ॥ ९ ॥ हे शबले ! मैंनें तुझे परित्याग नहीं करदिया और तैंनेभी मेरा कोई अपकार नहीं किया महाबलसें मतवाले हो यह राजा तुझे बल पूर्वक लिये जातेहैं ॥ १० ॥ मुझमें इतना बल नहींहै विशेषता यह राजा बलवान जातिमें क्षत्रिय और फिर पृथ्वीके अधिपहैं ॥ ११ ॥ विचार करके देख इस राजाके पास हाथी, घोडे, रथ प्रभृति पूर्ण विपुल सेनाहै सुतरां यह सब भांति हमसे बलवानहैं ॥ १२ ॥ वशिष्ठजीसे ऐसा सुन वचनकी जानने वाली वह धेनु विनय वचन से महाप्रभावयुक्त महर्षि वशिष्ठजीसे बोली ॥१३॥ कि क्षत्रिय ब्राह्मणोंसे अधिक बलवान नहींहैं हेब्रह्मन क्षत्रियोंके बलकी अपेक्षा ब्राह्मण अधिक बलीहैं यह बात सदासे प्रसिद्धहै ॥ १४॥ आपमें अप्रमेय शक्ति व दुर्द्धर्ष तेजहै विश्वामित्र कभी आपकी बराबरी नहीं करसक्ते ॥ १५ ॥ जो हो आप मुझे विश्वामित्रका दर्प और तेज संहार करनेके लिये समुचित शक्तिकी सृष्टिकरनेंमें नियोग कर दीजिये मैं उस दुरात्माका बल और दर्प चूर्ण करूंगी ॥ १६ ॥ कामधेनुके यह वचन सुन महा यशस्वी वशिष्ठजी यह बोलेकि बलसे सैना उत्पन्न करो जो शत्रुओंकी सैनाका संहार करे ॥ १७ ॥ मुनिकी आज्ञा पाकर सुरभी असंख्य सैना उत्पन्न करनें लगी उसकी हुङ्कारसे बहु संख्यक पह्लव म्लेच्छ उत्पन्न हुये ॥१८॥ उत्पन्न होतेही वह लोग विश्वामित्रके सामनेही सैनाका संहार करने लगे तब विश्वामित्रजीके जपा कुसुमवत लाल २ नेत्र होगये और महाक्रोधित-

हुये ॥ १९ ॥ और बाण वर्षणकर ऊंचे नीचे शस्त्रोंसे सब म्लेच्छोंका नाश किया फिर विश्वामित्रके शस्त्रसे उन सैकडों पह्लवोंको मराहुआदेख ॥ २० ॥ शबलाने पुनर्वार महाघोर यवन मिश्रित शकजातीय सैन्य सृष्टि उत्पन्नकी उन सब यवनोंसे आश्रमकी भूमि पूर्ण होगई ॥ २१ ॥ यह सब अधिक बलवान् प्रभाव शाली पीले सोनेकी समान रंग वाले हाथोंमें तीक्ष्ण पटा व तलवार धारण किये पीले कपडे पहने ॥ २२ ॥

निर्दग्धंतद्बलंसर्वंप्रदीप्तैरिवपावकैः ॥
ततोस्त्राणिमहातेजाविश्वामित्रोस्रुमोचह ॥ २३ ॥
तैस्तेयवनकांबोजाबर्बराश्चाकुलीकृताः ॥ २४ ॥

प्रदीप्तअग्निकी नाईं प्रकाशित होकर राजाकी सब सेना दग्ध करने लगे यह देखकर महातेजस्वी विश्वामित्रजीने अपने अस्त्र छोडे ॥ २३ ॥ जिस्से यवन, कम्बोज व बर्बर गणों का नाश होगया ॥ २४ ॥ इ० श्रीमद्रा०वा०आ०बा०चतुःष्पंचाशःसर्गः ॥ ५४ ॥

पचपंचाशः सर्गः ॥

ततस्तानाकुलान्दृष्ट्वाविश्वामित्रास्त्रमोहितान् ॥
वसिष्ठश्चोदयामासकामधुक्सृजयोगतः ॥ १ ॥

तब वशिष्ठजी विश्वामित्रके अस्त्र शस्त्रोंसे शकयवनादिकोंको आकुलित व विमोहित देख शबलासे बोले कि तू योगबलसे फिर सैना उत्पन्न कर ॥ १ ॥ वशिष्ठजीके ऐसा कहतेही सुरभीकी हुङ्कारसे सूर्य समान कम्बोज नामक सैना जन्मी व तिसके स्तनोंसे शस्त्रधारी बर्बर गणोंकी उत्पत्ति हुई ॥२॥ उसकी योनिसे यवन गुदासे शक रोमोंसे म्लेच्छ, किरात, व हारीत सैन्य उत्पन्न हुई ॥३॥ हे रघुनंदन! उन लोगोंने जन्म लेतेही तत्क्षणात् विश्वामित्रके हाथी, घोडे, रथ व पैदलों सहित सब सैनाका संहारकिया ॥ ४ ॥ इस समय विश्वामित्र जीके सौ पुत्र वशिष्ठ जीके प्रभावसे सैना नाश होती हुई देखकर अस्त्र शस्त्र ग्रहण पूर्वक वशिष्ठ जीके मारनेको दौडे ॥ ५ ॥ जब वे क्रोध करके वशिष्ठ जीके

मारनेको दौडे तब वशिष्ठजीने हुङ्कार करदिया कि वे तत्क्षणात् भस्म होगये ॥ ६ ॥ महात्मा वशिष्ठजीने उनके घोडे रथ और सब पदाति सैन्य मुहूर्त मात्रमें भस्म करदी और विश्वामित्र जीके पुत्रभी भस्म करदिये ॥ ७ ॥ अपनी सेनाका नाश देखकर नृपति विश्वामित्रजी लज्जित हो कुछ देरतक चिन्ता करते रहे ॥ ८ ॥ उस समय विश्वामित्र जीकी अवस्था तरंग शून्य समुद्र, टूटे दांत वाले सर्पकी, व राहु ग्रस्त दिवाकरकी नाईं, बोध होने लगी अर्थात् कान्ति शून्य होगये ॥ ९ ॥ वह सेना सहित पुत्रोंका नाश देखकर पंखनुचे पक्षीकी नाईं निरुत्साह मनसे अपमानित हुये ॥१०॥ अनन्तर क्षत्रिय धर्मानुसार एक पुत्रको राज्यभार समर्प्पण करके कहा तुम क्षत्रियोंके धर्मानुसार अच्छी तरह प्रजापालन करना यह कहकर वनको चले गये ॥ ११ ॥ वहां जाकर हिमालयके निकट किन्नरादि सेवित स्थानमें अवस्थान पूर्वक महादेवजीके आराधनार्थ तपस्या करने लगे ॥ १२ ॥ कुछ दिन तप करने पर वरदान देनेवाले देव देव वृषध्वजने विश्वामित्र जीको दर्शन दिया ॥ १३ ॥ और कहाकि हे राजन्! तुम्हारे तप करने का क्या कारण है? तुम्हारा जो अभिलापहो वह वर मुझसे मांगलो मैं तुमको वर दूंगा ॥ १४॥ महादेवजीके यह कहने पर महातपस्वी महर्षि विश्वामित्रजी उनके चरणोंमें प्रणाम करके उनसे कहने लगेकि ॥ १५ ॥ हे पिनाकपाणे! यदि आप प्रसन्न हुये हैं तो साङ्गोपाङ्ग मंत्र सहित रहस्य युक्त धनुर्वेद मुझे दीजिये ॥१६॥ हे पापरहित! देव, मानव, महर्षि, यक्ष, राक्षस और गन्धर्वोंके जितने अस्त्र शस्त्र हैं सब मुझे बेपढे आजावैं ॥ १७ ॥ आपके अनुग्रहसे मेरा मनोरथ पूरा होजाय यही मेरी प्रार्थना है यह सुन महादेवजी ऐसाही होगा यह कहकर अन्तर्ध्यान होगये ॥ १८ ॥ देवादिदेव महादेवजीसे अस्त्र शस्त्र पाकर महाबली विश्वामित्रजी अतिशय दर्पित होगये ॥ १९ ॥ हे राम! तब विश्वामित्रजी मारे वीर्यके ऐसे बढे जैसे पूर्णमासीके चन्द्रमाको देख समुद्र बढता है और यह विचारने लगे कि अबकी बार वशिष्ठजीका निस्तार नहीं ॥ २० ॥ मन २ में यह ठीककर वह फिर वशिष्ठजीके आश्रममें गये और शर जाल विस्तार करने लगे इनके बा-

णोंसे तपोवन दग्ध प्राय होगया ॥ २१ ॥ विश्वामित्रको अस्त्रोंका त्याग-न करते देख आश्रमवासी ऋषि गण त्रासके मारे चारों ओर दिशाओंमें पलायन करने लगे ॥ २२ ॥ वशिष्ठजीके जो शिष्य गणथे और आश्रम-के रहने वाले मृग पक्षीगण तक भयभीत होकर इधर उधर दिशाओंमें भागने लगे ॥२३॥इस प्रकार यह वशिष्ठजीका आश्रम शून्य प्राय होकर मुहूर्त भरमें वृक्ष रहित ऊपर विना शब्दके वन प्रदेशकी नाईं शोभापानेलगा तब वशिष्ठजी बोले कोई मतडरो. सूर्यके उदय होनेसे जैसे अंधकारका नाश होजाताहै, वैसेही मैं गाधिपुत्रका प्राण संहार करूंगा॥२४ ॥ २५॥ जप करने वालोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी वशिष्ठजीने यह कहकर फिर रोष सहित विश्वामित्रजीसे कहा ॥ २६ ॥ रे निर्बोध! खोटे आचरण करने वाले! जब तैंने वहुत कालसे धन धान्यसे परिपूर्ण इस सुखकर आश्रमका सत्यानाश किया तो अब तू जीता नहीं बचैगा ॥ २७ ॥

इत्युक्त्वापरमक्रुद्धोदंडमुद्यम्यसत्वरः ॥
विधूमइवकालाग्नियमदंडमिवापरम् ॥ २८ ॥

वशिष्ठजी यह कहकर धूम रहित अग्निकी समान क्रोधसे प्रदीप्तहो यमदंडकी सदृश घोरदंड उठाकर शीघ्रतासे विश्वामित्रके ऊपर दौ-डे ॥ २८ ॥ इ० श्रीमद्रा० वा० आ० बा० पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पंचाशःसर्गः ॥

एवमुक्तोवसिष्ठेनविश्वामित्रोमहाबलः ॥
आग्नेयमस्त्रमुद्दिश्यतिष्ठतिष्ठेतिचाब्रवीत् ॥ १ ॥

वशिष्ठजीके ऐसा कहनेपर "खडेहो, खडेहो" ऐसा कहकर महावली विश्वामित्रजीने आग्नेयास्त्र छोडा ॥ १ ॥ तब भगवान् वशिष्ठजी दूसरे कालदंडकी समान ब्रह्मदंडको उठाकर क्रोध सहित यह बोले ॥ २ ॥ रेक्षत्रकुलाङ्गार! यह मैं खडाहूं तुझमें जितनी सामर्थ्य हो अपना बल दिखा, रे गाधिसुत! मैं तेरे शस्त्रका और तेरा दर्प चूर्ण करूंगा रे अधम! कहां तेरा तुच्छ क्षत्र बल कहां महान् ब्रह्मबल इसी कारण ब्रह्म बलसे क्षत्रियबलकी ॥ ३ ॥ तुलना नहीं होती, जोहो तू हमारा अतुल दिव्य

ब्रह्म बल अब देखेगा ॥ ४ ॥ यह कहकर जलसे जिस भांति जलती हुई अग्नि शांति होतीहै वैसेही ब्रह्म दंडके प्रभावसे उस घोर अग्नेयास्त्रको निवारण करदिया ॥ ५ ॥ तब कौशिकजीने कुपितहो वारुण, ऐन्द्र, पाशुपत, ऐषीक ॥ ६ ॥ मानव, मोहन, गान्धर्व, स्वापन, जृम्भण, सन्तापन, विलापन ॥ ७ ॥ शोषण, दारण जो किसीसे न जीता जाय वज्र, ब्रह्मपाश, कालपाश, वरुणपाश ॥ ८ ॥ शिवजीका अस्त्र पिनाक दंड तैसेही शुद्ध पर्वतमें वज्रकी समान, पैशाच क्रौञ्चास्त्र ॥ ९ ॥ धर्म चक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र, वायव्य मथन, हयशिर अस्त्र ॥ १० ॥ और दो शक्ति मारीं कंकाल, मुसल विद्याधर महास्त्र और दारुण कालास्त्र ॥ ११ ॥ कपाल कंकण और हे रघुनंदन! त्रिशूल प्रभृति घोर अस्त्र वशिष्ठजीके ऊपर प्रयोग किये ॥ १२ ॥ जप करने वाले वशिष्ठ पर अस्त्र गिरते देखकर सबको महा विस्मय हुआ तब ब्रह्माजीके पुत्र वशिष्ठजीने अपने दंडके प्रभावसे इन सब अस्त्रोंका संहार करदिया अर्थात् केवल ब्रह्मदंडनेही सम्पूर्ण अस्त्र ग्रास कर लिये ॥ १३ ॥ सब अस्त्रोंको व्यर्थ देखकर गाधिनंदनने ब्रह्मास्त्र छोडा तब उस अस्त्रको प्रयोग करते देख अग्नि प्रभृति देवता गण ॥ १४ ॥ देवर्षि महासर्प और गन्धर्व इत्यादिक सब सशंकित होगये तीनों लोक ब्रह्मास्त्रके डरसे कांपने लगे ॥ १५ ॥ हे राघव! तब वशिष्ठजीनें ब्रह्मतेजोमय ब्रह्मदंड द्वारा दारुण महाघोर ब्रह्मास्त्रको व्यथ करदिया ॥ १६ ॥ जितनी देरमें ब्रह्मास्त्र निवारित हुआ और जब महात्मा वशिष्ठजीने ब्रह्मास्त्र ग्रासकर लिया उस समय वशिष्ठजीकी मूर्ति भयानक और त्रैलोक्य मोहनेवाली होगई ॥ १७ ॥ उन महातमा वशिष्ठजीके रुवें २ से निर्धूम अग्निकी ज्वालाके समान चिनगारियां निकलनें लगीं ॥ १८ ॥ वशिष्ठजीके हाथसे ब्रह्मदंड धूमरहित प्रलयाग्निकी नांई प्रज्वलितहो उठा मानो दूसरा यमदंड होगया ॥ १९ ॥ तब ऋषिलोगोंने स्तुतिकर जप करनेवालोंमें श्रेष्ठ वशिष्ठजीसें कहा हे ब्रह्मन्! अपने अमोघ ब्रह्म तेजको अपनी महिमासे अपनेमें धारण करो ॥ २० ॥ हे महात्मन् ! आपने महाबली विश्वामित्रको भली भांति जीत लिया आपका बल अपरिमेयहै अब आपकी कृपासे

सबलोग निश्चिन्तहों ॥ २१ ॥ ऋषियोंकी प्रार्थनासे महातपा वशिष्ठजीनें क्रोधत्याग शांत भाव धारण करलिया विश्वामित्रजी हारकर दीर्घ श्वास त्याग कर बोले ॥ २२॥ क्षत्रिय बलको धिक्कारहै ब्रह्म बलही प्रकृत बलहै एक मात्र ब्रह्मदंडके प्रभावसेही मेरे सब अस्त्र शस्त्र विफल होगये यही उसका पूरा प्रमाणहै ॥ २३ ॥

तदेतत्प्रसमीक्ष्याहंप्रसन्नेंद्रियमानसः ॥
तपोमहत्समास्थास्येयद्वैब्रह्मत्वकारणम् ॥ २४ ॥

बस अब इसमें यही निश्चयहै कि मैं इन्द्रिय और मनको निर्मल करके ब्रह्मत्व पानेके अर्थ स्थिरहो घोर तप करूंगा ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये बालकांडे षट् पंचाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपंचाशःसर्गः ॥

ततःसंतप्तहृदयःस्मरन्निग्रहमात्मनः ॥
विनिःश्वस्यविनिःश्वस्यकृतवैरोमहात्मना ॥ १ ॥

तदनन्तर महामुनि विश्वामित्रजी वशिष्ठ से वैर होनेके कारण मनमें अपनी हार समझ हृदयमें दग्ध होते हुये दीर्घ श्वास परित्याग पूर्वक ॥ १ ॥ हे राघव वह महातप करनेवाले विश्वामित्रजी रानीसमेत दक्षिण दिशामें जाकर घोर तप करने लगे ॥ २ ॥ वह चतुर मूल फल भोजन करके कठिन तप करनें लगे और इन्द्रियोंको जीत लिया उस समय वहां उनके सत्यधर्मके अनुष्ठान करनेवाले चार पुत्र उत्पन्न हुये ॥ ३ ॥ वह हविष्यन्द, मधुष्यन्द, दृढनेत्र और महारथ इन चार नामोंमें प्रसिद्ध हुये इस प्रकार हजार वर्ष तपस्या करते हुये बीत जानेपर लोकोंके पितामह प्रजापति ब्रह्माजी ॥ ४ ॥ तपोधन विश्वामित्रजीके निकट उपस्थितहो मधुर वाणीसें बोले कि हेराजर्षे! कुशिक पुत्र तुमने तपके प्रभावसे त्रिलोकीको जीत लिया ॥ ५ ॥ अब तपके प्रभावसे तुम राजर्षि ख्यात होगे यह कहकर महा तेजस्वी ब्रह्माजी देवताओं सहित चले गये ॥ ६ ॥ लोकोंके ईश्वर ब्रह्माजीके त्रिविष्टप अर्थात् ब्रह्मलोकमें चले जानेपर विश्वामित्रजीने लाजके मारे नीचेको मुख करलिया ॥ ७ ॥

और महादुःखीहो क्रोधकर कहने लगे कि मैंने ऐसी घोर तपस्याकी तौभी राजर्षि ही हुआ ॥ ८ ॥ देवता और ऋषिगण मुझे राजर्षि कहैंगे मैं जान्ताहूं कि अभी मैं तपस्या से सिद्ध काम नहीं हुआ यह मन में स्थित कर फिर घोर तप करने लगे ॥ ९ ॥ हे राम! जब वे आत्माके जानने वाले फिर तप करने लगे और बहुत काल बीतगया उन्हीं दिनोंमें एक अति सत्यवादी जितेन्द्रिय ॥ १० ॥ महाराज इक्ष्वाकुके कुलके बढाने वाले त्रिशंकु नाम भूपाल हुये हे राम ! उनके मनमें यह आया कि हम कोई ऐसा यज्ञ करैं ॥ ११ ॥ जिस्से शरीर सहित देवतोंके रहने योग्य स्वर्गको चले जाँय यह विचार वशिष्ठजीको बुलाकर उनसे अपना मनोरथ कहा ॥ १२ ॥ महात्मा वशिष्ठजीने कहा ऐसा नहीं होसक्ता वशिष्ठजीसे यह उत्तर पाकर त्रिशंकु दक्षिण दिशाको चले गये ॥ १३ ॥ राजा त्रिशंकु अपना कार्य साधनेको वहां पहुंचे जहां दीर्घतपा वशिष्ठजीके पुत्र तप करतेथे ॥ १४ ॥ त्रिशङ्कुने वहां पहुंच कर देखाकि उन मनस्वी वशिष्ठजीके पुत्रोंकी प्रभा सौ सूर्य तुल्यहै और वह घोर तपस्यामें मन लगाएहुएहैं ॥ १५ ॥ राजा आगे बढे उन महात्मा गुरु पुत्रोंको यथाक्रम प्रणाम करके लज्जित मुंह नीचे कर बैठ गये ॥ १६ ॥ वह हाथ जोडकर उन सब महात्माओंसे कहाकि आप शरण देनेवालोंमें समर्थहैं इस कारण मैं आपकी शरणमें आयाहूं ॥ १७ ॥ मैंने यज्ञकी कामनासे गुरुदेव वशिष्ठजीको व्रती करनेको कहाथा सो उन महात्माने जवाब दे दिया, अतएव अब आप अनुग्रह करके यज्ञ कराइये ॥ १८ ॥ मैं आप सब गुरु पुत्रोंको प्रसन्नताके लिये प्रणाम करताहूं और शिरनवाकर तपमें स्थित आप ब्राह्मणोंसे कृपाभिलाषा करताहूं ॥ १९ ॥ आप लोग कृपाकरके मेरे यज्ञको सिद्ध कर दीजिये जिस्से मैं शरीर सहित स्वर्गको चलाजाऊं आपको ऐसा करना चाहिये ॥ ॥ २० ॥ जब गुरुजीने मुझे जवाब दिया तो मेरीतो अब कोई गति नहीं इसकारण अब आपके सिवाय मैं किसकी शरण जाऊं ॥ २१ ॥

इक्ष्वाकूणांहिसर्वेषांपुरोधाःपरमागतिः ॥

तस्मादनंतरंसर्वेभवंतोदैवतंमम ॥ २२ ॥

आपही विचारकर देखिये कि गुरुही इक्ष्वाकुवंशके परमगतिहैं, सो गुरुजीके अभावमें आपही हमारे परम देवताहैं ॥ २२ ॥ इ०श्रीमद्रा० वा०आ०बा०सप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपंचाशःसर्गः ॥

ततस्त्रिशंकोर्वचनंश्रुत्वाक्रोधसमन्वितम् ॥
ऋषिपुत्रशतंरामराजानमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

हे राम! तदनन्तर ऋषि पुत्रगण राजा त्रिशंकुका वचन श्रवण करकै वे सौओं उनसे क्रोध पूर्वक बोले॥ १॥ हे मन्दबुद्धे! जब सत्यवादी पिताजीने जो तुम्हारे गुरुहैं तुमको जवाब दियाहैतब तुम उनको अनादरित कर किस प्रकार दूसरी शाखाका आश्रय लेना चाहतेहो ॥२॥ इक्ष्वाकु वंशियोंके गुरुही परमगति होतेहैं वह अपने सत्यवादी गुरु वाक्यका अनादर नहीं कर सकते ॥ ३ ॥ जिस्को हमारे पिताजी भगवान् वशिष्ठ नहीं कर सक्ते उस यज्ञको हम लोग किस प्रकार साधन करैंगे ॥ ४ ॥ हे नर श्रेष्ठ! तुम निर्बोधाहो तुम फिर अपनी पुरीको चले जाओ हे राजन्! यह जानलो कि हमारे पिताही तीनों लोकोंको यज्ञ करानेमें समर्थहैं ॥ ५ ॥ हम पुत्र होकर किस प्रकार पिताका अनादर करैं! उनके क्रोध पूर्ण वाक्य श्रवण करकै ॥ ६ ॥ राजाने फिर उनसे इस प्रकारके वचन कहे आपके पिताने हमें जवाब दिया और आपनेभी वही किया ॥ ७ ॥ हे तापस गण! आपका मंगल हो मैं जाताहूं अब और किसीके पास जाकर उनसे यज्ञ कराऊंगा ऋषि पुत्रोंने जब यह कठोर वचन सुना तो ॥ ८ ॥ महा क्रोधितहो शापदिया कि तू चांडाल अवस्थाको प्राप्त होजा यह शाप देकर वे महात्मा अपने २ आश्रममें प्रवेश करगये ॥ ९ ॥ अनन्तर रात्रि वीत जाने पर भोरही त्रिशंकु चांडाल होगये, उनका शरीर नीलवर्ण, केशसर्व और वस्त्र सब नीलेही नीले होगये ॥ १० ॥ चिताकी भस्म व मुर्दों केसे छिन्न वस्त्र धारण किये जितने गहनेथे लोह मय होगये। राजाकी ऐसी अवस्था देखकर मंत्रियोंने उन्हें परित्याग करदिया ॥ ११ ॥ हे राम! अनुगत पुरवासी राजाकी यह भयावनी मूर्त्ति देखकर उनको

छोड कर चलेगये तब ज्ञानी राजा अकेले घूमने लगे ॥१२॥ रात दिन मनहीमन जलते हुये तपोधन विश्वामित्र जीके पासको गये विश्वामित्रजीने विफल मनोरथ इन्हें ॥ १३ ॥ हे राम ! चंडालरूपमें राजाको देख मुनिके मनमें दयाका संचार हुआ और महातेजा धार्मिक विश्वामित्रजी राजासे बोले ॥ १४ ॥ उस घोर रूप वाले राजासे विश्वामित्रजी यों कहने लगे तुम यहां कैसे आये मेरे आश्रममें आनेका कारण कहो ? ॥ १५ ॥ हे वीर! अयोध्याके राजा ऐसा ज्ञात होताहै कि तुम किसीके शापसे चांडाल होगये उनके ऐसे वचन सुन चंडालत्वको प्राप्त हुए राजा ॥ १६ ॥ वाक्यविशारद विश्वामित्रजीसे हाथ जोडकर बोलेकि गुरु वशिष्ठजी और उनके सौ पुत्रोंने हमारी यह दशाकीहै ॥ १७ ॥ हे प्रियदर्शन! मैंने शरीर सहित स्वर्गमें जानेके अभिप्रायसे एक यज्ञ करनेका अभिलाष गुरुजी और उनके पुत्रोंसे कहा किन्तु प्रार्थना पूरी करना तो दूर रहा उन्होंने शापसे हमारी यह अवस्थाकी ॥ १८ ॥ मैंने एक सौ यज्ञ कियेहैं किन्तु उनके फलसे वञ्चित होगया मैंने प्रथम कभी मिथ्या नहीं किया न अब कहताहूं ॥ १९ ॥ महादुःख प्राप्त होने परभी मैंने सत्य धर्म नहीं छोडा क्षत्र धर्म मेरा साक्षीहै इसके अतिरिक्त धर्मानुसार प्रजा पालनकीहै ॥ २० ॥ मैंने महात्मा गुरुजनोंको सदाचारसे सन्तुष्ट कियाहै मेरी वासना धर्मानुसारही यज्ञ करने कीथी ॥ २१ ॥ हे मुनीश्वर ! भाग्यसे गुरुदेवभी मुझसे रूठगये मैं जान्ताहूं कि दैवही प्रधानहै पौरुषतो केवल सामान्य पदार्थहै ॥ २२ ॥ दैवही सबको वश कर रखताहै दैवही सबकी परमगतिहै मेराभाग्य विगडा हुआहै आप मेरे ऊपर कृपा कीजिये आपका मंगलहो मैं जान्ताहूं कि भाग्यसेही इस शुभकार्यमें वाधा पडीहै ॥ २३ ॥

नान्यांगतिंगमिष्यामिनान्यच्छरणमास्तिमे ॥
दैवंपुरुषकारेणनिवर्तयितुमर्हसि ॥ २४ ॥

आपके सिवाय मैं और किसकी शरण जाऊं मुझे अब और कोई शरण देनेवाला नहीं आपही अपनी सामर्थ्यसे दैवकी गतिको छेकनेमें समर्थ हैं ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० बा० अष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमःसर्गः॥

उक्तवाक्यंतुराजानंकृपयाकुशिकात्मजः ॥
अब्रवीन्मधुरंवाक्यंसाक्षाच्चंडालतांगतम् ॥ १ ॥

कुशिकनंदन त्रिशङ्कुके ऐसे वचन श्रवणकर दयाकर चांडालरूपी राजासे मधुर वचन बोले ॥ १ ॥ हे वत्स ! इक्ष्वाकुके कुलमें उत्पन्न हुये हो तुम भले आये मैं जान्ताहूं कि तुम धार्मिकहो इसीकारण आश्रय देताहूं हेराजन्! तुम कुछ मत डरो ॥ २ ॥ मैं तुम्हारे यज्ञकी सहाय करनेके लिये पुण्य कर्म करनेवाले ऋषियोंको न्योता पठाऊंगा उनको लेकर तुम अपना अभीष्टयज्ञ पूर्ण कर सकोगे ॥३॥ यद्यपि गुरु पुत्रोंके शापसे तुम्हारा शरीर विरूप होगया तथापि तुम इसी शरीरसे स्वर्गको चलेजावोगे४॥ जब तुम शरण प्राप्त होनेवाले विश्वामित्रके शरण आये हो तो जानलोकि स्वर्गमें पहुंचही गये स्वर्ग अपने हाथोंमें आया जानलो ॥ ५ ॥ यह कह कर धार्मिक विद्वान महातेजस्वी विश्वामित्रजीने अपने पुत्रोंको यज्ञका आयोजन करनेकी आज्ञादी ॥ ६ ॥ फिर सब शिष्योंको बुलाकर कहा तुम लोग मेरी आज्ञासे पुत्रोंस हितवशिष्ठ प्रभृति सब ऋषियोंको ले आओ ॥ ७॥ इसके अतिरिक्त शिष्य व सुहृदों सहित पुरोहितोंको बुलालाना यदि कोई मेरे कहनेका अनादर करे तो ॥ ८ ॥ मुझसे सब ठीक २ उनके अनादरके वचन कह देना तब विश्वामित्रजीकी आज्ञासे सब शिष्यगण चारों ओरको चले गये ॥ ९ ॥ और अनेक देशोंसे ब्रह्मवादी मुनिगण आने लगे और विश्वामित्रके शिष्यगणभी अतितेजस्वी मुनिके पास लौट आये ॥ १० ॥ और सब ब्रह्म वादियोंके वचन सुनाकर विश्वामित्रजीसे बोलेकि सब देशोंके ब्राह्मण आपका नाम सुनकर यज्ञमें आनेको सम्मत हुये ॥ ११ ॥ केवल महोदय नामक एक ब्राह्मण और वशिष्ठ पुत्र यज्ञमें नहीं आना चाहते उन्होंने क्रोधित होकर हमसे जो कहाथा ॥ १२ ॥ जो उन्होंने वचन कहे हैं सो सुनिये कि जिस यज्ञका यजमान तो चांडाल, व यज्ञका करानेवाला क्षत्रिय ॥ १३ ॥ उसमें देवता ऋषि किस प्रकार यज्ञ भाग ग्रहण करेंगे और महात्मा ब्राह्मण गण कैसे चांडाल का छुआ उस यज्ञमें भोजन करेंगे ॥ १४ ॥ और देखेंगेकि यज्ञ

कर्त्ता किस प्रकार विश्वामित्रकी सहायतासे स्वर्गको चला जायगा, यह वचन उन्होंने बडे २ लाल २ नेत्रकर निठुरतासे कहे हैं॥ १५॥ हे मुनिवर! महोदय और वशिष्ठके पुत्रोंने यह गर्वीले वचन कहे हैं उन अपने सब शिष्योंके वचन सुन मुनियोंमें श्रेष्ठ विश्वामित्रजी ॥ १६ ॥ लाल २ नेत्रकर क्रोध सहित बोले कि मैं कठोर तप कर रहाहूं कोई अन्याय कार्य किया नहीं इस परभी जो मुझे बुराकहैं ॥ १७ ॥ और मुझसे घृणा करैं तो वह दुरात्मा लोग भस्म होजायँगे और कालपाशसे बंधे हुये यमपुरको गमन करैंगे ॥ १८ ॥ फिर सातसौ जन्मतक कफन खसोटी कर काल व्यतीत करैंगे कुत्तेका मांस उनका भोजन होगा डोम कहलावेंगे ॥ १९ ॥ उनको विकृत और विरूप भावसे सब लोकोंमें विचरण करनाहोगा उस महोदयनेभी जब दुर्बुद्धि वश होकर दोष रहित मुझे दूषण दिया है ॥ २० ॥ सो वह भी सब लोकमें दूषित होकर निषाद जाति होय. अधिक क्या कहूं उसको प्राणियों की हिंसा करनेमें नियुक्त होकर ॥ २१ ॥

दीर्घकालंममक्रोधाद्दुर्गतिंवर्तयिष्यति ॥
एतावदुक्त्वावचनंविश्वामित्रोमहातपाः ॥
विरराममहातेजाऋषिमध्येमहामुनिः ॥ २२ ॥

बहुत कालतक मेरे क्रोधसे महादुःख भोगना पड़ेगा यह कहकर महातपस्वी तेजस्वी महामुनि विश्वामित्र ऋषियोंके बीचमें बैठे चुपरहे ॥२२॥
इ० श्रीमद्रा० वा० आ० बा० एकोनषष्टितमःसर्गः ॥ ५९ ॥

षष्टितमः सर्गः ॥

तपोबलहतान्ज्ञात्वावासिष्ठान्समहोदयान् ॥
ऋषिमध्येमहातेजाविश्वामित्रोऽभ्यभाषत ॥ १ ॥

तब महातेजस्वी विश्वामित्रजी. महोदय और वशिष्ठके पुत्रोंको तपके बलसे निहत जानकर ऋषियोंके सामने बोले ॥ १ ॥ इक्ष्वाकु वंशीय यह नृपति त्रिशंकु परम धार्मिक और अतिशय दाता हमारे शरणागत हुये हैं ॥ २ ॥ अपने शरीर सहित स्वर्गको जानेकी इनकी अभिलाषा

है इस कारण जिस्से इनका मनोभिलाष सिद्ध होजाय यह इसी शरीरसे स्वर्गको चले जाँय ॥ ३ ॥ ऐसा यज्ञ आप हमारे साथ कराइये विश्वामित्रजीके ऐसे वचन श्रवणकर सब महर्षि ॥ ४॥ सब धर्मज्ञ ऋषि तत्काल धर्म संयुक्त वचन आपसमें बोले कि यह कौशिक मुनि महा कोपीहैं ॥ ॥ ५ ॥ जो यह कहैं सो करनेमें विलम्ब न करो ! क्योंकि यह अग्निके समान हैं इनका कहा न करनेमें यह शाप अवश्यदेंगे ॥ ६ ॥ इस कारण ऐसे यज्ञमें प्रवृत्तहो जिस्से विश्वामित्रके तेजसे त्रिशंकु शरीर सहित स्वर्गको चला जाय ॥ ७ ॥ तदनन्तर सम्पूर्ण ऋषियोंके मध्यमें यज्ञारम्भ हुआ ऋषिगण आपसमें सम्मतिकर यज्ञ कार्यमें नियुक्त हुये और यज्ञकी क्रिया करने लगे ॥ ८ ॥ उस यज्ञके याजकतो महातेजवान विश्वामित्रजी हुये व और २ विज्ञानी ऋषि लोग जो अच्छी रीतिसे वेद मं जानतेथे ऋत्विज हुये ॥ ९ ॥ यज्ञके समस्त कार्य यथा विधि निर्वाहित होने लगे कुछ काल वीतजाने पर महर्षि विश्वामित्रजीने ॥ १० ॥ यज्ञ भाग ग्रहण करनेके लिये देवता ओंको आह्वान किया किन्तु कोई देवता भाग ग्रहण करने को नहीं आया ॥ १२ ॥ तब तो राजर्षि तेजस्वी विश्वामित्र क्रोधित हो स्रुवा उठाय क्रोधकर त्रिशंकुसे बोले ॥ २२ ॥ हे राजन्! मेरा तप बल देखो जो मैंने तपस्यासे प्राप्त कियाहै मैं अपने तपके प्रभावसे तुम्हें शरीर सहित स्वर्गको पहुंचाऊंगा ॥१३॥ हे नरेश्वर ! यद्यपि शरीर सहित स्वर्गमें जाना सहज नहींहै किन्तु मेरी तपस्याके संचित फलके प्रभावसे तुम स्वर्ग जा सकोगे जो कुछ मेरे तप का फल है ॥१४॥ उसके प्रभावसे तुम स्वर्गको जाओ.जब राजर्षिने ऐसा कहा तो सब ऋषियोंके सामने शरीर सहित राजा त्रिशंकु ॥१५॥ स्वर्गको चले गये हे राम ! उनको स्वर्गमें गया हुआ देख सुरराज ॥ १६ ॥ देवता ओं सहित राजासे यह वचन बोले. हे नृपते ! तुम स्वर्गमें रहने योग्य नहींहो इसकारण फिर मृत्युलोकको चले जाओ ॥ १७ ॥ हे मूर्ख ! गुरु वशिष्ठजीने तुम्हें शाप दियाहै अतएव तुम नीचेको मुँह करके गिरो इन्द्रके ऐसा कहतेही त्रिशंकु नीचे मुँह होकर गिरे ॥ १८ ॥ वो गिरती समय तपस्वी विश्वामित्रजीको लक्षकर " त्राहि त्राहि " शब्द करने लगे तब विश्वामित्रजी

त्रिशंकुके ऐसे दुःखके वचन सुनकर॥१९॥ऋषियोंके बीचमें वह तेजस्वी व दूसरे प्रजापतिकी नाई महा क्रोध कर वहीं रहो वहीं रहो यह वचन बोले२०। उस समय कौशिकजीने क्रोधसें मूर्च्छित होकर दक्षिण दिशामें नये सप्तर्षि बनाये इसी भांति और नये नक्षत्र बनाते हुए ॥ २१ ॥ इस प्रकार ऋषियोंके बीचमें बैठे हुए वह महायशस्वी विश्वामित्रजी क्रोधसें दक्षिण दिशामें और भी छोटे २ नक्षत्र बनाने लगे ॥ २२ ॥ उन्होंने यह सृष्टि करके कहा यातो मैं दूसरा इन्द्रही बनाऊंगा या नहीं स्वर्ग लोक इन्द्र शून्य करूंगा यह कहकर क्रोधसे देवताओंकीभी सृष्टि करने लगे ॥२३ ॥ तिस सुरासुर और ऋषि गण व्याकुल भावसे विश्वामित्रजीके निकट उपस्थित होकर विनय पूर्वक कहने लगे ॥ २४ ॥ कि हे महाभागी इन राजा त्रिशङ्कुको गुरुका शाप लगाहै हे तपोधन इसकारण सशरीर स्वर्गमें इनका जाना नहीं हो सकता ॥ २५ ॥ मुनिश्रेष्ठ विश्वामित्रजीने उन देवतोंके ऐसे वचन सुन विश्वामित्रजीनें सब देवताओंसे यह वचन कहे॥२६॥ हे महात्माओ! आपका कल्याण हो मैं राजा त्रिशंकुको सशरीर स्वर्गमें भेजनेकी प्रतिज्ञा कर चुकाहूं उस करी हुई प्रतिज्ञाको मैं व्यर्थ करना नहीं चाहता ॥ २७ ॥ इस समय यातो शरीर सहित त्रिशंकु स्वर्गको जाय नहीं जबतक पृथिव्यादि बने रहें तबतक इनके संग रहनें के लिये हमारे बनाये नक्षत्रादि सब वर्तमान रहैं! हे देवताओ! तुम ऐसी अनुज्ञा दीजिये ॥ २८ ॥ २९ ॥ विश्वामित्रजीके यह वचन सुनकर सब देवगण उनसें कहनें लगे आपने जो कहा सो मिथ्या नहीं होगा आपका मंगलहो यह सब आपके बनाये इसीप्रकार स्थित रहैंगे ॥ ३० ॥ हे मुनि श्रेष्ठ! यह सब नक्षत्र गगन मंडलमें ज्योतिषचक्रकी गतिके बाहर जाज्वल्य मान रहैं ॥ ३१ ॥ अमरकी नाईं राजा त्रिशंकु अधोमुख मुखयहीं स्थिति करैं और नक्षत्रगण इन श्रेष्ठ राजाके अनुगामी होंगे ॥ ३२ ॥ राजा त्रिशंकु कृतार्थ, कीर्तिमान् और स्वर्गलोक गामीहों यह कह कर विश्वामित्रके प्रति देवताओंने आनन्द भाव प्रकाशकिया॥३३॥

ऋषिमध्येमहातेजाबाढमित्येवदेवताः ॥
ततोदेवामहात्मानाऋषयश्चतपोधनाः ॥

जग्मुर्यथागतंसर्वेयज्ञस्यांतेनरोत्तम ॥ २४ ॥

देवताओंके वचन श्रवण करके ऋषियोंके मध्यमें महा तेजमान् वि-श्वामित्रजी इस बातमें सम्मत हुये; हे नरोंमें श्रेष्ठ! तदनन्तर यज्ञ पूरा होनेपर महात्मा देवता व ऋषिगण सब अपने २ स्थानको चलेगये ॥२४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० बालकांडे षष्ठितमःसर्गः ॥६०॥

एकषष्टितमः सर्गः ॥

विश्वामित्रोमहातेजाःप्रस्थितान्वीक्ष्यतानृषीन् ॥
अब्रवीन्नरशार्दूलसर्वांस्तान्वनवासिनः ॥ १ ॥

हे नरशार्दूल! सबके चले जानेपर महातेजस्वी विश्वामित्रजीने सब वन वासियोंसे कहा ॥ १ ॥ इस दक्षिण दिशामें रहनेसे तप करनेमें बहुत वि-घ्नहुयेहैं अतएव और किसी दिशामें जाकर तप करना मेरे लिये श्रेष्ठ होगा इस कारण मैं दूसरी दिशामें जाकर तप करूंगा ॥ २ ॥ सुविस्तीर्ण सुखदायक पश्चिमदिशा में जहां बड़ावनहै वहां पुष्करके निकट हम सुखसे तप कर सकेंगे ॥ ३ ॥ यह कह कर महा तेजस्वी विश्वामित्रजी पुष्करको चले गये और वहां जा मूल फल भोजन कर कठोर तपस्या करने ल-गे ॥ ४ ॥ इसी समय अयोध्याके राजा महाराज अंबरीष एक यज्ञका अनुष्ठान करने लगे ॥ ५ ॥ इन्द्रने उनके यज्ञका पशु चुरालिया तब यज्ञका पशु हरजानेसे; ब्राह्मणोंने राजासे कहा ॥ ६ ॥ जो यज्ञ पशु आयाथा सो आपकेरक्षा नकरनेहीसे वह हरगया जो रक्षाके कार्यमें अश-क्तहैं वह राजा सब दोषोंमें लिप्तहैं वह जल्दी नाशको प्राप्त होजातेहैं ॥७॥ जिस्से यज्ञ समाप्त होनेके पहले कोई पशु लाइये अथवा कोई मनुष्य ही गोधन देकर लाइये जिस्से इस पापका प्रायश्चित्त होजाय ॥ ८ ॥ पुरोहितों के ऐसे वचन श्रवणकर वह नरश्रेष्ठ राजा हजार गायोंके बद-लेमें यज्ञीय पशु खोजने लगे ॥ ९ ॥ क्रमसे वह राजा अनेक देश अ-नेक जनपद नगर वन और अनेक तपस्वियोंके पुण्यरूप आश्रमोंमें फिरे ॥ १० ॥ हे रघुनंदन! अन्तमें भृगुतुङ्ग नामक गिरिशृङ्गमें ऋचीक मुनिको समासीन देखा कि पुत्र कलत्र सहित विराजमानहैं ॥ ११ ॥

बड़े प्रतापी राजर्षि अंबरीष तपके प्रभावसे प्रदीप्त ब्रह्मर्षिको प्रणाम और प्रसन्न करकै बोले ॥ १२ ॥ मुने! आप सब तरहसे कुशलतोहैं? मैं मूल्य स्वरूप दक्षिणामें सौ हजार गायें देनेको मौजूदहूं आप इसके पलटेमें अपने पुत्रको दे सकतेहैं? ॥ १३ ॥ हे बडे भाग वाले! यदि आप मेरा कहना मानलें तो बडीही कृपाहो मैं यज्ञीय पशुको सब जगह खोज चुका परन्तु कहीं नहीं पाया ॥ १४ ॥ आप मूल्य लेकर अपना एक पुत्र मुझे दे दीजिये यह सुनकर बडे तेजस्वी महर्षि ऋचीक बोले ॥१५॥ हे राजन्! मैं अपने बडे बेटेको कभी नहीं वेच सकता यह ऋचीकजीके वचन सुन उनकी स्त्री ॥ १६ ॥ मनुष्योंमें सिंह समान राजा अंबरीषजीसे कहने लगी हमारे स्वामी भार्गव ज्येष्ठ पुत्रको नहीं बेचा! चाहते ॥ १७ ॥ सबसे छोटा शुनक मुझे बहुत प्याराहै इसकारण हे राजन् मैं उसको कभी नहीं वेचूंगी ॥ १८ ॥ हे महात्मन्! ज्येष्ठ पुत्रही बहुधा पिताको प्यारा होताहै और छोटा माताको प्यारा होताहै अतएव मैं छोटेको नदूंगी॥१९॥ हे राम! मुनि और उनकी स्त्रीके ऐसा कहनेपर विचले बेटे शुनःशेप स्वयं बोल उठे ॥ २० ॥ महाराज पिता और माता ज्येष्ठ और कनिष्ठको वेच-नेमें उजर करतेहैं अतएव मैं विकनेके योग्यहूं मुझको ले चलो ॥ ॥ २१ ॥ अनन्तर ब्रह्मवादी बालकके वचन श्रवण करके राजा अम्बरी-षने और करोड रत्न देकर और बहुतसा सुवर्ण देकर ॥ २२ ॥ हे रघुनं-दन और एक लाख गाय देकर राजा शुनःशेपको मोलले प्रसन्न मन होकर चले गये ॥ २३ ॥

अंबरीषस्तुराजर्षीरथमारोप्यसत्वरः ॥
शुनःशेपंमहातेजाजगामाशुमहायशाः ॥ २४ ॥

महातेजस्वी यशस्वी राजा अम्बरीष प्रफुल्लितहो शुनःशेपको रथ-पर सवार कर शीघ्रतासे गमन करने लगे ॥ २४ ॥ इतिश्रीम० वाल्मी० आ० वा० एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ॥

शुनःशेपंनरश्रेष्ठगृहीत्वातुमहायशाः ॥
व्यश्रमत्पुष्करेराजामध्याह्नेरघुनंदन ॥ १ ॥

हे रामचन्द्र! यशस्वी महाराज अम्बरीष शुनश्शेपको लेकर मध्याह्न कालमें पुष्कर जा पहुँचे और वहां ठहरे ॥१॥ वह वहां विश्राम कर रहेथे कि इतनेमें ऋषि कुमार शुनश्शेपने पुष्करमें तप करते हुए विश्वामित्रजीको देखा ॥ २ ॥ अपने मामाको वहां ऋषियों समेत तप करते देख शुनश्शेप प्यास व श्रमसे कातरहो दीन मुखसे ॥ ३ ॥ हे राम। विश्वामित्रकी गोदीमें गिर पड़े और यह बोले कि यहां हमारे माता, पिता, जाति, बंधु, कोई नहींहै ॥ ४ ॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! आप धर्मानुसार मेरी रक्षा कीजिये हे नरोंमें श्रेष्ठ! आपही सर्व साधारणके त्राण करताहैं ॥ ५ ॥ मेरी यह प्रार्थनाहै, कि राजाका तो कार्य होजाय और तपस्या करके मैं दीर्घायु होकर स्वर्ग लाभ कर सकूं आप ऐसा उपाय कीजिये ॥ ६ ॥ मैं अनाथहूं आप प्रहृष्ट मनसे मेरी रक्षा कीजिये पिता जैसे पुत्रको पालन करताहै वैसेही आप मुझे इस विपदसे उद्धार कीजिये ॥ ७ ॥ महातपा विश्वामित्रजी शुनश्शेपके ऐसे वचन सुनकर उसको बहुत प्रकारसे धीरज बंधाकर अपने पुत्रोंसे बोले ॥ ८ ॥ परलोकमें मंगलार्थ पिता पुत्रकी जिसके निमित्त इच्छा करताहै जिस कारण उत्पन्न करताहै अब तुम्हारे लिये वह समय उपस्थित हुआहै ॥ ९ ॥ यह ऋषि कुमार बालक मेरी शरण आयाहै सो तुम लोग इसके प्राण रक्षा करके मेरा प्रियकार्य साधन करो ॥ १० ॥ तुम सबही कृतकार्य व धार्मिकहो इस समय तुम राजा अम्बरीषके यज्ञ पशु होकर अग्निको तृप्त करो ॥ ११ ॥ ऐसा करनेसे बालककी प्राण रक्षा अम्बरीषका यज्ञ साधन सुर गणोंकी तृप्ति व मेरा वचन सत्य होगा ॥ १२ ॥ हे राम । पिताके वाक्य श्रवण कर मधु छंदादि विश्वामित्रजीके पुत्र गण अभिमानसे पूर्णहो हँसीकर बोले ॥ १३ ॥ हे विभो !अपने पुत्रोंको परित्याग करके दूसरेकी प्राण रक्षा करनेका आपको क्या प्रयोजन है ? जैसे जीवोंके ऊपर दया करके अपना मांस खानाहो वैसेही यह अकार्य है ॥ १४ ॥ उनके ऐसे गर्वीले वचन श्रवण करके महर्षि विश्वामित्रजी लाल २ आंखेंकर क्रोधसे बोले ॥ १५॥ रे पामर गण! जब तुमने मेरे वचनोंको न मानकर अधर्म कार्य कियाहै और यह रोम हर्षण वाक्य प्रयोग कियेहैं ॥ १६ ॥ तौ तुम्हैंभी वशिष्ठके पुत्रोंकी नाईं कुत्तेका मांसभोजी होना पडेगा जाओ तुम्भी मुष्टिक जाति होकर

हजार वर्षतक पृथ्वीमें निवास करो ॥ १७ ॥ मुनिवर अपने पुत्रोंको शापदेकर सब दुःखोंकी दूर करने वाली रक्षाको करके विषण्ण मन शुनश्शेपसे बोले ॥ १८ ॥ तुम पवित्र पाशसे जिस समय बँधो लाल माला धारणकरो जब चन्दन लगाया जाय तब वैष्णव खंभमें बंधकर वाणी द्वारा अग्निकी आराधना करते रहना ॥१९ ॥ हे मुनिपुत्र! मैं तुमको दो दिव्य मंत्र सिखाये देताहूं वह तुम अम्बरीषके यज्ञमें अग्निके आगे पढना बस सब काम सिद्ध होजायगा ॥ २० ॥ ऋषिकुमार शुनःशेप ऋषिसे सावधानतासे दोनों मंत्र ग्रहण करके राजसिंह अम्बरीषके निकट शीघ्र उपस्थितहो बोले ॥ २१ ॥ हे राजन्! अब विलम्ब करनेका प्रयोजन नहींहै आप मुझको ले यज्ञ साधनार्थ प्रस्तुत हूजिये ॥ २२ ॥ राजा उस ऋषि पुत्र शुनश्शेपके वचन सुन सन्तुष्टहो आलस्यरहित शीघ्र यज्ञस्थलमें उपस्थित हुये ॥ २३ ॥ तब राजाने सभासद् गणकी अनुमति पाकर शुनश्शेपको लाल वस्त्र धारण करा और कुशरस्सीसे बांध खंभमें बांधदिया ॥ २४ ॥ उस समय मुनि बालक बँधा हुवा अनन्योपाय होकर दिव्यवाणीसे जिनका सुंदर अर्थ था वेद मंत्रोंसे इन्द्र व उपेन्द्रकी स्तुति करने लगा ॥ २५ ॥ इन्द्र व उपेन्द्र बालककी स्तुतिसे प्रसन्नहो उसको दीर्घजीवी होनेका आशीर्वाद देते हुये ॥ २६ ॥ इस भांति नरवर नरनाथका यज्ञ सम्पूर्ण हुआ हे राम! उन्होंने शचीनाथके प्रसादसे यज्ञका बहुत फल पाया ॥ २७ ॥

विश्वामित्रोऽपिधर्मात्माभूयस्तेपेमहातपाः ॥
पुष्करेषुनरश्रेष्ठदशवर्षशतानिच ॥ २८ ॥

हे राम! महात्मा विश्वामित्रजीनें फिर पुष्कर क्षेत्रमें १००० वर्ष तक तप किया ॥ २८ ॥ इ० श्री० म० वा० आ० बा० द्विषष्टितमःसर्गः ६२॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ॥

पूर्णेवर्षसहस्रेतुव्रतस्नातंमहामुनिम् ॥
अभ्यगच्छन्सुराःसर्वेतपःफलचिकीर्षवः ॥ १ ॥

हजार वर्ष पूर्ण होनेपर महात्मा विश्वामित्रजीने व्रत स्नान किया उस समय ब्रह्माजी तपस्याका फल देनेको सुरगण सहित ॥ १ ॥ उनके निकट उपस्थित हो महातेजस्वी ब्रह्माजी सुन्दर वचन कहने लगे हे मुने! तुम उत्पन्नकिये शुभकर्मके प्रभावसे ऋषि हुए ॥ २ ॥ यहकह देवताओंके ईश्वर ब्रह्माजी तो अन्तर्ध्यान होगये और महातेजस्वी विश्वामित्रजी फिर घोर तप करने लगे ॥ ३ ॥ हे राम! कुछ काल वीतने पर मेनका अप्सरा पुष्करक्षेत्रमें नहानेको आई ॥ ४ ॥ कुशिकके पुत्र महातेजस्वी विश्वामित्रजीने मेघ सहित सौ विजलीकी नाईं उस परम सुन्दरी अप्सराको देखा ॥ ५ ॥ देखतेही कामके वशहो मुनिने मेनकासे कहा हे अप्सरे! तुम्हारा मंगलहो तुम हमारे आश्रममें रहो ॥ ६ ॥ तुम काममोहित मेरे ऊपर अनुग्रह करो ऋषिके ऐसे वचनसुन सुन्दर मुखवाली मेनका वहां रहने लगी ॥ ७ ॥ इसके मिलनेसे विश्वामित्रजीके तपमें महा विघ्न उपस्थित हुआ अर्थात् अप्सरा के साथ रहते२ दशवर्ष वीतगये तब विश्वामित्रजीके तपमें विघ्न हुआ ॥ ८ ॥ वह अप्सराभी विश्वामित्रजीके आश्रममें सुखसे रहने लगी कुछ काल वीतनें पर विश्वामित्रजी ॥ ९ ॥ हे रघुनंदन अत्यन्तलाजको प्राप्तहो चिन्ता करनें लगे और कुछेक क्रोधित हुए इनकी बुद्धिमें यह वात समाईकि ॥ १० ॥ देवताओंके ही द्वारा मेरी सव तपस्यामें विघ्न हुआहै देखो दशवर्ष एकरातके समान वीत गये और मैंने नजाना ॥ ११ ॥ कामके वशहो मोहित होनेसेही यह विघ्न उपस्थित हुआहै यह कह दीर्घनिःश्वास परित्याग पूर्वक पछताने लगे और फिर दुःखित हुए ॥ १२ ॥ तब मेनका मुनिजीकी यह अवस्था देख कांपतीहुई हाथजोड उनके सामने खडीहुई विश्वामित्रजीने उसे मधुर वचनोंसे सन्तोष दिया और फिर मेनकाको विदा करदिया ॥ १३ ॥ हे राम! फिर विश्वामित्रजी उत्तर पर्वतकी ओर चले और महायशस्वी वहां पहुँचकर काम दमन करनेंके लिये ॥ १४ ॥ कौशकी के तीर कठिन तपस्या करनेलगे इस भांति तप करते२ हजार वर्ष बीत गये ॥ १५ ॥ हे राम! उत्तर पर्वतमें विश्वामित्रजीके तप करनेंसे देवगण भयभीतहुए और ऋषियोंके साथ ब्रह्माजीके पास जाकर वोलेकि ॥ १६ ॥ विश्वा-

मित्रजी महर्षि होनाचाहतेहैं अतएव उनकी प्रार्थना पूर्ण कीजिये सर्व-लोकके पितामहजो देवताओंका यह वचन श्रवणकर ॥ १७ ॥ विश्वामित्रजीके निकट उपस्थित हो मधुर वचन बोले हे मुने ! तुम्हारा मंगलहो-मैं तुम्हारे तपसे प्रसन्न हुआहूं ॥१८॥ हे कौशिक ! मैंने तुमको महर्षित्व प्रदान किया तब ब्रह्माजीके यह वचनसुन तपोधन विश्वामित्रजी ॥ १९ ॥ हाथ जोडकर ब्रह्माजीसे बोले कि हमको तो अपने शुभकर्मोंसे ब्रह्मर्षि शब्दही अभीष्टहै ॥ २० ॥ सो आपने ब्रह्मर्षि नहीं कहा इस कारण मैंने जाना कि मैं अभीतक जितेन्द्रिय नहीं हुआहूं तब ब्रह्माजीने कहा कि हां अभीतक तुम जितेन्द्रिय नहीं हुएहो ॥ २१ ॥ परन्तु चेष्टा करने से जितेन्द्रिय हो सक्तेहो यह कह ब्रह्माजी अन्तर्ध्यान होगये सब देवता भी जहांके तहां चलेगये उनके चले जानेपर तब महामुनि विश्वामित्रजी ॥ २२ ॥ ऊपरको बहिंकर अवलम्बन शून्य और पंचतपाहो वायुभोजन कर तप करने लगे वह वर्षाऋतुमें खुले मैदानमें ॥ २३ ॥ वह तपोधन शीतकालमें दिन रात पानीमें खड़े रहते इस प्रकारसे घोरतप करते २ हजारवर्ष बीतगये ॥ २४ ॥ महर्षिको महातप करते देख कर देवताओं-को विशेष इन्द्रको सन्तापहुआ ॥ २५ ॥

रंभामप्सरसंशक्रःसर्वैःसहमरुद्गणैः ॥
उवाचात्महितंवाक्यमहितंकौशिकस्यच ॥ २६ ॥

तब इन्द्रने अपने कार्य साधन करनेको सब देवताओंके और महतोंके साथ रंभाके पास जाकर कहा कि तुम हमारे मंगलके निमित्त विश्वामित्रका अहित करो॥२६॥इ०श्रीम०वा०आ०बा०त्रिषष्टितमःसर्गः॥६३॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ॥

सुरकार्यमिदंरंभेकर्तव्यंसुमहत्त्वया ॥
लोभनंकौशिकस्येहकाममोहसमन्वितम् ॥ १ ॥

हे रंभे! देवताओंका यह बड़ा भारी कार्यहै सो तुम विश्वामित्रजीको काम मोहित कर तपसे विरतकरो ॥ १ ॥ हे राम ! जब इन्द्रने अप्सरासे यह वचन कहे तब वह अप्सरा लज्जितहो हाथ जोडकर इन्द्रसे बोली॥२॥ हे सुरनाथ! महामुनि विश्वामित्र बडे क्रोधीहैं हे देव वह क्रोधितहो निश्चं-

य मुझे शापदेंगे ॥ ३ ॥ हे देव आपका मंगलहो मुझे इसकार्यके करनें में डर लगताहै हेराम! जब वह यह वचन कहकर डरके मारे घबडागई ॥ ४॥ तब उस हाथ जोडे कांपती हुई से सहस्र लोचन बोले डरो मत! तेरा मंगलहो मेरी बात सुनकर मेरा कहना मान ॥ ५ ॥ मैंभी सुन्दर वृक्ष शोभित वसन्तकालमें कोकिल स्वरूपहो कामदेवके सहित तेरे निकटमें रहूंगा ॥ ६ ॥ तुम अपने मनोहर रूपके अनेक प्रकारके भाव भंगीसे विश्वामित्र के अंतःकरणमें विकार उत्पन्न करो ॥ ७ ॥ इन्द्रके ऐसे वचन सुन वह सुन्दर हंसीवाली सुन्दरी दिव्य रूप धारण करके अनेक हाव भावसे मुनिवरके मनमें काम उत्पन्न करने की चेष्टा करने लगी॥८॥

तब मुनींद्र कलकंठ मधुर कोकिलाका शब्द सुनने लगे सुनतेही प्रमुदित मनसे वर रूपसी रम्भाको देखा ॥ ९ ॥ इसके उपरान्त उसके मनोहर संगीत व मनोहर गुंजार श्रवण करके मुनिके मनमें सन्देह उपस्थित हुआ ॥ १० ॥ तब विश्वामित्रजीने सुरराजको इस विघ्नकी जड समझ क्रोध युक्तहो रम्भाको यह शाप दिया ॥ ११॥ रेदुर्वृत्ते! तू काम क्रोध दमनाभिलाषी ऋषिको मोहनेके लिये आईथी इस कारण तू दश हजार वर्ष तक शिला होकर रहेगी ॥ १२ ॥ फिर कोई महा तेजवान् तपस्याके बलसे युक्त ब्राह्मण मेरे कोपसे शिला रूप तेरा उद्धार करैगा यह कहकर महा तेजस्वी महामुनि ॥ १३ ॥ महर्षि विश्वामित्रजी अप्सरा को यह शाप देकर हमसे क्रोध न रुकसका यह विचार कर फिर दुःखी हुए ॥ १४ ॥ विश्वामित्रजीके दारुण शापसे रम्भा शैलमयी होगई यह देख कर इन्द्र व उपेन्द्रात्मज अनंग इस स्थानसे प्रस्थान कर गये ॥ १५ ॥ हे राम महातपा कौशिकजी काम क्रोधको तपका विघ्नजान और इन्द्रियोंको अपने वशमें न मानकर मनही मनमें अशान्ति भोग करनें लगे ॥ १६ ॥ फिर तप सिद्ध करनेके लिये चिन्ता करते २ सोचा कि—अब किसीको शाप न देंगे न क्रोधही करैंगे ॥ १७ ॥ न सहस्रों वर्षोंतक श्वासही नलेंगे वरन जितेंद्रिय हो अपने देहको सुखाडालेंगे ॥ १८ ॥ जब तलक तपस्याके प्रभावसे हम ब्रह्मत्व न पावेंगे. तबतक श्वासको रोककर निराहार कठोर तप करते रहैंगे ॥ १९ ॥

नहिमेतप्यमानस्यक्षयंयास्यंतिमूर्तयः ॥
एवंवर्षसहस्रस्यदीक्षांसमुनिपुंगवः ॥
चकाराप्रतिमांलोकेप्रतिज्ञांरघुनंदन ॥ २० ॥

इस प्रकार हजार वर्षतक तपस्या करने परभी हमारे अंग क्षीण नहीं होंगे विश्वामित्रजी यह कह कर हजार वर्षतक तप करने की दीक्षामें प्रवृत्त-हो प्रतिज्ञानुयायी कार्य करने लगे ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० वा० चतुःषष्टि तमःसर्गः ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥

अथहैमवतींरामदिशांयक्त्वामहामुनिः ॥
पूर्वांदिशमनुप्राप्यतपस्तेपेसुदारुणम ॥ १ ॥

हे राम अनन्तर महामुनि कौशिक उत्तर दिशा परित्याग करके पूर्व दिशामें गमन पूर्वक अति कठोर तपस्यामें मनको लगाते हुये ॥ १ ॥ हे राम! वह हजार वर्ष पर्यन्त मौन व्रतावलम्बीहो असाध्य साधन कर-नेमें प्रवृत्त हुए व परम दुष्कर तप किया॥२॥हजार वर्ष बीतने पर काष्ठ-की समान अवस्थान करने लगे यद्यपि बहुतेरे विघ्न हुए पर मुनिराजके मनमें क्रोध न आया ॥३॥ हेराम उन्होंने निश्चय जानलिया कि अब हमारा क्रोध कुछ नकर सकैगा हमारा यह सहस्रवर्ष तकका नियम पूर्ण होगया ४॥ हे रघुश्रेष्ठ राम व्रतके पूर्ण होनेपर विश्वामित्रजीने जैसेही भोजनार्थ अन्न बनाया कि इतनेमें सुरनाथ विप्ररूप बनाकर आये व सब अन्न महर्षिसे मांगा ॥५॥ महातपस्वी विश्वामित्र जीने प्रसन्न होकर ब्राह्मणको सब अ-न्नदेदिया और आप भूखे रहगये॥६॥ ब्राह्मणसे कुछ प्रगट नहीं किया और पहिलेकी नांई मौनव्रतावलम्बी हुये इसप्रकार मौन को धारण कर श्वा-स लेनाभी छोड दिया ॥ ७ ॥ ऐसे और हजार वर्ष बीत गये और विश्वा-मित्रने श्वास नलिया तब उनके ब्रह्मरन्ध्र पर अग्नि प्रदीप्तहो उठी ॥ ८ ॥ उस अग्निके तेजसे विश्वसंसार सन्तापित और आकुलित होगया तब देवर्षि गन्धर्व, पन्नग वराक्षस ॥ ९ ॥ इस तेजसे प्रभा हीनहो और मोहित दुः-खित हो लोक पितामह ब्रह्माजीके निकट उपस्थितहो बोले ॥ १० ॥

हेदेव! हमलोगोनें अनेक प्रकारसे कुशिकनन्दनको क्रोध और लोभ दिलानेकी चेष्टाकी परन्तु किसीभांति कृतकार्य नहोसके अब उनका तप बढ रहाहै ॥ ११ ॥ हमलोगोंने उनका किसीप्रकार का पापाचरण नहीं देखा अब यदि आप उनको वाञ्छित वर नहींदेंगे तौ हमारा कहीं ठिकाना नहीं ॥ १२ ॥ उग्रतपा विश्वामित्रजी चराचर त्रैलोक्यका संहार करनेको उद्यत हुयेहैं दिग्मण्डल उनके प्रभावसे आकुलित हो प्रकाश नहीं करता ॥ १३ ॥ सब समुद्र थरथरा रहेहैं पर्वत फटे जातेहैं वसुधा कंपित और पवन शंकित होरहीहै ॥ १४॥ हेब्रह्मन्! अब क्या उपाय करैं कुछ समझ नहीं पडता अब जैसा देखतेहैं इससे तौ सबलोकके नास्तिक होनेकी संभावनाहै त्रैलोक्य शंकित और निश्चेष्ट सा होगयाहै ॥ १५ ॥ उन महर्षिके तेजसे अंशुमाली सूर्य प्रभाहीन होगयेहैं अधिक क्या कहैं जो महामुनिजी करतेहैं वह हमारी बुद्धिसे परेहै ॥ १६ ॥ महर्षि कालाग्निकी समान जबतक सृष्टिका संहार न करैं तबतक हेभगवन्! आपकी उन अग्निरूप ऋषिको प्रसन्न करना कर्तव्यहै जिस प्रकारसे पहले कालाग्निसे लोक दग्ध हुयेथे वही दशा होनेकीहै ॥ १७ ॥ आपसे अधिक क्या कहैं कि यदि महर्षि इन्द्रका राज्य माँगे तो उनको वहभी देदीजिये यहकह देवगण ब्रह्माजीको साथले ॥ १८ ॥ महात्मा विश्वामित्रजीके पास जाकर बोले ब्रह्मर्षे तुम्हारा मंगलहो मैं तुम्हारी तपस्यासे प्रसन्न हुआहूं ॥ १९ ॥ हेकौशिक! तुमनें अपनी तपस्याके प्रभावसे ब्रह्मत्व पायाहै हे ब्रह्मन् मैंने तुम्हें दीर्घजीवन देवता ओंके सहित प्रदान किया ॥ २० ॥ हेसौम्य! तुम्हारा मंगलहो तुम सुख पूर्वक जहां चाहो वहां चले जाओ तब महर्षि देव गणोंके सहित प्रजापतिका वाक्य श्रवणकरके ॥ २१ ॥ उनसे प्रणाम करके बहुत प्रसन्नहो विश्वामित्रजी कहनें लगे कि जो हमको ब्राह्मणता मिली व बडी आयुषभी दीगई ॥ २२॥ तो ॐकार वषट्कार व सब वेदभी हमें अंगीकार करैं और क्षत्रियोंकी विद्या जाननें वाले व ब्राह्मणोंकी विद्या जानने वालोंमें श्रेष्ट ॥ २३ ॥ वशिष्ठजी और सब देवताभी हमको ब्रह्मर्षि कहदेवें ऐसी कृपा कीजिये, आप सब लोग जानलें कि ऐसा न होनेसें मैं फिर तपस्या करनेमें प्रवृत्त हूंगा यह करके आप सब चले जाइये ॥२४॥

अनन्तर देवताओंके अनुरोधसे वशिष्ठजीनें प्रसन्नहो विश्वामित्रजीसे सु-हृदता स्थापनकर उनका ब्रह्मत्व स्वीकार किया॥२५॥और विश्वामित्रजी से कहा कि अब तुम निःसन्देह ब्रह्मर्षि हुये सब कुछ तुम्हें प्राप्त है यह कह कर देवता अपने यथा स्थानको चलेगये ॥ २६ ॥ तब धर्मात्मा महर्षि विश्वामित्रजीने ब्राह्मणत्व लाभकर यथा विधि जप करने वालोंमें श्रेष्ठ वशिष्ठजीकी पूजाकी॥ २७ ॥ यह इस प्रकार पूर्ण कामहो तपस्यामें मन लगाये समस्त पृथ्वी पर्यटन करने लगे हेरामचन्द्र! इन महात्मा महर्षिने इस प्रकार ब्राह्मणत्व प्राप्त कियाहै॥२८॥हे राम!यह मुनियोंमें श्रेष्ठहैं और तपकी तो मानों मूर्तिहैं, तपरूपहैं. धर्ममें तत्पर हैं वीर्य पराक्रमादिभी इनके समान इन्हींमेंहैं ॥ २९ ॥ महा तेजस्वी श्रेष्ठ ब्राह्मण शतानंदजी यह कहकर चुप होगये तब शतानंदके वचन सुनकर राम लक्ष्मणजीके सा-मने ॥ ३० ॥ शतानंदजीसे विशेष परिचय पाकर मिथिलाधिपति हाथ जोडकर विश्वामित्रजीसे यह बोले कि आज मैं आपकी कृपासे धन्य व अनुग्रहीत हुआ ॥ ३१ ॥ आपने जब राम लक्ष्मण सहित मेरे यज्ञमें आ-गमन कियाहै तब तो हे मुनिराज! मैं आपके दर्शन मात्रसेही पवित्र होग-या ॥ ३२ ॥ क्याकहूं मैं आपके दर्शन करके अनेक गुणोंका आधार होगया. हे ब्रह्मन् आपकी उग्र तपस्याका विषय श्रवण करके मैं यहां-तक अचंभेमें आयाहूं ॥ ३३ ॥ कि कुछ कह नहीं सकता राम ल-क्ष्मण व अन्यान्य सभास्थ व्यक्तिगण आपके गुणोंसे मुग्ध होगयेहैं॥३४॥ अधिक क्या कहूं कि आपमें अपार तप अपार बल और अपार गुणहैं हे विश्वामित्रजी जैसी आपमें तपस्या और बलहै वैसेही सब गुणभी आपमें विद्यमानहैं ॥३५॥ हे विभो ! आपके आश्चर्य गुणोंकी कथा श्रवण करके मनका औत्सुक्य निवारित नहीं होता इस समय रविमंडल लम्बित हुआहै अब देव क्रियाका समय समुपस्थित होगया ॥ ३६ ॥ कल प्रभात फिर आप मुझसे मिलैंगे आप सुखसे रहैं हे जप करनेवालों में श्रेष्ठ इस समय मुझे कर्त्तव्य कर्म करने की अनुमति दीजिये ॥ ३७ ॥ राजाके ऐसे वचन सुन मुनीन्द्र विश्वामित्रजीने राजाकी प्रशंसाकी और प्रसन्नतासे उनको घर जानेकी बिदादी ॥ ३८ ॥ विश्वामित्रजीसे यह वचन कहकर मिथि-

ला नाथने उपाध्याय और स्वजनसंगोंके साथ मुनिजीकी प्रदक्षिणाकी ३९

विश्वामित्रोपिधर्मात्मासहरामःसलक्ष्मणः ॥
स्ववासमभिचक्रामपूज्यमानोमहात्मभिः ॥ ४० ॥

धर्मात्मा विश्वामित्रजीभी ऋषियोंसे पूजितहो राम लक्ष्मण सहित अपने रहनेके स्थानमें स्थिति करनें लगे ॥ ४० ॥ इ० श्रीमद्रा० वा० आ० वा० पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ॥

ततःप्रभातेविमलेकृतकर्मानराधिपः ॥
विश्वामित्रंमहात्मानमाजुहावसराघवम् ॥ १ ॥

अनन्तर विमल प्रभात काल होते ही राजा जनकने प्रातक्रिया समाप्त कर राम लक्ष्मण सहित महात्मा विश्वामित्रजीको बुला भेजा ॥ १ ॥ धर्मात्मा राजाने यथाविधि शास्त्रके अनुसार राम लक्ष्मण की पूजाकर ब्रह्मर्षि विश्वामित्रजीसे कहा ॥ २ ॥ हे भगवन् ! पाप रहित आपका मंगल हो कहिये हमें कौनसा कार्य करना होगा मैं आपका आज्ञाकारीहूं ॥ ॥ ३ ॥ जब धर्मात्मा जनकजीने ऐसे वचन कहे तब वाक्यके जान्नेवाले विश्वामित्रजी वाणी बोले ॥ ४ ॥ यह दोनों कुमार क्षत्रिय श्रेष्ठ राजा दशरथजीके पुत्रहैं जिनको जगत् जान्ता है यह उस धनुषको देखा चाहते हैं जो आपके यहां रक्खाहै ॥ ५ ॥ सो आपका मंगल हो वह धनुष इनको दिखा दीजिये केवल उसके दर्शनसेही इनका आशय निकल आवैगा यह कृतकार्य होकर चले जाँयगे ॥ ६ ॥ तब राजा जनकजी विश्वामित्रजी से बोले जिस कारण से यह धनुष मेरे पास है सो आप श्रवण कीजिये ॥ ७ ॥ हमारे पूर्व पुरुषोंमें महाराज देवरात निमिके ज्येष्ठ पुत्र हुये तिनको ही भगवान् आदिदेव रुद्र देवजीने यह धनुष धरोहर की भांति दियाथा ॥ ८ ॥ पूर्वकालमें रुद्रदेवने दक्षका यज्ञ विध्वंस करनेके लिये लीला क्रमसे यही शरासन आकर्षण करके देवताओंसे कहाथा ॥ ९ ॥ जब तुमने यज्ञ भागार्थी मुझे यज्ञका पाओना भाग नहीं दिया तब इसही शरासनसे तुम्हारे सुन्दर अलंकार यु-

क्त शिरकाटूंगा ॥ १० ॥ हे मुनिराज तब देवता लोक देवादि देवके वचन सुन मलीन होगये और किसी प्रकार महादेवजीको प्रसन्न किया तब नीलकंठजीने क्रोधको रोका ॥ ११ ॥ पशुपतिजीने प्रसन्नहोकर यह धनुष महात्मा देवताओंको देदिया यह वही धनुष रत्न उन देवादि देव महात्मा शिवजोकाहै ॥ १२ ॥ देवताओंने दया करके धरोहरकी भांति यह धनुप हमारे पूर्व पुरुषोंको दिया तबसे वह यहीं रहताहै हम यज्ञ करनेके लिये भूमि हलसें जुता तेथे ॥ १३ ॥ कि हमारे हलके अग्र भागसे एक कन्या भूमिसे निकली जिस्से कि हलकी पद्धतिका सीता नामहै इसीसे कन्याका नामभी सीता धराया अब वह पृथ्वीसे निकली हुई कन्या दिन २ मेरे यहां बढने लगी ॥ १४ ॥ अयोनिसम्भवा वह कन्या मेरे यहां पलने और बडी होनेपर मैंने उस कन्याको वीर्यशुल्का कहकर यज्ञकियाहै अर्थात् पराक्रमसे इस कन्याकी प्राप्ति होगी१५ हे मुनिश्रेष्ठ इस कन्याके साथ विवाह करनेको बहुतसे राजा आये मैंने उन सब राजाओंको जो कन्याको मांगतेथे कहा ॥ १६ ॥ कि यह कन्या वीर्यशुल्का है वैसे किसीको नहीं दीजायगी जानकीजीने एकवार यह धनुप उठालियाथा इस कारण मैंने प्रणकिया कि जो हरका धनुप तोडेगा उसकोही मैं यह कन्या देदूंगा इस संवादको सुनकर देश २ के श्रेष्ठ २ राजाओंने आय ॥ १७ ॥ अपना २ पराक्रम दिखाना चाहा कि इस कन्याके संग विवाह करैं परन्तु वह प्रण किसीसे पूरा नहोसका जब उनको हरका धनुप दिखाया तो ॥ १८ ॥ टूटनातो दूर रहा कोई उसको ग्रहणकर उठाभी नहीं सका इसलिये हमने उन राजाओंमें थोडा वीर्य जान उनको लौटादिया ॥ १९ ॥ हे तपोधन जब वे राजा मुझसे तिरस्कृत हुये तब राजा लोगोंने हमारे ऊपर बड़ा कोप किया ॥ २० ॥ वे राजा अपने आपको तिरस्कृत हुआ जानकर सबने आकर मिथिला पुरीको घेरलिया कहा कि बलात्कारसे कन्याको लेजायँगे ॥२१॥और बडा क्रोध करके मेरी मिथिला पुरीको पीडित करने लगे और एक वर्षके पूर्ण होनेपर मेरा सर्वस्व क्षय होने लगा॥२२॥जब दुर्ग रक्षणकी सामग्री न रही तब मैं बहुत दुःखी हुआ तब सब देवताओंकी बलकी वृद्धिके लिये

तपस्या की और उनको प्रसन्न किया ॥२३॥ उनसे मुझे चतुरङ्गिणी सेना प्राप्त हुई व उस सेनासेही परास्तहोकर सब राजा इधर उधर दिशाओंमें भाग गये ॥ २४ ॥ इस प्रकार वह सब अवीर्य संदिग्ध वीर्य पामर लोग मंत्री आदिकों सहित भागगये, हे मुनिशार्दूल! तिस्से यह परम देदीप्यमान धनुप ॥ २५ ॥

रामलक्ष्मणयोश्चापिदर्शयिष्यामिसुव्रत ॥
यद्यस्यधनुषोरामःकुर्यादारोपणंमुने ॥ २६ ॥
सुतामयोनिजांसीतांदद्यांदाशरथेरहम् ॥ २७ ॥

हे मुने राम लक्ष्मणजीको यह दिखाये देतेहैं सो यदि यह इस शरासनमें ज्यारोपण करसकेंगे ॥ २६ ॥ तो अपनी अयोनिजा कन्या जानकीका विवाह दशरथके पुत्रके साथ कर दूंगा ॥ २७ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ॥

जनकस्यवचःश्रुत्वाविश्वामित्रोमहामुनिः ॥
धनुर्दर्शयरामायइतिहोवाचपार्थिवम् ॥ १ ॥

महामुनि विश्वामित्रजी जनकजीके वचन श्रवणकर जनकजीसे बोले कि रामचन्द्रजी को शिवका धनुप दिखाओ ॥ १ ॥ तब राजर्षि जनकजीने गंधमाला विशोभित उस धनुषके लानेकी मंत्रियोंको आज्ञा दी ॥ २ ॥ जनकजीकी आज्ञा पातेही वह लोग पुरीमें प्रवेश करके उस धनुपको लेकरके वे बड़े पराक्रमी चले ॥ ३ ॥ यह धनुष आठ पहियोंके छकड़े पर पेटीमें रक्खा था उसको पांच हजार बलवान वीर बडी कठिनाईसे खेंचे लातेथे ॥ ४ ॥ लोह मयी पेटी सहित उस धनुष को लाकर देवताओंकी समान जनकजीसे मंत्रियोंने कहा ॥ ५ ॥ हे राजन् इस धनुष श्रेष्ठकी पूजा सब राजा लोगोंने कोथी हे मिथिलाके राजा यदि देखानेके योग्य समझिये तो रामचन्द्रजीको दिखाइये ॥ ६ ॥ उन मंत्रियोंके यह वचन सुनकर जनकजीने राम लक्ष्मणजीको धनुष दिखानेके अर्थ हाथ जोडकर विश्वामित्रजीसे कहा ॥ ७ ॥ हेब्रह्मन्! यह

धनुष हमारे पूर्व पुरुषोंका संपूजितहै अबतक अनेक देशोंके राजा इस धनुषके देखने को आये. परन्तु तोडना तो दूररहा कोई उठाभी न सके और इसकी पूजा करके चलेगये ॥ ८ ॥ अधिक तो क्या इसको सुर असुर राक्षस, व गन्धर्व किन्नर महासर्प प्रभृति कोईभी ॥ ९ ॥ उत्तोलन आकर्षण. ज्यारोपण,संचालन और इस पर तीर न नचढा सका फिर मनुष्योंकी तो बातही क्याहै ॥ १० ॥ हे मुनींद्र, वही धनुष लायागयाहै सो आपमहाभाग इन राजपुत्रोंको दिखा दीजिये ॥ ११ ॥ जनकजीसे ऐसा सुन विश्वामित्रजीने रामचन्द्रजीसे कहाकि वत्स! तुम इस धनुष को देखो॥ ॥ १२ ॥ विश्वामित्रजीकी आज्ञानुसार रामचन्द्रजी धनुषके निकट गये और पेटी जिस्में वह रखाथा उसे उघाडकर धनुषको देखने लगे ॥ १३ ॥ और कहाकि मैंने हाथसे इस धनुषको स्पर्श किया अब बतलाइयेकि इसको उठाना व आकर्षण करनाहोगा ॥ १४ ॥ उससमय राजा जनक और मुनींद्रने धनुष उठानेकी अनुमतिदी बस रामचन्द्रजीने लीलापूर्वक बीचसे पकड उसे उठाहीतो लिया ॥ १५ ॥ हजारों लाखों मनुष्योंने देखा देखते २ रामचन्द्रजीनें लीलासेही धनुषको आकर्षणकिया ॥ १६ ॥ और उसपर प्रत्यंचा चढापूर्ण करते हुये महा यशस्वी नर श्रेष्ठ ने खैंचकर बीचमेंसे तोडडाला * ॥१७॥ उससमय वज्रनादकी नाईं घोर शब्दहुआ. गिरिविदीर्ण होनेसे भूभाग जैसे कम्पित होतेहैं वैसेही सब पृथ्वी कांपने लगी ॥ १८ ॥ उसभीषण शब्दसे सब लोक मूर्च्छित होगये केवल राम लक्ष्मण जनक और विश्वामित्रजी स्थिर रहे ॥ १९ ॥ अनन्तर सब स्वस्थ हुये इतने दिनों जानकीके विवाहार्थ राजा जनकजीके मनमें जो दुःख था वह जातारहा वह हाथ जोडकर विश्वामित्र जीसे बोले ॥ २० ॥ हे भगवन् ! दशरथ पुत्र रामचन्द्र इतने शक्ति सम्पन्न हैं यह मैंने नहीं समझाथा वास्तविक इनका पराक्रम तर्कणारहित औ अचिन्तनीय व्यापारहैं अब यह प्रार्थनाहै कि सीताके साथ रघुनाथका

---

* कवित्त ॥ सोर उठ्ठत महि खूब लटपटत सब सिंधु संघटत जल वेल थल छूटिगो॥ शेष फन फटत तलवासहारटत बाराह बल घटत जुग डाढ सो टूटि गो। दंत चट चटत महि शैल युत छटत दिग्दन्त गन हटत भल कुंभथल कूटि गो ।दैत्य लटि छुटत अभिमान ते छुटत कोदण्ड कहटत ब्रह्माण्ड सो फोटि गो॥

विवाहहोजावै और मेरी कन्यासे मेरे कुलमें एक महत्कीर्ति प्रतिष्ठितहो॥२१॥ ॥ २२ ॥ हेकौशिक ! मैंने सीताके विवाहार्थ जो प्रण कियाथा वह पूरा होगया अतएव अब मैं प्राणाधिका जानकीको रामके करमें समर्प्पण करूंगा ॥ २३ ॥ हेब्रह्मन् आपकी आज्ञा होतेही दूत मंत्री गण शीघ्रता पूर्वक रथपर चढा अयोध्यापुरीको भेजूंगा आपका मंगलहो आज्ञादे दीजिये ॥२४॥वह अनुनय विनयसे धनुप तोड़नेका वृत्तान्त व श्रीरामचंद्रजीका सीता प्राप्ति विषयक संवाद राजा दशरथ जीसे कहैंगे ॥२५॥ विश्वामित्र जीके प्रभावसे राम लक्ष्मणजी रक्षित होकर सुखसे अवस्थिति करतेहैं यह समाचारदे प्रीति पूर्वक अयोध्यानाथको यहां ले आवें और जल्दी जांय॥२६

कौशिकस्तुतथेत्याहराजाचाभाष्यमंत्रिणः ॥
अयोध्यांप्रेषयामासधर्मात्माकृतशासनान् ॥२७॥
यथावृत्तंसमाख्यातुमानेतुंचनृपंतथा ॥ २८ ॥

कौशिकजीने जनक की प्रार्थनासे सम्मतहो उनके कहनेसे पत्र लिख राजाको दिया तब राजा जनकजीने अपने दूतोंको बुला पत्रदे शीघ्रता पूर्वक दशरथजीके आनयनार्थ दूतों को भेजदिया ॥ २७ ॥ कि यह सब समाचार सुनाकर राजा दशरथको बुलालाओ ॥ २८ ॥ इ०श्रीम०वा० आ०बा०सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमःसर्गः ॥

जनकेनसमादिष्टादूतास्तेक्लांतवाहनाः ॥
त्रिरात्रमुषितामार्गेतेऽयोध्यांप्राविशन्पुरीम् ॥ १ ॥

जनककी आज्ञासे दूतचले जाते जाते उनके वाहन सब थकगये अवशेषमें तीन रात्रि मार्गमें बिताकर वह अयोध्या पुरीमें पहुंचे॥१॥उन्होंने राज पुरीमें प्रवेश पूर्वक देखा कि वृद्धनृ पति दशरथ देवताकी समान शोभा पारहेहैं ॥ २ ॥ दूतगण देखतेही हाथ जोड निर्भय हो विनय व नम्रतासे मधुर वाक्य कहने लगे ॥ ३ ॥ अग्निहोत्र सहित मिथिलादेशके राजा जनकने वारंवार स्नेह और कोमल वाणीसे॥४॥ आपको कुशल अनामय पुरोहित उपाध्याय सहित पूछीहै हे महाराज राजा जनकजीने आपसे

कुशल पूछकर ॥ ५ ॥ विदेह जिनका नामहै वे मिथिला पुरीके राजानें विश्वामित्रजीसे सम्मतिकर आपसे वचन कहेहैं ॥ ६ ॥ उन्होंने कहाहै कि मैंने यह प्रतिज्ञा कीथी कि जो धनुष तोडेगा वही सीताको विवाहैगा इस कारण अनेक देशोंके नृपति वर्ग आकर यहां अकृतकार्य हुए ॥ ॥ ७ ॥ हे राजन् तिस हमारी कन्या को विश्वामित्रजीके साथ आय आपके पुत्र श्रीरामचन्द्रजीनें जीता ॥ ८ ॥ और जो धनुप रत्न दिव्य हमारे यहां रक्खाथा उसको भी सबके देखते २ सभामें श्रीरामभद्रजीनें तोड़ डाला ॥ ९ ॥ अब मैं इस समय रामचन्द्रजीको सीता सम्प्रदान करके प्रतिज्ञासे उद्धार होने की इच्छा करताहूं अब प्रार्थनाहै कि आप इस विषयमें अनुमतिदें ॥ १० ॥ हे महाराज आपका मंगलहो अब आप पुरोहित व उपाध्याओंको साथ लेकर राम लक्ष्मणके देखनेको चलिये ॥ ११ ॥ हे राजेन्द्र! मुझे कन्याके ऋणसे उद्धार कीजिये मेरी प्रतिज्ञा पूरी कीजिये विशेषतः आप मिथिलामें उपस्थितहो पुत्रोंको देखकर सुखी होंगे ॥ १२ ॥ विश्वामित्रजीकी आज्ञा व पुरोहित शतानंदके उपदेशमें राजर्षि जनकजीने आपसे यह मधुर वचनसे संदेशा कहलाभेजाहै ॥ १३ ॥ दूतोंसे यह संवाद श्रवण कर राजा दशरथजी परम प्रसन्न हुये उन्होंने वशिष्ठ वामदेव और मंत्रियोंसे कहा कि ॥ १४ ॥ प्राणाधिक कौशल्यानंदन राम लक्ष्मण भाई सहित विश्वामित्रजीके पास अति यत्नसे इस समय रक्षित होकर मिथिला पुरीमें वास करते हैं ॥ १५ ॥ महात्मा जनकजी रामचंद्रजीके बल वीर्यका परिचय पाकर उन्हें अपनी कन्या देनेको कृत संकल्प हुयेहैं ॥ १६ ॥ यदि महात्मा राजा जनकसे यह संबंध करना आप अच्छा समझतेहों, तो देरका क्या कामहै जल्दी उसपुरीमें वहां पहुंचना उचितहै ॥ १७ ॥ तब ऋषिगण और सब मंत्री राजाकी बातपर सम्मतहुये, व राजाने भी प्रफुल्ल मनसे "कलही मिथिलाको चलैंगे" यह मंत्रियोंसे कह दिया ॥ १८ ॥

मंत्रिणस्तुनरेंद्रस्यरात्रिंपरमसत्कृताः ॥
ऊषुःप्रमुदिताःसर्वेगुणैःसर्वैःसमन्विताः ॥ १९ ॥

राजाके मंत्रीलोक निशाकालमें प्रमुदित मनसे परम आदर पूर्वक सम्पूर्ण गुणोंसे युक्त राजभवनमें रहे ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकांडे अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमःसर्गः ॥

ततोरात्र्यांव्यतीतायांसोपाध्यायःसबांधवः ॥
राजादशरथोहृष्टःसुमंत्रमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

तदनन्तर प्रभातकाल होतेही नृपति दशरथ उपाध्याय और बन्धु गणोंसे परिवेष्टितहो सुमंत्रको बुला कहनेलगे ॥ १ ॥ कि आज अभीसे सम्पूर्ण खजानचीगण अनेक धन रत्न ग्रहण पूर्वक सुरक्षितहो आगे २ चलें ॥ २ ॥ मेरी आज्ञासे सम्पूर्ण चतुरङ्गिणी सेना शीघ्र तैयारहो चलै. रथ, गाडी, छकडे, घोडे आदिभी जांय व किसी प्रकार आज्ञामें अन्तर न होने पावे ॥ ३ ॥ वशिष्ठ, वामदेव, जाबालि, कश्यप, कात्यायन, मार्कण्डेय प्रभृति दीर्घ जीवी ऋषिगण ॥४॥ सुन्दर २ सवारियोंमें चढ कर हमारे आगे चलें. मेरा रथभी तैयारहो. क्योंकि राजा जनकके दूत शीघ्रता करनेको कहतेहैं। इसकारण विलम्ब न करना चाहिये ॥ ५ ॥ राजाकी आज्ञासे चतुरंगिणी सैना साथहुई. व ऋषिगणभी संग २ जाने लगे ॥ ६ ॥ दशरथजी चारदिन राहमें बिताकर जनककी राजधानी में उपस्थितहुये. दशरथजी का आना सुन करके श्रीमान् जनकजी अतिशय आनन्दित हुये और पूजाकी कल्पना करनेलगे ॥ ७ ॥ और आगे आकर राजाकी यथाविधि पूजाकी अनन्तर वृद्ध राजा दशरथजी से मिलकर प्रसन्नमन राजा जनकजी बहुतही प्रसन्नहुये ॥ ८ ॥ अनन्तर प्रीति युक्तहो श्रेष्ठ वचनसे श्रेष्ठ राजा दशरथजीसे पूछा कि आप मंगलसे तोहैं? आप अच्छेतो आये मेरे बडे भाग्यहैं जो यहां आपका आना हुआ ॥ ९॥ अब पुत्रका विवाह कार्य पूराकरके आप परम प्रसन्न हूजिये. विशेष श्लाघाकी बात तो यहहै कि महातेजवान् भगवान वशिष्ठजीने मुझपर कृपाकीहै ॥ १० ॥ सुरगणसे युक्त सुरपति इन्द्रकी नांई ब्राह्मण गणसे युक्त वशिष्ठजीके आगमनसे मेरे विघ्न विपत्ति दूर और कुल पवित्र होग-

या ॥ ११॥ जोहो महाबली रामचन्द्रजीके सहित उपस्थित संबंध होनेसे मेरा भाग्य अवश्यही प्रसन्न हुआहै हे नरेन्द्र अब मेरा यह कहनाहै कि कल प्रभात विवाह होजाँय ॥ १२ ॥ हे नरश्रेष्ठ इस यज्ञके अंतमें विवाह होना ऋषियोंको सम्मतहै अयोध्याधिपति मिथिलापतिकी यह बात श्रवणकरके ॥ १३ ॥ वाक्य जान्नेवालोंमें श्रेष्ठ दशरथजी जनकजीसे इस प्रकारँ कहनेलगे कि दानदेना सब प्रकारसे दाताके आधीनहै यह मैंने पहले सुनरक्खाहै॥१४॥हे धर्मज्ञ आपने जो कहा मैं वैसाही करूंगा तब सत्यवादी राजा दशरथजीके धर्म युक्त यशस्कर वाक्य ॥ १५ ॥ सुनके विदेह नगरीके जनकराजा अति विस्मित हुये फिर सब मुनिगण परस्परके समागमसे ॥ १६ ॥ परमप्रीति युक्तहो रात्रि बितातेहुये, राजादशरथभी पुत्र स्नेहके वशहो राम लक्ष्मणका मुखदर्शन करके अतिशय सन्तुष्ट हुए १७॥

उवासपरमप्रीतोजनकेनाभिपूजितः ॥
जनकोपिमहातेजाःक्रियाधर्मेणतत्त्ववित् ॥
यज्ञस्यचसुताभ्यांचकृत्वारात्रिमुवाहसः॥ १८ ॥

और जनकजीका आदरसुख अनुभव करके स्वच्छन्द निद्रानुभव करनेलगे। व महातेजा जनकजीभी शास्त्र विहित यज्ञकार्य सम्पन्न करके कन्याविवाहके उपयुक्त लौकिक क्रिया संपादन पूर्वक कुछ देरकेलिये सो रहे ॥१८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बाल कांडे एकोनसप्ततितमःसर्गः ॥ ६९ ॥

सप्ततितमः सर्गः ॥

ततःप्रभातेजनकःकृतकर्मामहर्षिभिः ॥
उवाचवाक्यंवाक्यज्ञःशतानंदंपुरोहितम् ॥ १ ॥

तदनन्तर प्रातःकाल होनेपर वाक्य पंडित जनकराज प्रातःक्रिया समाप्त करके महर्षियोंके साथ पुरोहित शतानंदसे बोले ॥ १ ॥ हमारे भ्राता धार्मिक महातेजस्वी बलवान परम विख्यात कुशध्वज साङ्काश्य पुरीमें वसतेहैं उनको यहां बुलाना चाहिये ॥ २ ॥ वह पुरी स्वर्ग तुल्यहै उस-

के बीच होकर इक्षुमती नदी बहरहीहै पुरीमें शत्रुओंके रोकनेकेलिये ब-
डी २ खाई युक्त शहर पनाह आदि बनीहैं. व पुरीकी ऐसी शोभाहै जैसे
पुष्पक विमानकी ॥ ३ ॥ भ्राता कुशध्वज मेरे यज्ञके रक्षकहैं सो मेरी यह
इच्छाहै कि विवाह में वहभी आवें वह महातेजस्वी परम प्रसन्नतासे इस
यज्ञको मेरे साथ समाप्त करें ॥ ४ ॥ राजा शतानंदजीसे यह कह रहेथे
कि इतनेमें कई एक कार्य कुशल दूत वहां उपस्थितहुये। तब राजाने उ-
नसे कहा ॥ ५ ॥ तुमलोग शीघ्रगामी घोड़ोंपर चढकर कुशध्वजको इस-
प्रकारले आओ जैसे देवदूत विष्णुजीको इन्द्रकी आज्ञासे आयन करतेहैं
यह राजाके वचन सुन दूत लोग चले ॥ ६ ॥ कुशध्वजकी सांकाश्य रा-
जधानीमें उपस्थित हुये और राजासे जनकका संदेशा आनुपूर्विक वर्ण-
नकिया ॥ ७ ॥ शीघ्रचलनें वाले दूतोंके मुखसे महाराज जनकका स-
न्देशा सुनतेही महाराज कुशध्वज भ्राताके भवनमें उपस्थितहुये ॥ ८ ॥
उन्होंने उपस्थितहो धर्मात्मा जनक और महर्षि शतानंदको देखा व उन-
को प्रणाम करकै ॥ ९ ॥ राजाओंके योग्य सुन्दर आसनमें बैठगये जब
वह बडे मनोहर कान्तिमान दोनो भाई बैठगये ॥ १० ॥ अनन्तर दिव्य-
द्युति दोनों भाइयोंने मंत्रि प्रवर सुदामनको आज्ञादी कि हेमंत्रिपते ! तुम
महाराज दशरथके पास जाओ ॥ ११ ॥ और उनको बहुत शीघ्र पुत्र व-
मंत्रियों समेत यहां लिवा लाओ मंत्री आज्ञा पातेही रघुवंशियोंके कुल
बढानेवाले राजा दशरथके पटगृह (डेरे) में उपस्थित हुआ ॥ १२ ॥
और देखतेही शिर झुका उनको प्रणामकर बोला कि हे अयोध्याधिपते
वीर महाराज दशरथजी ! मैथिलाधिपति ॥ १३ ॥ उपाध्याय व पुरोहि-
तों के सहित आपके दर्शनकी प्रतीक्षाकरतेहैं मंत्रीके ऐसे वचन सुन महा-
राज दशरथजी सब ऋषियों समेत ॥ १४ ॥ जहां राजा जनकजी थे वहाँ
उपाध्यायों और बन्धु बान्धवों सहित राजा दशरथजी गये ॥ १५ ॥
वाक्य विशारद दशरथजीने जनकजीसे कहाकि भगवान् वशिष्ठजी इ-
क्ष्वाकु कुलके देवताहैं यह तो आप जानतेहीहैं ॥ १६ ॥ मेरा सब कार्योंमें
जो कुछ वक्तव्यहै, वह यह बतादेंगे यह इस समय विश्वामित्रजीकी सला-
हसे और ऋषियों समेत ॥ १७ ॥ यह धर्मात्मा सब धर्म और कृत्यको
यथाक्रम बतावेंगे, राजाके यह कह चुप होजाने पर भगवान् वशिष्ठजी

ने ॥ १८ पुरोहित सहित विदेहनाथसे कहा कि जो स्वयं अव्यक्त ब्रह्महैं उनसे अविनाशी ब्रह्माकी उत्पत्ति हुई ॥ १९ ॥ उनके पुत्र मरीचि मरीचिके पुत्र कश्यप हुये कश्यपके पुत्र विवस्वत इन विवस्वत सेही मनुकी उत्पत्ति हुई ॥ २० ॥ इनकाही नाम प्रजापति हुआ मनुके पुत्र इक्ष्वाकु यह इक्ष्वाकु राजाही अयोध्याके आदि राजा हुये॥२१॥ इक्ष्वाकुके पुत्र श्रीमान् कुक्षि कुक्षिके पुत्र श्रीमान् विकुक्षि हुये ॥ २२ ॥ विकुक्षिके पुत्र प्रताप शाली बाण हुए बाणके पुत्र महा तेजस्वी प्रतापी अनरण्य ॥ २३ ॥ अनरण्यके पुत्र पृथु उनके पुत्र त्रिशंकु व त्रिशंकुके पुत्र महायशवान् धुन्धुमार हुए ॥ २४ ॥ धुन्धुमारके पुत्र तेजस्वी महारथी युवनाश्व. व युवनाश्वके महा प्रतापशाली पृथ्वीनाथ मान्धाता हुए ॥ २५ ॥ मान्धाताके पुत्र श्रीमान् सुसन्धि सुसन्धिके ध्रुवसन्धि और प्रसेनजित नामक दो पुत्र हुए ॥ २६ ॥ ध्रुवसंधिके पुत्र यशस्वी भरत भरतके पुत्र महा तेजमान् असित जन्मे ॥ २७ ॥ इस राजाके विरुद्ध बड़े शूर हैहय तालजङ्घ और शशबिन्दु शूर प्रभृति उठेथे ॥ २८ ॥ नृपति असित दुर्वृत्त गणोंसे संग्राममें पराजित व राज्यच्युतहो दोरानियों समेत हिमालय पहाड पर चले गये ॥ २९ ॥ राजा असित इस कुलमें बडे अल्प पराक्रमी हुए वहां जाय कुछ दिनोंमें शरीर त्याग स्वर्गवासी हुए ऐसा सुनाहै कि महाराज असित की दोनों रानियें गर्भवतीथीं ॥ ॥ ३० ॥ इन दोनों रानियोंमेंसे एकने सवत (सौत) का गर्भ संहार करनेके लिये दूसरीके भोजनमें विष मिलादिया उन्हीं दिनोंमें इस पर्वत पर महर्षि ॥ ३१ ॥ च्यवन तप करतेथे सो उन रानियोंमेंसे जिसे विष दिया गया वह कमलसे नेत्रवाली देव समान तेजस्वी च्यवनजीके शरणागत हुई ॥ ३२ ॥ व पुत्र होने की इच्छासे मुनिके चरण कमलोंकी वन्दना करके हाथ जोड बैठ गई इस महिषीका नाम कालिन्दीथा॥३३॥ महर्षिने पुत्रकी इच्छा करने वाली उस रानीसे प्रसन्न होकर यह कहा कि हे महाभागे कमललोचनी तुम्हारे गर्भसे एक सुपुत्र महाबलशाली ॥ ३४ ॥ श्रीमान् तेजवान् वीर्यवान् पवित्र एक पुत्र गरल सहित जन्मेगा ॥ ३५ ॥ तब पतिव्रता राजकन्या रानी च्यवनजीके चरणोंमें प्रणाम कर विदा हुई विधवा अवस्थामें उसके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ॥३६॥

सवतने गर्भके नाश करने को जो गरल दियाथा सन्तान उत्पत्ति होनेके समय वह भी निकला; इसी कारण इस पुत्रका सगर नाम हुआ ॥३७॥ सगरके पुत्र असमञ्जस, असमञ्जसके पुत्र अंशुमान्, अंशुमानके पुत्र दिलीप और दिलीपके पुत्र भगीरथ हुये॥३८॥भगीरथके पुत्र ककुत्स्थ इनके रघु रघुके पुत्र तेजस्वी प्रवृद्ध हुए ॥ ३९ ॥ यह शापसें राक्षस योनिको प्राप्त हुए फिर यही कल्माषपाद नामसे ख्यात हुएथे एक समय इनको वशिष्ठजीनें शाप दिया कि तुम राक्षस होजाओ तब राजानें भी वशिष्ठजीको शाप देनेको जल हाथमें लिया तब इनकी रानीनें कहा यदि गुरु शाप दें तो तुमको शाप देना नहीं चाहिये यह सुन राजाने जल चरणों पर डाल लिया उस्से पैर काले होगये उसीसे कल्माषपाद नाम हुआ इनके पुत्र शङ्खन शङ्खनके पुत्र सुदर्शन सुदर्शनके पुत्र अग्निवर्ण हुए ॥ ४० ॥ अग्निवर्णके पुत्र शीघ्रग शीघ्रगके पुत्र मरु मरुके पुत्र प्रशुश्रुक प्रशुश्रुकके अम्बरीष ॥ ४१ ॥ अम्बरीषके पुत्र नहुष नहुषके पुत्र ययाति ययातिके पुत्र नाभाग ॥ ४२ ॥ नाभागके पुत्र अज, अजके पुत्र दशरथ और यह राम लक्ष्मणजो इन्हीं दशरथजीके पुत्र हैं ॥ ४३ ॥ हे नृप प्रथम सेही सब परंपरा द्वारा विशुद्ध परम धार्मिक और सत्यवादी इक्ष्वाकु वंश राजा ओंके कुलमें उत्पन्न हुये ॥ ४४ ॥

रामलक्ष्मणयोरर्थेत्वत्सुतेवरयेनृप ॥
सदृशाभ्यांनरश्रेष्ठसदृशेदातुमर्हसि ॥ ४५ ॥

राम लक्ष्मणके विवाहार्थ आपको २ कन्यायें मांगी जातीहै अधिक क्या कहूं अनुरूप पात्रोंको अनुरूप कन्या रत्न देदीजिये बस यही मेरा अनुरोधहै ॥ ४५ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०बा०सप्ततितमःसर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमःसर्गः ॥

एवंब्रुवाणंजनकःप्रत्युवाचकृतांजलिः ॥
श्रोतुमर्हसिभद्रंतेकुलंनःपरिकीर्तितम् ॥ १ ॥

वशिष्ठजीके यह कहने पर महाराज जनकजी हाथ जोड़कर उनसे बोले हे महात्मन् आपका मंगलहो! अब मेरे वंशका परिचय श्रवण कोजि-

ये ॥ १ ॥ हे मुनीन्द्र! महा बुद्धिमान! कन्या दानके समय कुल परिचय कीर्तन करना कर्त्तव्यहै इसकारण मैं कहताहूं आप सुनें ॥ २ ॥ हमारे वंशमें निमिनाम एक परम धर्मात्मा सत्यशील राजाने जन्म ग्रहण कियाथा वह अपने कर्मके प्रभावसे त्रिलोकमें विख्यातथे ॥ ३ ॥ उनके पुत्रमिथि, मिथिके पुत्र जनक इसी राजाके नामानुसार इस वंशके सबही जनक नामसे कहे जातेहैं ॥ ४ ॥ जनकके पुत्र उदावसु इनके पुत्र धर्मात्मा नन्दिवर्धन इनके पुत्र वीर्यवान् सुकेतु ॥ ५ ॥ सुकेतुके पुत्र महाबली देवरात राजर्षि देवरातके पुत्र बृहद्रथ हुये ॥ ६ ॥ बृहद्रथके पुत्र प्रताप शाली बलवान् महावीर. महावीरके पुत्र सुधृति ॥ ७ ॥ सुधृतिके धर्मात्मा पुत्र धृष्टकेतु,धृष्टकेतुके हर्यश्व हुए. ऐसा लोकमें विख्यातहै ॥ ८ ॥ हर्यश्वके पुत्र मरु,मरुके पुत्र प्रतीन्धक इनके धर्मात्मा कीर्तिरथ पुत्र हुए ॥ ९ ॥ कीर्तिरथके पुत्र देवमीढ देवमीढके पुत्र विबुध विबुधके पुत्र महीध्रक ॥ १० ॥ महीध्रकके पुत्र कीर्तिरात हुये कीर्तिरातके पुत्र महारोम ॥ ११ ॥ महारोमके धर्मात्मा पुत्र स्वर्णरोमन इनके पुत्र ह्रस्वरोमन हुये ॥ १२ ॥ ह्रस्वरोमनके दो बेटे हुये, ज्येष्ठ मैं और छोटे मेरे भाई कुशध्वजहैं ॥ १३ ॥ मेरे पिताने मुझे ज्येष्ठ जानकर राज्याभिषेक करके कनिष्ठ भाई कुशध्वजका भार मुझे सौंप आप वनको चलेगये ॥ १४ ॥ मैं पिताके स्वर्ग लाभ होनेपर देवतोंकी समान सहोदर भाई कुशध्वजको स्नेह पूर्वक रखकर धर्म पूर्वक राज्य करता रहा ॥ १५ ॥ इस भांति कुछ समय बीतनेपर साङ्काश्याके अधिपति महावीर सुधन्वाने आकर मिथिलापुरीको घेर लिया ॥ १६ ॥ उसने शिवका धनुष तोड़ने और कमल नेत्र जानकीके लाभ करनेकी प्रार्थनाकी यह संदेशा उसने दूतके हाथ भेजा ॥ १७ ॥ मैं उसके बल वीर्यको भली भांति जानताथा इसकारण उसकी प्रार्थना पूर्ण करनेमें सम्मत नहीं हुआ सुतरांत उभय पक्षमें तुमुल युद्ध होने लगा अंतमें सुधन्वा मुझसे हार रणसे पीछे हटा ॥ १८ ॥ उसी निदारुण युद्धमें उसका संहार करके मैंने अपने छोटे भ्राता कुशध्वजको उसकी राजधानीमें प्रतिष्ठित किया ॥ १९ ॥ यही कुशध्वज मेरे लघु भ्राताहैं मैं इनसे बडाहूं मैं इस समय अपनी दो कन्याओंको दान करना चाहता हूं ॥ २० ॥ सीताको रामके हस्तमें उर्मिलाको लक्ष्मणके करमें समर्पण

करनाही मेरा अभिप्राय है यह दो देव कन्याओंकी समान सीता मेरी कन्यावीर्यशुल्काहै ॥ २१ ॥ और दूसरी उर्मिलाहै इसकाभी विवाह करूंगा मैं तीनवार सत्य करके कहताहूं कि यह कार्य अन्यथा नहीं होगा हे मुनि श्रेष्ठ मैं प्रसन्नता पूर्वक दोनों कन्याओंको विवाह दूंगा ॥ २२ ॥ महाराज दशरथजी! आप दोनों पुत्रोंका गोदान * कार्य और पितृकृत्य अर्थात् नांदीमुख श्राद्ध कीजिये, फिर विवाह कार्य किया जायगा॥२३॥

मघाह्यद्यमहाबाहोतृतीयदिवसेप्रभो ॥
फल्गुन्यामुत्तरेराजंस्तस्मिन्वैवाहिकंकुरु॥ २४॥
रामलक्ष्मणयोरर्थेदानंकार्यंसुखोदयम् ॥ २५ ॥

आज मघा नक्षत्रहै अतएव आजसे तीसरे दिन आनेवाले उत्तराफाल्गुणी नक्षत्रमें विवाह करादीजिये॥ २४॥अब पुत्रोंके ऐसे शुभ विवाहमें दानादि करना आपका कर्त्तव्यहै इसकारण राम लक्ष्मणके शुभके निमित्त दान कीजिये ॥ २५ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० बा० एकसप्ततितमः सर्गः॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ॥

तमुक्तवंतंवैदेहंविश्वामित्रोमहामुनिः ॥
उवाचवचनंवीरंवसिष्ठसहितोनृपम्॥ १ ॥

जब जनकजी इस प्रकार कहचुके तब वशिष्ठजीके अभिप्रायानुसार महामुनि विश्वामित्रजीनें जनकजीसे कहा ॥ १ ॥ महाराज ! इक्ष्वाकु और विदेह वंश अतिशय अचिन्त्य और अप्रमेयहैं इनकी बराबरी अन्य वंशसे नहीं सम्भव होसक्ती ॥ २ ॥ जैसे राम लक्ष्मणहैं वैसाही सीता व उर्मिलाके साथ इनका विवाह होनाहै॥ ३ ॥ हे नर श्रेष्ठ मैं इस समय कुछ कहा चाहताहूं सो तुम श्रवण करो तुम्हारे धर्मात्मा लघु भ्राता कुशध्वजहैं ॥ ४ ॥ इन महा पराक्रमी धर्मात्मा राजाकी अलौकिक रूप सम्पन्न

---

* गोदान—विवाहके पूर्व किया जाताहै, यह चूडाकरणकी नांई संस्कार विशेषहै " गावः केशा दीयन्ते त्रुट्यन्ते अनेनेति " इसी व्युत्पत्तिके अनुसार अबभी पश्चिम देशमें विवाहके पूर्व मस्तक मुण्डन संस्कारका प्रचार देखा जाताहै और कहीं २ केवल क्षौर कार्यका व्यवहारहै ॥

दो कन्याहैं सो हे राजन् उनकोभी हम तुमसे मांगतेहैं॥ ५ ॥ दशरथजीके पुत्र भरत और शत्रुघ्नके सहित वह विवाह दीजांय यही हमारी वासना है ॥ ६॥ दशरथजीके चारों पुत्र रूप यौवन सम्पन्न लोकपाल तुल्य और पराक्रममें देवतोंकी समानहैं ॥ ७ ॥ हे राजेन्द्र ! तुम इस संबंधको स्थिर करके अपने वंश और इक्ष्वाकुके वंशको जो पुण्य कर्म वालाहै घनिष्ठता सूत्रमें बाँधो ॥ ८ ॥ महाराज जनकजी वशिष्ठजीके अभिप्रायानुसार वचन विश्वामित्रके मुखसे सुन हाथ जोड मुनि श्रेष्ठोंसे बोले॥९॥ आप दोनों जन जब स्वयं इस समान और योग्य कुलके सम्बंधको चाहतेहैं तब अवश्यही मेरा कुल धन्य होगया ॥ १० ॥ और क्याकहूं आप जो आज्ञा देंगे वही कार्य होगा आपका मंगलहो भरत शत्रुघ्नके साथ कुशध्वजकी दोनों पुत्रियोंका विवाह होजायगा ॥ ११ ॥ एकही दिन चारों राजकुमार जो महा बलीहैं चारों कन्याओंका पाणिग्रहण करेंगे ॥१२॥ हे ब्रह्मन् ! परसोंके दिन उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्रही विवाहके लिये शुभहै क्योंकि इसका प्रजापति देवताहै विद्वान इस दिनको विवाहके लिये श्रेष्ठ कहतेहैं ॥ १३ ॥ राजा जनक यह कहकर उठे और हाथ जोड महर्षि वशिष्ठ और विश्वामित्रजीसे कहा ॥१४॥ आप दोनों जनोंकी कृपासे मुझे कन्या दान रूप धर्म प्राप्त हुआ राजा दशरथजीकी समान मैंभी आपका शिष्यहूं हे मुनि सिंहासनोंपर आप बैठिये जो आप कहेंगे वह होगा॥१५॥ जैसे दशरथजीकी राजधानीमें आप लोग राजत्व करतेहैं वैसेही मिथिलामें कीजिये ऐसा करनेमें किसीप्रकारका सन्देह न करना चाहिये जो आप कहेंगे वह होगा ॥ १६ ॥ जब विदेहनाथ यह कह चुके तब राजा दशरथ प्रफुल्ल मनसे जनकजीसे बोले ॥ १७ ॥ हे मिथिलाधिपति ! आप दोनों भाई सर्व गुणकी खानहैं ऋषि और राजगण सदा आपसे सन्मानित किये जातेहैं॥१८॥आप यहां सुखसे रहैं मैं अब शिबिरमें जाताहूं क्योंकि मुझे विधि पूर्वक श्राद्ध कार्य करनाहै ॥ १९ ॥ जनकजीसे यह कहकर यशस्वी नरनाथ दशरथजी वशिष्ठ और विश्वामित्रजीके साथ शीघ्रतासे लौटे ॥ २० ॥ और वास स्थानपर आकर राजाने यथाविधि श्राद्धकार्य सम्पन्नकर प्रभातकाल उठकर गोदान कार्य निर्वाह किया॥२१॥ पुत्रवत्सल राजाने पुत्रोंके मंगलार्थ ब्राह्मणोंको चार चार लक्ष सुरभी धर्म पूर्वक

दानकी ॥ २२ ॥ उन गायोंके सींग सोनेसे मढे और वह सबकी सब दु-धारी वत्सोंसहितथीं ऐसी ४००००० चार लक्ष गाय कांसी की दोहिनी सहित राजानें दीं ॥ २३ ॥ पुत्रोंको प्यार करने वाले राजा दशरथने औरभी बहुतसे धनरत्न गोदानके उद्देशमें बांट दिये ॥ २४ ॥

ससुतैःकृतगोदानैर्वृतःसन्नृपतिस्तदा ॥
लोकपालैरिवाभातिवृतःसौम्यःप्रजापतिः ॥ २५ ॥

उस समय राजा दशरथके पुत्रोंका गोदान संस्कार करदेने पर चारों पुत्र लोकपालोंकी समान शोभाको प्राप्त हुये। राजाभी उनके बीचमें प्रजापतिकी उपमा देने योग्य हुये ॥ २५ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामा० वा० आ० बा० द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमःसर्गः ॥

यस्मिंस्तुदिवसेराजाचक्रेगोदानमुत्तमम् ॥
तस्मिंस्तुदिवसेवीरोयुधाजित्समुपेयिवान् ॥ १ ॥

जिसदिन महाराज दशरथजीने अपने पुत्रोंका गोदान संस्कार किया उसीदिन महावीर युधाजित्भी मिथिलामें उपस्थित हुये ॥ १ ॥ यहके-कय राजाके पुत्र और भरतजीके मामाथे । इन्होंने दशरथजीको देख कुशल प्रश्न पूछकर कहा ॥ २ ॥ केकयराजनें स्नेह सहित आपका मंगल समाचार पूछ करके कहाहै कि आप जिसके मंगला कांक्षीहै उसका मं-गल तोहै। ॥ ३ ॥ महाराज ! पिताके आदेशसे मैं अपने भानजोंके द-र्शनार्थ अयोध्यामें उपस्थित हुआथा हमारे पिता भरतजीके देखनेकी बहुत इच्छा करतेहैं ॥ ४ ॥ हे राजन् पहले मैं अयोध्यामें गया तो वहां सुना कि आप पुत्रोंके विवाहार्थ उनको लेकर मिथिला गयेहैं ॥ ५ ॥ मैं यह सुनकर शीघ्रतासे यहां आयाहूं कि चलकर आपका दर्शन करूं उस समय राजा दशरथने उपस्थित अतिथिका ॥ ६ ॥ भली भांति आदर सत्कार किया अनन्तर वह रात महात्मा पुत्र और महर्षियोंके स-हित बिताते हुये ॥ ७ ॥ दशरथजी प्रभातकालही उठ शय्या परित्या-ग पूर्वक प्रातःकृत्यादि समाप्तकर महर्षियोंको संगले यज्ञ स्थलमें

गये ॥ ८ ॥ तब रामचन्द्रजी वैवाहिक मंगलाचार समाप्त होनेपर शुभ- लग्न विजय मुहूर्तमें सब वस्त्राभूषणोंसे सजे चारों भाइयों समेत ऋषियोंके अनुगामीहो यज्ञभूमिमें पहुंचे ॥ ९ ॥ सब मंगलकार्य वशिष्ठ आदि मु- नियोंकी आज्ञासे हुये तब भगवान् वशिष्ठजीनें विदेह नाथसे कहा॥१०॥ हे नृपते महाराज दशरथजी पुत्रोंसे मंगलकार्य करवाकर द्वारपर दाता- की वाट देखरहेहैं ॥ ११ ॥ दाता और ग्रहीताके एकत्र होनेपर सकल- कार्य सिद्ध होजातेहैं अतएव तुम वैवाहिक कार्य शेष करके उनको आनेकी अनुमति दो ॥ १२ ॥ परम उदार महात्मा वशिष्ठजीके वचन सुनकर विचार सहित तेजस्वी धर्मके जानने वाले विदेहनाथ बोले॥१३॥ द्वार पर ऐसा कौन द्वारपाल है ? और महाराज दशरथजी ही किसकी आज्ञाकी अपेक्षा करतेहैं ? इस राज्यपर मेरेही समान उनका अधिकार है। क्या आश्चर्य ! अपने घरमें प्रवेश करनेके लिये बाधा क्या ? कुछ कह नहीं सक्ता ॥ १४ ॥ हे मुने ! इस समय मेरी कन्यायें हाथमें मंगल सूत्र धारण किये वेदीके मूलमें बैठीहैं इस समय उनका रूप अग्निकी नांई प्रदीप्त हुआहै ॥ १५ ॥ मैं स्वयम् महाराज दशरथजीकी प्रतीक्षा कर- ता हुआ वेदि मूलमें बैठाहूं अतएव जल्दी आनकर विघ्न रहित विवाह करें अब विलम्बका क्या प्रयोजनहै ? ॥ १६ ॥ राजा दशरथजी वशिष्ठ- जीके मुखसे जनकजीकी सौजन्यता सुनकर ऋषि और पुत्रों सहित सभामें आये ॥ १७ ॥ तब विदेह राजाने वशिष्ठजीसे कहा कि आप सब धर्मात्मा ऋषियों समेत कृत्य कराइये ॥ १८ ॥ हे प्रभो ! संसारके प्यारे रामचन्द्रके विवाहके कार्य पूरे कराइये जनकजीके यह कहनेपर भ- गवान् वशिष्ठजी ॥ १९ ॥ उनके वाक्यपर सम्मतहो विश्वामित्र सह श- तानंदको संगले यथाविधि मंडपकी यज्ञशालामें एक वेदी बनाते हुये ॥२०॥गन्ध पुष्प द्वारा वेदी चारों ओरसे सजादी गई । यवाङ्कुर युक्त सोनेके चित्रकुम्भ ॥२१॥ जिन्में अंकुर धरे ऐसे शराव धूप पात्र जिनमें धूप धरी शंखपात्र स्रुक् व अर्घ्य पात्र स्रुव प्रभृति उसके चारों ओर शोभा पाने लगे ॥ २२ ॥ बहुतसे पात्रोंमें खीलैं और अक्षत भराय २ धराये मंत्र पढ २ सब जगह कुश बिछाये ॥ २३ ॥ अनन्तर उस वेदीमें विधिपूर्वक मंत्रोंद्वारा अग्नि स्थापनकर मुनिश्रेष्ठ महा तेजस्वी वशिष्ठजी

मंत्र पढकर अग्निमें आहुति देने लगे ॥ २४ ॥ इसी समय अनेक गह-नोंसे शोभित सीताजीको बुलाकर अग्निके समक्ष रामके सौहीं बैठाया ॥ २५ ॥ फिर जनकजीनें कौशल्याके आनंद बढानेवाले रामचंद्र सें कहा कि हे रामचंद्र! हमारी कन्या जानकी आजसें तुम्हारी सहधर्मिणी हुई ॥२६॥ तुम्हारा मंगल हो तुम इसका पाणिग्रहण करो यह पतिव्रता महाभागवाली सीता छायाकी नांई तुम्हारी अनुगामिन होगी ॥२७॥ यह कहकर जनकजीनें मंत्र पढ पवित्र जल फेंका और जानकीका हाथ ले रामचन्द्रजीके हाथपर धरदिया तब सब देवता और ऋषिगण साधु साधु ॥ करनें लगे * ॥२८॥ उस समय देवता दुन्दुभी बजाने लगे और पुष्प वृष्टि होनेलगी इसरीतिसे महाराज जनकजीने मंत्रपढे जलसे संस्कार कर अपनी कन्या श्रीरामचन्द्रजीको देदी॥२९॥ फिर जनकजोने प्रफुल्ल मनसे लक्ष्मणको कहाकि तुमभी आओ हमारी पुत्री उर्मिलाको स्वीकार करो॥३०॥ अब विलम्ब न करकै तुम इस कन्याका पाणिग्रहण करो, इस प्रकार लक्ष्मणजीसे कहा फिर भरतजीसे कहा ॥ ३१ ॥ हे रघुनंदन! तुम माण्डवीका पाणिग्रहण करो, फिर, धर्मात्मा मिथिला पुरीके राजाने शत्रुघ्नजीसे कहा, ॥ ३२ ॥ हे महाबाहौंवाले तुम श्रुतकीर्त्तिको ग्रहण करो, तुम सबही प्रिय दर्शन और सुन्दर व्रत परायणहो ॥ ३३ ॥ हे काकुत्स्थके वंशमें उत्पन्न हुये कुमारो तुम लोगोंसे और क्या कहूं अब पाणिग्रहण करनेमें विलम्ब मतकरो विदेहनाथके ऐसे वचन सुन सबने अपनी २ स्त्रीका कर स्पर्श कर ग्रहण कर लिया ॥ ३४ ॥ उन चारोंने वशिष्ठजीकी आज्ञासे व अपनी २ पत्नियोंके साथ अग्नि वेदी जनक और सब ऋषियोंकी परिक्रमाकी ॥ ३५ ॥ इस भांति उन कुमारोंने भार्याओंसहित ऋषियोंकीभी परिक्रमाको जैसी विधि वेदमें लिखी-

---

* स्त्री गाने लगीं—मनमें मंजु मनोरथ होरी॥सो हर गौर प्रसाद एकते कौशिक कृपा चौगुनी भोरी॥प्रणपरि ताप चाप चिन्ता निशि शोच सकोच तिमिर नहि थोरी॥ रवि कुल रवि अवलोक सभासर हित चित वारिज वन विकस्योरी॥ कुंवर कुंवरि सब मंगल मूरत नृप होउ धर्म धुरंधर धोरी॥राज समाज भूरि भागी जिन लोचन लाहु लह्यो एक ठौरी ॥व्याह उछाह राम सीताको सुकृत सकेल विरंचि रच्योरी ॥ तुलसिदास जानै सोइ यह सुख जाउर वसत मनोहर जोरी ॥ १ ॥

है उसी विधानसे सबका विवाह हुआ ॥ ३६ ॥ उस समय अन्तरिक्षसे सुन्दर पुष्प वृष्टि होकर नृत्य गीत, व दुन्दुभी प्रभृति बाजे बजनें लगे, ॥ ३७ ॥ अप्सरागण नृत्य करने लगीं और गन्धर्व लोग सुन्दर गान करने लगे अधिक क्या कहें उन कुमारोंके विवाहमें सबही विस्मय रसमें आप्लुतहो उठे ॥ ३८ ॥ चारों ओरसे तूर्य ध्वनि श्रवणगोचर होने लगी तब राम लक्ष्मण भरत व शत्रुघ्न चारों भाई अग्निकी प्रदक्षिणा करके अपनी स्त्रियों समेत विवाहित हुए ॥ ३९ ॥

अथोपकार्यंजग्मुस्तेसभार्यारघुनंदनाः ॥
राजाप्यनुययौपश्यन्सर्षिसंघःसबांधवः ॥ ४० ॥

अनंतर अपनी भार्या ओंके साथ दशरथके पुत्र पिताके डेरेमें चले गये राजा दशरथभी बान्धव सहित पुत्रोंको ऋषियोंके साथ देखते २ उनके पीछे २ जनवासेमेंआये ॥ ४० ॥ इ० श्रीमद्रा० वा० आ० बा० त्रिसप्ततितमःसर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमःसर्गः ॥

अथरात्र्यांव्यतीतायांविश्वामित्रोमहामुनिः ॥
आपृष्ट्वातौचराजानौजगामोत्तरपर्वतम् ॥ १ ॥

रात्रि बीतकर प्रभात होनें पर महर्षि विश्वामित्रजी उत्तर पर्वतकी ओर जनकजी और दशरथ जीसे विदा होकर तपस्या करने चले गये ॥ १ ॥ अनन्तर विश्वामित्रके चले जाने पर राजा दशरथजीभी जनकजीके निकट विदाग्रहण करके अयोध्या जानेकी तैयारी करने लगे ॥ २ ॥ उनके गमन समय राजा जनकने दहेजमें कन्याओंको लाखधेनु व औरभी बहुत पदार्थ दिये ॥ ३ ॥ उसके सिवाय दिव्य कम्बल एक करोड, दुशाले, हस्ती, अश्व, रथ, पदाति एवं उत्कृष्ट अलंकार महारथ दशरथजी को दिये ॥ ४ ॥ इसके अतिरिक्त प्रत्येक कन्याओंको शतर दास दासी व असंख्य सुवर्ण मुक्ता और प्रवाल मूंगे प्रदान किये ॥ ५ ॥ व जनकजीने प्रसन्न होकर और भी बहुत दहेज दिया इस भांति लौकिक क्रिया समाप्त कर राजा जनक दशरथजीके वार २ कहनेसे ॥ ६ ॥ अपने राज मंदिरको मिथिलाके राजा लौटे और अयोध्याके राजा दश-

रथजी भी अपने पुत्रोंके साथ ॥ ७ ॥ सब ऋषियोंको आगे कर सब सैना सहित नगाडे शंखादि बजाय पुत्रों सहित अयोध्या पुरीकी ओर चले जबकि वह मनुष्यों में श्रेष्ठ ऋषियोंके सहित जारहेथे ॥ ८ ॥ इसी समय चारों ओर आकाशसे पक्षिगण विकट शब्द करने लगे भूमितलपर मृगगण दक्षिण दिशाकी ओर जाने लगे ॥९॥ अकस्मात बुरे शकुन देखकर दशरथजीने वशिष्ठजीसे कहाकि,पक्षियोंका उत्कटचीत्कार और मृग गणोंके दक्षिण ओर जानेका क्या कारणहै * ॥ १० ॥ और क्योंमेरा हृदय कांपताहै। क्यों अन्तःकरण अवसन्न होताहै ? राजा दशरथजीके कातर वचन सुनकर गुरुदेव ॥ ११ ॥ मधुर वाणीसे बोले कि इसका फल सुनो आकाशमें पक्षियोंके चीत्कारसे घोर विपदकी संभावना होतीहै ॥ १२ ॥ किन्तु दक्षिणदिशामें मृगोंका जाना अशुभ जनक नहीं है जो हो आप घबडाइये मत यह कहतेहीथे कि इतनेमें प्रचंड पवन चली ॥ १३ ॥ पवनके प्रभावसे पृथ्वी कांपने लगी और वृक्ष सब टूटकर गिरने लगे सूर्य अंधकारसे छिपगये दिशाओंका कुछ ज्ञान नहीं रहा ॥ १४ ॥ चारों ओर धूल उडने लगी सेना समूह चेतना रहित होगई । उस समय वशिष्ठ और अन्यान्य ऋषि और पुत्रोंसहित राजा दशरथ ॥ १५ ॥ स्थिर रहे और ज्ञान रहा शेष सबकी चेतना जाती रही उस अंधकारमें सैनाके ऊपर धूल उडने लगी ॥ १६ ॥ इतनेमें क्षत्र कुलान्तकारी जटाजूट धारण किये भीमदर्शन जमदग्निपुत्र भार्गव परशु रामजी वहां उपस्थित हुये ॥ १७ ॥ इनकी आकृति कैलाश गिरिकी नाई कालाग्निकी समान दुस्सह तेज जिन्हें कोई अतिक्रम नहीं करसक्ता पामर जन जिन्हें निहार नहीं सक्ते कंठमें बिजुलीकी समान चमकता हुआ तीक्ष्ण कुठार धरा हुआ हाथमें विचित्र शरासन जिसके देखनेसे परशुरामजी त्रिपुरके मारने वाले शिवको समान बोध होतेथे॥१८॥१९ ज्वलन्त अग्नि तुल्य उनकी भीम मूर्त्ति दर्शन करके वशिष्ठादि जप होम

* कवित्त—धरातें उठावत अपार धूरि धुंधकार अंधकार कियो धारा धरनि धकायकै । तोरत तरुन ले झकोरनतैशाखावृंद पूरि इन्द्र लोकहूको पत्रन उडायकै । अमित समानहीं सौं बधिर करतका न खेरसे सहर कीन्हे छपर ढहायकै॥कासवी कंपावतसो कुधर ढहावत सो हाय ऐसो पौन कैसो करिहै धौं आयकै ॥ १ ॥

परायण ऋषिगण ॥ २० ॥ परस्पर मिलितहो सब मुनि कहने लगे-कि यह भार्गव क्या पितृवधसे क्रोधितहो क्षत्रिय कुलको निर्मूल करैंगे॥२१॥ पहले क्षत्रियोंके कुल संहार करके इनकी क्रोधाग्नि निर्वाण होगईथी अब क्या फिर उस बीभत्सकार्यका अनुष्ठान होगा ॥ २२ ॥ यह कहकर अर्घ्य ग्रहण पूर्वक भयंकर दर्शन परशुरामजीको सम्बोधनकर उनको हे राम हे राम ! ऐसे मधुर वचन कह २ कर पूजते हुये ॥ २३ ॥

प्रतिगृह्यतुतांपूजामृषिदत्तांप्रतापवान् ॥
रामंदाशरथिंरामोजामदग्न्योभ्यभाषत ॥ २४ ॥

प्रतापी परशुरामजीभी ऋषियोंकी दी हुई पूजाको ग्रहण करके दाशरथी रामचन्द्रसे कहने लगे ॥ २४ ॥ ॥ इत्यार्षे श्री० वा०आ० बा० चतुःसप्ततितमः सर्गः ॥ ७४ ॥

पञ्चसप्ततितमः सर्गः ॥

रामदशरथेवीरवीर्यंतेश्रूयतेऽद्भुतम् ॥
धनुषोभेदनंचैवनिखिलेनमयाश्रुतम् ॥ १ ॥

हे दशरथके पुत्र रामचन्द्र मैंने सुनाहै कि तुम्हारा अद्भुत पराक्रम है और धनुभंगकाभी सब वृत्तांत मैंने सुनाहै तुमने जो शिवका धनुष तोडाहै वह वडे आश्चर्यकी बातहै ॥ १ ॥ में शिवजीके धनुषको टूटाहुआ श्रवणकर और एक धनुषले तुम्हारे पासआया-हूं ॥ २ ॥ सो तुम मुझ परशुरामके इस भीषण शरासनको आकर्षण कर-के और इस पर बाण चढाकर अपनी सामर्थ्य दिखावो ॥ ३ ॥ इस धनुष-के चढानेसे मैं तुम्हारा बल देखकर उपरान्त में तुम्हारे साथ घोर द्वन्द्व यु-द्ध करूंगा ॥ ४ ॥ तब जानूंगा कि तुम बलीहो परशुरामके यह दारुण व-चन श्रवणकर राजादशरथ विषण्ण वदनहो दीन भावसे हाथ जोडकर कहने लगे ॥ हे भगवन् ! आपने ब्रह्मकुलमें जन्म ग्रहण कियाहै और आ-प तपस्वी ख्यातहैं. अब आपने क्षत्रियोंके ऊपर क्रोधभाव परित्याग कर दियाहै सो आपको मेरे बालक पुत्रोंपर प्रसन्नहोना कर्तव्यहै ॥५॥ ६ ॥ वेद पढनेवाले भार्गव कुलमें आप जन्मेहैं आपने इन्द्रके निकट प्रतिज्ञा

करके अस्त्रका चलाना छोडाहै ॥ ७ ॥ आप धर्म में मन लगाकर महात्मा कश्यपजीका पृथ्वी पालनका भार. समर्पण पूर्वक वनवासी होकर महेन्द्र गिरिके शिखरपर वास करतेहैं ॥ ८ ॥ मैं अब आपसे जिज्ञासा करताहूं कि मेरा सर्व नाश करनेहीके लिये आप यहां आयेहैं । मैं निश्चय करके कहताहूं कि रामका कोई भी अहित होनेसे मेरा जीवन नहीं रहैगा ॥ ९ ॥ दशरथजीके यह वचनसुन उनके वचनोंका अनादर कर प्रतापी परशुरामजी रामचन्द्रजीसे कहनेलगे ॥ १० ॥ विश्वकर्माने यह दो दिव्य धनुष बनायेथे यह दोनों लोकपूज्य और दृढहुये लोकोंमें विख्यातहैं हेराम नरश्रेष्ठ जो धनुष तुमने तोडाहै सो त्रिपुरासुरके संहार करनेकेलिये देवताओंने महादेवजीको दियाथा ॥ ११ ॥१२॥ और दूसरा धनुष जो मेरे पासहै इसको देवताओंने विष्णुजीको दियाथा यहभी सबको जीतनेमें समर्थ और शिवके धनुषकी समानहै ॥ १३ ॥ यह वैष्णव धनुष शत्रुओंका नाशक शिवधनुषके समान वरन उस्से अधिकहै एक समय सब देवताओंने ब्रह्माजीसे पूछाकि ॥ १४ ॥ महादेवजीमें बल अधिकहै या विष्णुजीमें ब्रह्माजीनें देवताओंका अभिप्राय जानकर ॥१५॥ सत्यसंकल्प ब्रह्माजीने विष्णुजी व महादेवजीसें विरोधकरादिया, उस विरोधके पडनेसें तुमुलयुद्ध जिसके देखनेंसे रुयें खडे होजातेथे दोनोमें उपस्थितहुआ ॥ १६ ॥ क्रमसे शिव और विष्णुजी एक दूसरेको जीतनें की इच्छा करनेलगे उससमय बडे पराक्रम वाला शिवजीका धनुष देखकर ॥ १७ ॥ विष्णुजीनें एक भयानक हुङ्कारसे शिथिल करदिया और त्रिलोचन महादेवजीभी स्तम्भितहोगये इसीसमय देवगण ऋषि और चारण गणोंने एकत्र होकर ॥ १८॥ वहां गमनकिया जहां हरि हर युद्ध कर रहेथे और दोनोंको स्तुति करके शान्तकिया । इसप्रकार श्रीविष्णुजीके बल पराक्रमसे शिवका धनुष शिथिल देखकर ॥ १९ ॥ सब देवता व ऋषियोंने विष्णुजीको श्रेष्ठ माना वास्तवमें प्रकृत युद्धमें विष्णुजीकी अधिकताहै त्रिपुरासुर वधमें शिवजीकी अधिकताहै इस्से दोनों समानहैं तब महा यशस्वी शिवजीनें क्रोधित होकर वह धनुष ॥ २० ॥ विदेह महाराज देवरात राजर्षिको दिया और बाणभी दिया और मेरे हाथमें जो धनुषहै यह वैष्णव धनुष है यहभी शत्रुओंके नगरका नाशकहै ॥ २१ ॥

पूर्व कालमें भगवान विष्णुजीनें यह धनुष भृगुके कुलवाले महर्षि ऋचीकको प्रदान किया महा तेजस्वी ऋचीकजीने प्रसन्नहो अपने सहनशील पुत्र ॥ २२ ॥ हमारे पिता जमदग्निको यह देदिया तब बल समन्वित हमारे पिताजीके इस धनुषको त्यागनेपर ॥ २३ ॥ अधर्म बुद्धिके वशीभूतहो राजा सहस्रबाहु अर्जुनने उनको मारडाला मैंने पिताका यह असहश मरण संवाद श्रवण करके रोषाविष्टहो इक्कीसवार क्षत्रिय कुलका संहार किया ॥ २४ ॥ हेराम ! मैंने सम्पूर्ण पृथ्वीका अधिकार करके यज्ञके अंतमें पवित्र दक्षिणारूप यह पृथ्वी महात्मा कश्यपजीको देदी॥२५॥ फिर मैं महेन्द्राचलपर तप कर रहाथा इतनेमें सुनाकि तुमने शिवका धनुष तोडाहै इसीकारण तुम्हैं देखनेको चला आताहूं ॥ २६ ॥ हे रामचन्द्र तुम पिता पितामहके पाससे क्रमानुसार आये हुये इस वैष्णव धनुषको इस समय क्षत्रिय धर्मके गौरवकी रक्षा करके ग्रहण कीजिये॥२७॥

योजयस्वधनुश्रेष्ठेशरंपरपुरंजयम् ॥
यदिशक्तोसिकाकुत्स्थद्वंद्वंदास्यामितेततः ॥ २८ ॥

हे राम इस शत्रुके नगरके नाश करने वाले धनुषके ऊपर बाण चढाओ यदि तुम इस धनुष पर शर चढानेसें कृतकार्य हुये तो हम तुम्हारे साथ द्वन्द्व युद्ध करेंगे॥२८॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामा० वा० आदिकाव्ये बालकांडे पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

षट्सप्ततितमः सर्गः ॥

श्रुत्वातुजामदग्न्यस्यवाक्यंदाशरथिस्तदा ॥
गौरवाद्यंत्रितकथःपितूराममथाब्रवीत् ॥ १ ॥

परशुरामजीके वचन सुनकर दशरथ सुत रामचन्द्र पिताके और वशिष्टजीके निकट होनेके गौरवसे उग्र वचन न कहकर मधुर वचनसे बोले ॥ १ ॥ हे राम ! आपने पिताका वैर लेनेको जो कार्य किया मैंने उसे सुन रक्खाहै वैरीसे बदला लेना वीरोंका कर्महीहै सुतरांत आपके कार्यको हम अंगीकार करतेहैं ॥ २॥ किन्तु मैं क्षत्रिय सन्तानहूं मुझे सामर्थ्य रहित जानकर आपने जो निरादर किया सो इस समय मुझ सामर्थ्य रहि-

तके पराक्रमका परिचय लीजिये मेरा पराक्रम देखिये ॥ ३ ॥ रामचन्द्रजी को यह कहते २ क्रोध आगया और शीघ्रता पूर्वक परशुरामजीसे शरासन और बाण ले लिया ❋ ॥४॥ तत्क्षणात् उसपै रोदा चढाय फिर बाण चढाया फिर क्रोधित हो परशुरामजीसे बोले॥५॥आप ब्रह्मकुलोत्पन्न हो विशेषतः विश्वामित्रजीके सम्पर्क से हमारे पूज्यहो अतएव इसी कारण इस प्राणनाशक शरसे आपके प्राण नहीं ले सकते ॥६॥ हां अब इसी कराल शरसे जो तुम्हारी नभ मंडल आदिकमें विचरण करने की शक्तिहै जिसकी बराबर तीनों लोकोंमें किसीकी नहीं उसे हरलेंगे॥७॥कारण कि यह वैष्णव बाण शत्रुकी शक्ति संहार करनेमें समर्थहै जब यह चढ चुका तो व्यर्थ नहीं हो सक्ता यह शत्रुके बल और घमंडका नाश करने वाला है॥ ८ ॥ इसी अवसरमें दिव्यायुध धारी श्रीरामचंद्रजीके दर्शनार्थ ब्रह्मादि देवगण एकत्रितहो वहां आये ॥९॥ क्रमसे गन्धर्व, अप्सरा, सिद्ध, चारण, किन्नर और यक्ष, राक्षस नागगण इस आश्चर्य व्यापारके देखने को उपस्थित हुये ॥१०॥ जब रामचन्द्रके धनुष चढानेसे और क्रोधसे तीनों लोक जड़ीभूत होगये तब सबके सामने परशुरामजीका तेज रामचन्द्रजीनें खेंचलिया ॥ ११ ॥ तब भार्गव निर्वीर्य और तेज नष्ट होजानेसें स्तम्भि होकर श्री कमल लोचन रामचन्द्रजीको ओर देख मधुर वचनसे बोले ॥ १२ ॥ जब मैंने महर्षि कश्यपजी को पृथ्वी दान दीथी तब उन्होंने कहाथा कि अब हमारे अधिकार में तुम वास मत करना ॥ १३ ॥ मैं उन गुरुके वचनानुसार एक रात्रिभी पृथ्वीपर नहीं बसा क्योंकि मैंने प्रतिज्ञा कर लीथी और पृथ्वी मैंने कश्यपजीको देदी और इसी से पृथ्वीका एक नाम काश्यपी हुआ ॥ १४ ॥ हे वीर अब मेरी यह प्रार्थना है कि तुम हमारी सब जगह पहुंचने की शक्तिका नाश मतकरो मैं इसी गतिकी सहायसे महेन्द्राचल पर्वत पर शीघ्रचला जाऊंगा ॥ १५ ॥ हे राम ! मैंने जो तपस्याके द्वारा दिव्य लोक जीतेहैं तुम शीघ्रतासे उनका

❋ कवित्त ॥ डोली धरा बार २ दिग्गज चिकार कीन्हो हालिगो हजार शीश कच्छ अकुलान्यो है ॥ दैत्य विकरार भय मयही अकार भये पारावार वारिवेल छोड छहरान्यो है ॥ जेजे शब्द देवदार सहित पुकार करैं प्रलय संसारहेत मन अनुमान्यो है ॥ देखो जमदग्निवार करते कुठार गिरयो सरिस हजार रुद्र राजवार जान्यो है १

संहार इस वैष्णवास्त्रसे करो ॥ १६ ॥ हे वीराग्रगण्य ! इस वैष्णव धनुषके धारण करनेसे प्रतीत होताहै कि आपही मधु दैत्यके मारने वाले हैं अविनाशी विष्णु हैं हे परंतप अब तुम्हारा मंगल हो ॥१७॥ यह सब देव गण सम्मिलित होकर आपके ही दर्शन कर रहेहैं तुम्हारे कर्म उपमा रहित हैं और संग्राममें कोई तुम्हें जीत नहीं सक्ता ॥ १८ ॥ आप त्रिलोक नाथ हैं तुमसे जो मैं हाराहूं सो तुम्हारे हाथसे पराजित होना मेरे लिये लाजका विषय नहींहै ॥ १९ ॥ हे सुन्दर व्रत धारी राम ! अब आप इस दिव्य शरका संहार करैं और मैं भी शरके संहार होनेसे महेन्द्राचलको चला जाऊंगा ॥ २० ॥ तब दाशरथि श्रीमान् रामचन्द्रजीने प्रतापी परशुरामजीके वचन श्रवण कर शर निक्षेप किया ॥ २१ ॥ उस्से परशुरामजीके तपस्या सञ्चित समस्त लोक विनष्ट हुये तब परशुरामजी शीघ्रता पूर्वक महेन्द्र पर्वतको गमन करने लगे ॥ २२ ॥ उस समय दिशा और विदिशा तथा दिग्मंडल निर्मल होगया विमानवासी देवता व ऋषिगण यह लीला देखकर आयुधधारी रामचन्द्रजीको " साधु साधु " कहने लगे ॥ २३ ॥

रामंदाशरथिंरामोजामदग्न्यःप्रपूजितः ॥
ततःप्रदक्षिणीकृत्यजगामात्मगतिंप्रभुः ॥ २४ ॥

महावीर जमदग्नि पुत्र परशुरामजी श्री दशरथ सुत रामचन्द्रजी की प्रदक्षिणा और पूजा करके अपने स्थानको चलेगये ॥२४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये बालकाण्डेषट्सप्ततितमःसर्गः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥

गतेरामेप्रशांतात्मारामोदाशरथिर्धनुः ॥
वरुणायाप्रमेयायददौहस्तेमहायशाः ॥ १ ॥

परशुरामजीके चले जाने पर दशरथात्मज यशस्वी श्रीरामचन्द्रजीने अमर्ष भाव परित्याग करकै वरुणको वह धनुष देदिया ॥ १ ॥ और फिर वशिष्ठादि ऋषियोंको प्रणाम कर पिताको शंकित देखकर रघुनंदननें कहा ॥२॥ हेपिता! परशुरामजी चले गये अतएव चतुरङ्गिणी सेना आपके य-

नसे रक्षित हो अयोध्याकी ओरको चले ॥ ३ ॥ रामचन्द्रजीसे ऐसा सुनकर राजा दशरथजीने प्रसन्न हो उनको हृदय से लगाकर शिर सूंघा ॥ ४ ॥ परशुरामजीके वन गमनका वृत्तांत श्रवण करके नृपति दशरथ अतिशय सन्तुष्ट हुये व अपना और अपने पुत्रोंका नया जन्म माना ॥ ५ ॥ तदनन्तर सैन्यगणको शीघ्र चलने की आज्ञादी और सैना सहित जल्दीसे अयोध्याजीकी ओर चले एवं पुरीमें उपस्थितहोकर देखा कि मनोहर राजधानी विचित्र पताकाओंसे सजाई जाकर शोभित होरहीहै और तूर्य ध्वनि होनेसे दिग्मंडल कांप रहाहे ॥ ६ ॥ राजमार्गमें छिडकाव हुआ है सब जगह फूल पड़े हैं पुरवासी राजाके आनेके मार्गमें मंगल द्रव्य लिये खड़े हैं॥७॥ चारों ओर महाभीड होरहीहै उस पुरीमें प्रवेश करते ही पुरवासी और विप्रगण राजा को आगे जाकर ले आये ॥८॥ यशस्वी श्रीमान् राजा दशरथजी अपने सुन्दर पुत्रोंको संगले हिमगिरि तुल्य श्वेत कान्तिवाले अपने विचित्र राजमंदिरमें पधारे ॥ ९ ॥ सम्पूर्ण सुखभोगसे तृप्तहो आत्मीय जनोंके साथ नाना प्रकारके आमोद प्रमोदसें कालविताने लगे । राजमहिषी कौशल्या, सुमित्रा, कैकेयी॥१०॥ व और राजनारियां जो थीं वे सब महाभाग वाली जानकी और परम यशस्विनी उर्मिलाको ॥ ११ ॥ वो कुशध्वजकी दोनों कन्या मांडवी और श्रुतिकीर्त्ति वधुओंको पाकर परम प्रसन्न हुईं व सब हवन और मंगलाचरण करके रेशमीन वस्त्र धारिणी शोभायमान वधुओंको अन्तःपुरमें ले जाकर ॥ १२ ॥ सबसे ग्राम पुरके देवताओंकी पूजा करी कराई और जो प्रणाम करनेके योग्यथे उनसे प्रणाम कराया इस प्रकार सब राज कुमारियोंने किया ॥ १३ ॥ वहुयेंभी अनुरूप स्वामियोंको पाकर परम सुख भोग करनें लगीं । रामचन्द्रजी भाइयों सहित स्त्रियोंको और अस्त्रोंको पाकर और धन जय पूर्ण हो ॥ १४ ॥ पिताकी सेवामें वे सब मनको लगाते हुये कुछ काल वीतने उपरान्त राजा दशरथजीने कैकेयी पुत्र भरतजीसे कहाकि हे पुत्र यह कैकय देशके राजाके पुत्र बहुत दिनोंसे टिके हैं ॥१५॥१६॥ यहवीर युधाजित तुम्हारे मामा तुम्हें बुलानेंको आयेहैं अतएव इनके साथ तुम अपने नानाके यहां जाओ कुमार भरत राजाके वचन सुनकर ॥ १७ ॥ शत्रुघ्नके सहित मामाके

यहां जानेको प्रस्तुत हुये वे महाबली प्रथम पिताजीकी आज्ञासे फिर परम कृपालु रामचन्द्रजीसे पूछ ॥ १८ ॥ कौशल्यादि माताओंके चरणोंको वन्दनाकर शत्रुघ्नके सहित चले युधाजितभी भरत शत्रुघ्नको पाकर हर्षित हुये ॥ १९ ॥ और चले २ अपने नगरमें पहुँचे उनके पिता-अपने धेवतोंको देख सन्तुष्ट हुये भरत, शत्रुघ्नके मामाके यहां चले जाने पर ॥ २० ॥ राम लक्ष्मणजी पिताकी सेवा मन लगाकर करनेलगे रामचन्द्रजी पिताकी आज्ञासे सम्पूर्णनगरके कार्योंका तत्त्व विचार करने लगे ॥ २१ ॥ वह शास्त्रानुसार माता व अन्यान्य गुरु जनोंके प्रति यथाविधि कर्तव्य कर्म करने लगे और सबके हितकर और प्रिय कार्य करने लगे ॥ २२ ॥ जिस समय जिस कार्यका प्रयोजन देखते वही करते कराते समय पर, गुरुजनोंके जो गुरुकार्य अर्थात् शुश्रूषादिक हैं उनको बराबर करते रहते इस भांतिसे रामचन्द्रजीके शील स्वभावको देख राजा दशरथ प्रसन्न हुये और सब वेद पाठी ब्राह्मण भी॥२३॥ बनिये लोग और सबही देशके विविध व्यापार करने वाले मनुष्य रामचन्द्रजीके गुण परस्पर कहकर अति सन्तुष्ट हुये रामचन्द्रजी सब भाइयोंसे अधिक सत्यवान और यशस्वीथे ॥ २४ ॥ जिस प्रकार सब प्राणियोंमें स्वयंभू अधिक गुणवानहैं इसी प्रकार रघुनाथजी हुये और जानकीवल्लभ जानकीजीके सहित नाना सुख भोग करके दीर्घकाल अतिवाहित करते हुये ॥ २५ ॥ रामचन्द्रजी जिस भांति सीताजीके अनुकूल रहते और उनसे मनलगाये रहते वैसेही सीताजी पति परायण हुई क्योंकि इनके ब्राह्मविवाह हुयेथे इसकारण और भी अधिक प्रीति थी ॥ २६ ॥ उनमें परस्परके गुण रूपकी समानतासे आपसमें बडी प्रीति हुई विशेषतः रामचन्द्रजी सीताके प्रति अधिक तर स्नेहवान् थे ॥ २७ ॥ रघुनाथजीने प्रियाके मनका भाव जानकर उनके मनपर अपना अधिकार किया इसी प्रकार सुरकन्याओंकी नांई साक्षात् लक्ष्मीके समान रूप वाली सीताजीभी रामका अभिप्राय जानतीथीं और उनसे अधिक प्रेम करतीथीं ॥ २८ ॥

न्यया ॥ अतीवरामःशुशुभेमुदान्वितोविभुः श्रियाविष्णुरिवामरेश्वरः ॥ २९ ॥

अधिक क्या कहैं देवतोंके पति विष्णु भगवान् कमलाको पाकर जैसे सन्तुष्ट हुयेथे वैसेही रामचन्द्रजी अपनी इच्छाके अनुकूल रहने वाली राजर्षि जनककी कन्या मन मोहिनी जनकनन्दिनी को लाभकर अतिशय संतुष्ट और शोभान्वित हुये ॥२९॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये चतुर्विंशतिसाहस्त्रिकायां संहितायां बालकांडे पंडित ज्वालाप्रसादमिश्रकृतभाषाटीकायां रामक्रीडाख्यानं नाम सप्तसप्ततिमः सर्गः ॥ ७७ ॥

॥ इति भाषा वाल्मीकीय रामायणे बालकांडं समाप्तं ॥

दोहा—रघुनंदन आनंदघन , प्रणतपाल भगवान् ॥
निज ज्वाला प्रसाद पर , कृपाकरहु सुखदान ॥
शारद हर गणपति ऋषी , तवगुण गण विस्तार ॥
कहि न सकत किमि कहहुँमैं , दशरथ राजकुमार ॥ २ ॥

छन्द—यह राम सीय विवाह मंगल सुनहिं सादर गावहीं ॥
सो चार फल श्रम रहित अविचल भक्ति प्रभुकी पावहीं ॥
करभोग विविध कुटुम्ब युत सुत दार धन मनभावहीं ॥
संसारके सुखपाय अन्तिम राम धाम सिधावहीं ॥

इति बालकाण्डम् सम्पूर्णं ॥

इति वाल्मीकीय रामायणे भाषाटीका समेतें ।

बालकाण्डं संपूर्णम् ।

मुद्रितमेतद् भाषाटीकासमेतवाल्मीयरामायण बालकाण्डं
मुम्बय्यां स्वकीये श्रीवेङ्कटेश्वर मुद्रायन्त्रे
खेमराज श्रीकृष्णदास इत्यनेन.

पुस्तक मिलनेका ठिकाना
खेमराज श्रीकृष्णदास
श्रीवेङ्कटेश्वर छापाखाना बम्बई.

अयोध्याकांड.

वनवासगमन.

श० भरतादि. ऋषि. राम. ल०
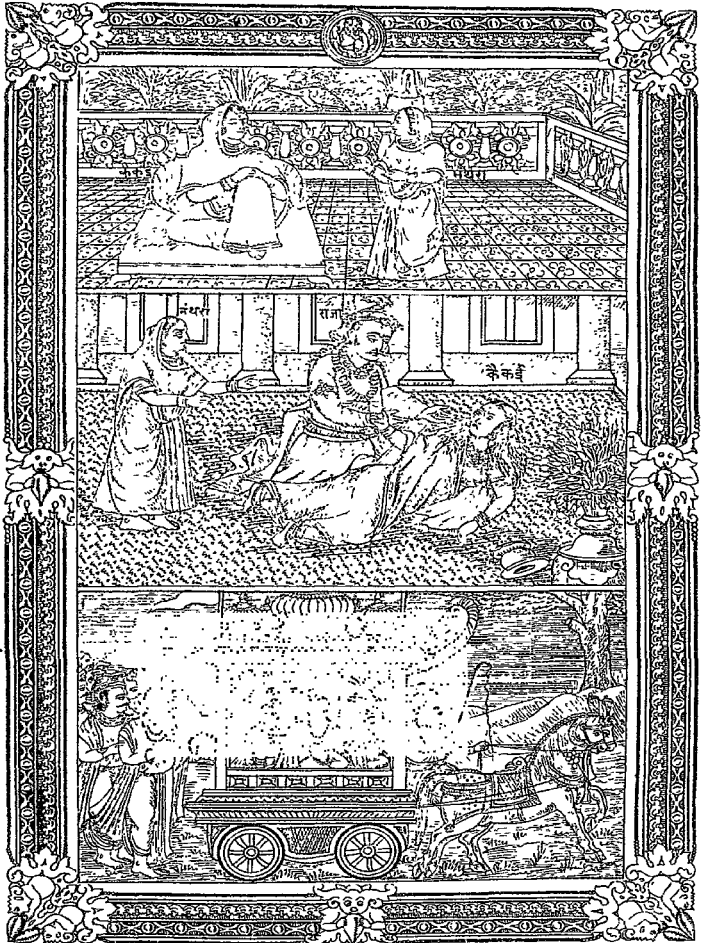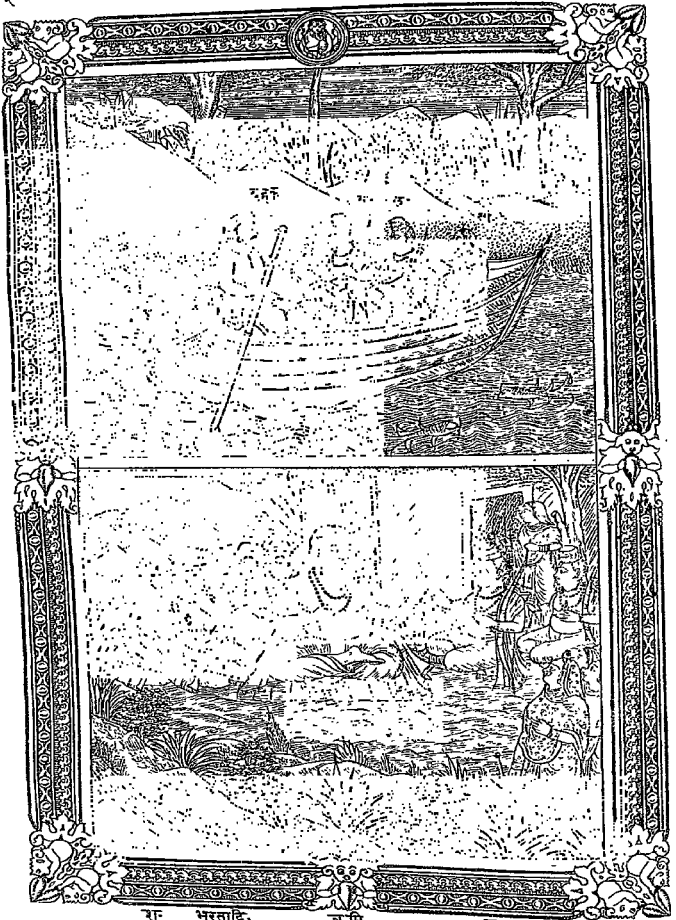
श्रीः ।

वाल्मीकीयरामायणअयोध्याकाण्डभाषा ।
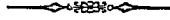
गृहेऽरण्येसमानश्रीमहानन्दविभूतियुक् ।
सीतासौमित्रिसहितः श्रीरामोऽवतु सर्वतः ॥ १ ॥

प्रथम सर्गः ॥ १ ॥

गच्छतामातुलकुलंभरतेनतदानघः ॥
शत्रुघ्नोनित्यशत्रुघ्नोनीतःप्रीतिपुरस्कृतः ॥ १ ॥

जिस समय भरतजी मामाके घर चले उस समय शत्रुओंके मारने वाले पाप रहित स्नेह पूर्वक भाई शत्रुघ्नजीकोभी संगले गयेथे ॥ १ ॥ वे दोनों भाई मातुल युधाजित्के यत्नसे बहुत आदर सत्कारसे लालित पालित होतेथे इस प्रकार वे दोनों भाई अभिलषित पदार्थोंको भोगरहेथे अश्वपति उनके मामा उनको पुत्रकी समान पालन करतेथे ॥ २ ॥ वहां वे दोनों भाई अभिलषित पदार्थोंसे आदरकिये जाकर अपने वृद्ध पिताको सदा स्मरण किया करतेथे ॥ ३ ॥ महातेजस्वी दशरथजी भी महेन्द्र और वरुण सदृश विदेश गत कुमार भरत व शत्रुघ्नको याद करते रहतेथे ॥ ४ ॥ अपने शरीरसे निकली अपनी वांहें जिस भांति प्यारी होतीहैं वैसेही श्रेष्ठ चारों पुत्र राजा दशरथजीके प्यारे दुलारे थे ॥ ५ ॥ वह सबसे अधिक रामचन्द्रजीको चाहते सब प्राणियोंमें जैसे ब्रह्माजी, वैसेही गुणके प्रभावसे रामचन्द्र जी श्रेष्ठथे ॥ ६ ॥ इसके अतिरिक्त रामचन्द्रजी स्वयं सनातन नारायण थे, केवल देवताओंके अनुरोधसे दुर्जय लंकानाथके विनाशार्थ मनुष्य लोकमें अवतीर्णहुये ॥ ७ ॥ अदिति जिस प्रकार इन्द्रको पाकर शोभित हुईथी वैसेही रामजननी कौशल्याजी रामचन्द्रको पाकर शोभित हुईथीं ॥ ८ ॥ महावीर रामचन्द्रजी जिस प्रकार द्युतिमानथे, तदनुरूप असूयाशून्यथे उनके गुणोंकी उपमा नहीं मिली; वह पिताकी समान गुणशाली हुये ॥ ९ ॥ वह सद शान्त र-

हते, मृदु वाक्यसे संभाषण करते, कोई कटूक्ति करता तो परुषवाक्य प्रयोग न करके चुपरहते ॥ १० ॥ कोई केवल एकही उपकार करता तो वह उससेही संतुष्ट होजाते। और चाहे किसीने सैकडों अपकार कियेहों उनका मनमें कुछ ध्यान न रखते ॥ ११ ॥ वह अस्त्राभ्याससे अवकाशके, समय, सुशील, वयोवृद्ध ज्ञानवान सज्जनोंके साथ सम्मिलितहो शास्त्रकी चर्चा करते ॥ १२ ॥ वह बुद्धिमान प्रियवादी व मधुरालापी थे.स्वयंवीर होकर वीरताके गर्वसे मत्त नथे ॥ १३ ॥ वह सत्यका समादर और वृद्धोंकी मर्यादा करतेथे कदाचित्त झूठका आदर नहीं करते वह जैसा प्रजाको प्रेमके वर्तावसे चाहते वैसाही प्रजागण उनके प्रति भक्तिमानथे ॥ १४ ॥ वह दुःखियोंके ऊपर दया करते कभी क्रोध नहीं करते ब्राह्मणोंके प्रति भक्तिमानथे उनकी पूजा करते व धर्मज्ञ दीनोंका दुःख दूर करतेथे उनका अंतःकरण नित्य शुचि और पवित्रहुआ और इन्द्रियोंको जीते हुयेथे॥ १५ ॥ उनकी बुद्धि कुल धर्मके रक्षा करनेमें व्यग्रथी, इसलिये वह क्षत्रिय धर्मको अधिक प्यार करतेहुये और अत्यन्त प्रीतिसे कीर्तिको अधिक स्वर्ग-फलका साधन मान्तेथे ॥ १६ ॥ व अमंगल व अकार्यमें रत नहीं थे धर्मविरुद्ध कथामें उनकी रुचि नहींथी वादानुवादके स्थलमें वह बृहस्पतिकी नांई युक्ति प्रदर्शनकरते ॥ १७ ॥ वह बोलने वालोंमें श्रेष्ठथे पुरुषके सार जाननेमें उनकी शक्ति अटलथी सुन्दर शरीरवाले बलवान वह देशकालज्ञ थे उनका शरीर रोगरहित व तरुणथा वे अद्वितीयसाधूथे ॥ १८ ॥ वह राजादशरथजीके पुत्र श्रेष्ठ गुणोंसे युक्तथे और इन्हीं गुणोंके कारण वह प्रजाओंके वाहर रहने वाले प्राणोंकी समान प्यारेहुए ॥ १९ ॥ इन्होंने यथाविधि सांग वेद वेदांग अध्ययन करके समावर्त्तन किया॥ वह भरतजीके बडे भाई समस्त अस्त्र शस्त्रोंमें पारगामी पितासे भी अधिक पंडित हुये ॥ २० ॥ वह कल्याण के जन्मस्थान साधु सरल दीनतारहित व सत्यवादी धर्मार्थदर्शी वृद्ध ब्राह्मणगण उनके आचार्यथे ॥ २१ ॥ वह धर्मार्थ काम तत्त्वके मर्मको जानतेथ, स्मृति मान विलक्षण चतुरथे ॥ २२॥ वह अतिगंभीरस्वभाव वाले फलकी प्राप्ति जब तक नहो तब तक उनका भेद कोईनहीं जान्ताथा उनका गूढ अभिप्रायथा वह सहाय मानथे उनका क्रोध और हर्ष निष्फल

नहीं होताथा सत्पात्रमें दान और न्यायसे द्रव्य उपार्जन करतेथे ॥ २३ ॥ वह गुरुलोगोंके प्रति अतिशय भक्तिमान् व दृढ प्रतिज्ञ कभी असद्वस्तु- के ग्रहण करनेमें उनकी वासना प्रकाशनहीं हुई, न कभी दुर्वाक्यकहते व आलस्य शून्य अप्रमत्त अपने व पराये दोषके जाननेवाली ॥ २४ ॥ वह शास्त्रज्ञ, कृतज्ञ और पुरुषोंके तारतम्य जानने में पंडितथे ॥ और लोकोंके प्यारेहुये न्यायानुसार निग्रह व अनुग्रह प्रदर्शन करानेमें तत्पर रहतेथे ॥ २५ ॥ यह परिवारवर्गके प्रतिपालन और दुष्टजनोंके शासन करनेमें चतुरथे निग्रहके स्थानको जानने वालेथे देशकालके अनुसार प्रजासे द्रव्य उपार्जन करनेके उपायको जान्तेथे जिसप्रकार भौंरा फूलोंसे शहत इकट्ठा करताहै वैसेही महाराज रामचन्द्रजी प्रजाके निकटसे धर्न ग्रहण करनेमें चतुरहुये और इसी प्रकार आयुके अनुसार खर्च करतेथे२६। वह शस्त्रादि व नाटक प्रभृतिके जाननेमें विलक्षण अनुरक्तथे; वह अर्थ धर्म संग्रह पूर्वक अविरोध कर्त्तव्य कर्म पालन करते और आलस्य रहि- तथे ॥ २७ ॥ विहार कालमें जितनी शिल्प वस्तुओंका क्रीड़ार्थ प्रयोजन होता, उसको भली भांति जानते; हस्ती, अश्व प्रभृतिके सिखानेमें जैसे चतुरथे वैसेही उनपर सवारी करनेमें चतुर हुये ॥ २८ ॥ वह धनुर्विद्यामें पारदर्शी व अतिरथ प्रसिद्धथे, वे पराई सैनाके हन्ता एवं चक्रादि व्यूह- के निर्माण करनेमें चतुरथे ॥ २९ ॥ देवगण और असुरभी कुपित होकर उनको युद्धमें नहीं हरा सक्ते वह निद्रा रहित क्रोधको जीतने वाले गर्व व मात्सर्यसे हीन हुये ॥ ३० ॥ न तौ वे किसीकी अवज्ञाके पात्र न कालके वशीभूत हुये अधिक क्याकहैं त्रिलोक उनकी पूजा करता इस प्रकारसे दशरथ पुत्र श्रेष्ठ गुणोंसे युक्त प्रजाके प्यारे हुये ॥ ३१ ॥ वह सलाहमें तीनों लोकोंके सम्मत हुये क्षमामें पृथ्वीकी समान बुद्धिमें बृहस्पतिजीके समान और वीरतामें शचीनाथ इन्द्रकी समान हुये ॥ ३२ ॥ प्रदीप्त सूर्य जिस प्रकार अपनी किरणोंके प्रभावसे प्रकाशित होताहै वैसेही प्रजाके इष्ट और पिताके प्यारे दुलारे रामचन्द्रजी गुण ग्रामसे मण्डितहो शोभा पाने लगे ॥ ३३ ॥ तब रामच- द्रजीको ऐसे दिव्य गुण व्रत युक्त व अतुल पराक्रम लोकोंके स्वामीकी समान देखकर वसुमति पृथ्वीने उनको पति बनानेकी मनोकामना

की ॥ ३४ ॥ ऐसे समय परम तप करनें वाले राजा दशरथजी रामचन्द्र-जीको बहुत सारे गुणोंसे युक्त अनुपम गुण निधान ज्ञान खान देखकर मनमें यह चिन्ता करने लगे कि ॥ ३५ ॥ मेरी यह वृद्धावस्था उपस्थित-है अब रामचन्द्रजीको राज्य पद पर अभिषिक्त देखकर नाजानें मुझे कि-तना आनन्द होगा ॥ ३६ ॥ मेरी यह आशा अन्तरमें आनन्द उपजा र-हीहै नहीं कह सकता किमैं रामचन्द्रजीको कब यौवराज्य पर प्रतिष्ठित देखूंगा ॥ ३७ ॥ जिस प्रकार जल वर्षाने वाला मेघ लोकोंकी वृद्धि कर-नेसे और दया करनेसे लोकोंको प्रीतिकर होताहै वैसेही रामचन्द्रजी लोक हितैषी व सर्व भूतोंपर दया करने वालेहैं प्रजाको मुझसेभी अधिक प्यारेहैं ॥ ३८ ॥ रामका बल यम व इन्द्रकी सदृश, बुद्धि बृहस्पति तुल्य धीर पर्वतकी समान और वह मुझसेभी अधिक गुण वालेहैं ॥ ३९ ॥ क-ब मैं इस वृद्ध दशामें पुत्र रामको निखिल समाजका अधिपति देखकर य-था योग्य स्वर्गको प्राप्त हूंगा ॥ ४० ॥ राजा दशरथजी रामचन्द्रको इस प्रकारसे और राजाओंको दुष्प्राप्य अत्यन्त श्रेष्ठ असंख्य लोकमें उत्तम गुणोंसे विभूषित ॥ ४१ ॥ तथा औरभी अनेक प्रकारके श्रेष्ठ गुणोंसे अपने पुत्र रामचन्द्रको युक्त देखकर मंत्रियोंके सहित सलाह करके उन-को युवराज करनेका मनमें विचार करते हुये ॥ ४२ ॥ व मंत्रियोंसे कहा कि मेरे शरीरमें बुढापेका आधिपत्यहोआया स्वर्गमें ग्रहण नक्षत्रादिकों-की मूर्त्ति सब विकृत और आकाशमें महा वातादिके उत्पात तथा भूमि कम्प प्रभृति दैव दुर्निमित्त दृष्टि होतेहैं यह भय देने वालेहैं ॥ ४३ ॥ इस कारण इस अपने चित्तके शोक दूर करनेके निमित्त पूर्ण चन्द्रानन राम-चन्द्रजीको यौवराज्याभिषेक करनेकी मेरी इच्छाहै मैं जान्ताहूं कि यह बात रामचन्द्र व प्रजाके अनभिप्रेत नहीं होगी ॥ ४४ ॥ अनन्तर अवनी नाथ दशरथजी योग्य कालमें अपनें व प्रजाके उद्देश्यसे रामचन्द्र व प्र-जाके प्रति स्नेह प्रदर्शन करनेंके अर्थ रामको यौवराज्यमें अभिषेक करनेंको उत्सुक हुये ॥ ४५ ॥ राजा दशरथजीने उस समय सब पृथ्वीके अनेक देश और नगरीके प्रधान लोगोंको बुलाया ॥ ४६ ॥ उन सबको आदर पूर्वक वास भवन और नाना प्रकारके अलंकारादि प्रदान किये प्रजापति ब्रह्माजी जिस प्रकार प्रजा संवेष्टित होकर शोभित होतेहैं वैसेही

उस समय उपस्थित व्यक्ति गणोंसे राजा दशरथजी शोभाको प्राप्त हुये-थे ॥ ४७ ॥ उस समय केकय राज और मिथिलाधिपतिको यह समा-चार नहीं दिया इस कारण कि उनको यह शुभ समाचार पीछेसेही मिल जायगा ॥ ४८ ॥ परवल विजयी महाराज दशरथजी सिंहासनपर उपवि-ष्टथे. कि इतनेंमें विदेशीय नृपति गण उपस्थित्त हुये ॥ ४९ ॥ वह सब राजा कौशल राजके निकटसे अनेक प्रकारके बहु मूल्य आसन ग्रहण करके उनके सामने नम्रतासे बैठे ॥ ५० ॥

सलब्धमानैर्विनयान्वितैर्नृपैःपुरालयैर्जानपदैश्चमा नवैः ॥ उपोपविष्टैर्नृपतिर्वृतोबभौसहस्रचक्षुर्भगवा निवामरैः ॥ ५१ ॥

विनयी नृपतिगण और जन पद वासी प्रधान व्यक्ति गणोंके इस भांति संमानितहो सभामें बैठनेपर अमरनाथ इन्द्र जिस प्रकार देवताओंके बीचमें रहकर शोभित होतेहैं वैसेही राजा दशरथजी शोभा पाने ल-गे ॥ ५१ ॥ इत्यार्षे श्री० वा० आ० अयोध्याकांडे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयःसर्गः ॥

ततःपरिषदंसर्वामामंत्र्यवसुधाधिपः ॥
हितमुद्धर्षणंचैवमुवाचप्रथितंवचः ॥ १ ॥

तिसके पश्चात् भूमिनाथ दशरथजी सब नगर वासियोंको अपने सों-ही बिठाकर परमहित व हर्ष वर्धन कारी अति विख्यात वचन सबसे ए-क्यता कर बोले ॥ १ ॥ बोलनेके समय राजाकी वाणी परम ऊँचे स्वरके सहितथी मानों देव दुन्दुभी बजाय बडे गंभीर शब्दसे बादल गर्जा ऐसा जानपड़ा ॥ २ ॥ जिस प्रकार राजाओंको बोलना चाहिये वैसीही अति-सुन्दर उपमारहित वाणी रससेभरी सब नरनाथोंसे राजा दशरथजीबो-ले ॥ ३ ॥ आप लोगोंपर विदितहै कि हमारे पूर्व पुरुषोंनें पुत्रवत् इस विशाल राज्यको पालन कियाहै ॥ ४ ॥ मैं इससमय इक्ष्वाकु प्रभृति न-रनाथोंके पालन कियेहुये राज्यमें सब जगत्में सुखसंपत्ति बढानेके अर्थ प्रस्तावकरताहूं ॥ ५ ॥ मैंनेभी प्रथम पुरुषोंकी नांई उन्हींके मार्गमें चल-

कर आत्मसुखभोग विरतहोकर यथाशक्ति आलस्यको त्यागनकरके इस राज्यको पालन कियाहै ॥ ६ ॥ सब लोकोंकी मंगल कामनासे श्वेत राज छत्रके नीचे रहकर शरीर जीर्ण होगया ॥ ७ ॥ इस समय मेरी उमर कई हजार अर्थात् साठ हजार वर्षकी हुई अब मेरी इच्छाहै कि बुढापेसे जीर्णहुये शरीरको विश्राम दूं ॥ ८ ॥ अजितेंद्रिय पुरुष जिस भारको नहीं उठा सकते, मैं राज प्रभावानुसार वही गुरुतर धर्मभार वहन् करकै थक गयाहूं ॥ ९ ॥ सो अब मैं इन उपस्थित द्विजातियोंकी अनुमति ग्रहण करके पुत्रको प्रजा पालन भार सौंप विश्राम करनेकी वासना करताहूं ॥ १० ॥ शत्रुबलघाती मेरे पुत्र रामचन्द्रजी वीर्यमें पुरन्दरकी समान और सब श्रेष्ठ गुणोंकी खानहैं ॥ ११ ॥ पुष्यके सहित चन्द्रमाका संयोग होनेसे जैसा होताहै वैसेही धार्मिक चूणामणि रघुवीरको प्रातःकाल युवराजमें अभिषेक करूंगा ॥ १२ ॥ लक्ष्मणके बडे भाई लक्ष्मीवान् रामचंद्र सब भांति राजपदके योग्यहैं । मुझे विश्वासहै कि यह देश क्या त्रिलोक मंडल इनको पाकर सनाथ होगा॥१३॥ मैं अभी इस श्रेष्ठ अपने पुत्र रामचन्द्रको राज्यदे युवराज बनाकर मनका क्लेश निवारण करूंगा ॥ १४ ॥ यदि मेरी यह वात तुम सबके अनुकूल हो तो इसमें अपनी सम्मति दो कि यह कार्य करना चाहिये ॥ १५ ॥ और जो मेरा यह प्रस्ताव तुम्हें अच्छा न लगे तो इससे अधिक जो हित करहो उसके विषयमें परामर्श दो; क्योंकि मध्यस्थ लोगोंकी चिन्ता पूर्व पक्ष व उत्तर पक्षकी विवेचनामें विलक्षण होतीहै ॥ १६ ॥ नीलमेघको आकाशमें निहारकर मोर गण जैसे आनन्दित होतेहैं वैसेही सब राजाओंने प्रसन्न मनसे महाराज दशरथका सुन्दर वचन युक्त प्रस्ताव ग्रहण किया ॥ १७ ॥ उस समय सभामें सामन्त राजाओंकी हर्ष ध्वनि उच्चारित हुई मानों सब लोगोंके आन्दोलन करनेसे पृथ्वी कम्पायमान होन लगी ॥ १८ ॥ अनन्तर द्विजाति गण व सब सैनापति समस्त पुरवासी देश वासियोंके सहित धर्मज्ञ राजाके अभिप्रायको समझकर ॥ १९ ॥ ये सब श्रेष्ठ बुद्धिमान मिलित होकर विचार करने लगे और उसको अच्छी प्रकारसे विचारकर बूढे राजा दशरथजीसे कहने लगे ॥ २० ॥ हे महाराज! आपकी अवस्था अब बहुत हजार वर्षोंकी हुई आप वृद्ध

होगयेहो अतएव अब आप रामचन्द्रजीको अभिषेक कर युवराज दे-दीजिये ॥ २१ ॥ हम सब महावीर महाबाहु रामचन्द्रजीको बडे हाथी पै चढे और उनके शिरपर छत्र लगा हुआ देखनेके अभिलाषी हुये हैं ॥२२॥ इस प्रकार उनके वचन सुन राजा दशरथजी उनके मनका भाव समझ अनजानकी नांई प्रश्न करबोले ॥ २३ ॥ तुम लोग हमारे प्रस्ता-वसे जो रामको यौवराज्याभिषेक करनेमें सम्मत हुये हो सो मेरे मन्में सन्देह उपस्थित हुआहै, अतएव अपने अभिप्रायको साफ २ कहो ॥ २४ ॥ मैं जब धर्मानुसार राज्य पालन करही रहाहूं फिर किस का-णसे महाबली रामको राजा करनेमें तुम्हारी प्रवृत्ति हुई है ॥ २५ ॥ तब नृपगण पुरवासी व और देशसे आये हुये सब मनुष्य कहने लगे कि कि हे महाराज! आपके पुत्र रामजीमें अनेक प्रकारके सद्गुण दृष्टि आ-तेहैं ॥२६॥ हे राजन् ! हम सब आपसे उनहीं अमित गुणशाली देवताके, समान बुद्धिमान शत्रुओंकोभी आनन्द देनेवाले और इच्छित पदार्थके देनेसे सबको प्रसन्न करने वाले रामचन्द्रजीके गुण कहतेहैं आप श्रवण कीजिये ॥ २७ ॥ सत्य पराक्रमी रामचन्द्रजी दिव्य गुणोंमें इन्द्रतुल्यी सत्य शरण, वह अपने गुण प्रभावसे पूर्व पुरुष इक्ष्वाकु प्रभृति राजा-ओंसे वढगयेहैं॥२८॥रामचंद्र पुरुषोत्तम सत्य परायण और सत्यस्वरूप हैं;साक्षात् धर्म व अर्थ उनमें हीं आश्रित हैं॥२९वह प्रजा पालनेमें चन्द्रमा सदृश हैं क्योंकि चन्द्रमा अपनी किरणोंसे सब अन्न फल फूलादि को पकाकर प्रजाओंका हित करते हैं क्षमा गुणमें पृथ्वी तुल्य, बुद्धिमें बृह-स्पति जीके समान, व वीर्यमें साक्षात् वज्रधर इन्द्रकी समानहैं ॥ ३० ॥ वे जितेन्द्रिय सुशील, सहन शील, असूया शून्य, धर्मज्ञ सत्यसागर क्ष-मावान व कृतज्ञहैं ॥ ३१ ॥ वह कोमल स्वभाव स्थिर चित्त असूया शून्य, दर्शनीय सम्पूर्ण प्राणियोंसे प्यारे वचन बोलने वाले वह सत्य भा-षीहैं ॥ ३२ ॥ वह रामचन्द्रजी बड़े ज्ञानवान ब्राह्मणोंकी सेवा करते हैं इनही सबगुण परम्परासे उनकी कीर्त्ति यश व तेज बढ रहाहै ॥ ३३ ॥ सुरासुर व मनुष्य लोकके सब अस्त्र उनके अधिकारमें हैं वह सब विद्या ओंमें पारदर्शी षडङ्ग सहित वेद पढे हुये हैं ॥३४॥ संगीत विद्या संगीता-दिमें अच्छी शिक्षा पाये हुये हैं; वह मतिमान् सकल कल्याणोंके स्थान-

हैं वह कभी दीन नहीं होते व साधुव्रत और बडे बुद्धिमान हैं ॥ ३५ ॥धा-
र्मिक! धर्म अर्थके जानने वाले, ब्राह्मण गण उनको उपदेश देने वाले हैं,
रामचन्द्रजी जब युद्धार्थ लक्ष्मणके साथ ग्राम अथवा नगरमें यात्रा कर-
तेहैं ॥ ३६ ॥ विना जय लाभ किये लौटते नहीं, वह जब संग्रामसे निवृ-
त्तहो रथपर या हाथी पर लौटते हैं ॥ ३७ ॥ तब मार्गमें सज्जनोंकी नाईं
पुरवासियोंसे नित्य कुशल पूछतेहैं वह उनसे उनके पुत्र, परिवार-
भृत्य,शिष्य, अग्निहोत्र ॥ ३८ ॥ व अन्तरङ्ग सम्बन्धीय समस्त संवाद
क्रमसे पूछतेहैं वह यह बात हम लोगोंसे वारंवार पूछतेहैं कि तुम्हारे
शिष्य धर्म पूर्वक तुम्हारी सेवा करतेहैं वा नहीं ॥ ३९ ॥ इस प्रकारसे
पुरुषसिंह रामचन्द्रजी सबसे बोलतेहैं फिर जब किसी मनुष्यको
कुछ दुःख पडताहै तो उसे देखकर आप दुःखी होतेहैं ॥ ४० ॥
व जब किसीके कुछ उत्सव होता तो आप पिताकी समान सन्तुष्ट होते
सदा सत्यवादी बडे धनुष धारण करने वाले, वृद्धसेवी जितेन्द्रिय ॥४१॥
वह धर्मके आश्रयसे सब कार्य करतेहैं बात कहनेके समय वह मृदु मन्द
हास्य करतेहैं ४२ कल्याणकी करने वाली बातोंको अच्छी प्रकार कहतेहैं
वह बृहस्पतिजीके समान युक्तिमय वाक्यके वक्ताहैं उनके दोनों सुन्दर
ताम्र वत बडे २ नेत्र, देखनेमें साक्षात् विष्णुजीकीनांईं ॥ ४३ ॥ रामच-
न्द्रजी शौर्य वीर्य व पराक्रममें लोकोंके अतिशय प्रिय व प्रजापालकहैं
आश्चर्यहै! कि नाना प्रकारके भोग विलासादि उनकोकभी किंचित् मुग्ध
नहीं कर सके ॥ ४४ ॥ इस पृथ्वीकीतो क्या यह त्रिलोकी राज्य पालन
करसक्तेहैं इनका क्रोध व प्रसन्नता कभी व्यर्थ होनेवाली नहींहै ॥ ४५ ॥
यह नियमानुसार वध्यका वध और अवध्यको दोषमुक्त करतेहैं निर्दोषी
मनुष्यके प्रति उनका विराग भाव नहींहोता वरन उसको धन दानकरके
सन्तुष्ट करनाही रामचन्द्रजीका धर्महै ॥ ४६ ॥ रामचन्द्रजी प्रदीप्त सू-
र्यकी नांईं प्रजा पुंजके प्रतिपात्र होनेसे और उदार गुण संयुक्त होनेसे स-
र्वदा प्रकाशपातेहैं ॥ ४७ ॥ अधिक क्याकहैं, ऐसे गुणनिधि सत्य परा-
क्रमी लोकपालकी समान रामचन्द्रजीको पतिपानेकेलिये वसुमतिकी
भी कामनाहै ॥ ४८ ॥ अपने भाग्यसेही महर्षि कश्यपजीको जैसे मरी-
चिने पायाथा वैसेही आपने रामभद्रको पायाहै वह राज्यपद पर आरूढहो

वें यहतो हमारा बडाभाग्यहै ॥४९॥ वरन सुरासुर, मानव, गंधर्व, व उरग गण रामके बल आरोग्य और दीर्घ जीवनकी कामना करतेहैं ॥ ५० ॥ इसीसे राजा ग्राम पुर सबकहींके रहनेवाले लोग रामचन्द्रजीकी प्रशंसा करतेहैं, व बाहर भीतरके सब देश पुर, राज्यनिवासी प्रशंसाकरतेहैं ॥५१॥ यहांतक कि क्या स्त्री. क्या वृद्ध. क्या युवा सबही संध्या व प्रातःकालमें देवताओंके निकट यशस्वी रामचन्द्रजीकी मंगल कामनाकरतेहैं ॥५२॥ हेदेव! इससमय आप सबके अभिप्रायानुसार राम राज्याभिषेकमें अनुमति दीजिये । इन्दीवर श्याम शत्रुओंके मारनेवाले रामचन्द्रको राज्यकी प्राप्तिहोना हम सबको प्रार्थनीयहै ॥ ५३ ॥ हेराजन् हम तुम्हारे श्रेष्ठ पुत्रको राज्यपर बैठेहुये देखनेकी इच्छा करतेहैं ॥ ५४ ॥

तंदेवदेवोपममात्मजंतेसर्वस्यलोकस्यहितेनिविष्टम् ॥ हितायनःक्षिप्रमुदारजुष्टंमुदाभिषेक्तुंवरदत्वमर्हसि ॥ ५५ ॥

हेवरद! अब यह प्रार्थनाहै किआप विष्णुकी समान सब लोकोंके हितकारी उदार गुण संपन्न अपनेपुत्र रामचन्द्रको प्रसन्नचित्तसे यौवराज्यमें शीघ्र अभिषिक्त कीजिये ॥ ५५ ॥ इ० श्रीवा० आ० अ० द्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥

तृतीयःसर्गः ॥

तेषामंजलिपद्मानिप्रगृहीतानिसर्वशः ॥
प्रतिगृह्याब्रवीद्राजातेभ्यःप्रियहितंवचः ॥ १ ॥

अनन्तर महाराज दशरथजी पुरवासी व और देशोंके राजाओंके बद्धाञ्जलि और शिष्टाचारको देखकर उनसे प्रिय व हितकारी वाक्य बोले ॥ १ ॥ मैं तुमसे अतिशय प्रसन्न हुआहूं तुमलोगोंनें जो मेरे ज्येष्ठपुत्रको राज्यमें अभिषिक्त करनेकी इच्छाकीहै इससे मुझे क्याही आनन्द और विचित्र प्रतापका परिचय मिलाहै सो कहनहींसकता ॥ २ ॥ इस प्रकारसे राजा उन ब्राह्मणोंकी पूजा व सत्कारकर और सबसे यहकह वशिष्ठ व वामदेव प्रभृति ब्राह्मणोंसेकहा ॥ ३ ॥ इस समय पुण्यमय मधुमास उपस्थितहै सब उपवन नानाविधि फूलोंके गहनोंसे शोभित हुयेहैं

अतएव इससमय आप उन प्रयोजनीय चीजोंको इकट्ठाकीजिये जो रामचन्द्रके यौवराज्यमें आवश्यकहोंगी ॥ ४ ॥ राजाके यह कहने पर सभामें घोर शोर होनेलगा । थोडी देरमें कुलाहल बंद होनेपर राजाने ॥ ५ ॥ मुनिशार्दूल वशिष्ठ जीसे कहा कि रामचन्द्रके अभिषेकार्थ जो कुछ प्रयोजनहो ॥ ६ ॥ हे भगवन्! आप उसके इकट्ठा करनेकी आज्ञा दीजिये, राजाके ऐसे वचन सुन मुनिश्रेष्ठ वशिष्ठजी ॥७॥ मंत्रियोंसे जो वहांपर हाथ जोडे खडे थे बोलेकि तुमलोग सुवर्णादिरत्न द्रव्य पूजाकी सामग्री सब ओषधियेंभी ॥ ८ ॥ उजले फूलोंकी माला धानकी खीलें पृथक्२ पात्रमें मधु, घृत नवीन वस्त्र, रथ सब शस्त्र ॥ ९ ॥ चतुरंगिनी सेना, सुलक्षण हाथी,२ चामर, व्यजन, ध्वज, दण्ड, सफेद छत्र॥ १० ॥ एक शत सुवर्णके घड़े इनके सिवाय और धातु ओंके हजारों कुम्भ, सोनेसे जिसके सींग मढेहों ऐसा एक बैल सम्पूर्ण व्याघ्रका चर्म ॥ ११ ॥ प्रभृति जिस वस्तुका प्रयोजनहो वह सब इकट्ठा करके प्रातःकाल ही राजाकी अग्नि शालामें धरो ॥ १२ ॥रनिवास और नगरके सब द्वारपै चन्दन, माला, सुगन्ध व धूपादिसे गंध युक्त किये जाँय ॥ १३ ॥ जिससे हजारों मनुष्य तृप्तहो जाँय प्रातःकाल इतना दही घी मिला हुआ ढेरों अन्य बहुत दक्षिणा ॥ ॥ १४ ॥ सत्कार पूर्वक ब्राह्मणोंको प्रातःकाल देकर सन्तुष्ट करना घी दही खीलें और बहुतसी दक्षिणा भी देना ॥ १५ ॥ कल प्रभात सूर्योदय होते ही स्वस्ति वाचन होगा तुम लोग उसके लिये अभी ब्राह्मणोंको न्योतकर उनके लिये आसन बनाओ ॥ १६ ॥ जब मार्गमें झंडियां बँधजांय और यहां छिडकावहो सम्पूर्ण गाने वाली और वेश्याएं सज धज कर ॥ १७ ॥ राज भवनकी दूसरी कक्षामें अवस्थिति करैं जितने देवताओंके मन्दिर अयोध्यामें हैं सबमें सब तरहके खाने पीने योग्य पदार्थ दक्षिणा सहित ॥ १८॥ भेजे जांय पुष्प मालादिक व पूजनकी सामग्री वहां भेजी जाय और ब्राह्मण लोग बुलाय देवता ओंके प्रसन्न होनेके लिये भोजन करायें जाँय वीरगण भूषण वसनसे सज धज बडी कृपाण व चर्म धारण कर ॥ १९ ॥ उत्सवके क्षेत्रमें विचरण करते रहैं इस भांति वशिष्ठ वामदेव दोनों ब्राह्मणोंने मंत्री व सेवकोंको आज्ञादे ॥ २० ॥ जो कुछ कर्म बाकीथे यह करने लगे और उनका समाचार राजाको भी

देदिया कि महाराज जो कुछ कहना सुनना धरनाथा वह सब कुछ करने कराने का आरम्भ कर दिया गया ॥ २१ ॥ ब्राह्मणोंके यह वचन सुनकर राजा दशरथ परम प्रीति और प्रसन्नता युक्त वचन अपने द्युति मान मंत्री सुमंत्रसे बोले ॥ २२ ॥ कि तुम बहुतही शीघ्र गुण सम्पन्न रामचन्द्रको हमारे पास लाओ वैसेही सुमंत्र बहुत अच्छा कहकर राजाकी आज्ञासे ॥ २३ ॥ महारथी रामचन्द्रजीको रथमें बैठाकर महाराज दशरथजीके निकट लाये महाराज दशरथजीको उन्होने वहां पर बैठे देखा ॥ २४ ॥ उस समय पूर्व, उत्तर, पश्चिम दक्षिणके राजा लोग, आर्य व म्लेच्छ, अरण्य व पर्वतोंके वासी ॥ २५ ॥ राजाकी उपासना कर रहेथे जैसे सब देवता लोग इन्द्रकी सेवा करतेहैं तिन सबोंके बीचमें राजर्षि दशरथजी जैसे देवोंके बीचमें इन्द्र शोभित होतेहैं विराजमानथे ॥ २६ ॥ कि इतनेमें दशरथजीनें प्रसादपर आरोहण करके अपने पुत्र रामचन्द्रजीको आतेहुये देखा, गन्धर्व राजकी समान सुन्दर लोकमें जिनके पुरुषार्थ विख्यातहैं ॥ २७ ॥ लंबी बांह वाले, बडे बलवान मातंगकी समान चाल चलने वाले, उनका चन्द्रमुख अतीव प्रियदर्शन ॥ २८ ॥ गरमीसे तपाये मनुष्यको मेघ जैसा आनंद देने वाला होताहै वैसेही रामचन्द्रजी अपने असाधारण रूप व उदारताके गुणसे मनुष्योंकी दृष्टि व चित्तके हरने हारे हुये ॥ २९ ॥ नराधिप विना पलक मारे रामचन्द्रजी को देखकर तृप्त नहीं होतेथे । इतनेमें रामचन्द्रजीको सुमंत्रने श्रेष्ठ रथसे उतारा ॥ ३० ॥ रामचन्द्रजी पिताके पासको आये सुमंत्रभी इनके पीछे २ हाथ जोडे चले पितृ भक्त रामचन्द्रजी कैलास शिखर सदृश विचित्र धवर हरेपर ॥ ३१ ॥ शीघ्रतासे पिताके देखनेको चढने लगे वह क्रमशः अग्रसरहो हाथ जोडकर पिताके चरणोंमें नवे ॥ ३२ ॥ और अपना नामोच्चारण पूर्वक पिताके चरणोंमें प्रणामकर हाथ जोड़ खडे रहे पुत्रको प्रणत और हाथ जोडे देख राजानें ॥ ३३ ॥ उनका हाथ पकड उनको बारंबार हृदयसे लगाया महाराजने श्रीरामचन्द्रजीको मणिकांचन भूषित ॥ ३४ ॥ श्रेष्ठ परम मनोहर आसनपर बैठनेको आज्ञादी पिताके दिये हुए श्रेष्ठ आसनपर बैठ रामचन्द्रजी दिपने लगे ॥ ३५ ॥ सुमेरु पर्वत जैसे उज्वल सूर्यके उदय कालमें तेजके प्रभावसे प्रकाश मान

होताहै, रामचन्द्रजीके बैठनेसे यह आसनभी वैसेही शोभित हुआ और वह सभाभी सुशोभित हुई ॥ ३६ ॥ चंद्रमाके उदय होने पर ग्रह नक्षत्र से पूर्ण शरद ऋतुमें आकाश जिस प्रकार सजा होताहै वैसेही रामचन्द्रके बैठनेसे राज सभा शोभित हुई और राजा उन्हें देख सन्तुष्ट हुये ॥ ३७ ॥ मनुष्य दर्पणमें अपना अलंकार युक्त प्रति बिम्ब देखकर जिस भांति आनन्दित होतेहैं वैसेही राजा दशरथजी पुत्रको देखकर अतिशय आनन्दित हुये और वह पुत्र वालोंमें श्रेष्ठ अच्छी प्रकार बैठे हुए अपने पुत्रसे संभाषण पूर्वक ॥ ३८ ॥ महर्षि कश्यपजी जैसे इन्द्रको आज्ञा देतेहैं वैसेही राजा रामचन्द्रजीसे बोले-हे वत्स तुम हमारी बडी रानीके अनुरूपही पुत्र हुयेहो ॥ ३९ ॥ तुममें सब श्रेष्ठ २ गुण विद्यमानहैं तुम गुणोंमेंभी सबसे बडेहो इसीकारण मुझे सबसे अधिक प्यारेहो हे मेरे बडे पुत्र ! वैसेही प्रजा गण तुम्हारे ऊपर विशेष अनुरक्तहैं ॥ ४० ॥ अतएव पुष्य नक्षत्रमें तुम युवराज पदवी पर बैठो। मैं तुमसे कुछ अधिक नहीं कहा चाहता, क्योंकि तुम स्वभावसेही गुणवानहो ॥ ४१॥ ऐसा होनेसेभी हे पुत्र! स्नेहकी प्रबलताके कारण मैं तुमको कुछ हितोपदेश देनेकी अभिलाषा रखताहूं; यद्यपि तुम विनयीहो तथापि नित्यकाल इन्द्रियोंको जीतना तुम्हें कर्त्तव्यहै; ॥ ४२ ॥ काम क्रोधसे जो समस्त उठे हुये दुर्व्यसन लोगोंको होजाया करतेहैं तुम उनका परित्याग करो, परोक्ष वृत्ति अर्थात् दूतके द्वारा प्रजाका समाचार जानकर और अपरोक्ष विचार अर्थात् सभामें बैठे प्रत्यक्ष प्रजाके न्याय करनेके विचारमें स्थित हूजिये ॥ ४३ ॥ सर्व मंत्री इत्यादि व प्रजाके पालनमें तत्पर रहो; कोष्ठागार, अस्त्रगृह, धनागार व धान्यागारको पूर्ण रखनेमें यत्न वान रहो ॥ ४४ ॥ जो सदा प्रकृति वर्गको अनुरागी रखकर राज्य पालन कर सक्तेहैं, उनके मित्रगण उनसे ऐसे सन्तुष्ट रहते जिस प्रकार देवता लोग अमृत पाकर प्रसन्न होतेहैं ॥ ४५ ॥ अतएव हे पुत्र ! तुम इस प्रकार आत्म संयम करके कर्त्तव्य कर्म साधन करते रहो; रामचन्द्रके हितकारी मित्रोंनें राजाकी यह आज्ञा श्रवण करके ॥ ४६ ॥ शीघ्रता पूर्वक यह समाचार जाकर राज महिषी कौशल्याजीसे कहा, सुन्तेही बहुतसा सुवर्ण रत्न गायें और अनेक वस्तु ॥ ४७ ॥ कौशल्याजीने उन सुसमाचार सुनाने वा-

लोंको देनेकी आज्ञादी । इतनेमें रामचन्द्रजो पिताके चरण वंदनकर रथमें चढकर अपने गृहाभिमुख गमन करने लगे; और अपने परम कान्ति मान घरमें आकर हर्ष सहित वृद्ध जनोंकी पूजाकी ॥ ४८ ॥

तेचापिपौरानृपतेर्वचस्तच्छ्रुत्वातदालाभमिवेष्टमाशु ॥ नरेंद्रमामंत्र्यगृहाणिगत्वादेवान्समानर्चुरभिप्रहृष्टाः ॥ ४९ ॥

पुरवासी गण राजाकी आज्ञा सुन उसको इष्ट वस्तु प्राप्ति स्वरूप मनमें समझ महाराजके सहित मंत्रणाकर अपने २ घर लौटे । और रामचन्द्रके अभिषेकमें कोई विघ्न नहो इस कारण प्रफुल्ल मनसे देवताओंको पूजने लगे ॥ ४९ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

चतुर्थः सर्गः ॥

गतेष्वथनृपोभूयःपौरेषुसहमंत्रिभिः ॥
मंत्रयित्वाततश्चक्रेनिश्चयज्ञःसनिश्चयम् ॥ १ ॥

अनन्तर पुरवासियोंके चले जानेपर निश्चय करने वाले राजा दशरथजीनें मंत्रियोंको आमंत्रण पूर्वक सलाहकर यह निश्चयकर कहने लगे ॥ १ ॥ आगामी कल पुष्य नक्षत्र होगा सो कलही यौवराज्य देदेनेका मेरा अभिप्रायहै कमल लोचन रामको युवराज कल होजाय यह निश्चयहै ॥ २ ॥ राजा यह कहकर अपने रनवासमें चले गये और सुमंत्रको बुलाकर रामको मेरे पास फिर लाओ यह कहा ॥ ३ ॥ सुमंत्र राजाज्ञा शिरपर धारण पूर्वक रामको शीघ्रतासे लानेके लिये उनके रनवासमें गये ॥ ४ ॥ प्रतिहारीने रामचन्द्रसे सुमंत्रका आगमन सुनाया प्रतिहारीसे सुमंत्रके आनेकी वार्ता सुन रामचन्द्रजी शंकित हुये ॥ ५ ॥ फिर रामचन्द्रजी जल्दी सुमंत्रको गृहमें बुलाकर किस कारण आपका आगमन हुआ । वह सब कहो यह पूछते हुये ॥ ६ ॥ सुमंत्रने यह सुन राजकुमार रामचन्द्रजीसे कहा कि महाराजनें फिर आपके दर्शनेकी-इच्छा कीहै इस समय जो उचित हो वह कीजिये ॥ ७ ॥

तब सुमंत्रके वचनोंको सुन शीघ्रता पूर्वक रामचन्द्रजी पिताके चरण दर्शन करनेको पिताके भवनको गये ॥ ८ ॥ राजा दशरथजी रामचन्द्र-जीको आये हुये सुनकर उनसे कोई बात कहनेके लिये उन्हें निजके भवनमें लेगये ॥ ९ ॥ श्रीमान् श्रीरामचन्द्रजीने पिताके भवनमें प्रवेश-कर दूरसेही राजाको देख हाथजोड़ प्रणाम किया ॥ १० ॥ महाराज द-शरथजीनें रामचन्द्रको प्रणाम करते हुये देख उन्हें उठाकर हृदयसे लगा-लिया और फिर आसनदे उनसे यह वचन बोले ॥ ११ ॥ हे रामचन्द्रमैं वृद्धहोगया दीर्घजीवी होकर जहांतक सुख भोगना चाहिये वहांतक मैंने भोगा । मैंने अन्नदानपूर्वक, विपुल दक्षिणाके सहित अनेक यज्ञानुष्ठान किये ॥ १२ ॥ हे मनुष्योंमें श्रेष्ठ तुम्हारी समान अनुपम पुत्र पाकर मेरा-दान व वेदाध्यनादि करना सार्थकहुआ ॥ १३ ॥ हे वीर जहांतक सुख पाना संभवहै वहांतक मैंने सम्पूर्ण सुख पाया । मैं देवर्षि, पितृ, ब्राह्मण, व आत्म ऋणसे छूटगया ॥ १४ ॥ इससमय तुम्हें यौवराज्य देनेंके सि-वाय मेरा दूसरा कर्त्तव्यकर्म कुछ नहींहै । इससमय जो कुछ कहूं, तुम उसके पालन करनेमें सावधान हो जाओ ॥ १५ ॥ हे पुत्र ! अब प्रजाग-ण तुम्हें राज सिंहासन पर बिठलानेंकी कामना करतेहैं अतएव हे पुत्र मैं तुम्हें यौवराज्य पदपर अभिषिक्त करूंगा ॥ १६ ॥ मैंने आज रातको बड़े बुरे स्वप्ने देखेहैं इसके अतिरिक्त दिनमें उल्कापात, और घोर शो-रसे वज्रपात हुआ ॥ १७ ॥ ज्योतिषी लोग कहतेहैं. कि. सूर्य. मंगल. राहु. इनतीन ग्रहोंने विरुद्ध होकर मेरे जन्मनक्षत्र पर आक्रमण कियाहै ॥ १८ ॥ ऐसे दुर्निमित्त होनेसे यातो राजाकी मृत्यु होती या कोई बड़ी आपत्ति प-ड़तीहै ॥ १९ ॥ हे राघव! मनुष्य का मन स्वभावसेही चंचल होताहै अ-तएव जब तक मेराचित्त मोहको न प्राप्तहो अथवा मेरे ऊपर कोई विपद आनेसे पहले तुम यह राज्यभार ग्रहणकरो ॥ २० ॥ आज पुनर्वसु नक्षत्र-है प्रातःकाल पुष्य नक्षत्रहोगा ज्योतिषी लोग बतातेहैं कि राज्याभिषेक के लिये यह नक्षत्र सर्वोपरिहै ॥ २१ ॥ मैं तुमको राज्य देनेके लिये व्यग्र-[illegible] हे परमतप करनेवाले मेरी यही इच्छाहै कि कलही अभिषेक हो-जाय [illegible] इस कारण आज तुम वधू सहित नियमानुसार उपवासी रहकर पत्थरकी [illegible] र कुश बिछाय शयनकरना ॥ २३ ॥ आज सावधानीसे तु-

म्हारी रक्षाकरना तुम्हारे मित्रोंको कर्त्तव्यहै; क्योंकि बहुधा ऐसे कार्यों-में बहुत विघ्न होनेकी संभावना होतीहै ॥ २४ ॥ भरत इससमय अपने मामाके घरहैं; सुतरांत् जबतक वह नआवैं तबतक इससमय अभिषेक होजाय यही हमारी वासनाहै ॥ २५ ॥ वास्तवमें भरतजी तुम्हारे हिता-कांक्षी और सज्जनहैं; उनको तुम्हारी आज्ञाकेआधीन और जितेन्द्रिय जा-न्ताहूं ॥ २६ ॥ किन्तु कारण उपस्थित होने पर मनुष्य का चित्त विकृत भावको प्राप्त होजाताहै, धार्मिक. व साधू मनुष्यभी समयके हेर फेरसे राग द्वेषादि द्वारा आकुलित चित्त होजातेहैं ॥ २७ ॥ अतएव हे वत्स! इस समय तुम अपने भवनमें जाओ । याद रक्खो कि कलही तुम्हें राज सिंहासन पर बैठना होगा ऐसी आज्ञापाय प्रणामकर श्रीरामचन्द्रजी अप-ने मंदिरको गये ॥२८॥ वहां पहुंचे व चाहा कि जानकीजीसेभी वही सब नियम जोजो आज कर्तव्यहैं कहैं पर वहां सीताजी न मिली, तब माताके म-न्दिरमें गये ॥ २९ ॥ वहां देखाकि राज महिषी कौशल्याजी रेशमीकपडे पहिने और मौनावलंबीहो मेरीही राजश्रीकी प्रार्थना करतीहुई देवपूजा-कर रहीहैं ॥ ३० ॥ रानी सुमित्रा व लक्ष्मण जीभी रामाभिषेक सुनकर प्रथमही वहां आयचुकेथे, व देवी सीताजीभी कौशल्याजीके धोरे साव-धानीसे बैठीथीं ॥ ३१ ॥ जब राम वहां पहुँचे तो उससमय रामजननी नयनमूंद परमेश्वरका ध्यान कर रहींथी. सुमित्रा, सीता व लक्ष्मण यह स-ब उनकी उपासनामें नियुक्तथे ॥ ३२ ॥ कल पुष्यनक्षत्रमें रामचन्द्रजी का अभिषेक श्रवणकरकै कौशल्याजी प्राणायाम पूर्वक पुराण पुरुष विष्णुका ध्यान करतीथीं ॥ ३३ ॥ तब रामचन्द्रजीनें निकट अग्रसरहो जननीको प्रणाम किया, और संवाद प्रदानकर माताके सन्तोष वर्द्धन-पूर्वकबोले ॥ ३४॥ जननी ! पिताजी मुझे प्रजापालनकार्यमें नियुक्त कर-तेहैं सो मुझे कलही पिताकी आज्ञासे राज्य भार ग्रहण करना होगा॥३५॥ पितानें आज्ञाकीहै कि आज रातको मे सीता समेत उपवासी रहूं, यह व्यवस्था उपाध्याओंने दीहै॥ ३६ ॥ राज्याभिषेकमें इससमय जानकीको जो कार्य करने चाहिये आप अभी उसका आयोजन कीजिये ॥ ३७ ॥ तब रामजननी रामके मुखसे चिरकामनाका सफल वृत्तांत सुन हर्ष जडित वा-

वयसे रामचन्द्रसे कहनेलगीं ॥ ३८ ॥ हे वत्स ! तुम दीर्घ जीवीहो. तुम्हारे शत्रुनिर्मूल होजाँय.तुम राजश्री लाभकरके हमारे और सुमित्राके भाई बान्धवोंका आनन्द बढाओ॥३९॥ तुमने शुभ नक्षत्रमें मेरे गर्भसे जन्मग्रहण-किया जिसकारण तुमने अपने गुणसे अपने पिताको प्रसन्नकियाहै॥४०॥ मैं इतने दिन जो पद्म लोचन हरिकी कृपाकी प्रार्थना करती रही और व्रतादिके क्लेश जो सहन कियेथे इस समय वह सफल हुए; कारण कि इक्ष्वाकु वंशीय राजश्री तुममें आ विराजी ॥ ४१ ॥ जननी कौशल्याजीके यह कहने पर हाथ जोड विनीत भावसे खडे हुए भ्राता लक्ष्मणको देख रामचन्द्रजी हँस कर बोले ॥ ४२ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम मेरे दूसरे अंतरात्माहो तुमभी मेरे साथ पृथ्वीका पालन करो तुमको राज्यभार ग्रहण करना होगा अब यह राज्य लक्ष्मी उपस्थितहै ॥ ४३ ॥ हे वत्स ! मेरा जीवन और राज्यभोग मेरे प्रयोजनाधीन नहीं वरन वास्तवमें यह तुम्हारेही लिये है. अतएव तुम इसको इच्छानुसार भोग करते रहो ॥४४॥

इत्युक्त्वालक्ष्मणंरामोमातरावभिवाद्यच ॥
अभ्यनुज्ञाप्यसीतांचययौस्वंचनिवेशनम् ॥ ४५ ॥

रामचन्द्रजी लक्ष्मणसे यह कह कर जननी कौशल्या और सुमित्राके चरणोंमें प्रणाम पूर्वक उनके निकट से विदाहो जानकी सहित अपने गृहमें आये ॥ ४५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे चतुर्थः सर्गः ॥ ४ ॥

पंचमः सर्गः ॥

संदिश्यरामंनृपतिःश्वोभाविन्यभिषेचने ॥
पुरोहितंसमाहूयवसिष्ठमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

इस ओर राजा दशरथजी कल तुम राज्य पद पर प्रतिष्ठित किये जाओगे रामसे ऐसा कह पुरोहित वशिष्ठजीको बुलाकर उनसे बोले ॥ ॥ १ ॥ हे ब्रह्मन् ! आप रामके मंगल और राज्य प्राप्तिके अर्थ सीता सहित उनसे उपवास करने को कह आइये ॥ २ ॥ वेदवित् वशिष्ठजी राजाके वाक्य पर सम्मति हो भगवान् वशिष्ठजी रथमें चढ रामचन्द्रके मं-

दिरको गये ॥ ३ ॥ वह व्रतधारी मंत्रके जानने वाले वशिष्ठजी महावीर मंत्र जानने वालोंमें पंडित रामचन्द्रको व्रत करानेके निमित्त ब्राह्मणोंके चढने योग्य रथ पर सवारहो रामके भवनको गये ॥ ४ ॥ वह निमेष मात्रमें रामके स्थान पर पहुँचे तो देखा कि बादलके टुकडे की समान रामचन्द्रका स्थान पाण्डुवर्ण है वशिष्ठजी तीन ड्योढियोंमें तो रथ पर चढेही चले गये ॥५॥ रामचन्द्रजी वशिष्ठजीका आगमन सुन्ते ही संभ्रान्तहो शीघ्र आसनसे उठे और उन आदर करनेके योग्य गुरुजीको आदर करनेके निमित्त घरसे बाहर आये ॥ ६ ॥ उचित रीतिसे उनका आदर सत्कार करनेंके लिये जल्दी से वशिष्ठजीके निकट जा पहुँचे और हाथ पकड कर स्वयं उनको रथसे उतारा ॥ ७ ॥ तब महर्षि वशिष्ठजी रामचन्द्रजीके सद्व्यवहारसे सन्तुष्ट होकर उनसे संभाषण पूर्वक उनका आनन्द बढाते हुये बोले ॥ ८ ॥ हे राघव ! तुम्हारे पिता तुमसे प्रसन्न हो तुम्हें युवराज देना चाहते हैं आज तुम सीताके सहित उपवासी रहना ॥ ९ ॥ राजा दशरथजी प्रसन्न हो कल तुम्हें यौवराज्याभिषिक्त करैंगे जैसे प्रसन्नहो राजा नहुषने ययातिको राज्य दियाथा ॥ १० ॥ यह कहकर विशुद्धव्रत महर्षि जीने सीताजीके सहित सीतापतिको उपवास का संकल्प कराया ॥ ११ ॥ तदनन्तर वशिष्ठजी यथाविधि पूजे जाकर नरदेव दशरथपुत्रके निकटसे विदा ग्रहण करकै उनके घर से लौटे ॥ १२ ॥ इस तरफ कमल लोचन रामचन्द्रजी कुछ देर तक इष्ट मित्रोंके साथ अनेक कथा वार्त्ता कहते रहे और फिर उन्ही लोगोंके कहनेंसे अपने वास भवनमें प्रवेश करते हुये ॥ १३ ॥ वहां नर नारी गण आमोद प्रमोदसे उन्मत्त प्राप्त होकर प्रफुल्ल कमल विशिष्ट मत्त विहंगम शोभित सरोवर की समान शोभायमानथे ॥ १४ ॥ महर्षि वशिष्ठनें राज्य तुल्य राम भवनसे निर्गत होकर देखा कि राजमार्गमें बडी भीड लगरहीहै ॥ १५ ॥ राजमार्गमें असंख्य लोग झुंड बांधकर चल रहेहैं ! इतनी भीडहै कि मार्गतक दृष्टि नहीं आता अनेक कुतूहल हो रहेहैं ॥ १६ ॥ नियत मनुष्योंके संघर्ष व हर्ष की अधिकतासे राजमार्ग समुद्र कलरवकी नांई तुमुल शब्दसे परिपूर्णहै ॥ १७ ॥ अयोध्याके सब रस्ते साफ और उनपर छिडकाव होरहाहै ! नगरोके सब फाटक विचित्र माला ओं-

से सजे हुए हैं व घर २ पर झंडियां फर फरा रहीहैं ॥ १८ ॥ नगरके बालक वृद्ध वनिता, उस उत्सवमें मग्न हुये रामचन्द्रका राज्याभिषेक देखनेंको सूर्योदय होने की राह देख रहेहैं ॥ १९ ॥ अधिक क्या कहैं प्रजा पुत्रकी श्री वृद्धिके कारण प्रभूत हर्षके बढाने वाले इस उत्सवके देखने की सभी वाट देख रहेथे॥२०॥राज पुरोहित वशिष्ठजी यह भीड भडक्का देखते२ मानों यह जनता भेद करते हुये मन्द २ गमनसे राजभवनमें प्रवेश करते हुये ॥ २१ ॥ यह राज भवन हिमगिरि शिखरके तुल्यथा बृहस्पति ज-जैसे इन्द्रके निकट विराजमान रहतेहैं वैसेही वशिष्ठजी राजाके पास जाते शोभित होने लगे ॥ २२ मुनिवरके उपस्थित होते ही राजा सिंहासनसे उठ बैठे, और अभिमत कार्य होगया यह जानकर कृतार्थ होगये ॥ ॥ २३ ॥ उस समय सब सभासदोंनें अपने २ आसनसे उठ वशिष्ठजीका बहुत सन्मान किया ॥ २४ ॥ तदनन्तर जिस भांति केशरी गुफाको त्यागकर चला जाताहै वैसेही नरनाथ दशरथजी गुरुजीकी आज्ञानुसार सभा मंडप परित्याग कर अंतःपुरमें चलेगये ॥ २५ ॥

तदग्र्यवेषप्रमदाजनाकुलंमहेंद्रवेश्मप्रतिमंनिवेशनम् ॥ व्यदीपयंश्चारुविवेशपार्थिवःशशीवताराागणसंकुलंनभः ॥ २६ ॥

तारानाथ जिस भांति तारासे वेष्टित गगन मंडलको शोभित करते हैं वैसेही नृपाल दशरथजी स्त्रियोंसे पूर्ण अमरावती तुल्य अन्तःपुरको अत्यन्तही शोभित करते हुये ॥ २६ ॥ इत्या० श्रीम० वा० आ० अ० पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ॥

गतेपुरोहितेरामःस्नातोनियतमानसः ॥
सहपत्न्याविशालाक्ष्यानारायणमुपागमत् ॥ १ ॥

पुरोहित जीके चले जाने पर रामचन्द्रजी स्नानकर विशालाक्षी जानकी जीके सहित एकान्त मनसे नारायणजीका ध्यान करने लगे ॥ १ ॥ उन्होंने देव भगवान्‌को नमस्कार कर घृतपात्र धारण पूर्वक दीतान-

लमें उनके प्रीत्यर्थ आहुति प्रदानकी ॥ २ ॥ अनन्तर होमसे बची हवि-भक्षण कर श्रीनारायणजीसे अपना मंगल चाहते हुये ध्यान परायणहो कुश शय्या पर ॥ ३ ॥ सीता सहित मौन धारण कर और मनको सब ओर से वशकर अपने घरमें जो विष्णु भगवान्का मंदिर बना हुआथा उसीमें सो रहे ॥ ४ ॥ वह एक पहर रात रहे उठे और अपने नौकर चाकरोंको गृह सजानें की आज्ञादी ॥५॥इसी समय सूत, मागध,व बन्दि गणोंके मुखसे मधुर मंगल गीत श्रवण करकै श्रीरामचन्द्रजी प्रातः संध्या करने लगे सूर्याञ्जली करकै फिर एकाग्रहो गायत्री जपते हुये ॥ ६ ॥ उन्होंनें प्रणतहो मधुसूदन भगवानकी स्तुति कर रेशमीन वस्त्र पहरे, तब ब्राह्मण गण उनका स्वस्ति वाचन करनें लगे ॥ ७ ॥ उन ब्राह्मणोंका पवित्र पुण्य कर शब्द तुरंहीके सहित सम्मिलितहो अयोध्यामें प्रतिध्वनित होने लगा॥८॥सीतानाथ सीताजीके सहित उपवासीहैं यह संवाद पाकर सबही अयोध्यावासी संतुष्ट हुये॥९॥ तदनन्तर पुरवासी गण रामाभिषेक श्रवणकरकै प्रभात हुआ जान पुरीको सुशोभित करने लगे ॥ १० ॥ शुभ्रमेघवत देव मन्दिर चौराहे चौक अटा अटारियें छहर दिवारोंके ऊपरके ऊंचे स्थानोंपर ॥ ११ ॥ व नाना प्रकारके वस्तुओंसे भरे पुरे जितनें उद्यमियोंके मकानथे, व जितनें मन्दिर २ परिवार वाले महाजनों केथे ॥ १२ ॥ व सब सभाओंमें जितने ऊंचे २ वृक्षथे इन सब स्थानों पर अति उन्नत २ ध्वजा पताका बांधीं गईं ॥ १३ ॥ नट, नर्त्तक, और गायकों का मन व कानोंका सुख उपजानेवाला गाना चतुर्दिक श्रवण गोचर होने लगा ॥ १४ ॥ सबके मुखसे राम राज्याभिषेककी हो बात सुनाई आनें लगी, व चौराहोंमें और घर २ इसो भांतिका चरचाथा ॥ १५ ॥ घरके द्वारे खेलते २ बालकभी यही कहतेथे. कि रामको राज्यहोगा, यहां तककि सब एकही भावमें उन्मत्त प्रायथे सबके मुखसे यही कथा सुनाई आतीथी ॥ १६ ॥ पुरवासी गण रामाभिषेकके लिये हार व धूप सुगन्धोंसे राजमार्गको विभूषित करने लगे ॥ १७ ॥ यदि अभिषिक्त होकर रामचन्द्र रात्रि कालमें नगरमें भ्रमण करने लगे, इसीकारण वृक्षाकार दीप स्तंभ (झाड) सब तैयारहुये॥१८॥ इस भांति पुरवासीगण रामके राज्याभिषेककी कामनासे नगरको सजाने लगे॥१९॥ सबही लोग सभा व हाट

वाटोंमें सम्मिलित होकर रामके राज्यकी कथा महाराज दशरथजीकी प्रशंसा कर कहने लगे ॥ २० ॥ अहो! महाराज दशरथजी वास्तवमें महात्मा और इक्ष्वाकुकुलके प्रदीपहैं, यह अपनी वृद्ध अवस्था जान रामचंद्रजीको राज्यभार प्रदान करनेके अर्थ उद्यतहैं ॥ २१ ॥ हम सब अनुग्रहीतहैं कि रामचन्द्रजी हमारे रक्षाकरता राजा होंगे ईश्वर बहुत दिनोंतक लोकोंके आद्यन्त जानने वाले रामचन्द्रजीको हमारा रक्षकर करें ॥२२॥ राज कुमार रामचन्द्रजी विद्वान और शांत प्रकृतिहैं यह जैसे धार्मिक व भ्रातृ वत्सलहैं वैसेही हमारे पक्षपातीहैं ॥ २३ ॥ धर्मात्मा महाराज दशरथजी दीर्घजीवीहो जिनके अनुग्रहसे हम रामचंद्रजीको राजा होते देखेंगे॥२४॥ पुरवासी परस्पर ऐसा कहरहेथे चारों ओरसे नगरमें यही सुनाई आताथाकि इतनेमें रामचन्द्रजीका अभिषेक होना सुन ॥२५॥ दूरसे अनेक देशोंके लोग रामचन्द्रका अभिषेक देखनेको उपस्थित होने लगे देखते २ विदेशीय लोगोंसे राजधानी परिपूर्ण होगई ॥ २६ ॥ पूर्णमासीके दिन जिस प्रकार समुद्र गर्जताहै वैसेही अनेक देशोंके आये हुये मनुष्योंके कलरव से वैसाही कुलाहल हुआ ॥ २७ ॥

ततस्तदिंद्रक्षयसन्निभंपुरंदिदृक्षुभिर्जानपदैरुपाहितैः ॥ समंततःसस्वनमाकुलंबभौसमुद्रयादोभिरिवार्णवोदकम् ॥ २८ ॥

तिस समय अमरपुरी सदृश वह राजपुरी राज्याभिषेक देखनेंको आयेहुये मनुष्योंके समागमसे आछन्नहो जलजन्तु विक्षोभित महासमुद्रकी नांई शोभित हुई॥२८॥इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा०आ०अयोध्याकांडेषष्ठःसर्गः॥६॥

सप्तमः सर्गः ॥

ज्ञातिदासीयतोजाताकैकेय्यातुसहोषिता ॥ प्रासादंचंद्रसंकाशमारुरोहयदृच्छया ॥ १ ॥

मन्थरा राजमहिषी कैकेयी की चिरकालकी पालनकीहुई दासीथी। वह प्रातःकाल अकस्मात, चन्द्रतुल्य धवरहर पर चढी ॥ १ ॥ उसने देखाकि अयोध्या पुरीकी सब सडकों पर छिड़काव होरहाहै, व ठौर २

कमलोंकी माला टँगरहीहैं ॥ २ ॥ चारों ओर उन्नत ध्वजा पताका बँधरहीहैं कहीं ऊँची नीची भूमिनहीं सब पाट पूटके सुधारदी गईहै कहीं आनें जानेंमें बहुत भीडनहो इस कारण चौडे २ बडे २ रस्ते बनाये गयेहैं चन्दन लगाये और स्नानकिये ॥ ३ ॥ माला व लड्डू हाथमें लियेहुये ब्राह्मण गण श्रीराम चन्द्रजीको उपहार देनेंके लिये घूम रहेथे । देवमन्दिर सब साफ कियेगये और सब कहीं बाजा बज रहाथा ॥ ४ ॥ सबही उत्सवमें मत्तहो रहेथे वेद गानसे दिग्मण्डल समाच्छन्नथा, औरोंकी बात तौ क्याकहें हस्ती, अश्वप्रभृति जन्तु गणभी आनन्दसे अधीर हो रहेथे ॥ ५ ॥ पुरवासी आनन्दमें मग्नहो घूमरहेथे, बडीऊंची पताका बँधरहीं व अनेक प्रकारके पुष्पहार ठौर २ टँगेथे । ऐसी अयोध्यापुरीको निहार मन्थरा अतिविस्मित हुई ॥६॥ व मारे हर्षके प्रफुल्लित नयन किये सफेद रेशमीन वस्त्रपहिरे एकधाई को निकट खडा देख मन्थराने उस्सेपूछा ॥ ७ ॥ कि किस कारणसे सती रामजननी कौशल्याजी बडे आनन्द में मग्नहो अकातर धनदान करतीहैं ? ॥ ८ ॥ क्यों लोगोंके मनोंमें इतना हर्ष समायाहै? राजा कौनसा ऐसा कार्य करैंगे सो तू मुझे बता ॥ ९ ॥ जब इसप्रकार मन्थराने उस धात्रीसे पूछा तौ उसनें मारेहर्षके विदीर्णहो विधि पूर्वक रामचन्द्रजीकी बडीभारी राजश्री बताई ॥१० और कहा कि महाराज दशरथजी कल पुष्य नक्षत्रमें जितक्रोध शान्तस्वभाव रामचन्द्रजीको यौवराज्याभिषेक करैंगे॥११॥पापीयसी मन्थरा धाईके ऐसे वचन श्रवण करके झट पट कैलाश शिखराकार धवरहरेसे उतरी॥१२॥ वह पाप दर्शिनी मन्थरा क्रोधसे जलतीहुई शयन गृहमें जाकर कैकेयीसे बोली ॥ १३ ॥ मूढे ! अब शयन मतकर । अब उठ तुम्हारा घोर अनिष्ट उपस्थितहै तुम क्या नहीं जानतीहो कि प्रबल दुःख भार तुमको पीडित कर रहाहै ॥ १४ ॥ महाराज तुम्हें देख नहीं सकते, फिर क्यों तुम सौभाग्यमें चूर होरहीहो ! तुम्हारा सौभाग्य ग्रीष्म तापितनदी स्रोतकी नांईहै ॥ १५ ॥ मन्थराके क्रोध भरे रुखाईसे सने ऐसे वचन सुन कैकेयी विषण्ण हुई ॥ १६ ॥ व कैकेयी मधुर वाणीसे मन्थरासे बोली कि हे मन्थरे ! क्या मेरी कुशल नहींहै ? प्रिय अनुचरि ! तेरे अति दुःखी और विषादित होनेका क्या कारणहै ! ॥ १७ ॥ अच्छी चतुर वाक्य बोलने

वाली मन्थरा कैकेयीके मधुर वचन सुन क्रोधसे परिपूर्ण होगई और बात बनाकर कहने लगी ॥१८॥ वह बाहरी अधिकतर शोक भाव दिखा रामचन्द्रजीके प्रति विद्वेष भाव उपजानेके लिये क्रोधमें भरकर बोली ॥ १९ ॥ हेदेवि ! तुम्हारा घोर अनिष्ट उपस्थित हुआहै महाराज दशरथ रामचन्द्रजीको राज्यभार प्रदान करतेहैं ॥ २० ॥ मैं तुम्हारी हित कारिणीहूं इस कारण अकस्मात् इस समाचारको सुनकर महा दुःख शोक और भयसे घिरीहूं मेरे सब अंग मानों जलही रहेहैं सो तुम्हारे हित करनेको आईहूं ॥२१॥ हे कैकेयी और तौ क्याकहूं तुम्हारी विपदसे मेरी विपद होगी तुम्हारी वृद्धिमें मेरी वृद्धि व तुम्हारे सुख दुःखमेंही मेरा सुख दुःखहै॥२२॥मैं नहीं जानती कि तुम राजनन्दिनी राजमहिषी होकर किस कारण राज धर्मका मर्म नहीं जान्तीहो ? ॥२३॥ तुम्हारे स्वामी मुखसे धर्म वार्त्ता कहते परन्तु कार्यमें वह विलक्षण शठहैं उनके मुखमें मिष्टता परन्तु हृदय निदारुणहै, तुम उनको सरल स्वभाव जान्तीहो इसी कारण तुमपर यह विपद आई ॥ २४ ॥ अब तुम्हारे स्वामी कुछेक मनो मुग्धकर वार्त्तायें कहकर तुमको प्रसन्नकर वास्तवमें कौशल्याकी मन वाञ्छा पूर्ण करेंगे ॥ २५ ॥ इस दुष्ट राजाने भरतको मामाके यहां भेज दिया अब वह निष्कंटक राज्य रामको देनेके लिये प्रस्तुतहैं ॥ २६ ॥ जिस प्रकार सर्पके खिलाने वाली स्त्री माताके समान उसके विषके भेदको न जानकर उसको पालतीहै ऐसेही तुमने पतिके मिससे सर्पवत् क्रूर राजाको अंगमें धारण कियाहै ॥ २७ ॥ शत्रु या सर्पकी उपेक्षा करनेसे जैसा फल देताहै वही दशा दशरथजीके हाथसे तुम्हारे पुत्रकी हुई ॥ २८ ॥ तुम उस पापात्मा नृपतिकी वृथा सान्त्वनासे मुग्ध होगईहो रामको राजा करके सपरिवार तुम्हारा वध साधन करनाही उनका आशयहै ॥ २९ ॥ मैं कहतीहूं कि अबभी समयहै; अतएव जिससे आप बचो, पुत्रका कुछ उपायहो और मेरीभी रक्षा होजाय, ऐसा कार्य करनेमें प्रवृत्तहो ॥ ३० ॥ सुन्दरी कैकेयी प्रिय परिचारिकाकी वार्त्ता सुन शरद कालीन चन्द्रमाकी नांई प्रफुल्लहो हँसते २ विस्तर परसे उठी ॥ ३१ ॥ उठतेही परम सन्तुष्ट हर्षित व विस्मितहो अपना एक बडे मोलका गहना उतारकर मंथराको पुरस्कार दिया ॥ ३२ ॥ वह स्त्रियोंमें श्रेष्ठ कैकेयी अपना गहना

उस मंथराको प्रदानकर और प्रसन्नहो मंथरासे कहने लगी ॥ ३३ ॥ हे मंथरे ! अहो ! आज तैंने मुझे क्या हर्षका समाचार सुनाया ! इस अवसर मेरे पास कोई ऐसा द्रव्य नहीं जो इस हर्ष समाचार सुनानेके बदलेमें देसकूं मैं तेरा क्या उपकार करूं ॥ ३४ ॥ मैं गर्भ जात पुत्र भरत और कौशल्या नंदन रामको अलग २ नहीं समझतीहूं अतएव जब महाराज रामको राजा करतेहैं तो इससे मुझे सन्तोषहै ॥ ३५ ॥

नमेपरंकिंचिदितोवरंपुनःप्रियंप्रियार्हेसुवचंवचोऽमृतम् ॥ तथाह्यवोचस्त्वमतःप्रियोत्तरंवरंपरंतेप्रददामितंवृणु ॥ ३६ ॥

और तो क्या कहूं इस अमृतकी समान राम राज्याभिषेक संवादकी अपेक्षा प्रीति प्रद वाक्य और कुछ नहींहै,जोहो,मन्थरे! इस पारितोषिकके सिवाय यदि और कुछ चाहिये तो मांग, मैं अभी वह तुझको देदूंगी॥३६॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ॥

मंथरात्वभ्यसूय्यैनामुत्सृज्याभरणंहितत् ॥ उवाचेदंततोवाक्यंकोपदुःखसमन्विता ॥ १ ॥

तदनन्तर मन्थरा कुपित और दुःखितहो कैकेयोके दिये हुये गहनोंको फेंक उसकी निन्दा करती हुई बोली ॥ १ ॥ हे मूढे ! तुम किस कारणसे शोकके स्थानमें हर्ष प्रकाश करतीहो ! क्या यह नहीं जानती कि इसके पीछे तुम्हें किस शोक समुद्रमें डूबना होगा ? ॥ २ ॥ हे देवि ! मैं तुम्हारे दुःखसे मर्म्माहत होकर मनमें यह समझकर हँसतीहूं कि जो शोकका कारणहै तुम उसमेंही हर्ष मनातीहो ? ॥ ३ ॥ काल स्वरूप सौतकी सन्तानको श्रीमान देखकर कौन बुद्धिमती स्त्री आनन्दित होतीहै ? सो तुमको यह कुबुद्धि आईहै इससे मैं बडी दुःखीहूं ॥४॥ राज्य सब भाइयोंकी साधारण संपत्ति होतीहै इसी कारण भरतसे रामको भय होनेकी सम्भावना है मैं इसी कारणसे डरीहूं किभीत मनुष्यही भयका पहुँचानें वाला होजाताहै॥५॥महावीर लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीके आज्ञाकारीहैं, सुतरां उनके

भय पानेकी कोई संभावना नहीं; जैसे लक्ष्मणहैं वैसेही शत्रुघ्न और भरत अनुगतहैं अतएव उनसेभी रामको कुछ भय नहीं हो सकता ॥ ६ ॥ उत्पत्ति क्रमानुसार भरतहीको राज्य आश्रय–संभवहै, ऐसी आशंका लक्ष्मण अथवा शत्रुघ्नसे नहीं है ॥ ७ ॥ मुझे रात दिन यही चिन्ता बलवती रहतीहै कि रामचन्द्र सर्व शास्त्र वेत्ता व क्षत्रकर्ममें चतुरहैं, सुतरांत उनसे अवश्य तुम्हारे पुत्रका अनिष्ट होगा ॥ ८ ॥ मुझको तो वास्तवमें कौशल्याही भाग्यवती जान पडती है. यदि ऐसा न होता, तो उसके पुत्र को राज्यकी प्राप्ति ब्राह्मणोंके द्वारा कैसे होती ? कल पुष्य नक्षत्रमें उनके पुत्रको युवराज्य होगा ॥ ९ ॥ रामको राज्य मिलने और उनके शत्रुओंका नाश होनेपर तुमको कौशल्याकी दासी हो हाथ जोडकर काम करना पडेगा ॥ १० ॥ तब अवश्यही हम सबकोभी तुम्हारी समान दासी होकर रहना पडेगा, और ऐसेही तुम्हारे पुत्रकोभी रामका भृत्य रहकर काल व्यतीत करना होगा॥ ११ ॥ राम वनिता सीता सखियोंके सहित आनन्दित होगी तुम्हारी बहुयें भरतजीका खर्व भाव देख दुःखसे कातर होंगी ॥ १२ ॥ तब मंथराको रामके प्रति इस भांति अतिशय अप्रीति भावापन्न देख कैकेयी रामके गुणोंकी वर्णना करती हुई बोली ॥ १३ ॥ कि–रामचन्द्र धार्मिक, गुणवान्, सत्यवादी, और शुचिहैं विशेष करके वह महाराजके ज्येष्ठ पुत्रहैं, अतएव उनको यौवराज्याभिषेक होना उचित हीहै ॥ १४ ॥ दीर्घायु रामचन्द्र भ्राता और नौकर चाकरोंको पुत्रवत पालन करेंगे ? हे कुबरी ! तू रामकी अभिषेक वार्त्ता श्रवण करनेमें क्यों दुःखी होतीहै ? ॥ १५ ॥ और भरतको निश्चयही सौवर्षके उपरान्त रामके पीछे राज्य मिलेगा। तब वहभी अपने पितृ पिता[illegible]का राज्य पावेंगे जब चाहेंगे तब अलग होकर राज्य बांटलेंगे॥ १६ ॥ हे [illegible]! तू ऐसे उत्सवके समय क्यों जल रहीहै ? ऐसे कल्याणके समय [illegible] संतापित होनेका क्या कारणहै ? ॥ १७ ॥ मैं जिस प्रकार भरतका हित [illegible]ाहने वाली हूं वैसेही व उस्से अधिक रामकी हितार्थी हूं. क्योंकि [illegible] करके राम कौशल्यासे अधिक मेरा सन्मान करतेहैं ॥ १८ ॥ यदि [illegible]चन्द्रको राज्याभिषेक हुआ तो वह भरतकोही होगा, कारण कि रामच[illegible] अपनेही समान सब भाइयोंको समझतेहैं ॥ १९ ॥ मन्थरा कैकेयीके [illegible] वचन

श्रवणकर महा दुःखीहो दीर्घ निश्वास परित्याग पूर्वक यह बोली ॥ २० ॥ कैकेयी! तुम शोक दुःख समय रूपी समुद्रमें निमग्न हो अज्ञानतासे अनर्थके विषयमें दृष्टि पात करती हो; सुतरांत तुमको अपनी अवस्था नहीं समझ पड़ती॥२१॥अब रामचन्द्र राजा होतेहैं उनके पीछे उनका पुत्र राज्य पावेगा, अतएव ऐसेही भरतजी राजवंशभ्रष्ट हो जांयगे ॥ २२ ॥ हे भामिनि ! राजाके सब पुत्र राज्य नहीं पाते. वास्तविक ऐसा होनेसे महान् अनर्थ उपस्थित होताहै ॥ २३ ॥ हे सुन्दर अंगवाली इसी कारणसे यातौ ज्येष्ठ पुत्रको या गुणवान् छोटे पुत्रको राज्य भार सौंप दिया जाताहै ऐसा सब राजा लोग करतेहैं ॥ २४ ॥ मैं ऐसीही व्यवस्थाको जानकर कहतीहूं कि–तुम्हारे पुत्र भरतको सब सुख भोग व राज वंशसें वञ्चितहो अनाथकी नांई काल व्यतीत करना होगा॥ २५ ॥ मैं तुम्हारे हितार्थ यहां तक कहूं. परन्तु आश्चर्यहै-कि तुम जरा न समझसको मुझको अजरज तो इस बातकाहै कि सौतनकी बढती देख तुम मुझे इनाम देतीहो ॥ २६ ॥ निश्चयही रामचन्द्र निष्कण्टक राज्य लाभ कर तुम्हारे पुत्र भरतको मारडालें अथवा देशसे निकाल देंगे ॥ २७ ॥ तुमने बालक भरतको मामाके यहां भेज दिया, जो वह यहां होते तो महाराजकी उनपर अवश्यही स्नेह दृष्टि पडती, विचार करके देखो कि तृण गुल्मादिभी एक स्थानमें जन्म ग्रहण करके प्रेमसे परस्पर एक दूसरेको आकर्षण करतेहैं ॥ २८ ॥ आश्चर्यहै ! कि भरतके संग शत्रुघ्न मामाके घर गयेहैं । लक्ष्मण जिस प्रकार रामचन्द्रजीके अनुगतहैं; वैसेही भरत शत्रुघ्नके साथ वर्त्ताव करतेहैं ॥२९॥ऐसा सुनाजाता है कि वन जोविगणनें एक समय एक वृक्षके काटनेंकी चेष्टा की. परन्तु वह वृक्ष कंटकाकीर्णथा इसकारण उनकी चेष्टा व्यर्थ हुई और डरसे छोड दिया ॥ ३० ॥ राम लक्ष्मण परस्पर परस्परके रक्षकहैं अश्विनी कुमारकी समान इनका भायप लोक विख्यातहै ॥ ३१ ॥ इस कारणसे राम द्वारा लक्ष्मणका अनिष्ट न होगा. परन्तु इस्से कोई यह न समझे कि भरतपर कोई विपद् न आवेगी ! अवश्य भरतका अनिष्ट होगा ॥ ३२ ॥ अतएव इस समय मामाके घरसे भरत आवें व राज्य पावें रामचन्द्र घरसे वनको चले जांय यहमैं अच्छा समझतीहूं इसमें मेराभी हित होगा॥३३॥इसमें केवल तुम्हाराही कल्याण नहीं वरन सब जाति

वर्गका हित होगा जो भरत धर्मानुसार अपने पैतृकराज्याधिकारीहों ॥३४॥ भरत केवल तुम्हारे ही सुखके लिये बालकहैं, परन्तु रामके स्वभाव सेंही शत्रुहैं, सुतराँत रामराज्यके अधीन रहकर वह निर्धन किस प्रकार जीवन धारण करेंगे ॥ ३५ ॥ वनमें सिंहके आक्रमणसे हाथियोंके यूथपतिकी रक्षाकी नांई, इस रामरूपी विपदसे तुम भरतजीको बचाओ ॥ ३६ ॥ तुमने स्वामीके सुहागसे गर्वितहो कौशल्याकी बहुत ही अवज्ञाकी है, भला फिर इस समय वह उन बातोंका बदला कैसे नलेंगी ? ॥ ३७ ॥ हे कैकेयि ! यदि रामचन्द्र शैलसागर पर्यन्त वसुन्धराके अधिपति हुए तौ हे भामिनि यह निश्चय याद रखना कि तुमको भरत सहित दास्य भावसे दिन बिताने पडैंगे ॥ ३८ ॥

यदाहिरामःपृथिवीमवाप्स्यतेध्रुवंप्रणष्टोभरतोभविष्यति ॥ अतोहिसंचिंतयराज्यमात्मजेपरस्यचैवास्यविवासकारणम् ॥ ३९ ॥

जैसे ही रामराजा हुए बस वैसेही भरतका नाश हुआ; अतएव इस कारण भरतको राज्य दिलानें और रामको वन भिजवाने की चिन्तना करो ॥ ३९ ॥ इ०श्री०वा०आ०अ०अष्टमःसर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ॥

एवमुक्तातुकैकेयीक्रोधेनज्वलितानना ॥ दीर्घमुष्णंविनिःश्वस्यमंथरामिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

मन्थराके इस भांति कहने पर कैकेयी क्रोधसे भस्महो दीर्घ निश्वास परित्याग पूर्वक मन्थरासे बोली ॥ १ ॥ मैं अभी रामको वनवासी कराकर भरतको राज्याभिषिक्त कराऊंगी रामको राज्य किसी प्रकार नहोगा ॥२॥ तू मुझसे यह विचार करकै कह कि किस उपायसे भरतको राज्य मिलै और राम इससे वंचित किये जाँय ॥ ३ ॥ पापदर्शिनी मन्थरा यह सुन रामके राज्याभिषेकमें बाधा देनेके लिये यह बोली ॥ ४ ॥ हे कैकेयि ! तुम मेरी सामर्थ्य देखो मैं वही उपाय करतीहूं जिससे तुम्हारे पुत्रका अभिषेकहो मैं वह उपाय तुमसे कहतीहूं सुनो ॥५॥ तुमने जो बात मुझसे

वार २ कहीहै वह क्या भूलगई या मुझसें श्रवण करनेके लिये उसको छिपातीहो ॥ ६॥ हे विलासिनी! यदि ऐसाहै तौ मुझसे उसको सुनकर उसके विषय में जो हितकारी हो उसके करने की फिक्र करनी चाहिये ॥ ॥७॥ मन्थराके मुखसे यह उक्ति श्रवण करके राजमहिषीके कैकेयी विस्तीर्ण सेजसे कुछ एक उठकर बोली॥८॥हे मन्थरे कौनसा उपायहै जिससे राम राज्य न पाकर भरत पावें वह तू मुझसे कह ॥९॥ जब देवी कैकेयी ने यह बात कही तब पाप बुद्धिवाली मन्थरा राम राज्याभिषेकमें विघ्न डालनेके लिये बोली ॥१०॥ एक समय देवासुर संग्रामके संघटित होनेपर राजा इन्द्रकी सहाय करनेको तुम्हारे स्वामी महाराज दशरथजी तुम्हारे साथ युद्ध क्षेत्रमें उपस्थित हुयेथे ॥ ११ ॥ हे देवि दक्षिण दिशाके दण्डकारण्य नामक स्थानमें वैजयन्त नामक एक नगर है तिमिध्वज उसका अधिपतिथा ॥१२॥ यह असुर अतिशय मायावी और बलवान्हुआ इसका दूसरा नाम शम्बरासुरथा.इसके ही साथ देवतों सहित इन्द्रकी लडाई हुई ॥ १३ ॥ इस युद्धमें सैन्यगण क्षत विक्षत अर्थात् घायलशरीर हो जब रातमें सो जाते तब राक्षस गण शीघ्रता से उपस्थितहो उनको मार कर भागजातेथे ॥ १४ ॥ उसी समय उन राक्षसोंके विरुद्ध महाराज दशरथजीने तुमुल संग्राम किया, और असुरोंने अस्त्र शस्त्रोंसे इन महाबाहुके अंग क्षत विक्षत कर डाले ॥ १५ ॥ हे देवि ! तुमने महाराजको शस्त्रोंसे घायल देख कर रणसे अलगले जाकर उनकी रक्षाकीथी ॥ १६ ॥ हे सुन्दर दर्शन वाली तब राजानें तुम्हारे व्यवहारसे तुष्ट होकर तुम्हें दोवर देने को कहा किन्तु, " जब इच्छाहो मांगलूंगी " तुमने उनसे यह कहाथा॥१७॥ राजाने भी तथास्तु कहकर तुम्हारे वाक्यमें सम्मति प्रदान की मुझे इस बातकी कुछ भी खबरनथी तुमने ही पहले मुझसे कहाथा॥१८॥ मैं तुमको प्यार जो करतीहूं इसी कारण यह बात नहीं भूली, तुम इस समय महाराजको बल पूर्वक रामके राज्याभिषेक [illegible] निवृत्त करो ॥१९॥ अब तुम महाराजसे दोवर चाहो एकतौ यह कि भरत [illegible] पावें और दूसरा वर यह प्रार्थना करो कि चौदह वर्षके लिये राम वनवासी हों ॥ २० ॥ यदि रामचन्द्रजीको चौदह वर्षका वनवास होगया तौ भरत प्रजाओंको वश करके यह राज्य अटल रख सकेंगे ॥ २१ ॥ तुम इस समय

मलीन बसन पहर कर कोप भवनमें जा क्रोधसे भर पृथ्वीमें पडीरहो॥ ॥२२॥महाराजके उपस्थित होनेपर उनसे संभाषण मत करना न उनकी ओर देखना केवल पृथ्वीमें पडे २ रोते रहना ॥ २३ ॥ मैं खूबजानतीहूं कि तुम महाराजको प्राणोंसें भी प्यारीहो इसमें किंचित्‌भी सन्देह नहींहै, मैं कह सकतीहूं कि वह तुम्हारे लिये अनलमें भी प्रवेश कर सकतेहैं॥२४॥ वह तुमको नतो क्रोधही दिखासकें नक्रुद्ध देखही सकें वरन वह उस समय तुम्हारी ओर देखने का भी साहस न करेंगे अधिक क्याकहूं वह तुम्हारी प्रीतिके निमित्त अपने प्राणतक देदेंगे ॥ २५ ॥ राजा तुम्हारी बातको उल्लंघन नहीं कर सकते. हे सुन्दरि ! अब तुम अपने सौभाग्य का बल जांच देखो ॥२६॥ महाराज तुमको मणि, मुक्ता, सुवर्ण व विविध भांतिके रत्नदेना चाहेंगे परन्तु तुम किसी पर मन मत डुलाना ॥ २७ ॥ तुम उनको उन वरदानोंकी याद दिला देना जो उन्होंनें तुम्हें देवासुर संग्रामके समय देने कहेथे, और अपना कार्य साधन करनेंको भली प्रकार यत्न करना भूलनामत ॥ २८ ॥ जिस समय राजा तुमको उठा वर देने को तैयारहों; तब तुम उनको सत्यमें बंधकर वर मांग लेना ॥ २९ ॥ एकवरसे रामचन्द्रको चौदह वर्षका वनवास दिलाना और दूसरे वरसे पुरुष श्रेष्ठ भरतजीको राज्याभिषेक मांगना ॥ ३० ॥ जब चौदह वर्ष तक राम वनमें रहेंगे तब भरतजीका राज्य निष्कंटकहोजायगा, और फिर लौट आने परभी रामको राज्य नमिलैगा क्योंकि फिरतो राज्य जमजायगा और जबतक जियेंगे. भरत ही राजा बनेरहैंगे ॥ ३१ ॥ हे भामिनि! रामचन्द्रका वनको जाना भरतका राज्य पाना इन दो वरोंके लेने से तुम्हारे पुत्र भरतकी सब प्रकार सिद्धि हो जायगी ॥ ३२ ॥ इसप्रकार वनको भेजेहुये रामके पक्षमें प्रजा अप्रियहो उठेगी प्रजा फिर उन्हें न चाहैगी और भरतजीके विपक्ष पक्षके वशहो जानेसे वहभी स्थिरतासे राज्य लाभ करसकैंगे ॥ ३३ ॥ जिस समय रामचन्द्र वनवाससे लौटेंगे उस समय सब प्रजाके अंतर बाहरमें भरतजीकी प्रभुत्वशक्ति जड समेत जमजायगी ॥ ३४ ॥ क्योंकि जब मनुष्य बहुत दिनोंतक अपने इष्ट मित्रोंके संग रहताहै, तो बनाय दृढताके साथ रहनें लगताहै कोई उसे हटाय नहीं सकता, इस्से जैसेही राजा तुम्हारे निकट

आवें ॥ ३५ ॥ वैसेही साहसका आश्रयले अपने वश राजाको कर राम-राज्याभिषेककी वासनासे निवृत्त करना मैं कहतीहूं कि तुम्हारी इष्ट सिद्धिका यही समयहै ॥ ३६ ॥ तब कैकेयी मन्थराके वाक्यसे प्रतीत और सन्तुष्ट हुई व छोटे बचेवाली घोडीकी तरह पराधीन हुई खोटे मार्गका आश्रयकर कहनेलगी ॥ ३७ ॥ वह परम सुन्दर सुन्दर दर्शनवाली कैकेयी अत्यन्त विस्मयको प्राप्तहो बोली हे मंथरे मैं अबतक तो परिणाम दर्शिताका मर्मनहीं ग्रहण कर सकी अब समझीकि तैंने बडी हितकारी बात कहीहै तू बडी श्रेष्ठहै ॥ ३८ ॥ मैं जानतीहूं कि संसार भरमें जितनी कुबडीहैं तू सबसे अधिक बुद्धि शालिनीहै । तू सदा मेरा हित करनेवाली है ॥ ३९ ॥ अधिक क्याकहूं मैं अबतक महाराजकी खोटी इच्छा न समझसकी जो हो अब मैंने जानलिया कि संसारमें पापीयसी, टेढी, अनेक कुवरीहैं किन्तु उन सबमें ॥ ४० ॥ तूही वायुसे चलायमान पद्मिनीकी नाई सबसे अधिक प्रियदर्शनहै तेरा वक्ष देश तैयारहै कंधेकी बराबर ऊंचाहै ॥ ४१ ॥ व नीचे सुन्दर नाभि वाला उदर है, ऐसा बोधहोताहै कि मानों छातीकी ऊंचाई देख शर्माकर पतलासा होगयाहै जांघें बहुत मोटी चढाव उतार बनीहैं, कुच बडे मोटे व कठोरहैं ॥ ४२ ॥ तेरा वदन मंडल विमल चन्द्रमाकी नांई विराजताहै व तेरी जंघा बालोंसे रहितहैं कमरमें तगड़ी शोभितहै ॥ ४३ ॥ जांघें बहुतही उत्तम भारी होनेसे मानो एकमें एक मिली हीसीहैं दोनों चरण बडेहैं तेरी पीठ सुन्दर और चौडीहै तू रेशमीन वस्त्र पहरे हुयेहै ॥ ४४ ॥ तू जब मेरे सन्मुखसे गमन करतीहै तब राजसिंहनीकी समान जान पडतीहै; तेरा हृदय शंबरासुरकी अनन्त मायाका विश्राम स्थलहै ॥ ४५ ॥ व औरभी हजारों माया तुझमेंहैं और तो सब तेरा शरीर मनोहरहीहै केवल यह जो छाती बहुत ऊंचीहै व पीछे कूवर निकला है यही कुढंगसाहै सो मानो पहियाके नाहके समानहै. ॥ ४६ ॥ इस कुढङ्गे अंगसेभी बडे लाभहैं, क्योंकि जितनी राजनीति आदिककी बुद्धियाहैं व जितनी मायाहैं सबकी सब तुम्हारे इसी अंगमें बसतीहैं, सोमैं ऐसी सोनेकी माला तुझको पहराऊंगी जो इस कूबर पर झूलाकरे ॥४७॥ हे सुन्दरि मैं कहतीहूं कि भरतको राज्य मिलने और रामके वन चले जानेपर मैं तेरे यह मांस पिंड चन्दनसे लिप्त

और सोनेके गहनोंसे सजाऊंगी ॥ ४८ ॥ जब अच्छी तरहसे हमारा काम हो जाकर और मुझको विश्वास हो जायगा तो तेरा मुख स्वर्णमय विचित्र तिलकसे सुशोभित करूंगी और कूबड़में चन्दनादिसे लेप करूंगी ॥ ४९ ॥ हे कुब्जे और तो अधिक क्या कहूं मैं तुझे मनोहर वस्त्र और दिव्य अलंकार पहराकर देवताकी समान सजा दूंगी ॥ ५० ॥ तब तुम्हारा वदन मंडल चन्द्रमाकोभी सरमावैगा वरन उसकी उपमाही नहीं मिलैगी व तुम अपनी सुन्दर चालसे वैरियोंकी निन्दा करोगी॥५१॥ तब जिस प्रकार तुम हमारी सेवामें नियुक्तहो, वैसेही अन्यान्य कुब्जागण तेरे पैरोंमें पडकर तेरी सेवा करैंगी ॥ ५२ ॥ मन्थरा इस भांति सराही जाकर वेदि मध्य स्थित अग्नि शिखाकी समान श्वेत शय्या शायिनी केकेयीसे बोली ॥ ५३ ॥ हे कल्याणि ! जल निकल जानेपर फिर बांध बांधनेका क्या प्रयोजनहै ? अतएव गात्रोत्थान करके अपना कल्याण कार्य साधन करनेंमें यत्नवती होना चाहिये और क्रोधागारमें जाकर अब महाराजको अपनी क्रोध शक्तिका परिचयदो ॥ ५४ ॥ अनन्तर मन्थराके उसकानेंसे प्रोत्साहितहो विशालाक्षी सौभाग्य प्रद गर्वित कैकेयी मन्थरा सहित क्रोधागारमें प्रवेश करती हुई ॥५५॥ उस समय जो रानीके अंगमें वडे २ कीमती सुन्दर गहनें व मोतियोंकी मालायेंथी वह हजारों उस सुन्दर स्त्रीनें सब निकालकर दूर फेंकदीं ॥ ५६ ॥ तिस समय सोनेके रंग समान रंग वाली कैकेयी मन्थराके वचनोंसे वशीभूतहो विना बिछाये भूमिमें लेटकर मन्थरासे कहने लगी ॥ ५७ ॥ हे प्रिय परिचारिके! यातो इस कोप भवनमें प्राणही परित्याग करूंगी,या-रामचंद्र जीको वन भेजकर भरतको राज्याभिषेक कराऊंगी ॥ ५८ ॥ हमें सुवर्ण, रत्न, व भोगकी वस्तुओंसे कुछ प्रयोजन नहीं, यदि रामचंद्रका अभिषेक हुआ तो हम निश्चयही प्राणोंको परित्याग करेंगी ॥५९॥ अनन्तर कुवरी भरतके हित और रामके अहित करनें वाले गूढ अर्थ और बूढे महाराज दशरथकी रानी भरतकी माता कैकयीसे बोली॥ ६० ॥ यदि रामको राज्य मिलगया तो, पुत्रके सहित तुम्हे निश्चयही अनुताप करना होगा, अतएव हेकल्याणि ! जिस्से भरत राजा

जांय उसके विषयमें विशेष चेष्टा करना उचितहै ॥ ६१ ॥ राजमहिषी कैकेयी मन्थराके वचन बाणोंसे वारंवार विद्धहो हृदय पर हाथ धर आश्चर्यको प्राप्तहो क्रोधसे भर उससे फिरबोली ॥६२ ॥ हेकुब्जे! यातो तू इस क्रोधागारमें मेरे शरीर छूटनेका वृत्तान्त राजासे कहेगी और या देखेगीकि दीर्घ कालके लिये रामको बनवास, और भरतको राज्य प्राप्त होगा ॥६३ मैं निश्चयही कहतीहूं कि यदि राम वनको न गये तौ, हमें शय्या, माला, चन्दन, अंजन, पान, भोजन ही, क्या, वरन जीवनसेभी कुछ प्रयोजन नहींहै ॥ ६४ ॥ कैकेयी यह कठोर वचन कहकर अंगसे गहने निकाल बिछौनेके बिनाभूमि शायिनीहो स्वर्गसे भ्रष्ट, किन्नरीकी समान शोभा धारण करती हुई ॥ ६५ ॥

उदीर्णसंरंभतमोवृताननातदावमुक्तोत्तममाल्यभूषणा ॥ नरेंद्रपत्नीविमनाबभूवसातमोवृताद्यौरिवमग्नतारका ॥ ६६ ॥

उसका मुख मण्डल क्रोधान्धकारसे युक्त और शरीर गहनेंसे शून्य हुआ तारक विहीन आकाश जैसे तामसी रात्रिसे शोभित होताहै उस समय रानीकीभी वही शोभा हुई ॥ ६६ ॥ ॥ इत्यार्षे श्री० वा० आ० अयोध्याकांडे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः ॥

विदर्शितायदादेवीकुब्जयापापयाभृशम् ॥ तदाशेतेस्मसाभूमौदिग्धविद्धेवकिन्नरी ॥ १ ॥

अनन्तर पापिनी मन्थराके समझानें बुझानेपर देवी कैकेयीने तीरसे बिधी हुई किन्नरीके समान पृथ्वीमें शयन किया ॥ १ ॥ वह भामिनी जो बड़ी चतुरथी मनहीमन जो करना उसको अभिष्ट था उसको धीरे २ फिर मन्थरासे सब कहने लगी ॥ २ ॥ फिर मन्थराके कहे हुये वचनोंको याद करके उसके वचनोंसे मोहित हुई कैकेयी नागकन्याकी भांति श्वास लेने लगी ॥ ३ ॥ तब वह आत्माके सुखका मार्ग ढूंढती हुई एक

मुहूर्त्त तक चिन्ता करती रही और कार्यकी सिद्धि जान अतिशय प्रसन्न हुई और इस ओर कूबरी सहेली रानी कैकेयीका यह यत्न उत्साह देख ॥ ४ ॥ जैसे कोई सिद्धिको प्राप्त होकर प्रसन्न हो वैसेही मन्थरा अतिशय प्रसन्न हुई और देवी रानी भी मनमें सब वात निश्चय कर कराकर महा क्रोध॥५॥ से भौंहें कमानकी समान तान भूमिमें लेट रहीं व जितनी भांति २ की माला और अनेक प्रकारके वस्त्र आभूषणथे सबको निकाल कर फेंकदिया ॥६॥ वह सब माला चित्र विचित्र मणि जटित सुवर्णके हार व दिव्य भूषण वसन इत्यादि कैकेयीके फेंके हुये भूमिमें आय गिरे॥ ७॥ और वह सब गहने तारा गणोंमें भरे हुये आकाशकी समान शोभा प्रकाशित करने लगे तब कैकेयी मैले कुचेले कपडे पहन कोप भवनमें पडी हरी॥८॥ केवल एक चोटी बँधी हुई शोभा की निशानीथी और देखनेमें कैकेयी बलहीन किन्नरीकी समानथी इस ओर राजा दशरथजी अभिषेककी सब तैयारी करके ॥ ९ ॥ सब सभासदोंकी सम्मतिले रनवासमें आये और सोचाकि रामचंद्रजीका अभिषेक होगा यह रानियोंको नहीं ज्ञातहै ॥ १० ॥ अतएव उनसेभी यह संवाद कहना चाहिये यही शोच विचार महा यशस्वी वह इन्द्रियोंको वशमें रखने वाले यह प्यारी बात सुनाने योग्य अपनी कैकेयीके सुन्दर भवनमें प्रवेश करते हुये ॥ ११ ॥ चन्द्रमा जिस प्रकार राहु युक्त उजले आकाशमें प्रवेश करताहै ऐसेही राजा कैकेयीके भवनमें पधारे उस समय कैकेयीका गृह तोते, मोर, क्रौंच हंसादि, पक्षियोंकी बोलियोंसे शब्दाय मानथा ॥ १२ ॥ किसी स्थानमें वेणु, वीणाका शब्द था स्थान २ में कूबरी नाटी टेढी मेढी दासियें शोभा पारहीं थीं लता बेलोंके गृह बने हुयेथे, कहीं चम्पा व अशोक इत्यादि भांति २ के फूलोंके पेड सुशोभित थे ॥ १३ ॥ कहीं २ पेड फूलोंके बोझसे लदे खडे, कहीं २ बावडी बनीथीं, कहीं २ हाथी दांत, सोने और चांदीकी बेदियें बनीथीं ॥ १४ ॥ हाथी दांत सुवर्ण और चांदीके आसन बनेथे। और स्थान २ में भक्ष्य भोज्य द्रव्य अनेक प्रकारके रक्खे थे ॥ १५ ॥ व बडे २ मोलके गहने धरेथे मानों दूसरा इन्द्रहीका गृह था । राजा सर्व धन युक्त उसी देव समान अन्तःपुरमें प्रवेश करते हुये ॥ १६ ॥ किन्तु शयनागारमें प्रवेश करके राजानें प्राणवल्लभा कै-

केयीको न देखा । उस समय राजा कामशरसे अति विंधे रतिकी इच्छा किये हुयेथे ॥ १७ ॥ ऐसी अवस्थामें प्राण प्यारीको न पाकर बहुत दुःखी हुये । विशेष चिन्ताभी हुई क्योंकि इससे पहले कैकेयी ऐसे समय सिवाय घरके कहीं न रहतीथी ॥ १८॥ राजानेंभी कभी इस प्रकारके सूने रनवासमें प्रवेश नहीं कियाथा, जोहो, महाराज दशरथजी सबसे कैकेयीको पूछने लगे ॥ १९ ॥ राजा यह नहीं जानतेथे कि कैकेयी भरतको राज्य दिलवाना चाहतीहै; अतएव उन्होंने प्रियतमाको न देखकर रानीके विषयमें एक प्रतिहारीसे पूछा तब उसने हाथ जोड़ कर कहा ॥ २० ॥ हे महाराज ! देवि क्रोधसे भरी हुई कोप भवनको गई हैं ॥ यह प्रतिहारीके वचन सुन्तेही राजा व्याकुल हो दुःख पाय ॥ २१ ॥ वहीं बैठ गये बहुत व्याकुल हुये, इन्द्रियां शिथिल होगई वहांसे उठ बड़ी शीघ्रतासे कोप भवनमें पहुँचे वहां अनुचित वेश किये रानीको पृथ्वीपर ॥ २२ ॥ पडे देखके राजाका प्राण उड गया । तब वृद्ध महाराज प्राणोंसेभी अधिक प्यारी सुकुमारी रानीको ॥ २३ ॥ पाप रहित राजाने मनमें पापसंकल्प धारण किये पृथ्वीपर टूटी हुई वेलकी नांई स्वर्गसे गिरे देवताकी नांई कैकेयीको देखा ॥ २४ ॥ अमरपुरसे गिरी हुई किन्नरी व अप्सरा की नांई अथवा स्वर्गसे गिरी हुई परम मनमोहिनी मायाकी नांई जाल में वँधी हुई हरिणीकी नांई ॥ २५ ॥ विष लगे हुये तीरसे व्याधेकी मारी हुई हथिनी की नांई वनमें पडे हुये देख हाथीकी समान राजा यह दशा देख वडे दुःखित हुये ॥ २६ ॥ और स्नेह पूर्वक उसे उठाने लगे और न जाने आज यह क्या करेगी यह विचार घबरा गये तब कामी राजा अपने हाथसे कमलनयनी कैकेयीका शरीर सुहराने लगे और बोले ॥ २७॥ प्यारी! तुम्हारे क्रोधका क्याकारणहै मुझेतो अवतक कुछभी ज्ञात नहीं। हे देवि! किसनें तुम्हारा अपमान व निरादर कियाहै सो मुझसे कहोतो सही॥ २८ ॥ प्रिये! तुम भूमिमें पडी रहकर क्यों मुझे कष्ट देतीहो, हेकल्याणि! तुम्हारे भूमिमें पौढनेकाकारण क्याहै सो बताओ ॥ २९ ॥ हेप्राणवल्लभे! तुम भूत प्रेत लगे हुये मनुष्योंकी नांई क्यों पृथ्वीमें पड़ी मेरे मनको मथन कर रहीहो अच्छा यदि खोटे ग्रहांके पीडा देनेसे ऐसा होभी तब कुछ चिन्ता नहीं मेरे अधिकार

में अनेक सुयोग्य वैद्य चिकित्सा करने वालेहैं ॥ ३० ॥ तुम्हारा रोग जानने पर हमारे वैद्य जो सदा हमारे यहांसे बहुतसा धन धान्य पातेहैं अपनी सुचिकित्सासे तुम्हैं रोगसे छुडावेंगे मैं तुमसे यह पूछताहूं कि क्या तुम किसीका प्रिय किया चाहतीहो तो उसका प्रिय किया जावे वा किसीका विप्रिय कराओ तो वह भीहो ॥ ३१ ॥ अब शीघ्रकहो कौन प्रिय पावै कौन अप्रिय, तुम रोवो मत, वृथा अपनें शरीरको दुःखदे मुँह मत सुखाओ ॥ ३२ ॥ और बतलाओ कि किस अवध्यको मारडालूं और किस मार डालने योग्य व्यक्तिको छोडदूं ? तुम किस दरिद्रीको धनवान् और किस धनवानको भिखारी करना चाहतीहो ॥ ३३ ॥ हे प्रियत्तमे! मैं और मेरे नौकर चाकर सब तुम्हारे वशहैं तुम्हारे इच्छाके विरुद्ध किसी कार्यके करने को मेरा साहस नहीं होता ॥ ३४ ॥ यदि अपना जीवदेकरभी तुम्हारा प्यारा काम करना पडे तो मैं उस कामके लिये भी प्रस्तुतहूं इसमें संशय नहीं तुम मेरा प्रेम जान्तीहीहो कि तुमसे कितना प्रेम करताहूं इस कारण अपना मनचहीता अभिलाष कहो ॥ ३५ ॥ मैं अपने पुण्यको यादकर शपथ करताहूं कि तुम्हारी वासना पूर्ण करूंगा, पृथ्वीमें जहांतक सूर्य की किरणें पहुंचतीहैं वहांतक मेरा अधिकारहै ॥ ३६ ॥ मेरे आधीनमें, द्राविड, सिन्धु, सौवीर, सौराष्ट्र, दक्षिणापथ, वंग, अंग, मगध, मत्स्य, काशी और धन धान्यसे भरी पुरी कौशलहै ॥ ३७ ॥ इन स्थानोंमें धन, धान्य व पशु आदि जो कुछ पदार्थ हैं सब मेरे वशमें हैं। हे सुन्दरि ! इन सबमें से जो कुछ तुम चाहो मुझसे कहो ॥ ३८ ॥ तुम्हें कष्ट सहने की कुछ आवश्यकता नहीं अब उठो तुम्हें मेरी सौगंध है तुम अपने भयका कारण मुझसे कहो॥३९॥जैसे सूर्यके उदय होनेसे अंधकार का नाश होजाताहै वैसेही मैं तुम्हारे मनका क्षोभ निवारण करूंगा॥४०॥

तथोक्तासासमाश्वस्तावक्तुकामातदप्रियम् ॥
परिपीडयितुंभूयोभर्तारमुपचक्रमे ॥ ४१ ॥

महाराजके यह वचन सुननें पर कैकेयी सावधान हो राजासे अति दारुण अप्रिय वचन कहने को और अपने स्वामीको अधिक

दुःख देनेके निमित्त बोलने की इच्छा करती हुई ॥ ४१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये अयोध्याकाण्डे आदिकाव्ये दशमः सर्गः १०॥

एकादशः सर्गः ॥

तंमन्मथशरैर्विद्धंकामवेगवशानुगम् ॥
उवाचपृथिवीपालंकैकेयीदारुणंवचः ॥ १ ॥

अनन्तर कैकेयी काम शरसे पीडित व कामके वेगसे वशीभूत पृथ्वीके पालनेवाले राजासे यह कठोर वचन बोली ॥ १ ॥ हे देव! न मेरा किसीने अनादर न तिरस्कार कियाहै मेरा जो मनोभिलाषहै मैं उसको आपसे सिद्ध कराया चाहतीहूं ॥ २ ॥ सो जो आप उसको सिद्ध किया चाहतेहैं तो पहिले वचन देदीजिये तब मैं अपने मनकी कामना कहूंगी ॥ ३ ॥ तब कामके वशीभूत नरनाथने पृथ्वीसे प्रियाका मस्तक उठा अपनी गोदमें रख लिया और वे महाराज हँसते २ कैकेयीसे यह वचन बोले ॥ ४ ॥ हे अपने सौभाग्यसे मोही हुई! इस जगत्में मनुज व्याघ्र रामचन्द्रजीके सिवाय तुमसे अधिक प्यारा मुझे कोई नहींहै इस बात को क्या तुम नहीं जान्तीहो ॥ ५ ॥ सो उन तुमसेभी प्यारे दुलारे शत्रुनाशक; रामचन्द्रजीकी सौगंध कर मैं कहताहूं कि मैं तुम्हारा अभिलाष पूर्ण करूंगा, सो तुम अपनी मन कामना कहो ॥ ६ ॥ जिनको एक मुहूर्त न देखनेसे प्राण घबडा जाते हैं मैं उन रामचन्द्रजीकी सौगंध कर कहताहूं कि तुम जो कहोगी सो निःसन्देह करूंगा ॥ ७ ॥ मैं अपनेसे और अपने तीनों पुत्रोंसे अधिक जिन रामचन्द्रको चाहताहूं मुझे उनकी सौगंधहै कि तुम जो कहोगी वहीकरूंगा ॥ ८ ॥ हे भद्रे! मेरा हृदय तुम्हारे आधीनहै, अतएव तुम अपने मनकी कामना कहकर मुझे संकटसे बचाओ ॥ ९ ॥ अधिक मैं क्या कहूं! मैं तुम पर जितनी प्रीति करताहूं उसका मर्म समझकर अपने मनका अभिलाष मत छिपाओ, मैं अपने पुण्य का नाम लेकर सौगंध करताहूं कि तुम जो चाहोगी सोदूंगा ॥ १० ॥ तब रानी कैकेयी महाराज दशरथजीके यह वचन सुन अपना इष्ट कार्य सिद्ध समझ भरतके पक्ष पात युक्त राजासे आनन्दमें भर

कर यह दुर्वचन बोली॥११॥राजाके वचनसें बहुत हर्षितहो अपना अभिप्राय सिद्ध करनेको अति कठोर यमराजके समान दारुण वचन बोली॥१२॥ हेमहाराज! तुम रामकी सौगंध और अपने पुण्यकी सौगन्ध खाते हो ऐसी शपथको इन्द्रादि तेंतीस ३३ देवता सुनें और इसके साक्षी रहें चन्द्रमा सूर्य, आकाश, रात, दिन, सब ग्रह, गन्धर्व, राक्षस यह पृथ्वी ॥१३॥१४॥ रात्रिमें फिरने वाले जितने, भूत, प्रेत, पिशाच, व ग्रहोंमें टिके हुये देवता व औरभी सब प्राणी राजाकी इस प्रतिज्ञा को सुनें ॥ १५ ॥ सत्यके समुद्र तेजवान और धार्मिक सत्यबोलनें वाले पवित्र महाराज दशरथ जी मुझको वर देतेहैं सब देवता गण उसको सुनें ॥१६॥ राजमहिषी कैकेयी इस प्रकार प्रथम राजाको प्रशंसा आदिसे प्रसन्नकर वरदेने वाले काममोहित राजासे बोली ॥ १७ ॥ कि हे राजन्! स्मरण करके देखो जब देवासुर संग्राममें शम्बरासुरने तुमको प्राणों से न मारकर मोहित कर दियाथा ॥१८॥ हे स्वामी! उस समय तुमने हमारेही यत्न और सेवासे चेतना पाईथी उस समय तुमने हमें दो वर दियेथे ॥ १९ ॥ हेदेवा वह दोना वर मैंने तुमसे उस समय नलेकर तुम्हारे ही पास धरोहर रख दियेथे अब उनका प्रयोजन हुआहै सो हेरघुनंदन! हमें दीजिये ॥ २० ॥ यदि धर्मानुसार प्रतिज्ञा करके वह वर इस समय नहीं दोगे तो तुम्हारेही सामनें इस अपमानसें प्राण त्याग दूंगी ॥ २१ ॥ हरिण जिस प्रकार मरनेके लिये जालमें बंधजाताहै वैसेही राजा रानी कैकेयीके सुन्दरताईके वशहो वचनोंके द्वारा मौतके फंदमें फँसे ॥ २२ ॥ इसके पीछे वरके देनेवाले व काम मोहित राजासे कैकेयी बोली कि हेदेव! तुमने मुझे जो दो वर देनें कहाहै ॥ २३ ॥ सो दो हम उन दोनों वरोंको अभी मांगतीहैं आप सुनिय। रामको अभिषेक करनेके लिये जो सब सामान हुआ है ॥ २४ ॥ इस सब अभिषेक सामग्रीके द्वारा भरतजीका अभिषेक किया जाय और दूसरा वर जो तुमने मुझे प्रीति युक्त होकर दियाहै २५॥ देवासुरके संग्रामके समय जो वर दियाथा अब उसका समय आयाहै वह वर यहदो कि चौदह वर्ष वनमें रहकर ॥ २६ ॥ वह जटा वल्कल धारीहो रामचन्द्र तापसका वेष धारण करैं" तापस भेष विशेष उदासी॥चौदह वर्ष राम वनवासी" और आजही हमारे प्यारे दुलारे पुत्र भरतजीको निष्कंट-

क राज्य मिल जाय ॥ २७ ॥ वस यही मेरी परम कामनाहै तुमने पहले जो मुझे वर देनेको कहेथे मैं वही तुमसे मांगतीहूं अधिक और क्या कहूं वस आजही रामचन्द्र वनको चले जांय ॥ २८ ॥

सराजराजोभवसत्यसंगरःकुलंचशीलंचहि जन्मरक्षच ॥ परत्रवासेहिवदंत्यनुत्तमंतपो धनाःसत्यवचोहितंनृणाम् ॥ २९ ॥

हे महाराज ! तुम सत्यकी रक्षा करनेमें यत्न वानहो अपने कुल शील और जन्म परिचयकी रक्षाकीजिये तपस्वी महात्मा सत्य वचनकीही इस लोक और परलोकमें प्रशंसा करतेहैं कि यही हितकारीहै ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अ० एकादशः सर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशः सर्गः ॥

ततःश्रुत्वामहाराजःकैकेय्यादारुणंवचः ॥ चिंतामभिसमापेदेमुहूर्तंप्रततापच ॥ १ ॥

अनन्तर महाराज दशरथ कैकेयीका महा कठोर वचन सुनकर मुहूर्त्त भरतक विलाप कर चिन्ता करने लगे ॥ १ ॥ मैंने क्या दिनमेंही स्वप्न देखा या मेरे चित्तमें मोह हुआ, अथवा भूतके वशहो यह घटना हुईहै या मनका कोई प्रकारका विकारहै ॥ २ ॥ इस प्रकार चिन्ता करते २ सुखको न प्राप्तहो वह मूर्च्छितहोगये, तदन्तर जैसेही चेतमें आये वैसेही कैकेयीके कठोर वचन याद आये और दुःखी हुये ॥ ३ ॥ शेरनीके देखे हुये मृगकी समान राजा व्यथित होकर भ्रमके कारणको न जानकर पृथ्वीपर पडे वडे २ श्वाश लेने लगे ॥ ४ ॥ मंत्रके मंडलके वलसे वंधे हुये महा विषधर सर्पकी जो दशा होतीहै वैसेही " हायधिक् " यह बात क्रोध करके राजाने कही ॥ ५ ॥ यह कहके शोकके मारे मूर्च्छित होगये और मोहित होगये और वहुत देरके पीछे फिर मूर्च्छा जागी और फिर दुःखित होगये ॥ ६ ॥ व क्रोधसे कैकेयीको भस्मही करते हुये बोले किरे नृशंसे ! दुष्ट चरित्रे ! कुलका नाश करने वाली पापिनि ! ॥ ७ ॥ रामचन्द्रने तेरा कौनसा वुरा किया अथवा मुझसेही क्या तेरा वुरा हुआहै

विशेषतः रामचन्द्र माताकी समान तेरी सेवा करतेहैं ॥ ८॥ अतएव फिर तू उनसे ऐसा व्यवहार क्यों करतीहै क्यों उनका अहित करनेको उद्यत हुईहै मैंने तुझे अपने प्राण खोनेहीको अपने घरमें रक्खाहै॥९॥ तेज विष वाली सांपनिकी समान अपना प्राण खोनेको मैंने तुझे अपने घरमें स्थान दिया संसारके सब मनुष्य एक वाक्यसे रामके गुण गातेहैं ॥१०॥ फिर भला मैं किस अपराधसे ऐसे सुतको त्यागन करदूं कौशल्या, सुमित्रा व राजलक्ष्मीकोभी मैं छोड सकताहूं ॥ ११ ॥ किन्तु प्राण प्यारे नयनोंके तारे पिता भक्त रामको किसी भांति नहीं परित्याग कर सकता जबही रामचन्द्रजीका मुख कमल देखताहूं तभी मुझे बडी प्रीति उत्पन्न होतीहै ॥ १२ ॥ और जब उन्हें नहीं देख पाता तब मुझे कुछ ज्ञान नहीं रहता वरन सूर्य विना संसार, व जल विना नाज चाहें टिक जाय ॥१३॥ परन्तु रामके विना मेरे शरीरमें प्राण नहीं रह सकते तिससे हे पाप निश्चये। इस पापकी हठको छोडदे *"कहौं स्वभाव न छल मन मांही ॥ जीवन मोर राम बिन नांही" मैं तेरे चरणोंमें शिर धरताहूं ॥ १४ ॥ तू मुझसे प्रसन्नहो रे पीपीयसि! तैंने मनमें यह क्या विचाराहै इस दुर्वासनाको त्यागदे अब क्यों इस दारुण पापकी चिन्तना कर रहीहै ॥१५॥ अथवा तू यह जांचतीहै किराजा भरतको प्यार करतेहैं वा नहीं सो इसकी परीक्षा ले इसमें कुछ रामचन्द्रका स्नेह कम नहीं हो सकता चाहें भरतही राजाहों कुछ राजा न होनेसे रामचन्द्रसे हमारा प्रेम कम नहीं होसकता ॥ १६ ॥ अच्छा हम भरतको राजा बनाये देतेहैं और श्रीमानज्येष्ठ पुत्र राम धर्महीके वडे वने रहैं कुछ राज काजसे प्रयोजन नरक्खैं तू उनको मेरी अपनी सेवाही करनेके अर्थ घरमें रहने दे ॥ १७ ॥ जिन रामचन्द्रजीके यौवराज्याभिषेकको सुन तुम दुःखसे दुःखीहो और हमको दुःखी करती हो सो जान पडता है कि तुम वरके वश नहीं वरन कोई भूत प्रेत पिशाच तुझको लगा है ॥ १८॥ तेरी जो बुद्धिमें फेर आ-

* रागनी गिरनारी सोरठ ताल तीन-(दशरथजीकैकेयिसे) प्रिया मन समझ मांग वरदान ॥ आस्ताई । प्रातहि राज भरतको दै हों यह निश्चय कर जान ॥ दूसर वर मत मांग छोड हठ नाहिं तजैमैं प्रान ॥ नारद जीवन राम हमारे सत्य २ यह मान ॥

गयाहै कि बड़ेके सामने छोटा राज्य करै इससे जान पडताहै कि इक्ष्वाकु कुलमें दारुण दुर्निमित्त हुआ ॥ १९ ॥ यदि तुझे भूत प्रेतादि कोई न लगा होता तौ ऐसा कभी न कहती क्योंकि इस्से प्रथम कभी तैंने अयोग्य व कुप्यारे वचन हमसे नहीं कहे, इससे मुझे विश्वास नहीं आताकि तुमको भूतादि नहीं लगा ॥ २० ॥ हे सुन्दरी ! कलतक तू बहुधा कहा करतीथी कि भरतहीकी समान मुझे रामचन्द्र प्यारेहैं ॥ २१ ॥ हे देवि उन्हीं धर्मात्मा यशस्वी रामको चौदह वर्षके लिये वनमें भेजना तुझे कैसे अच्छा लगता है ॥ २२ ॥ धर्मात्मा व अत्यंत सुकुमार रामचन्द्रका दारुण बनवास तुम्हें कैसे रुचा ॥ २३ ॥ हे सुन्दर नेत्र वाली फिर लोकाभि राम रामचन्द्रका वन गमन जो कि सदैव तुम्हारी शुश्रूषा किया करतेहैं कैसे भाताहै ॥ २४ ॥ विशेष करकै भरतकी अपेक्षा रामचन्द्र तुम्हारी अधिक सेवा किया करते हैं, रामसे अधिक तुम्हारे प्रति भरत अधिक भक्ति करतेहैं यह तो नहीं ज्ञात होता ॥२५॥ मैं तुझसे पूछताहूं कि रामके सिवाय कौन तुम्हारी अधिक तर सेवा गौरव प्रमाण व तुम्हारे वचनका पालन करताहै।२६।मेरीबहुत स्त्रीं और सहस्रों नौकर चाकरहैं परन्तु किसीके मुखसे रामचन्द्रका अपयश नहीं सुना जाता॥२७॥रामचन्द्र शुद्ध अंतःकरण से और प्रिय व्यवहार से सदा अपने देश वासियोंको सन्तुष्ट रख अपने वशमें रखतेहैं॥२८॥हमारे प्राण पुत्र रामने सत्य गुणसे सब लोगोंको,दानके प्रभाव से द्विजातियोंको, सेवा शुश्रूषासे गुरुजनोंको और धनुष विद्यासे शत्रुओंको जीत लिया है ॥ २९ ॥ सत्य, दान, तपस्या मित्रता, पवित्रता, विद्या, और गुरुजनों की सेवा प्रभृति सद्गुण निश्चय २ रामचन्द्रमें हैं॥३०॥हे देवि ! तुम क्यों सीधे स्वभाव वाले महर्षियों की समान देवताकी समान रामचन्द्रजी को वनवास का क्लेश देना चाहती हो ॥ ३१ ॥ तू यह तो बता कि प्यारी वार्ता कहना ही जिनका अभ्यास है, मैं तेरे कहनेसे किस प्रकार उन प्राणोंके प्यारेसे यह कठोर कुप्यारी वार्ता कहूंगा॥३२॥ जो रामचन्द्र सहन शीलता, तप, त्याग, सत्यवादिता, कृतज्ञता-धार्मिकता, व, अहिंसा, प्रभृति, समस्त, सद्गुणोंसे विराजमान हैं विना उनके मेरी क्या गतिहोगी कहतो सही ॥३३॥ हे कैकेयी मेरी वृद्धावस्था

उपस्थित है, और अंत समय निकट है, मैं इस समय दीन भावसे तुझसे क-हताहूं प्रिर तू मेरे ऊपर कृपाकर॥३४॥समुद्रसे घिरी हुई पृथ्वीके मध्यमें जो कुछ है, सब तुझेदेदूंगा तू मुझे मृत्युके मुखमें मत डाले अर्थात् मत मार ॥ ३५ ॥ हे कैकेयी में तेरे पैर पडताहूं और हाथ जोडकर कहताहूं कि तू रामचन्द्रको बचाले, देख कहीं ऐसा नहो कि निर्दोष रामको वनमें भेजकर मुझे अधर्म में लिप्त होना पडे ॥ ३६ ॥ इस प्रकार दुःख करते व रोते महाराज दशरथजी मूर्च्छित होगये, उनका सब शरीर घूमने ल-गा ॥ ३७ ॥ वह इस दुःख समुद्रसे पारहोनेके लिये वारंवार जनाने लगे, परन्तु महादुष्टा कैकेयी राजाकी ऐसी अवस्था देखकरभी अति निर्दयी वचन बोली ॥ ३८ ॥ हे राजन् तुम वर देकर यदि अब उनके लिये पछ-ताते और कातर होतेहो तव हे वीर पृथ्वी पर तुम्हें कौन धार्मिक कहे-गा। ॥ ३९ ॥ जब अनेक राजा तुम्हारे निकट उपस्थितहोकर इस वर-दानका वृत्तांत जानना चाहेंगे तव हे धर्मज्ञ उनकी वातका क्या उत्तर दोगे। ॥ ४० ॥ क्या यही कहोगे कि जिसके प्रसादसे देवासुर संग्राम में मेरा प्राण बचा व जिसने बहुत सेवा टहलकी उसही कैकेयीको वचन दे-कर वरदान न दिया ॥ ४१ ॥ हे नराधिप तुम वचन देकर अब पलटते-हो तो तुमसे इस वंशका कलंक रटाया जायगा ॥ ४२ ॥ देखो महाराज। महाराज *शैव्यने सत्यसे बंधकर बाजको अपना मांसदे कबूतरकी रक्षाकी, राजा अलर्कने अपने नेत्र निकालकर एक अंधे ब्राह्मणको दे-

---

* राजा शिवि जब ९२ यज्ञ कर चुके और आगे फिर आरंभ किया तव इन्द्रको भय हुआ कि अब यह आठ यज्ञकर मेरा पद लेलेंगे यह शोच अग्निको कपोत और आप वाजवन उस-के मारने को चला तब वह भागा हुआ राजाकी शरणमें गया राजाने उसका वचन सुन बा-जको देख यज्ञशालामें अपनी गोदीमें छिपा लिया और वाजको निवारन किया बाज बोला म-हाराज आप यह क्या अनर्थ करते हैं कि मेरा आहार छीन लिया मैं भूखसे शरीरको छोड आपको पापका भागी करूंगा तब राजाने कहा इसे तो नहीं देंगे इसके पलटेमें जो मांगोसो दें बहुत झगडेके उपरान्त यह बात ठहरी कि राजा अपने शरीर का मांस कबूतरकी बराबर तो-लदे तौ मैं कबूतरको छोड दूं इस वातसे राजा प्रसन्न होय तुलामें एक ओर कबूतरको बैठाय दूसरी ओर अपने शरीरका मांस काटकै चढाने लगे जब सब शरीरका मांस काट काटकै च-ढाय दिया और वह बरावर न हुआ तो जभी राजा गले पर खड्ग चलानेको हुआ तौ त्यौं-ही विष्णुने अपना दर्शनदे कृतार्थ कर मुक्तिदी—

दिये जिस्से उनकी गति होगईथी ॥ ४३ ॥ विवेचना करके देखोकि वचन बद्ध होनेके कारण समुद्रभी अपना जल किनारेकी भूमिमें नहीं लाता, अतएव तुम पहले दिये हुये वरोंको याद करकै झूंठके वश मतहूजिये ॥ ४४ ॥ हे दुर्मते! मैं सब समझ गई कि तुमने धर्मका अनादर करकै रामको राज्यसौंप कौशल्याके सहित विहार करनेकी इच्छा कीहै ॥ ४५ ॥ धर्महीहो, वा अधर्महीहो व सत्य मिथ्या जो कुछ भीहो जब तुमने मुझे देनेको कहा तब देनाही होगा, उसका उलट पलट किसी भांति नहीं हो सकता ॥ ४६ ॥ यदि तुम रामको राज्य देहीदोगे, तौ तुम्हारे सामनेही हलाहल पीकर मैं प्राण त्याग करूंगी ॥ ४७ ॥ कारणकि जो एक दिवसभी कौशल्याको मैंने अभिषेकके कारण प्रफुल्ल मनहो तुम्हारा हाथ पकडे देखा तौ निश्चय मेरी मौत आजायगी, फिर मैं मृत्युसे क्यों भय करूं ॥ ४८ ॥ हेराजा! मैं तुम्हारे आगे भरतकी सौगन्ध खाकर कहतीहूं कि रामको वन भिजवानेके सिवाय किसी प्रकार मैं सुखी न हूंगी ॥ ४९ ॥ कैकेयी यह बात कहकर चुप होगई उसने उस समय राजाके विलाप कलापपर कुछ ध्यान नहीं किया ॥ ५० ॥ महाराज दशरथजीनेभी कैकेयीके वचन सुने कि अब सत्यही इसे रामचन्द्रका वन गमन और भरतका राज्य प्याराहै ॥५१ इससे दो घडीतक सब इन्द्रियोंमें व्याकुल हो मौन रहे कि कुछ न बोले अप्रिय कहने वाली प्यारी स्त्रीको एक टक देखते रहे ॥ ५२ ॥ वह प्राण प्रिया कैकेयीके मुखसे वज्रकी समान अप्रिय वचन सुनकर दुःख व शोकसे राजा अधीर होगये ॥ ५३ ॥ उस समय राजा दशरथजो कैकेयी के मनका भाव समझ और उसकी शपथको याद कर. " हा रामचन्द्र ! " यह कह और लंबे श्वास ले २ कर जड कटे हुये पेडकी नांई पृथ्वीमें गिर पडे ॥ ५४ ॥ उस समय राजा नष्ट चित्त वाले मतवालेकी नांई, विकार प्राप्त हुये रोगीकी नांई, मंत्रसे बँधे निस्तेज विषधर सर्पकी नांई जान पडने लगे ॥ ५५ ॥ फिर राजाने दीन व आतुर वचनसे कैकेयीसे कहा कि तुझे अनर्थ कर इस विषयको किसने अर्थ कर बतायाहै ॥ ५६ ॥ भूतसे पकडे हुये व्यक्तिकी समान मुझसे ऐसा कहते तुझे लाज नहीं

आती । मैं अगाडी कभी तेरा ऐसा स्वभाव नहीं जानताथा कि तू ऐसी हठीली है ॥ ५७ ॥ यह मुझको अभी जान पडा कि तेरा बाल स्वभाव पहलेसे अब विपरीत होगया तैंने किससे भय पाया जो तू अब ऐसा वर मांगतीहै ॥५८॥ कि भरत राजा बनकर राज्य भोगें, व, रामचन्द्र वनको जांय। इसमें कुछ संशय नहीं, यह बात तेरे लिये अच्छी न होगी इस कामके करनेसे तू मुंह मोड और यह हठ छोड, मैं जान्ताहूं कि तूने झुंठाई की ॥ ५९ ॥ रेनृशंसे ? पाप संकल्प करने वाली ? क्षुद्र प्रकृति वाली । कुकर्म करने वाली यदि प्रजाका, भरतका, और मेरा प्रियकार्य करना चाहती है तो तू इस दुष्ट वासनाको छोडदे ॥ ६० ॥ मैंने वा रामचन्द्रनें ऐसा तेरा क्या अपराध कियाहै, जो तू ऐसा कहतीहै । यहभी जान रख कि रामको छोड भरत किस प्रकार राज्य पासक्तेहैं ॥ ६१ ॥ मैं रामसेभी अधिक भरतको धार्मिक जानताहूं सो यह रामचन्द्रको छोड आप राजा होंगे; ऐसा तो मुझे नहीं प्रतीत होता फिर वन जानेको कैसे कहूंगा ॥ ६२ ॥ "हे वत्स तुम वनको जाओ" यह वचन कहतेही जब राहुसे ग्रसेहुये चंद्रमाकी नांई रामचन्द्रका मुख मलीन हो जायगा तब मैं उसे कैसे देख सकूंगा क्योंकि मैंने अभी सब मित्र बंधु बांधवोंके सहित उनके अभिषेकका निश्चय कियाहै ॥६३॥ शत्रुओंके द्वारा हारी हुई सेनाके समान मैं किस प्रकार उनसे इसके विपरीत कहूंगा अनेक देशोंके आये हुये राजा यह बात जानकर मुझे क्या कहैंगे॥६४॥वह निश्चयही कहेंगे कि इक्ष्वाकु-वंशधर अतिशय बालक बुद्धिहैं इन्होंने इतने दिन तक किस प्रकार प्रजापालन किया-भला जब शास्त्रके जाननें वाले बडे वृद्ध व गुणी प्राचीन बातें सुने हुये॥६५॥आकर यह पूछैंगे कि राम कहां गये, तब मैं उनको क्या उत्तर दूंगा-यही.कि कैकेयीने मुझे बडा क्लेश दिया इससे मैंने रामको घरसे निकाल दिया ॥ ६६ ॥ यदि मैं यह सत्य वचनभी कहूंगा तौभी यह वचन असत्यही समझे जांयगे भला रामचन्द्रको वनवास देनेपर कौशल्या मुझसे क्या कहैगी ॥ ६७ ॥ और मैंही ऐसा अनिष्ट कार्य करके क्या कहके उसे समझाऊंगा देखो जब २ अपने २ समय पर कौशल्या सेवा करनेमें दासीके समान हँसी खेलमें सखीके समान ॥ ६८ ॥ धर्म क-

रनेमें स्त्रीके समान, शुभ कामना में बहनकी समान, अच्छा और मीठा-भोजन करनेमें माताकी समान, मेरे प्रति विशेप अनुरक्तहै जो प्रियवादि-नी और शुभ चाहने वालीहै व उसके पुत्रभी मुझको सबसे अधिक प्रिय-हैं ॥ ६९ ॥ हे देवि ! तेरे ही कारण सदा सत्कार करने योग्य उस कौश-ल्या का उचित आदर सन्मान नहीं कर सका ! पहले जो तुमसे यह सु-कृत मैंने किया, अब उसका भली भांति फल मिला ॥७०॥ रोगीके लिये वह अन्न व्यंजन जो उसको नखाना चाहिये वह खाय और फिर वह कुप-थ्य उसको पीडा दायक हो वैसेही मुझे रामचन्द्रका वन जानाहै ॥७१॥ रामके वन जाने का वृत्तांत सुनकर देवी सुमित्राभी मेरा विश्वास नहीं करेंगी। हाय ? कैसी चिन्ताकी बात है कि—जानकी रामका वन जाना और मेरी मृत्यु यह दो अशुभ संवाद शीघ्रही सुनेगी ॥ ७२ ॥ मेरे मर जाने पर जानकी मेरे प्राणोंको सोचती हुई व रामचन्द्रका वन गमन सुन अपना काल महा दुःखसे बितावेगी ॥ ७३ ॥ जैसे कि हिमवान पर्वत पर किन्नर से बिछुडी हुई किन्नरी शोक करती हुई समय बितावै व मैंभी राम-चन्द्रको महावन जाते हुये ॥ ७४ ॥ और मैथिली को रोती हुई देख बहुत घडीका जीना नहीं चाहता ! तुम उस समय विधवा होकर पुत्रों-के सहित राज्य भूंजना ॥ ७५ ॥ मनुष्य जिस प्रकार मदिरा की मोहिनी शक्तिसे मोहित होकर फिर उसको विप वत समझतेहैं वैसे हो मैं अबतक तुझे सती समझ कर तेरे साथ रहा ! परंतु अब समझमें आया कि तू व्य-वहार करनेमें घोर असतीहै ॥ ७६ ॥ तैंने अबतक वृथा झूंठी बातें कहर कर मुझको समझाया जिस प्रकार गीत शब्दसे व्याधामृग का मन हर-ण कर उसको मार डालताहै वैसेही तैंने मुझे किया ॥ ७७ ॥ अधिक क्या कहूं अबसे श्रेष्ठ पुरुप मुझे बुरा और पुत्रका बेचने वाला कहते फिरेंगे ? मार्गमें शराब पीने वाले ब्राह्मणको देख मनुष्य जिस प्रकार उसको निन्दा करते हैं वही बनाव अब मेरे भाग्यमें बदा है ॥ ७८ ॥ हाय क्या कष्ट! क्या दुःखहै! कि वर देकर मैं तेरे ऐसे कठोर वचन सुनता-हूं! मैं समझा, कि, पहले जन्मके किये अशुभ फलकी नांई मेरे भाग्य में यह बड़ा दुःख उतराहै ॥ ७९ ॥ रेपापिनी मुझ पापीने अबतक तुझे पालन करके अज्ञानी जिस प्रकार अपने गलेमें रस्सी बांध रक्खे कि

झटका लगतेही जिस्से मृत्यु होजाय ॥ ८० ॥ वैसेही मैंने तेरे साथ वि-हार करके अपना सब कुछ नाश किया कोई बालक जिस भांति एका-न्तमें काले सर्पको खेलनेके लिये उठाले, वैसेही मैंने मोहके वशहो तुझ-को मृत्युका रूप नहीं जाना ॥ ८१ ॥ अच्छाहै जो मुझ दुष्टात्माको निंदा सब संसार करै तौभी अनुचित नहीं क्योंकि मैंने अपने जीतेजी, ऐसे गुणवान पुत्रको पैतृक राज्यके अधिकारसे छुडाया ॥ ८२ ॥ अबसे मनुष्य राजा दशरथ अति मूर्ख और बडे कामीहैं, जो स्त्रीके कहनेसे विना अपराध प्यारे पुत्रको वनवास देदिया ऐसा कहकर मेरी निन्दा किया करैंगे ॥ ८३ ॥ राम बालक पनहीसे वेदके पढने, ब्रह्मचर्य, व गु-रुकी सेवा करनेंसे दुर्बल शरीर हुयेहैं। अब उनको सुख भोग करनेके समय फिर बन वासका दुःख झेलना पडेगा ॥ ८४ ॥ मैं भली भांति जान्ताहूं कि जब " वनको जाओ " ऐसा रामचन्द्रजीसे कहा जायगा तो वह " बहुत अच्छाके " सिवाय दूसरी बात नहीं कहैंगे क्योंकि उनका स्वभाव बातके उलट देनेका नहींहै ॥८५॥ यदि हमारे प्यारे पुत्र मेरे व-चन न मानकर वनको न जांय तो मेरे मंगलकी बातहै परन्तु वह काहे-को ऐसा करैंगे ॥ ८६ ॥ रामके वन चले जानेपर सबके निकट निन्दित हूंगा सब मुझे धिक्कार देंगे तब क्षमाके अयोग्य मौत हमें यमपुरको लेही जायगी ॥ ८७ ॥ नर श्रेष्ठ रामचन्द्रके वन चले जाने और मेरा मरण हो जानेपर न जाने तू हमारे भाई बन्धुओंपर क्या विपद डालेगी ॥ ८८ ॥ यदि देवी कौशल्या राम और मुझे न पावैगी, यदि सुमित्रा लक्ष्मण श-त्रुघ्नको न देखेगी क्योंकि लक्ष्मण अवश्य रामके साथ वनको जांयगे, और शत्रुघ्न भरतके अनुगामी ठहरे, तब यह दोनों पतिव्रता नारियें सह-ने लायक नहीं ऐसा जो शोकहै उसको न सहकर मर जांयगी ॥८९॥ हे कैकेयी! कौशल्या, सुमित्रा, मुझे राम, लक्ष्मण और शत्रुघ्नके सहि-त दुःखमें ढकेलकर तू सुख भोगकर ॥९० ॥ जब मैं और रामचंद्र दोनो चले जांयगे उस समय इस अचल इक्ष्वाकु कुलको तू पालन करना तब इसका गुण गौरव कहांतक बढकर रक्षितहो प्रकाशित रहेगा, इसकोमैं कह नहीं सकता ॥ ९१ ॥ यदि रामका वनवास भरतको प्रिय होतो मेरी मृत्युके पीछे वह मेरी प्रेत क्रिया शरीरका अग्नि संस्कार न करैं ॥९२॥

मेरा प्राण छुटने और पुरुष श्रेष्ठ रामके वन चले जाने उपरान्त तू विधवा होकर अपने पुत्र भरतके साथ राज्य पालन करना ॥ ९३ ॥ रे कैकेयी तुझको न जानकर जो मैं अपने घरमें स्थान दिया मेरी खोटी प्रारब्धसे तू मेरे घर आई इसीकारण मेरी संसारमें अतुल अकीर्त्ति व सज्जनोंमें अनादर हुआ मैं अधिक क्या कहूं मुझे घोर पातकी कहकर सब जग मेरी निन्दा करैगा ॥ ९४ ॥ हाय जो रामचंद्र रथ, घोडे, हाथी, पर बार २ चढकर राज मार्गमें भ्रमण करतेथे, वह पैदल किस प्रकार महा वनमें घूमेंगे ॥ ९५ ॥ जिन रामचंद्रके भोजन समय कुण्डल धारी रसोइयें "हम पहले अच्छा भोजन पान बनाते हैं" हम बनाते हैं यह कहकर शीघ्रता करतेथे ॥ ९६ ॥ वे रामचंद्र तीषे कडुये कशैले फल मूल भोजन करके किस प्रकार दिन वितावेंगे ॥ ९७ ॥ बडी बडी कीमती पोशाकों से जिनका शरीर सुशोभित होता जो सब प्रकारके सुख भोगतेथे वह इस समय किस तरह गेरुवा वस्त्र पहिरे वनमें भूमिपर सोवेंगे ! ॥ ९८ ॥ मैं तुझसे यह पूछताहूं कि रामके वन जाने और भरतके राज्य देनेका उपदेश किसने तुझको सिखाया ! ॥ ९९ ॥ मैं समझ गया कि स्त्री जाति अतिशय शठ और अपने स्वार्थकी चाहने वाली होतीहैं, नहीं २ मैं सब स्त्रियोंको ऐसा नहीं कहता केवल भरतकी जनने वाली तुझकोही ऐसा कहताहूं ॥ १०० ॥ रे अनर्थ दायिके ! रेस्वार्थकी चाहने वाली क्या विधाताने मेरे दुःख देनेही के लिये तुझे उत्पन्न किया यह तो बता कि मैंने वा हितकारी रामने तेरा क्या बुरा कियाहै? ॥१०१॥ मैं तुझसे कहताहूं कि रामके वन चले जानेपर, पिता पुत्रोंको परित्याग करैंगे, पतिव्रता स्त्री पतिको छोड देगी, इस प्रकार सब संसार रामको वनवासी देख तेरेपर कुपित होजायगा ॥ १०२ ॥ जब मैं देव सुत समान कमल लोचन गहने पहरे हुये रामचंद्रको अपने निकट आता हुआ सुन्ताहूं तब मेरे आनन्दकी सीमा नहीं रहती वरन ऐसा बोध होताहै कि वृद्ध होकरभी प्यारे पुत्रके दर्शनसे जवानीका संचार हुआ ॥ १०३ ॥ चाहे सूर्यके विना संसारमें सजीवता होजाय, चाहे वज्र धर इन्द्रके वर्षा न करनेसे संसार टिक जाय, परन्तु अवधसे रामचंद्रको वन जाते हुये दे-

ख कोई नहीं जियेगा यह मैं निश्चयही कहताहूं ॥ १०४ ॥ रे राज पुत्रि तू मेरे प्राणोंका घात करने वाली मेरी भयंकर शत्रु है, तेज विषवाली सर्पिणीको गोदीमें बैठालनेसे जो दशा होतीहै, वैसेही तुझे नाशकारणी अहित करने वाली अमित्राको अपने घरमें स्थान देकर मैंने मोहसे अपनी मौतको आप बुलाया ॥१०५॥ तू इस समय राम, लक्ष्मण, और मुझे जलांजलि देकर पुत्र भरतके सहित राज्य पालन कर, और बन्धु, बान्धव पुर व देश सबको उजाड कर हमारे शत्रुओंको अच्छी तरह प्रफुल्लित कर ॥१०६॥ हे कुत्सि कार्य करने वाली व्यसन देखकर प्रहार करने वाली जब तूने पति और स्त्रीका संबंध तोडने वाली ऐसी निठुर वार्ता कही, तब फिर क्यों नहीं मुखसे नीचे गिरके तेरे दांत टुकडे २ होजाते ॥१०७॥ मेरे रामने तुझे कभी अप्रिय वचन नहींकहा, और न वह अप्रिय बात कहनी जानतेहैं क्योंकि विशेषता वह सर्व गुणों करके युक्त. प्रिय. कहने वालेहैं फिर किस अपराधसे उनहीं रामको वनवासी करतीहै जिनमें नित्य गुण वास करतेहैं ॥ १०८ ॥ रेकैकय कुल कलङ्किनि कैकेयी! तू दुःखही भोग कर वा अग्निमें प्रवेश कर या हजार वार पृथ्वीमें समाजा, अथवा किसी प्रकार अपने आप अपने को मारडाल, परन्तु मैं किसी प्रकार अपना अहित करने वाली.इस तेरी कामनाको पूर्ण नहीं करूंगा ॥१०९॥ क्योंकि तू क्षुरेकी धारके समान भयंकरहै असत्प्रिय वचन बोलने वालीहै, व तेरा स्वभाव दूषितहै तू कुल घातिनीहै तैनें मेरे प्राण और हृदयको जलायाहै इसकारण तूभयंकर दर्शन वालीहै अतएव मैं तेरा मरनाही भला समझताहूं ॥ ११० ॥ जब मेरे जीवन हीमें सन्देहहै तब सुखकी क्या आशा? वास्तवमें ममता रखने वाले मनुष्योंको विना पुत्रके सुखकी संभावना कहां!देवी! मेराबुरा मतकर मैं तेरे पैर पडताहूं व प्रसन्नहो॥१११॥

सम्भ्रा[illegible]विलपन्ननाथवत्स्त्रियागृहीतोहृदये
तिमात्रया[illegible]तदेव्याश्चरणौप्रसारितावुभा
वसंप्राप्ययथा[illegible]तथा ॥ १२ ॥

(चौपाई) इमि अनाथ व[illegible] [illegible]कपत राजा ॥ तियहिय गह्यो महान

कुसाजा ॥ कर विलाप नृप रुदन अपारा ॥ श्वास लेत हिय सोच करारा॥ कर उठाय आतुर गृह धावै ॥ कौनहुँ विधि न कार्य करि पावै ॥ बीचहि मार्ग गिरे मुरछाई ॥ सोइ गति गिरेउ मूर्च्छि महिराई ॥ ११२ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०अ०द्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः ॥

अतदर्हंमहाराजंशयानमतथोचितम् ॥ ययाति मिवपुण्यांतेदेवलोकात्परिच्युतम् ॥ १ ॥

जब राजा कैकेयीके चरणों पर गिर पडे जिस योग्य वह नथे तब ऐसे विदित होतेथे जैसे पुण्य नाश होनेके पीछे राजा ययाति स्वर्गसे गिरेथे॥१॥ पापरूपा कैकेयी काज व प्रयोजन सिद्ध न हुआ तो निडरहो राजाको भय दिखातीहुई वही वरदान फिर मांगने लगी ॥ २ ॥ हेमहाराज! तुम अपनेको सत्यवादी और दृढ प्रतिज्ञ कहकर बडाई भारा कर तेथे अतएव मुझको वर देना कह कर अब उसके देनेमें क्यों कातर होतेहो? ॥ ३ ॥ जब कैकेयीने ऐसा कहा तो राजादशरथजी मुहूर्त भरतक व्याकुलहो फिर क्रोधमें भरकर बोले ॥ ४ ॥ रेअनार्ये रेशत्रु रूप वाली! मेरे मरजाने और रामके वन जानेपर तू सुखीहो और अपनी कामनाको पूरीकर ॥ ५ ॥ शरीर छूटनेके पीछे स्वर्गमें जानेपर जब देवता गण रामचन्द्रकी कुशलका समाचार पूछेंगे तो उनसे क्या कहूंगा ॥६ ॥ यदि यह कहूंगा कि "कैकेयीका प्रिय करनेके लिये रामचन्द्रको वन पठाया" तो इस सत्य बात पर कौन देवता विश्वास करेगा कोईभीनहीं॥७॥मैं बहुत समय तक अपुत्रकथा बहुत कष्टसे इस बुढापेमें रामरूपीरत्न पायाहै अतएव तूही कह कि उन महातेजा रामचन्द्रको मैं किसभांति परित्याग करूं ॥ ८ ॥ वह साधू, सब विद्या पढे हुये क्रोधके जीतने वाले सबको क्षमा करने वाले अच्छे स्वभाव वालेहैं भला उन कमल दल नयन रामचन्द्रको किस प्रकार वनको पठाऊं ॥ ९ ॥ मैं किस प्रकार दीर्घ बाहु महाबल शाली इन्दीवर श्याम मनोहर रामको वनवासी करूं ॥ १० ॥

जो सदा सुख भोग करते हैं और इतनाभी नहीं जानते कि दुःख क्या पदार्थ है, उन बुद्धिमान रामचन्द्रकी यह दशा किस प्रकार देख सकूंगा ॥ ॥ ११ ॥ यदि उन रामचन्द्रके जो दुःखके योग्य नहींहै कष्ट न देकर मेरी मृत्यु होजाती तो भी मैं किसी प्रकार सुखी होजाता ॥ १२ ॥ रे खोटी मतवाली! पाप कारिणी कैकेयी! सत्यके समुद्र मेरे प्यारे रामचन्द्रका यह बुरा क्यों चाहतीहै ॥ १३ ॥ ऐसा करनेसे संसारमें बडी भारी दुर्नामता होगी! जब महिपालको घबडाकर यह विलाप कलाप करते२ ॥ १४ ॥ सूर्य नारायण अस्ताचलके शिखर पर हो रहे और रात आई वह रात्रि चन्द्रमा करके शोभित होने पर भी दुःखित राजाको ॥ १५ ॥ अत्यन्त विलाप करनेके कारण आनन्द देने वाली रात न हुई उस समय वृद्ध राजा दशरथजी वारंवार गर्म २ श्वास लेने लगे ॥ १६ ॥ विलाप करते २ उनकी दृष्टि आकाशमें जा लगी। और कुछ देर पीछे बोले। हे तारा गणोंसे शोभायमान रात्रि! "मैं तुम्हारा प्रभात होना नहीं चाहता"॥१७॥ हे भद्रे! मैं हाथ जोडकर कहताहूं कि तुम मेरेऊपर प्रसन्नहो, अथवा शीघ्रही बीत जाओ क्योंकि मैं दया रहित ॥ १८ कुटिल कैकेयीका मुख देखनेकी इच्छा नहीं करता जिसके कारण से मुझे ऐसा कष्ट हुआ। ऐसा कहकर फिर राजानें कैकेयीके हाथ जोडे ॥ १९ ॥ राज धर्मके जानने वाले राजा फिर कैकेयीको प्रसन्न करनेकी इच्छा करने लगे और कहा कि साधुप्रकृति दुःखी दीन व आयुहीन तुम्हारेही वशहूं ॥ २० ॥ विशेषता राजाहूं अतएव हे भद्रे! अच्छे नितम्ब वाली मेरे ऊपर कृपाकर और प्रसन्नहो मैंने दुःखसे क्रोधमें आकर तुमको बहुत कडुवे वचन कहेहैं अथवा यह रामके अभिषेक की वार्त्ता मैंने निर्जनमें न कही है वल्कि सभामेंभी सबके सामने कहीहै ॥ २१ ॥ हे सुन्दरी! मैं बालक पनसे तुझको सरल हृदय वाली जान्ताहूं, तुम मुझपर प्रसन्न होवो; यदि यह नहो तो तुम्हीं प्रसन्नतासे रामचन्द्रजीको राजगद्दी देदो वह तुम्हारा दिया हुआ राज्य पावें ॥ २२ ॥ ऐसा करनेसे तुम्हारी अखंड कीर्त्ति सारे संसारमें छा जायगी और इस बातसे मैं रामचन्द्र, वशिष्ठादि गुरुजन और भरतजी परम प्रसन्न होंगे, इससे हे सुश्रोणि सुन्दर मुख वाली कृपा पूर्वक एक बार कह दीजिये ॥ २३ ॥ सरल

स्वभाव राजा दशरथजी इस प्रकार दीनहो विलाप करते २ रुदन करने लगे, उनके दोनों नेत्र लाल हो आये; परन्तु बुरे स्वभाव वाली कैकेयीने महा विलाप सुनकर राजाकी बातपर नेक ध्यान न दिया वह काहेको ध्यान देती, उसके मनमें तो कुछ औरही बसीथी ॥ २४ ॥ तदनन्तर महाराज दशरथ जीने जानाकि रानी हमारे वचनके विरुद्ध ही वचन कहतीहै, और कुछभी प्रसन्न नहीं हुई तो फिर मूर्च्छितहो पृथ्वीपर गिरपडे और दुःखके मारे क्षण२में दीर्घ निःश्वास त्याग करने लगे।और राजा भली भांतिं समझ गये कि रानी रामचंद्रको वन मेंही भेजा चाहतीहै॥२५॥

इतीवराज्ञोऽव्यथितस्यसानिशाजगामघोरं
श्वसतोमनस्विनः ॥ विबोध्यमानःप्रतिबो
धनंतदानिवारयामाससराजसत्तमः ॥ २६ ॥

इस प्रकार राजाको रोते कलपते विलपते रात बीतकर सवेरा हुआ। प्रभात का समय जानकर वैतालिक गण मंगल व स्तुतिके गीत गाने लगे परन्तु राजाको वह सब गीत इत्यादि अच्छे नलगे इससे तुरंत उन मंगल गायकों को गीत गानेसे निवारित किया ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अ० त्रयोदशःसर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशःसर्गः ॥

पुत्रशोकार्दितंपापाविसंज्ञंपतितंभुवि ॥
विचेष्टमानमुत्प्रेक्ष्यऐक्ष्वाकमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

पाप कर्म करने वाली कैकेयी पुत्र शोकमें ग्रसे हुये राजाको मूर्च्छित, पृथ्वीमें लोटता हुआ चेष्टा रहित देखकर यह बोली॥१॥हे महाराज! तुम मुझको वरदान देनेकी प्रतिज्ञाकर, मानो भयानक पापका कार्य करके इस समय दीन भावसे क्यों पडे हो? इसका क्या प्रयोजन है तुमको अपनी उसी सत्य प्रतिज्ञा पर टिकना चाहिये ॥ २ धार्मिक लोग सत्य हीको परम धर्म बत लातेहैं। सो मैं सत्य ही का आश्रय लेकरके वर देनेके लिये तुमको उत्साहित कर रहीहूं! कुछ अन्यथा नहीं करती ॥ ३॥ विचार करके देखोकि पहले समय में राजा शैव्यने सत्य ही के कारण

कबूतरके बदले बाजको अपने शरीर का मांस देदिया । जिसके कारण फिर राजा उत्तम गतिको प्राप्त हुये ॥ ४ ॥ फिर तेज वान राजा अलर्क ने वेदपाठी ब्राह्मणके मांगने पर अपने नेत्र निकाल प्रसन्न मनसे देदिये- थे ॥ ५ ॥ और कहाँ२तक बताऊं देखो समुद्र ने अपने गुरु अगस्त्य जीको वचन दिया है , उसी वचनका पालन करनेके अर्थ पूर्ण- मासीके दिन भी अपनी मर्यादासे अधिक वेला भूमिको अतिक्र- म नहीं करता ॥ ६ ॥ सत्यही एक मात्र ब्रह्महै, सत्य में हीं धर्म प्रतिष्ठितहै, सत्यही कभी नाश न होने वाला वेद है, और स- त्यहीके प्रभावसे परमगतिकी प्राप्ति हो जातीहै ॥ ७ ॥ यदि तु- म्हारी धर्ममें मति लगी हो, तौ सत्यकी मर्यादा रक्षा करो, और जो दो वर मुझे देनें कहेहैं उनको प्रसन्नतासे मुझे दे दो ॥ ८ ॥ तु- म्हारे धर्मको बढानेके लिये मैं ऐसा कहतीहूं मैं फिर भी तीन वार कहती हूं कि तुम रामचन्द्रको वनमें भेजदो ॥ ९ ॥ जो आप मे- री इस प्रार्थनाको न मानें तो मैं तुम्हारे ही आगे अपने प्राण परित्याग करदूंगी इसमें संशयनहीं ॥ १० ॥ राजा कैकेयीके ऐसे निःशंक वचन सुनकर ऐसे वचनमें बंध गये जिस प्रकार वामन जीके आगे राजा वलि बंधेथे और तीनपग देनाहीं पडीथी ॥ ११ ॥ उस समय राजाका हृदय महाव्याकुल होगया; और मुख मंडल पीला पडगया, उस समय राजा दोपहियोंमें लगी हुई धुरीकी समान चलाय मान चित्त हुये ॥ १२ ॥ देखतेही देखते उनके दोनों नेत्रोंमें व्याकुलता छागई अं- धेरी आगई तब राजाने बडे कष्टसे धीरज धर मनके वेगको रोक कैकेयी से कहा ॥ १३ ॥ हेपापिनी ! मैंने जो अग्निदेवके सामने मंत्र पढकर तेरा पाणिग्रहण कियाथा, अब इस समय तुझे तेरे गर्भ जात पुत्र भरत सहि- त मैंने त्याग किया ॥ १४ ॥ हेकैकेयी ! इस समय रात बीत कर प्रभात होनेआयाहै अब सूर्यका उदय देखतेही गुरुजन लोग आकर रामका अभिषेक करानेके लिये मुझसे शीघ्रता करावेंगे ॥ १५ ॥ राम राज्यका अभिषेक होनेके लिये जो सब सामग्री इकट्ठी की गईहै, सो यदि तू इस काममें बाधा डालेगी तौ सब उन्हीं वस्तु ओंके द्वारा रामचन्द्र मेरा प्रेत- कर्म करेंगे ॥ १६ ॥ हां एक बात मैं और भी कहे देताहूं कि तुम या तु-

म्हारा पुत्र कोई मेरे प्रेत कर्म या जल पिंडादि दान न करे क्योंकि तुमने रामचन्द्रका अभिषेक नहोने दिया॥ १७ ॥ मैंने जो रामचन्द्रका कमल की समान वदन मंडल प्रफुल्ल देखाहै अब किस भांति मैं उसे मलीन देख सकूंगा ॥ १८ ॥ इस प्रकार महात्मा राजा दशरथजी इस दुष्ट स्वभाव वाली रानी कैकेयी से ऐसा रो २ कर कहतेथे. कि चन्द्रमा और तारा गणों करके शोभित रात्रि वीती और प्रभात होगया ॥ १९ ॥ तदनन्तर पाप कर्म करने वाली कैकेयी जो कि वात चीत करने में बड़ी चतुरथी क्रोधमें भरकर राजासे परुष वचन बोली ॥ २० ॥ हे राजन्! तुम इस समय विषकी समान और शूल आदिकों की समान यह मर्म की भेदन करने वाली वातें क्या कर रहेहो जो हो तुम शीघ्रता से रामको अभी यहां बुलावा भेजो ॥ २१ ॥ मेरे बेटे भरतको राजगद्दीपर बैठाल, रामचन्द्रको वनको निकाल दो और मुझे सौतिहीन कर दो तब तुमभी सुख पावोगे क्यों वृथा अब रोते धोतेहो ॥ २२ ॥ राजा कैकेयीके यह वचन सुन वार२ चावुक खाये हुये घोडे की नांई प्रेरित हो मर्माहत होकर कैकयी से बोले ॥ २३ ॥ कि मैं तो अब धर्मके बंधनमें बंधही रहाहूं मेरी चेतना जाती रहीहै, इस समय मैं अपने वडे प्यारे पुत्र धर्मात्मा रामचन्द्रके देखने की इच्छा करताहूं इस समय जो तेरी इच्छा हो सो कर॥ २४॥ इतने में प्रातःकाल ही होगया सूर्य देव प्रकाशित हुये क्रम २ से शुभ नक्षत्र, शुभ घडी, और शुभ मुहूर्त, आये जिस समय में कि रामचन्द्रका अभिषेक होनेका था॥२५॥इतने में सब गुणवान वशिष्ठजी अपने बहुत चेलों समेत अभिषेक की सब सामग्री लिये लिवाये राजपुरी में आये ॥२६॥वशिष्ठजी-ने देखा कि राजपुरीके सब मार्गोंमें छिडकाव होरहाहै। सब कहीं देवालयों में व घर२पताकायें बंध रहीहैं बाजारों में सब पदार्थ भरेहैं सब दुकाने खुलीहैं सब मनुष्य रामचन्द्रजीके अभिषेकके उत्सवको जान आनंदमें मग्न हैं॥२७॥नगरीके सब मनुष्य यह चाह रहेहैं कि कब रामचन्द्रजीके अभिषेकका आनंद देखैं। चारों ओर,चन्दन, अगर, और धूप, दीप, आदि सुगंधित वस्तुओंका धुआं आरहाहै॥ २८ ॥ गुरु वशिष्ठजी इन्द्रपुरीकी समान ऐसी पुरीका देखते हुये ध्वजा, पताका करके शोभायमान राजमन्दिरमें

आये ॥ २९ ॥ यहांपर देखा कि हजारों ब्राह्मण लोग आये हुये अपना २ काम कर रहेथे इनके अतिरिक्त और पुरवासी और २ देशोंके मनुष्य घूम रहेथे यज्ञ जानने वालेभी ब्राह्मण सब बैठेथे, सभासद् कोई बैठे और कोई घूम रहेथे ॥ ३० ॥ तब महर्षि वशिष्ठजी और २ ऋषि गणोंके साथ उस भीडको भेद करते हुये महाराज दशरथजीके निकट जानेलगे ३१॥ उस समय उन्होने मनुष्योंमें सिंह राजाके प्यारे शोभन मूर्त्ति मंत्री सुमंत्र-जीको रनवाससे बाहर आते देखा ॥ ३२ ॥ तिन पंडित सुमंत्रजीसे महा तेजस्वी श्रीवशिष्ठजी बोले कि हे सुमंत्र तुम राजाको यह समाचार दोकि वशिष्ठजी आयेहैं ! ॥ ३३ ॥ तुम राजासे यहभी कह देना कि रामके अ-भिषेक करनेके लिये सोनेके घडोंमें गंगाजलभी भरवाकर लायेहैं और गूलरकी पीढी यज्ञमें राजकुमारके बैठनेके लिये हम लायेहैं ॥ ३४ ॥ सब प्रकारके बीज, सब प्रकारकी सुगंधियोंकी वस्तु और तरह २ के रत्न, शहत, दही, घी, खीलें और कुश, फूल, दूध ॥ ३५ ॥ सुन्दरी आठ कन्या, मतवाला सफेद हाथी, चार घोडे जुते हुये ऐसा एक रथ, उत्तम खड्ग; सुन्दर धनुष ॥३६॥ पालकी, चन्द्रमाको समान उज्ज्वल सफेद दो मोरछल, धतूरेके फूलके समान आकारवाला एक सोनेका पात्र जिसे भृङ्गार कहतेहैं (झारी प्रसिद्धहै) ॥ ३७ ॥ सोनेसे सींग आदि मढाया हुआ श्वेत बैल, चार डाढका एक महा बलवान सिंह केशरी ॥ ३८ ॥ ऊंचा सुन्दर सिंहासन, व्याघ्रका चमडा यज्ञ करनेके लियें ईंधन अग्नि सब नाना प्रकारके बाजे सब वसन भूषण धारण किये हुये वेश्यायें ॥ ३९ ॥ सब आचार्य औरभी ब्राह्मण हजारों गायें तोता, मैना, कबूतर आदि पक्षी व बनैले पाले हुये जीव नगर और देशके निवासी बनिये आदि रुज-गारू लोग अपनी २ समाजके साथ ॥ ४० ॥ इन्हे आदिले और बहुतसे प्रसन्न मन लोग नृपालोंके साथ प्रिय वचन कहते हुये आयेहैं यह सब लोग महाराज रामचन्द्रजीका अभिषेक देखनेको आयेहैं ॥ ४१ ॥ हे सु-मंत्र ! जिस्से कि पुष्य नक्षत्रमें रामचन्द्रजीको राज्याभिषेक होजाय, तुम इसके लिये प्रसन्न मनसे महाराज दशरथजीको जल्दी कराओ ॥ ४२ ॥ महाबलवान सूत सुमंत्रजी गुरुजीके ऐसे वचन सुन नृपति शार्दूल राजा दशरथजीकी स्तुति करते हुये राज मंदिरमें पैठे ॥ ४३ ॥ राजाकी अनु-

मतिसे सुमंत्रको रनवासमें सब कालमें प्रवेश करनेंकी आज्ञाथी, अतएव उनके रनवासमें जानेके समय किसी द्वारपालनें न रोका टोका क्योंकि यह राजाके हितकारीथे ॥ ४४ ॥ सुमंत्रजी राजाके समीप पहुँचे व उनकी ऐसी अवस्था देख परम पवित्र वाणी से स्तुति करने लगे जैसी स्तुति प्रभात समय राजाकी की जातीहै वैसेही सुमंत्रजी करने लगे ॥४५॥ राजाके मंदिर में जैसे पहले सुमंत्रजी उनकी स्तुति करतेथे इसी प्रकार सुमंत्र हाथ जोड राजाको प्रसन्न करने लगे ॥ ४६ ॥ हे महाराज! जैसे सूर्योदय होनेपर समुद्र नहाने वाले मनुष्योंको प्रफुल्लित करता है, अब वैसेही प्रातःकाल उठकर आप हम लोगोंको परमानंदित कीजिये॥४७॥ सुर सारथि मातलि जिस प्रकार सूर्य निकलनेके कालमें देवराज इन्द्रकी स्तुति करताहै और वह सब दानवोंको जीतते हैं वैसेही मैं इस समय आपको जगाताहूं सो आप उठो ॥४८॥ षडङ्ग वेद व मीमांसादि विद्या- जिस प्रकार स्वयंभू ब्रह्माजीको जगातेहैं है वैसेही मैं आपको जगाताहूं आप उठिये ॥ ४९ ॥ चन्द्रमा सूर्य जिस प्रकार उदय और अस्त द्वारा पृथ्वीके रहने वाले प्राणियोंको जगाते हैं वैसेहीमें इस समय आपको जगाताहूं आप सावधानहो ॥ ५० ॥ हें महाराज! मंगलाचार पूर्वक उठिये जिस प्रकार सुमेरु पर्वतसे सूर्य भगवान् का उदय होता है आपभी वैसेही राम राज्याभिषेकके महोत्सवमें उठिये ॥ ५१ ॥ रामचन्द्रजीके अभिषेकके लिये जिस २ वस्तुका प्रयोजन है वह सब इकट्ठी होगई है पुरवासी और नगरोंके रहने वाले, बनिये हाथ जोडे हुये द्वारे खडे हैं॥५२॥ और लोगोंकी बात तो एक ओर रही स्वयं वशिष्ठजी भी ब्राह्मणोंके साथ खडे आपकी राह देख रहेहैं, अतएव शीघ्रही उनको रामचन्द्रजीका अभिषेक करनेके लिये आज्ञा दीजिये ॥ ५३ ॥ क्योंकि जैसे बिना चराने वालेके पशु, बिना सरदारकी सैना, बिना चन्द्रमाके रात, और बैल बिना गायकी जो अवस्था होतीहै ॥ ५४ ऐसेही जिस राज्यमें राजा नहीं होता उस राज्यकी भी यही दशा होजातीहै, अर्थके जानने वाले राजा ऐसे समझते हुये सुमंत्रके शांति युक्त वचन सुन ॥ ५५ ॥ फिर शोक सागरमें डूबगये! फिर कुछ एक संभालकर रामचन्द्रके शोकमें ग्रसित हो सूतसे॥५६॥शोकके मारे लाल नेत्र किये श्रीमान् महाधार्मिक राजा बोले कि

सुमंत्र तुम्हारे स्तुति किये हुए वाक्य मेरे लिये अति कष्टके देने वाले हुये हैं ॥ ५७ ॥ सूत सुमंत्र राजाकी करुणामयी वाणी सुन और उनकी दीन दशा देख हाथ जोडकर उस स्थानसे हठ कुछ एक दूर जाकर खडेहुये ॥ ५८ ॥ तब अपने काम साधने वाली रानी कैकेयी महाराजको शोकाकुल और बोलने में असमर्थ देखकर सुमंत्रको बुलाकर बोली ॥ ॥ ५९ ॥ हे सुमंत्र ! महाराज रामचन्द्रजीके अभिषेकके उत्सवमें ऐसे मग्न हुये कि सारी रात नहीं सोये । इससे मारे परीश्रमके थक कर अब सो रहेहैं ॥ ६० ॥ इस समय तुम शीघ्र जाकर यशवान रामचन्द्रजीको यहां बुला लाओ तुम्हारा मंगलहो तुम इस विषयमें कुछ विचाराविचार मतकरो ॥ ६१ ॥ तब सुमंत्रने रानीको उत्तर दिया कि विना महाराजकी आज्ञा पाये मैं किस प्रकार जा सकताहूं ! तब मंत्रीके ऐसे वचन सुनकर महाराज दशरथजी बोले ॥ ६२॥ कि हे सुमंत्र ! मैं प्रिय पुत्र रामके देखने की इच्छा करताहूं अतएव तुम उनको जाकर अपने साथ बुलालाओ । तब सुमंत्र बहुत अच्छा कह बहुत हर्षित हुये ॥ ६३ ॥ आज्ञा पातेही सुमंत्रजी रामचन्द्रजीको लिवा लानेके लिये वहांसे चले और मार्गमें सोचा कि क्या कारणहै जो कैकेयीने मुझसे रामचंद्रको जल्दी बुला लानेके लिये कहा ॥ ६४ ॥ कैकेयीका घबराहट देखकर सुमंत्रने समझा कि रानी कैकेयी रामका अभिषेक देखकर घबरागईहै और राजा थकगयेहैं यह विचार कर सुमंत्र फिर कुछ हर्षित हुये ॥ ६५ ॥ वह इस प्रकार अपने मनमें निश्चयकर समुद्रमें टिके हुये कुंडकी समान सुन्दर रनवाससे रामचन्द्रको बुलानेके लिये चले ॥ ६६ ॥

ततःपुरस्तात्सहसाविनिःसृतोमहीपतेर्द्वारगता न्विलोकयन् ॥ ददर्शपौरान्विविधान्महाधना नुपस्थितान्द्वारमुपेत्यविष्ठितान् ॥ ६७ ॥

शीघ्रतासे द्वारे आकर देखा तो राजपौरपर पुर, देश, नगर वासी खडे हैं और अनेक देशोंके महाजनभी इकट्ठे हैं । और सब लोग राजद्वार पै ठौर २ बैठते जातेहैं ॥ ६७ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्या काण्डे चतुर्दशः सर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः ॥

तेतुतांरजनींमुष्यब्राह्मणावेदपारगाः ॥
उपतस्थुरुपस्थानंसहराजपुरोहिताः ॥ १ ॥

वेदपारग ब्राह्मण लोग रात्रि वीतनेपर राजपुरोहित वशिष्ठजीके साथ संध्या वंदनादि कर्म करने लगे ॥ १ ॥ व जो राजसेवक सेनापति व बजारके निवासियोंमें मुखियाथे वे सब रामचन्द्रजीके अभिषेकार्थ प्रफुल्ल मनहो एक दूसरेसे बातें करने लगे ॥ २ ॥ जबतक विमल सूर्यका उदय हुआ, पुष्य नक्षत्र आया, कर्क लग्न उपस्थित हुई, जिसमें कि रामचन्द्रजीका जन्म हुआथा ॥ ३ ॥ तब उत्तम २ ब्राह्मणोंने रामचन्द्रजीके अभिषेकार्थ कंचनके घड़े जलसे भरे हुये व बैठनेके लिये सजाकर भद्र पीठ एकत्र किया ॥४ ॥ सब भांतिसे सजा सजाया रथ दिपता हुये व्याघ्रके चमडेसे लपेटा हुआ आया और गंगा यमुनाके पवित्र संगमसे जल आया ॥ ५ ॥ इसके अतिरिक्त और पुण्यकी देने वाली नदियें कुण्ड कुआँ ताल आदि पूर्वकी तरफको वहने वाले,ऊपरको बहने वाले वंकिमाकार वहने वाले इत्यादिहैं जो जलसे पूर्णहैं ॥६॥ तिनसे जल लाये, और समुद्रसे जल लाये, व, शहत, दही, घी, लाजा, खीलें, फूल, कुश, दूध ॥ ७ ॥ सब भूपण पहिरे आठ सुन्दरी कन्या, एक मतवाला हाथी, दूध निकलने वाले वृक्षोंके पत्तों समेत जल सहित सोनें चांदीके घड़े ॥ ८ ॥ कमल पत्र पुष्प संयुक्त सुन्दर जलसे भरे शोभायमान होरहे हैं चंद्रमाकी किरणोंकी समान उज्ज्वल सोनेकी डंडी लगी रत्न जिनमें जडे हुये ॥ ९ ॥ ऐसे चमर रामचन्द्रजीके अभिषेकार्थ प्रस्तुतहैं व चन्द्र मंडलहीके समान सफेद छत्र अति दिपता हुआ अभिषेकके लिये तैयारहै ॥ १० ॥ एक सफेद बैल सजा हुआ कान्तिमान अभिषेककी सामग्रीमें मुख्य, श्वेत अश्व मद जिसके निकल रहा ऐसा हाथी, यह सब अभिषेकके लिये मौजूदहैं ॥ ११ ॥ सब प्रकारके बाजे बजाने वाले भाट लोग वंशकी प्रशंसा करनेके वास्ते, इसके सिवाय और सूत मागधादि लोगभी जो सब सामग्री इक्ष्वाकु वंशीय राजाओंके अभिषेकके स-

मय प्रयोजनीय होतीहैं ॥ १२ ॥ वह सब प्रकारकी सम्पूर्ण सामग्री राज कुमार रामचन्द्रजीके अभिषेकार्थ इकट्ठी करके लेकर सब आये हुये राजाकी आज्ञासे एकत्र हुयेथे ॥ १३ ॥ जब राजाको न देखा तब यह सब ब्राह्मण गण आपसमें कहने लगे, हम लोगोंके आनेका समाचार कौन राजासे कहे, देखिये राजा अबलों नहीं आये, और देखो इधर सूर्य भगवानभी निकल आये ॥ १४ ॥ बुद्धिमान् रामचन्द्रजीके अभिषेकका सब सामान होरहाहै पर राजा दशरथजी अब तक नहीं आये न जानें कहां गये वह सब लोग आपसमें इस प्रकार कह रहेथे ॥ १५ कि इतनेमें सुमंत्रजी वहां आन पहुँचे और सबसे कहाकि मैं महाराजकी आज्ञासे रामचन्द्रजीको शीघ्र बुलानेके लिये जाताहूं ॥ १६ ॥ फिर बडे २ राजा महाराजोंसे सुमंत्रने कहा कि आप लोग सुख पूर्वक बैठिये राजा व राजकुमार दोनों जन आकर आप लोगोंका सत्कार करैंगे । मैं तुम्हारी तरफ से राजाजीसे कुशल पूछूंगा ॥ १७ ॥ राजासाहब जागतेहैं पर बाहर नहीं निकले इसका कारणभी आप लोगोंकी ओरसे पूछैंगे कि क्यों महाराज बाहर नहीं आये ऐसा कह बहुत प्राचीन कालकी बातोंके जानने वाले सुमंत्रजीने फिर राजाके अंतःपुरमें विना रोक टोक राजमंदिरमें प्रवेश किया और महाराज दशरथके वंशकी बड़ाई करनेको उनके निकट गये॥१८॥१९॥ उस समय महाराज दशरथजी कैकेयीके पासथे और वहां जानेकी सुमंत्रको कभी रोक टोक नथी उस मंदिरको गये और परदेकी आड़में धीरे खडे हुये ॥ २० ॥ राजाको आशीर्वाद देकर प्रसन्न करने लगे और बोले कि हे महाराज ! चंद्रमा, सूर्य, रुद्र, कुबेर, ॥ २१ ॥ वरुण, अग्नि और इन्द्रादि देव गण आपको विजय लक्ष्मी प्रदान करैं इस समय रात्रि बीतकर शुभ सबेरा हो आयाहै ॥ २२ ॥ हे चक्रवर्ती महाराज ! अब उठकर प्रातःक्रियादि समाप्त कीजिये ब्राह्मण लोग. सेनापति और बनियें सबही लोग द्वार पर आये हुयेहैं ॥ २३ ॥ वह सब लोग आपका दर्शन करना चाहतेहैं और इसहीके लिये यत्न कर रहेहैं अतएव आप जागिये ऐसे मंत्रके जानने वाले सुमंत्रके स्तुति करनेपर ॥ २४ ॥ राजा दशरथजीने जागकर सुमंत्रसे यह वचन कहे कि हे सुमंत्र! मैंने तुमको यहां पर रामके लानेकी आज्ञा दीथी ॥ २५ ॥ सो तु-

मने किस कारणसे मेरी आज्ञाका प्रतिपालन नहीं किया । मैं इस समय सोता नहींहूं तुम मेरी आज्ञासे जल्दी रामको यहां पर लावो ॥ २६ ॥ इस प्रकारसे राजा दशरथजीने जब फिर सुमंत्रसे कहा । तब सुमंत्र राजाके वचन सुनकर और शिर नवा उस आज्ञाको शिरपर धारण कर॥२७॥ बडी बडाई करके रनवाससे चले और जानाकि आज रामको राज्य मिलैगा । सुमंत्रजी विचित्र ध्वजा पताका लगे हुये राजमार्गमें उपस्थित हो ॥ २८ ॥ इधर उधर देखते हुये प्रसन्नतासे जाने लगे । मार्गमें हरेक मनुष्यके मुखसे रामचन्द्रजीके विषयकी वार्त्तासुनी ॥ २९ ॥ जिसमें लोकके आनंद देनेवाली कौशल्यानंदनके राज्याभिषेककी बातें भरी हुई थीं कुछ दूर जाकरही उन्होंने कैलाश पहाडकी समान ऊंचा व उज्ज्वल ३० रामका मन्दिर देखा । जो कि इन्द्रके भवनकी समान सब सामग्रीसे भरा पुरा, बडे २ किवांड जिसमें लगे हुये सुवर्णकी सैकडों मन मोहने वाली वेदियें जिसमें बनी हुईं॥३१॥सुवर्णकीही सैकडों मूर्त्ति जिसमें धरी हुई प्रसादके वाहरी दरवाजोंपर प्रबाल और मणि मुक्ता जडे हुये देखनेंमें शरदके मेघकी समान निर्मल और सुमेरु पर्वतकी कन्दराके तुल्य चमकदार॥३२॥ सोनेके फूलोंकी माला मोती व मणियोंसे शोभित्त चन्दन व अगरके मिलाये हुए जलसे छिरका छिरकाया हुआ ॥ ३३ ॥ मलयका शिखर जिस प्रकार सुगन्धिवान होताहै यह स्थानभी वैसेही सुगन्धि विस्तार कर रहाथा, और, स्थान २ में मोर व सारस गण अनेक प्रकारकी किलोलें कर रहेथे ॥ ३४ ॥ जगह २ सोने, चांदी आदि धातुओंकी बनाई व्याघ्रोंकी मूर्त्तिथें विराजमानथीं । इनके बनानेकी कारीगरीको देख देखनेके वालेके मनमें आश्चर्य और नेत्रोंकी गति नहीं पहुँचतीथी ॥ ३५ ॥ यह रामचंद्रजीका भवन चंद्रमा सूर्यकी आभाके तुल्य व कुबेर मन्दिरके समान. इन्द्रके गृहकी सदृश अनेक प्रकारके पक्षियों से शोभित ॥३६॥ सुमेरु पर्वतकी चोटीके आकार वाला सुमंत्रजीने देखा। वहां बहुत देशोंके व नगरोंके निवासी भेंट व उपहार लिये हाथ जोडे खडेथे ॥ ३७ ॥ सब लोक रामचन्द्रजीके यौवराज्याभिषेकके लिये भेंटे लिये तैयार खडे थे वे सब यही चाह रहेथे कि कब अभिषेक हो सब अच्छे वस्त्र धारण कियेथे ॥ ३८ ॥ यह मंदिर महा मेघकी समान ऊंचाथा व अनेक प्र-

कारकी मणियोंसे सजा सजाया और बहुत दास दासियोंसे भरा पुरा हु-आ ॥ ३९ ॥ सो ऐसे मंदिरके देखनेको। घोडे जुते हुये रथमें बैठे हुये सुमंत्रजी भीडसे भरे हुये राज मार्गको शोभित व पुरवासियोंके हृदय-को पुलकित करते हुये उस मंदिरकी प्रथम डचौढीपर पहुँचे ॥ ४० ॥ जहां अनेक प्रकार का धन स्थान २ पर रक्खाथा, इसे देख सुमंत्र-जी बहुत ही हर्षित हुये। शचीनाथ इन्द्रका भवन जिस प्रकारकाहै वै-सेही रामचन्द्रजीका राज मंदिर मृग और मोरोंसे शोभितहै ॥ ४१ ॥ अ-नन्तर सुमंत्रजी कैलाश पर्वतकी तुल्य शोभा करके युक्त स्वर्गकी समान रमणीक कई एक फाटकोंको, नांघ, व रामचन्द्रजीके आधीनके बहुत मनुष्योंसे साक्षात् करते हुये फिर उनसे साक्षात् करकरा सबसे पीछे रामचन्द्रजीके अन्तःपुरमें प्रवेश करते हुये ॥ ४२ ॥ वहां पहुँचकर सु-ना तो सब लोग रामचन्द्रजीके अभिषेकहीके मंगलार्थ वार्त्ता कर रहेथे, उस वार्त्ताको सुन सुमंत्र बहुत आनन्दित हुये वह सम्पूर्ण लोगोंकी वार्त्ता रामचन्द्रके मंगलके निमित्तथी ॥ ४३ ॥ रामचन्द्रजीका वास भवन बहु-तही रमणीक इन्द्र धामकी समान शोभित और मृग पक्षियोंके कलरवसे शब्दाय मान वह सुमेरु पहाडकी समान ऊंचा और अपनेही प्रकाशसे दिपता हुआ सुमंत्रजीने देखा ॥ ४४ ॥ वहां दरवाजेपर असंख्य अनेक देशोंके रहने वाले नगर वासी अपनी २ सवारियों परसे उतर २ कर क-रोडों रुपयोंकी सामग्री भेंटमें लिये हाथ जोड़े द्वारपर खडेहैं ॥ ४५ ॥ सुमंत्रजीने वहांसे आगे बढकर देखा कि मेघके समान श्याम वर्ण पर्वत-की समान आकार वाला बडे शरीर वाला अंकुशका न सहने वाला श-त्रुञ्जय नाम रामचन्द्रजीका हाथी शोभायमानहै ॥ ४६ ॥ और उससे आगे चलकर देखा तो बहुतसे महावत, अश्वपाल, व रथवान लोग अ-पने २ हाथी, घोड़े, रथ आदि सुधारे, व सजाये हुये तैयार खडेहैं उन स-बको वहांसे हटाताहुआ सब वस्तुओंसे पूरित अंतःपुरमें उन लोगोंके साथ सुमंत्रजीने प्रवेश किया ॥ ४७ ॥

ततोद्रिकूटाचलमेघसन्निभंमहाविमानोपम
वेश्मसंयुतम् ॥ अवार्यमाणःप्रविवेशसार

थिःप्रभूतरत्नंमकरोयथाऽर्णवम् ॥ ४८ ॥

उस पर्वतके कँगूरोंके व मेघोंके समान ऊंचे सैकडों विमानोंकी समान शोभायमान सैकडों मन्दिर जहांहैं तहां विना रोक टोक सुमंत्रजी प्रवेश करते हुये जैसे कि मकर रत्नोंसे पूरित समुद्रमें घुसे ॥४८॥ इत्यार्षे श्रीम०वा० आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे पंचदशः सर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः ॥

सतदंतःपुरद्वारंसमतीत्यजनाकुलम् ॥
प्रविविक्तांततःकक्ष्यामाससादपुराणवित् ॥ १ ॥

तदनन्तर सारथी भीडसे भरे हुये जनानेके द्वारको नांघ सब प्रकारके कुलाहलसे शून्य रामचन्द्रजीके अन्तःपुरके फाटकपर पहुँचे ॥ १ ॥ उस फाटकपर कुंडल धारी विश्वासी द्वारपाल लोग धनुष बाण धारण किये पहरा दे रहेथे सबके सब युवा व कुंडलादि धारणकर रहे मनसे अपने स्वामीके कार्यमें अनुरक्तथे ॥ २ ॥ इनसे आगे चले तो देखा कि वृद्ध लोग गेरुवा वस्त्र पहिरे हाथों में बेंत लिये सब भूषण वसन पहरे हुये स्त्रियोंकी रक्षामें नियुक्तथे ॥ ३ ॥ उन सबोंने देखा कि महाराजके मंत्री सुमंत्रजी प्रफुल्लित हुये चले आ रहेहैं, सो वे सब रामचन्द्रजीके प्रिय कार्य करनेवाले तोथेही, सब एक साथ अपने २ आसनोंसे उठ खडे हुए ॥४ ॥ तब उस समय सुमंत्रजीने उन लोगोंसे विनीत भावसे कहाकि " सुमंत्र द्वारे पै खडेहैं " तुम लोग यह संवाद राजकुमार रामचन्द्रजीसे शीघ्र निवेदन करो ॥ ५ ॥ यह श्रवणकर उन लोगोंने जो रामका प्रिय चाहतेथे बहुत शीघ्रताके साथ जाकर सस्त्रीक रामचन्द्रजीसे कहा कि सुमंत्रजी आये हैं और द्वारपै खडेहैं ॥ ६ ॥ पिताके प्यारे रामचन्द्रजीने जाना कि सुमंत्र पिताके पठाये हुये आये हैं । और उनके अन्तरंग मंत्रीहैं ! इस कारण तत्काल ही दूतोंके द्वारा उनको घरमें बुलालिया ॥ ७ ॥ सुमंत्रजीने रामचन्द्रजीके गृहमें प्रवेश करकै देखा कि अनेक प्रकारके बिछोने विछाये सोनेके पलँग पर कुबेर की नाईं रामचन्द्रजी बैठे हैं ॥ ८ ॥ उनके शरीरमें वराहके रुधिरकी समान लाल, पवित्र सुगन्ध वाला, रक्त चं-

दन लग रहाथा ॥ ९ ॥ उनकी एक ओर बगलमें चमर लिये जानकी जी खडीथीं उस समय देखनेसे ऐसा बोध होताथा मानो चित्राके सहित चन्द्रमा शोभित है॥१०॥रामचन्द्रजी अपने तेजसे दुपहरके सूर्यकी नाईं तप रहेथे देखते ही सुमंत्रजीने उनके चरणोंमें विनय पूर्वक प्रणाम किया ॥ ११ ॥ प्रणाम करकै सुमंत्रजीने सुख सेजपै बैठे प्रसन्न रामचन्द्रजीसे हाथ जोडकर यह वार्ता कही ॥ १२ ॥ कि हे रामचन्द्रजी ! कौशल्याजी अब सुप्रजा हुईं! देवी कैकेयी और महाराज दशरथजीनें आपको देखने-की इच्छाकी है अतएव विलम्ब न करकै अभी मेरे साथ चलिये॥ १३ ॥ सुमंत्रजीसे यह बात सुनकर मनुष्यों में सिंह समान महा द्युतिमान् राम-चन्द्रजी बहुत प्रसन्न हुये सुमंत्रके वचन मानकर अपने निकट ही बैठी हुई प्रिया जानकीसे कहा ॥ १४ ॥ हे देवि जानकी ! हमारी माता कै-केयी ॥ और पिताजी इकट्ठे होकर निश्चयही हमारे अभिषेकके विषयमें कोई सलाह करतेहैं ॥ १५ ॥ मेरी समझ में तो ऐसा आताहै सुमित्राकी हितकारिणी चतुर माता कैकेयी महाराजका अभिप्राय समझकर मेरा प्रिय कार्य करनेके लिये राजाको जल्दी करा रहीहै ॥ १६ ॥ वह कैकय देशके राजाकी पुत्री मेरी माता सदा मेरा मंगल चाहने वालीहै, ऐसा ज्ञा-त होताहै कि मेराही प्रिय करनेको उसने महाराजसे कुछ मांगाहै ॥१७॥ हमारे परम प्यारे पिता महाराजने व माता कैकेयीने जो मेरे पास हमारे अर्थ काम करने वाले सुमंत्र जीको पठाया । इस्से मेरा बडाही भाग्य है ॥ १८ ॥ जिसप्रकारकी सभा अंतःपुरमें राजाके निकटथी, वैसाही मेरा प्रियकार्य करने वाला दूत मेरे पास आया इस्से अब निश्चयही पिताजी हमें यौवराज्यमें अभिषिक्त करैंगे ॥ १९ ॥ सुन्दरि! तुम अपनी संगनियोंको साथलेकर यहां सुखसे रहो और मैं जितना शीघ्र होसकेगा महाराज पिताजीके दर्शन कर अभीआताहूं ॥ २० ॥ पति अनुगामिनी कमल के समान नेत्रवाली सीताजी यह वचन श्रवण करकै अपने पतिका मंगल साधन करनेके लिये उनके साथ द्वारतक चली आई ॥ २१ ॥ फिरजाने के समय कहा कि प्रजापति ब्रह्माजीनें जिसप्रकार सुरपति इन्द्रको सुरराजमें अभिषिक्त कियाथा वैसेंही महाराज ब्राह्मणादिकों सहित यौवराज्यमें अ-भिषेक करकै पीछे राजसू यज्ञ कर आपको अपना पूरे राज्यका अधि

कारी करदें ॥ २२ ॥ युवराज्य प्राप्त करनेके लिये व्रतधारण किये हुये और मृग चर्म धारण किये हुये व दीक्षित मृग शृङ्ग हाथमें लिये हुये आपको देखकर मैं अपना अहोभाग्य समझूंगी कि मेरा वड़ा भाग्यहै किमैं आपकी सेवा कर सकूंगी ॥ २३ ॥ अब इस समय यह प्रार्थनाहै कि, इन्द्र, तुम्हारे पूर्व, यम तुह्मारे दक्षिण, वरुण पश्चिम, और कुवेर उत्तर दिशामें रक्षाकरें ॥ २४ ॥ सीताजीके मंगलाचरण करने पर सीतापति रामचंद्रजी सीताजीसे विदालेकर सुमंत्रके साथ अपने वास भवनसे निकले ॥ २५ ॥ जिस प्रकार पर्वतोंकी कन्दरामें शयन करने वाला सिंह इधर उधर देखता गुहामेंसे निकलताहै वीरकेशरी रामचंद्र जीभी उसी प्रकार अपने भवनसे बाहर आये। वहां आकर देखा तो द्वारपर हाथ जोडे लक्ष्मणजी खडेहैं ॥ २६ ॥ जब बीचके फाटक पर आये तो देखाकि बहुतसे बन्धु वान्धव जन भेंटलिये दर्शनार्थ खडेहैं तब रामचंद्रजीने सबका सन्मान किया वरन सबकी ओर निहारा ॥ २७ ॥ और फिर अग्निकी समान चमकते हुये दिव्य रथपर बैठे इस रथमें व्याघ्रके चमडेका ओहार पडा हुआथा ऐसे रथमें पुरुषव्याघ्र रामचंद्रजी बैठे ॥ २८ ॥ इस रथका शब्द वादलके गरजनेकी समानथा, और मणि व सोनेसे यह विभूषितथा । व अपने तेजसे सूर्यके समान सबकी आंखैं चकाचौंधि पाताथा ॥ २९ ॥ जो अश्व उसमें नहे हुयेथे वे हथिनी के बच्चेसे कुछही कम ऊंचेथे।वह रथ देखनेमें इन्द्रके रथकी नाई शीघ्र चलने वालाथा ॥ ३० ॥ जिस समय रामचंद्रजी अपने तेजसे दीप्तिमान उस रथमें बैठकर चले जैसे कि आकाशमें शब्दायमान वादल चलें। वैसे ही इस रथका शब्द होताथा ॥ ३१ ॥ जिस समय रामचन्द्रजी उस रथमें बैठकर बाहर आये उस समय वह मेघसे निकले हुये चंद्रमाकी समान शोभा धारण करते हुये व उसी रथ पै विचित्र चमर हाथमें लिये हुये लक्ष्मणजी उनके अनुवर्ती हुए ॥ ३२ ॥ बडे भ्राताकी रक्षा करनेके लिये लक्ष्मण उनके पीछे उसी रथपर चढे चले जातेथे। इस समय तुमुल वेगसे रथकी गति और उसका घर्घर शब्द उठा ॥ ३३ ॥ जो अश्व रामचन्द्रजीके रथमें जूतेथे उनके अतिरिक्त और हजारों पर्वताकार हाथी घोडे रामच-

न्द्रजीके पीछे जाने लगे बहुत लोग उनके पीछे चले ॥ ३४ ॥ चन्दन लगे हुये अगरसे शोभित अगणित वीरगण ढाल तलवारादि हथियार हाथमें लिये रामचन्द्रजीका यश बखानते उनके पीछे २ चले ॥ ३५ ॥ साथ २ खड्ग और धनुष बाण धारण किये हुये शूर वीरगण आगे बढे उस समय चारों ओर बाजोंका शब्द और बन्दिगणोंकी श्रवणानंद दायक स्तुति गाई जातीथी ॥ ३६ ॥ वीरगणोंके सिंह नाद करनेसे दशों दिशा कांपने लगीं रूप लावण्यवती ललनायें सोलहों शृंगारसे सज धजकर अपने घरके झरोंखो व खिडकियोंमें बैठ२ ॥ ३७ ॥ रामचन्द्रजीके ऊपर फूलोंकी वर्षा करने लगीं, व हजारों रूपवती कामनियें कि जिनके सबही अंग सुन्दरथे, कोई कोठेकी छतपर चढी कोई अपने द्वारोंसे झाँकती हुई रामचन्द्रजीको प्रसन्न करनेके लिये अति मन मोहन वचनोंसे स्तुति करतीथी ॥ ३८ ॥ वह सब ही स्त्रियें झरोंखों और छत्तोंपर बराबर यही कहतीथीं कि आज महारानी कौशल्याजी रामचन्द्रजीका अभिषेक देखकर, निश्चय फूले अंगोंको न समावेंगी ॥ ३९ ॥ हम जानतीहैं कि ललना रत्न सीताजी सर्व स्त्रियोंमें श्रेष्ठ हैं, पहले जन्ममें विना कुछ सुकृत किये ऐसा सौभाग्य नहीं मिल सकता आज वह तुमको पितासे राज्य प्राप्त देखकर सफल मनोरथ होंगी॥४०॥हम सब भली प्रकार जानती हैं कि सीताजी रामचन्द्रजीके हृदयका धनहैं ! सखी कहनेमें तो सीताजीने ठीक २ ही पहले जन्मके पुण्यका परिचय दियाहै निश्चयही जानकीनें पहले जन्ममें बडा पुण्य कियाहै ॥ ४१ ॥ रोहिणी जिस प्रकार चंद्रमाको अनुगामिनीहै, वैसेही श्रीसीताजी रामचन्द्रजीकी जीवना धारहैं, घवरहरे व कोठोंपर चढकर श्रेष्ठ स्त्रियें यह कह रहींथीं सो यह सब रामचन्द्रजी प्रसन्न होते सुनते हुये राजमार्गमें चले जातेथे ॥ ४२ ॥ स्त्रियोंके अतिरिक्त स्थान २ में राज मार्गमें सवारी देखनेके लिये जो मनुष्य आयेथे उनकोभी वार्त्ता, व प्यारी वाणी जो प्रसन्न होकर सब कह रहेथे अपने अधिकारके विषयमें सुनते २ प्रसन्न होते हुये रामचंद्रजी चले जातेथे ॥ ४३ ॥ जाते २ महाराज रामचंद्रजी एक बहुत भारी भीड भरे स्थानमें पहुँचे वहां सबके मुखसे यही सुनाकि यह राजकुमार राज भवनमें राज्याभिषेक पानेके लिये पिताके गृहको जातेहैं जब यह राजा हो

जायगे तब हमारे सुखकी सीमा नहीं रहेगी ॥ ४४ ॥ यह निःसन्देह सब राज्यका भार पावेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं औरइनका राज्य पाना हमारे लिये बहुत लाभदायक होगा, क्योंकि इनके अधिकारमें कभी किसी प्रकारका अनिष्ट नहीं देखना पडेगा ॥ ४५ ॥ अति शब्द करने वाले हाथी, घोडे और सूत, मागध आदि लेकर रामचंद्रजीके वंशका यश गाते चले जातेथे व रघुनाथजीके सब साज समाजके साथ कुवेरजीकी समान शोभित होते चले जातेथे उस समय वारीकी शोभाको देख पुर नर नारी सब प्रमुदित होतेथे ॥ ४६ ॥

करेणुमातंगरथाश्वसंकुलंमहाजनौघैःपरिपूर्ण चत्वरम् ॥ प्रभूतरत्नंबहुपण्यसंचयंददर्शरा मोविमलंमहारथम् ॥ ४७ ॥

हाथी वह दन्तेले हाथी, रथ घोडों व महावीरोंके साथ जाते २ भरे हुये मार्गमें रत्नोंके ढेर पर्वतके शिखरके समान शोभायमानहैं ऐसे बहुत पुण्य संचय किये हुये मार्गको रामचंद्रजीने देखा ॥ ४७ ॥ ॥ इत्यार्षे श्री० वा० आ० अ० षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः ॥

सरामोरथमास्थायसंप्रहृष्टसुहृज्जनः ॥ पताकाध्वजसंपन्नंमहार्हागुरुधूपितम् ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजी रथपर चढे हुये राजमार्गमें प्रवेश करते हुये तो देखा कि सब लोग प्रसन्नहैं सब जगहमें कपूर और धूपके धुयेंसे सुगन्धि फैल रहीहै और स्थान २ में ध्वजा पताका बँध रहीहैं ॥ १ ॥ अनेक प्रकार मनुष्योंसे भरा हुआ आकाशके छूने वाले मन्दिरसे शोभायमान,जगह २ धनके ढेरोंसे भरपूर देखते हुए ॥ २ ॥ अगर धूप दीपादि सुगन्धियों करके सुगन्धित राज मार्गमें रामचन्द्रजी चले जातेथे, चन्दन,अगर व और २ भी सुगन्धित वस्तुयें राज मार्गके किनारोंपर छिडकी हुईथीं ॥ ३ ॥ उत्तम २ सुगन्धित द्रव्योंके अतिरिक्त स्थान २ में दुकानोंपर रेशमी

वस्त्रोंके ढेरके ढेर मन मोहित कर रहेथे अनविधे मोतियोंके व स्फटिक मणियोंके समूहके समूह ॥ ४ ॥ राजमार्गमें शोभायमानथे व इसके सिवाय राजमार्गमें फूलभी धरेथे, और मंगलाचारके लिये अनेक प्रकारकी मंगल वस्तुयें व भोजनकी वस्तु रक्खीथीं ॥ ५ ॥ सुरलोकमें सुरपतिकी नाईं रामचन्द्रजीने, दही, चावल, खीर, और खीलोंकी अंजुलीके द्वारा और धूप, अगर, चंदनसे राजमार्ग समाकीर्ण देखा ॥ ६ ॥ अनेक प्रकार मालायें अनेक प्रकारको सुगन्धित वस्तुओंसे अर्चित हुए मार्गमें असंख्य मनुष्य रामचंद्रजीके दर्शन कर उनको आशीर्वाद देने लगे! इस प्रकारकी अवस्थाको देखकर राज कुमारके बंधु बान्धवोंके आनन्दकी सीमा न रही ॥ ७ ॥ कृपादृष्टिसे सबके ऊपर अनुग्रह करते हुए रामचंद्रजी चले व कोई वृद्ध लोग ऐसा कहकरभी आशीर्वाद देतेथे कि हे राजकुमार ! जैसे तुम्हारे पितामह प्रपिता महादिकोंने आचरण कर हम लोगोंका पालन कियाहै ॥ ८ ॥ ऐसेही आप राज्याभिषेक पाकर हम लोगोंका पालन कीजिये, तुम्हारे पूर्व पुरुषोंके अधिकारमें हम जिस प्रकार सुखीथे, वैसेही हम सब आपके अधिकारमें सुखीहों! इन वृद्धोंकी वाणी सुन और लोग बोले कि इसमें कुछ सन्देह नहीं कि जैसे हम लोग इनके पिता पितामहादिकोंके राज्यमें पालेगये उससे अधिक सुख रामचंद्रके राज्यमें पावेंगे ॥ ९ ॥ वह सब रामचन्द्रजीसे यहभी कहने लगे कि अधिक क्या कहैं कि यदि आपको अभिषिक्त पिताजीके भवनसे आते राज मार्गमें देखें तो हम लोग इस लोक और परलोकके सुखकीभी चाहत नहीं रखते ॥ १० ॥ वास्तवमें अमित तेजवान रामचंद्रजीके अभिषेकसे अधिक और हमारी प्रिय वस्तु कुछभी नहींहैं ॥ ११ ॥ अनेक सुहृदोंके मुखसे ऐसी प्रशंसा सुन्ते हुये रामचंद्रजी मार्गमें चले जातेथे क्योंकि अपनी प्रशंसा सुनकर प्रसन्न होना सज्जनोंको उचित नहीं, इसही कारण श्रीरामचंद्रजी प्रसन्नही होते न अप्रसन्नही किन्तु उदासीनकी भांति राजमार्गमें चले जातेथे ॥ १२ ॥ यद्यपि रामचंद्रजी उन सब लोगोंकी दृष्टिसे बहुत दूर निकल गये तथापि कोईभी मन और नेत्रोंकी दृष्टिको उनसे अलग नहीं कर सका ॥ १३ ॥ फलतः जिस किसीनें रामचंद्रजीका दर्शन न किया अथवा रामचंद्रजीने जिसको न देखा वह स-

जनोंके निकट निन्दाका अधिकारी होताहै व उसका आत्माभी उसकी निन्दा करताहै ॥ १४ ॥ धर्मात्मा रामचंद्रजी चारों वर्णोंको सम दृष्टिसे देखतेथे इससे वर्ण ज्ञानकी कुछ आवश्यकता नहीं जिसका जन्म संसारमेंहै उसे अवश्यही श्रीरामचंद्रजीका भजन करना चाहिये इसीकारण चारों वर्णोंके लोग रामचंद्रमें वडा प्रेम करतेथे ॥ १५ ॥ फिर रामचंद्रजी चौराहे, अच्छे २ वृक्ष, देवालय व सभा आदिके स्थान व उन सबको दाहिनी ओर छोड़ते हुए राजभवनमें पहुँचनेके लिये गमन करने लगे१६॥ उन्होंने जाते २ देखा कि राज धवरहर मेघाकार शोभा पारहाहै; तब रामचंद्रजी सबसे भले प्रासादमें पहुँचे वह प्रासाद बहुत शृङ्गों वाले कैलास पर्वतके शिखरकी समान शोभायमानथा ॥ १७ ॥ जहां कि आकाशको आक्रमण करते हुए देवताओंके विमानोंकी नांई सहस्रों सफेद वर्द्धमान (क्रीडा) गृह बने हुए जिसमें हीरा आदि रत्नोंकी झालरें लगी हुईहैं॥१८॥ मानों पृथ्वीमें दूसरा इन्द्र मन्दिरहै ऐसे भवनमें अपनी शोभासे दीप्तिमान महाराज कुमार श्रीरामचंद्रजी पहुँचे ॥ १९ ॥ रामचंद्रजीने प्रवेश करनेके समय जाते तीन फाटकोंको देखा यह तीनों फाटक धनुष बाण धारण किये हुए वीर पुरुषोंसे रक्षितथे रामचंद्रजी इन तीन फाटकोंमें तो रथपर बैठेही बैठे चले गये,जब चतुर्थ फाटक पर पहुँचे तो रथसे उतरकर पैदल चले और वह नरोत्तम दो फाटकतक पैदल गये ॥ २० ॥ इस प्रकार दशरथ कुमार सब फाटकोंको नांघकर सब आदमियोंको वहीं छोड शुद्ध अंतःपुरमें आये ॥ २१ ॥

तस्मिन्प्रविष्टेपितुरन्तिकंतदाजनःससर्वोमुदितो नृपात्मजे ॥ प्रतीक्षतेतस्यपुनःस्मनिर्गमंयथोदयंचंद्रमसःसरित्पतिः ॥ २२ ॥

जब राजकुमार रामचंद्रजी अंतःपुरमें पिताके पास चले गये तब सबही लोग परमानन्दित हुये समुद्र जिस प्रकार चंद्रमाके निकलनेकी प्रतीक्षा करताहै वैसेही सब लोग रामचंद्रके राज भवनसे आनेकी वाट देखने लगे ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा०आ० अ० सप्तदशः सर्गः ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः।

सददर्शासनेरामोविषण्णंपितरंशुभे॥
कैकेय्यासहितंदीनंमुखेनपरिशुष्यता॥ १॥

अनन्तर रामचंद्रजीने राजा दशरथजीको कैकेयीके सहित दीन भावसे मुँह सुखाये हुये सुन्दर पलँग पै बैठे हुये देखा॥ १॥ पहलेही रामचंद्रजीने पिताजीके चरणोंमें प्रणाम किया फिर जननी कैकेयीके चरणोंमें बडी सावधानीसे प्रणाम किया॥ २॥ "राम" यह कहकर महाराज दशरथजीकी वाणी गद्गद् होआई व इसके अतिरिक्त रामचंद्रजीसे न कुछ कहाही न उनकी ओर देखही सके॥ ३॥ सर्पको पैरसे छूकर जैसे भय होताहै ऐसे महाराज दशरथजीकी अपूर्व भयावह अवस्था देखकर रामचंद्रजीके अन्तरमें भयका संचार हुआ॥४॥ राजाकी कोई इन्द्रियभी प्रसन्न नथी, मारे शोक संतापके सब शरीर दुर्बल होगयाथा। और विषादके मारे दीर्घ निःश्वास त्याग कर रहेथे॥५॥ तरंगमाला सङ्कुल समुद्र जिस प्रकार खल बला जाता व राहु ग्रसे हुये सूर्यकी जो दशा होतीहै झूंठ कहकर ऋषि लोगोंकी जो दशा होतीहै वही दशा उस समय राजाकीथी॥ ६॥ महाराज पिताजीकी इस शोचनीय अवस्थाका क्या कारणहै, यह विचार कर रामचंद्रजीके अंतःकरणमें ऐसी खलबली उठी जैसे पूर्णमासीके रोज समुद्र उछलताहै॥ ७॥ चतुर व पिताके प्यारे रामचंद्रजी यह विचार करने लगे कि आज मुझको देखकर क्यों महाराज पिताजी हर्षित नहीं हुये॥ ८॥ और दिन जब कभी क्रोधितभी होते तो हमको देख प्रसन्न होजाते,किन्तु आज मुझे देखकर पिताजी क्यों क्लेश पारहेहैं?॥ ९॥ और क्यों शोकसे आर्त विषादित और दीनभावसे बैठेहैं यह शोच विचारकर रामचंद्रजी जननी कैकेयीको प्रणामकर पूछने लगे॥ १०॥ कि मैंने अज्ञानताके वश होकर क्या पिताके चरणोंमें कोई अपराध किया जिसके कारण पिताजी हमसे रूठ गये हैं, हे माताजी हमारा अपराध क्षमा करानेके लिये तुम पिताजीको प्रसन्न करो॥११॥ पिताजी मुझसे सदा प्रसन्न रहतेथे, फिर आज क्या कारणहै जो दुःखित मनहो दीन भावसे बैठेहैं? और मुझसे कुछ बोलेभी नहीं इसका क्या कारण है?॥ १२॥

या किसी शारीरक वा मानसिक संताप अभितापने पिताजीको दुःखित कियाहै ? मैं जानताहूं कि मनुष्य शरीर धारण करने वालेको सदैव सुख पाना बहुत दुर्लभहै ॥ १३ ॥ प्रिय दर्शन कुमार भरत व शत्रुघ्न कातो-कोई अमंगल नहीं हुआ ? हमारी सब मातायें तो कुशल पूर्वकहैं ॥ १४ ॥ मैं पिताजीको असन्तोष उत्पन्न कराकर, व उनके वचनोंको न मानने से उनके कोप करने पर एक मुहूर्त्त भर भी जीवन धारण नहीं किया चाह-ता ॥ १५ ॥ जिनकी कृपासे पृथ्वीमें जन्म ग्रहण किया, जो साक्षात् प्र-त्यक्ष देवता स्वरूप हैं कौन पुरुष उनके प्रतिकूल आचरण करेगा * ॥ ॥ १६ ॥ हे जननी ! आपने अभिमानिनीहोकर कोई क्रोध युक्त वचन तो पिताजीको नहीं कहा ? क्या इसीकारण पिताजीको यह चित्त विकार उपस्थित हुआ है॥१७॥हे देवि ! ठीक२जो बातहो सो मुझसे कह दीजिये। ऐसा अपूर्व चित्त विकार क्यों राजाको हुआ॥१८॥ महात्मा रामचन्द्रजीने जब कैकेयीसे ऐसा कहा,तब लाज रहित कैकेयी अपने हितके लिये कहने लगी ॥१९॥ कि हे रामचन्द्र ! राजा कुपित नहीं हैं, और न उनको किसी प्रकारका दुःखही हुआहै,हां परन्तु उनके मनमें एक बातहै,जो वह तुम्हारे डरसे नहीं कह सक्ते हैं॥२०॥तुम उनके प्राणोंसे भी प्यारे प्रिय पुत्रहो,इस कारण महाराज तुमसे कुप्यारी बात नहीं कह सकतेहैं; जो हो महाराज-से मैंने जो कुछ सुना है,वह पालन करना तुमको अवश्यही उचितहै२१॥ इन महाराजजीने पूर्वकालमें प्रसन्न होकर मुझे वर देने कहाथा सो अब वह वर देकर साधारण मनुष्यकी नाईं अछता पछता रहेहैं॥२२॥ इन्होंने प्रथम मुझसे कहाथा कि जो चाहो सो वरलो सो जिस प्रकार जलके बह जानेपर पुलका बाँधा धरा वृथा है, वैसेही वर देनेको स्वीकार करके अब पछता-ना किसी अर्थका नहीं ॥ २३ ॥ हे राम ! इस बातको सभी महात्मा लो-ग जानते हैं कि सत्यही धर्मका मूल है अब इस समय जिससे तुम्हारे लि-ये मेरे ऊपर कोपकर राजा सत्यको न छोडें, तुमको ऐसा ही उपाय क-रना चाहिये ॥२४॥ यह जो कहेंगे,शुभाशुभका विचार न करके यदि उ-

* किसी पुस्तकमें यह पाठान्तर दृष्टि आताहै । " आयुर्यशोबलं वित्तमाकांक्षद्भिःश्रिया-णिच । पितैवाराधनीयोग्रे दैवतं हि पिता महत्" ॥ अर्थात् जिसकी आयु यश बल धन क-ल्याण पानेकी इच्छाहो उसे पिताकाही पूजन करना चाहिये क्योंकि पिताही परम देवताहै ।

सके पालन करने को तैयार हो, तो मैं सब बात खोलकर कह सकती हूं ॥ २५ ॥ किम्वा यदि राजा तुमसे न कहें तो मैं इनकी कही वार्त्ता जो कुछ तुमसे कहूं, वह तुम मानो तो मैं कहनेको तैयारहूं क्योंकि राजा तुमसे न कहेंगे ॥ २६ ॥ जब इस प्रकार कैकेयीने रामचन्द्रजीसे कहा तो रघुवीर बहुत दुःखित हो राजाके निकट बैठी हुई कैकेयी से बोले ॥२७॥ अहो धिक्कार है हे देवि ! तुम मुझसे ऐसे वचन कहने योग्य नहीं हो मैं राजाके वचनसे और कामतो एक ओर रहे अग्निमें भी गिर सकताहूं ॥२८॥ और अधिक क्या कहूं मैं परम गुरु हितकारी राजा पिताजीके वचनानुसार तेज विप पी सक्ताहूं या समुद्रमें भी कूद पडनेसे मुझे अस्वीकारता नहीं है ॥ २९ ॥ हे जनिनी ! राजाकी क्या इच्छाहै, वह मुझसे बताओ, प्रतिज्ञा करताहूं कि मैं उनके अभिप्रायको पालन करूंगा ! हे माता ! यह स्मरण रक्खो कि राम कभी दो प्रकार की बात नहीं करना जानता ॥ ३० ॥ जब जाना कि सत्यवादी राम अति कोमल सरल वचन बोल रहेहैं, तब उनसे अति निठुर वचन कुटिल कैकेयी बोली॥३१॥ पूर्वकालमें जब देव और असुरोंका संग्राम हुआथा, तब तुम्हारे पिताजी वहां इन्द्रकी सहायता करने गये, और राक्षसोंके अस्त्र शस्त्रोंसे छिन्न भिन्न इनका शरीर होगया, और यह मूर्च्छित होगये, तब मेरे ई रक्षा करने पर वहां उनके प्राण बचे तब उस समय इन्होंने मुझे दो वर देने कहे ॥ ३२ ॥ इस समय मैंने उन्हीं दो वरोंको महाराजसे मांग लिया है । एक वरसे भरतका राज्याभिषेक होना और दूसरे वरसे आपका वनको जाना ॥ ३३ ॥ हे नर श्रेष्ठ ! यदि सत्य प्रतिज्ञा करने वाले अपने पिताजीके वचनोंको तुम सत्य करना चाहो और अपने को भी सत्य कहने वाला समझो तो मेरा कहना श्रवण करो ॥ ३४ ॥ तो तुम्हारे पिताजीने जो कुछ कहाहै उसको पालन करके तुम चौदह वर्षके लिये वनको चले जाओ ॥ ३५ ॥ हे राम ! वह जो तुम्हारे अभिषेकके लिये जो सब सामग्री इकट्ठी की गई है । इनसे भरतका अभिषेक किया जाय३६॥ तुम जटा बल्कल धारण कर उपस्थित राज्यको त्याग आजसे चौदह वर्षतक वनमें रहो ॥ ३७ ॥ भरतजी कौशल देशमें रहकर हाथी घोडे रथोंसे पूर्ण अनेक प्रकारके रत्नोंसे भरी हुई पृथ्वीके राज्यका सुख

भोगते रहें ॥ ३८ ॥ राजा इसीकारण से करुणाके वशहो और शोक-से मुख मलीन किये हैं, और इसीकारण तुमको नहीं देख सकतेहैं॥३९॥ हे रघुनन्दन ! तुम अपने पिताका अभीष्ट जान चुकेहो अब यह राजाके वचन मानो हे राम ! बडे सत्यके हाथसे उनकी रक्षाकरो ॥ ४० ॥

इतीवतस्यांपरुषंवदंत्यांनचैवरामःप्रविवेशशोकम् ॥ प्रविव्यथेचापिमहानुभावोराजाचपुत्रव्यसनाभितप्तः ॥ ४१ ॥

दोहा—कठिन कैकेयी वचन सुन , कछु न दुखे रघुवीर ॥ पर निज सुत वन जात लख , राजा भये अधीर ॥ ४१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे अष्टादशःसर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः ॥

तदप्रियममित्रघ्नोवचनंमरणोपमम् ॥
श्रुत्वानविव्यथेरामःकैकेयींचेदमब्रवीत् ॥ १ ॥

अनन्तर शत्रुओंके मारने वाले श्रीरामचन्द्रजी कैकेयीके मुखसे, मरने लायक पीड़ा दायक वचन सुनकर कुछभी व्यथित नहो उससे बोले॥१॥ कि बहुत अच्छा मैं राजाके वचन मानकर वनको जाऊंगा , और उनकी प्रतिज्ञा रक्षा करनेके लिये जटा व पेडोंकी छालके कपडे पहरूं-गा ॥ २ ॥ परन्तु यह जानने की मेरी इच्छा हुई है कि पहले की समान शत्रुओंके मारने वाले दुर्धर्ष महाराज पिताजी हमसे क्यों नहीं बोलते॥३॥ हे देवि ! आप रूठ न जाँय मैं तुमसे कहताहूं कि मैं जटा वल्कल धारण कर वनको चला जाऊंगा, आप प्रसन्न हों ॥ ४ ॥ हितके चाहने वाले गु-रुजी पितामह राजाकी अनुमतिसे ऐसा कौन प्रियकार्यहै जिसको निःशं-क चित्तसे मैं न कर सकूं ॥ ५ ॥ जोहो, सोहो परन्तु मेरे मनमें एक बातका बडा दुःखहै कि प्यारे भ्राता भरतजीके अभिषेक का वृत्तान्त-महाराज पिताजीने स्वयं मुझसे नहीं कहा ॥ ६ ॥ राजाका कहना तो एक ओर रहा, मैं तुम्हारे ही कहनेसे प्रसन्नता पूर्वक भ्राता भरत-जी को राज्य इष्ट प्राण, वरन सीता जी तकको दे सक्ताहूं ॥ ७ ॥

फिर महाराज पिताजीकी तो वातही क्याहै उनके, सत्य पालने, और तुम्हारा हित साधन करनेके लिये मैं किसी कार्यके करनेसे विमुख नहीं हूं॥ ८॥अच्छा भैया! तुम इस समय महाराजको समझा बुझादो, मैं देखताहूं कि हमारे पिताजी नीची गर्दन किये बैठे धीरे २ आँसु गिरा रहेहैं, और कुछ लज्जित से ज्ञात होतेहैं ॥९॥ राजाकी आज्ञासे दूत लोग अभी शीघ्रगामी घोडों पर सवार होकर हमारे प्यारे भरतजीको मामाके घरसे लिवा लावें ॥ १० ॥ मैं निःशंक मनसे पिताजीकी आज्ञा अपने शिर माथे चढा अभी चौदह वर्षके वास्ते वनको जाऊंगा कुछ विचार न करूंगा ॥ ११ ॥ तब रानी कैकेयी रामचंद्रजीके वचन सुन प्रसन्नहो उनका वन जाना ठीक जानकर उन रामचंद्रजीको पिताका सत्य पालनेके लिये शीघ्रता कराने लगी ॥ १२ ॥ और बोलीकि ऐसा ही होगा भरतको मामाके यहांसे बुलानेके लिये शीघ्रगामी घोडों पर सवारहो दूत गण जांयगे ॥ १३ ॥ परन्तु हेराम! तुमने अब कह दिया कि हम वनको जातेहैं सो तुम्हें इस वातमें देरी न करनी चाहिये हेराम! अब शीघ्र वनको जाओ ॥ १४ ॥ सत्य पालन करनेमें तुमको विलम्ब करते देख महाराज लाज पातेहैं और तुमसे कुछ नहीं कह सकते। अतएव इसकारण तुम वनको जाकर इनके मनका दुःख दूरकरो ॥ १५ ॥ हेरामचंद्र तुमसे अधिक क्याकहूं जबतक तुम अयोध्या पुरीको छोड वनको नहीं चलेजाते तब तक तुम्हारे पिताजी स्नान भोजन कुछभी नहीं करैंगे ॥ १६ ॥यह वचन सुन महाराज दशरथजी"हाधिक्—क्याकष्टहै" यह कह और दीर्घ निश्वास छोड़ते हुये सोनेके पलँग पर मूर्च्छित होगिर पडे ॥ १७ ॥ उस समय श्रीरामचंद्रजी घबड़ाकर राजाको उठा कैकेयीके कहनेसे चाबुक खाये हुये घोड़े की नांई वनके जानेको जल्दी करते हुये ॥ १८ ॥ रामचंद्रजी सौतेली अनाड़िन माताके ऐसे दारुण कठोर वचन सुनकर कुछभी व्यथित नहो फिर उससे कहने लगे ॥ १९ ॥ हेदेवि! मैं धनके लोभसे संसारमें नहीं रहना चाहता। मुझको तुम ऋषि मुनियों की समान, सुख दुःखका बराबर देखने वाला धार्मिक समझो ॥ २० ॥ यदि प्राणके दे डालनेसेभी पूजनीय पिताजीका कोई हित कार्य होजाय तो समझलो कि वह कार्य हुआही रक्खाहै ॥ २१ ॥ पिताकी सेवा करना

और उनके वचनोंका पालन करना इस धर्म की बराबर या इससे अधिक तोकोई धर्म संसारमें हैही नहीं ॥ २२ ॥ पूजनीय पिताजीकी आज्ञा अब तक मुझ पर प्रगट नहीं हुई तौभी मैं तुम्हारी ही आज्ञासे अभी चौदहवर्ष वनमें वसनेको जाताहूं ॥ २३ ॥ हेदेवि! तुमने हमारी अधीश्वरी होकरभी इस तुच्छ कार्यके लिये पिताजीसे कहा इससे ज्ञात हुआ कि तुम मेरा कोई गुण अभी तक नहीं जानतीहो ॥२४॥ अब मेरे जानेमें कुछ देर नहीं क्योंकि जब तक माता कौशल्या जीसे नहीं पूछ लेते और सीताको नहीं समझाते तभीतक देरहै। सो उनके पाससे अभी विदा होकर आजही वनको जाताहूं ॥ २५ ॥ इस समय भरत जिससे राज्यका पालन व पिताजीकी सेवा करें तुम इस विषयमें भली प्रकार उनको सिखा पढाती रहियो, क्योंकि यही पुत्रका प्रधान सनातन धर्महै रामचंद्रजीके इस प्रकार मनोहर वचन श्रवण करके राजा दशरथजीका दुःख औरभी प्रबल होगया, कुछ कहतो न सके वह महा गंभीर शोकसे अधीर होकर रोनें लगे ॥ २६॥ २७ ॥ तब शुक्तिमान रामचंद्रजीने अचेत अवस्थाको प्राप्त हुये पिताजीके व दुष्ट स्वभाव वाली कैकेयीके चरणोंमें प्रणाम किया और वहांसे निकले ॥ २८ ॥ और फिर राजा दशरथजी और कैकेयीकी प्रदक्षिणा कर अंतःपुरसे बाहर आकर अपने इष्ट मित्रोंको देखा ॥ २९ ॥ जानेके समय सुमित्राके आनन्द देने वाले लक्ष्मणजीभी उनके साथ २ चले। उनकी आंखोंमें आंशू डब डबा रहेथे और क्रोधसे उनका शरीर कांप रहाथा * ॥ ३० ॥ जानेके समय रामचंद्रजीने पात्रमें धरी हुई सब अभिषेककी सामग्रीको देखा व उसकीभी विदाके समयके अनुसार परिक्रमाकी, व वन गमन करनेके हेतु चले पर उस पात्रको देखते हुये मन्द २ गमन करने लगे ॥ ३१ ॥ राज्याभिषेक होनेको था पर न हुआ इसके न होनेसे रामचंद्रजीकी कुछ कान्ति नहीं घटी और वह प्रसन्न चित्त रहे क्योंकि उनमें स्वभाविक कान्तिथी, जिस प्रकार कृष्णपक्षमें चंद्र-

---

* यद्यपि मूलमें यह वर्णन नहीं है कि लक्ष्मणजीनें उपस्थित रहकर रामचन्द्रजीके वन जानेकी सब वार्ता सुनीथी परन्तु टीकाकार का यह अभिप्रायहै कि निकट रह कर सब वार्त्ता सुनीथी प्रमाणके लिये यह पद लिखा गया " समीप स्थित्यावगतवृत्तांतत्वात् "

मा रोज क्षीण होताहै परन्तु उसकी कान्ति नहीं घटती ॥ ३२ ॥ यद्यपि रामचंद्रजी तमाम पृथ्वीके राज्यको छोड मुंह मोड़ वनको चले, परंतु जीवन मुक्त पुरुषकी नाईं जिसको किसी बातकी कामनाही नहीं होती रामचंद्रमेंभी किसीने किसी प्रकारका चित्त विकार नहीं देखा ॥ ३३ ॥ वह शुभछत्र अलंकृत चँवर बन्धु बान्धव व पुरवासी और रथ आदिकोंको छोड(मनमेंही दुःख रोक लिया प्रगट न किया)अथवा मनमें बहुत प्रसन्न होते हुये (प्रसन्नता इस बातकीथी कि वनमें जाय राक्षस आदिकोंको मारेंगे) ऊपरी मनसे न बहुत दुःखित सब इन्द्रियोंको वश किये वनको जातेहैं यह अप्रिय संवाद सुनानेके लिये अपनी माता कौशल्याजीके मंदिरको चले ॥ ३४॥ ३५ ॥ यद्यपि रामचंद्रजी अपने जानमें सबसे विदाहो लियेथे तथापि अति श्रीमान् सत्य कहने वाले श्रीरामचंद्रजीके आकारसे किसीने नहीं पहिचाना कि यह वनको जातेहैं ॥ ३६ ॥ रामचन्द्रजीका स्वभाव ही सदा प्रसन्न चित्त रहने का था इस कारण उन्होंने ऐसे दुःखमें भी अर्थको न छोडा जिस प्रकार कि शरद ऋतुका चन्द्रमा अपनी प्रभाको नहीं छोडता ॥ ३७ ॥ महा यशस्वी रामचन्द्र जो लोग इधर उधर खडेथे उन सबको मधुर वचनों से सन्मानित करते हुये अपनी माता कौशल्याजीके निकट पहुँचे ॥ ३८ ॥ रामचन्द्रजी ही की समान गुणपाये हुये विपुल विक्रमशाली लक्ष्मणजी भी मनका दुःख मनमें छिपाये हुये अपने भैयाके पीछे २ चले ॥ ३९ ॥

प्रविश्यवेश्मातिभृशंमुदायुतंसमीक्ष्यतांचार्थविपत्तिमागताम् ॥ नचैवरामोत्रजगामविक्रियांसुहृज्जनस्यात्मविपत्तिशंकया ॥ ४० ॥

उस समय कौशल्याजी रामचन्द्रजीके अभिषेकके उत्सवमें अनेक प्रकारके उत्सवोंकी तैयारियां कर रहींथी रामचन्द्रजी वहां पहुँच कर इस विपद् मेंभी धीर धारण किये रहे परन्तु उनको यह चिंता बहुत व्याकुल करानें लगी कि कहीं माता मेरा वन जाना सुनकर प्राण न त्याग करदें ॥४०॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० अ० एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशः सर्गः ।

तस्मिंस्तुपुरुषव्याघ्रेनिष्क्रामतिकृतांजलौ ॥
आर्तशद्बोमहाञ्जज्ञेस्त्रीणामंतःपुरेतदा ॥ १ ॥

पुरुष व्याघ्र रामचन्द्रजीको विदा लेनेके लिये हाथ जोडे हुये अंतःपुरसे बाहर आते देखकर रनवासमें जो दशरथजीकी और स्त्रियेंथीं उनमें अति आर्त नाद होने लगा ॥ १ ॥ उस समय वह रोरोकर आपसमें कहने लगीं कि जो रामचन्द्रजी पिताके कहने परभी सब दास दासी मालकिनि व और लोगोंके अभिलाष सदा पूर्ण किया करतेथे, व जो हमारे एकही सहारेहैं, वही आज वनको जातेहैं ॥ २ ॥ जन्मसेही जिस प्रकार कौशल्या जीको माता समझते वैसाही हम सबको समझतेथे वही परम दुलारे रामचन्द्र आज वनको सिधारेहैं ॥ ३ ॥ कोई कडुवे वचन कह भौले और वह कुपित नहीं और जिन्होंने वनाय सब प्रकारसे क्रोधको त्यागही करदियाहै, जो प्यारे २ मनोहर २ वचन कह २ कर सबको प्रसन्न करतेहैं, वही रामचन्द्रही आज वन गमन करेंगे ॥ ४ ॥ हाय! महाराज कैसे अनसमझहैं कि जिन्होंने अनायास अपनी प्रजाका अनभल किया; देखो जो सबके एक मात्र सहारेहैं उनकोही सहजसे परित्याग करदिया ॥ ५ ॥ इस प्रकार सब महारानियें बछडोंसे छुटी हुई गायोंकी समान रोरोकर अपने पति राजा दशरथ जीकी निन्दा करने लगीं और ऊंचे स्वरसे रोने लगीं ॥ ६ ॥ तब रनवासमें इस प्रकार रोने धोने और आर्त्त नादका शब्द श्रवण करके राजा दशरथजी पुत्रके शोकसे ग्रसित होकर व्यालकी नाई सिकुड आसनसे गिरपडे ॥ ७ ॥ और इस ओर इन्द्रियोंके जीतनें वाले रामचन्द्रजी बँधे हुये हाथी की समान घनर ऊंचे २ श्वास लेते हुये भ्राता लक्ष्मण जीके साथ अपनी माता कौशल्या जीके भवनमें प्रवेश करते हुये ॥ ८ ॥ जाते २ प्रथम द्वार पर पहुँचे जिसके द्वार पर एक वृद्ध द्वारपाल बैठाथा व उसके सिवाय और भी कई एक रक्षक वहांथे ॥ ९ ॥ वह सब लोग रामचन्द्र जीको देखतेही उठ खडे हुये और उनके धोरे चले आये और

आकर कहा कि रामचन्द्र जी की जय हो ॥ १० ॥ तदनन्तर रामचन्द्रजी पहले फाटक को नांघ कर दूसरे फाटक पर जाकर देखते हुये कि राजाके प्रिय बहुतसे वेद के जानने वाले वृद्ध ब्राह्मण वहां। बैठेहैं ॥ ११ ॥ रामचन्द्र जी उन ब्राह्मणों को प्रणाम करते हुये तीसरी ड्योढी पर पहुंचे वहां पर देखा कि बहुतसी स्त्रियां बालक व वृद्ध द्वारकी रक्षा कर रहेथे ॥ १२ ॥ उनमें से कुछेक स्त्रियोंने रामचन्द्र जीको आशीर्वाद देकर उनका बहुत सन्मान किया और प्रसन्न मनसे कुमार को आगे कर कौशल्या जीको उनके आनेका समाचार सुनाया ॥ १३ ॥ पुत्रका हित चाहनें वाली कौशल्या जीभी नियम से रात बिताकर उससमय प्रातःकाल रामचन्द्र जीका मंगल मनानेके लिये विष्णु भगवान्की पूजा कर रहींथी॥१४॥वह सब रेशमीन कपडे पहरे हुयेथीं और मंगलाचरण करके परमानन्दित व्रतमें नित्य लगी रहकर होम कर रहींथीं ॥ १५ ॥ श्रीरामचन्द्र जीने माताके भवन में प्रवेश करके देखा कि कौशल्याजी आग्रमें आहुति दिया रहींहैं ॥ १६ ॥ और यहभी देखा कि देवता ओंके कार्यके लिये दही, चावल, घी, लड्डू, खीर, आदि पदार्थ धरे हैं ॥ १७ ॥ वखीलें, सफेद माला, तिल, चावल, जौकी खिचरी, खीर व इंधन और जलसे भरे कलश धरे हैं ॥ १८ ॥ रामचन्द्र जीने श्रेष्ठ कौशल्या जीको सफेद वस्त्र पहरे हुये और बहुत दिनोंसे व्रत करनेके कारण कृश शरीर और देवताओंको तर्पण करते हुये देखा ॥ १९ ॥ जननी कौशल्या जी अपनी चिरकामनाके धन रघुनंदन रामचन्द्र जीको पास आते देखकर छोटे बच्चे वाली घोडी की तरह प्रफुल्लित हुईं और उनके सामने आईं ॥ २० ॥ जब रामचन्द्र जीनें माताको प्रणाम किया तो कौशल्या जीने दोनो हाथ पकडकर उनको हृदयसे लगाया और शिर सूंघा ॥ २१ ॥ तब पुत्र वत्सलतासे महारानी कौशल्या जी अपने दुर्धर्ष पुत्र श्री रामचन्द्र जीसे यह मनोहर वचन बोली ॥२२॥ हे वत्स। तुम धर्मवान वृद्ध राजर्षियोंकी समान, उमर, कीर्त्ति, और कुलके पाने लायक धर्म पावो ॥ २३ ॥ देखो महाराज। तुम्हारे पिता कैसे सत्य प्रतिज्ञहैं कि आज तुमको युवराजमें अभिषिक्त करनेके लिये उद्य-

त हुये हैं ॥ २४ ॥ फिर उन्होंने रामचन्द्रजीको बैठनेके लिये आसन दि-या, और कहा कि बैठकर कुछ भोजन करो यह वचन सुन रामचन्द्र हाथ जोड बोले ॥ २५ ॥ रामचन्द्र तो वन जानेके हेतु विदा होने आयेथे उनको समय कहांथा कि बैठें इस कारण विनीत स्वभावसे हाथ जोड माताके गौरव की रक्षाके लिये यह बोले कि हे देवि! मैं वनको जाऊंगा आपके निकट विदालेनेको इस समय यहां आयाहूं ॥ २६ ॥ हे माता! आपको सीताको और लक्ष्मणको बडा भय आ पहुँचाहै, जिसको आप अबतक कुछ नहीं जानती हैं बडी विपद् तुमको उपस्थित हुई है ॥ २७ ॥ जब मुझको अभी वन जाना है तब इस समय इस आसनके ग्रहण करनेसे क्या? अब मेरे कुशके आसन पर बैठनेका समय आ पहुँचाहै ॥ २८ ॥ इस समय मुझको तपस्वीका भेष बनाकर कन्द, मूल फल भोजन करके समय बिता मुनिकी तरह सुन्दर भोजन त्याग चौदह वर्ष तक वनमें रहना पडेगा ॥ २९॥ महाराज पिताजी भरतजीको राज्य-गद्दी देंगे, व मुझको मुनि, व तपस्वीका भेष बनाय वनवास देते हैं॥३०॥ इस कारण कन्द,मूल,फल भोजन करते हुये हमको चौदह वर्ष तक व-नमें रहना पडेगा * ॥३१॥ कुहाडी से काटी हुई सालकी लाठी की जो दशा होती है, वैसेही रामचन्द्रजीकी यह वार्त्ता श्रवण करके कौशल्या-जी स्वर्ग से गिरे हुये देवताकी समान एका एकी पृथ्वी पर गिर प-डीं ॥ ३२ ॥ रामचन्द्रजीने अपनी माता कौशल्याजीको जो दुःखके योग्य नथीं, अचेतन, और केलेके पेडकी समान धरतीमें पडा देखकर उ-नको उठाया ॥ ३३ ॥ जिस प्रकार बोझ खैंचने वाली दीन घोडी छोडने पर थकावट मिटानेके कारण लोट पोट उठतीहै वैसेही कौशल्याजीके अंगोंमें रज लग गईथी उसको श्रीरामचन्द्रजीनें अपनें हाथोंसे पों-छा ॥ ३४ ॥ महाराणी जीने कभी दुःख नहीं पायाथा, उन्होंने एकाएक ऐसे दुःखका समाचार सुन कर व्यथितहो पुरुष श्रेष्ठ रामचन्द्रजीसे ल-क्ष्मणजीके सामने कहा ॥३५॥ कि हे राघव! पुत्र! यदि तुमको हम अ पने गर्भमें धारण न करतीं, और हम विना पुत्रकेही रहतीं तो यह दुःख

* दोहा—वर्ष चारिदश विपिन वस, कर पितु वचन प्रमान ॥ आय पाँय पुनि देखिहौं, मन जनि करसि मलान.

तौ हमें न होता, केवल लोग वंध्याही कहते ॥ ३६ ॥ हे वत्स वंध्या नारी-को तो यही दुःख होता है कि पुत्र सुख नहीं देखा, इसके सिवाय दूसरा दुःख उस पर नहीं दृष्टि आता ॥ ३७ ॥ हे राम ! हमने सुभगा स्त्रियोंको देखा है जो कि पतिको परम प्रिय हैं उन्हें जो विशेष सुख है वहभी हमारे भाग्यमें नहीं है क्योंकि राजा कैकेयीके वश हैं फिर हमने यह शोचाथा कि कदाचित् पुत्रके होनेसे यह सब शोक दूरहोंगे इस्से प्राण धारण कियेथे, नहीं तो तुम्हारे होनेसे प्रथमहीं प्राण त्यागन करती ॥ ३८ ॥ * हाय महारानी होकरभी इस समय मुझको छोटी सौतोंके मर्मके भेदन करने वाले कठोर कडुए टेढे मेढे वचन सुनने पडे ॥ ३९ ॥ इस सवतकी डाहके समान स्त्रियोंको और कोई दुःख नहींहै जिस तरहका शोक दुःख मुझेहै इस प्रकारका दुःख किसीपर विश्वासहै की नहीं आया होगा ॥ ४० ॥ तुम्हारे रहतेभी जब मेरी यह शोचनीय दशाहै यह निरादरहै तो अवश्यही तुम्हारे वन चले जाने पर निश्चय मैं मरजाऊंगी॥४१॥ प्राणनाथके प्रतिकूल होनेसे मैंने कितनीही लांछना सहीहैं, औरतो क्या कहूं मैं कैकेयी की दासीकी समान व उससेभी तौ हीनहूं ॥ ४२ ॥ देखो जब तुम्हारे यहां होने परभी कोई इष्ट मेरी सेवा करताहै वा मुझसे बोलता बतराताहै, वह इष्ट मित्रभी जिस समय कैकेयीके पुत्रको देखता है उसके ओर कैकेयीके डरसे हमसे नहीं बोलता, ॥ ४३ ॥ विशेषतः कैकेयीका स्वभाव बडाही क्रोध भराहुआहै मैं इस खोटी अवस्थामें पडके किस प्रकारसे उस बहुत कडुवे वचन बोलने वाली कैकेयीका मुख देख सकूंगी ॥ ४४ ॥ हे राम! देखो यज्ञोपवीतके समयसे भी तुमको सत्रह वर्ष बीते और जन्मसे लेकर पच्चीस वर्ष व्यतीत होचुकेहैं मैं यही विचारमेंथी कि जब मेरे पुत्रको युवराज्य पदवी मिलेगी तब मेरे दुःखोंका अवसान होगा ॥ ४५ ॥ सो बेटा! तुम वनको चले अब फिर वही कैकेयीके कठोर वचन सुन्ने पडेंगे, अतएव इस समय तुम्हारा अभिषेक न

*चौपाई—इहि विधि रुदन करत महतारी।कहि न जात सो करुणा भारी॥पुत्र सनेह विवश प्रभु माता विवरण भयेउ निबल सब गाता कौनिहुँ भांति धरत नहिं धीरा । व्यापी कठिन विरह की पीरा । लखि वय जियमें करत ग्लानी । पुत्र न वनकी कहो कहानी ॥ वचन हमार मान मत जाओ । वृद्ध समय मत मुझे रुवाओ ॥

होनेसे, और वन जानेसे, इन दोनों बडे दुःखोंके पडनेसे और दुर्बल शरीर होनेसे अब उसके वचन मुझसे नहीं सहे जांयगे ॥ ४६ ॥ हे वत्स! परिपूर्ण चंद्रमाकी समान तुम्हारा मुख चंद्र न देखकर मैं दीन विचारी कठिन शोकमें पडी किस प्रकार से जिऊंगी ॥ ४७ ॥ मैंने अनेक उपवास, योगाभ्यास, व और २ भी अनेक २ प्रकारके कष्टोंसे तुमको लालन पालन कर इतना बडा कियाहै सो अब वृथा हुआ, जो तुम मुझ दुःखियारी माताको छोड वनको जाओहो ॥ ४८ ॥ निश्चयही मेरा हृदय बडा कठिन है, यदि यह हृदय पत्थरकी समान कडा न होता तौ निश्चयही तुम्हारा वियोग सुनकर टुकडे २ हो जाता। जैसे कि वर्षाके समय बडी नदीका फाट नवीन जलसे पूरित होने परभी नहीं फटता ॥ ४९ ॥ मुझको समझ पडाकि सौत मुझे भूल गई, और यमराजके यहांभी मेरे लिये स्थान नहीं रहा, यदि ऐसा न होता तो; सिंह जिस प्रकार रोती हुई हरिणीको बलसे पकड लेजाताहै वैसेही यमराज क्या मुझको अभी न लेजाते ॥ ५० ॥ मेरा हृदय निश्चयही लोहेका बना हुआहै यदि यह लोहेका न होता तो तुमसे यह तुम्हारे वन जानेकी कठोर वार्ता श्रवण कर पृथ्वी पर गिरनेसे भी यह हृदय क्यों नहीं फटा ऐसे दुःख पाकरभी जब यह शरीर नहीं छुटा तब इससे ज्ञात होताहै कि विना काल आये किसीका मरण नहीं होता ॥ ५१ ॥ हाय! अब मेरी समझ में आया कि पुत्रके मंगल हितार्थ जो जप, तप, दान, और संयमादिक मैंने किये वह भाग्यसे निष्फल होगये जैसे ऊषर पृथ्वीमें बीज डालनेसे निरर्थक हो जाताहै ॥ ५२ ॥ यदि महा दुःखियोंको विना समय आये मृत्यु आजाया करती तौ मैं शोक दुःखसे घिरी विना बछडे वाली गायके समान तुम्हारे वियोगमें प्राण खोकर उसकाही आसरा लेती ॥ ५३ ॥ अथवा हे चंद्रमाकी समान मुख वाले तुम्हारे बिना मेरे इस जीवन धारण करनेहीसे क्याहै, दुर्बल गाय जिस प्रकार अपने बच्चेके साथ जातीहै, वैसेही मैं तुम्हारे साथ वनको चलूंगी ५४

भृशमसुखममर्षितायदाबहुविललापसमीक्ष्य
राघवम् ॥ व्यसनमुपनिशाम्यतामहत्सुतमिव
बद्धमवेक्ष्यकिन्नरी ॥ ५५ ॥

राम जननी कौशल्याजी रामको सत्यके बंधन से बँधा हुआ देख अपनेको अभागी जान और रामचंद्रजीके पीछे सौतोंसे दुःख पानेका अनुभव कर शोकसे विकलहो बहुत विलाप कलाप करनें लगीं जैसे पुण्यक्षय होनेसे किन्नरी पृथ्वीपर आकर रोतीहै ॥ ५५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये अयोध्याकांडे विंशः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः ॥

तथातुविलपंतींतांकौसल्यांराममातरम् ॥
उवाचलक्ष्मणोदीनस्तत्कालसदृशंवचः ॥ १ ॥

अनन्तर दीन लक्ष्मणजी विलाप करती हुई रामचंद्रजीकी माता कौशल्याजीसे समयके अनुसार वचन बोले ॥ १ ॥ हे अम्मा ! रघुवीर रामचंद्रजी स्त्रीके वश हुये पिताके कहनेसे इस राज्याधिकारको छोड वनको जातेहैं यह मेरी इच्छाके विपरीतहै ॥ २ ॥ पिताजीकी बुद्धि विपरीत होगईहै, क्योंकि वह वृद्ध होगयेहैं और इसके सिवाय विषयी कामके वशहैं फिर भला वह स्त्रीके कहनेसे क्या नहीं कह सक्तेहैं॥३॥मैंने रामचंद्रजीका ऐसा कोई अपराध या इनमें कोई दोषभी नहीं देखा जिससे यह राज्य छुडाकर वनको भेजे जांय॥४॥औरकी वार्त्ता तो दूर रहै, अपराधी शत्रुओंमें परोक्षभावसेभी कोई इनका दोष निकालनेंको साहसी नहीं होता,मैंने तो अब तक अपने भाईका दोष निकालनें वाला किसीको न पाया॥५॥ विशेषतः जो देवताकी समान सरल स्वभाव वाले सब शास्त्र और सब विद्या सीखे सिखायें शत्रुओंके भी प्यारे ऐसे गुणनिधान पुत्रको अकारण धर्मका मुख देखनें परभी कौन मनुष्य त्याग करैगा ॥ ६ ॥ महाराज अब बालकसे होगये हैं उनकी विचार शक्ति बिलकुल ही जाती रही। कुछ विचारनेका स्थानहै कि कौन पुत्र पहिले भूपालोंके चरित्रोंको याद करके इन हमारे राजाकी आज्ञा मानेगा॥७॥ कौशल्याजीसे यह कह फिर श्री रामचन्द्रजीसें कहा कि हेरघुनंदन!इस वनवासकी वार्त्ताको प्रचार न होतेर मेरी सहायसे समस्त राज्यको आप अपनें अधिकारमे कर लीजिये ॥८॥ मैं जब कालकी समान धनुष धारण करके आपके पार्श्वमें खड़ा हूंगा

तब कौन मनुष्य आपके अभिषेकमें बाधा दे सकताहै? ॥ ९ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ! और यदि कोईभी इसके विरुद्ध कार्यकरे तब पैने २ बाणोंको चलाकर मैं अयोध्या पुरीको जनशून्य करदूंगा इसमें कुछभी सन्देह न समझिये ॥ १० ॥ जो मनुष्य भरतकी ओर उठैगा व उनका हित करनेवाला होगा, मैं उन सबका संहारकरूंगा । व आपभी इस विषय में अपनी कोमल प्रकृति छोड दीजिये क्योंकि राज्य कार्यके विषय कोमल स्वभाव वालेका सदाही निरादर होताहै ॥ ११ ॥ यदि पिताही कैकेयी के उसाकिरानेसे उसकी ओर उठकर हमारे विरुद्ध आचरण करैं तो अमित्रके कार्य करनेसे उनकोभी मारडाला जाय अथवा बंदीगृहमें भेजाजाय ॥ १२ ॥ यदि गुरुभी कार्य अकार्यको न जानकर अभिमानी हो खोटेरस्ते परचलें तो उसकोभी दंडदेना अनुचित नहींहै ॥१३॥ हे पुरुषोत्तम महाराज! पिताजी निर्बल कौनसी युक्तिका आश्रय लेकर, बडे होनेके कारण जो राज्य आपको मिलना चाहिये वह किस कारणसे कैकेयीको दे डालनेके लिये तैयार हुयेहैं? ॥ १४ ॥ हे शत्रुओंके मारनेवाले! मैं ठीकही ठीक कहताहूं कि आपसे और मुझसे वैर करके कौनहै? जो यह राज्य भरतको देसक्ताहै, मैंतो इतनी सामर्थ्य किसीकी नहीं देखता॥१५॥ रामचन्द्रजीसे यह कह कर फिर कौशल्याजी से कहाकि हे देवि ! मैं निश्चयही मनसे कहताहूं कि मैं बड़े व प्यारे भ्राताके आधीनहूं. मैं अपने सत्य धनुष बाण दान इन इष्ट वस्तुओंका नाम लेकर इस विषय में सौगन्ध खाताहूं ॥ १६ ॥ यदि श्रीरामचंद्रजी जलतीहुई आगमें कूद पडें वा वनको चलेजांय तो जान रक्खो कि लक्ष्मणने प्रथमहीं वह मार्ग ले रक्खाहै ॥ १७ ॥ जिसप्रकार अंधकारके नाश करने वाले सूर्य नारायण का उदय होतेही, अँधियारे का नाश होजाताहै, वैसेही मैं आपका दुःख दूर करूंगा । हे देवि! आप और भाईसाहब मेरे प्रभाव को भली भाँति देखें ॥ १८ ॥ जो वृद्धावस्था में बालककी समानहैं जो कैकेयी के ऊपर आसक्तहोरहेहैं कृपण चित्तहैं. जिनका मरणकाल उपस्थितहै उन पिताको भी मैं अभी मार डालूंगा ॥ १९ ॥ महात्मा लक्ष्मणजीके मु-

खसे यह वचन सुनकर शोकसे व्याकुल चित्त रुदन करती हुई कौश-ल्याजी रामचंद्रजीसे बोलीं ॥ २० ॥ हे वत्स! तुम्हारे भैया लक्ष्मणने जो कहा वह तुमने सुना यदि ऐसा करना तुम्हें अच्छा लगै तौ तुमभी शोच विचार इनकी बात मानो ॥ २१ ॥ तुम सौतकी अधर्म मूल वार्त्ता-से शोकसे ग्रसित अपनी माता कौशल्याको अकारण छोडकर यहांसे मत जाओ ॥ २२ ॥ हे धर्मज्ञ! यदि तुम्हें धर्मही की कामनाहै, धर्मकर-ना चाहतेहो तो राज्यको छोडकर यहीं रह जाओ; और मेरी सेवा शु-श्रूषा करते रहो इससेही तुम्हें बहुत पुण्य होगा ॥ २३ ॥ हे पुत्र! बडे तपस्वी महात्मा कश्यप जीनें घरमें ही रह कर माताकी सेवा करनेके प्रभावसे प्रजापति पद प्राप्त कियाथा और स्वर्गगामी हुये ॥ २४ ॥ जि-स प्रकार तुम्हारे पिताजी तुम्हारे पूजनीयहैं वैसेही मेरा गौरव तुमको करना उचितहै; मैं तुम्हें वनमें जानेकी सलाह नहींदेती अतएव फिरभी क-हतीहूं कि वनको नजाना ॥ २५ ॥ तुम्हारे वियोगसे मेरे सुख भोगने अ-थवा जीवनहीं धारण करने से क्या प्रयोजनहै अधिक क्या कहूं? मैं तु-म्हारे साथ तृण खाकर जीनेकोभी अपने लिये अच्छा समझतीहूं ॥ २६॥ हे वत्स!यदि तुम निश्चयही हमें इस शोकके सागरमें छोड वनको चले जाओ-गे तो उपवास करके मैं अपनेको मारडालूंगी ॥ २७ ॥ फिर तुम जान लेना कि समुद्रको जिसप्रकार अपनी माताका कहना न माननेसे पिप्पलाद मु-निके कारण ब्रह्महत्याका पाप लग कर नरक जाना पडाथा वैसेही मेरा-कहना न माननेसे तुम्हें नरकजाना पडेगा॥२८॥तब धार्मिक रामचंद्र दीन-भावसे रोती व विलापकरती हुई कौशल्याजीसे धर्म शास्त्रके अनुकूल वचन बोले ॥ २९ ॥ हे देवी! पिताके वचनोंको न मानने की शक्ति मुझ-में नहींहै मैं तुम्हारे चरण पकडकर कहताहूं कि माता तुम प्रसन्नहोवो मुझको अवश्यही वन जाना पडैगा ॥ ३० ॥ फिर विचार करके देखो कि वनवासी सब शास्त्र पढे हुये महर्षि कन्डुजीने अधर्म कार्य जानकर भी गायको मारडाला । परन्तु पिता की आज्ञा देनेके कारण उनको गोहत्या नहीं लगी ॥ ३१ ॥ फिर देखो हमारेही वंशमें पूर्वकालके म-ध्य सगर अपने पिताकी अनुमतिसे घोडेको खोजके लिये पृथ्वी खोद-

कर पीछे सब विनाशको प्राप्त हुयेथे ॥ ३२ ॥ जमदग्नि ऋपिके पुत्र धैर्यवान परशुराम जीने पिताकी आज्ञा पाकर कुठारसे वनमें अपनी माता रेणुका का शिर काटडाला ॥ ३३ ॥ इन समस्त देवता ओंकी समान महा पुरुषोंने व औरभी अनेक पुरुषोंने पिताकी आज्ञा पालन कीहै, अतएव जिस वातके करनेसे पिताका हित होताहो मैं हर्ष सहित उसकार्य को करूंगा ॥ ३४ ॥ माता! केवल मैंही पितृ आज्ञा पालन करताहूं सो वात नहीं है वरन जिन २ महात्मा ओंके नाम मैंने तुम्हें बताये वह सब लोग अपने पिताके वचनोंका पालन किये हुयेहैं ॥ ३५ ॥ जो धर्म प्रथम नहीं किया गयाहै मैं उस धर्मके करने में नहीं प्रवृत्त होता हूं, वरन जो धर्म अगले पुरुषों को अंगीकारथा और जो मार्ग उन्होंने लियाथा वही कार्य मैं करना चाहताहूं ॥ ३६ ॥ अतएव पिताजीके वचन मानना मेरा आवश्यकीय कार्यहै, मैं इसके प्रतिकूलाचरण नहीं किया चाहता। माताजी! तुमभी ऐसे कार्यको अधर्मका कार्य मत समझो माता पिताके वचन मानने से आजतक किसीको अधर्म नहीं हुआ है ॥ ३७ ॥ मातासे इस प्रकार कहकर वाक्य जानने वालों में श्रेष्ठ लक्ष्मण जीसे सब धनुप धारण करने वालोंमें अग्रगण्य रामचंद्रजी कहने लगे ॥ ३८ ॥ हे लक्ष्मण! तुम जो मुझसे बहुत बडा स्नेह करतेहो इसको मैं भली प्रकार जान्ताहूं तुम्हारा बल तुम्हारा वीर्य व दूसरोंके न सहने लायक तेजभी तुममें है और तुम सब कुछ करनें को समर्थहो ॥ ३९ ॥ हे शुभ लक्ष्मण! हमारी माता मेरे सत्य शम दमादि नियमोंके अभिप्रायको नहीं जानतीहैं इस कारण मेरे वन जानेके अर्थ यह महा शोकसे कातर हुईहैं ॥ ४० ॥ देखो! सब धर्मको ही श्रेष्ठ कहकर अंगीकार करतेहैं और धर्ममेंही सत्य टिकाहै; मेरे पिताजीने मुझको जो आज्ञा दीहै वह वास्तव में धर्मकीही अनुमोदित की हुईहै ॥४१॥ हे वीर! जो धर्मात्मा पुरुष पिता, माता, या ब्राह्मणसे कोई वात कहकर कि जो तुम कहोगे सो हम करेंगे और फिर उसको न करै तो उस धर्मात्माको उस बातका पालन न करना उचित नहींहै ॥ ४२ ॥ मैं इसी कारणसे पिताजीकी आज्ञाको उल्लंघन नहीं कर सकता; एकतो पिताजीके वचन और

फिर माता कैकेयी की आज्ञाहै; मुझको यह सबही तरह से इस आज्ञाका पालन करना चाहिये ॥ ४३ ॥ मैं इसी कारण तुमको समझाताहूं कि क्षत्रियोंके धर्ममें जो तुम्हारी बुद्धिहै अर्थात् संग्राम करके मुझे राज्य दिलवाया चाहतेहो, इस संकल्प व बुद्धिको अभी मनसे त्यागन कर दो-जो धर्म अति कठोर हो उसको ग्रहण करना अच्छा नहीं कोमल धर्म हम लोगोंको अंगीकार करना उचितहै ॥ ४४ ॥ लक्ष्मणाग्रज श्रीरामचन्द्रजी अपने भाई लक्ष्मणजीसे सुहृद प्रेमके कारण यह कह कर फिर शिर झुकाये हाथ जोडे हुये कौशल्याजीसे बोले ॥ ४५॥ हे अम्मा! मुझे आज्ञा दो कि वनको जाऊं, तुम्हें मेरी सौगन्धहै जो मेरे इस मंगल कार्य्यमें तुम किसी प्रकार का शोक करो अब मेरे जानेके निमित्त स्वस्त्ययनादि करो ॥ ४६ ॥ मैं राजा ययाति की नाईं जिस प्रकार वह स्वर्गसे पृथ्वी पर गिरकर फिर स्वर्गको चले गयेथे वैसेही मैं पिताकी आज्ञा पालन कर चौदह वर्ष वनमें बस अयोध्यापुरी को लौटूंगा ॥ ४७ ॥ हे जननि! तुम मेरे कारण शोक मतकरो, मनका शोच मनमें ही रक्खो,बाहर प्रगट करनेसे क्या होगा, मैं आपसे सत्यही सत्य कहताहूं कि पिताके वचनों को पूरा करके अवश्य गृहको फिरूंगा ॥ ४८ ॥ आप, मैं, जानकी, सुमित्रा व लक्ष्मण इन छःजनोंसे जो पिताजी कहैं वह इन छः ओंको अवश्यही करना चाहिये, यही हमारा सनातन धर्महै ॥ ४९ ॥ जननि! अपने मनका दुःख दूर करो, और मेरे अभिषेककी वार्त्ताको मनसे भुला दो, और जिस प्रकार मेरी बुद्धिहै कि वनको जाऊं वैसीही तुम्हारी भी बुद्धि होनी चाहिये कि यह वनको जाय तभी अच्छा होगा ॥५०॥ रामचन्द्रजीके कादरता रहित कोमल धीरता युक्त युक्तिसे भरे, यह वचन कहने पर कौशल्याजो मूर्च्छित पडे हुये की समान मानो चैतन्यता पाकर रामचन्द्रजीकी ओर एकटक देखती रही और फिर कहने लगीं ॥ ५१ ॥ हे पुत्र! हमने तुम्हें यत्न और बडे भारी प्रेमसे लालन पालन कियाहै अतएव महाराज धर्मसे व सुहृदईसे जिस भांति तुम्हारे पूज्यहैं; वैसेही मैंहूं अतएव तुमहीं कहो कि इस समय किस प्रकार मुझ हतभागिनी माताको छोड मुहँ मोड वनको चले जाओगे मुझे दुःखी छोडकर वनको मतजाओ ॥ ५२ ॥ हे वत्स! तुझे वनवासी कर देने प-

र मेरे जीने हीसे क्या प्रयोजन है? व लोकके और भाई बान्धवोंसे क्या? पतिसे क्या? मरजानेसे पितर लोकमें जाय स्वधा भोगनेसे क्या? स्वर्ग लोकमें गमन कर वहांका आनन्द भोगनेसे क्या? और मोक्षहीसे क्या है? यदि सब नाता रिश्ता छोड तोड कर केवल एक मुहूर्त भरके लिये भी तुम्हारे निकट रह सकूं तो इसको मैं अपने लिये मंगल समझ-तीहूं॥ ५३॥ इस समय जैसे अंधकारसे गढेमें गिरे हुये किसी हाथीको लोग लूका (डंडे में बँधी मसाल) से जलावें और वह महा दुःखो हो, वैसे ही माता का करुणा पूर्वक विलाप सुन रामचन्द्रजी अधिक दुःखित हुये कि माता अधर्म में प्रवृत्त करतीहै॥ ५४॥ उन्होंने देखा कि सामने मा-ता मूर्च्छित सी खडीहै भ्राता लक्ष्मणभी कादर और संतापसे तपे हुयेहैं, तब धर्मात्मा रामचन्द्रजी धर्म सहित वचन जैसे कि उस समय कहने उचि-तथे बोले॥ ५५॥ हे लक्ष्मण! तुम्हारी जो मुझ में अचल अटल भक्ति-विद्यमानहै उसको मैं भलीभांति जान्ताहूं। व तुम्हारा पराक्रमभी ऐसा वैसा नहीं है वरन दूसरोंके न करने योग्यहै फिर आश्चर्यहै कि मैं तुमको वारंवार निवारण करताहूं परन्तु तुम मेरे अभिप्रायके मर्मको न जानक-र माताके सहित मुझको और भी दुःखित कर रहे हो॥ ५६॥ इस जीव लोकमें पहले किये हुये कर्मकी फल उत्पत्तिके कालमें, धर्म, अर्थ और काम यह तीनोंही प्राप्त होतेहैं सुतरांत जिस कार्यसे पहले कहे हुये धर्म, अर्थ आदि प्राप्त होजाँय वह हृदय विहारिणी अनुगामिनी पुत्रवती भार्या की नाईं एकान्त प्रार्थनीय है॥ ५७॥ जिस कार्यमें धर्म, अर्थ, कामका स-म्बन्ध नहीं है, उसका अनुष्ठान करना भला नहीं होता जिस कार्यके क-रनेसे धर्म की प्राप्तिहो वही करना उचित और ठीकहै, जो आदमी बेपर-वाहीकर धर्मको जलाञ्जली दे स्वार्थ पर होजातेहैं उनकी सब जग निन्दा करताहै। विचार करके देखने पर धर्म रहित कार्य किसी प्रकारसे प्रशं-सनीय नहीं हो सकता॥ ५८॥ देखो संसार में गुरु राजा पिता व वृद्ध इनकी आज्ञा माननी चाहिये यह शास्त्र में भी लिखाहै फिर एक तो म-हाराज गुरुहैं फिर राजाहैं फिर पिता तिसमें वृद्ध वह काम, क्रोध वा ह-र्षसे जिस प्रकार की आज्ञादें फिर धर्म ज्ञान करके कौन उसका अनु-ष्ठान नहीं करैगा॥ ५९॥ बस इस कारण पिताजीने जो प्रतिज्ञा की है

उसके विरुद्ध कार्य करने को मैं समर्थ नहींहूं । महाराज हमारे पिताहैं हमारे ऊपर उनका सर्व भावसे अधिकार है, विशेषतः माताजीके पतिहैं, और वही हमारे एक मात्र गति व धर्महैं ॥ ६० ॥ क्योंकि ऐसे धर्मराज महाराजके जीतेही व अपने राज काज करतेही यह विधवा स्त्रीके समान हमारे साथ कैसे चलेंगी ॥ ६१ ॥ हे देवि! अतएव जिस प्रकार सत्य पालन करके महाराज ययातिजीने फिर स्वर्ग पायाथा, वैसेही मुझको वन जानेकी आज्ञा दीजिये; और आशीर्वाद कीजिये कि चौदह वर्ष वनमें रह पिताके वचन पूरे कर गृहको लौटूं ॥ ६२ ॥ मैं राज्य पाने की कामनासे पिताजीके कहे हुये वन गमन रूप यशको नहीं छोड सकता । विचार करनेसे देखा जाताहै तो यह जीवन क्षणभङ्गुरहै अतएव इसजीवन में अधर्मानुसार तुच्छ राज्यको भोग करने की मेरी कामना नहीं है ॥ ६३ ॥

प्रसादयन्नरवृषभःसमातरंपराक्रमाज्जिगमिषुरेवदंडकान् ॥ अथानुजंभृशमनुशास्यदर्शनंचकारतांहृदिजननींप्रदक्षिणम् ॥ ६४ ॥

मानवेंद्र रामचन्द्रजी विवाद रहित मनसे दण्डकारण्यमें प्रवेश करने के आशयसे छोटे भ्राता लक्ष्मणजीको इस प्रकार का उपदेश देकर अपनी माताको प्रसन्न करते हुये और उनकी प्रदक्षिणा करके वहांसे जानेका विचार करने लगे ॥६४॥ इ०श्री०वा०आ०अ०एकविंशःसर्गः॥२१॥

द्वाविंशःसर्गः ॥

अथतंव्यथयादीनंसविशेषममर्षितम् ॥
सरोषमिवनागेंद्ररोषविस्फारितेक्षणम् ॥ १ ॥

अनन्तर लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीका वन जाना स्मरण करके अतिशय व्याकुल हुये व रामचन्द्रजी की यह अवस्था वह न सहसके और वह क्रोध युक्त हाथी की समान दीर्घ निश्वास परित्याग कर क्रोधसे आंखे फैलाये ॥ १ ॥ उस समय रामचन्द्रजी प्रिय भ्राताको सामने करके धीरजके गुणसे अपना चित संभालकर लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २ ॥ हे लक्ष्म

ण ! कैकेयीके ऊपर का क्रोध छोड हमारे राज्य न मिलने का शोक मिटाय केवल धीरजको धार इस अपमानको भुलाकर कि जो पितानें हमें वनको भेजाहै और इससे ही उत्तम हर्ष समझकर कि पिताके वचनोंका पालन होगा ॥ ३ ॥ जो जो वस्तु मेरे अभिषेकके अर्थ एकत्रहैं उनकी ओर ध्यान न देकर मेरे वन जाने की तैयारी तुम करो॥ ४॥ मेरा अभिषेक होनेके लिये सब सामग्री इकट्ठी करनेको जिस प्रकार तुमने यत्न कियाथा अब वैसाही यत्न अभिषेक न होनेके लिये करो ॥५॥ मेरे अभिषेक का समाचार पाकर जिनका मन संतापित हुआहै, वह माता कैकेयी जिस प्रकारसे शंका रहित होजाय तुम अब वैसाही कार्य करनेमें प्रवृत्तहो॥ ६ ॥ हेलक्ष्मण! माता कैकेयी जीके हृदयमें जो शंकामय दुःख उत्पन्न हुआहै, मैं उसको अब एक मुहूर्त भरभी नहीं देखा चाहता ॥ ७ ॥ मैंने ज्ञानसे अथवा अज्ञानसे पिता, माताका कोई साधारणभी अपराध नहीं कियाहै, मुझको तो यह याद नहीं होता ॥८॥हमारे पिताजी सत्यवादीहैं सत्यके समुद्रहैं, सत्य पराक्रम करने वालेहैं, वहैं परलोकके भयसे डरेहैं; सो अब उनका भय दूर होवे ॥ ९ ॥ जोमैं अपने अभिषेक की कामनाको त्याग नहीं करदूंगा तो पिताजी अपने वचनोंको उल्लंघन होते देखकर मनमें संताप पावेंगे और फिर इस दुःखसे मेरी मर्म पीड़ा औरभी वढ जायेगी ॥ १० ॥ हेलक्ष्मण! इस कारण इस राज्याभिषेक विधानको त्यागन करके वनके जानेही की मेरी इच्छाहै ॥ ११ ॥ मेरे वनके चलेजाने पर कृतकार्य हो माता कैकेयी अपने पुत्र भरतजीको बुलाकर निष्कण्टक राज्य देदेवे ॥ १२ ॥ मेरे जटाजूट धारण करने, और वल्कल मृग चर्म पहर वनवासी होने पर कैकेयी आनन्द पूर्वक अपना समय वितावेगी ॥ १३ ॥ जिसने कैकेयी को यह बुद्धि दीहै और जिसने फिर इसही बुद्धिके समान इस कार्यके साधन करनेमें उसको दृढ रक्खा अतएव मैं उसके मनमें दुःख नहीं पहुंचाना चाहता; मैं अभी वनको चला जाऊंगा ॥ १४ ॥ हेभ्रातः सुविशाल राज्यके पाने, नपानेके यह दोनों विषय दैवाधीनहैं, इसमें किसीका कुछ चारा नहीं चलता, इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥१५॥ यदि दैव इस विषयका कारण नहोता तो जो कैकेयी सदासे हमें बहुत प्यार करती रही, वह

इस समय मुझे वनवास दिवानेको ऐसी उतारू होजाती और इसका स्वभाव ही क्यों ऐसा होजाता ॥ १६ ॥ हेलक्ष्मण! तुम जानते हो किमैं सब माताओंको बराबर समझतारहा कभी किसीको पृथक् भावसे नहीं समझा और कैकेयीभी मुझे व अपने पुत्र भरतको एकही दृष्टिसे देखती ॥ १७ ॥ और अलग २ नहीं समझतीथी अतएव यह सब भाग्यहका दोषहै * व उसने जो मेरा अभिषेक न चाहकर मेरे वनवासके हेतु ऐसे कठोर दुर्वचन मुखसे कहे, इस विषयमें भाग्यके सिवाय और किसको दोष दियाजाय ॥ १८ ॥ मैं जानताहूंकि देवी कैकेयी अतिशय श्रेष्ठ स्वभाव और गुणों करके युक्तहैं, वह जो साधारण स्त्रियोंकी समान अपने स्वामीके सामने इस प्रकारसे मर्मकी भेदन करनेवाली बात कहतीहैं. इसका मूल कारण अपना दैवहीहै ॥ १९ ॥ जो चिन्ता से परेहो उसही का नाम भाग्यहै जीव गणोंके मालिक ब्रह्मादि देवगण पर्यन्त जिसको नहीं मेट सकतेहैं इसही कारणसे मेरा भाग्यही ऐसाहै कि राज्य छोड कर वनको जाना पडा यह भाग्यहीहै कि जिसने चल करके यह दिखलाया ॥ २० ॥ हेलक्ष्मण! कर्म फल भोगनेके सिवाय जिसको जानने का कोई उपाय नहीहै उस भाग्यसे लडनेको कौन पुरुष साहस कर सकताहै? क्योंकि उसके रूपको न कोई देखही सकता न किसीके विचारमेंही आसक्ताहै ॥ २१ ॥ सुख, दुःख, भय, क्रोध, हानि, लाभ, बन्धन, मुक्ति, इनसबके बीचमें जो कुछहै सो भाग्यहीहै ॥ २२ ॥ औरों की बातें जाने दीजिये जोकि कठोर व्रत करने वाले उग्रतप जिन्होंने कियेहों ऐसे तपस्वी लोगभी भाग्यके वश हो व्रत नियम इत्यादि छोड छाड कर काम क्रोधके वश में हो भ्रष्ट होजातेहैं ॥ २३ ॥ जिस कार्यके करनेको नतो कभी विचार किया जाय और वह अपने आप एकाएकी होजाय, और जिसका विचार करो वह नहो, बस यही दैवका कर्म समझना चाहिये ॥ २४ ॥ हेलक्ष्मण! तत्त्व ज्ञानकी सहायतासे भली प्रकार करके प्रबोधित होने पर मेरे अभिषेक मिलनेको था वह नहीं मिला और अब वनवासको जाना पडा इसमें

*दोहा—वधिक वधो मृग बाणते, रुधिरो दियो बताय। निजहूं अनहित होतहै, तुलसी दुर्दिन पाय॥१॥
हे लक्ष्मण सुन जाहि जब, होत विधाता वाम। धूरि मेरु सम जनक यम, ताहि व्यालसमदाम ॥ २ ॥

तुमको संताप होनानहीं पडैगा ॥ २५॥ अब तुम मेरे उपदेशसे मनका सब दुःख परिताप छोड करके मेरीसी बुद्धि अपनीभी करलो, और जो मैं कहूं सो करो और मेरे अभिषेकके प्रयोजनीय कार्यसे सबका मन अलग हटादो ॥ २६ ॥ मेरा अभिषेक होनेके लिये अनेक तीर्थों के जलसे भरे जो कलश आयेथे अब इन कलशोंसे मेरा तपस्वी स्नान होगा अर्थात् अब तपस्वी भेष करने पर इनसे स्नान करूंगा ॥ २७ ॥ अथवा अब अभिषेक की सामग्रीसे प्रयोजनही क्याहै? मैं अपने हाथसे कुएँसे जल लाकर उससे तपस्वी व्रतका स्नान पूराकरूं ॥ २८ ॥ भाई लक्ष्मण! राज्याधिकार जो नहीं प्राप्त हुआ इसकारण तुम कुछ विषाद मत करना; क्योंकि वास्तवमें विचार करनेसे राज्य और अरण्य इनदोनों मेंसे वनवासही फल दायकहै देखो वनमें जाकर वनवासी ऋषियोंका पालन कर सकैंगे। दूसरे पिताके वचनों का पालन होजायगा और प्रजा पालनेके कर्तव्याकर्तव्यहैं उनके विचारमें छुट्टी पाना. फिर तपस्या करनेसे पवित्र चित्त रहना और वहां दीन अनाथोंकी रक्षा करना इसकारणसे वनवासही श्रेष्ठहै ॥ २९ ॥

नलक्ष्मणास्मिन्ममराज्यविघ्नेमातायवीयस्य
भिशंकितव्या ॥ दैवाभिपन्नानपितकिथंचिज्जा
नासिदैवंहितथाप्रभावम् ॥ ३० ॥

हे लक्ष्मण! तुम भाग्यका प्रभाव भली भांति जानतेहो; अतएव राज्यके न मिलनेसे और वनको चलनेसे पिताजीका वा माता कैकेयीका कुछ दोष मनमें समझना तुमको उचित नहींहै ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशःसर्गः ॥

इतिब्रुवतिरामेतुलक्ष्मणोऽवाक्शिराइव ॥
ध्यात्वामध्यंजगामाशुसहसादैन्यहर्षयोः ॥ १ ॥

रामचंद्रजीके इस प्रकार कहनेपर अनुज लक्ष्मणजी सहसा दुःख और हर्षके मध्यमें रहकर शिर झुकाये कुछ देरतक चिन्ता करते रहे हर्षतो

रामचंद्रजीकी धीरताको देख हुआ और वनवासका जाना विचार दुःखित हुये इससे सम भावमें रहे ॥ १ ॥ परन्तु कुछ विलम्ब पश्चात् भौहैं वंकिमाकारकर बिलमें बैठे हुये क्रोधित भुजंगकी नाईं दीर्घ निःश्वास त्याग करने लगे॥२॥उस समय लक्ष्मणका मुख भौहैं टेढी होनेसे क्रोधित सिंहके मुखकी नाईं अति भयानक आकार वाला होगया ॥ ३ ॥ हाथी जिस प्रकार अपनी शुन्ड़ इधर उधर हिलाताहै इसी प्रकार लक्ष्मणजी हाथ कँपाय शिर इधर उधर हिलाय झुलाय ॥ ४ ॥ टेढी दृष्टिसे भाई रामचंद्रजीको देख कहने लगे, आर्य! आप जो वन जानेके लिये तैयार हुयेहैं यदि विचार करके देखिये तो यह बात संपूर्णतः भ्रमकी भरी हुईहै ॥ ५॥ मैं कह सक्ताहूं कि धर्ममें दोषका प्रसंग और लोक मर्यादाकी रक्षा करना इस करके घिरा हुआ आपका जो मनहै उसमें विपम शीघ्रता आगईहै, यदि ऐसा न होता तो आप सरीखे पुरुष कभी ऐसो वार्त्ता कह सकते? कि भाग्यहीके भरोसे सब कुछहै ॥ ६ ॥ हे वीर पुरुष श्रेष्ठ! आप इस निबल भाग्यको सरलतासे जीत सकतेहैं! परन्तु इसको न करके आप इस तुच्छ भाग्यकी इतनी प्रशंसा क्यों करतेहैं ? ॥ ७ ॥ हे धर्मात्मन् ! महाराज अतिशय पापीहैं क्या इन दोनोंकी साड़तको आप अबतक नहीं समझे! आप क्या जानते नहींहैं कि संसारमें अनेक लोग केवल अपने स्वार्थके लिये धर्मका झूंठ मूंठ दावा किया करतेहैं देखिये आपके वनवास देनेमें धर्मकी क्या बातहै ? ॥ ८ ॥ विचार करके देखिये कि स्वार्थ परतामें पडकर महाराज पिताजी और कैकेयी शठता पूर्वक आपको वनवास देतेहैं,यदि ऐसा न होता तौ सब अभिषेकका सामान तैयार कर कराकर फिर आपके अभिषेकमें ऐसा विघ्न उठाकर खडा नकर देते ॥ ९ ॥ यदि वर देनेकी वार्त्ता वास्तवमें ठीक होती तो अभिषेक होनेके पहलेही उसकी सूचना क्यों नहीं की गई ? जोहो बडेको छोड़ छोटेको राज्य देना यह तो बहुत बडी लोकमें निन्दा करने वाली वार्त्ताहै ॥ १० ॥ यदि कहो कि राजाने भूलसे वरदान दिया तौभी हानिहीहै क्योंकि इस अनुचित कार्यसे लोकमें द्वेष फैल जायगा कि बड़ेके होते छोटा कैसे राज्य पा सक्ताहै परन्तु हे वीर चूडामणे ! मैं तो इस घोर वीभत्सकार्यको किसो प्रकारसे नहीं कर सकूंगा यह कर्म लोक और

शास्त्र दोनोंसे विरुद्धहै इस कारण इस विषयमें आप मुझे क्षमा करिये११ आप जो पिताजीका सत्य पालन करनेके लिये मोहित होतेहैं और जिसके प्रभावसे आपकी बुद्धिमें यह हेर फेर हुआहै मैं उस धर्मके लिये मनसे द्वेष करताहूं ॥ १२ ॥ मैं भली प्रकार जानताहूं कि आप धर्मवानहैं परन्तु अब आप किस कारणसे, स्त्रीके वश हुये राजाके अधर्मसे भरे हुये यह घिनोने वचन धर्म जान पालन करनेको तैयार हुयेहैं, बस इस समय यही मुझे बडी भारी चिन्ताहै॥१३॥आपके राज्याभिषेकमें जो बाधा हुईहै, बस केवल वर देनाही उसका छल समझिये, आश्चर्यहै कि आप इस बातको नहीं मानते आप इनके कपटकोभी सरलतासे ग्रहण करतेहो इस प्रकारके धर्मकी संगति निन्दनीयहै आप इसका ध्यान नहीं करते मुझे यही बडा दुःखहै ॥ १४ ॥ आप जो धर्मका अनुसरण करके वन जानेको तैयार हुयेहैं यह वार्त्ता लोकमें बहुत निन्दाकी करानेवालीहै जिनकी इच्छाही दूषितहै, उन महाराज पिताजी और कैकेयीका वचन मानना तो दूर रहा उनकी बातको मनमेंभी स्थान नहीं देना चाहिये कहनेसे वो संबंधानुसार महाराज व रानी कैकेयी पिता माताहैं, परन्तु व्यवहारसे वास्तविकमें यह हमारे दारुण वैरीहैं ॥ १५ ॥ यद्यपि आपके मतसे माताके वचन इस विषयमें दैवके किये हुयेहैं, तथापि मुझे तो यह वार्त्ता अच्छी नहीं लगती क्योंकि ऐसे दैवका कौन भरोसाहै ॥ १६ ॥ जिन पुरुषोंमें पुरुषार्थ नहींहै और बहुतही तेजहीनहैं, वह लोगही भाग्यको माना करतेहैं, जो वीरहैं, और जगत् जिनको वीर जानताहै वह लोग दैवपर भरोसा नहीं रखतेहैं ॥ १७ ॥ जो पुरुष अपने पुरुषार्थसे भाग्यको जीत सक्तेहैं यदि अचानक उनका कोई कार्य बिगड जाय तो वह लोग हिम्मत नहीं हारते वरन प्रसन्न रहतेहैं ॥ १८ ॥ भाई साहब! आज सब लोग भाग्य और पुरुषकार दोनोंके बल पौरुषको देखें, जोहो आज भाग्य और मनुष्यके बलाबलकी परीक्षा होगी ॥ १९ ॥ जिन लोगोंने भाग्यकी शक्तिसे आपका राज्याभिषेक हटाया हुआ देखाहै, आज वही लोग हमारे पौरुषके प्रभावसे उस भाग्यको हारा हुआ देखेंगे ॥ २० ॥ जैसे दौडते हुये बडे ऊंचे मतवाले हाथीको अंकुश वश कर लेताहै, वैसेही आज मैं अपने पराक्रमसे भाग्यको अपने आधीन करूंगा ॥ २१ ॥ पिता

दशरथजीकी बात तो जानेही दीजिये जो सब लोकपाल, इन्द्र वरुण, कुबेर, यमराज, अग्नि, सूर्यादि, बरन तीनों लोकके सब मनुष्यभी आपके अभिषेकमें विघ्न नहीं डाल सकेंगे ॥ २२ ॥ जिन लोगोंकी सलाहसे आपका वन जाना स्थिर हुआ है, आज मैं उन लोगोंकोही चौदह वर्ष के वास्ते वनमें भेजूंगा ॥ २३ ॥ महाराज, पिता और कैकेयी आपका बुरा करके भरतको जो यौवराज्यमें अभिषेक करनेके लिये आशा लगाये बैठे हैं आज यह उनकीआशा निर्मूल करूंगा ॥ २४ ॥ जो कोई हमारे विरुद्ध आचरण करनेको आगे बढैगा उसके लिये हमारा दुर्द्धर्ष पौरुष जितने दुःखका कारण होगा भाग्य बल उसे उतना सुख नहीं दे सकेगा ॥ २५ ॥ हे आर्य! आप हजारों वर्ष तक राज्यका सुख भोग जब वनको जांयगे उस समय आपके पुत्र गण प्रजा पालन करके राज्य काज करते रहैंगे। उस समयभी भरतके पुत्र या वह स्वयं राज्य नहीं पासकैंगे ॥ २६ ॥ क्योंकि पूर्वकालमें सब भूपालगण यही करते चले आये हैं कि वृद्धावस्थामें प्रजाको पुत्रकी समान पालन करनेके लिये पुत्रोंको सौंप आप वनमें तप करनेके लिये रहेथे। यह नहीं कि आपकीसी युवा अवस्थामें वनको जांय॥ २७ ॥ हे आर्य! महाराज कामके वशहो चपलताके दोषसे हमारे विरुद्ध आचरण करते हैं परन्तु इससे आप अपने राज्याधिकारसे मन न हटाइये ॥२८॥ हे वीर! प्रतिज्ञा करताहूं कि मैं आपके राज्यकी रक्षा करूंगा,यदि न करूं, तो वीर लोकको न प्राप्त होऊं आप समझलीजिये कि तीर भूमि जिस प्रकार सागरकी रक्षा करतीहै मैंभी आपके निकट वैसेही रहूंगा ॥ २९ ॥ अब आपके राज्याभिषेकके लिये जो सब मंगलाचारकी वस्तुयें इकट्ठी की गइहैं, उनसे आप अपना अभिषेक कराइये यदि इस कार्यमें कोई राजा कुछभी बाधा उठावै तो मैं अकेला सब पृथ्वीके राजाओंको जीत सकताहूं। अकेले दशरथकी क्या गिनतीहै, ॥ ३० ॥ भाई! यह हमारी बांहें केवल शरीरकी शोभा बढानेको उत्पन्न नहीं हुईहैं, किन्तु पराक्रमके लियेहैं, केवल आभूषणकी भांति धनुष धारण नहीं करताहूं वरन् शत्रुओंका शरीर छेदन करनेके लिये, यह खड्ग केवल भारही नहींहै वरन वैरीका मूंड काटनेके लियेहै बाण स्तंभ रूप नहींहै किन्तु छोडनेकोहै ॥ ३१ ॥

यह चारों पदार्थ हमारे शत्रुओंको मथनही करनेके लिये हैं, जो हमारा शत्रु बनकर रहना चाहताहै उसको हम कुछभी नहीं समझते ॥ ३२ ॥ दूसरोंकी बात क्या कहूं यदि सुरपति इन्द्रभी हमारे साथ इस राज्यके विषयमें शत्रुता करनेके लिये तैयारहो तो मैं बिजलीकी समान तेज धार वाली तलवारकी सहायतासे उसकोभी टुकडे २ करके फेंक दूंगा॥३३॥ मेरा यह खड्ग निरंतर आघात करकै हाथियोंकी सूंडे । घोडोंके हाथ पांव व पैदलोंके मस्तक काटकर रणभूमिको चलनेके योग्य न रक्खेगा अर्थात् रणभूमि भयंकर होजायगी ॥ ३४ ॥ आज हमारी तलवारके प्रहारसे शत्रुगण खूनसें रंगे हुये जलती हुई आग व बिजली सहित मेघकी नांई शोभित होकर रणभूमिमें गिरेंगे ॥ ३५ ॥ मैं प्रतिज्ञा करकै कहताहूं कि जब हम गोहेके चमडेसे बना हुआ गुश्तानाटंकार देनेके लिये पहरकर और दिव्य शरासन धारण करके खडे हो जांयगे तब कौन वीर पुरुष मुझको पराजित कर सकताहै ? ॥ ३६ ॥ मैं बहुत सारे बाण चलाकर एक पुरुषको, व एक मात्र शराघातसे अनेक लोगोंको विनाश करकै हाथी, घोडे, और मनुष्योंके मर्म स्थान बराबर छेदनकरता रहूंगा ॥ ३७ ॥ आज महाराजकी प्रभुता मिटाने और आपकी प्रभुता जमानेमें मेरा बाहुबल और अस्त्र बल प्रगट हो जायगा ॥ ३८ ॥ आज चंदन लगी हुई मेरी बाहैं, व अंगद पहरी हुई, सदा दानकी देनें वाली सुहृदोंको पालने वाली सुख करने वाली ॥ ३९ ॥ रामका कार्य करैंगी तुम्हारे अभिषेकमें विघ्न करने वाले लोगोंको रोकने वाली, और शोक देने वालीहैं । हम ठीक २ कहतेहैं कि हमारी भुजा यह सब काम करैंगी ॥ ४० ॥ हे प्रभो ! आप आज्ञा दीजिये कि किसको धन, प्राण और भाई बन्धुओंसे न्यारा किया जाय ? मैं आपका दासहूं मुझे आज्ञा दीजिये जिस प्रकारसे यह पृथ्वी आपके अधिकारमें आजाय, मैं उस कार्यके अनुष्ठान करनेमे यत्न करूं ॥ ४१ ॥

विमृज्यबाष्पंपरिसांत्व्यचासकृत्सलक्ष्मणंराघववंशवर्धनः ॥ उवाचपित्रोर्वचनेव्यवस्थितंनिबोधमामेषहिसौम्यसत्पथः ॥ ४२ ॥

रघुकुलके बढाने वाले रामचन्द्रजी लक्ष्मणके ऐसे वचन श्रवण करकै उनके आंशू पोंछ वारंवार उनको समझाने बुझाने लगे और बोले हे वत्स ! मैंने भली भांति पिताका सत्य पालन करनाही उचित समझाहै; अतएव मैं उस वचनसे किसी प्रकार नहीं हट सकता यही सत्य मार्ग- है ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्री० वा० आ० अ० त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः ।

तंसमीक्ष्यव्यवसितंपितुर्निर्देशपालने ॥
कौसल्याबाष्पसंरुद्धावचोधर्मिष्ठमब्रवीत् ॥ १ ॥

अनन्तर रामजननी कौशल्याजी धर्मात्मा पुत्र रामचंद्रजीको पिताकी आज्ञा पालन करनेंमें तैयार देख आंसुभरे नेत्र किये गद्गद कंठसे बोलीं ॥ १ ॥ हे राम ! तुमने महाराज दशरथके औरससे मेरे गर्भमें जन्म ग्रहण कियाहै, बालक पनसे दुःख क्या पदार्थहै सो तुम जानते नहीं सब प्राणियोंके प्रिय करनें हारे, फिर भला तुम किस प्रकारसे वनमें जाय कन्द मूल फलोंका आहार कर मुनियोंकी वृत्तिको निवहोगे ॥ २ ॥ जहां तुम्हारे नौकर चाकर दास दासी अनेक प्रकारके मीठे व्यंजन भोजन करते रहे वहां तुम किस प्रकार कंद, मूल, फल भोजन करके दिन बिताओगे ॥ ३ ॥ जब कोई इस बातको सुनेगा कि राजाके प्यारे दुलारे परम प्रिय पुत्र रामचंद्रजी वनको जातेहैं । तो इस बातका कौन विश्वास करेगा और जब निश्चय करके विश्वास होही जायगा । तो यह जानकर कि राम वनको भेजे गये, कौन पुत्र पिताको मनही मन भयका कारण न समझैगा ! क्योंकि जब तुम पिताको ऐसे प्यारे थे और उन्होंनेही तुम्हैं वनवास दिया फिर और पिताओंका क्या भरोसा? ॥ ४ ॥ जब तुम सर्व लोकोंके प्यारे रामचन्द्र वनको जाओहो तब सुख दुःखका नियम बनाने वाला भाग्यही सबसे बडाहै यह मुझको ठीक निश्चय होगया यदि ऐसा न होता तो राज्य मिलनेके समय तुम वनको न जाते ॥५॥ हे राम ! यह मेरेही मनसे उपजी हुई शोकानल जब तुमको न देखेगी तब जो ऊर्ध्व श्वासे आवेंगी उस वायुसे वर्द्धित हुआ विलाप कलाप करनेका दुःख ईंधन रूप होकर आंसुओंके रोनेकी आहुति पाय ॥ ६ ॥ चिन्तासे उ-

त्पन्न भाफको धूम बनाकर जो कि विना तुम्हारे दर्शन किये चिन्ता होगी सो मुझको भली भांति अधिक कृश करके॥७॥जैसे गरमीके दिनोंमें सूर्य भगवान वृक्ष,लता,घास,फूल,पत्रादिकोंको जलातेहैं वैसेही तुम्हारे विना यह शोकानल मेरे हृदयको भेद करके मुझको भस्म करदेगी ॥ ८ ॥ हे वत्स ! तुम जहां जाओगे, मैंभी वहीं २ तुम्हारे साथ चलूंगी क्योंकि कभी गाय अपने बच्चेका संग छोडतीहै ? ऐसेही मैंभी तुम्हारा साथ नहीं छोडूंगी ॥ ९ ॥ जो कुछ शोकसे तपाई हुई माताने कहा उसको सुनकर पुरुप श्रेष्ठ रामचंद्रजी अपनी दुःखित मातासे बोले ॥ १० ॥ हे माता! जननि केकेयीने पिताजीको धोखा देकर बहुतही दुःखित कियाहै और मैंभी इस समय पिताजीसे बिछुडकर वनको जाताहूं और तिसपर यदि आपभी मेरे साथ वनको चलें तो महाराज कदापि जीते न बचैंगे ॥ ११ ॥ संसारमें जितनी कुछ निठुरताहै वह सबसे अधिक निन्दित जो कार्यहै; वह स्त्रीका अपने स्वामीको त्याग करनाहै । इस कारण हे मैया! यह बात तुम मनसेभी न विचारो, ऐसी बातोंको मनमें स्थान देनेसेभी पापहै ॥ १२ ॥ जगत्पति हमारे पिताजी जब तक जीवित रहैं आप तब तक उनकी सेवा करती रहैं समझलो कि तुम्हारा यही सनातन धर्महै ॥ १३ ॥ श्रेष्ठ कर्म करने वाले रामचंद्रजीके ऐसा कहनेपर शुभ दर्शन वाली कौशल्याजी प्रीति मनसे रामचंद्रजीसे कहने लगीं॥१४॥ कि हे वत्स! स्वामीकी सेवा शुश्रूषा करना स्त्रियोंका आवश्यकीय कर्महै, इसमें कोई सन्देहकी वार्त्ता नहीं है. उस समय दुःखित माताको स्वामीके सेवामें विरक्त देखकर धर्म धारियोंमें श्रेष्ठ श्री रामचंद्रजी उनसे बड़ी धीरता, व नरमाईके साथ फिर बोले ॥ १५ ॥ हे जननि ! महाराज एक तो आपके पतिहैं और दूसरे मेरे परम गुरुहैं, तीसरे पिताहैं और चौथे सबके पालन पोषण करने वालेहैं पांचमें राजाहैं छठे सबमें श्रेष्ठहैं इसकारण उनकी आज्ञाका पालन करना हम दोनों को उचितहै ॥ १६ ॥ मैं प्रतिज्ञा करके कहताहूं कि चौदह वर्ष तक वनमें घूम घामकर प्रसन्न मनसे लौट कर आपके चरणोंकी सेवा करूंगा ॥ १७ ॥ अपने प्यारे पुत्रके ऐसे वचन सुनकर पुत्र वत्सला कौशल्याजी आंखों में आंसूभर दुःखितहो रुदन करती हुई बोलीं ॥ १८ ॥ मैं यहां सौतोंके

बीचमें किस प्रकार रह सकतीहूं तुमतो वनको जाओ और मैं यहां रहूं, हे पुत्र वनमें मारी २ फिरने वाली हरिनी के समान मुझेभी अपने संग लेचलो ॥ १९ ॥ यदि तुमने निश्चयही वन जानेकी विचारीहै तो मुझे यहां मत छोडो। कौशल्याजी रामचंद्रजीसे इस भांतिकह रोनें लगीं * तब रामचंद्रजी उनसे फिरबोले॥२०॥ कि जब तक स्त्री जीतीरहै तब तक पतिही उसका देवता और मालिकहै; अतएव महाराज पिताजी इस कारणसे मुझे व आपको अपनी इच्छानुसार दंड दे सकतेहैं जो कि हम उनके प्रतिकूल आचरण करें ॥ २१ ॥ महाराजके रहते हम सबको स्वतंत्र नहीं होना चाहिये क्योंकि हमारे प्रभु जीवितहैं तब तक उनके कहने अनुसार कार्य करना चाहिये जो कहोकि तुम्हारे पीछे कैकेयी दुःख देगी सो कैकेयी तुम्हारा कुछ भी नकर सकेगी क्योंकि भरतजीको मैं भली भांति जानताहूं वह सज्जन धर्मात्मा और सर्व लोकोंके प्यारेहैं ॥२२॥ वह सदा सबही प्रकारसे आपका मन प्रसन्न करनेंके लिये यत्नवान रहेंगे और तुम्हारी आज्ञामें रहेंगे क्योंकि यह सदा धर्ममें रहतेहैं जिससे कि मेरे वनको चलेजाने पर पुत्र शोकसे व्याकुलहो राजा कष्ट न पावें॥२३॥ व किसी प्रकारका दुःख उन्हें नहो इस विषयमें हे अम्मा ! तुम बहुतही ध्यान रखियो क्योंकि मुझे यह विश्वासहै कि मेरे वन जानेका शोक प्रबल होकर उनकी मृत्युका कारणहो सकताहै ॥ २४ ॥ क्योंकि राजा अब वृद्ध होगये हैं इससे उनका हित करनेके लिये सदाध्यान धरकर उनकी सेवा करना। क्योंकि जो परमोत्तम नारी व्रत उपवासमें रात दिन लगी रहै ॥ २५ ॥ और मन लगाकर पतिकी सेवा नकरै वहभी नरकगामिनी होतीहै, और जो स्त्री तनमनसे अपने स्वामीकी सेवा करती और कोई पूजा पाठ व्रत इत्यादिक नहीं करतीहै वहभी पतिकी सेवाके बलसे स्वर्गको सीधी चली जातीहैं ॥ २६ ॥ जो स्त्री देवताओंकी पूजा नहीं किया करती, औ व्रत इत्यादिक जिसको नहीं रुचते, और बडोंको जो नहीं नवती परन्तु दिन रात अपने स्वामीका हित करतीहै वह उत्त

---

* चौ०—बहु विधि विलपि चरण लपटानी। परम अभागिनि आपहि जानी॥ दारुण विरह महा उर व्यापा। कह्यो न जाय मात सन्तापा॥ कौनहु भांति धरत नहिं धीरा। लोचन सलिल जात अतिनीरा॥

मही गति पातीहै ॥२७॥ इसलिये जो स्त्री सदा अपना भला चाहतीहै वह निष्कपट होकर स्वामीकी सेवा करे ! हेदेवि! वेद व स्मृति इत्यादि धर्म शास्त्रोंमें यह धर्म लिखा हुआहै इस समय यह प्रार्थना औरहै कि जब अग्नि-होत्रका समय आवे तब पतिकी सेवामें मन लगाये हुये ॥ २८ ॥ मेरा मंगल मनानेके लिये अक्षत् पुष्पोंसे देवताओंकी पूजा करना, और व्रतनिष्ठ ब्राह्मणोंकी पूजा करना इस प्रकार समय व्यतीत करते हुये मेरे आनेकी आकांक्षा किये ॥ २९ ॥ पवित्र भावसे पतिकी सेवामें रत रहकर समय विताना मेरे वनसे लौट आनेपर तुम्हारी सब मनोकामना पूर्ण हो जायगी ॥ ३० ॥ यदि धर्म धारने वालोंमें श्रेष्ठ हमारे पिता जीते रहे तो तो निश्चयही यह बातें होंगी रामचंद्रजीके ऐसा कहनेपर आंखोंमें आंसूभर गद्गद् कंठसे ॥ ३१ ॥ पुत्र शोकसे कातर हुई कौशल्याजी रामचंद्रजीसे बोलीं, उनकी दोनों आंखोंसे आंसू बह रहेथे हे पुत्र ! जो तुम निश्चयही वनको जाओहो तो तुम्हें वन जानेसे रोकनेकी सामर्थ्य मुझमें कहांहै ॥ ३२ ॥ मैंने जान लिया कि अवश्य होनहार कालकी शक्तिको कौन बाधासे रोक सकताहै ? जोहो हे पुत्र ! तुम एकाग्र मनसे वनको जाओ तुम्हारा मंगलहो ॥ ३३ ॥ हे महाभाग ! जब तुम्हारा यह व्रत सिद्ध होजायगा अर्थात् पिताकी आज्ञा पालनकर चौदह वर्ष वनमें रहकर घरको लौटोगे तो मैं सुखी होऊंगी ॥ ३४ ॥ हे पुत्र तुम्हें चौदह वर्षके पीछे पिताके ऋणसे छूटा हुआ देखकर मैं परम सुख पाऊंगी,हे पुत्र! निश्चयही भाग्यकी गति समझ नहीं पडतीहै ॥ ३५ ॥ हे महाबाहो मेरे वचनोंकी रक्षा न कराकर जिस भाग्यने तुम्हें वनवासी किया, उस भाग्यकी समान बडा और कौन बन सकताहै,अच्छा अब तुम वनको जाओ और निर्विघ्न चौदह वर्षके पीछे फिर इस राजपुरी अयोध्याको लौटो ॥ ३६ ॥ हाय ! मेरे भाग्यमें ऐसे सुखके दिन कब आवेंगे वह तुम्हारे वनसे लौटनेका समय अभी आजाय जिस दिन जटा वल्कल धारण किये वनसे लौटकर तुम कोमल और मनोहर वाणीसे मुझे समझाओ बुझाओगे * ॥ ३७ ॥

* चौ०—सुदिन सुघरी तात कब होई।जननी जियत वदन विधु जोई॥दोहा--बहुरि वच्छ कहि लाल कहि, रघुपति रघुवर तात । कबहि बुलाय लगाय उर, हरषि निरखिहौं गात ॥

तथाहिरामंवनवासनिश्चितंददर्शदेवीपरमेण चेतसा॥उवाचरामंशुभलक्षणंवचोबभूवचस्वस्त्ययनाभिकांक्षिणी ॥ ३८॥

इस प्रकार कह देवी कौशल्याजी रामका वन जाना निश्चय जानकर परम चित्तसे रामचन्द्रजीकी वह परम दर्शनीय राममूर्त्ति दर्शन करने लगीं और उनकेही मंगल मनानेके लिये मंगलाकांक्षिनी हो उनकी स्वस्ति वाचन करने लगीं ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये अयोध्याकांडे चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशः सर्गः ॥

साविनीयतमायासमुपस्पृश्यजलंशुचि॥चकार मातारामस्यमंगलानिमनस्विनी ॥ १ ॥

तब बुद्धिमती कौशल्याजी शोकको मिटाय पवित्र जलसे आचमन करके रामके मंगलार्थ अनेक प्रकारके मंगल कार्य करने लगीं और बोलीं ॥ १ ॥ हे रघुनाथ ! तुमको रोक कर मैं यहां नहीं रख सकती क्योंकि तुम पिताके वचनोंपर दृढहो अतएव तुम साधु सज्जनोंके मार्गको अवलंबन करके पिताका सत्य पालन करनेके लिये तैयार हो जाओ और शीघ्रही घरको लौटो ॥ २ ॥ तुम प्रसन्न मनसे नियम पूर्वक जिस धर्मके अनुष्ठान करनेको तैयार हुयेहो हे राघव शार्दूल ! वही धर्म तुम्हारी रक्षा करैगा ॥ ३ ॥हे पुत्र ! तुम देव मन्दिरोंमें जिन समस्त देवताओंको नित्य प्रणाम करते रहतेहो, वह सब देवता महर्षियोंके सहित तुम्हारे वनमें रहनेके समय तुम्हारी रक्षा करैं ॥ ४ ॥ बुद्धिमान विश्वामित्रने तुम्हें जितने सब विचित्र अस्त्र शस्त्र दियेहैं, वहभी सब गुण निधि तुम्हारी रक्षा करैं ॥ ५ ॥ हे वत्स ! तुम पिताकी सेवा करनेसे माताकी सेवा करनेसे और पिताकी आज्ञा पालन करनेसे रक्षा पाकर चिरंजीवीहो ॥६॥ ब्राह्मणोंके होमके ईंधन, कुश, वेदी, व देव मन्दिरोंके स्वामी देवगण सब पर्वतोंके देवता बडे छोटे सब वृक्ष सब कुण्डोंके देव तुम्हारी रक्षा करैं ॥७॥ हे नरोत्तम ! सब कीट, पतंग, सर्प, सिंह तुम्हारी रक्षा करैं।

साध्यगण; विश्वदेव, उनचास पवन सब महर्षि योंके साथ तुम्हारा कल्याण करें ॥ ८ ॥ धाता, विधाता, पूषा, अर्यमा, इन्द्रादि लोकपाल तुम्हारा मंगल करें ॥ ९ ॥ छः ऋतु बारहों महीनें सब संवत रात्रि दिन व सब मुहूर्त्त तुम्हारी स्वस्ति करें ॥ १०॥ हेपुत्र! सब अश्विन्यादि नक्षत्रोंके देवता सूर्यादि ग्रह सब देवता श्रुति स्मृति में कहा धर्म यह सब तुम्हारी रक्षा करें भगवान स्कंध, सोम, बृहस्पतिजी ॥ ११ ॥ सात ऋषियों समेत नारदजी तुम्हारी रक्षाकरें । इनके सिवाय सब दिशाओंके मालिक और सिद्ध ॥ १२ ॥ इन सबकी मैं स्तुति करतीहूं कि यह प्रसन्नहोकर वनमें तुम्हारी रक्षाकरें, सब पर्वत, सब समुद्र और राजा वरुणभी ॥ १३ ॥ और, स्वर्ग, आकाश, पृथ्वी, वायु, चराचर नक्षत्र मण्डल सब ग्रह व उनमें टिके हुये देवता गण ॥१४॥ दिन रात्रि! व दोनों सन्ध्याकाल और कलाकाष्ठादि यह सब वनमें तुम्हारी नित्य रक्षा करते रहें और कल्याण देते रहैं । छओं ऋतु बारहोंमास और संवतभी ॥१५॥ कलाकाष्ठा और सब दिशायें तुम्हारा मंगल करें महावनमें विचरते हुए मुनिवेष धारण किये हुये यह सब धीमान् तुम्हारी रक्षा करें ॥ १६ ॥ तथा देवता लोग दैत्य यह सदा तुम्हें सुखके देने वाले हों । राक्षस व पिशाच जितने क्रूर कर्म भयंकर करने वाले हैं और मास भक्षीहैं ॥१७॥ हे पुत्र! वनमें विचरते हुये इन सबका भय तुमको नहो । बन्दर, बिच्छू डांस, मत्सर यहभी तुम्हें वनमें दुःख न दें ॥ १८ ॥ और सर्प, कीडे, मकोडे आदिभी वनमें तुमको न सतावें मतवाले हाथी, सिंह, रीछ, व्याघ्र व और २ भेडिया आदि काटने वाले जीव ॥ १९ ॥ जंगलीभैंसा आदि सींग वाले कठोर जन्तु तुमको कष्ट न देसके और २ जातिके जो मनुष्यका मांस खाने वाले भयानक जीवहैं ॥ २० ॥ उन सबको मैं यहां आराधना करतीहूं कि वे वनमें तुम्हें न मारें । व जो २ शास्त्र तुमने पढेहैं सब तुमको कल्याणदाई व पराक्रम सिद्धहों ॥ २१॥ तुम बहुत सारे कंद मूल, फल प्राप्त करके निर्विघ्न वनमें घूमते रहो, व, तुम्हारी यह यात्रा सबके लिये कल्याणदायक होवे । पृथ्वीमें अन्तरिक्षादिमें जितने जीवहैं जो कि यात्रामें दुष्टता करने वालेहैं वह सब तुम्हारी यात्रामें मंगल करें ॥ २२ ॥ सब देवता जो तुम्हारी यात्रामेंहों वे सब कल्याण करें । हे

रामचन्द्र! तुम्हारे वन जानेपर शुक्र, चंद्रमा, सूर्य, कुवेर, व यम॥ २३॥ हे राम! यह सब पूजित होकर वनमें तुम्हारी रक्षा करेंगे अग्नि, वायु, धुआं और ऋषियोंके मुखसे उच्चारण किये हुये सब मंत्र ॥२४॥ स्नान करनेके समय वनमें यह सब तुम्हारी रक्षा करेंगे, सर्व लोकोंके प्रभु सृष्टिके उत्पन्न करनें वाले ब्रह्माजी व और २ सब ऋषिगण ॥२५॥ व और सब देवतागण वनमें तुम्हारी रक्षा करें इस रीतिसे माला, गन्ध, अक्षत इत्यादिसे यशस्विनी कौशल्याजीनें ॥ २६ ॥ रामचन्द्रजीका मंगल करनेके लिये यथायोग्य स्तुति कर सब देवताओंकी पूजाकी फिर अग्नि प्रज्वलित कर महात्मा ब्राह्मणोंके द्वारा ॥ २७ ॥ रामचन्द्रजीके मंगलके लिये आहुति दिलानें लगीं। घी, समिधा, सफेद फूलोंकी माला, सरसों ॥ २८ ॥ आदि सामग्री कौशल्याजीनें एकत्र कराई यज्ञ कराने वाले ब्राह्मणोंने विधि पूर्वक हवन किया अंतमें उपाध्यायोंके शान्ति पुष्पादि पढी पढाई॥२९॥ फिर आहुतिके शेषमें जो साकल्यबची उससे लोकपालोंको वलि प्रदान करने लगे। तदनंतर शहद, दही, अक्षत और घृत ब्राह्मणोंके हाथों पर धराय ॥ ३० ॥ रामचन्द्रजीके वन जानेके मंगलार्थ स्वस्ति वाचन किया गया। फिर तिस कारणसे उस यज्ञ कराने वाले ब्राह्मणको यशस्विनी रामचन्द्रजीकी मातानें ॥ ३१ ॥ मुँह मांगी दक्षिणादी और फिर रामचन्द्रजीसे कहने लगीं। जो मंगल सर्व देवतोंके नमस्कार योग्य इन्द्र को ॥ ३२ ॥ वृत्रासुरका नाश करनेंके समय हुआथा, वैसेही अब तुम्हारा मंगलहो, जो मंगल गरुडजीका गरुडकी विनता माताने किया-था ॥ ३३ ॥ अमृतकी प्रार्थना करनेके समय वही मंगल तुमको प्राप्तहो। अमृतका उद्धार करनेके लिये वज्रधारी देवराज इन्द्र जब दैत्योंके मारने में प्रवृत्त हुये ॥ ३४ ॥ और अदिति उनकी माताने जो उनका मंगल किया वही मंगल तुम्हारा हो अमित पराक्रम वाले भगवानजीने जो बलिके छलनेको वामन रूप बनाया और तीन वार चरण उठाया ॥ ३५॥ सो उनकी माता अदितिनें जो मंगल उनका कियाथा वही मंगल तुमको प्राप्त होय। सब ऋषि, सब समुद्र, सब द्वीप, वेद, दशों दिशा और सब लोक ॥ ३६॥ हे महाबाहो राम! यह सब तुम्हारा मंगल करें। यह वार्त्ता कहकर भामिनी राम जननीने पुत्रके मस्तकपर चावल चढाये ॥ ३७॥

उस बडे नेत्र वालीने व सब अंगोंमें सुगन्धित कारक वस्तु चंदन आदि लगाये जिससे रामचन्द्रजी बडे शोभित हुये। फिर' मूलिका, नाम औषधि जिसकी सिद्धाई बहुत दिनोंसे ज्ञातथी (सिद्धाई उस औषधिमें यहथी कि जो अंगके भीतरभी बाण आदि शस्त्र घुंस जाय तो उससे आपही आप निकल आवें) ॥ ३८ ॥ और विशल्य करणी घाव दूर करने वाली औषधी रामचंद्रजीके हाथमें रक्षा करनेके लिये बांधदी और फिर रामचंद्रजीके मंगलार्थ रक्षा करनेवाले मंत्र जपने लगी। तदनन्तर वह दुःखकी वशवर्तिनी होकरभी ऊपरसे प्रसन्नकी नांई रामचंद्रजीसे यह बोली ॥ ३९ ॥ पर बोलतेही मारे प्रेमके गद्गद २ वाणी हो आई। उन्होने बोलनेके पहले रामचंद्रजीको छातीसे लगालिया व उनका मस्तक झुका और सूंघ करके ॥ ४० ॥ कहाकि हे पुत्र ! अब तुम सुख पूर्वक जहां इच्छाहो वहां चले जाओ तुम रोग रहित शरीरसे पिताकी आज्ञाका पालनकर फिर अयोध्याको लौटकर आओ ॥ ४१ ॥ हे वत्स! मैं जभी सुख पाऊंगी जब तुम वनसे लौटकर राजा होगे और मैं मन भरकर तुम्हें देखूंगी वनसे लौटे हुये तुम्हारा पूर्ण चंद्रानन देखकर मैं सुखो हूंगी तब मेरे मनका उमाह पूरा होगा जाओ जानकीको समझाओ ॥ ४२ ॥ हे राम ! शिवादि देवता व महर्षि लोग भूतगण देवता नाग सब जिनकी पूजा आजतक हमनेकीहै हे राघव ! वे सब दिशापति वन जाते हुये तुम्हारा हित बहुत दिनोंतक करते रहें ॥ ४३ ॥ कौशल्याजी यह कह पुत्रके मंगलार्थ स्वस्ति वाचनादि समाप्तकर आंखोमें आंसू भर वार २ रामचन्द्रजीकी प्रदक्षिणा करने लगीं, और वार २ हृदयसे लगाकर उनके मुखकी ओर एकटक देखती रहीं ॥ ४४ ॥

तयाहिदेव्याचकृतप्रदक्षिणानिपीड्यमातुश्चरणौपुनःपुनः ॥ जगामसीतानिलयंमहायशाःसराघवःप्रज्वलितस्तयाश्रिया ॥ ४५ ॥

देवी कौशल्या जब वारंवार इस प्रकार रामचन्द्रजीकी प्रदक्षिणाकर चुकीं तब रामचन्द्रजीभी वारंवार उनके चरणोंमें गिरे फिर महायशी रामचन्द्रजी अपनी देहकी प्रभासे दीप्तिमान होकर उस स्थानको छोड

सीताके भवनकी ओर गमन करने लगे ॥ ४९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे पंचविंशतितमः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः ॥

अभिवाद्यतुकौसल्यांरामःसंप्रस्थितोवनम् ॥
कृतस्वस्त्ययनोमात्राधर्मिष्ठेवर्त्मनिस्थितः ॥ १ ॥

रामचन्द्रजीके लिये स्वस्ति मंगल इत्यादिक होजाने पर वह धर्म में स्थिर धर्मात्मा माताके चरणों में प्रणाम कर विदाले वनको चले ॥ १ ॥ रामचन्द्रजी जानेके समय भीडसे भरे हुये राजमार्गको सुशोभित करते हुये अपने गुणोंके प्रभावसे सबका हृदय मथन करते चले जाने लगे ॥ २ ॥ उस समय तक श्रीजानकीजीने श्रीरामचन्द्रजीके वन जानेकी वार्त्ता नहीं सुनी सुतरांत वह इस आनन्द में मग्नहो रहीथीं कि आज प्राण प्यारे राजाहोंगे ॥ ३ ॥ वह उस समय राजधर्मके योग्य अनुष्ठान करके प्रसन्न मन और कृतज्ञ हृदयसे देवता ओंकी पूजा करती हुई रामचन्द्र जी के आनेकी वाट देख रहीथी॥४॥ऐसे समय लोकाभिराम रामचन्द्रजी लाजसे शिर झुकाये हर्षसे भरे हुये जनोसें भरे हुये शोभायुक्त अपने भवन में प्रवेश करते हुये ॥ ५ ॥ जानकीजी अपने प्रीतम रामचन्द्रजीको हर्षके समय शोक और चिन्तासे व्याकुल इन्द्रिय देख कांपती हुई आसनसे उठ बैठी ॥ ६ ॥ यद्यपि रामचन्द्रजीनें अपने मनका भाव जानकीजीसे छिपाने की चेष्टा कीथी इस कारण कि उनको बहुत क्लेशहोगा, परन्तु उनके आकार और चेष्टासे सब कुछ प्रकाशित होगया ॥ ७ ॥ तब रामचन्द्रजीका मुख मंडल प्रभाहीन और दुःखसे पसीने युक्त देखकर उनकी प्यारी सुकुमारी जनकदुलारी सीताजीने दुःखित होकर पूंछाकि हे प्राणनाथ ! इस अवस्था का क्या कारण है ? ॥ ८ ॥ आजतो चन्द्रमाके सहित पुष्य नक्षत्रका योग है और इस लग्न में बृहस्पति जी विराजमानहैं । बुद्धिमान ब्राह्मणोंके अभिप्राय से आजका दिन राज्याभिषेकके लिये अच्छाहै, अतएव इस समय इस भावके होनेका क्या कारणहै ? ॥ ९ ॥ शत शलाका ओंसे बना हुआ जलके फे-

नके समान सफेद छत्र तुम्हारे कमनीय मुख पर नहीं लगाया गया इसका क्या कारण है ? ॥ १० ॥ और यह भी बतलाइये कि चन्द्रमा और हंसकी समान दो उजले चँवर तुम्हारे मुख कमल पै क्यों नहीं ढुरते?११॥ हे नरश्रेष्ठ! फिर बंदी मागध, सूतादि अनेक प्रकारके शास्त्र जानने वाले बहुत बोलने वाले हर्षित चित्तसे आपकी स्तुति क्यों नहीं पढते ॥ १२ ॥ फिर राजतिलक पाये हुये तुम्हारे शिरपै वेदज्ञ ब्राह्मणोंने शहत और दही क्यों नहीं छिडका इसका क्या कारणहै ? ॥ १३ ॥ फिर मंत्री लोग और पुरवासी, राज्य निवासी व सभासद गण अनेक २ प्रकारके विचित्र वसन भूषण धारण करके किस कारणसे आपके पीछे२नहीं चलते॥१४॥ तुम्हारे आगे बहुतही श्रेष्ठ सोनेके गहने पहने वेगगामी चार घोड़े जुते हुये फूलोंसे सजा रथ किस कारणसे नहीं चलता यह क्या बातहै ॥१५॥ हेवीर! मुझसे इसका कारण भी समझाकर कहिये कि तुम्हारे आगे काले मेघकी समान पर्वत आकार वाला बडे २ ऊँचे देखने में सुघड लक्ष्मणवाला हाथी क्यों नहीं चलता ॥ १६ ॥ सेवक गण सोने की बनी अतिमनोहर चौकी कंधोंपर लिये तुम्हारे आगे क्यों नहीं जाते इसका क्या कारण ? ॥ १७ ॥ जबकि अभिषेकके लिये सबही सामान तैयार होगया तब फिर तुम्हारे मुख मलीन होनेका क्या कारण है ? किसलिये पहिले की समान दामिनी की शरमाने वाली मुसकुरानेकी अपूर्व छबि आपके मुख पर दृष्टि नहीं आती ॥ १८ ॥ सीतापति रघुनाथजी जानकी का ऐसा विलाप सुन करके बोले, हे प्राणाधिके ! पूजनीय पिताजीने मुझे वन जाने की आज्ञादीहै॥१९॥हे बडे कुलमें उत्पन्न होने वाली,धर्म जानने वाली और धर्म करनेवालीजानकी! जिस कारणसे मेरे भाग्यमें यह अपूर्व घटना अर्थात् वनवास हुआहै सो कहताहूं सुनो॥२०॥ सत्य प्रतिज्ञा करने वाले हमारे पिता राजादशरथजीने पहले हमारी माता कैकेयीको दोवर देने अंगीकार कियेथे ॥ २१ ॥ आज महाराज पिताजी हमें राज्याभिषेक देतेथे । परन्तु भाग्यकी खुटाई से कैकेयीने धर्मसे राजाको जीत पहले दो वरोंकी याद दिलादी और दोनो वर मांगे ॥ २२ ॥ महाराज वचन देकर सत्यके बंधन में बंध चुकेथे इसकारण वर देनेको "नहीं दूंगा" यह नहीं कह सके । अब उसी वरके प्रभावसे चौदह वर्षके लिये मुझको वन-

में वसने की आज्ञा होचुकी है; और भरत जीको पिताजी अभिषेक क-रेंगे ॥ २३ ॥ अब मैं वन जानेकी सब तैयारी कर चुकाहूं, केवल तुम्हा-रे देखनेके लिये यहां मेरा आना हुआहै, मैं तुमसे यह कहे जाताहूं कि तुम भरतके सामने कदापि मेरी प्रशंसा करने में प्रवृत्त मत होना ॥२४॥ मैं खूब जानताहूं कि धनवान आदमी दूसरे की प्रशंसा सुनना अच्छा नहीं समझते अर्थात् उनको दूसरोंकी प्रशंसा अच्छी नहीं लगती। मैं इसीकारण तुमसे मने करताहूं कि भरतके सामने मेरे गुणोंकी वार्त्ता मत जताना ॥ २५ ॥ मैं तुमसे फिरभी विशेष करके समझाताहूं कि भ-रतके सामने मेरे गुण कहनेसे तुम उचित भावसे नहीं रह सकोगी। तुम साधारण रीतिसे जिस प्रकार और घरके लोग रहतेहैं; रहना;—क्योंकि विशेष सन्मान उसीका होताहै जो रानी होतीहै ॥ २६ ॥ महाराज अब भरतजीको यौवराज्य देंगे, वही अब राजा हुये, इससे सब भांति उन-को प्रसन्न रखना क्योंकि राजाकी सेवा करनीही चाहिये ॥ २७ ॥ हे म-नस्विनी! मैं पिताकी आज्ञा पालन करनेके लिये आजही वनको च-ला जाऊंगा, तुम इस कारण कुछ चिन्ता न करके मुझसे चित्त लगाये यहांपर स्थिर चितसे रहना ॥ २८ ॥ हे कल्याणि! जब मैं मुनि वेष धा-रण करके मुनि सेवित वनको चला जाऊं; हे पाप रहिते! तब तुमभी यहां व्रत उपवासादि नियम करके दिन विताये करना ॥ २९ ॥ आजसे प्रति दिन बडे भोरही विस्तरे परसे उठ देव पूजासे निवट निवटा कर हमारे प-रम पूजनीय पिता महाराज दशरथजीके चरणों की पूजा करना ॥३०॥ हमारी माता कौशल्याजी एक तो वृद्धहैं, विशेष करके मेरे वन जानेके दुःखसे वह और भी दुबली होगई हैं, अतएव धर्मकी मर्यादा रक्षा करके सदा उनकी सेवा करना तुम्हें उचित है ॥ ३१ ॥ कौशल्याके अतिरि-क्त और भी हमारी माता ओंने हमको बडे स्नेहसे अन्न पानादि द्वारा लालन पालन कियाहै अतएव उन सबकी वंदनाभी तुम नित्य किये क-रना क्योंकि हमें सब मातायें समानहैं ॥ ३२ ॥ हमारे प्राणोंसेभी अ-धिक प्यारे कुनर भरत व शत्रुघ्नको तुम भ्राता व पुत्रवत सदा समझती रह-ना ॥ ३३ ॥ हे वैदेही! भरत इस देशके और इस वंशके राजा होगये, अतएव तुम कदापि उनके अमंगलकी कामना मत करना ॥ ३४ ॥

तुम जान रक्खो कि सुजनता और यत्न सहित राजोंकी सेवा करनेंसे वह लोग प्रसन्न होतेहैं, और इसके विपरीत करनेसे क्रोधित हुआ करते हैं ॥ ३५ ॥ यह लोग अपने औरस पुत्रको भी जो अहित इनका करता-हो तो उसी समय त्याग कर देतेहैं किन्तु जिससे कुछ संबंध नहो और वह समर्थ होतो उसकी जरा २ बातमें आदर करनें में कसर नहीं कर-ते ॥ ३६ ॥ हे जानकि ! मैं तुमसे समझाकर कहताहूं कि तुम भूपाल भरतकी आज्ञामें रहकर सत्यव्रत धारण करे हुये यहां पर रहो ॥ ३७ ॥

अहंगमिष्यामिमहावनंप्रियेत्वयाहिवस्तव्यामिहैवभामिनि ॥ यथाव्यलीकंकुरुतेनकस्यचित्तथात्वयाकार्यमिदंवचोमम ॥ ३८ ॥

हेप्रिये ! हमतो महावनको जातेहैं और तुम यहीं रहो फिरभी तुमसे कहे देतेहैं कि हे भामिनि ! जो जो वार्त्ता तुमसे कही उसमें से किसी को व्यर्थ न करना यह मेरे वचन मानना ॥ ३८ ॥ इ० श्री० वा० आ० षड्विंशःसर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशःसर्गः ॥

एवमुक्तातुवैदेहीप्रियार्हाप्रियवादिनी ॥
प्रणयादेवसंक्रुद्धाभर्तारमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

प्रिय बोलनें वाली जनककुमारी से जब रामचंद्रजीने ऐसा कहा तो वह कुछ एक स्नेहका क्रोध प्रकाश कर उलहना देती हुई रामचंद्रजीसे कहने लगीं ॥ १ ॥ हे नर श्रेष्ठ ! तुम यह क्या छोटे पुरुषोंकी समान दीन वार्त्ता कह रहेहो ? मैं क्या कहूं तुम्हारी वार्त्ता सुनकर मुझसे हँसी नहीं रोकी जाती ॥ २ ॥ तुमनें जो वार्त्ता कही वह शस्त्र और अस्त्रोंके जानने वाले वीर राज कुमारों के योग्य कदापि नहीं क्योंकि यह अयश की फैलाने वाली वार्त्ताहै; वरन ऐसी वार्त्ता ओंका श्रवण करनाभी उ-चित नहींहै ॥ ३ ॥ हे आर्य पुत्र ! पिता, माता, भ्राता, पुत्र और पुत्रकी बहू यह सबही अपने २ कर्मके फलका भोग करतेहैं, व अपनेही भाग्य-के भरोसे रहते हैं ॥ ४ ॥ किन्तु स्त्रीं अर्द्धाङ्गिनी होनेंके कारण इन

सबके विपरीत अपने स्वामीके भाग्यका फल भोगती हैं । इस कारण मैंभी आपके साथ वनको चलूंगी ॥ ५॥ पिता, माता, भाई, बंधु, सखियें व अपनी आत्माभी स्त्रीकी गति नहींहैं, वरन स्त्रियोंका भरोसा और गति सब स्वामीहीहै ॥ ६ ॥ यदि आप आज वनको जांयहीगे तौ मैं भी पैरों से कुश कांटा मार्गका हटाती हुई आपके आगे २ चलूंगी ॥ ७ ॥ हे नाथ! तुम्हारा कहा नहीं माना. इस कारण कुछ क्रोध मत करना क्योंकि जिस प्रकार भूडके देशोंमें जहां अधिक पानी नहीं मिलता, तब पथिक एकवार पीनेसे बचा हुआ पानी फिर पीलेताहै जिसके पान करनेसे धर्म शास्त्रके अनुसार, अधर्म, और वैद्यकके मतसे रोग होताहै, इसकारण जब अन्न मिलेगाही नहीं तो कंद मूल फल भोजन करूंगी वस इस कारण मुझे साथमें वनको लेही चलो * । मैंने तुम्हारे समीप कोई ऐसा दूषित कार्य नहीं कियाहै, जिससे तुम मुझे यहां छोडकर वनको चले जाओ ॥ ८ ॥ स्त्रियोंको धवरहर आदि उत्तम स्थानोंमें विहार करनें से विमानों पर चढकर आकाशमें विहरनें आदि सुखोंसें अधिक सुख स्वामीके चरणोंकी छायाके आश्रयमें है यह धर्म शास्त्रमें लिखाहै ॥ ९ ॥ मैंने पिता माताके निकट जो उपदेश पायाहै कि सम्पत्ति विपदमें दूसरी बात न कहकर स्वामीकी सेवा करना चाहिये । इसकारणसे जो विचार मैंने कियाहै उसमें आप वाधा न दीजिये॥ १०॥ हे हृदय वल्लभ! मैं मनुष्योंसे शून्य अनेक प्रकारके मृगोंसे भरे हुए व्याघ्र सिंहादि करके सेवित निविड वनमें तुम्हारे साथ चलूंगी ॥ ११ ॥ मैं त्रिलोकीके सुख संपत्तिकी कामना न करकै केवल पतिव्रता धर्मकी प्रतिष्ठाको रक्षा करती हुये पिताके घरमें जिस प्रकार सुखसे थी. वैसेही अब प्रसन्नता समेत तुम्हारे साथ वनको चलूंगी ॥ १२ ॥ जहां मधुर २ सुगन्धि विराजमानहैं और जहां अनेक प्रकारके जन्तु ओंके रहनेका स्थानहै उसी वनमें तपस्वियोंका व्रत ग्रहण करकै तुम्हारी सेवा करती रहूंगी यही मेरी

---

* रागनी श्याम कल्याण तालतीन--(जानकीजी रामचंद्रजीसे) जो नहिं प्राणनाथ संगलेहो ॥ आस्ताई ॥ तौ तजिहों मैं प्राण आपने फिर पाछें पछितैहो ॥ दुख बनके सब मोहिं सुक्ख सम चलत साथ सुख पैहों । सेवा करों रहों नित आनंद नारद दरशन पैहों ॥

वासना है ॥ १३ ॥ हे प्राणनाथ ! जब कि असंख्य पुरुषोंके पालन पोष-ण का भार आप ले सक्तेहैं,तब क्या वनके बीच एक मुझे पालन करनें में आप समर्थ नहीं होंगे ? ॥ १४ ॥ हे नाथ ! मैं इसी कारणसे आज निश्च-यही तुम्हारे संग वनको चलूंगी; हे महाभाग ! आप किसी प्रकारसेभी मेरे इस उत्साहको नहीं तोड सक्तेहैं ॥ १५ ॥ मैं तुम्हारे साथ फल, मूल भोजन कर नित्यही समय बिताऊंगी इसमें कोई संशय नहींहै ॥ मैं भो-जन पानादिके लिये आपको कुछ दुःख न दूंगी ॥ जो मिलेगा सो भोज-न करलूंगी ॥ १६ ॥ और क्या कहूं मैं तुम्हारे आगे २ चलूंगी, और तुम जब भोजन कर चुकोगे तब मैं भोजन करूंगी । तुम्हारे साथ रह-कर पहाड, छोटे २ सरोवर, बडे २ ताल ॥ १७ ॥ सबही निडर मनसे हे बुद्धिमान! मैं तुम्हारे साथ देखूंगी । फिर हंस, कलहंसादि, पक्षी बैठे हुये तडागों से प्रफुल्लित कमलिनी भी जो खिली हुईहो उनको ॥ १८ ॥ सुख पूर्वक आप वीरके संग देखने की इच्छा करतीहूं । वहां जो जो नदी आदि पुण्य तीर्थ मिलेंगे उन सब में आपके संग स्नान करनेकी मेरी बडीही इच्छाहै ॥ १९ ॥ हे कमल लोचन ! तुम्हारे साथ ऐसे स्था-नोंमें रमण करती हुई सैकडों व हजारों वर्षभी वनमें वास करना मेरे लि-ये अच्छाहै ॥ २० ॥ परन्तु तुम्हारे विना स्वर्गके सुख भोग करने कीभी मेरी इच्छा नहींहै । हे नर व्याघ्र! विना तुम्हारे जो स्वर्गमेंभी मेरा वास हो तोभी मुझे अच्छा नहीं लगता ॥ २१ ॥ मैं बन्दर हाथीसे शोभायमान वनमें तुम्हारे चरणोंकी सेवा करकै तुम्हारे साथ रहनेकी वासना करती हूं, महाराज! अधिक क्या कहूं इस प्रकारसे आपके साथ रहने पर मुझे मेरे पिताजीके भवनके समान सुख मिलैगा ॥ २२ ॥ हे नाथ ! मैं तु-म्हारे आधीनमें मन रखकर तुम्हारेही पर अनुरक्त रहकर समय बिता-तीहूं यदि इस अवस्थामें तुम मुझे छोडकर चले जाओगे तो हे प्राणे-श्वर ! मैं अपने प्राणोंको नहीं रक्खूंगी । आर्य पुत्र ! मेरे साथ लेचलने में तुम्हें कुछ बोझ नहीं मालूम होगा इस कारण मुझे लेचलो ॥ २३ ॥

तथाब्रुवाणामपिधर्मवत्सलांनचस्मसीतांन्टवरो

निनीषति ॥ उवाचचैनांबहुसन्निवर्तनेवनेनिवा सस्यचदुःखितांप्रति ॥ २४ ॥

नरोंमें श्रेष्ठ रामचंद्रजी धर्म वत्सला सीताजीके यह वचन श्रवण करके उनको वनमें संगले जानें में राजी नहीं हुए और वनवासके दुःख याद करके जिससे कि श्रीजानकीजी वनको न जांय ऐसे वचन कहने लगे ॥ ॥ २४ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०अ०सप्तविंशःसर्गः ॥ २७ ॥

अष्टाविंशः सर्गः ॥

सएवंब्रुवतींसीतांधर्मज्ञांधर्मवत्सलः ॥
नर्नेतुंकुरुतेवुद्धिंवनेदुःखानिचिंतयन् ॥ १ ॥

धर्मवत्सल धर्मज्ञ रामचंद्रजी धर्मपरायण जानकी जीको ऐसा कहते हुये देख वनवासके क्लेश विचार उनको साथ लेजानेंमें अप्रसन्न हुए ॥ १ ॥ तदनन्तर धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी रोती हुई जनकनन्दिनी को समझाने लगे कि जिस्से यह वनको न जांय और बोले ॥ २ ॥ हे सीते! तुमने बडे कुलमें जन्म ग्रहण कियाहै, तुम अतिशय धर्मकी जाननेवाली और धर्म करने वालीहो। मैंतुम्हें समझाताहूं कि तुम यहां रहकर मेरी वाट जोहती हुई धर्म करती रहो, मैं ऐसा करनेसे वहुत सुखी हूंगा ॥ ३ ॥ हे अवले? मैं तुम्हें जो उपदेश देताहूं तुम उसहीके अनुसार कार्य करती रहो, वनवासमें वहुत दोषहैं उनमेंसे कुछेक कहताहूं सुनो ॥ ४ ॥ अतएव तुम वनजानेकी वासनाको त्याग करदो वनके जानेमें वहुत दोषहैं, और वन दोषोंकी खानिहैं इसीसे इसका वन नाम है ॥ ५ ॥ मैं तुम्हारे हितहोके लियेही यह वचन कहताहूं कि वनके जानेसे दुःखही होतेहैं। वनमें सुखका लेश मात्रभी नहीं पाया जाता ॥ ६ ॥ क्योंकि पर्वतोंसे स्थान२पर वडी२नदियां वहतीहैं जिनका पार होना कठिनहै और गिरि गुहाके रहनेवाले सिंह व्याघ्रादिका भयंकर गर्जना वहां सुनाई आताहै, जोकि वहुतही क्लेशका देने वाला होताहै ॥ ७ ॥ वह दमन करनेके अयोग्य हिंसक जन्तु वहां निश्शंक होकर घूमा करतेहैं, और आदमीको देखतेही खानेके लये तैयार होजातेहैं, अतएव वनमें

तो महाकष्टही कष्ट होतेहैं ॥ ८ ॥ सब नदियोंमें मकर और घडियालादि भरे होतेहैं और उन नदियोंमें अँदनभी होतीहै महा बलवान हाथी भीजो उस अँदनमें फँस जाय तो चिघाड मार २ कर मर जाय बडे २ मतवाले हाथी वनमें घूमतेहैं अतएव यह स्थान घोर क्लेश दायक होतेहैं ॥९॥ अधिक करके तो वनके रस्ते बेल पत्ते और कांटोंसे ढके रहतेहैं इन मार्गोंमें कभी कुकुट आदिकों का शब्द हुआ करताहै। इन स्थानोंपर पीनेको पानीभी नहीं मिला करताहै इससे जानलो कि वनमें बडादुःख है ॥ १० ॥ फिर अपने आप पेड परसे गिरे सूखे पत्ते जो पडे होतेहैं उनहीको विछाकर उनपर शयन करना पडताहै, और कहीं २ यह पत्तेभी नहीं मिलते तो वहां खुरेरी पृथ्वी परही सोना पडताहै सारे दिवस चलनेंसे रात्रिको थकावट आजानेसे ऊंचे नीचेका ध्यान नहीं रहता, बस जहां स्थान मिला वहीं सोरहे अतएव वन दुःखकाही देने वालाहै ॥ ११ ॥ और पेडसे स्वयंही गिर पडे हुये फल खानेको थोडे बहुत मिलतेहैं रात दिन नियमित हो उन्हीं पर आधार रखके मनको सन्तोष देना पडताहै ॥ १२ ॥ वरन सदा फलभी नहीं मिलते कभी २ कडाकाभी होजाया करताहै, इसके सिवाय जटायें रखानी पडेंगी, वृक्षोंकी छालोंके वस्त्र पहरने पडेंगे ॥ १३ ॥ देवता पितर और आये हुये पाहुनो की पूजा प्रति दिन करनी पडेगी ॥१४॥ फिर जो लोगकि दिनसे नियमसे रहतेहैं, उन्हें, चाहे गरमी, वरसात, जाडा कुछभी हो तीन वार स्नान करना पडताहै वस इन वातोंके होनेसे वन महादुःख दायकहै ॥१५॥ फिरजो कि वानप्रस्थके अवलंबन करने वाले होतेहैं उनको अपने हाथसे फूल तोडकर श्रेष्ठ विधिसे वेदीकी पूजा करनी होतीहै यह नहीं कि किसी दासी दाससे तुडवा लिये। हे प्रिया! इससे वन दुःखदाईहै ॥ १६ ॥ फिर जितना भोजन पान इत्यादि मिल जायगा उतनेहीसे निर्वाह करना होगा क्योंकि वनवासियोंको मन माना भोजनभी नहीं मिलता इससे वन महा दुःखदाई है ॥ १७ ॥ हवा दिन रात वहां आंधीसी चलती रहतीहै, और भूंखभी वहां नित्य बहुतही लगतीहै, और अधिक क्या कहूं भयके सबही कारण वहां वर्त्तमान रहतेहैं इससे वन दुःखका देने वालाहै ॥ १८॥ हे भामिनी! वहां अनेक प्रकारके रूपवाले कीड़ा वीछू आदि जन्तु गर्व सहित

घूमा करतेहैं इससे वन अति दुःखदाईहै ॥ १९ ॥ व वहां की नदियोंमें सोतेके पानीकी समान टेढी चाल वाले सांप वनका रस्ता रोके पडे रहतेहैं वस इन कारणोंसे वनमें महाकष्ट हैं ॥ २० ॥ और अधिक क्या कहूं वहां पतङ्ग, वीछू, कीडे, मकोडे, डांस, मच्छर सब सदा बहुतही व्याधि देने वालेहैं अतएव वनसे अधिक कष्ट देनें वाला स्थान और कहां-है?॥२१॥वहांके वृक्ष वहुत करके कांटेही वाले होतेहैं, और वहां सवही जगह, कुश और काशसे ढकी रहतीहैं। जिनं कुशोंके लगतेही हाथ पांव चिरजातेहैं इसकारण वन दुःखदाई है ॥२२॥ इसके सिवाय शरीरको विविध भांतिके दुःखही वहां होते रहतेहैं अनेक भय होतेहैं वस इसी कारण कहताहूं कि वनवास अतिही कष्ट दायक होताहै वहां रहनेसे सुख नहीं ॥ २३ ॥ वनमें रहकर क्रोध लोभको एक वारगी त्याग करना पडता है और नित्य प्रति तपस्यामें मन लगाना होताहै वहांपर कोई भयका कारण हो तोभी निर्भय समय व्यतीत करना पडताहै। इससे वनमें सदा दुःखहीहै ॥ २४ ॥ मैं इनही सब कारणोंको देख भालकर तुम्हें वनको साथ नहीं लेजाया चाहता, वनवास करना तुमको मंगलदायक न होगा मैं वहुतही विचार करके तुम्हें समझाताहूं कि वनवास करना तुम्हें नहीं सजेगा और वह तुम्हें वडा क्लेश देनेवाला होगा ॥ २५ ॥

वनंतुनेतुंनकृतामतिर्यदावभूवरामेणतदाम
हात्मना ॥ नतस्यसीतावचनंचकारतंततो
ब्रवीद्राममिदंसुदुःखिता ॥ २६ ॥

रामचन्द्रजीकी वन संवन्धी इस प्रकारकी क्लेश दायक वार्त्ता कहने पर और वनके चले जानेको रामकी जो महात्माहैं सम्मतिन देखकर सीताजीने उसपर कुछभी ध्यान नदिया और दुःखित मनसे कमल लोचन रामचन्द्रजीसे कहने लगीं ॥ २६ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० अ० अष्टाविंशः सर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः ॥

एतत्तुवचनंश्रुत्वासीतारामस्यदुःखिता ॥

प्रसक्ताश्रुमुखीमंदामिदंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

रामचन्द्रजीके इस प्रकारके वचन सुनकर अन्तःकरणसे, रोती हुई मृदु मन्द स्वरसे श्रीजानकीजी बोलीं ॥ १ ॥ हे आर्य पुत्र! तुमने वनवासके जो समस्त दुःख सुनाये इन सबको तुम्हारे स्नेहके आधीन होनेसे मैं गुणकी समान समझतीहूं वनमें मृग, सिंह, हाथी, शार्दूल, शरभ चमरवाली गाय नील गाय आदि जीवहैं औरभी अनेक वनचारी जीवहैं ॥२॥३॥ उन सबनें आपका यह रूप कभी देखा नहींहै, वह इस रूपको देखतेही डरकर भाग जांयगे क्योंकि आपसे तो कालभी भय खाताहै ॥ ४ ॥ मैं अपने गुरु जनोंकी आज्ञासे आपके पीछे २ चलूंगी क्योंकि विवाहके समय हमारे पिताजीने यही कहके हमें आपको दियाहै कि यह हमारी पुत्री जानकी तुम्हारे पश्चात् २ परछाईके समान चलेगी फिर मैं यहां कैसे रह सकतीहूं । हे नाथ! तुम यहभी जान रक्खो कि तुम्हारे विरहमें प्राण धारण नहीं करसकतीहूं ॥ ५ ॥ हे नाथ! तुम्हारे समीप बैठी हुई मेरा देवता और ईश्वर इन्द्रभी कुछ नहीं कर सकते फिर औरोंकी बात क्या चलाई ? ॥ ६ ॥ हे प्राणपति! तुमने हमको उपदेशही ऐसे दियेहैं कि पतिके बिना पतिव्रता स्त्री जीवन धारण नहीं कर सकती फिर मैं आपके बिना किस प्रकार जी सकतीहूं ॥ ७ ॥ हे महाप्राज्ञ! जब मैं पिताके घर रहाकरतीथी तभी मैंने ज्योतिषियोंके मुखसे सुनाथा कि मेरे भाग्यमें वनवास लिखाहै फिर जो बात कर्ममें लिखीहै उसके लिये क्या सोच ॥ ८ ॥ सामुद्रिकके लक्षणोंके जानने वाले पुरुषोंने जो कहाथा अब उसका समय आ पहुँचाहै मैं बहुत दिनोंसे उत्साहित थी कब वनको जाना होगा सो बात अब पूरी हुई ॥ ९ ॥ मेरे भाग्यमें अब उन्हीं ब्राह्मणोंके आदेशका समय आयाहै, अतएव मैं तुम्हारे साथ वनको चलूंगी आप इस विषयमें कुछ बाधा मत दीजिये❀ ॥ १० ॥ हे स्वामिन्! मैं आपके साथ अवश्य चलूंगी अब वह समयभी आ पहुँ-

---

❀ रागिनी कलिंगडा ताल तीन—(रामचन्द्रजी जानकीजीसे) वन मत चलो हमारे साथ ॥ आस्ताहै ॥ वनके दुःख न जाँय सहाये, तुमरे तो अति कोमल गात । वन फल खानें पडें संगमें ओढनको वृक्षके पात ॥ मानो कहा रहो गृह प्यारी, नारदमुनि कहै नीकी बात ॥

चाहे, जोहो आप मुझे वनको संग ले चलनेकी अनुमति देकर ब्राह्मणोंके वचनोंको सत्य कीजिये ॥ ११ ॥ वनवासमें बहुत सारे क्लेशहैं यह बात क्या मैं नहीं जानतीहूं मैं जानतीहूं कि जो पुरुष इन्द्रियोंको जीते नहीं होतेहैं उन्हेंही स्त्रियोंके साथ वनमें सदा क्लेश भोगना पडताहै; न कि आप सरीखे पुरुषोंको ॥ १२ ॥ जब मैं अपने पिताकेघर रहा करतीथी और छोटी सोथी तब मुझे यादहै, कि एक साधु शीला तपस्विनीने आकर मेरी मातासे कहाथा कि जानकी वनको जायगी ॥ १३ ॥ हे प्रभो! मैंने वारं वार आपसे कहाथा कि वन विहार करनेको चलिये सो अवतक अभिलाप पूरानहीं हुआथा,सो अव वह अवसर आयाहै;अतएव मेरी प्रार्थनाको मानकर मुझे संगले चलिये ॥ १४ ॥ हे राघव! आपका मंगलहो; मैं तुम्हारी आज्ञा देनेकी वाट जोहरहीहूं; वनमें हे महावीर! तुम्हारी सेवा करनेसे मेरी प्रसन्नताकी सीमा नहीं रहेगी ॥ १५ ॥ हे शुद्धात्मन्! पतिही स्त्रियोंका सबसे बडा देवताहै यदि मैं प्रेम भावसे आपके साथ चलसकूं तो मेरामन और शरीर पवित्र होजायगा ॥ १६ ॥ इस लोककी तो वार्त्ता अलगहै तुम्हारा परलौकिक समागमभी मेरे सुखका कारणहोगा यह वार्त्ता मैंने यशस्वी पवित्रब्राह्मणोंके मुखसे सुनीहै॥ १७ ॥ हे महाबली! जिस स्त्रीको दान धर्मके अनुसार कुश जल हाथमेंले मातापिता जिस वरको देतेहैं वह स्त्री परलोकमेंभी उसही वरकी होतीहै ॥ १८ ॥ अतएव जो स्त्री पतिव्रता और सुशील है उस आत्मवत् स्त्री मुझको आप क्यों नहीं वनमें संगले चलते! ॥ १९ ॥ मैं तुम्हारे सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखीहूं और तुम्हारे ऊपर अनुरागिनीहूं, पतिव्रताहूं तुम्हारी सेवकनीहूं सुखदुःखमें समान चित्तहूं अतएव यह प्रार्थना करतीहूं कि मुझ पतिव्रता स्त्रीको संगले चलिये ॥ २० ॥ अधिक क्याकहूं, यदि इतने परभी तुम इस दुःखिनी स्त्रीको संग न ले चलोगे तो निश्चयही मैं विप पान करके, या अग्निमें जलजाकर अथवा जलमें डूबकर प्राण त्याग करदूंगी ॥ २१ ॥ इस प्रकार सीताजीने रामचंद्रजीसे वारंवार वनको संग चलनेकी प्रार्थनाकी परन्तु रघुनाथ जो किसीभांति उन्हें साथ ले चलनेको राजी नहीं हुये ॥ २२ ॥ तब श्री जानकी श्रीरामचन्द्रजीको अपने वनको साथले जानेमें असम्मत देखकर अतिशय दुःखित और चिन्तित हुई

और महाविलाप करनेलगीं उनकी आंखों से निकली हुई आसुओं की धारा उनकी पृथ्वीको भिगोने लगी *॥ २३ ॥

चिंतयंतींतदातांतुनिवर्तयितुमात्मवान् ॥
क्रोधाविष्टांतुवैदेहींकाकुत्स्थोबहुसांत्वयत् ॥ २४ ॥

रामचंद्रजी उनको चिन्ता किये और क्रोध किये देख, जिस प्रकार वह वनको न जाँय, इसभांति जानकी जीको बहुत समझाने बुझाने-लगे ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्या-कांडे एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशः सर्गः ॥

सांत्व्यमानातुरामेणमैथिलीजनकात्मजा ॥
वनवासनिमित्तार्थंभर्तारमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

जब रामचन्द्रजीने अनेक प्रकारसे जानकीजीको समझाया बुझाया तो वनमें जानेहीके लिये फिर पतिसे बोलीं ॥१॥ बोलनेके पहले यह विचारा कि जिनकी छाती चौडीहै ऐसे राजकुमार निश्चयही मुझे छोडा चाहतेहैं, इस कारण स्नेहके कारण कुछ एक क्रोधभी किया और भयभी बहुत माना पीछे वह वाक्य कि जिससे प्राणनाथ वनको संग ले चलें॥२॥ जानकीजीने कहा कि यदि हमारे पिता मिथिलाधिपति जनकजी यह जानते कि आकार मात्र में तुम नाम मात्रके पुरुष और व्यवहार में स्त्री-हो तो कभी तुम्हारे साथ मेरा विवाह नहीं करते न ऐसे पुरुषको अपना जामातृ बनाते ॥३॥ सब संसार जो कहा करताहै कि आप का तेज तपते सूर्यके तेजसेभी अधिक प्रबलहै, यह वार्त्ता इस समय कुछ मिथ्यासी ज्ञात होतीहै, क्योंकि ऐसा यदि न होता, तो आप अवश्यही मुझे वन-को संग ले चलते ॥ ४॥ मैं तुमसे यह पूछतीहूं तुम्हारी उदासी या भय-का क्या कारणहै ? और फिर किस कारण दूसरे की शरण न रहने वा-

* और बोलीं॥दोहा—राखिय अवध जो अवधि लगि, रहत जानिये प्रान॥दीनबन्धु सुन्दर सुखद शील सनेह निधान १ प्राणनाथ करुणायतन, सुन्दर सुखद सुजान॥ तुम बिन रघुकुल कुमुद विधु, सुरपुर नरक समान॥ चौपाई॥असकहि सीय विकल भइ भारी, वचन वियोगनसकी संभारी।

ली पतिव्रता स्त्रीको परित्याग कर आप वन जानेको तैयारहैं ? ॥ ५ ॥ जैसे द्युमत्सेनके पुत्र सत्यवानके संग उनकी पतिव्रता स्त्री सावित्री वनको गईथी वैसेही मुझको आप पतिव्रता समझिये और संग ले चलिये और इसी प्रकार मैं आपके संग चलूंगी ॥ ६ ॥ हे राघव ! मैंने कभी मनसेभी तुम्हारे सिवाय दूसरे पुरुषको नहीं देखा जैसे कि कुल कलंकिनी स्त्री पर पुरुषोंको देखा करतीहैं हे राम ! इसी कारण मैं तो आपके साथही चलूंगी ॥ ७ ॥ देखिये कुमार अवस्था मेंही मेरा विवाह आपके संग हुआ और मुझे तुम्हारे गृह में रहते भी बहुत दिन होगयेहैं, परन्तु आप ऐसे सामर्थ्यवानहैं कि जो पुरुष अपनी भार्या दूसरे पुरुषोंके पास भेज जीविका करते हैं अब आपभी उन्हीं लोगोंकी समान मुझे दूसरोंके हाथमें सौंपा चाहते हो यह करना क्या आपको उचित है ? ॥ ८ ॥ हे प्रभो ! पाप रहित तुम नित्य जिनका हित चाहते रहते हो, और जिनके कारण आपको राज्यभी नहीं मिलसका, तुमहीं उनके सेवक अथवा वश वर्त्तीहो, परंतु हमको तो किसी प्रकारसे आप उनके वश में नहीं कर सक्ते हैं॥९॥ आश्चर्यहै कि मैं तो वारंवार तुम्हारे संग वन चलनेको कह रहीहूं परन्तु आप इस बात पर कुछ ध्यान न धर कर मुझे छोड वन जानेको तैयार हुये हैं ? अधिक तो मैं क्या कहूं तपस्या करना वनमें रहना, या स्वर्गमें रहना जो कुछहो सब तुम्हारे साथही हो ॥ १० ॥ वनमें तुम्हारे पीछे २ चलनेसे हमको कुछभी क्लेश न मालूम पडैगा, वरन आपके संग चलनेसे ऐसा ज्ञात होगा कि मानो विहार की सेजही पर बैठीहूं ॥ ११ ॥ वनके मार्गमें जो कुश, कांश, शर, मूंज, इत्यादिक जो कि कटीले पेडहैं तुम्हारे साथ वनको जानेसे वह मुझे रुई और मृगछाला की समान नरम मालूम देंगे ॥ १२ ॥ हे रमण ! महा पवन करके उड़ी हुई जो धूल मेरे शरीर पर आकर गिरेगी सो आपके संग रहनेसे वहभी मुझको अति उत्तम चंदनकी नांई ज्ञात होगी ॥१३॥ मैं जब आपके संग वनमें हरी घासके बिछौने पर सोऊंगी तब पलँगके ऊपर अनेक प्रकारके चित्र विचित्र नरम वस्त्रोंके ऊपर शयन करनेके सुखसे क्या वह सुख किसी प्रकार कम होगा? कभी नहीं ॥ १४॥ तुम अपने हाथ से लाकर जो सब कंद, मूल, फल थोडे या बहुत मुझको दोगे मुझको तो वही सब कंद, मूल

फल अमृत की समान जान पडैंगे॥१८॥ महाराज मैं आपके संग रहकर अपने पिता माता तकको भी याद न करूंगी और न कभी गृहकी याद करूंगी मैं वहां सदाहीं वसन्तादि छैः ऋतुओंके फूल फल सूंघ और भोजन करके सुखी रहूंगी ॥ १६ ॥ मेरे कारण वनमें आपको कुछ क्लेश न होगा, न कुछ शोच ही होगा, इससे आपको यह न विचारना पडेगा कि इनको वनमें ले तो आये परन्तु अव किस प्रकार पालन पोषण करैं ॥ १७ ॥ यह आप भली भांति समझलें कि यदि आपके संग रहना हो तो सव जगह स्वर्गहै और आपके विना सव जगह नरक है वस आप यही सोच विचार कर प्रीति समेत मुझे वनको साथ ले चलिये ॥ १८ ॥ वहुत क्या कहूं यदि किसी प्रकार सेभी आप मुझको अपने साथ न लेजांय, तो आज ही विष पान करके मर जाना तो स्वीकार है परन्तु विपक्ष भरतके पक्षमें रहना मुझको अच्छा नहीं लगता और न मैं यहां रहूं ॥ १९ ॥ हे प्राण जीवन! जो आप मुझे यहां छोडकर चले जांयगे तो परिशेषमें आपके विना हमारा मरण ही होगा इसकारणसे इसी समय आपके सामने हीं प्राणत्याग करना अच्छा है ॥ २० ॥ प्रीतम ! चौदह वर्ष की वातको तो एक ओर धर दीजिये मैं तो आपके वियोगमें एक मुहूर्त भरतकभी प्राण नहीं रख सकतीहूं ॥ २१ ॥ जानकी जी इस प्रकार शोकसे संतापितहो वारंवार विलाप और परिताप करने लगीं और प्राणवल्लभ रामचन्द्रजीको दृढतर लपटाय वडे ऊंचे स्वरसे रुदन करने लगीं ॥ २२ ॥ वह रामचन्द्र जीके वन न ले जाने वाले वचनोंसे इस भांति तडफडाईं जैसे जहरके वुझे हुये वाण लगनेसे हथिनी मर्महतहो तडफडातीहै जिस प्रकार अरिणी काष्ठ (एक लकडी जिस्से आगनिकल आती है) से आग निकलती है वैसेही जानकी जीके नयन युगल से अश्रुधारा निकलने लगी ॥ २३ ॥ जिस प्रकार कि कमलसे पानीकी वूंद चुवें, वैसेही जानकी जीके नेत्रोंसे स्फटिक मणिके समान सफेद रंगके समान संताप के आंसू गिरने लगे ॥ २४ ॥ उस समय प्रवल शोककी आगसे सीता जीका पूर्णमासीके चन्द्रमा की समान द्युतिवाला मुख मंडल जल सूखजानें पर मुरझाये हुये कम-

लकी समान होगया ॥ २५ ॥ तब रामचन्द्र जी जानकी को मूर्च्छित हुईसी व बहुतही शोकसे व्याकुल देखकर हृदयसे लगाय, समझाते बुझाते हुये उनसे बोले ॥ २६ ॥ हे देवि! तुमको कष्ट देकर प्राप्त हुये स्वर्ग कीभी हम चाह नहीं करते और तुमने यह जो कहा कि तुम डरके मोहसे संग नहीं ले चलते तो यादरक्खो कि स्वयंभू ब्रह्मा जीकी समान हमको किसी जगह भी डरकी संभावना नहीं है ॥ २७ ॥ तुमने जो कहा कि हजारोंको पालतेहो तो क्या मुझे वनमें नहीं रक्षा कर सकोगे सो मैं सब भांति तुम्हारी रक्षा कर सकताहूं परन्तु अबतक तुम्हारे मन की इच्छा नहीं जानीथी इसकारण तुम्हें साथ ले चलनेको सम्मति नहीं दीथी ॥ २८ ॥ हे मैथिलि जब कि मेरे साथ जाया ही चाहतीहो तो जिस प्रकार आत्म तत्त्वके जानने वाले पुरुष कभी दयाको नहीं छोडते वैसे ही मैं तुमको किसी प्रकार नहीं त्याग कर सकता न ले चलनेसे मेरा यह प्रयोजन नहींथा कि मैं तुमको त्यागदूं ॥ २९ ॥ प्राचीन कालसे सदाचारमें रत रहने वाले अपनी स्त्रियोंको साथ लेकर वानप्रस्थ धर्ममें तत्परहो वनको चले गयेथे मैंभी अब वैसाही करूंगा अर्थात् तुम्हें वनको ले चलूंगा जिस प्रकार सूर्य भगवानकी स्त्री सुवर्चला उनके पीछे २ चलतीहै वैसेही तुम मेरे साथ चलो ॥ ३० ॥ हे जनकनंदनी! मैं कुछ अपने आप वनको नहीं जाता किन्तु पिताजी जो सत्यके वचनसे बँध गयेहैं मैं इसही कारण वनको जाताहूं ॥ ३१ ॥ हे सुन्दरि ! पिता माताके वशमें रहनाही पुत्रका प्रधान धर्महै उनकी आज्ञा उल्लंघनकर जीवन धारण करना अच्छा नहीं समझता ॥ ३२ ॥ जो यह कहो कि दैवके ऊपर भरोसा रख यहीं रहो और पिताके वचन न मानो इस्से कुछभी न होगा सो नहीं हो सकता क्योंकि दैव अदृश्य पदार्थहै साधन करनेसे यद्यपि दैवके विषयमें संतोष होजाताहै तथापि माता पिता प्रत्यक्ष देवताहैं अतएव उनको उल्लंघन करके दैवके ऊपर बैठे रहनेकी मेरी इच्छा नहींहै ॥३३॥ जिन माता पिता गुरुकी पूजा करनेसे धर्म, अर्थ, कामकी प्राप्ति होजातीहै, और इन तीनोंकी सेवा करनेसे मानो त्रिलोकीकी पूजा सिद्ध हो जातीहै, फिर भला संसारमें माता पिता गुरुकी आज्ञा व पूजा करनेके समान

औरभी कोई धर्महै ? अर्थात् नहींहै इसी कारण मैं वनको जाताहूं॥३४॥ विचारकर देखनेसे जाना जाताहै कि पिताकी सेवा करनेसे जो फल परलोकमें प्राप्त होताहै, वह फल सत्य बोलने, दानमान करने बहुत दक्षिणा सहित यज्ञ करनेमें नहीं मिल सकता ॥३५॥ जो कोई, पिता, माता गुरुकी आज्ञानुसार चलताहै उसको स्वर्ग प्राप्ति, धन, धान्य, विद्या. पुत्र और सुख यह सब वस्तु कुछ दुर्लभ नहींहैं ॥ ३६ ॥ जो महात्मा लोग पिता माता गुरुकी भक्ति करतेहैं उन सब महात्माओंको गन्धर्व लोक, देव लोक, ब्रह्म लोक तथा गो लोक तक प्राप्त हो जाताहै ॥ ३७ ॥ सत्य धर्ममें स्थिर होकर पिताजीने मुझे जो आज्ञा दीहै, मैं प्राण पनसे उसको पालन करूंगा क्योंकि यही मेरा मुख्य धर्महै ॥ ३८ ॥ हे जानकि ! पहिलेतो तुम्हें अपने साथ वनको ले जानेकी मेरी इच्छा नहींथी, परन्तु अब तुम्हारो हढता देखकर जाने में बाधा न दे वनके ले चलनेको सम्मत हुआहूं ॥ ३९ ॥ इससे अब मेरी यह आज्ञाहै कि मेरे साथ वनको चलो हे सुन्दरी ! और जैसा मेरा धर्महै उसके अनुष्ठान करनेमें तुमभी तैयार हो जाओ ॥ ४० ॥ हे जनकनन्दिनि ! तुमने जो वनमें मेरे साथ रहना विचाराहै यह बात बहुतही अच्छीहै, और हमारे वंशमें जो बात होती आईहै उसके अनुसारहीहै ॥ ४१ ॥ अब मैं तुमसे कहताहूं कि तुम अब वन चलनेकी तैयारी करो और दानादि देनेका अनुष्ठान करो प्रियतमे ! तुम्हारा संग छोडकर स्वर्गमें वसनाभी मुझे नहीं भाताहै ॥४२॥ अब इस समय तुम मांगने वाले ब्राह्मणोंको रत्न आदि और भूखे भिखारियोंको उनके योग्य शीघ्र भोजनदो देर मत करो ॥ ४३ ॥ तुम्हारे बहु मोलके भूषण और अनेक प्रकारके श्रेष्ठ वस्त्र और जो कुछ हमारे तुम्हारे खेलनेकी चीजेंहैं वह सब इस समय याचकोंको दे डालो ॥ ४४ ॥ मेरे और अपने शयन करनेके पदार्थ बिछाने ओढने आदिक और विमान सवारियें इत्यादिक सब विप्रोंको देदो और उनसे बचे कुचे नोकर चाकरोंको बाँटदो ॥ ४५ ॥

अनुकूलंतुसाभर्तुर्ज्ञात्वागमनमात्मनः ॥
क्षिप्रंप्रमुदितादेवीदातुमेवप्रचक्रमे ॥४६ ॥

उस समय श्रीजानकीजी यह जानकर कि प्राणपति मुझे बन ले चलने में सम्मतहैं बहुत हर्षितहो सब भूषण वसन इत्यादि दान करने लगीं४६
इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० अयोध्याकांडे त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः ॥

एवंश्रुत्वाससंवादंलक्ष्मणःपूर्वमागतः ॥
बाष्पपर्याकुलमुखःशोकंसोढुमशक्नुवन् ॥ १ ॥

जिस समय सीताजीके साथ रामचंद्रजीकी यह वार्त्ता हो रहीथी तो उस समय लक्ष्मणजी पहलेही वहां पहुँच गयेथे और दोनोंकी यह सब वार्त्ता इन्होंने सुनी और श्रवण करतेही इनकी आंखोंमें टप टप आंसू गिरने लगे तब लक्ष्मणजीने बहुतही कष्टसे शोकके वेगको रोका॥१॥ वह उस समय भ्राताके चरणोंमें प्रणामकर और बडी दृढतासे चरण पकड़ यशस्विनी जनक दुलारी और महाव्रत बडे भाई रामचंद्रजीसे कहने लगे२॥* यदि मृग और हाथियोंके विचरण करने वाले वनमें आपने जाना निश्चय करही लियाहै तो मैंभी धनुष धारण करके आपके साथ २ चलूंगा ॥ ३ ॥ जहां पतंग और मृग यूथ मधुर स्वरसे अनेक प्रकारके शब्द करते हैं आप उसी रमणीक वनमें मेरे साथ विचरण कीजिये ॥ ४ ॥ मैं आपको छोड करके न देवलोककी चाहना रखताहूं न धन सम्पत्तिकी, न अमरत्व अच्छा लगताहै, वरन आपके विना मैं लोकोंका ऐश्वर्य व किसी वस्तुकी इच्छा नहीं करता ॥ ५ ॥ तब रामचंद्रजीने लक्ष्मणके यह वचन कहने पर और उन्हें वन जानेको तैयार देख बहुत तरहसे समझाया और वन चलनेको मने किया तब फिर लक्ष्मणजी बोले ॥ ६ ॥ भाई ! तुमने तो प्रथम हमें चलनेकी आज्ञादेदी थी अब क्यों उसका निवारण करतेहो ॥७ ॥ जिस कारण कि मुझे वन जानेसे रोकतेहो हे पाप रहित वह मैं जानना चाहताहूं। मुझे बडा सन्देहहै कि तुम अब मुझे क्यों रोकतेहो ॥ ८ ॥ तब वन जानेको तैयार, धीरभावापन्न हाथ जोडे खडे हुये लक्ष्मणजीको महातेजस्वी रामचंद्रजीने रोका और समझाने बुझाने लगे ॥ ९ ॥ कि हे वत्स ! तुम धार्मिक

* अति दुःखित हो लषण अधीरा । गहे चरण दोऊ रघुबीरा ॥

हो, धीरज धरने वालेहो, अच्छे मार्ग पर चलने वालेहो, और मुझे अपने प्राणोंकी समान प्यारेहो, मेरे वंशमें हो और मेरे सखाहो ॥ १० ॥ हे सौमित्रे ! तुमभी यदि आज हमारे साथ वनको चलोगे तब फिर यशस्विनी जननी कौशल्या व सुमित्राजीके प्रति पालन करनेका भार कौन अपने शिर लेगा ॥ ११ ॥ जैसेकि पृथ्वीसे भाफ निकलतीहै, उससे मेघ बनतेहैं, फिर उसी पृथ्वी पर वह वर्षा करतेहैं, वैसेही महा तेजवान नरनाथ कामके दास वशहो कैकेयीके ऊपर आसक्त हुएहैं इस कारण जो कैकेयी कहैगी पिताजो वही करैंगे फिर हमारी माताओंकी कामना कैसे पूर्णहोगी ? अर्थात् इनकी कौन खबर लेगा ॥ १२ ॥ कैकय राज नन्दिनि कैकेयी यह राज्य जब पालेगी तब महा दुःखित कौशल्यादि सपत्नियोंके साथ बुराईके अतिरिक्त भलाई न करैंगी । और हमारी माताओंको महाक्लेश मिलैगा ॥ १३ ॥ जब भरत राज्य पालेंगे तब वह निश्चयही अपनी माता कैकेयीके वशहो जननी कौशल्या व सुमित्रा को सम्पूर्ण भूल जांयगे । भला फिर इन विचारियोंकी कौन खबर लेगा ? ॥ १४ ॥ हे भइया ! तुमसे इसीकारणसे कहताहूं कि तुम स्वयं या राजाके अनुग्रहसे, जिस प्रकार सेभीहो यहां रहकर माता ओंका भरण पोषण करो, हेभाई! यह मेरा वचन तुमको पूरा करना उचितहै ॥ १५॥ हे धर्मज्ञ ! इस प्रकारका कार्य करनेसे मेरे प्रति तुम्हारी परम भक्ति प्रकाशित होगी, जान रक्खोकि माता पिता गुरु जनोंकी सेवा करनेसे विशेष धर्म लाभ होताहै ॥ १६ ॥ हे वत्स ! तुम हमारे कहनेसे हमारी माता ओंके लालन पालन करनेका भार ग्रहणकरो, यदि हमभी उनका कुछ ध्यान न कर उनको छोड वनको चले जांयगे तब फिर उनके दुःखकी सीमा नहीं रहैगी ॥ १७ ॥ वाक्य विशारद रामचंद्रजीने जब इस प्रकार मधुर वचन लक्ष्मणजीसे कहे तब चतुर लक्ष्मणजी विनीत भावसे रामचंद्रजीसे बोले ॥ १८ ॥ आर्य ! भरतजी आपके प्रतापसे प्रकम्पितहो सदाही माता कौशल्या और सुमित्राका प्रतिपालन करेंगे यह निश्चयहै इसमें किसी प्रकारका सन्देह नहींहै ॥ १९ ॥ यदि भरतजी यह राज्य पाकर खोटे रस्तेपर चलें यदि भरत खोटी मति करके गर्वके वशीभूतहो कौशल्या व सुमित्रा माताकी रक्षा व सेवा न क-

हैं ॥ २० ॥ तो मैं उस नीचाशय क्रूरका प्राण अवश्यही संहार करूंगा पिताजीकी तो क्याबात चाहे त्रिलोकी एकत्र होकर उनकी ओर खडी होजाय तब भी मैं उन सबको मारडालने में किसी प्रकारकी कसर नहीं रक्खूंगा ॥ २१ ॥ जिन्होंने अनुगत नेगाचारियोंको असंख्य ग्राम दान करके देदिये वही हमारी माता कौशल्याजी हम ऐसे हजारों मनुष्योंको विना परीश्रम पालन पोषण कर सकेंगी ॥ २२ ॥ ऐसी अवस्थामें आई कौशल्याजी अपने लिये और माता सुमित्राजीके पालन पोषण करनेके लिये असमर्थ होंगी यह नितान्तही अलीक वार्त्ताहै वह अवश्यही अपना और सुमित्राजीका पालन पोपण करने में समर्थहैं ॥ २३ ॥ अतएव यह प्रार्थनाहै कि आप हमें अपने साथ वनको लेचलनेकी आज्ञा दीजिये, महाराज ! मेरे चलनेसे किसी प्रकारका अधर्म नहीं होगा वरन इससे मैंतो कृतार्थ होजाऊंगा और आपका हितहोगा, हित यही होगा कि आपको वनसे तोडकर पुष्प, कंद, मूल, फल लादिया करूंगा ॥ २४ ॥ वनके हिंसक जन्तु ओंसे रक्षा करनेके लिये प्रत्यंचा चढाया हुआ धनुष हाथमें लिये, व फल पुष्पादि लेनेके वास्ते एक पिटारी और कुदाल लिये आपके आगे २ मार्ग दिखाता हुआ चलूंगा ॥ २५ ॥ मैं आपके लिये प्रतिदिन तपस्वियोंके भोजन करनेके योग्य वनसे कंद, मूल, फल ले आया करूंगा ॥ २६ ॥ आप देवी जानकी जीके सहित पर्वतोंके कँगूरों पर वा कन्दराओंमें विहार करते रहें आप जानें कि मैं जागते सोते सब समयही सब प्रकार आपकी रक्षा करूंगा और सब कार्य आपके साधन करूंगा ॥ २७ ॥ रामचंद्रजी लक्ष्मणजीके इस प्रकार विनय युक्त वचन सुन अति प्रसन्नहो उनसे बोलेकि हे भइया ! तुम माता सुमित्रा और सब सुहृद जनोंसे पूछ पांछ हमारे संग वनको चलो ॥ २८ ॥ महात्मा वरुणजीने राजर्षि जनक जीके यज्ञमें प्रसन्न होकर भयानक आकार वाले दो धनुप राजा जनकजीको दियेथे ॥ २९ ॥ व दो अभेद कवच, दो दिव्य तरकस, जिनमेंसे चाहै जितने वाण निकाल कर छोडे जाओ और वह कभी निवडेंही नहीं; और सूर्यकी प्रभाकी समान चमकते हुये सुवर्ण को लजाने वाले दो खड्ग ॥ ३० ॥ यह सर्व अस्त्र शस्त्रादि महाराज जनकजीने हमें दहेजमें दियेथे, व हमनें आदर पूर्वक उनको ग्रहण कर

गुरुजीके घर उन सबको रख दियाथा हे लक्ष्मण! इस समय तुम उन सब अस्त्र शस्त्रोंको गुरुजीके घरसे लाकर जल्दी यहां चले आओ॥३१॥ धनुष धारी लक्ष्मणजी रामचंद्रजीकी आज्ञा शिरमाथे चढा वनजानेमें स्थिर मति करते हुये और जल्दीसे अपने सब सुहृदोंसे विदालेली, ❀ फिर गुरूजीके यहां जाकर प्रथम कहे हुये सब दिव्यास्त्र लेकर रामचंद्रजी के निकट चले आये ॥ ३२ ॥ और रामचंद्रजीको दिव्यमाला शोभित चन्दन अक्षत आदि चढे हुये यह सब अद्भुत आयुध लक्ष्मणजीनें दिखलाये ॥ ३३ ॥ रामचंद्रजीने उन सब अस्त्र शस्त्रोंको देख दाखकर लक्ष्मणजीसे प्रसन्न होकर कहाकि हे लक्ष्मण! तुम भले समय पर आये ॥ ३४ ॥ हे परंतप! मेरा जो कुछ धन रत्न आदिहै वह इस समय मैं तुम्हारे सहित ब्राह्मण और तपस्वियोंको दान करूंगा ॥ ३५ ॥ मेरे आश्रममें गुरु भक्ति परायण अनेक ब्राह्मण रहतेहैं. उनको और सब नोकरों चाकरों को धनदेना कर्तव्यहै ॥ ३६ ॥

वसिष्ठपुत्रंतुसुयज्ञमार्यंत्वमानयाशुप्रवरं
द्विजानाम् ॥ अपिप्रयास्यामिवनंसमस्ता
मभ्यर्च्यशिष्टानपरान्द्विजातीन् ॥ ३७॥

तुम इस समय द्विज श्रेष्ठ वशिष्ठ पुत्र आर्य सुयज्ञको यहां पर ले आओ हम सब उनकी पूजा व द्विजाति गणोंका यथाविधि आदर सन्मान पूजा अर्चनाकर वनको चले जांयगे ॥ ३७ ॥ इ॰श्रीम॰वा॰आ॰अ॰ एकत्रिंशःसर्गः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशः सर्गः ॥

ततःशासनमाज्ञायभ्रातुःप्रियकरंहितम् ॥
गत्वासप्रविवेशाशुसुयज्ञस्यनिवेशनम् ॥ १ ॥

❀चौ॰—उस समय सुमित्रा बोलीं॥ तात तुम्हारि मातु वैदेही। पिताराम सब भांति सनेही ॥ जेहि न राम वन लहहिं कलेशू । सुत सोइ करहु इहै उपदेशू । पुत्रवती युवती जग सोई। रघुवर भक्त जासु सुत होई॥ जोपै सीय राम वन जाहीं। अवध तुम्हार काज कछु नाहीं। जाहु सुखेन वनहिं बलिजाऊं। करि अनाथ जन परिजनगाऊं॥ दोहा—भूरिभाग्य भाजन भयउ, मोहि समेत बलिजाउं ॥ जो तुमरे मन छांडि छल, कीन राम पद ठाउं ॥

तदनन्तर भ्राता रामचंद्रजो की हित करने वाली आज्ञासे लक्ष्मणजी शीघ्रतासे गुरुपुत्र सुयज्ञके आश्रम में गये ॥ १ ॥ वहां पहुँचकर देखा कि ऋषिश्रेष्ठ अग्निहोत्रके गृहमें बैठे पूजा कर रहेहैं तब लक्ष्मणजीनें उन्हें प्रणामकर कहा कि हे सखे! भ्राता रामचन्द्र सब राज्याभिषेक को त्यागकर वनको जातेहैं सो उन्होंने आपको बुलायाहै, आप शीघ्र चलिये देखिये तो सही वह कैसा दुष्कर्म कर रहेहैं ॥ २ ॥ अनन्तर ऋषि श्रेष्ठ सुयज्ञजी यथाविधि संध्या वन्दनादि समाप्त करके लक्ष्मणजीके साथ लक्ष्मी युक्त रमणीय राम मन्दिरमें पहुँचे ॥ ३ ॥ सब वेद वेदान्तके जानने वाले, जलती हुई अग्निके समान दिपते हुये सुयज्ञजीको आयेहुये देख जानकीजीके सहित जानकीनाथ हाथ जोड खडे होगये ॥४॥ और जो भूषण मणि जटित सुवर्णके बाजू, कुंडल, जंजीर, मोतियोंकी माला, कंठा, कंकण आदि जो कुछ आप पहरे हुयेथे सब सुयज्ञजीको पहरा दिये ॥ ५ ॥ इनके सिवाय और भी बहुत रत्नादिक रामचंद्रजीने दिये, तब जानकी जीने रामचन्द्रजीसे कहाकि. आपने तो अपने भूषण सुयज्ञजीको देदिये, मैंभी इनकी स्त्रीको जो कि मेरी सखीहै अपने भूषण दिया चाहतीहूं यह सुन रामचन्द्रजी सुयज्ञ जीसेबोले हे सौम्य! तुम अपनी सह धर्मिणीके लिये यह हार यहमाला लेते जाओ मेरे साथ वनको जानेवाली यह तुम्हारी स्त्रीकोदेना चाहतीहैं ॥६॥७॥ इनके अतिरिक्त यह चन्द्रहार, यह विचित्र बाजू, और बहुत अच्छे केयूर मेखला यह सब अपनी सखी तुम्हारी स्त्रीको देकर मेरे साथ वनको जाना चाहतीहैं सो तुम इन सबको लेते जाओ ॥ ८ ॥ सोनेका पलँगभी जिसके पायोंमें व पाट्टियोंमें बडे २ मोलके हीरे पन्ने आदि जडेहैं वह जिसके ऊपर बडी मोलकी तैयारीका बिछोना बिछाहै यहभी जनककन्या आपको देतीहैं. क्योंकि वैसे भूषण पहिरे आप दोनों इसी प्रकारकी सेजपर सुशोभित होगे ॥ ९ ॥ हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! हमें हमारे मामाने जो शत्रुञ्जय नामक हाथी दियाहै. वह तुमको मैं हजार निष्क दक्षिणा देकर दान करताहूं तुम उसको ग्रहणकरो ॥ १० ॥ इसप्रकार जब सुयज्ञजीसे कहागया तब उन ऋषिकुमारने सब धन रत्न ग्रहण करके प्रसन्न अंतःकरणसे रामचन्द्र सीता व लक्ष्मण तीनों जनोंको आशीर्वाददिया. ॥११॥ अनन्तर प्रजापति ब्र-

ह्माजीने जिसप्रकार इन्द्रसे कहाथा वैसेही श्री रामचन्द्रजीने प्यारे बोलने वाले आलस्यरहित प्यारे लक्ष्मणजीसे कहा ॥ १२ ॥ भइया अब तुम जाकर महर्षि अगस्त्य और विश्वामित्र जीको बुलाकर लेआओ वृष्टि होनेसे जिस प्रकार अन्नकी उत्पत्ति होती है वैसेही तुम धन रत्नादि देकर इनको सुखीकरो ॥ १३ ॥ हे महाबाहो ! तुम इनको हजार गायें और सोना, चांदी, मणि, मुक्ता और बहुत धन देकर प्रसन्न करो ॥ १४ ॥ जो ब्राह्मणकि जननी कौशल्याजीको नित्य आशीर्वाद दिया करताहै और यजुर्वेदकी तैत्तिरीय शाखाओंका आचार्यहै व सब वेद वेदांतका जाननेवालाहै और नित्य कौशल्याजीको यज्ञ करताहै ॥ १५ ॥ तिस ब्राह्मणोंको रेशमी वस्त्र सवारियें और दास दासियों और धनको देकर प्रसन्न करो ॥ १६ ॥ आर्य चित्ररथ जो कि हमारे मंत्री व सारथिहैं और अब बूढे होगये हैं अब उनको बडे २ कीमती कपडे गहने धन और रत्न देकर तृप्त करो ॥ १७ ॥ वह हमारे निकट संबंधी शाखाओंके पढने वाले जो सब ब्रह्मचारीहैं तुम उनको सबको दश हजार गायें और अनेक प्रकारके यज्ञ संबंधीय पशु देदो ॥ १८ ॥ उन सबको दान देनेका एक मुख्य आशय यहीहै कि वह सदा वेद पढा करतेहैं. इस कारण और कार्योंके ऊपर वह कुछ ध्यान नहीं देते यद्यपि उनका भिक्षा करनेमें स्वभाव आलकसी है किन्तु अच्छे सवादवाले भोजन करनेको उनकी बडी इच्छा रहतीहै उनका तप करना सर्व सम्मतहै ॥ १९ ॥ तुम उन सब महात्माओंको रत्न भारसे लदे हुये अस्सी हजार ऊंट बडे २ गाडोंमें चलने वाले एक हजार दोसै बैल उनको देदो ॥२०॥ सब प्रकारके अन्न चना, मूंग आदिके व्यंजन बनानेको घी, दधि आदिके लिये बहुत अच्छी बहुतसी गायें देदो, व माता कौशल्याजीके पास जो नित्य मेखला पहरे ब्रह्मवादी ब्रह्मचारियोंके समूह रहतेहैं ॥ २१ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम उनमेंसे प्रत्येकको सहस्र निष्क, सहस्र २ गाय देदो. और अधिक क्या कहूं जितना दान देनेसे माता कौशल्याजी आनन्दितहों उतना २ धन उन सब ब्राह्मणोंको देदो ॥ २२ ॥ रामचन्द्रजीके यह कहनेपर पुरुष श्रेष्ठ लक्ष्मणजीनें स्वयं वह समस्तधन रत्नादि धनाधिपकी समान ब्राह्मणोंको देदिये जैसाकि उनको देना चाहिये ॥ २३ ॥ जैसे कुबेर किसीको धन लुटा-

वे जब इस प्रकारसे लक्ष्मणजी सबको धनदे चुके फिर सब ॥ २४ ॥ बहु-
तसा धन औरभी नोकरों चाकरोंको जो कि आंसू भरे खडेथे उनको दे
उनसे बोले कि लक्ष्मणके व हमारे मंदिरमें जबतक कि हम वनसे लौट
कर न आवें तब तक ॥ २५ ॥ तुम रहना इन भवनोंको खाली न पडे र-
हने देना, जितने तुम अब रहतेहो तितनेही रहना जबतक कि हम वनसे
लौटकर घर न आवें रामचंद्रजीसे यह वार्त्ता श्रवण कर सब नौकर चाकर
दुःखसे रुदन करने लगे॥२६॥राजकुमार श्रीरामचंद्रजी इस प्रकार आदेश
देकर खजाञ्चीको सेवक सहित बुला उसे धन लानेंके लिये हुकुम दिया
हुकुम पातेही खजाञ्चीके सेवक दौड गये और थोडीही देरमें वहां धनकी
राशि लग गई ॥ २७ ॥ वह सब धनके ढेरके ढेर देखकर श्री पुरुषसिंह
श्रीरामचंद्रजी उस धनको लक्ष्मणजीके सहित ब्राह्मणोंके बालकोंको वृ-
द्धोंको, व अति दीन मनुष्योंको सब देने लगे, उन्हीं दिनोंमें उस देशमें
गर्ग गोती ब्राह्मण जिसका शरीर बिलकुल पीला पड गयाथा. और त्रिज-
ट उसका नामथा॥२८॥२९॥वह फावडा, कुदाल व हलसे खोद खादकर
अपने दिन व्यतीत करताथा तबभी कभी २ उपवास होजाया करताथा।
उसकी स्त्री पूर्ण युवतीथी, परन्तु दरिद्रताके दुःखसे बहुतही दुबली हो-
गईथी। उसने जब सुनाकि रामचंद्रजी बहुत धन बांट रहेहैं तब बालकोंको
संग लेकर ॥ ३० ॥ तब उसकी स्त्री देवता स्वरूप अपने स्वामीसे बोली
कि स्त्रियोंके स्वामीही देवता होतेहैं इसकारण तुमभी मेरा वचन मानो
कि तुम फावडा और कुहाडी तो फेंकदो और जो मैं कहूं उसको ध्यान
लगाकर सुनो ॥ ३१ ॥ कि यदि इस समय तुम रामचन्द्र राजकुमारके
पास जाओगे, तो अवश्यही थोडा बहुत धन तुम्हारे हाथ लगेगा, वह
ब्राह्मण अपनी स्त्रीसे ऐसा सुनकर एक बहुत फटे दुपट्टेसे अपने शरीरको
ढक ॥ ३२ ॥ राम मंदिरकी ओर चला उसका तेज अंगिरा और भृगु
ऋषिको समानथा, वह त्रिजट रामचन्द्रजीके पासको गमन करने ल-
गा ॥ ३३ ॥ पांच ड्योढियोंके पार होगया परन्तु किसीने उस जाते हु-
येको नहीं रोका अनन्तर ब्राह्मण श्रेष्ठ त्रिजट रामचन्द्रजीके समीप पहुँचा
और बोला ॥ ३४ ॥ कि हे राजकुमार महाबली! मैं बहुतही दरिद्रहूं और
बाल बच्चे मेरे कई एकहैं ब्राह्मणोंके कुलमें पैदा होकर मुझको खेतीवाडी

करके जीविका करनी पडतीहै, अतएव यही प्रार्थनाहै कि मेरे ऊपर कृपा करिये ॥ ३५ ॥ रामचन्द्रजी उस ब्राह्मणकी ऐसी वार्ता सुन हँसकर बोले कि हे विप्रवर ! हमारे पास असंख्य गायेंहैं सो अभीतो उनमेंसे एक हजारभी नहीं बाँटी गईहैं ॥ ३६ ॥ इस समय तुम जहांतक यह अपना डंडा फेंक सकोगे वहां तकके घेरमें जितनी गायें होंगी मैं वह सबही तुमको देदूंगा, यह सुनकर त्रिजट ब्राह्मणने तुरंत अपना फटा चादरा कमरमें बांध ॥ ३७ ॥ और डंडा हाथमें ले और उसको अपने पूरे बलके साथ घुमाकर फेंका उसके हाथसे फेंका हुआ डंडा देखते २ सरयू नदीके दूसरी पार गिरा ॥ ३८ ॥ जहां बहुतसी हजारों गायों व बैलोंका गोठ इकट्ठाथा यह देखकर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीने उसे हृदयसे लगाया और सरयूके किनारेकी ॥ ३९ ॥ जितनेमें सब सजी सजाई गायेंथीं उन सबको त्रिजटके पास उसके आश्रममें भेजदीं और उस ब्राह्मणको छातीसे लिपटायलिया और उस गार्गको समझाते हुये बोले॥४०॥हेब्राह्मण श्रेष्ठ!तुम कुछ हमपर क्रोध न करना मैंनें डंडा फेंकनेको कहाथा वहतो केवल हँसीथी॥४१॥तुममें दूरतक डंडा फेंकनेकी शक्तिहैयानहीं इसकीही परीक्षा करनेको मैंने तुमसे यह कार्य करायाथा ।अब यह पूछताहूं कि इतनी गायेंतो तुम्हारे स्थानमें पहुँच गईं, अब इन गायोंके सिवाय जो कुछ और चाहिये सो मुझसे कहो ॥ ४२ ॥ मैं सत्य सत्यही कहताहूं कि तुम इस बातमें कुछभी शोच संकोच नकरो मैं जितनें धन सम्पत्तिका अधिकारीहूं यदि वह तुम सरीखे ब्राह्मणोंको दे दियाजाय, तबतो मेरे यशकी सीमा न रहेगी, धन दान करने से ही सफल होताहै न कि गाड देनेसे ॥ ४३ ॥ तब द्विज श्रेष्ठ त्रिजट अपनी स्त्री और बालकों समेत प्रमुदित मनसे औरभी असंख्य धेनु ग्रहण करकै, बल, यश, प्रीति और सुखकी वृद्धिके हेतु रामचंद्रजीको बहुतही आशीर्वाद देताहुता चला गया ॥ ४४ ॥ त्रिजटके चले जानेपर प्रबल पौरुषवान रामचंद्रजी अपने धर्म व बलसे इकट्ठा किया हुआ धन रत्नादिक ब्राह्मण व सुहृदोंको नौकर चाकरोंको और मंगताओंको आदर सहित दान करने लगे ॥ ४५॥

द्विजःसुहृद्भृत्यजनोथवातदादारिद्राभिक्षा

चरणश्चयोभवेत् ॥ नतत्रकश्चिन्नबभूवताप
तोयथार्हसंमाननदानसंभ्रमैः ॥ ४६ ॥

उन श्रीरामचंद्रजीके दान देनेको कहांतक वर्णन किया जाय कि, जितने, ब्राह्मण जितने सुहृद, जितने नौकर चाकर थे और जितने फकीर फुकरेथे सबही मन माना धन और आदर पाकर परम प्रसन्न होगये, वहां पर ऐसा कोई नहींथा जिसका भलीं भांति दान सन्मानसे आदर न किया गयाहो ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्या कांडे द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशः सर्गः ।

दत्वातुसहवैदेह्याब्राह्मणेभ्योधनंबहु ॥
जग्मतुःपितरंद्रष्टुंसीतयासहराघवौ ॥ १ ॥

अनन्तर रामचंद्रजी व लक्ष्मणजी समस्तधन समस्त ब्राह्मणादिकोंको दानकर सीताजीको संगले पिताजीके दर्शन करनेको चले ॥ १ ॥ देवी सीताजीनें अपने हाथसे जो सब अस्त्र माला चन्दनादि द्वारा सजाये थे उनको उठाकर दासियोंको दिये उन सबको दो परिचारिका हाथमें लेकर रामचंद्रजीके पीछे २ चलीं ॥ २ ॥ उस समय सब मनुष्य मार्गमें जाते हुये रामचंद्रजीको धवरहर व अटारियें और विमानों पर बैठ२ दीन नेत्र और निरुत्साह मनसे देखने लगे ॥ ३ ॥ भीडके मारे राजमार्गमें चलना फ़िरना बहुतही कठिन हुआ इसीकारणसे दीन जन धवरहर आदिक ऊंचे स्थानों पर चढकर रामचंद्रजीको देखतेथे ॥ ४ ॥ उस समय रामचंद्रजीको छोटे भाई लक्ष्मण और प्राण सम प्रिया जानकीके सहित पैदल जाते देख कर सब मनुष्य शोकसे व्याकुल होकर कहने लगे ॥ ५ ॥ जिन रामचंद्रजीके कहीं जानेके समय चतुरङ्गिनी सेना साथ जातीथी, वही सीताजीके सहित पैदल इकले चले जा रहेहैं और पीछे २ उनके लक्ष्मणजी जातेहैं ॥ ६ ॥ जो रामचंद्रजी सब ऐश्वर्यके सुखोंको जानने वाले और विलासके आकार स्थान और सब अर्थोंकी कामना पूर्ण करनें वालेहैं वही आज धर्मकी प्रतिष्ठा से वंध कर पिताके

वचनोंको नहीं तोड सकते ॥ ७ ॥ जिन सीता जीको आकाशमें रहनें वाले प्राणि जनभी नहीं देखतेथे हाय ! आज उनको राजमार्गमें जाने वाले अनाथ सबकी समान देखतेहैं ॥ ८ ॥ जो जानकी जी सदा अंग-राग और लाल चन्दनादि सुगन्धित वस्तुयें अपने शरीरमें लगातीथीं, अब उनकोही ग्रीष्मकी गरमी वर्षाकी जल धारा और दुसह शीतका कोप पीला करदेगा ॥ ९ ॥ हमारी समझमें ऐसा आताहै कि महाराज दशर-थ जीको तो निश्चयही भूत पिशाच लगाहै, यदि ऐसा न होता तो प्राणों से प्यारे बुढौतीमें पाये हुये प्रिय पुत्रको वनवास क्यों देते ॥१०॥भइया ! आश्चर्य्यहै कि जिन रामचंद्रजीके आचरणोंकी सब एक वाणीसे प्रशंसा क-रतेहैं उनकी वात तो एक ओर रही कोई निर्गुण पुत्र केभी साथ ऐसा निठुर व्यवहार नहीं करता ॥ ११ ॥ अहिंसा करना दयाकरना भली भांति शास्त्रोंका पढना सुशीलता इन्द्रियोंको अपनें वशमें रखना, शान्त चित्त रहना, यह छओं गुण पुरुष श्रेष्ठ रामचंद्रजी में विद्यमानहैं ॥ १२ ॥ हम यह भली भांति जान्तेहैं कि ऐसे श्रीरामचंद्रजी के वन जानेसे जिस प्रकार प्रवल गरमीके तापसे तालाव का पानी सूखजाने पर उसमें ज-ल जीव नहीं रह सकते वैसेही विना रामचन्द्रजीके प्रजा वहुत दुःखी होगी, ॥ १३ ॥ जगत्पति रामचन्द्रजीके वनवाससे सवहीको दुःखहोगा। जिस प्रकार जड़ कट जानेसे फल फूल पत्ते सूख जातेहैं सोही अवस्था सा-री प्रजाकी रामचन्द्रके विना होगी ॥ १४ ॥ धार्मिक चूडामणि महा का-न्तिमान् महात्मा रामचन्द्रजी ही तो सब मनुष्योंके मूलहैं व और दूसरे सब मनुष्य फूल फल पत्ते व शाखाहैं ॥ १५ ॥ अतएव लक्ष्मणजी जिस प्रकार साथ जातेहैं, हम भी सब जहां रामचन्द्रजी जायँगे वहीं पर गम-न करेंगे क्योंकि पेडकी जड़ विना फूल फल पत्ते किस प्रकार रह सक्ते हैं ? ॥ १६ ॥ हम सबको रमणीय फुलवाडी, खेत और घरका कुछ प्र-योजन नहींहै, हम इन सबको छोड छोडकर धार्मिक रामचन्द्रजीके दुःख में दुःखी, सुखमें सुखी रह कर उनके ही साथ चले जाँयगे ॥ १७ ॥ अब जितना हमारा जो सब धन आदि पृथ्वी में गड़ा रक्खाहै, वह उखड जावे, गायें धन धान्यादि सर्वशः छीन लिये जाँय ॥ १८ ॥ गृहके सब देव-ता भी घरको छोड जावें, घरमें सबही जगह धूल छाईहो और कूडा क-

कंट पडाहो, चूहे इधर इधर कलावतियें खाते हों और सब जगह भट्टक विल हो जाय ॥ १९ ॥ जल का नाम निशान नहीं रहैगा व धुआं-हीन विना तुम्हारे वटोरे बलि वैश्वदेव यज्ञ हीन, मंत्र होमयज्ञादि शून्य ॥ २० ॥ अकाल पडनेके समान टूटे फूटे घर और हमारे टूटे फूटे वर्त्तन भाजन और अनेक प्रकारके उत्पात प्रगट होंगे हम सब लोग जब इस पुरी को छोडकर चले जायँगे तब कैकेयी ऐसी पुरीका राज्य करेगी ॥ २१ ॥ हमारी भगवानसे यही प्रार्थनाहै कि हे नारायण! जिस वनमें रामचन्द्रजी जाँय वहांतो नगर वस जाय और हमारी यह छोडी हुई अयोध्या पुरी वन होजाय ॥ २२ ॥ सर्प गण हमारे डरसे डरकर अपने २ विल, मृग पक्षी गण पहाडोंको चोटी, और हाथी व शेर वन भूमिको छोडदें ॥ २३ ॥ हम सब जिस स्थानको छोडे जातेहैं वह सब मृग पक्षी गण आदिक यहां आकर अधिकार करैं तृण मांस फलादि हीन वन होजाय देशमें ठौर २ सर्प पक्षी व मृग गण विचरण करैं ॥ २४ ॥ हम इस समय मनकी प्रसन्नता पूर्वक घर वारको छोड रामचन्द्रजीके संग वनवास करैंगे कैकेयो पुत्र और अपने वन्धु बान्धवों सहित इस पुरी का पालन करती रहै ॥ २५ ॥ यद्यपि रामचन्द्रजीनें यह और भी अनेक प्रकारकी वातें नगर वासियोंके मुखसे सुनी तथापि उनका मन चलाय मान नहीं हुआ और न उन्होंने कुछ शोकही किया ॥ २६ ॥ महाराज रामचन्द्रजी क्रम २ से मतवाले हाथीकी समान विक्रम वाली चालसे कैलास पहाड की समान पिताजीके भवनकी ओर जाने लगे ॥ २७ ॥ भवनके द्वार पर विनीत वीर पुरुष पहरे दारी कर रहेथे । रामचन्द्रजी उनके पास होते हुए आगे बढे तब थोडीही दूरपर दीन दशाको प्राप्त हुये सुमंत्रजीको देखा ॥ २८ ॥ रामचन्द्रजी पिताजीकी आज्ञा पालन करनेके लिये वनके जानेको तैयार हो प्रसन्न मनसे हँसते हुयेसे पिताके चरणारविन्द दर्शन करने की आशासे द्वार पर उपस्थित हुए वहांपर देखा तो सबही नोकर चाकर व दूसरे आदमी बहुतही दुःखितथे ॥ २९ ॥ धर्म वत्सल रामचन्द्रजी पिताके सत्य पालनेको स्थिर निश्चय होकर उनके चरणों में विदा लेने की आशासे द्वारपर उपस्थित हुये और सुमंत्र

को पासही देखकर उनसे बोले कि हमारे आनेका समाचार पिताजीसे कह दो यह बोले ॥ ३० ॥

पितुर्निदेशेनतुधर्मवत्सलोवनप्रवेशे
कृतबुद्धिनिश्चयः ॥ सराघवःप्रेक्ष्यसुमंत्रमब्रवी
न्निवेदयस्वागमनंनृपायमे ॥ ३१ ॥

उनसे कह दो कि धीर धारण करने वाले रामचन्द्रजी पिताजीकी आज्ञा मानने में तत्परहो वन जानेको तैयारहैं, ऐसी हमारे पितासे कह दो यह बात रामचन्द्रने सुमंत्रसे कही ॥ ३१ ॥ इ० श्रीमद्रा० वा० आ० अ० त्रयस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥

ततःकमलपत्राक्षःश्यामोनिरुपमोमहान् ॥
उवाचरामस्तंसूतंपितुराख्याहिमामिति ॥ १ ॥

अनन्तर कमल पत्रकी समान नेत्रवाले श्याम अंग जिनपर कोई उपमा- हीं न लगे ऐसे श्रीरामचंद्रजीने सुमंत्रको बुलाकर कहाकि तुम जाकर हमारे आनेका समाचार पिताजीसे कहो ॥ १ ॥ सुमंत्रजी रामचंद्रजीके यह वचन सुन शोकसे व्याकुलहो शीघ्रतासे राजाके पास गये और देखा कि महाराज दशरथजी शोकसे व्याकुल हो ऊंची सांसे लेरहेहैं ॥ २ ॥ उस समय महाराज दशरथजीकी दशा राहुग्रस्त सूर्यकी नांई राखसे ढकी अग्निकी नांई व जलहीन तडागकी नांईथी ॥ ३ ॥ महापंडित सुमंत्र- जीनें रामचंद्रजीका समाचार जनाते हुये रामचंद्रजीके दुःखसे विलाप करते हुये महा व्याकुल महाराज दशरथजीसे हाथ जोडकर कहा ॥ ४ ॥ प्रथम सुमंत्रने (जयजीव) ऐसा महाराज दशरथजीसे कहा; फिर मारे भयके बहुत उदास हो धीरे २ मधुर वाणीसे बोले ॥ ५ ॥ हे महाराज पुरुष सिंह आपके पुत्र श्रीरामचंद्रजी ब्राह्मणों और नोकर चाकरोंको धन दे दिवाकर आपके दर्शनकी आशा लगाये द्वारपर खडेहैं । ॥ ६ ॥ सत्य पराक्रम रामचंद्रजीने सुहृद् व औरभी सब बन्धु बान्धवोंसे विदाले

लीहै. अब इस समय आपके चरणारविन्दमें विदा ग्रहण करनेके कारण उनका यहां आना हुआहै सो तुम्हें देखना चाहतेहैं ॥ ७॥ सूर्य भगवान जिस प्रकार अपनी किरणोंसे सुशोभित रहतेहैं वैसेही श्रीरामचंद्रजी विविध भांतिके राज गुणोंसे शोभित होकर शोभा पारहे ॥ ८ ॥ वह अब शीघ्रही महा वनको जाना चाहतेहैं यदि आज्ञा होतो यहां आकर वह आपके दर्शन करें ॥ ९ ॥ तब समुद्रकी समान गंभीरता वाले आकाशकी समान निर्मल सदा सत्य कहने वाले राजा दशरथजी सुमंत्रसे बोले॥ ९॥ हे सुमंत्र! हमारी जितनी और सब रानियेंहैं तुम सबसे पहले उन सबको यहां बुला लाओ। अब हम सब रानियोंके साथ मिलकर प्राण प्यारे दुलारे पुत्र रामचंद्रका मुखचंद्र देखेंगे ॥ १० ॥ राजाकी आज्ञा पातेही सुमंत्रजी रनवासमें प्रवेश करते हुये और सब रानियोंसे (हे श्रेष्ठो! राजाजी आप सबको बुलातेहैं इससे जल्दीही वहां चलिये) यह बोले॥११॥ सुमंत्रजीके मुखसे यह वचन सुनकर वह सब महारानियें स्वामीकी आज्ञासे महाराजके निकट जानेको तैयार हुई ॥ १२ ॥ वह सब पतिव्रत धारण करने वाली दुःखसे जिनकी आंखे लाल होगईहैं ३५० तीनसौ पचास रानियें महारानी कौशल्याजीको आगेकर वहां गईं जहां कोप भवन में कैकेयीके साथ राजा पडेथे ॥ १३ ॥ उन सब रानियोंको आये हुये देख महाराज दशरथजीने सुमंत्रजीसे यह कहाकि " हमारे पुत्र रामको यहां ले आओ " ॥ १४ ॥ आज्ञा पातेही सुमंत्रजी, सीता, लक्ष्मण सहित रामचंद्रजीको लेकर राजाके समीप आ पहुँचे ॥ १५॥ हाथ जोडे हुये श्रीरामचंद्रजीको आते हुये देख अपनी सब दुःखित स्त्रियोंके साथ राजा आसन परसे उठ खडे हुये ॥ १६ ॥ व अपने पुत्र रामचंद्रजीको देख उनको हृदयसे लगानेके लिये बडी शीघ्रतासे महाराज दशरथजी दौडे परन्तु मारे दुःखसे विह्वल तो होई रहेथे व सामर्थ्यहीन हो रहेथे, इस कारण मूर्च्छा आगई बीचहीमें गिर पडे ॥ १७ ॥ तब उस समय महारथी लक्ष्मणजीनें और धार्मिक रामचंद्रजीनें शोकसे व्याकुलहो मूर्च्छा प्राप्त हुये राजाको पृथ्वीपरसे उठाया उस समय पृथ्वीनाथको अपनी कुछ सुध नहींथी ॥ १८ ॥ उस समय गहनोंकी झनकारके सहित हजारों स्त्रियें जो कि रनवासमेंथीं उनका हाहाकार शब्द महाराजकी पुरीमें फैल ग-

या। व सबही कोई "हा राम" यह बोले बोलकर रोने लगे ॥ १९ ॥ तब लक्ष्मण और सीताजीनें आंखोंमें आंसू भरके मूर्च्छा प्राप्त महाराज दशरथजीको हाथ पकड व उठाकर पलँग पे लेजाकर बिठाया ॥ २० ॥ थोडी देरके बाद राजाकी मूर्च्छा जागी तब श्रीरामचंद्रजी हाथ जोडकर शोकके समुद्रमें पडे और रुदन करते हुये महाराज दशरथजीसे बोले ॥ २१ ॥ हे महाराज! मैं वनके जानेको बिलकुल तैयार होगयाहूं. सो आप हमारे व सबहीके मालिकहैं इसकारण हम आपसे आज्ञा विदा होनेकी चाहतेहैं सो आप कृपादृष्टि उठाकर हमारी ओर एक वार देख तो लीजिये ॥ २२ ॥ यद्यपि मैंने अनेक प्रकारसे वनके दुःख कहकर सुनाये व औरभी बहुतसे कारण दिखाये और लक्ष्मण सीताको वनमें अपने साथ नहीं ले जाना चाहा परन्तु उन सब बातोंकोभी यह दोनों जने सुनकर मेरे संग वन जायाही चाहतेहैं ॥ २३ ॥ प्रजापति ब्रह्माजीनें जिस भांति सनकादिक अपने पुत्रोंको तप करनेकी आज्ञा दीथी, वैसेही उनकी समान हम तीन जनोंको आप वन जानेकी आज्ञादी जिये। और वृथा शोकके अधीन न होकर इसका त्याग कीजिये ॥ २४ ॥ तब राजा दशरथजी व्यग्रता रहित अपने पुत्रको आज्ञा परखते देख उनके ऊपर दृष्टि डालकर बोले ॥ २५ ॥ हे प्राणप्यारे रामचंद्र! मैंने तो मोहित होकर कैकेयीको वर दियाहै अब मैं तुम्हें क्योंकर वन जानेको कहूं अतएव अब तुम मुझको तो पकडकर बन्दी करो और तुम अयोध्याके राजसिंहासनपर बैठ यहांके राजा बनो ॥ २६ ॥ राजाके ऐसे वचन सुनकर धर्म धुरन्धर रामचन्द्रजी हाथ जोडकर बडी चतुरतासे राजासे बोले॥२७॥हे महाराज! आप अबसे औरभी हजारों वर्षकी उमर पाकर पृथ्वीका पालन करते रहैं। राजभोग करनेकी मुझको कुछभी अभिलाषा नहींहै, क्योंकि मैं आपको थोडाभी मिथ्यावादी नहीं बनाया चाहता क्योंकि मृषा कहनेसे नरक होताहै । बस इसीकारणसे मैं वनमें रहूंगा ॥ २८ ॥ हे पिता! मैं चौहद वर्ष वनवासमें रह और आपकी प्रतिज्ञाको पूर्णकर वहांसे लौट फिर आपके श्रीचरणोंमें प्रणाम करूंगा ॥२९॥ इतनेमेंही कैकेयी रामचंद्रजीकी बातको समर्थन करती हुई ओटमें बैठी राजासे इशाराकर कह रहीथी कि इनको वन भेजो। यह देख सत्य

की फाँसीमें बँधे रुदन करते परवश राजा दशरथ रामचन्द्रजीसे दीन वचन बोले ॥ ३० ॥ हे तात ! परलोक और इस लोककी मंगल कामना करते हुये तुम निरापद वनको जाओ तुम्हारे जानेका मार्ग भय करके रहित हो तुम नियत किये समयके पीछे कुशल पूर्वक यहांपर आओ ॥ ३१ ॥ वत्स तुम्हारी बुद्धि सत्यात्मा वह धर्मात्माहै तुमको दूसरे मार्गमें चलाने-की मेरी क्या किसीकीभी सामर्थ्य नहींहै ॥ ३२ ॥ अब मेरे कहनेसे आ-जकी रात और रहजाओ तुमको एक दिनभी और देखनेसे मेरे सुखकी सीमा नहीं रहेगी भला आज तो और तुम्हारे साथ पान भोजन करलें ॥ ३३ ॥ तुम आज रात और अपनी माता व हमको देखते हुये यहां अवश्यही रहो और कल बडेही भोर वनको चले जाना हम न रोकें-गे ॥ ३४ ॥ हे वत्स ! तुम बहुतही दुष्कर धर्मका कार्य साधन करनेको तैयार हुये हो और तो मैं क्या कहूं परलोकमें मेरा हित करनेके वास्ते अपने सब प्यारे और राज्यको त्याग कर तुम वनको जातेहो भला दू-सरेसे यह कार्य कहीं हो सकताहै? ॥ ३५ ॥ हे प्रिय पुत्र ! तुम्हारा वन जाना मुझको किसी तरह प्रिय नहींहै मैं शपथ खाकर कहताहूं कि जिस प्रकार राखसेढकी अग्निमें कोई हाथ राख समझकर डालदे और उसका हाथ जल जाय वैसेही मैं इस टेढे हृदयवाली कैकेयीके वश पडगया और इसने अपना कार्य बना लिया ॥ ३६ ॥ मैं तो कुलकलङ्किनी कैके-यीके माया जालमें पडा और हे वत्स! तुम इसका फल भोगनेको चले यहभी अच्छी भगवान्‌की लीलाहै कि कर्म कोई करे और इसको भोगै कोई सो तुम इस दुष्टाके जालमें क्यों पडते हो अर्थात् जो मैंने धोखेसे कहा उसीको माने लेते हो ॥ ३७ ॥ हेराम ! हमारे पुत्रोंमें तुम सबसे बडे और सबसे श्रेष्ठहो, तुम जो अपने पिताके वचन प्रतिपालन करने-को तैयार होगे और पिताका वचन किंचित्‌भी झूठान होने दोगे तो इसमें आश्चर्य हीक्याहै ? ॥ ३८ ॥ अनन्तर अनुज सहित रामचंद्र जी महाराज दशरथजीके ऐसे आर्त्त वचन सुनकर दीन भावसे पिताजीसे बोले राम-चंद्रजीने यह शोचा कि कैकेयीसे तो हम कह चुकेहैं कि अभी वनको जातेहैं, और पिताजी एक रात और हमें रोका चाहतेहैं, और ऐसा क-

*दोहा—और करै अपराध कोउ, और पाव फल भोग। अति विचित्र भगवन्त गति, को जग जानै योग॥

रनेसे हमारे सत्य बोलनेमें अन्तर पडताहै, और प्रतिज्ञाको तोडताहूं तो पिताका मनोरथ सिद्ध न हुआ यह सोच समझ शोकको प्राप्तहो बोले ॥ ३९ ॥ पिताजी आज वन जानेमें जो गुण हमको मिल सकेंगे वह कल्ह जानेमें कौन देसकैगा इस कारण सबसे अधिक जल्दी अयोध्या पुरीके त्याग करनेहीकी प्रार्थना मैं आपसे करताहूं ॥ ४० ॥ अब इस समय आप मेरी छोडी हुई धन धान्यसे भरी मनुष्योंसे पूर्ण विविध राज्योंसे घिरी पृथ्वीका भार कुमार भरतको दे दीजिये ॥ ४१ ॥ हेपिता! मैंने जो इस समय वन जानेमें स्थिर बुद्धिकीहै वह मेरी मति किसी प्रकारसे चलायमान नहीं हो सकती। हे वरद! आपनें महारानी कैकेयीजीको दो वर दियेहैं उनका पालन करके सत्यवादी नामसे संसारमें विख्यात हूजिये ॥ ४२ ॥ पिता! अब इसमें आगा पीछा न विचारिये सब राज्य व खजाना भरतको देही दीजिये जो वचन आप कैकेयीसे हार गयेहैं मैं उनका पालन करता हुआ ॥ ४३ ॥ चौदह वर्षतक वनचारियों के समेत वनमें वास करूंगा। आप भरतजीके हाथमें पृथ्वीका भार सोंपते हुए किसी प्रकारका संशय नकीजिये क्योंकि वह सब भांति राज्यके योग्यहैं ॥ ४४ ॥ हे नरश्रेष्ठ! मैं अपने वा अपने इष्ट मित्रोंके सुखके लिये कभी राज सुखभोग करनेकी इच्छा नहीं करताहूं मैं सत्य२ कहताहूं कि आपकी आज्ञा पालन करनेंमें जो सुख मुझे होना संभवहै, वह सुख मुझको किसी पदार्थमें दृष्टि नहीं आता ॥ ४५ ॥ आप रुदन न कीजिये दुःखको दूर बहाइये; क्योंकि देखियेकि सरितपति जो समुद्रहै वह कभी चलाय मान नहीं होता ॥ ४६ ॥ हे पिताजी अधिक मैं क्याकहूं. नतो मुझको राज्य चाहिये, न सुख भोग करनेकी इच्छाहै, न मैं पृथ्वीका अभिलाषीहूं; न स्वर्गवास करनेसे मैं प्रसन्नहूं, वरन मैं तो जीवन धारण करनेकीभी कामना नहीं करता ॥ ४७ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ! आपसे मैं अपने सत्य और पुण्यकी सौगन्ध करके कहताहूं कि आपकी प्रतिज्ञा सत्य होजावे यही मेरी इच्छाहै ॥ ४८ ॥ आपके वचनों का मैं उल्लंघन नहीं करना चाहता और न मुझमें इतनी सामर्थ्यहै कि आपके वचनोंको मैं झूंठा करूं बस इसही कारणसे रात भरकी क्या चलाई मैं एक घडी भरभी यहां इस पुरीमें वास नहीं कर सकता अब

मेरी यही आपके चरणोंमें प्रार्थनाहै कि मेरे लिये आप अधीर न होइये ॥ ४९ ॥ देवी कैकेयीजीने हमसे कहाकि रामचंद्र! तुम वनको जाओ सो हमने भी कहाकि अच्छा हम वनको जातेहैं अतएव वह जो बात कैकेयीसे कह चुकेहैं उसका पालन करना भी कर्त्तव्यहीहै. हम अपने सत्यकोभी नहीं छोड सकतेहैं ॥ ५० ॥ हे देव ! आप किसी प्रकारसे घबडाइये मत मैं वहां जहां पर कि शान्त मृगगण सदा विचरण करतेहैं जहां अनेक प्रकार पक्षियोंके बोल सुनाई आतेहैं मैं ऐसेही वनमें वास करता रहूंगा ॥ ५१ ॥ हे तात ! पिता देवता गणोंकाभी देवता होताहै यह वार्त्ता शास्त्रमें लिखीहै पिता जो देवताके तुल्यहैं इसी कारण मैं आपके वचनोंको देवता मानूंगा ॥ ५२ ॥ जब चौदह वर्ष व्यतीत हो जांयगे तबमैं फिर यहांको आही जाऊंगा फिर इस कारण करके संताप करनेका प्रयोजन क्याहै? ॥ ५३ ॥ हे पुरुष सिंह वह आप भली प्रकार जानतेहीहैं कि मेरेही कारण सब लोग शोकमें व्याकुलहो रुदन कर रहेहैं अतएव शोकमें अधीर न होकर इन लोगोंको समझाना बुझाना आपको अवश्यही कर्त्तव्यहै ॥ ५४ ॥ मैं इस समय पुर देश नगर सहित इस पृथ्वीको परित्याग करताहूं आप भरतको यह देदीजिये मैं आपकी आज्ञासे बहुत कालतक सुखभोग करनेके अर्थ वनको जाताहूं ॥ ५५ ॥ भरतजी बेखटके अपने मामाके यहां से आकर, पर्वत वनसे शोभायमान ग्राम व नगरसे भरीपुरी सीमा युक्त इस पृथ्वीका पालन करते रहैं आप जो दोवर कैकेयीको दे चुकेहैं वह किसी प्रकारसे निष्फल नहों मेरी यही इच्छाहै ॥ ५६ ॥ हे महिपाल ! बहुत अच्छी २ भोग व सुखकर वस्तुओंकी मुझे रुचि नहींहै, प्रीतिकी उपजानेवाली किसी वस्तुकी मुझको इच्छा नहींहै मुझको तो केवल सज्जनोंकी सराही हुई आपकी आज्ञाका पालन करनाही प्रार्थनीय और शिर माथे परहै। मैं वारंवार कहताहूं कि आप मेरे लिये कुछ दुःख नकरैं ॥ ५७ ॥ अधिक कहना तो व्यर्थहै पर इतनाहीं कहे देताहूं कि आपके मिथ्यावादी हो जानेपर मुझको नतो इस बडे राज्यसे प्रयोजन न अतुलनीय सुख संपत्तिसे प्रयोजन, वरन आपकी प्रतिज्ञा टूटने पर मैं प्राणाधिका जानकीसेभी प्रयोजननहीं रखता । मेरीतो केवल यही प्रार्थनाहै कि आपके वचन

सत्य होजाँय ॥ ५८ ॥ मैं भांति२ के विचित्र वृक्षोंसे शोभायमान वनमें प्रवेश करके, पहाड, नदी और सरोवरोंको देख, और वहां कंद, मूल फल आदि भोजन करके सुखी रहूंगा। आप यहां विना संदेहके रहिये मेरी कुछ चिन्ता न कीजिये ॥ ५९ ॥ रामजीके इस भांति कहने उपरान्त राजा दशरथजी मनके दुःख और प्रबल शोकसे सताये जाकर व घब, डाकर रामचंद्रजीको हृदय से लगा मूर्च्छितहो पृथ्वीपर गिरगये । उस समय उनका सब शरीर चेष्टारहित होगया ॥ ६० ॥

देव्यःसमस्तारुरुदुःसमेतास्तांवर्जयित्वा
नरदेवपत्नीम् ॥ रुदन्सुमंत्रोपिजगाममू
र्छांहाहाकृतंतत्रबभूवसर्वम् ॥ ६१ ॥

उस समय कैकेयीके सिवाय और दूसरी सब महारानियें बड़े शब्दसे रोनेलगीं सब टहलनी दास दासियें " हाकैकेयी! यह तैंने क्या करा? " यह कहकर हाहाकार करनें लगीं । सुमंत्रजीभी सबको यह दशा देख रोते हुये मूर्च्छित होगये ॥ ६१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशः सर्गः ॥

ततोनिर्धूयसहसाशिरोनिःश्वस्यचासकृत् ॥
पाणिंपाणौविनिष्पिष्यदंतान्कटकटाय्यच ॥ १ ॥

तिसके पीछे कुछ विलम्ब पश्चात् सुमंत्रकी मूर्च्छा छूटी वह क्रोधसे अधीरहो वारंवार लम्बी २ श्वासे लेने लगे। वह अपने दाँतोंको किच-किचा रहेथे वह शिर पीट रहेथे और क्रोधके मारे दोनो हाथ मल रहे-थे ॥ १ ॥ उनकी दोनों आंखें लाल हो आईं मुख मंडल पीला पड़गया, वह बहुतही बुरे दुःख शोकसे संतापित हुये ॥ २ ॥ सुमंत्रजी मनमें महा-राज दशरथजीके मनकी वार्त्ता जानकर व सबसे अपना सब स्नेह त्याग-न कर वचन बाणसे मानों कैकेयीके हृदयको कँपाते हुये ॥ ३ ॥ बाण समान तीक्ष्ण वचनोंसे कैकेयीके सब सुकुमार स्थानोंको छेदन करते

सुमंत्रजी कैकेयीसे बोले ॥ ४ ॥ हे दुष्ट कैकेयी ! जब कि तूने चराचर महिमंडलके मालिक अपने स्वामी महाराज दशरथजी हीको छोड दिया ॥ ५ ॥ तब फिर संसार में ऐसा कोई कार्य नहींहै जिसको तुम न कर सको तुमसे जो नहो वह थोडाहै ? हम जानते हैं कि तुम अपने स्वामी की मारने वाली और अपने कुलकी नाश करने वाली हो ॥ ६ ॥ इन्द्रके समान किसीसे न जीते जाँय ऐसे अजेय पर्वतोंकी समान अचल गंभीरता में समुद्रकी तुल्य तुमने अपने कर्मके दोषसे ऐसे प्रतापी राजाकोभी चलायमान करदिया ॥ ७ ॥ देखो मैं तुम्हें फिरभी समझाताहूं कि तुम पृथ्वीनाथ राजा दशरथजीका अपमान मतकरो, अरी दुष्टे ! समझ रख कि करोड़ पुत्रोंके स्नेहसे अधिक स्नेह स्त्रियोंको पतिकी इच्छाके अनुसार चलनाहै, सो पुत्रको राज्य दिलानेके लिये स्वामीका निरादर करती है ॥ ८ ॥ देख राजाके बाद राज्याधिकार का मालिक अवस्थानुसार बड़ा बेटा ही होताहै यह रीत इक्ष्वाकुकुलमें सदासे होती आईहै, परन्तु तूतो महाराजके रहते ही वह पृथा लोप करके भरतको राज्य दिलाया चाहतीहै ॥९॥ अच्छी बातहै राजा भरतजी हों वही पृथ्वीका पालन करें परन्तु हम सब लोग तो वहीं जाँयगे जहां रामचन्द्रजी होंगे ॥ १० ॥ तुम जो बडेको छुडाकर छोटे को राज्य दिलवाया चाहतीहो ऐसा निन्दनीय कर्म करनेसे तुम्हारा राज्य कैसे किसी ब्राह्मणके बसने योग्य होगा॥११॥ मैं ठीकही ठीक कहताहूं कि जिस मार्गसे रामचन्द्र वनको जायँगे वही मार्ग सब साधु ब्राह्मण व हम सब लोगोंका अवलम्बनीय होगा ॥ १२ ॥ मैं तुमसे यह पूछताहूं कि जब आत्मीय बन्धु बान्धव गण व सब ब्राह्मण ही तुमको छोड कर चले जाँयगे तब तुम राज्य लेकर कौनसा सुख भोग करोगी॥१३॥तुम जो मर्यादा करकै रहित इस महानिन्दित कार्यके करने पर उतारू हुईहो सो मुझको बडा आश्चर्यहै कि तुम्हारे इस व्यवहारसे पृथ्वी क्यों नहीं फटकर टुकडे२ होजाती॥१४॥जबकि तुम रामचंद्रजीको वनमें भेजनेके लिये तैयार हुईहो फिर वशिष्ठादि ब्रह्मर्षि गण अग्नि समान भयंकर धिक्कारसे क्यों नहीं तुमको भस्म कर डालते ? ॥ १५ ॥ जोहो महाराजजी जो तुम्हारे मतके अनुकूल होगयेहैं हम नहीं जानते कि इसका क्या कठोर परिणाम होगा आश्चर्यहै। कुहाडीसे आमके

पेडको काटकर, कौन आदमी नीमकी सेवा करताहै? नीबके पेडको दूध दहीसे सींचिये पर क्या वह मीठा होगा ॥ १६ ॥ ठीकहै; जैसा तुम्हारी माताका स्वभावहै वैसाही तुम्हाराहै क्योंकि आदमी जो यह कहा करतेहैं कि "नीबके पेडसे सहद नहीं टपकता" यह बात कहीं मिथ्या थोडेही होसकतीहै ॥ १७ ॥ तुम्हारी माता जिस प्रकार पापकार्य में रतथीं सो उसके विषयमें जो कुछ हमने सुनाहै, वह मैं कहताहूं तुम सुनो;—पूर्वकालमें महातपवान किसी महर्षिजीनें तुम्हारे पिताको एक वर दान दियाथा ॥ १८ ॥ उसही वरके प्रभावसे तुम्हारे पिता सब जीवोंकी प्रगट अप्रगट सबही प्रकारकी वाणियोंका अर्थ ग्रहण कर लेतेथे। व इसही वरके प्रभावसे वह सब पशु पक्षियोंकी बोली समझतेथे ॥१९॥ एक समय तेजस्वी तुम्हारे पिता लेट रहेथे कि इतनेमें दिव्य कान्तिवाला एक जृम्भ पक्षी बोला राजा इस बोलीका मर्म समझकर बहुत हँसे॥२०॥ तुम्हारी माता तुम्हारे पिताको हँसता हुआ देखकर बहुतही क्रोधित हुई और उस हँसनेंका कारण पूछने लगीं हे राजन् ! तुम्हारे हँसनेंका क्या कारणहै बताओ यदि हे नृपाल तुम मुझको अपने हँसनेका कारण न बताओगे तो मैं अभी अपने आप अपनेको मार डालूंगी ॥ २१ ॥ तब राजाने कहाकि देवि ! यदिमैं हँसनेका कारण तुमको बताऊंगा तो अभी मेरी मृत्यु हो जायगी इसमें कुछ संशय नहींहै ! क्योंकि ऋषिने वर देती समय कह दियाथा कि जो किसीको उस बोलीका अर्थ समझाओगे तो तुम मर जाओगे ॥ २२ ॥ तुम्हारी माताने फिर तुम्हारे पितासे कहाकि तुम जीते रहो अथवा मरजाओ परन्तु हमें अपने हँसनेका कारण बताओ जो तुम मरभी जाओगे तो आगेको हमें देखकर ठट्ठातो न करोगे ॥ २३ ॥ प्यारी नारीने जब हठ की तब राजा उन्हीं महर्षिके पास गये जिन्होंने कि उनको वर दियाथा और उसने अपनी रानीका सब वृत्तांत कहा ॥ २४ ॥ तब वर देने वाले ऋषिने कहा कि रानी इस वास्ते मरती है तो मरजाने दीजिये, परन्तु आप इस बोलीका मर्म उसको न समझाइये यदि इसका वृत्तांत कह दोगे तो निश्चयही मर जाओगे क्योंकि मेरा वचन मृषा नहीं होता इससे उस रानीको आप कुछ दंड दीजिये अथवा निकाल दीजिये ॥ २५ ॥ उन ऋषिके ऐसे वचन सुनकर प्रसन्न मनसे तु-

म्हारे पिताजीने तुम्हारी माताको छोड दिया और आप कुबेरकी समान विहार करने लगे ॥ २६ ॥ रे कैकेयी! इस तरह तुमभी अपनी माताकी समान महाराजको निन्दनीय मार्गपर चलातीहो, हे पापरूपे! मोहसे ग्रसे हुये महाराजको तूने बुरे मार्गपर चलायाहै ॥ २७ ॥ "पुरुष अपने पिताका स्वभाव और स्त्रियें अपनी माका स्वभाव पातीहैं" यह जो कहावत संसारमें प्रसिद्धहै सो क्या मिथ्या थोडेही हो सकतीहै ॥ २८ ॥ मैं तुम्हें निवारण करताहूं कि तुम अपनी माताकी समान स्वभाववाली- मत बनो, और जो हमारे महाराज दशरथजी कहैं उसमें कोई बाधा मत दो मैं अधिक क्या कहूं तुम महाराजकी इच्छानुसार कार्य करके हमारी सबकी रक्षा करो ॥ २९ ॥ मैं फिरभी तुमसे कहताहूं कि पापकर्ममें पडके तुम सर्व लोकोंके पालन करनेवाले इन्द्रकी समान महाराजको पापके रस्तेमें मत चलाओ ऐसा करना तुमको उचित नहींहै ॥ ३० ॥ हे देवि ? राजीवलोचन श्रीमान् महाराज दशरथजी जो वर एक खेलहोके समान तुम को दे बैठेहैं; बहुत अच्छाहो कि यदि उन वरोंके अनुसार कार्य नहो देखो अबभी मान जाओ अभी कुछ नहीं बिगडाहै ॥ ३१ ॥ और विशेष करके रामचंद्रजी सब पुत्रोंसे बडेहैं सत्य प्रतिज्ञहैं, सब कार्यमें चतुरहैं अपने धर्मकी रक्षा करने वाले, और सब जीवोंका प्रतिपालन करने वालेहैं; अच्छा होगा यदि ऐसे बलवान् रामचंद्रकोही राज्यपदपै प्रतिष्ठित करदो ॥३२ ॥ हे देवि ! यदि रामचंद्रजी अपनी राज्य छोडकर वनको चलेगये तो जानलो कि सारे संसारमें तुम्हारा बडाही घोर अपयश फैल जायगा ॥३३॥ अतएव इस समय तुम सब मनका क्षोभ दूर करके कह दो कि रामचन्द्र राज्यभार लेलैं भली भांति समझलो कि रामसे अधिक और कोई तुम्हारा प्रियकार्य नहीं कर सकैगा ॥ ३४ ॥ रामचन्द्रजी राज्य पदपर प्रतिष्ठित होनेपर महावीर महाराज दशरथजी पहले पुरुषोंकी प्रथानुसार चौथे पन आजानेसे वनको चले जाँयगे ॥ ३५ ॥ सुमंत्रजीने हाथ जोडकर उस सभाके बीच इस प्रकारसे तीखे और शान्ति युक्त वचनोंसे कैकेयीको समझाया बुझाया, परन्तु कैकेयीने इन बातोंपर कुछभी ध्यान न दिया ॥ ३६ ॥

नैवसाक्षुभ्यतेदेवीनचस्मपरिदूयते ॥
नचास्यामुखवर्णस्यलक्ष्यतेविक्रियातदा ॥ ३७ ॥

न तो शान्त वचन सुनकर वह कुछ चलायमान हुई न तीक्ष्ण वचन सुनके उसको कुछ दुःख हुआ, अधिक तो क्या उस समय उसके मुखका रंगभी तो कुछ फीका नहीं पडा ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आदिकाव्ये अयोध्याकांडे पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशः सर्गः ॥

ततःसुमंत्रमैक्ष्वाकःपीडितोत्रप्रतिज्ञया ॥
सबाष्पमतिनिःश्वस्यजगादेदंपुनर्वचः ॥ १ ॥

जब राजा दशरथजीने देखा कि कैकेयी किसी प्रकारसे नहीं मानती तो अपनी प्रतिज्ञाके प्रभावसे दुःखित होकर वार २ ऊधे २ श्वास ले सुमंत्रसे बोले ॥ १ ॥ हे सूत ! तुम रामचंद्रजीके साथ चलनेके लिये रत्नोंसे पूर्ण चतुरंगनी सेनाको शीघ्र सजाओ ॥ २ ॥ जो कि सब वेश्या परायाचित्त मोहने वाली और बात बतानेमें बडी चतुर होतीहैं वहभी इस सैनाके साथ जांय बडे २ धनवान बनियेभी बहुत सारी रसद लेकर फौजके साथ जांय ॥ ३ ॥ जो रामचन्द्रजीके आश्रय करके पलतेहैं और जो कि सब पहलवान लोग परीक्षाके लिये रामचन्द्रजीसे कुस्ती लडा करतेहैं उनको बहुत सारा धन देकर रामचन्द्रजीके साथ करदो ॥ ४ ॥ सबसे श्रेष्ठ आयुध और छकडे सब रामचन्द्रजीके साथ भेजे जांय। और अधिक क्याकहूं जो व्याधे कि वनका मार्ग जाने हुयेहैं, वह और जो नगर वासी रामके साथ जाना चाहैं उन सबको रामचंद्रजीके साथ कर दीजिये ॥ ५ ॥ रामचंद्र वनमें रहकर मृगादिकोंका वध करके वनका शहद पीकर और वृंदानदीका दर्शनकर सुखीहो अयोध्यापुरीके वासको भूल जांयगे ॥ ६ ॥ वह हमारा धन धान्यादि जो कुछ कि खजानेमें है उस सबको सेवक लेकर रामचंद्रजीके साथ वनको जांय ॥ ७ ॥ प्राणप्यारे दुलारे रामचन्द्र वनमें जाकर जहां कहीं तीर्थ स्थान आवें वहां

ऋषि आदि महात्मा ओंके साथ मिलकर बहुत सारी दक्षिणा देकर यज्ञ करें करावें और परम सुखसे वहां वास करते रहें ॥ ८ ॥ अयोध्या पुरीमें जो कुछ कि सुख भोग करने की सामग्रीहै वह सभी रामचन्द्रके साथ भेज दीजाय. और पीछेसे आकर महाबाहु भरतजी अयोध्याका राज्य भार ग्रहण करें, सोभी तबतक जबतक कि रामचंद्र वनसे न लौटें ॥ ९॥ महाराज दशरथजीके ऐसा कहने पर कैकेयी बहुत भयभीत हुई, उसका मुँह डरके मारे सूख गया और बोल भी बन्द होगया ॥ १० ॥ वह व्याकुल और दुःखित होगई मुख सूख गया फिर राजाके सामने होकर इस प्रकारके वचन कहने लगी ॥ ११ ॥ जो इस पुरीसे सब धन और सम्पत्तिही रामचन्द्रके साथ चली जायगी तब फिर भरत इस सूने राज्यको लेकर क्या करेंगे ? जब कि मदिराका सारांश प्रथमही पीलिया जायगा तौ फिर रह क्या जाताहै ॥१२॥ जब कि लाज रहित कैकेयीने ऐसे निठुर कठोर वचन कहे तब राजा दशरथजीके नेत्र क्रोधसे लाल २ होगये, और कैकेयीसे बोले ॥ १३ ॥ हे दुष्टे ! रामचन्द्रको वन भेजने और भरतके राज्य दिलाने को जो तैंने कहा वह वरतो हमने वहन किया, सो वही कर । फिर अब मुझको और दुःख क्यों देतीहै तैंने रामचन्द्रके लिये वनवास मांगाथा तब इस बातका तो कुछ उल्लेख नहीं कियाथा कि उनके साथ कुछ धन इत्यादि न जाने पावें ॥ १४ ॥ राजा दशरथजीके इस प्रकार क्रोध युक्त वचन सुनकर कैकेयी को और भी दूना क्रोध हो आया और उसी समय राजासे गर्व सहित वचन बोली ॥ १५ ॥ महाराज तुम्हारे वंशमें राजा सगरने अपने बडे बेटे असमंजसको राज्य न देकर नगरसे निकाल दियाथा इस समय तुमभी वैसेही रामको राज्यसे निकाल कर वनको भेज दो ॥ १६ ॥ जब कैकेयीने ऐसा कहा तब महाराज दशरथजी उसको धिक्कार देने लगे, व वहां जितने नर नारी बैठेथे वह उस समय यह सब देख सुनकर बहुत ही लज्जित होगये ॥ १७ ॥ उसी समय सिद्धार्थ नामक एक वृद्ध वहां बैठाथा वह अति सत्यवादी था, जोकि राजा दशरथजीका प्रिय और मंत्रीथा वह कैकेयीसे बोला ॥ १८ ॥ हे देवि ! असमंजस बहुत ही दुष्टस्वभाववाला, और लोकोंका द्रोह करने वालाथा, वह खोटी मतवाला खेलही खेलमें प्रजाके बालकोंको पकड-

कर सरयूमें डुबा देता और उनको देखकर प्रसन्न होता ॥ १९ ॥ उस समय असमंजस का यह कुकर्म देखकर प्रजा बहुत ही असंतुष्ट हुई और राजा सगरसे आकर कहा कि आप हमें या अपने पुत्र असमंजसको राज्य में रखने की इच्छा करते हैं? ॥ २० ॥ तब राजाने कहा कि हे प्रजागण! तुम्हारे इस प्रकार भयभीत होने का क्या कारण है? राजाके ऐसे वचन सुनकर प्रजा बोली ॥ २१ ॥ कि हे महाराज! आपका पुत्र असमंजस हमारे बालकोंके साथ मार्गमें खेल करताहै और फिर उनको पकड़ सरयूके पानीमें फेंक देताहै जब वह डूबने लगते हैं तौ आप देखकर बड़ाही प्रसन्न होताहै ॥ २२ ॥ तब प्रजाका हित चाहनेवाले राजा सगरजीने प्रजाके ऊपर घोर अत्याचार हुआ जानकर उन प्रजागणोंके हितके लिये घोर अहितकारी अपने बेटेको परित्याग कर दिया ॥ २३ ॥ राजाकी आज्ञासे वह पापी अपनी स्त्रीके साथ, वस्त्र पहरा कर, सवारी पर बैठाकर जन्म भरके लिये देशसे निकाला गया ॥ २४ ॥ इस प्रकारसे वह पाप बुद्धि अपने कर्मके दोप और फलसे कंद रखनेकी पिटारी और कुदाल लेकर बडी कठिनाईसे पेट भरता हुआ देशसे निकाल कर चारों ओर पहाड किले कंदरा आदि देख २ कर फिरने लगा ॥ २५ ॥ हे देवि! धर्मात्मा महाराज सगरजीने इस कारणसे दुष्ट असमंजसको त्याग कर दियाथा, परंतु रामचन्द्रने तौ इस प्रकार का कोई अपराध नहीं किया कि जिससे उनको वनमें भेज दिया जाय ॥ २६ ॥ हम लोगोंमें से कभी किसीने रामचंद्रजीमें कोई दोष नहीं देखा, चंद्रमामें तो कलंक देखाभी जाताहै पर रामचन्द्रमें तौ पाप कछूभी नहीं पाया जाता ॥ २७ ॥ हे देवि! मैं तुमसे ही पूछताहूं तुमही बताओ कि राम में इस प्रकार का कोई दोष है जिससे कि वह वनको भेज दिये जांय देखाहो तो बता ॥ २८ ॥ नहीं तो सज्जन सुमार्गी दुष्टता रहित पुरुषको अकारण परित्याग करनेसे धर्मकी विरुद्धता होनेके कारण जो इन्द्रके समान तेजभीहो, तो वह तेजभी भस्म हो जाताहै ॥ २९ ॥ हे देवि! मैं इसी कारण तुमसे कहता हूं कि तुम रामचन्द्रजीकी श्री मत नष्टकरो अर्थात् उनसे राज्य छुडा भरतको मत दिलाओ यदि तुम कुछ बिना सोचे विचारे रामचंद्रजीको वनमें भेजही दोगीतो संसारमें तुम्हारी निन्दा सीमासे बाहर होगी ॥३०॥

मंत्री सिद्धार्थके ऐसे उदार वचन सुनकर महाराज दशरथजी धीमी वाणीसे शोक युक्त वचन कहकर कैकयीसे बोले ॥ २१ ॥ रे पापिनि! मैं समझ गया कि वृद्ध सिद्धार्थके अनुकूल वचन तेरे मनको न भाये, अपना निजका और मेरा हित क्याहै तू इसको कुछ भी नहीं जानती; साधु मार्गमें चलनेकी तेरी इच्छा नहीं है तू इस प्रकारके निन्दनीय नीच कार्यको ही भला समझीहै ॥ २२ ॥

अनुव्रजिष्याम्यहमद्यरामंराज्यंपरि
त्यज्यसुखंधनंच ॥ सर्वेचराज्ञाभरते
नचत्वंयथासुखंभुंक्ष्वचिरायराज्यम् ॥ २३ ॥

जोहो सोहो, मैं तो राज्य, धन, सम्पत्ति और सुख भोगको छोडकर रामचन्द्रके साथ वनको जाऊंगा; तू अपने पुत्र भरतके साथ सदाके लिये इस राज्यको पूजती रहिये ॥ २३ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० अ० पंडित ज्वाला प्रसाद मिश्र कृत भाषायां षट्त्रिंशः सर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशःसर्गः ॥

महामात्रवचःश्रुत्वारामोदशरथंतदा ॥
अभ्यभाषतवाक्यंतुविनयज्ञोविनीतवत् ॥ १ ॥

महा मंत्री सिद्धार्थके ऐसे वचन व राजाको व्याकुल देखकर विनय व नम्रताके वचनोंसे रामचन्द्रजीने पितासे कहा ॥ १ ॥ हे राजन्! जब कि मैं भोग सुखको छोड छाड वनमें वास करने जाताहूं तब मेरे साथ धन दौलत और शूर सामंत सेना आदिके जानेका क्या प्रयोजनहै ॥ २ ॥ जो मनुष्य कि श्रेष्ठ ब्राह्मणको हाथी दे डाले और अंबारीके कसनेकी रस्सी देते मोह करै अर्थात् न देतो वह बात उसको उचित नहीं है॥ ३ ॥ हे जगत्पति! मैं माता कैकेयीकी प्रसन्नताके अर्थ सब भरतहीको देताहूं मुझे सैना धन संपत्ति इत्यादि कुछभी नहीं चाहिये, अब हमारे लिये मुनियोंके पहरने योग्य वस्त्र और वल्कलादि जो चाहिये सो मँगाइये ॥४॥ हमको चौदह वर्षतक वनमें रहना पडेगा इस्से ऐसे वस्त्र आवें कि बीचमें फट फटा न जाँय कन्द मूल फल खोदनेके लिये एक खनित्री और

एक पिटारी भी चाहिये सो जल्दीसे मँगादीजाय जिस्से कि हम जल्दी वनको चलेजाँय ॥ ५ ॥ तब रामचंद्रजीके ऐसे वचन सुनकर कैकेयीने स्वयं जाकर उनको चीर वसन इत्यादिक लादिये और वहां वह सबके बीच और सबके सामनें यह बोली कि इन वस्त्रोंको पहर वनको जाओ ॥६॥ पुरुषोत्तम रामचंद्रजीने कैकेयीके दिये हुये वल्कल आदिकोंको पहर लिया और आप जो सूक्ष्म वस्त्र पहर रहेथे उनको उतार डाला॥७॥ जब रामचन्द्रजीने वल्कल आदिके वस्त्र पहिरे तब अनुज लक्ष्मणजीने भी पिताके सामनेही सुन्दर वस्त्र त्याग कर मुनिभेष धारण किया ॥ ८ ॥ रेशमीन वस्त्र पहरने वाली जानकीजी भी उन वस्त्रोंको जो उनके लिये केकेयी लाईथी ले और देखकर ऐसी भय भीत हुई;जैसे कि जालको देख मृगी कांप उठतीहै ॥ ९ ॥ कैकेयीके दिये हुये कुशके बने वस्त्र शुभ लक्षण युक्त जानकीले अति उदास और लाज युक्त हुई ॥ १० ॥ और आंखोंमेंसे आंसू भरकर धर्मकी जानने वाली, व धर्मकी देखने वाली, जनकनंदिनीजो गन्धर्व राजके समान अपने प्रिय पति रामचन्द्रजी से बोली ॥ ११ ॥ कि हे जीवनसर्वस्व ! वनवासी तपस्वी लोग किस प्रकारसे वस्त्र धारण किया करते हैं। इतना कहकर मोहित होगई क्योंकि जानकीजी क्या जानतीथी कि किस प्रकार वनके वस्त्र पहरे जातेहैं ॥ १२ ॥ यद्यपि दो चीर उन्होंने लिये सो एक गलेमें डालकर दूसरा हाथमें लेकर खडी रहगई क्योंकि वह उसका पहरना नहीं जानती थीं कि कहां पहरा जाय, इस कारण लाजसे शिर झुका खडी रह गई ॥ १३ ॥ धर्म धारियोंमें श्रेष्ठ रामचंद्रजीने जब श्रीजानकीजीको यह दशा देखी-तो जल्दीसे उनके निकट जाकर जो रेशमीन सारी सीताजी पहर रहीथीं उसकेही ऊपर चीरका वस्त्र पहराद्रिया ॥ १४ ॥ रामचंद्रजीको अपने हाथसे सीताजीके शरीरमें चीर वस्त्र पहराते देखकर रनवासकी स्त्रियें बहुतही रोदन करने लगीं जो कि किसी प्रकार नहीं थमताथा ॥ १५ ॥ वह परम तेजस्वी रामचंद्रजीसे कातर भावसे बोलीं कि हे वत्स ! तुम इन चिन्ता शील श्रेष्ठ जानकीजीको वनमें अपने साथ मत लेजाना॥ १६ ॥ तुम पिताका सत्य पालनेके लिये वनजानेको तैयार हुयेहो; सो यदि जानाही चाहतेहो, तो तुमही जाओ। और हमारी यह विनतीहै कि जब

तक तुम वनसे लौटकर यहां आओ तब तक हम सब सीताहीका मुख चंद्र दर्शन करके सुखीहोसकैंगी ॥ १७ ॥ हे पुत्र! रामचंद्र! तुम लक्ष्मणजीको साथ लेकर वन चले जाओ; परन्तु कल्याणी सीताजीको तपस्विनीकी नांई बनाकर वनवासी मतकरो ॥ १८ ॥ हे कमल लोचन! तुम्हें हम धार्मिक और सत्य प्रतिज्ञा करनेवाला जानतीहैं न हम ऐसी आशा कर सकतीहैं कि तुम हमारे कहनेसे वनको नजाओगे परन्तु एक प्रार्थना तुमसे करतीहैं कि सीता यहीं रहैं ॥ १९ ॥ अनन्तर रनवासकी स्त्रियोंकी ऐसी प्रार्थना सुनकर भी जानकीजीकी इस विषयमें सम्मति न जानकर रामचंद्रजीने तुलय शीलवाली सीताजीके चीर बन्धननहीं खोले बांध दिये ॥ २० ॥ तब कुलगुरु वशिष्ठजी सीताजीकी यह शोचनीय अवस्था देख,नेत्रों में जल भरकर उनको चीर धारण करनेमें निवारण करते हुये कैकेयीसे बोले ॥ २१ ॥ रे कुलमें कलंक लगाने वाली खोटी मत वाली कैकेयी! तू महाराज दशरथजीको धोखा देकर तेरी जहां तक कामनाथी, उस्से कहीं अधिक कार्य करा चुकी ॥ २२ ॥ रे खोटी शीलवाली? देवी जानकीको किसी तरह वनमें नहीं भेजा जायगा, यह गृहही पर रहकर रामचंद्रजीके राज सिंहासन पर अपना अधिकार करैंगी ॥ २३ ॥ सब शास्त्र पुराणोंमें लिखाहै कि स्त्री पतिका आधाअंग होतीहै तो वह भी पतिहीका रूप हुई बस सीताजी भी रामचंद्रजीकी अर्द्धाङ्गनी होनेसे उनको मूर्त्ति हुई अतएव यह अवश्य राज्यका पालन करैंगी ॥ २४ ॥ यदि जनकलली महाबली रामचन्द्रजीके साथ वनको चली तो जान लेना कि नगरके सब दूसरे लोगों सहित हम सब वहां चले जायँगे जहां रामचन्द्रजी चलेजांयगे ॥ २५ ॥ केवल हमही नहीं जाँयगे वरन रनवासके रक्षक और सब नौकर चाकर अपनी अपनी स्त्री पुत्रोंको व परिवार को सबहीके साथ इस राज्यको परित्यागकर रामके साथ चले जांयगे और दास दासी अपनी २ सामग्रीके साथ नगरभी चला जायगा ॥ २६ ॥ मैं निश्चयही कहताहूं कि रामचन्द्रजीके वनमें चले जानेपर भरत शत्रुघ्न चीर वस्त्र धारण करके अपने बडे भाईके साथ वनको चले जांयगे ॥ २७ ॥ तब यह पुरी सूनी हो जायगी केवल पेड ही पेड रह जायँगे तब तू पेडोंपर राज्य

किया करना, यहां तो संपूर्णतः वनही वन हो जांयगे उस समय प्रजा-गणोंकी अहितकारिणी होकर इस जन शून्य पुरीका इकली पालन करती रहना ॥२८॥ दुष्टे ! तू भली प्रकार जानले कि जहां श्रीरामचन्द्रका राज्य नहींहै वह किसी प्रकारसे राज्य कहा ही नहीं जा सकता और जहां-पर कि रामचंद्रजी रहैं वह वनभी हो तोभी राज्य कहा जा सकताहै॥ २९॥ मैं तुझसे अधिक क्या कहूं जब कि महाराज दशरथजी अप्रसन्नतासे यह पृथ्वी भरतको देतेहैं सो जो भरत महाराज दशरथजीके पुत्र होंगे तब तो इस राज्यको किसी प्रकारसे ग्रहण करैं हींगे नहीं और मैं येभी कहे देताहूं कि तेरे ऐसा कुकर्म करनेपर वह तेरे साथभी पुत्रवत् व्यवहार नहीं करैंगे ॥ ३० ॥ मैं भली भांति जानताहूं कि भरतजी पिताके वंशकी प्रथाको भली भांति जानतेहैं कि इस कुलमें बडेहीको राज्य मिलता आयाहै। यदि तू इस पृथ्वीसे आकाशको चली जाय तबभी भरत अपने वंशके विरुद्ध कोई आचरण नहीं करैंगे ॥ ३१ ॥ विचार करके देखनेसे जाना जाताहै कि तूने पुत्रके हितकी कामना करके उनको जो राज्य दिलाया सो तुमने यह पुत्रका हित नहीं किया वरन अहितही किया। मैं जानताहूं कि संसारमें ऐसा कोई मनुष्य नहींहै जो रामके प्रति अनुरागी नहो और उनके पीछे वनको न चला जाय ॥ ३२ ॥ हे कैकेयी ! तू वही देखेगी कि पशु, पक्षी, सर्प, मृग व औरभी सब जीव जन्तु रामके साथ वनको चले जांयगे; औरोंके जानेकी वार्त्ता तो छोड दो वृक्षभी चलनेके समय रामचन्द्रजी हीकी ओर झुकैंगे मानों चलनेको तैयारहैं॥३३॥ हे देवि ! तुम इस समय चीर वसन छुड़ाकर अपनी पुत्र वधू जानकीको अच्छे वस्त्राभूषण पहरनेको दो देखो सीताजीके शरीरमें चीर वसन अच्छे नहीं लगते अतएव तुम उनको यह वल्कल वसन मत दो यह कहकर वशिष्ठजी उन वस्त्रोंको निवारण करने लगे ॥ ३४ ॥ हे कैकेयी राज पुत्री जब कि तुमने केवल रामचन्द्रजीहीको वन भेजनेका वर मांगाहै तब सीताजी वसन भूषणसे विभूषितहो वनमें अपने स्वामीकी सेवा करने जांय तो तुम्हारी हानि क्याहै ॥ ३५ ॥ मैं कहताहूं जब कि तुमने सीताको वनमें भेजनेका वरही नहीं मांगा तब वह अच्छी सवारीपर चढकर

दास दासियों सहित अनेक प्रकारके भूषण वसन विभूषित हो रामचन्द्र-
के साथ वनको जांयगी ॥ ३६ ॥

तस्मिंस्तथाजल्पतिविप्रमुख्येगुरौनृपस्याप्र
तिमप्रभावे ॥ नैवस्मसीताविनिवृत्तभावाप्रि
यस्यभर्तुःप्रतिकारकामा ॥ ३७ ॥

यद्यपि अमित प्रभाव वाले अग्नि समान विप्रवर वशिष्ठजीने जानकीजी
के चीर धारण करनेके संबंधमें इस प्रकार कहा परन्तु तापसी भावसे
रामचंद्रके साथ जानेकी इच्छा किये जानकीजीने किसी प्रकार चीर धा-
रण करनेकी वासना परित्याग नहीं की ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामा०
आ० अ० सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशः सर्गः ॥

तस्यांचीरंवसानायांनाथवत्यामनाथवत् ॥
प्रचुक्रोशजनःसर्वोधिक्त्वांदशरथंत्विति ॥ १ ॥

सनाथा सीताजी चीर वस्त्र धारण करके जब अनाथकी नाईं वन जा-
नेको तैयार हुईं उस समय जितने स्त्री पुरुष वहांथे चिल्लाये और महा-
राज दशरथजीको धिक्कार देने लगे ॥ १ ॥ उनका ऐसा हाहाकार सुन-
कर महाराज दशरथजी बहुतही दुःखित हुये तब उन्होंने समझ लिया
कि अब धर्म व यश न रहैगा न अब हम जी ही सकैंगे उस समय उनकी
नासिकासे क्षण २ में गहरे श्वास आने लगे; फिर राजा कैकेयीसे बो-
ले ॥ २ ॥ बाला अवस्थाको प्राप्त दूसरे सुकुमारी इस कारण सदा सुखही
भोगनेके योग्य। इस कारणसे इनका वन जाना किसी भांति उचित न-
हींहै यह वार्त्ता गुरुजीनेभी ठीक ठीक कहीहै ॥ ३ ॥ आश्चर्य तो इस बा-
तका है कि श्रेष्ठ राजाकी पुत्री सीताजीने कभी किसीका बुरा नहीं चा-
हा सो इनकोभी वनवास करनेवाली तपस्वनीकी समान चीर पहरने पडे?
अहो! किस प्रकारसे इन चीरोंका पहरना होताहै यह न जानकर पुत्री
मोहितसी होगईथी ॥ ४ ॥ इस समय पुत्रवधू सीता कुशके चीर वसन

त्याग करे और मन इच्छा पूर्वक अनेक प्रकारके गहने धन रत्नादि ले अपने पतिके साथ जांय मैं स्मरण करके कहताहूं मैंने यह प्रतिज्ञा या वर किसीको नहीं दिया कि रामचन्द्रजीकी समान इनकोभी वनमें जा- ना होगा ॥ ५ ॥ हा मैंने मृतक प्राय होकर रामके वनवास जानेका वर कैकेयीको दिया तो है । परन्तु बांसका फूल जिस प्रकार निकलतेही बांसको सुखा देताहै वैसेही तेरी अज्ञानताके हेतु करके यह प्रवृत्ति मेरे नाश करनेका कारण होगी ॥६॥ माना कि रामचन्द्रने तेरा कुछ अनभल करही दिया किन्तु हे पापीयसी ! बता तो सही श्रेष्ठ जानकीजीनें तेरा क्या बिगाड कियाहै जो तू इनको यह चीर कुशके वसन पहरातीहै ॥७॥ मृगीके समान खिले नेत्र वाली कोमल शील स्वभाव वाली व बु- द्धिवान जनक कुमारीने तेरा कब कौन अपकार कियाहै ॥ ८ ॥ तुमने जो रामचंद्रका वनवास मांगकर जो अपना भला चाहाहै वही तुम्हारे लिये बहुतहै इसके पश्चात् इन और सब महा पातकोंका अनुष्ठा- न करनेसे तुझको क्या फल मिलेंगे । एक रामही को वन भेजनेसे तुझको हजारों वर्ष तक नरक भोगना पडेगा ॥ ९ ॥ देवी ! मेरा तो यही विश्वासथा कि तुम रामचंद्रजीके अभिषेकार्थ मेरे पास आईहो सो तुमने इसके बदले रामके वन भेजनेका वर मांगा, सो मुझको धोखे में पड तुम्हारी बात माननी पडी ॥ १० ॥ सो अब देखताहूं कि तेरी दुराशा और भी बढ गईहै। क्या आश्चर्यहै! कि तू निरपराधा जनकदुलारी जानकी तकको कुशके चीर वस्त्र पहरा कर वनमें भेजनेकी इच्छा करतीहै। जो कुछ हो निश्चय तुझे इस अपराधके कारण नरक में जाना पडेगा ॥ ११ ॥ सीताजीके संबंधमें इस प्रकार वार्त्ता कहने पर रामचंद्रजी शिर झुकाये मौन साधे हुये अपने पिता दशरथजीसे बोले ❋ ॥ १२ ॥ हे धार्मिक पिताजी हमारी माता यशवान कौशल्याजी बहुतही बूढी गम्भीर स्वभाव वाली कुछ आपकी निन्दा नहीं करती ॥ १३ ॥ इस कारण अब हमारा वनजाना श्रवण करकें और चले जाने में शोक सा-

❋ किसी ग्रंथमें यह अधिक पाठ देखा जाताहै" इतीव राजा विलपन्महात्मा शोकस्यनान्तं स ददर्श किञ्चित् । भृशातुरत्वाच्च पपात भूमौ तेनैव पुत्र व्यसनेन मग्नः" ।

गरमें डूबती हुई कि जिन्होंनें इससे पूर्व ऐसा दुःख नही देखाथा उनका आप अधिक स्नेह सहित सन्मान किया करना ॥ १४ ॥

इमांमहेंद्रोपमजातगर्धिनींतथाविधातुंजननीं ममार्हसि ॥ यथावनस्थेमयिशोककर्शितान जीवितंन्यस्ययमक्षयंव्रजेत् ॥ १५ ॥

हे इन्द्रकी समान महाराज! तुम्हारे समीप रहनेवाली कौशल्या हमारी माता आंखोंकी ओटमें हमको नहीं रखना चाहती अब आपसे यही प्रार्थनाहै कि मेरे वन चलेजाने पर मेरे वियोगसे कहीं माता प्राण न त्यागदे इस कारण इनको सन्मानसे रखना ॥ १५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे आदिकाव्ये अयोध्याकांडे अष्टत्रिंशःसर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशःसर्गः॥

रामस्यतुवचःश्रुत्वामुनिवेषधरंचतम् ॥ समीक्ष्यसहभार्याभीराजाविगतचेतनः ॥ १ ॥

महाराज दशरथजी रामचंद्रजीके मुखसे इस प्रकारकी वार्त्ता श्रवण करके और उनको साक्षात् मुनि भेष धारण किये देख अपनी सब स्त्रियोंके सहित मूर्च्छित होगये ॥ १ ॥ उस समय उनके दुःखका वेग यहां तक बढ गयाथा कि रामकी ओर राजा दृष्टि उठाकर कुछ देखही नहीं सके और जो बडी कठिनाई से देखा तो कुछ बोल नहीं सके ॥ २ ॥ तब महाबाहु दुःखित मनसे रामचंद्रजीहीकी चिन्ता करते २ एक मुहूर्त तक अचेत पडे रहे; तदनन्तर चैतन्यहो रामको स्मरणकर अनेक प्रकारके विलाप कलाप करने लगे ॥ ३ ॥ राजा दशरथजी कहने लगे कि मुझे ऐसा जान पडताहै कि पहले जन्ममें जानें मैंने कितनी गायोंसे उनके बछडे छुडाये होंगे, और जाने कितने जीवोंकी हत्या की होंगी जिससे कि अब मेरी यह दुर्दशा होरहीहै ॥ ४ ॥ मैं जानताहूं कि विना समय आये जीवकी मृत्यु नहीं होती यदि ऐसा होता तो कैकेयीका दिया हुआ दुःख मेरी मौतका कारण होजाता ॥ ५ ॥ और मृत्यु होनेसे मैं

अग्निकी समान दिपते हुये रेशमीन महीन वस्त्र छोडे तपस्वियोंके व-सन पहरे आगे खडे अपने पुत्रको न देखता ॥ ६ ॥ इस समय मुझे भली भांति सूझपडी कि अपना मतलब साधन करने वाली इकलखो-री कैकेयीसेही सर्व साधारणोंको यह कष्ट पाना पडा ॥ ७ ॥ जब रा-जा यह वार्त्ता कह चुके तो उनके दोनों नेत्रोंसे आंसुओंकी धारा निक-लने लगी उन्होंने रामचंद्रजीसे कुछ कहने अर्थ जैसेही " राम " यह श-ब्द कहा, वैसेही उनका गला रुक गया और वह कुछ नहीं कहसके ॥८॥ तदनन्तर एक मुहूर्त कालतक मनमें शोकका वेग धारण कर रुदन करते हुये दीन वचनसे सुमंत्रसे कहते हुये ॥ ९ ॥ हे सुमंत्र ! सवारीके जुतने योग्य अच्छे घोडे जोतकर यहां एक रथलेआओ और उसमें बैठाल कर रामचंद्रजीको इस देशके बाहर पहुँचावो ॥ १० ॥ देखो शास्त्रोंमें गुणवानोंके गुणका यही फल लिखाहै कि पुत्र माता पिताकी आ-ज्ञा मानें सो आज देखलो कि अपने माता पिताको आज्ञा मान गुणवान साधु स्वभाव रामचंद्रजी वनको जाते हैं ॥ ११ ॥ राजाकी ऐसी आज्ञा सुन सुमंत्रजी शीघ्र चलकर सुन्दर घोडे जोत सब तरहसे सजा धजा कर एक रथ ले आये ॥ १२ ॥ और हाथ जोड परमोदार राजकुमार श्रीरामचंद्रजीसे कहाकि अच्छे घोडे जुते हुयेहैं जिसमें, ऐसा रथ आप-के लिये तैयारहै ॥ १३ ॥ इसके पीछे महाराज दशरथजीनें धनाध्यक्ष अर्थात् खजाञ्चीको बुलाया, जोकि सब धनागार और तोफे खानेकी वस्तुओंको जानताथा कि कौन वस्तु कहां धरीहै जब वह आया तब महाराज दशरथजीने उससे कहा ॥ १४ ॥ बडे २ मूल्यवान कपडे और सबसे अच्छे गहने जोकि चौदह वर्ष तक वनमें रहती हुई जानकी के लिये पूरे पडें शीघ्र जाकर ले आओ ॥ १५ ॥ राजाकी आज्ञा पा-तेही खजाञ्चो कोषागारमें गया और राजानें जिन २ पदार्थोंको कहाथा उन सबको लेकर शीघ्रतासे आनकर सीताजीको देदिया ॥ १६ ॥ अयोनिजा जानकीजी उन सब श्रेष्ठ और चित्र विचित्रके आभूषणोंको धारण करके बहुतही शोभा पाने लगीं ॥ १७ ॥ प्रातःकालमें उदय हो-ते हुए सूर्यकी किरणोंकी शोभासे जिस प्रकार गगन मंडल रंग जाकर शोभायमान होताहै वैसेही जानकीके गहनोंकी चमकके साथ उनकी

कमनीय कान्तिनें उस गृहको शोभित किया ॥ १८ ॥ जबकि रामचंद्रजी और सीताजी खडीथीं तब उस समय देवी कौशल्याजीनें अपनी अच्छे आचरण करने वाली पुत्र वधू जानकीजीको छातीसे चिपटा लिया और उनका शिर सूंघकर कहा ॥ १९ ॥ जो स्त्री परिवारमेंभी चाहे सबको प्यारीहो और विपदके समय वह स्वामी सेवासे मन हटाले तो वह स्त्री त्रिलोकी असती कहकर विख्यात होतीहै ॥ २० ॥ वास्तवमें असतीस्त्रियोंका स्वभावही इस प्रकारका होताहै कि वह जबतक उनका स्वामी सुखसे रहे और उसके पास धन दौलत रहै तब तक तो वह सुखसे प्रसन्नता सहित रहतींहै। परन्तु जब कोई विपत्ति आनकर पडी कि उन्होंने अपने स्वामीके दोष कहने आरंभकिये दोष कहते फिरना तो एक साधारण बातहै वह स्त्रियें तो विपत्ति कालमें अपने स्वामीका त्याग तक करदेतीहैं॥२१॥अधिक क्या कहूं असत्य कहनेकी तो उनको आदत होजातीहै और वह दुर्गम स्थानोंमेंभो चली जाया करतीहैं वसब प्रकारके विकार उनमें भरे रहतेहैं और उनके मन पाप प्रवृत्तिके वश होजातेहैं और वह सैकडों भांतिके रूप लातीहैं और तनक देरमें प्रेम छोड देतीहैं और वह सदा स्वामीसे अनखाईसी रहतीहैं ॥ २२ ॥ वह अपने कुलके ओरको नहीं देखतीं, न वह किसीका भलामानें, धर्म और दान ज्ञानको भूल जातीहैं, यदि उनका दोष उनको दिखाभी दिया जाय, तो उसको मानती नहीहैं उनका स्वराय चित हो जातेहैं वे पूर्वोक्त धर्मादिकोंको ग्रहण नहीं करतीं असत्यमें मन लगाये रहतीहैं ॥ २३ ॥ परन्तु जिनका चरित्र पवित्रहै जो दिनरात सत्यही बोला करतीहैं, गुरुजीका उपदेश मानने में जो चित्त लगातीहैं जो कुलकी मर्यादा रक्षा करनेके लिये यत्नवान रहतीहैं. वही सब पतिव्रता स्त्रियें अपने पतिको पुण्य साधन करनेका मार्ग जनातीहैं और पतिहीके कहनेमें रहतीहैं स्त्रियोंकी पतिही गतिहै ॥ २४ ॥ सो हे वहू ! मैं तुमसे कहतीहूं कि इस समय मेरे पुत्र रामचन्द्र वनको जातेहैं अतएव ऐसे समय चाहें तो यह धनी हों और चाहें निर्धनीहों परन्तु तुम देवताकी समान अपने स्वामीका कभी अनादर मत करना ॥ २५ ॥ तब जानकीजी धर्म अर्थ युक्त कौशल्याजीके वचन सुनकर आगे बढकर खडी हो आंसूभर हाथ जोडकर उनसे बोली॥२६॥

आर्ये! आपने मुझे जो आज्ञाकीहै मैं अवश्यही उसको मानूंगी स्वामीके लिये स्त्रियोंको जो कुछ करना उचित है वह मैं सब जानतीहूं और मैंने माता पिता आदि गुरु जनोंके मुखसे यह उपदेश सुनेभी हैं ॥ २७ ॥ आपसे अधिक क्या कहूं आप मुझे उन झूंठी दुष्ट स्त्रियोंके समान मत समझिये, मैं कहतीहूं कि जिस प्रकार चंद्रमाकी किरणें चन्द्रमाको छोडकर कहीं नहीं जाती वैसेही मैं किसी प्रकार पतिव्रत धर्मसे बाहर नहीं होसकती ॥ २८ ॥ जिस प्रकार तारके विना वीणा नहीं बज सकती और विना पहियेके रथ नहीं चल सकता, वैसेही शत पुत्रोंकी माँ होकरभी स्वामीहीन स्त्रीको सुख होनेवाला नहीं ॥ २९ ॥ यह बात ठीकहै कि माता पिता और पुत्र अपने वित्तहीके अनुसार वस्तु या सुख दे सकतेहैं; परन्तु स्वामीसे जो जो सुख व पदार्थ स्त्रीको प्राप्त होतेहैं वहतो अनगिन्तहैं, अतएव ऐसे स्वामीको कौन स्त्री न पूजेगी अर्थात् उसका आदर सत्कार न करेगी ॥ ३० ॥ हे आर्ये! स्वामीकी सेवा करनाही स्त्रियोंका परम धर्महै, मैं सदाही इनकी आज्ञामें रहूंगी, न कभी इनका अनादर करूंगी मैं भली प्रकार जानतीहूं कि पतिही हमारे देवताहैं इस कारण मुझे आप और स्त्रियोंकी समान न समझिये ॥ ३१ ॥ सीताजीके मुखसे इस भांतिकी मनोहर वार्त्ता श्रवणकर मारे हर्ष व विषादके कौशल्याजी रोने लगीं ॥ ३२ ॥ तब उस समय धर्मात्मा रामचन्द्रजी सब माताओंके बीचमें बैठी हुई सबके पूजनें योग्य अपनी माता कौशल्याजीको देखकर उनसे हाथ जोड बोले ॥ ३३ ॥ हे जननि! तुम मेरे चले जाने पर शोकार्त्त होकर पिताजीसे कुछ न कहना, थोडेही दिनके बीचमें मेरे वनमें रहनेका समय पूरा हो जायगा ॥ ३४ ॥ तुम मेरा चौदह वर्षका वनवास, पलक मारतेहुये चौदह घडीकी समान देखोगी । मैं जानकी और लक्ष्मणके सहित राजधानीमें आगया ऐसा आप सोते हुये जागते की समान देखेंगी ॥ ३५ ॥ अपनी मातासे इस प्रकार कहकर और जो ३५० स्त्रियें महाराज दशरथजीके थीं, सो वेभी सब माताहीथीं उनकी ओर देखा, और उन सबनेभी राजकुमार रामचन्द्रजीकी ओर भली भांति निहारा ॥ ३६ ॥ वहभी सब माता कौशल्याजीहीकी समान दुःख पारहीथीं इस कारण हाथ जोड धर्म युक्त वचन उनसे रामचन्द्रजी

बोले ॥ ३७ ॥ कि हे माताओ ! एक साथ रहनेके कारण या भ्रम अथवा अज्ञानतासे मैंने कभी कोई कठोर व्यवहार वा कठोर वचन आपको कहाहो तो आप सब उस अपराधको क्षमाकर दीजिये ॥ ३८ ॥ रामचंद्रजीके मुखसे ऐसे धर्म युक्त वचन सुनकर सब महारानियें शोकसे व्याकुल होगईं ॥ ३९॥ क्रौञ्च पक्षीकी स्त्रियोंके विलापसे जिस प्रकारका शब्द होताहै रामचंद्रके वचन सुनकर राजाकी सब रानियोंका हाहाकार करके विलाप करनाभी वैसेही कठिन भावसे उच्चारित होने लगा ॥४०॥

मुरजपणवमेघघोषवद्दशरथवेश्मबभूवयत्पु
रा ॥ विलपितपरिदेवनाकुलंव्यसनगतंत
दभूत्सुदुःखितम् ॥ ४१ ॥

बडा आश्चर्यहै ! कि एक समय जो सब गृह दशरथजीके मृदङ्ग और ढोल इत्यादि मेघकी समान बाजोंके बजनेसे शब्दायमान रहतेथे, इस समय वही सब घर रानियोंके करुणा सहित आर्त्त नाद और परितापके शोरसे छागये ॥ ४१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥ ३९ ॥

चत्वारिंशः सर्गः ॥

अथरामश्चसीताचलक्ष्मणश्चकृतांजलिः ॥
उपसंगृह्यराजानंचक्रुर्दीनाःप्रदक्षिणम् ॥ १ ॥

अनन्तर रामचंद्रजीने सीता और लक्ष्मणजीके सहित दीन भावसे हाथ जोड पिता दशरथजीके चरणोंमें प्रणाम किया और उनकी प्रदक्षिणा करने लगे ॥ १॥ फिर पिताजीसे विदा लेकर सह धर्मणी सीता सहित धर्मात्मा रामचंद्रजीने शोकसे व्याकुलहो माता कौशल्याजीके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ २ ॥ रामचंद्रजीके प्रणाम कर चुकनेपर पहले लक्ष्मणजीने कौशल्याजीके चरणोंमें प्रणाम किया । फिर अपनी माता सुमित्राजीके चरणोंमें जाय गिरे । और तिसके पीछे और माताओंके चरणोंकी वंदना करते हुये लक्ष्मणजीको देख सुमित्राजी रोने लगीं और महाबाहु

लक्ष्मणजीका शिर सूंघ उनका हित करनेके लिये बोलीं ॥३॥४॥ हे वत्स यद्यपि तुम सब सुहृद् जनोंके बहुतही प्यारेहो, तथापि तुम्हारे बडे भ्राता रामचंद्र वनको जातेहैं, तब तुमको सावधानीसे उनकी सेवा करना प्रमाद न करना और उनके साथ वन जाना तुमको उचितहै ॥ ५ ॥ हे अनघ ! रामचंद्रके ऊपर दुःसमयहो, वा सुसमयहो. चाहे वह ऐश्वर्य सहित या विना ऐश्वर्य के हों पर जान रक्खोकि रामही तुम्हारे एक मात्र गतिहैं तुम्हें अधिक क्या समझाऊं बडे भाईके वशमें रहनाही छोटे भाईको उचितहै और यही सनातन धर्महै ॥ ६ ॥ विशेष करके ऐसा कार्य करना तो इस वंशको पुरानी रीतहै अधिक कहनेका क्या प्रयोजनहै; दान, यज्ञानुष्ठान और रणभूमिमें प्राण त्याग कर देना इत्यादि यह सब कार्य इस वंशमें परम्परासे चले आतेहैं और यही इस वंशको करने उचित हैं ॥ ७ ॥ सुमित्रा लक्ष्मणजीको इस भांतिसे उपदेश देकर उनको रामचंद्रजीका अतिशय प्रिय जान वारंवार कहने लगीं कि हे पुत्र विलंब न करके जलदी रामके साथ वनको जाओ ॥ ८ ॥ हे तात ! तुम इस समय रामचंद्रजीको तो अपने पिता दशरथ जानों और जानकीको माता सुमित्रा करके समझो, और जिस वनमें बसो उसे अयोध्यापुरी मानों। और स्वच्छन्दतासे वन जाओ ॥ ९ ॥ तब विनयके जानने वाले सुमंत्रजी जिस प्रकार मातलि इन्द्रसे कहैं वैसेही हाथ जोड विनय वचन कहते हुये श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ १० ॥ हे महायशवान राजकुमार ! रथ तैयार है आप अब उसमें बैठ जाइये, आप जिस स्थान पर कहेंगे मैं उसी जगह पर आपको ले जाऊंगा॥११॥देवी कैकेयीजी आपको चौदह वर्षके लिये वनवासी कर चुकीहैं और राजाकोभी यही अभीष्टहै अतएव आजसे उन चौदह वर्षोंका आरंभ किया जाताहै ॥ १२ ॥ उस समय सुन्दर मुख वाली जनकनंदिनी जानकीजी प्रफुल्ल मनसे अनेक प्रकारके वस्त्राभूषणोंसे भूषित होकर सबसे पहले सूर्यकी समान उस रथपै चढीं ॥ १३ ॥ जानकीजीके श्वशुर महाराज दशरथने चौदह वर्षके वास्ते जो उनको गहने आदिक दियेथे वह सब रथपर रक्खे गये ॥ १४ ॥ इसी प्रकार रामचंद्र व लक्ष्मण दोनों भाइयोंको सब भांतिके कवच अस्त्र, शस्त्र और कुदाल पिटारी जो कुछ दशरथजीनें दिये वह दोनों भाइयोंने सब ले लि-

ये ॥ १५ ॥ तदनन्तर रामचन्द्र व लक्ष्मणजी, अस्त्र, कवच, वखतर और चमडेसे मढी पिटारी आदि रथमें रख आपभी उस सोनेके बने हुये रथपर शीघ्रतासे चढे ॥ १६ ॥ जब रामचन्द्र व लक्ष्मण और सीताजी यही तीनों जन रथपर सवार होगये तब वायुके समान वेगवान घोडे सुमंत्रजीने हांके ॥ १७ ॥ जब कि महावन की ओर बहुत वर्षोंके निमित्त रथ चलता हुआ। उस समय नगरके वासी, सेनाके मनुष्य और जितनें भर अयोध्यामें रहने वाले मनुष्यथे सभी मूर्च्छित होगये ॥ १८ ॥ चारों ओरही हाहाकार होरहाथा हाथी सब क्रोधमें भरकर इधर उधर अनिवाहित कूदने फांदने लगे घोडे हींसनें लगे सब जगहही भयानक कोलाहल होने लगा ॥ १९ ॥ नगरके बालक, वृद्ध, वनिता सबही अतिशय कातर हुये, जैसे कि गर्मीके तापसे तपा हुआ मनुष्य जल देखकर उसकी ओर बढताहै वैसेही उस समय अयोध्याके सब स्त्री, पुरुष रामचन्द्रजीके पीछे२दौडे ॥२०॥ कोई २ रथके आगे व कोई २ पीछे बगलमें लिपट गये और रोकर एक स्वरसे सुमंत्रजीसे कहने लगे॥२१॥कि हे सुमंत्रजी तुम घोडेकी राशि थामकर उनको धीरे २ चलाओ हमारी इच्छा रामचन्द्रजीका मुखचंद्र देखनेकीहै क्योंकि फिर बहुत दिनोंतक इस मुखका दर्शन न होगा ॥ २२ ॥ हम सब लोगोंके विनारिस्ते रामचन्द्रजीकी माताका हिया लोहेका बना हुआहै, यदि यह न होता तो ऐसे सुकुमार रामचन्द्रजीके वन जानेके समय वह हिया जिया क्यों नहीं फटा? ॥ २३ ॥ अहो धर्मपरायण सीता देवी परछाईं की समान रामचन्द्रजीके संग वनको चलकर कृतकार्य हुई हैं। सूर्यकी प्रभा जिस प्रकार सुमेरु पर्वतको नहीं छोडती वैसेही इन्होंने किसी प्रकार रामचंद्रजीका साथ नहीं छोडा ॥ २४ ॥ अहो! लक्ष्मणका भी जन्म सार्थकहै जिन्होंने देव तुल्य सत्यवादी अपने भ्राताको न छोड करकै उनकी सेवा का भार ग्रहण किया है और उनहीके संग वनको जातेहैं ॥ २५ ॥ हे लक्ष्मण! तुमसे अधिक क्या कहैं तुमने जो रामचंद्रजीके साथ वन जानें में स्थिर मति कीहै सो यह तुम्हारी बुद्धि प्रशंसा करनेके योग्य है; तुमने जिस मार्गका अवलम्बन कियाहै, वास्तवमें उससे तुम्हारी उन्नति और स्वर्गकी प्राप्ति होगी ॥ २६ ॥ सबही यह वार्त्ता कहते २ रोने लगे, और सबही अ-

नुरागके मारे रामचंद्रजीके पीछे२ दौड यात्राके समय बहुतेरा अमंगलके डरसे आंसु ओंको रोका पर आंसु ओंको रोक न सके॥ २७॥ इस ओर महाराज दशरथजीभी सब स्त्रियोंके सहित रुदन करते हुये दीनभावसे पैदलही रामचंद्रजीके देखनेको दौडे, सबही शोकसे व्याकुल और घबडाये हुयेसे हो रहेथे सबहीके मनमें रामचन्द्रजीके दर्शनकी लालसा लग रहीथी ॥ २८ ॥ हाथीको संकलोंसे बँधा हुआ देखकर हथिनी जिस प्रकार व्याकुल हुआ करतीहै वैसेहो आगे केवल स्त्रियोंका अति जोरसे रोना सुनाई आने लगा ॥ २९ ॥ उस समय रामचन्द्रके पिता राजा दशरथजी ऐसे जान पडतेथे मानों शोककी तसवीरहैं राजा श्रीमान् थे परन्तु उस समय शोभित न हुये, राहु करके ग्रसे हुये चंद्रमाकी समान उस समय उन पर उदासीनता छा रहीथी ॥ ३० ॥ अचिन्त्यात्मा साक्षात् ईश्वर श्रीमान् दशरथपुत्र श्रीरामचंद्रजी शीघ्रतासे रथ चलानेके लिये सुमंत्रको शीघ्रता कराने लगे ॥ ३१ ॥ अब सुमंत्रजी बडे संकट में पडे; एक तरफतो " जल्दी रथ चलाओ „ ऐसी रामकी आज्ञा, दूसरी ओर रथको धीरे २ चलाओ " यह सब मनुष्यों की विनती, अतएव एकही समयमें दोनों कार्योंका पूरा करना सुमंत्रके लिये कठिन हुआ ॥३२॥ रामचन्द्रजीके वन जानेके समय रथके पहियोंसे उडी हुई धूलने जो पृथ्वीको ढक लियाथा, अब इस समय पुरवासी लोगोंकी अश्रुधारासे भीग कर वह धूल कीच होगई ॥ ३३ ॥ जिस समय रामचन्द्रजी वनको चले उस समय अयोध्यापुरी रोनेंके शब्दसे और आंसुओंके शब्दसे परिपूर्ण होगई सबही हाहा कारका घोर शोर करते हुये अचेत होगये। इस प्रकार उस समय सबही पर बहुत कष्ट पडा ॥ ३४ ॥ पुरनारियोंके नेत्रोंसे बराबर आंसुओंकी धारा वह रहीथी ! जैसे कि मछलियोंके खलबला देनेसे जल उछलकर कमलके पत्तोंपरहो अलग गिरनेंके समय वहताहै इसी भांति सब स्त्रियें फूटर२कर रो रहींथीं ॥ ३५ ॥ वृद्ध महाराज दशरथजीके सब मनुष्योंकी बराबर शोचनीय अवस्था, और रामचंद्रजीके लिये अपनीही समान सबको व्याकुल देख जड कटे हुये पेडकी समान दुःखितहो पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ३६ ॥ इसके पश्चात् रामचंद्रजीके रथके पीछे जो सब मनुष्यथे वह सब महाराज दशरथजी की

यह दशा देख हाहाकार कर उठे ॥ ३७ ॥ राजाको सब रनवास की स्त्रियों सहित दुःखित और व्याकुल देखकर, कोई कोई "हा राम !" और कोई २ "हा कौशल्या" ऐसा कह कर शोक प्रकाश करने लगे ॥३८॥ अनन्तर दशरथपुत्र रामचन्द्रजीने पीछेको दृष्टि फेरकर देखा कि पिता और माता मेरे पीछे २ पैदलही चले आतेहैं और वह शोकसे व्याकुल और विषादसे ग्रसितहो रहेहैं ॥ ३९ ॥ जंजीरसे बंधा हुआ घोडीका बच्चा जिस प्रकार अपनी माताको देखने नहीं पाता वैसेही रामचन्द्रजी सत्यके बंधनसे बंध रहेथे इसकारण क्या करैं माता पिताकी यह अवस्था देखकर भी फिर उधरसे दृष्टि फेरली ॥ ४० ॥ सवारियों में चलने फिरने का अभ्यास जिनको हो रहाहै जोकि सुखके सिवाय दुःख क्या पदार्थ है इसके मर्मकोभी नहीं जानते उनको पैदल चले आते देखकर रामचन्द्रजीने सुमंत्रसे कहाकि रथ जलदी चलाओ ॥ ४१ ॥ वह माता पिताका दुःख देखने में समर्थ न हुये अंकुश लगानेसे मत वाले हाथीकी दशा जिस प्रकार होतीहै वैसेही पिता माताकी यह दशा देखकर रामचंद्रजीकी दशा हुई ॥ ४२ ॥ जिसका छोटा बच्चा गांठमें बँधाहो ऐसी गाय दिनभर जंगल में रहकर संध्याको जिस प्रकार गोठकी ओर दौडती है, वैसेही कौशल्याजी स्नेहके मारे रथको आगे बढा जाता हुआ देख रामकी ओर को दौडीं ॥ ४३ ॥ उनकी दोनों आंखोंसे आंसुओंकी धारा बहने लगी। वह "हा राम" "हासीते,," "हा लक्ष्मण" यह कहकर शोकके मारे व्याकुल हो रथके पीछे २ दौडने लगीं ॥४४॥ *रामचन्द्रजीने एक वार फिर कर देखा कि माता कौशल्याजी राम,लक्ष्मण, सीताजीको पुकार रोदन करती हुई गिरती पडती भ्रमती हुई चली आती हैं ॥ ४५ ॥ उस समय महाराज दशरथजी तो सुमंत्रसे कहने लगे कि रथको रोको और रामचन्द्रजीने सुमंत्रसे कहाकि रथको बहुतही शीघ्र चलाओ उस समय सुमंत्रजी ऐसे कर्त्तव्य हीन होगये, जैसे कि यु-

* (प्रजा दुःख वर्णन) रागनी गौड मल्हार अथवा श्याम कल्याण ताल तीन ॥ जब हरि गमन कियो कानन को॥आस्ताई ॥ पुर नरनारि सकल व्याकुलहैं चले जात प्रभुके दरशन को ॥ विकल होय सब कहत परस्पर राखिलेओ कोइ राम लखनको ॥ तुमबिन नाथ जियें हम कैसे। दरशन दो निज नारद जनको ॥ १ ॥

द्धके लिये तैयार खडी दो सैना ओंके बीचमें कोई पुरुष जाकर किं कर्त्तव्य विमूढ होजाताहै ॥ ४६ ॥ इस समय रामचंद्रजीने कहा कि हे सुमंत्र ! यदि राजा तुम्हें घुडककर या धमकाकर कहैं कि तुमने रथ क्यों नहीं थमाया, तब तुम कह देना कि रथके जानेका शब्द इस प्रकार हो रहाथा कि मैंने आपकी आज्ञाको नहीं सुना । परन्तु हमारी बात न मानकर जो रथ शीघ्र न चलाओगे तो रथका न चलाना पापका मूल होगा और यहां फिर बडा रोना धोना होगा, और मुझे बडा कष्ट भोगना पडैगा ॥ ४७ ॥ सुमंत्रजीने रामचन्द्रजीके ऐसे वचन सुनकर रथके साथ जो आदमी आयेथे उनको विदा किया और जिस प्रकार रथ चल रहाथा उस्से भी बड़े वेगसे हांका ॥ ४८ ॥ उस समय राजाके कुटुम्बके व और दूसरे सब मनुष्य रामचन्द्रजीकी मनही मनमें प्रदक्षिणा करके लौटे तो सही, पर उन सबके मन रामकी ओर ही दौडते रहे इस समय महाराज दशरथजीके मंत्री व सेवक महाराजको समझाने लगे कि हे प्रभो जिसके फिर आनेको आशा होतीहै उसको दूरतक पहुँचानें नहीं जाया करतेहैं ॥ ४९ ॥ ५० ॥

तेषांवचःसर्वगुणोपपन्नःप्रस्विन्नगात्रःप्रविषण्ण
रूपः ॥ निशम्यराजाकृपणःसभार्योव्यवस्थि
तस्तंसुतमीक्षमाणः ॥ ५१ ॥

महाराज दशरथजी मंत्री आदि सेवकों के मुखसे यह व्यवस्था सुनकर सब स्त्रियोंके सहित रामचन्द्रके साथ न जाकर लौटे। वह कुछ देर तक विषादित मनसे एकटक रामचन्द्रके मुखकी ओर देखते रहे उस समय महाराज दशरथजीके सब शरीर में पसीना आगयाथा॥५१॥इत्यार्षे श्रीम० वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ॥

तस्मिंस्तुपुरुषव्याघ्रेनिष्क्रामतिकृतांजलौ ॥
आर्तशब्दोहिसंजज्ञेस्त्रीणामंतःपुरेमहान् ॥ १ ॥

हाथ जोडकर विदा होते हुये पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीके चले जाने पर रनवासमें रहने वाली स्त्रियोंका अंतःपुरमें घोर हाहाकार उठा ॥ १ ॥ वह सब यही एक साथ कहने लगींकि जो अनाथोंके, दुर्बलोंके, तपस्वियोंके, और शोचनीय मनुष्योंके एक मात्र सहारे और आसरेहैं वही रामचंद्रजी इस समय कहां जातेहैं मिथ्या दोप देने परभी जो क्रोधित नहीं होते, जिन्होंने क्रोधको तो एक वारही त्याग दियाहै, जो कि क्रोध किये हुये मनुष्यको प्रसन्न करने वाले हैं वह जो सुख दुःखको समान समझतेहैं वह रामचन्द्रजी इस समय कहां जातेहैं ॥२॥ ३॥ जोमीहात्मा तेजवान् श्रीरामचन्द्रजी अपनी गर्भ धारिणी माता कौशल्याजके बराबर हमें समझतेहैं वह अब कहां जातेहैं ॥ ४ ॥ जो सब संसारके रक्षा करने वालेहैं, वह कैकेयीके सताये हुये महाराजके कहनेसे इस समय कहां जातेहैं ! ॥ ५ ॥ हाय निश्चयही राजा ज्ञान शून्य हुयेहैं यदि ऐसा न होता तो सब जीवोंके आश्रय स्थान स्वरूप धर्मवान् सत्यसन्ध रामचन्द्रजीको वनमें क्यों पठाते ? ॥ ६ ॥ यह कह राजा दशरथजीकी सब रानियें विन वच्चेकी गायोंके समान व्याकुल हुईं और शोकके मारे ऊँचे स्वरसे रुदन करने लगीं ॥ ७ ॥ रनवास में पडे हुये वह हाहाकार सुन करके राजा बहुतही दुःखित हुये उनके हृदय में पुत्र शोकका प्रवाह प्रवाहित होने लगा ॥ ८ ॥ उस समय रामचंद्रजीके विरह में व्याकुल होकर ब्राह्मणोंने अग्निमें आहुति नदी, विनाही ऋतुमें वादर आगया जिस्से कि सूर्य छिपगये, हाथियोंनें अपनी २ झूलें गिरादी गायोंने बछिया बछडों को दूध न पिलाया ॥ ९ ॥ जीव लोककी वार्त्ता तो एक ओर रही वह तो कहें क्या त्रिशङ्कु, मंगल, बुध और बृहस्पति व सब शनैश्चरादिक क्रूर ग्रह रात्रिको वक्री हो चंद्रमाके निकट आय थर थरा कांपनें लगे ॥ १० ॥ सब नक्षत्र तेज हीन हो गये सब ग्रहोंकी प्रभा जाती रही व विशाखा आदि नक्षत्र भी धूमके सहित प्रकाशित होने लगे ॥ ११ ॥ प्रलयके कालके समान प्रचंड पवन चलने लगी, जिस्से समुद्र में भी बडी २ तरंगे उठने लगीं ऐसा विदित होताथा कि मानों पृथ्वी डुवाही चाहती है अयोध्यापुरी तो थर थर कांपने लगी, मानो उलटना चाहती है यह सब वार्त्ता रामचन्द्रजीके वन जा-

नेके समय हुई ॥ १२ ॥ सब दिशा व्याकुल हो गईं इनमें अँधियारा प- सार होगया, ग्रह या नक्षत्र किसीका प्रकाश आकाशमें न रहा ॥१३॥ सब नगरवासी नर नारी बालक वृद्धोंका मन अकस्मात् हीन होगया आहार या विहार करनें में किसीका मन चलाय मान नहीं हुआ ॥१४॥ सबही शोकसे संतापित होकर गहरे २ श्वास लेने लगे राजा दशरथजी- के ऊपर कोप करनेके सिवाय उन लोगोंकी और चेष्टा नहीं थी ॥ १५ ॥ जो लोग कि राजमार्गमें खडेथे वह भी पुक्का छोड कर रोने लगे उस समय किसीनें भी सुखका मुख नहीं देखा अब एक २ की अवस्थाको क्या कहें सारा संसारही उस समय महा व्याकुलथा ॥ १६ ॥ इस समय अनुकूल भावसे शीतल मंद सुगन्ध नहीं चलताथा न चंद्रमाकी सौम्य मूर्त्ति दृष्टि आतीथी न सूर्य नारायणकी किरणों में कुछ तेज रह गयाथा ॥ १७ ॥ अधिक क्या कहें इस समय पुत्रोंने पिता माताका ध्यान छोडदिया भा- ई भाईको भूल गयाथा स्त्रियोंने स्वामी की चिंता दूर कर दीथी और सबकोई सबको छोड छाँडकर एक रामचन्द्रजीके ध्यानमें मग्न हो ग- ये ॥ १८ ॥ जो कि रामचन्द्रके मित्र और सगेथे वह दुःख और शोकके भारसे दबगये और उनका ज्ञान जातारहा और विहारादिक कीतो क्या चलाई उन्होंनें नींद तकका त्याग कर दिया ॥ १९ ॥

ततस्त्वयोध्यारहितामहात्मनापुरंदरेणेवम
हीसपर्वता ॥ चचालघोरंभयशोकदीपिता
सनागयोधाश्वगणाननादच ॥ २० ॥

उस समय वह अयोध्या पुरी रामचन्द्रजीके विरहमें इस प्रकार कां- पी जैसे कि वज्र धारण करने वाले इन्द्रके वज्रसे पहाडों सहित यह पृथ्वी कांप गईथी नर नारियोंकी दशातो जाने दीजिये भय शोकसे समाकुल वह पुरी हाथी घोडे और वीरोंके हाहाकार व आर्त्त नादसे पूर्ण होग- ई ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये अयोध्याकां- डे चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्वाचत्वारिंशःसर्गः ॥

यावत्तुनिर्यतस्तस्यरजोरूपमदृश्यत ॥

नैवेक्ष्वाकुवरस्तावत्संजहारात्मचक्षुषी ॥ १ ॥

रामचन्द्रजी जब वनको रथ पर बैठ कर चले गये जबतक रथके पहियोंसे उडती हुई धूल दिखाई दी तबतक महाराज दशरथजी उसी ओरको देखते रहे ॥ १ ॥ जबतक महात्मा राजा दशरथजी धर्मात्मा अपने पुत्रको देखतेही रहे तबतक मानो उनका शरीर पृथ्वी पर बढताही जाताथा, क्योंकि उठ २ कर वार २ उनको देखतेही जाते थे ॥ २ ॥ किन्तु जब रामचन्द्रजीके पहियों की धूल न देखी और प्यारे पुत्र दृष्टि मार्गके अतीत होगये तब महाराज दशरथजी विषादित और अधीरहो पृथ्वीमें अचेत होकर गिर पडे ॥ ३ ॥ अनन्तर देवि कौशल्याजी उन्हें उठाकर और उनका दहिना हाथ पकडकर साथ चलने लगीं और कैकयी महाराज दशरथजीका बांया हाथ पकड उनके साथ २ होली ॥ ४ ॥ नीति शास्त्रके जानने वाले विनय युक्त धर्म परायण महाराज दशरथजी दुष्ट कैकेयी को बांया हाथ पकडे हुये देखकर व्यथित हो कातर वचनसे बोले ॥ ५ ॥ रे पापीयसि! तू मेरे अंगोंको मत छुवे; मैं तुझको अपनी स्त्री अपनी सखीके भावसे नहीं देखा चाहता ॥ ६ ॥ अधिक क्या कहूं जो कि सब तेरे दास दासी हैं वह आज से मेरे नहीं और मैं भी उनका नहीं मैं जानताहूं कि तू सदा अपना स्वारथ साधन करने वाली है और धर्म सेभी वर्जित है बस इस कारण मैंने तेरा त्याग करदिया ॥ ७ ॥ मैंने अग्निकी प्रदक्षिणा करकै जो तेरा पाणिग्रहण कियाथा सो इस लोकमें वा परलोकमें मैं उसके फलकी आशा नहीं करताहूं इसकारण तुझे छोड दिया क्योंकि जब मैं जीनाही नहीं चाहता तब स्त्रीका क्या प्रयोजन? ॥ ८ ॥ यदि यह अक्षय राज्य प्राप्त करके भरतजीको संतोष होजाय अथवा रामचंद्रजीको वन भेजनेमें उनकी भी सलाह होतो मेरे मरनेके पीछे मेरे लिये क्रिया पिंडादिक भरतजो न करैं, और न उनके दिये पिंडादिक मुझे पहुंचे ॥ ९ ॥ अनन्तर शोकसे व्याकुल हुई देवी कौशल्या जीने धूलमें लोटते हुये महाराज दशरथजीको उठाया और घरकी तरफको लौटीं ॥ १० ॥ अपनी इच्छानुसार ब्रह्महत्या करनेसे

वा जलते हुये अँगारे पर हाथ धरनेसे जिस प्रकार जल कर पछिताना होताहै वैसे ही रामचंद्रजीकी चिन्ता करते हुये महाराज दशरथजीकी अवस्था होगई ॥ ११ ॥ लौटनेके समय राजा वारंवार घूम २ करके रामचंद्रजीकी ओर दृष्टि करते जातेथे जितने देखा उतनेही घबडाये उस समय राजाका रूप राहु से ग्रसे हुए सूर्यकी नांई अच्छा नहीं लगता-था ॥ १२ ॥ राजाने यह विचार किया कि अब प्राणोंकी समान प्यारे बेटा नगरके बाहर पहुँच गये होंगे यह समझ कर बड़ाही विलाप कलाप किया और मनही मन कहने लगे कि ॥ १३ ॥ हाय! जो घोडे हमारे रामको सवारी में बैठाकर लेगयेहैं उनके तो चरण चिह्न राहमें देखतेहैं परन्तु हमारे प्यारे दुलारे महात्मा रामचंद्रका मुख अब हमको नहीं दी-खता॥१४॥ जो सुपुत्र श्रीरामचंद्र चन्दनादि सुगन्धित वस्तु अंगोंमें लगाय सुख समेत उत्तम तकिया शिरके नीचे धर श्रेष्ठ शय्या पर शयन करतेथे औ-र सुन्दर स्त्रियें कोई उन पर पंखा हिलाती कोई चँवर करतीथी॥१५॥आज वही क्या!प्राण प्यारे पुत्र कहीं पेड की छायाका आश्रय ग्रहण करके काठ या पत्थरका तकिया शिरके नीचे लगाकर रहैंगे॥१६॥जिस प्रकार पहा-डकी तंग जगहसे हाथी उठताहै वैसेही रामचंद्रजी इस समय दास दासियों के न होनेसें दुःखित धूल वदनमें लगी हुई पृथ्वीसे ऊधी श्वासें लेते हुये उठैंगे ॥ १७ ॥ वनचारी पुरुष गण इस समय दीर्घ बाहु लोकनाथ रामचंद्रजीको अनाथकी नाईं पेडकी छायाको त्याग करके जाते हुये देखेंगे ॥ १८ ॥ महाराज जनकजीकी प्रियकन्या जानकी जिन्होनें सदा सुखही पायाहै आज कांटा पत्थर आदि उनके पैरमेंलगेंगे और तौभी थक-कर उनको चलनाही पडैगा ॥ १९ ॥ मैं भली प्रकार समझा हुआहूं कि जानकी वनवासके कलेशको कुछभी नहीं जानतीहैं सो हत्यारे जीवोंके गर्जनेका घोर शोर जिसके सुननेंसे रुयें खडे होजातेहैं सुनकर उनके मनमें अवश्य भय उत्पन्न होगा ॥ २० ॥ अच्छा कैकेयी! अब तेरी कामना पूर्ण हुई तू विधवा होकर यहां का राज्य पालन करती रह परन्तु मैं रामचंद्रजीके विरहमें एक क्षणभी जीवन धारण नहीं कर सक-ता ॥ २१ ॥ इस प्रकार राजा दशरथ सब लोगोंके साथ २ विलाप

करते जैसे कि कोई मृत्यु पर उतारू हो स्नान किये मरनेंको तैयार हो दुःखसे भरी अयोध्या पुरीमें प्रवेश करते हुये ॥ २२ ॥ पुरीमें प्रवेश करके देखा कि वहांके सब घरोंमें शून शान दुकानें सब वंद होरहीहैं वहां के लोग सब थके मादे दुर्बल दुःखितहैं राजमार्गमें कोई कोई मनुष्य चले जातेथे बहुत नहीं हाट बाट चौकमें कोई आदमी नहीं घूम तेथे ॥२३॥ राजा दशरथ अयोध्या नगरीकी यह शोचनीय अवस्था देख और रामकी चिन्ता करते २ कातरहो सूर्य जिस प्रकार वादलमें प्रवेश करताहै इसी भांति अपने राज भवनमें प्रवेश करते हुये ॥ २४ ॥ जैसे विहंगमराज गरुडजी किसी कुंडके सर्प्पोंका संहार कर डालैं और वह कुंड शब्दहीन होजाय, इसही प्रकार रामचंद्र, लक्ष्मण और सीताके विरहसे उस गृहकी अवस्था होगई ॥ २५ ॥ अनन्तर महिपाल दशरथजीने गद्गद वाणीसे अतिक्षीण गलेसे मधुर स्वरसे धीरे२ द्वार का मार्ग दिखलानें वाले प्रतिहारियोंसे कहा ॥ २६ ॥ जहां रामचंद्रकी माता कौशल्याजी रहतीहैं तुम लोग हमें उसी मन्दिरको ले चलो क्योंकि और स्थान पर रहकर मेरे हृदयको शान्ति नहीं होगी ॥ २७ ॥ राजाकी ऐसी आज्ञा सुन द्वारपाल लोग महाराज दशरथको श्रीकौशल्याजीके मन्दिरमें नम्रतासे ले आये ॥ २८ ॥ यद्यपि महाराज दशरथजी कौशल्या जीके मंदिरमें प्रवेश करके सेज पर लेट तो रहे परन्तु किसी प्रकार उनका मन स्थिर नहोसका॥२९॥राजा दशरथजी को दो पुत्र और पुत्र वधू विहीन होनेसे वह भवन चंद्रमाहीन आकाशके समान बोध होनें लगा॥३०॥उस समय महाराज दशरथजी अपने घरको इस प्रकार श्रीहीन देखकर दोनों हाथ ऊपरको उठा यह कहकर रोने लगे कि हा वत्स रामचंद्र! तुम क्या मुझको छोड करही चले गये ॥ ३१ ॥ भाई रामचंद्रके यहां आनेतक जो लोग जियेंगे वह यहां ही रहैं वह रामचंद्र जीको देख लपटाय २ मिलभेंट कर सुखी होंगे, हमें क्या हमतो जियें गेही नहीं ॥ ३२ ॥ अनन्तर काल रात्रिकी समान रात्रिहो आई जब आधीरात वीती तब कौशल्या जीसे राजाने कहा ॥ ३३ ॥ हे राजमहिषि! मैं तुम्हें नहीं देख सकताहूं अतएव तुम मेरा अंगछुवो मेरीदृष्टि रामके संग वनको चली गई, वह अभी तक वहांसे नहीं लौटीहै ॥ ३४ ॥

तंराममेवानुविचिंतयंतंसमीक्ष्यदेवीशय नेननरेंद्रम् ॥ उपोपविश्याधिकमार्तरूपाविनिः श्वसंतंविललापकृच्छ्रम् ॥ ३५ ॥

तब देवी कौशल्याजीनें महाराज दशरथजीके निकट बैठ उनको शयन करादिया, और उनको रामचंद्रजीकी चिन्तामें व्याकुल देखकर बहुत ही दुःखित हुईं और ऊंचे २ श्वाससे आपभी विलाप करके रोनें लगीं ॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अ० द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥४२॥

त्रिचत्वारिंशःसर्गः ॥

ततःसमीक्ष्यशयनेसन्नंशोकेनपार्थिवं ॥ कौसल्यापुत्रशोकार्तातमुवाचमहीपतिम् ॥ १ ॥

अनन्तर पुत्रके शोकसे दीन हुई देवी कौशल्याजी विस्तरे पर लेटे हुये शोकसे व्याकुल महाराज दशरथजीसे यह बोली ॥ १ ॥ किहे राघव शार्दूल महाराज। कुटिल स्वभाव कैकेयी रामचंद्रजीके प्रति विष त्यागन करके केंचलीको छोडे हुये सर्पणी की समान जहां चाहे वहां फिरेगी यह वही वात हुई कि कोई सांपनीको पाले और वह अपने स्वामीहीको काटे ॥ २ ॥ यह पापनी कैकेयी रामको वन पठाय अपना मनोरथ सिद्ध कर चुकीहै घरमें किसीके सांप रहताहै और उस घरमें रहने वालोंको जो सदा डर रहताहै वैसेही यह कैकेयी हम सबको महादुःख देगी और डर दिखावेगी ॥ ३ ॥ यदि रामचंद्रजी घर पर रहते और नगरमें रहकर भिक्षाभी मांग कर गुजारा करते. अथवा कैकेयीके दास होकरभी रहते तौभी मेरे लिये उनके इस वनवास जानेसे तो अच्छाथा ॥ ४ ॥ यज्ञ करने वाले अग्निहोत्री लोग जिस प्रकार पर्वके दिन राक्षसोंका यज्ञभाग निकालकर फेंकदेतेहैं वैसेही अपनी इच्छानुसार कैकेयीनें रामचंद्रजीको यहांसे निकलवाया ॥ ५ ॥ गजकी समान चाल चलने वाले धनुर्बाण धारण किये प्रलंबबाहु वीर रामचंद्रजी अब भैया लक्ष्मण और भार्या जानकीके सहित वनमें पहुँच गये होंगे ॥ ६ ॥ हाय! वह वनके कलेशोंको कुछभी नहीं जानतेहैं उन मेरे पुत्रको कैकेयीकी सलाहमें आकर

तुमने वनको पठाया। प्राणनाथ! कहोतो सही इस समय उनकी क्या दशा-होगी ॥७॥ *उनके संगमें धन रत्नादि कुछभी नहींहैं; और विशेष करके उनकी इस समय युवा अवस्थाहै, तुमनें ठीक भोग और सुख करनेके समय उनको वनमें भेजा! मैं कह नहीं सकती कि वह किस प्रकार इस समय कंद मूल फलादि खाते पीते समयको वितावैंगे ॥८॥ मेरे भाग्य में क्या ऐसाभी कोई दिन होगा कि वत्स रामचंद्रजीको लक्ष्मण और जानकी सहित यहांपर आये हुये देख शोक ताप छोड आनन्दित हूंगी ॥ ९ ॥ अहो! वह कौनसा दिन होगा कि अयोध्यावासी दयावान वीर रामचन्द्रजीके आनेंकी वार्त्ता श्रवण करके ध्वजा पताकासे इस नगरीको सजावेंगे ॥ १० ॥ कब नर शार्दूल रामचंद्र व लक्ष्मणजीका आगमन संवाद श्रवण कर पूर्णमासीके समुद्रकी समान अयोध्या उमडा चलैगी? ॥ ११ ॥ वृपभ जिस भांति संध्या समय ग्राममें प्रवेश करनेंके समय गायको आगे लेकर चलताहै वैसाही सीतानाथ सीताको आगेकर कब रथमें बैठ अयोध्या पुरीमें प्रवेश करेंगे? ॥ १२ ॥ किस दिन शत्रुओंके नाश करने वाले राम लक्ष्मणको देखके अयोध्याके मार्गों में टिके हुये प्राणी धानके लावा अक्षतादि उनके शिरपर वर्षावैंगे ॥ १३ ॥ किस दिन देख पाऊंगी कि हमारे दो पुत्ररत्न कानोंमें कुंडल पहरे कांधेमें धनुप और हाथमें खड्ग धारण किये शिखर सहित पर्वतकी समान अयोध्यामें आ रहेहैं ॥ १४ ॥ कब मेरे दोनों बारे ब्राह्मण और ब्राह्मणीके कन्याओंको फल, मूल प्रदान करके प्रसन्नतासहित उनकी प्रदक्षिणा करैंगे? ॥ १५ ॥ जल धारा जिस प्रकार सबहीको सन्तुष्ट करतीहै वैसेही कब बुद्धि व अवस्थासे परिपूर्ण देवताओंकी समान रामचंद्र सीताको संग लेकर सबको सन्तुष्ट करते हुये उपस्थित होंगे ॥ १६ ॥ मुझे निश्चय बोध होताहै कि कुकर्म करने वाली कैकेयीने दूध पीनेके लिये उत्सुक हुये बच्चोंकी माँके स्तन काटडाले ॥ ॥ १७ ॥ हे महाराज! सिंह जिस प्रकार गायके बच्चेको उठा ले जाताहै वैसेही तुमने मुझ पुत्र वत्सलाको बे बच्चेके कर दिया मुझको ऐसा बोध

* चौपाई—राम लषणकी सुरत सँभारे। कौशल्या पावत दुःख भारे॥

होताहै कि माताका स्तन काटने वाले पातकके वशहो कैकेयीने बल पूर्वक यह कार्य कियाहै कैकेयी रूपी सिंहनिने मेरे पुत्र वनको भेज दिये ॥ १८ ॥ हे महाराज ! रामचंद्र मेरे इकलोते पुत्रहैं ? परन्तु मेरे उस एकही पुत्रमें सब शास्त्रोंका ज्ञान और बहुत गुण एकत्र हुयेहैं अतएव ऐसे पुत्रके अनायास वन जानेसे मैं किस प्रकार प्राण धारण करूंगी ॥ १९ ॥ अधिक क्याकहूं यदि अपने प्रिय पुत्र राम और महाबलवान लक्ष्मणको न देखनें पाऊंगी तो मेरा जीवन धारण करना किस काम काहै ॥ २० ॥

अयंहिमांदीपयतेऽद्यवह्निस्तनूजशोकप्रभवो महाहितः ॥ महीमिमांरश्मिभिरुत्तमप्रभोय थानिदाघेभगवान्दिवाकरः ॥ २१ ॥

अधिक कहनेसे क्याहै जिस प्रकार ग्रीषम ऋतुमें प्रचंड मार्त्तण्ड पृथ्वीको दग्ध कर देताहै वैसेही पुत्रके विरह की शोकानल मुझे तपा रहीहै ॥ २१ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०अ० त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥

विलपंतींतथातांतुकौसल्यांप्रमदोत्तमाम् ॥ इदंधर्मेस्थिताधर्म्यंसुमित्रावाक्यमब्रवीत् ॥१॥

धर्मशीला सुमित्राजी सब रानियोंमें श्रेष्ठ कौशल्याजीको इस प्रकार विलाप करते देखकर धर्मके समर्थन किये हुये वचनोंसे धर्म युक्त वचन बोली ॥ १ ॥ हे देवी ! तुम्हारे पुत्र राम पुराण पुरुष पुरुषोत्तम हैं और वह स्वभावसेही सब गुण युक्तहैं अतएव उनके लिये दीन भावसे रोना और यह विलाप क्यों करती हो ? ॥ २ ॥ हे आर्यै ! तुम्हारे पुत्र महाबली सत्यके पालने वालेहैं पिताजीका वचन पालन करने हीके लिये वह महा बलवान रामचंद्रजी राज्य परित्याग करकै वनवासी हुयेहैं ॥३॥ परलोकमें जिसके करनेसे फल मिलताहै; सज्जनोके किये हुये उस धर्ममें जब कि रामचंद्रजीका स्वाभाविक अनुरागहै तब उनके लिये शोक करना किसी भांति उचित नहींहै ॥ ४ ॥ फिर लक्ष्मणके लियेभी शोच न कीजिये क्योंकि उत्तम धर्ममें लगेहैं जो बडे भइया पुरुषोत्तम श्रीराम-

चंद्रजीकी सेवा करनेके लिये उनके संग वनको चले गये इस्से लक्ष्मणजी-को सब भांति लाभहीहै क्योंकि लक्ष्मणजी सब प्राणियों पर दया रखतेहैं और रामचंद्रजी भली भांति उनके शील स्वभावको जानतेहैं इस्से दोनों भ्राता ओंमें प्रीति वढती रहैगी ॥ ५ ॥ नित्य २ सुख भोग करने वाली जानकी जीको यद्यपि वनमें दुःख मिलेगा परन्तु जब कि वह रामचंद्रजी के संग वनको गईहै तब उनको भी दुःख पानेकी कुछ संभावनानहींहै ॥६॥ सर्व लोकोंका पालन करनेवाले रामचंद्रजीने तीन लोकमें जो अपनी अनुपम कीर्त्ति स्वरूप पताका उड़ारहेहैं कि पिताकी आज्ञासे राज्य छोड वनको चलेगये क्या इस्से सत्यमें निष्ठा रखने इन्द्रियोंके जीतनें वाले रामचंद्रजीका गौरव भली भांति प्रचारित नहीं होगा ॥ ७ ॥ अधिक कहनेसे क्याहै तेज तापको फैलाने वाले सूर्य भगवान भी राम-चंद्रजीकी पवित्रता और माहात्म्य जानकर उनके ऊपर अपनी तीक्ष्ण किरणोंको सामर्थ्य जनानेंमें साहसी नहीं होंगे यह मुझे पूरा विश्वास-है ॥ ८ ॥ सर्व कालोंमें सुखकी उपजाने वाली पवन वनमें छूट कर न अति गर्म न अति ठंढी हो रामचंद्रजीकी सेवा करती रहैगी ॥ ९ ॥ रजनीपति चंद्रमा पाप रहित रामचंद्रजीको लेटा हुआ देख रात्रि काल में पिताकी समान सुख देने वाली किरणें वर्षाकर उनके अंगोंमें लिपट आनन्दित करैगा ॥१०॥ फिर जिन श्री रामचंद्रजीको ब्रह्मर्षि विश्वामित्र जीने निमिके पुत्र सुबाहु निशाचरोंके मरनेंके पीछे अनेक दिव्यास्त्र-दिये ॥ ११ ॥ वही वीर कुल चूडामणि रघुराज रामचंद्रजी अपनी भुजाओंके बलसे रक्षित होकर निर्भयहो घरकीही समान वनमें रहैं-गे ॥ १२ ॥ जिनके शराघातसे शत्रुलोग रण स्थलमें सो जातेहैं उनकी आज्ञामें पृथ्वी क्यों न रहेगी? सब पृथ्वीको शासन करना तो उनके लि-ये एक सामान्य वार्त्ताहै ॥ १३ ॥ हे देवि ! मैंने रामचंद्रमें जिस प्रकार शरीरकी सुन्दरताई देखीहै, वैसेही उनमें शूरता और कल्याण भावभी देखाहै और इससे ऐसा बोध होताहै कि वह जल्दी वनसे लौटकर राज्य भार ग्रहण करैंगे ॥ १४ ॥ फिर रामचंद्रजी सूर्यकेभी सूर्य अग्निके भी अग्नि, प्रभुकेभी प्रभु, शोभाकेभी शोभा, कीर्त्तिकेभी कीर्त्ति, और क्ष-माकेभी क्षमाहैं ॥ १५ ॥ वह देवताकेभी देवता और सब प्राणियोंके प्रा-

ण रखने वालेहैं । हे देवि ! वह नगरमें या वनमें जहां कहींभी रहैं उनमें कोई किसी प्रकारका दोष नहीं देख सकता ॥ १६ ॥ फिर मुझको यह-भी विश्वासहै कि पुरुष श्रेष्ठ रामचंद्रजी, पृथ्वी, जानकी और विजय लक्ष्मीके साथ बहुत शीघ्र राज पद पर आरूढ होंगे ॥ १७ ॥ अयो-ध्यामें जितने आदमीहैं सब रामचंद्रजीको वनजाते हुये देखकर रुदन करतेथे और अबतक सब पर शोक छारहाहै ॥ १८ ॥ जो किसीके नजीते जाने योग्य होकरभी चीर वसन धारण करके वनको गये और साक्षात् लक्ष्मीका रूप जानकीजी उनके संग गईहैं, फिर उनके लिये शोच क्या करना ! ॥ १९ ॥ धनुष धारण किये हुये लक्ष्मणजी खड्ग तीर व औरभी अनेक भांतिके हथियार लिये उनके साथ गयेहैं फिर उनको किस बातकी कमी होगी; जो चाहियेगा सो लक्ष्मण लादें-गे ॥ २० ॥ देवि ! मैं सत्यही सत्य कह रहीहूं कि तुम यहां फिर रामचंद्र-जीको वनवाससे लौटा हुआ देखोगी मैं तुम्हें समझा रहीहूं कि तुम शोक और मोहको एक वारगी छोडदो ॥ २१ ॥ हे अनिन्दिते ! तुम उदित हुये कलाधरकी नांई अपनें पुत्र रामचंद्रजीको शीघ्रही अपने च-रणोंमें प्रणाम करता हुआ देखोगी ! अब घबडाओ मत ॥ २२ ॥ तुम निश्चयही राज लक्ष्मीको प्राप्त अभिषेक पाये हुये अयोध्यामें आये राम-चंद्रको देख अनन्दाश्रु बहाओगी ॥ २३ ॥ हे देवि ! तुम शोक मत-करो किसी भांतिभी रामका अमंगल नहीं हो सकता; तुम सीता और अनुज लक्ष्मण सहित रामचंद्रजीको जल्दीही देखोगी ॥ २४ ॥ कहांतो तुम्हें सब घबडाये हुये अयोध्या वासियोंको समझाना चाहिये परन्तु आश्चर्यहै कि तुम स्वयंही व्याकुल होगई; जो हो, अब अकारण शोक प्रकाश करना तुमको उचित नहींहै ॥ २५ ॥ हे देवि! जबकि रामसे सत्य मार्गमें चलने वाले तुम्हारे पुत्रहैं. तब फिर तुम्हें शोक किस बातका ! यदि विचार करके देखा जाय तो संसारमें रामचन्द्रकी समान कोई साधु पु-रुष दृष्टि नहीं आता ॥ २६ ॥ जब कि तुम देखोगी रामचन्द्रजी वनसे लौटकर सब सुहृदोंके साथ तुम्हें प्रणाम कर रहेहैं, तब मेघ मालाकी स-मान तुम्हारे नेत्रोंसे अवश्यही आनन्दके आंसुओंकी वर्षा होगी ॥ २७ ॥ अधिक क्या कहूं तुम्हारे पुत्र श्रीरामचन्द्रजी जल्दीसे अयोध्यापुरीमें लौ-

ट कोमल और मोटे हाथोंसे तुम्हारे चरणोंको दावेंगे॥ २८॥सब सुहृदोंके संग प्रणामकर सामने वैठे हुये पुत्रके ऊपर आनन्द आंसुओंका प्रवाह वरसाओगी जिस प्रकार वादर पर्वतोंके ऊपर जलधारा वर्षातेहैं ॥ २९॥ आनन्द करनेवाली सुमित्राजी जो कि वचन वोलनेमें चतुर और निन्दा रहितथीं इस प्रकारके संतोषित वचनोंसे कौशल्याजीको समझा बुझा चुप हो रहीं ॥ ३० ॥

निशम्यतल्लक्ष्मणमातृवाक्यंरामस्यमातुर्नर
देवपत्न्याः ॥ सद्यःशरीरेविननाशशोकः
शरद्गतोमेघइवाल्पतोयः ॥ ३१ ॥

उस समय लक्ष्मणजीकी माता सुमित्राजीके यह संतोष देनेवाले वचन सुनकर दशरथकी पत्नी राम माता कौशल्याजी शोक और दुःखसे श-रद्कालीन विन पानीके वादर की समान लीन होगई ॥ ३१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आदिकाव्ये अयोध्याकांडे चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशः सर्गः ॥

अनुरक्तामहात्मानंरामंसत्यपराक्रमम् ॥
अनुजग्मुःप्रशांतंतंवनवासायमानवाः ॥ १ ॥

पुरवासी गण रामचन्द्रजीसे वहुतही स्नेह करतेथे इसीकारण वह स-त्य पराक्रम महात्मा रामचन्द्रजीके पीछे २ चले गयेथे ॥ १ ॥ यद्यपि राजा दशरथजी तौ धर्मानुसार किसी भांति लौटेभी परन्तु पुरवासी लो-गोंने किसी प्रकार रामचन्द्रजीका पीछा नहीं छोडा ॥ २ ॥ यशवान भगवान् गुणवान् रामचन्द्रजी पूर्णमासीके चन्द्रमाकी समान सवही अ-योध्या वासियोंके प्यारेथे ॥ ३ ॥ यद्यपि मंत्री आदिक अमात्योंने राम-चन्द्रजीको लौट चलनेके लिये वारंवार कहाथा परन्तु रामचन्द्रजी उन-की वातपर ध्यान न देकर पिताका सत्य पालनेके लिये वनको चलेही गये ॥ ४ ॥ रामचन्द्रजीने वन जानेके समय सवको ऐसी प्रिय दृष्टिसे दे-खदिया मानों नेत्रों द्वारा पानहीं किये लेतेथे और फिर अपने पुत्रकी स-मान प्यारी दृष्टिसे देखकर प्रजासे कहा ॥ ५ ॥ कि हे प्रजागण ! तुम

सब जिस प्रकार हमसे प्रसन्न रहकर जिस भांति आदर सत्कार करते हो सो हमारा कहना मानकर भरतजीके प्रति हमसे अधिक प्रीति और सन्मान प्रगट करना॥६॥कैकेयीनन्दन भरतजी बहुतही सुशीलहैं वह अवश्यही तुम्हारा हित करने वाले और जो तुम्हारा प्याराहो ऐसा कार्य करेंगे ॥७॥ भरतजी अवस्था में तो बालककी समानहैं, पर ज्ञान बलमें वृद्धोंकी तुल्यहैं; जैसा उनमें बल, वीर्य बढा हुआहै वैसेही वह गुणवान भीहैं अधिक कहने से क्याहै वह भरतजी तुम्हारे सबके पालन करता और राजा होनेके योग्यहैं अतएव उनके राज्य पर बैठनेसे तुम्हारी सब शंकायें छूट जायँगी ॥ ८ ॥ वह युवराज सबही प्रकारसे राज्यपदके योग्यहैं राजा में जो गुण कि होने चाहिये भरतजी में मुझसे भी अधिक वह सब गुण वर्त्तमानहैं; अतएव उनकी आज्ञामें रहना सब भांतिसे तुमको उचितहै ॥९॥ मेरे वनजाने पर महाराज पिताजीको किसी प्रकार का कष्ट न पहुँचे सो मेरे हितके लिये वैसेही कार्य तुम सब करना ॥१०॥* जैसे २ रामचन्द्रजी उनको धर्मका उपदेश देतेथे वैसे २ ही प्रजागण चाहतेथे कि रामचंद्रजी राजा हों तो अच्छाहै ॥ ११ ॥ उस समय लक्ष्मणजी सहित श्रीरामचंद्रजीने रुदन करते हुये दीन पुरवासियोंको मानो अपने में खेंच लिया ॥ १२ ॥ उस समय कई एक ज्ञान वृद्ध, तपो वृद्ध और उमर में भी वृद्ध ब्राह्मण लोग वुढापेके आजानेसे जिनका शिर कांपरहाथा वह रामचंद्रजीके पीछे २ हुये और दूरसे यह वचन बोले ॥ १३ ॥ वह जल्दीसे चलकरभी बुढापेके कारण बहुत दूर न जा सके और कहने लगे हे वेगगामी दिव्य जातिके घोडो ! तुम अब आगे मत बढो, देखो हमारे कहनेसे लौट आओ । तुम्हें अवश्यही अपने प्रभु रामचंद्रजीका हित करना चाहिये ॥१४॥ जितने जीव मात्र हैं सुनतेहैं पर घोडे सबसे अधिक सुनतेहैं; अतएव तुम हमारी प्रार्थनाको सुनो और आगे रथ लेकर मत बढो ॥ १५ ॥ हम जानतेहैं कि तुम्हारे प्रभु रामचन्द्रजीका हृदय अत्यन्त सरल और निर्मलहै; विशेष करके यह दृढ व्रत और वीरोंको धर्मका आश्रय किये हुयेहैं, अतएव तुम इनको वनमें न ले जाक-

* चौपाई—सोइ सब भांति मोर हितकारी । जाते रहैं भुवाल सुखारी ॥

र पुरके भीतर ले आओ देखो कैसेही तुम इनको पुरके बाहर न लेजा-
ना ॥ १६ ॥ बूढे पुरुषोंकी रोय २ यह वार्त्ता श्रवणकर रामचंद्रजीको ब-
डा दुःख हुआ और वह रथसे उतरकर पैदल चलने लगे ॥ १७ ॥ वह
ब्राह्मणोंसे मिलनेके लिये मन्द २ चालसे सीता और लक्ष्मणजी समेत
वनकी ओरको चले। सहज २ चलने का कारण यहथा कि ब्राह्मण लोग-
भी मेरे पास चले आवैं ॥ १८ ॥ वह ब्राह्मणों को पैदल आते देखकर द-
याके वश हुये, और रथको थमादिया उस परसे आप उतर पडे वह चा-
हते तो रथपर बैठ शीघ्रतासे आगे बढ जाते परन्तु उनका नाम तो दीन-
बन्धुहै फिर वह कैसे आगे बढते इसहीकारण ब्राह्मणोंको विमुख न क-
रसके ॥ १९ ॥ तब ब्राह्मण लोगोंकी प्रार्थना पूर्ण होनेमें सन्देह जाना
क्योंकि अबभी रामचन्द्रजी धीरे २ चलेही जातेथे फिर सब ब्राह्मण दुः-
खितहो रामचन्द्रजीसे कहने लगे ॥ २० ॥ हे राज कुमार ! तुम ब्राह्मणों-
के ऊपर सदा कृपा किया करतेहो, इसही कारण हम सब ब्राह्मण तुम्हारे
साथही चले आतेहैं, हमारे यज्ञकी सामग्रीभी तुम्हारे पीछेही पीछे
आरहीहै और ब्राह्मणोंकेही कंधोंपर रक्खी हुई अरिणि आदि अग्निहोत्र
काभी सामान आताहै ॥ २१ ॥ शरदृऋतुमें उठे हुये बादरोंकी समान
वाजपेय यज्ञ करनेसे जो छत्र प्राप्त हुयेहैं और हमारे ऊपर लगे हुयेहैं वह
सब आपके पीछे २ आतेहैं ॥ २२ ॥ आपके पास कोई छत्र नहींहै
सो धूपके तापसे आपको कष्ट होगा सो हम इस बाजपेय यज्ञसे प्राप्त हुये
छत्र द्वारा आपकी छाया करैंगे ॥ २३ ॥ हमारी जो बुद्धि सदा वेद मंत्रा-
नुसारही चलतीहै हे वत्स! वही बुद्धि अब तुम्हारे लिये वनको भेजतेहैं इसे
साथ ले जाइये ॥ २४ ॥ जो वेद हमारा परम धनहै, जो सदा हृदयमेंही
रहताहै, यदि, हम आपके साथ वनको जांय तो वही वेद मंत्र हमारी
स्त्रियोंके सती धर्मकी रक्षा करैंगे और वह सरलतासे गृहस्थीका कर्म
किये जांयगी ॥ २५ ॥ अधिक क्या कहैं जब कि हम तुम्हारे साथ वन
जानेको तैयार होहैं तब फिर वन जानेंमें संदेहही क्याहै और किसीसे
सम्मति लेनेकीभी आवश्यकता नहीं यदि तुम हमारी बात अनुगामी क-
रके धर्मके प्रति न देख हमें छोडही जाओगे तब फिर तुम किस प्रकार
धर्मके मार्ग पर आरूढ रह सकोगे ॥ २६ ॥ हे राम ! अब कुछ अधिक

कहना नहीं चाहते हम हंसकी समान सफेद बाल शिरपर धारण किये शिर नवा तुमसे प्रार्थना करतेहैं कि तुम वनको न जाओ ॥ २७॥ औरभी देखो कि जो सब ब्राह्मण तुम्हारे साथ २ आरहेहैं इनमेंसे बहुतेरोंने यज्ञका अनुष्ठान आरम्भ कियाहै यदि तुम वनके जानेसे न लौटोगे तो इन याज्ञिक ब्राह्मणोंका यज्ञ किस प्रकार पूरा होगा ॥ २८ ॥ औरभी विचार करके देखो कि संसारमें सब प्रकारके जीव तुम्हारी बहुतही भक्ति करतेहैं और वह जीवभी तुम्हें वन जानेसे निवारण कर रहेहैं, सो तुम इस वनमें न जाकर अपने भक्तोंको स्नेहकी दृष्टिसे देखो ॥ २९ ॥ तुम दृष्टि फेरकर देखो तो बहुत ऊँचे पेडोंकी जड पृथ्वीमें दबी हुईहैं इस कारण यह नहीं चल सकते, अतएव तुम्हारे साथ जानेमें असमर्थहो वायु वेगसे जो इनकी डालियां हिलतीहैं सो तुम्हें वन जानेको निवारण कररहीहैं ॥ ३० ॥ देखो! देखो! यह पशु पक्षी अपने २ भोजन आदिक चिन्ताको छोड छाँडकर केवल आपके दर्शनकी कामना किये एकत्र हुये वृक्षोंपर बैठेहैं फिर हम चैतन्योंकी क्या चलाई! ॥ ३१ ॥ ब्राह्मण गण ऊंचे स्वरसे रुदनकर इस भांति विलाप करते चले आतेथे कि इतनेंमें रामचंद्रजीने देखा कि तमसानदी आगई—मानो ब्राह्मणों पै कृपा करकै वहभी रामचंद्रजीको वन जानेसे रोका चाहतीहै ॥ ३२ ॥

ततःसुमंत्रोपिरथाद्विमुच्यश्रांतान्हयान्संपरि
वर्त्यशीघ्रम्॥ पीतोदकांस्तोयपरिप्लुतांगान
चारयद्वैतमसाविदूरे ॥ ३३ ॥

तब सुमंत्रजीने थके हुये घोडोंको रथसे। छोड दिया और वह घोडे पृथ्वी पर लोटने लगे लोटनेंके पीछे घोडोंनें पानी पिया और तमसाके निकट तृणादि चरने लगे ॥ ३३ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० आदिकाव्ये अयोध्याकांडे पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

षष्ठचत्वारिंशः सर्गः ॥

ततस्तुतमसातीरंरम्यमाश्रित्यराघवः ॥
सीतामुद्वीक्ष्यसौमित्रिमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

इसके पीछे सुमंत्रजी मनोहर तमसा नदीके किनारेपर बैठकर सीताजीकी ओर देखते हुये लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १ ॥ भइया! आज वनवासकी यह पहलीही रात्रिहै सो तुम अयोध्या पुरीकी याद करके कुछ घबड़ानामत और जो कुछ कन्द मूल मिलें उनको खाकर संतोष करना ॥ २ ॥ वत्स ! तुम देखो तो कि मृग और पक्षी गण अपने २ घोंसलों और मांढोंमे आकर इस शूने वनमें कल २ करतेहैं इस्से ऐसा ज्ञात होताहै कि मानों हमारी यह दशा देख यह सब रोरहेहैं ॥ ३ ॥ आज हमारे पिताजीकी राजधानी अयोध्या नगरी नर नारियों सहित यहां चले आये हुये हम सबको निःसन्देह सोचती होगी ॥ ४ ॥ पिताके, तुम्हारे, हमारे, भरत, और शत्रुघ्नके इन कई जनोंके व्यवहारसे प्रजा बहुतही वश होरहीहैं और बहुत गुण होनेंके कारण प्रजा इन सबसे प्रीतिभी रखतीहै ॥ ५ ॥ मुझे पिताजी और माताके लिये बहुतही चिन्ताहै, मुझे तो ऐसा जान पडताहै कि वह मेरे लिये दिन रात रोरो कर अन्धे हो जांयगे ॥ ६ ॥ यद्यपि मुझे यह विश्वासहै कि धर्मात्मा भरतजी पिता माताको धर्म अर्थ काम सहित वचनोंसे समझाते बुझाते रहेंगे, परन्तु तौभी मन व्याकुल होताहै ॥ ७ ॥ महाभुज रामचंद्रजी बोले भरतजीके शील स्वभावोंका स्मरण मुझे वार २ आताहै और इस कारणसे मैं पिता माताकाभी कुछ शोच नहीं करता ॥ ८ ॥ भइया लक्ष्मण पुरुष सिंह तुम तो हमारे संग चले आये यह बहुतही अच्छा किया नहीं तो सीताकी रक्षा करनेके लिये हमें कोई और सहायक ढूंडना पडता ॥ ९ ॥ हे लक्ष्मण ! यद्यपि वनमें अनेक प्रकारके कंद मूल फलोंकी कमी नहींहै. परन्तु आज जलही पीकर रात्रि बितादें यह मेरी इच्छाहै ॥ १० ॥ लक्ष्मणजीको उपदेश देकर फिर सुमंत्रजीसे बोले कि हे सुमंत्रा तुम भली भांति घोडोंको सेवा करना जिसमें किसी प्रकारकी कसर न हो ॥ ११ ॥ अनन्तर सूर्य भगवानके अस्ताचल पहाडकी चोटीपर विराजतेही सुमंत्रजीने घोडोंको बहुतसा दान और घास आदिदे रामचंद्रजीके पास आये ॥ १२ ॥ फिर सुमंत्रजीने सायंकालकी सन्ध्या वन्दनादि समाप्तकर और रात्रिको आई हुई देख लक्ष्मण व रामचंद्रजी दोनों भाइयोंके शयन करनेके लिये स्थान बनायेसो रहे॥ १३ ॥ तमसाके किनारे पेडके पत्तोंकी बनीहुई शय्या देखकर श्रीरामचं

द्रजी लक्ष्मण व जानकीजीके साथ उस परबैठे॥१४॥रामचंद्रजीको व श्री-जानकी जीको श्रमसे थका थकाया देखकर लक्ष्मण जी सुमंत्रके सहित कथा वार्त्तामें रामचंद्रजीके गुण वखान करने लगे ॥१५॥ लक्ष्मण व सुमं-त्रके वार्त्ता करते और जागते २ ही रात बीत गई और प्रातःकाल हो आया ॥ १६ ॥ तमसाके किनारे बहुत गायें चर रहींथीं उसीके कुछ थोडे दूर पर सब समाज सहित वह रात्रि बिताई ॥ १७ ॥ तदनन्तर बहुतही तडके श्रीरामचंद्रजीने उठकर देखा कि सब अयोध्या वासी घोर-नींदमें अचेत पडेहैं, तब रामचंद्रजीने शुभ लक्षण युक्त लक्ष्मणजीसे कहा ॥ १८ ॥ हे लक्ष्मण! देखो तो प्रजा लोग अपने घर वारका कुछ ध्यान न करकै मुझ में चित्त लगाये हुये हैं और पेड़ोंके नीचे बिना कुछ बिछाये थककर सो गये हैं और अब तक नहीं जागे ॥ १९ ॥ हमें वनको न जाने देकर घर लौटा ले चलने हीकी इनकी वासना है यदि इनका यह मनोरथ सिद्ध न हुआ तो यह सब प्राण त्याग करने मेंभी विलम्ब न करैंगे ॥२०॥ जबतक यह सब सोते रहैं तबतक हम सब रथ पर चढकर यहांसे चले चलैं फिर कुछ भय नहीं, क्योंकि तमसासे आगे कुछ दूरतक मार्गभी नहीं तब यह लोग आवेंगे कैसे ? ॥२१॥ यह पुरवासी गण मुझसे इतना अनुराग करतेहैं कि जब यह जाग जाँय तब इनको छोडकर जाना कोई सहज बात नहींहै। और जब कि यह लोग जानेंगे कि रामचन्द्र हमे धोखा देकर छोडना चाहतेहैं तब तो यह कभी हमारासाथ नछोडैंगे और नकभी सोवेंगे॥२२॥विचार करकै देखनेसे प्रजाओंको अपने ऊपर जो दुः-ख पडाहो उस दुःखसे रैयतको बचानाहीं राज कुमारोंको उचितहै इस्से हमें अपने दुःखसे दुःखी हुये प्रजाका किसी प्रकार वनमें ले जाना उचित नहीं है ॥ २३ ॥ तब लक्ष्मणजी साक्षात् धर्म तुल्य रामचंद्रजीसे बोले कि हे प्राज्ञ! आपकी जो इच्छाहै उसके पालन करनेमें मुझे किसी प्रकार की आपत्ति नहीं है अतएव आप रथ पर सवार हूजिये ॥ २४ ॥ फिर राम-चन्द्रजीने सुमंत्रसे कहा कि हे सूत! तुम शीघ्र रथ तैयार करो मैं यहांसे अभी वनको जाऊंगा ॥ २५ ॥ आज्ञा पातेही बहुत शीघ्र सुमंत्रजीनें उ-त्तम घोडे जोत रथको तैयार किया और रामचन्द्रजीके पास हाथ जोड-

कर निवेदन किया ॥ २६ ॥ हे महाबाहो ! रथियोंमे श्रेष्ठ आपके लिये आपका श्रेष्ठ रथ तैयार कर दिया गया अब आप बहुत शीघ्र सीता और लक्ष्मणजीके साथ इस पर सवार हो जाइये ॥ २७ ॥ इतना सुन्तेही रामचंद्रजी सब सामग्री सहित उस रथ पर चढे और भवँर पडती हुई तेज धार वाली तमसा नदीके पार होगये ॥ २८ ॥ जब महाबाहु रामचंद्रजी तमसाके पार गये तब कुछ दूरतो कटीला टेढा मेढा भयंकर रस्ता मिला फिर पीछे २ से बहुत सुन्दर मार्ग उनको मिलगया ॥ २९ ॥ तब रामचन्द्रजीनें पुरवासियोंके मोह लेनेके लिये सारथीसे कहा कि हे सुमंत्र तुम अकेले हमारा रथ उत्तर दिशाकी ओर चलाओ हम उतरतेहैं ॥३०॥ तुम मुहूर्त्त भर तक अति वेगसे रथ चलाओ और फिर लौटो तुम इस प्रकारसे लोकके चिह्न मिटाकर रथहांको जिस्से कोई हमारे जानेका कुछभी वृत्तान्त न जाने कि हम किधरको गयेहैं तुम सावधानीसे यह कार्य करो ॥ ३१ ॥ सुमंत्रजीने रामचंद्रजी की आज्ञा पाकर उनके कथनानुसार पहले उत्तर दिशामें रथले जाकर फिर लौटाया और वह समाचार रामचंद्रजीको जनाया ॥ ३२ ॥ जब सुमंत्रजी रथको लौटार करलाये तब रघुकुलके बढाने वाले श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मण जानकी सहित उस पर सवार हुये, फिर जिस मार्गसे तपोवनको जाना होताहै उसी ओर को सुमंत्रजीने घोडे चलाये ॥ ३३ ॥

ततःसमास्थायरथंमहारथाःससारथिर्दाशरथिर्वनंययौ॥उदङ्मुखंतंतुरथंचकारप्रयाणमांगल्यनिमित्तदर्शनात् ॥ ३४ ॥

इस प्रकार महारथी रामचंद्रजी रथ पर चढके सारथी सहित वनको जाते हुए। जानेके समय मंगलार्थ केवल एक बारही जरा दूर रथ उत्तर दिशाको चलायाथा ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे षट्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥

प्रभातायांतुशर्वर्यांपौरास्तेराघवंविना ॥

शोकोपहतनिश्चेष्टाबभूवुर्हतचेतसः ॥ १ ॥

रात्रि बीत कर जब सवेरा होगया तब सब पुरवासी रामचंद्रजीके बिना शोकके मारे ऐसे बिल बिलाये कि चेष्टा रहित होकर मूर्च्छित होगये ॥१॥ उन पुरवासियोंके दोनों नेत्रोंसे अखंडनीय आंसुओंकी धार गिरने लगीं। यद्यपि वह सब उस समय दुःखित मनसे मार्गकी ओरको देख रहेथे परन्तु हाय! फिर उनको रामचंद्रजीके रथकी धूल दिखलाई नहींदी ॥२॥ उन सबके मुख मंडल शोककी कारिषसे ढकगये उस समय वह सब रामचंद्रजीका नाम ले २ कर अति करुणा सहित वाणी बोलने लगे॥ ३ ॥ वह सब बोले कि इस भारी नीदको धिक्कारहै हम सब इस कीही मायासे ज्ञान रहित होकर सोगये जिससे कि महाबाहु चौडी छातीवाले रामचंद्रजी अब हमें दृष्टि नहीं आते, किसीनें सच कहाहै (सोवे सो खोवे जागे सो पावे) ॥ ४ ॥ फिर हम सब जो सोयही गयेथे तोभी महाबाहु रामचंद्रजी अपने सब भक्तोंको शोक सागर में डुबाकर तपस्वी भेष किये किस प्रकार वनको चले गये हा ! कैसी विपद आई ॥ ५ ॥ जो अपने और सब जात पुत्रकी समान सदा लालन पालन किया करतेथे वह रघुवंशियोंमें श्रेष्ठ रामचंद्रजी किस प्रकार हमको छोड वनवासी हुये ॥६॥ अच्छा जो हुआ सो हुआ, यातौ आज यहां पर हम सब मर जांयगे अथवा हिमालय पर्वत पर जो महा प्रस्थान नामक स्थानहै वहां जाकर बर्फ में गल जाँयगे । बात तो यह है कि रामचन्द्रजीके विना हमैं जीकर करनाही क्याहै? ॥ ७ ॥ जो वहां न गये तौ यहां जो सूखी लकडियें इधर उधर बहुत पडीहैं इन्हें बटोर चिता बना अग्निदे उस में गिरकर मरेंगे ॥ ८ ॥ जब हम अयोध्या पुरी में जायँगे और वहांके वह वासी जब रामचन्द्रजीका समाचार पूछेंगे तब क्या उनसे हम यह कहैंगे कि हम निन्दा रहित प्रियकरने वाले रामचन्द्रजीको वनमें पहुँचा आयेहैं ॥ ९ ॥ जब बिना रामचन्द्रजीके हम लोगोंको अयोध्यावासी देखैंगे तब निश्चय ही बालक, जवान, बूढे, स्त्रियें सबही दुःखित होंगे ॥ १० ॥ हमैं तौ एक यही महा दुःखहै कि अयोध्यासे हम सब चले तौ रामचन्द्रजीके साथही-थ सो अब उनको गँवाकर किस प्रकार अयोध्यामें प्रवेश करैं ॥ ११ ॥

वह सब पुरवासी हाथ उठाकर दुःखितहो बिना बछडेकी गायके समान ऐसे वह और भी बहुत भांतिका विलाप कलाप करने लगे ॥ १२ ॥ फिर रथके पहियोंकी लीक देखकर कुछ दूर तक चलेभी गये परन्तु जाते २ आगेको लीकका कुछ चिह्न न देख पडा फिर सब औरभी अधिक दुःखित हुये ॥ १३ ॥ फिर उसी लीकपर हो आये और उपाय रहित होकर वहीं लौटे और सब यह कहने लगे कि " यह क्या बातहै? हम इस समय क्या करैं? हमारा भाग्यही बुराहै ॥ १४ ॥ फिर इधर उधर बहुत चलने फिरनेसे बहुत थक गये और उत्साह रहित होकर अछताते पछताते व दुःख करते सबने अयोध्याका मार्ग लिया ॥ १५ ॥ उन्होंने राजधानी अयोध्यापुरीमें आकर देखा कि वहां सबही कोई रामचंद्रजीके विरहसे दीनहो शोकसे व्याकुल हुये आंसू बहा रहेहैं॥१६॥जब गरुड किसी तालावसे कोई सर्प पकडले उस समय उस तालावकी जो दशा हो जातीहै वैसेही रामचंद्रके विना अयोध्यानगरी शोभाहीन हो रहीथी॥१७॥ रामचंद्रजीके विरहमें अयोध्याजी निरानन्द और श्री रहित हो गई॥ १८ ॥

तेतानिवेश्मानिमहाधनानिदुःखेनदुःखोपहताविशंतः ॥ नैवप्रजग्मुःस्वजनंपरंवानिरीक्षमाणाःप्रविनष्टहर्षाः ॥ १९ ॥

उस समय दुःखके मारे सबही बावरेसे हो रहेथे उस समय प्रत्यक्ष बातमें भी किसीको अपने परायेका ज्ञान नथा। यद्यपि पुरवासी रामचन्द्रजीके विरहमें व्याकुल अति कष्टसे धनसे भरे पुरे घरोंको लौटेथे तथापि उन सबको उस समय यह ज्ञान नहींथा कि कौन घर अपना और कौन परायाहै किसीने न जाना कि कौन किसके घरमें चलागया ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे सप्त चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥

तेषामेवंविषण्णानांपीडितानामतीवच ॥ बाष्पविप्लुतनेत्राणांसशोकानांमुमूर्षया ॥ १ ॥

यद्यपि पुरवासियोंने बहुतही कष्टसे नगरमें प्रवेश तो किया परन्तु उनका मुख मंडल पीला पडरहाथा और वह शोकसे पीडित भी बहुत हो रहेथे सवही मरनेकी इच्छा कियेथे और रो रहेथे ॥ १ ॥ रामचन्द्रजी को जो वन पठाय कर आये तो इस शोकके कारण ऐसे होगये मानों इनके प्राण निकलाही चाहतेहैं सुख और शान्तिकातो उनके हृदयमें उससमय नाम भी नहीं था ॥ २ ॥ सब पुरवासी लौटकर अपने २ गृहमें गये और पुत्र कलत्र बन्धु बान्धवों सहित मिलकर रुदन करने लगे ॥ ३ ॥ उनके सब साधन और हर्ष लोप गये, बनियोंने अयोध्या पुरीमें अपनी २ दुकाने नहीं खोली व्यापार की सामग्रियोंको सबनें छोड दिया सब गृहस्थोंने रसोइयां न चढाईं सब भूखे प्यासे बैठे रहे ॥ ४ ॥ खोई हुई चीजके मिलने अथवा बहुत सारा धन पाकरभी किसीको आनंद नहीं होता अधिक क्या कहैं जिनके पहलोठीके पुत्र हुये उन माताओं को भी तो आनन्द नहीं हुआ ॥ ५ ॥ पुरकी नारियें अपने २ स्वामियोंको आया हुआ देखकर रोते रोते उनको कडुवे वचन कहकर उनको दुःखित करने लगीं, जैसे महावत अंकुशसे हाथीको पीडित करता है ॥ ६ ॥ वह स्त्रियें बोलीं कि जिन्होंने रामचन्द्रजीका मुख चन्द्र नहीं निहार पाया उन्हें घर, स्त्री, धन, पुत्र, और सुखसे प्रयोजन क्या है ॥ ७ ॥ वास्तव में लक्ष्मण और जानकी जी सतपुरुष और सती कहलानेके योग्य हैं क्योंकि वह रामचन्द्र जीकी सेवा शुश्रूषा करने के लिये उनके साथ वनको गये हैं ॥ ८ ॥ रामचन्द्र जी जिस मार्ग से होकर जांयगे वहांकी नदी और सरोवर सब ही धन्य होंगे क्योंकि रामचन्द्र जी उनमें स्नान व आचमन करेंगे ॥ ९ ॥ बडे वन अपने छोटे२ रमणीक वनोंसे व, नदियां अपने सोतोंसे व पर्वत अपनें कँगरोंसे रामचन्द्रजी को सुख देंगे ॥ १० ॥ कानन (वन) या पर्वत जहां पर श्रीरामचन्द्र जी जायँगे, वह सब उनको अपना प्यारा पाहुना जान आदर सन्मान करने में कसर नहीं करैंगे ॥ ११ ॥ रामचन्द्रजी जहां जायँगे वहीं देखेंगे कि पेडों पर चित्र विचित्र फूल लग रहे हैं मंजरियां शोभायमान हैं और उनके ऊपर भँवर गुंजार कर रहे हैं ॥ १२ ॥ जब रामचन्द्रजी किसी

पर्वत पर जाते होंगे तब वहां चाहे उस ऋतुमें उत्तम फल फूलनेका समय न हो वह पर्वत अकालमें भी अपने ऊपर लगे हुये पेडोंके द्वारा उनकी पहुनई करेंगे ॥ १३ ॥ और सब पहाड विविध भांतिके झरनोंको दिखाते हुये और स्वच्छ जल देकर रामचन्द्र जीको सुखी करेंगे ॥ १४॥ वृक्ष सब पर्वतोंके आगे खडे हुये रामको आराम देंगे अधिक क्या कहैं. जहां रामचन्द्रजी रहैंगे वहां डर अथवा हारकी कुछ संभावना नहीं॥१५॥ दशरथात्मज वह महाबाहु रामचन्द्रजी अभी बहुत दूर नहीं गये होंगे बस इस समय हम रामचन्द्र जीके साथ वनको जांयगी ॥ १६ ॥ अधिक क्या कहैं हम उन्हीं महात्मा रामचन्द्र जीकी पग छायामें सुखसे बैठनेका अभिलाष करती हैं, वही सबके स्वामी और परमगतिके देनें वाले हैं ॥ १७ ॥ हम सब महारानी सुखदानी जानकी जीके चरणों की सेवा करैंगी और तुम सब महात्मा रामचन्द्र जीकी सेवामें लगे रहना। पुरकी स्त्रियें दुःखित मनसे अपने २ स्वामियोंसे इस प्रकारके वचन कहती हुई ॥ १८ ॥ वह और भी कहनें लगीं कि वनमें योग क्षेम रघुनायक जी सब भांतिसे तुम्हारा मंगल करैंगे और श्री सीताजी तुम्हारा योग क्षेम अर्थात् मंगल करनें में यत्न करती रहैंगी ॥ १९ ॥ विचार करके देखो कि जहां सुख नहीं केवल दुःखही दुःख है जहां मन नहीं लगता और जहां बिल्कुल उदासी है ऐसे घरमें रहने का क्या प्रयोजन है? ॥२०॥ कैकेयी के राज्यमें अधर्म हीहै और यह राज्य बिना मालिकके समान है तब धन और पुत्रादिककी बात तो दूर रहै हमारे जीवन धारण करनेसे भी क्या प्रयोजन है ॥ २१ ॥ धन, संपत्ति व राज्यके लालचसे जिस स्त्रीने सहजही पुत्र रूपी रत्नका त्याग किया वह कुल कलंकिनी कैकेयी और किसको छोडेगी वरन यह सबको त्याग करैगी और हम क्या यह सब कुलका संहार करादेगी ॥ २२ ॥ हम अपने २ पुत्रों की शपथ करके कहती हैं कि जबतक कैकेयी जीती रहैगी हम प्राण रहते इसके राज्यमें न रहैंगी चाहे यह हमारा पालनभी करै तौभी हमसे यहां न रहा जायगा ॥ २३ ॥ जिस लाज न करने वाली कैकेयीने महिपाल महाराज दशरथजीके प्यारे पुत्रको वन पठाया उस दुष्ट आचरण करने वाली अधर्मिनी कैकेयीके राज्यमें रह कर कौन सुख भोग की आशा करैगा ॥ २४॥

अबसे इस राज्यमें बहुतही उपद्रव हुआ करैंगे, व इस राज्यका स्वामीभी कोई न होगा योग, यज्ञ लोप हो जायँगे, हम समझगई कि इस कैकेयी हीं से सबका नाश होगा ॥ २५ ॥ रामचन्द्रजी जब कि वनको चले गयेहैं तब महाराज नहीं जी सकते और जब कि महाराज दशरथजीही न रहे तब उनके पीछे यह राज्य अवश्यही लोप हो जायगा ॥ २६ ॥ अब हमारे सब सुकृत जाते रहे हम सब स्त्री पुरुषोंके साथ शिलाओंपर विष पीस कर उसको पीकर मर जायँगी अथवा रामचन्द्रजी जहां गये हैं वहां अथवा जहांकि कैकेयी का कोई नाम भी न लेता होगा ऐसे दूर देशमें चली जांयगी ॥ २७ ॥ हमें भली भांति मालूमहै कि रामचन्द्र जी बिना दोषके वनको भेजे गये, अतएव इस समय हम सब भरत जीके हाथ सौंपी गई जैसे कि कसाई के हाथमें गायको सौंप दिया जाय ॥ २८ ॥ अहो ! क्या कहैं पूर्ण चन्द्रमा की समान रामचन्द्रजी वह श्याम वर्ण शत्रुओंका नाश करने वाले कमल दलके समान जिनके नेत्र बाहें जिनकी घुटनों तक लटकती हुई दोनों हँसलिये जिनकी गंभीर बनी, लक्ष्मणके बडे भाई ॥ २९ ॥ सबसे प्रथम मधुर बोलने वाले, सत्यवादी, महा बलवान् सरल स्वभाव सब लोकको चन्द्रमाके समान प्रिय दर्शन ॥ ३० ॥ वही पुरुष शार्दूल मतवाले हाथीकी समान विक्रम करने वाले महारथी महावनमें फिरते हुये वहांके स्थानों को सुशोभित करैंगे ॥ ३१ ॥ मृत्युके समय मृत्युके भयसे जीव जिस प्रकार व्याकुल होता है वैसेही नगरकी नारियें दुःखित और संतापित मनसे रामचन्द्रजोके लिये विलापकरती २ गमन करनें लगीं ॥ ३२ ॥ इस प्रकार जब कि नारियें रो रहींथीं तब उनका रोना करुणामय था कि सूर्य भगवान उसको सहन न करकै छिप गये और रात्रि हो आई ॥ ३३ ॥ इस समय फिर नगरमें होमकी अग्नि जलती हुई नहीं दिखाई दी शास्त्रोंकी चर्चा और पढना एक बारगी बन्द होगया मानों अंधकार चारों दिशा ओंको निकल गया ऐसी नगरी हो गई ॥३४॥ वनियों ने सब वनिज व्यापार करनाछोड दिया सबही निराश और आश्रय हीन हो गये जिस भांति तारोंसे हीन आकाश शोभा नहीं पाताहै वही गत उस समय अयोध्या पुरीकी हुई ॥ ३५ ॥ रामचन्द्रजी अयोध्या जीकी नारियोंके उनके गर्भजात पुत्रोंसे भी अधिक प्यारे थे जै-

से कोई अपने भाई व बेटेके निकल जानेसे व्याकुल हो रोया करताहै वैसेही नगरी की नारियें इस प्रकार दीन हो रोनें लगीं ॥ ३६ ॥

प्रशांतगीतोत्सवनृत्यवादनाविभ्रष्टहर्षापिहि तापणोदया ॥ तदाह्ययोध्यानगरीबभूवसा महार्णवःसंक्षपितोदकोयथा ॥ ३७ ॥

इस प्रकार एक २ करकै नाच, गीत, और उत्सव सवही रामचंद्रजीके विना अयोध्या पुरीमें वंद होगये किसीके मनमें हर्षताका नामभी नहीं रहा देश भरमें व्यवहारी वस्तु ओंका खरीदना वेचना सब बंद होगया इस प्रकार अयोध्या पुरी जल रहित समुद्रकी समान उजाडसी होगई ❋ ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्या कांडे अष्टचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपंचाशः सर्गः ॥

रामोपिरात्रिशेषेणतेनैवमहदंतरम् ॥ जगामपुरुषव्याघ्रःपितुराज्ञामनुस्मरन् ॥ १ ॥

अब इधर पुरुष सिंह रामचंद्रजी पिताजीके वचनोंका स्मरण करते हुये उस रात्रिके वीतते २ बहुतही दूर निकल गये ॥ १ ॥ मार्गमें बनाव भोर होगया तब रामचंद्रजीने उतर कर संध्योपासन किया, और सन्ध्या वन्दनादि करकै फिर रथ हांकागया ॥ २ ॥ गावोंके सिवानों पर खेतीके लिये जुते हुये खेत शोभा पारहे हैं इस प्रकार बहुत सारे ग्राम और फूले फले हुये वन सब देखते दिखाते हुये रामचंद्रजी चलेजाने लगे ॥ ३ ॥ इस समय रामचंद्रजीका रथ बडे वेगसे जाताथा परन्तु अनेक प्रकारकी शोभा नयन गोचर होनेसे आरोहण कारियोंको रथका वेग जान नहीं पडा उन्होंने जाते २ ग्रामवासी मनुष्योंके मुखसे इस प्रकार बात सुनी कि कामके वश हुये राजा दशरथको धिक्कारहै ॥ ४ ॥ हाय ! पापिनी कैकेयीका स्वभाव कैसा तीखाहै और उसका व्यवहार

❋ दोहा—राम दरशहित नेम व्रत, लगे करन नर नारि । भोग सुःख बहु भांतिके, दीन्हे सबन बिसारि ॥ १ ॥

कितना क्रूरहै ! कि उसने सहजही इस प्रकारके तीक्ष्ण निन्दनीय कार्यको कर डाला ॥ ५ ॥ हाय ! कैकेयीनें धर्मकी मर्यादाको नांघकर महाराज दशरथजीके ऐसे गुणवान, दयानिधान, धर्मवान, इन्द्रियोंके जीतने वाले पुत्रको वन पठाया ॥ ६ ॥ ऐसा ज्ञान होताहै कि महाराज दशरथजी पुत्रोंसे कुछ स्नेह नहीं करते, जो ऐसा नहीं होता तौ ऐसे प्रजाके प्रसन्न करने वाले पाप रहित प्यारे पुत्र रामचंद्रजीको वनमें क्यों भेजते ?॥ ७ ॥ कौशलेश्वर श्रीरामचंद्रजी ग्रामवासी मनुष्योंकी ऐसी बातें श्रवण करते हुये कोशलदेशकी सबसे पीछेकी हद्द पर पहुँचे ॥ ८ ॥ फिर चलते२ निर्मल जलसे भरी हुई वेदश्रुति नामक नदीके पार उतर गये वहांसे दक्षिण दिशाकी ओरको चले ॥ ९ ॥ जाते २ शीतल व निर्मल जल वाहिनी सागर गामिनी गोमती नदीको बहते हुये देखा इस नदीकी खादरमें बहुत गायें चर रहींथीं ॥ १० ॥ शीघ्रगामी घोडे जिसमें जुते हुये ऐसे रथपर बैठे हुये गोमती नदीके पार हो हंस व मोरके शोरसे शब्दाय मान स्यन्दिका नदी उतर गये ॥ ११ ॥ प्राचीन समयमें महाराज मनुजीने जो देश इक्ष्वाकु राजाकी राजधानी बनानेके लिये दियाथा श्रीरामचंद्रजी सीता जीको वह दिखाने लगे कि देखो इसमें अनेक प्रकारके धन धान्य युक्त देशहैं ॥ १२ ॥ इसके पीछे पुरुष श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी सुमंत्रजीसे मत्त हंसकी वाणीके स्वरकी समान बार २ कहने लगे ॥ १३ ॥ कि मैं देशको लौटकर और पिता मातासे मिलकर कब फिर सरयूके किनारे वाले फूले फले हुये वनोंमें शिकार खेलूंगा ॥१४॥ यद्यपि शिकार खेलना मुझे बहुत अच्छा नहीं लगता परन्तु राजा लोग जो इसे अच्छा कहते हैं इस कारण मैंभी इसको बुरा नहीं समझ सकता और सरयूके तट खेलना चाहताहूं ॥ १५ ॥ इस लोकमें रीति चली आईहै कि बहुधा राजर्षि लोग अपनी प्रसन्नताके लिये वनमें शिकार खेला करतेहैं इसीसे सब पराक्रम वान नृपति खेलते चले आयेहैं१६॥

सतमध्वानमैक्ष्वाकःसूतंमधुरयागिरा ॥
तंतमर्थमभिप्रेत्ययथौवाक्यमुदीरयन् ॥ १७ ॥

महाराजाधिराज श्रीरामचंद्रजी जो जो आशय देखते उसी प्रयोज-

नका मधुरालाप सुमंत्रजीसे करते हुए मार्गमें चलेजाने लगे ॥ १७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे एकोनपंचाशःसर्ग ॥ ४९ ॥

पंचाशः सर्गः ॥

विशालान्कोसलान्रम्यान्यात्वालक्ष्मणपूर्वजः ॥
अयोध्यामुन्मुखोधीमान्प्रांजलिर्वाक्यमब्रवीत ॥१॥

अनन्तर बुद्धिमान् श्रीरामचंद्रजीने बड़ी लंबी चौडी मनोहर अयोध्याजीकी ओर दृष्टि फेर हाथ जोड़कर कहा ॥ १ ॥ हे राजधानी ! तुम रघुवंशियों करके सदासे पालीगईहो मैं तुमसे प्रार्थना करताहूं कि तुम और तुम्हारे भीतर जितनें देवता वसतेहैं वह सवही मेरे ऊपर कृपा करें ॥ २ ॥ मैं वनमें १४ वर्ष वस और पिताजीके सत्य वचनोंका पालन कर उनसे उऋणहोकर पिता माताके सहित एकत्रहो फिर तुम्हारे दर्शन करूंगा ॥ ३ ॥ इतना अयोध्या पुरीसे कह फिर अरुण नयन श्रीरामचंद्रजी आंखें डव डवाय दाहीं भुजा उठाकर सव देशनिवासियोंसे बोले ॥ ४ ॥ हे देशके निवासियो ! तुम सबने हमारे प्रति जो दया और सन्मान करना चाहिये उसके करनेमें कसर नहीं की, अतएव इस समय और अधिक श्रम पानेकी आवश्यकता नहीं, इस कारण तुम सब लौटजाओ और हमभी अपना कार्य साधन करनेके लिये जातेहैं ॥ ५॥ रामचंद्रजीने जब देश निवासियोंसे ऐसा कहा तब यह उनको प्रणाम और प्रदक्षिणा करके घरको जाने लगे और बीच २ में उनको देखनेके लिये खडे हो जातेथे और रुदन करके घोर विलाप करते जातेथे ॥६॥ जन पद वासी रामचंद्रजीको देखकर तृप्त नहीं हुयेथे इसलिये खडेही होरहे और रामचंद्रजी इतनेमें आगे बढगये और इनको दिखाई नहीं दिये जिस प्रकार सूर्यनारायण छिप जानेसे नहीं देख पडतेहैं ॥ ७ ॥ रामचंद्रजीने रथ पर जाते देखाकि वहां अनेक प्रकारके स्थान धन धान्यसे परि पूर्णहैं और वहुत सारे लोकोंकी वहां वस्तीहै स्थानों पर गांव वालोंके पूजनीय पेड देव मंदिर वृक्ष और यज्ञस्तंभ सवही शोभा विस्तार कर रहेहैं ॥ ८ ॥ वहांके सवही वाग आंबके पेडोंसे परिपूर्ण

बडे २ तालाव निर्मल जलसे शोभित हो रहेथे सब मनुष्य प्रसन्न और हट्टे कट्टे और स्थान २ पर गौओंके झुण्डके झुण्ड अपूर्व शोभा विस्तार कर रहे ॥ ९ ॥ यह सब स्थान राजाओं करके रक्षित वहां सबही जगह वेद ध्वनि हो रही पुरुष श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी रथ पर चढे यह सब देखते भालते कौशल देशकी सीमाके पार हुये ॥ १० ॥ फिर बीच २ में दूसरे राजा ओंके राज्य देखे वह सब राजा दशरथजीको कर देतेथे इन सब स्थानों में बडे २ मार्ग और यह सब बडेही शोभा युक्तथे रामचन्द्रजीने इनको भी देखा ॥ ११ ॥ यहीं पर श्रीरामचन्द्रजीने त्रिपथ गामिनी गंगाजीको देखा कि उनका जल शिवारसे रहित शीतल और पवित्र ऋषि गण उसके किनारे बैठे सेवा कर रहेहैं ॥ १२ ॥ इसके थोडेही दूर बहुत सारे शोभा पूर्ण बहुविध आश्रम देखे जिनके कुण्डोंमें स्वर्गसे आय २ अप्सरायें प्रसन्नतासे स्नान करतीथीं ॥ १३ ॥ देवता, दानव और किन्नर गणोंने गंगाजीका आश्रय ग्रहण कियाहै व नाग और गन्धर्वों की स्त्रियों करके सदा गंगाजी सेवित हो रहींथीं ॥ १४ ॥ जिसके निकटही देवता गणोंके क्रीडा करनेके स्थान और क्रीडा पर्वत दोनों किनारों परथे देवताओंकी फुलवाडियें दोनों ओर विराजमानथीं देवता ओंके निमित्त आकाश में जिन गंगाजीकी धार चली गईथी अनेक प्रकारके कमल उसमें फूल रहेथे ॥ १५ ॥ गंगाजीमें किसी स्थानपर जो चटानसे पानी टकराताथा वही मानों उनका भीषण ठट्ठाथा कहीं फेना जलके ऊपर विराज रहाथा वही मानों उनका हँसनाथा कहीं २ तो वेणीकी समान अतिवेग प्रवाह बहता कहीं नाना प्रकारसे कुंडोंमें भँवर पड रहेथे ॥ १६ ॥ कोई तो स्थान स्थिर और गहराथा और वहीं जलका बडाही वेगथा किसी स्थानमें धारके बननेका शब्द कानोंको आनन्द देने वालाथा और कहीं वही शोर घोर भयंकर सुनाई देता ॥ १७ ॥ कहीं देवतागण जलविहार कर रहेथे कोई २ स्थान निर्मल खिले हुये कमलोंसे शोभायमानथे किसी जगह रेतेके बडे २ ढेर लग रहेथे व कहीं करारोंके बराबर जल बहता व कहीं वालुका चमकतीथी ॥ १८ ॥ हंस,सारस बोल रहेथे, चकवी चकवा किनारेपर बैठे मन्द २ बोलतेथे जिसके तटपै सदा मतवालेही पक्षी कूकते ॥ १९ ॥ कहीं २

किनारोंपर पेडोंकी कतारकी कतार लगीथी व कहीं खिले हुये कमल शोभायमानथे कहीं कमलके वनके वन लग रहेथे ॥ २० ॥ कहीं २ तो कमल खिल रहेथे व कहीं उनकी कमलिनियें ही शोभित होरहींथीं अनेक प्रकारके पुष्पोंके परागसे गंगाजीका जल सुगन्धित होरहाथा कहीं न बहुत जोर से न धीरेसे सम भावसेही बहतीथीं ॥ २१ ॥ इस पापकी नाश करनेवाली नदी का जल बहुतही साफथा कहीं मलीन ताका नाम भीनथा। निर्मल मणिके समान चमकताथा दिग्गज (दिशाओंके हाथी) वनके हाथी और ग्रामोंके पाले हुये हाथी, इस जलमें क्रीड़ा कर रहेथे ॥ २२ ॥ सुरराज इन्द्रका ऐरावत हाथी और देवताओंकेभी हाथी यहांपर आकर गर्जन करते, व तटके काननोंमें औरभी अनेक प्रकारके जीव बोला करते इन सब बातोंसे गंगाजीकी ऐसी शोभा हो रहीथी जैसे सब गहने कपडे पहरनेसे सती स्त्रीकी शोभा होतीहै॥२३॥ गंगाजीके किनारे अनेक प्रकारके पेड बेलैं और पल्लव आदिकोंसे फल पुष्पोंसे छा रहेथे इस कारण बहुत ढके और गहरेथे सब पापका नाश करनेवाली गंगाजी श्रीवामन रूपी विष्णुजीके चरणसे निकलीथीं ॥२४॥ जिनमें अनेक प्रकारके जलक पिनाके, मगर, मच्छ, सर्पादि जीव रहतेहैं जोकि श्रीमहादेवजीकी जटासे निकल तेजसे समुद्रमें संमिलित हुई हैं ॥ २५ ॥ इसीसे समुद्रकी स्त्री हुईं व अनेक प्रकारके सारस, क्रौंच आदि जीव जहां बोलेतेथे ऐसी श्रीगंगाजीके निकट रामचन्द्रजी पहुँचे जहांसे थोडीही दूर शृंगवेर पुरथा ॥ २६ ॥ तब कमल लोचन श्रीरामचन्द्रजी तरंगोंपर तरंगें जिनमें उठरहीं ऐसी श्रीगंगाजीके किनारे " आज हम यहीं रहेंगे " यह बात सुमंत्रजीसे कहते हुये ॥ २७ ॥ रामचंद्रजी सुमंत्रसे यहभी बोले कि थोडीही दूरपर जो पत्ते और फूलोंसे शोभायमान जो इंगुदीका वृक्षहै इसमें बहुत फूल फल रहेहैं आज इसीकी छायामें निवास करनेकी मेरी इच्छाहै ॥ २८ ॥ मैं देखताहूं कि देव, दानव, गंधर्व, यक्ष, पन्नग और पक्षीगण इस नदीके जलको पवित्र जानकर सदा इन गंगाजीकी सेवा करतेहैं ॥ २९ ॥ रामचन्द्रजीकी यह वार्त्ता श्रवणकर सुमंत्र व लक्ष्मणजीने कहा कि बहुत अच्छा और रथभी इसी समय इंगुदी वृक्षके निकट लायागया और सब रथपरसे उतरे ॥ ३० ॥ क्रमसे

इक्ष्वाकुनंदन भ्राता लक्ष्मण और जानकीजी रथसे उतरकर उस इंगुदी पेडके नीचेको चले ॥ ३१ ॥ सुमंत्रजी रथसे नीचे उतरकर उत्तम घोडोंको रथसे छोडकर पेडकी छायामें खडे हुये रामचंद्रजीके निकट हाथ जोडकर खडे हुये ॥ ३२ ॥ उस समय उस देशमें रामचंद्रजीका प्राणतुल्य प्रिय सखा निषाद जातिका बलवान जोकि "स्थपति" कहकर विख्यातथा ऐसा गुह नामक एक राजा बसताथा जब उसनें सुना कि पुरुष सिंह रामचंद्रजी मेरे राज्यमें आयेहैं तब वृद्ध मंत्री और जातिके लोगोंको साथ लेकर रामचंद्रजीके पास आया ॥ ३३ ॥ ३४ ॥ निषादोंके राजाको दूरसे आतेहुये देखकर स्नेहके मारे रामचंद्रजी लक्ष्मणको संग लेकर कुछ दूर आगे बढके उससे मिले ॥ ३५ ॥ रामचंद्रजीकी ऐसी दुरवस्था देख दुःखितहो गुह भेंट करनेसे अपनेको कृतार्थ मान विनीत भावसे रामचंद्रजीसे बोला कि हे महाराज रामचंद्रजी! अयोध्याजीकी समान यह राज्यभी आपही काहै आज्ञा दीजिये कि आपका कौनसा प्रिय कार्य करना होगा ॥ ३६ ॥ हे महाबाहो ऐसे प्रिय पाहुने किसके यहां आतेहैं यह कहकर गुहने अलग २ गुणवाले अनेक प्रकारके अन्न व्यञ्जन ॥३७॥ और अर्घादिक देनेकी सब सामग्री शीघ्र वहां मंगवाकर रामचंद्रजीसे कहा हे महाबाहो! आपका आना मंगलकारीहो यह सब पृथ्वी आपहीकी है ॥ ३८ ॥ हम सब आपके नौकर चाकरहैं आप हमारे राजाहैं अब आप इस राज्यको लेकर पालन कीजिये आपके लिये यह सब खानें पीनेके पदार्थ मौजूदहैं ॥ ३९ ॥ शयन करनेंके लिये अच्छे २ पलँग व बिस्तर और आपके रथमें जुते हुये घोडोंके खानेको घास दाना इत्यादि लाया गयाहै जब गुहने इस प्रकार कहा तब रामचंद्रजी बोले ॥ ४० ॥ जोकि आपने पैदल आकर इतना स्नेह मुझसे किया तब सब भांतिसे मेरा आदर सन्मान होगया और मैं तुमसे बहुतही प्रसन्नहूं ॥ ४१ ॥ फिर रामचंद्रजीने साधुओंकी भेटने वाली भुजाओंसे गुहको लपटायकर बोले कि हे गुह! हमारा भाग्य प्रसन्न दीखताहै, जिस्से कि तुम्हें बन्धु बान्धवोंके सहित अरोग देखतेहैं ॥ ४२ ॥ तुम्हारे राज्यमें, वनोंमें, मित्रोंमें और धनमें और सबही नगर कुशलतोहै? तुम जो प्रीतिके सहित मेरे लियें यह जो कुछ पदार्थ लायेहो ॥ ४३ ॥ इन सबको मैं स्वीकार करताहूं

परन्तु इनको ग्रहण करके अपने कार्यमें नहीं ला सकता। क्योंकि हम इस समय फूल फल खाने वाले और कुश चीर मृगचर्म धारण किये हैं ॥ ४४ ॥ इससे हमेंभी वनमें रहने वाले और तपस्वियोंकी समान समझो हाँ घोडोंकि खानेको जो चीज वस्तु लायेहो वही देजाओ और किसी वस्तुसे हमारा प्रयोजन नहीं ॥ ४५ ॥ आपकी दीहुई इतनीही वस्तु ओंसे भली भांति हमारी पूजा हो जायगी क्योंकि यह घोडे हमारे पिता महाराज दशरथजीको अत्यन्तही प्रियहैं ॥ ४६ ॥ इनको जब अच्छी तरहसे भोजन मिला तब जानौ हमाराही भली भांति आदर सत्कार होगया तब गुहनें अपने नौकरोंसे कहाकि, घोडोंको तुम लोग जल्दीसे घास दाना और पीनेकी चीजदो ॥ ४७ ॥ यह गुहके वचन सुन वे नौकर चाकर सब सामग्री, जल्दीसे लाये तब रामचंद्रजी वस्त्र उतार सायंकालकी संध्योपासन करने लगे ॥ ४८ ॥ जो गंगाजीका जलकि लक्ष्मणजी अपने हाथसे भरकर लायेथे केवल वही पीकर रामचंद्रजी पृथ्वी पर लेट रहे और लक्ष्मणजीने उनके चरण पखारे ॥ ४९ ॥ फिर लक्ष्मणजीने जानकी जीके चरण पखारे और तब श्रीरामचंद्रजी जानकीजीके साथ उस वृक्षके तले सोये तब लक्ष्मणजी कुछ दूर एक वृक्षके तले जा बैठे और गुह व सुमंत्र और अप्रमत्त धनुर्बाण धारण करने वाले लक्ष्मणजी आपसमें वार्त्ता करते हुये रात्रि भर जागे॥५०॥

तथाशयानस्यततोयशस्विनोमनस्विनोदाश रथेर्महात्मनः ॥ अदृष्टदुःखस्यसुखोचितस्यसा तदाव्यतीतासुचिरेणशर्वरी ॥ ५१ ॥

जिन यशवान दशरथजीके पुत्र रामचंद्रजी जिन्होनें कभी दुःख नहीं देखाथा और सदा सुखही पातेथे उन उपमा रहितके सोने पर लक्ष्मण सुमंत्र गुह रात्रि भर जागकर राजा दशरथ व अयोध्याकी वार्त्ता कहते रहे और वह रात शीघ्र वीत गई ॥ ५१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे पंचाशः सर्गः ॥ ५० ॥

एकपंचाशःसर्गः ॥

तंजाग्रतमदंभेनभ्रातुरर्थायलक्ष्मणम् ॥

गुहःसंतापसंतप्तोराघवंवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

लक्ष्मणजी को भाईकी रक्षा करते विना कुछ खाये पिये तमाम रात जागते देखकर गुहको वड़ाही शोक हुआ और वह वहुत ही दुःखी होकर लक्ष्मणजीसे बोला॥१॥हे राजकुमार! तुम्हारे वास्ते यह सुखमयी सेज बनाई गईहै! सो हेतात! तुम सुख पूर्वक इस पर शयन करके अपना श्रम दूरकरो ॥ २ ॥ हम साधारण लोगहैं और क्लेशके सहने वालेहैं परन्तु तुम सुखही भोगनेके लायकहो इस्से सो रहो। और रामचंद्रजीकी रक्षा करनेके लिये हम सब रात्रि भर जागते ही रहेंगे॥ ३ ॥ इसपृथ्वीके ऊपर रामचंद्रजीसे अधिक हमारा और कोई भी प्यारा नहींहै मैं अपने सत्यकी सौगन्ध करके यह सत्य बात कहताहूं ॥ ४ ॥ इन रामचंद्रजीके प्रसादसे मैं वहुत सारा यश धर्म और वहुत धन और वहुत कामकी प्रार्थना करताहूं ॥ ५ ॥ सीता सहित शयन किये हुये प्रिय सखा श्रीरामचंद्रजीको मैं जाति वाले लोगोंके साथ धनुष वाण धारण करके रक्षा करता रहूंगा ॥ ६ ॥ मैं इस वनमें सदा घूमता रहताहूं ऐसी इस वनमें कोई जगह नहीं या कोई वात ऐसी नहीं जो मैं न जानताहूं वडी भारी चतुरंगिनी सैनाके वेगको भी मैं सह सकताहूं अतएव इस समय रामचन्द्रजीकी रखवारी करनेंके लिये मैं सब भांतिसे समर्थहूं ॥ ७ ॥ लक्ष्मणजीने गुहकी यह वार्त्ता श्रवण करके उससे कहा कि हे निष्पाप! तुम धर्मज्ञहो जब तुमने रामकी रखवारीका भार लिया तब हमको कुछभी भय नहीं ॥ ८ ॥ परन्तु श्रीरामचन्द्रजी सीताजीके सहित भूमिपर शयन कियेहैं फिर भला मैं किस प्रकारसे सोऊं अथवा भोजन व अन्य सुख भोग करनेंमें पडूं ॥९॥ जो रामचन्द्रजी संग्राम भूमिमें समस्त देव दैत्यादिकोंका बल वीर्य सहनेंमें समर्थहैं वही इस समय श्री जानकीजीके साथ सुखसे तुनकोंकी सेजपर सोय रहेहैं ॥ १० ॥ राजा दशरथजीने विविध पराक्रमसे मंत्र और तपके प्रभावसे जिनको पुत्ररूपमें पायाहै और जोकि वह उन सब तपस्या आदि गुणोंसे युक्तहैं सो देखो तो यही उन दशरथजीके पुत्रहैं ॥ ११ ॥ इनके यहांको चले आनेसे राजा दशरथजी बहुत काल तक नहीं जी सकेंगे निश्चय यह पृथ्वी शीघ्रही वि-

धवा होगी ॥ १२ ॥ जब रामचन्द्रजी यहांको चलेथे तब सब स्त्रियां हा-राम हा राम ऐसा कहकर बहुत रोदन कर निस्तेजहो पृथ्वीमें गिरीथीं इस्से निश्चय अब रामचन्द्रजीके मंदिरमें भयानक होनेके कारण शब्दभी नहीं होताहोगा ॥ १३ ॥ राजा दशरथजी देवी कौशल्याजी व हमारी माता यह तीनों अबतक इस रात्रिमें जीवितहैं अथवा नहीं यह मुझको सन्देह होताहै ॥ १४ ॥ शत्रुघ्नका मुख देखती हुई चाहे हमारी माता तो जीतीभी रहैं पर यह बडा दुःखहै कि वीर जननी कौशल्याजी विना रामचन्द्रजीके अवश्यही प्राण त्याग करैंगी ॥ १५ ॥ रामचन्द्रजीके ऊपर अनुराग किये हुये जनोंसे भरी हुई सुखमयी लोकप्रिया अयोध्यापुरी हाय! सो आज राजा दशरथजीके कामवश होनेसे नाश होजायगी ॥१६॥ महात्मा ज्येष्ठ पुत्रके न देखनेसे राजा दशरथजी व और सब रानियेंही किस प्रकार शरीरको धारण किये रहैंगी ॥ १७ ॥ राजा दशरथजीकी मृत्यु होनेपर देवी कौशल्याजी अवश्य शरीर छोड देंगी और फिर हमारी माताजीभी न जी सकैंगी ॥ १८ ॥ हाय! मनोरथसे छूटे हुये राजा दशरथजी रामको राज्य देनेकी सब तैयारी कर चुकेथे फिर जो राजगद्दी रामको न देने पाये इस कारण हमारे स्नेहके मारे अवश्यही मृत्युके मुखमें गिरे ॥ १९ ॥ पिताजीका जब अंत समय उपस्थित होगा तो नहीं जानते उनके मरनेके पीछे कौन उनकी क्रिया करैगा और जो कोईभी उनका प्रेत कर्म करैगा यथार्थ में वह भाग्यवानहै ॥ २० ॥ जिस अयोध्या नगरीमें रमणीक चौराहे बडे २ मार्ग यथा स्थानमें शोभा विस्तार करतेहैं, जहां सैकडों मन्दिर और धवरहरे विराजमानहैं जहांपर कि सोलहों शृंगार किये वेश्यायें अनोखा उजला रूप बनाये शोभित हो रहीहैं ॥२१॥ जहांकि बहुत रथ, हाथी, घोडे मौजूदहैं जो नगरीकि सदा तुरईहीके शब्दसे शब्दायमान रहतीहै; जो नगरी सर्व कल्याणसे भरपूरहै जहांके निवासी सदा हट्टे कट्टे रहतेहैं ॥ २२ ॥ जहां पर कि आराम देनेवाली फूलोंकी वाटिकाहैं जहांपर सदाही अनेक प्रकारकी जातीय सभा हुआ करतीहैं उस सर्व कल्याण सम्पन्न पिताकी राजधानीमें वनसे आकर सुख सहित कब प्रवेश करैंगे ॥ २३ ॥ हा! यदि सुव्रत महात्मा हमारे पिता दशरथजी जीवित रहैं और हमभी वनवाससे कुशल पूर्वक

घर लौट आवें तब भली भांति उनके दर्शन करेंगे ॥ २४ ॥ बडी ही बात हो जो हम अपने सत्य प्रतिज्ञ भाई रामचन्द्रजीके साथ वनसे लौट-कर कुशल पूर्वक अयोध्याको आवें और पिताजीके साथही अयोध्यामें प्रवेश करें ॥ २५ ॥ महात्मा राजकुमार लक्ष्मणजो दुःख पूरित हृदयसे इस प्रकार विलाप कलाप बैठे हुये कर रहेथे इतनेमें रात्रि बीतगई॥२६॥

तथाहिसत्यंब्रुवतिप्रजाहितेनरेंद्रसूनौगुरुसौ
हृदाद्गुहः ॥ मुमोचबाष्पंव्यसनाभिपीडितो
ज्वरातुरोनागइवव्यथातुरः॥ २७ ॥

प्रजाके हित करनेमें राज कुमार लक्ष्मणजी सब ठीकही ठीक वचन कह रहेथे तब गुहनें यह बातें सुनी और स्नेह भाई चारेके मारे बहुत दुः-खित हुआ और बुखारसे घबडाये हाथीकी समान आंसू छोड़ने ल-गा ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अ० एकपंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपंचाशः सर्गः ।

प्रभातायांतुशर्वर्यांपृथुवक्षामहायशाः ॥
उवाचरामःसौमित्रिंलक्ष्मणंशुभलक्षणम् ॥ १ ॥

जब रात्रि बीतगई और बनाय प्रातःकाल होगया तब बडी छाती वाले महा यशवान् श्री रामचन्द्रजी शुभ लक्षणयुक्त लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १ ॥ हे भ्रातः! भगवती रात्रि बीतगई अब सूर्य भगवान उदय होनाही चाहतेहैं का-लीकोकिल इस समय कूक रहीहै ॥ २ ॥ वनमेंसे मोरका शोरभी सुनाई आताहै । हे सौम्य! आओ हम जल्दीसे इस तेज बहने वाली सागर गा-मिनी भागीरथी गंगाजीको उतर चलें ॥ ३ ॥ सुमित्रानन्दन लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीके यह वचन सुनकर गुह और सुमंत्रजीसे यह समाचार जना-कर रामचन्द्रजीके सामने खडे रहे ॥ ४ ॥ निषादपति गुहनेभी रामच-न्द्रजीके अभिप्रायको जानकर और उसे ग्रहणकर उसी समय अपने मं-त्रियोंको बुलाकर कहा ॥ ५ ॥ कि श्री रामचन्द्रजीके चढनेके योग्य अ-च्छे केवटके साथ अति सुन्दर चित्र विचित्र रँगी रँगाई खूब दृढ जिसमें कहीं कोई छिद्र नहो ऐसी नाव जिस घाटपर उतारहे वहां शीघ्र पहुँचा-

दो ॥ ६ ॥ गुहकी ऐसी आज्ञा श्रवण करके गुहके मंत्रियोंने एक रुचिर नाव मँगवाकर गुहसे निवेदन किया कि महाराज नौका आगई ॥७॥ इसके पीछे गुहने हाथ जोडकर श्री रामचन्द्रजीसे कहा कि हे देव! आपके वास्ते घाटपर नाव तैयारहै अब कौनसा कार्य करना होगा सो आज्ञा कीजिये ॥ ८ ॥ हे देव कुमारकी समान! सागर गामिनी नदीके उतरनेके लिये नौका तैयारहै; हे पुरुष व्याघ्र! जल्दी इस पर सवार हो जाइये ॥ ९ ॥ महा तेजवान रामचन्द्रजी गुहसे बोले कि हमारा कार्य पूरा होगया। अब शीघ्र हमारी सामग्री जोहै इसको नौकापर चढाइये॥१०॥ गुहसे यह बात कहकर श्री रामचन्द्रजी और लक्ष्मणजीने कवच धारण किया और यथा स्थानमें खड्ग धनुष और तरकस ग्रहण करके सीताजीके साथ उस मार्गपर चले जिसपर भागीरथी गंगाजीके उतरनेका मार्गथा और जहां नाव लगती थी ॥ ११ ॥ इस समय सुमंत्रजी विनीत भावसे शिर झुकाय रामके समीप आये और हाथ जोडकर कहा कि मुझे इस समय क्या आज्ञा होतीहै ॥ १२ ॥ रामचन्द्रजीने सुमंत्रजीको उत्तम दाहिने हाथसे स्पर्श किया और कहा कि हे सुमंत्र! जल्दी राजाके पास लौट जाओ और वहां सावधानहो वास करते रहो१३॥ तुम लौट जाओगे तो मेरा ठीक काम हो जायगा। हम रथ छोड करके पैदलही महावनको चले जांयगे ॥१४॥ जब सुमंत्र सारथिको इस प्रकार लौट जाने की आज्ञा हुई तब वह बहुत दुःखित हुए और इक्ष्वाकु नंदन पुरुष सिंह श्री रादचन्द्र जीसे बोले ॥१५॥ हे देव! जिस भाग्यके प्रभावसे आप भ्राता और भार्या सहित साधारण मनुष्य की समान वनवासी हुये सो इस लोकमें कोई पुरुषभी उस भाग्यको उल्लंघन नहीं कर सकता॥१६॥ ब्रह्मचर्यके करने वा वेदके पढनेसे कोई फल मिलताहै? यह तो मेरा मन मानता नहीं यदि इनसे कुछ फल होता तो आप किस प्रकार इस दशामें पड वनको आते क्योंकि आपने तो ब्रह्मचर्य और वेद इत्यादि सबही पढाहै और किया है। जो कहो कि मृदुता और सरलतासे फल है सो यह भी नहीं क्योंकि इन सब गुणोंके रहते आप सरीखे जनों पर खोटा भाग्य आही गया ॥ १७ ॥ हे वीर रघुनन्दन! आप भ्राता लक्ष्मण और वैदेही जीके साथ वनमें वास करके परम गति लाभ करेंगे और त्रिलोकी-

को जीत लेंगे क्योंकि तीनों लोकमें ऐसी आज्ञा पालन करने वाला कोई नहीं दीखता ॥ १८ ॥ परन्तु हम आपकी संगतसे छुटकर मरनेकी तुल्य होगये अब हमें उस पापका आचरण करनेवाली कैकेयीके वशमें रहकर दुःख भोगना पडेगा ॥ १९ ॥ आत्माकी समान रघुनाथजीके सुहृद सुमंत्रजी रामचन्द्रजीको दूर देश जाते हुये देखकर इस प्रकारके वचन कहकर हृदयमें बहुतही दुःखित हो रोने लगे ॥ २० ॥ कुछ देर-तक रोनेके पीछे सुमंत्रजी चुपाय रहे और पानी से मुँह धोया तब मधुर वचनोंसे वार२ श्री रामचन्द्रजी उनसे कहने लगे ॥ २१ ॥ सुमंत्रजी! तुम्हारी समान इक्ष्वाकु वंशियों में दूसरा सुहृद और नहीं दृष्टि आता अतएव हमारे पिता महाराज दशरथजी जिससे कि मेरे वास्ते कुछ शोच न करें वही काम तुमको करना चाहिये ॥ २२ ॥ वह वृद्ध राजा एकतो राज कार्यके भार सेही घवडाये हैं और दूसरे हमारे चले आने से उँनका चित्त शोकसे हरा गया अथवा व्याकुल हुआ है वस यही कारण है कि मैं तुमसे लौटने को कहताहूं ॥२३॥ वह महीपति कैकेयी का प्रिय कार्य करनेंके लिये जो कुछ भी आज्ञा करें उसे विना विचार किये अति शीघ्र आप किया करना जिस्से कि इस शोकावस्थामें उनको कोई और क्लेश न पहुँचै ॥ २४ ॥ राजा लोग इस वास्ते ही राज्य का शासन किया करते हैं कि कोई कार्यहो उनके मनके विरुद्ध न होने पावे ॥ २५ ॥ अतएव हे सुमंत्रजी! उन महाराज दशरथ जीका अप्रियकार्य जिससे न हो और जिस्से कि वह शोकसे घवडा नहीं जांय वस तुम ऐसाही कार्य करनेमें सदा यत्न करते रहना ॥ २६ ॥ हमारे पिताने इस दुःखको छोड और कोई दुःख नहीं देखा वह बूढे तो होही चुके हैं अति श्रेष्ठ व जितेन्द्रिय हैं इससे हमारे हेतु उनसे प्रणामकर हमारा यह वचन कह देना कि ॥ २७ ॥ हम या लक्ष्मण जो इस बातका कुछ भी शोच नहीं करते कि अयोध्या पुरीसे निकलकर हमें वनवास करना पडा इस कारण हमारे दुःखकी आप कोई चिन्ता न करना ॥ २८ ॥ चौदह वर्षके वीतने पर हमको लक्ष्मण जी व जानकी जीको शीघ्रही आप फिर अयोध्यामें आया हुआ देखेंगे ॥ २९ ॥ हे सुमंत्रजी! हमारा ओरसे इस प्रकार राजा दशरथ जीसे व देवि कौशल्या जीसे भी यही कहना औरभी

सब माता ओंके साथ कैकेयीसेभी वारंवार यही कह देना ॥ ३० ॥ हमारी माता कौशल्या जीसे हमारा और आर्य लक्ष्मणजीका प्रणाम कहकर कह देना कि यहँ सब वनमें रोग रहित हैं ॥ ३१ ॥ और महाराज दशरथजीसे तुम यह कह देना कि जल्दी भरत जीको बुलालें और उनके आतेही राजगद्दी उन्हें देदें ॥ ३२ ॥ भरत जीको गोदमें विठाकर और यौवराज्यमें अभिषिक्त करके वह महाराज दशरथजी मेरे विरहसे उत्पन्न हुये संताप से छूट जांयगे ॥ ३३ ॥ हमारी ओरसे तुम भरतजीसे भी इस प्रकार कह देना कि राजाके प्रति जैसा व्यवहार करें वैसेही ऐसा सब माता ओंके साथ व्यवहार करें ॥ ३४ ॥ जैसे कि कैकेयी तुम्हारी माता है तैसेही सुमित्रा में कुछ अंतर नहीं वैसे ही हमारी माता कौशल्याजी इन तीनों माताओंमें वह कुछ अंतर न समझें ॥ ३५ ॥ तुम पिताजीका प्रियकार्य करनेके अभिप्रायसे सदा राज्यको देखते भालते रहियो और दोनों लोकोंमें सुख देना अर्थात् इस प्रकारसे प्रजापालन करना जिसमें इस लोकमें यश और परलोकमें सुखमिले ॥ ३६ ॥ जब सुमंत्रजीको इस प्रकार रामचंद्रजीने उपदेश दिया और भरत इत्यादिको संदेशाकहा तब सुमंत्रजी इन सब वचनोंको श्रवण करते हुये स्नेहके वचन रामचंद्रजीसे बोले ॥ ३७ ॥ मैं रीतिको छोडकर स्नेहके मारे विकल चित्तहो आपसे जो कुछ अनुचित कहताहूं सो उसको आप क्षमा कर दीजिये क्योंकि आप भक्तिमानहैं ॥ ३८ ॥ हे तात ! आपको परित्याग करके आपके वियोगमें पुत्र शोकसे आतुर हुई माताकी समान उस अयोध्या पुरीमें मैं किस प्रकार गमन करूं ! ॥ ३९ ॥ अयोध्यावासी जिन सब लोगोंने मेरा रथ रामके सहित देखाहै सो इस समय रामके विना देखे कैसे जियेंगे और क्यों न वह पुरी विदीर्ण हो जायगी ॥ ४० ॥ महारथी वीरके संग्राम में मारे जाने पर सारथिको खाली रथ लाते हुये देख सैना जिस प्रकारसे शोक करती है वैसेही रामचन्द्रजीका रथ सूना देखकर सब प्रजा वैसीही दीन और दुःखित होजायगी ॥ ४१ इस समय आप यद्यपि अयोध्या पुरीसे दूर चले आयेहैं तौभी प्रजा ओंके मनके आगे ही आप वसतेहैं। प्रजा गण आहार निद्रा छोड छाँडकर दिनभर आपकी चिन्ता करतेहैं इसी

कारण दुबले हुये जातेहैं फिर आपका रथ सूना देखकर कैसे धीर धरैं-गे ॥ ४२ ॥ हे रामचन्द्रजी जिस समय कि आप वनको चलेथे तो आ-पने अपने नेत्रोंसे ही देखाथा कि प्रजा कैसी आपके शोकसे खिन्न चि-त्त होगईथी ॥ ४३ ॥ जब कि आप वनको चलेथे और उससमय जो अयोध्यावासियोंने आर्त्त नाद कियाथा मुझे खाली रथ समेत लौटा हुआ देखकर वह लोग उससे सौ गुणा हाहाकार मचावेंगे ॥ ४४ ॥ मैं अयोध्याजीमें जाकर क्या कौशल्याजीसे यह कहूंगा कि ह-म तुम्हारे पुत्रको उनके मामाके घर पहुंचा आये अब आप उन-के लिये कुछ शोक न करैं इस प्रकारके मिथ्या वचन भी तो उनसे नहीं कहसकता अथवा आपके पुत्रको वनमें छोड आये यह कुप्यारा वचन भी तो मैं उनसे किस प्रकार कहूं ॥ ४५ ॥ ४६ ॥ मेरे तहत में रहकर इन सब उत्तम घोडोंने आपको या आपके सम्बन्धि-योंको सदा अपने ऊपर चढायाहै; सो अब इस समय आपसे अलग हुआ रथ यह किस प्रकारसे लेजायँगे ॥ ४७ ॥ हे अनघ मैं आपके विना अयोध्या नगरीमें किसी भांति नहीं जा सकता अतएव मुझे अपने साथ वनमें ही जाने की आज्ञा दीजिये ॥ ४८ ॥ मेरे इस प्रकार प्रार्थना करने पर यदि आप वनको मुझे छोडकर चलेही जायँगे तो आपके त्यागतेही मैं रथके सहित अग्निमें प्रवेश करूंगा ॥ ४९ ॥ हे राघव ! यदि आप अपने साथ मुझे भी वनको ले चलेंगे तो वनके मध्य तपमें विघ्न करने वाली जो कुछ बाधायें आपको उपस्थित होंगी मैं रथकेही द्वारा उन सबको रोकलूं-गा ॥ ५० ॥ आपके ही वास्ते हमने यहां रथ हांकनेसे सुख उठाया अ-ब यह प्रार्थना करताहूं कि आपहीके द्वारा वनवास का सुखभी प्राप्त-हो जावे ॥ ५१ ॥ हे रघुनन्दन ! आप प्रसन्न हूजिये और मुझको भी अपने वनका साथी कर लीजिये। आप प्रीति पूर्वक रहैं औ-र मैं आपका साथी हूं अतएव मुझे संग लीजिये ॥ ५२ ॥ हे वीर ! यह घोडे यदि वनवासमें आपकी कुछ भी सेवा कर सकैंगे तो इनको भी परमगति मिल जायगी ॥ ५३ ॥ मैं यदि वनमें रह कर शिरके बल भी आपकी सेवा करसकूं तब इसके लिये तो मैं देवलो-

क व अयोध्याकी वासनाभी त्याग करसकताहूं ॥ ५४ ॥ जिस प्रकार बुरे कर्म करने वाले अधर्मी जन इन्द्रकी राजधानी अमरावती-में प्रवेश नहीं कर सकते वैसेही पुण्यवान आपके विना में अयोध्या-में प्रवेश नहीं करसकता ॥ ५५ ॥ हे राजन् ! हमारा मनोरथ यही है कि चौदह वर्ष वनवासका समय विताकर इसी रथ पर चढाकर हम आपको अयोध्यापुरीमें लावें ॥ ५६ ॥ आपके साथ वनमें रह-नेसे यह चौदह वर्ष एक क्षण की समान बीत जांयगे; पर जो अ-योध्यामें रहूं तो आपके विना यही चौदह वर्ष सैंकडों वर्षोंके समान वीतेंगे ॥ ५७ ॥ हे भक्तवत्सल ! आप हमारे स्वामीके पुत्रहैं और मैं आपके पथका पथिक होने की इच्छा करताहूं (अर्थात् साथ चला चाहताहूं) मैं आपका भक्त और चाकरहूं अतएव मुझको छोडकर जाना किसी प्रकारसे भी आपको उचित नहीं है ॥ ५८ ॥ सुमंत्रजी दीनतासे भरे हुये वचनों से वारंवार ऐसी प्रार्थना कर-ने लगे तब सेवकोंके ऊपर कृपा करने वाले श्रीरामचंद्रजी सुमंत्रसे बो-ले ॥ ५९ ॥ हे स्वामिवत्सल ! हमारे पर जो तुम्हारी परमभक्तिहै यह मैं भली भांति जानताहूं तथापि जिस कारणसे मैं अब तुम्हें अयोध्या-जीमें भेजताहूं वह श्रवण करो ॥ ६० ॥ हमारी छोटी माता केकेयी तुमको नगरीमें आया हुआ देखकर जानलेगी कि सत्यही सत्य रामचंद्र वनको चलेगये जो ऐसे न होगा तो उसे विश्वास नहोगा ॥ ६१ ॥ वह मेरे वन चले जानेसे प्रसन्न होकर फिर धार्मिक महाराज दशरथजीको मिथ्यावादी जानकर शंका न करैगी ॥ ६२ ॥ मेरी यही परम इच्छाहै और यही प्रार्थना संकल्पहै कि जिस्से हमारी छोटी माता भरतसे र-क्षित धन संपत्ति युक्त राज्यके सुखका भोग करैं ॥ ६३ ॥ हे सुमंत्रजी ! तुम हमारा व महाराज दशरथजीका प्रिय करनेंके लिये अयोध्या पुरी को चले जाओ जो जो संदेशा जिस २ से कहनेको तुमसे कह दियाहै विना घटाये वढाये ज्यों का त्यों सबसे कह देना ॥ ६४ ॥ रामचंद्रजी इस प्रकारके वचनोंसे वारंवार सुमंत्रजीको समझाय दीन भावसे टिके गुहसे यह हेतु युक्त वचन बोले ॥ ६५ ॥ हे गुह ! अब इस सजन वनमें हमें वास करना उचित नहीं है क्योंकि यहां सब अपनेही लोग रहतेहैं,

परन्तु निर्जन आश्रममें वास करना और उसकेही अनुसार विधिका प्रतिपालन करना हमें उचितहै ॥ ६६ ॥ मैं पिता, सीता, और लक्ष्मण-का हित करनेंके लिये तपस्वी जनोंका भूषण नियम ग्रहण कर और उनको प्रतिपालन कर ॥ ६७ ॥ जटा बनाय निर्जन वनको चला जा-ऊंगा सो जटा बनानेके वास्ते बड़का दूध मंगा दीजिये । रामचंद्रजीके यह वचन सुन गुहनें बहुत शीघ्र बड़का दूध मँगा दिया ॥ ६८ ॥ राम-चंद्रजीनें उस बड़के दूधसे अपनी व लक्ष्मणजीकी जटा बनाई, दीर्घ बाहु पुरुषसिंह ऐसे श्रीरामचंद्रजी जटा रखाय तपस्वी हुए ॥ ६९ ॥ उस समय चीर वसन धारी जटा मंडल विभूषित रामचंद्र व लक्ष्मण दोनों भाई दो ऋषियोंकी समान शोभा पाने लगे ॥ ७० ॥ अनन्तर रामचंद्र-जी लक्ष्मणके सहित वैश्वानर व्रत अर्थात् वानप्रस्थ अवलंबन करते हुये और उस धर्मके अनुसार सब नियम धारण करनें में निश्चय कर सहाय रूप गुहसे बोले ॥ ७१ ॥ हे गुह ! तुम सैना, खजाना, किला, औ-र देशकी रक्षा करनेमें सदा सावधान होशियार रहना क्योंकि राज्यकी रक्षा करना बडा कठिन कामहै ॥ ७२ ॥ इक्ष्वाकुनंदन श्रीरामचंद्रजी गुहको यह जताकर अचलायमान चित्तसे शीघ्रताके साथ जानकी व लक्ष्मणके सहित चले ॥ ७३ ॥ और गंगाजीके किनारे पर पहुँच-कर और वहां एक नाव देखकर श्रीरामचंद्रजी उत्तर गामिनी गंगाजीको शीघ्र पार उतरने की इच्छासे बोले ॥ ७४ ॥ हे पुरुषव्याघ्र ! तुम धो-रे २ चिन्ताशील सीता देवीको युक्ति पूर्वक इस नाव पर चढाय फिर तुमभी चढलो ॥ ७५ ॥ लक्ष्मणजीने रामचंद्रजीको अनुकूल आज्ञा ग्र-हण करके प्रथम सीताजीको नाव पर चढाया और पीछेसे आपभी च-ढते हुये ॥ ७६ ॥ फिर महातेजवान लक्ष्मणजीके बडे भाई श्रीरामचंद्रजी भी नाव पर चढे गुहने तीनों जनोंको नाव पर चढा हुआ देखकर अपने नौकर चाकरोंको नावके चलाने की आज्ञादी ॥ ७७ ॥ महातेजवान श्रीरामचंद्रजी नाव पर सवार होकर अपना हित करनेके लिये कि जिस्से कुशल सहित पार होजांय जैसा ब्राह्मणों व क्षत्रियों को जो करना चाहिये वह जप करने लगे ॥ ७८ ॥ सीता और महारथी ल-क्ष्मणजीने यथाविधि आचमन करके प्रीति पूर्वक भागीरथी गंगाजीको

प्रणाम किया ॥ ७९ ॥ रामचंद्रजीने सुमंत्रसे और सेना सहित गुहसे लौटनेको कहकर नाव पर बैठे खेवटोंसे कहाकि शीघ्र नाव चलाओ ॥ ८० ॥ तदनन्तर वह डांड पतवार वल्ली युक्त नौका खेवटोंसे खेई जाकर शीघ्रही गंगा जलके ऊपर जाने लगी ॥ ८१ ॥ अनिन्दिता वैदेहीजी धारके बीचोंबीचमें पहुँच हाथ जोडकर गंगाजीसे विनय करने लगीं ॥ ८२ ॥ हे गंगे ! बुद्धिमान राजाधिराज दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजी आपकी रक्षासे रक्षितहो अपने पिताजी की आज्ञा पालन करने में समर्थहों ॥ ८३ ॥ और चौदह वर्षतक वनमें रहकर भ्राता लक्ष्मण औ हमारे सहित जो कुशल पूर्वक लौटेंगे तो हे शुभगे ! शुभकाम बढानें वाली गंगे हम तीनों जने आनंद मंगल सहित तुम्हारी पूजा करैंगे ॥८४॥८५॥हे त्रिपथगे । देवि आप ब्रह्म लोकमेंभी व्याप रहीहैं और लोकोंमें भी समुद्रकी स्त्री रूपसे दृष्टि आतीहो अतएव सब प्रकार पूजा करनेके योग्यहो॥८६॥अतएव हे शोभने मैं तुम्हें वारंवार नमस्कार करतीहूं और तुम्हारी प्रशंसा करतीहूं जो पुरुषसिंह रामचंद्रजी कुशल पूर्वक लौटकर राज्य पावैं तो ॥८७॥ आपकी प्रसन्नताके माहात्म्यसे ब्राह्मणोंको सहस्रों गौ अनेक प्रकारके वस्त्र और बहुत सारे उत्तम २ अन्न दूंगी ॥ ८८ ॥ हे देवि! मैं फिर अयोध्या जीको लौटकर हजार घडे सुन्दर सुरा उत्तम २ पदार्थोंसे जोकि देवताओंके यहां भी नहीं उन पदार्थों व भात व मांस आदिक अन्नोंसे तुम्हारी पूजा करूंगी आप हम सब पर प्रसन्न हूजिये ॥ ८९ ॥ हे देवि ! जो सब देवता लोग कि आपके तटपर वास करतेहैं और आपके किनारे जितने तीर्थ और देव मंदिरहैं मैं उन सबहीकी पूजा करूंगी ॥ ९० ॥ हे अनघे ! इससे आप ऐसी अशीश दीजिये कि जिससे हमारे और लक्ष्मणके सहित निष्पाप महाबाहु रामचंद्रजी अयोध्यापुरीमें प्रवेश करैं ॥ ९१ ॥ पतिकी प्यारी अनिन्दिता जानकीजी गंगाजीसे इस भांति कह रहींथीं कि इतने में नाव गंगाजीके दक्षिण किनारे पहुँची ॥ ९२ ॥ शत्रुओंके तपानेवाले नरश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी गंगाजीके तीरको प्राप्त होकर नावसे उतर भाई लक्ष्मण और सीताके साथ दक्षिण दिशाको चले ॥ ८३ ॥ अनन्तर महाबाहु श्रीरामचंद्रजी सुमित्राजीके आनन्द बढानेवाले लक्ष्मणजीसे बोले कि सजन वनमें अथवा वि-

जन वनमें तुम सवही कहीं सीताजीकी रक्षा सावधानीसे करना ॥ ९४ ॥ विशेपता इस मनुष्यहीन वनमें हम सरीखे पुरुषोंकी स्त्रीकी रक्षा करना अवश्य कर्त्तव्यहै, अतएव तुम आगे २ चलो और सीता तुम्हारे पीछे २ चली चलें ॥ ९५ ॥ मैं सीताकी और तुम्हारी रक्षा करता हुआ सबसे पीछे २ चलूंगा क्योंकि हे पुरुषश्रेष्ठ ! हमको आपसमें एक दूसरेकी रक्षा करनेका समय उपस्थित हुआहै ॥ ९६ ॥ मैं जन्मसे लेकर अवतक किसी दुःखमें नहीं पडाथा, सो मैं तो किसी प्रकार यह दुःख सहन करही लूंगा। परन्तु आज वैदेहीजी वनवासके दुःखको जानेंगी कि वनमें ऐसे २ क्लेश होतेहैं ॥ ९७ ॥ आज जन व मनुष्यों करके रहित व खेत और फुलवाडियों आदि करके हीन, बडे २ गढे पडे हुये ऐसे ऊँचे नीचे विषम वनमें यह जानकीजी चलैं फिरैंगी ॥ ९८ ॥ लक्ष्मणजी रामचंद्रजीके यह वचन श्रवण करके आगे २ चले, बीचमें सीताजी और पीछे २ रामचंद्रजी गमन करने लगे ॥ ९९ ॥ जब रामजी गंगाजीके पार होगये तबभी सुमंत्रजी एक टक दृष्टिसे उनको देखही रहेथे, परन्तु रामचन्द्रजी दूर निकल गये और दृष्टि वहां तक न पहुँचसकी तब सुमंत्रजी निरुपाय होकर मनमें दुःखित होकर रोने लगे॥१००॥वह लोकपालोंकी समान प्रभाव शाली महात्मा वरद श्रीरामचंद्रजी महानदी भगवती गंगाजी के पार होकर धन धान्य युक्त प्रमुदित वनके वत्स्यप्रदेशमें गये ॥ १०१ ॥

तौतत्रहत्वाचतुरोमहामृगान्वराहमृश्यंपृषतं महारुरुम् ॥ आदायमेध्यंत्वरितंबुभुक्षितौवा सायकालेययतुर्वनस्पतिम् ॥ १०२ ॥

तहां रामचंद्र व लक्ष्मण दोनों भाइयोंने ऋष्य, पृषत, वराह और रुरु यह चार महामृग मारके लेकर और भूँखे हुये तब संध्याको वास करनेके लिये एक वृक्षके नीचे गमन करते हुये ॥ १०२ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० अ० द्विपंचाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशः सर्गः ॥

सतंवृक्षंसमासाद्यसंध्यामन्वास्यपश्चिमाम् ॥

रामोरमयतांश्रेष्ठइतिहोवाचलक्ष्मणम् ॥ १ ॥

गुणाभिराम रामचंद्रजी उस वृक्षके नीचे जाकर और सायंकालके संध्या वन्दनादि समाप्त करके लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १ ॥ भ्रातः! अपने देशसे वाहर हुये और सुमंत्रका साथ छूटे आज हमें यह पहलीही रात वितानी पडतीहै सो तुम घरके सुख याद करके उसकी उत्कंठा मत करना ॥ २ ॥ आजसे लेकर प्रति रात्रि हमें निद्राको त्याग करके सब रात्रि जागना पडा करैगा और हम दोनोंको सदा सावधानीसे रहकर सीताजीकी रक्षा क्षेम करनेमें यत्नवान होना चाहिये ॥ ३ ॥ हे सौमित्र! आओ हम इस समय किसी प्रकारसे यह रात्रि व्यतीत करैं पृथ्वीपर अपने आपसे इकट्ठे किये हुये तृणोंका विछौना विछाकर उस पर लेट रहें ॥ ४ ॥ वडे २ मोलके विस्तरों विछौनोंके लेटने योग्य श्रीरामजी भूमिकी सेजपर लेट करके लक्ष्मणजीसे यह वार्त्ता कहने लगे ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मण! निश्चयही आज महाराज दशरथजी वडे दुःखसे अचेतहो सोगये होंगे, और कैकेयी अपना मनोर्थ पाकर बहुतही आनंद पारही होगी ॥ ६ ॥ मुझको एक बड़ा भारी डर व सन्देह होताहै, कि वह देवी कैकेयी भरतको आया देखकर राज्यके लालचसे कहीं महाराज दशरथजीके प्राणका तो नाश न करदे ॥ ७ ॥ एक तौ राजा दशरथजी बूढे होगयेहैं फिर कामके फंदेमें पडेहैं, अजितेन्द्रिय और फिर मेरे यहां चले आनेके दुःखसे व्याकुल होंगे; अतएव अब वह कैकेयीके वशमें पडकर क्या करते होंगे ॥८॥ महाराज दशरथजीको यह काममें वशी इच्छा और बुद्धिमें भ्रम देखकर मेरे विचारमें आताहै कि इस संसारमें धर्म और अर्थसे अधिक कामही प्रवलहै ॥ ९ ॥ हे लक्ष्मण! कोई मूर्ख आदमीभी स्त्रीके वश होकर हमारी समान आज्ञाकारी पुत्रको परित्याग कर सकताहै, जिस प्रकार हमें महाराज दशरथजीनें त्यागाहै ॥ १० ॥ कैकेयीसुत भरतकोही स्त्रीके सहित सुखी कहना चाहिये, क्योंकि वह अकेले महाराजा धिराजकी समान इस समय सब प्रमुदित कौशल राज्य भोगेंगे ॥ ११ ॥ मेरे वनको चले आनेसे और राजा बूढे तो होही गयेहैं सो उनके परलोक चले जानेके वाद वह भरतही अकेले सब राज्यका सुख प्राप्त करैंगे ॥ १२ ॥ अ-

र्थ और धर्मको छोड करके जो केवल कामकेही वश होजाताहै वह इसी प्रकार गिर जाताहै जैसे कि राजा दशरथजी गिरे॥ १३ ॥ हे सौम्य ! हमारे मनमें यह बात आतीहै कि दशरथजीका नाश करनेके लिये मुझको वनमें पठानेके वास्ते और भरतको राज्य दिलानेके अर्थही कैकेयी यहां आई ॥ १४ ॥ हे लक्ष्मण ! मुझे यहभी सन्देह होताहै कि इस समय कैकेयी सौभाग्यके मदसे मोहित होकर हमसे वैर करनेके कारण माता सुमित्रा और कौशल्यादेवीको क्लेश देनेमें कसर न करती होगी ॥ १५ ॥ हमारे लिये सुमित्रा व देवी कौशल्या माता दुःख पाती रहैंगी, अतएव हे लक्ष्मण ! तुम सवेरा होतेही अयोध्याको चले जाओ ॥ १६ ॥ मैं अकेलाही जानकीके सहित वनको चला जाऊंगा और तुम अनाथा कौशल्याजीके गति समान हो जाओगे ॥ १७ ॥ हे धर्मज्ञ ! इस कैकेयीका वडाही ओछा कर्महै वह वैरसे अन्यायका कर्मभी करसकतीहै उसे माता कौशल्या और सुमित्रा देवीको विष देते हुयेभी कुछ नहीं लगता ॥ १८ ॥ हे सौमित्रे ! निश्चयही हमारी माता कौशल्याजीने पहिले जन्ममें अनेक माताओंसे उनके पुत्र अलग किये होंगे नहीं तो ऐसी चिन्तामेंभी न आनेवाली विपत्ति उनपर क्यों पडती ? ॥ १९ ॥ हा ! माता कौशल्या देवीने हमें बहुत दुःखसह बहुत समयमें पालन पोषणकर इतना वडा किया और जब फल खानेका समय आया तो हम उनको छोडकर यहां चले आये इस्से हमें धिक्कारहै ! ॥ २० ॥ हे सौमित्रे ! मैंने जिस प्रकार अपनी माताको अगाध शोक समुद्रमें डुबायाहै सो कोईभी भाग्यशाली ललना मेरे समान दुःखदायक पुत्रको उत्पन्न न करै ॥२१ ॥ हे लक्ष्मण! हमसे अधिक हमारी माताकी स्नेह सहित पाली हुई वह सारिकाही अच्छीहै, क्योंकि वह समय२ " कौशल्याजीके वैरीके पैर में काट खाओं " इत्यादिक वाक्य परूपसे कहकर हमारी माताका मन प्रसन्न किया करतीहै ॥ २२ ॥ हे अरिन्दम ! मैं उन्हीं छोटे भाग्यवाली अपनी माताके शोकके समयही जब उनका कुछ उपकार न कर सका तब मेरे होनेसे उनको फल क्या हुआ इस्से तो विनाही पुत्र अच्छीथीं कि वियोगका दुःख न सहना पडता ॥ २३ ॥ हाय! अम्मा भाग्यवाली हमारी माताजी कहीं कौशल्या देवी मेरे बिना दुःखीहो शोक समुद्रमें निमग्न

और परम दुःखयारी होकर इस समय शयन करती होंगी ॥ २४ ॥ हे लक्ष्मण ! मैं क्रोधित होकर इकलाही अयोध्या, वरन सब पृथ्वीहीको शरद्वारा अपने वशमें कर सकताहूं, परन्तु मेरा वीरत्व प्रकाश करना अब निष्फलहै। क्योंकि हे अनघ ! मैंने अधर्म्म और परलोकका भय करके कुछ नहीं किया और इसीकारणसे आजही मैं इस राजगद्दी परनहीं बैठ सकता ॥२५॥२६॥ जन करके हीन वनमें रात्रिके समय इस प्रकार व और भी अनेक भांतिके विलाप कलाप करके रामचन्द्रजी दीन भावसे रोदन करके मौन होगये ॥ २७ ॥ शिखाहीन अनल और वेग रहित समुद्रकी नाईं रामचन्द्रजीको विलाप में रत देखकर लक्ष्मणजी उनको समझाने लगे॥२८॥हे श्रेष्ठ ! अस्त्रधारण करने वाले आप अयोध्या नगरीसे चले आयेहैं,अतएव चंद्र हीन रात्रिकी समान आज निश्चयही अयोध्यापुरी प्रभाहीन होगई ॥ २९ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! आप जो हमें और सीता देवीको विषादित करते हुये इस प्रकार का शोक कर रहेहैं यह आपको उचित नहीं है ॥ ३० ॥ हे राघव ! नतो सीताजी और न मैं आपसे अलहदा होकर जलसे निकली हुई मछलियों की समान जरा देर भी तो नहीं जी सकतेहैं ॥३१ ॥ मैं आपके बिना क्या पिता क्या शत्रुघ्न क्या सुमित्रा किसीको भी देखने की इच्छा नहीं करता वरन इनकाही क्या मैं आपके विरहमें स्वर्गमें भी रहना भला नहीं समझता ॥ ३२ ॥ अनन्तर धर्मवत्सल श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी निकटही वट वृक्षके तले शय्याको रचित देखकर तिसपर शयन करते हुये ॥ ३३ ॥ रामचन्द्रजी लक्ष्मणजीकी वह गुण भरी वार्त्ता श्रवण करके उसको सुखप्रद समझते हुये वनवासके धर्मको अंगीकार करके और फिर जबतक वनमें बसे तबतक ऐसे व्याकुल कभी नहीं हुये और लक्ष्मणके साथ रहे॥३४॥

ततस्तुतस्मिन्विजनेमहाबलौमहावनेराघववंशवर्धनौ ॥ नतौभयंसंभ्रममभ्युपेयतुर्यथैवसिंहौगिरिसानुगोचरौ ॥ ३५ ॥

उस जन हीन वनमें रघुवंशके बढानेवाले महाबली रामचन्द्र व लक्ष्मणजी पहाडों पर घूमने वाले दो शेरोंकी नाईं विचरण करने लगे

और उनके निकट भी कोई भय सम्भ्रम नहीं आया ॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा० आ० अ० त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुःपंचाशः सर्गः ॥

तेतुतस्मिन्महावृक्षेउषित्वारजनींशुभाम् ॥
विमलेभ्युदितेसूर्येतस्माद्देशात्प्रतस्थिरे ॥ १ ॥

राम लक्ष्मण और सीताजी उस वट वृक्षके तले वह शुभ रात्रि विता कर विमल सूर्यदेवके उदय होने पर उस स्थानसे प्रस्थान करते हुये॥१॥ वह सीता राम लक्ष्मणजी घने २ बडे वनमें होकर उस ओर को लक्ष्य करके चले कि जहां भागीरथी गंगा और यमुना का संगम हुआ है ॥ २ ॥ वे दोनो यशस्वी मार्गमें अनदेखे हुये अनेक प्रकारके विना देखे देश व मनोहर २ भूमि भाग देखते हुये चले जातेथे ॥ ३ ॥ इस प्रकार सुख पूर्वक विविध भांतिके फूल फले पेडोंके समूह देखते हुये दिन थोडा रह जाने पर रामचन्द्रजी लक्ष्मणसे बोले ॥ ४ ॥ हे सौमित्रे! प्रयाग तीर्थकी ओर को देखो भगवान अग्निका चिह्न स्वरूप सुन्दर और सुगन्धित धुआं उठ रहाहै बोध होताहै कि भरद्वाजजीका आश्रम यहींहै देखिये अग्निसे जो धूम निकलताहै वह मानों अग्निकी पताका है ॥ ५ ॥ और हम निश्चयही गंगा यमुनाके संगमकी जगह आ पहुँचेहैं। यह देखो दोनों नदियों का जल परस्पर मिलनेसे शब्द हो रहाहै ॥ ६ ॥ वनवासी लोगोंने नाना प्रकारके काठ इकट्ठे कर रक्खे हैं सो उन लोगोंके काटे हुये वृक्षभी दिखाई देतेहैं ॥ ७ ॥ अनन्तर सूर्य नारायण पश्चिम दिशाकी तरफ पहुँचे, व धनुषधारी राम लक्ष्मणजी भी गंगा यमुनाके संगम स्थलमें पहुँच कर भरद्वाजके आश्रममें आये॥८॥ आश्रम में पहुँच कर दुष्ट मृग और पक्षियोंको त्रास देते हुये मुहूर्त भरमेंही भरद्वाजजीके निकट पहुँचे ॥९॥ अनन्तर सीताजीके साथ दोनो भाई सहसा निकट न जाकर उनके दर्शनकी वांछासे दूरही खडे रहे ॥ १० ॥ जब अनुमति मिली तब महाभाग रामचन्द्रजीने पर्णशालामें प्रवेश करके देखा कि महानुभव भरद्वाजजी अपने शिष्योंके संग बैठे हुयेहैं

और भली प्रकारसे व्रत करने में यत्नवानहैं और एकाग्र चित्तसे तपोबल करकै जिनको त्रिकाल का ज्ञानहै ॥ ११ ॥ महाभाग ऋषिको अग्निहोत्रमें आहुति देते हुये देख रामचन्द्रजीने लक्ष्मण और सीता सहित हाथ जोडकर उसी समय उन ऋषिके चरणोंमें प्रणाम किया ॥ १२ ॥ और यह कहकर लक्ष्मणजीके बडे भ्राताने अपना पता बताया कि हे भगवन् ! हम राजा दशरथजीके पुत्रहैं और नाम हमारा राम लक्ष्मणहै ॥१३॥ और यह कल्याणी जानकीजी हमारी स्त्री और राजा जनकजीकी पुत्रीहैं। और यह अनिन्दिता मेरा अनुगमन कर निर्जन तपोवनमें मेरे साथ२ आईहैं ॥ १४ पिताजीने हमें वनको भेजाहै इसी कारण हमारे प्रिय अनुज यह भ्राता लक्ष्मणजीभी व्रत धारण किये हुये हमारे साथ वनमें आयेहैं ॥ १५ ॥ हे भगवन् ! हम इस समय सब पिताही जीकी आज्ञासे वनको आयेहैं और कंद, मूल, फल खाकर धर्मका आचरण करते रहेंगे ॥ १६ ॥ महात्मा भरद्वाजजीनें धीमान् राजकुमार रामचंद्रजीके ऐसे वचन सुनकर उनके लिये गौ अर्घ्य, एवं चरण पखारनेके लिये जल मँगा दिया ॥ १७ ॥ और भरद्वाजजीने रामचन्द्रजीके लिये अनेक प्रकारके रसीले कंद मूल फल व अन्न खानेको दिये और फिर भोजन देनेके पीछे उत्तम स्थान रहनेको बता दिया ॥ १८ ॥ उन परम तपस्वी महर्षि भरद्वाजजीने मृग पक्षी और मुनियों से घिरे हुये सबके सामने रामचंद्रजीका आदर किया और स्वागत पूंछी ॥ १९ ॥ जब रामचंद्रजी उनकी दी हुई पूजाको ग्रहण करकै बैठगये तब महर्षि भरद्वाजजी धर्म युक्त वचन उनसे कहने लगे ॥ २० ॥ हे काकुत्स्थ नंदन! तुमको बहुतही दिनोंमें इस आश्रम पर आते हुये देखा और मैंने तुम्हारे वनमें आनेकाभी कारण सुन लियाहै ❋ ॥ २१ ॥ अच्छा जो हुआ सो हुआ गंगा यमुनाका संगम स्थित यह स्थान बहुतही निर्जन और पवित्र और परमरमणीकहै पुण्य स्वरूपहो तुम यहां सुख पूर्वक वासकरो ॥ २२ ॥ जब भरद्वाजजीनें इस प्रकार कहा तब सब लोकोंके हित करनेमें रत रघुनंदन रामचंद्रजी यह पवित्र वचन बोले ॥ २३ ॥

❋ बहुत दिनोंमें आये इस वचनके कहनेसे बोध होताहै कि पहले रामावतारमें भी आयेथे-

हे भगवन इस। आश्रमसे हमारी नगरी अयोध्या और देश बहुत निकट हैं सो अयोध्यावासी व इन देशोंके रहने वाले हमारे रूपको सुन इस आश्रममें आय २ ॥ २४ ॥ बडी भीड लगावेंगे व जानकीजीको देखनेवाली स्त्रियांभी बहुत आवेंगी इसकारण हम यहां रहना अच्छा नहीं समझते नहींतो सब भांतिका यहां सुख व आरामथा ॥ २५ ॥ अतएव भगवन्। जहां रहनेसे सुख पानेके योग्य जनकनन्दिनी वैदेहीजी सदा मनके सुख सहित रहैं सो आप एक ऐसा एकान्त स्थानमें उत्तम आश्रम बतला दीजिये ॥ २६ ॥ महामुनि भरद्वाज जी रामचंद्रजीके यह शुभ वचन श्रवण करकै उनसे यह अर्थ प्रतिपादक वचन बोले ॥ २७ ॥ हेतात! हमारे इस आश्रमसे दशकोशकी दूरी पर एक पहाडहै यह पहाड देखने में अति सुन्दर और परम पुण्य जनकहै और महर्षि गणों करकै सेवितहै ॥ २८ ॥ गोपुच्छ वानर और छोटी पूंछवाले वानर और रीछ यह सब उस पर्वत पर घूमा करतेहैं और उस पर्वतका नाम चित्रकूटहै, और वह गन्धमादन पहाडकी समान आकार वालाहै ॥ २९ ॥ उसके शृंगोंको देखतेही लोकोंके मन पापसे दूर और सत्य मार्गकी ओर को दौडतेहैं उस मनुष्यका मन कभी मोहमें नहीं लगता ॥ ३० ॥ वहां मृत मनुष्यके कपाल तुल्य शुष्क मस्तक वाले असंख्य ऋषि गण तपो बलसे सैकड़ों वर्ष तक विहार करकै अंतमें स्वर्गको गयेहैं ॥ ३१ ॥ वह स्थान बहुतही निर्जनहै मेरी सम्मति में तो तुम वहां सुख सहित वास कर सकोगे अथवा हे रामचंद्रजी! तुम्हारे वनमें रहनेका समय जबतक पूराहो तब तक तुम हमारेही साथ इस आश्रममें रहो ॥३२॥ इस प्रकारसे महर्षि भरद्वाजजी सबही अभिलाष पूर्ण करकै और हर्ष उपजाकर प्रिय पाहुने रामचंद्रजीको भ्राता और भार्या सहित विशेष रूपसे पूजा करते हुए ॥ ३३ ॥ रामचंद्रजीका प्रयागक्षेत्रमें महर्षि भरद्वाजजीके सहित समागम होनें और विविध चित्र विचित्र कथा वार्त्ता आरंभ होनें पर क्रमसे पुण्यमयी रात्रि हो आई ॥ ३४ ॥ सुख पानेके योग्य श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मण और सीता सहित रस्ता चलनेके श्रमसे कातरहो रमणीय भरद्वाजजीके आश्रममें सुख पूर्वक उस रात्रिमें वास करते हुये ॥ ३५ ॥ जब रात्रि बीतकर

प्रातःकाल हो आया तब श्रीरामचंद्रजी तेजसे प्रकाशमान भरद्वाज मुनिके निकट जाकर यह निवेदन करते हुये ॥ ३६ ॥ हे परम सत्य शील भगवन्! आज हमने आपके आश्रममें वसके रात विताई अब जिस स्थानको आपने हमारे बसने योग्य बतायाहै वहां जानेकी आज्ञा दीजिये॥३७॥जब रात्रि बीत गई और प्रातःकाल हो आया तब भरद्वाज जीने रामचंद्रजीसे कहा कि अब आप मधु, मूल, फल युक्त चित्रकूट पर चले जाइये ॥ ३८ ॥ हे महाबलवान् श्रीरामचंद्रजी हमारी सम्मतिमें चित्रकूटही तुम्हारे वसनेके योग्य स्थानहै वहां अनेक २ प्रकारके वृक्ष लगे हुयेहैं और बहुत सारे किन्नर समूह व उरग गण बास करते हैं ॥ ३९ ॥ वहां मोरोंका शोर हुआ करताहै और बडे २ हाथीभी वहां घूमा करतेहैं । सो तुम संसारमें विख्यात उसी चित्रकूट पर्वतपर गमन करो ॥ ४० ॥ यह पर्वत परम पवित्र रमणीय और अनेक प्रकारके फल फूलोंसे शोभितहै वहां हाथियोंके यूथ और मृगोंके झुन्डके झुन्ड वनमें घूमा करतेहैं ॥ ४१ ॥ और नदी दरी, झरने, सोते, दरारे, सानु सबही वहां शोभित होरहेहैं सो उन सबको वनमें विचरते हुये देखोहीगे ॥ ४२ ॥ हे रघुनंदन! वहां सीताजीके सहित विचरण करनेके समय तुम्हारे मनमें आनंद होगा क्योंकि यह सब वनचारी जन्तु प्रमोद उपजाया करतेहैं॥४३॥

प्रहृष्टकोयष्टिभकोकिलस्वनैर्विनोदयंतंचसुखं परंशिवम् ॥ मृगैश्चमत्तैर्बहुभिश्चकुंजरैःसुरम्यमासाद्यसमावसाश्रयम् ॥ ४४ ॥

वहां हर्षित टटीरी और कोकिलायें सब आनन्दितहो शब्द करतीहैं जिसके सुन्तेही परम प्रसन्नता होतीहै एवं मृग और हाथी सबही सदा मतवाले होकर घूमा करतेहैं जिनके देखनेसे मन मोह जाताहै इस प्रकारके परम सुख और शुभ सम्पन्न चित्रकूटपर गमन करके और वहीं आश्रम बना सुखसे उसमें बास करना ॥ ४४ ॥ इति श्रीमद्रा० वा० आ० अ० चतुष्पंचाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

पञ्चपञ्चाशः सर्गः ।

उषित्वारजनींतत्रराजपुत्रावरिंदमौ ॥

महर्षिमभिवाद्याथजग्मतुस्तंगिरिंप्रति ॥ १ ॥

शत्रुओंके दमन करने वाले राम और लक्ष्मण वहां रजनी प्रभात करके महर्षिके चरण वंदन पूर्वक चित्रकूटकी ओरको चले ॥ १ ॥ महर्षि भरद्वाजजीने रामचन्द्रजीको जानेके लिये तैयार देखकर पिता जिस प्रकार अपने औरस पुत्रोंका स्वस्त्ययन किया करतेहैं ऐसेही रामचन्द्रजीके मंगलार्थ स्वस्त्ययन किया ॥ २ ॥ स्वस्त्ययन करनेके पीछे परम तेजस्वी महर्षि भरद्वाज सत्य पराक्रम रामचन्द्रजीसे कहने लगे ॥ ३ ॥ हे नरश्रेष्ठ प्रथम तो जहां गंगा यमुनाका संगम हुआहै तहांसे पश्चिम मुखहो यमुनाके किनारे २ जाइये ॥ ४ ॥ प्रतिकूल वाहिनी इस कालिन्दी यमुनाके किनारे २ जाकर देखोकि सदा आने जानेसे उनके उतरनेकी जगह अत्यन्तही क्षीण होगईहै ॥ ५ ॥ घन्नई आदि बनवाय आप उस नदी यमुनाके पार होना अनन्तर उसके पार एक बडका वडा पेडहै जिसके हरे २ पत्तेहैं ॥ ६ ॥ और अनेक २ प्रकारके पेड उस वरगदके चारों ओर लगे हैं और उस पेडमें श्यामताभी पाई जातीहै सिद्धगण उसकी सेवा किया करतेहैं वहां जाकर जानकी हाथ जोडकर उस वृक्षसे आशीर्वाद पानेकी प्रार्थना करें ॥ ७ ॥ जो इच्छा हो तौ कुछ दिन वहीं वास करना नहीं तो आगेको चले जाना वहांसे एक कोश दूर चलनेपर नीलवर्ण कानन दृष्टि आवैगा ॥ ८ ॥ पलाश बासी और वेरियोंके पेडसे यह वन भरा हुआ है और वहां यमुनाके किनारे औरभी अनेक प्रकारके वन वृक्ष उत्पन्न होतेहैं वस यही चित्रकूट जानेका मार्गहै मैं अनेक वार इस मार्गसे होकर गयाहूं ॥ ९ ॥ वह मार्ग अति कोमलहै दावानल उस वनमें कभी नहीं लगती और इस पंथमें जानेके समय मनमें प्रसन्नता उत्पन्न होतीहै महर्षि भरद्वाजजी इस प्रकार मार्गका पता वताकर लौटे ॥ १० ॥ लौटनेके समय रामचन्द्रजीसे पूछ लिया कि अब तो आप चले जांयगे तब उन्होंने कहा "हां" और मुनिके चरणोंकी वंदना करके उन्हें लौटारा ॥ मुनिके लौटनेपर रामचंद्रजीने लक्ष्मणसे कहा ॥ ११ ॥ हे भाई ! यथार्थ में हम लोगोंने पुण्य कियाहै जिस्से कि महर्षिजी हमारे ऊपर इतनी दया करतेहैं मनस्वी पुरुष श्रेष्ठ रामचंद्र और लक्ष्मणजो दोनों जने इस भांति वि-

चार करके ॥ १२ ॥ सीताजीको आगे किये हुये यमुनाजीके तीर गये और अति वेगवती व अति जलवाली नदीको देखते हुये॥१३॥पर घाटपर वहां नाव नथी इस कारण इस बातका बड़ा फिकर करने लगे कि किस प्रकार जल्दीसे इस नदीके पार हो जांय। चिन्ता करते २ भरद्वाजजीकी बताई बात याद आई और सूखे वांस आदि इकट्ठेकर एक घन्नई बनाई ॥ १४ ॥ वनकी सूखी लकडियां उसमें लगाई गई गांडरकी जडको कूट २ कर उसमें भरा कि छेद सब उसके बंद होगये तिसके उपरान्त बेत व नल जामनकी नरम डालियें काट ॥ १५ ॥ महावीर लक्ष्मणजीने जानकीजीके बैठनेके लिये उस तृण नौकापर एक सुखमय आसन बना दिया आसन बन जानेके उपरान्त चिन्ता करनेके अयोग्य रूपवाली लक्ष्मीकी समान रामको प्राणसम प्यारी जानकीजीको ॥ १६ ॥ जो कि कुछ लजासी रहींथीं उठाकर उस घन्नईपर चढाया व उनके निकटही सब उनके वस्त्र भूषणादिक धरदिये ॥ १७ ॥ व कुदाल पिटारी वांस वल्ली आदिभी वहां धरदिया प्रथम जानकीजीको बैठाया फिर आप दोनों भाई चढे और नावको चलाया ॥ १८ ॥ फिर रामचंद्र व लक्ष्मणजी दोनों जनें यत्न सहित वह नाव ग्रहण करके प्रसन्न मनसे यमुनाके पार होने लगे जब नाव बीच धारमें पहुँची तो जानकीजीने यमुनाजीको प्रणाम किया ॥ १९ ॥ और हाथ जोडकर कहा कि हे देवि। जो कुशल सहित हमारे पति अपने पिताकी व अपनी प्रतिज्ञा पूरीकर लौटेंगे और हमारा पतिव्रत धर्मभी अच्छी तरह निभ जायगा तो मैं तुम्हारी प्रसन्नताके लिये सहस्रों गोदान करूंगी और सैकडों सुराके पूर्ण कलशे देकर तुम्हारी पूजा करूंगी ॥ २० ॥ तब अवश्यही मैं तुम्हारी पूजा करूंगी जब आनंद पूर्वक इक्ष्वाकादि राजाओंकी पालित अयोध्यापुरीमें श्रीरामचन्द्रजी आप राजा होंगे, इस प्रकार वरकी याचना करती हुई जनकनंदिनीजीनें हाथ जोडकर यमुनाजीकी प्रार्थना की ॥ २१ ॥ इस भांति प्रणाम करती हुई सीताजी व दोनों भाई उस बनाई हुई नावके द्वारा शीघ्र गामिनी और तरंगें जिस्में उठ रहीं ऐसी सूर्यपुत्री यमुनाजीके दक्षिण किनारे पर पहुँचे ॥ २२ ॥ कालिन्दीके इस किनारे पर अनेक प्रकारके वृक्ष लगरहेथे रामचंद्र

सीता और लक्ष्मण जीने यमुनाके पार होकर उस नावको वहीं छोड दिया ॥ २३ ॥ फिर यमुनाजीके लगे हुए किनारेके वनसे चलकर तीनोंजन सुशीतल हरे भरे पत्तों करके शोभायमान श्याम नाम वट वृक्षके समीप उपस्थित हुए जानकी जीने वहां पहुँच कर उस वरगदके वृक्षको प्रणाम किया ॥ २४ ॥ और कहा कि हे वटवृक्ष ! हम तुमको नमस्कार करतीहैं तुम्हारे प्रसाद से हमारे स्वामी अपनें व्रतको पूर्ण करैं और हम फिर अयोध्याको लौटकर कौशल्याजी और यशवान सुमित्राजीके दर्शन करसकें ॥ २५ ॥ इसप्रकार मनस्विनी सीताजी हाथ जोडकर उस श्याम वट वृक्षकी प्रदक्षिणा करती हुई। अनन्तर रामचंद्रजी अपनी परम अनुकूल वर्तिनी निंदा रहित प्राण प्यारी सीताजीको श्याम वट वृक्षके निकट प्रार्थना करते देखकर ॥ २६ ॥ लक्ष्मणजीसे कहा कि हे भ्राता भरतानुज ! तुम सीताजीको लेकर आगे गमनकरो ॥ २७ ॥ हे नरोत्तम ! मैं आयुध धारण किये हुये तुम्हारे दोनोके पीछे २ चलूंगा इन जनक नन्दिनी सीताजीके चित्तमें जिस २ द्रव्यको देखकरँ आनन्द उपस्थित हो, और जो २ फल पुष्प यह प्रार्थना करैं ॥ २८ ॥ और जिस चीजसें इनका मन वहले सो तुम. इनको वही २ चीज फूल फल लादेना यह कह यमुनाके दक्षिण किनारे २ आगेको चले कि इतनेमें जिस किसी वृक्ष व पुष्पसे लदी हुई लतादिकको सीताजी देखतीथीं ॥ २९ ॥ उसीका अद्भुत रूपजान रामचंद्रजीसे पूछतीथीं कि यह कौन पेड वा वल्लरीहै क्यों नपूछे जब कि वहां तरह २ के रमणीय फूले फूले तरु दिखाई देतेथे ॥ ३० ॥ जो कुछ सीताजी मांगतीथीं लक्ष्मणजीभी उनके कहनेके अनुसार कुसुम स्तवकशोभित विविध भांतिके रमणीक वृक्ष शाखा लादेने लगे। उस समय जनकनन्दिनी सीताजीभी विचित्र वालुका करके शोभित, और हंस सारसी समूहके शब्दसे शब्दायमान विचित्र जलसे युक्त ॥ ३१ ॥ यमुनाजीके दर्शनसे जानकी प्रसन्न हुई इसके पश्चात् राम और लक्ष्मण दोनों भाई एक कोश गमन करनेंके पीछे, यमुना तीरके वनोंमें वहुत सारे यज्ञीय मृग वध करते घूमने हुए लगे ॥ ३२ ॥

विहृत्यतेबर्हिणपूगनादितेशुभेवनेवारणवानरायुते ॥ समंनदीवप्रसुपेत्यसत्वरंनिवाससमाजग्मुरदीनदर्शनाः ॥ ३३ ॥

उन्होंने हस्ती और शाखामृगादिकोंसे सेवित मोरके शोरसे शब्दायमान उस मनोहर वनमें इच्छानुसार विहार करके संध्याके समय एक रमणीय दरोंके गढों करके रहित स्थान पर जाकर वास किया ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे पंच पंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पंचाशः सर्गः ॥

अथरात्र्यांव्यतीतायामवसुप्तमनंतरम् ॥ प्रबोधयामासशनैर्लक्ष्मणंरघुपुंगवः ॥ १ ॥

इस तरहसे जब रात्रि बीती और वनोंमें सवेरा हो आया सो लक्ष्मणजी रात्रि भरके जो जागेथे इस कारण अभी तक सो रहेथे सो उनको सोते हुए देखकर धीरे २ रामचंद्रजीने जगाया और कहा ॥ १ ॥ हे सौमित्रे! अनेक जातियोंके वनैले जीव कैसे मीठे २ स्वरसे चहकरहे हैं इनको सुनो राह चलनेका यही समय बहुत अच्छाहै अतएव हे आततताइयोंके दर्पको चूर्ण करनें वाले अब उठकर चलो ॥ २ ॥ जब रामचंद्रजीनें यथा कालमें लक्ष्मणजीको जगा दिया तब वह निद्रा और आलस्यको त्याग करके भली प्रकार विश्राम पा उठ खडे हुये ॥ ३ ॥ फिर सब जनोंने उठकर पवित्र यमुनाजीके जलमें हाथ धोया और सन्ध्या वन्दनादि किया और ऋषिगणों करके शोभित चित्रकूटका मार्ग लिया ॥ ४ ॥ रामचंद्रजी व लक्ष्मणजीके सहित जाते २ कमल दलके समान आंख वाली सीताजीसे कहने लगे ॥ ५ ॥ हे प्रियतमे! यह देखो वसन्त समय आजानेंसे सब भांतिसे समस्त फूल खिल रहेहैं उनसे ऐसा माॡम पडताहै कि मानो पलाशके पेडोंमें आग लग गई सब पेडोंके फूलोंसे ऐसी शोभा हो रहीहै मानों सब माला पहर रहेहैं ॥ ६ ॥ यह देखो वीर वृक्ष और वेलके पेडोंके समूह फल और

फूलोंके बोझसे नम रहेहैं इस निर्जन वनमें दूरतक आदमीका पता नहीहै; अतएव हम निश्चयही इन सब फूलोंको खाकर जीवन धारण करने में समर्थ होंगे ॥ ७ ॥ हे लक्ष्मण! यह देखो प्रति वृक्षमें ही मधुकर सञ्चित द्रोण ❋ परिमाण (डिगारा) लटके हुयेहैं और इधर देखो सहस्रों मधुमक्खियां इनमें लिपट रहीं हैं ॥ ८ ॥ और यह देखो कोकिल पक्षी रमणीय वन भूमिमें बोल रहाहै, उसको देखकर मोरभी उसके पीछे शोर करताहै, चारों ओर फूलोंके पेडोंसे घिरजाने पर यह वन भूमि बहुत घनी होगईहै ॥ ९ ॥ मतवाले हाथियोंके झुंडके झुंड घूम रहेहैं अनेक प्रकारके पुष्पोंसे युक्त वा वृक्षोंसे शोभायमान चित्रकूट दिखाई देताहै ॥ १० ॥ हे लक्ष्मण! हम सब अतिशय मनोहर और बहुत वृक्षोंसे ढके हुए व बहुतही पवित्र ऐसे चित्रकूटके वनकी बराबर एकसी भूमिमें आनंद विहार कर सकेंगे ॥ ११ ॥ अनन्तर ऐसा कहते हुये और पैदलही चलते हुये राम और लक्ष्मण सीताजीके सहित मनोहर व रमणीक चित्रकूट पर पहुँचही गये ॥ १२ ॥ यह पर्वत बहुत सुन्दरथा बहुत प्रकारके पशु पक्षी यहां घूम घाम रहेथे और बहुत सारे कंद, मूल फल वहां बारहो महीने मिलतेथे और पानीभी इस पर्वतका बहुतही स्वाद युक्त व मीठाथा ॥ १३ ॥ रामचंद्रजीने वहां पहुँच कर लक्ष्मणजीसे कहा कि हे प्रिय दर्शन भ्रातः यह पर्वत अति मनोहर है इस जगह अनेक प्रकारके वृक्ष और लतायें शोभायमानहैं और यहां अनेक भांतिके कंद,मूल,फलभी मिलतेहैं। मुझको भली भांतिसे प्रतीत होताहै कि यहां सहज सेही हमारा निर्वाह हो सकताहै ॥ १४ ॥ विशेष करकै इस पहाड़ पर महात्मा मुनिलोग वास करतेहैं अतएव यही हमारे वास करनेके योग्यहै! हे भइया! हम यहीं आश्रम बनाकर रहैंगे ॥ १५ ॥ अनन्तर सीता रामचंद्रजी व लक्ष्मणजी वाल्मीकिजीके आश्रममें प्रवेश करकै हाथ जोड़ उनको प्रणाम करते हुये ॥ १६ ॥ धर्मात्मा महर्षि वाल्मीकिजीने बहुत प्रमुदित होकर सीता सहित दोनों भाइयोंका सत्कार किया फिर रामचंद्रजीका आगत स्वागत कर बैठनेको कहा और फिर कहने लगे

❋ द्रोण शब्दका अर्थ ३२ सेर सहत जिस चक्रमेंहो ॥

कि मैं तुम्हारे आनेका कारण जानताहूं अतएव तुम ऋषियोंके सहित यहीं वास करनेमें प्रवृत्तहो ॥ १७ ॥ महाबाहु रामचंद्रजी यथारीतिसे वाल्मीकिजीके निकट अपना परिचय देकर लक्ष्मणजीसे कहने लगे ॥ १८ ॥ हे सौम्य ! तुम बडे बोझके उठाने में सामर्थ मजबूत अच्छे २ काठ लाकर रहनेके लिये आश्रम बनाओ इस स्थानमें वास करनेको हमारा बहुतही जी चाहताहै ॥ १९ ॥ अरिन्दम शत्रुओंके मारने वाले लक्ष्मणजी रामचंद्रजीके ऐसे वचन सुनकर बहुत सारे वृक्षोंसे बहुत डालियें काट लाये और वहां एक कुटी पर्णशाला बनादी ॥ २० ॥ यह कुटी काठकी बनी और किवाडों करके युक्त और सुदर्शन देखकर रामचंद्रजी एक चित्तसे सेवा करने में चित्त दिये लक्ष्मणजीसे बोले ॥२१॥ हे सौमित्रे ! हम हरिण का मांस लाकर पर्णशालाधिष्ठात्री देवताकी पूजा करेंगे ॥ २२ ॥ क्योंकि जो लोग बहुत दिन जीना चाहतेहैं उनको चाहिये कि किसी गृहकी पूजा किये विना उसमें न रहैं हेप्रिय दर्शन ! इस समय तुम जल्दीसे मृग वध करके यहां ले आओ ॥ २३ ॥ स्मरण करके देखोकि शास्त्रमें जो नियम लिखेहैं उनको यथा रीतिसे पालन करना उचित है । महाबलवान लक्ष्मणजी भ्राताकी आज्ञासे ॥२४॥ मृग ले आये तब रामचंद्रजीने फिर उनसे कहा कि तुम इस मृगके मांसको रांधो कि मैं वास्तु पूजा करूंगा ॥ २५ ॥ हे सौम्य ! ध्रुव योग वर्तमानहै और यह मुहूर्त्तभी बहुत शुभ काम देने वालाहै अतएव इस कार्यमें जल्दी करो तब प्रतापशाली लक्ष्मणजीने यज्ञीय काले मृगको वध करके ॥२६॥ उसे जलती हुई आगमें छोड दिया जब वह खूब पक गया और रुधिरका बहना उसमेंसे बंद हुआ ॥ २७ ॥ तब लक्ष्मणजीने पुरुष श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीसे कहा कि मैंने इस सर्व काम साधन करने वाले काले मृगोंके अंग प्रत्यंगोंके सहित पकायाहै ॥ २८ ॥ देवताओंकी समान ! आप यज्ञ करनेके कार्यको भलीभांति जानते हैं सो इस समय देवताओंकी प्रसन्नताके लिये यज्ञ कीजिये तब वह अमित तेजधारी गुणवान जप करने में चतुर रामचंद्रजी नहाकर ॥ २९ ॥ संयतचित्तहो संक्षेपसे यज्ञको समाप्त करनेके कारण सब मंत्रोंको पढते हुये; फिर पवित्रताईसे देवताओंकी पूजा करके पर्णशालामें प्रवेश करते हुये ॥ ३० ॥

उस समय उन अपरिमित तेज संपन्न रामचन्द्रजीके मनमें हर्ष उत्पन्न हुआ, अनन्तर उन्होंने वैश्वदेवके लिये, विष्णुजीके लिये और रुद्रजी-के अर्थ बलिप्रदान किया ॥ ३१ ॥ फिर वास्तु शान्तिके लिये यथा यो-ग्य मांगलिक अनुष्ठान करने में लगे। और फिर यथाविधि नदीमें स्नान कर और न्यायानुसार जप करके ॥ ३२ ॥ पाप शान्तिके लिये विश्व देवा ओंकी भली भांति पूजाकी। पूजा समाप्त होनेपर आश्रमके अनु-रूप बलि देनेके अर्थ देवता ओंके लिये वेदियां बनाईं, देवतायन और गणेशजीकी वेदी और विष्णुजी की वेदीकी प्रतिष्ठा करते हुये फिर रा-जीव लोचन रामचंद्रजी उचित फल और मांस द्वारा भूत गणोंकी तृप्ति साधन करके पर्णशालामें प्रवेश करने का संकल्प करते हुये ॥ ३३ ॥ देवता लोग जिस तरह सुधर्मा सभामें प्रवेश करते हैं वैसेही सीता रामचं-द्रजी व लक्ष्मण सब मिलकर उस वृक्षके पत्तोंसे छाई हुई उचित स्थान-में प्रतिष्ठा की हुई मनोहर कुटीमें वास करनेके लिये प्रवेश करते हुये ३४॥

सुरम्यमासाद्यतुचित्रकूटंनदींचतांमाल्यवतीं
सुतीर्थाम् ॥ ननंदहृष्टोमृगपक्षिजुष्टांजहौच
दुःखंपुरविप्रवासात् ॥ ३५ ॥

परम रमणीय चित्रकूट और अनेक प्रकारके पक्षियोंका जहां आश्रय और सुन्दर २ घाट युक्त माल्यवती नदीके तीरमें वास करके रामचं-द्रजी परम प्रमुदित होते हुये वरन उनको अयोध्याके बिछुडने का जो दुःखथा वह भी भूलगये ॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० अ० षट्पंचाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपंचाशः सर्गः ॥

कथयित्वातुदुःखार्तसुमंत्रेणचिरंसह ॥
रामेदक्षिणकूलस्थेजगामस्वगृहंगुहः ॥ १ ॥

अब इधरका वृत्तांत सुनिये कि जब रामचंद्रजी शृंगवेर पुरसे गंगाके दक्षिणतीर पर आये तो गुह बहुतही दुःखित होकर सुमंत्रजीके साथ बातें करते हुये अपने घर चलेगये ॥ १ ॥ वह अपने पुरमें टिका हुआ राम

चंद्रजीका प्रयागको भरद्वाजजीके आश्रममें जाना वहां अतिथि सत्कार लाभ करना और चित्रकूट पर्वत पर जाना इत्यादिक सबही बातोंकी खोज लेने लगा ॥ २ ॥ सुमंत्रजी पांच दिन निषादके यहां रहकर फिर गुहसे विदाले रथमें उत्तम घोडे जोत कर अकेले मनमें खेद करते हुये अयोध्याको चले ॥ ३ ॥ यह सुमंत्रजी बहुतही थोडे समय में सुगन्धि पूर्ण कानन नदी सरोवर और ग्राम व नगर समूह देखते २ शीघ्रता पूर्वक दृढ चित्त किये हुये जाने लगे ॥ ४ ॥ इतनी जल्दी चले कि तीसरे दिन संध्याके समय अयोध्यामें प्रवेश करकै देखा कि अयोध्यापुरी निरानन्द हो रहीहै ॥ ५ ॥ किसी तरफ कोई चुंकारीतक नहीं भरता ऐसा जान पडाकि सब नगरी सूनीहै और निरानन्द इसमें व्याप गयाहै यह देख सुमंत्रजी बहुतही शोकसे व्याकुल हुये और बहुत दुःख करते हुये चिन्ता करने लगे॥ ६ ॥ क्या अयोध्या नगरी, गज, अश्व, राजा, प्रजा सबहीके सहित रामचन्द्रजीकी शोकाग्निमें भस्म होगई ॥ ७ ॥ सुमंत्रजी इस प्रकार चिन्ता करते २ तेज चलने वाले घोडोंके रथ पर बैठे हुए शीघ्रता पूर्वक नगरके फाटक पर पहुँच कर नगरमें प्रवेश करते हुये ॥ ८ ॥ जैसेही कि सुमंत्रजी अयोध्यामें घुसे वैसेही सैकडों हजारों प्रजाके लोग "रामचंद्र कहांहैं ?" यह कहते २ उनकी ओर दौडे ॥ ९ ॥ सुमंत्रजीने सबहीको यह उत्तर दिया कि मैं शृंगवेर पुरमें भागीरथी गंगाजीके किनारे महात्मा धार्मिक रामचन्द्रजीको प्रणाम करके उस जगह छोड और उनकी आज्ञासे लौटाहूं ॥ १० ॥ जब सबने जाना कि रामचंद्रजी गंगाजीके पार चले गये तब सबही आंसू भरकर मुखसे" हाय ! धिक्कारहै" यह कहकर दीर्घ श्वास लेते हुये' 'हा राम!" यह कहकर रोने लगे ॥ ११ ॥ महामति सुमंत्रजीनें जाते २ उन वृंद २ लोगोंके सबके ही मुखसे यह सुना कि हम सबको जब रामचंद्रजीही नहीं देख पडते तब निश्चयही हम सब विनाशको प्राप्त हुए ॥ १२ ॥ हाय ! हम दान यज्ञ व विवाह आदिक बड़े २ कार्योंको करने में महात्मा ओंके समाजके मध्य में बैठे हुए श्रीरामचंद्रजीको अब न देखैंगे ॥ १३ ॥ हाय ! प्रजाओंको किस प्रकार पालन करना चाहिये किस प्रकारसे उनका प्रिय कार्य होगा किस प्रकारके कार्य करनेसे प्रजा सुखमें रहेगी निरन्तर यही चिन्ता

करके वह महात्मा श्रीरामचन्द्रजी सबको इस प्रकार पालन करते जिस प्रकार कि पिता पुत्रको पालता पोषताहै ॥ १४ ॥ सुमंत्रजी बीच बजारमें जाते २ रामचंद्रजीके शोकसे संतापित झरोखों में बैठी हुई पुरनारियोंके विलाप करने की अनेक प्रकार की ध्वनि श्रवण करने लगे ॥१५॥ राजमार्गमें इस प्रकार का विलाप सुनते सुनाते सुमंत्रजीने अपना मुख ढक लिया और जहांपर राजा दशरथजीथे उसी घरमें शीघ्रता सहित गये ॥ १६ ॥ वह जल्दी रथसे उतर कर राजगृहमें प्रवेश करके जनोंकी भीडसे परिपूर्ण सात फाटकोंके पार होगये ॥ १७ ॥ कोठे विमानों व धवरहरों व सतखंडों पर चढी स्त्रियां सुमंत्रजीको राम विना आये हुये देखकर हाहाकार करने लगीं क्योंकि वह सब पहलेही रामके न देखनेसे दुर्बल हो रहीथीं ॥ १८ ॥ स्त्रियें विमल बडे २ नेत्रोंसे आंसुओंकी धार छोडतीं विचारतीथीं कि क्या करैं, अब क्या होगा यह विचार शिरझुकाये हुए परस्पर एक दूसरीको देखने लगी उन सबके देखनेसे यह प्रतीत होताथा कि इन सबपर बडा भारी दुःख पडा है ॥ १९ ॥ व महाराज दशरथजीकी स्त्रियोंका रोना भी प्रत्येक धवरहरेसे धीरे २ सुन पडताथा क्योंकि उन लोगोंको मारे दुःखके ऊंचे शब्दसे रोनेकी शक्ति ही नहीं रही थी ॥ २० ॥ वह सब रोय २ कर यह कह रहीं थीं कि सुमंत्रजी यहां से गये तो रामचन्द्रजी के साथथे पर अब रामचन्द्रजीके विना आये हैं सो अब यह रोतीहुई देवि कौशल्याको क्या जवाब देंगे ॥ २१ ॥ हम कहतेहैं कि जैसा कुछ दुःखके साथ जीवको जीनेका स्वभावहै वैसा सुखके साथ जीनेका नहो देखो प्रियतम पुत्र रामचन्द्र जीके वनको चले जाने पर भी कौशल्याजी जीवन धारण कर रहीहैं, सो इसी दुःखकी आशासे कि पुत्र फिर भी वनसे लौटेंगे इस्से तो तभी प्राण दे देतीं जो इतना कष्ट अव न सहना पडता ॥ २२ ॥ राजा दशरथ जीकी स्त्रियोंके ऐसे सत्यरूप वचन सुन्ते सुमंत्रजी शोकाग्निके द्वारा जलते हुए राजमंदिर में प्रवेश करते हुये ॥ २३ ॥ वहां देखा तो आठवें फाटकके भीतर जो चन्द्रमाकी समान झलक रहाथा उस में राजा दशरथजी पुत्र शोकमें डुबे हुए दुःखित और महाव्याकुल हुए दीन भावसे पीले पडे हुए

शय्या पर पडे हैं ॥ २४ ॥ यह देख और राजाके सामने जाकर सुमंत्रजीने प्रणाम किया और फिर जो रामचन्द्र जीने जो कहाथा वह सब विना कुछ घटाये वढाये निवेदन कर दिया ॥ २५ ॥ राजाने चुप होकर सबही संदेशा सुना और सुनकर शोकसे व्याकुल होकर उनका हृदय गल गया और उस समय वह रामचन्द्र जीके शोकसे पीडित हो मूर्च्छित हो पृथ्वीपर गिर पडे ॥ २६ ॥ राजाको मूर्च्छित और पृथ्वीपर पडा देख रनवासकी समस्त रानियें बाहें उठाकर रोदन करनें लगीं ॥ २७ ॥ तब कौशल्या जीने सुमित्राजीको संग लेकर दोनो ने एक २ हाथ पकडकर पृथ्वी पर गिरे हुए राजाको उठाया और कहने लगीं ॥ २८ ॥ कि हे महाभाग! यह सुमंत्रजी दुष्करकर्म करने वाले रामके दूत वनके वनमें बसते हुये उनके पाससे आपके निकट आये हैं सो आप किसकारण करके इनसे नहीं बोलते हो ॥ २९ ॥ पुत्रको वनवास देकर अब क्यों लज्जित होते हो उठिये आपका मंगलहोवे अब आपकी प्रतिज्ञा तो पूरी होगई अब शोक छोडिये मंत्रीसे बात तो कीजिये क्योंकि जो शोक करोगे तो आपको कौन समझावे और सहायता करैगा ॥ ३० ॥ हे देव जिसका भय करके सुमंत्रजीसे रामके समाचार पूछते हिचकतेहो वह कैकेयी इस समय यहां नहीं है अतएव निश्शंकहो सुमंत्रसे रामका वृत्तांत पूछिये ॥ ३१ ॥ शोकसे व्याकुल होती हुई कौशल्याजी गद्गद वचन महाराज दशरथजीसे कहती हुई पृथ्वी पर मूर्च्छित हो गिर पडी ॥ ३२ ॥ कौशल्याजी भी विलाप करतेर पृथ्वी पर गिर पडीं और राजा दशरथ अपने पतिको मूर्च्छित देखकर और सब रानियें चारों ओर से रोदन करनें लगीं ॥ ३३ ॥

ततस्तमंतःपुरनादमुत्थितंसमीक्ष्यवृद्धास्तरुणाश्चमानवाः ॥ स्त्रियश्चसर्वारुरुदुःसमंततः पुरंतदासीत्पुनरेवसंकुलम् ॥ ३४ ॥

उन सबके उस रोनेके शब्दसे वहांके वृद्ध युवा पुरुष और सब दूसरी स्त्रियेंभी रुदन करने लगीं। उस समय उस रनवासमें व पुरमें रोनेंका

शब्द फैल गया ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे सप्तपंचाशः सर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपंचाशःसर्गः ॥

प्रत्याश्वस्तोयदाराजामोहात्प्रत्यागतस्मृतिः ॥
तदाजुहावतंसूतंरामवृत्तांतकारणात् ॥ १ ॥

अनन्तर राजाकी मूर्च्छा जागी मोह गया और याद आई तब रामचंद्रजी-का वृत्तांत जाननेके लिये उन्होंने सारथीको बुलाया॥१॥सुमंत्रजी हाथ जो-डे हुये दुःख शोकसे घिरे दुःखित रामचंद्रको शोचते हुये महाराज दशरथ-जीके पास आये॥२॥वहां आकर देखा कि महाराज दशरथजी बहुत संता-पित होकर नये पकडे हुये हाथी की समान लंबे २ श्वास ले रहेहैं और उनका मनभी व्याकुल हाथीकी नाईं चिन्तामें डूब रहाहै ऐसे राजा दशर-थजी वृद्ध होनेंके कारण और भी व्याकुल थे ॥ ३ ॥ सुमंत्रकी देहीमें धूल लगी हुई मुख पर आंसू वहते हुये और जिनका आकार बहुतही व्याकुल जान पड़ता था सो उनसे राजा दशरथजी अति कातर वचन बोले॥४॥ हे सुमंत्र! वह बहुतही सुख भोगनेके लायक धर्मात्मा रामचंद्रजी इस समय पेडकी छायामें कहां बैठे होंगे? और भोजन क्या करैंगे ॥ ५ ॥ हे सूत! रामचंद्रने कभी दुःखका मुख नहीं देखाहै परन्तु इस समय बडे दुःखमें पडेहैं। वहां वनमें लेटनेके योग्य शय्या नहींहैं, अतएव राजाके पुत्र होकर किस प्रकारसे अनाथकी समान वह पृथ्वीपर लेटैंगे ॥ ६ ॥ जिनके कहीं जानेपर पैदल, रथ, और हाथी साथ२ चला करतेथे वह ह-मारे राम किस प्रकारसे जन शून्य वनमें रहैंगे ॥ ७ ॥ जिस वनमें अजगर और सिंह व्याघ्रादि हत्यारे जीव और काले २ सांप सदा घूमा करते और रहतेहैं वहां अति सुकुमार राम लक्ष्मण और सीताके साथ किस प्रकार वास करैंगे ॥ ८ ॥ हे सुमंत्र! वह राजपुत्र होकर तपस्विनी सुकु-मारी जानकीके सहित किस प्रकार रथ छोडकर वनको पैदल चले ग-ये ॥ ९ ॥ हे सूत! तुमही सफल मनोरथ हो क्योंकि तुमनें उन मेरे बारे राम लक्ष्मणको मन्दराचल पर्वतपर चढते हुये अश्विनी कुमारोंकी स-मान वनमें प्रवेश करते हुये देखा ॥ १० ॥ हे सुमंत्र! वनमें जाकर राम-

चंद्रजीने क्या कहा ? और लक्ष्मण क्या बोले और जानकीने क्या कहा सो मुझसे कहै * ॥ ११ ॥ हे सूत तुम रामचंद्रजीका उपवेशन और भोजन शयनका बखान मुझसे वर्णन करो जिसके सुननेसे मैं साधु समागमके द्वारा ययातिकी नाई कुछेक जीवन धारण कर सकूंगा ॥ १२ ॥ जब इस प्रकार राजाने आज्ञादी तब सुमंत्रजी गद् २ कंठसे और लड खडाती वाणीसे निवेदन करने लगे ॥ १३ ॥ हे महाराज ! धर्मके पालन करनें वाले रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीने शिर नवाकर आपको प्रणाम किया है और यह कहाहै ॥ १४ ॥ कि हे सूत ! तुम मेरी ओरसे मेरा नाम लेकर प्रथमही वंदन करनेंके योग्य सब कुछ जानने वाले पिताजीके चरणोंमें शिर झुकाकर प्रणाम करना ॥ १५ ॥ हे सुमंत्रजी! तुम हमारी ओरसे सब अंतःपुर वासियोंसे कुशल पूछना फिर विशेष करके उनसे हमारे आरोग्यका समाचार पूछना और फिर जिस्से जैसा उचितहो प्रणामादि कहना ॥ १६ ॥ माता कौशल्याजीसे हमारी कुशल और प्रणाम कहना और फिर धर्मके विषयमें पूछकर फिर कहना ॥ १७ ॥ हे देवि! आप धर्मानुष्ठान पूर्वक यथा समयमें अग्निहोत्रादि कर कराय देवताओंकी समान राजा दशरथजीके चरणोंकी सेवा किये करना ॥ १८ ॥ और मान अभिमानको छोड करके सब पत्नियोंके साथभी अच्छा नीका व्यवहार किया करना । राजा कैकेयीके कहनेमें हैं अतएव आपभी कैकेयीको मानें ॥ १९ ॥ और राजधर्मका स्मरण करके यद्यपि भरतजी आपके लडकेहैं तौभी उनके प्रति राजाकी समान व्यवहार करना क्योंकि बडा न होनेसेभी जो राजा होताहै वह सबही तरहसे पूजनीयहै ॥ २० ॥ हे सुमंत्र ! तुम भरतजीको हमारी तरफसे कुशल जनाकर फिर उनसे कहना कि तुम सब जननियोंके प्रति यथा धर्मानुसार व्यवहार करना ॥ २१ ॥ और तुम महाबाहु इक्ष्वाकु कुलनंदन भरतजीसे यहभी कहना कि तुम

* १ पुनि २ पूछत मंत्रिहि राऊ ॥ प्रीतम सुवन संदेश सुनाऊ ॥२॥ राजा ययाति स्वर्गमें पहुचकर अपना पुण्य कहने लगे समाप्त करनेपर इन्द्रने कहा जिह्वामें अग्नि देवता वास करते हैं तुम्हारा पुण्य अपने मुंहसे कहनेसे नष्ट होगया अब नीचे गिरो ययाति बोलो यदि हमें गिराते हो तौ जहां साधु समागम होय वहां गिराओ इन्द्रने तथास्तु कह साधु समागममें गिराया सन्तोंने राजाकी यह दशा देख अपना पुण्यदे फिर स्वर्गमें पहुँचा दिया ॥

इस समय युवराज हुयेहो अतएव सब भांति महाराजकी सेवा और सहायता करना ॥ २२ ॥ और राजा राज्य करते २ बूढे होगयेहैं अतएव उनको राज्य भ्रष्ट न करना वरन जो कुछ वह कहैं वह करके उनकी आज्ञानुसार चलना ॥ २३ ॥ " उन्होनें फिर आंखोंमें आंसू भरकर मुझसे भरतजीको यह कहनेको कहा " कि तुम अपनीही माताकी समान उन पुत्र वत्सला माता कौशल्याजीको समझना ॥ २४ ॥ महाबाहु महा यशवान, पद्म पलाश लोचन रामचंद्रजी मुझसे यह वार्त्ता कहते २ अखंड धार नेत्रजल वर्षाने लगे ॥ २५ ॥ तब लक्ष्मणजीने बहुतही क्रोधित होकर और लंबा श्वास भरकर कहा कि " राजपुत्र होकर हम किस अपराधसे वनको भेजे गये ॥ २६ ॥ राजाने कैकेयीके ओछे वचन मान प्रतिज्ञाकर कार्य अकार्यका कुछ विचार नहीं किया । किसीका क्या बिगड़ा दुःखमें तो सब भांति हमही पडे ॥ २७ ॥ यदि कैकेयीके लोभकेही कारणहो, या वरदान मांगनेहीके सबबसेहो किसीभी प्रकारसे क्यों न हुआहो रामचंद्रजीको वनमें भेजनेसे बहुतही अन्याय हुआहै ॥ २८ ॥ यदि ईश्वरके करानेसे उन्होंने ऐसा किया तौभी श्रीरामचंद्रजीके परित्यागमें ईश्वर कृतिकाभी हेतु विदित नहीं होता क्योंकि इन रामचंद्रजीमें ऐसा कोई दोष नहीं जो इन्हें वनको भेजा जाय ॥ २९ ॥ अतएव केवल बुद्धिकी अल्पताके हेतु कर्त्तव्य और अकर्त्तव्यको न विचार करके जो रामचंद्रजीको वनमें भेजही दियाहै तौ इस वनमें भेजनेसे लोक परलोक दोनो में राजाकी निन्दा होगी ॥ ३० ॥ हम कुछ पिता माता आदिके वियोग सहकर अयोध्या जानेके लिये ऐसा नहीं कहते क्योंकि अबतो रामचंद्रजीही हमारे स्वामी, भ्राता, बन्धु और पिताहैं ॥ ३१ ॥ सब लोकोंके प्यारे व सबहीका हित करनेमें रत जब ऐसे श्रीरामचंद्रजीहीको राजाने वनमें भेज दिया तब इस कर्मसे कैसे सब लोग प्रसन्न होंगे ३२॥ सर्व प्रजाको आराम देनेवाले बडे धर्मवान् श्री रामचन्द्रजीको वनवासदे सब लोकसे विरुद्ध कर्मकर राजा दशरथजी किस प्रकारसे आपही राजा होंगे ॥ ३३ ॥ हे महाराज ! जिस प्रकार किसीका मन भूतके चढनेसे घबडा जाताहै और वह आदमी सब चौकडी भूल जाताहै, तपस्विनी जानकीजीभी इसी भांति बैठी रहकर केवल ऊंचे श्वास लेने ल-

गीं ॥ ३४ ॥ यशस्विनी राजपुत्री जानकीने इससे पहले कभी कोई ऐसी विपत्ति नहीं देखीथी। इस समय वह ऐसी भारी विपत्ति पड़ी देखकर केवल रोदन करने लगीं और मुझसे कुछ न बोलीं ॥ ३५ ॥ अनन्तर मुझे अयोध्याको लौटते देख बहुत सूखे हुये मुखसे स्वामी रामचन्द्रजीकी ओर देखकर एकाएक रोने लगीं ॥ ३६ ॥

तथैवरामोश्रुमुखःकृतांजलिःस्थितोब्रवील्लक्ष्मणबाहुपालितः ॥ तथैवसीतारुदतीतपस्विनी निरीक्षतेराजरथंतथैवमाम् ॥ ३७ ॥

हे राजन्! रामचन्द्रजीभी वैसेही रोते हुये और हाथ जोडे हुये लक्ष्मणजी जिनको हाथोंसे थमा रहेथे, जब तक मेरे साथ बातें करते रहे निरपराधा जनकदुलारीभी तब तक वैसेही रोती हुई आपके रथकी ओर मेरी ओर देखती रहीं ॥३७॥ ॥ इति श्रीमद्रामायणे वा० आ० अयोध्याकांडे अष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ।

ममत्वश्वानिवृत्तस्यनप्रावर्ततवर्त्मनि ॥
उष्णमश्रुविमुंचंतोरामेसंप्रस्थितेवनम् ॥ १ ॥

हे महाराज! मैं वहांसे लौटा तो सही परन्तु रामचन्द्रजीको वन जाते देखकर रथके घोडे मार्गमें आकर आंसू बहाने लगे और किसी तरह उन्होंने उस समय रथको लेचलना नहीं चाहा ॥ १ ॥ अब बहुत कहां तक कहें? मैं राम लक्ष्मण दोनोंके निकटसे हाथ जोडकर विदा लेकर और उनके वियोगका दुःख किसी रीतिसे हृदयमें धारणकर रथ परचढ इधरको चला ॥ २ ॥ कदाचित् रामचंद्रजी फिर बुलाकर मुझे अपने साथ ले चलें इस आशासे मैं गुहके सहित कई दिन तक उसके घरमें रहा ॥ ॥ ३ ॥ बस वहांसे मैंभी सीधा इधरको चला आताहूं । आते आते मार्गमें देखा कि आपके राज्यमें सब वृक्षभी राम चंद्रजी पर यह विपत्ति पडी देख फूल अंकुर और कलियोंके सहित सूखे और बिल्कुल मुरझाये

हुयेसे होगयेहैं उनमें अब पहलीसी शोभा और सुकुमारता नहींहै ॥ ४ ॥ नदी ताल और छोटी तलियोंका जलभी सूखने पर आगया और वन वाग-के सब पेडों के पत्ते वनाय सूखही जाने पर होगयेहैं ॥ ५ ॥ सब प्राणियों-की चलने फिरनेकी शक्ति जाती रही वह अब खाने पीनेकी सामग्रीको खोजनेके लिये किसी ओरको गमन नहीं करते सर्पादिक हत्यारे जीवभी नहीं चलते फिरते इस प्रकार प्राणीमात्रही रामचंद्रजीके शोकमें चुप चाप बैठेहैं सब वन एक वाणी निस्तब्ध और शब्द रहित होगयाहै ॥ ६ ॥ सब नदियोंका जल मैला होगया और उनके बीचमें सडे गले कमल फूलों के पत्ते बहा करतेहैं, और उनमेंके सब कमल संतप्त हो रहेहैं सब सरोवर सुखाय गये, और उन सबके कमलभी सूखगये अब तलावोंमें जलचर पक्षी जल मुर्ग्गादि इत्यादिक और मछलियां नहीं दृष्टि आ-तीं ॥७॥ क्या तो जलके पैदा होने वाले फूल कमल,वबूला, कल्हार आदि और क्या पृथ्वीपर रहने वाले फूल निवारी, गुलाब, चम्पा, चमेली आदिके फूलोंकी मालामें अब पहलेकी भांति सुगन्धी नहीं रही और ऐसेही सब प्रकारके फल होगयेहैं ॥ ८ ॥ हेनरश्रेष्ठ ! अयोध्यामें जितनी फुलवारि-यांथीं सबही शून्य और पक्षियों करके हीन होगईं और सबही बाग बगी-चे चित्तको प्रसन्न करने वाले नहीं दीख पडते ॥ ९ ॥ जब मैं अयोध्यामें आया तो किसीने मुझसे बात चीत नहीं की सबही रामचंद्रजीको नदेख कर वारंवार ऊधेश्वास लेने लगे ॥ १० ॥ हे देव ! राजमार्गमें जो सब लोग गमनागमन कर रहेथे वह सब रामचंद्रजीको राजमार्गमें नदेखकर शोकमें भरकर रोने लगे ॥ ११ ॥ रामचंद्रजीके दर्शनकी लालसा लगायें और उनके विरहमें जो हाहाकार कर रहीं वह सब स्त्रियां घवरहरे अटा-रियें और सतखंडोंके ऊपर बैठी हुई रामचंद्रजीके विना रथ आता देख-कर हाहाकार करने लगीं ॥ १२ ॥ और वह सब बहुत ही व्याकुल हो-कर परस्पर एक दूसरीको देखने लगीं उस समय उनके विशाल विमल नेत्रोंसे बहुत आंसू निकलने लगे बस उनका यह विलाप कलाप देखकर स्पष्ट प्रगट होताथा कि स्त्रियां बहुत ही कातर हो रहीहैं ॥ १३ ॥ इस प्रकार हरेक जनके व्याकुल होनेसे कौन शत्रुहै? कौन मित्र है? और कौ-न उदासीन है? कुछभी कहीं समझमें नहीं आसकता?॥ १४॥अधिक कहां

तक कहैं अयोध्या पुरीके मनुष्य मात्रही हर्ष शून्यहैं, आनन्दसे रहित और बहुतही मलीन होरहेहैं वह सबही आर्त्त नाद करके जल्दी २ लंबे २ श्वास लेतेहैं और हाथी घोडेभी सब अतिशय कातर होरहे-हैं ॥ १५ ॥ इस प्रकार रामचंद्रजीको वनवास देनेसे सबही कोई आतुर हो रहेहैं यह सब देख सुनकर ऐसा बोध होताहै मानो कौशल्याजीकी नांई अयोध्याजीको भी पुत्रका वियोग हुआहै ॥ १६ ॥ राजादशर-थजी सुमंत्रके ऐसे दीन वचन सुन गद्गद वाणीसे दीनोंकी नांई उ-नसे बोले ॥ १७ ॥ कि हमनें पापजन्म और पापका मनोरथ करने वा-ली कैकेयीके कहने और उस्करानेंसे सलाहदेनेमें चतुर वृद्ध मंत्रियोंके साथ कर्त्तव्य अकर्तव्य विचार न करके रामको वन भेजदिया ॥१८॥ एक साधारण स्त्रीके मोहमें पडकर न भाईकी संमति ली न मंत्रियोंसे परामर्श किया न वेदके जानने वालोंसे व्यवस्थाली, न किसीसे कुछ कहा सुना बस सहसा इस दुष्कर कर्मको करडाला॥ १९ ॥ हे सूत! निश्चयही बो-धहोताहै एकमात्र होनीके वश होकरही इक्ष्वाकु वंशको उजाडनेके लिये यह दारुण कष्ट उपस्थित हुआहै॥ २० ॥ हे सुमंत्र! जो कुछ हुआ सो हुआ! पर जो हमने कभी तुम्हारा कुछ उपकार कियाहो सो तुम हमें शीघ्रही रामके पास लेचलो क्योंकि हमारे प्राण अब देहसे चला चाहते-हैं॥ २१ ॥ रामचंद्रजीके विना हम एक मुहूर्त्त भरकोभी नहीं जीसकेंगे हमारे प्राण रक्षा करनेका अबभी कुछ प्रयोजन हो तो रामचंद्रजीको यहां लौटालाओ ॥ २२ ॥ अथवा यदि महाबाहु रामचंद्रजी दूर निकलगये हों और उनके लौटालानेको आशा नहो तो हमें शीघ्र रथ पर चढा कर रामके दर्शन कराओ ॥ २३ ॥ आह! लक्ष्मणके अग्रज महा धनुर्द्धर नयनानन्द दायक, कुन्द पुष्प सम दांत वाले वह हमारे प्यारे रामचंद्रजी कहां हैं? यदि देहमें प्राण रहैं तो सीता सहित प्यारे पुत्रको फिर देखूं-गा ॥ २४ ॥ इससे अधिक और दुःखका विषय क्या होगा कि मैं इक्ष्वाकु कुल नंदन रामचंद्रजीको इस मरण अवस्थामें नहीं देख सकता ॥ २५ ॥ हाराम! हालक्ष्मण! हा निरपराधाजानकी! मैं जो अनाथकी समान अति कष्टसे इस समय प्राण त्याग करताहूं सो इसकी तुम्हें कुछभी खबर नहीं है ॥ २६ ॥ अनन्तर राजा दशरथ दुःखसे चेतना रहित और अपार शो-

कसागरमें डूबकर कौशल्या जीसे बोले हे देवि! जिन रामचंद्रजीका शोक-तौ महा स्रोतहै और सीताका जो विरहहै वही उसकी अंत सीमाहै दीर्घ श्वास जोहैं यही तरंगे उठते हुए भँवरहैं, नेत्रोंका जो जलहै वही वेगहै ॥ २७ ॥ २८ ॥ हाथ विक्षेप जोहै वही मत्स्यहै रोना जोहै वही गर्जनाहै शिरके बाल शैवालहैं कैकेयी बडवानलहै ॥ २९ ॥ और मेरी आंखोंका जल जोहै वह गंभीरताका उत्पत्ति करने वालाहै और पीर उपजाने वाले मंथराके वचन महाग्राहकी समानहैं और जिस करके रामचंद्रजी वनको भेजे गयेहैं उस निठुर कैकेयीके वर दोनों किनारेहैं ॥ ३० ॥ सो हे कौशल्या! इस प्रकारके महा अथाह शोकसागरमें हम रामचंद्रजीके विना डूबतेहैं इस जन्ममें तौ हम इस शोक पारावारको उतर नहीं सकते इसमें कुछभी संशय नहीं है ॥ ३१ ॥ मैं जो आज प्राणप्यारे रामको लक्ष्मणके सहित देखना चाहताहूं और तौभी वह देखनेंको नहीं मिलते। भला यह हमारे महा पातकोंका फल नहीं है तो क्याहै? इस प्रकार विलाप करते २ परम यशवान महाराज दशरथजी तत्कालही मूर्च्छित हो शय्या पर गिर पडे ॥ ३२ ॥

इतिविलपतिपार्थिवेप्रनष्टेकरुणतरांद्विगुणंच
रामहेतोः ॥ वचनमनुनिशम्यतस्यदेवीभय
मगमत्पुनरेवराममाता ॥ ३३ ॥

रामचंद्रजीके लिये अतिमात्र करुणा स्वरसे विलाप करते २ मूर्च्छित होगये महारानी कौशल्याजी उनका यह विलाप सुनकर स्वामीके वियोग दुःखकी शंकासे कि कहीं राजा प्राणोंको न त्याग करदें इस कारण दूना भय पाती हुई ॥३३॥ इ० श्रीम० वा० आ० अ० एकोनषष्टितमःसर्गः ॥५९॥

षष्टितमःसर्गः ॥

ततोभूतोपसृष्टेववेपमानापुनःपुनः ॥
धरण्यांगतसत्त्वेवकौसल्यासूतमब्रवीत् ॥ १ ॥

उस समय कौशल्या भूत लगे मनुष्यकी नाईं वारंवार थरथराय व

स्वप्नसे जागे हुयेकी समान धरतीमें गिरती पडती हुई सुमंत्रजीसे बो-
लीं ॥ १ ॥ जहांपर रामचंद्रहैं जिस स्थानपर लक्ष्मणहैं और जहां सीताहैं
सुमंत्र! तुम हमें वहीं ले चलो, हम आज उनके विना क्षणमात्रभी नहींजी
सकेंगी ॥ २ ॥ तुम जल्दी रथ लौटाओ और हमें वनको लेचलो अथवा
दूर चले जानेंसे वह हमें न मिल सकैं तो हम यमराजके यहां चली जां-
यगी ॥ ३ ॥ तब सुमंत्रजी हाथ जोडकर गदगद वाणीसे कौशल्याजी-
को समझाते बुझाते हुये बोले ॥ ४ ॥ हे देवि! अब आप शोक मोह
और दुःखसे उत्पन्न हुये सम्भ्रमका त्याग कर दीजिये, क्योंकि रामचन्द्र-
जी बडे सुखसे वनमें बसैंगे ॥ ५ ॥ और लक्ष्मणजी अति धार्मिक और इ-
न्द्रियोंको अपने वशमें रखने वालेहैं, वह रामचन्द्रजीके चरणोंकी सेवा कर-
के अपना परलोक बना रहेहैं ॥६॥ व श्री रामचन्द्रजीमें चित्त लगाये सी-
ताजीभी उनके साथ विजन वनमें घरकी समान निःशंक और आनंद
सहित बास करैंगी ॥ ७ ॥ हमनें उनमें कुछभी दीनता नहीं देखी, अत-
एव मुझको सहजही प्रतीत होताहै कि सीताजी वनमें रहनेके योग्यही
हैं ॥ ८ ॥ जिस प्रकार सीताजी अयोध्याजीके बाग बगीचों मैं जाय विहार
करतीथीं। सो तिसी भांति सब निर्जन वनोंमेंभी वह वैसेही आनंद सहित
विहार करतीहैं ॥ ९ ॥ वह पूर्णिमाके चंद्रमाकी समान मुखवाली सीताजी
बालककी समान दुःखको कुछ न समझ निश्चित मनसे रामरूपी बागमें
परम सुखसे विचरतीहैं ॥ १० ॥ जिन सीताजीका मन रामचन्द्रजीमें ल-
गाहै तिनका जीवन रघुनाथकेही आधीनहै इस कारण विना रामचन्द्र-
जीके यह अयोध्या सीताजीको महा वनके समान जान पडती ॥ ११ ॥
वहां वह जिस गांव, नगर, या जिन सब नदियोंकी गतिको देखती हैं या अ
नेक प्रकारके वृक्ष या जो कुछभी देखतीहैं उसका वृत्तान्त जाना चाहती
हैं ॥ १२ ॥ और रामचन्द्रजी या लक्ष्मणसे उन सबके विषयमें पूछकर
उसको जान लेतीहैं और ऐसी प्रसन्न रहतीहैं मानों अयोध्याजीसे एक
कोशके अन्तर फुलवाडीमें विहार कररहीहैं ॥ १३ ॥ हम सीताजीके
इसी सुखको याद करतेहैं जो कि वह रामचन्द्रजीके साथ आनंदमें रहती
हैं सो उन्होंने दुःखके वेग वशहो हठात कोई बात कैकेयीके सम्बंधमें
कहीथी या नहीं ऐसा तो मुझको याद नहीं आता ॥ १४ ॥ जो बातें

प्रमादके वश हो जानेसे कौशल्याजीको सूझीथीं उन वातोंको सुमंत्रजो ने इसभांतिके वचन कहकर संहार करदिया और कौशल्याजीसे अति मधुर आनन्द दायक वचन बोले ॥१५॥ मार्ग चलनेके परीश्रमसे वायुके, प्रचंड वेगसे संभ्रम वा गरमीके तापसे किसीसेभी जानकीजीकी वह चन्द्र किरण शोभामयी विमल प्रभा मलीन नहीं हुई ॥ १६ ॥ अथवा उनका वह शत पत्र कमलके समान और पूर्ण चंद्रमाकी दीतिके समान दिपता हुआ वदन मंडलभी मलीन नहीं हुआ ॥ १७ ॥ उनके दोनों चरण स्वभावसेही महावरकी समान लाल वर्णहैं; अतएव महावर विहीन होकेभी अवतक इन चरणोंकी पद्मकेशर सहित सुकुमार प्रभाकी कुछ हानि नहीं हुईहै ॥ १८ ॥ उन्होंने रामचंद्रजीके प्रति अनुरागके वशहो अबतक गहनोंको त्याग नहीं कियाहै, वह चरणमें पहरी हुई पायजेबकी झनकारसे हंस आदिके शब्दोंको लजाती हुई प्रसन्नता पूर्वक चली जातीहैं॥१९॥ वह रामचंद्रजीकी भुजाओंके वलसे रक्षित होकर वनके वीच शेर अथवा व्याघ्र देख किसी तरहकी कुछ शंका नहीं करतीं ॥ २० ॥ अतएव आप रामचन्द्र, लक्ष्मण, व सीताके लिये, अपने लिये और दशरथजीके लिये कुछ भी शोक न कीजिये जो रामचन्द्रजी करैं वह करने हीं दीजिये क्योंकि रामचन्द्र जीको उस अद्भुत चरित्रका चिरकालही संसारमें प्रचार रहैगा ॥ २१ ॥ वह इस समय वनवासी और वनके कंद, मूल, फल खाने वाले तपस्वी होगये हैं व इसीकारण से एक वारही शोक छोडकर अधिक प्रफुल्ल चित्तसें अपनें पिताजीकी परम पवित्र आज्ञा पालन करते हुए वनमें वसते हैं ॥ २२ ॥

तथापिसूतेनसुयुक्तवादिनानिवार्यमाणासुत शोककर्शिता ॥ नचैवदेवीविररामकूजिता त्प्रियेतिपुत्रेतिचराघवेतिच ॥ २३ ॥

उस समय कौशल्याजी पुत्र शोकसे बहुतही घबडाकर व्याकुल हो गईथीं यद्यपि सुमंत्रजीने इस भांतिकी युक्ति पूर्ण वातोंसे उनको बहुत समझाया परन्तु वह शान्त न होकर " हा प्रियपुत्र ! हा रघुनंदन " कह-

कर वारंवार रुदन करने लगीं ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे षष्टितमः सर्गः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमः सर्गः ॥

वनंगतेधर्मरतेरामेरमयतांवरे ॥
कौसल्यारुदतीचार्ताभर्तारमिदमब्रवीत ॥ १ ॥

जब गुणाभिराम धर्ममें रमण करने वाले श्री रामचन्द्रजी वनको चले गये तो कौशल्याजी बहुतही व्याकुल हृदयहो रोय २ अपने पति राजा दशरथजीसे बोलीं ॥ १ ॥ राजा दशरथ दयालु, वडे दानी, प्रियवादी जानकरहैं ऐसा तीनों लोकमें आपका वडा यश फैल रहाहै ॥ २ ॥ और विशेष करकै आप नरश्रेष्ठहैं फिर भला आपने किस प्रकारसे और किन प्राणोंसे पुत्र वधू जानकीको अपने दोनो पुत्रोंके साथ वनको भेज दिया? हाय! जो राम लक्ष्मण वडे सुखसे लालन पालन किये गये, जिन्होंने कभी लेश मात्र दुःख नहीं जाना, सो न जानें अब किस प्रकार वह वनवास के दुःखको सहेंगे ॥ ३ ॥ सीताकी यह सोलह वर्षकी तरुण अवस्था, और विशेष करके जिनको सदा सुखही भोग करना उचितहै सो वह कोमल अंग वाली जनक लडैती प्यारी जानकीभी न जानें किस तरह से रहेंगी? ॥ ४ ॥ अहो! विशाल नेत्रवाली जानकीने सदाही सुन्दर शोभन युक्त स्वादिष्ट व्यञ्जन भक्षण कियेहैं। वह अब किस प्रकारसे वनके खट्टे तीखे फल वह समा इत्यादिक अन्न भोजन करेंगी ॥ ५॥ हा! जिन कल्याणिनें सदाही मनोहर गीत व बाजे आदिक श्रवण कियेहैं। इस समय वह किस भांतिसे मांस खाने वाले सिंह इत्यादिक पशुओंका दारुण व कठोर शब्द श्रवण करेंगी ॥ ६॥ और इस समय वह महावल राम इन्द्रकी ध्वजाके तुल्य सबको उत्सव देने वह करानें वाली भूषण रहित परिघ समान भुजाका तकिया बनाकरही शयन करते होंगे ॥ ७ ॥ न जानें फिर हम कितने दिनोंमें रामचन्द्रजीकी वह कमल दलकी समान बड़ी आंखें वारिजकी समान मनोहर वर्ण और पद्म सदृश सुगन्धि विश्वास युक्त नरम घूंघर वाले बाल जिसपर पडे हुये ऐसा सुकुमार वदन देख पावेंगी? ॥ ८ ॥ हमारा हृदय निश्चयही वज्रके समा-

नहै इसमें कोई संदेह नहीं क्योंकि रामको न देखकर अबतकभी इसके हजार टूक नहीं होजाते ॥ ९ ॥ हे महाराज ! आपनें वृद्धोंके सहित परामर्श न करके एकाएक कैसा शोचनीय कर्म किया । कि हमारे वारे राम लक्ष्मण सब प्रकारसे सुखके भागी होकर कैकेयीकी ताडनासे अनाथोंकी समान वनमें दौडते फिरतेहैं ॥ १० ॥ यदि १४ वर्ष बीतनेंके पीछे पंद्रवें वर्षमें रामचन्द्र लौटभी आवैं और उस समय भरत उनकी राजगद्दी और खजाना देंदे ऐसा तो बोध नहीं होता ॥ ११ ॥ क्योंकि श्राद्धके समय कोई २ पहले पहले अधिक फल मिलनेके लिये दामादि समधीही आदिको बुलाकर खिलातेहैं और तिसके पीछे जब उनका मनोरथ पूर्ण होजाताहै तो पीछेसे ब्राह्मणोंको भोजन करनेके लिये बुलातेहैं ॥ १२ ॥ परन्तु ऐसे स्थानपर गुणवान विद्वान देवताओंकी समान ब्राह्मण भोजन नहीं करते चाहे उनको अमृत क्योंन खानेंको मिलताहो क्योंकि उनका मान भंग होजाताहै ॥ १३ ॥ जिस प्रकारसे कि बैल अपने सींगोंका कटवाना नहीं सहसकते वैसेही ज्ञानी श्रेष्ठ ब्राह्मण गण भोजनसे बचा हुआ अन्न भोजन नहीं करते ॥ १४ ॥ बस इस रीतिसे छोटे भाई भरतके भोगे हुए राज्यको श्रेष्ठ भाई सब बातों में श्रेष्ठ रामचंद्र कैसे अंगीकार करैंगे वे अपना राज्य लियेही रहैंगे ॥ १५ ॥ व्याघ्र कभी पराया माराहुआ मांस या और पदार्थ कभी नहीं खाता इसी प्रकार पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी भरतके भोगे हुये राज्यको कभी ग्रहण करनेकी अभिलाष नहीं करैंगे ॥ १६ ॥ क्योंकि यज्ञसे बची हुई खीर, घी, कुश, खंभ व श्रुव इत्यादि फिर दूसरे यज्ञके योग्य नहीं रहते कारण कि वह जूठे होजातेहैं ॥ १७ ॥ सार निकाले हुये अमृतकी समान अथवा सोम निकाले हुये यज्ञकी समान यह भरतका भोगा हुआ राज्य रामचंद्रजी किसी प्रकारसे ग्रहण करने में सम्मत नहीं होंगे ॥ १८ ॥ बलवान सिंह जिस प्रकार अपनी पूंछ घुमानेंको नहीं सह सकता वैसेही रामचंद्रजी ऐसे असत्कारको नहीं सह सकें क्योंकि रामचंद्रजीको राज्य तौ पाने दिया नहीं और वह भरत जोका दिया लेलैं यह कैसे हो सकताहै ॥ १९ ॥ रामचंद्र बहुतही धर्म परायण

हैं व और सब लोकोंकोभी धर्मकी तरफ फेरतेहैं यद्यपि सुर असुरों सहित सब लोक उनसे संग्राममें भय करतेहैं तथापि वह बल पूर्वक राज्य ग्रहण करके कभी अधर्म संचय नहीं कर सकते ॥ २० ॥ वे महावीर्यवान और महाबाहुहैं प्रलयकालमें भगवान जिस प्रकार सब संसारको भस्म करतेहैं और सागरको सुखाय देतेहैं वैसेही यह अपने सुवर्णके बाणोंसे सहजही यह कर्म कर सकते हैं ॥ २१ ॥ हाय ! मत्स्य जिस प्रकार अपनी संतानहीको खाय जाताहै, वैसेही कमल लोचन हमारे वारे राम सिंहके समान बलशाली और सब लोकोंमें श्रेष्ठ होकर भी अपने पिता करके नष्ट हुये ॥ २२ ॥ सनातन ऋषिगणोंने वेदोंमें ब्राह्मण क्षत्रिय और वैश्य इन तीन वर्णोंके आचरण करनेके लिये जो उपदेश कियाहै सो आपका उसमें विश्वास नहींहै, इसीसे तो आपने परम धार्मिक पुत्रको भी वनमें भेज दिया ॥ २३॥ हे महाराज ! विचार करके देखो कि स्त्रीकी एक गति स्वामी, दूसरी गति पुत्र , तीसरी गति जात विरादरीके लोग, और चौथी उसको कोई गति नहींहै ॥ २४ ॥ परन्तु हाय ! यह दुःख किस्से कहूं आप हमारे प्रथम गति हैं तो सही पर हमारे नहींहैं; और दूसरी गति जो हमारे पुत्र रामचंद्रथे उनको वनमें भेज दिया, तीसरी गति सब परिवार वाले भी रामचंद्रके विना मरे पडेहैं, मैं विधवा नहींहूं जो रामचंद्रजीके साथ वनको चली जाती बस हमारे धर्मका कोई रक्षक नहीं आपने हमें न इधरका रक्खा न उधर का सब ओरसे नष्ट किया और कहीं का न रक्खा ॥ २५ ॥ और हमही को नहीं आपने इसी प्रकार अनेक राज्य सहित नगरको,सब मंत्रियों सहित प्रजाको और पुत्रके साथ मुझको व समुदाय नगर निवासियोंको नष्ट किया केवल आपकी भार्या कैकेयी और पुत्र भरत अब परम हर्षित होंगे ॥ २६ ॥

इमांगिरंदारुणशब्दसंहितांनिशम्यरामेतिमु
मोहदुःखित ॥ ततःसशोकंप्रविवेशपार्थिवः
स्वदुष्कृतंचापिपुनस्तथास्मरत् ॥ २७ ॥

कौशल्याजीके इस प्रकार मर्मभेदी वचन सुनकर राजादशरथजी अतीवही दुःखित हुए और हा राम ! कहकर चेतनारहित हो रामचंद्रजीको

याद करते मूर्च्छित होगये। और फिर चैतन्य होकर शोकसागरमें डूब-गये और पहले किये उस बुरे कर्मकी याद आती रही ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे एकषष्टितमः सर्गः ॥६१॥

द्विषष्टितमः सर्गः ॥

एवंतुक्रुद्धयाराजारामभात्रासशोकया ॥
श्रावितःपरुषंवाक्यंचिंतयामासदुःखितः ॥ १ ॥

शोकके वेगसे क्रोधित हुई राम जननी कौशल्याजीके ऐसें दारुण वचन श्रवण करके राजा दशरथजी दुःखित होकर चिन्ता करने लगे॥१॥ चिन्ता करते २ उनको मोह उपस्थित हो आया और उनकी सब इ-न्द्रियां विकल हो आई और फिर बहुत देरमें उनको होश आया ॥ २ ॥ चैतन्यता प्राप्त करके दीर्घ और बडे श्वास लेते हुये कौशल्याजीको पा-स बैठे देखकर फिर चिन्ता करने लगे॥३॥चिन्ता करते २ उनको यह बात याद आई जो कि पहले उन्होंने अज्ञानके वश होकर शब्दवेधी बाणसे ऋषिकुमारको मार डालाथा ॥ ४ ॥ एकतो उस शोकसे और एक रा-मचंद्रजीके शोकसे उनका चित्त संतापित होकर व्याकुल होने लगा॥५॥ वह दोनो शोकोंसे भस्म होनेसे दुःखित होके देवी कौशल्याजीको प्रसन्न करनेके लिये हाथ जोड शिर झुकाये कांपकर यह कहने लगे ॥ ६ ॥ हे प्रिये ! हम हाथ जोडकर तुमको प्रसन्न करतेहैं क्योंकि तुम सदा श-त्रुओंके ऊपर भी दया करती और प्रसन्न रहतीहो निन्दा रहितहो हे देवि ॥ ७ ॥ गुणवान् हो व गुणहीनहो कुशीलहो या सुशीलहो पर धर्म-वान स्त्रियोंके लिये स्वामी ही प्रत्यक्ष देवताहै ॥ ८ ॥ तुमभी सदा धर्म मेंही तत्पर रहतीहो और जानतीहो कि कौन विषय अच्छा और कौन बुराहै ? अतएव दुःखमें पडके हमारे इस दारुण पुत्र शोकके ऊपर ऐसे कुप्यारे वचन तुमको नहीं कहने चाहिये ॥ ९ ॥ दीन भावापन्न महाराज दशरथजीकी ऐसी बातको सुनकर कौशल्याजीके नेत्रोंसे आंसुओं-की धार इस भांति बहने लगी जैसे वर्षाकालमें कोठे आदिके नाले बहा करतेहैं ॥ १० ॥ कौशल्याजीने रो २ कर नम्रता पूर्वक महाराज द-

शरथजीके जोडे हुये हाथ अपनें मस्तक पर रख लिये और शीघ्रता पू-र्वक डरे हुये वचनोंसे परम आदर पूर्वक महाराज दशरथजीसे बो-लीं ॥ ११ ॥ हे देव! मैं पृथ्वीपर गिरकर आपके चरणोंको छूतीहूं आप प्रसन्न हूजिये जब आपने हमसे क्षमा प्रार्थनाकी सो मैं तो इससेही मरगई क्योंकि आपको हमसे क्षमा प्रार्थना करनी ठीक नहीं ॥१२॥ स्वामी इस लोक और परलोक दोनों में पति आदर करनेकी सामग्रीहै सो स्वामीको जब इस प्रकार स्त्री सतावे तो वह स्त्री कभी कुलीन नहींहै ॥ १३ ॥ हे धर्मविद्! मैं धर्मको जानतीहूं और यहभी जानतीहूं कि आप सत्यवादी हैं। मुझे निदारुण पुत्र शोकहै। व्याकुल विह्वल होनेसे मेरे मुखसे ऐसी अ-नुचित वार्त्ता निकल गई ॥१४॥ देखो शोकसे धीरजका नाश हो जाताहै और शोकही ज्ञानको नाश करदेताहै और अधिक क्या कहूं शोकसेही सर्व नाश होजाताहै वरन शोकके समान कोई आततायी शत्रु नहींहै ॥ १५ ॥ चाहें दुश्मनके हाथ का प्रहारभी सह लिया जाय परन्तु शोकतो थोडेसे थोडाभी नहीं सहाजाता बस और पुत्र शोककी व्यथा क-हांतक कहूं ॥ १६ ॥ गिनती में आज पांच रातें रामचन्द्र जी-को वन गये बीतीहैं, परन्तु हमें तो यही पांच रात्रि पांच वर्षकी समान बीतीहैं रामके शोकके मारे हर्ष तो हमसे एक साथही वि-दा होगया ॥ १७ ॥ यह कई एक रात्रि रामकी चिन्ता ही क-रते बीतीहैं जिस प्रकार नदीके वेग द्वारा समुद्रका जल बढ जाता है वैसेही रामचन्द्रजीकी चिन्तासे हमारे हृदय में शोक बढ रहा है ॥ १८ ॥ कौशल्याजी इस प्रकार शुभ कथा कहने लगीं क्रमसे सूर्य नारायणकी किरणोंका क्षय हुआ और रजनी उपस्थितहुई ॥१९॥

अथप्रसादितोवाक्यैर्देव्याकौसल्ययानृपः ॥
शोकेनचसमाक्रांतोनिद्रायावशमेयिवान् ॥ २० ॥

राजा दशरथ कौशल्याजीके वचन सुनकर कुछेक हर्षित हुए और फिर शोकमें निमग्न हो नींदके वश होगये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० अयोध्याकांडे द्विषष्टितमः सर्गः ॥ ६२ ॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ॥

प्रतिबुद्धोमुहूर्तेनशोकोपहतचेतनः ॥
अथराजादशरथःसचिंतामभ्यपद्यत ॥ १ ॥

एक मुहूर्त्तके पीछे राजा जागे तब मारे शोकके व्याकुल चित्तहुए और वार २ चिन्ता करने लगे ॥ १ ॥ जिस प्रकार राहु असुरकी अंधियारी ग्रहणके समय सूर्य नारायणको ढक लेतीहै वैसेही रामचंद्र व लक्ष्मणजीके वनवास देनेका जो उपद्रवथा वह इन्द्रकी समान राजादशरथ जीको उस समय सताने लगा ॥ २ ॥ सीता सहित रामचंद्रजीके वन चले जाने पर राजादशरथजीको अपने पहले किये दुष्कर्मकी सुधि आई और वह महारानी कौशल्याजीसे उस वृत्तांतको कहनेके अभिलाषी हुए ॥ ३ ॥ रामचन्द्रजीके वनमें चले जाने पर छठवीं रात्रि को आधी रात्रिके समय उन महाराज दशरथजीको अपना पहला दुष्कर्म सहसा याद आया ॥ ४ ॥ व पुत्र शोकसे बनाय पीडितहो वह राजा अपने खोटे कर्मको यादकर पुत्र शोकसे दुःखित कौशल्याजीसे बोले ॥ ५ ॥ अयिकल्याणि! अच्छा या बुरा जो कुछभी कर्म कियाजाताहै सो उसके करनेवालेको उन सब कर्मोंका फल भोगना पडताहै ॥ ६ ॥ हे भद्रे! उनमेंसे जो पुरुष कर्म करनेंके पहले उस कर्मकी छुटाई प्रतिष्ठा, या अच्छे बुरेका विचार नहीं करताहै उसेही बालक कहते हैं ॥ ७ ॥ जो पुरुष पलाश वृक्षके लाल २ सुन्दर २ फल देख फलका लोभीहो आमके पेडको काटकर पलाशकी जडमें जलदे तो फलके समय निश्चयही उसको पछताना पडताहै क्योंकि पलाशमें किसी प्रकारके फल नहीं आते ॥ ८ ॥ इससे जो पुरुष कर्मको करने लगता और उसके फलको नहीं शोचलेता उसकोभी फलके समय आम काटकर पलाश सींचनेवालेकी समान शोक करना पडताहै ॥ ९ ॥ सो रामचंद्रजीके त्याग करनेसे हमनेभी आम्रवनको काटकर पलाशके पेडको जलसे सींचा अतएव इस समय फलभोग करनेंके समय शोकका भोग कररहेहैं ॥ १० ॥ जो हो हे देवी! पहलेही कुमार अवस्थामें हमने शब्दवेधी कहलाकर विख्यात होनेके अभिलाषसे धनुष धारण कर जो पाप किया

था हे देवि! सो उसी पापसे अब यह दुःख पडा ॥ ११ ॥ हम आपही इस दुःखके हेतुहैं बालक जिस प्रकार अज्ञानतासे विष भक्षण कर जाय वैसेही हमभी अजानमें यह पापकर विनाश हुए ॥ १२ ॥ साधारण मनुष्य जिस प्रकार पलाशके सुमनपरही मोहित हो जातेहैं और उसके फलकी ओर ध्यान नहीं देते, वैसेही हमने यह न जाना कि शब्दवेधी होनेसे ऐसा फल होताहै और इसमें अनुरक्त हुआ ॥ १३ ॥ जब कि तुम्हारा विवाह नहीं हुआथा और हम इस युवराज पदवीको प्राप्तथे ऐसे समय वर्षाका समय आया जिसने कि हमारे कामवेगको बढाया ॥१४॥ सूर्य देव अपनी तेज किरणोंसे संसारमें पृथ्वीका समस्त रस खैंच और संसारको तपाकर प्रेतगण सेवित भयंकर दक्षिण दिशाको चले गये ॥ १५ ॥ गरमीकी ऋतुका प्रभाव एकवारही दूर होगया स्निग्ध बादल चारों ओरसे देख पडतेथे उनको देखकर मेढक, चातक और मोर सब हर्षित हुए ॥ १६ ॥ जब वर्षा होने लगी तब सब पक्षी पंख भीगजानें के कारण इधर उधर डैता फट फटानें लगे, मानों बडे कष्टमें पडेहैं इस लिये वर्षाकी पवनसे कांपते हुए वृक्षों पर जाय२ चढ बैठे ॥१७॥ वर्षे हुए और बराबर बर्षते हुऐ वर्षाके जलसे ढक जाने पर सब पर्वत महासागर की समान शोभा विस्तार करने लगे और चातक आनंदसे मतवाले होकर उनपर घूमनें लगे ॥ १८ ॥ और पाण्डुरंगके निर्मल सोते गेरु आदि विविध धातुओंसे मिलकर धूसर पीले और लाल तथा भस्म से मिलकर सर्पकी समान टेढी गतिसे पर्वतसे झरने लगे ॥१९॥ इस प्रकार अति सुखकर वर्षाकालमें हम धनुष बाण ले रथपर सवारहो शिकार खेलने और विचरण करनेंके समय सरयूके तीर पर पहुँचे ॥२०॥ जातें२ वहां पहुँचे जहां वनके जीव जल पीनें आते थे हमारा यह प्रयोजन न था कि रातमें वहां कोई मृग, महिष, मातंग व और कोई शिकारी जीव आवैगा तो उसे मारें क्योंकि तब तक हम इन जीवोंके मारनेके विषयमें इन्द्रिय जितनथे ॥ २१ ॥ अनन्तर उस घोर वर्षाकी अंधियारीके मध्य कोई जलमें घडा डुबाने लगा तो उसके भरनेका शब्द होने लगा तब हमें ऐसा मालूम हुआ कि मानों कोई हाथी शब्द कर रहाहै॥ २२ ॥ इस प्रकार अनुमान करके उस शब्दको निशाना बना हाथीके मारनेंके

लिये तरकससे हमने विषधर सांपकी समान जहरीला और दिपताहुआ तीर निकाला और तत्क्षणही निशाने की ओर उसको छोडा ॥ २३ ॥ मैंने जैसेही वह सांपके पातकी समान विषवाला पैना बाण छोडा वैसेही किसी वनवासीका बोल हमें प्रगट सुनपडा ॥ २४ ॥ व यहभी सुन पडाकि वह " हा ! हा ! " कह बाणकी व्यथासे व्याकुलहो जलमें गिरा और वह मनुष्यतो थाही इस कारण साफ बोल सुनाई आया ॥ २५ ॥ कि हाय ! मैं तपस्वी हूं रात्रिमें जल ले जानेंके लिये इस निर्जन नदीपर आयाहूं अतएव मेरे ऊपर किस कारणसे शस्त्राघात हुआ? इस निर्जन रात्रिमें नदीके किनारे जल लेनेंके लिये आयाथा किसने मेरे यह बाण मारा हमने किसीकी कौनसी हानिकी ? वनके कंद, मूल, फल खाकर हम जीवन धारण करतेहैं और वनमें हमारा वासहै हम तौ केवल ऋषिहैं दंडभी नहीं धारण करते फिर क्यों हमारे ऊपर यह प्रहार हुआ ॥ २६ ॥ २७ ॥ वल्कल मृगचर्म धारण किये हुये जटा रखाये हमारी समान तपस्वी का वध शस्त्रसे कैसे किया गया? ॥ २८ ॥ हमें मार कर किसीका क्या काम चलैगा? अथवा हमने किसीका कुछ अनभल भीतो नहीं कियाहै। यह कार्य निष्फलहै और अनर्थ कर्मका करानेवालाहै ॥ २९ ॥ गुरुकी शय्यापर बैठनेवालेको जिस प्रकार कोई साधु नहीं समझता ऐसेही उसको भी कोई साधु नहीं कहैगा जिसने कि हमारा वध कियाहै हमें कुछ अपने प्राणोंके भयसे इतना शोक नहींहै ॥ ३० ॥ शोक और मरनेका भय तौ केवल पिता माताके लिये कर-ताहूं उन वृद्धोंका अबतक तौ हमने पालन पोषण किया ॥ ३१ ॥ बाण लगनेसे हमारे मर जाने उपरान्त हमारे बूढे माता पिता किस प्रकार अपना निर्वाह करैंगे? हमारे माता पिता तो वृद्धहैं और हम एक बाणसे मारेगये ॥ ३२ ॥ हाय! हम और हमारे वह वृद्ध माता पिता सब एकही साथ मरे, हाय! किस बालक बुद्धिने हम सबको मार डाला हेदेवि ! हमें सदाही धर्मकी आकांक्षा रही अतएव वह करुणा भरी वाणी सुनकर॥३३॥ मैं बहुतही दुःखित हुआ वरन दयाके मारे शरीरमें कंप होनेसे धनुष बाण दोनो हमारे हाथसे गिरपडे रात्रिके समय विलाप करते हुए उस ऋषिके करुणा युक्त वचन सुन ॥ ३४ ॥ हम शोकसे ढक कर्त्तव्या

कर्त्तव्य ज्ञान रहित होगये फिर दीन भावापन्न और अत्यन्त दुःखित मनसे उठकर उस स्थानको चला ॥ ३५ ॥ और वहां जाकर देखातो सरयूके तीर पर बाणसे विधाहुआ जटा रखाये जल भरा घडा हाथसे पकडे एक तपस्वी पडाहै ॥ ३६ ॥ तमाम शरीरमें रुधिर की सनी धूरि लगीहै बाणकी व्यथासे व्यथित हो पृथ्वीपर पड़ाहै उसनें हमको डरे व घबडाये हुए देखा ॥ ३७ ॥ मानो अपने तेजसे हमको जलता हुआसाही यह क्रूर वचन बोला कि हेराजन् ! हम वनवासीहैं सो हमने तुम्हारा क्या अपकार किया ॥ ३८ ॥ हम अपने माता पिताके पीनेको जल लेने आयेथे सो आपने हमें मारडाला और एकही बाणसे हमारे मर्म स्थानको घायल किया ॥ ३९ ॥ व हमारे दो अंधे पिता माताकोभी मारडाला हे दुर्मते ! वह दोनों दुर्बल और अंधे प्यासे होकर निश्चयही हमारी वाट देखते होंगे ॥ ४० ॥ वह हमारे आनेकी राह जोहते हुए बहुतही कष्टसे प्यासको रोके हुये होंगे ऐसा बोध होताहै कि हमारे ज्ञान और तपका कुछ फलही नहीं ॥ ४१ ॥ पिताजी नहीं जानते कि हम ऐसी दशाको प्राप्तहो पृथ्वीपर पडेहैं और उन्हें यह समाचार मिलभी जाय तौभी वह क्या कर सकतेहैं क्योंकि उनमें कुछ पराक्रम नहीं और अंधे होनेसे चल फिर तो सकतेही नहीं ॥ ४२ ॥ एक वृक्षको काटनेसे जिस प्रकार दूसरे पेड उसकी रक्षा करनेमें असमर्थ होतेहैं । हे राघव ! आप शीघ्र हमारे पिताके समीप जाकर यह सब वृत्तान्त कह दीजिये ॥ ४३ ॥ जबतक हमारे पिताजी वायुसे बढी अग्नि करके वन जलानेकी समान आपको भस्म न कर डालें उससे पहलेही आप शीघ्रतासे जाकर पिताजीसे यह वृत्तान्त कह दीजिये हे राजन्! हमारे पिताजीके आश्रमपर जानेका यह छोटासा पगडंडीका मार्गहै ॥ ४४ ॥ वहां जाकर आप पिताजीको प्रसन्न करें जिससे कि वह क्रोधित होकर आपको शाप न दें हे राजन् ! हमारे मर्म स्थानसे यह पैना बाण निकालकर हमें शल्य रहित कीजिये ॥ ४५ ॥ हे राजन् ! नदीका वेग जिस प्रकार ऊंचे रेतके करारेको काट डालताहै वैसेही यह आपका तेज जोर हमारे मर्ममें चोट देरहाहै इससे हमारी छातीसे यह बाण निकाललो तो मरण होजाय ॥ ४६ ॥ हे देवि ! इस समय मेरे हृदयमें यह चिन्ता उदय हुई कि म-

र्ममें बाण लगे हुये ऋषि कुमारको बहुतही व्यथा हो रहीहै परन्तु जो बाण निकालताहूं तो यह तापस कुमार अभी मर जायगा और ब्रह्महत्या होगी बाणके निकालनेमें मैं दुःखित और शोकसे व्याकुल और कातरहो इस प्रकारसे चिन्ता कर रहाथा कि ॥ ४७ ॥ तब उस मुनिने हमारी चिन्ता दशाको देखलिया और दुःखी हुये मुझसे बडे कष्टसे वह बडी कृपा सहित सब कुछ जानने वाला वह ऋषि बोला ॥ ४८ ॥ यद्यपि उसको बोलनेकी शक्ति नथी क्योंकि सब शरीर कांप रहाथा और इधर उधर धरतीमें लोटताथा मरनेपर उतारूथा तौभी हमारे ऊपर दयाकर धैर्य्यावलम्बन पूर्वक स्थिर चित्तहो बोला ॥ ४९ ॥ हे राजन्! हमें वधकर आप ब्रह्महत्याके डरसे बाण नहीं निकालतेहैं सो ब्रह्महत्याका डर दूर कर दीजिये क्योंकि हम ब्राह्मण नहींहैं आपके मनकी व्यथा दूरहो ॥ ५० ॥ हम वैश्यसे शूद्रीके गर्भमें उत्पन्नहैं, बाणसे घायल हुए बहुत कष्ट सहित जब ऋषि कुमारने ऐसा कहा वह उस समय बाणके लगनेसे बहुत व्याकुल होरहाथा ॥ ५१ ॥ और मारे कष्टके पृथ्वीपर गिरकर तडफडानें लगा और थर २ कांप रहाथा तब हमने उसकी छातीसे बाण निकाल लिया ॥ ५२ ॥ बाणके निकालतेही उस तपस्वीने महाभीत होकर मेरी ओर देख प्राण छोड़ दिया ॥ ५३ ॥

जलार्द्रगात्रंतुविलप्यकृच्छ्रंमर्मव्रणंसंततमुच्छ्वसंतम् ॥ ततःसरय्वांतमहंशयानंसमीक्ष्यभद्रे सुभृशंविषण्णः ॥ ५४ ॥

मर्म स्थानमें घाव लगनेसे उसको बहुतही क्लेश हुआ और वह जलमें गिर पडा इसकारण उसका सब शरीर भीग रहाथा। इसी अवस्था में वह बारंबार ऊंधे श्वास लेता और विलाप करता हुआ सरयू नदीके तीर प्राण त्यागकर अनंत निद्रामें सोगया। हे महाराणी! उसको मरा हुआ देख मैं बहुतही दुःखित शोकाकुल और मर्माहत हुआ ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमःसर्गः ॥

वधमप्रतिरूपंतुमहर्षेस्तस्यराघवः ॥
विलपन्नेवधर्मात्माकौसल्यामिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

तापस कुमारके अयोग्य वध वृत्तान्त की सुधि करते हुए धर्मात्मा महाराज दशरथजी विलाप करते २ कौशल्याजीसे यह बोले ॥ १ ॥ हे देवि! मैं अज्ञानसे यह महा पापकर व्याकुलेन्द्रिय हो अकेला बैठ चिन्ता करने लगा कि अब किस प्रकारसे मंगलहो! ॥ २ ॥ बहुत समझ सोच उस घडेमें निर्मल सरयूका जल भरकर उस मार्गसे उसके पिताके आश्रमकी ओर चला जोकि उसनें बतायाथा ॥३॥ वहां जाकर उसके वृद्ध पिता माताको देखा उनकी अवस्था अति शोचनीय और शरीर भी बहुतही दुर्बल हो रहाथा उनको देखकर ऐसा बोध हुआ मानो दो पक्षियोंके पर कट गयेहैं ॥ ४ ॥ इसकारण वह उठकर चल फिर नहीं सकते। यद्यपि उनकी यह आशा कि " पुत्र जल लाता होगा " इस जन्मके लिये उखाड डालीथी तथापि वह यही आशा किये बैठेथे कि पुत्र कब जल लेकर आताहै।अब वह बिल्कुल अनाथ हो गयेथे क्योंकि सिवाय पुत्रके दूसरा उनका पालन पोषण करने वाला कोई नथा ॥ ५ ॥ हम शोकाकुल चित्तसे और डरके मारे प्रायः चेतना रहित होगयेथे सो उस आश्रममें जाकर हमारा शोक औरभी बढा ॥ ६ ॥ हमारे पैरोंकी पगाहट पाकर ऋषि अपना पुत्र समझ हमसे बोले " वत्स " तुम्हें विलम्ब किस कारण हुआ? अच्छा अब जल्दीसे पानी ले आओ ॥६॥७॥ तात। जिस कारणसे कि तुम अबतक जलमें खेल करते रहे इस कारण तुम्हारी माता बहुत घबडाकर तुम्हें स्मरण करतीहै अब शीघ्र कुटीमें प्रवेश करो॥८॥हे यशवान हमने वा तुम्हारी माताने यदि तुम्हारा कुछ अप्रिय कियाहो तौ हे तपस्वी तुम उसको अपने मनमें मत धरना ॥ ९ ॥ हम अगति और नेत्रोंसे हीन हैं सो तुमही हमारे गति और नेत्रहो हमारे प्राण तुममेंही लगे हुये हैं अतएव तुम आज क्यों नहीं बोलते ॥ १० ॥ ऋषि यह बातें बुढापेके मारे बहुत धीरे २ बोलतेथे जिससे कि वाणी निर्मलथी इस कारण स्पष्ट शब्द सुनाई नहीं आताथा इस कारण बहुत डरते हुये हम मुनिसे बोले ॥११॥

बोलनेके समय मनसा वाचा और कर्म करकै बहुत सावधानी व धीरेसे उनके पुत्रका कष्टमय वृत्तान्त कहने लगे ॥ १२ ॥ हे भगवान मैं क्षत्रिय हूं हमारा नाम दशरथहै हम आपके पुत्र नहीहैं आप लोग बडे सज्जनहैं पर यह नहीं जान्ते कि अपने कर्मसे क्यों यह दुःख पाया ॥१३॥ हम पनघटकी भूमिमें जल पीनेको आये हुये किसी हाथी वा और कोई शिकारी जीव मारनेके अभिलाषसे धनुष धारण कर सरयू तीर पर आयेथे ॥ १४ ॥ वहाँ हमने जलमें घडेके भरनेंका जो शब्द सुना तौ जाना कि हाथी पानी पीरहाहै यह उसी का शब्दहै इस कारण उसके समक्षही बाण चलाया ॥ १५ ॥ तिसके पीछे सरयूके तीर जाकर देखाकि एक ऋषि मरण तुल्य होकर भूमिपर पडा हुआहै हमारे बाणसे एक वारही उसका हृदय विदीर्ण होगयाथा ॥ १६ ॥ वह बहुतही विलाप कर रहाथा फिर हम उसके समीप गये परन्तु बाणको उसके हृदयसे न निकाला, तब उसने कहाकि हृदयसे बाण निकालदो तब हमने उसके कहनेसे हृदयमें से विधे हुए बाणको निकाला ॥ १७ ॥ शरके निकालते ही वह उसी समय स्वर्गको चलेगये । और मरनेंके समय आप वृद्ध व अंधोंके लिये उन्हों-ने बहुतही शोक किया ॥ १८ ॥ हमने अजान करके ही सहसा आपके पुत्रको धोखेसे मार डालाहै; और वह अब स्वर्ग चले गयेहैं; अब जो कर्त्तव्य हो सो कीजिये और मेरे पर प्रसन्न हूजिये ॥ १९ ॥ मेरे किये हुये पापका दारुण वृत्तान्त मेरेही मुखसे सुन वह मुनिराज यद्यपि सब तरहका शाप दे सकतेथे पर कुछ न देसके ॥ २० ॥ परन्तु नेत्रोंमें आंसू भर और शोकसे मूर्च्छित होकर ठंढी २ श्वासे लेते हुये वह महा तेजवा न मुझ हाथ जोडे खडे हुएसे बोले ॥ २१ ॥ हेराजन्! तुमने जो यह दुष्कर कर्म किया सो यदि इसको तुम आपही अपनें मुँहसे न कहते तो तुम्हारे मस्तकके अभी सैकडों हजारों टुकडे होजाते ॥ २२ ॥ हे राजन्! क्षत्रधर्मावलम्बी महेन्द्रभी यदि सम्यक् वानप्रस्थ धर्मानुष्ठा-यी पुरुषको जान बूझकर वध करै तो उसको अपने स्थानसे भ्रष्ट होना पडे ॥ २३ ॥ हमारे पुत्रकी समान ब्रह्मवादी तपस्वी ऋषिके ऊपर जो कोई जान बूझकर शर त्याग करै तो उस तीर चलानेवालेके मस्तक

के सात टुकडे होजाँय ॥ २४ ॥ तुमने अनजानमें ही यह निन्दित कर्म कियाहै इसी कारणसे अबतक बचेहो नहीं तो तुम्हारी क्या चलाई सब रघुवंशही आजही निर्मूल होजाता ॥ २५ ॥ हे राजन् ! जो हुआ सो हुआ अब तुम हमें वहां ले चलो हम एकवार अपने लालकी सूरतको देखा चाहतेहैं। क्योंकि फिर उसके साथ इस जन्ममें तो हमारा साक्षात् नहीं होगा ॥ २६ ॥ हाय ! बच्चा कालके वश और मूर्च्छित होकर भूमिमें पडा होगा उसका सब शरीर लोहू लुहान होगा मृगचर्म जो ओढेथा वह अलग पडा होगा व प्राण उसके धर्मराजके निकट पहुँच गये होंगे ॥२७॥ हम पुत्रके शोकसे आतुर हुये उन दोनों बूढे बुढियाको उस स्थानमें कंधे पर चढाकर लेगये और वह अंधे जो थे इस कारण पुत्रको नहीं देख सके तब हमने उनको पुत्रका अंग छुआ दिया ॥ २८ ॥ वह दोनों पुत्रके निकट पहुँच और उसको छूकर दोनों ही उसके मृतक शरीरके ऊपर गिरपडे। अनन्तर वृद्ध ऋषि अपने पुत्रको पुकार २ कर यह बोले॥२९॥ लाल आज तुमनें हमें प्रणाम क्यों नहीं किया ? और किस कारणसे भूमिपर पडेहो और कुछ बोलेभी नहीं क्या तुम हमसे रिसाय गये॥३०॥ यदि हम नेहीं तुम्हारा कुछ अप्रिय कियाहै तो तुम्हारी माताने तो कोई अप्रिय व्यवहार नहीं किया अतएव तुम आँखें खोलकर देखो बच्चे तुम क्यों नहीं उठकर हमसे लपट जाते ? बोलो अरे एक बार तो मधुरवाणी बोलो ॥ ३१ ॥ आधीरात बीत जातीथी तिसके पीछे तुम उठकर मधुर स्वरसे शास्त्र व पुराण का पाठ करतेथे जिसको सुनकर हम बहुत ही प्रसन्न होते अब हम किसके मुखसे शास्त्रोंकी वार्त्ता सुनकर प्रमुदित हुआ करेंगे ॥ ३२ ॥ हे पुत्र ! हमारे शोक और भयसे कातर हो जाने पर अब प्रातःकाल कौन स्नान संध्योपासन और होमकर हमारे निकट बैठ हमको प्रमुदित करैगा ॥ ३३ ॥ बेटा अंधे होनेसे हमतो किसी कार्यकोभी नहीं कर सकते हममें तो यह सामर्थ्यभी नहीं कि जल और कंद मूल फलादि संग्रह करके अपना पेट भर सकैं। तुमही हमारे स्नान भोजन पानादिका प्रबंध कर देतेथे सो अब हमें छोडकर चले गये अब और कौन कंद मूल फल वनसे ले आकर प्रिय पाहुने की समान हमको भोजन करावेगा ॥ ३४ ॥ पुत्र ! तुम्हारी यह माताभी वृद्ध

अंधी, और बहुतही निराश्रयहै सो तुमही इसके एक सहारे और बुढावे-की लकडीथे अब तुम्हारे विना किस प्रकारसे इसका भरण पोषण क-रूंगा ॥ ३५ ॥ हे आल बाल प्रवाल लाल ! तुम ठहरो धर्मराजके पास मतजाओ अथवा यदि अवश्यही जाना हो तो अभी रुको कल हमारे और माताके साथ इकट्ठे चलना ॥ ३६ ॥ तुम्हैं छोडकर अनाथ अस-हाय और शोकसे कृपण हम किसी भांतिभी इस वनमें नहीं रह सकैंगे और शीघ्रही हम यमपुरको चले जायँगे ॥ ३७ ॥ वहां यमराजके दर्शन कर उनसे कहैंगे कि जिस दोषके करनेंसे हमारा पुत्र हमसे अलग होगयाहै वह आपको क्षमा करना होगा और यहभी करना पडैगा कि यही पुत्र अपनें माता पिताका हमारा पालन पोषण करै ॥३८॥ हम अ-नाथहैं अतएव वह महा यशवान धर्मात्मा लोकपाल यमराज अवश्यही हमको भय रहित यह अक्षय दक्षिणा देदेंगे ॥ ३९ ॥ बस हमारी यही प्रा-र्थनाहै वत्स तुम पाप रहित हो पर पूर्वजन्ममें कोई तो पाप कियाही हो-गा कि जिस्से मारे गये अतएव शस्त्रसे मरे हुये वीरगण जिस लोकमें गमन करतेहैं सो तुम हमारे सत्य बलसे उसी लोक में चले जाओ ॥४०॥ अथ-वा जो लोक कि संग्रामसे न भागकर सन्मुख समरमें प्राण त्यागन करते-हैं और जो गति उनको मिलतीहै तुम्हैं वही परमगति प्राप्त होवे ॥ ४१ ॥ अथवा सगर, शैब्य, दिलीप, जनमेजय, नहुष, धुन्धुमार इन सब राजऋ-षियोंकी जो गति हुई है वत्स इसी गतिको तुम पाओ ॥ ४२ ॥ अथवा सब प्राणियोंकी वेद वाद वा तपस्या करनेंसे जो गति होतीहै, भूमिदान व नित्य होम करनेसे जो गति होतीहै या जिस पुरुषका प्रेम अपनी एक मात्र धर्मपत्नीही में लगा रहताहै और उसको जो गति होतीहै, वत्स तुम्हारीभी वही गतिहो ॥ ४३ ॥ या हजार गोदान करनेसे जो गति हो-तीहै अथवा पर लोकार्थ अच्छे कर्म कर देह त्याग करनेसे जो गति हो-तीहै, बेटा ! वही गति तुम्हारी हो ॥ ४४ ॥ हमारे इस अति पवित्र तपस्वी वंशमें जन्म लेकर कभी किसीको अशुभ गति नहीं प्राप्त हुई इस्से मारे ग-येभी तुम हमारे बान्धव उत्तम गतिकोही प्राप्त करो ॥ ४५ ॥ इस प्रकार वह ऋषि वारंवार करुणा स्वरसे विलाप करते हुये अपनी स्त्रीके सहित पुत्रके अर्थ जल देनेंमें उतारू हुये ॥ ४६ ॥ जब उन दोनोंने जलदानादि

किया तौ वह धर्मविद ऋषिकुमार अपने कर्म बलसे दिव्य रूप धारणकर इन्द्रके सहित बहुत शीघ्र स्वर्गको चलागया ॥ ४७ ॥ स्वर्ग जानेके समय इन्द्रके सहित पिता माता दोनोंको एक मुहूर्त भरतक समझाया बुझाया फिर पितासे यह बोला ॥ ४८ ॥ हमने जो आपकी सेवा कीथी सो हमको उसही पुण्यके बलसे यह उत्तमोत्तम स्थान मिला व आप लोगभी बहुत शीघ्र हमारे निकट आवैंगे ॥ ४९ ॥ यह कहकर इन्द्रियोंका जीतनेवाला ऋषिकुमार अति देदीप्यमान विमान पर सवारहो उसीसमय स्वर्गको चलागया ॥ ५० ॥ इस ओर परम तेजस्वी अंधे मुनि भार्याके सहित अति शीघ्र पुत्रके लिये तर्पण करके हाथ जोड निकटही खड़े हुये हमसे बोले ॥ ५१ ॥ हे राजन्! हमें भी मारडालो अब मरनें में हमें भी कुछ कष्ट नहीं है हमारे यही इकलौता पुत्रथा सो तुमने उसको एकही बाणसे मार कर हमें अपुत्र कर दिया ॥ ५२ ॥ तुमने यद्यपि अज्ञान से हमारे बालक पुत्रको मारडाला है तथापि हम तुमको अति दुःसह दारुण शाप देते हैं ॥ ५३ ॥ हम जिस प्रकार पुत्रकी मृत्यु होने से इस समय महा दुःख भोग कर रहे हैं महाराज तुम्हें भी ऐसे ही पुत्रके शोकसे कष्ट पाकर मरना पडैगा ॥ ५४ ॥ तुम क्षत्रिय हो और विशेष कर अनजान पनसे ही ऋषिको मारडाला है इसही कारणसे हे नराधिप! तुमको ब्रह्महत्या नहीं लगी ॥ ५५ ॥ किन्तु दाता पुरुषके दानका फल जिस प्रकार अवश्य ही होता है वैसेही तुमको भी अति शीघ्र हमारी समान इस प्रकार की प्राण नाश करने वाली घोर दशामें पडना होगा ॥ ५६ ॥ इस प्रकार हमें शाप देकर करुणा पूर्वक अनेक भांतिसे विलाप कलाप कर वहींसे काठ इकट्ठा कर चिता बनाय मृतकको रख आग लगाय दोनों प्राणी चिता पर बैठ और भस्महोकर स्वर्गको चले गये ॥ ५७ ॥ हे देवि! मैंने जो उस समय अज्ञानता से प्रयुक्त शब्दवेधी होकर जो ऐसा पाप कियाथा सो आजही चिन्ता करते २ अचानक उसकी सुधि आयगई ॥ ५८ ॥ हे देवि! अपथ्य अन्न भोजन करने से जिस प्रकार रोग पैदा हो जाते हैं वैसेही हमारी उस पाप कर्मके करने से यह दशा हुई उसका फल आ पहुंचा ॥ ५९ ॥ हे भद्रे! उदार स्वभाव अन्ध मुनिनें

जो कुछ कहाथा इतने दिन बाद हमको उनहीके वचन प्राप्त हुए हैं। यह इतिहास कहकर राजा दशरथजी रोने लगे। और मरणके भयसे भीत होकर कौशल्याजीसे बोले ॥ ६० ॥ कौशल्ये! पुत्र शोकके कारण जो हमारे प्राण निकलने पर हो रहे हैं इस्से तुम हमको दृष्टि नहीं आती हो, अतएव तुम हमको स्पर्श करो ॥ ६१ ॥ न दृष्टि आनेका कारण यह है कि जो लोग यमधामको जाते हैं वह मरण समय किसीको देख नहीं सकते हा यदि रामचन्द्र हमको स्वयं छुवें व कुछ सहारादें॥६२॥ अथवा वह यौवराज्य और खजाना अंगीकार करैं तो बोध होता है कि कदाचित् हम जी जांय हे कल्याणि! हमने वत्स रामचन्द्रके साथ जो व्यवहार और वर्त्ताव किया है वह किसी प्रकार से भी शोभनीय नहीं है ॥ ६३ ॥ परन्तु उन्होंनें जो वर्त्ताव हमारे साथ किया है वह उनके योग्यही हुआहै पुत्र दुराचारी भी हो तो कोई भी विचारवान मनुष्य उसको त्याग कर सकता है ! ॥ ६४ ॥ अथवा वनवास देनेसे ऐसा कोई पुत्र है जो पितासे कुछ न कहै हा हम ऐसे दया रहित पिता व परम सुशील, पिता में भक्ति करनेवाले रामचन्द्र को छोड और कोई न पिताही होगा न पुत्रही है हे देवि! अब हमें तुम कुछ भी नहीं देख पडती और हमारी स्मरण शक्ति भी लोप होना चाहती है किसी बातकी सुधि नहीं आती ॥ ६५ ॥ यह देखो! यमराजके दूत हमको लेचलने के लिये जलदी करते हैं इस्से अधिक और दुःख की क्या बात होगी? कि मरण के समय ॥ ६६ ॥ मैं भी सत्य पराक्रम व धर्मात्मा रामचन्द्रको नहीं देख सकता अब जिसके समान दूसरा पुत्र कर्म न करसकै ऐसे पुत्रके न देखने का शोक ॥ ६७ ॥ हमारे प्राणोंको शोषे लेता है जिस प्रकार सूर्यकी किरणें अल्प वारिको शोषण कर लेती हैं वे लोग मनुष्य नहीं वरन देवता हैं जो रमणीक कुंडल धारण किये ॥ ६८ ॥ पंद्रहवें वर्ष श्रीरामचंद्रजीकी पद्मवत् दृष्टि सुन्दर भौंह युक्त व सुन्दर दांत सुन्दर नासिका सहित मुखारबिन्द देखैंगे ॥ ६९ ॥ शरदऋतुके चंद्रमा और खिले हुये कमल फूल इन दोनोही से रामचंद्रके मुखकी तुलनाहो सकती है जो लोग वह प्रकाशित और सुकुमार वदन मंडलको फिर देखैंगे वही धन्यहैं ॥ ७० ॥ वनवाससे निवृत्त फिर अयोध्यामें आये हुये

श्रीरामचंद्रजीकी कमल सुगन्धित मुख जो देखैंगे वही लोग धन्यहैं॥७१॥ अथवा अपने मार्गको प्राप्त हुए शुक्रकी नाई वनवाससे अयोध्यामें आ-या हुआ रामचंद्रजीको जो लोग देखैंगे वह यथार्थमें ही सुखीहैं हे कौशल्ये! अब दुःखकी बहुतायतसे मूर्च्छा आकर हमारे चित्तको बहुत घबडाये देतीहै ॥ ७२ ॥ शब्द, स्पर्श, और रस यह सब इन्द्रियोंके कार्यभी अब मेरी समझमें नहीं आते, चिन्तनाके नाश हो जानेसे हमारी इन्द्रियां भी सब नष्ट होगईं ॥ ७३ ॥ तेलके जल जानेसे जिस प्रकार दीपककी ज्योति एक वारही बुझ जातीहै हे कौशल्ये! यह हमारेही हृदयसे उठा शोक हम दीन और अनाथको ॥ ७४ ॥ इस प्रकार गिराये देताहै जिस प्रकार नदीका वेग किनारोंको ढाताहै रामचंद्रजीको वनमें भेजकर मैं एक-वारही अनाथ होगया अतएव मैं निश्चयही विनष्टहोगया। हाराम! । हा महा वाहे !! हाशोकके निवारण करनेवाले ॥७५॥ हापितृवत्सल! तुमही हमारे नाथ हो और तुमही हमारे पुत्रहो! तुम कहां गये? हा कौशल्ये! हासुमित्रे ! तुम अब हमें दिखाई नहीं देती हो ॥ ७६ ॥ हा दयाहीने! हा कुल ना-शिनि! हा परम शत्रु कैकेयी! तैंनें क्या किया? इस प्रकार राजा दशरथ जीने कौशल्या सुमित्राके निकट बहुतही विलाप और शोक कर अपनें प्राणोंको त्याग करने लगे ॥ ७७ ॥

तथातुदीनःकथयन्नराधिपःप्रियस्यपुत्रस्यवि
वासनातुरः ॥ गतेऽर्धरात्रेभृशदुःखपीडितस्त
दाजहौप्राणमुदारदर्शनः ॥ ७८ ॥

प्रिय पुत्र! रामचंद्रजीके वनमें भेजनेकी अवधिको शोचते हुये वह ब-हुतही व्याकुल और आतुर होगयेथे इस समय बहुतही दुःखसे व्याकुल होकर इस प्रकार विलाप करते २ आधी रातके समय सुन्दर दर्शन वाले राजादशरथजीनें प्राण त्यागे ॥ ७८ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अ० चतुःषष्टितमःसर्गः ॥ ६४ ॥

पञ्चषष्टितमः सर्गः ॥

अथरात्र्यांव्यतीतायांप्रातरेवापरेऽहनि ॥

बंदिनःपर्युपातिष्ठंस्तत्पार्थिवनिवेशनम् ॥ १ ॥

तदनन्तर वह रात्रि बीती और प्रभात होनेपर वन्दीगण राजद्वार पर आन पहुँचे ॥ १ ॥ व्याकरणादि शास्त्रोंमें बहुत होशियार सूत कुलका कीर्त्तन करनेमें निपुण मागध और तान लय स्वरके जानने वाले अच्छे२ गवैये अपनी २ रीतके अनुसार राज गुण कीर्त्तन करने लगे ॥ २ ॥ वे लोग बड़े ऊंचे स्वरसे राजाको आशीर्वाद देने लगे व उनकी स्तुति करने लगे। उस स्तुतिके शब्दसे सब घवरहरे प्रति ध्वनित होने लगे॥३॥ अनन्तर इन सब स्तुति पढनें वालों में जो ताली बजाकर वंदना करतेथे वह राजा दशरथजीके अचरजके कार्य्योंको वखान२ तालियां बजाने लगे ॥ ४ ॥ उन तालियोंके शब्दसे जागकर राज भवनमें जो राजाके यहां पाले पक्षीथे वह चाहे पीजरों में रहतेथे या पेड़ों की डालियोंपर सब चहचाने लगे ॥ ५ ॥ इस प्रकार इन सब पक्षियोंके सुन्दर व मनोहर शब्दसे और सब वीणाओंकी मन लुभानें वाली आवाजसे गवैयोंके आशीर्वाद युक्त गीत नादसे राज गृह गुंजार उठा ॥ ६ ॥ तिसके पीछे सदाचार सम्पन्न सेवा करनेमें निपुण सब परिवारक गण पूर्वकाल में जिस प्रकार आया करतेथे वैसेही अब आये उनमें स्त्रियां और नपुंसक लोगही अधिक थे ॥ ७ ॥ इस समय स्नानकी विधियोंको भली भांति जानने वाले लोग राजा दशरथजीके स्नान करनेके लिये कंचनके कलसोंमें जल भरकर उसमें चन्दन मिला अच्छी तरह विधि पूर्वक अपने समयपर लाये ॥ ८ ॥ बहु संख्यक कुमारी स्त्रियोंने पवित्र होकर मंगलके लियें भोजन करने चखने देखने आदिकी शुभ वस्तु और पीनेके लियें अनेक प्रकारके जल व दर्पण वस्त्र और आभरणादि औरभी अनेक प्रकारकी वस्तु। इकट्ठी की ॥ ९ ॥ मंगलके लिये आये हुये यह सब द्रव्य सब प्रकारके सुलक्षणोंसे युक्तथे व सब बहुतही श्रेष्ठ और सगुण लक्ष्मी सहितथे ॥ १० ॥ फिर सबही राजाके दर्शनार्थ उत्कंठित होकर जबतक सूर्य न निकले तबतक यही करते रहे कि अब आया चाहतेहैं परन्तु सूर्य निकलने परभी जब राजा न आये तब सबके मनमें शंका हुई और बोले कि भाई आज क्या बातहै जो राजा अबतक नहीं उठे॥११॥कौशल्याजीके अतिरिक्त और जो

सब स्त्रियां महाराजकी सेजसे कुछही दूरपरथीं वे इकट्ठी होकर स्वामीको ज गानें लगीं॥१२॥उन्होंनें रीति सहित और विनीत भावसे अपने पतिकी सेज-को भली भांति टटोल कर देखाकि देहमें प्राण रहनेंसे जिस प्रकार स्पन्द नादिक होताहै सो वहां कुछभी नहीं ॥ १३॥ वह सब सोते हुए मनुष्यका स्वभाव जानतीथीं सुतरांत उन्होंनें अपने पतिकी हाथ की नाडी और हृदयकी धडकनको न पाकर राजा दशरथजीके जीवित होनेंमें शंका-की ॥१४॥ वहसब स्त्रियां राजाके जीवित होनेंमें संदेह देख नदीके सोतेमें जमे हुये वेतोंकी समान कांपने लगीं ॥१५ ॥ जो कुछ शंका उनके मनमें आईथी कि कहीं राजा मरतौ नहीं गये? अब वही उनको निश्चय हो गया और कौशल्या सुमित्रा तौ पहलेही पुत्र शोकसे हार बैठीथीं ॥१६॥ सो इसकारण वह ऐसी सोईं कि उन्होंनें राजाका मरना जानाही नहीं क्योंकि वेतो आपही शोकके मारे निस्तेज और पीली पड गईथीं मा-नो उनके भी प्राण नथे ॥ १७ ॥ जैसे बादरके अंधेरेसे छिपे नक्षत्र शो-भित होते वैसेही राजाके समीप कौशल्या व सुमित्रा नहीं शोभित हो-तीथीं ॥ १८॥ व और राज स्त्रियां भी मारे शोकके रुदन करती हुईं शो-भित नहीं होतीथीं। उन सब स्त्रियोंनें उसी स्थान पर सोती हुई कौशल्या व सुमित्रा जीको देख और राजाकोभी मराही देख ॥ १९ ॥ समझ लिया कि इन तीनोंने शरीर छोड दिया, बस शोकके मारे अति दीन हो ऊंचे स्वरसे रोनें लगीं ॥ २० ॥ जिसप्रकार वनमें अपने समूहसे बिछुडनें पर हथनियां चिल्लाने लगतीहैं वैसेही इन सबका बडे जोरसे रोना सुन एकाएकी चैतन्यता प्राप्त कर ॥ २१ ॥ कौशल्या व सुमि-त्राजी जाग उठीं और झटपट राजाको देख उनके छाती आदि अंग टटोल टटाल कर॥२२॥हास्वामिन्!यह कह वडे शब्दसे चिल्लाय उसी समय पृथ्वीपर गिर पडीं और सारे शरीरमें धूल लगी वह कोशलेन्द्र दुहिता पृथ्वीपर तड फडाय २ लोटने लगीं ॥ २३ ॥ वह आकाशसे गिरे हुये नक्षत्रकी नाईं बहुतही प्रभा रहित होगईं और राजाके मरनेसे कौश-ल्याजी भी भूमिपर गिरपडीं ॥ २४ ॥ तौ और सब राजाकी स्त्रियोंनें कौशल्याजीको ऐसा देखाकि मानो कोई नाग वधू मरी पडीहै । अन-न्तर राजा दशरथ जीकी कैकेयी से आदि लेकर सब स्त्रियां ॥२५ ॥

शोकसे संतापित और चेतना रहितहो रोते २ गिर पडीं तव सब रानियों के रोनेका वडा भारी कुलाहल हुआ ॥ २६ ॥ उस समय पहिलेसे आई हुई उन रानियोंके रोनेका तुमुल शब्द पीछेसे आई हुई कैकेयी इत्यादिकके रोनेके शब्दके साथ मिलजानेसे और भी वढ गया और सम्पूर्ण राज भवनमें फैलगया व तिसके भयसे भीत हो सब देखनें वाले लोगोंसे आकुल होगया ॥ २७ ॥ उस कालमें राज भवन बहुतही त्रासित और व्यग्र होगया और इस रोनेका समाचार जानने के लिये बहुतही उत्कंठित लोगोंके आवागमनसे उस स्थानमें चलनेको जगह न रही। सव जगह महा हाहाकार हो रहाथा जितने बन्धु बान्धवथे सब सन्ताप पारहेथे और कहीं आनन्दका लेशमात्र नहींथा बहुत शीघ्र मृतक राजा दशरथजीके गृहमें इस प्रकार व्याकुलता और दुर्दशाकी मूर्त्ति धारणकी ॥२८॥

अतीतमाज्ञायतुपार्थिवर्षभंयशस्विनंतंपरिवार्यपत्नयः ॥ भृशंरुदंत्यःकरुणंसुदुःखिताःप्रगृह्यबाहूव्यलपन्ननाथवत् ॥ २९ ॥

महिपालोंमें श्रेष्ठ यशवान महाराज दशरथजीको मृतक जानकर सब रानियां महा दुःखित हो अत्यन्त करुणाके स्वरसे रोय २ कर दशरथजीके शरीरको चारों ओरसे घेर बांह उठा २ कर अनाथों की समान रोदन करनें लगीं ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमःसर्गः ॥

तमग्निमिवसंशांतमंबुहीनमिवार्णवम् ॥ गतप्रभमिवादित्यंस्वर्गस्थंप्रेक्ष्यभूमिपम् ॥ १ ॥

राजा दशरथजीको शिखा हीन अग्निकी नाईं, जलहीन समुद्रकी नाईं प्रभाहीन सूर्यको नाईं, स्वर्गवासी देख॥१॥कौशल्याजी शोकसे कर्षित हो नेत्रों में आंसू भरकर और राजाका मस्तक अपनी गोदीमें ले कैकेयीसे कहनें लगीं ॥२॥ हे नृशंसे ! दुष्ट चारिणी कैकेयी ! तेरे मनोरथ इस समय पूरे हुये अब अकंटक राज्य भोगो राजाको छोड अकेले सब सुख करो३॥

रामचंद्रजी हमें छोडकर वनको चले गये प्राणनाथनें भी स्वर्गको गवन किया अब दुर्गम मार्गमें साथ छूटगये पथिक की नाईं हम जीनें की अभिलाषा नहीं करतीहैं ॥ ४ ॥ तुम्हारी समान धर्म त्यागिनी स्त्रीके सिवाय और कौन स्त्री अपनें परम देव स्वामीको छोडकर जीनेंकी इच्छा करैगी ! ॥ ५ ॥ हा! लोभी मनुष्य दोषोंको नहीं समझता केवल शरीरके सुखको देखताहै और किसकारण विना दोषोंके विचारे हुये अभक्ष्य पदार्थोंको खा लेताहै और उनकी हानियोंको नहीं जानता ऐसे तुझ कैकेयी ने कुवरी मंथराके कहनेंसे लोभ वशहो रघुकुलको जडसे नष्ट करदिया ॥ ६ ॥ महाराजने अनुचित कार्य में लग कर सीताजीके सहित रामचंद्रको वनमें भेजदिया राजा जनकजी भी यह वार्त्ता सुनकर हमारी ही समान परिताप करैंगे ॥ ७ ॥ हम जो आज अनाथ और विधवा होगईं हाय ! इस बातको वह कमल पलाश लोचन धर्मात्मा रामचंद्र अबतक नहीं जानते । हा! रामचंद्रजी जीवित रहते भी हमारे लेखेतो अदृश्य होगये ॥ ८ ॥ और चारु तपस्या करनेवाली जोकि कभी दुःखके योग्य नहींहै जिनको सदा सुखही मिलना चाहिये वह जनक राजपुत्री सीता देवी वनमें अनेक भांतिके दुःख पाकर घबडातीहोंगी ॥९॥ भयंकर शब्द करने वाले पक्षियों की चिल्लाहटसे भीत होकर सीताको अवश्यही डर लगता होगा और रामचंद्रजीके कंठमें लपटजाती होंगी ॥१०॥ वह वृद्ध और पुत्र जिनके हैहीं नहीं ऐसे विदेह राजा जनकजी सीताकी सुधि करते हुए निश्चयही शोकसे घबडा कर प्राण त्याग करैंगे ॥ ११ ॥ अच्छा जो हुआ सो हुआ अब मैंभी आजही पतिव्रत धर्म की रक्षा करनेके लिये शरीर त्याग करूंगी आज प्राणनाथ के शरीर को अग्निमें लपटाय अग्निमें प्रवेश करैंगी ॥ १२ ॥ कौशल्याजी राजा दशरथजीकी लोथसे लिपट कर दुःखित हो इस प्रकारसे विलाप और परिताप कर रहींथीं यह देखकर सब दासी आदिक उनको वहांसे दूर लेगईं ॥ १३ ॥ और वशिष्ठ प्रभृति मंत्रियोंकी आज्ञानुसार तेल भरी हुई नावमें उन मृतक राजाका शरीर रक्खागया तब पीछे और राज कार्य किये करायेगये ॥ १४ ॥ सब कुछ जाननें वाले मंत्रियोंनें पुत्र विना राजा

दशरथजीके शरीरका संस्कार नहीं करना चाहा क्योंकि वहां उस समय कोई पुत्रनथा राम लक्ष्मण वन और भरत शत्रुघ्न ननिऔरे गयेथे इस कारण शरीर तेलकी नावमें रक्खागया कि शरीर बिगडे नहीं और कोई पुत्र आवे तब क्रियाहो ॥ १५ ॥ जब मंत्री लोगोंने तेल भरी नावमें राजाके शरीरको रखदिया यह देखकर सब रानियां यह कह विलाप करनें लगीं कि हाय! राजा मृतक होही गये ॥ १६ ॥ नेत्रोंसे जल बरसाती हुई शोकके मारे संतप्त व दीन हुई राज रानियें बाहें उठा रोय २ ऐसा विलाप करनें लगीं ॥ १७ ॥ महाराज एकतो हम सदा मीठा बोलने वाले सत्यसिन्धु रामचंद्रसे हीन होकर जी रहीहैं, तिसपर आप क्यों हमें छोडकर स्वर्ग सिधारे ॥ १८ ॥ हाय! हम विधवा होकर उन रामचंद्रके विरहमें किस प्रकार दुष्टस्वभाव वाली केकेयीके समीप रहेंगी! ॥ १९ ॥ वह श्रीमान् आत्मवान् राम जो कि सबहीके नाथथे और हमारे तुम्हारे रक्षा करने वालेथे वहभी राज्य लक्ष्मी छोडकर वनको चले गये ॥ २० ॥ अतएव उनके और आपके विरहमें दुःखियारी केकेयीसे तिरस्कार की जाती हुई हम लोग यहां कैसे रहेंगी! ॥ २१ ॥ जिस केकेयीने आपको, रामको, महाबली लक्ष्मण और सीताको त्याग करनेमें देर न लगाई फिर वह और किसीको नहीं छोड सकतीहै ॥ २२ ॥ महाराज दशरथजीकी वह सब श्रेष्ठ स्त्रियां शोकसे पीडितहो आसुंओंकी धारा छोडती हुई, और आनन्द रहित होकर ठंढे २ श्वास लेने लगीं॥२३॥ चंद्र बिन यामिनी और कंथ बिन कामिनी जिस प्रकार प्रभाहीन होजातीहै, वैसेही उस समय महाराज दशरथजीके बिन अयोध्या नगरी शोभित नहीं होतीथी ॥ २४ ॥ क्योंकि वहांके गृह और चौराहे आदि बिना झाडने बुहारनेसे, और मनुष्योंके आंसु आये हुये जहां तहां खडे होनेसे सब स्त्रियोंके हाहाकार करनेसे वह नगरी पूर्वकी समान शोभित नहीं होतीथी ॥ २५ ॥ मारे पुत्र शोकके राजा दशरथजीके स्वर्ग चले जानेपर उनकी सब स्त्रियें पृथ्वीमें गिर २ कर रोने लगीं कि इतनेमें सूर्य भगवान् छिप गये और अंधकारको साथ लिये हुये रात हो आई॥ २६ ॥ इक्ष्वाकु कुलके सब बन्धु बान्धव और सुहृदोंने मिलकर विचार पूर्वक बिना किसी पुत्रके आये पुत्रके विरहसे प्राण त्यागे हुये राजा दशरथजी-

के शरीरकी दाह क्रिया करनी उचित न समझी और उनके शरीरको उसी तेलभरी नावमें रहने दिया ॥ २७ ॥ उस समय महाराज दशरथजीके मरजानेसे अयोध्याके मार्ग और चौराहोंपर आंखोंमें आंसू भरे और गद्गद कंठ मनुष्योंकी भीड लगनेसे वह नगरी सूर्यहीन गगन और नक्षत्रहीन रात्रिके समान प्रभाहीन होगई ॥ २८ ॥

नराश्चनार्यश्चसमेत्यसंघशोविगर्हमाणाभ
रतस्यमातरम् ॥ तदानगर्यांनरदेवसंक्षयेव
भूवुरार्तानचशर्मलेभिरे ॥ २९ ॥

दशरथजीको मृत्यु होनेसे अयोध्याके वासी क्या स्त्री क्या पुरुष सब इकट्ठे हो २ कर भरत माता कैकेयीको कोसने लगे और सब ऐसे कातर होगये कि किसी प्रकारसे कुछभी सुख न पासके ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० अ० षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ॥

आक्रंदितानिरानंदासास्त्रकंठजनाविला ॥
अयोध्यायामवनतासाव्यतीयायशर्वरी ॥ १ ॥

किसीके मनमें कुछ किसी प्रकारका आनन्द नहीं सबही आंसुओंकी धार छोडते हुये बराबर रो रहेथे। इस प्रकार यह रात शोक और दुःखके मारे पहाडकी समान बडी होगई ॥ १ ॥ अनन्तर बडे कष्टसे सवेरा हुआ बनाय प्रभात होही गया तब सूर्यके निकलतेही सब राज कार्यके निर्वाह करने वाले ब्राह्मण लोग राज सभामें आये ॥ २ ॥ उस समय मार्कंडेय, मौद्गल्य, वामदेव, काश्यप, कात्यायन, गौतम, और महा यशस्वी जावालिजी ॥ ३ ॥ यह सब ब्राह्मण राजाकी अंतिम क्रिया करनेके लिये सेवकों सहित राजसभामें इकट्ठे हुए और मंत्रियोंके साथ मिलकर श्रेष्ठ राज पुरोहित वशिष्ठजीके सामने राजकार्यके संबंधमें जिसका जो जो मतथा वैसेही सब अलग २ आशय प्रगट करने लगे ॥ ४ ॥ राजा दशरथजी पुत्र शोकसे स्वर्गवासी होगये इस कारण यह रात्रि हम सबको सैकडों वर्षोंकी समान जान पडीहै; और बहुतही कठिनाईसे इसको विता-

याहै ॥ ५ ॥ महाराज स्वर्गमें चले गये रामचंद्रजी वनको सिधारे महाते-जस्वी लक्ष्मणजीनें रामचंद्रजीका साथ लिया ॥ ६ ॥ इस ओर शत्रुओंके मारने वाले भरत और शत्रुघ्न दोनों भाई केकय राज्यके राजगृह नामक नगरमें अपने नानाके घर रहतेहैं ॥ ७ ॥ इस्से इक्ष्वाकु वंशियोंमेंसे कि-सीको आजही राजा बनाना चाहिये क्योंकि नहीं तो बिना राजाके यह हम लोगोंका राज्य शीघ्र नाशको प्राप्त हो जायगा ॥ ८ ॥ क्योंकि अरा-जक देशमें जहां कि राजा नहीं होता वहां बिजलीकी चमक सहित अ-ति शब्दसे गर्जने वाले मेघ दिव्य जलधार पृथ्वीपर नहीं वर्षाते ॥ ९ ॥ अराजक देशमें किसान बीजकी मूठी बोनेंके लिये नहीं खोलते अराजक राज्यमें पुत्र पिताका कहना नहीं मानता और स्त्रियां स्वामीके वश नहीं रहतीं ॥ १० ॥ अराजक राज्यमें धन नहीं रहता क्योंकि लुटेरे आदिक लूटतेहैं अराजक राज्यमें स्त्रियांभी बिगड जातीहैं क्योंकि निडर होनेके कारण व्यभिचार करने लगतीहैं अराजक राज्यमें यहांतक होताहै कि सत्य व्यवहार तो एक बारही लोप हो जाताहै॥११॥अराजक राज्यमें सब मनुष्य हर्षित होकर न्यायादि विचार करनेके लिये सभायें नहीं करते । अथवा रमणीक फुलवाड़ियां और पुण्य देने वाले गृह शिवाले ठाकुर द्वारे इत्यादि नहीं बनाते लगाते ॥ १२ ॥ अराजक देशमें उत्तम क्षत्रिय वैश्य उत्तम २ यज्ञ नहीं करते न जितेन्द्रिय ब्राह्मण गण उनका यज्ञ क-रातेहीहैं ॥ १३ ॥ अराजक राज्यमें सब धनवान ब्राह्मण बडे २ यज्ञ नहीं करते कि जिनमें यज्ञ कराने वालोंको बडी दक्षिणा देनी पडतीहै ॥१४॥ अराजक राज्यमें जिनके करनेसे राज्यकी उन्नति होतीहै, ऐसे सभा उ-त्सवादि नहीं हुआ करते और नाटक करने वाले, नचैये कत्थक आदि प्रसन्न चित्तसे वहां नहीं रहते ॥ १५ ॥ अराजक राज्यमें लेन देन के करनें वालोंका प्रयोजन व्यर्थ होजाताहै, और जो मनुष्य कि कथा पुराणादि सुन्नेमें बहुतही अनुराग करतेहैं फिर वहभी कथा कहनेमें लगे हुये पौरा-णिकोंकी कथा नहीं सुनते सुनाते, क्योंकि अराजकता होनेसे उन लो-गोंका चित्तही स्थिर नहीं रहता ॥ १६॥ अराजक राज्यमें सुवर्णके गहने पहरनेंसे शोभायमान कुमारी कन्यायें संध्याके समय झुंडके झुंड मिलकर फुलवारियोंमें खेलनेको नहीं जातीं कि न मालूम उनपर कौन क्या उ-

त्पातहो॥१७॥अराजक राज्यमें धनवानोंके धनकी भली भांति रक्षा नहीं होती क्योंकि पहरेदार तो रहतेही नहीं और लोग खेती करके व पशु-ओंको पाल पोषकर जीविका निर्वाह करतेहैं वहभी किवाडें खोलकर ठंढी हवामें नहीं सोने पाते ॥ १८ ॥ अराजक राज्यमें कामी पुरुषगण तेज चलनें वाली सवारियोंपर चढकर स्त्रियोंके सहित वन विहार करने-को नहीं जाते ॥ १९ ॥ अराजक राज्यमें साठ वर्षकी उमर वाले और बडे दांत वाले घंटा बांधे हाथी राज मार्गोंमें नहीं घूमा करते ॥ २० ॥ अरा-जक राज्यमें बाण विद्या सीखने वालोंका ताल ठोकना नहीं सुनाई देता यद्यपि उनको बार २ तीर चलाकर सीखना चाहिये ॥ २१ ॥ अराजक राज्यमें दूर देशोंको जाने वाले सौदागर लोग बजारोंमें बिकने वाली व-स्तुओंको ले बेखटके मार्ग नहीं चलसकते क्योंकि अराजक राज्यमें ठग लुटेरे बहुत हो जातेहैं ॥ २२ ॥ जिनके मन ब्रह्मके ध्यान करनेमें लगे हुएहैं ऐसे अति जितेन्द्रिय ऋषि लोकभी अराजक राज्यमें संध्याके समय इधर उधर तपमें विघ्न होनेके डरसे नहीं रहते ॥ २३ ॥ अराजक राज्यमें अप्राप्त द्रव्योंकी प्राप्ती और प्राप्त द्रव्योंकी रक्षा नहीं होती और बिना मालकके फौज फरां युद्ध में शत्रुओंको नहीं जीत सकती ॥ २४ ॥ अराजक राज्यमें अच्छे २ घोडे और सजे धजे रथों पर चढकर कोई म-नुष्य चिन्ता रहित एकाकी कहीं को चले जानेका हियाव नहीं क-रता ॥ २५ ॥ अराजक राज्यमें शास्त्र विशारद पंडित लोग वनमें या बागमें बैठकर शास्त्रकी चिन्ता परस्पर नहीं कह सुन सकते न वह नि-र्भय हो वहां रहने पाते ॥ २६ ॥ अराजक राज्यमें व्रत करने वाले लोग देवताओंकी पूजा करनेंके लिये मालामोदक दक्षिणा नहीं इकट्ठी करसकते ॥ २७ ॥ अराजक राज्यमें राज कुमारगण चन्दन और अगरसे अर्चित होकर वसंतऋतुके वृक्षोंकी समान विराजमान नहीं होते ॥२८॥ नदियां जलहीन होनेंसे बिना घास फूंसके वन होनेसे और गौओंके झुंड गोपालहीन होनेंसे जो शोचनीय दशा होजातीहै वैसेही राज्यमें अराजक होनेसे सब भांतिसे वह राज्य नष्ट होजाताहै ॥२९॥ जिस प्रकार रथका चिह्न ध्वजा और अग्नि का चिह्न धुंवा होताहै वैसेही प्रजाओं-के ध्वजा रूप चिह्न राजाथे सो वह अब इस लोकको छोडकर देवता

हो गयेहैं ॥ ३० ॥ राज्यमें अराजकता होनेसे कोई किसीको अपना सगा नहीं समझता सब मनुष्य मछलियोंके समान सर्वदाही परस्पर एक दूसरेका विनाश किया करतेहैं ॥ ३१ ॥ जो सब नास्तिक वर्णाश्रमकी मर्यादोंके कारण पहले राज दंडसे राज्य पा चुकतेहैं वहभी अराजकताको पाय दंडका भय छोड अपनी २ मर्यादा विस्तार करनेंमें लग जाते हैं ॥ ३२ ॥ दृष्टि जिस प्रकार शरीरका हित साधन करने और अहित निवारण करनें में सदा ही तत्पर रहती है राजाभी वैसेही अपने राज्यमें सत्य व धर्मको उपजाकर प्रजाओंका मंगल साधन करते हैं ॥ ३३ ॥ फलतः राजाही सत्य राजाही धर्म राजाही कुल वालोंका कुल राजाही पिता और माता और राजाही सब लोगोंका हित साधन करता है ॥ ३४ ॥ इन्द्र यम, कुबेर, और वरुण, राजाका गौरव इन सबसे भी अधिक है क्योंकि लोकपालोंमें केवल एक गुण होता है और राजामें सब लोकपालोंके गुण वर्त्ततेहैं ॥ ३५ ॥ अच्छा और बुरेका विचार करने वाला राजा न होता तौ जैसे सूर्यके अभावसे अंधकारमें कुछ भी नहीं दीख पडता वैसेही कर्त्तव्याकर्त्तव्यका कुछ विचार नहीं रहता ॥ ३६ ॥ जबतक महाराज दशरथ जी जीतेथे तब भी हम लोगों नें कभी आपके वचनोंको उल्लंघन नहीं किया और अबभी आपही हम सबके गति हैं समुद्र जिस प्रकार तीर भूमिको नहीं नांघ सकता वैसेही हम लोग अपने वचनोंको उल्लंघन नहीं कर सकते ॥ ३७ ॥

सनःसमीक्ष्यद्विजवर्यवृत्तंनृपंविनाराष्ट्रमरण्य भूतम् ॥ कुमारमिक्ष्वाकुसुतंतथान्यंत्वमेवराजानमिहाभिषेचय ॥ ३८ ॥

हे द्विज श्रेष्ठ! राजा दशरथजीके न रहनेसे हम सबही अकर्मण्य हो गये हैं और राज्यभी वनकी समान होगया है इसको भली भांति सोच विचार कर इस समय आप इक्ष्वाकुवंश भरतको वा और किसीको राज्य गद्दीपर बैठालिये ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमः सर्गः ॥

तेषांतद्वचनंश्रुत्वावसिष्टःप्रत्युवाचह ॥
मित्रामात्यजनान्सर्वान्ब्राह्मणांस्तानिदंवचः ॥ १ ॥

महामुनि वशिष्ठजी इन सब मित्र, मंत्री, और श्रेष्ठ ब्राह्मणों की यह वार्त्ता श्रवण कर उनको उत्तर देने लगे ॥ १ ॥ कि राजा दशरथजी भरतको राज्य दे गये हैं। और वह अपने मामाके यहां भ्राता शत्रुघ्नके साथ परम सुख पूर्वक बसते हैं ॥ २ ॥ अतएव जल्दी से समाचार ले जाने वाले दूत, उन दोनों वीर भ्राता ओंके लिवा लाने के लिये शीघ्रगामी घोडों पर चढकर जांय इस विषयमें और हम क्या शोच विचार कर सकते हैं ॥ ३ ॥ तब सबनेही वशिष्ठजीसे कहा कि दूत गण अभी जाने चाहिए तब उन सबके वचन सुन वशिष्ट जीने कहा ॥ ४ ॥ कि हे सिद्धार्थ! हे विजय! हे जयन्त! हे अशोक! हे नन्दन ! मैं तुम सबसे कहताहूं कि तुम लोग सब मेरे पास आकर जो कुछ तुम लोगों को करवाना होगा वह सुनो ॥ ५ ॥ तुम सब शीघ्रगामी घोडोंपर सवार होकर शीघ्रतासे राजगृहमें गवन करकै हमारी वार्त्तानुसार शोकको त्याग करकै भरतजीसे यह कहना ॥ ६ ॥ कुल पुरोहित वशिष्ठ और शुभानुध्यायी मंत्रियोंने आपकी कुशल क्षेम पूछ कर कहा है कि आप यहां से बहुत ही जल्दी अयोध्या पुरीको तुरंत चलिये, क्योंकि एक विशेष प्रयोजन आपके चलने का हुआ है ॥ ७ ॥ परन्तु खबरदार रघुकुल की यह अमंगल वार्त्ता कि "रामचन्द्र वनको गये और राजा दशरथ परलोक वासीहुए,, उनसे किसी प्रकार मत कहना ॥ ८ ॥ तुम लोग इस समय केकय राज और भरतजीके लिये अच्छे २ आभूषण और रेशमीन भले २ वस्त्र ग्रहण कर जल्दी वहांको चले जाओ अब देर करनेका काम नहीं है ॥ ९ ॥ यह कहकर उन्होंने दूतोंको मार्गका खर्च देदिया उसेले सब दूत अपने २ घर गये फिर वहांसे बडे शीघ्रगामी घोडों पर चढकर केकय देशको चले ॥ १० ॥ वह सब दूत यात्राके लिये जो सब चीज लेनी लिवानी थी सो सब लेकर वशिष्टजीकी आज्ञानुसार शी-

घ्रता पूर्वक यात्रा करते हुए ॥ ११ ॥ और अपरताल नामक देश-की पश्चिम सीमा में टिके हुए प्रलंब देशके उत्तर में चलकर उसके म-ध्य भागमें बहतीहुई मालिनी नदीकी शोभा देखते हुए जानें लगे ॥१२॥ फिर हस्तिनापुरमें पहुँचकर गंगाजीके पार हो पांचाल राज्यको देखते कुरुजांगल देशके बीचके मार्ग से होकर पश्चिम दिशा को गमन करने लगे ॥ १३ ॥ मार्गमें प्रफुल्ल सरोवर और निर्मल जल पूर्ण नदी सब उन दूतोंने देखी भालीं परन्तु उन्होंने कार्य आवश्यकीय होनेसे क-हीं विलंब न किया और शीघ्रता सहित चलनें लगे ॥ १४ ॥ अनन्तर वह लोग अनेक प्रकारके जलचर पक्षियों से सेवित, सु विपुल और नि र्मल जलसे भरीहुई परम रमणीय शरदण्डा नदीके तीर पहुँचे ॥ १५ ॥ इस शरदण्डा नदीके किनारे पर सत्योपयाचन नामक एक वृक्षथा इसके निकट वह सब दूत गये। इस वृक्षमें एक यह गुणथा कि इस्से जो कुछ प्रार्थना की जाती वह सिद्ध होतीथी। इसी कारणसे इसका नाम सत्योयाचन हुआ। इस्से वह सबहीके नमस्कार करनें योग्यथा उन स-ब दूतोंने इस वृक्षकी प्रदक्षिणा करके कुलिङ्गा नामक नगरीमें प्रवेश किया ॥ १६ ॥ वहांसे अभिकाल और अभिकालसे तेजोभिभवन न-गरमें पहुँचे तिसके पीछे इक्ष्वाकु गणोंकी दर पीढियोंसे अधिकारमें आई हुई परम पवित्र इक्षुमती नदीके पार हुये ॥ १७ ॥ पार होनेंके समय इक्षुमतीके किनारे जो सब वेद पारग ब्राह्मण केवल अंजली मा-त्र जलही पीकर जीतेथे उनके दर्शन करके बाह्लीक देशमें पहुँचे उस-के बीचों बीचमें सुदामान नामक पर्वत मिला ॥ १८ ॥ जिसपे वि-ष्णुजीके चरणों का चिह्न बना है। तिसके पीछे विपाशा नदी मिली फि-रशाल्मली नदी और बहुतसी नदी वावी, ताल व छोटी तलैया मि-लीं ॥ १९ ॥ उससे आगे भांति २ के सिंह, व्याघ्र, मृग, हाथी इत्यादिक देखते अपने स्वामीकी आज्ञाका पालन करते बराबर चलेही गये ॥२०॥ बहुत दूर का मार्ग चलनेसे उनके घोडे सब बहुत ही थक गये इस्से गिरव्रज नामक पुरमें कुछ देर ठैर गये वहांसे थोडीही देरमें अति शीघ्र चले॥२१॥

हार्थम् ॥ अहेडमानास्त्वरयास्मदूतारात्र्यां
तुतेतत्परमेवयाताः ॥ २२ ॥

इस प्रकार वह सब दूत अपने प्रभुका प्रिय कार्य करनेंके लिये और रघुवंश का निर्वाह करनेके लिये किसी प्रकार की ढील न करके रातहीके समय केकय नगरमें पहुंचे ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः ॥

यामेवरात्रिंतेदूताःप्रविशंतिस्मतांपुरीम् ॥
भरतेनापितांरात्रिंस्वप्नोदृष्टोऽयमप्रियः ॥ १ ॥

जिस रात्रिको वह सब दूत गण उस पुरीमें पहुँचे उसी रातको भरतजीने एक बडा बुरा स्वप्न देखा ॥ १ ॥ राजाधिराजजीके पुत्र भरतजीने रात्रिके पिछले पहर में बुरा स्वप्न देख बहुत परिताप किया और उनका शरीर गिरने पडने लगा ॥ २ ॥ भरतजीके मन और शरीरमें किसी प्रकार का खेद उपजाहै यह समझकर उनके संग उठने बैठने वाले प्रियवादी मित्र इस खेदको मिटानेके लिये अनेक प्रकारकी रोचक कथा कहने लगे ॥ ३ ॥ उनमेंसे कोई २ खेद मिटानेके लिये वीणा बजाने लगे, और किसीने नाच कराना आरंभ कर दिया, व कोई ऐसे २ नाटक आदि पढने लगे जिनमें हास्य रस प्रधान था ॥ ४ ॥ भरतजीको अपना परम प्रीति भाजन यह सब उनके मित्र जानतेथे और इन सबने अपनी २ युक्तियोंसे ऐसा उपायभी किया जिस्से भरतजीको बोधहो । जोहो दश जने मिल मिलाकर जैसे हँसी दिल्लगी किया करतेहैं वैसेही यह लोग हास परिहास द्वारा रघुनंदन महात्मा भरतजीको किसी प्रकार आनन्दित नहीं करसके ॥५॥ यह देखकर एक भरतजीका बहुतही प्यारा सखा मित्र मंडली मंडित भरतजीसे बोला कि हे सखे! मित्र लोग अनेक प्रकारसे तुम्हारे चित्तको प्रमुदित करने की इच्छा करतेहैं परन्तु किस कारण तुम उन सब बातोंमें मन नहीं देते ? ॥ ६ ॥ सखाने जब यह बात कही तब भरतजी उसको उत्तर देते हुए बोले कि, हे भ्रातः ! जिस कारणसे

मैं ऐसा व्याकुल हुआहूं सो ध्यान धरकर सुनो ॥ ७ ॥ मैंने रात्रिके पिछले पहर में यह स्वप्न देखाहै कि पिता दशरथजीके बाल बिखरे हुयेहैं और वह मलीन वस्त्र धारण कियेहैं सो ऐसे पिताजीको हमने पर्वत परके शिखरसे मैले गोबरके कुंडमें गिरते हुये देखाहै ॥ ८ ॥ फिर तिसके पीछे देखा कि वह उस गोबरके भरे कुंडमें तैरते २ वारंवार हँसकर मानों अंजलीसे तेल पीरहेहैं ॥ ९ ॥ फिर वह बार २ तिलका मिला हुआ भात भोजन कर सब अंगमें तेल लगा तेलमेंही डुबकी लगातेहैं ॥ १० ॥ फिर स्वप्नमेंही यह देखा कि समुद्र सूखगया चंद्रमा पृथ्वी पर गिर पडेहैं सब भूमि अंधकारसे ढककर मानों अंतर्ध्यान होगई है ॥ ११ ॥ राजाकी सवारीमें जो हाथी रहा करताहै उसके दांत मानो खंड २ हो टूटगयेहैं,आग जलते २ एका एकी बुझगईहै ॥ १२ ॥ पृथ्वी फटगईहै सब पेड सूख गयेहैं और यह भी देखा कि सब पर्वत भिन्न २ होगयेहैं और उनमेंसे धुआं निकलने लगाहै ॥ १३ ॥ व लोहेकी चौकी पर बैठे नीलके रंगे वस्त्र पहरे हमारे पिताजीको काले पीले दोनों प्रकारके वस्त्र धारण किये स्त्रियांमार रहीहैं ॥ १४ ॥ और यह भी कि धर्मात्मा हमारे पिता राजा दशरथजी शीघ्रता सहित लाल फूलोंका हार पहरे व लालही चन्दन लगाये गधे जुते हुये रथ पर सवार होकर दक्षिण दिशाको चले जातेहैं ॥ १५ ॥ और यह भी देखा कि कोई विकट वदन वाली राक्षसी लाल वस्त्र पहरे और अट्टहास्य करती हुई राजाको बल पूर्वक पकडे हुये लिये जातीहै॥१६॥ हमने इस भयानक रात्रिमें इस प्रकारका भयानक स्वप्न देखाहै इससे निश्चय बोध होताहै कि हमारी वा पिताजीकी या रामचंद्र व लक्ष्मणकी मृत्यु होगी ॥ १७ ॥ क्योंकि जो आदमी स्वप्नमें गधे जुते हुये रथपर सवार होकर जाताहै तो बहुत शीघ्र चितामें उसका धुंवा निकलता हुआ दृष्टि आताहै ॥ १८ ॥ बस इसी कारणसे हम आज बहुत व्याकुल होगये हैं और तुम्हारी बातोंसे मनको प्रसन्न नहीं कर सकते हैं क्या कहैं हमारा कंठ इस समय सूख गयाहै और मन बहुत चंचल हो रहाहै ॥१९॥ भयके यह सब कारण यद्यपि इस समय नहीं दीखतेहैं परन्तु मनमें जो भय जम गयाहै वह किसी प्रकारसे दूर नहीं होता व इससेही हमारे शरीर की कान्तिभा जाती रहीहै ॥ २० ॥ और अकस्मात् अनेक प्रकारसे

आत्माकी निन्दा करनेको मेरी इच्छा होतीहै परन्तु निन्दा का कारण कुछभी दृष्टि नहीं आता ॥ २१ ॥

इमांचदुःस्वप्नगतिंनिशम्यहित्वनेकरूपामवि
तर्कितांपुरा ॥ भयंमहत्तद्धृदयान्नयातिमेवि
चिंत्यराजानमचिंत्यदर्शनम् ॥ २२ ॥

पहिले कभी इस प्रकारके बुरे स्वप्न का मनमेंभी तो ध्यान नहीं आयाथा बस अब जबसे इस बुरे स्वप्नको देखाहै तबसेही चिन्ता मनमें उत्पन्न हुईहै कि देखिये अब पिताजी देखनेको मिलैं अथवा नहीं इसी कारणसे मन बहुत घवडा गयाहै और किसी भांतिसे इसकी घवडाहट दूर नहीं होती सखे इस्से पहले राजाके दर्शन होनेमें किसी प्रकारकी चिन्ताही नहींथी॥२२॥इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०अ०एकोनसप्ततितमः सर्गः ६९॥

सप्ततितमः सर्गः ॥

भरतेब्रुवतिस्वप्नंदूतास्तेक्लांतवाहनाः
प्रविश्यासह्यपरिखंरम्यंराजगृहंपुरम् ॥ १ ॥

मनस्वी भरतजी अपने इष्ट मित्रोंके साथ इस स्वप्नका वृत्तान्त कहही रहेथे कि इतनेमें थके थकाये घोडोंपर चढे हुये सब दूत लांघनेके अयोग्य खाई जिसके चारों ओर खुदी हुई ऐसे रमणीय राजगृहमें प्रवेश करते हुये ॥१॥प्रथम राजासे फिर राजपुत्र युधाजितसे वे दूत मिले राजा और राजपुत्र युधाजितने भली भांति उन दूतोंका आदर सत्कार किया अनन्तर दूतगण कैकय पतिके चरण वन्दन करके भरतजीसे कहने लगे ॥ २ ॥ कुल पुरोहित वशिष्ठजीनें और सब मंत्रियोंने सबही लोगोंने आपकी कुशल क्षेम पूछीहै और यह कहाहै कि आप जल्दी अयोध्याको आइये क्योंकि यहां एक विशेष कार्य उपस्थित हुआहै ॥ ३ ॥ हे विशाल लोचन! उन्होंने यह सब मूल्यवान् वसन भूषण हमारे संग भेजेहैं सो इन्हें आप लेकर अपने मामाको देदीजिये ॥ ४ ॥ हे नृप नन्दन ! इन सब हमारे लाये वसन भूषणोंमेंसे बीस करोड वस्त्र और आभरण आपके नानाको हैं और दश करोड आपके मामाकोहैं सो आप

यह लेकर उनको दे दीजिये (यहां कोटि शब्द बहु वाचकहै) ॥ ५ ॥ तब मामा आदिकके प्रति बहुत अनुराग हुये राजपुत्र भरतजीने वह समस्त वसन भूपण ग्रहण किये और नाना मामाको वह सब द्रव्य देदिये और दूतोंको भली भांति खाने पीने आदिकी सामग्री दे दिलाय भरतजी उनसे बोले ॥ ६ ॥ कि हमारे पिता महाराज दशरथजी तौ कुशलहैं ? महात्मा रामचंद्र व लक्ष्मण आरोग्य तौ हैं!॥ ७ ॥ भलाजो धर्मका मर्म भली भांति जानतीहैं और धर्म वाहिनी व सदाही धर्ममें रत रहने वाली वह धीमान् रामचन्द्रजीकी गर्भ धारिणी आर्या कौशल्याजीतो निरोग्यहैं ॥ ८ ॥ राजा दशरथजीकी मझलीरानी धर्मकी जानने वाली वीर लक्ष्मण और शत्रुघ्नकी माता सुमित्राजी आरोग्य तौ हैं ॥ ९ ॥ और सदाही जो अपना कार्य सिद्ध होनेकी अभिलापा करतीहैं और जो यह समझे हुयेहैं कि हमारी समान कोई ज्ञानवान नहींहै वह अत्यन्त कोपन स्वभाव वाली हमारी माता कैकेयी जीतौ आरोग्य रहकर सुख पातीहैं तुम्हारे चलते वक्त उन्होंने हमारे लिये कुछ कह दियाहै ॥ १० ॥ महात्मा भरतजीने जब इस प्रकार कहा तब दूतोंने सविनय और संक्षेप वचनोंसे उन्हें उत्तर दिया ॥ ११ ॥ कि हे नरश्रेष्ठ ! आप जिन २ की कुशल पूछतेहैं वह सब लोग कुशल सहितहैं इस समय पद्मालया लक्ष्मीजी आपके वरण करनेको उद्यत हुईहैं अतएव यात्रा करनेके लिये आप रथ तैयार कराइये ॥ १२ ॥ जब दूतोंने इस प्रकार कहा तब भरतजी फिर उनसे बोले कि हम यह कहकर नानासे विदाले आवें कि दूत लोग हमें ले चलनेके लिये अति शीघ्रता कराते हैं ॥ १३ ॥ नृपनन्दन भरतजी दूतोंसे यह कहकर और दूतोंहीके कहनेके अनुसार नानासे जाकर यह बोले ॥१४॥ हे राजन् ! दूतगण हमें लेजानेके लिये शीघ्रता करा रहेहैं अतएव हम अब पिताजीके पास जांयगे और फिर जब कभी आप हमें याद करेंगे तब उसी समय चले आवेंगे॥१५॥ भरतजीके ऐसा कहने पर वह केकय राजा भरतजीके नाना भरतजीका शिर सूंघकर उनसे यह शुभ वचन बोले ॥१६॥ हे भरत! कैकेयी तुमसे पुत्रको पाकर सुपुत्रवती हुईहै मैं अनुमतिदेताहूं! हे शत्रुदमन ! वहां जाकर माता पितासे यहां की कुशल क्षेम करना ॥ १७ ॥ पुरोहित वशिष्ठजी व

अन्य उत्तम २ ब्राह्मणोंसे व महा धनुर्द्धर राम लक्ष्मण दोनों भाइयोंसे व और सबही छोटे बडोंसे कुशल कहना ॥ १८ ॥ ऐसा कहकर भरतजी का केकय राजने बहुत सत्कार किया और बडे उत्तम हाथी बडे कीमती शाल दुशाले और बढिया २ मृगचर्म व बहुत धनदिया ॥ १९ ॥ व सब चीजोंके सिवाय बडे २ आकार वाले कुत्ते दिये । यह सब कुत्ते रनवासही में यत्न पूर्वक पाल पोषकर बडे किये गयेथे बडे २ तीखे दांतही उनके अस्त्र शस्त्रथे और उनका बल वीर्य व्याघ्रकी समान था ॥ २० ॥ अनन्तर राजा कैकेयीके पुत्र भरतजीका बहुतही सन्मान आदर करके उनको दो हजार स्वर्णके निष्क भूषण व सोलहसौ (१६००) घोडे दिये ॥ २१ ॥ और उनके साथ जानेके लिये कई एक अपने मन माने, विश्वासी और गुणवान मंत्री आदिक करदिये जो अति वेगसे भरतजीके संग २ चले जांय ॥ २२ ॥ अनन्तर भरतजीके मामानें भरतको इन्द्रशिर नामक देशमें उत्पन्न हुये ऐरावत वंशीय देखनेमें परम सुदृश्य उत्तम डील डौल वाले ऐसे बहुत सारे हाथी और भली प्रकारसे बोझा ले चलनेमें समर्थ तेज चलनेवाले खिच्चडभी दिये ॥ २३ ॥ परंतु बहुत शीघ्र जो जानेकोथे इस लिये भरतजी नाना मामाकी दी हुई इन सब वस्तुओंको लेकर कुछ प्रसन्न न हुये क्योंकि इन सब चीज वस्तुके ले चलनेमें बडी कुताईथी ॥ २४ ॥ दूतोंकी शीघ्रता करानेसे और रात्रिमें भयंकर स्वप्न देखनेसे भरतजीके मनमें उस समय बडी भारी चिन्ताथी ॥ २५ ॥ भरतजी जल्दी अपने भवनसे बाहर आकर हाथी घोडे और मनुष्यों करके परिपूर्ण राज मार्गमें आकर उपस्थित हुए ॥ २६ ॥ और उसराज मार्गसे होकर परम श्रेष्ठ रनवासको देखते हुए । तब श्रीमान भरतजीनें इस रनवासमें प्रवेश किया जानेके समय उनको किसीने नहीं रोका टोका ॥ २७ ॥ भरतजीने रनवासमें प्रवेश करके नाना नानी मामा युधाजित व मामीसें विदा ले कर शत्रुघ्नके सहित रथ पर चढ अयोध्याको प्रस्थान किया ॥ २८ ॥ तब नौकर चाकर लोग मंडलाकार चक्र विशिष्ट सैकडों रथ अश्व ऊंट बैल खिच्चड इन सबोंको जोत जात कर भरतजीके पीछे २ चल दिये ॥ २९ ॥

बलेनगुप्तोभरतोमहात्मासहार्यंकस्यात्मस

मैरमात्यैः ॥ आदायशत्रुघ्नमपेतशत्रुर्गृहा
द्ययौसिद्धइवेंद्रलोकात् ॥ ३० ॥

सिद्ध लोग जिस प्रकार इन्द्र लोकसे चलतेहैं अजात शत्रु महात्मा भरतजी भी वैसेही अपने नानाके अपने आत्माकी सदृश विश्वासी मंत्री व सेना समुद्र से रक्षित होकर शत्रुघ्नजीको साथले राज्यगृहसे प्रस्थान करते हुये ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांड़े सप्ततितमः सर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमःसर्गः ॥

सप्राङ्मुखोराजगृहादभिनिर्यायवीर्यवान् ॥
ततःसुदामांद्युतिमान्संतीर्यावेक्ष्यतांनदीम् ॥ १ ॥

इसके पीछे महावीर भरतजीके राजगृह नगरसे पूर्वको मुखकर जाते २ सुदामानाम नदी मिली उसे देखकर उतरे ॥ १ ॥ अनन्तर ह्लादिनी वा दूरपारा नदी मिली जिनका पश्चिम ओरके पर्वतपर सोताहै तिसके बाद शतद्रु नदी मिली भरतजी उसकेभी पार हुये ॥ २ ॥ फिर ऐलधान गांवके नीचे बहने वाली अति वेग वती नदी मिली वह नदी ऐसी मिली उसमें जो वस्तु डालो सो पत्थरकी हो जाती उसको उतर अपर्वत नामक देशमें पहुँचे और शिला व अकुर्वती नदीके पार होकर अग्नि कोणमें शल्यकर्षका नामक देशमें आये ॥ ३ ॥ वहांसे पवित्र होकर वह शिला वहानदीके दर्शन करके बडे २ पहाड़ों पर होते हुये चैत्र रथ वनकी ओरको चलते हुये ॥ ४ ॥ अनन्तर सरस्वती और गंगाजीका जहां संगम हुआहै वहां आये तिसके आगे वीर मत्स्य देशोंके उत्तरहो भारुण्डनाम वनमें प्रवेश करते हुये ॥ ५ ॥ अनन्तर अतिशय वेगवती ह्लादिनी और पर्वतोंसे घिरी हुई कुलिंगा नदीके पार होकर यमुनाजीके निकट आये और वहां सैनाको विश्रामादि कराया ॥ ६ ॥ घोडे बहुतही थक गयेथे इस कारण वह नदीमें खूब लोट २ जुडाय २ कर नहाये । जलभी मनुष्य व घोडे, हाथियोंने खूबही पिया और तीर्थका जल लेकर

चले ॥ ७ ॥ जिस प्रकार पवन आकाशमें चलताहै वैसेही भरतजी सुन्दर रथपर चढ मनुष्योंके गमनागमनसे शून्य उस महारण्यके पार हुये ॥ ८ ॥ फिर गंगाजी मिलीं उनका उतरना बडाही कठिन था इस लिये विख्यात अंशुधान नाम नगरसे प्राग्वट नामक पुरीके निकट गये ॥ ९ ॥ उसी प्राग्वटपरके मुहानेपर गंगाजीको उतर सैनासहित कुटि कोष्टिका नदीके तीर आये और उसको उतर धर्मवर्द्धन ग्राममें पहुँचे ॥ १० ॥ फिर तोरण नाम ग्रामके दक्षिणहो जाबू प्रस्थ नाम गाँवमें पहुँचे फिर परम मनोहर वरूथ नाम गाममें दशरथ नंदन उपस्थित हुए ॥ ११ ॥ वहांके रमणीय वनमें एक रात्रि वास करके पूर्वकी ओर चले और प्रियकर नामक वृक्ष जहां बहुतथे ऐसी उज्जली हाना नाम नगरीके उपवनमें पहुँचे ॥ १२ ॥ वहां पहुँचकर भरतजीने शीघ्रतासे आगे जाताहूं तुम लोग धीरे २ सुसताते हुये चले आओ । सेनाको इस भाँति की आज्ञा देकर शीघ्रगामी घोडे जिसमें जुतरहेथे ऐसे रथपर सवार होकर आप बहुत शीघ्र चले ॥ १३ ॥ और सर्वतीर्थ नामक ग्राममें रात्रिभर वास करके फिर पहाडी घोडोंकी सहायतासे इस ग्रामकी उत्तर दिशामें वहती हुई नदियोंको व औरभी सब नदियोंको पार होकर ॥ १४ ॥ कुछ दूरपर हस्तिप्रस्थ नामक गांवमें पहुँचे वहां कुटिका नदीके पार होकर नर व्याघ्र भरतजी लौहित्य गाँवमें कथिवती नदी उतरे ॥ १५ ॥ फिर एक साल नगरके निकट स्थाणुमती नदी मिली, आगे बढ विनत ग्रामके धोरे गोमती उत्तीर्ण हुए फिर वलि नगरके निकट शालवन पडा ॥ १६ ॥ वहांसे आगे चले अब जो कुछ हाथी घोडे संग रहगयेथे वहभी बहुतही थक गये परन्तु उस वनको नांघ रात व्यतीत होते व सूर्यके निकलते ॥१७॥ राजा मनुजीकी बसाई अयोध्यापुरी भरतजीने देखी अपने नानाके यहांसे चल सात रात्रि मार्गमें विता भरतजीको अयोध्यापुरी मिली॥१८॥ तब दूरसेही अयोध्यापुरीको देख सारथीसे बोले कि हे सारथे! यह यस्विनी अयोध्यापुरी जिसमें अति पुण्य दायक फुलवाडियां विराजमान हैं ॥ १९॥ उसकी मृत्तिका जानों उत्सवहीन होनेके कारण पीली २ लगतीहै व कोई उत्सव नहीं विदित होता इसमें पूर्वकालमें बडे २ वेद पाठी ब्राह्मण सब गुण संपन्न यज्ञ किया करतेथे ॥ २० ॥ व राजर्षि लोग

नाना प्रकारके इसका पालन किया करतेथे और जहां तहां धन धान्य युक्त लोग आया जाया करतेथे प्रथम अयोध्याजीमें चारों ओरसे महा तुमुल शब्द ॥ २१ ॥ आते जाते हुए नर नारियोंका सुनाई आताथा परन्तु आज वह सुनाई नहीं देता पहिले कामी पुरुषगण जो सायंकालके समय उपवनोंमें प्रवेश कर समस्त रात्रि क्रीडा करनेमें विता ॥ २२ ॥ प्रातःकाल इधर उधर दौडकर उद्यानकी शोभा बढातेथे वह अब यहांपर विचरण नहीं करते यह उद्यान मानों कामी पुरुषों करकै छोड देनेसे हमको देख विसूर २ रोय रहेहैं ॥ २३ ॥ इससे हमको यहपुरी वनकी समान विदित होतीहै । हे सारथे ! सबही पुरी मानों हमको महा वनकी समान जान पडतीहै पहिले जिस प्रकार बडे २ लोग हाथी, घोडे व और अनेक प्रकारकी सवारियोंमें चढकर कुछ बाहरसे भीतरको आतेथे क्यों आज कोई आता जाता नहीं देख पडता ॥ २४ ॥ जनोंकी प्रीतिके संयोगसे इसके वन बागादि अति हर्षित व गुणवान् मालूम होतेथे सो अब वैसे नहीं दीखते॥२५॥यह देखो किस कारण यह समस्त फुलवाडियें कामी जनोंके आनन्द कुलाहलसे गूंजती हुई आनन्दित रहतीथीं । परन्तु अब यह सब निरानन्द सी ज्ञात होतीहैं इन फुलवारियोंके वृक्षोंके पत्ते ठौर२ मार्गमें गिरतेहैं मानो वृक्ष रोय रहेहैं॥२६॥देखो सूर्य उदय होगयेहैं और हमभी अयोध्याके निकटही पहुँच गयेहैं तथापि अबतकभी मृग पक्षियोंका मत्तहो अनुरागमें भरकर कलरव करनेका शोर सुनाई नहीं आता ॥ २७ ॥ पहिलेकी नाईं कुछेक चन्दन व अगरसे मिली हुई धूपकी सुगन्धिसे सुवासित होकर शोभित वायु नहीं चलती ॥ २८ ॥ प्रथम भेरी, मृदंग, वा वीणा आदि बाजोंसे सदाही प्रफुल्ल रीतिसे शब्द उठा करता परन्तु आज किस कारणसे वह शब्द नहीं होता ॥ २९ ॥ अशुभ और अनिष्ट शूचक सब अपशकुन परग २ पर हमको दृष्टि आतेहैं इसकारणसे हमारा मन बहुतही व्याकुल होकर कांप रहाहै ॥ ३० ॥ हे सूत ! विकल होनेका कोई कारण न होनेपरभी बराबर हृदय कांप रहाहै इससे साफ मालूम पडताहै कि हमारे बंधु बांधव कुशलसे नहींहैं ॥ ३१ ॥ अनन्तर वह शांतचित्त भरतजी उदास और चलायमान इन्द्रिय व त्रासित होकर शीघ्रही इक्ष्वाकादि पालित अयोध्यापुरीमें पैठे ॥ ३२ ॥ उस समय भरतजीके

चढनेके वाहनभी संपूर्ण थक गयेथे वे वैजयन्त नामक द्वारसेही पुरीमें प्रवेश करते हुए सब द्वारपाल भरतजीको देख उठ खडे हुए और विजय प्रश्न करके उनके संग २ चलने लगे ॥ ३३ ॥ भरतजीका मन बहुतही व्याकुल हो रहाथा तथापि उन्होंने द्वारपालोंका यथा योग्य सत्कार किया और फिर उनसे लौट जानेको कहा और केकय पतिका सारथी जो बहुतही थक गयाथा उसेभी कहा कि तुमभी यहां विश्राम करो और यह बोले ॥ ३४ ॥ हे अनघ पाप रहित। किस वास्ते विना कारण बताये शीघ्रतासे हमको यहां बुलायागया, इस कारण हमारे मनमें अनेक प्रकारकी अशुभ आशंकायें होतीहैं और इसी कारण मैं अतिशय अधीर और व्याकुल हो रहाहूं ॥ ३५ ॥हे सारथे! राजाओंकी मृत्युसे जो अमंगलके लक्षण दृष्टि आतेहैं, जो कि प्रथम हमने सुन रक्खेहैं आज वही सब कुलक्षण हम प्रत्यक्ष देख रहेहैं ॥ ३६ ॥ यह देखो गृहस्थोंके सब घर विना झाडे बुहारेहैं इस्से कर्कश जान पडतेहैं, किसीके किवाँड ठीक नहीं सब अस्त व्यस्तहैं सब पदार्थोंकी शोभा जाती रहीहै ॥ ३७ ॥ किसी प्रकारकी पूजाका सम्पर्क न होनेसे धूपकी सुगन्ध कहींसे नहीं आती यहांके परिवार वाले सब भूंखेही दृष्टि आतेहैं और नगरवासी वनाय शोभाहीन होगयेहैं ॥ ३८ ॥ किसी गृहके भवनपर माला आदि नहीं टंग रहीहैं सब घरोंके आंगन विना झारे बुहारे पडेहैं सबही घर लक्ष्मीहीन हो जानेसे शोभा विहीन होगयेहैं ॥ ३९ ॥ ठाकुर द्वारे और शिवालय शून्य होकर अब पहिलेकी नाईं शोभा नहीं पाते न कोई अब मूर्त्तियोंकी पूजा करता मानों मूर्त्तियें वृद्ध होगईहैं न अब यज्ञ भूमिमें यज्ञ होते दीखतेहैं ॥ ४० ॥ जहां फूल और हार विका करतेथे वहां अब कुछभी हार इत्यादिक नहीं बिकते। न वनियेंही इस समय पहिलेकी समान प्रफुल्ल चित्त दृष्टि आतेहैं ॥ ४१ ॥ चिन्तासे इन सब वैश्योंका चित्त घवराया हुआसा जान पडताहै और लेन देन व खरीद विक्री उठ जानेसे सबने अपनी २ दुकानें बंद करदीहैं मृग और सब पक्षी व्याकुल हो इकले देवालय जो हरि मन्दिर शिवालय योगी इत्यादिकके जो मठहैं उनमें चुप चाप घूम रहेहैं ॥ ४२ ॥ बस नगरके सब जनही मलीन चिन्ता युक्त दुवले पतले नेत्रोंमें आंसू भरे एक दूसरेको प्रीत जनानेके उत्कंठित हुये

और महा व्याकुलसे देख पड़तेहैं ॥ ४३ ॥ भरतजी शोकके भारसे ढके हुए हृदयसे सारथिसे ऐसा कह इस प्रकारके अनिष्ट अयोध्या पुरीमें देखते राज मंदिरकी ओर गमन करने लगे ॥ ४४ ॥ भरतजीने देखाकि अयोध्याके चौराहे घर सब शूने पडेहैं और किवाडों व द्वारोंपर धूलही धूल दिखाई देतीहै। इन्द्रपुरी सदृश अयोध्याकी यह अवस्था देखकर भरतजी बहुतही दुःखित होगये ॥ ४५ ॥

बभूवपश्यन्मनसोप्रियाणियान्यन्यदानास्य पुरेबभूवुः ॥ अवाक्शिरादीनमनानहृष्टःपितुर्महात्माप्रविवेशवेश्म ॥ ४६ ॥

पहले जो कभी अयोध्यामें नहीं हुआथा, नयन और मनको अप्रिय करने वाली घटनाओंको देखकर भरतजीकी चित्तवृत्ति नितान्त उदास होगई और वह बनाय अप्रसन्न होगये जिस्से कि अयोध्याकी यह अवस्था न दीख पडै इस कारण भरतजीनें शिर झुकाकर पिताके घरमें प्रवेश किया ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे एक सप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

द्विसप्ततितमः सर्गः ॥

अपश्यंस्तुततस्तत्रपितरंपितुरालये ॥ जगामभरतोद्रष्टुंमातरंमातुरालये ॥ १ ॥

भरतजी पिताके घरमें पिताजीको न देखकर माताके दर्शनकी लालसा किये अपनी माताके मन्दिरको गये ॥ १ ॥ बहुत दिनोंसे विदेश गये अपने घरमें अब आये हुये अपने पुत्रको देख कैकेयी हर्षमें मग्नहो सोनेकी चौकीसे उसी समय उठ खडी हुई ॥ २ ॥ धर्मात्मा भरतजीने अपनी माताके घरमें प्रवेश करतेही देखा कि घरकी शोभा नष्ट होगईहै अनन्तर उन्होंने जननीके पवित्र पद युगल ग्रहण किये ॥ ३ ॥ उस समय कैकेयीने यशस्वी भरतजीका मस्तक सूंघ लिया और छातीसे लपटाय लिया और गोदीमें विठाकर पूंछा ॥४॥ हे वत्स! आज तुमको अपने नानाके यहांसे चले के रात्रि बीतीं रथपर चढ शीघ्र आनेंसे मार्गमें तुम्हें

कोई कष्टतो नहीं पडा ? ॥ ५॥ तुम्हारे नाना और मामा युधाजित तो बहुत अच्छी तरहसेहैं ? वत्स ! तुम जबसे परदेश गये तबसे रहे तो अच्छे यह सब हमसे कहो ॥ ६ ॥ कैकेयीके ऐसा कहनेपर राजीव लोचन भरतजी मातासे सब वृत्तान्त कहने लगे ॥ ७ ॥ मातः ! मामाका घर छोडे हुए आज हमको सात रातें बीतीं तुम्हारे पिता और भ्राता मेरे मामा दोनों जनेही अच्छेहैं ॥ ८ ॥ शत्रुओंके दमन करने वाले राजा केकयनें जो हमको सब धन रत्नादि दियेथे सो हम उन सबको मार्गमेंही छोडकर आगे चले आयेहैं क्योंकि मार्गमें वाहन बहुतही थक गयेथे ॥ ९ ॥ राजाजीका सन्देश लेकर जो दूत गयेथे उनके जल्दी करनेहीपर इतनी शीघ्र यहां आयेहैं सो इस समय जो कुछ पूछें उसका उत्तर दीजिये॥१०॥ आपका यह स्वर्ण भूपित शयन करनेंके लायक पलँग क्यों सूना पडाहै ? और इक्ष्वाकु वंशीय कोई पुरुषभी हमको आनन्दित नहीं विदित होता॥ ११ ॥ और आपके इस घरमें राजा प्राय सदाही रहा करतेहैं सो आज वहभी यहां नहीं देख पडते, हम उनकोही देखनेंके लिये प्रथम यहां आयेहैं ॥ १२ ॥ जो हो इस समय पिताजी कहांहैं मुझको यह बताओ; क्योंकि मैं उनके चरण युगल ग्रहण करूंगा वह क्या हमारी माताओंमें सबसे बडी माता कौशल्याजीके घरमेंहैं ? ॥ १३ ॥ अनन्तर जोकि सब वृत्तान्त जानती वह राज्यके लोभसे मोहित हुई कैकेयी न जाने हुए वृत्तान्तको पूछनेंमें तैयार भरतजीसे प्रिय वार्त्ताकी समान वह घोर कुप्यारा वचन कहने लगी ॥ १४ ॥ हे वत्स ! संसारमें जो सबही लोगोंकी गति होतीहै सो तुम्हारे पिता, राजा, महात्मा, तेजस्वी, यज्ञशील और साधु पुरुषोंको आश्रय देने वाले महाराज दशरथजीकीभी वही गति हुई अर्थात् साकेत लोकको चले गये ॥ १५ ॥ धर्म युक्त वंश संभूत सीधे स्वभाव भरतजी यह वार्त्ता सुनतेही पिताजीके शोकके प्रभावसे बहुतही घबडाकर मूर्च्छित हो पृथ्वी पर गिर पडे ॥ १६ ॥ गिरनेके समय महाबाहु महा बलवान भरतजी दोनों बाहें पृथ्वी पर पटककर "हाय हम मारेगये" ऐसा कहकर व्याकुल और करुणामय वचन कहते हुये ॥ १७ ॥ अनन्तर महा तेजवान भरतजी पिताके मरणके शोक और दुःखसे पीडित हो अज्ञान हो गये उनकी

सब इन्द्रियां शिथिल हो आईं और वह विलाप करने लगे ॥ १८ ॥ पिता जीकी यह सेज पहले शरतकालकी रात्रिमें चन्द्र मंडल मंडित गगन की नाईं हमको सुन्दर लगती ॥ १९ ॥ आज उन बुद्धिमान पिताजीके बिना चन्द्र हीन आकाश और जल हीन सागर की नाईं यह सेज शोभित नहीं होती ॥ २० ॥ तपशीलों में श्रेष्ठ भरत जी अपना परम सुकुमार मुख वस्त्रसे ढककर कंठमें वाष्प भरलाये और नेत्रोंसे आंसू छोडते हुए नितान्त व्याकुल चित्तसे विलाप करने लगे ॥ २१ ॥ कुहाडीके काटनेसे शालके पेडका गुद्दा जिस प्रकार गिर जाताहै देवता के समान भरतजीभी पिताके शोकसे पीडित होकर भूमिमें गिरगये ॥ २२ ॥ यह देखकर कैकेयी उन चंद्र सूर्य और मातंगकी समान तेजस्वी शोकाकुल पुत्रको पृथ्वीसे उठाय जांघपर बैठाय उनकी धूल पोंछ पोँछकर बोली ॥ २३॥ हे सदाशय महा यशवान राजपुत्र! उठो२ भूमिमें क्यों पडेहो! तुम्हारी समान पण्डित व पंडितोंकी सभाके भूषण लोग कभी शोक नहीं करते ॥ २४ ॥ हे बुद्धि सम्पन्न ! सूर्यकी प्रभाके समान दान, यज्ञ, शील श्रुति और तपस्याके विषय की तुम्हारी बुद्धिको सब वार्ता सूझतीहैं जैसे सूर्यकी प्रभा बाहर भीतर सब कहीं प्रवेश करती है ॥ २५ ॥ अनन्तर बहुत शोकसे गिरे हुये भरतजी बहुत देरतक रोदन करके धरती पर लोटते रहे और फिर अपनी मातासे यह बोले ॥२६॥ माता हमारे पिता राजा दशरथजी रामचन्द्रजीको राज्य देवेंगे यह समझ कर हमने हर्ष सहित नानाके यहांसे यात्राकीथी ॥२७ ॥ परन्तु इस समय उसके विरुद्ध बात देख कर हमारा हृदय टुकडे२हुआ जाताहै । जो सदाही प्रिय और हितका अनुष्ठान करने वाले हमारे पिताजीथे उनको हम नहीं देखते ॥ २८ ॥ हमारे पीछे कौनसा रोग लगनेके कारण उन्होंने प्राण त्याग किये । रामचन्द्र व लक्ष्मणजो इत्यादिक जिन्होंने पिताजीका संस्कार कियाहै वही लोग धन्यहैं ॥ २९ ॥ निश्चयही कीर्तिमान राजा दशरथजी यह नहीं जानते कि हम नानाके यहांसे आगये । यदि वह जानते होते तो शीघ्र अपना मस्तक झुका हमारा शिर सूंघते ॥ ३० ॥ हाय ! अब छूतेही सुख देने वाला पिताजीका वह हाथ कहांहै ! जब हमारे सब अंगोंमें धूल लग जातीथी तब यह सदाही उस हाथसे हमको

झाड पोंछ देतेथे ॥ ३१ ॥ यहतो हुआ अबजो हमारे भ्राता, पिता और बन्धु व हम जिनके आज्ञाकारी दासहैं वे रामचंद्रजी इस समय कहाहैं शीघ्र हमारा आना उनसे जाय कहो ॥ ३२ ॥ क्योंकि हम इस कुलके धर्म जानतेहैं कि बडा भ्राता पिताहीके समान होता इससे उनकेही चरणों को ग्रहण करैं क्योंकि इस समय वही हमारे रक्षकहैं ॥ ३३ ॥ आर्ये! धर्मज्ञ, धर्मशील महाभाग सत्यविक्रम दृढ व्रत राजा व हमारे पिता दशरथजी मृत्युके समय हमारे लिये भी कुछ कह गयेहैं वह हमारे सुनने की इच्छाहै सो तुम बताओ ॥ ३४ ॥ व हमारे पिताजी प्रजाओंके एकही परम शिक्षक गुरुथे सत्यविक्रम सत्यसंकल्पथे व जो चलनेके समयमें हमें कुछ आज्ञा देगये हों तो उसको हम सुना चाहतेहैं जब इस प्रकार पूछा तब कैकेयी बोली ॥ ३५ ॥ हा सीता ! हा राम ! हा लक्ष्मण ! ऐसा कहकर विलाप करते हुए गति पाने वालोंमें श्रेष्ठ महात्मा दशरथजी परलोकमें चले गयेहैं ॥ ३६ ॥ महागज जिस प्रकार पाशसे बंध जाताहै वैसेही तुम्हारे पिताजीने काल धर्मके वश होकर मृत्युके समय हमसे यह कहाथा ॥ ३७ ॥ जो लोग सीता और लक्ष्मणके समेत महाबाहु रामचंद्रजीको अयोध्यामें फिर आया हुआ देखैंगे उनकेही सब कार्य सिद्ध हुये और वही धन्यहैं ॥३८॥ जब कैकेयीने यह एक दूसरी अप्रिय वार्त्ता कही तब भरतजी बहुतही उदास हुये और कुछ देरतक चुप रहकर मातासे बोले ॥ ३९ ॥ हे मात ! कौशल्याजीको आनन्दको बढाने वाले धर्मात्मा रामचंद्रजी भ्राता और भार्याके सहित इस समय कहां वसतेहैं! ४० जब भरतजीने इस प्रकार पूछा, तब उनकी माता कैकेयीने यथारीति सब वृत्तान्त उनको सुनानेका विचार किया उसने समझा कि उस दारुण अप्रिय घटनासे भरतका मन अवश्यही प्रसन्न होगा ॥ ४१ ॥ पुत्र ! राज पुत्र रामचन्द्रजी चीर वल्कल धारण करके लक्ष्मण और जानकीके सहित दंडक नामक महावनको चले गयेहैं ॥ ४२ ॥ यह वार्त्ता सुनकर भरतजी क्योंकि वह अपने वंशका माहात्म्य जानतेथे इसकारण रामचंद्रजीके चरित्रके विषयमें शंकितहो उस्से त्रासित हुए अपनी मातासे पूछते हुये ॥४३॥ रामचन्द्रजीने किसी ब्राह्मणका कभी धन हरणभी तो नहीं किया, अथवा किसी कारण किसी निष्पाप धनी या दरिद्रको नहीं मार

डाला जिस कारण उन्हें वन भेजा क्योंकि हमारे कुलमें अधर्म त्याग क-रने वालोंका त्याग करना रीतिहै ॥ ४४ ॥ अथवा उन राजपुत्रने कभी पराई स्त्रीपर आसक्त होकर उस्से कभी रतिभी तौ नहीं की तब किस कारणसे भ्राता रामचंद्रजी दंडकारण्यको भेजे गये ॥ ४५ ॥ भरतजीके ऐसे वचन सुनकर चंचल स्वभाव वाली कैकेयीने स्वभावसे जैसा कुछ कियाथा उसको ब्योरेवार वर्णन करने लगी ॥ ४६ ॥ महात्मा भरतजी के पूछने पर चाहियेथा कि कुछ संकोचके साथ कहती पर वह अपनी बुद्धिके सामने पंडितोंकीभी बुद्धिको कुछ नहीं समझतीथी बडी प्रसन्न-ता व धृष्टता सहित कहने लगी ॥ ४७ ॥ वत्स रामचंद्रने किसी ब्रा-ह्मणका कुछभी हरण नहीं किया था अकारणही किसी निष्पाप धनी व दरिद्रको भी किसी प्रकारसे नहीं मार डाला ॥ ४८ ॥ पर स्त्री गमन करना तौ दूर रहे वह कभी पराई स्त्रीको आंख उठाकर देखतेभी नहीं तिस परभी हे पुत्र ! राम राजा होतेहैं यह बात सुनकर ॥ ४९ ॥ मैंने तुम्हारे पिताजीसे तुम्हारे राज्यको मांगा और रामचंद्रजीको वन भिजवानें की प्रार्थनाकी महाराजनें भी सत्यके वश पडनेके कारण मेरी प्रार्थना स्वी-कारकी ॥५०॥ और इसी कारण उन्होंने रामचंद्रजीको सीता और लक्ष्मण सहित वनमें भेज दिया महा यशवान महीपति राजा दशरथजी उन प्रिय पुत्र रामचंद्रजीके न देखनेसे ॥ ५१ ॥ पुत्रके शोकसे पीडित महा दुःखि-तहो पंचत्वको प्राप्त हुए (अर्थात् स्वर्गवासी हुए) हे धर्मज्ञ ! अब तुम इस राज्यको ग्रहणकरो, क्योंकि पिताजी तुम्हारे तुमको यह राज्य देही ग-येहैं ॥ ५२ ॥ तुम्हारेही वास्ते हमने यह कार्य कियाहै अतएव हे पुत्र! धैर्य धारण करो, और शोक संतापका त्यागन करदो ॥ ५३ ॥ इसी हेतुसे यह राज्य और राजधानी अयोध्यापुरी ज्योंकी त्यों निरूप द्रव्य तुम्हारे आधीन होगईहै ॥ ५४ ॥

तत्पुत्रशीघ्रंविधिनाविधिज्ञैर्वसिष्ठमुख्यैःसहि
तोद्विजेंद्रैः ॥ संकाल्यराजानमदीनसत्त्वमा
त्मानमुर्व्यामभिषेचयस्व ॥ ५५ ॥

अतएव तुम इस समय वशिष्ठ इत्यादि विधिके जानने वाले ब्राह्मणोंके

साथ मिलकर शीघ्रही यथा विधानसे महा पराक्रमी अपने पिताकी प्रेत क्रिया समाप्त करके राज गद्दीपर बैठजाओ और किसी प्रकारकी उदासीनता मनमें मतकरो * ॥ ५५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमःसर्गः ॥

श्रुत्वाचसपितुर्वृत्तंभ्रातरौचविवासितौ ॥
भरतोदुःखसंतप्तइदंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

पिताजीका मरण और दोनों भाइयोंका वन गमन सुनकर भरतजी दुःखसे अति संतप्त होकर यह वचन बोले ॥ १ ॥ मात! पिता और पिताकी समान भ्रातासे विहीन होकर हम मारे गये अतएव इस प्रकार शोचनीय अवस्थामें राज्य लेकर हम क्या करेंगे? ॥ २ ॥ तुमने राजा दशरथजीको मारकर और रामचंद्रजीको तपस्वी बना मानों मेरे जले हुए घाव पर नोन घिस कर लगा दुःखके ऊपर दुःखदिया ॥ ३ ॥ तू कालरात्रिके समान कि जिसमें सब प्राणी मरजातेहैं, हमारे कुलका नाश करने हीके लिये रघुवंशमें आई हाय हमारे पिताजीने जलता हुआ अंगारा भेटकरभी उसको नजाना ॥ ४ ॥ रे पाप दर्शिनी! तूने अनायासही राजाको मार डाला! रे कुल नाशिनी! तूने मोहके वशहो एक वारही इस कुलको सुखहीन करदिया॥५॥ हमारे पिता, सत्य प्रतिज्ञा करनें वाले परम यशवान राजा दशरथजीने तुझको घरमें लाकर तीव्र दुःखसे बहुतही संतप्तहो प्राण त्याग कियेहैं ॥ ६ ॥ तूने क्यों उन धर्म वत्सल हमारे पिता महाराज दशरथजीको मारडाला? और क्यों श्रीरामचन्द्रजीको वनमें निकलवाया और वह तेरे कहनेसे किस प्रकार वनको चलेगये ॥ ७ ॥ पुत्र शोकसे तापित हुई कौशल्या व सुमित्रा देवी तुझ दुष्टा हमारी माताको पाय जीवितही रहें तो बडा दुष्कर काम उन्होंने किया समझो क्योंकि ऐसे दुःखमें जीना बहुत कठिनहै ॥ ८ ॥ आर्य रामचंद्रजी अतिशय धार्मिकहैं और वह यहभी

* दोहा–भरतहि विसऱ्यो पितुमरण, सुनत राम वनगौन ॥
हेतु आपनौ समझ जिय, थकित रहे धरिमौन ॥

जानतेहैं कि गुरुजनोंके साथ कैसा व्यवहार करना उचितहै वह सदा तेरे साथ अपनी गर्भ धारिणी माताके समान व्यवहार करते रहे ॥ ९ ॥ हमारी बडी माता आगा पीछा देख कर चलने वाली कौशल्या जीभी सदा तेरे मन मानी बात करती और सगी बहनकी समान तुझसे व्यवहार करती हैं ॥ १० ॥ हे पापीयसि ! तू तिन कौशल्या जीके उन महात्मा पुत्रको किस प्रकारसे चीर वल्कल धारण करा और वनमें भिजवा अब उनके लिये शोक नहीं करती ॥ ११ ॥ हाय उन विशुद्धात्मा अपाप दर्शी परम यशवान शूर महात्मा रामचन्द्र जीको मुनिका भेष बना चीर वल्कल धारण करा वनमें भेजनेंसे तेरा कौनसा काम निकला॥१२॥ रामचन्द्र जीके प्रति मेरी जैसी निष्कपट भक्तिहै उसको तैंने राज्यके लोभमें अंधी होनेसे नहीं जाना इसी कारण तैंनें साधारण राज्यके लोभसे यह बडा भारी अन्याय किया ॥ १३ ॥ परन्तु पुरुषसिंह रामचन्द्र व लक्ष्मणजीके न देखनेसे किस शक्ति व सामर्थ्यके प्रभावसे हम इस राज्यकी रक्षा कर सकें ॥ १४ ॥ जिस प्रकार सुमेरु पर्वत अपनें समीपस्थ वनके आश्रयसे शोभित होता है वैसेही महात्मा धर्मवान महाराज दशरथजीनेभी अपनी व राज्यकी रक्षा करनेके लिये उन महा बलशाली महा तेजवान रामचन्द्रजीको आश्रय कियाथा ॥ १५ ॥ अतएव हम किस प्रकार और किसके बलसे इस बडे भारी राज्यका भार अकेले उठा सकेंगे जिस प्रकार बडे भारी बैलके खैंचनेके लायक भारको छोटासा बछडा नहीं उठा सकता ॥ १६ ॥ अथवा योग बल बुद्धि बल या और किसी उपायसे यदि मैं इस राज्यके भारको सम्हाल भी सकूं किन्तु पुत्र का हित करनें वाली तेरी यह कामना कभो हम पूर्ण नहीं करेंगे कि मेरा बेटा राज्य करै और मैं सब सौतों पर बैठी हुई हुकुम चलाऊं१७॥ हे पाप निश्चये! यदिआर्य रामचन्द्र जी सदाही तेरे प्रति माताकी समान श्रद्धा न करते तब तो इसी मुहूर्त हम तुझको त्यागन कर देते ॥ १८ ॥ रे पाप दर्शिनि! रे सदाचार भ्रष्टः हमारे पूर्व पुरुषोंकी रीतिमें दाग लगानें वाली यह बुद्धि तुझमें कैसी उत्पन्न हुई जिस्से कि सुजन समाजमें तेरी निन्दा हुई ॥ १९ ॥ क्योंकि इस कुलमें पीढान पीढियोंसे यह रीति चली आई है कि ज्येष्ठ ही राजा होता व उससे छोटे भाई उसके आधीन रहते

हैं ॥ २० ॥ रे नृशंसे । हम समझे कि तू राज धर्मको कुछ नहीं जानती अथवा राजधर्म का अनुष्ठान करने से जो अक्षय फल मिलताहै उसकोभी तू नहीं जानती ॥ २१ ॥ राजकुमारों में जो सबसे बडाहो वही अवश्य करके राज्यका अधिकारी होता है सभी राज्योंमें विशेष करके इक्ष्वाकु ओंमें तो यह नियम सदाहीसे चला आता है ॥ २२ ॥ आज तुझसे उस धर्म प्रतिपालक अच्छे चरित्रसे शोभायमान हुये इक्ष्वाकु वंशसे वह सदाचार का गर्व एक बारही खर्व होगया क्योंकि रामचन्द्र ज्येष्ठ को राज्य न मिला ॥ २३ ॥ * हे महाभाग्य शालिनि! तैंने राजकुलमें जन्म ग्रहण किया है; तथापि किस प्रकारसे तुझमें इस निन्दनीय बुद्धिसे यह मोह उपस्थित हुआ जिस्से तेरी सब संसारमें निन्दा हुई व होती रहैगी तेरे कुलमेंभी तो बडेहीको राज्य होता है ॥ २४ ॥ जो कुछभी हो हे पाप निश्चये! तैंने हमारे प्राणोंका संहार करनें वाला दारुण काम किया अतएव हम किसी प्रकारसे भी तेरी अभिलाषा पूर्ण नहीं करेंगे२५॥ पहले तो तेरा अप्रिय करनेके लिये हम अभी स्वजनोंके प्यारे पाप रहित बडे भइया रामचन्द्र जीको वनसे लिवाये लातेहैं फिर देखैंगे कि तू क्या करतीहै ॥ २६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी को वनसे लौटाय और दासकी नाईं सुस्थिर चित्त होकर हम उनकी सेवा करैंगे ॥ २७ ॥

इत्येवमुक्त्वाभरतोमहात्माप्रियेतरैर्वाक्यगणै
स्तुदंस्ताम् ॥ शोकार्दितश्चापिननादभूयः
सिंहोयथामंदरकंदरस्थः ॥ २८ ॥

महात्मा भरतजी इस प्रकार दुःखदायक वचन कह कैकेयीका मर्म पीडन करते हुए इस प्रकार से कह शोकसे कातर हो मंदराचल पर्वत की कंदरामें बैठे हुए सिंहकी समान बडे स्वरसे रोदन करनें लगे ॥२८॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अ० त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

---

* (भरतजी कैकेयीसे) रागनी गिरनारी सोरठ ताल तीन ॥ हे माता ! तैं कुमति कमाई ॥ आस्ताई ॥ तुम जानत हो पुत्र आपने वे त्रिभुवन स्वामी सुख दाई ॥ में कहा करिहों राज पाट यह उन विन कछू न मोहिं सुहाई ॥ जो मैं करिहों राज्य अवधपुर तौ नारद सब जगत हँसाई ॥

चतुःसप्ततितमःसर्गः ॥

तांतथागर्हयित्वातुमातरंभरतस्तदा ॥
रोषेणमहताविष्टःपुनरेवाऽब्रवीद्वचः ॥ १ ॥

भरतजी इस प्रकार यथोचित् उसकी निन्दा करके फिर अतिशय क्रोध करके उससे बोले ॥ १ ॥ रे नृशंस दुराचारिणी कैकेयी तू राज्य भ्रष्ट हो और जब कि तैंनें कुल स्त्रीका धर्म त्यागही करदिया है तब तुझको चाहिये कि मृत स्वामीके लिये रोदन न कर ॥ २ ॥ भला राजाने तेरा क्या बिगाडाथा और रामचन्द्रजी अति धार्मिक हैं सो उन्होंनेही तेरा कौनसा अपकार कियाथा कि जिस्से तूने एकही कालमें राजाको मार डाला और रामचन्द्रको वनवास दिया ॥ ३ ॥ हे कैकेयी! इस प्रकार वंशका नाश करनेसे तुझको गर्भपात करानेंकी हत्या लगी है अतएव नरकको जा तुझको हमारे पिताजीका लोक प्राप्त न होवे ॥ ४ ॥ तैंने सब लोकोंके प्यारे रामचन्द्रजीको वनमें भेजकर स्वामि हत्या रूप यह घोर पाप किया जिस्से कि हमकोभी महाभय उत्पन्न हुआ ॥ ५ ॥ तेरेही कारण पिताजी परलोक वासी हुए तेरेही कारण रामचन्द्रजो वनको गये और सब संसारमें ही तेरे कियेसे मेरा अयश फैला। अब लोग यही कहेंगे कि वह कैकेयी इन ही की माताहै जिसने राज्यके लोभसे निज स्वामीको मार रामचन्द्रजीको वनमें भेजा ॥ ६ ॥ रे नृशंस चरिते! राज्यकी चाहने वाली! तू माताका रूप धारण किये है परन्तु है हमारी वैरिणी हे बुरे आचरण की करने वाली! पति घातिनि! अब तू मुझसे एक बात भी न कर ॥ ७ ॥ हे कुल दूषिणि! तेरेही कारण कौशल्या, सुमित्रा व हमारी और सब दूसरी माताऐं सब ही घोर दुःखमें पतित हुईं ॥ ८ ॥ हमने जान लिजा कि तू धर्मात्मा धर्मराज अश्वपति केकय राजाकी कन्या नहीं है परन्तु हमारे पिताका कुल नाश करने वाली तू केकयराजके गृहमें राक्षसी पैदा हुई है ॥ ९ ॥ देख सत्यही जिनका एक मात्र आश्रय और जो सदाही धर्मकी रक्षा करते हैं वह रामचन्द्रभी तेरे कारण वनको गये और पिताजीने भी स्वर्ग में गमन किया ॥ १० ॥ तेरे ही पापसे हम पिताहीन, भ्राताहीन और साधु समाजमें

सबके कुप्यारे हुए और यह तेरा किया हुआ पाप मेरे ऊपर पडा *॥११॥ रे पापाशये। जबकि तूने धर्मका आचरण करनेंवाली कौशल्याजीको पति और पुत्र करके हीन करदिया. तब तो किसी प्रकारसे तेरी अच्छी गति नहीं होगी वरन तुझको घोर नरकमें जाना पडेगा ॥१२॥ हे क्रूरे! तू क्या इसको नहीं जान सकी कि रामचंद्रजी बन्धु बान्धवोंके आश्रयहैं जिन्होंने सब शत्रु और इन्द्रियोंको जीत रक्खाहै जो ज्येष्ठ होनेके कारण हमारे पिताकी समान हैं जिन्होंनें कौशल्याजीके गर्भसे जन्म लियाहै ॥ १३ ॥ यों तो सब बन्धु बान्धव प्यारे होतेहैं परन्तु सबसे अधिक पुत्र माताको प्यारा होताहै कारण कि वह माताके अंग प्रत्यंग और हृदयही से जन्म ग्रहण करताहै ॥ १४ ॥ किसी समय देवता ओंकी पूज्य धर्मात्मा कामधेनुने अपने दो पुत्र बैलोंको हलमें जुते हुए धूपके मारे व्याकुल हुए अचेतन अवस्था में देखा ॥ १५ ॥ जिनको कि पूरा दो पहर होगयाथा और थक भी गयेथे परन्तु कृपकने तब तक उन्हें नहीं छोड़ाथा कामधेनुको यह देखकर बडा शोक हुआ और वह आंसू डाल २ कर रोदन करने लगी ॥ १६ ॥ इसी समय महानुभाव देवराज इन्द्र कामधेनु जहांथी उस्से नीचेके मार्ग पर जा रहेथे जानेके समय उनके शरीर पर वह आंसू गिरे जिनमें कामधेनुकी सी गंध आती थी ॥ १७ ॥ आंसू अपने ऊपर पडा देख देवराज इन्द्रने ऊपरको नजर उठाई तब देखा कि सुरभी आकाशमें खडी रहकर दुःखसे भरे व्याकुल हृदयसे रोय रहीहै ॥ १८ ॥ वज्रपाणि देवराज इन्द्र यशस्विनी कामधनुको इस प्रकार शोकसे संतप्त देखकर उदासहो हाथ जोडकर बोले ॥ १९ ॥ हे सर्व लोकोंका हित करने वाली! किस लिये रुदन करती हो ? कहो; हम लोगों पर तो किसी ओर से कोई विपद नहीं आई ॥ २० ॥ बुद्धिमान् देवराज इन्द्रजीनें जब इस प्रकार कहा तब वाक्य विशारद कामधेनुने धीरज धर कर उन्हें उत्तर दिया ॥ २१ ॥ हे देवराज! आज कल राक्षसादिक का तो कोई खटका नहीं उनका पापतो कट गया हमतो दुःखमें पडे हुए अपने पुत्रोंको शोचतीहैं ॥ २२ ॥ दे-

* चौपाई ॥ आंसुन भर भर लेहिं उसासा । पापिनि सबहि भांति कुलनाशा ॥

खो यह दोनों बैल अति दुर्बल हो रहेहैं तिसपर भी सूर्यकी किरणोंसे संततहो रहेहैं दो पहर होगया परन्तु उस दुष्ट किसानने इनको अभी तक नहीं छोडा और वह इनको मारभी रहाहै ॥ २३ ॥ वह हमारी देहसे उत्पन्न हुएहैं इसीकारण उनको दुःखित और हलमें जुतनेके भारसे पीडित देखकर हम मारे शोकके जल रहीहैं। देखो संसारमें पुत्रके समान और कोई प्यारा नहींहै ॥२४॥ इस प्रकारसे जब कि कामधेनुके हजारों लाखों पुत्र पृथ्वी परहैं और वह उन २ पुत्रोंके लिये रोरहीहै तब यह देखकर इन्द्रजीनें जाना कि पुत्रके समान और कोई चीज माँको प्यारी नहींहै ॥ २५ ॥ उनके शरीर पर काम धेनुके जो आंसू गिरेथे उनमेंसें अति उत्तम सुगन्धि निकलती हुई देख-कर इन्द्रने जानलिया कि कामधेनु संसार में सबसे श्रेष्ठहै ॥ २६ ॥ यद्यपि सुरभीके असंख्य पुत्रहैं तथापि लोगके धारणकी कामनासे व सरल स्वभाव पुत्र वत्सलतासे॥ २७ ॥ इतना शोच किया फिर असंख्य पुत्र होने परभी सुरभीको अपने पुत्रोंको दुःखित देख इतना शोक हुआ तब इकलोते पुत्रकी माता कौशल्याजी रामचंद्रजीके विना किस प्रकार जीवन धारण करैंगी ॥ २८ ॥ इस समय तुमने जिस प्रकार एक पुत्रा सध्वी कौशल्याजीसे उनका पुत्र छुटादिया वैसेही तुझको इसलोक व परलोकमें सदाही दुःख भोग करना पडेगा ॥ २९॥ हमभी सब भांति से पिता व भ्राताके ऋणसे उऋण होकर अपना कलंक धो यश बढा वेंगे इसमें कुछभी संशय नहीं है ॥ ३० ॥ वह कलंक इसभांतिसे मिटैगा कि हम कौशलाधीश महा बलवान् महाबाहु महाराज रामचंद्र-जीको काननसे यहां लौटा लाकर स्वयं मुनि गणों करके सेवित वनको चले जायगे ॥ ३१ ॥ हे खोटे आशय वाली रे पापीयसि! तैंनें जो पाप कियाहै सो हम उसको किसी प्रकारसेभी सहन नहीं कर सकते क्योंकि यह पुरवासी रामचंद्रजीके वियोगसे रोय २ हमको देखेंगे तब हमसे वह राज्य कैसे किया जायगा! ॥ ३२ ॥ अतएव इस समय यातो तू अग्निमें प्रवेश करजा वा वनको चलीजा या गलेमें फाँसी लगाकर प्राण त्यागदे क्योंकि और तेरी गति कुछ नहींहै ॥ ३३ ॥ हम सत्य पराक्रम श्रीराम-चंद्रजीको लौटाकर और उनको राजा बनाकर सनाथ हो जायँगे हमारे

मनका कल्मषभी जभीं मिटैगा जब कि अयोध्यामें रामचंद्रजीका फेरा होगा ॥ ३४ ॥ भरतजी इस प्रकार विलाप करते २ तोमर और अंकुश-के मारनेसे तेज हुए हाथीकी नांई गुस्सेमें भरकर सर्पकी समान श्वास छोडते २ पृथ्वीमें गिरे ॥ ३५ ॥

संरक्तनेत्रःशिथिलांबरस्तथाविधूतसर्वाभरणः परंतपः ॥ बभूवभूमौपतितोनृपात्मजःशचीपतेःकेतुरिवोत्सवक्षये ॥ ३६ ॥

सब कपडे जिनके शिथिल होरहे गहने जिनके अंगोंसे निकल पडे लाल नेत्र किये ऐसे भरतजी उत्सवके अंतमें इन्द्रकी ध्वजाके समान पृथ्वीपर मूर्च्छित हो गिरपडे ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ०अ०चतुःसप्तति तमःसर्गः ॥ ७४ ॥

पंचसप्ततितमः सर्गः ॥

दीर्घकालात्समुत्थायसंज्ञांलब्ध्वासवीर्यवान् ॥ नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यांदीनामुद्वीक्ष्यमातरम् ॥ १ ॥

अनन्तर वीर्यवान भरतजी बहुत देरमें मूर्च्छासे जागकर आशा भंग होनेसे बहुत व्याकुल हो आंसु ओंसे पूर्ण अपनी माताकी ओर देखने लगे ॥ १ ॥ भरतजीने मंत्रियोंके बीचमें बैठ अपनी माताको यथोचित् घुडका और धमकाकर कहने लगे। हमारी कभी राज्य लेनेकी अभि-लाषा नहींहै न राज्य ग्रहण करनेके लिये हमने कभी माताको परामर्श दिया ॥ २ ॥ न हमको कुछ इसकी खबरथी कि राजाजीनें रामचन्द्र-जीको राज्य देनेका संकल्प कियाहै क्योंकि हम और शत्रुघ्न तो यहां परसे दूर देशमें पडेथे ॥ ३ ॥ महात्मा रामचन्द्रजी भ्राता व भार्या स-हित देशसे निकाले जाकर वनको भेजेगये यहभी हमें मालूम नहीं कि वह क्यों भेजे गये ॥ ४ ॥ महात्मा भरतजी ऐसा कह ऊंचेस्वरसे विलाप करने लगे तब देवी कौशल्याजीने बोलको पहँचानकर सुमित्रासे क-हा ॥ ५ ॥ क्रूर कार्य करने वाली कैकेयीके पुत्र भरत आयेहैं बहुत दि-नोंसे उनको देखा जो नहींहै इससे हम उन बुद्धिमान्को देखा चाह-

तीहैं ॥६॥ रामचन्द्रजीके शोकसे अति दुर्बल गात पीला हुआ वदन प्राय चेतना रहित हुई कौशल्याजी सुमित्राजीसे यह कहकर कांपती हुई ज-हां भरतजीथे वहांको चली ॥ ७ ॥ और इसीसमय राजनंदन भरत और शत्रुघ्नजीने भी कौशल्याजीके घरकी ओर प्रस्थान कियाथा॥ ८॥ अनन्तर बीचहीमें भरत शत्रुघ्न कौशल्याजीको देख आकर अति दुः-खित हुए व दोनों भाई इनको लपट गये व कौशल्याजीभी इनको देखतेही मूर्च्छितहो गिर पडी ॥ ९ ॥ आर्या कौशल्याजी उस स-मय नितान्त दुःखितहो शोकसे भर रोदन करते हुए भरतजीको लिपटाकर खेद सहित कहने लगीं ॥ १० ॥ वत्स! तुमने जैसें राज्यकी कामनाकीथी वैसाही क्रूर करने वाली तुम्हारी माताने दा-रुण कर्म करके निष्कंटक राज्य तुम्हें दिलादिया ॥ ११ ॥ हमें राज्यका कुछ दुःखनहीं पछतावा और दुःखतो फकत् इतनाहीहै कि रामको चीर वल्कल धारण करा वनभेजकर क्रूर बुद्धि वाली कैकेयी-को कौनसा विशेष फल मिला सो हम नहीं कह सकतीं ॥ १२ ॥ जो हुआ सो हुआ अब हिरण्यनाभ सुवर्णकी समान नाभि वाले परम यशवान वत्सराम हमारे जहां परहैं इस समय हमकोभी शीघ्र वहीं पर भेजदेना कैकेयीको उचित है ॥ १३ ॥ अथवा जिस वनमें श्रीरामचंद्रजीहैं हम निश्चयही सुमित्राको संगले अग्निहोत्र सन्मुखकर वहां सुखसे चली जांय-गी ॥ १४ ॥ अथवा पुरुष व्याघ्र वत्स राम जहां तप करते और दुःख भोगतेहैं सो आज तुमको स्वयंही हमें वहां लेजाना पडेगा ॥ १५ ॥ कैकेयीनें तुमको यह धन धान्य सम्पन्न हाथी, घोडे और रथ पूर्ण बडा-भारी राज्य दिलवायाहै सो तुम इकले भोगो॥१६॥जब कौशल्याजीने इस प्रकार कठोर वचनोंसे भरतजीकी बहुतही ताडना की तब भरतजी ऐसे व्यथित हुए कि जैसे बहुत दिनके अति कठोर पुराने घावमें सुई छेदनेसे भारी पीडा होतीहै। निरपराध भरतजीको उन वचनोंसे ऐसी कठिन पीडा हुई ॥ १७ ॥ और तत्क्षणात् चेतना लोप होनेसे मूर्च्छित होगये फिर चैतन्य हुए और फिर भ्रान्तचित्तहो वारंवार विलाप करके कौशल्या

* दो०—पितु आज्ञा भूषण वसन, ताततजे रघुवीर। हृदय न हर्ष विषाद कछु, पहरे वल्कल चीर।

जीके चरणयुगल पर गिर पडे॥ १८॥ फिर जब चेतन्यहुए तब महाशोक ग्रस्त रोदन करती हुई कौशल्याजीसे हाथ जोडकर कहने लगे ॥ १९ ॥ हे आर्ये! हम कुछभी नहीं जानते और न हमारा कुछ दोषहीहै और रामचंद्रजीके प्रति हमारा कैसा विपुल स्नेहहै वहभी आप जानतीहैं तब फिर निरपराधी हमारी आप क्यों ताडना करतीहैं ॥ २० ॥ वह साधुवोंमें श्रेष्ठ सत्य प्रतिज्ञ आर्य रामचंद्रजी जिसकी सलाहसे वनको गयेहों उसको किसी समयभी सत्य शास्त्रानुगामिनि बुद्धि न होवे ॥ २१ ॥ अथवा आर्य रामचंद्रजी जिसकी सलाह से वनको गयेहों वह पापात्मा नीच जातिके मनुष्योंका सेवकहो वह सूर्यकी ओर मुखकर मल मूत्रादिककरे और सोती हुई गायको लात मारे ॥ २२ ॥ आर्य रामचंद्रजी जिसकी सलाहसे वनको गयेहों तो उसको वह पापहो जोकि बडा काम करा लेने परभी नौकरकी तन्ख्वाह न देने पर मालिकको होताहै ॥ २३ ॥ आर्य रामचंद्रजी जिसकी सलाहसे वनको गयेहों तौ उसको वह पापहो जो कि पुत्रकी नाई प्रजापालनेमें तैयार राजासे कोई वागी होने पर होताहै ॥ २४ ॥ कर का छठवां अंश हरण करके प्रजाकी रक्षासे विमुख राजाको जो अधर्म होताहै वही अधर्म उसको हो कि जिसकी सलाहसे श्रेष्ठ रामचंद्रजी वनको गये हों ॥ २५ ॥ यज्ञ, पूजा, पाठ आदिकमें तपस्वी व ब्राह्मण आदिकों को दक्षिणा देनेका करार कर फिर नहीं देनेसे जो पाप होता है वही पाप उसको हो कि जिसके मतसे रामचंद्रजी वनको गये हैं॥२६॥ व जिसकी सलाहसे रामचंद्रजी वनको गये हों उसको वह पाप हो जो हाथी, घोडा सहित शस्त्रास्त्र युक्त समरसे भागनेसे होताहै॥ २७ ॥ आर्य रामचंद्रजी जिसकी अनुमतिसे वनको गयेहों वह दुष्टात्मा सूक्ष्म अर्थों समेत पढा हुआ गुरुसे उपदेश पाया हुआ शास्त्र भूल जावे ॥२८॥ जिसकी परामर्शसे श्रीराम वनको गये हों वह उन विशालबाहु और ऊंचे कन्धे वाले व चंद्रमा और सूर्यकी समान तेजस्वी रामचंद्रजीका राज्याभिषेक न देखने पावें ॥ २९ ॥ आर्य रामचंद्रजी जिसकी अनुमतिसे वनको गये हों उसको वह पापहो जो कि यज्ञमें देवताओंके विना भोग लगाये हुएही खीर तिल दूध मिलाहुआ अन्न या विना यज्ञ किये हुए बकरेका मांस खाने और गुरुका अपमान करनेसे होताहै ॥३०॥

अथवा जिसके मतसे श्रीरामभद्र वनको गये हों उसको वह पाप हो जो गोके शरीरमें लात मारने गुरुकी निन्दा करने और मित्र गणोंमें वैर करनेसे होताहै ॥३१॥श्री रामचन्द्रजी जिसकी सहायसे वनको गयेहों उस दुरात्माको वह पाप हो जो किसीको विश्वास दिलादे कि मैं तेरी बात किसीसे न कहूंगा और तब दूसरा आदमी उस्से अपना गुप्त भेद कहदे और फिर वह उसे प्रकाश करदे तौ ऐसा करने वालेको जो पाप होताहै वही पाप रामचन्द्रजीके वन भिजवानेमें जिसकी सलाह होवे उसेहो ॥ ३२ ॥ व जिसके मतसे श्री रामचन्द्रजी वनको गयेहों उसको वह पापहो जो कि उपकार न करने वाले व भला न मानने वाले व सज्जनोंसे त्यागे जाने वाले बे शरम, संसार भरके जीवोंसे वैर करने वालोंको होताहै ॥ ३३ ॥ अथवा जिसके मतसे श्रीरामचन्द्रजी वनको गयेहों उसको वह पापहो जो उन लोगोंको होताहै कि घरमें नौकर चाकर स्त्री पुत्र समेत बैठे अकेले व मीठी या श्रेष्ठ चीज वस्तु खाते और नौकर चाकर या स्त्री पुत्रादिक किसीको नहीं देतेहैं ॥ ३४ ॥ जिसकी सलाहसे रामचन्द्रजी वनको गयेहों उसको पतिव्रता स्त्री प्राप्त न होसके और वह बे औलाद-ही मरजाय और धर्मशास्त्रके अनुसार उसकी क्रियाभी न हो सके ॥३५॥ जिसके मतसे श्री रामचंद्र वनको गयेहैं वह अपनी स्त्रियोंमें पुत्रके मुँह देखनेके सुखको न पाकर दुःख पाता रहै व उसकी उमर थोडी होजाय ॥ ३६ ॥ जिसकी सलाहसे श्री रामचन्द्रजी वनको गयेहों उसको वह पाप हो जो कि राजा, स्त्री, बालक और वृद्धोंके वध करने और निर्पराध नौकर चाकरोंके त्याग करनेसे होताहै ॥३७॥ अथवा जिसके मतानुसार आर्य रामचन्द्रजी वनको गयेहों उसको वह पापहो जो कि सदा मांस, मधु, लाख, लोहा. और विष इत्यादि निषिद्ध वस्तुओंको बेच २ उससे घर वाले वा कुटुम्बियोंका पालन पोषण करने वाले लोगोंको होताहै॥३८॥ अथवा आर्य रामचन्द्रजी जिसके मतानुसार वनमें गयेहों उसको वह पाप हो जो कि शत्रुकी ओर बढी हुई और भयंकर सैना देख संग्राममें भाग जाने वालोंको होताहै ॥ ३९ ॥ जिसके मतमें रघुनंदनजी वनको गयेहों वह फटे पुराने मैले कुचैले कपडे पहरे वालोंकी समान मुर्दैकी खोपडी हाथमें लिये द्वार २ पर भिक्षा करता हुआ पृथ्वीमें घूमता फिरे ॥ ४० ॥

व जिसके मतसे श्री रामचन्द्रजी वनको गयेहों वह सदा शराब पीनेमें स्त्रियोंके साथ मैथुन करनेमें और जुआ खेलनेमें बहुतही आसक्तरहैं और काम व क्रोधसे सदा उनका निरादर होतारहै ॥ ४१ ॥ जिसके मतसे आर्य रामचंद्रजी वनको गयेहों वह सदा अधर्महीकी सेवा किया करै और कुपात्रोंहीको दान दिया करै व कभी उसका मन धर्मकी ओर न जावे ॥ ४२ ॥ व जिसकी सलाहसे श्रीरामचन्द्रजी वनको भेजे गये हों उसका बहुत यत्नसे इकट्ठा किया हुआ हजारों रुपयोंका धन चोर चुराकर ले जावें ॥ ४३ ॥ जिसकी सलाहसे रामचन्द्रजी वनको गयेहों उसको वह पाप लगै जो प्रातःकाल व सायंकालकी सन्ध्यामें शयन करने वालोंको लगताहै ॥ ४४ ॥ जिसकी सलाहसे बडे भ्राता रामचन्द्रजी वनमें भेजे गये हों घरमें अग्नि देनेसे जो पाप होताहै गुरुकी स्त्रीसे मैथुन करनेसे जो पाप होताहै और मित्रोंका बुरा करनेसे जो पाप होताहै वही पाप उनको होवे ॥ ४५ ॥ जिसकी अनुमतिसे श्री रामचन्द्रजी वनको गयेहों उसको देवता, पिता, व माताकी सेवा करनेको नहीं मिलै ॥४६ ॥ अथवा श्रीरामचन्द्रजी जिसके मतानुसार वन को भेजे गयेहों वह साधुओंके लोकसे साधुओंकी कीर्त्तिसे और साधुओंके कर्मसे इसी मुहूर्त्तही भ्रष्ट होजावें॥४७॥ अथवा दीर्घबाहु और चौडी छाती वाले आर्य रामचन्द्रजी जिसकी सम्मतिसे वनको गयेहों वह अपनी माताकी सेवासे विमुख होकर अनर्थ कार्यमें लगा रहै ॥४८॥जिसके मतसे श्रीरामचंद्रजी वनको गयेहों वह बहुत सेवकोंके होनेपरभी दरिद्र होवे। और ज्वर रोगसे सदा पीडित रहै व सदाही क्लेश भोग कियाकरै॥४९॥ व जिसके मतानुसार श्रीरामचंद्रजी वनको गयेहों वह ऊपरको दृष्टि किये हुए दीन भावापन्न अपना मनोरथ जताने वाले याचकोंकी आशा पूर्ण न कर सके ॥ ५० ॥ जिसकी सलाहसे श्रीरामचंद्र वनको गयेहों तो वह कर्कश स्वभाव क्रूर, अपवित्र, और एक मात्र अधर्मकेही वशहो अनेक प्रकारके कपट करता करता जहां तहां फिरता फिरता फिरै और सदा उसको राजाके भवनसे डरना पडा करै ॥ ५१ ॥ जिसके अभिमतसे रामचंद्रजी वनको गयेहों वह दुष्ट ऋतु समयमें स्नान की हुई अपनी पतिव्रता स्त्रीकी ऋतु रक्षा न कर सके ॥ ५२ ॥ (ऋतुमती स्त्रीके पास न जानेसे पाप होताहै) अथवा जिसकी सलाहसे आर्य

रामचंद्रजी वनको गयेहों उसको वह पाप लगे जो उस ब्राह्मणको लगताहै कि जिसके पुत्र भूखोंके मारे मर जांय और वह उनका पालन पोषण न कर सके ॥ ५३ ॥ जिसके परामर्शसे रामचंद्रजी वनको गयेहों उसकी सब इन्द्रियें पापसे कलुषित होजावें और वह पापात्मा ब्राह्मणके लिये होती हुई पूजाको मिटादे, और बहुतही छोटा जिस गायका बछडाहो उसको दुहे ॥ ५४ ॥ जिसकी सलाहसे आर्य रामचंद्रजी वनको गयेहों उसको अपना विवाहिता धर्मपत्नीस्त्रीको छोड़ पराई स्त्रीसे मैथुन करना पडे और वह अपना धर्म छोडनेमें अनुरागीहो मोहसे ढक जावे ॥ ५५ ॥ अथवा जिसने रामचंद्रजीके वन भेजनेमें इशारा किया हो तो पानीके दूषित करनेसे विष देनेसे जो पाप होतेहैं उसको एकाकी इन सब पापोंमें लिप्त होना पडे ॥ ५६ ॥ अथवा जिसकी सलाहसे आर्य रामचंद्रजी वनको गयेहों उसको वह पाप लगे जो कि जल पास होने परभी बहानाकर जल न दे प्यासे आदमीको टाल देनेसे होताहै ॥ ५७ ॥ अथवा धर्मकी अलग २ शाखाओंका आश्रय करके उनके संबन्धमें विवाद करनेसे जो पाप होताहै, और उस विवादके देखनेसे जो पाप होताहै वह पाप उसको लगे कि जिसकी परामर्शसे आर्य रामचंद्रजी वनको गयेहैं ॥ ५८ ॥ राजपुत्र भरतजी पति पुत्र विहीन कौशल्याजीको इस प्रकार समझाते २ सोगंधे खाते परम दुःखीहो पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ५९ ॥ वह अति कठोर शपथ करते २ शोकसे सन्तप्त व ज्ञान शून्य होगये तब कौशल्याजीने उनसे कहा ॥ ६० ॥ हे पुत्र ! तुम जो अनेक प्रकारकी सौगंधे खाकर हमारे प्राणोंपर आघात देते हो इससे हमें अत्यन्तही दुःख होताहै ॥ ६१ ॥ जो हो परम सौभाग्यकी बातहै कि तुम्हारा मन अनेक प्रकारके शुभ लक्षणोंसे शोभायमानहै और धर्मसे विचलित नहीं हुआहै अथवा तुम्हारी प्रतिज्ञा यदि सत्यहै तौ तुम निश्चयही सद्गतिके अधिकारी होगे ॥ ६२ ॥ यह कहकर देवी कौशल्याजी महाबाहु भ्रातृ वत्सल भरतजीको गोदमें लेकर छातीसे लगाय अत्यन्त दुःखमें भरकर रोने लगी ॥ ६३ ॥ उस समय दुःखके ग्रसित हुये विलाप करते २ भरतजीका मनभी शोककी अधिकाईसे और शोकसे उत्पन्न हुए मोहके कारण व्याकुल होगया॥६४॥

लालप्यमानस्यविचेतनस्यप्रनष्टबुद्धेःपतित

स्यभूमौ ॥ मुहुर्मुहुर्निःश्वसतश्चदीर्घंसातस्य शोकेनजगामरात्रिः ॥ ६५ ॥

कौशल्याजीसे प्यार किये हुए वारंवार विलाप करते २ चेतना रहित हो पृथ्वीमें गिरते पडते वार २ ऊधी श्वास लेते व शोक करते हुए वह रात्रि विताई ॥६५॥ इ० श्रीम० वा० आ० अ० पंचसप्ततितमःसर्गः॥७५॥

षट्सप्ततितमः सर्गः

तमेवंशोकसंतप्तंभरतंकैकयीसुतम् ॥ उवाचवदतांश्रेष्ठोवसिष्ठःश्रेष्ठवागृषिः ॥ १ ॥

जब कैकेयीनंदन भरतजी इस प्रकार शोकसे संतप्त हुए तब वचन बोलने वालोंमें श्रेष्ठ वशिष्ठजी उनसे उत्तम वचन बोले ॥ १ ॥ हे परम यशवान् राजकुमार! तुम्हारा मंगलहो वृथा शोक करनेसे क्याहै? अब समय उपस्थितहै अतएव विधि विधानसे राजाको अन्तेष्टि क्रिया करो ॥ २ ॥ पृथ्वीमें पडे हुए भरतजीने वशिष्ठजीके यह वचन सुन उठकर उनको साष्टांग प्रणाम किया और सब प्रेत कर्मोंके निर्वाह करनेंमें प्रवृत्त हुए ॥ ३ ॥ भरतजीने तेल भरी नौकासे राजाका शरीर निकलवाया और उसको भूमिपर स्थापित कराया बहुत तेलमें रहनेंसे राजाका वह शरीर कुछेक पीला पड गयाथा तौभी यही जान पडताथा कि मानो राजा सो रहेहैं ॥ ४ ॥ अनन्तर भरतजीने उस मृतक शरीरको विविध रत्न लगे हुए उत्तम बिछौनेपर शयन कराकर शोक भाराच्छन्न हृदयसे यह कह कर विलाप करने लगे ॥ ५ ॥ राजन् मैं विदेशमें था इसलिये नहीं आसका आपने इसही बीचमें क्या मनमें समझ धर्मज्ञ रामचंद्र बलवान लक्ष्मणजीको वनको पठादिया ॥६॥ हे महाराज! अमानुष कर्म कर्त्ता पुरुषसिंह राम विहीन हम दुःखित जनोंको छोड कहां जाते हो!॥ ७ ॥ अथवा हे तात! आर्य रामचंद्रजी वनमें गयेहैं और आप स्वर्गको सिधार गये अतएव कौन पुरुष धीरज धरकर आपकी राजधानी अयोध्यामें योग क्षेम प्रजाओंका हित विधान करैगा ॥ ८ ॥ हे राजन्! आपके विना यह पृथ्वी विधवा होगई इसकी

अब वह शोभा नहीं रही आपकी यह राजधानी चन्द्रहीन यामिनीकी समान हमें ज्ञातहोरहीहै ॥ ९ ॥ जब भरतजीने दीन मनसे इस प्रकार विलाप कलाप करना आरंभ किया तब महर्षि वशिष्ठजी फिर उनसे बोले ॥ १० ॥ हे महाबाहो ! इस समय धीर्य धारण करके विना विचारे राजाके जितने प्रेत कर्म करने कर्त्तव्यहैं उन सबको जैसा हम बताते जांय वैसे करते जाओ ॥ ११ ॥ महात्मा भरतजीने जो आज्ञा कह वशिष्ठजीके वचनोंको मान ऋत्विक (जो यज्ञ करातेहैं) पुरोहित (जो सब भांतिसे हित साधन करतेहैं) और आचार्य (जो वेद पढातेहैं) इन सबोंको इस प्रेतकर्म करानेके लिये बहुत शीघ्रता कराई ॥ १२ ॥ उन राजाके अग्नि गृहमें जो जो अग्नियें स्थापितथीं उन सबको बाहर निकाल कर ऋत्विक् और याजक (उपदेश देने वाले) यथा विधि उसमें होम करने लगे ॥ १३ ॥ अनन्तर परिचारक लोग चेतनाहीन राजाके शरीरको पालकीमें चढाकर नितान्त भग्न हृदय और गद् २ कंठहो उस पालकीको उठाते हुए ॥ १४ ॥ मार्गमें विविध भांतिके उत्तम२ रेशमीन वस्त्र सोना चांदीकी बखेर करते २ हजारों मनुष्य राजाकी पालकीके आगे २ चले ॥ १५ ॥ मार्गमें इस भांति करते कराते सरयूके किनारे पर पहुँचे वहां चन्दन, अगर, गुग्गुल, सँखू, पद्म, काष्ठ, देवदारुआदि लाय उत्तम चिता बनाई ॥ १६ ॥ इस चितामें औरभी अनेक प्रकारके सुगन्धित पदार्थ डाले गये। अनन्तर ऋत्विक् लोगोंनें चिताके निकट गमन करके राजाका शरीर चितामें पहुडा दिया ॥ १७ ॥ इस समय राजकीय ऋत्विकगण राजाको परलोक शुद्धिके लिये अनलमें आहुति देकर उस समयके योग्य जप करने लगे और सामगायी ब्राह्मण लोगोंनें शास्त्रानुसार सामगान करना आरंभ किया ॥ १८ ॥ राजाकी सब रानियें यथायोग्य रथ पालकी आदिक सवारियोंपर चढ वृद्ध लोगोंके साथ नगरसे बाहर निकलीं और जहां राजाकी चिता जल रहीथी वहां पहुँची ॥ १९ ॥ फिर ऋत्विकोंने और कौशल्याजीसे इत्यादि लेकर औरभी सब महारानियोंनें अतीव शोकसे संतप्त होकर उन अग्निको प्राप्त हुए राजाकी प्रदक्षिणाकी ॥ २० ॥ तत्काल करुणामय स्वरसे रोदन करती शोकसे व्याकुलहो चिल्लाती हुई उन हजार २ स्त्रियोंका चिल्लाना सुन पडा ऐसा बोध हुआ

मानो क्रौञ्चीगण शब्द करतीहैं ॥ २१ ॥ तिसके पीछे सब रानियें और शोकसे व्याकुल होकर रोय २ विलाप करती हुई सवारियोंसे उतर सरयूके निकट आईं ॥ २२ ॥

कृत्वोदकंतेभरतेनसार्धंनृपांगनामंत्रिपुरोहिताश्च ॥ पुरंप्रविश्याश्रुपरीतनेत्राभूमौदशाहंव्यनयंतदुःखम् ॥ २३ ॥

और पुरोहित व भरतजीके सहित सब लोग राजाके लिये तर्पण कर आंसू बहाते हुए नगरमें आये और सबने पृथ्वी पर शयन करके ब्रह्मचर्य धारण कर दश दिन अति कष्टसे बिताये ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे षट् सप्ततितमःसर्गः ॥ ७६ ॥

सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥

ततोदशाहेतिगतेकृतशौचोनृपात्मजः ॥ द्वादशेहनिसंप्राप्तेश्राद्धकर्माण्यकारयत् ॥ १ ॥

इस प्रकार दशदिन तक सब नियम करते रहे जब ग्यारवां दिन आया तब एकादशाह किया अब पवित्र हुए जब बारवां दिन आया तो सपिंडादि श्राद्ध करते हुए ॥ १ ॥ लौकिक मंगलार्थ ब्राह्मणोंको बहुतसा धन, रत्न, सोना, चांदी, गायें, छाग आदि दान किये ॥ २ ॥ और बहुत सारे दास,दासियें,सवारियें,ऊंट,हाथी,घोडे आदिक तंबू,कनात, शामियाने सब सामग्रीसे भरे हुए भरतजीनें राजाके निमित्त ब्राह्मणोंको दिये ॥ ३ ॥ इसके पीछे तेरहवें दिन प्रातःकालके समय महाबाहु भरतजी शोकसे मूर्च्छित हो विलाप करने लगे ॥ ४ ॥ फिर वह पिताजीकी अस्थि बीनेंनेके लिये वहां गये जहां सरयूके किनारे दशरथजीका दाह किया गया था वहां गद् २ कंठहो दुःखसे व्याकुल हुए भरतजी पिताको पुकार कर कहने लगे ॥ ५ ॥ हे तात ! आपने जिनको हमारा भार अर्पण किया था वह रामचंद्रजी इस समय वनवासीहैं अतएव इस बीच आप हमें शून्यमें छोडकर चले गयेहैं ॥ ६ ॥ राजन् जिन हतभागिनी कौशल्याजीके इकलौते सहारे रामचंद्रजी वनको चले गयेहैं, तात! उन मात

कौशल्याजीको इकली छोड अनाथ कर कहां चले गये? ॥ ७ ॥ अनन्तर भरतजी वहीं पर बैठगये जहां उनके पिताका शरीर जलाया था वहां श्वेतरंग की छाई पडीथी उसको देख भरतजी बहुतही शोकाकुल हुए और विलाप करने लगे ॥ ८ ॥ और दीन भावसे रोय २ व्याकुल हृदयहो मंत्रसे बंधी इन्द्रध्वजाकी नाईं पृथ्वीपर गिर पडे । उस समय जो आदमी कि भरतजीके साथथे उन्होंने तत्क्षण उनको उठाया ॥ ९ ॥ शून्यहीन होजानेके समय राजर्षि ययाति जब पृथ्वीपर पतित हुएथे और उस समय ऋषिगण जिस प्रकार उनके निकट आयेथे वैसेही भरतजीके जितने नौकर चाकर मंत्री दीवान आदिथे वह सब शोकके मारे शुचिव्रत भरतजीके निकट आये ॥ १० ॥ भरतजीको शोकमें भरा औ घबडाया हुआ देखकर पिता दशरथजी की याद करके शत्रुघ्नजीभी मूर्च्छितहो गिर पडे ॥ ११ ॥ वह पिताके एक एक करके सबही गुण यादकर नितान्त दुःखित और उन्मत्तकी समान संज्ञा रहितहो इस प्रकारसे विलाप करने लगे ॥ १२ ॥ हा मन्थराकी उक्तिसे उत्पन्न शोकसागर कैकेयी जिसमें ग्राह उस वरदान रूप अपार शोकसागरमें हम सब डूबगये ॥ १३ ॥ पिता ! आपने निरन्तर जिनको पालन कियाहै और जिनका बालक स्वभावभी भलीभांति अभी नहीं छूटाहै वह भरतजी इस समय रोरहेहैं सो आप इनको छोड कहां चलेगये ॥ १४ ॥ भोजन करने पीने, वस्त्र भूपणादि धारण करने सबही विषयमें आप हम लोगोंको प्रेरण किया करतेथे अब कौन कहैगा कि पुत्र देर होतीहै भोजन करो, जल पियो, अच्छे वस्त्राभूपण धारण करो ॥ १५ ॥ हाय आप ऐसे धर्मज्ञ व महात्मा राजा बिना यह पृथ्वी अब दारुणके कालमें फट न गई ॥ १६ ॥ हाय ! पिताजी तो स्वर्गको सिधारे और रामचन्द्रजी वनको चले गये अब हम किस प्रकारसे प्राण धारण करें नहीं कहीं जीनेंसे क्या होगा अब अग्निमें प्रवेश करेंगे ॥ १७ ॥ अथवा भाई करकै हीन और पिताहीन होकर हम इक्ष्वाकुआदि राजा ओंकी पालित शूनी अयोध्या पुरीमें प्रवेश नहीं करेंगे वरन सीधे तपोवनहीको चले जायँगे ॥ १८ ॥ उन दोनों भाइयोंका इस प्रकार विलाप सुनकर व उनके ऊपर बडा कष्ट देख सब नौकर चाकर बहुतही दुःखित हुये ॥ १९ ॥ इस समय भरत शत्रुघ्न दोनों भाई

व्याकुल और थकित होकर सींग कटे हुये बैलोंकी समान पृथ्वी पर गिरकर लोटने व छटपटाने लगे ॥ २० ॥ यह देखकर उनके पिताके पुरोहित सत्वगुणावलंबी सर्वज्ञ महामुनि वशिष्ठजीने भरतजीको अपने हाथोंसे उठाया और कहा ॥ २१ ॥ हे विभो! आज तेरहवां दिनहै तुम्हारे पिताजी की दाह क्रिया पूरी होगई अतएव भस्म सहित अस्थिसचंयन करनेमें अब किस कारणसे विलंब करतेहो ? ॥२२॥ संसार में तीन द्वन्द्वहैं, भूख, प्यास, शोक,मोह,जरा,मृत्यु,जन्म,मरण, सुख, दुःख और लाभालाभ इन कई एक वातोंको सबही प्राणी भोग करतेहैं, इन वातोंसे कोई नहीं छूटा न यह बातें किसीको थोडी या अधिक व्यापें सबको बराबर व्यापतीहैं, अतएव इस जीवके साधारण धर्ममें तुमको नहीं फँसना चाहिये इस समय तुम शोक और मोहका त्यागन करदो ॥ २३ ॥ वशिष्ठजीने तो इस प्रकार भरतजीको समझाया, और तत्त्वोंके जानने वाले सुमंत्रजीने शत्रुघ्नजीको उठाय और भलीभांति प्रसन्न करके उनको संसार की अनित्यताकी बहुत बातें समझाईं और सुनाईं ॥ २४ ॥ जिस समय परम यशस्वी पुरुष श्रेष्ठ दोनों भाई पृथ्वीसे उठकर वर्षा और घामसे मलीन भाव धारण किये दो इन्द्रध्वज जिस प्रकार शोभित होतेहैं वैसेही प्रकाशित होने लगे ॥ २५ ॥

अश्रूणिपरिमृद्नंतौरक्ताक्षौदीनभाषि
णौ ॥ अमात्यास्त्वरयंतिस्मतनयौ
चापराःक्रियाः ॥ २६ ॥

वे दोनों जन लालनेत्र किये व नेत्रोंके आंसू पोंछते हुए बोले। तब मंत्री लोगोंने उनको अस्थि संचयन श्राद्ध व और जो क्रिया कर्म करने वाकीथे उनके विषयमें शीघ्रता कराई ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीयेआ० अ० सप्तसप्ततितमः सर्गः ॥ ७७ ॥

अष्टसप्ततितमः सर्गः ॥

अथयात्रांसमीहंतंशत्रुघ्नोलक्ष्मणानुजः ॥
भरतंशोकसंतप्तमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

सब क्रिया कर्म कर चुके हुये भरतजीको शोक संतप्तहो रामचंद्रजी के समीप जानेको उद्यत देख लक्ष्मण अनुज शत्रुघ्नजी उनसे बोले ॥ १ ॥ कि सब प्राणियोंकेही जो दुःख और शंकटमें एक मात्र सहारे और अवलंबन वा आत्माहैं उनही रामचंद्रको विपत्ति कालमें हम सबभी आश्रय लेते हाय ! वही महा पराक्रमी रामचंद्रजी स्त्री सहित वनको भेजे गये ॥ २ ॥ यदि समझ लिया जाय कि रामचंद्रजीने संकोच करके राजासे इस विषयमें कुछ न कहा परन्तु लक्ष्मणजी तो बलवान् और वीर्यवान जगत्में विख्यातहैं फिर उन्होंने क्यों नहीं इस कर्मसे पिताको रोककर रामचंद्रजीको वनवाससे छुडाया ॥ ३ ॥ रामचंद्रजीको वन देनेसे पहिले जब कि लक्ष्मणजीने देखा कि पिताने स्त्रीके वश होकर नीतिसे निंदित मार्गमें पैर धराहै, तब उसी समय उनको उचितथा कि आपही न्याय अन्याय का विचार करके राजाको इस कर्मके करनेसे रोक देते ॥ ४ ॥ लक्ष्मण जीके छोटे भाई शत्रुघ्नजी इस प्रकारसे कह रहेथे कि इतने मेंही कुबरी सब वस्त्र आभूपणोंसे सज धजकर पूर्वके द्वार पर देख परी ॥ ५ ॥ उस समय वह सर्वांगमें उत्तम चंदन लगाये और राजा रानियोंके योग्य कपड़े पहरे और यथा स्थानमें वैसेही विविध प्रकारके गहने पहर रहीथी ॥ ६ ॥ उस समय जडाऊ कमरपट्टी बांधने व पाजेबके पहरनें इनके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकारके उत्तम गहनोंके पहरनेंसे कुब्जा रस्सियों से बँधी हुई वानरीके समान बोध होने लगी ॥ ७ ॥ द्वारपालने उस महा पाप करने वालीको देखतेही उसी समय बहुत जकड़कर पकडा और शत्रुघ्नजीके निकट ले जाकर निवेदन किया ॥ ८ ॥ कि हे महाराजा जिससे रामचंद्रजी वनको गये और आपके पिताजी भी परलोक वासी हुये यह वही पाप परायण दयाहीना कुबडीहै सो आपको जैसा जचै इस समय वैसाही इसके साथ व्यवहार कीजिये ॥ ९ ॥ धर्मात्मा शत्रुघ्नजी यह वार्त्ता श्रवण कर अत्यन्तही दुःखित हो कर्त्तव्य कर्म निश्चय करके रनवास के रहने वाले सब लोगोंसे कहने लगे ॥ १० ॥ इस कुबडी नें जिस प्रकार कि हमारे पिता और भाइयोंको दारुण दुःख उपजाया वैसेही उस घोर पाप करनेका इस समय यह भली भांति फल भोगे ॥ ११ ॥ यह कह कर शत्रुघ्नजीने जबरदस्ती कुब्जाको स-

खियों मेंसे खैंचलिया और पृथ्वीपर देमारा तव वह ऐसे शब्दसे चिंघाड़ी कि सब गृह उसके शब्दसे भर गया॥ १२ ॥ मंथराकी यह दशा देख उसकी सखियें अत्यन्त सन्तप्त हुईं और यह जानकर कि इस समय शत्रुघ्नजी महा क्रोधितहैं सब इधर उधर दौड खडी हुईं कि कहीं हमपर भी आफत न आवै ॥ १३ ॥ और वह सब उसकी सखियें सलाह करने लगीं कि शत्रुघ्नजीनें इस समय जो कार्य आरंभ किया है उससे तो यह ज्ञात होता है कि यह हम सबको ही मार डालेंगे ॥ १४ ॥ अतएव इस समय हमें उन दया शीला परम दान देने वाली धर्मज्ञा वा यशस्विनी देवी कौशल्या जीका आश्रय लेना उचित है वह निश्चयही हमको आश्रय देंगी ॥ १५ ॥ उन सब कूबरीकी सखियों ने तो इस भांति विचार किया और इधर शत्रुओंके दमन करने वाले शत्रुघ्नजीनें क्रोधमें परिपूर्ण होकर फिर कुब्जाको पृथ्वीमें दे पटका और उसकी चोटीको पकड घसीटने लगे ॥ १६ ॥ जब कई एक झटके इधर उधरको दिये तब कुबडीके विचित्र गहने जो कि वह शरीर में पहररहीथी सबके सब टूटकर उसके शरीर से निकल पडे और कुब्जा चिल्लाने लगी ॥ १७ ॥ उस समय वह परम सुन्दर राज भवन इन टूटे फूटे गहनों के इधर उधर पडे रहने से इस प्रकार शोभित होने लगा जैसे कि शरदऋतुका आकाश मंडल ताराओं करके शोभित होता है ॥ १८ ॥ अनन्तर पुरुष श्रेष्ठ बलवान् शत्रुघ्नजीनें बडे हो क्रोधसे झकझोरकर कुब्जाको पकडा यह देखकर कैकेयी उसको छुडाने दौडी तब शत्रुघ्न जीने उसेभी बडे कडुवे असह वचन कहे ॥ १९ ॥ कैकेयी उन सब कष्टदायक कठोर वचनोंको सुन और झकझोरे जानेसे नितान्त कातर व शत्रुघ्नजीके भयसे बहुतही भीत होकर अपने पुत्र भरत जीको शरण गई ॥२०॥ तब भरत जीने शत्रुघ्नजीको महा क्रोधित देखकर उनसे कहा कि हे प्यारे भैय्या! स्त्री मात्रही सब प्राणियों से अवध्य होती हैं अतएव मंथराके अपराधको क्षमा कर दीजिये ॥ २१ ॥ रामचन्द्रजी अति धर्मनिष्ठ हैं यदि वह माताका मार डालने वाला समझकर हमारी निन्दा न करते व हम पर क्रोधित न होते तो हम इस दुराचारिणी पापिनी कैकेयी को अभी मार डालते ॥ २२ ॥ कैकेयी की बात तो एक ओर रही

जिस समय वह महात्मा यह जानेंगे कि इन्होंने कुब्जाको मार डालाहै तब प्रीति कैसी वह हमारे तुम्हारे साथ बातभी न करेंगे ॥ २३ ॥ भरतजीके यह वचन सुनकर लक्ष्मणजीके छोटे भाई उस दोष युक्त कार्यके करनें से निवृत्त हुए और बनाय मूर्च्छित हुई मंथराको छोड दिया॥२४॥ तब मंथरा कैकेयी के चरणों में गिरकर ऊधे २ श्वासले बडे दुःखसे भरे करुणाके स्वरसे विलाप करने लगी ॥ २५ ॥

शत्रुघ्नविक्षेपविमूढसंज्ञांसमीक्ष्यकुब्जांभरतस्यमाता ॥ शनैःसमाश्वासयदार्तरूपांक्रौंचींविलग्नामिववीक्षमाणाम् ॥ २६ ॥

शत्रुघ्नजी के घसीटनेसे उसकी चेतना जाती रही है और बहुत व्याकुल हो पींजरेमें बँधी क्रौंचीकी नांईं इधर उधर देख रही है यह देख भरत माता कैकयी ने उसको धीरे धीरे बहुत समझाया ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अ० अष्ट सप्ततितमः सर्गः ॥ ७८ ॥

एकोनाशीतितमः सर्गः ॥

ततःप्रभातसमयेदिवसेथचतुर्दशे ॥
समेत्यराजकर्तारोभरतंवाक्यमब्रुवन् ॥ १ ॥

अनन्तर चौदहवें दिन प्रभातके समय राजकार्यके निबाह करने वाले मंत्री आदि लोग इकट्ठे हो भरतजीसे कहने लगे ॥ १ ॥ जो हमारे गुरुके भी गुरुथे वह राजा दशरथजी ज्येष्ठ रामचन्द्रजी और महा बलवान् लक्ष्मणजीको वन भेज स्वर्गको सिधार गये ॥ २ ॥ इस समय यह राज्य विना राजाका पडा है अतएव आप इसको ग्रहण कीजिये क्योंकि आप राजाके परम यशवान पुत्रहैं और विशेषतः अपने पिता की आज्ञानुसार राज्य पद ग्रहण करनेंसे बडे भाईके विद्यमान रहते राज्य करने में किसी प्रकारका दोष आपको नहीं लगैगा ॥ ३ ॥ हे रघुवंशीय राजनंदन! कुछ हमही नहीं बरन सब बन्धु बान्धव और पुरवासी गण सबही अभिषेककी सामग्री लिये हुए आपकी बाट देख रहे हैं ॥ ४ ॥ हे नर श्रेष्ठ भरतजी! आप अपने पिता व पितामहादिकोंका राज्य ग्रहण करके अपना अभिषेक कराइये और हम सबका पालन कीजिये ॥ ५ ॥

उन सबके यह वचन सुन व जितने पात्र अभिषेक वाली वस्तु ओंसे भरेथे सबकी कृत निश्चय भरतजी नें प्रदक्षिणाकी फिर दृढ व्रत धारी भरतजी सब लोगोंसे कहने लगे ॥ ६ ॥ हमारे कुलकी रीतिके अनुसार बडे ही को राजत्व सदासे ही चलाआया है अतएव आप लोग चतुर होकर फिर हमसे राज्य कहनें को न कहना ॥ ७ ॥ आप लोग सब सूक्ष्मानुसूक्ष्म का विचार कर सकते हैं सो देखिये कि रामचन्द्रजी हमारे बडे भ्राता हैं वही राजा होंगे और हम वनमें जाकर चौदह वर्ष तक रहेंगे ॥ ८ ॥ इस समय चतुरंग बलवाली सैना तैयार करके ज्येष्ठ भ्राता श्री रामचन्द्रजीको हम वनसे लौटार लावेंगे ॥ ९ ॥ यह सब अभिषेककी सामग्री हम रामचन्द्रजीके अभिषेकके लिये साथ ले जाकर वनको चलेंगे ॥ १० ॥ और वहां उन पुरुष सिंह रामचन्द्रजीका अभिषेक करके इस प्रकार हम उनको यहां ले आवेंगे कि जिस प्रकार यज्ञशालामें अग्निको लाते हैं ॥ ११ ॥ हम इस माताका नाम धारण करने वाली अपनी माता कैकेयी का अभिलाष कभी सफल नहीं करेंगे, यह चाहती है कि हम राजा बनें पर इसके विपरीत हम दुर्गमवनमें वास करेंगे; और रामचन्द्रजी राजा होंगे ॥ १२ ॥ अब प्रथम मार्ग सुधारने वाले बेलदार खुदैये आदिक जांय और वह बनाकर सब ऊंचे नीचे स्थानोंको बराबर करदें वह बहुत चतुर लोग मार्गकी रक्षा के लिये भी जांय, जिस्से कहीं किसीको किसीसे किसी प्रकारका भय न हो ॥ १३ ॥ नृपनंदन भरतजी ने जब रामचन्द्रजीके निमित्त इस प्रकार कहा तब सब लोग यह मनोहर अति उत्तम वचन बोले ॥१४॥ आपने राज्य पुत्र ज्येष्ठ श्री रामचन्द्रजीको पृथ्वी देने का जो अभिलाष करके हम सबसे यह अभिप्राय कहा। इस कारण पद्मासना लक्ष्मी देवी आपको आश्रय करें ॥ १५ ॥ राजकुमार भरतजी के कहे हुए वह अति उत्तम वचन श्रवणगोचर करके सब किसीके नेत्रोंसे आंसू गिरने लगे ॥ १६ ॥

ऊचुस्तेवचनमिदंनिशम्यहृष्टाःसामात्याःसपरिषदोवियातशोकाः ॥ पंथानंनरवरभक्तिमा

ञ्जनश्चव्यादिष्टस्तववचनाच्चशिल्पिवर्गः ॥ १७ ॥

अनन्तर उन सब लोगोंने यह वार्त्ता श्रवण कर मंत्री गण व नौकर चाकरोंके सहित प्रफुल्लित हो और एक वारही शोक रहित होकर कहा— हे नर वर ! आपके वचनानुसार आपके सामने मार्ग रखाने वाले खनैये व बेलदार आदिकों को मार्ग बनानेके लिये विशेष प्रकारसे प्रथमही आज्ञादी जा चुकी है ॥ १७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० अ० एकोनाशीतितमः सर्गः ॥ ७९ ॥

अशीतितमः सर्गः ॥

अथभूमिप्रदेशज्ञाःसूत्रकर्मविशारदाः ॥
स्वकर्माभिरताःशूराःखनकायंत्रकास्तथा ॥ १ ॥

अनन्तर भरतजीकी आज्ञा व सुमंत्रजीके कहनेसे आगे २ सुन्दर मार्ग वताने व निवास स्थानोंमें मन्दिरादि बना देने के लिये पृथ्वीके तत्त्वोंको जानने वाले भूमि प्रदेशज्ञ (इनूजीनियर) लोग चले जोकि पृथ्वीको देखतेही जानलेते कि यह जगह जल सहितहै व निर्जल। व सूत कर्मको जाननेमें चतुर लोगभी चले जो मन्दिरादि वनानेमें सूधकीसी घटीक लगातेथे । सबही अपने २ कामोंमें दक्षथे जहां जिसका कार्य पड़े वडी वहादुरीके साथ उसके करनेको तैयार होजाते। खनैये भी चले जो कुआं, बावली, नहर आदि खोदनेमें चतुरथे व ऐसे कारीगर लोगभी चले जो कि खोल, नदी आदि पार उतरनेके लिये नाव या घन्नई तुरंत बना सकतेथे ॥ १ ॥ बहुतसे मजदूर लोग चले जो रोज मजदूरीही पाकर सब काम कर सकैं वह स्थपति (मिस्तरी) लोग चले जो थवई कर्मके करनेमें प्रधान होतेहैं, यंत्र निर्माण दक्ष लोग चले जो कि नावादिक वस्तुओंके बनानेमें होशियारथे। बढ़ई लोगोंके झुंडके झुंड चले। मार्गीलोग चले जो वनके मार्गको अच्छी तरह रखा सकेथे, तथा वृक्ष छेदक लोग चले जो कि मार्गमें फैले हुए वृक्षोंके काटनेमें चतुरथे ॥ २ ॥ रसोइयें चले जो कि जरा देरमें बहुत मनुष्योंके लिये भोजन बना सकतेथे, सुधाकार लोग जो धवरहरादिकोंकी भीतोंमें मिट्टी व पत्थरादि लगानेमें निपुण थे व वंश चर्म, कूंत

जो लोग बांसका बक्कल काटने छीलनेमें तैयारथे व जो लोग उस मार्गमें कभी न कभी गयेथे और विदेशकी सब बातोंको जानतेथे वह सब लोग आगे २ चले ॥ ३ ॥ वह विपुल झुंडके झुंड हर्ष सहित उन रामचन्द्रजीके लिये शीघ्रतासे चले तब इस प्रकारकी शोभा हुई कि जिस भांति पूर्णमासीके दिन समुद्रका जल उछलताहै ॥ ४ ॥ वह मार्गके बनानेमें चतुर लोग अपने दलमें मिलकर फावडे, कुलाहडी इत्यादि बहुतसी उपयोगिनी सामग्री संगले आगे २ चले ॥ ५ ॥ वहां जाकर उन्होंने बहुत सारे वृक्ष-लता, बल्ली, झाली, ठूंठ, पत्थर, व टीले आदिकथे उन सबको काट, कूट, पीट, पाट, खोद खादकर बराबर करदिया ॥ ६ ॥ जहां कहीं वृक्ष नहीं लगेथे वहां पर वृक्ष लगादिये और जहां कहीं घने वृक्षोंकी बहुत सारी डालियां बढ आईथीं उनको कुहाड़ी, फरसे, दरांत आदिसे छांट छूंट समान किया ॥ ७ ॥ कुछेक बलवान् लोगोंने अतिशय पुष्ट ठूंठोंको जो बाहुके वेग और मनुष्यादिकोंके हिलानें व उखाडनेमें नहीं हिलते व उखडतेथे उखाड २ फेंक दिया व जितने दुर्गम स्थान थे सबको खोद पीटकर बराबर कर दिया ॥८॥ व और जो लोगथे वह मार्गके निकट और बीच वाले कुओंकी फावडेसे मिट्टी, धूल, कूडा, करकटसे पाट देते, और जहां कहीं गढे आदिकथे उनकोभी बराबर करदेतेथे ॥९॥ जहां कहीं छोटी २ नदियां व नाले मिलते मिलाते उनमें पुल बांधदेते जहां कहीं कंकर गोखरू खपटें आदिक पडेथे उनको बटोरकर फेंक देते जहां कहीं जलके आनेमें कोई रुकावटथी उस बंधनको भंग कर देतेथे ॥ १० ॥ थोडेही कालमेंही जितनी नदियोंकी बहुत धारेंथीं और अनेक प्रकारकी उन सब धाराओंको एक बडी धारा करके उसपर पुल बांध दिया और अधिक जलसे पूर्णकर उनको समुद्रहीके आकारसा बनादिया ॥११॥ और जहां कि जल नहींथा वहांपर बहुतसी बावलियें तलैये आदि खुदवाकर बहुतसे सुन्दर २ पक्के घाट आदि बनादिये ॥ १२ ॥ इस भांति सेनाके जानेके मार्गमें कहीं विश्राम लेनेके लिये बराबर भूमि संवारकर बनाई गई कहीं फूले फले वृक्ष लगाये गये कहीं २ पशु, पक्षी गण मतवाले होकर कल २ करने लगे कहीं ध्वजा पताका लगाई गई ॥ १३ ॥ सब स्थानोंपर अयोध्यासे प्रयाग पर्यन्त सब सडकोंपर चन्दनादि मिश्रित

सुगन्धित वस्तुओंके जलसे छिडकाव कराया गया, व सबही स्थान फूलोंसे सजाये गये उस मार्गने इन्द्रपुरीके मार्गकी तुल्य शोभा पाई ॥१४॥ उन लोगोंको जो जो भरतजीने आज्ञा दीथी वैसेही उन सब लोगोंने सुन्दर रमणीय प्रदेशोंमें अनेक प्रकारके स्वादु युक्त जल वाले जलाशय व मीठे फल वाले वृक्ष लगा दिये ॥ १५ ॥ सैनाके रहने व उतरने आदिका जैसा कुछ स्थान भरतजी चाहतेथे वैसाही उन अधिकारियोंने अनेक प्रकारके भूषणोंसे सजा दिया ॥ १६ ॥ जो कि नक्षत्र और सब मुहूर्त्तोंका शुभाशुभ फल जानतेथे उन ज्योतिषी लोगोंने शुभ मुहूर्त्त और शुभ नक्षत्रमें सैनाके निवासकी सामग्री स्थापितकी जिसमें महात्मा भरतजीका मंगलहो ॥ १७ ॥ सैनानिवासके स्थानके निकट बडी भारी परीखा खोदी गई और वहां बडे २ तेजस्वीरक्षक लोगभी रक्खे गयेथे । इन्द्रनीलमणि निर्मित प्रतिमायें वहां विराजमान कीगई और जगह २ उनसे उतरने चढनेकी सीढियां लगादी गई ॥ १८ ॥ जगह २ बडे २ धुस बनादिये गये जिनपर अनेक भांतिके धवरहरे बनाये जो बहुत सुन्दर बने हुएथे और जिनपर बहुतसी झंडियां लगाई गईथीं, बडी २ सडकें सबके किनारोंपर बनाईगई ॥१९॥ और उनके बडे ऊंचे सतखनें घरोंके अनुभागमें कपोत पालिका विराजमान हो रहीथीं यह सब मंदिर बडे ऊंचे बनेथे, देखनेसे ऐसा बोध होताथा कि मानों आकाशमें विमान व मंच अनेक प्रकारके आसन शोभित हो रहेहैं यह सब निवेश स्थान इन्द्रपुरीकी समान शोभा धारण करते हुये ॥ २० ॥ इस प्रकार बृहत्२ मछलियों करके युक्त व निर्मल सलिल शालिनि सुशील गंगाजी तक विविध वृक्ष व कानन सहित ॥ २१ ॥

चसंद्रतारागणमंडितंयथानभःक्षपायाममलं
विराजते ॥ नरेंद्रमार्गःसतदाऽयराजतक्रमेणर
म्यःशुभशिल्पिनिर्मितः ॥ २२ ॥

मार्ग शिल्पियोंको करके क्रमसे बना हुआ वह रमणीय राज मार्ग रात्रि कालमें चन्द्रमा और नक्षत्र मंडल मंडित निर्मल आकाशकी समान विराजमान होने लगा॥२२॥इ०श्रीम०वा०आ०अ०अशीतितमः सर्गः॥८०॥

एकाशीतितमः सर्गः ॥

ततोनांदीमुखींरात्रिंभरतंसूतमागधाः ॥
तुष्टुवुःसविशेषज्ञाःस्तवैर्मंगलसंस्तवैः ॥ १ ॥

अधिकारी लोगतो उधर मार्ग इत्यादिक वनानेको भेजेगये इधर वह आनंदमयी रात्रि वीती तव प्रातःकालमें विशेष करके सूत और मागधलोग अनेक प्रकारसे मंगल स्तोत्रोंसे भरतजीकी स्तुति करने लगे ॥ १ ॥ पहरभर रात्रि रहे जागनेके लिये जो नगाडे वजाये जातेथे वह सव सुवर्णके डंडोंसे वजाये जाने लगे उससमय उन सवमें भैरव राग निकलताथा इनके अतिरिक्त शत २ शंख ऊंचे २ स्वरोंसे वजायेगये और भी अनेक २ भेरी आदिक वाजे वजतेथे ॥ २ ॥ उन महान् वाजोंके शब्दने आकाश मंडल तक फैलकर शोकसे संतापित भरतजीको शोकसे व्याकुल करदिया ॥३॥ तव भरतजी उस शब्दको सुनकर जागे, और यह कहकर जागे कि अरे! हम राजा नहींहैं क्यों हमारी स्तुति करतेहो वह वाजा वंद करादिया फिर शत्रुघ्नजीसे वोले हे शत्रुघ्न ! कैकेयीके करनेसे सव लोकका कितना वडा अपकार हुआहै हमारे ऊपर यह सव दुःख छोड़कर राजा दशरथजी तो स्वर्गको चले गये ४॥५॥ उन महात्मा धर्मराजकी यह धर्म मूलक राज श्री इस समय मांझी हीन नौकाकी समान समुद्रमें इधर उधर घूमतीहै ॥ ६ ॥ पिताकी यह दशा हुई, तिसपर जो कि हमारे वडे भारी रक्षकथे; उन श्री रामचन्द्रजी को हमारी मातानें धर्म त्याग कर वनमें भिजवा दिया ॥ ७ ॥ तव भरतजी चेतना रहितहो इस प्रकार विलाप करतेथे तव यह देखकर सव स्त्रियां करुणा स्वरसे रोदन करने लगीं ॥८॥ इस प्रकारसे विलाप हो रहाथा कि इतनेमें राज धर्मके जानने वाले महायशवान वशिष्ठजी इक्ष्वाकु नाथकी सभामें आये ॥ ९ ॥ यह सव सभा सुवर्ण मय रमणीयथी जिधर देखो उधर मणि व सोनाही देख पडताथा। जैसे सुधर्मा सभामें इन्द्रजी अपने गणोंके साथ आतेहैं वैसेही अपनेही समाजके साथ वशिष्ठजीने इस सभामें प्रवेश किया ॥ १० ॥ वहां सुवर्णका एक गोल स्थान बनाया उस

पर बैठ गये व सर्व वेदज्ञ मुनिराज दूतोंको आज्ञा देने लगे ॥ ११ ॥ कि तुम लोग बहुत शीघ्र,ब्राह्मण,क्षत्रिय,मंत्री,सैना, और सैनापतियोंको यहां बुला लाओ क्योंकि एक कार्य ऐसा आपडाहै कि उसको शीघ्र करना पडैगा ॥१२॥ तुम सब यशस्वी भरत शत्रुघ्न व और दूसरे राज कुमारोंको और सुमंत्र युधाजितसे आदि लेकर और भी सब जितने हितकारी जनहैं उन सबकोही यहां बुला लाओ ॥ १३ ॥ वशिष्ठजी तौ इतना कहही रहेथे इतनेमें रथ घोडे और हाथीपर चढे हुए पुरुषोंके आनेसे तुमुल कुलाहल उठा वरन सब लोग आपसे आप आगये ॥ १४ ॥ अनन्तर देवता जिस प्रकार इन्द्रको देख आनंदित होतेहैं वैसेही मंत्री आदि लोग भरतको देख इस प्रकार आनन्दित हुए कि पहले राजा दशरथजीको देख आनन्दित होतेथे ॥ १५ ॥

ह्रदइवतिमिनागसंवृतःस्तिमितजलोमणिशं
खशर्करः ॥ दशरथसुतशोभितासभासदश
रथेवबभूवसापुरा ॥ १६ ॥

तब उस समय भरतजीसे शोभित वह सभा बडे २ मच्छ व नाकों करकै युक्त, मणि, शंख, सिकता समन्वित, स्थिर समुद्रकी समान राजा दशरथजीके समयमें जिस प्रकार शोभित होतीथी इस समय भी वैसेही जान पडने लगी ॥ १६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे एकाशीतितमः सर्गः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमः सर्गः ॥

तामार्यगणसंपूर्णांभरतःप्रग्रहांसभाम् ॥
ददर्शबुद्धिसंपन्नःपूर्णचंद्रांनिशामिव ॥ १ ॥

बुद्धि संपन्न भरतजीने देखा कि पूज्य जनों करकै सम्पूर्ण होने और वशिष्ठादि महात्मा ओंके शोभित होनेसे सभा पूर्ण चंद्रमा शोभिता पूर्णमासी की रात्रिकी समान शोभा पा रहीहै ॥१॥ सभामें आये हुए श्रेष्ठ जन जब अपने २ आसन पर यथा रीति बैठगये. तब उनके अंगराज और वस्त्रों की शोभासे शोभित होकर वह श्रेष्ठ सभा प्रभा विस्तार करने ल-

गी ॥२॥ शरदऋतुमें पूर्ण चंद्र समन्विता रात्रि जिस भांति शोभा पातीहै वैसेही विद्वान जनोंके समागमसे वह सभा परम रमणीय हो रहीथी ॥ ३ ॥ अनन्तर धर्मके जानने वाले पुरोहित वशिष्ठजी राजाके सब मंत्रिक आदि बान्धवोंको देख भरतजीसे मधुर वचन बोले ॥ ४ ॥ हे भरत! राजा दशरथ सदा धर्म मार्गमें टिके धन धान्य वतो विपुल वृद्ध सिद्ध युक्त यह पृथ्वी तुमको देकर स्वर्गको चले गयेहैं ॥ ५ ॥ सत्य व्रत धारण करने वाले रामचंद्रजीने भी साधुओंके आचरण किये हुए धर्मको स्मरण कर पिताकी आज्ञाको नहीं त्यागा, जिसप्रकार चंद्रमा चांदनीको नहीं छोड़ सकता ॥ ६ ॥ इस समय तुम इन मंत्रि आदिकोंका आनंद वर्द्धन करके पिता और भ्राताका दिया हुआ यह अकंटक राज्य भोगो और शीघ्र अपना अभिषेककरालो ॥ ७ ॥ उत्तर, दक्षिण, पश्चिम और पश्चिमान्तके प्रदेश वासी व द्वीपके रहने वाले जितने राजाहैं समुद्रके तटके और सिंहासन शून्य राजा लोग तुम्हें कोटि २ रत्न उपहार देंगे ॥ ८ ॥ धर्मके जानने वाले भरतजीने यह गुरुजीका वचन श्रवण कर शोकमें डूब धर्मकी इच्छासे मनही मनमें रामचंद्रजीको याद किया ॥ ९ ॥ कलहंस स्वर वाले वह युवा भरतजी सभाके बीच गद्गद कंठहो विलाप करने लगे और कुछेक निन्दा सी करते हुये गुरु वशिष्ठजीसे बोले ॥ १० ॥ कि ब्रह्मचर्य धारण किये धर्ममें निष्ठा लगाये सब विद्या ओंमें कुशल उन बुद्धिमान रामचंद्रजीका राज्य मेरी समान कौन जन हरण कर सकता है ॥ ११ ॥ महाराज दशरथजीसे जन्म ग्रहण करके हम किस प्रकारसे राज्यके हरने वाले होजावें? राज्यभी रामचंद्रजीका और हमभी रामचंद्रजीके। हे महर्षे! आपको ऐसे स्थलमें धर्मानुसार वार्त्ता कहनी उचितहै ॥ १२ ॥ साक्षात् दिलीप और नहुषकी समान धर्मात्मा ज्येष्ठ और श्रेष्ठ रामचंद्रही दशरथजीकी समान इस राजपरिवारके अधिकारीहैं ॥१३॥ असाधुसेवित स्वर्ग विरोधी यह महापाप यदि मुझ करके अनुष्ठित किया जावे तब सब लोक हमें इक्ष्वाकु कुलका नाश करने वाला कहेंगे ॥१४॥ हमारी माताने जो महापाप किया अर्थात् श्री रामचंद्रजीको वनमें भिजवाया सो हमें किसी प्रकार नहीं रुचता अतएव इस समय हम यहींसे हाथ जोड कर कठिन वनमें टिके हुए भ्राता रामचंद्रजीको नमस्कार

करतेहैं ॥ १५ ॥ हम रामचंद्रजी हीके पीछे चलेंगे वही पुरुषोत्तम इस राज्यमें राजा होनेके योग्यहैं वही त्रिभुवनके राजा होने योग्यहैं ॥ १६ ॥ सबही सभासद् लोग भरतजी का यह धर्म युक्त वचन श्रवण करके राम- में अपना चित्त लगा आनंदके आंसू नेत्रोंसे गिराने लगे ॥ १७ ॥ फिर भरतजीने कहा कि हम यदि उन आर्य रामचंद्रजीको वनसे न लौटासकें तब लक्ष्मणजीकी भांति हमभी वन वासही करेंगे ॥ १८ ॥ हम अच्छे गुण वाले साधु स्वभाव श्रेष्ठ आर्य पुरुषोंके सामने रामचंद्रजीको वनसे लौटा लानेके लिये जितने कुछ उपायहैं सबही अवलंबन करेंगे कोई कसर रक्खेंगे नहीं॥१९॥हमने प्रथमही क्या तनूख्वाह वाले क्या वेतन्ख्वा- हवाले(जो मजदूरी रोज लेतेहैं)मार्ग बनानेमें चतुर कारीगरोंको पंथ तै- यार करनेके लिये भेज दियाहै सो उन्होंने रस्ता सुधार रक्खाहोगा अब हमभी वहीं जानेकी इच्छा करतेहैं ॥ २० ॥ भ्रातृ वत्सल धर्मात्मा भरतजी इसभांति कह कर समीप बैठे हुए सलाह देनेमें चतुर सुमंत्रजी से बोले ॥ २१ ॥ सुमंत्र! हमारी आज्ञासे तुम यहांसे उठकर शीघ्र गमनकरो हमारे गमनकी वार्त्ता जनाकर सब सैना को जल्दी तैयार करो कहो कि रामचंद्रजीके पास शीघ्र जानाहै॥ २२ ॥ जब महात्मा भरतजीने सुमंत्र जीसे इस प्रकार कहा तब आनंदित हो सुमंत्रजीने सब सैनाको यह आ- ज्ञादी ॥ २३ ॥ रामचंद्रजीको वनसे लौटा लानेके लिये सब सैना को- भी तैयार होने की आज्ञा देदी गईहै यह सुनकर सब नौकर चाकर आदिक और सैनादक्ष लोग परम आनंदित हुए ॥ २४ ॥ अनन्तर घर २ में वीर नारियें हर्षित होकर अपने २ वीर पति योंको रामचंद्र- जीको लौटार लानेके लिये वनके जानेको शीघ्रता करानें लगीं ॥ २५ ॥ अब सब सेनाध्यक्ष घोडों पर सवार होहो कर बैलों और घोडों को रथ- से जोड कर सब सैना को जानेकी आज्ञा देने लगे ॥ २६ ॥ अनन्तर सब सैंना चलनेके लिये तैयार होगईहै यह देख कर भरतजी कुल गुरु वशिष्ठजी के निकट बैठे धोरेही बैठे हुए सुमंत्रजीको आज्ञादी कि हमा- रा रथ भी शीघ्र तैयार कर लाओ ॥ २७ ॥ सुमंत्रजीने जो आज्ञा क- ह और उनके आदेशको स्वीकार कर श्रेष्ठ घोडोंसे जुता हुआ रथ लेकर उनके समीप आये ॥ २८ ॥ वह दृढ, सत्य विक्रम, सत्य वृति

प्रताप शाली भरतजी महावनमें गये हुए यशस्वी गुरु रामचंद्रजीको वनसे लौटा लानेका मन किये हुये युक्ति पूर्वक वचन सुमंत्रजीसे बोले ॥ २९ ॥ हे सुमंत्रजी ! तुम शीघ्र उठकर सैनाको तैयार रहनेके लिये सैनाध्यक्षोंको सुहृदोंको व औरभी मुखिया २ लोगोंको आज्ञा दो ॥ ३० ॥ भरतजीके वचन सुन परिपूर्ण काम सूत सुमंत्रजीने मुखिया २ लोग सैनाध्यक्ष व सुहृद लोगोंको यह सब वार्त्ता समझाकर कहदी ॥ ३१ ॥

ततःसमुत्थायकुलेकुलेतेराजन्यवैश्यावृषला श्चविप्राः ॥ अयूयुजन्नुष्ट्ररथान्खरांश्चनागा न्हयांश्चैवकुलप्रसूतान् ॥ ३२ ॥

अनन्तर घर २ में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र लोग उद्योगी होकर ऊंट, रथ, हाथी, खिचड और अच्छी नसलसे पैदा हुये सब घोडोंको सजाते हुये ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० अ० द्व्यशीतितमः सर्गः ॥ ८२ ॥

त्र्यशीतितमः सर्गः ॥

ततःसमुत्थितःकल्यमास्थायस्यंदनोत्तमम् ॥ प्रययौभरतःशीघ्रंरामदर्शनकाम्यया ॥ १ ॥

तिसके पीछे भोर होतेही उठकर भरतजी सुन्दर रथ पर सवार होकर रामचंद्रजीकी दर्शन की कामना किये शीघ्रही चले ॥ १ ॥ सब मंत्री और पुरोहित लोग घोडे जुते हुए सूर्य नारायणके रथकी समान प्रभा युक्त रथमें सवार होकर आगे २ जाने लगे ॥ २ ॥ सब प्रकार यथा विधिसे सजे सजाये नौ हजार [९०००] हाथी उन गमन करने वाले इक्ष्वाकु कुल नंदन भरतजीके आगे २ चले ॥ ३ ॥ इनके सिवाय साठ हजार [६००००] रथ विविध अस्त्र धारण करनें वाले धनुष धारी लोग यशस्वी राज पुत्र भरतजीके आगे चले ॥४॥ और घोडोंपर चढे हुए एक लाख[१०००००] सवार उन रामचंद्रजीके पास जाने वाले यशस्वी जितेन्द्रिय सत्य प्रतिज्ञ राज कुमार रघुनंदन भरतजीके साथ २ चले ॥५॥

कैकेयी, सुमित्रा, और, यशवान देवी कौशल्याजी रामचन्द्रजीको लौटा लानेके लिये सन्तुष्ट हो परम दीप्तिवान् रथों पर चढकर चलीं ॥ ६ ॥ श्री रामचन्द्र जीके देखनेंको जब यह सुजन समाज चली तब प्रसन्न मन हो उनही महात्मा रामचन्द्र जीकी चित्र विचित्र कथा कहते व चर्चा करते सुनते सुनाते चले जातेथे दूसरी किसी प्रकार की वार्त्तासे उनको काम नहीं था ॥ ७ ॥ वह लोग यही कहतेथे कि कितने दिनोंमें हम जगत्के शोक निवारक चित्तको अपने वशमें किये हुए जलधरकी समान श्यामवर्ण वाले महाबाहु, दृढ ब्रत रामचन्द्र जीको देखेंगे ॥ ८ ॥ जैसे सूर्य भगवान उदय होतेही त्रिभुवनके अंधकारको नाश कर देते हैं वैसेही रामचन्द्रजी महाराज दर्शन देतेही हमारे सब शोकको हर लेंगे ॥ ९ ॥ उसकाल नगरके रहने वाले सब मनुष्य आनंद सहित यह शुभ कथा कहते परस्पर मिलते भेंटते चलने लगे ॥ १० ॥ अयोध्या नगरीमें जिन प्रसिद्ध वनियों को भरतजीने आज्ञा दी व जिनको आज्ञा नहीं दी वह वनिये और सब ही प्रजागण जो कि राज्यमें रहतेथे सब प्रफुल्ल चित्तसे रामचन्द्र जीके दर्शनार्थ चले ॥ ११ ॥ और भी मणियोंमें छेद करने वाले और उनको खैरात पर उतारने वाले लोग कुम्हार लोग जो सूधासूध लगाना जानते तथा सब शस्त्र बनाने वाले लोग चले ॥ १२ ॥ मयूरके वेधक मोरकी पूंछका छत्र बनाने वाले व लीलासे मोरको पकडने वाले क्रकच करपत्रकी आजीवकासे जीने वाले वेधक मोती मणिमें सूराख करनें वाले रोचक कांचकी सीसी बनानें वाले दन्तकारहाथीदांत का काम करने वाले सुधाकार सुधालेप करनें वाले गंधाजीवी इत्तर फुलेल वेचने वाले यह सब चतुर चले ॥ १३ ॥ सुनार, और कम्बल, बनाने वाले यह सब और अधिकारी लोग भी मुदित मनसे चले स्नापक जो लोग स्नान कराते हैं गर्म जलसे न्हवाने वाले, अंग मलने वाले वैद्य धूपजीवी, मद्यकार ॥ १४ ॥ धोबी, तुन्नवायक—दरजी, ग्राम और मिलक के रहने वाले मुखिया २ लोग नट व कैवर्त्तक सब अपनी २ स्त्रियोंके सहित चले ॥ १५ ॥ सहस्र २ सदाचार परायण वेदवादी ब्राह्मण गण बैल जुते हुए रथों पर बैठकर भरतजीके साथ २ चले ॥ १६ ॥ सबही सुन्दर वेश, सुन्दर वस्त्र, अरुण रंगके शुद्ध चंदनादि अनुलेपन ल-

गाये, सुन्दर २ सवारियों पर सवार हुए धीरे २ भरत जीके साथ २ चले ॥ १७ ॥ इसप्रकार से जब कैकेयीनन्दन भ्रातृवत्सल भरतजी जब रामचन्द्रजीको लौटाने चले तो अति प्रहृष्ट चतुरंगिणी सेना परम हर्षित और आनंद में भरकर उनके पीछे २ चली ॥ १८ ॥ और जाते२ सब रथ, यान, हाथी, घोडों पर चढ बहुत बहुत दूर चले कि शृंगवेर नगर में गंगा जीके किनारे पहुंचे ॥ १९ ॥ जहां रामचन्द्र जी का सखा शृंगवेर पति वीर गुह अपनी बिरादरीके साथ बसता हुआ सदा अति सावधानीसे उस देशकी रक्षा किया करताथा ॥ २० ॥ भरत जीके संग चलने वाली चतुरंग सैना चक्रवाक भूषित भागीरथी गंगा जीके किनारे पहुँच कर वहीं टिकरही ॥ २१ ॥ वचन बोलने में चतुर भरतजी अपनी सैना को टिकी देख व सुखद गंगा जीका जल निहार सब मंत्रियों से बोले ॥ २२ ॥ कि मेरी इच्छा में यह आता है कि आज विश्राम करके कल समुद्र में जाने वाली गंगाजीके पार होना चाहिये; अतएव सब सैनाको इच्छानुसार सब जगह टिकादो ॥ २३ ॥ क्योंकि स्वर्गवासी महाराज दशरथ जीको परलोकके लिये हम जलदान गंगाजी में कल पार होने के समय करेंगे ॥ २४ ॥ जब भरत जीने इस प्रकार कहा तब मंत्री लोगों ने जो आज्ञा कह कर एकान्त चित्तसे अलग २ सब समाजके लोगोंको उनकी इच्छानुसार जहां तहां टिकादिया ॥ २५ ॥

निवेश्यगंगामनुतांमहानदींचमूंविधानैःपरि
बर्हशोभिनीम् ॥ उवासरामस्यतदामहात्म
नोविचिंतमानोभरतोनिवर्तनम् ॥ २६ ॥

महा भाग भरतजी महानदी गंगाजीके किनारे यथा विधानसे अनेक परिच्छेदसे शोभित अपनी सेना को टिकाकर यह चिन्ता करनें लगे कि–किस भांति से रामचन्द्र जीको लौटाकर लावैं केवल इसी विषय को सोचते हुए वहां वास करते हुए ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे त्र्यशीतितमः सर्गः ॥ ८३ ॥

चतुरशीतितमः सर्गः ॥

ततोनिविष्टांध्वजिनींगंगामन्वाश्रितांनदीम् ॥

निषादराजोदृष्ट्वैवज्ञातीन्सपरितोब्रवीत् ॥ १ ॥

इधर भरतजीकी चतुरंगिनी सेना गंगाजीके किनारे चारों ओर पडी हुई देखकर गुह अपनी विरादरी वाले लोगोंसे बोला ॥ १ ॥ गंगा जी के किनारे जो यह समुद्रकी समान पडी हुई सैना दीखती है सो हम इसके अंतको मनसे भी शोचते हैं परन्तु नहीं पाते ॥ २ ॥ जो यह महाकाय भरत जी खोटी बुद्धि धारण कर रथ पर चढ यहां आये तो निश्चयही रामचन्द्र जीसे वैर भाव रखते होंगे जब कि रथ पर बडी ऊंची कोविदारकी ध्वजा सोहती है ॥ ३ ॥ तब ऐसा समझ पडता है कि या तो भरतजी हमें वरुणकी फांसी से बांधही लेंगे। या एक वारही मारही डालेंगे और हम सबको इस प्रकार कर करा कर पिताके राज्यसे निकले हुए रामचन्द्रजीका वध करेंगे ॥ ४ ॥ फलतः कैकेयी के पुत्र भरत यह परम दुर्लभ राजश्री भलीभांति अपने अधिकारमें रहने ही के मानससे रामचन्द्रजी को मार डालनेकी इच्छा किये जाते हैं ॥ ५ ॥ परन्तु वह दशरथ कुमार रामचन्द्र जी हमारे स्वामी सखा सब कुछ हैं अतएव तुम सब लोग उनके प्रयोजनके लिये कवच व हथियार बांधकर गंगाकी कछाड में तैयार रहो ॥ ६ ॥ हमारे आधीनके दास लोग सवही गंगा जीके घाटोंको रखाते रहो और फल मूल मांस भक्षण करते रहकर बलवान हो क्षण मात्रकोभी कोई यहांसे न हटै ॥ ७ ॥ पांचसौ वहने योग्य नावें यहां लगाई जांय और उन एक २ नाव पर सौ सौ कैवर्त्त और सौ सौ लडाके वख्तरादि पहन् पान कर तैयार इस जगह पर बैठे रहें ॥ ८ ॥ भरतजी यदि रामचन्द्र जीसे वैर न रख कर उनसे प्रसन्न होंगे तबही उनकी यह सैना आज कुशल पूर्वक गंगा पार जायगी नहीं तो नहीं ॥ ९ ॥ अपने नौकर चाकरोंको यह आज्ञा दे निषाद पति गुह मछलियां, मांस, और शहद यह भेंट लेकर भरत जीके पास को चला ॥ १० ॥ प्रतापशाली समयके जानने वाले सुमंत्र जी निषादको आता हुआ देख कर बहुतही विनीतभावसे भरतजीसे बोले ॥ ११ ॥ अपनी विरादरी वाले सहस्रों मनुष्योंके संग साधूत्तम यह वृद्ध गुह आपके भ्राता रामचन्द्र जीका सखाहै और विशेषतः यह वनका सबही वृत्तान्त जानता है ॥ १२ ॥ तिसीसे हे काकुत्स्थ नंदन। यह

निषादाधिपति गुह आपको देखताही चला आता हैऔर यह भी जानता होगा कि रामचन्द्र व लक्ष्मण जी कहां हैं ॥ १३ ॥ सुमंत्रजीके यह शुभ वचन श्रवण करके भरतजीने कहाकि किसी प्रकार शीघ्रही निषादपति हमको देखे, उसको विना रोके टोके हमारे पास आने दो ॥ १४ ॥ तदनन्तर गुह भरतजीकी आज्ञा पाकर परम सन्तुष्ट और अपनी जाति बिरादरी वाले लोगोंके साथ भरतजीके समीप जाकर उनको शिर नवाय हाथ जोडकर बोला ॥ १५ ॥ आपने यहां आगमन करनेंके पहले अपनें दासोंको कोई आज्ञा नहीं पठाई इस्से हम लोगोंको अपने अनुग्रहसे आपने वंचित किया जो हो इस समय सब राज्य आपके निवेदनहै आप मुझे अपना दास समझ कर मेरे घर बस मुझे पवित्र कीजिये ॥१६॥इस समय निषाद गणोंने अपने हाथसे लाई यह कंद मूल फल सूखा गीला मांस इसके सिवाय वनकी नाना प्रकारकी छोटी बडी चीज वस्तुओंके ग्रहण करनेकी आज्ञा होजाय ॥ १७ ॥

आशंसेस्वाशितासेनावत्स्यत्येनांविभावरीम् ॥
अर्चितोविविधैःकामैःश्वःससैन्योगमिष्यसि ॥१८॥

मेरे मनमें एक यही बडी भारी अभिलाषहै, कि सब सैना मेरे घरमें आजरात भोजन करके टिके और आपभी आज मुझ करके भलीभांति विविध काम वस्तुओं द्वारा पूजे जाकर कल यात्रा कीजिये ॥ १८ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अ० चतुरशीतितमः सर्गः ॥ ८४ ॥

पंचाशीतितमः सर्गः ॥

एवमुक्तस्तुभरतोनिषादाधिपतिंगुहम् ॥
प्रत्युवाचमहाप्राज्ञोवाक्यंहेत्वर्थसंहितम् ॥ १ ॥

जब निषाद राजा गुहने इस प्रकार कहा तौ परम प्राज्ञ भरतजी हेतु युक्त और अर्थ संगत वचनोंसे उत्तर देतेहुये ॥ १ ॥ हे गुरु मित्र ! इस समय हमारी सेनाकी विशेष पहुनई करनेको जो तुमनें अभिलाष कीहै और हमारे गुरु रामचंद्रजीकी सेवाभी कर चुकेहो सो बस इन दोनों बातों सेही हमारा भलीभांति सत्कार होगया ॥ २ ॥ परम तेजस्वी श्री-

मान् भरतजी इस प्रकार श्रेष्ठ वचनोंके द्वारा गुहसे संभाषणकर फिर उससे बोले ॥ ३ ॥ गंगाजीके जलसे व्याप्त हुआ देश सहजसे प्रवेश करने वा उतरनेके योग्य नहीं है, अतएव किस रास्तेसे कितने दिनोंमें यहांसे भरद्वाजजीके आश्रममें हम पहुँचेंगे ॥ ४ ॥ धीमान् राजकुमार भरतजीके यह वचन सुनकर सब दुर्गम स्थानोंके कर्मका जानने वाला गुह हाथ जोडकर भरतजीसे बोला ॥ ५ ॥ हे महा बलवान् ! राजकुमार! देशमें वहां क्याहै इसके विषयमें भलीभांति जान रखनें वाले दास लोग भलीभांति विवाद रहित होकर साथ चलेंगे और मैंभी आपके संग चलूंगा ॥ ६ ॥ मैं इस समय यह जाना चाहताहूं कि आप पुण्य कर्म करनें वाले रामचंद्रजीके साथ कुछ खोटे अभिप्रायसे तो नहीं जाते ? आपकी यह वडी भारी सैना देखकर मेरे मनमें अत्यन्त शंका होतीहै ॥ ७ ॥ गुहके इस प्रकार कहने पर आकाशकी समान निर्मल स्वभाव भरतजी निषादसे मधुर वचन बोले ॥ ८ ॥ रामचंद्रजी हमारे वडे भाई और पिताकी समानहैं अतएव तुमको हमारे प्रति किसी प्रकारका सन्देह न करना चाहिये भगवान हमसे कभी रघुनंदन रामचंद्रजीका अनहित न करावे ॥ ९ ॥ हे गुह ! हम सत्य कहतेहैं कि हम वनवासी काकुत्स्थ नंदन रामचंद्रजीको वनसे लौटानेके लिये ही जातेहैं सो हमारे ऊपर और किसी भांतिकी शंका तुम मतकरो ॥ १०॥भरतजीसे यह वार्त्ता सुनकर गुहका वदन प्रफुल्ल होगया वह हर्षितहो फिर भरतजीसे बोला ॥ ११ ॥ कि हे महाराज ! आपही धन्यहैं मुझे पृथ्वीमें आपकी समान कोई दूसरा दृष्टि नहीं आता क्योंकि आप अयत्नसे प्राप्त हुये राज्यको त्याग करनेके लिये तैयार हुएहैं ॥ १२ ॥ और आपनें जो वनवासी रामचन्द्रजीको फिर लौटा लानेकी इच्छा कीहै उससे निश्चयही आपकी अकीर्त्ति क्षय होकर सब लोकोंमें यश फैल जायगा॥१३॥ गुह और भरतजोमें इस प्रकार की वार्त्ता होते २ सूर्यकी प्रभा नष्ट होगई और रात्रि हो आई॥ १४ ॥ तव सैनाको जिस २ वस्तुकी आवश्यकताथो सब गुहनें मंगादिया और सब सैना सन्तुष्ट हो ठौर २ पर सोई व भरतजीभी शत्रुघ्नजीके साथ एक आसन पर विराजे ॥ १५ ॥ उस समय दुःखके न सहने योग्य धर्म विरत महात्मा भरतजीको चिन्ता करते २ ऐसा शोक उत्पन्न हुआ कि वह व-

र्णन नहीं हो सकता ॥ १६ ॥ खोडल वाला अग्नि जिस प्रकार दावानल-से सताये हुये वृक्षको दग्ध करताहै वैसेही भरतजी उस शोकानलमें भी-तरेही भीतर जलने लगे ॥ १७ ॥ सूर्यकी किरणोंसे गर्म होने पर हि-मालयसे जिस प्रकार बरफ गल कर गिरताहै वैसेही भरतजीके सब अं-गोंसे उत्पन्न हुआ पसीना निकलने लगा ॥ १८ ॥ उस समय भरतजी बडे भारी दुःखके पर्वतसे दबसे गये जिस पर्वतमें रामचंद्रजीका उत्कंठा पूर्व-क ध्यान वही मानों छिद्र रहित शिलाहै, वारंवार लंबे २ श्वास लेना व-ही गेरू आदि धातुहैं, दीनताजोहै वही वृक्षोंके समूहहैं बडा भारी शोक-का फैलाव वही मानों कंगूराहै ॥ १९ ॥ भारी मोह वही अनन्त जीव शोकसे संताप वही औषधि और वासहै इस भांतिके शोक रूपी पहाड़ से भरतजी दब गये ॥२०॥ इस प्रकार बडी भारी आपदामें भरतजी फसे उनकी चेतना जाने लगी और मन अत्यन्त व्याकुल होगया दीर्घ श्वास लेने लगे, और भीतरे अंतरमें उनके दाह होने लगा, वह झुंडसे बिछुडे हुये बैलकी भांति किसी प्रकारसेभी शांति नहीं पासके ॥ २१ ॥

गुहेनसार्धंभरतःसमागतोमहानुभावःसजनः
समाहितः ॥ सुदुर्मनास्तंभरतंतदापुनःशनैः
समाश्वासयदग्रजंप्रति ॥ २२ ॥

इस समय गुहसे मिले महानुभाव भरतजी परिवार सहित एकाग्र चि-त्तसे बडे भाई रामचंद्रजीकी चिन्ता करते हुये बहुत दुःखित हुये तब निषादराज गुहने उनको बहुत समझाया बुझाया ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अ०पंचाशीतितमः सर्गः ॥ ८५ ॥

षडशीतितमःसर्गः ॥

आचचक्षेऽथसद्भावंलक्ष्मणस्यमहात्मनः ॥
भरतायाप्रमेयायगुहोगहनगोचरः ॥ १ ॥

अनन्तर गहन वनवासी गुह अमित गुणशाली भरतजीसे रामचंद्रजी-के प्रति महात्मा, लक्ष्मणजीका जो सद्भाव था वह कहने लगा ॥ १ ॥ कि रामचन्द्रजीने जब शयन किया तब गुणवान लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीकी

रक्षाके लिये धनुष पर रोदेको चढाय वीरासन मारकर बैठे तब मैंने उनसे कहा ॥ २ ॥ तात रघुनंदन ! आपके लिये यह सुखकी देने वाली सेज तैयार की गईहै आप सुख सहित इस पर सो जाइये, और रामचन्द्र-जीके लिये कुछ शंका न कीजिये, और, शोक व चिन्ता का त्याग कर दीजिये ॥ ३ ॥ साधारण मनुष्यही इस दुःखोंके भोगने योग्यहैं, परन्तु आप सब प्रकारसे सुख पानेके लायकहैं अतएव हे धर्मात्मन् ! आप सो-इये हमही लोग रामचन्द्रजीकी रक्षाके लिये जागते रहेंगे ॥ ४ ॥ अथवा आपके आगे मैं सत्यही सत्य कहताहूं कि रामचन्द्रजीसे अधिक प्रियतम हमारा पृथ्वीपर और कोई नहींहै इसमें कुछ शंका न कीजिये और बे खटके सो जाइये ॥ ५ ॥ रामचन्द्रजीके प्रसादसे मैं इस लोकमें विपुल यश व धर्म, अर्थ, और कामके प्राप्त होनेकी आशा करताहूं ॥ ६ ॥ अतएव मैं जब जाति बिरादरी वालोंके साथ धनुष बाण धारण करके सीताजीके सहित निद्रित प्रिय सखा रामचन्द्रजीकी रक्षा करूंगा ॥ ७ ॥ मैं सदा इस वनमें घूमा करताहूं, बस यहां कोई बात ऐसी नहींहै जो मुझको मालूम नहो; और इसके अतिरिक्त चतुरंगिनी सैनाका वेगभी हम सहन कर सकतेहैं ॥ ८ ॥ जब इस प्रकार से मैंने कहा तब धर्ममें निष्ठा किये हुये महात्मा लक्ष्मणजी हम सबको विनीत भावसे यह सिखाने लगे ॥ ९ ॥ दशरथ नंदन रामचन्द्रजी तो देवी सीताजीके सहित पृथ्वी पर सो रहेहैं तब भला फिर हम किस प्रकारसे इस सेज पर सोवें प्राणोंके सुख देने वाले सब सुखोंको कैसे भोग सकैं ॥ १० ॥ समस्त देव, दान-व युद्धमें जिनका पराक्रम नहीं सह सकते, हे गुह ! देखो वही रामचन्द्र-जी आज सीताजीके साथ तृणोंकी साथरि पर सोयेहैं ॥ ११ ॥ यह राम-चन्द्रजीही राजा दशरथजीके समान सब लक्षण युक्त एक मात्र पुत्रहैं जिनको कि महाराजने अनेक भांतिके परीश्रम और बडी तपस्या करके पायाहै अतएव इन रामचन्द्रजीके वनवासी होनेसे राजा दशरथ और अधिक दिन नहीं जियेंगे, पृथ्वी शीघ्रही विधवा होगी ॥ १२ ॥ १३ ॥ आज राजाकी स्त्रियें सारे दिन ऊंचे स्वरसे रोय २ अब थमकर चुप बैठी होंगी निश्चयही सब राजभवन आज एक बारही निशब्द होगा ॥ १४ ॥ फलतः कौशल्या, राजा व हमारी माता सुमित्रा इन तीनोंकी इस रा-

त्रिमें वच जानेकी किसी प्रकार आशा नहीं कीजाती यह अवश्यही मृतक होगये होंगे ॥ १५ ॥ अथवा यदि जीतेभी रहें तो केवल इसी रात्रि तक अधिक नहीं; वा हमारी माता देवी सुमित्रा शत्रुघ्नका मुख देखकर जीसकतीहैं, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि वीर जननी देवी कौशल्याजी इस प्रकार दुःखकी अवस्थामें प्राण त्याग कर देंगी ॥ १६ ॥ पिताजी रामचंद्रजीको राज्य देनेका मनोरथ करके फिर एक वारही उस मनोरथको पूरा नहीं करनें पाये अतएव श्रीरामचंद्रजीको राज्याभिषेक न दे सकनेंसे निश्चयही मर जांयगे ॥ १७ ॥ इस भांति समय उपस्थित होनेपर जब कि पिताजी परलोकमें गमन करेंगे उस समय जो उनके समस्त प्रेत कार्य करेंगे वही लोग भाग्यवान पुरुषहैं ॥ १८ ॥ अहो ! पिताजीकी राजधानीमें अयोध्या रमणीय चौराहों करकै युक्त, वडे २ मार्गोंमें विभक्त धवरहर व अटारियों और सब प्रकारके रत्नोंसे विभूषित ॥ १९ ॥ हाथी घोडे और, रथोंसे परिपूर्ण विविध भांतिके तुरंही भेरी इत्यादि बाजोंसे शब्दायमान, सब कल्याणोंसे परिपूर्ण सदाही हृष्ट पुष्ट जनोंसे व्याप्त ॥ २० ॥ और फूल वाटिका उपवन जहां विद्यमान, सभायें व उत्सवोंसे शोभित ऐसी पुरीमें जो लोग विचरण करेंगे वही धन्यहैं और यथार्थमें सुखीहैं ॥ २१॥ हे गुह! चौदह वर्षके अन्तमें इस व्रतको पालनकर क्या हमभी सत्य प्रतिज्ञ रामचंद्रजीके सहित कुशल पूर्वक अयोध्यापुरीमें सुखसे प्रवेश करेंगे॥२२॥ राजकुमार महात्मा लक्ष्मणजी धनुष बाण हाथमें लिये खडे रहे और इस प्रकारसे विलाप करते व खडेही खडे सबेरा होगया ॥ २३ ॥ प्रातःकाल निर्मल सूर्य नारायणका उदय हुआ इनही भागीरथोजीके किनारे दोनों भाइयोंने जटा बनाई फिर हमने नावपर चढाय सुख सहित उनको गंगाके पार उतार दिया ॥ २४ ॥

जटाधरौतौद्रुमचीरवाससौमहाबलौकुंजरयूथपोपमौ ॥ वरेषुधीचापधरौपरंतपौऽव्यपेक्षमाणौसहसीतयागतौ ॥ २५ ॥

उस समय हस्तियूथ सदृश महा बलवान् तेजस्वी शत्रुओंके दमन करने वाले राम लक्ष्मणजी कुछ देर दान करके जटा व चीर वल्कल धार श्रेष्ठ तरकस और धनुष ग्रहण करके सीताजीके सहित मेरी ओरको देखते हुऐ चलेगये ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे षडशीतितमः सर्गः ॥ ८६ ॥

सप्ताशीतितमःसर्गः॥

गुहस्यवचनंश्रुत्वाभरतोभृशमप्रियम् ॥
ध्यानंजगामतत्रैवयत्रतच्छ्रुतमाप्रियम् ॥ १ ॥

भरतजी गुहके यह महा अप्रिय वचन कि लक्ष्मणजीनें इस प्रकार विलाप कियाथा, सुनकर वहांपर रामचंद्र रघुनंदनजीका ध्यान करनें लगे ॥ १ ॥ जिन भरतजीके भुज युगल अति विशाल कंधे केहरीके समान ऊंचे दोनों नेत्र कमल दलकी समान बडे २ जो बहुतही धैर्यवान सुकुमार युवा अवस्थाको प्राप्त व अति प्रिय दर्शनथे ॥ २ ॥ यह वार्त्ता सुनतेही उनका मन बहुतही व्याकुल होगया, फिर एक मुहूर्तके पीछें वह कुछ धीरज धरते हुए, तदनन्तर फिर व्याकुल होकर मूर्च्छित होगये जिस प्रकार हाथीके हृदयमें अंकुश विंध जावे और वह व्याकुल होकर गिर पडताहै ॥ ३ ॥ भरतजीको मूर्च्छित देखकर निषाद राजका वदन मलीन होगया और वह इस प्रकारसे व्यथित हुए कि जैसे भूमिकंप होनेसे वृक्ष कांपताहै ॥ ४ ॥ निकटहो बैठे हुए शत्रुघ्नजीभी उस अवस्थाको प्राप्त हुए भरतजीसे मिलकर बडे २ जोरसे शोकाच्छन्न और चेतना रहित होकर रुदन करने लगे ॥ ५ ॥ यह देखकर भरतजीकी सब मातायें वहां चली आईं वह उपवाससे और पतिके वियोगसे बहुतही दुर्बल होरहीं और बहुतही दीनथीं ॥ ६ ॥ सब वहां आईं जहां भरतजी पृथ्वीपर पडेथे और उनको चारों ओरसे घेर रोने लगीं कौशल्याजीने बनाय निकट आकर अधिक व्याकुल चित्तहो भरतजीको उठाय हृदयसे लगा लिया ॥ ७ ॥ अनन्तर वह पुत्रवत्सला तपस्विनी कौशल्याजी अपनेही पुत्रकी समान भरतजीको हृदयसे लगाती हुई और शोक करती हुई रोय २ उनसे पूछनें लगीं ॥ ८ ॥ बेटा! कोई रोग तो तुम्हारे शरीरको

दुःख नहीं देता! हाय ! इस राज कुलका अब कोई नहीं रहा ! इस समय तुमही इसके एक जीवनमें सहारेहो ॥ ९ ॥ भैया रामचंद्र भ्राताके सहित इस समय वनको गयेहैं राजा स्वर्गको सिधारे अब हम केवल तुम्हाराही मुख देखकर जी रहीहैं सो तुम्हारे सिवाय कोई इस समय दूसरा ऐसा नहींहै जो हमारी सबकी रक्षा करै ॥ १० ॥ बेटा लक्ष्मणजीकी तो कोई अप्रिय वार्त्ता नहीं सुनी ! अथवा हमारे जो एक पुत्रके अतिरिक्त दूसरा नहींहै और वहभी स्त्री सहित वनको गये उनकी तो कोई अमंगल वार्त्ता नहीं सुनी ॥ ११ ॥ परम यशवान भरतजी एक मुहूर्त्तमें चेतना पाकर रोय २ कौशल्याजीको समझाने बुझाने लगे और निषादसे बोले ॥१२॥ हे गुह! हमारे भैया रामचंद्रजीने कहां रात्रि बिताईथी और क्या भोजन करके किस आसनपर सोयेथे ! सीता और लक्ष्मण कहांथे? यह सब हम-से कहो ॥ १३ ॥ निषादराज गुहनें रामचंद्रजी सरीखे प्रिय व उपकारी अतिथिके प्रति कैसा व्यवहार कियाथा उसको निषाद गुह हर्ष सहित वर्णन करने लगा और बोला॥१४॥कि रामचंद्रजीके भोजन करनेके लिये अनेक प्रकारके अन्न, खाने योग्य खट्टे, तीखे, मीठे सब प्रकारके फल मैं लायाथा ॥ १५ ॥ सत्य पराक्रम रामचंद्रजीने मुझपर अनुग्रह करनेके लिये सब चीज वचन मात्रसे ग्रहण करली पर इस धर्मके अनुसार कि क्षत्रिय किसी की दी हुई चीज नहीं लेते वह सब चीज वस्तु मुझकोही फे-रदी ॥ १६ ॥ और मुझसे यह कहा—सखे ! हम क्षत्रियहैं यह हमारा धर्महै कि सदा सबको सब कुछ देते रहें न कि लें। यह कहकर उन महात्मानें हम सबके ऊपर अनुग्रह किया ॥ १७ ॥ अनन्तर महात्मा लक्ष्मणजीने जल लादिया, सीताजीके सहित उसकोही पीकर श्रीरामचंद्रजी उपवास करके रहगये; उस दिन कुछ भोजन न किया ॥ १८ ॥ फिर उससे बचाकुचा जल लक्ष्मणजीने पीलिया और उसकोही पीकर फिर तीनों जनोंने चित्त स्थिर करके मौनहो इसी स्थानपर संध्या वंदन किया ॥ १९ ॥ (तीसरा सुमंत्रथा) जब संध्या वंदन हो चुका तब लक्ष्म-णजी अपने हाथसे कुश काट कर ले आये और बहुत शीघ्र रामचंद्रजीके शयन करनेके लिये एक सुन्दर आसन बना दिया ॥ २० ॥ जब रामचं-द्रजीने सीताके सहित इस आसनपर शयन किया तब लक्ष्मण उन दो-

नोंके चरण पखार कर वहांसे कुछ दूर चले आये ॥ २१ ॥ यही इंगुदी-का पेडहै यह वही तृण पडेहैं रामचंद्र और सीताजी दोनों जनोंनें उस रात्रिको यहीं पर शयन करके रात्रि बिताईथी ॥ २२ ॥ उस रात्रिको श-त्रुओंके दमन करनेवाले लक्ष्मणजी नियमानुसार पीठपर तीरोंसे भरा हुआ तरकस लगाये हथेली उँगलियोंमें गुस्ताना व अंगुलि त्राण पहरे और हाथमें गुण युक्त बडा धनुष धारण किये, रामचंद्रजीके चारों ओर देखते हुए घूमते रहे ॥ २३ ॥

ततस्त्वहंचोत्तमबाणचापभृत्स्थितोभवंतत्रस
यत्रलक्ष्मणः ॥ अतंद्रितैर्ज्ञातिभिरात्तकार्मुके
र्महेंद्रकल्पंपरिपालयंतदा ॥ २४ ॥

मैंभी श्रेष्ठ धनुष धारण करके आलस्यहीन धनुषकी धारण करने वाली अपनी बिरादरीके संग उन इन्द्र तुल्य रामचंद्रजीकी रक्षा करता हुआ लक्ष्मणजीके निकटथा ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे सप्ताशीतितमः सर्गः ॥ ८७ ॥

अष्टाशीतितमः सर्गः ॥

तच्छ्रुत्वानिपुणंसर्वंभरतःसहमंत्रिभिः ॥
इंगुदीमूलमागम्यरामशय्यामवैक्षत ॥ १ ॥

भरतजी मंत्रियोंके संग एक चित्तसे यह सब वचन सुनकर इंगुदी पे-डके तले गये, और रामचंद्रजीके शयन करनेकी शय्याको देखा ॥ १ ॥ और सब माताओंसे बोले महात्मा रामचंद्रजीने रात्रिको इसीभूमिमें श-यन कियाथा यह कुश उन्हींके बिछौनेके हैं देखो शरीरसे विमर्दित हुए हैं ॥ २ ॥ जोकि महाराजाधिराजके वंशमें परम भाग्यवान् दशरथजी-के पुत्र होकर इस पृथ्वीपर उन्होंने शयन किया सो यह बहुतही अनु-चित हुआ ॥ ३ ॥ हाय ! पुरुषश्रेष्ठ रामचंद्रजीने सदाही राजाओंके योग्य अति कोमल मृगादि चर्मोंके बिछौनोंपर शयन कियाहै इस समय वह किस प्रकार भूमिपर सोते होंगे ॥ ४ ॥ व जो श्रीरामचंद्र धवरहरोंके

ऊपर विमानोंपर कूटागारोंमें जहांपर कि सुवर्ण चांदी और पृथ्वीके विकारसे बने हुए पलंग उत्तम बिछौनों करके युक्त बिछे रहते उन पर वह सोते ॥ ५ ॥ जो फूल चुनकर लगानेसे चित्र विचित्र होजाते चंदनादि सुगन्धित वस्तु उनपर धरी हुई जोकि सफेद उजले बादलकी समान सब सोनेंका सामान होताथा उस स्थानपर तोता मैना आदि शुभ पक्षी बोलते ॥ ६ ॥ अनेक प्रकारकी सुगन्धों और गीत ध्वनिसे परिपूर्ण जिनकी सब दीवारोंपर सोना मढा और मेरु पर्वतकी समान ऊंचे अति उत्तम धवरहरोंपर जिन्होंने सदा रात्रिको शयन कियाहै ॥ ७ ॥ इस समय ऐसे रामचन्द्रजी किस प्रकार भूमिपर शयन करते होंगे ? जो इन धवरहरोंपर शयन करके भोरही गाने,बजानें, नाचनें व उत्तम २ भूषणोंके शब्दसे और मृदंग इत्यादि बाजोंके शब्दसे जगाये जाते तो उनके शब्दको सुनके नीदको छोड देतेथे ॥ ८ ॥ और यथा समयमें बहुतसे वंदी, मागध, सूत, आय २ उनकी अनुरूप कथाओंको गाय गाय स्तुतिओंसे रामचन्द्रजीको आनन्दित करतेथे ॥ ९ ॥ इस समय उन्होंने सब वस्तुओंसे अलग होकर किस प्रकार भूमिमें शयन किया, यह बात तो श्रद्धा रहित और असत्यभी प्रतीत होतीहै इस विषयमें हमारा मन मोहितहै, ऐसा जान पडताहै कि मानों हम स्वप्न देख रहेहैं ॥ १० ॥ अब समझ पडाकि कालसे अधिक बलवान न कोई देवताहै न भाग्यहै नहीं तो श्रीरामचन्द्रजी महाराज दशरथजीके पुत्र होकरभी क्यों पृथ्वीपर शयन करते? ॥ ११ ॥ और जो विदेह राजा जनकजीकी कन्या और साक्षात् राजा दशरथजीकी प्रणयपात्री पुत्रवधू, हाय उन प्रियदर्शन सीताजीकोभी कालके प्रभावसे पृथ्वीमें शयन करना पडा ॥ १२ ॥ भ्राता रामचन्द्रजीकी यह सेजहै देखो जैसे २ उन्होंने करवटैलीहैं वैसेही कडी भूमिमें बिछनेसे तृण उनके शरीरसे दबनेके कारण कुचल गयेहैं ॥ १३ ॥ ऐसा मालूम होताहै कि कल्याणी सीताजीभी सब गहने पहरे पहरायेही उस सेजपर सोगईहैं, क्योंकि यहां सबही जगह उनके गहनोंसे टूटकर सुवर्णके बिंदु गिरेहैं ॥ १४ ॥ ऐसा ज्ञात होताहै कि यहांपर जानकीजीने अपनी सारी धरदीथी क्योंकि रेशमके तार कुशोंमें लगे हुये शोभा पाय रहेहैं ॥ १५ ॥ हमभी जानतेहैं कि स्वामी रामचन्द्रजीकी

सेज सब प्रकार सीताजीको सुखद हुईहै कारण कि जिसके प्राप्त होनेसे सुकुमारीभी सीताजीको बालकपनमें तपस्या करनेंसे विदेशके दुःख नहीं जान पडते ॥ १६ ॥ हाय ! हम जीतेही जी मारे गये हाय ! हम कैसे निर्लज्जहैं हमारेही कारण रघुनंदन रामचन्द्रजी अपनी भार्या सहित अनाथकी भांति इस प्रकारकी सेजपर सोये ॥ १७ ॥ हा ! जिन्होंने सार्वभौम चक्रवर्त्ती दिलीप रघु, अज, दशरथ आदिके कुलमें जन्म लिया सब लोकोंके सुखदाई सबके प्रिय करनेवाले उत्तम और प्यारे वे रामचन्द्र राज्यको छोड ॥ १८ ॥ जिनका शरीर कमल वत् श्यामवर्णसे रँगा हुआ लोचन युगल रक्त वर्ण, देखनेमें जो अति मनोहर जिन्होंने सदाही सुख भोगाहै, जो कभी दुःख पानेके योग्य नहींहैं इस समय भूमिमें शयन करतेहैं ॥ १९ ॥ इससे अधिक हमारे दुर्भाग्य और दुःखका विषय क्या होगा अनेक प्रकारके शुभ लक्षण युक्त महाबाहु श्री लक्ष्मणजीही धन्यहैं जिन्होंने त्तिपत्तके समयमें भ्राता रामचन्द्रजीका साथ दिया क्योंकि विपत्तिमें कोई किसीका नहीं होता ॥ २० ॥ और जानकीजीभी स्वामीके साथ वनको जाकर निश्चयही सफलमनोरथा हुईहैं; हमही केवल उन महात्मा करके हीन होकर संशयकी दशामें पतित हुए ॥ २१ ॥ इस समय राजा दशरथजीके स्वर्ग सिधारने और रामचन्द्रजीके वन चले जानेसे समस्त पृथ्वी हमको मांझी विन नावकी समान जान पडतीहै॥२२॥ रामचन्द्रजी महाराज वनको चले गयेहैं तथापि यह पृथ्वी उनकेही भुज बलसे रक्षित होनेके कारण कोई मनमेंभी उसके लेनेकी इच्छा नहीं कर सकता फिर भला हम असमर्थ इसको किस प्रकार पालन कर सक्तेहैं न हम इसको ग्रहण करना चाहें ॥ २३ ॥ यद्यपि इस समय अयोध्याके कोटकी कोई रक्षा नहीं करता, हाथी, घोडे सब जहां तहां फिरतेहैं कोई बांधनेवाला नहीं पुरके फाटकभी खुले पडेहैं ॥ २४ ॥ जो कुछ सेना अयोध्या पुरीमें है वोह हर्ष रहित है उसे रक्षा करनेकी कुछ सुधि नहीं इसीसे न्यूनसी विदित होतीहै और लोग सब दुःखीहैं इसीकारण बाहरसे कोई रक्षा नहीं करता तथापि रामचन्द्रके प्रतापसे शत्रु लोग ऐसा डरतेहैं जैसे कोई विषैले भोजनसे डरताहो ॥ २५ ॥ अब आजसे हमभी फल मूलही खायँगे व जटा चीरादि धारणकर तृण विछाय भूमिमें सोवेंगे॥२६॥

रामचन्द्रजीको लौटाय वनमें बसैंगे क्योंकि जो समय वनवास करनेको बाकीहै उसे हम पूरा करैंगे जिससे चौदह वर्ष वनमें वास करनेकी प्रतिज्ञा जो बडे भाईने कीहै वह मिथ्या नहो ॥२७ ॥ हमारे वनवासी होनेपर शत्रुघ्नजी हमारे संग रहैंगे, और श्रीआर्य रामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित अयोध्याका पालन करैंगे ॥२८॥ ब्राह्मण लोग इन काकुत्स्थनंदन रामचंद्रजीको अयोध्याके राज्यपर अभिषिक्त करैंगे; देवताओंसे हमारी यही प्रार्थनाहै कि वह हमारे इस मनोरथको सफल करें ॥ २९ ॥

प्रसाद्यमानःशिरसामयास्वयंबहुप्रकारंयदि
नप्रपत्स्यते ॥ ततोनुवत्स्यामिचिरायराघ
वंवनेचरंनार्हतिमामुपेक्षितुम् ॥ ३० ॥

चरणोंपर शिर धर मनाने समझाने और अनेक भांतिसे प्रसन्न करनेपरभी यदि महाराज रामचंद्रजी पिताकी आज्ञाको नहीं त्याग कर अयोध्यामें न लौटेंगे तब हम उनके संग वनकोही चले जाँयगे जब हम आरत वचन कहैंगे तब हमें रामचन्द्रजी कदापि त्याग नहीं कर सकेंगे॥३०॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अ० अष्टाशीतितमः सर्गः ॥ ८८ ॥

एकोननवतितमः सर्गः ॥

व्युष्यरात्रिंतुतत्रैवगंगाकूलेसराघवः ॥
काल्यमुत्थायशत्रुघ्नमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

रघुकुलोत्पन्न महात्मा भरतजी उसी स्थानपर वह रात्रि बिताकर प्रातःकालही उठ शत्रुघ्नजीसे यह बोले ॥ १ ॥ शत्रुघ्न! उठो, प्रभात होगया अब क्यों शयन कररहे हो ? तुम्हारा कल्याणहो तुम शीघ्रतासे निषादराज गुहको यहां बुला लाओ जिससे कि वह शीघ्र सैनाको पार उतार देंगे ॥ २ ॥ जब भरतजीने इस प्रकार आज्ञाकी तब शत्रुघ्नजी बोले हम सोये नहींहैं निरन्तर आर्य रामचन्द्रजीकी चिन्तना करते हुए आपहीकी समान जागते पडे रहेहैं॥३॥नरसिंह भरत और शत्रुघ्नजी इस प्रकार परस्पर वार्तालाप कररहेथे । कि इतनेमें निषादराज गुह वहां आया और हाथ जोडकर बोला॥४॥हे काकुत्स्थ आपने रात्रिमें श्रीगंगाजीके किनारे सुखसे

तौ वास किया? और सैना सहित आप लोगोंको कोई क्लेशतो नहीं हुआ॥५॥ यह गुहके स्नेह वशके उच्चारण किये हुए वचन सुनकर रामके वश हुये भरतजीभी वैसेही स्नेह साने वचन बोले ॥ ६ ॥ हे बुद्धिमन् ! रात्रि सुखसे वीतगई और तुमने हमारा भली भांतिसे आदर सत्कार किया अब अपने दास केवटोंको आज्ञादो कि बहुत सारी नावोंपर चढाकर शीघ्र हमारी सैनाको गंगापार उतारदे ॥ ७ ॥ भरतजीके ऐसे वचन सुनकर गुहने बडी शीघ्रतासे नगरमें प्रवेश किया और वहां जाकर अपनी बिरादरीके लोगोंसे कहा ॥ ८ ॥ अरे भाइयो उठो जागो ! सदा तुम्हारा मंगलहो; बहुतसी नावें किनारेपर ले आओ आज भरतजीकी सैनाको गंगाजीके पार उतारना होगा ॥ ९ ॥ जब उन लोगोंने भरतजीकी ऐसी आज्ञा पाई तो राजाकी आज्ञाको मानकर जल्दी उठे और चारों ओरसे ५०० नावें खैंच उतारू घाटपर लगादीं ॥ १० ॥ और राजाओंके बैठने योग्य स्वस्तिक नामकभी नौका कई एक लाई गई । यह सब नावैं सुवर्णके रंगे चित्र विचित्र समूह द्वारा अतिशय शोभायमानथीं; सैकडों टुंडे जिनपर लगे हुए और मल्लाहभी जिनपर सैकडों वैठेथे जिनपर मजबूत वर्द्धमान लगे हुएथे झंडियां बंधरहीं थीं उनमें बडे २ घंटे लगेथे ॥ ११ ॥ अनन्तर निषाद राज गुह स्वयं एक स्वस्तिकनाम निराली राज्य नौका ले आया यह नाव सब भांतिसे रक्षितथी उसपर पीले दुशाले इत्यादिक ऊनी वस्त्र मढे हुएथे इसके ऊपर निरन्तर मंगलके बाजोंका शब्द होता रहताथा ॥१२॥ महा बलवान् शत्रुघ्नजी, भरतजी, कौशल्याजी, सुमित्राजी, व और दूसरी जो राजा दशरथजीकी रानियेंथीं सब उस नावपर चढीं ॥ १३ ॥ गुरु पुरोहित और ब्राह्मण गणतो पहलेही चढ चुकेथे । अनन्तर नौकर चाकरों सहित राज परिवार छकडे फिर बाजारकी सामग्री जोथी व यह सब चीजें चढाई गईं ॥ १४ ॥ चलनेके समय वस्तु देखने भालनेके लिये मसालचियोंका शब्द व गंगाजी में स्नान करने वालोंका कुलाहल ऐसा हुआकि अन्तरिक्षतक जा पहुँचा ॥ १५ ॥ नावोंमें ऐसे वर्द्धमान लगाये गयेथे कि यद्यपि एक एकपै सौ सौ खेने वाले बैठेथे पर चढे हुए लोगोंको वे आप उडाये हुए लिये जातीथीं ऐसी जल्दी जातीथीं कि खेनेकी आवश्यकता नहींथी ॥ १६ ॥ कोई २ नाव तौ स्त्रियोंहीसे भरीथी कोई कोई घो-

डौंसे किसी २ पै रथ पालकी तामजामादि सवारियोंके लेचलनेवाले घोडे, बैल आदि चढेथे और धन लदाथा ॥ १७ ॥ धीरे २ यह सब नावें दूसरी पार पहुंच गईं और आरोहियोंको उतारनेंमें लगीं और उतार कर लौटीं गृह बन्धु मल्लाह लोग वह सब नौका लेकर जलके बीच विविध भांतिके खेल करने लगे ॥ १८ ॥ इस समय हाथी वालोंने अपने २ हाथी जलमें उतरनेको पैठाये ध्वज भूषित सब हाथी पंख युक्त पर्वतकी समान शोभा विस्तार करके गंगाजीको पैरनें लगे ॥ १९ ॥ कोई २ लोगतो नाव पर चढ कर पार उतरे कोई २ बांस खैर आदिसे बनी कठनावों पर चढ पार गये कोई २ मटके घडे बांध। घन्नइयों पर उतरे और कोई २ अपने हाथों सेही पैर गये ॥ २० ॥ मल्लाहों करके गंगाजीके पार उतारी जाकर वह शोभायमान चतुरंगिणी सेना सूर्य उदय होनेके तीसरे मुहूर्त मैत्रमें* परम मनोहर प्रयागके वनको कूंच करती हुई ॥ २१ ॥ वहां पहुंच कर महात्मा भरतजीने सब सैनाको यथायोग्य आदरपूर्वक वहां टिकाया जिसको जहां सुभीता हुआ वह वहीं टिकरहा फिर भरतजी ऋषिवर भरद्वाजजीकी दर्शन कामनासे मंत्री पुरोहित और सभासदोंके संग उनके आश्रमकी ओर चले ॥ २२ ॥

सब्राह्मणस्याश्रममभ्युपेत्यमहात्मनोदेवपुरो
हितस्य ॥ ददर्शरम्योटजवृक्षदेशंमहद्वनंविप्र
वरस्यरम्यम् ॥ २३ ॥

फिर सब महानुभव देव पुरोहित ब्रह्म परायण और द्विजश्रेष्ठ भरद्वाजजीके आश्रमके निकट पहुंचकर रमणीय पर्ण कुटियें व सघन वृक्षोंसे शोभायमान बडे वनको देखतेहुए ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अ० एकोननवतितमः सर्गः ॥ ८९ ॥

नवतितमःसर्गः ॥

भरद्वाजाश्रमंगत्वाक्रोशादेवनरर्षभः ॥
जनंसर्वमवस्थाप्यजगामसहमंत्रिभिः ॥ १ ॥

* १ रौद्र सार्प मैत्र पैत्र वास वार्यक वैश्य ब्राह्म भाज रौद्र अग्नि ऐन्द्र निर्ऋति वरुण यम सायक यह पन्द्रह योगहैं ॥

आश्रमके जीव जन्तुओंको किसी प्रकारका दुःख न पहुँचै इस कारण पुरुषोत्तम भरतजीने कोश भर पीछे सब सैनाको टिकाया, और आप मंत्रियोंके सहित भरद्वाजजीके दर्शन करनेको चले ॥ १ ॥ वह महात्मा भरतजी सब अस्त्र शस्त्र व बडे २ कीमती वस्त्र जो पहर रहेथे उनको उतार केवल रेशमीन वस्त्र पहरे पुरोहित वशिष्ठजीको आगे कर चले ॥ २ ॥ अनन्तर उन्होंने दूरसे भरद्वाजजीको देखा तब मंत्रियोंको भी वहीं छोड दिया और आप अकेले महा मुनि वशिष्ठजीके पीछे २ जाने लगे ॥ ३ ॥ महातपवान मुनि भरद्वाजजीनें वशिष्ठजीको देखतेही शिष्योंको अर्घ्य लानेंकी आज्ञादी और आप आसनसे उठ खडे हुए ॥ ४ ॥ और आगे बढकर वशिष्ठजीसे मिले फिर भरतजीनें भी उनको दंडवत प्रणाम किया वशिष्ठजीके संग आये हुए भरतजीको महर्षि भरद्वाजजीने जानलिया कि यह तेजवान् महाराज दशरथजीके पुत्रहैं ॥ ५ ॥ धर्मात्मा भरद्वाजजीने ही दोनोंको यथायोग्य, पाद्य, अर्घ्य, और विविध भांतिके फल देकर फिर उनसे कुशल मंगल पूछते हुए ॥ ६ ॥ अयोध्या, सैना, खजाना, मित्र, बांधव मंत्रिगण और पशु,पक्षी इन सबकी कुशल पूछी परन्तु राजा दशरथजीका मरना भरद्वाजजीने सुन लियाथा इसकारण उनके विषयमें कुछ नहीं पूछा ॥ ७ ॥ वशिष्ठने भरद्वाजजीके तपकी शरीरकी, अग्नि, शिष्य, वृक्ष, मृग और कुटीके वासी पशु पक्षियोंकी कुशल पूछी ॥ ८ ॥ परम यशवान भरद्वाजजीने भरतजीसे और वशिष्ठजीसे कहा कि मैं सब भांति आनंद मंगलसे हूं और फिर रामचंद्रजीके स्नेहके वशहो भरतजीसे कहने लगे ॥ ९ ॥ हमने तो यह सुनाथा कि तुम राजा हुए हो अतएव यहां इस समय आनेकी तुमको कौन आवश्यकता हुई, सो हमसे सब कहो क्योंकि इस विषयका हमारे मनमें विश्वास नहीं होता ॥ १० ॥ देवी कौशल्याजीनें शत्रुओंके दमन करनें वाले और सब जगत्के आनन्द बढानेवाले जिन रामचंद्रजीको प्रसन्न किया जो भ्राता और भार्या सहित वनको गयेहैं ॥ ११ ॥ जो महायशवान स्त्रीके वशमें पडे पिताकी यह आज्ञा कि "चौदह वर्षके लिये वनको जाओ" उसके पालन करनेको वनमें गये और वहां वास करते हैं ॥ १२ ॥ उन निष्पाप रामचंद्रजीका राज्य अकंटक भोग करनेंके

लिये, और लक्ष्मणजीके सहित उनका अनभल करनेके लिये तौ इस समय तुम्हारा अभिलाष नहीं हुआहै ? ॥ १३ ॥ भरद्वाजजीके यह कहने पर भरतजीनें दुःखके वशहो आंसू भरे हुए नेत्र और गद्गद वाणीसे उत्तर दिया ॥ १४ ॥ हे भगवन् ! आप सर्वज्ञ होकरभी यदि हमें इस प्रकारसे पाषंडी समझैं तौ हमारा जीवन और जन्म सबही वृथाहै हे महाराज ! हमसे यह उपस्थित विपद् नहीं हुई और न इसको हमनें कभी मनमें विचारा ॥ १५ ॥ अतएव हमें ऐसे दुःखदायी वचन मत कहिये हमारे राज्याभिषेक और रामचंद्रजीके वनवासके विषयमें माता कैकेयीने जो कुछ राजासे कहाहै उसमें किसी प्रकारसे मेरी सम्मति नहीं और न उसमें हम किसी भांति संतुष्टहैं और न हम ऐसे वचनोंको अंगीकार करतेहैं ॥ १६ ॥ इसी कारण हम उन पुरुष व्याघ्र रामचंद्रजीके प्रसन्न करनें और उनके युगल चरण वंदन करनेको यहां आयेहैं और उनको अयोध्यामें लौटानेके लिये उनके निकट जाते हैं ॥ १७ ॥ हे भगवन् ! यही हमारा एक मात्र आशय जानकर आप प्रसन्न होवें और बतावें पृथ्वीनाथ रामचंद्रजी इस समय कहां हैं ? ॥१८॥ तिसके पीछे वशिष्ठादि ऋत्विक लोगोंने भी प्रार्थना की तब भगवान भरद्वाजजी प्रसन्न होकर भरतजीसे बोले ॥ १९ ॥ हे पुरुषसिंह ! सुप्रसिद्ध रघुकुलमें तुम्हारा जन्म हुआहै, तब गुरु सेवा शत्रुओंका दमन करना, व साधुओंके अनुगत होना यह तीन बातें तुममेंहोनी संभवहैं ॥ २० ॥ तुम्हारा जो ऐसा मनोगत भावहै इसको मैं भलीभांति जानताहूं; तथापि बहुत पुरुषोंके सामने प्रगट होकर वह भाव औरभी दृढ होजावे; और उसके द्वारा तुम्हारी कीर्त्तिभी भलीभांति फैल जावे इस कारणसेही हमनें तुमसे ऐसा पूछा ॥ २१ ॥ सीता और लक्ष्मण सहित धर्मके जाननेवाले श्रीरामचंद्रजीको हम जानतेहैं। वह तुम्हारे भाई इस समय महापर्वत चित्रकूट पर वास करतेहैं ॥ २२ ॥ हे इष्टप्रद धीमान! कल वहां पर जाना, आज मंत्रियोंके सहित इसही हमारे आश्रम पर वसो तुमको हमारा यह कार्य अवश्य करना होगा अर्थात् यहां वसना होगा ॥ २३ ॥

ततस्तथेत्येवमुदारदर्शनःप्रतीतरूपोभरतो
ब्रवीद्वचः ॥ चकारबुद्धिंचमहाश्रमेतदानिशा
निवासायनराधिपात्मजः ॥ २४ ॥

तब उदार दर्शन प्रसिद्ध यश वाले राजकुमार भरतजीनें "जो आज्ञा" यह कह कर उनका वचन विश्वाससे ग्रहण किया और महर्षि भरद्वाजजीके यहां आश्रममें रात्रिको बसनेका विचार किया ॥ २४ ॥
इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अ० नवतितमः सर्गः ॥ ९० ॥

एकनवतितमः सर्गः ॥

कृतबुद्धिंनिवासायतत्रैवसमुनिस्तदा ॥
भरतंकैकयीपुत्रमातिथ्येनन्यमंत्रयत् ॥ १ ॥

कैकेयी कुमार भरतजीको जब इस प्रकार वहां रात्रिमें वास करनें की मति हुई तब महर्षि भरद्वाजजीनें अतिथि सत्कार करनेके लिये उनको नोता दिया ॥ १ ॥ तब भरतजीनें उनसे कहा—हे भगवन्! वनमें जो अर्घ्य पाद्य होता है, आपनें उससे ही हमारी उचित पहुनई करदी; अब इससे अधिक परीश्रम करनें की क्या आवश्यकता है ॥ २ ॥ तब भरद्वाजजीनें हँसते २ भरत जीसे कहा कि हम चाहतेहैं कि तुमको प्रीतिसे कुछ थोडा भी दिया जावे तौ उससेही सन्तुष्ट हो जाते हो ॥ ३ ॥ तुम्हारी सब सैनाको भोजन कराने की मेरी इच्छा हुईहै हे नरेश्वर! हम जिस प्रकारसे सन्तुष्ट होवें तुमको वही कार्य करना चाहिये ॥४ ॥ हे पुरुषप्रवर! तुम किस कारणसे सैनाको दूर टिकाकर अकेले हमारे आश्रम में आये सैनासहित यहां पर न आनेका कारण क्या है सो कहो? ॥ ५ ॥ भरतजी हाथ जोड कर महर्षि भरद्वाजजीसे बोले कि हे भगवन्! आपके आश्रमको पीडा होगी इस कारण और आपके भयके मारे हम सेना सहित यहां नहीं आये ॥ ६ ॥ क्योंकि राजा या राजकुमारोंको सदा यही कर्त्तव्य है कि यत्न पूर्वक तपस्वियों के आश्रममें किसी प्रकारका उपद्रव न होनें दें ॥ ७ ॥ भगवन्! आपके आश्रम में अवश्य ही उपद्रव होता क्योंकि प्रधान २ घोडे, मनुष्य, मतवाले हाथी सब एक वार बहुतसे

स्थानको घेर कर हमारे संग २ चलते हैं ॥ ८ ॥ वह आश्रमके वृक्षोंको तालावोंको भूमि और पर्णशाला इत्यादिकों नष्ट न करदें, इस ही कारण उनको दूर रखकर हम आपके पास अकेले आयेहैं ॥ ९ ॥ तब महर्षि भरद्वाजजीने कहा कि सैनाको यहीं ले आओ। भरतजीनें यह आज्ञा पाकर सब सैनाको वहीं बुलाया ॥ १० ॥ तब महर्षि भरद्वाजजीने अग्निशालामें जा यथाविधानसे जल पान द्वारा आचमन करके पहुनई करनेके लिये यह कह कर विश्वकर्मा को बुलाया ॥ ११ ॥ भरतजी की पहुनई करनेको हमारी इच्छा हुई है, इसी कारण हम सृष्टि शक्ति सम्पन्न त्वष्टा नाम विश्वकर्मा को बुलाते हैं क्योंकि सैना सहित जो हमने भरतजीका निमंत्रण किया है सो वह उसके निर्वाह की सामग्री प्राप्त करें ॥ १२ ॥ हम अतिथि सत्कार की कामना करके इन्द्र, यम, वरुण, कुवेर, इन चार लोकपालों को भी बुलाते हैं। वह आनकर यहां पहुनई उपयुक्त ग्रह आदि सब सामग्री ठीक करकै समुदाय सिद्धि विधान करें ॥ १३ ॥ पृथ्वी और आकाशमें गंगाजीसे आदि लेकर जो सब टेढी वांकी और पूर्वको वहने वाली नदियें है वह सवही इस समय यहां आवें ॥ १४ ॥ कोई २ मैरेय (मद्य विशेष) कोई २ सुन्दर बनीवनाई मदिरा, और कोई २ ऊखके रसकी समान मीठा और शीतल जल चुआवें ॥ १५ ॥ देव गन्धर्व, विश्वावसु, हाहा, हूहू, दिव्य अप्सरा और गन्धर्व पत्नी गण इन सब को भी हम बुलाते हैं ॥ १६॥ इनके सिवाय घृताची, विश्वाची, मिश्र केशी, अलम्बुषा, नागदत्ता, हेमापर्वत वासिनी,सोमा,अद्रिकृतस्थलीका अप्सराओंका आवाहन करते हैं ॥१७॥ फिर जो इन्द्र जीके निकट रहकर उनकी सेवा करती हैं और जो ब्रह्माजीके पास रह कर शुश्रूषा सेवा किया करती हैं उन सब अच्छे २ वस्त्र आभूषण धारण करनें वाली कामिनियोंको तुम्बरूनाम गन्धर्व के साथ हम आह्वान करते हैं ॥१८ ॥ उत्तर कुरुमें जो कुवेर जीका चैत्ररथ नामक दिव्य वन है जिसके सब वृक्ष वस्त्राभूषण रूप पत्र और दिव्य स्त्री रूप फल समूह से भूषित हैं वह कुवेरजी का वन भी आज इस आश्रम में चला आवे ॥ १९ ॥ इनके सिवाय विविध भांतिके भक्ष्य, भोज्य, चोष्य, लेह्यादि व अनेक प्रकारके अन्न यहां आय भगवान् चन्द्रमाजी उ-

त्पन्न करैं॥२०॥ व पेडोंसे चुए विचित्र सुमन; व सुरा आदि पीनेकी वस्तु विविध प्रकार का मांस ॥ २१ ॥ इस प्रकार समाधिद्वारा अद्वितीय तपस्याके प्रभावसे सुव्रत महर्षि भरद्वाजजीने उपयुक्त स्वर और ठीक २ वर्णोच्चारण करके सबका आह्वान किया ॥ २२ ॥ महर्षि जीने हाथ जोड कर पूर्वको मुखकर जब इस प्रकार मनही मनमें ध्यान किया तब ध्यान के करतेही एक २ करके सब देवताओंने आना आरंभ किया ॥ २३ ॥ तिस समय परमानंद देने वाला सुखद समीर मलयाचल व दर्दुरा चल नामक दो चन्दन पर्वतोंको स्पर्श करके गरमीका नाश करता हुआ यथा विधिसे मंद २ चलने लगा ॥ २४ ॥ अनन्तर सब दिव्य मेघोंनें विचित्र फूलोंकी वर्षा करनी आरंभ करदी सब दिशाओंसे देवता ओंके नगाडोंके वजनेका शब्द सुनाई आनें लगा ॥ २५ ॥ मनोहर हवाकी लहरैं आनें लगीं । अप्सरायें नाचने और देव गन्धर्व गण संगीत करनें में लगे । वीण यंत्र मधुर स्वरसे अपनी झंकार करके बज उठे ॥ २६ ॥ इस प्रकारसे नाच गीतादि लय करके युक्त अनेक भांतिकी मनोहर ध्वनिसे स्वर्ग पृथ्वी और प्राणियोंके कर्णरंध्र पूर्ण होगये ॥ २७ ॥ मनुष्योंके श्रवणोंका सुख उपजानेवाला वैसा दिव्य शब्द जब होने लगा तब भरतजीकी सेनामें विश्वकर्माकी चतुराई का विधान कौशलको देखा ॥ २८ ॥ उन्होंने देखाकि वहां पृथ्वी चारों ओर पांच योजन तक बराबर एकसी और नील वैदूर्य्य मणिकी समान प्रभा युक्त हरी २ घाससे ढक गई ॥ २९ ॥ उस पृथ्वीपर फल लगे हुए बेल, कैथ, कटहर, विजौरा, नीबू, व आमके वृक्ष फल युक्त शोभा पारहेहैं ॥ ३० ॥ उत्तर कुरु देशसे दिव्य उपभोग्य चैत्ररथवन और किनारों पर जिसके अनेक प्रकारके वृक्ष लगे हुए ऐसी मन हरण करने वाली एक सौम्यानाम नदी आई ॥ ३१ ॥ असंख्य सुन्दर श्वेत वर्णाग्रह, हस्तिशाला, और अश्वशाला वहां आईं । बहुतसे चौमहले अति सुन्दर महल आये जिनमें अनेक प्रकारकी अटारियें व धवरहर आदि बनेथे, शुभ तोरण युक्त ॥ ३२ ॥ श्वेत मेघ सन्निभ सुन्दर वंदन वार लगे हुए उजले फूलोंकी मालासे सुगन्धित दिव्य सुवासित पदार्थ मिश्रित जलसे छिडके छिडकाये सैकडों राजमन्दिर आये ॥ ३३ ॥

जिनमें चौकोने अतिविशाल सोने उठनें बैठने आदिके स्थान बने अनेक प्रकारकी जहां सवारियें धरी देवता जिनको भोजन करैं ऐसे सब तरहके भोजन व उत्तम वस्त्र धरे ॥ ३४ ॥ सब भांति भक्ष्य, भोज्य, चोप्य, लेह्य अन्न, युक्त, धोये निर्मल भोजन करनें बनानें आदिके प्रस्तुत सब तरहके बिछौने बिछाये धनधान्य युक्त सब शयन करनेंके योग्य स्थानोंपर सुन्दर बिछौने और बिस्तरे बिछे ॥ ३५ ॥ कैकेयीनंदन महाबाहु भरतजी महर्षिजीकी आज्ञासे ऐसे एक रत्न परिपूर्ण गृहमें प्रवेश करते हुये ॥ ३६ ॥ सब मंत्री लोगभी पुरोहित वशिष्ठजीके साथ भरतजीके अनुगामी हुए और उस गृहका गठन आदि देखकर परम प्रीति लाभ करते हुए ॥ ३७ ॥ वहां पर जो राजाओंके योग्य एक सिंहासनथा जिसके धोरे दास सब वस्त्राभूषण पहरे छत्र चमर हाथमें लिये खडेथे सो भरतजीनें मंत्रियोंके सहित उस सिंहासनकी प्रदक्षिणाकी ॥ ३८ ॥ वह राजासन रामचंद्रजीके योग्य और वह मानों उस पर बैठेहीहैं यह विचार कर भरतजीनें प्रणाम कर उसकी पूजाकी और फिर वालोंका पंखा लेकर मंत्रीके बैठने योग्य आसन पर आप विराजमान हुए ॥३९॥ तब मंत्रि गण पुरोहित वशिष्ठजी यथायोग्य आसन पर बैठते हुए प्रथम सैनापति और उनके पीछे शिबि रक्षक आदि बैठे ॥ ४० ॥ जब सब बैठ बैठाय गये तब मुहूर्त्त भरके बीचहीमें पायस रूप कर्दमशालिनी अर्थात् दूध खांडकी नदियें महर्षि भरद्वाजजीकी आज्ञासे भरतजीके निकट प्राप्त हुईं इन नदियोंके दोनों किनारे पीली मिट्टीसे लिपे हुएथे और श्वेत मृत्तिका (चूना) से पुते हुए दिव्य रमणीय गृहभी शोभा पा रहेथे यह सब गृह भरद्वाजजीके प्रसादसे उत्पन्न हुएथे॥४१॥४२॥ अनन्तर उसी समय ब्रह्माजीकी पठाई हुई भांति २ के वस्त्राभूषणोंसे सजी धजी बीस हजार (२००००) स्त्रियां आईं ॥ ४३ ॥ इनके सिवाय स्वयं कुबेरजीकी भेजी हुई बीस हजार स्त्रियें [२००००] वहां आईं; जोकि सब मणियें, मोती, मूंगे, और सुवर्ण पहरे वे शोभित हो रहींथीं ॥ ४४ ॥ जिनके दर्शनमात्रसेही आदमी उन्मत्त और वशीभूतसा देखा जाता वैसी बीस हजार [२००००] अप्सरायें नन्दन वनसे वहां आकर उपस्थित हुईं ॥ ४५ ॥ तिसके पीछे सूर्य नारायणके समा-

न दीप्तिमान नारद तुम्बरू और गोप यह सब गन्धर्व राजा भरतजीके सन्मुख आकर गान करने लगे ॥ ४६ ॥ तब अलम्बुषा, मिश्रकेशी, पुंडरीका, और वामना यह सब अप्सरायें महर्षि भरद्वाजजी की आज्ञासे भरतजीके समीप नांचने गानें लगीं ॥ ४७ ॥ चैत्ररथ वनमें जो फूल मिलते, नन्दन काननमें जो सुमन पाये जाते वह समस्त महर्षि भरद्वाजजीके तेजसे उस समय प्रयागमें दिखाई देतेथे ॥ ४८ ॥ सब बेलके वृक्षोंनें पखावजियोंके रूप धारणकर मृदंग बजाया, शमीके वृक्ष ताल बजाते बहेडा और पीपलके पेड नर्त्तकोंका भेष धारण करके वहां विराजमान हुए ॥ ४९ ॥ अनन्तर ताल, तमाल, तिलक और देवदारुके वृक्ष सब कोई कुब्ज और कोई वामनका रूप धारण करके वहां आये ॥ ५० ॥ सिरस, आँवला, जामन इन सबके सिवाय वनेली और लता आदिक थीं वह सब स्त्रियोंका भेष लेकर वहां भरद्वाजजीके आश्रममें उपस्थित हुई इन सब वृक्ष लता आदिकोंका आना भरद्वाजजीके तेज प्रभावसे हुआ, नहीं तौ जडों में ऐसी शक्ति कहां ॥ ५१ ॥ सुराके पीनेवालोंने सुरापान की, भूखे मनुष्योंने खीर और परम पवित्र मांस भोजन किया अथवा जिसकी जो इच्छा हुई उसने वही भोजन किया वहां सब वस्तु तैयार धरींथीं ॥ ५२ ॥ जैसेही किसीनें स्नान करना चाहा कि वैसेही एक २ पुरुषको सात २ स्त्रियां नदीके तीरपर लेजा पटन करा स्नान करानें लगीं ॥ ५३ ॥ बडे २ नेत्रवाली सब वाराङ्गनायें न्हाये हुए पुरुषोंके गीले अंग वस्त्रसे भली भांति शुष्ककर और मींज मांज चरण दाबती हुई उनको शरबत आदि पिलानेंमें प्रवृत्त हुई ॥ ५४ ॥ साईस, महावत, रथवान आदि श्रेष्ठ हाथी, घोडे, ऊंट और वृषभादिकोंको यथा विधानसे उनके भोजनीय रातब उनको खिलानेलगे ॥ ५५ ॥ उनमें इक्ष्वाकु वंशीय प्रधान २ योद्धाओंके जो वाहनथे उनको महाबलवान उनके मालिकोंने ऊंख,लावा,जलेबी आदि आदि खानेंके लिये भेजा वहीं शहीस आदिकोंने उनको भोजन कराया ॥ ५६ ॥ सब साईस व चरकटे आदिकोंने ऐसी मादक वस्तुयें खांई कि साईसोंनें अपने घोडोंको न जाना, और चरकटोंनें अपने हाथियोंको न पहँचाना वह समस्त सैना मादक वस्तुओं सेवन करनेंसे मत्त व मधु पीनेसे प्रमत्त और मुदित होकर वहां भली भांति

शोभित होती हुई ॥ ५७ ॥ इस प्रकार सब कोई सब तरहसे इच्छानुसार भोग लाभकर तृप्तहो लाल चंदनादि सुगन्ध लगाये और अप्सराओंसे रमणकर सब लोग मतवालोंकीसी बातें कहने लगे ॥ ५८ ॥ भाई। अब नतौ हम अयोध्याहीको जांयगे न रामचंद्रजीके साथ दण्डकारण्य-मेही जांयगे भरतजीभी कुशल रहैं जिनके प्रतापसे हमें यह सुख लाभ हुआ और रामचंद्रजीभी सुख पूर्वक वनमें विहरें ॥ ५९ ॥ हाथियोंके चढनेवाले, घुडसवार, हाथियोंके रक्षक, घोडोंके रक्षक और पैदल योद्धा लोग सबही यह सत्कार पा और मादक वस्तु खा पीकर स्वतंत्र हो इस प्रकारसे कहने लगे ॥ ६० ॥ भरतजीके अनुयायी हजारहा मनुष्य अतिशय आह्लादितहो यह कहकर कि " यहीं स्वर्गहै " जोरसे शोर करने लगे ॥६१॥ सेनाके मनुष्य माला पहेर कोई नांचने लगे, कोई २ हँस २ गाना गाने लगे, कोई २ हँस कर इधर उधर दौडने लगे॥ ६२॥ अमृतकी समान अन्न भोजन करके यद्यपि वह लोग परम तृप्त होगयेथे तथापि दिव्य २ पदार्थोंको देखकर फिर उनको भोजन करनेकी इच्छा हुई ॥ ६३ ॥ सैनामें जितने दास दासी और स्त्रियेंथी उन सबनेही नये २ वस्त्र पहनकर बहुत प्रसन्नता पाई क्योंकि उनको ऐसे वस्त्राभूपण नहीं मिलेथे ॥६४॥ और हाथी, घोडे, ऊंट, गाय, बैल, खिच्चड गधे, मृग, और पशु,पक्षी सब मन मानी वस्तु खाय २ बहुत अघाय गये, फिर उन्होंने किसी पदार्थकीभी इच्छानकी न किसीमें मुँह डाला ॥ ६५ ॥ अधिक क्या क-हिये वहां पर भूंखा जिसको भोजन न मिलाहो, मैला कुचैला जिसके बाल धूलसे अट रहेहों अथवा कोई मैली पोशाक पहर रहाहो ऐसा कोई आ-दमी वहांपर दृष्टि नहीं आताथा ॥ ६६ ॥ सेनामें जो कुत्ते आदि पलाऊ जीवथे उनके भोजनार्थ आम आदि फूलोंके काढेसे पचाये सरसी शूक-रादिकोंका मांस, मूंग, उर्द आदिकी दाल हींग आदि सुगन्धित द्रव्योंसे वघारी हुई व औरभी अनेक प्रकारके श्रेष्ठ व्यंजन विद्यमानथे ॥ ६७ ॥ लोहेके सैकडों पात्रोंमें फूलोंकी पताका किनारे २ गडी हुई उनके बी-चमें सुन्दर उज्वल भात भरा देख लोग विस्मित होतेथे ॥ ६८ ॥ उस पांच योजन भूमिके घेरके चारों ओर जितने कुयेंथे सबमें खीरहीकी की-चड भरीथी जिसका जी चहो निकाल कर खाय गौयें सब कामधेनुकी

समान थीं कि जो मांगो सोदें और जितने वृक्षथे वह सब बराबर शहद दूध दही आदिकी धारा वहा रहेथे ॥ ६९ ॥ इसके सिवाय जो कि बडे बडे तालावथे वह सब मैरेय नाम मद्यसे भर रहेथे, और भली प्रकारसे गरम किये कुण्डोंमें भला रँधा हुआ और बहुतही साफ किया हुआ, मृग, मोर, मुरगा आदिका मांस भरा हुआथा ॥ ७० ॥ अन्न धरनेके लि-ये सुवर्णके छोटे २ हजारों बरतनथे भात आदि बनानेके अर्थभी सुवर्ण हीके लाख पात्रथे, व भोजन करनेके वास्तेभी सोनेके दश किरोड बर-तनथे ॥ ७१ ॥ लुटिया अमखोरा आदि पानी पीनेंके बरतन अग्नि आ-दिसे तपे तपाये हुए पवित्र करम्भी दही धरनेंके पात्र जिनमें दही भरा रहत बहुत पात्र मट्ठा धरनेंके ऐसे थे कि जिनमें मथनेंके पीछे पहर भरतक मट्ठा धरा रहताथा बहुत पात्र केशर आदि पीली वस्तु डाले हुये पीला मट्ठा धरनेके थे बहुत जीरा आदि सुगन्धित वस्तु मिले हुये मट्ठेके थे॥७२॥ वहांके सब कुंड कोई २ शिखरणियोंसे भरेथे कोई २ दहीसे कोई २ दूधसे कोई २ शक्करहीसे पूर्ण हो रहेथे ॥ ७३ ॥ सब लोगोंनें नदियोंके नहानेंके घाट पर जाकर देखाकि आंवलादि चुराया हुआ काढा लावा आ-दिका काढा वर्त्तनोंमें भरा किनारोंपर धराहै ॥ ७४ ॥ सुन्दर २ दुधारे वृक्षोंकी दतौंनोके ढेरके ढेर धरे और उज्वल लाल २ चन्दन कटोरोंमें घिसा घिसाया धरा ॥ ७५ ॥ इसही घाट पर हजारों स्वच्छ दर्पण पवि-त्र सफेद वस्त्रोंके ढेरके ढेर जूती व खडाउओंकी हजारों जोडियां धरीं॥७६॥अंजन भरी हुई डिवियां कंघियें कूच जोकि खससे बने डाढी मूछ आदि झाडनेंकोथे छत्र धनुष कवच विचित्र सेज और आसन॥७७॥ गधे,ऊंट,हाथी, घोडे आदिकोंके पीनेके पदार्थ भरे हुए कुंड जिसमें स्ना-न करनेसे और आनेंजानेंके लिये सुन्दर घाट बांधकमल फूले ॥७८॥ कुण्डोंमें मल रहित आकाशकी समान साफ जल भरा उत्तर जानेंमें सुलभ नील वैदूर्य्य मणिके समान ॥ ७९ ॥ हरी २ घासकी सानी पशु ओंके लिये बनीधरी घासके ढेरके ढेर धरे यह देखकर कि महर्षि भर-द्वाजजीने इस प्रकार भरतजीकी पहुनई की वह स्वप्न सदृश यह व्यापार देखकर सबही आश्चर्यको प्राप्त हुये ॥८०॥ नंदनवनमें देवता लोग जिसप्र-कार विहार करतेहैं वैसेही रमणीय भरद्वाजजीके आश्रममें इस प्रकार खेल

और आह्लाद करतेर उस सब सैनानें वह रात्रि बिताई ॥ ८१ ॥ अप्सरायें जो कि जिस जगहसे आईथीं गन्धर्व गण वर वर्णिनी स्त्रियें जो सब रात्रिको उस आश्रममें रहीं प्रातःकाल होतेही सब स्त्रियां और अप्सरा गन्धर्वगण इत्यादि भरद्वाजकी आज्ञाले जहांसे आयेथे वहींको चले गये ॥८२॥

तथैवमत्तामदिरोत्कटानरास्तथैवदिव्यागुरु
चंदनोक्षिताः ॥ तथैवदिव्याविविधाःस्रगुत्त
माःपृथग्विकीर्णामनुजैःप्रमर्दिताः ॥ २३ ॥

परन्तु भरतजीके अनुयायी सबही मनुष्य वैसेही दर्पित और मदमत्त और वैसेही दिव्य अगुरुसे चर्चित होकररहे। भांति २ की श्रेष्ठ और दिव्यमालायें उनके उपभोग करनेके लिये वैसेही इधर उधर गिरनें और मनुष्योंसे मली जानें लगीं ॥ ८३ ॥ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी० आ० अ० एकनवतितमः सर्गः ॥ ९१ ॥

द्विनवतितमः सर्गः ॥

ततस्तारजनींव्युष्यभरतःसपरिच्छदः ॥
कृतातिथ्योभरद्वाजंकामादभिजगामह ॥ १ ॥

अनन्तर भरद्वाजजीके पहुनई करनेपर परिवार सहित भरतजीने वह रात्रि वहांपर बिताई और रामचन्द्रजीको प्राप्त होनेकी कामनासे महर्षि भरद्वाजजीके समीप आये ॥ १ ॥ पुरुषव्याघ्र भरतजीको हाथ जोड़े हुए निकट आया हुआ देख महर्षि भरद्वाज जब अग्निहोत्र समाप्त कर चुके तब भरतजीसे बोले ॥ २ ॥ हे अनघ! हमारे इस आश्रममें यह रात्रि तो तुमने सुखसे तो बिताई? और तुम्हारे साथके सब आदमी पहुनई पाकर भली भांति सन्तुष्ट तो हुये ॥ ३ ॥ यह कह उत्तम तेजवान महर्षि भरद्वाजजी आश्रमसे बाहर आये तब भरतजीने हाथ जोड उनको प्रणाम कर कहा ॥ ४ ॥ भगवन्! हमने सब सेना और वाहनादिकोंके संग यह रात्रि सुखसे बिताई और आपनेंभी सब सैना सहित हमें विशेष रीतिसे सन्तुष्ट कियाहै ॥ ५ ॥ अतएव सब नौकर चाकरोंके सहित हम सब लोगोंने सुखसे रात्रि बिताई सुखसे वास किया सुखसे खाना पीना किया

और हम सबको मार्गमें चलनेसे जो कुछ संताप और थकावट हुईथी वह सब दूर होगई ॥ ६ ॥ हे भगवन्! ऋषि श्रेष्ठ! इस समय आपसे आज्ञा लेकर हम अपने भ्राताके निकट जाया चाहतेहैं आप हमारे ऊपर कृपा दृष्टिकी वृष्टि करैं ॥ ७ ॥ हे धर्मज्ञ! यह बताइये कि महात्मा धार्मिक रामचन्द्रजीका आश्रम यहांसे कितनी दूरहै उसका मार्ग कौनसाहै और कितना अंतर यहांसेहै ॥ ८ ॥ जब भरतजीने बडे भाई रामचन्द्रजीके दर्शनकी लालसासे इस प्रकार पूछा तब परम तेजस्वी और परम तपस्वी भरद्वाजजी उत्तर देते हुये॥९॥हे भरत।यहांसे ढाई योजनके अन्तरपर जनशून्य अरण्यके मध्यमें चित्रकूट नाम एक रमणीय पर्वतहै जहांकि अनेक झरने झररहेहैं और वन अलगही अपनी शोभाका विस्तार कर रहे हैं॥१०॥उस पर्वतके उत्तर बगलमें मंदाकिनी नदी वह रहीहै इस नदीके दोनों किनारों पर फूले हुए पेड लग रहेहैं और रमणीय पुष्पित वनभी वहां हीहै॥११॥हे तात। वस उसीसे मिला हुआ चित्रकूट पर्वतहै और तुम रामचन्द्रजीकी पर्णकुटी देखोगे वह निश्चय वहीं वास करतेहैं ॥ १२ ॥ हे महाभाग। वाहनीपते।यमुनाके दाहिने किनारेपर कुछ दूर चलकर उस मार्गकी शोभा देखोगे मार्गोंके मध्य वाईं तरफ जो रास्ता दक्षिणकी ओर गयाहै वस इसी मार्गपर गज वाजि युक्त सैनाको चलाना ॥ १३ ॥ तौ रामचंद्रजीके दर्शन तुमको होजांयगे, भरत व भरद्वाजजीकी वार्त्ता सुन सवारियोंमें चढी हुई महाराज दशरथजीकी रानियोंने यह सुनकर कि अब आगे चलना होगा ॥ १४ ॥ यद्यपि महाराज दशरथजीकी स्त्रियां पैदल जरा देरभी कभी काहेको चली होंगी तथापि यात्रा सुन पैदलही आकर महर्षि भरद्वाजजीके चरण युगल ग्रहण किये उस समय कांपती हुई दीन और दुर्बल सुमित्राजीके संग ॥ १५ ॥ आकर कौशल्याजीने परिक्रमा कर महर्षि भरद्वाजजीके चरण युगल ग्रहण किये। यद्यपि सब लोकोंकी पालक कौशल्याजीहैं तथापि रामचन्द्रजीके अभिषेक होनेका उनका मनोरथ पूरा नहीं हुआ ॥ १६ ॥ उसी समय कैकेयीभी तिन महामुनिकी प्रदक्षिणा करकै कुछ लज्जित हो मुनि भरद्वाजजीके चरणोंमें गिरी ॥ १७ ॥ और प्रणाम करकै जाय दुःखित चित्तसे लाजसे भरतजी

के बनाय समीपही खडी हुई तब महामुनि भरद्वाजजीने भरतजीसे कहा ॥ १८ ॥ हे रघुनंदन! हम तुम्हारी माताओंका विशेष हाल जान्ना चाहतेहैं, जब धार्मिक भरद्वाजजीनें भरतजीसे ऐसा कहा॥१९॥तब वचन कहनेमें चतुर भरतजी हाथ जोडकर बोले कि हे भगवन्! जो यह बहुत दीनमुख शोक व उपासोंके कारण दुर्बल होगईहैं ॥ २० ॥ पिताजी की सबसे बडी महारानीहैं जो देवीके समान रूप धारण कियेहैं सिंह विक्रान्त गामी पुरुष सिंह श्रीरामचन्द्रजीको इन्हीं ॥ २१ ॥ कौशल्याजीने प्रसव कियाहै जैसे इन्द्रको अदितिजीने उत्पन्न कियाहै। व जो इन्हींकी बांई भुजासे लपटी उदास खडीहैं ॥ २२ ॥ यह महाराज दशरथजीकी मध्यमा रानी देवी सुमित्राजीहैं जो दुःखसे व्याकुल होरहीहैं। सब पुष्पोंके गिर जानेसे कर्णिकार वृक्षकी शाखा वनमें जिस प्रकार शोभाहीन हो जातीहै वैसेही यहभी दुःखित हो रहीहैं ॥ २३ ॥ देवताओंकी समान रूपवान वीर्यवान् सत्य विक्रम सुकुमार लक्ष्मण, व शत्रुघ्न इन्हीं देवी सुमित्राजीके कुमारहैं और जिसके कारण पुरुषोत्तम रामचन्द्रजी और लक्ष्मण मृत्युसम विपदको प्राप्त हुयेहैं, और राजा दशरथजी पुत्रहीनहो स्वर्गको सिधारेहैं ॥ २४ ॥ २५ ॥ क्रोधयुक्त स्वभाववाली बुद्धिहीन सदा गर्वित रहनें वाली रूपका घमंड रखनेंवाली, ऐश्वर्यकी चाहना रखनेवाली अनाडिन होकरभी अपनेको आर्यवत् समझनेंवाली यह कैकेयीहैं॥२६॥ सो इस पापाशय और निठुरको हमारी माता जानिये, हम जो इस समय विपम संकटमें पड़ेहैं सो यही इस संकटकी जडहैं ॥ २७ ॥ यह कहते २ नरशार्दूल भरतजीकी वाणी गद्गद हो आई वह क्रोधमें भरे भुजंगकी समान लंबे २ श्वास लेनें लगे तब उनके नेत्र लाल हो आये ॥ २८ ॥ महामति महर्षिभरद्वाजजी भरतजीको इस प्रकारसे कहते देखकर स्नेहसहित अर्थयुक्त वचन उनसे बोले ॥२९॥ हे भरत! तुम कैकेयीको दोपका भागी मत समझो, क्योंकि यह रामचन्द्रजीका वनवास परिणाममें महा सुखका हेतु होगा ॥ ३० ॥ रामचन्द्रजीके इस वनवास होनेसें देव दानव और महात्मा ऋपिगणोंका वरन सबका हितही होगा ॥ ३१ ॥ यह कहकर महर्षि भरद्वाजजीनें आशिर्वाद दिया भरतजी उनकी कृपाको पा कृतार्थ हो उनकी सलाह ले प्रदक्षिणा कर सब सैनाको यात्राके लिये तै-

यार होनेकी आज्ञा देते हुये ॥ ३२ ॥ उस समय वह सैनिक जन अनेक प्रकारके सुवर्ण भूषित दिव्य रथोंमें उत्तम घोडे जोतकर प्रस्थान करनेंके लिये उसमें आरोहण करते हुए ॥ ३३ ॥ सोनेकी कीलबंधन रज्जु और पताका विशिष्ट हाथी और हथनिये गरमीके अंतमें शब्दायमान मेघ मंडलीकी समान दशों दिशाओंको निनादित करती हुई चलीं ॥ ३४ ॥ छोटे बडे अनेक प्रकारके बडे मूल्यवाले यान और सवारियें चलीं और पैदल लोग पैदल चलने लगे ॥ ३५ ॥ अनन्तर कौशल्याजीसे आदि लेकर सब राजाकी स्त्रियें प्रमुदित हो रामचन्द्रजीके दर्शनकी कामनासे श्रेष्ठ २ यान व सवारियोंपर चढ २ कर चलीं ॥ ३६ ॥ श्रीमान्! भरतजी सपरिवार तरुण चंद्र और सूर्यकी समान देदीप्यमान शोभा युक्त पालकीपर सवार होकर चलने लगे ॥ ३७ ॥ वह हाथी घोडे करकै युक्त बडी सैना वहांसे दक्षिण दिशाको चली जैसे उसी दिशामें मेघ उठनेसें शोभा होतीहै ऐसेही यह सैना शोभायमान होने लगी॥ ३८ ॥ यह बडी भारी सैना चलनेके समय भागीरथी गंगाजीके पश्चिम किनारे पर्वत और नदी नाले युक्त मृग पक्षियोंसे सेवित शोभायमान वनको नांघकर चली ॥३९॥

सासंप्रहृष्टद्विपवाजियूथावित्रासयंतीमृगपक्षि
संघान् ॥ महद्वनंतत्प्रविगाहमानाारराजसे
नाभरतस्यतत्र ॥ ४० ॥

सेनामें जो हाथी और घोडेथे वह बहुतही प्रफुल्लित होगये व वनके मृग और पक्षी समूह इस सैनाको देख अधिक भयभीत हुए उस काल भरतजीकी विपुल वाहिनी महावनमें प्रवेश करकै परम शोभा विस्तार करती हुई ॥ ४० ॥ इ०श्रीम०वा०आ०अ०द्विनवतितमःसर्गः ॥ ९२ ॥

त्रिणवतितमः सर्गः ॥

तयामहत्यायायिन्याध्वजिन्यावनवासिनः ॥
अर्दितायूथपामत्ताःसयूथाःसंप्रदुद्रुवुः ॥ १ ॥

जब उस महा सेनाने इस भांति प्रस्थान किया तब वनवासी यूथपति मतवाले सब हाथी उस सैनासे पीडा पाकर अपने २ झुंडोंको सं-

ग ले चारों ओरको दौडे ॥ १ ॥ नदियोंके तीर पर पर्वतोंके शिखर पर और वनोंमें रीछ वुन्दकियोंवाले मृग यह सब जीव सब दिशा ओंमें व्याकुल भावसे दौडते हुए दृष्टि आये ॥ २ ॥ दशरथकुमार महात्मा भरतजी गर्जन करके धावमान होती हुई असंख्य चतुरंगिणी सेनाके साथ प्रसन्नमनहो चलने लगे ॥ ३ ॥ जिस प्रकार वर्षाकालमें मेघ आकाश मंडलको ढक लेतेहैं वैसेही महात्मा भरतजीकी सागरकी समान लहरें लेती हुई वडी भारी सैनासे पृथ्वी पूर्ण होगई ॥ ४ ॥ उस काल महावलवान हाथी और घोडोंके झुंडसे भलीभांति ढकी हुई पृथ्वी वहुत दूरतक व्याप्त होनेसे देख नहीं पडतीथी ॥ ५ ॥ वहुत चले आकर सव वाहन वहुतही थक गये तव श्रीमान् भरतजीनें मंत्रि श्रेष्ठ वशिष्ठजीसे कहा ॥ ६ ॥ हे भगवन् ! जैसा कि हम देखतेहैं और जैसा सुनाहै और जिस प्रकारकी स्वयं भरद्वाज जीनें इस देशके चिह्न वतायेथे उससे साफ मालूम पडताथा कि हम अपनें मनमाने स्थान पर पहुंच गये ॥ ७ ॥ महाराज देखो यह वही चित्रकूट पर्वत है, यह वही मन्दाकिनी नदीहै और दूसरे नीले वादरों की समान यह वही वनभी दिखाई देताहै ॥ ८ ॥ देखिये इस समय हमारे पर्वताकार हाथी चित्रकूटके रमणीय सब स्थानोंको पीडित कर रहेहैं ॥ ९ ॥ यह देखिये जिस प्रकार वर्षाऋतुमें सजल श्याम जलधर मंडल पानी वर्षातेहैं वैसेही वृक्ष सव इस समय हाथियोंकी सूंडोंके आघातसे हिलकर पर्वतके कंगूरों पर फूलोंकी वर्षा कर रहेहैं ॥ १० ॥ हे शत्रुघ्न ! किन्नरोंके रहनेके स्थानको देखो हमारी सैनाके घोडे जो चारों ओर फैल गयेहैं उससे यह स्थान वडे मकरों करकै पूर्ण समुद्रकी समान शोभा पा रहाहै ॥ ११ ॥ शरत्कालमें वायु वेगसे चलते हुए मेघोंके झुंड जिस प्रकार आकाश मंडलमें शोभा पातेहैं वैसेही समस्त शीघ्रगामी सेनासे चलाये जाकर मृग गण शोभायमान होरहेहैं ॥ १२ ॥ नीले जलधरसदृश, प्रकाशमान नीली ढालें जैसे दक्षिणके लोग शिर पर धरे रहतेहैं वैसेही यह हमारी सैनाके लोग शिरोंपै कैसे महकदार काले फूलोंके गुच्छे धरेहैं ॥ १३ ॥ यह स्वभावसेही निर्जन शब्द रहित देखे जानें परभी इस समय हमारे आगमनसे मनुष्योंसे भरी पुरी

अयोध्या पुरीके समान प्रतीत होताहै ॥ १४ ॥ घोडोंकी खुर तालोंसे उडी हुई धूलके समूहसे आकाश ढक गयाहै मानों पवन हमारा हित ही साधन करनेके लिये उस धूलको शीघ्र आकाशमें उडा लेजाती है ॥ १५ ॥ हे शत्रुघ्न ! देखो प्रधान २ सारथियोंके बैठनेसे यह घोडे जुते हुए सब रथ वनमें अति शीघ्रतासे चले जातेहैं ॥ १६ ॥ यह देखो प्रिय दर्शन मोर डरके मारे कैसे चले जातेहैं, व ऐसेही और पक्षीभी अनेक स्थानोंसे उठे हुए जा रहेहैं ॥ १७ ॥ यह स्थान बहुतही मनोहर और परम सुन्दर लगताहै तपस्वी लोग यहां रहा करतेहैं इस कारणसे यह मार्ग स्वर्गकी समानहै ॥ १८ ॥ यह देखो वनके नीचे चितेरे मृग अपनी २ हिरनियोंके साथ मिलकर ऐसे मनोहर दिखाई देतेहैं मानों फूलोंसे सजादियेहैं ॥ १९ ॥ हे सेनाके लोगो ! तुम लोग इस समय विधि विधानसे जाकर जिस्से कि पुरुषोत्तम रामचंद्र व लक्ष्मणजी मिल जांय ठौर २ पर खोजकरो, और सब वनको जरा २ करके देखो ॥ २० ॥ शस्त्रधारण किये शूरवीर पुरुषोंने जब भरतजीकी यह आज्ञा सुनी तो उसी समय वनमें प्रवेश करके उन्होंनें एक जगह धुँआं उठता हुआ देखा ॥ २१ ॥ धुएं को उठता हुआ देखकर वह लोग लौटे और भरतजीसे आनकर निवेदन किया कि जहां मनुष्यका समागम नहीं वहां अग्नि किस प्रकार हो सकतीहै । इस कारण से स्पष्ट बोध होताहै कि निश्चयही यहां राम लक्ष्मणहैं ॥ २२ ॥ अथवा वह शत्रुओंके दमनकरनेवाले पुरुषसिंह रामचंद्र महाबलवान लक्ष्मणजी नहों तब रामचंद्रजीके तुल्य कोई दूसरे तपस्वी लोग यहां होंगे इसमें तो कोईभी सन्देह नहींहै॥२३॥ शत्रुओंके बलको मथन करने वाले भरतजी सेनाके लोगोंके यह न्यायानुसार वचन सुनकर उनसे बोले ॥ २४ ॥ तुम सब लोग स्थिर और सावधान होकर यहीं टिके रहो यहांसे आगे न जाना मंत्री सुमंत्र और धृति मंत्रीके साथ हमही अकेले आगेको जांयगे अशोक मंत्रीका नाम धृति भीथा॥२५॥सेनाके लोग इस वार्त्ताको सुनकर इधर उधर टिक रहे तब भरतजीने वहां पर दृष्टि डाली जहां कि धुंआ उठता दिखाई देताथा॥२६॥

पिचभूमिमग्रतः ॥ बभूवहृष्टानचिरेणजा
नतीप्रियस्यरामस्यसमागमंतदा ॥ २७ ॥

उसकाल भरतजीकी आज्ञानुसार सैना यथा विधि टिक रही और सामनेही धुयेंको उठता हुआ देखकर उन्होंने समझ लिया कि परम प्रीति भाजन रामचंद्रजीसे अब मिलने में देर नहींहै यह विचार कर वह लोग परम प्रफुल्लित हुए ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे त्रिनवतितमःसर्गः ॥ ९३ ॥

चतुर्णवतितमः सर्गः ॥

दीर्घकालोषितस्तस्मिन्गिरौगिरिवरप्रियः ॥
वैदेह्याःप्रियमाकांक्षन्स्वंचचित्तंविलोभयन् ॥ १ ॥

गिरिवर चित्रकूटके प्रियकारी श्रीरामचंद्रजी बहुत समयसे उस पर्वत पर वास करते रहे जानकीजीका प्रिय करने व अपने चित्तको लुभाने के कारण ॥ १ ॥ जैसे शचीनाथ इन्द्रजी इन्द्राणीको नंदन वनकी शोभा दिखातेहैं वैसेही जानकीनाथ भार्या जानकीजीको चित्र विचित्र चित्रकूट की शोभा दिखाने लगे ॥ २ ॥ रामचंद्रजी बोले कि हे भद्रे ! इस रमणीय चित्रकूटकी शोभाको देखकर क्या राज्य नाश, क्या भाई बन्धुओंसे विछडना इन सब किसी बातोंसे या और किसी कारणसे अब मेरा मन कुछभी दुःखित नहींहै ॥ ३ ॥ हे कल्याणि ! देखो अनेक प्रकार विहंगोंके समूह इस पर्वतके वनमें वास करतेहैं, और विविध धातुओंके द्वारा रंगीले शिखर मानों आकाशको भेद करके इस पर्वतकी शोभाको बढा रहेहैं ॥ ४ ॥ इस पर्वतके कोई २ शृंग तो चांदीके समान चमकीलेहैं कोई शिखर रुधिरकी समान लालहैं कोई २ शिखर पीले और मंजीठकी लताके समान लाल रंगके और कोई २ इन्द्र नीलमणिकी प्रभाके समान हैं ॥ ५ ॥ इस पर्वतराजके समान पुष्पराग स्फटिक और केतकी कुसुमके समान रंगके और कोई २ नक्षत्रों के और पाराके रंगकी समान विराजते हैं ॥ ६ ॥ पुष्टताको छोडे शान्त स्वभाव अनेक भांतिके मृग, केहरी शेर चीते आदि और री-

छोंके समूह व और अनेक प्रकारके विहंगमों करके होनेंसे इन गिरि राज चित्रकूटने अति मनोहर शोभा धारण कीहै ॥ ७ ॥ अधिकाईसे आम जामन असना लौंग चिरोंजी, कटहर अंकुहर तिमिश वेल तेंदुआ वांश ॥ ८ ॥ काश्मरी नींव वरुण, महुआ, तिलक, बेर, आंवला' कंदव, बेंत, बिजोरा, नींबू ॥ ९ ॥ इनसे आदि लेकर और अनेक प्रकारके फूल और छाया, युक्त मनोहर वृक्षोंके समूह करकै व्याप्त होनेसे यह चित्रकूट पर्वत शोभा विस्तार कर रहाहै ॥ १० ॥ हे भद्रे! यह देखो रमणीय पर्वतके कंगूरों पर मनस्वी किन्नर के जोडे सब काम हर्षण देशोंमें विहार कर रहे हैं जहां इनकी सब इच्छा पूर्ण होती हैं इसीकारण यह प्रसन्न हैं ॥ ११ ॥ किन्नरों के श्रेष्ठ खड्ग और विद्याधरोंकी स्त्रियोंके विचित्र वस्त्र सब मनोहर क्रीडा करनेंके स्थानों में वृक्षोंकी टहनियों पर लटक रहे हैं, सो तुम देखो! ॥ १२ ॥ स्थान २ पर झरनोंके झरनें से और सोते जो पृथ्वीको भेद कर निकले हैं उनके वहनेंसे यह गिरिवर मद चूते हुए हाथी की समान शोभा पा रहा है॥१३॥ यह देखो! समीर गुफाओंके मुखसे निकल अनेक प्रकारके फूलोंकी विविध भांति की सुगन्धि लाकर नासिका को तृप्त कर रहीं हैं सो इस पवन के लगनें से किसको हर्ष नहीं होता? ॥ १४ ॥ अयि अनिन्दिते! हम तुम्हारे और लक्ष्मण के सहित यदि बहुत वर्षों तक भी यहां वास करैं तो भी शोक हमारे मनको बाधा नहीं करैगा ॥ १५ ॥ हे भामिनि! बहुविध पुष्प फल सम्पन्न, अनेक जातिके पक्षियों करके परिपूर्ण और विचित्र शिखर युक्त यह रमणीय चित्रकूट हमको बहुत प्रसन्न कराता है ॥ १६ ॥ इस वनवासके द्वारा हमको दो फल प्राप्त हुए प्रथम तो सत्य धर्म पालन करके पिताजीके प्रणको चुकाया, दूसरे भरतजी परम प्रसन्न हुए ॥ १७ ॥ हे जानकि! हमारे साथ इस चित्रकूट पर्वत पर मनोवाक और देहानुकूल विविध परम प्रीति कर नये२पदार्थ देख तुम्हारे चित्त को भी आनंद देता है ॥ १८ ॥ हे राज्ञि! राजर्षियोंनें राजा ओंके लिये इस प्रकारसे नियम सहित वनवास करने को अमृत की समान कहा है, हमारे पुरुषा मनु आदिकों ने भी वनवासको परलोकका मंगल करने वाला कहा है ॥ १९ ॥ यह देखो! चारो ओर पर्व-

त नाथ चित्रकूटकी सैकडों विशाल चित्र विचित्र शिलायें सफेद, पीली, नीली, लाल लाल, विविध भांतिके रंगोंसे शोभा पारही हैं ॥ २० ॥ रात्रिमें इस पर्वत राज पर हजारों ओषधि व लतायें सब अपनी २ प्रभासे दीप्त हो प्रज्वलित अग्निकी शिखाके समान बहुतही शोभा विस्तार करतीहैं ॥ २१ ॥ हे भामिनि! यह देखो इस पर्वतके कोई २ स्थानतो गृहकी समान हैं, कोई फुलवाडियों के समान हैं और कोई स्थान बहुत मनुष्योंके रहनें योग्य हैं क्योंकि वह एक चटानहीसे शोभित होकर परम शोभा विस्तार करते हैं ॥ २२ ॥ स्वयं चित्रकूट भी मानों पृथ्वी को भेद करके ऊपर को उठकर विराजमान हुआ है । यह देखो! यह चित्रकूटकेही सब शृंग सब ओर शोभायमान दृष्टि आते हैं ॥ २३ ॥ यह देखो यह कमलनयनी! कमल व पुत्रजीवक व भोजपत्रादि वृक्षोंके पत्तोंके गुच्छे देखो तो कामी लोग इन कमलोंके दलौंके बिछौना बिछाते हैं ॥ २४ ॥ हे जानकि! यह दे देखो कामीजनों के पहरनेंसे मलगिजि और त्यागी हुई कमलके फूलोंकी माला सब इधर उधर पडी हैं और वहां अनेक प्रकारके फल फूल भी इधर उधर पडे हैं ॥ २५ ॥ विविध भांतिके मूल फल और स्वच्छ जल सम्पन्न यह चित्रकूट पर्वत कुबेरजीकी अलकापुरी और इन्द्रजीकी अमरावती व उत्तरकुरु देशका अनादर करता शोभा पा रहा है ॥ २६ ॥

इमंतुकालंवनितेविजह्रिवांस्त्वयाचसीतेसहलक्ष्मणेन ॥ रतिंप्रपत्स्येकुलधर्मवर्धिनींसतांपथिस्वैर्नियमैःपरैःस्थितः ॥ २७ ॥

आर्य प्रिय सीते! यदि हम इस चौदह वर्षके वनवास में तुम्हारे और लक्ष्मण जीके श्रेष्ठ नियमानुसार साधु ओंकी पदवी का आश्रय करके इस चित्रकूट पर विहार करने पावें तो कुल और धर्म दोनोहीकी परम उन्नति करके सुखी हो सकेंगे ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अ० चतुर्नवतितमः सर्गः ॥ ९४ ॥

पंचनवतितमःसर्गः ॥

अथशैलाद्विनिष्क्रम्यमैथिलींकोशलेश्वरः ॥

अदर्शयच्छुभजलांरम्यांमंदाकिनींनदीम् ॥ १ ॥

अनन्तर कौशल पति रामचन्द्रजी पर्वतकी शोभा दिखानेसे निवृत्त हो शुभ जल वाली रमणीय मन्दाकिनी नदी दिखाने लगे ॥ १ ॥ श्री कमल नयन करुणाअयन श्रीरामचन्द्रजी सुन्दर चन्द्रमाकी समान मुख वाली स्त्रियोंमें श्रेष्ठ जनककुमारी से कहने लगे ॥ २ ॥ हे प्रिये! हंस और सारस पक्षियों करके सेवित फूल वाली विचित्र किनारे युक्त रमणीय मन्दाकिनी नदीको देखो ॥ ३ ॥ किनारोंपर भांति२ के फूल, फल के पेड उत्पन्न होनेसे यह मन्दाकिनी कुबेर की पुरीके समान विराजमान है ॥ ४ ॥ इस नदी के सवही घाट अति मनोहर हैं यह मुझको बहुत ही प्रीति उपजा रहे हैं अभी मृग यूथ इन घाटों पर जल पीकर गये हैं इस्से वहां का जल गदला हो रहा है ॥ ५ ॥ हे प्रिये! यह देखो जटा और मृग चर्म धारण किये ऋषि लोग वृक्षों की छाल व पत्ते पहरे यथा समयमें इस मंदाकिनी के जलमें स्नान करते हैं ॥ ६ ॥ हे विशालाक्षि! इस ओर यह सब दृढ व्रत धारण किये मुनि लोग नियमके वश हो ऊपरको बांह उठाये सूर्य भगवानकी उपासना में लग रहे हैं ॥ ७ ॥ मृदु मन्द समीरके हिल्लोलसे चित्रकूटके शिखरोंपरके पेड कांपकर इस नदीके इधर उधर फूलों के ढेर छोड रहे हैं इस्से ऐसा जान पडता है मानों यह चित्रकूट पर्वत नृत्य करकै पुष्पांजलि दे रहा है ॥ ८ ॥ देखो कहीं २ इस मन्दाकिनी का जल मणिकी समान उज्वल है, कहीं २ रेती शोभा देरहीं हैं और कहीं २ सिद्ध लोग बैठे तप करते हैं ॥ ९ ॥ आर्ये पतली कटिवाली! यह फूलोंके ढेर के ढेर कुछतो जल में पडे हैं और हवासे चालित होकर बहे जाते हैं और कुछ जलके ऊपरही तैरते हैं सो तुम देखो; ॥ १० ॥ हे कल्याणि! इस ओरको देखो! चारुभाषी चक्रवाक सब मीठे २ वाणीसे बोलते हैं और कछाडमें बैठे हैं ॥ ११ ॥ हे शोभने! अयोध्यामें रहने से हमको इस चित्रकूटके तुम्हारे और मंदाकिनी के देखनें से कहीं चढ वढ कर सुख होता है ॥ १२ ॥ तपस्या और शम दम करने से निष्पाप सिद्ध पुरुष लोग नित्य जिसके जल में स्नान करते हैं सो इस समय तुम हमारे सहित ऐसी मन्दाकिनी नदीमें स्नान

करो ॥१३॥ हे भामिनी लाल कमल और सफेद पद्मोंको जल में डुबाती हुई इस मन्दाकिनी नदीमें तुम सखीकी समान निर्भय स्नान करो ॥ १४ ॥ हे सीते! तुम यहांके व्यालोंको पुरजनोंकी समान गिरि चित्रकूटको अयोध्याकी समान और इस मन्दाकिनी नदीको सरयूकी समान मनमें समझो ॥ १५ ॥ हे वैदेही! लक्ष्मणजी परम धर्मात्मा हैं और हमारी आज्ञा के पालनेवाले हैं और तुमभी हमारी अनुकूल भार्याहोकर सदा ही हमें प्रसन्न करती रहती हो ॥ १६ ॥ इस प्रकार तुम्हारे सहवासमें रह रात्रि काल स्नान व मधुपान और कंद मूल फल भोजन करके अब हमको अयोध्या वा राज्यकी कुछ भी इच्छा नहीं है ॥ १७ ॥ गज यूथ करके मथित, सिंह, मातंग, और वानर गणों करके जिसका जल पिया गया ऐसी पुष्पित वनवाली, फूलोंके समूहसे शोभायमान कुसुमनिकर विभूषिता इस रमणीय मन्दाकिनी नदी में स्नान करके ऐसा कोई पुरुष नहीं है जो सुखी और थकावट रहित न हो जाय ॥ १८ ॥

इतीवरामोबहुसंगतंवचःप्रियासहायःसरितंप्र
तिब्रुवन् ॥ चचाररम्यंनयनांजनप्रभंसचित्र
कूटंरघुवंशवर्धनः ॥ १९ ॥

रघुवंशके बढानेवाले श्रीरामचन्द्रजी मन्दाकिनीके माहात्म्य में ऐसे २ अनेक वचन कहते नयनाञ्जनकी समान रमणीय चित्रकूट पर प्रिया जानकीजीके साथ विचरण करने लगे ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अ० पंचनवतितमः सर्गः ॥ ९५ ॥

प्रक्षिप्तः सर्गः १ ॥

रामस्तुनलिनींरम्यांचित्रकूटंचपर्वतम् ॥
उत्तरेतुगिरेःपादेचित्रकूटस्यराघवः ॥ १ ॥

सुन्दर कमल वाली मन्दाकिनी और चित्रकूट पर्वतको देखते २ रामचन्द्रजी चित्रकूटके उत्तरके तट पर गये ॥ १ ॥ वहां उसकी शिला और धातुओंसे युक्त सुन्दर कंदरा देखी जहांके सुन्दर वृक्ष फूलोंके बोझसे लद रहेथे और नीचेको झुक रहेथे ॥ २ ॥

वह संपूर्ण प्राणियों की दृष्टि हरनेहारा वन मतवाले पक्षियोंके समूहसे गुप्त और प्रगटथा यह देखकर ॥३॥ और वनको देखकर आश्चर्यको प्राप्त हो रामचंद्र जानकीजीसे बोले प्रिये इस पर्वतकी कंदराको देख क्या तुम्हारा मन प्रसन्न होताहै ॥४॥ यदि तुम थक गई हो तो कुछ देर यहां विश्राम करो तुम्हारे वास्ते यहां यह सुन्दर चिकनी शिला विद्यमान हैं ॥ ५ ॥ जिसके दोनो तरफ वृक्षोंके होनेसे उनके फूलोंकी केशर पडी हुईहै रामचंद्रजीके यह कहने पर स्वभावसे चतुर जानकी जी॥६॥ बहुतही नम्रतासे यह मनोहर वचन बोलीं हे रघुनंदन आपके वचन मुझे अवश्य मानने योग्यहैं ॥ ७ ॥ मैं बहुत आज फिरी चलीहूं इस्से थक गईहूं जो तुम्हारा बैठनेंका मनोरथहै तो बैठिये यह कह कर सुन्दर मुखवाली जानकी उस शिलाके निकट गईं वह सुन्दर अंगवाली स्वामीके संग विहार करनें की इच्छासे बैठीं उन बुद्धिमती जानकीजीको देखकर रामचंद्रजी बोले ॥ ८ ॥ ९ ॥ प्यारी! यह सब पदार्थ फूल खिले हुए हितकारी वृक्षोंको देखो हे देवी पर्वतमें यह शोभायमान सुन्दर फूलोंसे युक्त ॥ १० ॥ हाथीके दांत लगनेसे जिनकी छाल छिल गईहैं उसमेंसे गोंद निकलताहै ऐसे वृक्षोंको देखो जिसमें अनेक प्रकारके पक्षी (कोकिलादि) ऊंचे स्वरसे चारों ओर बोल रहेहैं ॥ ११ ॥ यह पुत्रको प्यार करने वाला शकुनि पुत्र २ रट रहाहै जैसे पहले मेरी माता कौशल्या बहुत मनोहर और करुणा भरी वाणीसे मुझको पुकारा करतींथीं ॥ १२ ॥ यह भृंगराज नाम वाला पक्षी शाल वृक्षकी शाखा पर बैठा हुआ कोकिल सहित मानों संगीत कर रहाहै यह देखो मानों यह पक्षी कोकिलाओंके बालकोंका शब्द मुझे विदित होताहै सुखसे पूर्ण मिला हुआ यह बोलताहै यह जो खिली हुई फूलोंके बोझसे डालियें झुक रहींहैं सो ऐसा विदित होताहै कि जैसे तुम श्रमितहो मेरा आश्रय करतीहो ऐसेही यह चाहतीहैं ॥ १३ ॥ १४ ॥ १५ ॥ यह कहनेपर प्यारी बोलने वाली जानकी निन्दा रहित जिनका शरीर परम सुन्दर अपने स्वामीकी गोदीमें लेट रही ॥१६॥ वह देव कन्याओंकी समान जानकीजी जब गोदीमें लेट रहीं तब कार्यमें अर्पण किये हुए रामके मनको बहुत प्रसन्न करतीहुई ॥१७॥ उस समय रामचंद्रजीने सुन्दर मनसिलको लेकर अपने हाथसे जानकी-

जीके माथेमें सुन्दर तिलक किया ॥ १८ ॥ बालक सूर्यकी समान रंगी वाले पर्वतकी धातुके तेजसे जानकीका मुख शुक्ल पक्षकी समान प्रकाशित होने लगा ॥ १९ ॥ तब रघुनाथजीने फूलोंका परागले अपने हाथसे मलकर बडे प्रसन्नहो जानकीजीके बालोंमें लगाया ॥ २० ॥ इस प्रकारसे रामचंद्रजी उस शिलामें अनेक प्रकारसे रमणकर जानकीजीके साथ वहांसे दूसरे स्थानको चले गये ॥ २१ ॥ तहां जानकोजी जाते २ वानर यूथपको देख घबडाकर रामचंद्रजीसे चिपट गईं उस वनमें मृगादिक बहुतथे ॥ २२ ॥ बडी भुजा वाले रघुनाथजी जानकीजीको घबडाया हुआ देख उन्हें हृदयसे लगा समझाने लगे और उस वानर यूथपको घुडक दिया ॥ २३ ॥ वह जो मनसिलका तिलक लगा दियाथा वह जानकीजीके लिपट जानेंसे बडे पराक्रमी रामचंद्रजीकी छातीमें लग गया॥२४॥ जब वह बडा वानर चलागया तब जानकीजी हँसने लगीं फिर अपने माथेसे छुटा हुआ मनसिलका तिलक रामचंद्रजीकी छातीमें लगा देखा२५॥ फिर थोडीही दूर अशोक वृक्षोंके वनकी अग्निकी कान्तिके समान देखा और यहभी देखाकि उनके गुच्छे वानर तोड रहे और किलकारी मार रहेहैं ॥ २६ ॥ जानकीजी अशोक वृक्षके गुच्छे लेनेंकी इच्छासे रामचंद्रजीसे बोलीं, हे रघुनंदन! मैं उस वनमें जानेकी इच्छा करतीहूं ॥ २७ ॥ उन देव कन्याओंकी समान रूपवाली जानकीके प्रिय करनेको रामचंद्र उधरको चले और वह शोक रहित जानकीजीके साथ उस अशोक वृक्षके वनमें पहुंचे ॥ २८ ॥ तब रामचंद्रजी जानकी सहित उन अशोक वनमें विचरने लगे जिस प्रकार हिमालयके वनमें शिवजी पार्वती सहित विचरतेहैं ॥२९॥ वे दोनों परस्पर एक दूसरेको अशोक वृक्षके नये पत्ते गुच्छे फूल एक दूसरेको पहराकर सजाने लगे वे उन दोनों कामियोंको जो श्याम और गोरे वर्णथे शोभित करते हुए ॥ ३० ॥ उन दोनोंने वन मालाकर बना गलेमें पहरली वे दोनों स्त्री और पुरुष परस्पर एक दूसरेको अत्यन्त शोभित करते हुए ॥ ३१ ॥ इस प्रकार महाराज रामचंद्रजी प्रियाको अनेक स्थान दिखाते हुए अपने सुन्दर शोभायमान आश्रममें आये ॥ ३२ ॥ इनके पीछे बडे भाईसे प्रेम करनेवाले भाई लक्ष्मणजीभी चले, उस समय पुण्यरूप लक्ष्मणजी विविध धर्म दिखलाते

हुए चले आये ॥ ३३ ॥ उस समय बाणसे मारे हुए दश पवित्र काले मृग अच्छी प्रकारसे सुखाये हुये अग्निमें पक्क किये हुए लक्ष्मणजीने तैयार कर रक्खेथे और अनेक वस्तु तैयार करलीथीं ॥ ३४ ॥ भाईका यह कार्य देखकर रामचंद्र बहुत प्रसन्न हुए और जानकीजीसे बोले कि अब बलि कर्म करना उचितहै ॥ ३५ ॥ सुन्दर महाराणी जानकीजी प्रथम प्राणियोंके निमित्त बलिप्रदान करके पीछे दोनों भ्राताओंको वह शहत और मांस देती हुई ॥ ३६ ॥ जब वह दोनों भाई महावीर भोजन कर कुल्ला आदि करके पवित्र हुए पीछे जानकीजीनें आपभी कुछ थोडासा भोजन किया ॥ ३७ ॥ बाकी जो निकृष्ट मांस बचरहा वह सुखानेको रख दिया और रामके कहनेसे जानकी कौओंसे उसकी रक्षा करनें लगीं ॥ ३८ ॥ तब रामचंद्रजी देखने लगे कि जानकीको कौये दिक करने लगे कि यथेच्छ फिरने वाला एक कौआ उस मांसके भोजन करनेको आया ॥ ३९ ॥ उस कौयेने जानकीको बहुत दिक किया और वह मोहको प्राप्त होगई और स्वामीके प्रणयसे दर्पित हुई जानकी उस कागके ऊपर बडी क्रोधित हुई ॥ ४० ॥ इधर उधर उस काकको जाकर निवारण करने लगीं और वहभी उन क्रोध स्वभाववालीको पंख चोंच नखूनोंके मारनेसे क्रोध दिलाता हुआ ॥ ४१ ॥ उस्से जानकीके होठ फडकने लगे भ्रुकुटी टेढी होगई मुख लाल होगया यह देखकर रामचंद्रनें उस कौयेको फटकारा ॥ ४२ ॥ वह धृष्ट कौआ रघुनाथजीका निरादर करके जानकीके ऊपर आघात करने लगा यह देखकर रघुनाथजीको बडा क्रोध हुआ ॥ ४३ ॥ तत्काल रामचंद्रने एक सीक उठाकर बलवान तो थेही ऐषीक अस्त्रसे उसे संयोजित करके कौएको निशाना बनाकर पुरुष सिंहने उसके ऊपर बाण छोडा ॥ ४४ ॥ उस बाणके डरसे भागता हुआ वह कौआ त्रिलोकीमें घूमता फिरा वह हारके भीतर फिरने वाला पक्षी देवताओंसे वरदान पाये हुयेथा ॥ ४५ ॥ जहां २ वह आजाताथा तहां २ उस बाणको देखताथा अग्निकी समान इषीका अस्त्र उसके पीछे फिरताथा जब कहीं नहीं ठिकाना लगा तब फिर रामचंद्रके पास आया ॥ ४६ ॥ वह महात्मा रामचंद्रके चरणोंमें आकर अपना शिर रख देता हुआ और जानकीके देखते २ मनुष्य वाणीसे यह बोला ॥ ४७ ॥

हे रामचंद्र मेरे ऊपर प्रसन्न होकर मुझे प्राण दान दीजिये मुझे इस अस्त्र-के प्रभावसे त्रिलोकीमें कहीं शरण नहीं मिली ॥ ४८ ॥ उस कौयेको रामचंद्र पैरोंमें पडा हुआ देखकर महा बुद्धिमान उसके ऊपर दया करके कहने लगे क्योंकि वह सब वार्त्ताको जानतेथे ॥ ४९ ॥ सीताके हित करने वाले मैंने क्रोधको प्राप्त होकर तेरे मारनेके निमित्त इस अस्त्रका प्रयोग कियाहै ॥ ५० ॥ अब तू जो जीनेंकी इच्छासे मेरी शरण आयाहै और मेरे चरणोंमें अपना शिर रक्खाहै तो इस कारण तेरे शरण आजानेसे अब मैं इस बाणसे तेरी रक्षा करूंगा ॥ ५१ ॥ और मेरा बाणभी अमोघहै खाली नहीं जाता इस कारण तेरे किसी एक अंगका अवश्य नाश होगा बतला कि तेरा कौनसा अंग नष्ट किया जाय ॥ ५२ ॥ बसहे काक इतनाहीं मैं तेरा प्रिय कर सकताहूं इस अस्त्रकी भेंटमें प्राण खोनेके बदले कोई एक अंग देनाअच्छाहै ॥ ५३ ॥ जब रामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब वह पक्षी विचारकर दो आंखोंमेंसे एक आंखका देना स्वीकार करता हुआ कहाभीहै "जो धन जाता जानिये, आधा दीजे बांट"॥५४॥ यह विचार कर कौआ बोला हे राम मैं एक आंख देना पसन्द करताहूं हे नरों में श्रेष्ठ मैं आपकी कृपासे एक आंखसेही जीवन धारण करता रहूंगा ॥ ५५ ॥ तब वह रामका छोडा हुआ अस्त्र उसकी आंखपर गिरा कौयेकी एक आंख फूट जानेसे जानकीजी बडी विस्मित हुईं ॥ ५६ ॥

निपत्यशिरसाकाकोजगामाशुयथेप्सितम् ॥
लक्ष्मणानुचरोरामश्चकारानंतराक्रियाः ॥ ५७ ॥

कौआ रामचंद्रको प्रणाम कर शिर झुका अपने स्थानको चलागया लक्ष्मणके सहित रामचंद्रजी शेप कार्य संपादन करने लगे ॥ ५७ ॥ यह सर्ग क्षेपकहै ॥ इति श्रीम० वा० आ० अ० प्रक्षिप्तः सर्गः ॥ १ ॥

षण्णवतितमः सर्गः ॥

तांतदादर्शयित्वातुमैथिलींगिरिनिम्नगाम् ॥
निषसादगिरिप्रस्थेसीतांमांसेनछंदयन् ॥ १ ॥

उस समय श्रीरामचंद्रजी जनककुमारी सीताजीको पहाडी नदी म-

न्दाकिनीके दर्शन कराकर चटानपर बैठ गये वह मंत्रोंसे पवित्र मांस सीताजीको दिखाय कहने लगे ॥ १ ॥ हे जानकी यह मांस अति पवित्रहै और स्वाद युक्तहै और अग्निमें भी भलीभांति पकाया गयाहै धर्मात्मा रामचंद्रजी सीताजीसे यह कहतेहुये चित्रकूट पर्वतकी चटानपर बैठेहैं॥२॥ कि इतनेही में उनके समीप आती हुई भरतजीकी सेनाके चलनेसे उडी हुई धूल दिखाईदी और सैनाका कुलाहलभी आकाशको व्याप्तकर श्रवण गोचर हुआ ॥ ३ ॥ इस अवसरमें वह महा शब्द सुन करके यूथपति मतवाले हाथी डरकर और व्याकुल चित्त होकर अपने २ झुंडको ले २ कर चारों ओरको भाग-खडे हुये ॥ ४ ॥ राम रघुनंदनजीने उस सेनाके उठे हुए महा हाहाकार शब्दको सुना और दौडते घबडाते हुए यूथपति हाथियों को इधर उधर भागते हुए भी देखा ॥ ५ ॥ सब जीवोंको भागते देख, और यह महाकुलाहल सुनकर श्रीरामचंद्रजी तेजसे प्रकाशमान सुमित्रानंदन लक्ष्मणजीसे कहने लगे ॥ ६ ॥ हे लक्ष्मण ! सुमित्रा देवी तुमसे पुत्रको पाकर सुपुत्रवती हुईहैं । इस समय देखो तो भयंकर बादलके गर्जनेकी समान गंभीर तुमुल शब्द कहांसे आताहै ॥ ७ ॥ यह देखो सघन वनके बसनेवाले मृग भैंसे, हाथियोंके समूह, सिंह गणोंके सहित महाभीत होकर सहसा दशों दिशाओंको भागे जातेहैं ॥ ८ ॥ हे सौमित्रे ! यातो कोई राजा या राजकुमार वनमें शिकार खेलनेको आयाहै या और किसी वनैले जीवसे ऐसा उत्पात हो रहाहै जो कुछहो इसका वृत्तांत तुम्हें जानना उचितहै ॥ ९ ॥ हे लक्ष्मण ! इस चित्रकूट पर्वत पर तो पशु पक्षीभी सरलतासे नहीं घूम घाम सकतेहैं; फिर किसने आकर यहां ऐसा उत्पातमचाया अतएव तुम सब हाल ज्योंका त्यों जानकर शीघ्र यहां आवो॥१०॥ लक्ष्मणजीने बहुत शीघ्रतासे एक फूले हुये शालके पेड पर चढ चारों ओर देख फिर पूर्व दिशाकी ओर दृष्टि डाली ॥ ११ ॥ जब उधर कुछ न देखा फिर उन्होंने उत्तर दिशाकी ओर निहारा तब उस उपद्रव क कारण देखा, कि हाथी, घोडे, रथों करके युक्त सजी सजाई पैदलों करके सहित एक बडी भारी सैना चली आतीहै ॥ १२ ॥ लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीसे हाथी घोडों करके पूर्ण रथकी पताकाओंसे भूषित उस से-

नाका वृत्तान्त निवेदन करके कहने लगे ॥ १३ ॥ कि आप जल्दी अग्निको बुझाकर धनुष बाण कवच बख्तर आदि धारण कीजिये और जब तक आप इस सेनाका नाशकरें तब तक जानकीजीभी किसी गुहामें बैठी रहें ॥ १४ ॥ पुरुषसिंह श्रीरामचंद्रजीने प्रति उत्तर दिया कि—हे वत्स सौमित्र! यह तो तुम भलीभांति देखलो कि यह सेना है किसकी इसके चिह्न देखकर विचार करो ॥ १५ ॥ रामचन्द्रजीके ऐसे वचन सुन लक्ष्मणजी क्रोधसे अग्निकी समानहो, उस सेनाको मानों जलानेके लिये यह बोले ॥ १६ ॥ साफ दृष्टि आताहै कि कैकेयीकुमार भरत राज्य पाकर अब उसको अकंटक भोग करनेके लिये हम दोनो जनोंको मार डालनेके अर्थ यहां आतेहैं ॥ १७ ॥ देखिये यह जो बहुत बडा शोभायमान वृक्ष ठीक२दीख पडताहै उसकेही समीप रथके ऊपर यह उजले२ स्कंध धारण किये कोविदारकी ध्वजा विराजमान हो रहीहै ॥ १८ ॥ यह देखिये! घुडसवार लोगभी बडे २ धावा मारनें वाले शीघ्रगामी घोडों पर सवार होकर इसी ओरको चले आतेहैं; और हाथियोंके सवारभी परम हर्षसे अपना २ चिह्न धारण किये हाथियोंपर सवार हुए विराजमानहोरहेहैं ॥ १९ ॥ इस्से भलीभांति माल्म होताहै कि यह भरतजीकीही सेनाहै। हे वीर! हम दोनों जन इस धनुष बाणको ग्रहण करके इस पर्वत परही बैठे रहैं अथवा दोनों जन कवच धारण करके हथियार लगाये तैयार इसी स्थानपर बैठे रहैं ॥ २० ॥ कोविदार ध्वजा धारण करने वाले भरतजी निश्चयही युद्धमें हमारे वशमें होजाँयगे यह बड़ेही हर्षकी बातहै। जिनके कारण हम लोगोंपर यह महाकष्ट आनकर पडा है आज देखेंगे कि वह भरत कैसेहैं? ॥ २१ ॥ हे रघुनंदन! आप हम व सीताजी जिनके लिये महा कठोर खोटी दशामें पड़ेहैं और विशेष करके आप जिनके लिये निरन्तर राज्यसे च्युत हुयेहैं ॥ २२ ॥ हे वीर! इस समय वही परमशत्रु भरत यहां पर आयेहैं सो उनको मारही डालिये क्योंकि यह वध करनेकेही लायकहैं, हमको तो भरतके वध करनेमें कोई दोष नहीं दृष्टि आता ॥ २३ ॥ जो आदमी पहले अपकार करे उसके मार डालनेसे कोई अधर्म नहीं होता, हे रघुनंदन! भरतने हमारा प्रथमही अपकार कियाहै अतएव उनको छोड देनेसेही अधर्म होगा२४॥

भरतजीके मारे जाने पर आप विघ्न रहित होकर सब पृथ्वीका राज्य भोग कीजिये। राज्य पानेकी इच्छा किये कैकेयी आज अपने पुत्रको लड़ाईमें मराहुआ देखेंगी ॥ २५ ॥ हमारे हाथसे हाथीके तोडे हुये वृक्षकी समान भरतको मरा हुआ देख कैकेयी बहुतही दुःखित होगी हम कैकेयीकोभी बंधु बान्धवों और उस दुष्ट कुबरीके सहित मारडालेंगे॥२६॥ आज यह पृथ्वी महापापसे छूट जायगी हे मानके देनेवाले! आज यह बहुत दिनोंका क्रोध व असत्कार ॥ २७ ॥ शत्रुओंकी सेनापर छोडतेहैं जैसे कोई सूखे तिनकोंके ढेर पर अग्नि छोडे आजही चित्रकूटका वन अपने तीखे बाणोंसे ॥ २८ ॥ शत्रुओंके शरीरको काट २ उनके निकले हुए रक्तसे सीचेंगे। बाणोंसे छिन्न भिन्न हृदय हुए हाथी घोडोंको॥२९॥

श्वापदाःपरिकर्षंतुनरांश्चनिहतान्मया ॥
शराणांधनुषश्चाहमनृणोस्मिन्महावने ॥ ३० ॥
ससैन्यंभरतंहत्वाभविष्यामिनसंशयः ॥ ३१ ॥

हमारे मारे हुए इस वनमें कुत्ते घसीटेंगे, इस महावनमें बाणोंसे व धनुषसे हम ॥ ३० ॥ सेना सहित भरतको मारकर निःसन्देह उऋण होजाँयगे ॥३१॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे षण्णवतितमः सर्गः ॥ ९६ ॥

सप्तनवतितमः सर्गः ॥

सुसंरब्धंतुभरतंलक्ष्मणंक्रोधमूर्छितम् ॥
रामस्तुपरिसांत्व्याथवचनंचेदमब्रवीत् ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजी सुमित्रानंदन लक्ष्मणजीको भरतजीके प्रति ऐसे लडनेको उद्यत और बहुतही क्रोधित देखकर भलीभांति समझाते बुझाते कहने लगे ॥ १ ॥ महाबल महोत्साह भरतजी जबकि आपही आयेहैं तब धनुष तलवार और ढालसे क्या प्रयोजनहै! ॥ २ ॥ हे लक्ष्मण! हम यह प्रतिज्ञा करकै पिताजीके सत्यका पालन करैंगे, अब भरतको वधकर इस दुर्नामता युक्त राज्यको लेकर क्या करैंगे ॥ ३ ॥ भाई बन्धु या मित्र लोगोंके नाश होनेसे जो वस्तु प्राप्त होवे, हम उसको विष मिले

हुए भोजन की समान कभी ग्रहण करने की अभिलाषा नहीं करते ॥४॥ हे लक्ष्मण! हम तुमसे प्रतिज्ञा करके कहतेहैं कि केवल तुम सब भ्राताओंकेही लिये धर्म,अर्थ,काम अथवा पृथ्वीके ग्रहण करनेंकी इच्छा करतेहैं ॥ ५ ॥ हम सत्यही सत्य और हथियारोंको छू करके कहतेहैं कि, सब भ्राताओंका भलीभांति पालन और सुख साधन करनेंके लिये हम राज्यकी अभिलाषा करतेहैं ॥ ६ ॥ हे सौम्य! सागरों करके युक्त यद्यपि यह पृथ्वीभी हमको दुर्लभ नहींहै परन्तु अधर्मसे इन्द्रका पद ग्रहण करनेकोभी हमारी अभिलाषा; नहींहै ॥ ७ ॥ हे मान देनेवाले तुम्हारे बिना, भरतके बिना, और शत्रुघ्नके बिना हमको यदि कुछ सुख होताहो तो ऐसा सुख अग्निमें जल जाओ ॥ ८ ॥ हे पुरुषोत्तम! हे वीर! हमको ऐसा जान पडताहै कि प्राणोंकी समान प्यारे भाइयोंके ऊपर स्नेह रखने वाले भरत इस कुलमें बडे ही को राज्य मिलता है इस कुलधर्मको याद कर अयोध्यामें आये होंगे ॥ ९ ॥ और हे पुरुषोत्तम! जब उन्होंने यह सुना होगा कि जटा वल्कल धारण कराय हमको वनवास हुआ व संगमें जानकी जी व तुमको भी आया हुआ सुना ॥ १० ॥ तब मारे स्नेहके आक्रांतहृदय हो और शोकसे व्याकुल चित्त होकर हमको देखनेंके लिये आये हैं और किसी कारणसे उनका आना नहीं हुआ है॥ ११ ॥ वह श्रीमान भरतजी जननी कैकेयी पर क्रोध प्रकाश कर अप्रिय वचन कह पिताजीको प्रसन्न कर हमको राज्य देनेंके लिये आये हैं कुछ लडनें भिडनेंको नहीं ॥ १२ ॥ ऐसी विपत्तिके समय जब कि यह हमको देखनें के लिये आतेहैं तब वह कभी मनसे भी हमारे प्रति अहिता चरण करेंगे ऐसा समझ नहीं पडता ॥ १३ ॥ भरतजीने पहले कब तुम्हारा क्या अनिष्ट किया जो उसके लिये तुम उनसे डर कर इस प्रकार भयकी वार्त्ता कहते हो ॥ १४ ॥ भरतजीको किसी भांतिकी निठुर व अप्रिय वार्त्ता कहनी तुमको उचित नहीं है भरतजीको खोटे वचन कहने से मानो वह वचन हमको ही कहे गये ॥१५॥ जहां कैसी ही भारी विपत्ति क्यों न आन पडे पिता किसी प्रकारसेभी पुत्रका अथवा भ्राता प्राणकी समान भ्राताका, कभी वध नहीं कर सकता ॥ १६ ॥ यदि तुम राज्यही लेनेके लिये इस प्रकारकी वार्त्ता कह रहे हो तो भरत

जीसे मिलतेही हम कहैंगे कि भइया राज्य लक्ष्मणको देदो ॥ १७ ॥ हे लक्ष्मण! हम सत्यही कहते हैं जब कि भरतजीसे हम कहैंगे कि लक्ष्मणको राज्य देदो तब भरतजी निश्चयही इस बातको मान कहैंगे कि अच्छा हम राज्य दिये देतेहैं ॥ १८ ॥ धर्मशील भ्राता रामचंद्रजीके इस प्रकार कहने पर उनके हितैषी लक्ष्मणजी लाजसे संकुचित होकर ऐसे होगये मानों अपने शरीरके अंगोंमें पैठे जातेहैं ॥ १९ ॥ अनन्तर लक्ष्मणजीने लज्जित होकर उत्तर दिया कि महाराज ! हम भरतजीको ऐसा समझैंगे मानो स्वयं पिता दशरथजीही आपके देखनेको आयेहैं ॥ २० ॥ लक्ष्मणजीको शरमायाहुआ देखकर रघुनंदन महाबाहु रामचंद्रजीने कहा कि हमभी तुम्हारी बातको मानतेहैं और हमभी ऐसाही समझतेहैं कि पिताजी हमारे देखनेको आ रहेहैं ॥ २१ ॥ अथवा हमकोभी यही बात समझ पडतीहै कि वह हमको सुखके योग्य समझकर वनवासके दुःखोंको स्मरण करते हुए निश्चयही हमें अयोध्याजीको लौटानेंके लिये आयेहैं और हमको लौटाकर ले जाँयगे ॥ २२ ॥ अथवा वह रघुराज श्रीमान हमारे पिताजी अत्यन्तही सुखहीके पानेके लायक इन जनककुमारी जानकीजीको वनसे लौटाकर ले जाँयगे ॥ २३ ॥ यह देखो श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुए वायु वेगकी समान शीघ्र चलनेवाले अत्यन्त बलशाली उनके दोनों मनोहर घोडे अब भली भांति दिखाई पडतेहैं ॥ २४ ॥ यह देखो बुद्धिमान पिताजीका वह बडे डील डौल वाला वृद्ध शत्रुंजय नामक हाथी भी सेनाके आगे २ चला आताहै ॥ २५ ॥ परन्तु हे महाभाग ! पिताजीका पांडुवर्ण लोक विख्यात दिव्य छत्र देख न पडनेसे हमारे मनमें सन्देह होताहै ॥ २६ ॥ अतएव हे लक्ष्मण तुम वृक्षसे नीचे उतरकर जो हम कहैं सो करो । जब धर्मात्मा रामचंद्रजीनें लक्ष्मणजीसे इस प्रकार कहा ॥ २७ ॥ तब युद्धमें जीतनेवाले लक्ष्मणजी शालके पेडकी शाखासे नीचे उतर कर हाथ जोड श्रीरामचंद्रजीके पास आय खडे हुए ॥ २८ ॥ इस ओर रामचंद्रजीके आश्रमको किसी प्रकारकी पीडा न पहुँचे इस कारण भरतजीकी आज्ञासे सब सेना चित्रकूट पर्वतके चारों ओर बडी दूरके घेरेमें टिक रही ॥ २९ ॥

वह हाथी घोडों करके युक्त भरतजीकी सेना पर्वतके किनारे छः छः कोशतक पडी ॥ ३० ॥

साचित्रकूटेभरतेनसेनाधर्मंपुरस्कृत्यविधूय दर्पम् ॥ प्रसादनार्थंरघुनंदनस्यविरोचतेनी तिमताप्रणीता ॥ ३१ ॥

जब इस प्रकार नीतिके ज्ञाता भरतजीने रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजी की प्रसन्नताके लिये धर्मको आगे कर गर्वको त्याग इस प्रकार सैनाको टिकाया तब वह सेना अत्यन्तही शोभित होने लगी ॥ ३१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० अयोध्याकांडे सप्तनवतितमः सर्गः ॥९७॥

अष्टनवतितमः सर्गः ॥

निवेश्यसेनांतुविभुःपद्भ्यांपादवतांवरः ॥ अभिगंतुंसकाकुत्स्थमियेषगुरुवर्तकम् ॥ १ ॥

वह प्राणियोंमें श्रेष्ठ परम शक्तिमान् गुरुकी शुश्रूषा करने वाले भरत जी सैनाको इस भांतिसे टिकाकर पिताके वचनोका पालन करनेवाले श्रीरघुनंदन रामचन्द्रजीके पास पैदलही जानेकी इच्छा करते हुए ॥ १ ॥ इसी कारण भलीभांति सिखाई पढाई सब सेनाके इच्छानुसार टिकजानें पर भरतजीने भ्राता शत्रुघ्नसे कहा ॥ २ ॥ हे सौम्य ! तुम शीघ्रही बहुतसे मनुष्य और इन सब निषादोंके साथ मिलकर इस वनमें चारों ओर रामचन्द्रजीको ढूंडों ॥ ३ ॥ स्वयं निषादराजा गुहभी अपनी जाति वाले सहस्रों मनुष्योंको संगले शर धनुष और खड्ग लेकर राम लक्ष्मण-जीको इस वनमें ढूंढे ॥ ४ ॥ हमभी अपने समुदाय मंत्री नगरवासी गुरु वशिष्ठजी व ब्राह्मणोंके साथ पैदल चलकर समस्त वनमें ढूंडते हुए विचरण करेंगे ॥ ५ ॥ जबतक रामचन्द्रजीको महा बलवान लक्ष्मणजीको अथवा महाभागा सीताजीको न देखलेंगे तबतक हमको शांतिनहीं प्राप्त होगी ॥ ६ ॥ जबतक बडे भाई रामचंद्रजीके पद्मदल सम विशाल नेत्र और चंद्र तुल्य सुकुमार वदनमंडल न देखलेंगे तबतक हमको शान्ति नहीं प्राप्त होगी ॥ ७ ॥ सदाही जो रामचंद्रजीका निर्मल और

चंद्रमा सदृश परम तेजवान और कमल नेत्रसे युक्त मुख मंडल देखतेहैं वह लक्ष्मणही कृतार्थहैं ॥ ८ ॥ जबतक श्रीरामचंद्रजी महाराजके राज चिह्नोंसे अंकित चरण युगल अपने मस्तक पर नहीं लगावेंगे तबतक मेरा मन स्थिर नहीं होगा ॥ ९ ॥ राज्यके योग्य श्रीरामचंद्रजी पितामहादिकोंके सिंहासन पर विराजमान होकर जबतक अभिषेकके जलसे भीजेंगे नहीं तबतक हमें शांति प्राप्त नहीं होगी ॥ १० ॥ वह महाभाग्यवान जनककुमारी वैदेहीजीभी धन्यहैं क्योंकि वह सागर पर्य्यंत पृथ्वीके पति रामचन्द्रजीके साथ वनको गईहैं ॥ ११ ॥ हिमालय पर्वत की समान यह चित्रकूट पर्वतभी धन्यहै। क्योंकि जिस पर्वत पर राघवेंद्र श्रीरामचन्द्र जी कुबेर की नाईं बसतेहैं ॥ १२ ॥ सर्पादिक दुष्ट जन्तुओं करके पूर्ण यह दुर्गम वनभी कृतकृत्य होगयाहै क्योंकि इस महा वनमें शस्त्र धारियोंमें श्रेष्ठ महाराज रामचंद्रजी वास करतेहैं ॥१३॥ महातेजवान महाबाहु पुरुषोत्तम भरतजी यह कह कर पैदलही महावनमें प्रवेश करते हुए ॥ १४ ॥ बोलने वालोंमें श्रेष्ठ महात्मा भरतजी पर्वतके कँगूरों पर जमें हुए फूले फले वृक्ष समूहोंके बीचमें होकर गवन करने लगे ॥१५॥ चलते २ चित्रकूट पर्वतके एक शाल वृक्ष पर आरोहण करके रामचंद्रजीके आश्रममें लगी हुई ध्वजाको देखा। व आगका धुँआभी देख पडा ॥ १६ ॥ इन चिह्नोंको देखकर और यह जानकर कि रामचंद्रजी यहींहैं भरतजी समुदाय बन्धु बान्धवोंके सहित बहुतही हर्षित हुए जैसे कोई जलमें डूबता हुआ पार पहुँच जानेसे प्रफुल्लित होताहै ॥१७॥

सचित्रकूटेतुगिरौनिशम्यरामाश्रमंपुण्यजनोपपन्नम् ॥ गुहेनसार्धंत्वरितोजगामपुनर्निवेश्यैवचमूंमहात्मा ॥ १८ ॥

इस भांति गिरिराज चित्रकूट पर तपस्वियोंसे सेवित रामचंद्रजीके आश्रमको जानकर, उन महात्मा भरतजीने फिर ढूंडनेके अर्थ गुहके सहित शीघ्र वहांको प्रस्थान किया और जो सेना इधर उधरथी उसको भी वहीं टिका दिया ॥ १८ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अ० अष्टनवतितमः सर्गः ॥ ९८ ॥

एकोनशततमः सर्गः ॥

निविष्टायांतुसेनायामुत्सुकोभरतस्ततः ॥
जगामभ्रातरंद्रष्टुंशत्रुघ्नमनुदर्शयन् ॥ १ ॥

जब सब सैना टिक टिकाय गई तब भरतजी उत्सुकहो शत्रुघ्नजीको रामाश्रमके चिह्नादि दिखाते २ भ्राता रामचन्द्रजीके दर्शनकी वासनासे गवन करने लगे ॥ १ ॥ ऋषि वशिष्ठजीसे " आप हमारी माताओंको ले आइये " यह कह कर गुरु वत्सल भरतजी अति शीघ्रतासे आगे चले ॥ २ ॥ सुमंत्र और शत्रुघ्नजी भी उनके पीछे जाने लगे रामचन्द्रजीके दर्शनका जिस प्रकारसे भरतजीको आनंदथा वैसेही निषाद गुह और शत्रुघ्नजीको रामचन्द्रजी के दर्शन को चटापटी लग रहीथी ॥ ३ ॥ श्रीमान भरतजीने जाते २ तपस्वियोंके आश्रमके बीचों बीचमें भ्राता रामचन्द्रजी की पर्णकुटी देखी ॥४॥ भरतजीने देखाकि पर्णशालाके सामनेही होमके लिये टूटे हुये काष्ठ और पूजाके लिये फूल बीन कर रक्खे हुये हैं॥५॥ भरतजीनें औरभी देखा कि पीछे मार्ग न पहँचाना जाकर मनसे उतर जाये इस कारण आश्रम वासी राम लक्ष्मण जीनें किसी २ स्थानमें वृक्षोंपर फटे हुये चीर बाँधेथे ॥ ६ ॥ भरतजीनें यहभी देखा कि उस पर्णकुटीमें । शीत निवारण करनेंके लिये मृग और महिषका सूखा गोवर तापनेके अर्थ ढेरों रक्खाहै ॥ ७ ॥ महाबाहु धृतिवान भरतजी गमन करते २ हर्ष सहित शत्रुघ्न और सुमंत्रादिक मंत्रियोंसे बोले ॥ ८ ॥ महर्षि भरद्वाजजीने जिसको बतायाथा सो जान पडताहै कि हम उसी स्थानपर पहुँच गये । नदी मन्दाकिनीभी यहांसे कुछ दूर नहीं मालूम होती ॥ ९ ॥ यह देखो ! वृक्षोंकी ऊपरकी डालियोंमें जो कपडे बँधेहैं. सो लक्ष्मणनेही बाँधे होंगे क्योंकि समय विशेष अर्थात् अंधकारके समय जल आदि लाना पडे तो मार्ग न भूल जांय इस कारण लक्ष्मणजीने यह कपडे बांध दियेहैं ॥ १० ॥ वेगवान बडे दांत वाले हाथी सब परस्पर गर्ज गर्जाकर पर्वतीले इस मार्गपर सदाही आते जाते रहतेहैं ॥ ११ ॥ तपस्वीलोग वनमें जिसको आधीन करनेकी इच्छा करतेहैं यह उसी अग्निका बडा धुंआ देख पडताहै ॥ १२ ॥ अतएव इसी स्थानपर हम साक्षात् महर्षि-

की समान गुरु जनोंका वचन पूरा करने वाले पुरुष श्रेष्ठ आर्य रामचन्द्र-
जीके दर्शन परम प्रसन्नतासे करेंगे ॥ १३ ॥ अनन्तर रघुनंदन भरतजी
एक मुहूर्त तक चलकर मन्दाकिनी नदीसे समीपस्थ चित्रकूट पर्वतपरजा
उपस्थित हुये और साथके मंत्री परिजनोंसे बोले॥१४॥जो कि संसार भरमें
सब पुरुषोंसे श्रेष्ठहैं वह लोकोंके पति श्रीरामचन्द्रजी निर्जन स्थानको प्राप्त
हो वीरासन मारे बैठेहैं अतएव हमारे जीवन और जन्मको धिक्कारहै ॥ १५॥
जोकि सब लोकोंके नाथहैं वही महा द्युतिमान् श्री रामचन्द्रजी हमारेही
कारण दारुण दुरावस्थामें पडे और सब भांतिके सुख भोगसे छूटकर
वन २ में वास करतेहैं ॥ १६ ॥ हमारी सब लोकोंमें निन्दा हुईहै अतएव
इस समय उसीही कलंकको धोनेके लिये, और रामचन्द्रजीके प्रसन्न कर-
नेंको उनके सीताजीके और लक्ष्मणके चरणोंपर गिरेंगे ॥१७॥दशरथ कु-
मार भरतजी वनके बीच इस प्रकार अछताते पछताते विलाप करते २
परम पुण्यवती, मनको अधिकार लुभाने वाली पर्णशालाके दर्शन क-
रते हुए ॥१८॥ शाल, ताल, और अश्वकर्ण आदि वृक्षोंके पत्तोंसे यह प-
र्णशाला छाई हुईथी; देखनेसे वह ऐसी बोध होतीथी, मानों कोमल वि-
शाल यज्ञवेदि फूलोंके समूह व कुशोंसे आच्छादिक रहतीहै ॥ १९ ॥ सुव-
र्णके पंख लगे हुये इन्द्रके धनुषकी समान भार साधन और शत्रुओंके
निवारण करने वाले महा सार बाणोंके समीप रहनेसे यह पर्णशाला शो-
भाय मान होरहीथी ॥ २० ॥ इनके सिवाय वहां तरकसमें सूर्यके प्रभाकी
समान जो समस्त भयंकर तीरथे उनसे दीप्तिमान् भुजंगोंसे घिरी नागोंकी
भोगवती पुरीके समान शोभा पारहीथी ॥ २१ ॥ सुनहरी कब्जा और
सुनहरी म्यानवाली तलवारोंसे शोभायमान व सुवर्णके बिन्दु लगे हुये
ऐसी ढालोंसे शोभित ॥ २२ ॥ मृग यूथ जैसे किसी प्रकार सिंहके रहने-
की गुहामें नहीं जा सकते वैसेही कांचन भूषित चित्र विचित्र गोधांगुलि
जो इधर उधर रक्खींथी इस कारण शत्रुलोगभी उस पर्णशालाको पराज-
य नहीं कर सकते ॥ २३ ॥ तिसके पीछे भरतजीनें उन महाराज रामच-
न्द्रजीके वास स्थानमें प्रदीप्त अग्नियुक्त ईशान कोणकी ओर अति विशा-
लवेदी देखी ॥ २४ ॥ एक मुहूर्त्त भरतक तो पर्णशालाको देखते रहे,
फिर उसी पर्णशालामें बैठे जटाजूट धारण किये बडे भाई रामचन्द्रजी-

को देखा ॥ २५ ॥ भरतजीनें सन्मुख जाकर देखा कि चीर वल्कल पहरे मृगचर्म धारण किये अग्निकी समान रामचंद्रजी बैठेहैं ॥ २६ ॥ उनकी भुजायें घुटनोंतक आवें इतनी वडी कंधे सिंहके कंधोंकी समान ऊंचे, नेत्र युगल कमल दलकी समान, वह सागर पर्यंत पृथ्वीके मालिक और धर्मचारी ॥ २७ ॥ कुशके आसन जिसपर विछरहे ऐसे चौतरेपर सीता और लक्ष्मणजीके साथ साक्षात् सनातन ब्रह्मकी समान बैठेथे ॥२८॥ उनको देखकर कैकेयी कुमार धर्मात्मा भरतजी दुःख और मोहसे व्याकुल होकर रामचंद्रजीकी ओरको दौडे ॥ २९ ॥ देखतेही व्याकुल होगये किसी प्रकारसेभी धीरजको धारण नहीं कर सके अनन्तर गद्‍ २ कंठ होकर प्रगट विलाप करने लगे और कुछ न बोल सके फिर धीरज धर वडी कठिनाईसे बोले ॥ ३० ॥ सभाके बीचमें जिनकी उपासना करना मंत्री आदि सवही पुरुषोंका एक मात्र कर्तव्यहै सो वनमें मृगयूथ इन हमारे वडे भाईकी उपासना कर रहेहैं ॥ ३१ ॥ नगरके योग्य हजारों कीमती२ वसनोंसे सज धजकर जिन महात्माकी शोभा वढतीथी वही आज हमारे वडे भाई धर्माचरण करनेंके आशयसे मृगचर्मपर बैठेहैं ॥ ३२ ॥ जो सदाही विविध भांतिके चित्र विचित्र पुष्पोंकी माला धारण करतेथे आज वही रघुकुल प्रदीप्त कारी रामचंद्रजी न जाने किस प्रकारसे जटाओंके भारको सहन कररहेहैं ॥ ३३ ॥ ऋत्विकों (यज्ञ करनें वाले) केद्वारा यज्ञ करा करके जिनको धर्मका संचय करना उचित था वह अपने आपही शरीरको कष्ट देकर कररहेहैं ॥ ३४ ॥ महा मूल्य चंदन जिनके अंगमें लगाया जाता था उन्हीं श्रेष्ठ रामचंद्रजीका शरीर इस समय मलीन होगया, न मालूम वडे भाई इसे कैसे सकहतेहैं ? ॥ ३५॥ सुखके भोग करनें लायक श्री रामचंद्रजी हमारेही कारण यह दारुण दुःख पारहेहैं अतएव हमारे इस सर्व लोकमें निन्दित मूर्ख व निर्लज्ज जीवनको धिक्कार है ॥ ३६ ॥ इस प्रकार महा व्याकुलहो विलाप करते २ और रोते २ भरतजी दुःखकी अधिकाईके वश रामचंद्रजीके चरण युगलको प्राप्त न होकर वीचही पृथ्वीमें गिरपड़े उनका मुख कमल पसीनेके जलसे परिपूर्ण होगया ॥ ३७ ॥ इस काल दुःखसे वहुतही संतापित होनेके कारण महा वलवान् राजकुमार भरतजी केवल एकवार " आर्य " यही शब्द

कहकर फिर और कुछ नहीं कह सके ॥ ३८ ॥ इतने आंसू आये और इतनी वाफ मुँहमें भर आई कि गला रुक जानेके कारण तपस्वी रामचंद्र-जीको देख "आर्य" यही शब्द कहकर वाक् शक्ति शून्यही होगये॥३९॥ इसी समय शत्रुघ्नजीनें रोदन करते २ रामचंद्रजीके चरण युगलका वंदन किया तब रामचंद्रजी उन दोनोंको छातीसे लगाय चिपटाय आंसुवोंकी वर्षा करनें लगे ॥ ४० ॥ सूर्य और चंद्रमा जिस प्रकार शुक्र और बृहस्प-तिके साथ आकाश मंडलमें मिलित होतेहैं राम और लक्ष्मणजीभी वैसे-ही गुह और सुमंत्रसे मिले ॥ ४१ ॥

तान्पार्थिवान्वारणयूथपार्हान्समागतांस्तत्र महत्यरण्ये ॥ वनौकसस्तेभिसमीक्ष्यसर्वे त्वश्रूण्यमुंचन्प्रविहायहर्षम् ॥ ४२ ॥

उसकाल हाथियोंपर सवारी करनेके योग्य श्री राम लक्ष्मण भरत शत्रु-घ्न राजकुमारोंको उस महावनमें पैदल आये हुए देखकर वनवासी लोग आनंद रहित होकर नेत्रोंसे आंसू वरसाने लगे ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अ० नवनवतितमः सर्गः ॥ ९९ ॥

शततमः सर्गः ॥

जटिलंचीरवसनंप्रांजलिंपतितंभुवि ॥ ददर्शरामोदुर्दर्शंयुगांतेभास्करंयथा ॥ १ ॥

जटाजूट रखाये चीर धारण किये श्री रामचंद्रजीनें भरतजीको हाथ जोड पृथ्वीपर गिरते हुये देखा मानों प्रलयकालमें कठिनाईसे देखने यो-ग्य सूर्यनारायण तेजहीन होकर पृथ्वीमें गिरपडेहैं ॥ १ ॥ और तिसके पीछे श्री रामचंद्रजी भरतजीका पीला वदन और दुबला शरीर देख कि-सी प्रकारसे उनको भरत जानकर दोनों हाथोंसे पकडकर उठाने लगे॥२॥ अनन्तर भरतजीके मस्तकको सूंघकर उनको छातीसे लगाय और गोदीमें लेकर आदर पूर्वक पूछने लगे ॥ ३ ॥ हे भइया, हमारे पिता-जी कहां हैं ? जो तुम वनको आयेहो पिताजीके रहते हुए तुम्हारा वनमें आना उचित नहीं हुआ ॥ ४ ॥ जो हुआ सो हुआ अनेक दिनोंके पीछे

तुम नानाके घरसे आयेहो सो देखकर हम सुखी हुए। प्यारे भइया! तुम किस कारण इस भयंकर आकार वाले वनमें आयेहो ॥ ५ ॥ हे भइया! तुम वनमें जो आयेहो; सो पिताजीतौ अच्छीतरहसे राज्य करतेहैं! उन्होंनें शोकसे घिरकर सहसा परलोकको तौ गमन नहीं किया? ॥ ६ ॥ हे प्रिय दर्शन! तुम बालकहो सो तुमारे हाथसे चिरस्थाई राज्य पदतो नष्ट नहीं हुआ! हे सत्य पराक्रम! तुम पिताजीकी सेवाको भलीभांति करतेहो? ॥ ७ ॥ राजसूय और अश्वमेध इत्यादि यज्ञोंके करनें वाले धर्ममें मति किये हुए सत्य प्रतिज्ञा हमारे पिता राजा दशरथजी तौ कुशलसे हैं ॥ ८ ॥ हे भ्रात! जोकि विद्वानहैं सदाही वेद प्रणीत धर्मके करनें वाले हैं! परम तेजवान् व इक्ष्वाकु वंशियोंके पुरोहित हैं उन ब्रह्म निष्ठ वशिष्ठजीका तौ तुम यथा योग्य सत्कार करतेहो! ॥९॥ हे तात! आर्या कौशल्याजी व पुत्रवती सुमित्राजी तो अच्छीहैं! और परम श्रेष्ठ देवी कैकेयी जीतौ आनन्दसेहैं! ॥ १० ॥ हे तात! विनय संपन्न सब शास्त्रोंके जानने वाले, निन्दारहित उत्तम कुलमें उत्पन्न, सब भले कर्मों में निपुण वशिष्ठजीके पुत्र पुरोहितका सत्कार करते हो! ॥ ११ ॥ तुम्हारे अग्निहोत्रके कार्यमें नियुक्त सब होमकी विधिओंको जानने वाला सरल चित्त पुरोहित अपने समय पर हवन किये हुए व जिसमें हवन करनेको बाकी रहताहै उसको जगाते रहते हैं॥१२॥ हे प्यारे देवता ओंको, नौकर चाकरोंको, पिताहीको समान गुरु जनोंको, वृद्धोंको, वैद्योंको, और ब्राह्मणोंको सब भांतिसे तुम मानते तो हो? ॥ १३ ॥ हे तात! श्रेष्ठ अस्त्र शस्त्र सम्पन्न राज नीति विशारद न्याय शास्त्रमें अति कुशल सुधन्वा नामक धनुर्वेदाचार्यका तो कुछ अपमान नहीं किया ॥ १४ ॥ हे भइया! अपने समान विश्वासी शूरवीर सब शास्त्र पढे, इशारेसे मनकी बातको जान लेने वाले, जितेन्द्रिय ऐसे जिनमें गुणहों उन पुरुषोंको तुमनें अपना मंत्रीतो कियाहै?॥१५॥ हे रघुनंदन नीति शास्त्रोंके जाननें वाले श्रेष्ठ मंत्रियों से यत्न पूर्वक एकान्त भेदकी सलाह लेनाही राजा ओंकी विजयका मूलहै! सो तुम ऐसा करतेहो! ॥ १६ ॥ भला कभी सन्ध्याकालमें सोयतौ नहीं जाते? व अकालमें तौ नहीं जाग पडते? समय पर जागतेहो? एक पहर रात्रि

रहे जागकर अपना प्रयोजन सिद्ध होनेंके उपायको विचारतेहो?॥१७॥ तुम एकहीके साथ अथवा बहुतोंके साथ बैठकर तौ सलाह नहीं करते तुम्हारा स्थिर किया हुआ मंत्र सब राज्यमें प्रचारित तौ नहीं होजाता? ॥ १८ ॥ हे रघुनंदन ! भला किसी कार्यको निश्चय करके थोडेही में सधजाय और महा फलका देने वालाहो ऐसे कामको आरंभ करनेंमें कुछ देर तौ नहीं करते ? ॥ १९ ॥ तुम्हारे कार्य सर्व प्रकारसे भलीभांति होजाने पर अथवा पूरे होनेही पर तौ सब छोटे २ राजा जानतेहैं उन कर्मोंके होनेंसे प्रथमतो वह उनको नहीं जान सकतेहैं ? ॥ २० ॥ शत्रु लोगतो कोई उपाय वर्त्तक करके तुम्हारी अप्रकाशित सलाहको तो जान लेनेमें समर्थ नहीं होते ? किन्तु तुम या तुम्हारे मंत्री लोग तौ सदा युक्ति पूर्वक तुम्हारे दुश्मनों की सलाहको जान लेतेहैं ? ॥ २१॥ जब अर्थ समझनेंकी कठिनता आ पडतीहै तब पंडित लोगही कल्याण साधन करतेहैं अतएव तुम सहस्र मूर्खोंको छोडकर एक जन पंडित की कामना करते हो या नहीं ॥ २२ ॥ राजा यदि हजार अथवा दश हजार मूर्खोंका प्रतिपालन करै तथापि उनके द्वारा कुछ भी सहायता नहीं प्राप्त हो सकती ॥ २३ ॥ बुद्धिमान्. शूर चतुर और होशियार ऐसा केवल एक मंत्रीसेभी राजा व राज पुत्रोंको विपुल सम्पत्ति प्राप्त होतीहै ॥ २४॥ हे भाई ! तुम उत्तम कार्यमें उत्तम मध्यम कार्यमें मध्यम और अधम कार्यमें अधम नौकर चाकरोंको नियुक्त करतेहो अथवा नहीं?॥२५॥ भ्रातः ! जोकि सब मंत्री आदि रिशवत नहीं ग्रहण करते, जिनकी बाहरी और भीतरी इन्द्रियें शुद्धहैं जोकि बाप दादाके समयसे मंत्री पद पर चले आतेहैं सो ऐसे मंत्रियोंको तौ तुम श्रेष्ठ कामोंमें नियोजित करते हो वा नहीं ! ॥ २६ हे कैकेयी नंदन ! राज्यके मध्यमें प्रजागण तौ कठोर दंडसे नितान्त दंडित नहीं होते ! मंत्री लोगतौ तुम्हारा अपमान नहीं करते ! ॥ २७ ॥ कुलकी स्त्रियां जिस प्रकार अतिकामी पुरुषको जो बल पूर्वक परस्त्री गमन करताहै, उसे पतित वह भ्रष्ट समझतीहैं अथवा पतित पुरुष जिस प्रकार लोकोंका वर्जित होकर रहता है, इस प्रकार यज्ञके करनें वाले ऋषि लोगतौ तुम्हारी अवज्ञा नहीं करते ? ॥ २८ ॥ तदवीर सोचनेंमें बहुत होशियार कि जब चाहें जब

राजाके विरुद्ध कोई जाल किया और जब चाहें जब उसे मेंट दिया, विद्या विशारद जोकि कोई ऐसी विद्या जानताहो कि जिस्से राजाका कुछ अनिष्ट होसके, जोकि राजाको मारकर आप स्वतंत्रतासे राज्यका भोग करना चाहताहो, बलवानभी हो ऐसे मंत्रीको जो राजा लोग नष्ट नहीं करतेहैं वे उस मंत्रीके वा वैद्यके हाथसे स्वयं नष्ट होतेहैं तुम्हारे तो ऐसा नहींहै ॥ २९ ॥ भला तुमने धीर धारण करने वाला, बुद्धिमान्, पवित्र, शूर, ढीठ, अच्छे कुलमें उत्पन्न हुआ, स्वामीके कार्यमें तत्पर और चतुर पुरुपको सेनापति कियाहै वा नहीं ॥ ३० ॥ दो तीन वार जिन लोगोंके बल विक्रमका परिचय और परीक्षा होगई है वैसे बलवान युद्ध विशारद, विक्रम विशेप रखने वाले पुरुपोंका तुम आदर सत्कार करतेहो वा नहीं? ॥ ३१ ॥ व सैना आदिके सैनिक तथा और नौकर चाकरों को प्रतिदिन भोजन और मासिक नौकरीका रुपया तो महीनें भरमें देदेतेहो विलंब तो नहीं करते? ॥ ३२ ॥ क्योंकि नौकर चाकर लोगोंको जब यथा समय भोजन और तनख्वाह नहीं मिलती तब वह अपने मालिक पर क्रोध करतेहैं और उससे उनका चित्त फिर जाताहै। इस प्रकार नौकर चाकरों की प्रभुपर विरक्ति होनेसे महा अनर्थ होजाताहै ॥ ३३ ॥ भला तुम्हारे वंशवाले प्रधान २ सरदार लोगतो तुम्हारे ऊपर अनुरक्तहैं! और तुम्हारे लिये एक चित्त होकर वह प्राणतक दे डालनेंको तयार हो सकतेहैं ॥ ३४ ॥ हे भ्रातः! अपनेही देशका रहने वाला ज्योंकात्यों सन्देशा कहने वाला यह नहीं कि कुछ अपनी ओरसे घटा बढा दिया अपने मनसेभी यथार्थ प्रश्नोत्तर करनें वाला विद्वान् अनुकूल और पंडित ऐसे पुरुपको तुमने अपने दूतके काममें नियोजित कियाहै वानहीं? ॥ ३५ ॥ भला जो नीति शास्त्रमें राजाओंके लिये १ मंत्री, २ पुरोहित, ३ युवराज, ४ सेनापति ५ द्वारपाल रनवासका रक्षा करने वाला (खोजा) ६ कारागाराध्यक्ष अर्थात् जेलखानेका दरोगा ७ खजानची ८ राजाकी आज्ञाके अनुसार औरोंको आज्ञा देनेवाला ९ वकील १० धर्माध्यक्ष ११ व्यवहारोंका निर्णय करने वाला १२ फौजकी तनख्वाह बांटनें वाला १३ ठेकेदार १४ नगराध्यक्ष (कुतवाल) १५ डाडोंपे रहनें वाला और उसका

रक्षक १६ दुष्टोंको दंड देनेका अधिकारी फर्रास १७ जल पर्वत कोट इनकी रक्षा करने वाला १८ ये अट्ठारहहैं मंत्रीके समान इन लोगोंको रखना चाहिए सो तुम रखतेहो वा नहीं सोभी औरोंके राज्यके ये १८जो हैं इनमें मंत्री पुरोहित युवराज इन तीन जनोंके सिवाय सेनापत्यादि १५ अपने समीप व प्रत्येक विषयके लिये कमसे कम तीन दूत रखतेहो? व हरकारोंकी कभी परीक्षाभी लेते रहतेहो कि यह लोग कहांपर कौन २ कार्य कर रहेहैं? ॥ ३६ ॥ हे शत्रुओंके मारने वाले! जिन अपनें शत्रुओंको तुमने अपना या राज्यका बुरा करनेके कारण अपनें राज्यसे निकाल दियाहै और वही वैरी लोग फिर राज्यमें वसने आवें सो विना अच्छी तरह परीक्षा लिये उनको दुर्बल समझ कि यह हमारा क्या करैंगे लाओ वसनेंदे, उनको अपने राज्यमें वसने तौ नहीं देते क्योंकि ऐसे लोग अपने पिछले वैरको कभी नहीं भूलते ॥ ३७ ॥ भ्राता जो ब्राह्मण लोग केवल तर्क शास्त्रही पढेहैं और वाममार्गीहैं और बौद्ध मतके अनुयायीहैं; वह लोग अपनेको वृथाही पंडित अनुमान कर अभिमान करतेहैं केवल लोकोंका अनर्थ करनाही उनकी होशियारीहै सो तुम ऐसे लोगोंकी सेवातो नहीं करते। ॥ ३८ ॥ क्योंकि यह लोग बडे दुर्बुद्धि पंडित होतेहैं यद्यपि सब मनुस्मृत्यादि धर्मशास्त्र व वेद सब विद्यामानहैं पर दुष्ट कुछ नहीं देखते वरन अपने मन माना तर्ककर इन धर्म शास्त्रोंके विपरीत नास्तिकोंके धर्म वतादेतेहैं जो सदा निरर्थकहैं ॥ ३९ ॥ हे तात! भला हमारे पूर्व पुरुष इक्ष्वाकु, दिलीप,रघु श्रेष्ठ दशरथादिकी भोगी हुई दृढ द्वार लगी जिसमें हाथी घोडोंके समूहके समूह आते जातेहैं ॥ ४० ॥ जोकि हजार २ अपने २ कर्मोंमें लगे हुए उत्साही जितेन्द्रिय ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, इनसे सदा परिपूरितहैं ॥ ४१ ॥ भांति २ के आकार वाले महल दुमहले चौमहले जिसमें जहां अनेक विद्या ओंके जानने वाले मनुष्य व्यातहैं उस रिद्ध सिद्ध युक्त सार्थक नाम धारण करने वाली अयोध्या पुरीकी उत्तम प्रकारसे रक्षा करतेहो? ॥ ४२ ॥ हे भरत! जहां हजारों देव मन्दिर शोभा पारहेहैं और सब मनुष्य सुख स्वच्छंद तासे रहतेहैं बहुत सारे देवस्थान पौशाला तलावोंसे जिसकी शोभाकी सीमा नहींहै ॥४३॥ जहांके सब स्त्री पुरुष महा हर्षित रहतेहैं सभाजोंको उत्सव

होनें हुवानेंसे सुशोभित, जिसके प्रान्त अच्छे बलिष्ट पशुओंसे शोभित, जहां हत्याका नाम और गंधतक नहीं ॥ ४४ ॥ बहुतसी नदी तलावोंसे संयुक्त हिंसाकारी जन्तुओंसे हीन जहां किसी प्रकारका कोई डर नहीं जहां किसीका भय नहीं और रत्नोंकी शोभा पारहीहैं ॥ ४५ ॥ जिस जगह कोई पापात्मा मनुष्य हैही नहीं; जो स्थान कि हमारे पहले पुरुषाओंसे रक्षितथा, हे भरतजी वह धन धान्य युक्त देशतो कुशल पूर्वक वसताहै?॥ ४६ ॥ भइया ! जो लोग खेती करके और पशुओंका पालन करके अपना गुजारा करतेहैं इनसे विशेष प्रसन्न तौ रहतेहो? यह सब मनुष्य वाणिज्यके कार्यमें नियुक्त रहकर धन धान्य युक्त होतेहैं ॥ ४७ ॥ तुम उन लोगोंकी चोरी डांके आदिसे रक्षा करके भली भांति उन लोगोंका भरण पोषण करतेहो क्योंकि अपने अधिकारके सबही लोगोंकी रक्षा करना राजाको परम कर्त्तव्यहै ॥ ४८ ॥ भला अपनी स्त्रियोंको तो समझाते रहकर उनकी रक्षा भली भांति करतेहो? उनका विश्वास करके कोई अपना गुप्त वृत्तान्त तो उनसे नहीं कहदेते क्योंकि स्त्रियोंके पेटमें कोई बात पचती नहीं ॥ ४९ ॥ जिन सब वनोंमें हाथी होतेहैं वह सब नाग वन भली प्रकारसे रखाये तौ जातेहैं? भला तुम गाय बैल इत्यादिकों तौ भली भांति पालन पोषण करतेहो? हाथी हथिनी और घोडोंके पालनेंमे तुम्हारी कभी तृप्ति तौ नहीं होती कि बहुत होगये अब पाल कर क्या करेंगे ॥ ५० ॥ हे राज कुमार ! प्रति दिन दो पहरसे पहलेही उठकर अच्छे २ वस्त्राभूषण धारण कर प्रजाओंको सभामें और राजमार्गमें विचरकर दर्शनतो देतेहो? ॥ ५१॥ कर्मचारी लोग निःशंक भावसे तौ तुम्हारे निकट नहीं चले आते या मारे डरके अति दूर तौ नहीं रहते? क्योंकि राजाओंका मध्य भावसे सेवन करना चाहिये ॥५२॥ तुम्हारे सब दुर्ग तो धन धान्य हथियार जल अनेक प्रकारकी कलों व धनुर्द्धारी आदिकोंसे पूर्णहैं वा नहीं?॥५३॥हे भरत। तुम्हारी आमदनी बहुत और खर्च बहुतही कमहै ? हे राजकुमार ! तुम्हारा खजाना नाच तमासे गाने वाले और नट आदिक अपात्रोंमें खर्च करनेसे तौ खाली नहीं होताहै ॥ ५४ ॥ तुम देवताओंके लिये, पितरोंके लिये, ब्राह्मणोंके लिये और अतिथि सेवामें और योद्धा लोग व मित्र लोगोंके भरण पोषण करनेमें तौ धन खर्च

करतेहो अथवा नहीं ॥ ५५ ॥ अच्छे चरित्र वाले साधु लोग जो झूठे अपवादोंसे दूपितहो विचारके लिये न्यायालयमें आवें और धर्मशास्त्रके जानने वाले वकील करके यदि उनका दोष प्रमाणित नहीं हो तब धनके लोभसे तुम उन निर्दोषियोंको दंडतो नहीं देते ? ॥ ५६ ॥ अथवा हे पुरुषोत्तम ! चोरके पकडे जाने पर साक्षीके द्वारा उसकी चोरी प्रमाणित होने या चोरी करनेके सब लक्षण साफ पाने परभी विना दंड लिये तो तुम उसको नहीं छोड देते ॥ ५७ ॥ हे रघुनंदन ! धनी और गरीबमें परस्पर झगडा होनेंपर तुम्हारे बहुत शास्त्रोंके जानने वाले मंत्री लोग बहुत कहे सुने जाने परभी निरलोभहो उस झगडेका विचार करतेहैं अथवा नहीं ॥ ५८ ॥ हे भरत ! जब मिथ्या अपराधसे युक्त निरपराधीको दंड दिया जाताहै तब उसके नेत्रोंसे जो आँसुवोंकी बूदें गिरतीहैं उनसे दंड देने वाले राजा व राज सेवकके पुत्र पशु धनादिको वह आंसू नाश कर देतेहैं ॥ ५९ ॥ हे भरत ! बालक बूढे और बडे २ वैद्योंको तुम दानमान वचन इन तीनों उपायोंसे भली भांति वशमें तो करलेतेहो ॥६०॥ गुरु, बूढे, तपस्वी, अतिथि, व चौराहेके बीचमें लगे हुए वृक्ष और विद्या सदाचार सिद्ध काम ब्राह्मणगण इन सबको तुम नित्य नमस्कार करतेहो वा नहीं ? ॥ ६१ ॥ अर्थद्वारा धर्म अथवा धर्मके द्वारा अर्थको या काम व लोभसे इन दोनोंको तो नहीं रोक देतेहो कि न होने पातेहों ॥ ६२ ॥ हे जीतने वालोंमें श्रेष्ठ कालको जानने वाले ! हे वरद ! धर्म, अर्थ, काम इन तीनोंको तो यथा कालमें विभाग करके तुम सेवा करते हो ॥ ६३ ॥ हे महा प्राज्ञ ! धर्म शास्त्रके अर्थोंको जाननेमें विशारद ब्राह्मण लोग नगरवासी और देश वासी पुरुषोंके साथ मिलकर तुम्हारा सब प्रकारसे कल्याण चाहतेहैं वा नहीं ? ॥ ६४ ॥ भलानास्तिकपना झुँठाई क्रोध, अहंकार, सुस्ती ज्ञान वानोंका न देखना आलकस, देखने सुननें सूंघने खाने आदिके वशीभूत होना ॥ ६५ ॥ अकेले ही राज कार्य के लिये विचार करना या ऐसे लोगोंसे सलाह लेना जो उसबातको नहीं जानते किसी बातका निश्चय करके कि उसको अमुक दिन करेंगे और उस दिन उसमें हाथ न लगाना सलाहकी स्थिर हुई बात सबसे कह देना ॥ ६६ ॥ हरेक कामके प्रारंभ करनेंमें मंगल शब्दों-

का उच्चारण न करना, नीच व छोटे लोगोंको भी देखकर उठ खडे होना यह जो राजा ओंके चौदह दोष होतेहैं उनको तुमने अलग कियाहै अथवा नहीं? ॥ ६७ ॥ हे भरत। दशवर्ग, पांच वर्ग, चार वर्ग, सात वर्ग, आठ वर्ग, तीन वर्ग, व तीनों विद्या ॥ ६८ ॥ इन्द्रियोंका जीतना, वर्ग देवता व मनुष्योंसे दुःख राज्य कृत २० वर्ग ५ प्रकृति १२ मंडल ॥ ६९॥ यात्रा विधान, दंड विधान, मिलाप करना, विगाड करना इनमें जो करने वालेहैं जो नहीं करनेवाले हैं उनको विचार सहित करते हो वानहीं? इनमें दशवर्ग यहहैं शिकार खेलना, जुआ खेलना, दिनको सोना वत वढाव करना, स्त्रियोंका अति सेवन, नशा खाना, गाना सुनना, वाजोंका सुनना, नाचका देखना और वृथा फिरना। पांच वर्ग यहहैं नदी तालावादिकोंके जलके वीचमें किला वनाना, पहाडों पर किला वनाना वृक्षोंके वीचमें ऊसरमें किला वनाना, हथियारोंके वीचमें किला वनाना यही पांच प्रकारके दुर्गहैं चार वर्ग यहहैं—साम (समझाना) दान देकर दुश्मनको कावूमें लाना, दुश्मनो में फूट करादेना, दंड देना; सात वर्ग यहहैं—स्वामी, मंत्री, देश, किला वनाना, खजाना रखना, सेना रखना, मित्र रखना, यह सातों राज्यके अंगहैं। आठ वर्ग यहहैं—चुगली, साहस, द्रोह, पराये गुणोंको न सह सकना, निन्दा करना, किसीके करे हुए अर्थ को बुरा वताना, कठोर वचन कहना, दंड देना, यह आठों क्रोधसे उत्पन्न होतेहैं, कोई २ लोग इनको अष्ट वर्ग कहतेहैं। तीन वर्ग यहहैं—धर्म करना अपने लिये धन इकट्ठा करना, काम औ तीन विद्या यहहैं—तीनों वेदोंका पढना, खेती वाणीज्यादि राजनीति, छै वर्ग यहहैं मिलाप करना, वैर करना, आक्रमण करना, अपने किले में वैठा रहना, शत्रुओंसे दूर रहना; व दूर रखना, भाग कर कहीं जाय रहना। देवता ओंसे राज्यमें यह दुःख होतेहैं। आग लगाना, अति जल वर्षाना, महा मारी हैजे आदिक की वीमारियोंका होना, अकाल पडना, मरना, मनुष्योंसे यह दुःख होतेहैं; राज्यके नौकर चाकरोंसे, चोरोंसे, दुश्मनोंसे, राजाके भाई वन्धुओंसे राजाके लालची होनेसे। व राज्यकृत्य यहहैं—किसीको नौकर न रखना लालची न रहना जो माननेके योग्यहो उसका अपमान न करना आप सदा कोप किये हुए न रहैं, वृथा किसीको कुपित न करैं, वहुत डरा न करैं, न किसीको डर पा-

वैं। वीस वर्ग यहहैं—बालक, वृद्ध, सदा रोगी रहताहो, जातिसे बाहर निकाला हुआहो, डरपोकहो, औरोंको डरपाताहो, लोभीहो, लोभीका संबंधीहो, प्रजा जिससे विरक्त होतीहो, इन्द्रियोंके सुखमें अतिशय आशक्तहो, बहुत आदमीके साथ सलाह करनेंवालाहो, देव ब्राह्मणोंकी निन्दा करने वालाहो, भाग्यहीनहो, जो भाग्यहीके भरोसे हाथपै हाथ धरे बैठा रहताहो, अकालका सताया हुआहो, बडा पहलवानहो, अपने देशका रहनें वालाहो, जिसके बहुत दुश्मन नहीं, यथा समय पर कार्यको न करै, और सत्य कर्म करनेंमें जिसकी रुचि नहीं, सन्धिके अयोग्य यह वीस वर्गहैं। पांच प्रकृति यहहैं, मंत्री देशवासी, किला, खजाना, दंड देना, । राज मंडल यहहैं, दुश्मन, मित्र, दुश्मनका मित्र, मित्रका शत्रु, मित्रके शत्रुका मित्र,परममित्र जो विजय की इच्छा करकै किसीपै चढा जाताहो उसके आगेरचले, पार्ष्णिग्राह,आक्रन्द, पार्ष्णिग्राहासार, आक्रन्दासार, यह पीछे २ चलें व जो ऐसे नहों मध्यभाव रखतेहों वे दोनों संग २ चलें पांच प्रकारका यात्रा विधानहै; विगृह्ययान, सन्ध्यायान, सम्भूययान, प्रसंगतोयान, उपेक्ष्ययान, जहां बडी बहादुरीके सहित सेनापतियोंको संग लेकर यात्रा कीजाय वह विगृह्ययानहै, जहां जिस शत्रुपर चढाईहो उस्से मिलाप कर औ शत्रुके ऊपर चढाई कीजाय वह सन्ध्यायानहै जहां वीरोंको संगले खुला खुलीके साथ यात्रा की जाय वह सम्भूययानहै, जहां तैयारी और दुश्मन पर की जाय व बीचमें औरके ऊपर जाय पहुँचे वह प्रसंगतोयानहै, जहां शत्रुको प्रबल जान उसको छोड उसके मित्र पर चढाई कीजाय वह उपेक्ष्ययानहै व दंडविधान सेनाकी रचनाको कहते हैं ॥ ७० ॥ हे मतिमान् ! नीतिशास्त्रमें जिस प्रकार सलाह करनेको नियम लिखाहै तुम उसके अनुसार तीन या चार मंत्रियोंको लेकर उनमेंसे प्रत्येकके साथ अलग २ सलाह करतेहो ! वा सबको एक संगही बैठाकर सलाह करतेहो ॥ ७१ ॥ तुम्हारे पढे हुए वेद सब कर्त्तव्य कार्यके अनुष्ठान द्वारा सब क्रियायें इच्छानुसार फल प्रसव द्वारा; स्त्रियें सब धर्मका आचरण करकै संतान द्वारा और शिक्षा वा शास्त्र चर्य्या भली प्रकार विधान द्वारा यह सब सफल तो हुएहैं ॥ ७२ ॥ हे रघुवीर

यह सब हमारे कहे हुए विषयोंमें तुम्हारी बुद्धि आयु बढानेवाली यश-को बढानेंवाला और धर्म, अर्थ,काम इन तीन विषयोंको भली प्रकार अनुगतहै ? ॥ ७३ ॥ हमारे पिता और प्रपितामहोने जो वृत्ति अवलंबन कीथी तुम ने उस परम पवित्र और श्रेष्ठ मार्ग पर चलानेवाली वृत्तिका अवलंबन कियाहै? ॥ ७४ ॥ हे भरत ! तुम स्वादवान भोजनके पदा-र्थ औरोंको न देकर इकले तो नहीं खाजाते ? जो मित्र लोग व कुटुंबी वहां पर होतेहैं उनकोभी देतेहो ॥ ७५ ॥

राजातुधर्मेणहिपालयेत्वामहीपतिर्दंडधरः प्रजानाम् ॥ अवाप्यकृत्स्नांवसुधांयथावदि तश्च्युतःस्वर्गमुपैतिविद्वान् ॥ ७६ ॥

देखो जो विद्वान् धर्मवान् राजा क्षत्रिय दंड धारण करके धर्मानुसार प्रजाका पालन करताहै वह सब पृथ्वीको यथाविधिसे भोग करताहै वह अंतकालमें शरीरको छोडकर स्वर्गको चला जाताहै ॥ ७६ ॥ इ-त्यार्षे श्रीम०वा०आ०अ०शततमः सर्गः ॥ १०० ॥

एकाधिकशततमः सर्गः ॥

तंतुरामःसमाज्ञायभ्रातरंगुरुवत्सलम् ॥ लक्ष्मणेनसहभ्रात्राप्रष्टुंसमुपचक्रमे ॥ १ ॥

इस प्रकार रामचंद्रजी गुरुवत्सल भरतजीसे कुशल प्रश्नके मिससे उपदेश कर फिर भ्राता लक्ष्मणके सहित भरतजीसे पूछनेंलगे ॥ १ ॥ हे भइया ! किसकारण तुम जटा वल्कल धारण करके यहां आये सो स्पष्ट करके कहो हमें सुनने की इच्छा हुईहै ॥ २ ॥ तुम राज्यको त्या-ग करकें जिस कारण छालके कपडे पहर और जटाधारी होकर यहां आयेहो सो सब इस समय तुमको प्रकाशित करना चाहिये ॥ ३ ॥ का कुत्स्थ कुलमें उत्पन्न महात्मा रामचंद्रजीनें जब इस प्रकार कहा; तब कैकेयीपुत्र भरतजी अति कष्टसे शोकके वेगको रोक हाथ जोडकर वोले ॥ ४ ॥ हे आर्य ! महाबाहु पिता दशरथजी हमारी माता केकेयी के कहनेसे ज्येष्ठ पुत्रको छोड छोटेको राज्यदे पुत्र शोकसे पीडित होकर

हम सबको परित्याग करके स्वर्गको चले गयेहैं ॥५॥ हे शत्रुओंके तपाने वाले ! हमारी माता कैकेयीनेभी उस महा पापमें लगकर अपने वंशको नष्ट कियाहै ॥६॥ इस समय यह राज्य प्राप्तिकी आशासे हाथधो विधवा और शोकसे व्याकुल होकर महाघोर नरकमें पडैगी ॥ ७ ॥ मैं अबभी आपका वही दासहूँ अतएव आप हमपर प्रसन्न होवें। और आजही आप इन्द्र की समान राज्य पर अभिषिक्त होवें ॥ ८ ॥ यह सब प्रजा और यह विधवा मातायें आपको प्रसन्न करने के लिये यहां आई हैं अतएव आप प्रसन्न होवें ॥ ९ ॥ हे मानद ! आप बडे होनेसे राज्यके अधिकारी हैं और आपहीको राजगद्दी पर बैठना उचित है अतएव धर्मानुसार राज्य ग्रहण करकै बन्धु बान्धव इष्ट मित्रोंकी कामना पूर्ण करो ॥ १० ॥ शरदऋतुकी रात जिस प्रकार विमल चन्द्रमाके द्वारा पति युक्त होती है वैसेही समुद्र करकै सहित यह पृथ्वी आपको पतित्वमें वरण करकै सधवा होवे ॥ ११ ॥ हम आपके भ्राता, शिष्य और दास हैं सो अब मंत्रियों के सहित शिर झुकाकर प्रार्थना करतेहैं कि आप प्रसन्न होवें ॥ १२ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! यह परम्परासे चले हुए बाप दादा परदादाओं करकै मान पाये हुए मंत्री लोग बेर २ कामना कररहे हैं कि आप अयोध्याकी राजगद्दीपर बैठें बस इनकी प्रार्थना पर ध्यान देना उचित ही है ॥ १३ ॥ यह कहकै महाबाहु कैकेयीकुमार भरतजी नेत्रोंसे आंसू भरकर फिर रामचन्द्रजीके चरणों पर अपना मस्तक धर देते हुए ॥ १४ ॥ और बारंबार मतवाले हाथी की समान दीर्घ श्वास लेते हुए देखकर रामचन्द्रजी उनको उठा छातीसे लगाकर कहनें लगे ॥ १५ ॥ हे अरिसूदन ! हमारी समान अच्छेकुल में उत्पन्न हुआ सत्वसम्पन्न तेजवान और व्रताचारी मनुष्य किस प्रकारसे पिताकी आज्ञाको उल्लंघन करकै पापमें पडैगा ॥ १६ ॥ हे भरत ! हम तो तुम्हारा कुछ जरासा भी दोष नहीं देखते बालक पनकी चंचलताके वश होकर तुमको अपनी माताकी भी निन्दा करनी नहीं चाहिये ॥ १७ ॥ हे पापरहित ! हे महाप्राज्ञ ! पिता इत्यादि गुरुजन अपने अनुगत स्त्री और पुत्रोंके साथ सदा इच्छानुसार व्यवहार कर सकते हैं ॥ १८ ॥ हे सौम्य! संसार में साधु लोग स्त्री पुत्र और चेलों को जिस प्रकार आ-

ज्ञाकारी कह कर मानते हैं, वस वैसेही पिताजीके निकट हम भी हैं, इस बातको तुम्हें जान लेना उचितहै ॥ १९ ॥ हे प्रियदर्शन! महाराज दशरथजी हमें चीर बसन और मृग चर्म धारण कराके वनमें या राज्यमें जहां इच्छा हो उसी स्थानमें वास करा सकते हैं ॥ २० ॥ हे धर्मज्ञ हे धार्मिक श्रेष्ठ! सर्व लोकोंको सत्कार किये हुए पिताका जिस प्रकार गौरव करना उचित है, माता की भी वैसेही प्रतिष्ठा करनी चाहिए॥२१॥ हे भरत! इन धर्मशाली पिता और माता करके "वनको जाओ" यह आज्ञा पाकर हम किस प्रकार उसको उल्लंघन कर दूसरी मति करैं॥२२॥ तुम अयोध्याजीमें सर्व लोकोंकी सम्मतिसे राज सिंहासन पर बैठोगे और हमें चीर वल्कल धारण करके वनमें वास करना होगा ॥२३॥ महाराज दशरथजीने सर्व लोकोंके समक्ष यह विभाग की व्यवस्था करके स्वर्ग में प्रस्थान किया है ॥ २४ ॥ इस समय वही लोकोंके गुरु धर्मात्मा राजाही तुम्हारे प्रमाण हैं जिस प्रकार वह भाग करके गये हैं वैसेही राज्य भोग करना तुमको उचित है ॥ २५ ॥

यदब्रवीन्मांनरलोकसत्कृतःपितामहात्मावि
बुधाधिपोपमः ॥ तदेवमन्येपरमात्मनोहितं
नसर्वलोकेश्वरभावमव्ययम् ॥ २६ ॥

हे सौम्य! हमभी चौदह वर्ष दण्डक वनमें रह कर उन महात्मा पिताजी का दिया हुआ हिस्सा भोग करेंगे, देखो, दशरथजी हमारे पिता साक्षात् इन्द्रकी समान और सब लोकोंके पूजनीय हैं। उन महात्मानें हमसे जो कहा है वही हमारे लिये हितकारी है। इसके सिवाय सब लोकोंका अक्षय राज्यभी हमें अच्छा नहीं लगता ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे एकाधिकशततमः सर्गः ॥१०१॥

॥ द्व्यधिकशततमः सर्गः ॥

रामस्यवचनंश्रुत्वाभरतःप्रत्युवाचह ॥
किंमेधर्माद्विहीनस्यराजधर्मःकरिष्यति ॥ १ ॥

रामचन्द्रजीके वचन सुन भरतजी बोले कि हम धर्महीन हैं अतएव

राजधर्मके सीखनेसे हमें प्रयोजन क्या है ॥ १ ॥ हे नरश्रेष्ठ! हम सूर्य वंशियोंमें यह धर्म बहुत दिनोंका चला आता है कि राजाके बडे बेटे के होते छोटा पुत्र कभी राज्यका अधिकारी नहीं हो सकता ॥ २ ॥ इससे हे रघुवीर! आप हमारे साथ धन धान्ययुक्त अयोध्यापुरीको गमन करके अपने वंशका कल्याण करनेंके लिये राजगद्दीपर बैठिये ॥ ३ ॥ देखो सबही कोई राजा हमारे पिताजीको मनुष्यही कहतेथे परन्तु हम जानते हैं कि वह देवताथे क्योंकि उनके धर्मानुमोदित चरित्र मनुष्यों में कभी संभव नहीं हो सकते ॥ ४ ॥ जब कि हम केकयराज्यमें अपनें मामाके यहां रहे और आप दण्डकवनमें चले आये, तब साधु सम्मत यज्ञ करनें वाले बुद्धिमान राजा दशरथजी स्वर्गको चले गये ॥ ५ ॥ आप सीता, लक्ष्मण सहित जैसेहो कि अयोध्याजीसे चले आये वैसेही राजा दशरथजी दुःख और शोकसे घिर कर स्वर्गको चले गये ॥ ६ ॥ हे पुरुषसिंह आप इस समय उठ कर पिताजीको जलाञ्जलि दीजिये हम और शत्रुघ्नजी पहलेही तर्पण कर चुके हैं ॥ ७ ॥ हे रघुनंदन! पंडित लोग कहते हैं कि प्यारे पुत्रका ही दिया हुआ पिण्ड और जल आदि पितरोंके लोकमें पितरोंके निमित्त सदा रहता है, सो आपही पिताजीके प्यारे और बडे पुत्र हैं ॥ ८ ॥

त्वामेवशोचंस्तवदर्शनेप्सुस्त्वय्येवसक्तामनि
वर्त्यबुद्धिम् ॥ त्वयाविहीनस्तवशोकरुग्ण
स्त्वांसंस्मरन्नेवगतःपिताते ॥ ९ ॥

विशेष करके आपकेही बिछुडनेसे आपकेही लिये शोक करते और आपकोही याद करते २ पिताजी परलोकको चले गये हैं । अंत समय आपके देखनेकी उनको बहुतही इच्छा हुई थी, और आपके प्रति उनका चित्त इस प्रकार लगाहुआ था कि अपने चित्त को वह किसी प्रकार आपमें से नहीं हटासके ॥ ९ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अ० द्व्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०२ ॥

त्र्यधिकशततमः सर्गः ॥

तांश्रुत्वाकरुणांवाचंपितुर्मरणसंहिताम् ॥

राघवोभरतेनोक्ताबभूवगतचेतनः ॥ १ ॥

रामचन्द्रजीने भरतजीके मुखसे पिताके मरनेकी जब करुणा भरी बात सुनी तो उनको मूर्च्छा आगई ॥ १ ॥ दैत्योंके शत्रु इन्द्र जिस प्रकार दानवों के शत्रुओंपर संग्राम में वज्र छोडते हैं इसी प्रकार वाणी रूपी वज्र की समान भरतजीके वचन सुन ॥ २ ॥ रामचंद्रजी दोनो बाहें शिथिल कर वनके बीच फरसे द्वारा काटे हुए खिले फूलों करके युक्त वृक्ष की समान पृथ्वीपर गिर पडे ॥ ३ ॥ जगत्पति रामचंद्रजी जब इस प्रकार पृथ्वीमें गिर पड़े तब ऐसा बोध हुआ कि मानों कोई मतवाला हाथी नदीका करारा तोडते २ थककर नींद लेनेंके लिये लेट गया ॥ ४ ॥ तब रामचंद्रजीको मूर्च्छित हुआ देख सब भाई जानकीके सहित शोकसे व्याकुल होकर रोते २ उन महाधनुषधारी रामचंद्रजीके सब शरीर पर जल छिडकने लगे ॥ ५ ॥ रामचंद्रजी फिर चैतन्यता प्राप्त करके आंसुओंके जलको वर्षाते हुए अनेक प्रकारके विलाप कलाप करते हुए ॥ ६ ॥ वह धर्मात्मा रामचंद्रजी यह सुनकर कि पिताजी स्वर्गको चले गयेहैं धर्म संगत वचन भरतजीसे बोले ॥ ७ ॥ पिताजी जब स्वर्गको चले गये तो अब हम अयोध्या पुरीमें जाकर क्या करेंगे, उन नृपालश्रेष्ठ विहीन अयोध्या पुरीकी कौन पालन करेगा? ॥ ८ ॥ हमारा जाना अब वृथाहै। जिन्होंनें हमारेही शोकसे प्राण त्याग किये हम उनका कुछभी सत्कार न करसके हमारे और उन महात्माके कार्यमें बहुत प्रभेदहै ॥ ९ ॥ हे निष्पाप भरत! तुम्हारे ही मनोरथ सिद्ध हुए कि तुमने शत्रुघ्नके सहित पिताजीके सब प्रेत कार्य किये ॥ १० ॥ हम अभी क्या वरन वनवास सेभी लौट कर उन प्रधान पुरुषहीन बहुनायक नरेन्द्रवर्जित अयोध्या पुरीमें नहीं जाना चाहतेहैं ॥ ११ ॥ हे परन्तप! हमारे पिताजी परलोकको चले गयेहैं, अतएव जब हम वनवास समाप्त करके अयोध्याजीमें जायगे तो हमें कौन हिताहितके उपदेश देगा ॥ १२ ॥ पहले पिताजी हमको अपनी आज्ञा पालन करनेंमें तैयार देखकर समझाते बुझाते हुए जो वचन बोला करतेथे वह समस्त श्रवणसुखदाई मनोहर वचन

अब किससे सुनेंगे ॥ १३ ॥ शोकसे तपाये हुए श्रीरामचंद्रजी भरत-जीसे यह कह कर सीताके सामने हो उन पूर्णचंद्रवदनवालीसे बो-ले ॥ १४ ॥ हे सीते! तुम्हारे ससुर परलोकको चले गये, लक्ष्मण! तुम पिता हीन होगये—भरतजी राजाकी यह शोककी उपजानेवाली मरण वार्त्ता दुःखित होकर कहतेहैं ॥ १५ ॥ काकुत्स्थनंदन श्रीरामचंद्र-जीनें जब ऐसा कहा तब यशवान् सब राजकुमार रोनेलगे ॥ १६ ॥ तिसके पीछे उन सब भाइयोंनें शोकसे व्याकुल रामचंद्रजीको समझा बुझाकर कहाकि इस समय आप जगत्पति महाराजको तिलांजलि दीजिये ॥ १७ ॥ तब सीताजीने सुना कि ससुर मृतक होगयेहैं तो उनके दोनों नेत्रोंसे आंसुओंकी झडी लगगई और वह किसी प्रकार उस समय प्रीतम रामचंद्रजीको नहीं देखसकीं ॥ १८ ॥ तब रामचंद्र-जी उन रोती हुई जानकीजीको समझा बुझाकर शोकसे दुःखितहो लक्ष्म-णजीसे करुणाके भरे वचन बोले॥१९॥ हेलक्ष्मण! तुम इस समय इंगुदीके बीजोंको पीसकर यहां लेआओ और एक टुकडा नये कपडेकाभी लेआ-ओ हम महात्मा पिताजी की जल क्रिया करनेके निमित्त चलैंगे ॥२० ॥ सीता आगे २ चलें तुम इनके पीछे २ चलो और हम सबके पीछे२ चलेंगे क्योंकि इस दारुण मृतक जल क्रियावाले समयमें चलनेकी यही परि पाटीहै॥२१॥उस समय इक्ष्वाकु गुणोंके प्राचीन प्रधान लोकज्ञानवान म-हामति कोमल और चतुर राममें दृढभक्ति करनेवाले ॥ २२ ॥ सुमंत्र-जीनें भरत लक्ष्मण व शत्रुघ्न तीनों राजपुत्रोंको बहुत समझाय बुझाय रामचन्द्रजीका हाथ पकड कल्याणरूप जल युक्त मन्दाकिनी नदीके घाटपर धीरे २ उतारा ॥ २३ ॥ जो घाट मन्दाकिनी नदीके तीर पर उतरनेकाथा वह अति सुन्दरथा विशेपतः उसके चारों ओर फूले हुए वनथे इस कारण मन्दाकिनी नदी मनोहर मूर्त्ति धारण किये हुएथी सी-ताजीके साथ परम यशवान सब राजकुमारही शोकके मारे विकलहो अति कष्टसे गिरते पड़ते वहां पहुँचे ॥ २४ ॥ तिसके पीछे वह कीचड व अँदन रहित चौडे लंबे सम तल घाटपर उतर करकै " एतद् भवतु " कहकर पिता दशरथजीके लिये जल देनेमें प्रवृत्त हुए ॥ २५ ॥ महि-पाल रामचन्द्रजी उस समय जलसे भरी अंजली लेकर दक्षिणको मुख

करके खडेहो रोतेर कहनें लगे ॥ २६ ॥ हे राजशार्दूल ! आप पितृ लोकको चले गयेहैं अतएव इस समय आपके लिये मेरे हाथका दिया हुआ निर्मल जल अक्षय होकर पितृलोकमें तुम्हें प्राप्त होवे ॥ २७ ॥ अनन्तर तेजवान रामचन्द्रजीने भ्राताओंके सहित मन्दाकिनीके किनारे से थोडीही दूरपर जाकर पिता दशरथजीके लिये पिंडदान किया॥२८॥ रामचंद्रजी कुशोंके सहित बेर मिलाकर तिलके खोल सहित इंगुदीके पिंड अर्पण करके अत्यन्तही दुःखितहो रोदन करते २ बोले ॥ २९ ॥ हे महाराज ! जो आज कल हम खातेहैं वही इस समय आप भोजन कीजिये आदमी जो कुछ कि आप खाताहै उसके पितृ देवताभी वही आहार करतेहैं ऐसा शास्त्रमें लिखाहै ॥ ३० ॥ फिर नरश्रेष्ठ रामचंद्रजी जिस मार्गसे नदीके किनारे पर उतरकर आयेथे उसी मार्गसे मन्दाकिनीके बाहर जाय रमणीय कंगूरा सहित चित्रकूट पर्वतपर आरोहण करते हुए ॥ ३१ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी अपनी पर्णकुटीके द्वार पर आये और एक हाथसे लक्ष्मण व एक हाथसे भरतका हाथ पकड लिया ॥ ॥ ३२ ॥ गर्जते हुए शेरकी समान पर्वत पर सीताजीके साथ रोते हुए सब भाइयोंके रोनेके शब्दसे दशोंदिशा भर गईं ॥ ३३ ॥ इस प्रकार महाबलवान् भाई लोग जब पिता दशरथजीको जलदे दिलाकर रोते रहे, तब भरतजीकी सैनाके लोगोंने वह रोनेका कठोर शब्द सुना तब वह सब डरगये और आपसमें कहने लगे ॥ ३४ ॥ कि निश्चयही भरत श्रीरामचंद्रजीसे मिल गयेहैं और अब सब स्वर्गवासी पिताजीके मरनेसे शोककरके रोरहेहैं बस यह उनकेही रोनेका ऐसा कठोर शब्द हो रहाहै ॥ ३५ ॥ तिसके पीछे सैनाके लोग अपनी २ सवारियोंको छोड छाँडकर जहांसे शब्द होताथा उसी ओर को ताककर एक मनसे शीघ्रतासे उस तरफ को सबके सब पैदलही धाये परन्तु सुकुमार जिनसे पैदल चला नहीं जाताथा वह लोग कोई हाथी कोई घोडे कोई शोभायमान रथ परही चढ कर दौडे ॥ ३६ ॥ ३७ ॥ रामचंद्रजी यद्यपि थोडेही दिन हुयेथे कि अयोध्यासे चले आयेथे परन्तु सबही लोग यह विचार कि मानों रामचंद्रजी बहुतही दिनोंसे परदेशमें वास करतेहैं उनको देखनेके लिये एकाएकी झटपट आश्रममें पहुँचे ॥ ३८ ॥ चारों भाइयोंका समागम

देखनेके लिये घोडे आदिकोंके खुर व रथादिके पहियोंकी पुष्टियोंसे पृथ्वी खोदते हुए अनेक प्रकारकी सवारियों पर चढ २ सब लोग गये ॥ ३९ ॥ पृथ्वीपर भलीभांति उन रथके पहियोंके चलनेका व और सब सवारियों का ऐसा शब्द हुआ मानों वादरोंके आजानेंसे आकाशमें कडी कडक होरहीहै ॥ ४० ॥ परिवारवाले बडे २ हाथी जितने कि उस वनमेंथे उस शब्दको सुन और घवडाकर अपने २ बच्चे व हथनियोंके साथ मदकी गंधसे आकाशको सुगन्धित करते हुए भागकर दूसरे वनमें चले गये ॥ ४१ ॥ असुर, हरिण, सिंह, भैंसा, नीलगाय, व्याघ्र, गोकर्ण, (मृगविशेष) चमर गाय और चीते आदि सब मृग बहुतही डरगये ॥ ४२ ॥ चकई चकवा, हंस, जलमुरगावियां कोकिला व क्रौंचादि पक्षी चेतना रहित हो गिरते पडते दशों दिशाओंको भाग खडे हुए ॥ ४३ ॥ उस कालमें उस शब्द करके डरे हुए पक्षियोंसे आकाश मंडल और मनुष्यों करके पृथ्वीकी अतिशय शोभा उत्पन्न हुई ॥४४॥ अनन्तर सब लोगोंने वहां शीघ्र जाकर देखाकि यशवान् और निष्पाप पुरुषसिंह रामचंद्रजी एक चौतरे पर बैठेहैं॥४५॥यह देखकर वह सब लोग कैकेयी और अहित की करनेवाली मंथराकी निन्दा करते २ रामचंद्रजीके सामने जाकर रोने लगे॥४६॥धर्मज्ञ श्रीरामचंद्रजी उन सबको बहुतही दुःखित और रोते हुए देखकर किसीको माताकी समान किसीको पिताकी समान मिले ॥४७॥ मिलनेके योग्य मनुष्योंसे जब रामचंद्रजी मिले तब और लोगोंनें भी रामचंद्रजीको प्रणाम किया उस काल नृपकुमार श्रीरामचंद्र अपनी बराबरकी उमर वाले और अपने बंधु बांधवोंसे यथा योग्य व्यवहार करते हुए॥४८॥

ततःसतेषांरुदतांमहात्मनांभुवंचखंचानुविनादयन्स्वनः ॥ गुहागिरीणांचदिशश्चसंततंमृदंगघोषप्रतिमोविशुश्रुवे ॥ ४९ ॥

तिसके पीछे आये हुये सब लोगोंने जब रोना आरंभ किया,तब मृदंगके शब्दकी समान महाघोर शब्द उठकर, आकाश, पृथ्वी, पर्वतोंकी गुहाओंमें टकराकर सुनाई आने लगा ॥ ४९ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वाल्मीकीये आ० अ० त्र्युत्तरशततमः सर्गः ॥ १०३ ॥

चतुरधिकशततमः सर्गः ॥

वसिष्ठःपुरतःकृत्वादारान्दशरथस्यच ॥
अभिचक्रामतंदेशंरामदर्शनतर्षितः ॥ १ ॥

इस ओर वशिष्ठजी रामचंद्रजीके दर्शनकी अभिलाषा करके दशरथजीकी रानियोंको आगेकर जहां श्रीरामचंद्रथे वहांपर चले ॥ १ ॥ मन्दाकिनी नदीकी ओरको मंद २ गमन करते २ कौशल्यादिक सब रानियोंने राम लक्ष्मणके स्नान करनेका नदीका घाट देखा ॥ २ ॥ उसको देखकर देवी कौशल्याजी मुख सुखाय रोकर बहुतही व्याकुलहो सुमित्रा व और दूसरी रानियोंसे कहने लगीं ॥ ३ ॥ जोकि राज्यसे वनको भेजे गयेहैं और जिनके सब कर्म अमानुपीयहैं उन हमारे वारे प्राणोंसे प्यारे अनाथ राम लक्ष्मण और सीताके नहानेंका यह घाटहै, वह यहां अति कष्टसे स्नानादि करते होंगे॥४॥हे सुमित्राजी! तुम्हारे पुत्र लक्ष्मण आलस्यको छोडकर हमारे पुत्रके लिये अपने हाथसे भरकर इस जगहसे जल ले जातेहैं ॥५॥किन्तु इस प्रकार जलादि भर लानेके कार्य नीचहैं पर इससे तुम्हारे पुत्रकी कुछ निन्दा नहीं होगी कारणकि यदि बडे भाई रामचन्द्रजीके लिये यह काम न होता तो निश्चय निन्दाकी बातथी ॥ ६ ॥ जोहो अब रामके अयोध्याजीमें लौटालानेपर सदा सुख पाने लायक दुःखके अयोग्य लक्ष्मणजीको यह सब नीच मनुष्योंके करने लायक कष्टकारी कार्य नहीं करनें पडेंगे ॥ ७ ॥ इस प्रकार कहते २ बडे नेत्रवाली देवी कौशल्याजीनें देखाकि रामचंद्रजीने पिताके लिये जो इंगुदीके बीजोंको पीसकर जो पिंड दियाहै वह वहां भूमिपर उन कुशोंपर रक्खाथा जिनकी फुनगी दक्षिण और जड उत्तर कोथी ॥ ८ ॥ इस प्रकार जब कौशल्याजीने देखाकि रामने शोकसे ग्रस्त होकर पिताके लिये भूमिमें यह पिंड रक्खाहै तब वह सब और रानियोंको पुकारकर बोलीं ॥ ९ ॥ हे सब स्त्रियो! जो इक्ष्वाकुओंके नाथहैं उन राजा दशरथजीके लिये श्रीरामचंद्रजीनें यथा विधानसे यह पिंड दियेहैं ॥ १० ॥ देखो, साक्षात् देवताओंकी समान अनेक प्रकारके भोजन करनें वाले महात्मा दशरथजीके लिये इंगुदीके पिंड किसी प्रकारके उचित नहीं ज्ञात होते ॥ ११ ॥ क्योंकि

चारों समुद्र तक सब वसुधाको इन्द्रके समान भोगकर अब वह राजा कि-स प्रकार इंगुदीके पिंड भोजन करेंगे ॥ १२ ॥ हाय! इस लोकमें इस्से अधिक हमारे लिये और दुःख क्या होगा कि बुद्धिमान रामचंद्रजीने पिताजीके लिये इंगुदीके फलके पीठका पिंड दिया ॥ १३ ॥ रामचंद्र-जीके दिये हुए यह इंगुदीके पिंड देखकर क्यों नहीं हमारा हृदय दुःखसे हजार टुकडे होजाता? ॥ १४ ॥ लोकमें जो जिस प्रकारका भोजन क-रताहै उसके पितृलोगभी निश्चय वही आहार करतेहैं यह जो संसारमें कहावत चली आतीहै सो आज सत्य ज्ञातहोतीहै ॥ १५ ॥ कौशल्याजी जब इस प्रकार व्याकुल होगई तब राजा दशरथजीकी और दूसरी रा-नियें उनको समझानें बुझानें लगीं और रामचंद्रजीके आश्रममें पहुँचकर उन सबने देखाकि रामचंद्रजी स्वर्गसे गिरे हुए देवताकी समान वहां बैठे-हैं ॥ १६ ॥ वह सब प्रकारके सुख भोगके पदार्थ छोड बैठे हुएहैं ऐसा रामचंद्रजीको सब मातायें देख मारे शोकके पीडित और बहुतही व्याकु-लहो रोनें लगीं ॥ १७ ॥ सत्यप्रतिज्ञाकरनेवाले पुरुषोंमें सिंह रामचंद्र-जीनें उनको देखतेही उठकर सब माताओंके चरण कमल ग्रहण कि-ये ॥ १८ ॥ बडे २ नेत्रवाली सब रानियें कोमल परम सुन्दर सुख देनें-वाले हाथोंसे रामचंद्रजीके पीठकी धूल भली प्रकारसे झाडनें व पोछनें लगीं ॥ १९ ॥ तब लक्ष्मणजीभी सब माताओंकी यह व्यवस्था देख अ-ति दुःखित हुये और रामचंद्रजीके पीछे धीरे २ उनमें मन लगाकर उन सब माताओंको प्रणाम करते हुए ॥ २० ॥ सब रानियोंने जैसा रामचंद्र-जीके साथ व्यवहार किया वैसाही व्यवहार शुभ लक्षणवाले दशरथजीके पुत्र लक्ष्मणजीके साथ किया क्योंकि यहभी तो महाराज दशरथजीहीके पुत्रथे फिर स्नेह कम क्योंहो ! ॥ २१ ॥ सीताजीभी मनमें बहुतही दुः-खितहो रोने लगीं और सब सासुओंके पैरोंमें पड आगे खडी होगई॥२२॥ दुःखिनी कौशल्याजी जिस प्रकार माता बेटीको लिपटाले ऐसेही वनवा-ससे जिनका शरीर दुर्बल होगयाहै जो अति दीनहैं, ऐसी जनकदुलारी सीताजीको छातीसे लगाकर कहनेलगीं ॥ २३ ॥ जो कि राजा जनक-जीकी लाड लडैती प्यारी बेटी महाराजाधिराज चक्रवर्ती दशरथजीकी पुत्र वधू व रामचंद्रजीकी स्त्रीहो फिर तुमने किस प्रकार इस जन रहित वनमें

दुःख पाये ॥ २४ ॥ अहो जानकि! धूपके तापसे मुझाये हुए कमलकी समान व मलेमीजे हुये लाल कमलकी नांई धूरि लगे हुये सुवर्णकी नांई और वादरोंसे ढके हुये चंद्रमाकी नाईं ॥ २५ ॥ तुम्हारा मुख मलीन देखकर आग जिस प्रकार काठको जला देतीहै वैसेही यह शोककी आग हमारे मनको जराये डालतीहै ॥ २६ ॥ माता कौशल्याजी दुःखसे पीडितहो इस प्रकार कहरहींथीं कि भरतजीके बडे भ्राता रामचंद्रजीनें वशिष्ठजीके निकट आकर उनके चरणपर विन्दु हुए ॥ २७ ॥ इन्द्र जिस प्रकार सुरगुरु बृहस्पतिजीके चरण छूतेहैं रामचन्द्रजीभी वैसेही अग्निकी समान तेजवान पुरोहित वशिष्ठ देवजीके चरणोंकी वंदना करके उनके साथही आसनपर बैठे ॥ २८ ॥ तब धर्मात्मा भरतजी अपने मंत्रियोंके साथ प्रधान २ पुरवासियोंके साथ वीरगण व और दूसरे धर्मवान लोगोंके साथ पीछेकी ओर रामचंद्रजीके समीपही बैठे ॥ २९ ॥ इस प्रकारसे महावीर भरतजी देवराज इन्द्र जिस प्रकार ब्रह्माजीके निकट बैठतेहैं वैसेही लक्ष्मीसे प्रकाशमान रामचंद्रजीके समीप बैठकर पवित्र मनसे मुनिका भेष किये हुये रामचन्द्रजीकी ओर हाथ जोडे देखते रहे ॥ ३० ॥ उन भरतजीको इस प्रकार बैठे हुये देखकर वह अब रामचन्द्रजीसे प्रणाम और आदर मान करकै कौनसी युक्ति सहित बात कहैंगे, सो श्रवण करनेके लिये जितने वशिष्ठादि श्रेष्ठ जनथे सबको यही सुननेका कौतूहल था ॥ ३१ ॥

सराघवःसत्यधृतिश्चलक्ष्मणोमहानुभावोभर
तश्चधार्मिकः ॥ वृताःसुहृद्भिश्चविरेजिरेध्वरे
यथासदस्यैःसहितास्त्रयोग्नयः ॥ ३२ ॥

उस कालमें सत्य वचन बोलनेवाले श्रीरामचन्द्रजी महानुभाव लक्ष्मणजी और धार्मिक भरतजी यह सब सुहृद् गणोंके साथ शोभित होकर सभासदोंके साथ बैठे हुये तीन यज्ञकी अग्नियोंकी समान शोभा धारण करते हुये ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० अ० चतुरुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०४ ॥

पंचाधिकशततमः सर्गः ॥

ततःपुरुषसिंहानांवृतानांतैःसुहृद्गणैः ॥
शोचतामेवरजनीदुःखेनव्यत्यवर्तत ॥ १ ॥

अनन्तर वह पुरुष सिंह बंधु बांधवोंसे घिरे हुये शोक करते २ व राम चंद्रजीके लौटानेका उपाय सोचते हुये वह रात्रि विता देते हुये ॥ १ ॥ जब प्रभात होगया तब बंधु भ्राता व बंधु बांधवोंके साथ मन्दाकिनी नदी पर जप होम समाप्त करके रामचन्द्रजीके समीप उपस्थित हुये ॥ २ ॥ और सबही चुप चापहो रामचन्द्रजीके निकट बैठेरहे किसीने कोई बात नहीं की तिसके पीछे भरतजी सुहृदोंके बीचमें बैठे हुये रामचंद्रजीसे कहने लगे॥३॥राजा दशरथजीनें पहले हमारी माता कैकेयीको राज्य देकर संतोष कराया फिर माताने यह राज्य हमें दे डाला सो अब हम यह राज्य आपको देतेहैं अतएव इसको आप निष्कंटक होकर भोगो ॥ ४ ॥ आपके सिवाय इस बडी राज्यकी रक्षा करनेको कोई भी समर्थ नहींहै वर्षाके समय जलके वेगसे जब पुल टूट जाताहै तब जलका वेग किसीका रोका नहीं रुक सकताहै ॥ ५ ॥ हे महोपाल गधा जिस प्रकार घोडेकी व और पक्षी गरुडकी चालको नहीं पाय सक्ते वैसेही आपके राज्यके पालन करनेंकी सामर्थ्यको हम नहीं पहुँच सक्ते ॥ ६ ॥ जो मनुष्य सदाहीं औरोंकी सेवा करके जीताहै उसका जीना जैसा दुःखके साथहै और बहुत सारे नोकर चाकर जिसको आश्रय करके जीविका निर्वाह करतेहैं उसका जीवन वैसाही सुखके साथ वीतताहै अतएव यह राज्यका पालन करना आपही को शोभा देताहै ॥ ७ ॥ जैसे किसीने कोई पेड लगाया जब बढा तब उसकी बडी २ डालियां हुई तब आदमी उस पर नहीं चढ सकता। ऐसेही मैं राज्य नहीं कर सकता॥ ८ ॥ और जब उस पेड पर फूल भी आये और फल न लगे तो जिसके लिये लगाया गयाथा उसकी प्रीतिको वह अनुभव नहीं कर सकता॥ ९ ॥ वस इस कहनेंको आप अपने राज्य पानेंके लिये समझ जाइये क्योंकि आपही सबसे श्रेष्ठहैं और राज्यके पालनेकी सामर्थ्य रखतेहैं। हम आपके भृत्यहैं जब हमारा आप पालन पोषण नहीं करते तब किस कामकी आपकी बुद्धि हु-

ई ॥ १० ॥ अतएव हे महाराज ! अनेक जातियोंके बडे २ प्रजाके लोग शत्रुओंके नाश करनेवाले आपको प्रतापवान सूर्यकी समान तपते हुए राज्यगद्दी पर बैठे हुए देखें ॥ ११ ॥ हे काकुत्स्थ ! मतवाले हाथी गर्व सहित गर्जते हुए आपके साथ २ चलें और वनवासमें सब स्त्रियें एक चित्तहो मंगलकी ध्वनिकरैं ॥ १२ ॥ जब भरतजीने रामचंद्रजीको प्रसन्न करने के लिये ऐसा कहा तब पुरवासी बडे २ प्रतिष्ठित व छोटे दरजेके लोग सबहीने यह कहाकि वाह २ भरतजी बहुत ठीक कहते हैं ॥ १३ ॥ तब तेजवान धीरजके धारण करने वाले श्रीरामचंद्रजी भरतजीको दुःखित चित्तसे विलाप करते देखकर बहुत भांतिसे समझाते बुझाते हुए बोले ॥ १४ ॥ कि हे भरत ! यह जीव स्वभावसेही पराधीनहैं, अपनी इच्छानुसार कार्य करनेकी इसको कोई शक्ति नहींहै सबका ग्रास करनेवाला काल इसको लोक परलोक दोनोंमें अपने वश करके चलाताहै ॥ १५ ॥ अतएव कैकेयी वा राजा कोईभी हमारे वनवासके कारण नहींहैं यह सब बात कालकेही वश होनेसे हुईहै, जहां संयोगहै वहांही वियोग ,जहां जीवनहै , वहांही मरण, जहां संग्रहहै वहां ही क्षय, और जहां उन्नति (वढोतरी) है वही पतना घटीहै ॥ १६ ॥ जब कि फल पक जाताहै तब जैसाकि गिरनेके सिवाय उनकी और गति नहीं होती; वैसेही जन्म लेनेसे निश्चयही मरण होताहै किसी प्रकार यह टल नहीं सकता पके फल गिरनेकेसिवाय जन्म लेनेवालेको मरनेके सिवाय और भय नहीं ॥ १७ ॥ बडे २ मजबूत खंभ जिस घरमें लगेहों वह भी पुराना होने पर गिरही जाताहै ऐसेही मनुष्य मात्रही बुढापा आजानेसे मरही जातेहैं ॥ १८ ॥ जो रातकि वीत जातीहै वह फिर किसी प्रकार लौट कर नहीं आती देखो यमुनाजीका पूर्ण जल समुद्रमें मिल जाताहै परन्तु फिर लौट कर नहीं आता ॥ १९ ॥ गरमीके मौसम में सूर्य नारायणकी किरण जिस प्रकार जलको सुखा डालतीहै, वैसेही दिन व रात नियम सहित वीतते हुए चले जाकर हरेक प्राणीकी उमरको घटातेहैं ॥ २० ॥ इस विषयमें किसी प्रकारका विलंब नहीं होता आदमी बैठाही रहै, या चलता फिरता रहै, उसकी उमर घटतीही जातीहै अतएव तुम अपनेही लिये शोककरो पराये कारण शोक क्यों करते

हो? ॥ २१ ॥ मौत साथमें चलतीहै, साथमें बैठतीहै और साथही बहुत दूरभी चलकर लौट आतीहै, बस मौतके हाथसे छुटकारा पानेकी किसीको सामर्थ्य नहींहै ॥ २२ ॥ जब सब अंगोंकी खाल सुकुड गई बाल सफेद होगये बुढापा आजानेसे देह अत्यन्त जर्जर होगई तब फिर पुरुष क्या कर सकताहै ॥ २३ ॥ सूर्यके उदय होनेसे मनुष्योंके आनंदकी सीमा नहीं रहती जब कि सूर्य छिपेहैं तब भी आनन्दित होतेहैं परन्तु सूर्य भगवानके प्रतिदिन उदय अस्त होनेंसे अपनी उमर जो घटती चली जातीहै इस बातको जीव नहीं जानता ॥ २४ ॥ जैसे २ वसन्तादि नये २ ऋतु मनुष्य देखतेहैं तो उनको देखकर प्रसन्न होतेहैं परन्तु इन ऋतु ओंके अदल बदलसे उमर घटती जातीहै इसको वह कुछभी नहीं जानते ॥ २५ ॥ जैसे समुद्रमें दोकाठ एकही संग डाल दियेजांय तब कुछ देर तकतो वह दोनोंही साथ बहेंगे फिर कालान्तरमें कोई कहीं, कोई कहीं चला जायगा, फिर दोनोंका मिलना कठिनहै ॥ २६ ॥ वैसेही, स्त्री, पुत्र, जाति, भाई, बंधु, पशु, पक्षी, धन कुछ कालके लिये परस्पर मिल जातेहैं और फिर अलग २ होजातेहैं इस प्रकार इन दृश्यमान पदार्थ समूहों का अलग होना निश्चयहीहै ॥ २७ ॥ फलतः जब मृत्यु संसारका स्वभावहीहै कोई प्राणीभी इसको उल्लंघन नहीं कर सकता फिर परलोकमें गये हुए पिताजीके लिये शोक प्रकाश कर उनके प्रेतत्वके निवारण करनेकी किसको सामर्थ्यहै ॥ २८ ॥ जैसे कुछ पथिकोंका झुंड मार्गमें चला जाताहो और कोई राहमें बैठा हुआ मनुष्य उनसे कहै कि तुम्हारे पीछे २ हमभी आतेहैं ॥ २९ ॥ ऐसेही बाप दादे परदादोंके लिये हुये मार्ग पर एकदिन सबको अवश्यही गमन करना पडेगा इस भांति जब कि मरनाही पडेगा तब फिर मरे हुए के लिये शोच करना कभी उचित नहीं है ॥ ३० ॥ जैसे नदी आदिका जल प्रवाहकी ओर बहताही चला जाताहै फिर लौट कर नहीं आता ऐसेही आयुभी केवल जातीहै आती नहीं; सो यह सब देख भाल कर आत्माको सुख साधनके लिये धर्म कार्यमें लगाना उचितहै क्योंकि सुखभोग करनेहीके कारण मनुष्योंका जन्म हुआहै ॥ ३१ ॥ हे भ्रातः! हमारे पिताजीभी परम धार्मिक और साधुलोगोंके पूजनीयथे वह

यथाविधि दक्षिणाके साथ अनेक पवित्र यज्ञ करके स्वर्गको सिधारेहैं वहांभी उनका सत्कार होगा फिर उनके लिये शोक करना ठीक नहीं ॥ ३२ ॥ पिताजी पुराने मनुष्योंके चोलेको छोडकर ब्रह्म लोकमें विहार करनेवाली देवताओंकी देहको प्राप्त हुए होंगे ॥ ३३ ॥ अतएव उन पिताजीके लिये शोक करना हम तुम सरीखे बुद्धिवान शास्त्रोंके जाननेवाले ज्ञानवान पुरुषोंको उचित नहीं ॥ ३४ ॥ तुम धीर्यमान बुद्धिमानहो तुमको इस प्रकारका शोक करना विलाप करना रोना धोना अवश्य त्याग करदेना चाहिए ॥ ३५ ॥ अब तुम सावधान हो शोक मत करो और अयोध्या पुरीमें जाकर वास करो हे वाग्मि श्रेष्ठ! सत्य वचन कहने वाले पिताजी तुमको अयोध्या पुरीमें रहने को आज्ञा दे गये हैं ॥ ३६ ॥ वह पुण्य कर्मके करनेवाले परम पूजनीय पिताजी हमको जैसी आज्ञादेगयेहैं हमभी वनमें टिके हुए उनका पालन करैंगे ॥ ३७ ॥ हे शत्रुओंको दमन करनेवाले उनकी आज्ञाको उल्लंघन करना हमारे लिये किसी प्रकारसे ठीक न होगा तुमकोभी सदा उनका मान्य करना चाहिए क्योंकि हमारे तुम्हारे दोनोंके पिता व बन्धु वही ठहरे ॥ ३८ ॥ हे भरतजी! हम वनवास करके धर्मचारियोंकरकै सम्मत उन पिता जी के वचनों का कर्मद्वारा पालन करैंगे ॥ ३९ ॥ हे नरश्रेष्ठ! जिनको परलोकके जीतने की अभिलाषा है उन धर्मवान और सरल पुरुषोंको अपनेसे गुरु पिता माता आदिकोंके कहनेके अनुसार कार्य करना चाहिए ॥ ४० ॥ हे नरोत्तम! हमारे पिताजीके पवित्र चरित्र विचार करके अपने स्वभावके गुणों से परलोकमें अपना हित करनेकी चिन्तामें लगो ४१

इत्येवमुक्त्वावचनंमहात्मापितुर्निदेशप्रति
पालनार्थम् ॥ यवीयसंभ्रातरमर्थवच्चप्रभुर्मुहू
र्ताद्विररामरामः ॥ ४२ ॥

महात्मा श्रीरामचन्द्रजी पिताजीकी आज्ञाके प्रतिपालन करनेके

लिये अपने लघु भ्राता भरतजीसे इस प्रकारसे अर्थयुक्त वचन कहकर मुहूर्त भरतक चुपाय रहे ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अयोध्याकांडे पंचोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०५ ॥

षडाधिकशततमः सर्ग ॥

एवमुक्तातुविरतेरामेवचनमर्थवत् ॥
ततोमंदाकिनीतीरेरामंप्रकृतिवत्सलम् ॥ १ ॥

प्रजावत्सल श्रीरामचन्द्रजी मन्दाकिनी नदीके तीर पर जब इस प्रकारके सार्थक वचन कहकर मौन होरहे ॥ १ ॥ तब धर्मात्मा भरतजी सब एकत्र हुए लोगोंकी समाजको विस्मय उपजाते हुए धार्मिक वचन कहने लगे हे शत्रु ओंके नाश करनेवाले जैसे कि आप हैं ऐसा पृथ्वी पर दूसरा और कौन है? ॥२॥ आप दुःखके पडनेसे कुछ दुःखित नहीं होते सुख होने से कुछ हर्षित नहीं होते, सब वृद्ध लोग आपको बहुत मानतेहैं तथापि धर्मके विषयमें कोई सन्देह होनें पर आप उन लोगों से पूछा करते हैं ॥ ३ ॥ मृतक से जैसे स्त्री पुत्र और देह इत्यादि का सम्बन्ध नहीं रहता इसी प्रकार जीवित मनुष्य से भी कुछ नहीं है, अतएव मृतक और जीवित इन दोनो में भेद नहीं तिस पर अविद्यमान पदार्थों सें जिसको परितापादि उत्पन्न नहीं होते और विद्यमान वस्तुमें भी जिसका यही ज्ञान है फिर वह किस कारणसे परिताप करेगा? ॥ ४ ॥ हे नरनाथ! जो मनुष्य आपकी समान इस लोक व परलोकके वृत्तान्त जाने हुए हैं वह ऐसी विषम अवस्था में पडकर भी शोक नहीं करते ॥ ५ ॥ हे रघुनाथ आप देवताओंकी समान पराक्रमी, महात्मा, सत्य संकल्प, सब कुछ जाननेंवाले सर्व दर्शी और बुद्धिमान हैं ॥ ६ ॥ और प्राणियोंकी उत्पत्ति प्रलयको विशेष रूपसे आप जानते हैं, जबकि आप इस समस्त गुणों से युक्त हैं तब आपको बहुत असह्य दुःखभी नहीं घबडा सकता परन्तु हमारी समान मनुष्य जो इन दुःखोंके पडनेसे अधमरे होजायगे इसमें विचित्रता ही क्या है ॥ ७ ॥ जो हो जबकि हम परदेशमें अपने मामाके यहांथे तब ओछे स्वभाववाली हमारी माता कैकेयी

ने जो पापकि हमारे लिये किया है, वह किसी प्रकारसे हमारी इच्छा के अनुकूल न था न उसमें हमारी किसी प्रकारसे सलाहथी अतएव हमारे ऊपर प्रसन्न हूजिये ॥ ८ ॥ हम धर्मके बन्धन में बन्ध रहे हैं इसीकारण इस समय इस पाप करनेवाली दण्ड देनेके योग्य माता को हमने कठोर दण्ड देकर नहीं मारडाला क्योंकि धर्मशास्त्रमें स्त्री अवध्य लिखी है ॥ ९ ॥ श्रेष्ठ वंशमें उत्पन्न हुये सदा शुभ कर्म करने वाले राजा दशरथजीसे उत्पन्न होकर और धर्म अधर्म को जानकर भी हम किस प्रकार से ऐसा निन्दित कार्य करनेंमें प्रवृत्त हों ॥ १० ॥ सब यज्ञकी क्रियाओंके करने वाले गुरु वृद्धावस्थाको प्राप्त महीपाल पिताजी भी परलोकको चले गये हैं । इसकारण सभाके बीच उनकी भी निन्दा हम नहीं करसकते ॥ ११ ॥ किन्तु हे धर्मके जाननें वाले! कौन धर्मात्मा पुरुष साधारण स्त्रीका प्रिय करने की कामनासे ऐसा धर्मसे विरुद्ध परम निन्दनीय कार्य करनें में प्रवृत्त होगा! ॥ १२ ॥ विनाशकाले विपरीतबुद्धिः अर्थात् मरनेके समय सबकी बुद्धि नाश को प्राप्त हो जाती है यह जो कहावत लोकमें प्रसिद्ध है । सो राजा दशरथजाने बुद्धि विपरीत कार्य करकै उस कहावतको प्रत्यक्ष कर दिखाया ॥ १३ ॥ जो हुआ सो हुआ पिताजीने कैकेयीके कोप करनें के भयसे, चित्तके विक्षेपसे, अविचारसे, या उसमें कुछ अपनाही प्रयोजन समझ यह निन्दनीय कार्य कर डाला ॥ १४ ॥ पिताका पतन निवारण करै इसीकारण पुत्रको अपत्य कहते हैं; और जो कि पुत्र पिताके सब दोषोंको निवारण करै वह अपत्यनाम धारण करनेके लायक नहीं होता ॥ १५ ॥ इस समय वास्तवमें आप अपत्य का कार्य कीजिये क्योंकि पिताजीनें जो कार्य किया है उसको प्रकाशित न कीजिये महाराज दशरथजी नें धर्मको उल्लंघन न करके जो कर्म किया है पण्डित लोग उसकी निन्दा करते हैं सो आप राजगद्दीपर बैठ उस निन्दाको छिपालें ॥ १६ ॥ अतएव हमनें जो कुछ कहा उसके अनुसार आप हमारा कैकेयीका, पिताजीका सुहृद् और बन्धु बान्धव नगरवासी व देशवासी मनुष्योंका वरन सबकाही उद्धार कीजिये ॥ १७ ॥ कहां क्षत्रिय धर्म! और कहां जनशून्यवन! कहां प्रजापालन! और कहां जटा

धारण! अतएव पिताजीके आदेश किये हुए ऐसे विरुद्ध कार्य में आपको प्रवृत होना उचित नहीं है ॥ १८ ॥ हे महाप्राज्ञ! जिससे कि प्रजा पालन करनेमें समर्थ हुआ जाय वह अभिषेच नहीं क्षत्रियका मोक्षधर्महै ॥ १९॥ इस प्रकारसे प्रत्यक्ष सुखका देनेवाला प्रजा पालनेका व्रत छोड करके कौन क्षत्रिय लक्षण रहित, अति उचित भाववाले संशय युक्त बहुत कालमें सिद्ध होनेवाले वानप्रस्थ धर्ममें पडनेके लिये तैयार होगा ॥२०॥यदि शरीरको कष्ट देनेवाले धर्मकोही करने की आपकी बडी इच्छाहै तोधर्मानुसार ब्राह्मणादिचारों वर्णोंके पालन करनेका कष्ट आप भोगिये ॥ २१ ॥ हे धर्मज्ञ ! धर्मात्मा लोग चारों आश्रमके मध्यमें गृहस्थ आश्रमको ही अच्छा कहतेहैं फिर आप किस कारणसे गृहस्थ आश्रमके त्याग करनेको तैयार हुएहैं? ॥ २२ ॥ क्या विद्यामें, क्या जन्ममें, क्या स्थानमें, सबही भांति हम आपसे छोटेहैं, फिर आपके रहते हुए हम किस प्रकारसे पृथ्वीका पालन कर सकतेहैं ॥ २३ ॥ हम बुद्धिहीन, गुणहीन, स्थानहीन अनुज और बालकहैं आपके विना इकले किसी स्थानमें रहनेंकाभी हमको साहस नहींहै; फिर राज्य पालन करनेंकी बात तौ एक ओर रही ॥ २४ ॥ अतएव हे धर्मज्ञ ! आपही धर्मानुसार बंधु बान्धवोंके सहित स्वस्थ चित्तसे इस शत्रुरहित उत्तम निष्कंटक पिताजीके राज्यको पालन कीजिये ॥ २५ ॥ हे मंत्रके जाननेवाले ! सब प्रजा आदिकोंके सहित और वशिष्ठजीके साथ मंत्रोंके जाननेवाले ऋत्विक् लोग एकत्र होकर व सब मंत्री आदिक यहीं आपका अभिषेक करदें ॥ २६ ॥ देवराज इन्द्रजीने जिस प्रकार बल विक्रमसे अपने शत्रुओंको जीत मरुतगणोंके साथ स्वर्गमें प्रवेश कियाथा वैसेही आपभी अभिषिक्तहो बल पूर्वक अरातिवंशध्वंस करके प्रजा पालनेंके लिये हमारे सहित अयोध्यामें गमन करें ॥ २७ ॥ और वहां रहकर देव ऋण, ऋषिऋण और पितृऋण इन तीनो ऋणोंको उतार शत्रुओंको जलाते हुए और सर्व कामनाओंको पूर्ण करते हुये बंधु बांधवोंकी तृप्ति करके हमको सेवक बनाय आज्ञा किया कीजिये ॥ २८ ॥ हे आर्य ! आपके अभिषेकसे बन्धु बान्धव और सुहृद लोग सन्तुष्ट होवें; और शत्रु लोग भयभीत होकर दशों दिशाओंको भाग जांय ॥ २९ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! आपके वनवास

दिलानेका कलंक जो हमारी माताको लगाहै उसको धो डालिये, और पूजनीय पिताजीकीभी पापसे रक्षा कीजिये ॥ ३० ॥ हम शिर झुकाकर प्रार्थना करतेहैं कि महादेवजी जिस प्रकार सबही प्राणियोंपर दया करतेहैं वैसेही आपभी हमारे और सब बन्धु बांधवोंके ऊपर दया कीजिये ॥ ३१ ॥ यदि हमारी यह प्रार्थना अस्वीकार कर यहांसे आप दूसरे वनको चले जांयगे तो हमभी आपके साथ २ चलेंगे ॥ ३२ ॥ यद्यपि भरतजीने ऐसे दीनभावसे चरणोंपर शिरधर रामचंद्रजीको बहुत मनाया समझाया तथापि सत्यवान महीपाल रामचंद्रजी पिताजीकी आज्ञा पालन करनेके लिये दृढ संकल्प हुए और अयोध्याको लौट जाना किसी भांति उन्होंने स्वीकार नहीं किया ॥ ३३ ॥ श्रीरामचंद्रजीका इस प्रकारसे स्थिरपन देखकर सबही कोई जो अयोध्यासे आयेथे हर्ष विषादसे एक साथ मग्न होगये यह विचार कर तौ उन्हें शोक हुआ कि रामचंद्रजी अयोध्याको नहीं जांयगे और हर्ष उनकी स्थिरप्रतिज्ञाको देखकर हुआ ॥ ३४ ॥

तमृत्विजोनैगमयूथवल्लभास्तथाविसंज्ञाश्रु
कलाश्चमातरः ॥ तथाब्रुवाणंभरतंप्रतुष्टुवुः
प्रणम्यरामंचययाचिरेसह ॥ ३५ ॥

प्रधान २ पुरवासी लोग वेदवादी ब्राह्मण लोग मूर्च्छित हुये व आंसू डालती हुई माता लोग भरतजीकी प्रशंसा करने लगीं और सब उनके साथ मिलकर अयोध्याजीको ले चलनेके लिये रामचंद्रजीसे प्रणत भावसे प्रार्थना करने लगे ॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे षडुत्तरशततमः सर्गः ॥ १०६ ॥

सप्ताधिकशततमः सर्गः ॥

पुनरेवंब्रुवाणंतंभरतंलक्ष्मणाग्रजः ॥
प्रत्युवाचततःश्रीमान्ज्ञातिमध्येसुसत्कृतः ॥ १ ॥

जब भरतजी फिर कुछ बोले तब उनके बडे भाई परम माननीय श्रीरामचंद्रजी जातिवाले लोगोंके सामने उत्तर देते हुये ॥ १ ॥ कि तुम

नृप सत्तम दशरथजीसे कैकेयीके गर्भमें उत्पन्न हुयेहो फिर तुम्हारी सब बातें ठीकही ठीक होंगी इसमें संदेह क्याहै! ॥ २ ॥ किन्तु भइया! पहले हमारे पिता दशरथजी जब तुम्हारी माता कैकेयीका विवाह करनें गयेथे तब तुम्हारे नानाको उन्होंने यह वचन दियाथा कि आपकी इस कन्यासे जो पुत्र होगा हम उसकोही राज्य देंगे ॥ ३ ॥ फिर जब कि देवता और असुरोंके संग्राममें असुरोंसे लडते २ राजा दशरथजी मूर्च्छित होगयेथे और कैकेयीनें बहुतही सहायता करके उन्हें चैतन्य कियाथा तब राजा दशरथजीनें परम प्रसन्न होकर दो वर दिये ॥ ४ ॥ हे नरश्रेष्ठ! इसही कारण यशस्विनी सुन्दर बोलने वाली तुम्हारी मातानें राजाको विशेष रूपसे प्रतिज्ञासे बांधकर यह दोनों वर मांगेथे ॥ ५ ॥ हे नरवर राजानेभी उस करके प्रार्थना किये जानेंपर तुम्हारा राज्य और हमारा वनवास यह दो वर उसको दिये ॥ ६ ॥ हे पुरुष वर! उसी वरदानके निमित्त हमभी पिताजीकी आज्ञासे दंडकवनमें चौदह वर्ष वास करनेके लिये नियुक्त हुयेहैं ॥ ७ ॥ अब पिताजीकी आज्ञासे उनके सत्यकी रक्षा करनेंके लिये सीता और लक्ष्मणजीके सहित विवाद रहित हो इस निर्जन वनमें आकर बसे हैं ॥ ८ ॥ हे राजेन्द्र! अब तुमभी शीघ्रही अयोध्यामें जाय अपना अभिषेक कराय हमारी समान पिताजीके सत्यका पालन करो यह तुमको अवश्यही कर्त्तव्यहै ॥ ९ ॥ हे धर्मज्ञ! हमारे लिये तुमको पिताजीका ऋण छुटाना उनका उद्धार करना व कैकेयीको राज्यपर बैठकर संतोष करना होगा ॥ १० ॥ हे भ्रातः! ऐसा सुना जाताहै कि पहले समयमें यशवान गयराजा गयादेशमें यज्ञ करते हुए, उन्होंनें पित्रोंको प्रसन्न करनेके लिये यह गाथा गाईथी॥११॥ जिसके हेतुसे कि, पुत्र पिताको पुन्नाम नरकसे उद्धार और इष्ट व पुत्र कार्य द्वारा पिताको स्वर्गलोकमें भेजकर सब भांतिसें उनकी रक्षा करता रहताहै इसी हेतुसे उनको पुत्र कहतेहैं ॥ १२ ॥ सब मनुष्य इसीकारणसे विद्या और गुण संपन्न पुत्रोंकी कामना करतेहैं और उनको उत्पन्न करतेहैं कि उनमेंसे कोई तो पुत्र गयाको जाकर श्राद्ध करेहीगा ॥ १३ ॥ हे रघुनंदन! सब राजा लोग इसी बात पर विश्वास करके पुत्र उत्पन्न करतेहैं अतएव हे नरश्रेष्ठ! तुमभी तो चार भाई हो

सो पिताजीका नरकसे उद्धार करो ॥ १४ ॥ हे वीर! अब तुम सब द्विजाति और नौकर चाकर व प्रजा लोगोंके संग शत्रुघ्नजीके साथ अयोध्यामें जायकर राज्य करो ॥ १५ ॥ हे वीर ! हमभी और कुछ देर न करके सीता लक्ष्मण इन दोनों जनोंके साथ जलदीही दंडकारण्यको जांयगे ॥ १६ ॥ हे भरत तुम तो जाकर मनुष्योंके राजा होवो और हमभी वनचारी पशुओंके महाराज होवें अब तुम प्रफुल्ल चित्तसे नगरी श्रेष्ठ अयोध्याको गमन करो और हमभी इस ओर हर्षयुक्त होकर दंडकारण्यमें प्रवेश करें ॥ १७ ॥ हे भरत! सूर्यकी किरणोंका लजानेवाला राजकीय श्वेत छत्र तुम्हारे मस्तक पर शीतल छाया करै और इस ओर हमभी सुख सहित उन सब सघन वनोंके पेडोंकी छायामें उनके पत्तोंका आश्रय करैंगे ॥ १८ ॥

शत्रुघ्नस्त्वतुलमतिस्तुतेसहायःसौमित्रिर्मम
विदितःप्रधानमित्रम् ॥ चत्वारस्तनयवरावयं
नरेंद्रंसत्यस्थंभरतचराममाविषीद ॥ १९ ॥

हे भरत! बडे बुद्धिमान् शत्रुघ्न तुम्हारी सहायता करते रहैंगे और सर्व लोकोंमें विख्यात यह लक्ष्मणभी हमारी सहायता करैंगे तुम कुछ विषाद मतकरो * ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे सप्तोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०७ ॥

अष्टोत्तरशततमः सर्गः॥

आश्वासयंतंभरतंजाबालिर्ब्राह्मणोत्तमः ॥
उवाचरामंधर्मज्ञंधर्मापेतमिदंवचः ॥ १ ॥

धर्मज्ञ रामचंद्रजी इस प्रकार भरतजीको समझा बुझारहेथे कि इतनेमें ब्राह्मण श्रेष्ठ जाबालिजी धर्म विरुद्ध वचन उनसे बोले ॥ १ ॥ हेरामचंद्रजी! तुम श्रेष्ठ बुद्धिवाले और तपस्वीहो फिर साधारण लोगोंकी समान तुम्हारी पिताजीके वचन पालनेके विषयकी बुद्धि निरर्थक न होवे ॥ २ ॥ जगत्में कौन किसीका भाई बन्धुहै? और किसीसे किसीका

*दोहा—यहि प्रकार समझायकर, भरतहि श्रीरघुनाथ। सजल दृष्टि अति प्रेमसे, धरयो शीशपर हाथ॥

क्या अच्छा बुरा हो सकताहै? प्राणी इकलाही जन्म लेताहै और फिर इकलाही विनाशको प्राप्त होजाताहै ॥ ३ ॥ तिससे हेरामचंद्रजी! यह हमारी माताहैं यह हमारे पिताहैं ऐसा संबंध मानकर जो पुरुष इसमें आसक्त होताहै उसको मतवाला समझना चाहिये विचार करके देखनेसे कोई भी किसीका नहींहै ॥ ४ ॥ जिसप्रकार कोई मनुष्य दूसरे गांवमें जाने-के समय किसी बीच वाले गांवकी चौपाल के बाहर टिक रहे और दूसरे दिन उसको छोडकर वहांसे चला जाताहै ॥ ५ ॥ मनुष्यका पिता माता गृह और धनादि संपत्तिके साथ भी ऐसाही थोडी देरका टिकाऊ संबन्ध है सज्जन मनुष्य इसी कारणसे इसमें आसक्त नहीं होतेहैं ॥ ६ ॥ हे नर-श्रेष्ठ! पिताके राज्यको एक वारही त्यागकर बहुत सारे विघ्नवाले और भयंकर दुःखदाई वनके मार्गका आश्रय लेना तुम्हें किसी प्रकारसे भी उचित नहींहै ॥ ७ ॥ आप सब धन धान्य युक्त अयोध्यापुरीमें जाकर अपना अभिषेक कराइये अयोध्या नगरी एक वेणी धारण किये विर-हिनीकी समान जिसका पति परदेश गयाहो, आपके आनेकी राह देख रहीहै ॥ ८ ॥ हे नृपकुमार! इस समय आप स्वर्गमें इन्द्रकी समान ब-डे २ मोल की राजाओंके लायक भोग करने वाली वस्तुओंका भोग करते हुए परम सुखसे विहरिये ॥ ९ ॥ न दशरथजी आपके कोईहैं न आप दशरथजीके कोईहैं तिस कारण राजा कोई औरहैं, व आप कोई औरहैं अतएव जो हम कहतेहैं सो करो ॥ १० ॥ जीवके जन्मके विषयमें पिता तो एक वीर्यका कारण मात्रहै, क्योंकि ऋतुमती माताके गर्भमें इकट्ठा होकर मिला हुआ वीर्य और रक्तही जीवके जन्म होनेका कारणहै ॥ ११ ॥ राजा वहीं पर गयेहैं जहां पर कि उनको निश्चयही जानाथा प्रवृत्तिही प्राणियोंकी इस प्रकारसेहै फिर तो आप वृथा पुरुषा-र्थके भोगसे अपनेको छुडातेहैं ॥ १२ ॥ प्रत्यक्ष सिद्ध पुरुषार्थ प्राप्त होते भी जो लोग उसको त्याग कर धर्मके बटोरनेमें लगे रहतेहैं उनके ही लिये हमको शोक होताहै और के लिये नहीं क्योंकि इस प्रकारसे धर्म इकट्ठा करनेवाले लोग इस लोकमें कष्ट पातेहैं और परलोकमें भी विनाशको प्राप्त होतेहैं ॥ १३ ॥ लोग जो अष्टकादि श्राद्धको पित्रोंका परम मंगल करनेवाला विचार कर उसका अनुष्ठान करतेहैं सो उस्से

केवल ढेरके ढेर अन्नका नाश होजाताहै और कुछ नहीं होता जरा विचार करके देखोकि मरे हुएको किसी प्रकारसे वह भोजन पहुंच सकताहै कभी नहीं ॥ १४ ॥ और यदि किसी आदमीके भोजन कराने पर वह भोजन किसी दूसरेके शरीरमें पहुंच जाताहो तब तौ विदेशके जानेवाले लोगोंको मार्गके लिये सीधा भोजन देना अनुचित है, बस उसके अर्थ किसी ब्राह्मणके भोजन करानेसे ही उस भोजन किये अन्न द्वारा उसकी तृप्ति हो जायगी, इसकारण लोग जो अपने पित्रोंकी तृप्तिके लिये श्राद्धमें ब्राह्मण भोजन करातेहैं सो वृथाहै उस्से तौ केवल परिश्रमही होताहै ॥ १५ ॥ फलतः और उपायोंसे जीविकाके निर्वाह होनेमें क्लेश देखकर कुछेक बुद्धिवान लोगोंनें मनुष्योंको चतुराई से वशकरने दानकरानेके लिये अपने उपाय स्वरूप जो वेदादिक ग्रंथ हैं उनका प्रचार किया और उनमें, यज्ञ करो, देव पूजन करो, गुरु दीक्षालो और संन्यास धर्म ग्रहण करो, यह उपदेश लिखदियेहैं पामर लोगोंको धोखा देना और सरलतासे उनका धन ग्रहण करना यही वेदादिकोंका मुख्य प्रयोजनहै ॥ १६ ॥ आप बुद्धिमान हो अतएव विचार करके देखो कि इस लोकके सिवाय परलोकमें सुखका प्रयोजन कुछभी नहींहै जो कि प्रत्यक्ष यह राज्य सुखहै सो आपको इसेही भोग करना चाहिये नकि अप्रत्यक्ष पिताजीके वचन पालन करनेसे धर्म मिलेगा, ऐसे कार्यमें मत लगो ॥ १७ ॥

सतांबुद्धिंपुरस्कृत्यसर्वलोकनिदर्शिनीम् ॥
राज्यंसत्वंनिगृह्णीष्वभरतेनप्रसादितः ॥ १८ ॥

भरतजी तौ आपको प्रसन्न करतेहैं सो इस समय आप साधु और पंडित लोगोंकी बुद्धिको अनुसरण करके राज्यको ग्रहण करो ॥ १८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे अष्टोत्तर शततमः सर्गः ॥ १०८ ॥

नवोत्तरशततमः सर्गः ॥

जाबालेस्तुवचःश्रुत्वारामःसत्यपराक्रमः ॥

उवाचपरयासूक्त्याबुद्ध्याविप्रतिपन्नया ॥ १ ॥

सत्यपराक्रम श्रीरामचंद्रजी जाबालिजीकी यह वार्त्ता सुनकर उस वार्त्ताके विरुद्ध अपनी सुन्दर अचल बुद्धिसे विचारे हुए वेदके प्रमाणित वचन बोले ॥ १ ॥ आपने जो हमारा हित करनेकी कामनासे जो कुछ कहा वह वास्तवमें अनुचित होनेपर भी वा उसका परिणाम दुःखका मूल होने पर भी ऐसी बनावट से कहा गयाहै कि सबसे पहले वह सब वचन करनेंके योग्यहीहैं ॥ २ ॥ जो कुछ हो जो पुरुष अच्छे मार्गको त्याग करकै खोटे मार्गमें गमन करै पापका आचरण करै और साधु व पंडितों करकै जो समस्त शास्त्रहैं उनको त्याग करकै वेद विरुद्ध नास्तिक आदि लोगोंके शास्त्रोंमें अपनी रुचि दिखावे सो ऐसे पुरुषका कभी सज्जनोंके समाजमें आदर नहीं किया जाता ॥ ३ ॥ कुलीन, वीर, वा डरपोक पवित्र व अपवित्र जो कोई पुरुषहो वह वेदका कहा हुआ मार्ग लेतेही सब सिद्ध होजाताहै और जो कोई वेद विरुद्ध कार्य करता वह कैसाही कुलीन, वीर पवित्रहो परन्तु निन्दित होजाता- है ॥ ४ ॥ और कहांतक कहैं वैदिक सदाचार अवलंबन करने पर अश्रेष्ठ, श्रेष्ठ, अपवित्र पवित्र लक्षणरहित लक्षणयुक्त और खोटे शील वाले शील युक्त होजातेहैं ॥ ५ ॥ हम यदि ऐसा वेष धारण करके उक्त लोकसंकरकारी अधर्मके मार्ग में विचरण करैं तौ हमको भी उसके लिये अशुभकी प्राप्ति होगी ॥ ६ ॥ और कार्य अकार्य के जाननें में चतुर चेतनवान सब पुरुष हमको लोक दूषण और खोटा व्रत धार- ण करने वाला विचार कर किसी भांति भी हमारा मान्य नहीं करें गे ॥ ७ ॥ बस जबकि हम आपके उपदेश देने के अनुसार कार्य करें तब हमारे सत्यपालन करनेके विषयकी जो प्रतिज्ञा है वह टूट जायगी तब हम किस प्रकारसे स्वर्ग प्राप्त करनेमें समर्थ होंगे ॥ ८ ॥ जब हम आपके उपदेशके अनुसार कार्य करके स्वेच्छाचारी होजाँय तौ हमारी देखा देखी यह सब लोग अपना मन माना कार्य करनें लगैं ? क्योंकि जिस प्रकारसे कि राजाका व्यवहार होताहै बस वैसाही प्रजाभी वर्त्तने लगतीहै ॥ ९ ॥ सत्य वचन और सर्वभूतोंपर दयाकरनी यही सनातन राजधर्महै अतएव राज्य सत्यसेही प्रतिष्ठितहै अधिक क्या कहैं

सब लोकभी इकले सत्यसेही टिकतेहैं ॥ १० ॥ ऋषि लोग और देवता लोग केवल इकले सत्यहीका आदर करतेहैं संसारमें केवल सत्य वचन बोलनेवालाही अक्षय लोकमें चला जाताहै ॥ ११ ॥ जिस प्रकार कि लोग सांपसे डरतेहैं ऐसेही झूंठ बोलने वालोंसे लोग डरतेहैं सत्य परायण धर्मही संसारमें सबका मूलहै ऐसा कहा गयाहै ॥ १२ ॥ लोकमें सत्यही ईश्वरहै, सत्यमेंही धर्म टिका हुआहै, सत्यसेही सबका आरंभहै और सत्यसे अधिक परमपद और दूसरा नहीं है ॥ १३ ॥ दान, यज्ञ, होम और तपस्या इत्यादिक कर्म जोकि वेदमें हैं वह वेदभी सत्यमेंही टिकेहैं अतएव सबकोही केवल सत्यपालन करनें को तैयार होना चाहिये ॥१४॥ कोई लोग तो ऐसेहैं कि एकही कुलका पालन पोषण करतेहैं कोई लोक भरको पालते पोषतेहैं, कोई नरकमें डूबते तैरतेहैं कोई स्वर्गमें पूजित होतेहैं ॥ १५ ॥ इस प्रकारके धर्म और अधर्मको जानकरभी हम किस प्रकारसे सत्य प्रतिज्ञा और सदाचारमें लगे हुए पिताजीकी आज्ञा पालन करनेंमें विमुख हो जाँय। जब कि हमनेंभी कहाहै कि सत्यका पालन करेंगे ॥ १६ ॥ अतएव लोभ मोह अज्ञान क्रोध हम किसीकेभी वश पडकर पिताजीके सत्यका जो पुलहै उसको किसी प्रकारसे नहीं तोडेंगे कह चुके सो कह चुके, अब सोच विचारही क्या॥ १७॥ फिर हमने यहभी सुनाहै कि सत्य कहनेंवाले चंचलस्वभाव जिसका चित्त स्थिर न हो ऐसे पुरुषका दिया हुआ अन्न पानी रुपया पैसा देवता अथवा पितर कोई ग्रहण नहीं करते ॥ १८ ॥ जीवनकी स्थिति बढा-नेके लिये ही जिसकी सृष्टि हुईहै सो ऐसे इस सत्यपालन करनेंको हम सब धर्मोंसे बडा समझतेहैं प्राचीन समयके साधु लोगोंकेभी सत्य पालन करनेंके कारण इस प्रकारके जटाभार अपने ऊपर लादेहैं इसही कारण पुरानावृत्त समझकर हमभी इससे आनन्दित होतेहैं ॥ १९ ॥ (सत्यव्रत नाम एक राजाथा उसने अपने नामका एक गंज रचा और यह आज्ञादी कि जो व्यापारी यहां आवैगा उसकी वस्तु जो बिकनें से रहैगी वह सायंकाल को खरीद ली जायगी ऐसाही होता रहा एक लोहे-की मूर्ति शनैश्चर देवकी प्रतिष्ठित एकदिन लाया और उसनें उस मूर्तिका मोल (१०००००) एक लक्ष मुद्रा बताया और उसका फल

यह कहा कि जो मनुष्य इसको लेकर घर में रक्खे उसका धर्म लक्ष्मी यश कर्म नाश होजाय और उसके घरमें अधर्म दरिद्र अयश अभाग्यका वास होय यह फल सुनकर किसीनें मोल नहीं ली तब सांझ समय वह लुहार उस मूर्त्तिको लेकर राजा के यहां आया और कहा कि महाराज आप सत्यव्रत हैं मेरी मूर्त्ति आपनें नहीं ली तब राजाने मूर्त्तिका फल सुनकरभी (१०००००) एक लक्ष मुद्रा देकर खरीद ली और अपने घर रक्खी जब प्रहर रात्रि गई तब राजा सोनें गया अर्द्ध रात्रिके समय एक सुन्दर स्त्रीका रूप धरे राज्यलक्ष्मी राजाके समीप आई राजाने पूछा कि तुम कौन हो तब लक्ष्मी नें कहा कि हम आपकी राज्यलक्ष्मी हैं अब शनैश्चर देव आये हमारा क्या काम है अब हमारी भगिनी दरिद्राका निवास होगा फिर धर्म आये राजाने पूछाकि आप कौन हो उन्होंनें कहा कि हम तुम्हारे धर्म हैं अब शनैश्चर आये हम जाते हैं यह सुनकर राजानें कहा कि जाइये धर्म बिदा हुये तदुपरि यश आये और राजासे यही कह कर चले गये फिर कर्म आये वह भी राजासे शनैश्चरकी स्थिति कहकर बिदा हुये राजाने किसी को नहीं रोका फिर सत्यदेवजी महाराज जब आये और राजा से कहकर चलने लगे तब राजा नें उठकर उनका हाथ पकडा और कहा कि आप कहां जातेहैं मैंने तो आपहीके रखनेके लिये शनैश्चरको लिया क्योंकि शनैश्चर के न लेनें से मेरा सत्य जाताथा अब आप विराजिये और सब लक्ष्मी आदि गये उनको जाने दीजिये सत्यसे कुछ उत्तर न बना रहना पडा सत्य देवकी स्थिति हुई फिर जहां सत्य है तहां सब हैं लक्ष्मी, धर्म, कर्म, यश यह सब लौट आये इनके आनेसे दरिद्र अधर्म अभाग्य अयश नष्ट हुये राजाका सत्य प्रतिज्ञा होनेंसे शनैश्चर देवनें कुछ भी फल न किया इस कारण सब मनुष्यों को चाहिये कि सर्वदा सत्यका आचरण करें ॥) नीच निर्लज्ज लोभी और पापी लोग जो धर्मकी समान दिखाई देनेवाले अधर्म कार्योंकी सेवाकर इस धर्मका अनुष्ठान करतेहैं सो हम इस धर्मको त्याग करतेहैं परन्तु ठीक क्षत्रिय धर्मको हम कभी त्याग नहीं करेंगे ॥ २० ॥ इस प्रकार से धर्म करेंगे, पहले मनमें संकल्प करले व करे नहीं शरीर से जो पाप के कर्म करे फिर उसको छिपानेके लिये मिथ्या बोले। यह

मानसिक, कायिक और वाचनिक तीन प्रकारके पाप हैं ॥ २१ ॥ भूमि कीर्ति, यश, और लक्ष्मी यह सब सत्य कहनेवाले पुरुषकी ही प्रार्थना करते हैं और सज्जन लोग केवल सत्य केही अनुसार कार्य करते हैं अतएव हम सच्चे अंतःकरणसे सत्यकाही आसरा लेवैंगे ॥ २२ ॥ आपने जो विशेष बनाय २ करयुक्ति युक्त बातोंसे हमको राज्य पालनकी आज्ञा करके उसकी श्रेष्ठता जो दिखाई सो यह वार्त्ता कभी न्याय सम्मत नहीं हो सकती ॥ २३ ॥ हम जटा धारण और चीर वसन पहन कर वनमें वास करैंगे जबकि साक्षात् गुरू पिताजीसे यह प्रतिज्ञा कर आयेहैं तब फिर अब किस भांति पिताजीके वचनों को छोडकर भरतजी की बात मान वन को चले जांय ॥ २४ ॥ और जब कि हम ने पिताजीके निकट यह दृढ प्रतिज्ञा की थी तब देवी कैकेयी उस समय मन में बडी ही प्रफुल्लित हुई थीं सो उनके मनको इस समय कष्ट देना हमको किसी प्रकारसे ठीक नहीं लगता ॥ २५ ॥ तिससे हम वनही में रहकर पवित्र चित्तसे नियत समयपर कंद मूल फल पुष्पादि भोजन करते देवता व पितरोंका तर्पण करते रहैंगे ॥ २६ ॥ पांचों इन्द्रियोंको सन्तुष्ट रख कपटता रहित गुरु वचनमें श्रद्धा करते कार्य अकार्यमें चतुरहो सज्जनोंकी मर्यादाका पालन करैंगे ॥ २७ ॥ क्योंकि इस भारत वर्ष कर्म भूमिमें जन्म लेकर शुभ कर्मोंकाही करना उचितहै क्योंकि कर्मोंके फलके भागी अग्नि वायु और चंद्रमाहैं अर्थात् कर्मानुसारही इन सब लोकोंकी प्राप्ति होतीहै ॥ २८ ॥ देवराज इन्द्रजी १०० यज्ञ करके स्वर्ग लोकके राजा हुए और महर्षि लोगभी तप करके स्वर्गको गये ॥ २९ ॥ उग्र तेजवान नृपनंदन श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारसे जाबालिके नास्तिकतासे भरे वचन सुनकर उनको नसहसके और उनके वचनोंकी निंदा करते हुए फिर उनसे बोले ॥ ३० ॥ साधु लोक सत्य धर्म जब सब प्राणियोंके ऊपर दया करना प्यारे वचन और देवता ब्राह्मण व अतिथिसत्कार इनहीके बातोंको स्वर्ग प्राप्तिका कारण बताते हैं ॥ ३१ ॥ हमारे इस वचनके अनुसार सावधान ब्राह्मण लोग अनुकूल तर्कको ग्रहण करके धर्मकोही मुख्य समझ सब धर्मोंका आचरण करते हुये ब्रह्म लोकादिकी आकांक्षा करतेहैं और वहां चलेभी जातेहैं ॥ ३२ ॥

आप धर्मके मार्गसे एकवारही भ्रष्ट हुयेहैं आप बडे भारी नास्तिकहैं, आपकी बुद्धिभी वेदके विरुद्ध मार्गमें लगी हुईहै अतएव पिताजीनें जो आपको यज्ञके कार्यमें वरन किया व बुलाया सो उनके इस कार्यकी हम निन्दा करतेहैं ॥ ३३ ॥ चोरको जिस प्रकार दंड दिया जाताहै बुद्धके मतवाले नास्तिकोंकोभी वैसाही दंड देना ठीकहै, अतएव प्रजा लोगोंकी बुद्धि शुद्ध करनेंके लिये राजाको अवश्यही नास्तिकको दंड देना चाहिये ॥ ३४ ॥ अधर्माचारी नास्तिकके साथ ब्राह्मण व ज्ञानवान पुरुषको बातभी न करनी चाहिये, आपसे जो लोगकि बहुत श्रेष्ठथे सो प्राचीन समयमें ऐसे बहुत सारे ब्राह्मणोंनें बहुत सारे शुभ कार्य्योंको किया, क्या इस लोक क्या परलोकमें कहींभी उनको किसी प्रकारके फलकी कामना नहींथी ॥ ३५ ॥ वह लोग जो कि अहिंसा और सत्य तपस्या करना दान करना और पराया उपकार करना इत्यादि यज्ञोंको करना कराना इन्हीं सब बातोंके लिये वेदोंके प्रमाण झलक रहेहैं जो कि एक मात्र धर्ममेंही तत्परहैं, तेजस्वीहैं, हिंसा नहीं करते और सदा शुद्ध भाव धारण करनेवालेहैं,जो लोग विशेष करके दान देनेमें प्रधानहैं, साधुओं का संग करनेवालेहैं सो ऐसे वशिष्ठादि प्रधान २ ऋषि लोगही संसारमें सबके पूजनीय होतेहैं, आपकी समान नास्तिकमतको धारण करनें वाले मुनि कदापि पूजे जानेंके योग्य नहींहैं ॥ ३६ ॥ महा सत्यवान दीनता रहित रामचंद्रजीने क्रोधमें भरकर जाबालिजीसे जब ऐसे वचन कहने आरंभ किये तब फिर जाबालिजी विनय युक्तहो सत्यसम्मत आस्तिक वचन बोले ॥ ३७ ॥ हम स्वयं नास्तिक नहींहैं न हम नास्तिक कीसी वार्त्ता कहतेहैं और यह तो कभी होही नहीं सकता कि परलोक नहींहै, समय देखकर हम आस्तिक और नास्तिक हो जातेहैं ॥ ३८ ॥

सचापिकालोयमुपागतःशनैर्यथामयानास्तिकवागुदीरिता ॥ निवर्तनार्थंतवरामकारणात्प्रसादनार्थंचमयैतदीरितम् ॥ ३९ ॥

जिस समय हमनें नास्तिककेसे वचन कहेथे वह समय अब चलागया। हे श्री रामचंद्रजी ! आपको वनवाससे लौटानेंके कारणही और तुम्हारी

प्रीतिके वश होनेंसेही हमने ऐसा कहाथा ॥ ३९ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अ० नवोत्तरशततमः सर्गः ॥ १०९ ॥

दशोत्तरशततमः सर्गः ॥

क्रुद्धमाज्ञायरामंतुवसिष्ठःप्रत्युवाचह ॥
जाबालिरपिजानातिलोकस्यास्यगतागतिम् ॥ १ ॥

श्री रामचंद्रजी इस समय क्रोधित होगयेहैं यह जानकर वशिष्ठजी उनसे बोले कि प्राणी जो सदा वार २ इस लोक और परलोकमें आगमन करतेहैं जाबालिजीभी इसको भली भांति जानतेहैं यह नास्तिक नहीं-हैं ॥ १ ॥ यह केवल आपको वनवाससे लौटानेहीकी कामना करके इस प्रकारके वचन बोलेथे हे लोकनाथ! सब लोकोंकी उन्नतिका वृत्तान्त तुम हमसे श्रवण करो ॥२॥ सृष्टिसे पहले इस सब जगत्में जलही जलथा उसी जलके मध्य पृथ्वी बनाई गई कोई कालपाकर विराट रूपी ब्रह्माजी समस्त देवताओंके साथ हुये ॥ ३ ॥ ब्रह्माजीसे वाराहजीका अवतार होकर भगवान् विष्णुजी जलके बीचसे पृथ्वीको उद्धार करके लाये और सृष्टि उत्पन्न करनेकी सामर्थ्य रखनेंवाले अपने पुत्रोंके साथ ब्रह्माजीनें सब सृष्टि रची ॥ ४ ॥ यह आकाशसे उत्पन्न हुयेहैं यह सदा रहतेहैं अव्य-यहैं, इन ब्रह्माजीसे भगवान मरीचिका जन्म हुआ मरीचिसे कश्यप उत्पन्न हुये ॥ ५ ॥ कश्यपजीसे विवस्वान् सूर्य विवस्वानसे स्वयं वैवस्वत मनुने जन्म ग्रहण किया यह वैवस्वत मनुही प्रजापतियोंमें पहले हुये और इन-केही बडे बेटे इक्ष्वाकु हुये ॥ ६ ॥ मनुजीने इक्ष्वाकुहीको प्रथम धन धान्य युक्त यह सब पृथ्वी दानकी इन इक्ष्वाकुहीको अयोध्याका प्रथम राजा जानो ॥ ७ ॥ इक्ष्वाकुके पुत्र श्रीमान् कुक्षिनामसे विख्यात हुये, हे वीर! कुक्षिसे विकुक्षिकी उत्पत्ति हुई ॥ ८ ॥ विकुक्षिके पुत्र महातेज-वान प्रतापशाली बाण हुये बाणके पुत्र महाबाहु और महातप करनें वाले अनरण्यजी उत्पन्न हुये ॥ ९ ॥ साधुओंमें श्रेष्ठ महाराज अनरण्यके राज कालमें कभी सूखा या अकाल नहीं पडा उनके राज्यमें कोई चोरभी नहीं था ॥ १० ॥ हे महाराज! अनरण्यजीसे महाराज पृथुजीनें जन्म ग्रहण किया, राजा पृथुके पुत्र परम तेजवान त्रिशंकुजी उत्पन्न हुये॥११॥

यह त्रिशंकुजी ऐसे सत्यवादीथे कि शरीर सहित स्वर्गमें चले गयेथे त्रिशंकुजीके पुत्र परम यशवान धुन्धुमार हुये ॥ १२ ॥ धुन्धुमारजीसे महातेजवान् युवनाश्वजीका जन्म हुआ श्रीमान् मान्धाता युवनाश्वके पुत्र रूपसे उत्पन्न हुये ॥ १३ ॥ मान्धाताजीके परम तेजवान सुसन्धि जन्में सुसन्धिके दो पुत्र हुये ध्रुवसन्धि और प्रसेनजित् ॥ १४ ॥ उनमें ध्रुवसन्धिके पुत्र रिपुसूदन और यशवान भरतजी हुए महाबाहु भरतसे असितका जन्म हुआ ॥ १५ ॥ हेहय तालजंघ और शशबिन्दु व भूर इन चारोंने राजा असितके विरुद्ध शिर उठाया और वैरभाव किया ॥ १६ ॥ युद्धके समय राजा असितनें इन सबके विरुद्ध सैनाका किला बनाकर इनको घेरा, परन्तु फिर उनका हराना कठिन समझ कर वनका आश्रम और मुनियोंकी वृत्ति धारण करके परम मनोहर पर्वत राजा हिमालय पर तपस्या करनेके लिये बसते हुए ॥ १७ ॥ इस प्रकार प्रसिद्धहैं कि उनकी दो स्त्रियोंके उस समय गर्भथा उनमेंसे एक महा भाग्यवान कमल फूलकेसे नेत्रवाली रानीनें पुत्र रत्नकी कामनासे, देवताकी समान तेजस्वी भृगुनंदन च्यवनकी उपासनाकी । और दूसरी रानीने सौतका गर्भ नष्ट करनेंके लिये उसको गरल दियाथा ॥ १८॥ १९ ॥ भृगु नंदन च्यवनजी उस समय हिमालय पर वास करतेथे । कालिन्दीनामक प्रथम रानीनें उन ऋषिकी शरणमें जाकर विधि सहित उनकी वंदनाकी ॥ २० ॥ महर्षि च्यवननें जाना कि इसे पुत्र पानेकी इच्छाहै, तब प्रसन्न होकर उस पुत्रकी कामना करने वाली रानीसे कहा कि हे देवि ! तुम्हारे बड़ा महात्मा लोक विख्यात पुत्र उत्पन्न होगा ॥ २१ ॥ यह धर्मात्मा भयानक स्वभाव वंशका बढानेवाला होगा और यह शत्रुओंका संहार करैगा रानी कालिन्दी यह वरदान सुनकर बडा हर्ष मानकर उनकी प्रदक्षिणा करनें लगी ॥२२॥ उनकी आज्ञा ले घरको आई और वहां कमल दल समान नेत्र व ब्रह्माजीके समान पुत्र उत्पन्न किया ॥२३॥ इस पुत्रके जन्म होनेंसे पहिले दूसरी रानीनें सवतिया डाहसे जो अपनी सौतका गर्भ नष्ट करनेको विष दियाथा उस-गर अर्थात् विषके साथ पुत्रका जन्म होनेंसे उसका सगर नाम हुआ॥२४॥ इन राजा सगरजीने प्राचीन समयमें यज्ञमें दीक्षित होकर खोदनेंके

वेगसे सब प्रजाके लोगोंको उकसाकर पुत्रोंकी सहायतासे समुद्र खुद-वाया ॥ २५ ॥ ऐसा सुनाहै कि इन सगरजीके एक असमंजस पुत्रथे यह परम भागवत होनेंके कारण यह इच्छा रखते कि यदि हम घरसे निकासदिये जांय तो अच्छाहै वहां पर एकान्तमें बैठ भगवानका भजन करैं इसकारण अयोध्यावासियोंके लडके सरयूमें डुबा देतेथे सो ऐसे पाप करनेंसे सगरजीने इनको घरसे निकाल दिया ॥ २६ ॥ असमं-जसके पुत्र महा वीर्यवान अंशुमान हुये, अंशुमानके पुत्र दिलीपजी हुये, दिलीपके भगीरथ जन्मे ॥ २७ ॥ भगीरथजीके पुत्र काकुत्स्थ काकु-त्स्थके पुत्र रघु इनही काकुत्स्थजी और रघुजीसे काकुत्स्थ और राघव नामक वंश परम्परायें चलीं ॥ २८ ॥ रघुजीसे तेजवान प्रवृद्ध, पुरुषा-दक, कल्मापपाद, और सौदास नामक पृथ्वी पर विख्यात चार पुत्रोंका जन्म हुआ ॥ २९ ॥ कल्मापपादके पुत्र शंखण हुये यह लोक प्रसिद्ध वीर्यको पाकर दैवात् सेना सहित हमारे शापसे नाशको प्राप्त होगये॥३०॥ इन शङ्खणके पुत्र सुदर्शन नामथे। परम वीर्यवान श्रीमान् सुदर्शन जीसे अग्निवर्ण उत्पन्न हुये अग्नि वर्णके पुत्र शीघ्रग हुये ॥ ३१ ॥ शीघ्र-गके पुत्र मरु, मरुके पुत्र प्रशुश्रुव, प्रशुश्रुवके पुत्र महामति अम्बरीपजी हुये ॥ ३२ ॥ अम्बरीषके पुत्र सत्यविक्रमवान नहुष हुये, नहुषके पुत्र परम धार्मिक नाभाग हुये ॥ ३३ ॥ नाभागके दो पुत्र अज और सुव्रत हुये उनमें अजके पुत्र धर्मात्मा राजा दशरथजी हुये ॥ ३४ ॥ तुम उन्हीं महाराज दशरथजीके ज्येष्ठ पुत्र रामचंद्र नामसे विख्यातहो अतएव तुमहीं अपने पिता दशरथका राज्य ग्रहण करके संसारका पालन करो ॥ ३५ ॥ इक्ष्वाकुके वंशमें बडाही पुत्र राजा होता चला आयाहै, ज्येष्ठके वर्त्तमान रहते छोटेको राज्यका अभिषेक नहीं होता॥ ३६ ॥

सराघवाणांकुलधर्ममात्मनःसनातनंनाद्यविहं तुमर्हसि ॥ प्रभूतरत्नामनुशाधिमेदिनींप्रभूत राष्ट्रांपितृवन्महायशाः ॥ ३७ ॥

तुम रघुकुलवंशोंका यह सब सनातन कुल धर्म विनाश करनेके योग्य नहीं हो जिससे अपने पिताकी समान यशवान होकर बहुत रत्नादि

संयुक्त और बहुत राज्य युक्त इस समस्त पृथ्वीका पालन कीजिये॥३७॥
इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०अ०दशोत्तरशततमःसर्गः ॥ ११० ॥

एकादशाधिकशततमः सर्गः ॥

वसिष्ठःसतदारामसुक्काराजपुरोहितः ॥
अब्रवीद्धर्मसंयुक्तंपुनरेवापरंवचः॥ १॥

राज पुरोहित वशिष्ठजी उस समय रामचंद्रजीसे ऐसा कह फिर धर्म सम्मत दूसरी वार्त्ता कहने लगे ॥ १ ॥ हे काकुत्स्थ ! हे राम! पुरुषके जन्म होने पर उसके तीन गुरु होतेहैं; पिता, माता, और आचार्य ॥ २ ॥ हे पुरुषसिंह; पिता माता तो शरीर मात्रसे पुरुषको जन्म देतेहैं, परन्तु आचार्य उसको सब बातें सिखाकर पंडित बनाताहै व उस पर आज्ञा करताहै इसकारण एक आचार्यही गुरु कहाताहै ॥ ३ ॥ हे शत्रुओंको तपाने वाले! हम तुम्हारे पिता और तुम्हारे दोनोंहीके श्रेष्ठ गुरु व आचार्यहैं अतएव हमारे वचन प्रतिपालन करनेंसे तुम सद्गतिसे भ्रष्ट नहीं होगे ॥ ४ ॥ हे तात! देखिये यह सब तुम्हारीही प्रजाहै, जाति वालेहैं और तुम्हारे आधीनके छोटे २ राजाहैं इनके प्रति धर्माचरण करनेसे तुम कदापि सद्गतिसे भ्रष्ट नहीं होगे ॥ ५ ॥ तुम्हारी माता अतिशय धर्मवान और वृद्धहैं सो इन माताके वचनोंका उल्लंघन करना तुमको उचित नहींहै इनकी आज्ञा पालन करनेसेभी तुमको सद्गतिसे भ्रष्ट नहीं होना पडैगा ॥ ६ ॥ हे धर्मज्ञ! सत्य पराक्रम करने वाले! रघुनंदन! तुम्हें राज्य पर,अभिषेक करनेके लिये भरतजी प्रार्थना कर रहेहैं सो इनकी बात माननेसेभी तुम सद्गतिसे भ्रष्ट नहीं होगे ॥ ७ ॥ गुरु वशिष्ठजी जब स्वयं मधुर वाणीसे इस प्रकार कहकर आसन पर बैठ गये तब पुरुषश्रेष्ठ रामचंद्रजीनें उत्तर दिया ॥ ८ ॥ कि माता पिता पुत्रकी जो सेवा करतेहैं उसके बदले में पुत्र जो कुछ किया चाहै तो नहीं कर सकता ॥ ९ ॥ क्योंकि वे अपनी सामर्थ्यसे अधिक जैसेभी हो पुत्रको उत्तम २ भोजन वस्त्रादि देते प्रथम बहुत छोटे पनसे सुवाते, करवटले वाते, तेल, उपटना लगा, मधुर २ वचन कह २ कर प्यार दुलार करते

उसके बंढने व जीनेका बहुतेरा उपाय करते ॥ १० ॥ महाराज दशरथजी हमारे पिता, पालन पोषण करनेवाले व राजाहैं, तिस्से उन्होंने जो कुछ कि हमें आज्ञाकीहै वह हमसे कदापि मिथ्या नहीं होगी ॥ ११ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीने इस प्रकारसे कहा तो चौडी छातीवाले भरतजी चित्तमें बहुतही दुःखी होकर निकट बैठे हुए सारथी सुमंत्रजीसे बोले॥१२॥ हे सारथे ! इस चबूतरेपर तुम शीघ्रही कुशोंको बिछादो, आर्य रामचंद्रजी जबतक हमारे ऊपर प्रसन्न नहीं होवेंगे तबतक हम इन कुशोंपर धन्ना देकर बैठे रहैंगे ॥ १३ ॥ यह हमारे वचनोंको अंगीकार कर जब तक कि अयोध्याको न लौट चलैंगे तब तक खर्च रखाने वाले लोगों करके धन हीन महाजन ब्राह्मण जिस प्रकार अपने धनको लौटानेंकी कामनासे ऋषियोंके द्वार पर हत्या देकर बैठ जाताहै वैसेही हमभी विना भोजन किये नयन मूंद इनके सामने पर्णकुटीके द्वार पर इन कुशोंपर पड़े रहैंगे ॥ १४ ॥ परन्तु सुमंत्रजी कुशोंके बिछानें में रामचंद्रजीकी आज्ञा चाहकर विलम्ब करनेलगे यह देखकर भरतजी मनमें दुःखीहो आप कुश बिछाय भूमि पर बैठे ॥ १५ ॥ भरतजीको इस प्रकार कुशोंपर बैठे हुए देखकर राजर्षियोंमें श्रेष्ठ रामचंद्रजी भरतजीसे बोले कि हे भइया भरत ! हमने कौन अन्याय कियाहै जो तुम हमारे ऊपर * धन्ना देतेहो ॥ १६ ॥ धनको खोये हुए ब्राह्मणही धन पानेंके लिये लोगोंको रोकनेके कारण एक करवटसे कर्जदारके द्वारपर धन्ना दे सकतेहैं किन्तु तिलकधारी क्षत्रिय लोगोंके लिये यह धन्ना देनेकी विधि किसी प्रकारसे नहींहै ॥ १७ ॥ अतएव हे पुरुषसिंह ! इस दारुण व्रतको त्याग करके उठो और बहुत शीघ्र इस वनकी भूमिसे श्रेष्ठ पुरी अयोध्याको गमन करो ॥१८॥ भरतजी उसी रीति धन्नदिये पडे रहकर चारों ओर बैठे हुए पुरवासी और देशवासी सब लोगोंकी ओर दृष्टि फेर कर कहने लगे तुम सब लोग किस कारणसे आर्य रामचंद्रजीको घर लौट चलनेके लिये नहीं कहते ॥ १९ ॥ तब पुरवासी और देशवासी सबही एक स्वरसे भरतजीसे बोले कि आपने काकुत्स्थनंदन महात्मा रामचंद्रजीसे जो कुछ कहा सो ठीकहै जो आप कह रहेहैं यह हम जान-

* विना भोजन किये मुखढक एकही करवटसे कुशोंपर या पृथ्वीपर घरके द्वारे पडे रहना।

तेहैं कि सत्यहै ॥ २० ॥ परन्तु यह महाभाग रामचंद्रजी पिताके वच-नोंको पालनेमें दृढ संकल्प किये हुएहैं यहभी सब भांतिसे उचितहीहै अतएव हम लोग किसीको अटल प्रतिज्ञासे नहीं हटा सकते न हममें इतनी सामर्थ्यहै ॥२१॥ उन सब लोगोंके वचनोंको सुनकर रामचंद्रजी भरतजीसे बोले कि देखो धर्मके जाननेवाले इष्ट मित्र लोग क्या कह रहेहैं सो श्रवण करो ॥ २२ ॥ हे रघुनंदन ! यह लोग तुम्हारे और हमारे दोनों-के ही विषयमें जो बात कहैंगे वह सुन उस पर भलीभांति विचार करके देखो हे महाबाहो! तुम क्षत्रियके अयोग्य धन्ना देनेके कर्मको मत करो और इस पापका प्रायश्चित्त करनेके लिये हमें और जलको छुओ क्योंकि हम तुम्हारे बडेहैं ॥ २३ ॥ इसके पीछे भरतजी उठकर और जलको छू कहने लगे कि हे सभामें विराजनेवाले सभासद् और मंत्री सबही कोई हमारी बात सुनो ॥ २४ ॥ कि हमने कभी पिताजीसे यह राज्य नहीं मांगाथा न इसके लिये हमने माता कैके-यीसे कहाथा न परमधर्मके जाननेवाले आर्य श्रीरामचन्द्रजीको वन भिजवानेमें हमारी सलाह थी ॥ २५ ॥ तौभी यदि वनमें ही वास करके पिताजीके वचनोंका अवश्यही पालन होना चाहिये तब इनके बदले में हमही चौदह वर्ष वनमें वास करैंगे ॥ २६ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी भरतजीके इन सत्य वचनोंसे विस्मित होकर इकट्ठे हुए पुरवासियोंको ओर देखकर बोले ॥ २७ ॥ कि पिता दशरथजीने अपने जीतेजी जो वस्तु बेच डाली वा मोलली या किसीके यहां धरोहर धरदी अथवा अपने यहां किसीकी धरोहर रक्खी सो हम व भरत दोनों को चाहिए कि उसके विपरीत न करके उनकी आज्ञाको ज्योंका त्यों माने जबकि हममेंही वनवास करनें की सामर्थ्य है ॥ २८ ॥ तब हम साधुओंसे निन्दा किया हुआ यह दुष्कर्म न करैंगे कि अपने बदले भरतजीको वन भेजें कैकेयीने जो कहा है अच्छाही कहाहै और पिताजीनें भी जो किया है सो अच्छाही किया है ॥ २९ ॥ यह हम भली भांति जानते हैं कि भरतजी क्षमा शील और गुरु जनोंका सत्कार करने वाले हैं अतएव राज्यका पालनादि करना यह सब कल्याण के कार्य यह सत्य प्रतिज्ञा करने वाले महात्मा भरतजीको ही शोभा पाते

हैं ॥ ३० ॥ हम भी इन धर्मशील भाई के साथ वनसे लौटकर पृथ्वीका पालन करेंगे ॥ ३१ ॥

वृतोराजाहिकैकेय्यामयातद्वचनंकृतम् ॥
अनृतान्मोचयानेनपितरंतंमहीपतिम् ॥ ३२ ॥

भइया! कैकेयीने राजासे जो वर मांगाथा कि राम चौदह वर्षको वन में जांय और भरतको राज्य हो सो इसकारण हमने राजाको झुंठाई से छुड़ाया और कैकेयी के उन वचनोंका पालन किया ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अयोध्याकांडे एकादशोत्तरशततमः सर्गः ॥ १११ ॥

द्वादशाधिकशततमः सर्गः ॥

तमप्रतिमतेजोभ्यांभ्रातृभ्यांरोमहर्षणम् ॥
विस्मिताःसंगमंप्रेक्ष्यसमुपेतामहर्षयः ॥ १ ॥

नारद इत्यादि महर्षि लोग अतुल तेजवान दोनों भाइयोंका यह रोम हर्षण समागम देख विस्मयको प्राप्त हो वहां आये ॥ १ ॥ मुनि लोग और महर्षि लोग छिपे रह कर उन महाभागवाले रामचन्द्रजी और भरतजी की प्रशंसा करने लगे ॥ २ ॥ जोकि यह धर्मज्ञ और धर्म में बली श्रीरामचन्द्रजी और भरतजी जिनके पुत्र हैं वह धन्य हैं इन दोनों की कथा वार्त्ता सुनकर हम सब लोगही परम प्रसन्न हुए ॥ ३ ॥ तिसके पीछे ऋषि लोगोंनें बहुत शीघ्र रावणके वध करने की अभिलाष में एक मत होकर नृप श्रेष्ठ भरतजीसे कहा ॥ ४ ॥ हे अटल प्रतिज्ञा करने वाले शुभ चरित्र युक्त महायशवान भरतजी! तुमनें भले वंशमें जन्म लिया है सो यदि पिताजीको सुखी करनेकी इच्छा हो तो जो श्रीरामचन्द्रजी कहतेहैं उसके ही अनुसार तुमको कार्य करना चाहिये ॥ ५ ॥ हम सबका एक यही बड़ा अभिलाष है कि महाराज श्रीरामचन्द्रजी पिताजीके ऋणसे उऋण होजावें कैकेयी का कर्ज निवटा देनेसे राजा दशरथजीको स्वर्ग प्राप्त हुआ ॥ ६ ॥ गन्धर्व लोग महर्षि लोग और राजर्षि लोग तो यह वचन कह कर हर्षितचित्तहो अपने स्थानको चले गये ॥ ७ ॥ शुभदर्शन श्रीरामचन्द्रजी इन वचनोंको सुन प्रफु-

छित हो परमशोभायुक्त प्रसन्न वदन से उन सब ऋषियों की भली भांति प्रशंसा करने लगे ॥ ८ ॥ यह सुनके भरतजी थरथराय उठे व अति गद्गद वाणीसे हाथ जोड श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ ९ ॥ हे आर्य बडेकोही राज्यका अधिकारी होना कर्त्तव्य है; ऐसा कुलधर्म भली भांति विचार करके आपको माता कौशल्याजीकी प्रार्थना पूर्ण करनी होगी ॥ १० ॥ इकले इस बड़े राज्यकी रक्षा करने अथवा विशेष अनुरागी पुरवासी और देशवासी लोगों का मन रंजन करनेमें हम उत्साह नहीं होते ॥ ११ ॥ जाति विरादरीवाले लोग, शूरवीर लोग, इष्ट मित्र लोग सवही जलधारा वर्षानेंवाले मेघकी आशा करते उत्सुक किसानकी समान एक मात्र आपहीके राज्य करनेकी वाट जोह रहे हैं ॥१२॥ तिससे हे महाबुद्धिमान् ! आप इस राज्यको ग्रहण करके आपही किसी से इसको पालन कराइये । हे काकुत्स्थ आप जिसके प्रति राज्यके पालनें का भार अर्पण करेंगे वही पुरुप प्रजापालन करनें में समर्थ होगा॥१३॥ यह कह कर भरतजी अपने भइयाके चरणोंमें गिर पडे और उनको मधुर वचनोंसे पुकारकर अति विनीत भावसे वारंवार प्रार्थना करनें लगे ॥ १४ ॥ यह देखकर श्रीरामचन्द्रजी मतवाले हंसकी समान मनोहर कंठ वाले कमलदलसम नेत्रवाले श्याम वर्ण भरतजीको अपनी गोदमें ले करकहने लगे ॥ १५ ॥ हे तात! हमें वनवाससे रोकने और राज्य पर वैठालनेंके लिये जो बुद्धि तुममें हुई है सो यह बुद्धि स्वभावसे ही और शिक्षा के वलसेही उपजी है इस बुद्धिके बलसेही राज्य पालन करनेंमें भी तुम्हारी भली योग्यता होगी और सामर्थ्यदेखता हूँ अतएव तुम राज्य करनेंके लिये अधिक उत्साही होओ ॥ १६ ॥ और मंत्री बुद्धिमान और इष्ट मित्रोंके साथ सलाह करके सब बडे २ कार्य कराय लेना ॥ १७ ॥ चन्द्रमासे यदि शोभा विचलित्त होजाय हिमालय परभी यदि बरफ न रहे और समुद्रभी यदि वेला भूमिको नांघ जाय तथापि हम किसी प्रकार पिताकी प्रतिज्ञा पालनें को नहीं छोड सकते ॥ १८ ॥ तिससे हे तात ! ऐसा मत समझो कि तुम्हारी मातानें इच्छा वा लोभके वश होकर ऐसा किया है और यह सोचकर उससे घृणा करो और सदा उसे माताकेही समान व्यवहार करना ॥ १९ ॥ जब श्री रामचन्द्रजीनें

ऐसा कहा तो तेजसें सूर्य समान व द्वीजके चन्द्रमाकी समान दर्शनीय कौशल्याकुमारसे भरतजी बोले ॥ २० ॥ हे आर्य! तब इन सोनेकी बनी हुई खडाऊंको चरणसे छूकर यह हमें देदीजिये इन दोनों खडाऊंमेंही इतनी शक्ति हो जायगी कि यही सब लोकका योगक्षेम कर सकैंगी ॥ २१ ॥ तब पुरुषसिंह महातेजस्वी श्रीरामचन्द्रजीनें दोनों खडाऊं पहर फिर उनको उतार कर महात्मा भरतजीको देदीं ॥ २२ ॥ तब भरतजीने भक्ति सहित उन दोनों खडाउओंको प्रणाम करके श्रीरामचंद्रजीसे कहा कि आजसे लेकर १४ वर्षतक जटा चीर धारण किये ॥ २३ ॥ कंद, मूल, फल, खाकर तुम्हारे आगमनकी आकांक्षा किये हे रघुनंदन! नगरके बाहर बास करैंगे ॥२४॥ और सब राज कार्य आपकी खडाउओंके अर्पण करैंगे हे रघुनंदन! जिस दिन चौदहवा वर्ष पूर्ण होगा ॥ २५ ॥ और उस दिनभी यदि आपको अयोध्यामें आये हुए न देखैंगे तो हम अग्निमें प्रवेश कर जांयगे तब रामचंद्रजीनें कहा कि हां ऐसाही होगा हम उसी दिन आ जांयगे यह कह भरतको भेंट ॥ २६ ॥ फिर शत्रुघ्नजीको छातीसे लगाय श्रीरामचंद्रजी बोले कि हे शत्रुघ्न! तुम सदा कैकेयीकी रक्षा करते रहना, कदापि उसके प्रति रोष प्रकाश मत करना ॥ २७ ॥ इस विषयमें हम तुमको सीताकी और अपनी शपथ दिलाये देतेहैं यह कह नेत्रोंमें जल भरकर दोनों भाइयोंको विदा किया ॥ २८ ॥ तब धर्मवान भरतजी वह परम उज्वल और सजी धजी खडाऊँएं ग्रहण करके रामचंद्रजीकी परिक्रमा करते हुए। और जिस हाथीपर कि सदा राजा दशरथजी चढतेथे उसकेही ऊपर भरतजीनें उन खडाउओंको धर दिया ॥ २९ ॥ तिसके पीछे हिमालयकी समान अपनें धर्ममें अचल टिके हुये रघुवंशके बढानें वाले श्रीरामचंद्रजी यथा योग्य गुरु मंत्री प्रजाके लोग व अनुज भरत और शत्रुघ्न आदिको भली भांति आदर सहित विदा करते हुए ॥ ३० ॥

तंमातरोबाष्पगृहीतकंठ्योदुःखेननामंत्रायितुंहिशेकुः ॥ सचैवमातृरभिवाद्यसर्वारुदन्कुटीं स्वांप्रविवेशरामः ॥ ३१ ॥

वाफसे कंठ रुक जानें और शोकके मारे बहुतही व्याकुल होजानेंसे माताओंमेंसे कोईभी रामचंद्रजीसे बोल न सकीं श्रीरामचंद्रजी सबहीको प्रणाम करके रोते विलखते हुए अपनी कुटीमें प्रवेश करते हुए ॥ ३१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे द्वादशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११२ ॥

त्रयोदशाधिक शततमः सर्गः ॥

ततःशिरसिकृत्वातुपादुकेभरतस्तदा ॥
आरुरोहरथंहृष्टःशत्रुघ्नसहितस्तदा ॥ १ ॥

तिसके पीछे शत्रुञ्जय हाथी परसे खडाऊं उतारकर भरतजी अपने मस्तकपर धारण कर प्रफुल्ल चित्तसे शत्रुघ्नजीके साथ रथमें बैठे ॥ १ ॥ वशिष्ठजी वामदेवजी दृढ व्रतधारी जावालिजी व औरभी सलाह देनें वालोंमें चतुर विशेष सन्मान पानेके लायक सब मंत्री लोगभी आगे २ चले ॥ २ ॥ सब लोगहो महा गिरि चित्रकूटकी परिक्रमा करते हुए पूर्वकी ओर रमणीय मन्दाकिनी नदीके सामने गमन करने लगे ॥ ३ ॥ भरतजी विविध भांतिके मनोहर धातु देखते २ चित्रकूटके उत्तरीय मैदानमें होकर सेना सहित चले ॥ ४ ॥ उस कालमें चित्रकूट पर्वतकी कुछ थोडीही दूरपर जहां कि महर्षि भरद्वाजजी मुनियोंके सहित वास करतेथे वह आश्रम भरतजीने अपने ऊंचे रथपरसे देखा ॥ ५ ॥ तब कुलके प्रसन्न करनें वाले बुद्धिमान् भरद्वाजजीके आश्रममें आगये तब भरतजीने नीचे उतर कर महर्षिजीके चरणोंकी वंदनाकी ॥ ६ ॥ अनन्तर भरद्वाजजीनें प्रसन्न होकर भरतजीसे कहा कि हे तात ! रामचंद्रजीसे मिलकर तुम कृतार्थ होगये अब यह तो बताओ कि रामचंद्रजी आये तो सही ॥ ७ ॥ जब बुद्धिमान् महर्षि भरद्वाजजीनें ऐसा कहा तब धर्मवत्सल भरतजीनें उत्तर दिया ॥ ८ ॥ कि हमनें और स्वयं गुरुदेव वशिष्ठजीनें जब वारंवार प्रार्थनाकी तब दृढ विक्रमवान रामचंद्रजीनें प्रसन्न होकर वशिष्ठजीसे कहा ॥ ९ ॥ पिताजीनें जो हमको वनवास चौदह वर्षका दियाहै सो हम धर्ममें टिके रहकर उसही आज्ञाका पालन करेंगे ॥ १० ॥ वचन बोलनें वालोंमें चतुर पंडित वशिष्ठजी यह बात सुनकर उन वाक्य विशा-

रद रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीसे अच्छे वचन बोलते हुए ॥ ११ ॥ कि हे महा पंडित ! तब इस समय आप प्रसन्न चित्तसे प्रतिनिधिकी समान सुवर्णसे सजी अपनी यह खडाऊंही देकर अयोध्याभरका क्षेम कीजिये ॥ १२ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी वशिष्ठजी महाराजके यह वचन सुनकर पूर्व मुखहो हमको यह राज्यके पालनेकी सामर्थ्य रखनेवाली सुवर्ण लगी खड़ाउऐं देते हुए ॥ १३ ॥ हम उनही महात्मा श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञासे उनके लिवालानेसे निवृत्त होकर शुभ खडाउऐं ग्रहण करके अयोध्या-हीको लौटतेहैं ॥ १४ ॥ महात्मा भरतजीके यह शुभ वचन सुनकर महर्षि भरद्वाजजीभी उनसे श्रेष्ठ वचन बोले ॥ १५ ॥ कि शीलव्रत जानने वालोंमें श्रेष्ठ पुरुषव्याघ्र ! तुममें यह आश्चर्यकी बात नहीं जैसी सुजनता तुममेंहै क्योंकि जहां गढा होताहै वहां जल टिकताहीहै ॥ १६ ॥ और क्या कहैं जब कि तुम जिनके ऐसे धर्मात्मा और धर्मवत्सल पुत्रहो तब तो तुम्हारे पिता वह महाबाहु दशरथजी सब प्रकारही पितृऋणसे छूट गये ॥ १७ ॥ जब महापंडित भरद्वाजजीने ऐसा कहा तब भरतजी हाथ जोडकर उनके दोनों चरणोंको पकडकर उनसे विदा मांगते हुए ॥ १८॥ अनन्तर श्रीमान् भरतजीने भरद्वाजजीकी बार २ परिक्रमा कर सब मंत्रि-योंके सहित अयोध्याकी यात्राकी ॥ १९ ॥ भरतजीके साथ जो सेनाथी वहभी भरतजीको गमन करते देखकर चली उनमेंके लोग कोई २ रथ, हाथी, घोडोंपर चढ २ कर उनके साथ २ चले ॥ २० ॥ तिसके पीछे सब सेना तरङ्ग उछलती हुई यमुना नदीके पार होकर फिर पवित्र जलवाली भागीरथी गंगाजीके दर्शन करती हुई ॥ २१ ॥ भरतजी सेना सहित और बन्धु बान्धवों सहित रमणीय जलसे पूर्ण गंगाजीके पार होकर अति रमणीय शृङ्गवेर पुरमें प्रवेश करते हुये ॥ २२ ॥ शृङ्गवेर पुरसे चलकर फिर अयोध्यापुरीको देखा जोकि पिता भ्रातासे हीनथी ॥ २३ ॥

भरतोदुःखसंतप्तःसारथिंचेदमब्रवीत् ॥
सारथेपश्यविध्वस्ताअयोध्यानप्रकाशते ॥
निराकारानिरानंदादीनाप्रतिहतस्वना ॥ २४ ॥

ऐसी दुःखित नगरीको देख भरतजीनें दुःखसे संतापित होकर सारथी

सुमंत्रजीसे कहा कि हे सारथे! देखो शोभाहीना अलंकारविहीना,निरा-नन्दा दीना और शब्दहीना होनेंसे अयोध्या अब पहलेकी समान प्रकाश-मान नहीं होती ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे त्रयोदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११३ ॥

चतुर्द्दशाधिकशततमः सर्गः ॥

स्निग्धगंभीरघोषेणस्यंदनेनोपयान्प्रभुः ॥
अयोध्यांभरतःक्षिप्रंप्रविवेशमहायशाः ॥ १ ॥

इस प्रकार महायशवान भरतजी गंभीर ध्वनि निकलते रथपर बैठे हुए शीघ्रही अयोध्या पुरीमें प्रवेश करते हुए ॥ १ ॥ वहां देखा कि चारों ओर बिल्लियां व उल्लुओंसे अयोध्या पूर्णथी और सब घरोंके किवाँड बंदथे रात्रि जिस प्रकार कि घोर अँधेरेसे ढक जाती और उसमें जरा प्रकाश नहीं मालूम पडता क्योंकि वह अनिवार कलोंचसे भरी होतीहै वैसेही अयोध्यापुरीकी सब शोभा छितराय गई कहीं कुछ रोशनी नहींथी ॥ २ ॥ अथवा शशीधर चंद्रमा उदित हुए राहु ग्रहसे ग्रसे जाकर जिस प्रकार दुःखित होतेहैं और उस समय उनकी प्यारी स्त्री प्रज्वलित प्रकाशवाली दिव्य कान्ति युक्त रोहिणी जिस भांति निःसहाय होकर टिकी रहतीहै वैसेही अयोध्याजीकी दशा हो रहीथी ॥ ३ ॥ अथवा गर-मियोंके समयमें जब पहाडी नदियोंका पानी धूपके तापसे गरम और मैला होजाता और वहांके जलविहंगभी गरमीके तापसे उडकर दूसरी जगह चले जाते और मछलियां मरजाती और जन्तुभी वहां नहीं रहते उस समय पहाडी नदीकीजो शोचनीय अवस्था होतीहै वैसेही अयोध्याकी दशा हो रहीथी ॥ ४ ॥ अथवा यज्ञीय घृतके स्पर्शसे प्रज्वलित अग्निकी शिखा जिस प्रकार पहले तो धुवेंसे रहित होकर सोनेंकी समान उजली ज्योतिका प्रकाश करके उठे और फिर जलके छिडकनेंसे वह सहसा बुझ जातीहै और अच्छी नहीं लगती वैसेही रामचंद्रजीके विरहमें अयोध्या होरहीथी ॥ ५ ॥ सब कवचोंके छिन्न भिन्न होनेंसे और महायुद्धमें वीरोंके मारे जानेंसे और हाथी घोडे रथ और ध्वजाओंके छिन्न भिन्न होनेसे विपदकी घिरी सेना जिस प्रकारसे होजातीहै वैसेही अयोध्या होगईथी॥६॥

अथवा प्रबल वायुके वेगसे समुद्रकी लहरें जैसे झाग सहित गर्जकर उठतीहैं और पीछे मंद पवन चलनेंके कारण शब्द रहित होजातीहैं यही दशा अयोध्या पुरीकी होरहीथी ॥ ७ ॥ अथवा यज्ञके होचुकनेंपर यज्ञके करानेंवालोंने जिसको त्याग करदियाहै, यज्ञके श्रुवादि पात्रोंके न रहनेंसे, जिसमें पहले की समान वेदोंके पाठके शब्दभी न होतेहों ऐसी पडी हुई यज्ञशालाकी समान अयोध्या पुरीकी दशा होरही थी ॥ ८ ॥ अथवा बैलके छोड देनेसे तरुण गाय जैसे उसके विरहकी उत्कंठासे बहुतही व्याकुल होकर नई २ घासको न खाय और दीन होकर कठिनाई से गोठमें टिकीहै यही दशा अयोध्यापुरीकी होरहीथी ॥ ९ ॥ अथवा गज मुक्ता जैसे पद्मराग और स्फटकादि अतिदेदीप्यमान श्रेष्ठ जातिकी मणियोंसे अलग रहनेंसे शोभा नहीं पाती सो यही दशा अयोध्याजीकी होरही थी ॥१०॥ पुण्यके क्षीण होजानेसे अपने स्थान करके चलायमान होने और आकाशसे गिरनेसे तारा जिस प्रकार झलक हीन होजाताहै वैसेही अयोध्या प्रभाहीन होरहीथी ॥ ११ ॥ अथवा वसंतके अंतमें मधुपान करनेंसे मतवाले भ्रमरों करके युक्त खिले हुये फूलवाली वनकी लता जिस प्रकार भयंकर दावानलकी आगसे झुलसजाय ऐसीही अयोध्यापुरीकी दशा थी ॥ १२ ॥ राज मार्गोंपर कहींभी छिडकाव नहीं हो रहाथा बाजारकी दुकानें सब बंद हो रहीथी जैसे बादरसे घिरीहुई नक्षत्र चंद्र युक्त रात्रि शोभित नहीं होता वैसेही अयोध्या पुरी थी ॥१३॥ अयोध्या पुरी उस समय ऐसी जान पडतीथी मानों मदपीनेंवालोंके विरहसे मद करके हीन टूटे फूटे पात्रोंसे भरा विना झाडा बुहारा खुले हुए स्थानमें मद्यालय पडाहै ॥ १४ ॥ अथवा क्या चबूतरे क्या पानी पीनेंके वरतन, क्या खंब सबही चीज वस्तु जिसकी टूट गईहैं जलका लेश नहींहै ऐसी दशा धारण किये मानों कोई पौशाला पृथ्वीपर गिर पडीहै यही अयोध्या नगरीकी दशाथी ॥ १५ ॥ अथवा विपुल बडी धनुषकी प्रत्यंचा मानों बलवान वीर लोगोंके बाण लगनेसे टूट धनुषसे गिर पृथ्वीपर पडीहै ऐसीही अयोध्यापुरी जान पडतीथी ॥ १६ ॥ अथवा युद्ध करनेंमें मतवाले सवार करके बल पूर्वक चलाया हुआ घोडा मानों दुश्मनकी सेनासे मारा जाकर पृथ्वीपर पडाहो यही अयोध्याकी

दशा हो रहीथी ॥ १७ ॥ श्रीमान् दशरथनंदन भरतजी रथमें बैठे हुए उन रथ चलानेंवालोंमें चतुर सुमंत्रजीसे बोले ॥ १८ ॥ कि पहले जो अयोध्यामें दशो दिशाओंमें छा जानेवाला गंभीर गीत और बाजोंका शब्द होताथा आज वह नहीं सुनाई आता ॥ १९ ॥ वरुणी मालायें चंदन और अगर इन सबके गंध अब पहलेकी समान चारों ओर फैली हुई नहीं जान पडती ॥ २० ॥ इसके सिवाय रथादि सवारियोंका शब्द घोडोंका हिनहिनाना, मतवाले हाथियोंका चिंघाडनाभी नहीं सुनाई आता ॥ २१ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके वन चले जानेपर अयोध्यानगरीके युवा पुरुषोंने संतापित होकर अगर,चंदन और बडे २ मोलके हार शरीर पर धारण करनें लगानें छोड दिये ॥ २२ ॥ सब प्रजा लोग पहलेकी समान चित्र विचित्र मालायें धारणकर बाहर समीरण सेवन करनें नहीं जाते सब नगरही रामचन्द्रजीके शोकसे ऐसा व्याकुल हो रहाहै कि नगरीमें उत्सवका नामतक सुनाई नहीं देता ॥ २३ ॥ बस जब कि हमारे बडे भाई श्रीरामचंद्रजी वनको चले गये तो उनके संगही संग नगरीकी सब शोभा और द्युति चली गई * ॥ २४ ॥ इस समय वेगवान वृष्टिकी धाराओंसे युक्त शरत्कालकी रात्रिके समान अयोध्यामें कुछभी शोभा या सुन्दरताई नहींहै कितनें दिनोंमें हमारे भइया आर्य रामचंद्रजी बडे उत्सवकी समान फिर कब यहां आवेंगे ? ॥ २५ ॥ कितनें दिनोंमें फिर वह ग्रीष्म कालीन बादलकी समान अयोध्यामें आयकर सब जनोंको हर्ष उत्पन्न करावेंगे, इस समय प्रथमकी समान अयोध्याजीमें लोग सुन्दर वेषसे सज धजकर सवारियोंपर चढे ॥ २६ ॥ बडे २ राजमार्गोंमें शोभा विस्तार नहीं करते सारथिसे इस प्रकार कहते २ भरतजी दुःखित होकर ॥ २७ ॥ अयोध्यामें प्रवेश करते हुए और सबसे पहले सिंहहीन गुफाकी समान राजा दशरथजी जिसमें नहीं ऐसे पिताजीके भवनको गये ॥ २८ ॥

* दोहा—अहह राम बिन यह पुरी, भई कान्ति से हीन ॥ जित तित बिल्लाते फिरैं,नगर नारि नर दीन ॥ कब आवहिंगे श्याम घन, भ्राता मम श्रीराम ॥ कब हुइहै शोभामई, पुरी महा सुखधाम २ ॥भजन॥ पुरी यह शोभाहीन लखात ॥ द्वारबंद सूने सब फाटक कोउ न आवत जात॥ कमल विना सरवर नहिं राजत भये वृक्ष बिन पात ॥ हाय त्याग कर गये हमारे बडे भ्रात और तात ॥ मिश्र उन्ही का सुमिरन करकर दुर्बल भये सब गात ॥ १ ॥

तदातदंतःपुरमुज्झितप्रभंसुरैरिवोत्कृष्टमभा
स्करंदिनम् ॥ निरीक्ष्यसर्वत्रविभक्तमात्म
वान्मुमोचबाष्पंभरतःसुदुःखितः ॥ २९ ॥

पूर्वकालके विषय देवासुर संग्राममें सूर्य नारायण जब राहु करकै ग्रसे गयेथे उस समयमें उन्होंने जिस प्रकार तेजहीन होकर देवताओंको शोक उपजायाथा वैसेही दशरथजीका रनवास उनके विरहसे शोभाहीन और सब भांति बिना झाडा बुहारा देखकर भरतजी महा दुःखित हुए और रोने लगे ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे चतुर्दशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११४ ॥

पंचदशाधिकशततमःसर्गः ॥

ततोनिक्षिप्यमातॄस्ताअयोध्यायांदृढव्रतः ॥
भरतःशोकसंतप्तोगुरूनिदमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

तिसके पीछे दृढव्रतधारी भरतजी सब माताओंको अयोध्याजीमें यथा स्थानमें टिकाय मारे शोकके तपे हुए वशिष्ठादि गुरु जनोंसे बोले ॥ १ ॥ कि अब हम नंदिग्राममें जाकर रहैंगे सो इसके विषयमें हम आप सब लोगोंसे सलाह पूछतेहैं वहीं रहते २ पिता और भ्राताके विरहका दुःख सहैंगे ॥ २ ॥ पिताजी तो स्वर्गको सिधारेहैं और पिताकी समान बडे भाईभी वनको चले गये सो वह महा यशवान रामचन्द्रजीही अयोध्याके राजाहैं; सो हम राज्य करनेंके लिये महाराज रामचन्द्रजीही की वाट देखैं ॥ ३ ॥ महात्मा भरतजीके यह कल्याणदायक शुभ वचन श्रवण करकै मंत्री लोग और पुरोहित वशिष्ठ इत्यादिक सबही बोले ॥ ४ ॥ कि हे भरतजी! तुमनें भ्राताके स्नेह वश होकर जो वचन कहेहैं वह बहुतही अच्छेहैं क्यों नहो यह वचन, तुम्हारे ही करने योग्यहैं ॥ ५ ॥ तुम सदाही भाई बन्धुओंमें अनुरागीहो और भ्राताओं-की मित्रतामें टिकेहो और सदा श्रेष्ठ पदवी तुमने धारण कर रक्खीहै फिर भला कौन पुरुष तुम्हारी बातको न मानेगा ॥ ६ ॥ भरतजी गुरु व मंत्री लोगोंके अपनी अभिलाषाके अनुसार प्यारे वचन सुनकर

सुमंत्रको यह आज्ञा देते हुए कि " हमारा रथ सजाओ " ॥ ७ ॥ फिर जब कि रथ तैयार होगया तब प्रसन्न वदनसे सब माताओंसे यथाविधि भलीभांति भाषणकर विद्वाले शत्रुघ्नजीके सहित रथपर बैठे ॥ ८ ॥ भरत और शत्रुघ्नजी तेज चलने वाले रथपर सवार होकर मंत्री और पुरोहित लोगोंके साथ जानें लगे ॥ ९ ॥ वशिष्ठादि द्विजाति लोग पूर्व दिशाकी ओरको चले जहांसे कि नंदिग्रामको मार्ग जायथा उसी रास्तेपर आगे २ चले ॥ १० ॥ जब भरतजी वहांसे चले तब उनकी सेनाभी विना बुलायेही उनके पीछे २ जानें लगी और पुरवासी लोगभी सेनाके साथ २ चले ॥ ११ ॥ इस ओर भाइयोंके अनुरागी धर्मात्मा भरतजी रामकी खडाउवें शिरपर धारणकर रथपर सवारहो बहुत शीघ्र नंदिग्राममें पहुँचे ॥ १२ ॥ तिसके पीछे वह शीघ्रही नंदिग्राममें प्रवेशकर शीघ्रही रथसे उतर गुरु लोगोंसे बोले ॥ १३ ॥ कि भइया श्रीरामचन्द्रजीनें यह श्रेष्ठ राज्य हमें धरोहरकी समान सौंपाहै सो उनकी यह स्वर्ण लगी हुई दोनों पादुका इस राज्यकी रक्षा करेंगी ॥ १४ ॥ अनन्तर भरतजी रामचंद्रजीकी दी हुई वह खडाऊं अपने शिरसे लगाय दुःखसे वहुतही तपकर सब गुरु मंत्री आदि जनोंसे बोले ॥ १५ ॥ तुम सब लोग आर्य रामचंद्रजीकी चरण स्वरूप इन खडाउओंपर शीघ्रतासे छत्र लगाओ क्योंकि इन पादुकाओंके द्वारा राज्यमें मानों धर्म व्यवहार टिकाहै क्योंकि यह हमारे परमगुरुकी पादुकाहैं ॥ १६ ॥ भाई राम-चन्द्रजीनें सौहार्दचके वश होकर हमको यह राज्यरूप परम कठिन थाती अर्पणकीहै सो वह जितने दिनतककि अयोध्यामें लौटकर नहीं आतेहैं तबतक हम विधि विधानसे इस राज्यका पालन करेंगे ॥ १७ ॥ फिर जबकि वह अयोध्याजीमें आजाँयगे तब हम अपने हाथसे उनके चरणोंमें यह पादुका पहरा देंगे और फिर पादुका पहरे हुये उनके दर्शन करेंगे ॥ १८ ॥ तिसके पीछे उनके साथ मिलकर उनका राज्य उनको दे-देंगे अपने ऊपरसे सब बोझ अलगकर गुरुजनोंकी जैसी सेवा करनी चाहिये वैसी सेवा श्रीरामचंद्रजीकी करेंगे ॥ १९ ॥ उसकाल थाती रूप यह दोनों खडाऊं राज्य और अयोध्याजीके सहित उनको लौटा देकर हम सब पापसे छूट जांयगे ॥ २० ॥ यह कहकर वीरवर प्रभु भरतजी

उस समय चीर वसन और जटा धारण करके मुनियोंका वेष धारण कर सब सेना सहित नंदिग्राममें रहने लगे ॥ २१ ॥ वह अपने हाथसे छत्र और चँवर पादुकाओंपर धारण कर राज्यके पालनेका सब वृत्तान्त रामचन्द्रही समझकर खडाउओंसे कहकर उसको करते कि अमुक कार्य किया जाताहै ॥ २२ ॥ इस प्रकार श्रीमान् भरतजी रामचन्द्रजीकी पादुकाओंका अभिषेक कराय आप उनके आधीनमें सदा राज कार्य करनेंमें लगे रहे ॥ २३ ॥

तदाहियत्कार्यमुपैतिकिंचिदुपायनंचोपहृतं महार्हम् ॥ सपादुकाभ्यांप्रथमंनिवेद्यचका रपश्चाद्भरतोयथावत् ॥ २४ ॥

उस समय राज्यके पालन करनेमें जो कुछ करना होता, और जो कुछ वडे २ मोलकी नजरें भेंटे आती वह सब प्रथम पादुकाओंके निवेदन करदीं जाती और फिर यथा विधिसे उनका व्यवहार किया जाता ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे पंचदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११५ ॥

षोडशाधिकशततमः सर्गः ॥

प्रतियातेतुभरतेवसन्रामस्तदावने ॥ लक्षयामाससोद्वेगमथौत्सुक्यंतपास्विनाम् ॥ १ ॥

जबकि भरतजी अयोध्याजीमें लौट आकर नंदिग्राममें वास करने लगे तव इस ओर श्री रामचंद्रजीनें देखाकि वहांके तपस्वी लोग कुछ डरसे गयेहैं, और वहांसे दूसरे आश्रमोंमें जानेका विचार कियेहैं * ॥ १ ॥ प्रथम जो सब तपस्वी लोग चित्रकूटके उन आश्रमोंमें रामचंद्रजीको आश्रय करकै सदा आनंदसे रहतेथे इस समय वह सब रामचन्द्रजीको

* चैत्रशुक्ला दशमी पुष्यनक्षत्र में रामको वनवास हुआ पूनोंके दिन अर्द्धरात्रिमें राजा दशरथका मरण हुआ फिर एक पखवारेमें भरतका आगमन अयोध्यासे हुआ एक पखवारा दशरथजीकी कियामें व्यतीत हुआ इस प्रकार वैशाख बीचकर ज्येष्ठके आरंभमें भरतजी चित्रकूटको गये फिर वर्षा आजानेसे कार्तिक शुक्ला पूर्णिमातक रामचंद्र चित्रकूट पर रहे तव मुनियोंको उत्कंठा हुई कुछ भरतकेही चले आनें पर नहीं ॥

देख कुछ कहनेंको मन करतेथे ॥ २ ॥ वह भोयें टेढीकर रामचन्द्रजीको देखकर शंका युक्तहो परस्पर धीरे २ कुछ कहतेथे यह राम स्त्री सहित यहां रहतेहैं इस कारण राक्षसादि इनके लेनेकी शंकासे यहां आकर हमें दुःख देतेहैं इस्से और कहीं चलें ॥३॥ तब रामचन्द्रजीने जानाकि यह लोग हमसे कुछ डरसे गयेहैं तब हाथ जोडकर उन सबोंके मालिक * वाल्मीकिजीसे कहा ॥ ४॥ कि हे भगवन् ! हममें पहला आचरण किया राज्योचित व्यवहारमें क्या कुछ बुराई देखी कि जिस कारण करकै आप लोगोंके मनोंमें यह विकार पैदा हुआहै ? ॥ ५ ॥ अथवा ऋषि लोगोंने हमारे छोटे भाई महानुभव लक्ष्मणजीको प्रमादके वश होजानेंसे कुछ अन्यायका आचरण करते देखाहै ? ॥ ६ ॥ या हमारी सेवा और टहलमें मन लगाये हुये सुकुमारी जनकदुलारी सीताजीनें तो भ्रममें पडकर आपके विरुद्ध कोई आचरण नहीं किया ॥ ७ ॥ बडे तपवाले और वृद्ध उस आश्रमके मालिक ऋषिराज वाल्मीकिजी मानों जराके प्रभावसे कांपते हुये सब भूतोंपर दया करनेवाले रामचन्द्रजीसे बोले ॥८॥ हे तात! पवित्र स्वभाव वाली सदा कल्याणहीमें जिनकी प्रीतिहै वह जानकीजी किसीके साथ और विशेप करकै ऋषियोंकेही साथ, क्या कभी किसी प्रकारके युक्ति विरुद्ध व्यवहार कर सकतीहैं ? कभी नहीं ॥ ९ ॥ तबभी आपकेही अर्थ ऋषि लोगोंके ऊपर राक्षस लोगोंने अत्याचार करना आरंभ कियाहै वह सब ऋषि लोग इसी भयसे भीत होकर परस्पर इस प्रकारसे बातें करतेहैं परन्तु आपसे कुछ कह नहीं सकते ॥ १० ॥ रावणका छोटा भाई खर नाम राक्षस रहताहै वह जनस्थानके रहनेवाले सब तपस्वियोंको दुःखदेताहै ॥ ११ ॥ वह दुष्ट बडाही ढीठहै, उस निर्लज्ज नरका मांस खानेंवालेनें काशीपुरीभी जीतीहै सो अब यह आपका रहना यहां नहीं सहन करकै हम लोगोंकोभी आपका अनुयायी जानकर कष्ट देताहै ॥ १२ ॥ हे तात ! जबसे कि तुमनें इस आश्रममें आनकर वास कियाहै तबसे यह राक्षस लोग ब्राह्मण और तपस्वी लोगोंको औरभी दुःख देतेहैं ॥ १३ ॥ वह लोग वीभत्स, क्रूर, भयानक, विकट अनेक प्रकारकी मूर्त्तियें धारण करकै तपस्वी लोगोंको डरपातेहैं ॥ १४ ॥ कभी

* यह वाल्मीकि ऋषि औरहैं ग्रंथकर्ता नहींहै ॥

वह लोग अनेक प्रकारके पाप मूल और अपवित्र पदार्थ लोगोंके आश्रमोंमें डालकर ऋषियोंका बडा अनभल करतेहैं वह अधिकतर सीधे साधे स्वभाव वाले ऋषियोंको देख पातेहैं बस वैसेही उनको सतातेहैं॥१५॥ और वह राक्षस लोग छिप २ कर सब स्थानोंमेंही फिरतेहैं और जहां किसी सोते या अचेत ऋषिको पातेहैं बस तत्क्षणही उसको मार डालतेहैं और अपनी प्रसन्नता प्रगट करतेहैं ॥ १६ ॥ और होमके समय स्रुक् इत्यादिक यज्ञके पात्र इधर उधर फेंककर आगको जलसे बुझाकर कलशोंको तोड डालतेहैं ॥ १७ ॥ अब इसही कारणसे यह सब ऋषि लोग इन सब दुरात्माओं करकै उपद्रव होते हुए आश्रमोंके त्याग करनेंकी इच्छा किये हमसे किसी और स्थानपर चलनेके लिये कह रहेहैं ॥ १८ ॥ हे रामचंद्रजी। पापात्मा राक्षस लोग जिसमें कि तपस्वियोंका प्राण न मारनें पावें इस कारणसे अब हम इस आश्रमको त्याग करदेतेहैं ॥ १९ ॥ इस आश्रमके निकटही महर्षि अश्वका जो कंद मूल फल युक्त विचित्र तपोवनहै हम सब मुनियोंके साथ वहींको चले जांयगे क्योंकि वहां मुनिके डरसे राक्षस लोग नहीं जाते ॥ २० ॥ हे तात। जो विचारमें आवे तो आपभी हमारे साथ चले चलें क्योंकि यह खर राक्षस तुम्हारे साथ भी अयोग्यही कर्मकरैगा ॥ २१ ॥ हे रघुनंदन! यद्यपि आप सदा सावधान रहतेहैं और राक्षसोंका नाश करनेंमें भी आप भली भांति सामर्थ्य रखतेहैं परन्तु स्त्रीके सहित इस आश्रममें शंकित चित्तसे रहना बहुतही क्लेशदायी होगा ॥ २२ ॥ उस आश्रमके स्वामी वाल्मीकिजी दूसरे आश्रमको जानाही चाहतेहैं यह देखकर राजकुमार रामचंद्रजी किसी प्रकारसे भी ऐसी कोई बात उनसे न कह सके जिससे कि वह वहांसे न जाते॥२३॥अनन्तर आश्रमके स्वामी, खिन्नचित्त हुए रामचंद्रजी की प्रशंसा कर बहुत समझा बुझा उस आश्रमको छोड सब संगियोंको साथ ले चले ॥२४॥ इस प्रकार जब कि वह लोग वहांसे गमन करनेको तैयार हुए तब रामचंद्रजी भी कुछ दूर तक उनके साथ चले गये और फिर आश्रम स्वामीकी आज्ञासे वह उनको प्रणाम कर अपनी कुटीको आये जब रामचंद्रजी लौटे तब सबही ऋषियोंनें प्रीति सहित भली भांति करनें योग्य कार्य्योंका उपदेश देकर उनको विदादी॥२५॥

आश्रममृषिविरहितंप्रभुःक्षणमपिनजहौस राघवः ॥ राघवंहिसततमनुगतास्तापसा श्चार्षचरितेधृतगुणाः ॥ २६ ॥

वह प्रभु श्रीरामचंद्रजी उस तपस्वी विहीन आश्रमको क्षण भरके लिये भी तौ अकेला नहीं छोडतेथे परन्तु उस स्थानसे निकट वाले तपस्वी अनुगतहो सदा रामचंद्रजीके पास आया जाया करतेथे ॥ २६ ॥
इत्यार्षे श्रीमद्रा०वा० आ० अ० षोडशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११६ ॥

सप्तदशाधिकशततमः सर्गः॥

राघवस्त्वपयातेषुसर्वेष्वनुविचिंतयन् ॥ नतत्रारोचयद्वासंकारणैर्बहुभिस्तदा ॥ १ ॥

जब सब तपस्वी लोग वहांसे चले गये तो श्रीरामचंद्रजी विविध कारणोंसे चिन्ता युक्त होकर वहां रहनेंके अभिलाषी नहींथे अर्थात् वह भी वहां रहना नहीं चाहतेथे ॥ १ ॥ वह विचारतेथे कि यहां माताओंसे नगरवासियोंसे और भइया भरतसे वरन सबसेही हमारा मिलाप हुआथा सो उनकी सदाही याद आती रहकर हमें शोकाकुल करतीहै ॥ २ ॥विशेषता इस स्थानमें जो महात्मा भरतजीकी सेना टिकीथी उसके हाथी घोडोंनें जो लीद और मूत्र त्याग कियाथा सो इस कारण यह आश्रम भूमि अपवित्र होगई और दुर्गंधि आतीहै ॥ ३ ॥ तिससे हम इस आश्रमको त्याग दूसरे स्थानको चलें इस प्रकार सोच विचार कर राम सीता और लक्ष्मणजीके साथ वहांसे चलदिये ॥ ४ ॥ तिसके पीछे वह महा यशवान रामचंद्रजी अत्रिजीके आश्रममें पंहुंचे और उनकी वंदना करते हुए भगवान अत्रिजीने भी उनको पुत्रकी समान ग्रहण किया ॥ ५ ॥ अपने हाथसे अर्घ्य पाद्यादि और भली भांति आदर किया फिर महाभाग लक्ष्मण और सीताजीकी भी भली भांति कुशल क्षेम जिज्ञासाकी ॥ ६ ॥ सर्व भूतोंका हित करनेंमें रत धर्मके जानने वाले अत्रिजीनें वहां वर्तमान अपनी वृद्धास्त्री तापसी अनुसूया

जीको बुलाया व बडे आदरसे बैठाकर समझाया ॥ ७ ॥ कि महा भाग्यवान परम तपस्विनी धर्मचारिणी अनुसूयाजी ! जानकीजीका आदर सन्मान करो यह वचन ऋषि श्रेष्ठने कहा ॥ ८ ॥ तिसके पीछे उन रामचंद्रजीके निकट धर्मचारिणी अनुसूयाजीका वृत्तान्त अत्रिजी कहनें लगे कि एक समय दश वर्ष पानी न वरसनेसे यह संसार जला जाता था ॥ ९ ॥ तव इन दृढ नियममें निष्ठा करनेंवाली अनुसूयाजीनें अपनी कठोर तपस्याके बलसे फिर कंद मूल फल उत्पन्न किये व मुनियोंके स्थान पान करनेंके लिये गंगाजीकोभी अपनें पास बुला लिया ॥ १० ॥ हेतात! इन्होनें व्रत व अनुष्ठान सहित दश हजार वर्षतक जो घोर कठिन तपस्या कीहै उसके प्रभावसे सव ऋषि लोगोंकी तपस्याके विघ्न एक वारही लोप होगयेहैं ॥ ११ ॥ हेपापरहित! फिर इन अनसूयाजीने देवता लोगोंका कार्य साधन करनेके लिये वहुतही शीघ्रता युक्त हो दशरात्रिकी एकरात्रिकीथी इनही सव कारणसे यह अनसूयाजी तुम्हारी माताके समानहैं और पूजनीयहैं * ॥ १२ ॥ तिससे वैदेहीजी इस समय क्रोध रहित मनवाली सव भूतोंके नमस्कार करनेके योग्य इन वृद्ध तपस्विनीजीके पास चलीं जांय ॥ १३ ॥ भगवान अत्रिजीनें जव इस प्रकार कहा तव रामचंद्रजी जो आज्ञा कह धर्म जाननें वाली सीताजीकी ओर देखकर बोले ॥ १४ ॥ हे राजपुत्री ! महर्षिजीने जो कहा वह तुमनें विशेषतः सव सुना सो इस समय अपनें कल्याणके लिये शीघ्र इन तपस्विनी अनुसूयाजीके पास जाकर इनकी सेवा करो ॥ १५ ॥ इन्होंने वहुतही तप कियाहै और यह सवही लोकोंमें आदर पानेके योग्यहैं यह अपने कर्मके प्रभावसे सव संसारमें अनुसूया नामसे विख्यात हुईहैं सो तुम शीघ्रही इनकी शरणमें जाओ ॥ १६ ॥

---

* एक समय अनुसूया की सखीजीको माण्डव्य ऋषिनें शापदिया कि दश रातोंके मध्यमें किसी न किसी प्रभातको तू विधवा होजायगी तव अपनी सखी विधवा न हो जाय इस कारण अनुसूयाजीनें कहा कि अव सवेराही न होगा जो हमारी सखी विधवा हो इस कारण दश दिन तक रात्रिही बनी रही जव देवताओंनें इनकी वडी स्तुति की तो दशादिन वाद दिन निकला व इनकी सखी भी सुहागन रही क्योंकि मुनिका शाप दशही रातोंके बीचमें किसी प्रभातमें उसके पतिके मरनेंको था ॥

यशवान् जनकनन्दिनीजीने स्वामी रामचंद्रजीके यह वचन सुनकर उन धर्मकी जानने वाली अत्रिकी स्त्री अनुसूयाकी प्रदक्षिणाकी ॥१७॥ जरा अवस्थाके आजानेसे उनका सब शरीर शिथिल था सब अंगोंकी खाल सुकड गईथी केश श्वेत होगयेथे और हवाके वेगसे कांपते हुए केलेकी समान उनका देह सदाही कांपताथा ॥ १८ ॥ सीताजीनें उन महाभाग पतिव्रता अनुसूयाजीको प्रणाम किया और अपना नाम प्रकाश करके परिचयभी देतीहुईं ॥ १९ ॥ तिन दयावती पतिव्रता महाभाग अनुसूयाजीको प्रणामकरके जानकीजी उनके पैरों में पडीं और हाथ जोड प्रफुल्ल चित्तसे कुशल प्रश्न करनें लगीं ॥ २० ॥ वृद्धा ऋषिकी स्त्री महाभागा धर्मचारिणी जनकनंदिनीजीको देख समझाकर बोलीं कि तुम जो सदाही धर्मका पालन करती हो यह बडेही सौभाग्यकी बातहै ॥ २१ ॥ हे मानिनि! जाति जन सन्मान धन संपत्ति इनको छोड छाड कर जो तुम वनवासका व्रत धारण किये हुए जो रामचंद्रजीके साथ वनको आई हो यह भी बडेही भाग्यकी बातहै ॥२२॥ स्वामी नगरमें या वनमें जहां कही भी रहै, अच्छा बुरा जैसा कुछ भी हो सो जो स्त्रियें पतिकोही अपना परम प्रियतम जानतीहैं उन सब स्त्रियोंके लिये महोदय लोकोंकी सृष्टि हुईहै ॥ २३ ॥ अथवा स्वामी खोटे शीलवालाहो स्वेच्छाचरी (जो मनमें आवै सो करने वाला) धनहीनहो जैसा भी हो परन्तु आर्यस्वभावा स्त्रियोंका वही परम देवताहै ॥२४॥ हे जानकि! स्वामीसे अधिक स्त्रियोंका बंधु कोई नहीं है यह बात हमने विचार लीहै क्योंकि पति इस लोक और परलोकमें दोनोंहीमें अक्षय तपस्याकी समान सुख देनेंवाली है ॥ २५ ॥ जिनका हृदय कामके वशहै ऐसी सत्यभ्रष्ट स्त्रियें जोकि भरण पोषणहीके लिये केवल स्वामीको स्वामी समझतीहैं सो वह दुष्ट स्त्रियें ऐसा करनेंके गुण दोषों को नहीं जानतीं ॥ २६ ॥ हे जानकि! ऐसी स्त्रियां जिनका वर्णन कियागया निश्चयही कुकर्मके वश होकर अपना अयश फैलातीहैं और उनका धर्म भ्रष्ट होजाताहै ॥ २७ ॥ किन्तु जो स्त्रियां कि तुम्हारी समान पतिव्रतसे गुणोंसे भूषितहैं और वह यह भी जानतीहैं कि लोकमें क्या

अच्छा और क्या बुराहै वैसी स्त्रियां वास्तवमें पुण्यवानोंकी समान स्वर्गमें घूमा करतीहै ॥ २८ ॥

तदेवमेतंत्वमनुव्रतासतीपतिप्रधानासमयानुवर्तिनी ॥ भवस्वभर्तुःसहधर्मचारिणीयशश्चधर्मंचततःसमाप्स्यसि ॥ २९ ॥

तिसे तुम पतिव्रता स्त्रियोंके नियमानुसार चल कर अच्छे मार्गका आश्रयले सदा स्वामीकी सह धर्मकारिणीहो ऐसा करनेंसे यश और अपार धर्म दोनोंही तुमको प्राप्त होंगे ॥२९॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकांडे सप्तदशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११७ ॥

अष्टादशाधिकशततमः सर्गः ॥

सात्वेवमुक्तावैदेहींत्वनसूयानसूयया ॥ प्रतिपूज्यवचोमंदंप्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ १ ॥

निन्दारहित अनुसूयाने जब इस प्रकार कहा तब जनकनन्दिनी जानकीजीने उनके वचनोंकी बडी बडाई कर उनको पूजा और धीरे २ कहनें लगीं ॥ १ ॥ आपनें जो उपदेश कियाकि पतिही स्त्रियोंका गुरुहै सो आपके ऐसा कहनेसे कुछ आश्चर्य नहींहै; और हमभी इस बातको जानतीहैं ॥ २ ॥ स्वामी दरिद्रहो और चाहै उसका चाल चलन कैसाही बुराहो परन्तु उसके प्रति दुविधाको छोडकर दया सहित व्यवहार करना हमारी समान स्त्रियोंको अवश्य कर्त्तव्यहै ॥ ३ ॥ फिर जबकि स्वामी जितेन्द्रियहो अपनेसे अधिक प्रेम करताहो अतिशय धर्मनिष्ठ, माता पिताकी समान प्रिय करने वाला उत्तम गुणधारी सुन्दर होतो उसके प्रति स्त्री उचित व्यवहार करेगी इसमें विचित्रताही क्याहै ॥ ४ ॥ हमारे महा बलवान् स्वामी रामचंद्रजी अपनी माता आर्य कौशल्याजीके साथ जिस प्रकारका व्यवहार करतेहैं सो उसी भांतिका भाव राजाकी और स्त्रियोंमें रखतेहैं ॥ ५ ॥ इतनाही नहीं वरन जिस स्त्रीको राजा दशरथजीने एक वार मात्रभी आपनी प्रियाकी समान देखाहै, राजाके प्यारे वीरवर धर्मज्ञ श्रीरामचंद्रजी उस स्त्रीसेभी तो माताकी

समान व्यवहार करतेहैं ॥ ६ ॥ हम जब कि इस भयावने विजन वनको चलींथीं तब सास कौशल्याजीनें आपकी समान हमें जो उपदेश प्रदान कियाथा वह हमारे हृदयमें अटलभावसे विराज रहाहै ॥ ७ ॥ जब हमारा विवाह हुआ था तब उस समय अग्निके सामने हमारी मातानें जो उपदेश कियेथे वहभी हमारे हृदयमें धरेहैं ॥ ८ ॥ हे धर्मचारिणी ! पति सेवाके सिवाय स्त्रीको और सेवा नहीं करनी चाहिये इत्यादि जो उपदेश हमारे बंधु वान्धवोंने कियेहैं हम उनको जराभी नहीं भूली-हैं ॥ ९ ॥ देवी सावित्रीजी पतिकी सेवा करके स्वर्गमें वास करतीहैं; आपभी सावित्रीहीकी समान पतिकी सेवा करके सब सिद्धियोंको प्राप्त हुईहो और स्वर्गको जाओगी ॥ १० ॥ सब स्त्रियोंमें श्रेष्ठ और स्वर्गकी देवी रोहिणीकोभी एक मुहूर्त्तभरभी चंद्रमासे अलग नहीं पाया जाता ॥ ११ ॥ इसही प्रकारसे औरभी अरुन्धती आदि श्रेष्ठ स्त्रियें स्वामीके प्रति अचल भक्ति युक्तहो सबही पतिसेवा स्वरूप अपने २ पुण्य कर्मोंके प्रभावसे स्वर्गमें वास करती हैं ॥ १२ ॥ जब श्रीसीता-जीनें इस प्रकार कहा तब अनुसूयाजी यह सुनकर अतिशय हर्षको प्राप्त हुई और श्रीसीताजीका शिर सूंघ हर्षसे भरकर बोलीं ॥ १३ ॥ हमने अनेक प्रकारसे नियम पूर्वक अनुष्ठानोंके द्वारा जो तपस्या इकट्ठी कीहै सो हे शुचिस्मिते जनकनंदिनि ! उस तपोबलसे हम तुमको इस समय वरदान देना चाहतीहैं तुम वर मांगो ॥ १४ ॥ हे मैथिलि तुम्हारे वचन जैसे युक्ति संगतहैं; वैसेही महापवित्रभीहैं इस कारण हम अतिशय संतुष्ट हुईहैं अतएव कहो तुम्हारा क्या प्रिय कार्य क-रैं ॥ १५ ॥ धर्मकी जाननेवाली तपके बलसे युक्त अनुसूयाजीके यह वचन सुनकर जानकीजी उनके वैभवके विषयमें विस्मितहो मृदुमंद हँस कर उनसे बोलीं कि आपकी कृपासेही हमारी सब. कामना पूर्ण होगई ॥ १६ ॥ धर्मकी जाननेवाली अनुसूयाजी सीताजीके यह वचन सुन औरभी प्रसन्न होकर कहने लगीं कि हे जानकि! तुमको देखकर जो हमें बहुतही हर्ष उत्पन्न हुआहै तिस्से हम अवश्यही उसके उचित दान करके वह हर्ष सफल करैंगी ॥ १७ ॥ तिससे हे जनकनंदिनि ! यह दिव्यमाला श्रेष्ठ वस्त्राभूषण केशर मिला और कपूर मिला चंदन और

बडे मोलका उबटन ॥ १८ ॥ हम तुम्हें देतीहैं इन सब वस्तुओंके व्यवहार करने से तुम्हारे शरीरकी शोभा होगी इसमें कुछ सन्देह नहीं इन सब वस्तुओंका व्यवहार नित्य प्रति करनेंसेभी यह कभी मैली नहीं होंगी ॥ १९ ॥ हे जानकि! ये दिव्य केशर आदि मिलाया अंगरागहै इसको लगानेंसे लक्ष्मीजी जिस प्रकार विष्णुजीकी शोभाको बढातीहैं वैसेही तुम अपने स्वामीकी शोभाको बढा ओगी ॥ २० ॥ तब श्री सीताजीनें अनुसूयाजीके बहुत श्रेष्ठ परम प्रीतिसे दिये वह वस्त्राभूषण अंगराग व माला इत्यादि ग्रहणकी ॥ २१ ॥ इस प्रकार जनकदुलारी जानकीजी प्रीतिसे दीहुई वस्तुयें लेकर हाथ जोड धीर भावसे तपस्विनी अनुसूयाजीकी उपासना करनें लगीं ॥ २२ ॥ जानकीजीको देखकर दृढव्रत धारण करने वाली अनुसूयाजी किसी प्रकारकी प्रिय वार्ता सुननेकी इच्छासे जानकीजीसे पूछनें लगीं ॥ २३ ॥ कि हे जानकि ! हमने सुनाहै कि इन परम यशवान रामचंद्रजीने स्वयंवरमें तुमको पायाहै ? ॥ २४ ॥ हे जानकि ! सो इस समय हम तुम्हारे स्वयंवरका वृत्तान्त विस्तारसे सुननेकी इच्छा करतीहैं तिससे जो कुछ कि हुआथा वह समस्तही हमको तुम सुनाओ ॥ २५ ॥ जनककुमारी सीताजी यह वचन श्रवण कर धर्मचारिणी तापसी अनुसूयाजीसे बोलीं कि हम कहतीहैं आप सुनें यह कहकर स्वयंवरका वृत्तान्त कहने लगीं॥२६॥ कि जनकनामक मिथिलापुरीमें जो धार्मिक महावीर राजाहैं वह क्षत्रिय धर्मके विशेष अनुरागी होकर धर्मानुसार पृथ्वीका पालन करतेहैं ॥ २७ ॥ उन्होंनें यज्ञके लिये जब हल हाथमें लिया और क्षेत्र जोतनेमें लगे तब हम पृथ्वीको भेदकर उसी हलके आगेसे उनकी पुत्री रूप होकर निकल आईं ॥ २८ ॥ हमारे सब शरीरमें धूल लग रहीथी उस समय वह महाराज पृथ्वीमें बीज बोतेथे सो हमको देख बडे विस्मित हुए ॥ २९ ॥ और स्नेहके मारे हमें अपनी गोदमें बैठाललिया उनके कोई संतान नहीं थी इसीकारण वह हमें अपनी बेटी समझ हमसे बडाही स्नेह करने लगे ॥ ३० ॥ उसी समय आकाशमें मनुष्यके बोलकी समान यह दैव वाणी हुई,— " हे राजन् ! यह कन्या तुम्हारे क्षेत्रमें उत्पन्न हुईहै अतएव यह तुम्हारी कन्या हुई ! " ॥ ३१ ॥ धर्मा-

त्मा पिता राजा जनकजी यह दैव वाणी सुनकर परमानंदको प्राप्त हुए वह हमको पाकर ऐसे हर्षित हुए मानों बडी ऋद्धि सिद्धि संपत्ति उन्हें मिली ॥ ३२ ॥ अनन्तर उन्होंनें हमको अभीष्ट द्रव्यकी समान पुत्रकी इच्छा करती हुई अपनी पटरानीको हमें सौंप दिया वहभी हमको माताकी समान प्रेम और स्नेहसे लालन पालन करनें लगीं॥३३॥ पिताजी हमको विवाहकी उमर पर पहुँची देख कर धन नाश होनेसे निर्धनकी नाईं व्याकुल चित्त हो चिंता करने लगे ॥ ३४ ॥ क्योंकि कन्याका पिता चाहे साक्षात् इन्द्रकी समान भी हो तौ भी वर के पक्ष वाले बराबर दरजेके वा नीचेके लोगोंसे असन्मान प्राप्त होताही है॥३५॥ उस निरादरके होनें में कुछ विलम्ब नहीं देख कर राजा जनकजी चिन्ता के समुद्र में एक वार ही डूब गये जहाजहीन वणिक की समान किसी भांति भी उस चिन्ता समुद्र के पार न जा सके ॥ ३६ ॥ हमको अयोनिसे उत्पन्न हुआ देखकर वह अनेक चिन्ता करके भी कहीं हमारी समान योग्यपात्र न पासके इसकारण वह सदाही चिन्ता करते रहे ॥ ३७ ॥ तिसके पीछे उनके मनमें यह बात आई कि धर्मानुसार कन्याका स्वयं-वर करना चाहिए उसीमें जो पुरुष योग्य होगा उसीको देंगे ॥ ३८ ॥ प्राचीन समय महात्मा वरुणसे जनकजीके पूर्व पुरुष देवरातको देवता ओंकी प्रार्थनासे दक्षके यज्ञमें शिवके प्रसादसे धनुष और अक्षय बाणोंसे पूर्ण दो तरकस मिले थे ॥ ३९ ॥ यह धनुष इतना भारीथा कि यत्न करने परभी देवता दैत्य मनुष्यादि उसको चलाय मान नहीं कर सकतेथे और राजा लोग स्वप्नमें भी जिसको नहीं लचा सकतेथे ॥ ४० ॥ हमारे पिता सत्यवादी राजा जनकजीनें पुरुषानुक्रमसे वह धनुष पाय प्रथम उन्होंने राजाओंको न्यौता देकर एकत्रित किया और फिर उन सबके सामने बोले ॥ ४१ ॥ कि आप लोगोंमेंसे जो इस धनुषको उठा-कर इसमें प्रत्यंचा चढा देगा तो इसमें कुछ सन्देह नहीं है कि हमारी कन्या उसकी भार्या होगी ॥ ४२ ॥ राजा लोग इस पहाडकी समान बोझवाले धनुष रत्नको देखकर उसके उठानें में उद्यत हुए परन्तु सफल मनोरथ न हो सके और धनुषको प्रणाम करके चले गये ॥ ४३ ॥ तिसके पीछे बहुत दिनोंके बाद यह महाद्युतिमान श्रीरामचन्द्रजी

विश्वामित्रजीके साथ पिताजीका यज्ञ देखनेको वहां आये ॥ ४४ ॥ पिताजनकजीने भ्राता लक्ष्मणके सहित आये सत्य पराक्रमवान् रामचन्द्रजी और धर्मात्मा विश्वामित्रजीकी बडी पूजा की ॥ ४५ ॥ फिर वहां विश्वामित्रजीने पिता जनकजीसे कहा कि यह राम और लक्ष्मण राजा दशरथजीके पुत्र हैं और यह आपका धनुष देखा चाहते हैं ॥४६॥ जब महर्षि विश्वामित्रजीने इस प्रकार कहा तब जनकजीने देवताओंका दिया हुआ वह धनुष सैकडों वीरों से उठवा मँगाकर रामचन्द्रजीको दिखादिया ॥ ४७ ॥ महाबलवान् वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजीनें पलक मारते में उस धनुषको झुकाय उस पर प्रत्यंचा चढा दी और फिर उसको टंकोर दिया ॥ ४८ ॥ बडे जोरके साथ चढानेंसे वह महा धनुष टूट कर दो टुकडे होगया उसके टूटनेसे बिजली गिरने की समान महा भयानक शब्द हुआ ॥ ४९ ॥ तब उसी समय सत्य प्रतिज्ञा करनेवाले पिताजी श्रेष्ठ जल मँगाय और उसको ग्रहण कर हमें रामचन्द्रजीके हाथमें सौंपनेको तैयार हुए ॥ ५० ॥ परन्तु रामचन्द्रजीनें बिना पिताजीकी आज्ञाको पाये कि अयोध्याधिपति महाराज दशरथजीकी जब आज्ञा होगी तबहीं हम इनको ग्रहण करेंगे यह कह उस समय इन्होंनें हमें ग्रहण न किया ॥ ५१ ॥ तिसके पीछे हमारे पिताजीने हमारे श्वशुर वृद्ध महाराज दशरथजीको अयोध्यासे बुलाकर उनकी आज्ञासे इन सब लोकोंमें विख्यात रामचंद्रजीके करकमलमें हमें सौंप दिया ॥५२॥ और हमारी छोटी बहन साध्वी शुभदर्शनवाली उर्मिलाको लक्ष्मणजीकी भार्या बनाने के लिये दिया ॥ ५३ ॥

एवंदत्तास्मिरामायतथातस्मिन्स्वयंवरे ॥
अनुरक्तास्मिधर्मेणपतिंवीर्यवतांवरम् ॥ ५४ ॥

जबसे हमारे पिताजीनें स्वयंवरमें रामचंद्रजीके करमें हमें समर्पण कियाहै तबसे हम धर्मानुसार पराक्रमवालोंमें श्रेष्ठ पतिकी सेवा करनें में अनुरागिणी हैं ॥ ५४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० अ० अष्टादशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११८ ॥

एकोनविंशत्यधिकशततमः सर्गः ।

अनुसूयातुधर्मज्ञाश्रुत्वातांमहतींकथाम् ॥
पर्यष्वजतबाहुभ्यांशिरस्याघ्रायमैथिलीम् ॥ १ ॥

धर्म जाननेवाली अनुसूयाजी यह बडी कथा श्रवण करके जानकीजीका शिर सूंघकर दोनों बाहोंसे पकड उनको छातीसे लगाकर बोलीं ॥ १ ॥ जिस प्रकारसे स्वयंवर हुआथा वह तुमने समस्तही साफ २ पद युक्त विचित्र और मनोहर वाणीसे कहा और हमने सुना ॥ २ ॥ हे मधुर भाषिणि! परन्तु अब सूर्य भगवान् अस्ताचलको जाया चाहते हैं तुम्हारी इस कथा में हमारा जी बहुत लगताहै परन्तु अब रात्रि होना चाहती है ॥ ३ ॥ पक्षीगण जो भोजनकी खोज में दशों दिशाओंको उड २ कर गये थे अब वह संध्या होती देखकर बसेरा लेनेंके लिये अपने २ घोंसलों से आते हैं यह उनका शब्द होरहा है ॥ ४ ॥ मुनि लोग स्नान करके गीले शरीर जलका कलशा हाथमें लिये आपसमें मिलकर अपने २ आश्रमोंको लौटे हैं उनके चीर वल्कल भीगेहुये हैं ॥ ५ ॥ ऋषि लोगोंने जो विधि विधान से अग्निहोत्रमें होम किया है तिससे कबूतर के कंठमें जो रुवें होते हैं उनकी समान लाल वर्णका धुवां वायु के वेगसे आकाशमें उठा हुआ दिखाई देता है ॥ ६ ॥ अब, अँधेरा होता चला आता है क्योंकि जिन पेडोंमें थोडेभी पत्ते हैं वह भी अंधकारसे घनेजान पडते हैं स्पष्ट नहीं दिखाई देते दिशा नहीं प्रकाशित होतीं॥७॥ देखो चारों ओर निशाचर घूमते हैं और यह सब आश्रमों के मृग पवित्र वेदियों के ऊपर शयन कर रहे हैं ॥ ८ ॥ हे सीते! रात्रि तारागणोंसे सज धज कर आई है चन्द्रमाभी चटकीली चांदनीका विस्तार करते आकाश में उदित हो रहे हैं ॥ ९ ॥ अच्छा अब आज्ञा है कि तुम इस समय जाकर रामचन्द्रजीकी सेवा करो मधुर कथा वार्त्ता से हम बहुत ही सन्तुष्ट हुई हैं ॥ १० ॥ हे मैथिलि! इस समय तुम हमारे सामने वस्त्राभूषण पहर कर हमारी प्रीतिको और भी बढ़ाओ वत्स जानकि! दिव्य गहनोंके पहरनें से तुम्हारी विचित्र शोभा होगी ॥ ११ ॥ तब

सुरकन्याकी समान दिव्य लावण्यवाली जानकी जी भलीभांति वह सब वस्त्राभूषण पहर शिर झुका अनुसूयाजीके चरणोंका वन्दन करके रामचन्द्रजीके निकट आईं ॥ १२ ॥ वचन बोलनेवालोंमें श्रेष्ठ श्रीराम चन्द्रजी सीताको वस्त्राभूषण धारण किये हुए देखकर तपस्विनी अनुसूयाजीकी इतनी प्रीति देख परम प्रफुल्लित हुए ॥ १३ ॥ अनन्तर प्रीति सहित अनुसूयाजीनें जो वस्त्राभूषण और मालायें इत्यादि दीथीं उन सबके प्राप्त होनेंका वृत्तान्त जानकीजीनें श्रीरामचन्द्रजीसे कहा ॥ १४ ॥ इस प्रकार अनसूयाजीकी प्रीतिका दान चराचर मनुष्य लोकमें दुर्लभ है इसकारणसे श्रीरामचन्द्रजी व महारथी लक्ष्मणजी दोनो महाहर्षित हुए ॥ १५ ॥ तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी तपस्वियोंसें पूजे जाकर और चारु चन्द्रवदनी सीताजीको देखकर प्रीति सहित उस रात्रिमें वहां सोये ॥ १६ ॥ जब रात बीती प्रभात हो आया तब राम लक्ष्मण दोनों जने न्हाय धोय संध्यासे अनल में आहुति दे उस आश्रमके वनवासी ऋषिके पास जाकर बिदा मांगने लगे ॥ १७ ॥ तब धर्मचारी वनवासी तपस्वी लोगोंनें श्रीरामचन्द्रजीसे कहा कि महाराज! राक्षस लोगोंनें इस वनमें महा उपद्रव करना आरंभ किया है ॥ १८ ॥ हे रघुनन्दन! अनेक प्रकारके रूप धारी मनुष्यका मांस खानेवाले राक्षस गण और रुधिर पीनेवाले व्याघ्र सिंह सर्प इत्यादि जीव जन्तु इस गहन वनमें वास करते हैं ॥ १९ ॥ वह सब अपवित्र व असावधान ब्रह्मचारी तपस्वी लोगोंको भक्षण कर जाते हैं तिससे हे महाराज! तुम उनका निवारण करो ॥ २० ॥ महर्षि लोगोंका वनमें से फल लानेका यही मार्ग है सो आप भी इसी मार्ग से होकर दुर्गम वनमें गमन कर सकेंगे ॥ २१ ॥

इतीरितःप्रांजलिभिस्तपस्विभिर्द्विजैःकृतस्व
स्त्ययनःपरंतपः ॥ वनंसभार्यःप्रविवेशराघ
वःसलक्ष्मणःसूर्यइवाभ्रमंडलम् ॥ २२ ॥

जब तपस्वी लोगों ने हाथ जोड मंगल आशीर्वाद देकर इस प्रकार

कहा तो शत्रुओंके तपानेवाले श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण और सीताजीके साथ मेघ मंडलमें सूर्यकी समान वनके बीच प्रवेश करते हुए ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अ० पण्डितज्वालाप्रसादकृतभाषानुवादे एकोनविंशाधिकशततमः सर्गः ॥ ११९ ॥

अयोध्याकांडं सम्पूर्णम् ॥ २ ॥

पुस्तक मिलनेका ठिकाना

खेमराज श्रीकृष्णदास

"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना बम्बई.

इति वाल्मीकीय रामायणे भाषाटीका समेते
अयोध्याकाण्डे संपूर्णम् ।

मुद्रितमेतद् भाषाटीकासमेतवाल्मीकीयरामायणअयोध्याकाण्डं
मुम्बय्यां स्वकीये श्रीवेङ्कटेश्वर मुद्रायन्त्रे
खेमराज श्रीकृष्णदास इत्यनेन.

आरण्यकांड.

राम खरदूषणादि.

मारीच
रावण.
सीता
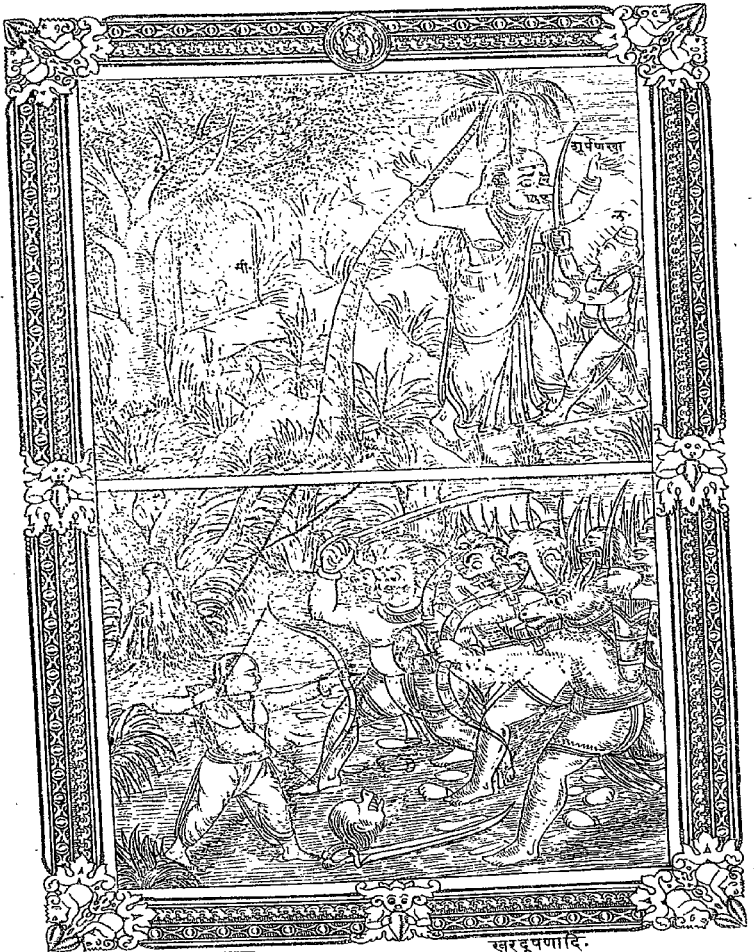
श्रीः ॥

श्रीरामायणे वाल्मीकीये भाषानुवादे

आरण्यकांडः ।

दोहा ॥ कटि निषंग कांधे धनुष, माथे तिलक विशाल ॥
शत्रुशाल, सुरपालकर, वंदौं दशरथलाल ॥ १ ॥

प्रथमःसर्गः ॥

प्रविश्यतुमहारण्यंदंडकारण्यमात्मवान् ॥
रामो ददर्श दुर्धर्षस्तापसाश्रममंडलम् ॥ १ ॥

श्रीगणेशायनमः ॥ आत्मवान् महादुर्द्धर्ष श्रीरामचंद्रजीने दंडक नामक महावनमें प्रवेश करके तपस्वी लोगोंके आश्रम मंडल देखे ॥ १ ॥ जिन आश्रमोंमें जगह २ कुश चीर पडेहैं, जहां ब्रह्मविद्याकी लक्ष्मीका तेज अच्छी तरह विराजमान होरहाहै, यद्यपि सूर्यनारायण आकाशमें रहतेहैं और उनको मारे प्रकाशके कोई नहीं निहार सक्ता, तैसेही बहुत तपस्वियोंके आश्रम ब्रह्मविद्याके प्रभाव करके तेजवान होनेसे बडे-कठिनतासे देखने योग्यहैं ॥ २ ॥ ॥ वह आश्रम सब जीवोंके आसरा लेनेके थलेहैं, उनके आंगन सदाही झाड बुहारकर साफ किये जाते और चारों ओर अनेक प्रकारके पशु पक्षियोंसे जो सदा पूर्ण रहते॥ ३ ॥ अप्सराओंके झुण्डके झुण्ड सदा यहां आकर इनके समीप नाच गाकर इनकी पूजा करतीं जहां बडे विस्तारकी यज्ञशाला बनीहै जिनमें अग्नि-कुंड स्रुव मृगचर्म और कुशादि धरेहैं ॥ ४ ॥ होम करनेका ईंधन जलके भरे हुए कलश व कंद मूल फल भोजन करनेके लिये रक्खेहैं, और बडी २ जातके बनैले स्वाद युक्त फल पवित्र २ वृक्षोंके समूहोंमें लग रहेहैं ॥ ५ ॥ इन सब आश्रमोंमें नित्यही बलि और होम होताहै, प्रति-दिन पुण्यमय वेदध्वनि उठतीहै अनेक प्रकारके फूलभी इधर उधर खिल रहेहैं, और विचित्र कमल जिनमें खिले हुए ऐसी तलैयेंभी विराजमान हो रही हैं ॥ ६ ॥ इन सब आश्रमोंमें कंद मूल फल खानेवाले चोर मृग

चर्म वल्कलादि धारण करनेवाले सूर्य और अग्निके समान प्रकाशमान नियत समय पर बोलने, देखने, सुन्नेवाले, जितेन्द्रिय प्राचीन वृद्ध मुनि-योंके समूह वास करतेहैं॥ ७ ॥ नियताहारी पवित्र परमर्षियोंके समू-हसे शोभित, और सदा वेद पढनेका शब्द प्रतिध्वनित होनेसे सब आश्रम ब्रह्मलोकके समान शोभायमानहैं ॥ ८॥ महा तेजवान श्रीमान् रामचंद्रजी महाभाग ब्रह्मको पहचानें हुए ब्राह्मण गणोंसे शोभित उन तपस्वियोंके आश्रम मंडलको देखकर ॥ ९ ॥ अपने महाधनुषकी प्रत्यंचा उतारकर उनकी ओर को चले, दिव्यज्ञान संपन्न महर्षियोंने रामचंद्रजीको देखा व जाना ॥ १० ॥ इसकारण प्रसन्नहो सबही श्रीरा-मचन्द्र व महायशवान श्रीजानकीजीके सन्मुख वे मुनिलोग चले फिर चन्द्रमाके समान धर्मका आचरण करनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको उदय देख ॥ ११ ॥ व लक्ष्मण जानकीजीकोभी निहार सब मुनियोंनें मंगलके आशिर्वाद दिये और उनका भलीभांति आदर सन्मान किया ॥ १२ ॥ वह सब वनवासी ऋषिलोग विस्मिताकार होकर रामचन्द्रजीके रूपकी सुंदरता, लावण्यता, सुकुमारता, और सुवेषता देखकर विचार करने लगे कि ऐसे सुकुमार वनमें क्योंकर आये ॥ १३ ॥ वह सब मुनिलोग अचरजमें आकर रामचन्द्र लक्ष्मण और जानकीजीको बिना पलक मारे इकटक देखने लगे ॥ १४ ॥ सर्व जीवोंके ऊपर दयाकरनेंवाले बडे भाग्यशाली ऋषिलोगोंने अपूर्व अतिथि रामचन्द्रजीको पर्णकुटीमें लाय टिकाया ॥ १५ ॥ पहुँचतेही प्रथम भलीभांति कुशल प्रश्नकर सत्कार कर अग्निकी समान तेजवाले धर्मात्मा ऋषिलोगोंने सुन्दर पवित्र जल लाय पैर इत्यादि धोनेको दिया ॥ १६ ॥ अनन्तर उन समस्त धर्मके जाननेवाले ऋषिलोगोंने परम हर्ष युक्तहो मंगल आशिर्वाद प्रयोग करके सुन्दर कंद फलादि खानेको दिया और आश्रम रहनेको दिया ॥ १७ ॥ फिर सब धर्मके जानने वाले ऋषिलोग हाथ जोडकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले कि आप हम लोगोंके धर्मपाल शरण्यहैं व परम यशस्वीहैं ॥ १८ ॥ आप परम पूजनीय व मान्यभीहैं। क्योंकि दंडधारी राजा गुरुके समान होताहै राजा इन्द्रका चौथा भाग होताहै इस कारण सबही प्रकार आप पूजा करनेके योग्यहैं, क्योंकि जब आपही प्रजाकी रक्षा करतेहैं तो

उनके अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पदार्थ सिद्ध हो जातेहैं ॥ १९ ॥ सब लोकोंके नमस्कार करनेसे राजा श्रेष्ठहै और वह श्रेष्ठ रमणीय भोगोंको भी भोग करताहै। हे राघव! हम लोग आपके राज्यमें वास करतेहैं अतएव आप करके हमारी रक्षा करनी चाहिये ॥ २० ॥ हे राजन्! नगरमें रहो या वनमेंही रहो आपही हम लोगोंके राजाहैं सो आपको हमारी रक्षा करनी चाहिये यदि आप कहैं कि तुम लोगभी तपोबलसे अपनी रक्षा कर सकतेहो सो नहीं क्योंकि हम लोगोंनें क्रोधका त्यागकर इन्द्रियोंको जीत एक वारही दंड देना छोड दियाहै ॥२१ ॥ तपस्याके सिवाय हम लोगोंका और कुछ धन नहींहै, अतएव गर्भके बालककी समान आपको हमारी रक्षा करनी उचितहै यह कहकर उन सब ऋषि मुनियोंने विविध प्रकारके पुष्प और वनफल द्वारा लक्ष्मण व सीता सहित रामचंद्रजीकी पूजाकी ॥ २२ ॥

तथान्येतापसाःसिद्धारामंवैश्वानरोपमाः ॥
न्यायवृत्तायथान्यायंतर्पयामासुरीश्वरम् ॥ २३ ॥

इसी प्रकारसे औरभी सिद्ध, तापस मुनिलोगोंने अग्निकी समान तेजमान उन प्रभु ईश्वर रामचन्द्रजीकी यथा विधानसे पूजाकी ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे प्रथमः सर्गः ॥ १ ॥

द्वितीयःसर्गः ॥

कृतातिथ्योथरामस्तुसूर्यस्योदयनंप्रति ॥
आमंत्र्यसमुनीन्सर्वान्वनमेवान्वगाहत ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीने इस प्रकार अच्छी पहुनई पाकर जब प्रभात हुआ तब उन आश्रमवासी सब मुनियोंसे पूछ पाछकर वनमें विचरण करने लगे ॥ १ ॥ इस वनमें अनेक भांतिके जीव जन्तु विद्यमानथे रीछ और शार्दूलभी घूम रहेथे। इन वनके पेड व बेलें सब सूख गईथीं और सब ताल तलैयें सूखकर भयावनी होगईथीं ॥ २ ॥ इस वनमें पक्षियोंका चहचहाना सुनाई नहीं आताथा न भौरोंकी गुंजार हो रहीथी केवल झिल्ली कि झनकार सुनाई आतीथी। इस प्रकार रामचन्द्रजीनें इस वनकी दशा

देखी ॥ ३ ॥ तिसके पीछे काकुत्स्थ रामचंद्रजी सीताजीके साथ उस घोर पशुओंकरके सेवित वनमें पहाडके शिखरकी समान आदमीके खानेवाले बडे शब्द करने वाले एक राक्षसको देखते हुये ॥४॥ इस राक्षसकी आंखें बहुतही गंभीरथीं, वदन अति विशाल था, थोंद महा विकटथी, उसके शरीरका गठन अति भयंकरथा वह राक्षस ऐसा भयावनाथा कि जिसे देखतेही मनुष्य डर जाय, कहीं टेढा, कहीं सीधा, कहीं ऊंचा, खाली, बराबर अंग कोई नथा, उसकी सूरत बडी डरावनीथी ॥ ५ ॥ वह राक्षस रुधिरसे भीगा व्याघ्रका चमडा ओढेथा जिस समय वह उबासी लेताथा तो प्रलयकालकी समान सब भूतोंको त्रास उपजानेवाला होता ॥ ६ ॥ वह तीन शेर, बारह व्याघ्र, दोभेडिये, दश चीतल मृग, व दांत सहित चरबी लगा एक हाथीका मस्तक ॥ ७॥ जो लोहेके शूलमें विधा हुआथा लियेथा और बडाही चिल्ला रहाथा फिर वह रामचन्द्र लक्ष्मण और मैथिली सीताजीको देख ॥ ८ ॥ महा क्रोधके वश होकर संहारके कालमें कृतान्तकी समान उनके ऊपरको दौडा वह महा भयावनी गर्जना करके पृथ्वीको कँपाता हुआ ॥ ९ ॥ विदेह राजाकी दुहिता सीताजीको गोदमें लेकर श्री रामचन्द्रजीसे बोला कि तुम दोनों जन जटा चीर धारण किये वनमें स्त्री सहित आयेहो इस्से अपनेंको मराहुआही समझो ॥ १० ॥ शर चाप,तलवार हाथमें लेकर इस वनमें आयेहो. फिर यह तौ मुझसे कहो कि तुम्हारे साथ यह स्त्री क्योंकरहै?॥११॥ तुम लोग अधर्मका आचरण करने वाले पाप स्वभावीहो, और तुमसे मुनियोंके चरित्रको कलंक लगाहै सो तुम लोग कौनहो ? हम राक्षसहैं हमारा नाम विराधहै हम दुर्गम वनमें रहतेहैं ॥१२॥ हम प्रतिदिन ऋषियोंका मांस खाते हुये हथियार बांधकर इस दुर्गम वनमें फिरा करतेहैं इस वरारोहास्त्रीको हम अपनी भार्या बनावेंगे॥१३॥ तुम दोनों महापापीहो इस्से युद्धकर हम तुम्हारा दोनोंका रुधिर पियेंगे जब दुष्टात्मा विराधनें ऐसे दुर्वचन कहे ॥ १४ ॥ ऐसे गर्वीले वचन सुनकर जनककुमारी सीताजी बहुतही घबराई जिस प्रकार प्रचंड पवनके वेगसे केला कांप जाय इसी प्रकार उनका शरीर भयसे कांपनें लगा ॥ १५ ॥ श्रीरामचन्द्रजी शुभ सीताजीको विराध राक्षसकी गोदमें बैठे देखकर उदास हो लक्ष्मणजीसे बोले हे सौम्य ! राजा जनकजीकी

कन्या शुभाचरण करनेवाली हमारी स्त्री सीताजीको विराधकी गोदीमें बैठी हुई देखो ॥१६॥१७॥ यह यशस्विनी राजपुत्री अत्यंत सुखसे पालन पोषण की गई सो अब यह राक्षसके वश पडी सो वरदान मांगनेंसे जो कैकेयीकी इच्छाथी वह आज सफल हुई ॥ १८ ॥ जो दुष्ट कैकेयी अपनें पुत्रको राज्यदिलाकरभी सबरसे न रही उसनें बडी दूरका आगम देखा कि यदि यहां रहैंगे तो हमारे पुत्रका राज्य अटल नहीं रहैगा इस्से वनवास दिलवाया ॥ १९ ॥ समस्त प्राणियोंका प्यारा जानकर हमको वनमें भिजवाया अब उन विचली माता कैकेयीदेवीका मनोरथ सफल हुआ ॥ २० ॥ हे लक्ष्मण! इस्से अधिक और दुःख क्या होगा कि राज्य हरा गया पिताजीका मरण हुआ जानकीजीको राक्षसने छुआ भला इस्से बढकर कोई दुःखहै ? ॥ २१ ॥ जब रामचंद्रजीने ऐसा कहा तब शोकसे घिरे आंसू भरे हुये, मंत्रसे बँधे सर्पकी समान ऊंधे श्वाससे गर्जकर महा क्रोधयुक्तहो लक्ष्मणजी बोले ॥ २२ ॥ हे काकुत्स्थ! आप इन्द्रकी समान सब प्राणियोंके मालिक होकर विशेषतः मुझ सरीखे सेवकके विद्यमान रहते इस प्रकारका विलाप क्यों करतेहैं? ॥ २३ ॥ हमक्रोधित होकर इस विराध राक्षसको बाण मारतेहैं बस बाणके लगतेही यह प्राण छोडदेगा और पृथ्वी इसका रुधिर पियेगी ॥ २४ ॥ राज्यकी कामना करते हुये भरतजीपर जो क्रोध हमको उत्पन्न हुवाथा सो वज्र धारण करनेंवाले इन्द्रनें जिस प्रकार पर्वतोंपर वज्र छोडाथा उसी भांति मैंभी यह क्रोध विराधपर छोडताहूं ॥ २५ ॥

ममभुजबलवेगवेगितःपततुशरोस्यमहान्म
होरसि ॥ व्यपनयतुतनोश्चजीवितंपततुतत
श्चमहींविघूर्णितः ॥ २६ ॥

हमारी भुजाओंके बलोंके वेगसे वेगयुक्त होकर हमारे छोडे तीर उसके हृदयमें जाकर गडेंगे, उसका जीवन नाशको प्राप्त हो जायगा, और वह घूम २ कर पृथ्वीपर गिर जायगा ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आरण्यकांडे द्वितीयःसर्गः ॥ २ ॥

तृतीयः सर्गः ॥

अथोवाचपुनर्वाक्यंविराधःपूरयन्वनम् ॥
पृच्छतोममहिब्रूतंकौयुवांकगमिष्यतः ॥ १ ॥

फिर वह विराध राक्षस अपने वचनके शोरसे समस्त वनको पूर्ण करता हुआ यह बोला—जो मैं पूछताहूं सो बताओ, कि तुम कौनहो और कहांको जाओगे ॥ १ ॥ उस अंगारेके समान जलते वदनवाले राक्षसने जब इस प्रकार पूछा तब महातेजवान् श्रीरामचंद्रजा इक्ष्वाकु कुलमें अपना जन्म बताकर कहने लगे ॥ २ ॥ कि हम क्षत्रियहैं और जो धर्म क्षत्रियोंके हैं वहभी हम सब करतेहैं, इस समय हम वनमें आयेहैं इस बातको तू जान; हम लोगभी तुझको जाननेकी इच्छा करतेहैं कि तू कौनहै ? और किस कारण इस दंडकारण्यमें विचरण करताहै ? ॥ ३ ॥ तिसके पीछे विराध राक्षस उन सत्यपराक्रम करनेवाले श्रीरामचंद्रजी से बोला कि राम! मैं अपना वृत्तान्त कहताहूं श्रवण करो ॥ ४ ॥ मैं जव नामक राक्षसका पुत्रहूं मेरी माताका नाम शतह्रदाहै इस पृथ्वीके बीच सब राक्षस हमको विराध नामसे पुकारा करतेहैं ॥ ५ ॥ मैंने तपस्या करके ब्रह्माजीके प्रसादसे किसी शस्त्रद्वारा हम न मारे जांय न हमारे अंगही कट टूटसकें न हम मारे जांय ऐसा वरदान पायाहै ॥ ६ ॥ अतएव तुम लोग युद्धकी वासना छोड शीघ्रतासे इस स्त्रीको यहीं पर त्याग कर जिस स्थानसे आये हो वहींको चले जाओ क्योंकि मैं तुम्हारा जीव नहीं लेना चाहता ॥ ७ ॥ तब रामचंद्रजी क्रोधसे लाल २ नेत्र कर उस पाप निरत विकटाकार राक्षसको यह उत्तर देते हुए—रे अधम ! तुझको धिक्कारहै तेरा आशय और इच्छा बहुत बुरीहै तू निश्चयही मृत्युको खोजताहै सो अभी उसको प्राप्त होगा खडाहो; जबतक तू जीता रहेगा तब तक तेरा निस्तार हमसे नहीं ॥ ८ ॥ ९ ॥ अनन्तर श्रीरामचंद्रजीने अति शीघ्र धनुषपर बाण चढाकर बहुत सारे तेजवान उस राक्षसको लक्ष्य करके छोडे ॥ १० ॥ उन्होंने धनुषपर रोदा चढाय सुवर्णके पंखे लगे अतिवेग वान गरुड और पवनकी समान शीघ्रगामी सात तीर चलाये ॥ ११ ॥

वह सातों बाण मोरकी पूंछके समान चित्र विचित्र विराधकी देहको भेद-कर रुधिरमें लिपट अग्निकी समान चमकते हुये पृथ्वीपर गिरे ॥ १२ ॥ तब वह राक्षस बाणसे बिंधकर विदेहराजकुमारी सीताजीको पृथ्वीपर बैठालकर शूल उठा क्रोधमें भर रामचंद्र व लक्ष्मणजीकी ओरको दौडा ॥१३॥ वह बहुतही चिल्लाता हुआ इन्द्रध्वजके समान शूल धारण-कर मुख फैलाये यमराजकी समान शोभा धारण करता हुआ ॥ १४ ॥ उस राक्षसको आतादेख दोनों भाई उस यमराजकी समान विराध राक्षस पर दीप्तिमान बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १५ ॥ तब उस अति भयानक राक्षसने हँसकर खडे हो जँभाई ली, जब कि उसनें जँभा-ई ली तब उसके शरीरसे वह सब शीघ्रगामी बाण निकलकर पृथ्वीपर गिर पडे ॥ १६ ॥ तिसके पीछे वह विराध राक्षस बहुतही दुःखको प्राप्त होकरभी ब्रह्माजीके वरदान देनेसे मरा नहीं और जीता रहा व शूल उठा-कर श्रीराम लक्ष्मणके सामनेको दौडा ॥ १७ ॥ उस कालमें वह वज्र समान शूलका अग्रभाग आकाशको छूता अग्निकी समान रूप धारण करता हुआ। तब शस्त्र धारण करनें वालोंमें श्रेष्ठ रामचंद्रजीनें दो बाणोंसे उस शूलको काट डाला ॥ १८ ॥ जिस प्रकार वज्रसे कटकर मेरु पर्वतकी बडी शिला पृथ्वीपर गिरै वैसेही श्रीरामचंद्रजीके बाणसे टुकडे २ होकर विराध राक्षसका शूल पृथ्वीपर गिर पडा ॥ १९ ॥ जब उसका शूल कट गया तब राम और लक्ष्मण अति शीघ्र काटनेंको तैयार काले नागकी समान दो खड्ग ले उसके सामनेको दौडे और उसके समीप जा बल वीर्यसे खड्ग उसके ऊपर प्रहार करने लगे ॥ २० ॥ तब वह राक्षस उन दोनों नर श्रेष्ठों करके अधमरासा होकर अपनें दोनों हाथोंसे दोनोंको पकड़ यह सोचने लगा कि इनको कहीं दूर ले जाकर पटक २ मारडालूं ॥ २१ ॥ तबतकभी उस राक्षसका शरीर नहीं कांपा तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी उस राक्षसके मनकी बातको जानकर लक्ष्म-णजीसे बोले कि भला होगा यह राक्षस अपनें कंधोंपर चढाकर इस मार्गमें चले ॥ २२ ॥ हे सुमित्रानंदन ! यह राक्षस जहां हमको ले जानेकी इच्छा करताहै वहां ले जावे। क्योंकि वह जिस रास्तेपर हमें लिये जाताहै वही हमारे जानेका मार्गहै ॥ २३ ॥ उस अतिबलवान विराध

राक्षसनें अपने बल द्वारा राम और लक्ष्मणको दो बालकोंकी समान अपनें दोनों कंधोंपर उठा लिया ॥ २४ ॥ फिर वह उन दोनों जनोंको कंधोंपर बैठाल कर भयानक बनकी ओर चिल्लाता हुआ वह निशाचर दौडने लगा ॥ २५ ॥

वनंमहामेघनिभंप्रविष्टोद्रुमैर्महद्भिर्विविधैरुपेतम् ॥ नानाविधैःपक्षिकुलैर्विचित्रंशिवायुतंव्यालमृगावकीर्णम् ॥ २६ ॥

फिर वह राक्षस अनेक २ भांतिके वृक्ष लगे, विविध प्रकारके पक्षियोंके समूहसे मनोहर शृगालों करके युक्त चीते व्याघ्रों सर्पोंसे भरे और महा मेघकी समान निबिड वनमें प्रवेश करता हुआ ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे तृतीयः सर्गः ॥३ ॥

चतुर्थः सर्गः ॥

ह्रियमाणौतुकाकुत्स्थौदृष्ट्वासीतारघूत्तमौ ॥ उच्चैःस्वरेणचुक्रोशप्रगृह्यसुमहाभुजौ ॥ १ ॥

जब विराध रघुनंदन रामचंद्र और लक्ष्मणजीको हरण करके ले चला यह देखकर सीताजी अपनी बडी २ बाहें उठाकर बडे जोरसे रोय २ विलाप करनें लगीं ॥ १ ॥ और बोलीं कि हा ! यह भयंकर आकार वाला राक्षस साधु स्वभाववाले, सत्यमें रत, पवित्र, दशरथकुमार श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजीको हरे लिये जाताहै ॥ २ ॥ कोई चीता व व्याघ्र भेडिया इकली पाकर हमको खा जायगा तिससे हे राक्षसोंमें श्रेष्ठ ! हम तुमको नमस्कार करतीहैं कि तुम इन दोनोंको छोडदो हमें खालो ॥३॥ बल वीर्यवाले रामचंद्र और लक्ष्मणजीनें जानकीजीके ऐसे दीन वचन सुनकर उस दुरात्मा विराधके मार डालनेंमें बडी जलदीकी ॥ ४ ॥ सुमित्रानंदन लक्ष्मणजीनें उस भयानक राक्षसका बांया हाथ और श्रीरामचंद्रजीनें शीघ्रतासे उसका दहना हाथ तोड डाला ॥ ५ ॥ जब दोनों हाथ टूट गये तब मेघ वर्ण विराध भग्नचित्तहो मूर्छाको प्राप्त होकर उसी समय पृथ्वीमें गिर पडा तब ऐसा बोध हुआ मानों कोई पर्वत

वज्रकी चोटसे फटकर पृथ्वीपर गिरा ॥ ६ ॥ जब वह गिर गया तब श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजीनें लात मुक्की घूसोंसे उसको खूब मारा और वारंवार पृथ्वीपर उठा २ कर पटकनें लगे और फिर बहुतही घसीटा ॥ ७ ॥ वह विराध पहलेभी रामचंद्रजीके बहुत बाणोंसे विधा और खड्गके प्रहारसे शरीर छिन्न भिन्नभी हुआथा और इस समय वार २ पृथ्वीपर पटकाभी गया परन्तु तौभी नहीं मरा क्योंकि ब्रह्माजीका वरदानथा ॥ ८ ॥ दीनको शरणदेनेवाले श्रीरामचंद्रजी पर्वतकी समान विराध राक्षसको सबही प्रकारसे अवध्य देख लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ९ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! इस राक्षसने ऐसी तपस्याकीहै कि शस्त्रकी सहायतासे बींधकर इसको कोईभी नहीं जीत सकता, अतएव इसको जीता हुआही पृथ्वीमें गढाकर दाबे देतेहैं ॥ १० ॥ हे लक्ष्मण ! तुम इस समय हाथीकी समान प्रचंड स्वभाववाले इस राक्षसके लिये वनमें एक अति बडा गढा खोदो ॥ ११ ॥ वीर्यवान लक्ष्मणजीको इस प्रकार गढा खोदनेंकी आज्ञा देकर श्रीरामचंद्रजी अपनें चरणसे उस राक्षसका गला दाबकर खडे रहे ॥ १२ ॥ इस समय निशाचर विराध पुरुष श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीके यह वचन श्रवण करके विनय सहित यह बोला ॥ १३ ॥ हे पुरुष सिंह ! मैं आपके इन्द्रतुल्य पराक्रमसेही अधमरा हो गयाहूं, हे नरश्रेष्ठ मैंनें अबतक अज्ञानसे आपको नहीं पहँचाना ॥ १४ ॥ हे तात ! इस समय जाना कि आप श्रीरामचंद्रजीहैं सती कौशल्याजी आपको पाकर श्रेष्ठ पुत्रवती हुईहैं और इन महाभाग्यवती जानकी और परम कीर्तिमान् लक्ष्मणजीकोभी मैंने भली भांति पहचान लिया ॥ १५ ॥ मैं पहले तुम्बुरु नाम गन्धर्वथा; विश्रवाके पुत्र कुबेरजीनें हमको शाप दिया बस उसी शापके वश हम यह पापी निशाचर योनिको प्राप्त हुए ॥ १६ ॥ जब उन्होंनें हमको शाप दिया तब मैंने बहुत विनय करके प्रसन्न किया तब महायशवाले वैश्रवणजीनें हमसे कहा कि जब दशरथजीके पुत्र रामचंद्रजी युद्धमें तुम्हारा वध करेंगे ॥ १७ ॥ तब फिर तुम गन्धर्वका शरीर पाकर स्वर्गमें आओगे, और शाप उन्होंने इसकारण दियाथा कि मैं समय पर उनकी सेवामें नहीं उपस्थित हुआथा तब उन्होंने अतिशय क्रोधारूढ होकर यह शाप दिया कि राक्षस होजा, ॥ १८ ॥ और

उनकी सेवामें न पहुँचनेंका यह कारणथा कि मैं रंभा अप्सरापर मोहित हो रहाथा तब राजा वैश्रवणनें मुझको यह शापदिया, सो अब मैं तुम्हारे प्रसादसे इस घोर शापसे छूट गया ॥ १९ ॥ हे परंतप ! अब मैं अपनें स्थानको जाताहूं आपका भलाहो कि हमको इस शापसे छुटाया अब ऐसा कीजिये कि यहांसे छैः कोशकी दूरीपर महा प्रतापी शरभंग नाम महात्मा रहतेहैं ॥ २० ॥ उन महर्षिका तेज सूर्यके समानहै आप उनके पास शीघ्र जाइये वह आपका कल्याण शीघ्रही करेंगे ॥ २१ ॥ हे रामचंद्रजी ! अब हमें गढेमें डालकर कुशल पूर्वक चले जाइये, गढेमें दबनाही मरनेंके पीछे राक्षसोंका सनातन धर्महै ॥ २२ ॥ जोकि मरनेंके पीछे गडहा खोदकर दाब दिये जातेहैं उनको अक्षय लोकोंकी प्राप्ति होतीहै, बाणसे पीडित महा बलवान विराध रामचंद्रजीसे यह कह ॥ २३ ॥ देहको त्यागकर स्वर्गको प्राप्त हुआ, श्रीरामचंद्रजीनें राक्षसके ऐसे वचन सुनकर लक्ष्मणजीको आज्ञादी ॥ २४ ॥ कि हे लक्ष्मण ! तुम इस वनके बीच प्रचंड हाथीकी समान भीम कर्म करनें वाले राक्षसके दाबनेंको एक बहुत बडा गडहा खोदो ॥ २५ ॥ लक्ष्मणजीको गढहा खोदनेकी आज्ञा देकर वीर्यवान रामचंद्रजी स्वयंभी अपनें पैरसे विराधका गला दबाकर खड़े रहे ॥ २६ ॥ फिर लक्ष्मणजीनें खन्ता लेकर महात्मा विराधके निकटही एक बडा गढहा खोदा ॥ २७ ॥ फिर रामचंद्रजीनें गधेकेसे कान जिसमें लगे हुएहैं ऐसे विराधके मस्तक परसे अपना चरण हटालिया और उसको उठाकर उस गढेमें डाल दिया उस समय विराध अति घोर शब्दसे चिल्लानें लगा ॥ २८ ॥ युद्धमें दृढचित्त और सत्य विक्रम करने वाले श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजी दोनोंने हर्ष सहित विकटाकार उस बड़े राक्षसको संग्राममें पराजय, और अपनी भुजाओंके बलसे उठाकर उस रोते हुएको गढहेमें डालकर पाट दिया ॥ २९ ॥ सब कुछ जाननेंमें चतुर वह दो नर श्रेष्ठ तीखे बाण व खड्गसे असुर विराधका संहार न होते देखकर बुद्धिके प्रभावसे गडहे में उसके मरनेका उपाय जानकर और उसमें ही उसको डालकर वध करते हुए ॥ ३० ॥ श्रीरामचंद्रजीनें जिस प्रकार अपनें प्रयोजनानुसार विराधको मृत्युके मुखमें डालनेका अभिलाष

किया, काननचारी विराधनेंभी वैसेही अपने प्राण त्यागनेंकी कामनासे स्वयं रामचंद्रजीसे कहाथा कि तुम शस्त्रसे हमको नहीं मार सकोगे ॥ ३१ ॥ रामचंद्रजीने विराधके ऐसे वचन सुन उसको गढहेमें दाबनेका विचार किया, तिसके पीछे उस गढेमें डालनेंके समय विराध ऐसा घोर चिल्लायाकि उस शब्दसे सब वन और वह गढा एक साथही भर गया ॥ ३२ ॥

प्रहृष्टरूपाविवरामलक्ष्मणौविराधमुर्व्यांप्रदरे निपात्यतम् ॥ ननंदतुर्वीतभयौमहावनेदिविस्थितौचंद्रदिवाकराविव ॥ ३३ ॥

इस प्रकार महावनमें श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजी उस विराध राक्षसको पृथ्वीमें पाट पूटकर दोनोंही एक प्रकार हर्षसे भर खिलगये और भयहीन होकर उस समय वह दोनों जन आकाशमें उदय हुए सूर्य चंद्रमाकी समान दीतिमान होनें लेग ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे चतुर्थःसर्गः ॥ ४ ॥

पञ्चमः सर्गः ॥

हत्वातुतंभीमबलंविराधंराक्षसंवने ॥ ततःसीतांपरिष्वज्यसमाश्वास्यचवीर्यवान् ॥ १ ॥

तत्पश्चात् वीर्यवान श्रीरामचंद्रजीनें भीमबलवाले राक्षसको मारकर सीताजीको प्रेम सहित लपटाय बहुत समझाया बुझाया ॥ १ ॥ और तेजसे दीतिमान अपने छोटे भाई लक्ष्मणजीसे बोले कि यह वन स्वभावसे ही दुर्गम और कष्टका देने वालाहै। इससे पहले कभी इस भांतिका वन हम लोगोंनें नहीं देखा ॥ २ ॥ तिससे शीघ्रही तपोधन शरभंगजीके आश्रमको चले चलो यह कहकर श्रीरामचंद्रजी शरभंगजीके आश्रमकी ओर को चले ॥ ३ ॥ वहां पहुँच कर तपोबलसे जिनकी आत्मा शुद्ध हुई है, देवताओंकेसा प्रभाव जिनमें है ऐसे महर्षि शरभंगजीके निकट एक बडे अचरजकी बात रामचंद्रजीनें देखी ॥ ४ ॥ कि सूर्यकी अग्निकी प्रभाके समान देवराज इन्द्र अपने शरीरकी प्रभासे

प्रकाशित देवता ओंके साथ श्रेष्ठ रथ पर चढेहैं ॥ ५ ॥ उनका रथ पृथ्वीमें न खडा होकर आकाश मार्गमें ही टिकाहै उनके सब गहनों-मेंसे चमक निकल रही और पहरनेंके वस्त्र बहुतही उजलेथे ॥ ६ ॥ वैसेही वस्त्राभूषणोंसे सजे हुए औरभी अनेक महात्मा उनकी पूजाकर रहेहैं रामचंद्रजीने दूरसे देखाकि इन्द्रका सूर्यकी समान प्रभावाला हरित वर्ण व श्याम वर्णके घोडे जिसमें जुतरहे ऐसा रथ अन्तरिक्षमें खडाहै ॥ ७ ॥ जिसकी दीप्ति दुपहरियाके सूर्यकी समान पाण्डु वर्णके वादलकी समानहै उज्वल चंद्र मंडलकी समान गोल ऐसे रथको श्रीरा-मचंद्रजीने देखा ॥ ८ ॥ उसमेंका छत्र बहुतही उज्वलहै उस पर चित्र विचित्र मालायें लटक रहीहैं फिर चामर व्यजन देखे जिनमें सुवर्णकी दंडी लग रहीथी जो वडे कीमती और वडे श्रेष्ठथे ॥ ९ ॥ दो उत्तम स्त्रियें छत्र और चमरको धारण किये इन्द्रजीके मस्तक पर घुमातीथीं बहुत सारे गंधर्व, देवता, सिद्ध, और परमर्षि गण एक साथ मिल-कर ॥ १० ॥ श्रेष्ठ वचनोंसें उन देवराज इन्द्रकी स्तुति कर रहेथे उस कालमें इन्द्रजी महर्षि शरभंगजीके साथ वार्त्तालाप करनेंमें लगे हुएथे ॥ ११ ॥ श्रीरामचंद्रजी उन्हें देख उनके रथको बता भाई लक्ष्म-णको अचरजके सहित वह दिखाकर कहने लगे ॥ १२ ॥ हे भइया! देखो, परम दीप्तिमान, श्रीयुक्त, सूर्यकी समान देदीप्यमान यह विचित्र रथ अन्तरिक्षमें टिका हुआ शोभा पारहाहै ॥ १३ ॥ हमनें पहले जो शत यज्ञ करने वाले इन्द्रजीके घोडोंकी जो वार्त्ता सुनीथी, सो यह अन्तरिक्षमें टिके हुए, निश्चय वही घोडे होंगे ॥ १४ ॥ हे पुरुषसिंह! इस रथके चारों ओर जो सैकडो खड्ग हाथमें लिये, कुंडल पहरे युवा पुरुष खडेहैं ॥ १५ ॥ जिन सबकीही छाती वडी चौडीहै, वाहें परिघकी समान विशाल हैं, पहरनेंके कपडे जिनके लालहैं, जो लोग कि व्याघ्रकी समान दुर्द्धर्षहैं, अर्थात् उनके पास कोई नहीं जा सकता ॥ १६ ॥ जिन सबोंके ही गलेमें जलती हुई अग्निकी समान हार शोभा पारहेहैं और पच्चीस २ वर्षकी होसी उमर जान पडतीहै ॥ १७ ॥ यह सब पुरुष श्रेष्ठ जिस प्रकार कि प्रियदर्शन जान पडतेहैं, वैसेही सब देवता गण ऐसे रूप व उमर वाले जान पडा करतेहैं, व इनका शरीर सदा ऐसाही

रहता कि मानों पचीस वर्षहीकी अवस्थाहै ॥ १८ ॥ तिससे हे लक्ष्मण ! वैदेहीजीके सहित यहां पर एक मुहूर्त्त भरतक तुम टिके रहो तब तक कि हम स्पष्ट २ यह नजान आवें कि रथवाले द्युतिमान यह तेजस्वी पुरुष कौनहैं ? ॥ १९ ॥ लक्ष्मणजीसे यह कहकि तुम यहीं टिके रहो रामचंद्रजी शरभंगजीके आश्रमको गमन करने लगे ॥ २० ॥ श्रीरामचंद्रजीको आते हुए देखकर शचीनाथ इन्द्रजी शरभंगजीसे विदाले अनुचर देवताओंसे बोले ॥ २१ ॥ यह रामचंद्रजी इस ओरको चले आतेहैं, सो जबतक कि यह हमसे कुछ बोल सकें तिससे पहलेही तुम हमको और जगह ले चलो जिस्से यह हमको देख न सकें ॥ २२ ॥ इनको अभी और लोकोंके न करने योग्य बडा कठिन विशेष भारी कार्य करना पडेगा। जबकि यह राक्षसको जीतकर कृतकार्य होंगे तब इनके दर्शन करैंगे जो अभी दर्शन करें तो न मालूम रावण यह वृत्तान्त जानकर क्या कुछ उपद्रव कर उठावे ॥ २३ ॥ तिसके पीछे वज्रधारी इन्द्रजी महर्षि शरभंगजीसे आज्ञाले और उनका विशेष संन्मान करके घोडे जुते हुए रथपर बैठकर स्वर्ग चलेगये ॥ २४ ॥ जब सहस्राक्ष इन्द्रजी चलेगये तब रामचंद्रजी भ्राता और भार्या सीताजीके सहित अग्निहोत्रमें बैठे हुए शरभंगजीके समीप आये ॥ २५ ॥ राम लक्ष्मण और सीताजी सबनेही उनके दोनों चरण पकडे तब शरभंगजीने उनको टिकनेके लिये स्थान बतादिया और भोजनादिके लिये निमंत्रणभी करदिया और बैठनेको कहा तब श्रीरामचंद्रजी सीताजी लक्ष्मणजी वहां पर बैठे ॥ २६ ॥ तिसके पीछे रघुनंदन रामचंद्रजीने शरभंगजीसे इन्द्रके वहां आनेका कारण पूछा तब शरभंगजीने इन्द्रके आनेका सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २७ ॥ और बोले हे राघव ! यह वरदाता इन्द्रजी हमको ब्रह्मलोकमें लेजानेकी इच्छासे यहां आयेथे हमने उग्र तप करके उस लोक को जीत लियाहै कि जिसका जीतना बिना परमात्माके भजन किये बहुत दुर्लभहै ॥ २८ ॥ परन्तु हे पुरुषसिंह श्रीरामचन्द्रजी ! आप निकटही आगयेहैं यह जानकर आप सरीखे प्रिय पाहुनेके साथ बिना मिले ब्रह्मलोकको नहीं गया ॥ २९ ॥ हे पुरुषव्याघ्र ! आपही परम धर्मनिष्ठ और महात्माहैं

सो हमारे मनमें यहहै कि आपसे मिलकर फिर स्वर्ग, या ब्रह्मलोक कहींको चले जाँयगे ॥ ३० ॥ हे नरश्रेष्ठ ! हमने स्वर्ग और ब्रह्मलोक इत्यादि जितनें भर शुभ और अक्षय लोकहैं सबहीको जय कर लियाहै सो अपनी तपस्यासे जीते हुए वह सब लोकही हम आपके अर्पण करते हैं आप उनको ग्रहण कीजिये ॥ ३१ ॥ महर्षि शरभंगजीनें जब इस प्रकार कहा तब सब शास्त्रोंके जाननेवाले पुरुषश्रेष्ठ रामचन्द्रजी उनसे बोले ॥ ३२ ॥ हे महामुने ! यदि आप कहैं तो जो लोक आपने जीतेहैं हम उन सबको यहीं बुलादें परन्तु इस वनमें आपकी आज्ञा लेकर हम वसना चाहतेहैं सो बताइये कि कौनसे स्थानमें वासकरें ॥ ३३ ॥ इन्द्रकी समान बलवान् रघुनंदन श्रीरामचन्द्रजीनें जब इस प्रकार कहा तब फिर महापंडित शरभंगजी बोले ॥ ३४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! इस वनमें सुतीक्ष्ण नामक परम तेजस्वी धार्मिक और जितेन्द्रिय एक महर्षि वास करतेहैं वह तुम्हारा भला करेंगे और रहनेको स्थानभी बतावेंगे ॥३५॥ और यह जो पुष्पों करके शोभित मन्दाकिनी नदी पूर्वकी ओर को बह रहीहै सो इसके किनारे २ ही चले जाइये बस महर्षि सुतीक्ष्णका आश्रम आजायगा ॥ ३६ ॥ हे पुरुषशार्दूल ! वहां जानेका यह मार्ग दृष्टि आताहै हेतात ! सर्प जिस प्रकार पुरानी केंचलीको छोड़कर चला जाताहै वैसेही हमभी इस समय यह पुराना देह छोड़ेंगे आप एक मुहूर्त्त तक हमारे ऊपर दृष्टि करके इस स्थानपर खडे रहिये ॥ ३७ ॥ यह कहकर परम तेजस्वी शरभंगजी यथाविधि अग्निमें ईंधन लगाय मंत्र पढ घृतसे आहुतिदे उसमें प्रवेश करते हुए ॥ ३८ ॥ भगवान् अग्नि-जीने क्षणमात्रमेंही उन महात्मा शरभंगजीके समस्त रुवें, केश, हड्डी, मांस रुधिर और पुरानी खाल इत्यादि जलाडाली ॥ ३९ ॥ तब शरभंगजी साक्षात् अग्निकी समान मूर्त्तिमान कुमारका रूप धारण कर अग्निके ढेरसे निकल कर शोभा पाने लगे। और उनका पहला रूप जाता रहा ॥ ४० ॥ तिसके पीछे वह अग्निहोत्र करनेवाले महात्मा ऋषिगणोंके और देवताओंके सब लोकोंको नांघकर ब्रह्मलोकको चले गये४१॥

ददर्शह ॥ पितामहश्चापिसमीक्ष्यतंद्विजंननं
दसुस्वागतमित्युवाच ॥ ४२ ॥

वहां जाकर पुण्य कर्म करने वाले ब्राह्मण श्रेष्ठ शरभंगजी अनुचर वेष्टित पितामह ब्रह्माजीके दर्शन करतेहुये ब्रह्माजीने भी उन द्विजश्रेष्ठके दर्शनकर उनको अपने धोरे बिठा कुशल प्रश्नकर सब वृत्तान्त पूछा॥४२॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे पंचमः सर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठः सर्गः ॥

शरभंगेदिवंप्राप्तेमुनिसंघाःसमागताः ॥
अभ्यगच्छंतकाकुत्स्थंरामंज्वलिततेजसम् ॥ १ ॥

शरभंगजी जब ब्रह्मलोकको चले गये, तब दंडकवनवासी मुनिगण इकट्ठे होकर तेजसे देदीप्यमान रामचंद्रजीकी शरणमें आये ॥ १ ॥ उनमें वैखानस जोकि प्रजापतिके नखोंसे उत्पन्न हुएथे, वालखिल्य जो रेतसे उत्पन्न हुएहैं कुछ सम्प्रक्षथे जो परमात्माके चरणोंके धोनेसे हुएथे कुछ मरीचिपथे जो सूर्य या चंद्रमाकी किरणकोही पीकर रहते कुछ अश्मकुट्टथे, जो पत्थरसे कूट २ कर कच्चाही अन्न भक्षण करते, कुछ पत्राहार तापसथे जो केवल पत्तेही भोजन करते ॥ २ ॥ कुछ दन्तोलूखलीथे जिनके दांतही ओखलीकी समानथे कुछ उन्मज्जकथे जो सदा कंठतक जलमें डूबे रहते बहुत सारे गात्रशय्यथे जो विना बिछाये पृथ्वीपरही सोते, बहुत अशय्यथे जो सोतेही नहीं कुछ बिछातेही नहीं वैसेही पृथ्वीपर पडे रहतेथे, बहुत अनवकाशकथे, जिनको वेदाध्ययन और पूजा पाठ करनेसे छुट्टीही नहीं मिलतीथी ॥ ३ ॥ बहुतसे मुनि जलाहारीथे जो जलही पीकर रहते कुछ वायु भोगी जो केवल हवाही खाकर जीते, जो आकाशनिलयथे जो बिना ऊपर कुछ छाये हुये खुले मैदानमें पडे रहते कुछ स्थण्डिलशायी जो पृथ्वीहीपर पडे रहते ॥४॥ कुछ ऊर्ध्ववाहु जो कि सदा ऊपरही को हाथ उठाये रहते, कुछ दान्तथे जिनकी इन्द्रिय सदा अपने २ समय पर ही अपनी २ वासनाको चाहतीं, कुछ ऋषि ऐसेथे जो सदा गीले वस्त्र पहरे रहते ऐसे अर्द्धपट वासर, बहुत जपी जो सदा जप किया करते कुछ तपोनिष्ठथे जो सदा तपही किया करके

भगवान्का ध्यान किया करते । कुछ पंच तपानुष्ठाईथे जो गरमियोंमें पंचाग्नितापा करतेथे ॥ ५ ॥ यह जितने भर ऋषि लोगथे सब पर ब्राह्मी श्री विराजमानथी, सबके चित्त दृढ योगाभ्यासमें लग रहेथे, यह सब तपस्वी गण शरभंगजीके आश्रममें आकर रामचन्द्रजीके शरणापन्न हुए ॥ ६ ॥ इस प्रकार धर्मात्मा ऋषि लोग सब वहां आकर धार्मिक श्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजीसे कुशल प्रश्न पूछकर बोले ॥ ७ ॥ हे परम धर्मज्ञ ! तुम रथी गणोंमें श्रेष्ठहो, इक्ष्वाकु कुलके मध्यमें प्रधानहो, इन्द्रजी जिस प्रकार संसारकी रक्षा करतेहैं वैसेही तुमभी सब लोगोंके रक्षा करताहो ॥ ८ ॥ आप यश और विक्रम द्वारा तीनों लोकोंहीमें विख्यात होगयेहैं पितृ व्रतत्व सत्य वचन और सर्वांगसे पूर्ण धर्म तुममें टिकेहैं ॥ ९ ॥ हे महात्मन् ! आप धर्मके जाननेवाले और धर्म प्रियहैं, अतएव नाथ ! हम प्रार्थनावान् होकर आपसे जो कुछ कहें सो उसके लिये क्षमा करें ॥ १० ॥ हे नाथ ! जो राजा प्रजासे पैदावारीका छठवाँ हिस्सा लेतेहैं और फिरभी प्रजाको पुत्रकी समान पालन नहीं करतेहैं उन नरपतियोंको महा अधर्म होताहै ॥ ११ ॥ हे रामचन्द्रजी ! जो सदा यत्न करके और सावधान होकर अपनें अधिकारमें वास करती हुई प्रजाको अपने प्राणोंकी समान, या प्राणोंसेभी अधिक प्रिय अपने पुत्रोंकी समान सदा रक्षा करतेहैं ॥ १२ ॥ वह महीपाल इस लोकमें बहु वर्ष व्यापिनी स्थाई कीर्त्ति प्राप्त करके अन्त समय ब्रह्मलोकमें जाकर विशेष आदर मान पातेहैं ॥ १३ ॥ ऋषि मुनि लोग कंद मूल फल खाकर जो परम धर्म बटोरतेहैं, सो धर्मानुसार प्रजाकी रक्षा करनेंवाले राजाको उस धर्मका चौथा भाग प्राप्त होताहै ॥ १४ ॥ सो वही यह महान्वानप्रस्थ ऋषिगण जिनमें कि ब्राह्मणही अधिकहैं आप सा रखवाला पाकरभी नितान्त अनाथकी नांई राक्षसों करके मारे जातेहैं ॥ १५ ॥ विशुद्ध चित्तवाले मुनिगणोंके शरीर, समस्त वनमें अनेक प्रकारके भयानक राक्षसोंसे मारे जाकर जहां तहां पडेहैं ॥ १६ ॥ हम यह बात कुछ मिथ्या नहीं कहते आप स्वयंही आकर देख लीजिये कि गंगा और मंदाकिनीके तीरपर बसनेवाले और चित्रकूट निवासी बहुत सारे मुनिलोग राक्षसोंसे महा दुःख पारहेहैं उन मुनिलोगोंका नाश हुआ जाताहै ॥ १७ ॥ भयंकर कर्म

करनेवाले राक्षसगण तपस्वी लोगोंका नाश करतेहैं सो यह दुःख हम लोगोंपर नहीं सहा जाता ॥ १८ ॥ तिससे हे शरण्य! हम आश्रय लेनेंके लिये आपके निकट आयेहैं हे श्रीरामचन्द्रजी! आप हम लोगोंकी रक्षा कीजिये। क्योंकि निशाचर गण हम लोगोंका नाश किये देतेहैं ॥ १९ ॥ हे राजकुमार! इस पृथ्वीपर आपके सिवाय हमारी कोई गति नहींहे हे रघुकुलचूडामणि! राक्षसोंके हाथसे हम सबकी आप रक्षा करें ॥ २० ॥ धर्मात्मा काकुत्स्थनंदन श्रीरामचन्द्रजी उन तपस्वी ऋषि लोगोंकी ऐसी विपद उनके मुखसे सुनकर सबसे बोले * ॥ २१ ॥ कि हमसे इस प्रकार कहनेकी आपको कुछ अवश्यकता नहींहै, हम तो आप लोगोंकी आज्ञाके पालन करनेवालेहैं सो केवल आप अपनेही कार्य करनेंको हमें चाहे जिस वनको भेज दीजिये ॥ २२ ॥ जबकि हम इस वनमें आयेहैं तब आप लोगोंको जो डर राक्षसोंसे है उसहीको मिटानेंके अर्थ व पिताजीकी आज्ञा पालनेंके लिये इन दोनों कार्योंके अतिरिक्त और कार्य करनेको हम नहीं आये ॥ २३ ॥ हम जो इस वनमें आयेहैं सो आप लोगोंके कार्यको साधन करनेंहीके लिये आयेहैं क्योंकि जो पिताजीहीकी आज्ञा पालन करना होती तौ किसी और ही तरफको चले जाते अब हमारा वनवास सफल होजायगा क्योंकि आपका कार्यभी सधैगा ॥ २४ ॥ हमनें वनमें तपस्वी लोगोंके शत्रु राक्षसोंके संहार करनें का संकल्प कियाहै। तपोबलसे युक्त ऋषिलोग हमारे और हमारे भ्राता के बाहुबलको देखें ॥ २५ ॥

दत्त्वावरंचापितपोधनानांधर्मेधृतात्मासहल
क्ष्मणेन ॥ तपोधनैश्चापिसहायदत्तःसुतीक्ष्ण
मेवाभिजगामवीरः ॥ २६ ॥

धर्म धुरन्धर वीर रामचन्द्रजी तपस्वी लोगोंको ऐसा वरदानदे उन लोगों की पूजा प्राप्तकर और उन्हें साथले लक्ष्मणके सहित सुतीक्ष्ण ऋषिके आश्रमकी ओर चले * ॥२६॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०आर०षष्ठःसर्गः॥६॥

* चौपाई--आरत वचन सुनत रघुनायक। बोले वचन धरे धनुशायक।

* दोहा ॥ निशिचर हीन करौं महि, भुज उठाय प्रण कीन ॥ सकल मुनिनके आश्रमन जायजाय सुखदीन ॥

सप्तमःसर्गः ॥

रामस्तुसहितोभ्रात्रासीतयाचपरंतपः ॥
सुतीक्ष्णस्याश्रमपदंजगामसहतैर्द्विजैः ॥ १ ॥

शत्रुओंके तपानेवाले श्रीरामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मण, सीता और ब्राह्मणोंके साथ सुतीक्ष्णजीके आश्रममें आये ॥ १ ॥ शरभंगजीके आश्रमसे बहुत दूर चलकर मार्गमें बहुत सारी जलवाली विविध नदियोंको उतरकर सुमेरुकी समान ऊंचे एक निर्मल पर्वतको देखते हुए ॥ २ ॥ तिसके पीछे इक्ष्वाकुके वंश बढानेवाले प्रधान दो रघुवीर सीताजीके सहित अनेक प्रकारके वृक्ष जिसमें विराज रहे ऐसे वनमें प्रवेश करते हुए ॥ ३ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें उस घोर वनमें प्रवेश करके अनेक प्रकारके फल फूल वाले वृक्षोंके झुन्डसे घिरा हुआ जिसपर चीर और मालायें टँगरहीथीं ऐसा एक आश्रम देखा ॥ ४ ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजीनें वहां तप करनेंमें चित्त लगाये मलिन कमलके फूलोंकी माला धारण किये अथवा पाप दूर करनेंके निमित्त कमलासनसे बैठे हुये सुतीक्ष्णको देखकर उनसे यथाविधि संभाषण करके बोले ॥ ५ ॥ हे भगवन्! हमारा नाम रामचन्द्रहै आपके दर्शन करनेंके लिये यहां आयेहैं; अतएव हे धर्मज्ञ ! हे अक्षत-तपःप्रभाव-सम्पन्न महर्षे ! आप हमसे बोलिये ॥ ६ ॥ तब वह अति धीर सुतीक्ष्णजी ऋषि धार्मिकश्रेष्ठ रामचंद्रजीकी ओर देखते हुये दोनों बाहोंसे पकड उनको हृदयसे लगाकर बोले ॥ ७ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! तुम भले आये ? हे रघुश्रेष्ठ ! हे धार्मिकवर ! आपके पदार्पण करनेसे आज यह आश्रम सफल हुआ॥८॥ हे परमयशवाले श्रीरामचन्द्रजी ! हे वीर! हम आपके ही दर्शनकी अभिलाषा किये इतने दिन तक पृथ्वीमें रहे और देवलोकको नहीं गये ॥ ९ ॥ हमनें इन्द्रसे यह भी सुना है कि आप राज्य छोडकर चित्रकूट में आएहैं । हे काकुत्स्थ! यहां देवराज इन्द्रके आनेंका यह प्रयोजन था कि ॥ १० ॥ हमनें ऐसे पुण्य कर्म किये हैं कि जिनसे सब लोक जीतलिये सो देवोंके देव इन्द्रजी यही कहनें आयेथे कि आप इस लोकको छोडकर उन लोकोंमें वास कीजिये ॥ ११ ॥ सो हमें आपके दर्शनकी अभिलाषाथी इस्सें वहां नहीं गये अब हम प्रसन्न होकर आप-

को वरदान देते हैं कि आप हमारे प्रसादसे भ्राता लक्ष्मण और भार्या सीताजीके सहित जो कि हमनें तपस्यासे पायेहैं उन सब देवर्षियोंकरके सेवित लोकों में आनन्द से वस कर काल व्यतीत कीजिये ॥ १२ ॥ पुरन्दर इन्द्रजी जिस प्रकार ब्रह्माजी से बोलते हैं वैसेही आत्मज्ञानी श्री रामचन्द्रजी, कठोर तपके तेजसे प्रदीप्त मान सत्यवादी महर्षि सुतीक्ष्णजीसे बोले ॥ १३ ॥ हे महामुने! जब हम चाहेंगे तब आपही उन लोकोंको ग्रहण कर लेंगे इस समय हम यह प्रार्थना करते हैं कि इस समय इस वनमें हमारे रहनें को आप स्थान बतादीजिये ॥ १४ ॥ गौतम वंशीय महात्मा शरभंग जीके मुखसे हमने यह बात सुनी है कि आप सबही कुछ वृत्तान्त जानते हैं; और सब प्राणियों का हित साधन करनेंमें रतहैं ॥ १५ ॥ जगत् प्रसिद्ध महर्षि सुतीक्ष्णजीसे जब रामचन्द्रजीने ऐसा कहा तो वह अतिशय आनन्दित होकर मधुर वचन बोले ॥ १६ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! यही आश्रम बहुतही श्रेष्ठ है, इसमें अनेकानेक ऋषि लोग वसते हैं और कन्द मूल फल भी इस आश्रम में सब समय बहुत सारे मिला करते हैं अतएव तुम इस स्थानमें ही बसकर विहार करो ॥ १७ ॥ इस आश्रममें अनेक बडे २ शरीर वाले मृग गण आकर निडर हो इधर उधर सबको अपने रूपसे लुभाते हुए घूमा करते हैं, उनसे कोई नहीं बोलता, और फिर वहभी लौट जाते हैं॥१८॥ अतएव आप जानलें कि कुछ थोडा बहुत डर हैभी वह केवल पशु गणोंका ही भय है इसके सिवाय इस स्थानमें और कोई भय नहीं है महर्षिके ऐसे वचन सुन श्री रामचन्द्रजी ॥ १९ ॥ धनुष और शर ग्रहण करके उनसे बोले कि हे महाभाग ! उन आये हुए मृगके झुण्डोंको ॥ २० ॥ अपने पैने धारवाले बाणोंसे हम संहार कर डालेंगे परन्तु ऐसा करने से आपको कष्ट होगा सो इस्से हमें बडा कष्ट होगा ॥ २१ ॥ यह वचन सुन । ऋषिराज कुछ न बोले तब रामचन्द्रजीनें जाना कि मुनि मृगोंका वध नहीं चाहते तब उनसे बोले कि इस मृग बाधिक आश्रम पर बहुत दिनों तक रहनेंकी हमारी इच्छा नहीं है यह कहकर रामचन्द्र सन्ध्या करनें को गये ॥ २२ ॥ सायंकालकी

सन्ध्या करके श्रीरामचन्द्रजी वहीं सुतीक्ष्ण जीके आश्रम पर लक्ष्मण और जानकीजीके सहित बसे ॥ २३ ॥

ततःशुभंतापसयोग्यमन्नंस्वयंसुतीक्ष्णःपुरुष र्षभाभ्याम् ॥ ताभ्यांसुसत्कृत्यददौमहात्मा संध्यानिवृत्तौरजनींसमीक्ष्य ॥ २४ ॥

तिसके पीछे सन्ध्या होनेके पश्चात् जब रात्रि हो आई तब महात्मा सुतीक्ष्णजीनें आपही तपस्वियोंके भोजन करनें योग्य अन्न उन दो पुरुष श्रेष्ठोंको प्रदान किया और बहुत भांतिसे आदर भी करते हुए॥२४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० आ० सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ॥

रामस्तुसहसौमित्रिःसुतीक्ष्णेनाभिपूजितः ॥ परिणाम्यनिशांतत्रप्रभातेप्रत्यबुध्यत ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजी सुतीक्ष्ण करके इस प्रकार पूजे जाकर लक्ष्मणजीके सहित वह रात्रि इसी आश्रमपर व्यतीत करके प्रभात होते ही जागे ॥१॥ और सीताजीके सहित यथाकालमें उठकर श्री रामचन्द्र जीनें उस जल से स्नान करा व हाथ पैर धो जोकि कमलोंकी सुवाससे युक्तथा ॥ २ ॥ फिर श्रीरामचन्द्र लक्ष्मण और वैदेहीजी देवताओंके कालोचित विधानानुसार अग्नि आदि देवताओंकी पूजा उस तपस्वी सेवित वनमें करते हुए ॥ ३ ॥ और उदय होते हुए सूर्य भगवानके दर्शन कर निष्पापहो सुतीक्ष्णके निकट आकर विनीत मनोहर वचनसे बोले ॥ ४ ॥ हे भगवन् ! आपके निकट पहुनई पाकर हम इस रात्रिमें यहां बहुत सुखसे बसे अब हम दण्डकारण्यमें जांयगे इस कारण आपको अनुमति चाहते हैं क्योंकि यह ऋषि लोग हमको चलनें के अर्थ शीघ्रता करा रहे हैं॥५॥ दण्डकारण्य वासी पवित्र स्वभाववाले ऋषि लोगोंके समस्त आश्रम मण्डल दर्शन करनेंके लिये हमारी इच्छा हुई है सो हम उनको शीघ्र देखेंगे ॥ ६ ॥ अब इच्छाहै कि आप आज्ञा दे दें तो हम इन सब बिना धुँवेवाली अग्निके समान प्रभायुक्त सत्य निष्ठ तप करके जिन्होंनें

अपनी इन्द्रियोंको जीत लिया है ऐसे मुनिश्रेष्ठोंके साथ चले जांय ॥७॥ अन्याय करके प्राप्त हुई लक्ष्मी को पाकर जिस प्रकार पुरुषान पुरुषोंके संबंध छोड मनुष्य असह हो उठता है, सो सूर्यका ताप वैसा असह न होते २॥ ८ ॥ हम यहां से चलने की वासना करते हैं श्रीरामचन्द्रजोनें यह कह कर लक्ष्मण और सीताजीके साथ सुतीक्ष्णजीके चरणोंकी वन्दनाकी ॥ ९ ॥ मुनिश्रेष्ठ सुतीक्ष्ण जीनें चरण वन्दन करते हुए उन दोनों राम और लक्ष्मणजीको उठाकर गाढ आलिङ्गन किया और उनसे स्नेह साने वचन बोले ॥ १० ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजी और छायाके समान साथ चलनें वाली इन सीताजीके संग आप निर्विघ्न मार्गमें चले जांय ॥ ११ ॥ हे वीर ! योगमें जिनके चित्त लगे हुएहैं ऐसे दण्डकारण्यवासी इन सब ऋषियोंके रमणीय आश्रम देख आइये ॥१२॥ अनेक प्रकारके बहुत कंद मूल फल सहित फूले हुए वनोंमें जिनमें भले२ श्रेष्ठ मृग गण रहते हैं पक्षियोंके झुन्डके झुन्ड भरेहैं ॥ १३ ॥ जहां साफ जल वाली ताल तलैयोंमें कमल फूल रहेहैं और उन्हीं तालावों पर हंस और कारंडवादि पक्षी विराज रहेहैं ॥ १४ ॥ और इनके अतिरिक्त देखनेमें अति मनोहर पर्वतोंके झरने और जहां मोर शोर कर रहे हैं ऐसे वन भी आप देखेंगे ॥ १५ ॥ वत्स सौमित्रे ! गमन करो श्रीरामचन्द्रजी आपभी जांय, परन्तु इन सब आश्रमोंके दर्शन करके फिर भी इस स्थानमें आप लौट कर आवें ॥ १६ ॥ जब सुतीक्ष्णजी यह बोले तब श्रीरामचन्द्रजीनें कहा कि ऐसाही होगा यह कहकर लक्ष्मण जीके साथ सुतीक्ष्णजीको परिक्रमा कर जानेके लिये तैयार हुये ॥ १७ ॥ अनन्तर बडे २ नेत्रवाली सीताजीनें दोनों भाइयों को श्रेष्ठ तरकस धनुष और दो निर्मल खड्ग दिये जो कि रामचन्द्रजीने व लक्ष्मणजीनें खोलकर धर दियेथे ॥ १८ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी व लक्ष्मणजी दोनों शुभ तरकस बांध और दो शब्द सहित धनुष कांधेमें डाल यात्रा करनेके लिये आश्रमसे बाहर हुए ॥ १९ ॥

शीघ्रंतौरूपसंपन्नावनुज्ञातौमहर्षिणा ॥

प्रस्थितौधृतचापासीसीतयासहराघवौ ॥ २० ॥

रूपवान् दोनों रघुवीरोंने महर्षि सुतीक्ष्णजीकी आज्ञा पाकर धनुष बाण धारण करके सीताजीके सहित शीघ्र यात्राकी ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अ० अष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ॥

सुतीक्ष्णेनाभ्यनुज्ञातंप्रस्थितंरघुनंदनम् ॥
हृष्टयास्निग्धयावाचाभर्तारमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

रघुनंदन रामचंद्रजी जब सुतीक्ष्णजीकी आज्ञा लेकर यात्रा करते हुए तब सीताजी स्नेह साने मनोहर वचन श्रीरामचंद्रजीसे बोलीं ॥ १ ॥ यद्यपि आप अतिशय महात्माहैं परन्तु परम सूक्ष्म रूपसे विचार कर देखनेसे आप अधर्मको संचय करतेहैं इस समय कामजव्यसनसे निवृत होतेही यह अधर्म नहीं होगा ॥ २ ॥ कामज व्यसन तीन प्रकारके हैं मिथ्यावाक्य अर्थात् झूंठ बोलना व इस्से भी परम भारी और दो पापहैं ॥ ३ ॥ पर स्त्री गमन (पराई स्त्रीसे भोग करना) और विना वैरके ही वृथा प्राणीको मार डालना यह पाप बडे भारीहैं हे रघुनंदन! आपने कभी मिथ्या वचन नहीं कहा न कभी आप आगेको कहैंगे॥ ४ ॥ हे नरश्रेष्ठ और आप धर्मका नाश करनें वाला परस्त्री गमन नहीं करते सो हे नरनाथ! ना तो यह बात आपमें कभी हुई न होगी ॥ ५ ॥ आपने किसी कारण वश होकर मनके बीचमें भी पराई स्त्रीकी अभिलाषा नहीं की। हे राजकुमार! आप सदाही अपनी स्त्रीमें अनुरागी रहतेहैं॥६॥ आप धर्मात्मा और सच्ची प्रतिज्ञा करनेंवालेहैं पिताजीकी आज्ञा आप पालन कर रहेहैं धर्म और सत्य सब आपमेंही टिके हुएहैं ॥ ७ ॥ हे महाबाहो! जो लोग जितेन्द्रियहैं वह लोगही इन सब बातोंका पालन कर सकतेहैं। हे शुभदर्शन सब प्राणी आपकी जितेन्द्रियताको जानतेहैं ॥ ८ ॥ परन्तु विना अपराध प्राणियोंकी हिंसा करनेका जो यह भयानक तीसरा व्यसनहै इस समय वही व्यसन आपमें उपस्थित हुआहै ॥ ९ ॥ हेवीर! आपने प्रतिज्ञाकीहै कि दंडकारण्यवासी ऋषि

लोगोंकी रक्षा करनेके लिये युद्धमें हम राक्षसोंके प्राण संहार करेंगे ॥ १० ॥ इसीकारण आपने धनुष बाण ग्रहण करके लक्ष्मण सहित दण्डक नामसे जो वन विख्यातहै उसमेंको यात्रा की है ॥ ११ ॥ अतएव आपको यात्रा करते हुए देखकर और आपका अंगीकार पालन रूप व्रत जानकर आपके परलौकिक और ऐहिक सुखके विषयमें हमारे मनको बडी चिन्ता हो रहीहै ॥१२॥ हे वीर! दंडकारण्य का जाना हमें अच्छा नहीं लगता सो इसका कारणभी कहतीहैं आप श्रवण करें ॥ १३ ॥ हे महाराज! आप धनुष बाण ग्रहण करके भाईके सहित वनको जांयगे वहां पर जो आप किसी राक्षसको देख पावेंगे तो कहीं न कहीं अवश्यही बाण त्याग करेंगे ॥१४॥ निकट रक्खा हुआ काठ जैसे अ-ग्निके तेजको बढाताहै वैसेही यह धनुष जिसके पास रहताहै वहभी किसी न किसी पर चलायाही चाहताहै क्योंकि क्षत्रियोंके पास रहकर धनुष उनके बलको बढाताहै ॥ १५ ॥ हे महाबाहो! पहले कोई मृग पक्षियों करके युक्त पुण्यमय वनके बीच एक सत्यमें टिके हुए पवित्र आचरण करनेवाले तपस्वी रहतेथे ॥ १६ ॥ शचीपति इन्द्रजी इन ऋषिको तपस्यामें विघ्न करनेके लिये योद्धाका वेष बनाय खड्ग हाथमें लेकर उनके आश्रममें आये ॥ १७ ॥ और उस आश्रममें उस तपोनिष्ठ पवित्र मुनिके पास धरोहरकी भांति यह खड्ग रख कर चले गये॥ १८ ॥ मुनि-जी इस अस्त्रको पाकर इसकी रक्षा करनेके लिये बहुत यत्न करनेमें लगे और विश्वासघातक न बनना पडे इस कारण इस अस्त्रको संगही लेकर वनमें घूमने लगे ॥ १९ ॥ वह धरोहर वस्तुकी रक्षाकरनेमें इतना यत्न करते कि जब कहींसे कंद मूल फल लेनेके लिये जाते तोभी विना इस खड्गके गमन नहीं करतेथे ॥ २० ॥ सदा खड्ग संग लिये फिरनेसे सहज २ में मुनिका विश्वाश तप करनेसे हट गया और उनका स्वभाव कठोर होगया ॥ २१ ॥ तिसके पीछे वह उसी शस्त्रसे प्राणियोंको मारने लगे और मतवालेसे होगये और अधर्मसे घिर शस्त्र साथ रखने से अंत समय नरक को गये ॥ २२ ॥ शस्त्रको पास रखनेसे पहले ऐसा हुआथा इसही कारणसे पंडित लोग शस्त्र संयोगको अग्नि संयोगकी समान विका-रका हेतु कहा करतेहैं ॥ २३ ॥ हे प्राणनाथ! हम आपसे बहुत स्नेह

करतीहैं इस कारण आपको याद दिलादी कुछ हम आपको शिक्षा नहीं करती हे वीर! आप धनुष धारण करके ऐसा कार्य मत कीजिये ॥२४॥ निरपराध दंडकवासी राक्षसोंको मारनेंका विचार मत कीजिये हे वीर! विना अपराध किसी को भी वध करना आपको उचित नहीं है ॥ २५ ॥ वनमें विचरते हुए क्षत्रियोंका धनुष धारण करना निरपराध जीवोंको मारनेंके लिये नहीं वरन दुःखी लोगोंकी रक्षाही करनेके लियेहै ॥ २६ ॥ वनवासीको क्या शस्त्रधारण करना उचितहै ? तपस्वियोंमें क्या क्षत्रियोंका स्वभाव शोभा पाताहै? कहां शस्त्र? कहां वन? कहां क्षत्रिय धर्म? कहां तप? यह सब कर्म एक दूसरेसे विरुद्धहैं इससे वनका ही धर्म यहां पर वर्तना चाहिये ॥ २७ ॥ बराबर शस्त्रका व्यवहार करनेसे बुद्धि कादर और मलीन होजातीहै जब आप अयोध्याजीको लौट चलें तब फिर क्षत्रियोंके धर्मका आचरण कर लेना ॥ २८ ॥ आप राज्य परित्याग करके जो यहां पर ऋषियोंके धर्मका आचरण करेंगे तो हमारे श्वशुर दशरथजीकी प्रीतिभी आपमें अधिकहोगी। क्योंकि उन्होंनेभी यहीं आज्ञा दीहै कि मुनिवेष धारण कर वनमें वसो ॥ २९ ॥ धर्मसे ही अर्थका लाभ होताहै धर्मसे ही सुख उत्पन्न होताहै वरन धर्मसे ही सब कुछ प्राप्त होजाताहै इस कारण धर्मही संसारमें एक मात्र सार वस्तुहै अतएव आपभी धर्मका ही आचरण कीजिये ॥ ३० ॥ चतुर मनुष्य बहुत यत्नसे शरीरको कष्ट दे दुर्बल करके धर्मका लाभ करतेहैं; क्योंकि शरीरके सुख जनक उपायसे धर्म प्राप्त नहीं होता॥३१॥ हे प्रियदर्शन! तुम सदा शुद्ध चित्त होकर, तपोवनमें करने योग्य जो धर्मानुष्ठानहैं उनके करनेमें मन लगाओ त्रिभुवनके सूक्ष्मानुसूक्ष्म सब विषयही आपको विदितहैं तब फिर कौन धर्म विषयमें आपको समझा सकताहै ? ॥ ३२ ॥

स्त्रीचापलादेतदुपाहृतंमेधर्मंचवक्तुंतवकः
समर्थः ॥ विचार्यबुद्ध्यातुसहानुजेनयद्रो
चतेतत्कुरुमाचिरेण ॥ ३३ ॥

हमने केवल स्त्रियोंके स्वभावसे जो चंचलता होतीहै उसकेही वश

होकर ऐसा कहा इस समय अनुज लक्ष्मणके साथ विचार करके जो उचित समझा जाय, विलंब न लगाकर उसको कीजिये ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे नवमः सर्गः ॥ ९ ॥

दशमः सर्गः ॥

वाक्यमेतत्तुवैदेह्याव्याहृतंभर्तृभक्तया ॥
श्रुत्वाधर्मेस्थितोरामप्रत्युवाचाथजानकीम् ॥ १ ॥

पतिकी भक्ति करनें वाली मैथिली जानकीजीके ऐसे वचन कहनेंपर परम धर्मनिष्ठ रामचंद्रजी उनको सुनकर अपनेको भली भांति समाहृत जान उत्तर देते हुए ॥ १ ॥ हे धर्मज्ञ ! देवि जानकी ! तुमने स्नेह वचनसे क्षत्रिय कुलका धर्म बताकर जो कुछ कहा वह सबही हितकारी और बहुत अच्छाहै ॥ २ ॥ किन्तु देवी ! कोई दुःखित होकर वचन न सुनावे इसही कारण क्षत्रिय लोग धनुष धारण करतेहैं सो यह वार्त्ता कहकर तुमने स्वयंही अपने प्रश्नका उत्तर देलियाहै फिर भला हम और क्या उत्तरदें ॥ ३ ॥ दंडकारण्यके रहनेंवाले महातपस्वी ऋषि लोग दुःखित होकर स्वयंही यहां आकर हमको सबका शरण देनेवाला समझ हमारी शरण आये ॥ ४ ॥ अयि भीरु ! वह लोग नित्य फल मूल भक्षण करके वनमें वास करतेहैं परन्तु क्रूर कर्म करनेवाले राक्षसोंके उपद्रव करनेंसे वह मुनिगण सुख नहीं पा सकते ॥ ५ ॥ इसके सिवाय राक्षस नर मांस भोजी तो होतेहीहैं सो वैसे नर मांसोपजीवी भयंकर स्वभाववाले राक्षसोंसे अनेक मुनि लोग भक्षण किये गयेहैं ॥ ६ ॥ उनसे बचे कुचे दंडकारण्यवासी मुनि लोगोंने हमारे निकट आ हमसे यह सब दुःखका वृत्तान्त कहा तब हम उनके ऐसे वचन सुन ॥ ७ ॥ उनकी प्रतिष्ठा करते हुए उनसे बोले कि आप हम पर प्रसन्न हूजिये हमको बहुतही लज्जा आतीहै कि आपके ऐसे दुःखित वचन सुनें ॥ ८ ॥ क्योंकि आप लोग स्वभावसेही हम लोगोंके पूज्यहैं किन्तु इस समय आप हमारी शरणमें आये अनन्तर हमनें उनके सामनेही कहा कि हमें क्या करना होगा सो आज्ञा कीजिये ॥ ९ ॥ तब सबहीनें एकत्रहो मिलकर कहा राम ! दंडकारण्यमें बहुसंख्यक कामरूप निशाचरोंने एकत्र होकर अतिशय

सताना आरंभ कियाहै ॥ १० ॥ आप उनके हाथोंसे हमारा उद्धार कीजिये। हे अनघ! होम करनेके काल और पौर्णमासी अमावास्याके दिन जब हम यज्ञ करने लगतेहैं ॥ ११ ॥ तब वह मांसके खानेवाले राक्षस लोग आय२ कर हठ सहित यज्ञ विध्वंस करते और हमको सतातेहैं अतएव इन राक्षसोंसे व्याकुल महा तपस्वी लोगोंको ॥ १२ ॥ आप बचाइये उन लोगोंको हम पराजित नहीं कर सकते तपमें रत ऋषिगण इस प्रकार राक्षसोंके दुःख फंदमें फँसकर छुटकारा पानेकी वासनासे आपकी शरण लेतेहैं! आपही हम लोगोंके परम गतिहैं यद्यपि हमतपस्याके प्रभावसे स्वयंभी राक्षसोंका संहार कर सकतेहैं ॥ १३ ॥ तथापि बहुत कालकी बटोरी हुई तपस्याके क्षय करनेंको हमारा अभिलाष नहीं होता। हे रघुनंदन! तपस्या जैसे कि बहुत कष्टोंसे इकट्ठी होतीहै वैसेही इकट्ठा करनेंके समय इसमें अनेक विघ्नभी होतेहैं ॥ १४ ॥ इसी कारणसे राक्षस लोग खाभी लेतेहैं पर हम उनको शाप देकर नहीं मारते क्योंकि तपका फल शाप देनेंसे नहीं रहता तिस्से दंडकारण्यवासी राक्षसोंसे सताये हुए हम लोगोंकी ॥ १५ ॥ भ्राता लक्ष्मणके सहित आप रक्षा करें क्योंकि आपही हमारे रक्षा करताहैं जब हमने मुनियोंके ऐसे वचन सुने तब उनसे कहा कि आप लोगोंका पालन हम सब प्रकारसे करैंगे ॥ १६ ॥ हे जानकि! हमने दंडकारण्यवासी तपस्विगणोंकी यह वार्त्ता सुनकर उनकी रक्षा करनेकी प्रतिज्ञाकीहै सो प्राण रहते इस प्रतिज्ञाके पालन करनेमें किसी भांति विमुख नहीं होंगे ॥ १७ ॥ एक तो ऋपि गणोंके सामने प्रतिज्ञा फिर उसमें सत्यही हमाराभी परम अभीष्टहै। फिर भला हम इसके विपरीत कैसे कर सकतेहैं? हे सीते! तुम्हें, लक्ष्मणको और अपने प्राणकोभी हम त्याग कर सकतेहैं॥ १८ ॥ परन्तु प्रतिज्ञा करके विशेषतः ब्राह्मणोंके विषयमें सो हम कभी त्याग नहीं कर सकते तिस्से ऋषि लोगोंका पालन करना हमारा परम कार्यहै ॥ १९ ॥ ऋषि लोगोंके न कहनेपरभी जब कि सबही भांतिसे उन लोगोंकी रक्षा करना हमारा आवश्यकीय कार्यहै, फिर भला प्रतिज्ञा करके किस प्रकार उस कार्यसे विमुखहों। जो हो हे सीते! तुमने हमारे प्रति स्नेह और सौहार्दसे जो वचन कहे सोभी हमने जाने ॥ २० ॥ इस्से हम बहुत

संतुष्टहैं क्योंकि कोईभी कुप्यारे मनुष्यसे हितकारी वचन नहीं कहता। हे शोभने! तुमने हमसे अपने वंशके लायक उचित बचनही कहेहैं तुम हमारी धर्म चारिणीहो, हम तुमको प्राणसेभी अधिक प्यारा समझतेहैं २१॥

इत्येवमुक्त्वावचनंमहात्मासीतांप्रियांमैथिल
राजपुत्रीम् ॥ रामोधनुष्मान्सहलक्ष्मणेनज
गामरम्याणितपोवनानि ॥ २२ ॥

धनुष धारण किये हुए महानुभाव श्रीरामचंद्रजी जनक दुलारी सुकुमारी सीताजीसे इस प्रकारके वचन कहकर लक्ष्मणजीके सहित परम रमणीय तपोवनोंमें गमन करते हुए ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० आर० दशमः सर्गः ॥ १० ॥

एकादशः सर्गः ॥

अग्रतःप्रययौरामःसीतामध्येसुशोभना ॥
पृष्ठतस्तुधनुष्पाणिर्लक्ष्मणोनुजगामह ॥ १ ॥

श्रीरामचंद्रजी आगे, सुशोभित सीताजी बीचमें और लक्ष्मणजी धनुष धारण करके पीछे २ जाने लगे ॥ १ ॥ उन दोनों भाइयोंनें जानकीजीके सहित जानेके समय विविध भांतिके पर्वत, वन, नदी, तालाव आदि देखे ॥ २ ॥ सारस और चकवा, चकवी नदियोंके किनारे घूम रहे और कमल फूल फूले हुए जल मुरगावी आदिकों करके युक्त सरोवर देखे॥३॥ चीता, वाघ आदिकोंके झुन्डके झुन्ड, सुविशाल शींग जिनके ऐसे मदसे उनमद भैंसे वराह और वृक्षोंके वैरी हाथी ॥ ४ ॥ देखते दिखाते चले तिसके पीछे जब दिवाकर अस्ताचल सन्मुखीन हुए तब रामचंद्र लक्ष्मण व सीताजीने बहुत दूर चलकर एक योजनमें विस्तार जिसका ऐसा एक तालाव देखा ॥ ५ ॥ इस तालावमें हाथियोंके झुन्डके झुन्ड नहा रहे बहुत सारे लाल और श्वेत कमल फूल खिल रहे जल पक्षी सारस और हंस कल्लोलें कर रहेथे ॥ ६ ॥ और इसका जल अति निर्मल था श्री रामचंद्र लक्ष्मण व जानकीजीनें इस रमणीय सरोवरपर गीत और बाजेका शब्द सुना; परन्तु कोई गानें बजानें वाला दिखाई न दिया ॥ ७ ॥

महारथि श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणजी दोनों कौतूहलके वश होकर धर्म भूत नामक ऋषिसे पूछते हुए॥ ८ ॥ हे महर्षे ! यह बडे आश्चर्यका शब्द सुनकर हम सबकोही बडा कौतूहल हुआहै। अतएव इस घटनाका सविशेष समस्त वर्णन कीजिये ॥ ९ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें इस प्रकार कहा तब धर्मात्मा ऋषि तत्क्षण इस सरोवरके प्रभावका वर्णन करने लगे ॥ १० ॥ ऋषि बोले हे रामचंद्रजी ! इस तडागका नाम पंचाप्सरहै इसमें सदा जल रहताहै कभी सूखता नहीं। महर्षि माण्डकर्णिनें तपोबलसे इसको बनायाहै ॥ ११ ॥ वह महामुनि माण्डकर्णि दश हजार वर्ष केवल पवन भोजन करते यहां रह कठोर तप करते रहे॥१२॥ इस तपस्यासे इन्द्र, वरुण, कुबेराग्नि सूर्यादि देवता सब बहुतही व्यथित होकर परस्पर इकट्ठे होकर कहनें लगे ॥१३॥ यह ऋषि हममें से किसीका पद पानेंके लिये तप करतेहैं। इस प्रकार निश्चय करके देवताओंके अंतःकरण महा उद्विग्न होगये ॥ १४ ॥ तब उन सब देवताओंनें मिलकर उनके तपमें विघ्न करनेकी अभिलाषसे; विजलीकी समान प्रभावाली पांच मुख्य अप्सराओंको भेजा ॥ १५ ॥ अप्सराओंनेभी देवताओंका कार्य सिद्ध करनेंके लिये अपने और पराये विषयके जाननें वाले महर्षि माण्डकर्णिजीको मदनके मदसे मतवाला कर दिया ॥१६॥ ऋषिजी उन पांचों अप्सराओंको अपनी स्त्रीकी भांति ग्रहण करके उनके लिये इस सरोवरमें न दीखनेंवाला सुन्दर घर बनाया ॥ १७ ॥ पांचों अप्सरायें यथा सुखसे इस गृहमें वास करके तपके प्रभावसे युवा अवस्थाको प्राप्त हुए उन ऋषिका मन मुदित करनेंको उनके संग विहार करनें लगीं ॥ १८ ॥ मुनिजीके सहित विहार करती हुई उन अप्सरा गणोंकेही बाजे बजाने और गानेका यह शब्दहै, व उन्हींके गहनोंका यह मनोहर शब्द सुनाई देताहै ॥ १९ ॥ महा यशवान श्रीरामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मणजीके सहित विशुद्ध चित्त महर्षिजीकी इस कथाको सुन बडा अचरज पाते हुए ॥ २० ॥ और कैसे अचरजकी बातहै यह कहते २ चारों ओर कुश चीर जिनमें पडे, ब्राह्मी शोभा समन्वित आश्रम मंडल श्रीरामचंद्रजी देखते हुए ॥ २१ ॥ वह बहुत शीघ्र भ्राता लक्ष्मण और भार्या जानकीजीके सहित वन शोभा सम्पन्न आश्रमोंमें

प्रवेश करते हुए ॥ २२ ॥ जब वहां ऋषियोंनें कंद मूल फलोंसे उनकी पूजाकी तब रामचंद्रजी वहां सुखसे बसे, फिर वारी२ से रामचंद्रजी सबही ऋषियोंके आश्रमों पर गये और पूजा पाते हुए ॥ २३ ॥ वह महास्त्र वित् श्रीरामचंद्रजी पहले जिनके आश्रममें वसेथे, इस समय फिर उनके आश्रममें जाते हुए। वह किसी आश्रममें पूरे दश महीने, कहीं पूरे वर्ष भर ॥ २४ ॥ कहीं चार महीने कहीं पांच महीने कहीं छः महीने कहीं एक वर्षसेभी अधिक, कहीं पखवाडेसे अधिक कहीं तीन महीनें और कहीं २ तीन २ महीने ॥ २५ ॥ कहीं तीन साढे तीन मास, कहीं आठ महीने तक रहे कहीं इस्से न्यूनाधिक रहे एसे तिन मुनियोंके आश्रमों पर श्रीरामचंद्रजी बसे ॥ २६ ॥ सबही जगह वह सुख सहित रहे, उन आश्रमोंमें वसते हुए ऋषि लोगोंकी अनुकूलतासे सीता सहित दश वर्ष श्रीरामचंद्रजीनें बितादिये ॥ २७ ॥ इस प्रकारसे धर्मके जाननें वाले श्रीरामचंद्रजी सीताके साथ सब पुण्य आश्रमोंमें घूम घाम कर फिर महर्षि सुतीक्ष्णजीके आश्रममें आये जहां मुनि गणोंनें उनकी बडी पूजाकी ॥ २८ ॥ वहां पर दुश्मनोंके मारनेंवाले श्रीरामचंद्रजी कुछ एक दिन रहकर एक दिन विनय सहित उन महामुनि सुतीक्ष्णजी-से ॥ २९ ॥ श्रीरामचंद्रजी पूछते हुए, कि हे भगवन्! इस वनमें मुनियोंमें श्रेष्ठ भगवान अगस्त्यजी ॥ ३० ॥ वसतेहैं, यह बात हमनें बहुत ऋषि लोगोंसे सुनीहै परन्तु यह हमने अबतक नजानें पाया कि उन महा तपस्वीजीके रहनेंका कौन वनहै? ॥ ३१ ॥ फिर यहभी नहीं जानते कि उन धीमान महर्षिजीका उस वनमें रम-णीक आश्रम कौनसाहै? उनके प्रसादके लिये लक्ष्मण और जानकीके सहित ॥ ३२ ॥ अगस्त्यजीके पास हम प्रणाम करनेंको जाया चाहतेहैं। इस प्रकारका महा मनोरथ हमारे हृदयमें वर्त्त रहाहै ॥ ३३ ॥ वहां पर जाकर हम स्वयं मुनिराजजीकी सेवा करेंगे। इस प्रकार सुतीक्ष्णजीनें धर्मात्मा रामचंद्रजीकी वाणी सुन ॥ ३४ ॥ दशरथजीके प्यारे दुलारे पुत्र श्रीरामचंद्रजीसे बोले कि हम लक्ष्मण सहित आपसे यह बतलानेको हीथे कि ॥ ३५ ॥ आप लक्ष्मण व जनककुमारी सीताजीके सहित अगस्त्यजीके निकट जाइये, सो बडे भाग्यकी बातहै कि आपनेंही अपनें

मुखसे यह वार्त्ता पूछी ॥ ३६ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ? महर्षि अगस्त्यजी जिस वनमें रहतेहैं उसको हम बतातेहैं,—हे तात ! इस आश्रमसे दक्षिण दिशाकी ओर सोलह कोश मार्ग चले जाइये, तब अगस्त्यजीके भ्राताका आश्रम आपकी दृष्टि आवेगा ॥३७॥ इस आश्रमकी भूमि बडी व समानहे यहां पिप्पलीके वृक्षोंका वन शोभित हो रहाहे और नाना भांतिके पक्षी शब्द करतेहैं। ऐसे परम मनोहर और विविध भांतिके फल पुष्प युक्त वनके देशमें यह आश्रम प्रतिष्ठितहै ॥ ३८ ॥ वहां पर स्वच्छ वारिसे! भरे बहुत सारे सरोवरहैं, हंस, कराकुल, चकवा, चकवी और सारस इत्यादि जलमें खेल किया करतेहैं ॥ ३९ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! उस आश्रममें आप एक रात्रि वास करके प्रभात होतेही उस आश्रमके निकटस्थ वनको करवटमें छोड दक्षिणकी ओरको गमन कीजिये ॥ ४० ॥ बस चार कोश मार्ग चलतेही विविध भांतिके वृक्षोंसे घिरा हुआ रमणीय वनमें हर्षित अगस्त्यजीके रहनेंका आश्रम देखोगे ॥४१॥ सीता और लक्ष्मणजी तुम्हारे साथ वहां वास करके परम प्रसन्न होंगे, क्योंकि वह अनेक प्रकारके वृक्षोंसे युक्त वन अतिरमणीयहै ॥ ४२ ॥ हे महामते ! यदि महर्षि अगस्त्यजीके दर्शन करनेका अभिलाषहै तो आजही जानेका विचार कीजिये ॥ ४३ ॥ श्रीरामचंद्रजी सुतीक्ष्णमुनिके ऐसे वचन सुन उनको प्रणाम करके भ्राता लक्ष्मण और जानकीजीके सहित अगस्त्यजीके देखनेको प्रस्थान करते हुए ॥ ४४ ॥ मार्गमें जानेके समय बहुत सारे विचित्र वन, वादलोंकी समान ऊंचे २ पहाड, नदी सरोवर सबही श्रीरामचंद्रजी देखते जातेथे ॥ ४५ ॥ इस प्रकार श्रीरामचंद्रजी सुतीक्ष्णजीके बताये हुए मार्गमें यथासुखसे गमन करके परम प्रसन्न और हर्षितहो लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ४६ ॥ कि निश्चयही पुण्य कर्म करनेवाले महात्मा अगस्त्य ऋषिके भ्राताका यह आश्रम दिखलाई देताहै ॥ ४७ ॥ क्योंकि जिस प्रकारसे सुनाथा वैसेही मार्गमें इस वनमेंको आते २ फल और फूलोंके बोझसे झुकेहुए सैकडों हजारों पेड हमनें देखेहैं ॥ १८ ॥ यह देखो पकेहुए पिप्पलोंके फलोंकी कडवी गन्ध पवन वेगसे वहीहुई चली आतीहै ॥४९॥ स्थान २में इकट्ठे किये हुए काठके बोझ और छिन्न वैदूर्यमणिके वर्णकी समान हरे कुशभी यहां

देख पडतेहैं ॥ ५० ॥ आश्रममें स्थित हुई अग्निकी यह वही धूमशिखा, कृष्णमेघ युक्त पर्वतके शिखरकी समान वनके बीच दृष्टि आतीहै ॥ ५१॥ और यह ब्राह्मण लोग स्वच्छ तीर्थके जलमें स्नान करके अपने लाये हुये फूलोंके समूहसे इष्ट देवताओंकी पूजा कर रहेहैं ॥५२॥ हे सौम्य ! महर्षि सुतीक्ष्णजीके मुखसे जैसा श्रवण कियाथा उसीके अनुसार यहांपर सब कुछ देखकर हमको निश्चयही जान पडताहै कि यही अगस्त्यजीके भ्राताका आश्रमहै॥५३॥जिनमहर्षि अगस्त्यजीनें सब लोकोंका हित करनेकी कामनासे बल सहित साक्षात् मृत्युकी समान दैत्यको मारकर इस दक्षिण दिशाकोभी सबके बसने योग्य कियाहै ॥ ५४॥ ऐसा प्रसिद्धहै कि पहले एक समय महा असुर ब्राह्मणोंका घात करनेंवाले वातापि और इल्वल नामक दो क्रूर कर्म करनें वाले भाई इकट्ठे इस वनमें वास करतेथे ॥ ५५ ॥ उन दोनोंमेसे निर्दयी इल्वल जब श्राद्धका समय आवे तौ ब्राह्मणका वेष धर संस्कृत उच्चारण करके ब्राह्मणोंको निमंत्रण करै ॥ ५६ ॥ जब सब ब्राह्मण आजावें तब अपने भ्राता मेषरूपी वातापिको श्राद्धके कहे अनुष्ठानके अनुसार उत्तम रूपसे रांधकर सब ब्राह्मणोंको भोजन करादेवे ॥ ५७ ॥ तिसके पीछे जब ब्राह्मण भोजन कर चुकें इल्वल अति ऊंचे स्वरसे (वातापि ! निकल आओ) यह वचन कहता ॥ ५८॥ वातापि भ्राताका शब्द सुनकर मेंढेकी समान शब्द करता हुआ ब्राह्मणोंके शरीर फार २ निकल आता ॥ ५९ ॥ यह इच्छानुसार रूप धारण करनेंवाले मांस भोजी असुर इस प्रकारसे प्रतिदिन परस्पर मिलकर सहस्र २ ब्राह्मणोंकी हत्या करते ॥ ६० ॥ यह देखकर महर्षि अगस्त्यजीनें देवताओंकी प्रार्थनाके वश होकर श्राद्धमें उस महा असुर वातापिको भक्षण करलिया,ऐसी बात प्रसिद्धहै ॥ ६१ ॥ जब श्राद्ध पूरा होगया इस प्रकारसे कहके ब्राह्मणोंके हाथ धुलानेंके लिये जल देकर " वातापि ! बाहर निकल आओ " यह कहकर इल्वल भ्राताको पुकारने लगा ॥ ६२ ॥ जब इल्वलनें वार २ अपने भाईको पुकारा तब यह देखकर मुनियोंमें श्रेष्ठ अगस्त्यजीनें हँसकर विप्रघाती इल्वलसे कहा ॥६३ ॥ हमनें तुम्हारे मेषरूपी भ्राता वातापिको पचा डाला, वह यमराजके गृहको चला गया सो अब उसको बाहर होनेकी सामर्थ्य कहां ? ॥ ६४ ॥ निशाचर इल्वल भाईके मरनेकी वार्त्ता

सुन करके क्रोध युक्तहो महर्षि अगस्त्यजीके मारनेको तैयार हुआ॥६५॥ जैसेही वह मारनेंको दौडा कि महर्षिजीनें प्रज्वलित अग्निकी समान दृष्टिसे एक बार देख दिया—बस देखनें मात्रसेही वह भस्म होगया और प्राण त्यागन करदिये ॥६६॥ जिन्होंने ब्राह्मणगणोंके ऊपर दयाके वश होकर इस प्रकारका और के न करने योग्य अनुष्ठान कियाथा उन अगस्त्यजीके महात्मा भाईकाही यह तडागमय शोभित आश्रमहै ॥ ६७ ॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके साथ यह वार्त्ता कहतेही रहेकि इतनेंमें भगवान् भास्कर अस्ताचलचूडावलम्बी हुए और संध्या हो आई ॥६८॥ तब श्रीरामचंद्रजीने भ्राता लक्ष्मणजीके सहित विधिवत् सायंकालकी संध्या समाप्त करके अगस्त्यजीके भाईके आश्रममें प्रवेश किया और अगस्त्यजीके भाईको प्रणाम किया॥ ६९ ॥ और अगस्त्यजीके भाईनेंभी उनका भली भांति शिष्टाचार किया और कंद मूल फल खानेंको दिये सो भोजनकर श्रीरामचंद्रजी एक रात्रि वहां पर बसे ॥ ७० ॥ फिर जब रात बीत गयी और सूर्य नारायण निकल आये तब श्रीरामचंद्रजीने विदाकी प्रार्थना करते ऋषिसे निवेदन करते हुए॥ ७१ ॥ कि हे भगवन् ! हम आपको प्रणाम करतेहैं हमने यहां बडे सुखसे यह रात्रि बिताई अब इस समय विदा दीजिये अब आपके बडे भाई गुरुदेव अगस्त्यजीके दर्शन करनेंको हमारी अभिलाषा हुईहै ॥ ७२ ॥ यह कहकर ऋषिकी आज्ञा ले उनके आश्रमका वन देखते भालते सुतीक्ष्ण मुनिके बताए हुए आश्रमको जाते हुए ॥ ७३॥ जानेके समय वनके मध्यमें शत २ नीवार, पनस, शाल, वञ्जुल, तिनिश, चिरिबिल्व,(नक्तमाल) मधूक, बेल ॥७४॥ तिन्दुक इत्यादि वृक्ष परस्पर फूली फली लताओंसे शोभित सैकडों हजारों वृक्ष श्रीरामचंद्रजीनें देखे ॥ ७५ ॥ अनेक प्रकारके पक्षीगण मतवाले होकर उन वृक्षों पर गुंजार कर रहेथे कुसुमित शिखर लता और वानरगणोंके निकट रहनेंसे वहां अतिशय शोभा होरही,और हाथियोंकी शूंडके आघातसे उन वृक्षोंकी टहनियां टूट फूट रहींथीं ॥ ७६ ॥ यह देखकर राजीव लोचन श्रीरामचंद्रजी अपने पीछे आते हुए निकटवर्ती लक्ष्मीके बढानेवाले लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ७७ ॥ इन सब वृक्षोंके पत्ते जैसे चिकने दिखाई देतेहैं और मृगगण जैसे शान्तचित दृष्टि आतेहैं सो इन सब बातोसे ज्ञात

होताहै कि उन विशुद्धचित्त महर्षि अगस्त्यजीका आश्रम अब अधिक दूर नहींहै ॥ ७८ ॥ जिन्होंनें अनेक कर्म द्वारा लोकमें प्रसिद्ध अगस्त्य नाम पायाहै, उनही महर्षिजीका थके हुए लोगोंके श्रमका हरनेवाला यह आश्रम दिखाई देताहै ॥ ७९ ॥ यज्ञका धुवाँ वनमें छाय रहाहै वृक्षोंकी डालियोंपर चीर वस्त्र टँग रहेहैं; वैरको छोडे हुए सब मृग इधर उधर घूम रहेहैं । अनेक प्रकारके पक्षी मधुर २ नाद कर रहेहैं ॥ ८० ॥ जिन्होंने मनुष्योंका हित करनेकी कामनासे बल सहित जम ऐसे असुरोंको जीतकर दक्षिण दिशाको सबके वास योग्य कर दियाहै ॥८१॥ और जिनके प्रभावसे राक्षस लोग त्रासित होकर इस दक्षिण दिशाके ओर केवल देखते और आतेतो हैं; परन्तु किसीको पीडा नहीं दे सकते; उन्हीं पुण्य कर्म करनेंवाले महर्षि अगस्त्यजीका यह आश्रमहै ॥ ८२ ॥ उन पवित्र वेत्ता अगस्त्यजीनें जबसे इस आश्रममें आकर वास कियाहै तबसे निशाचर लोग वैर छोडकर शान्तचित्तहोगये हैं ॥ ८३ ॥ भगवान् अगस्त्यजीकी यह दक्षिण दिशा अगस्त्यादिक्‌ नामसे त्रिलोकीमें प्रसिद्ध होगईहै और उनके प्रभावसे क्रूर कर्म करनें वाले निशाचरगणोंके दबजानेंसे यह दिशा मुनिलोगोंके वास करनें योग्य होगईहै ॥ ८४ ॥ पर्वतोंमें श्रेष्ठ विन्ध्याचल उनकी आज्ञाका प्रति पालनही करता हुआ, सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये और निरन्तर नहीं बढता * ॥८५॥ लोकोंके बीचमें विख्यात कर्म करनेंवाले दीर्घायु महर्षि अगस्त्यजीकाविनय,युक्त मृगगण सेवित यही आश्रमहै॥८६॥जबकि हम सर्व लोकोंमें पूजित सदा साधु लोकोंका हित चाहनेंवाले साधु चरित्र इन महर्षि अगस्त्यजीके आश्रममें जांयगे, तब वह अवश्यही हमारा मंगल विधान करेंगे ॥ ८७ ॥ हे शुभदर्शन ! हम इसी आश्रममें रहकर महर्षि

* एक समय अगस्त्यजीका शिष्य विन्ध्याचल पर्वत सूर्यका मार्ग रोकनेके लिये अधिकतासे बढने लगा यह देख देवता बहुत भयभीतहो अगस्त्यजीकी शरण जाकर कहनै लगे कि आप अपने शिष्यको इस दुर्घट कार्यके करनेसे निवारण कीजिये तब अगस्त्यजी विन्ध्याचलके निकट गये पर्वतने इन्हें देखकर प्रणाम किया और चरण पकडे २ पूछा गुरु देव ! आज्ञा कीजिये कैसे आगमन हुआ अगस्त्यजी बोले जब तक हम लौटकर न आवें तब तक तुम यौंहीं पडे रहो विन्ध्यने तथास्तु कहा तबसे अगस्त्यजी दक्षिणदिशामें आकर रहने लगे और फिर उधर न गये विन्ध्याचल गुरु आज्ञासे आजतक लेट रहाहै ॥

अगस्त्यजीकी अराधना करेंगे और वनवासका शेष समय यहीं विता देंगे ॥ ८८॥ इस आश्रममें देवता गन्धर्व, तपस्या करके सिद्ध हुए महर्षि लोग निराहार रहकर सदाही अगस्त्यजीकी भलीभांति सेवा किया करते हैं ॥ ८९ ॥ महर्षि अगस्त्यजीका प्रभाव ऐसाहै कि इनके आश्रममें झूंठ बोलनेवाला, शठ दुष्ट निर्लज्ज पाप परायण पुरुष किसी भांति जीता हुआ नहीं रह सकता ॥ ९० ॥ इस आश्रममें देव, यक्ष, नाग और पक्षीगण धर्मकी आराधना करनेंके लिये नियताहारी होकर वास करते हैं ॥ ९१ ॥ महात्मा महर्षि लोग इस आश्रममें सिद्धहो देह त्याग नवीन देह धारण कर सूर्य तुल्य देदीप्यमान विमान में सवार हो स्वर्गको गयेहैं ॥ ९२ ॥ जो समस्त पवित्र कर्म करनेंवाले प्राणीगण इस आश्रममें रहतेहैं वह देवताओंकी उपासना करकै देवताओंके प्रसादसे देवत्व, यक्षत्व, और विविध राज्योंको प्राप्त होतेहैं ॥ ९३ ॥

आगताःस्माश्रमपदंसौमित्रेप्रविशाग्रतः ॥
निवेदयेहमांप्राप्तमृषयेसहसीतया ॥ ९४ ॥

हे सुमित्राकुमार! हम इस समय उसही आश्रममें आय पहुँचेहैं। तुम पहले प्रवेश करके उन मुनिसे यह निवेदन करदोकि हम सीताके सहित उनके आश्रममें आयेहैं ॥ ९४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकादशःसर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशःसर्गः ॥

सप्रविश्याश्रमपदंलक्ष्मणोराघवानुजः ॥
अगस्त्यशिष्यमासाद्यवाक्यमेतदुवाचह ॥ १ ॥

ऐसा जब रामचंद्रजीनें कहा, तब उनके छोटे भइया लक्ष्मणजी आश्रममें प्रवेश करके अगस्त्यजीके शिष्यके समीप पहुँचकर कहने लगे ॥ १ ॥ कि राजा दशरथजीके बडे पुत्र महाबलवान श्रीरामचन्द्रजी अपनी स्त्री सीताजीके साथ महर्षिजीके चरणोंका दर्शन करनें को आयेहैं ॥ २ ॥ और हमारा नाम लक्ष्मणहै, हम उनके हितकारी परम भक्त और उनके अनुकूल चलनेवाले उनके छोटे भाई हैं सो कदा-

चित् आपने हमारी वार्त्ता सुनीही होगी ॥ ३ ॥ हमने पिताजीकी आज्ञासे अतिभयंकर वनमें प्रवेश कियाहै और अब भगवान् अगस्त्यमुनिके दर्शन करनेकी हमको अभिलाष हुईहै, सो आप उनसे यह वृत्तान्त निवेदन कर दीजिये ॥४॥ वह तपोधन लक्ष्मणजीके यह वचन श्रवण कर उनसे आपका आना निवेदन करता हूं यह कहकर इस वार्त्ताको महर्षि अगस्त्यजीसे कहनेंके निमित्त अग्निगृहमें प्रवेश करता हुआ ॥ ५ ॥ और वहां पहुँचकर हाथ जोड तपोबलसे प्रदीप्त मुनिश्रेष्ठ अगस्त्यजीसे रामचन्द्रजीके आनेका समाचार कहा ॥ ६ ॥ अगस्त्यजीका शिष्य लक्ष्मणजीके वचनके अनुसार कहने लगा कि अयोध्याजीके राजा दशरथ कुमार राम और लक्ष्मण ॥ ७ ॥ आपके आश्रममें अपनी भार्या सहित आयेहैं, वह शत्रुतापन आपकी सेवा करनें व देखनेंके लिये यहां आयेहैं ॥ ८ ॥ सो इसमें जैसा कर्त्तव्यहो वही आज्ञा आप कीजिये, शिष्यके मुखसे रामचन्द्र व लक्ष्मणजीका आगमन सुन ॥ ९ ॥ और महा भाग्यवती सीताजीकोभी आगमनकी वार्त्ता सुन करकै महर्षि अगस्त्यजी बोले, कि बडे भाग्यकी बातहै बहुत दिनोंपर श्रीरामचंद्रजी हमारे दर्शन करनेको यहां आयेहैं ॥ १० ॥ और मैंनेभी मनसे इनके समागमकी आकांक्षा कीथी तिस्से आगे जाकर आदर मान सहित श्रीरामचन्द्रजीको भ्राता और स्त्री सहित ॥ ११ ॥ यहां लिवालाओ और अबतक तुम किस कारणसे उनको यहां नहीं लिवालाये, जब महात्मा धर्मज्ञ अगस्त्यजीनें इस प्रकार कहा ॥ १२ ॥ तो शिष्य कर जोडकर जो आज्ञा, अभी लिवाये लाताहूं कह और प्रणाम करकै तभी वहांसे बाहर आ आदर सहित लक्ष्मणजीसे बोला ॥ १३ ॥ आपमें राम कौनसेहैं ? वह भगवान् अगस्त्यजीके दर्शन करनेंके लिये आवें और स्वयं प्रवेश करें अनन्तर लक्ष्मण उस शिष्यके सहित वहां गये जहां श्रीरामचन्द्रजीथे ॥ १४ ॥ और उस शिष्यको जनककुमारी सीता व श्रीरामचन्द्रजीको दिखा दिया, उस शिष्यने बडी नरमाईसे अगस्त्यजीके वचन श्रीरामचंद्रजीसे जाय कहे ॥ १५ ॥ यथा नियम भलीभांति आदर सत्कार करकै श्रीरामचंद्रजीको लक्ष्मण व सीताजीके सहित आश्रममें प्रवेश कराया ॥ १६ ॥ उस आश्रममें प्रवेश करनेंके समय श्रीरामचं-

द्रजीनें देखाकि परम शान्तस्वभाव हरिण चारों ओर बैठेहैं, ब्रह्मा, शिव ॥१७॥ विष्णु, इन्द्र, सूर्य, चंद्र, भग, कुवेर ॥ १८ ॥ धाता, विधाता, पवन, पाशहस्त महात्मा वरुण ॥ १९ ॥ गायत्री, वसु, नागराज वासुकी आदि सर्प, गरुड ॥ २० ॥ कार्त्तिकेय और धर्म, इन सबकी पूजाके निमित्त अलग २ स्थानवनें हुए एक २ करके श्रीरामचंद्रजीनें देखे मुनिअगस्त्यजीभी अपने शिष्योंके संग होमशालामेंसे निकले ॥ २१ ॥ वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजी सब तपस्वियोंमें बडे तेजवान् अगस्तजीको सामनेसे आते देखकर लक्ष्मण युक्त लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २२ ॥ हे लक्ष्मण ! भगवान् अगस्त्यजी ऋषि कुटीसे बाहर निकलतेहैं इस समय हम उदारता युक्त होकर उन तप प्रकाशित ऋषिवरके निकट गमन करेंगे ॥ २३ ॥ ऐसा कहकर महाबाहु श्रीरामचंद्रजी कुटीसे बाहर आये हुए सूर्यकी समान तेजवान महर्षि अगस्त्यजीके चरण छूकर प्रणाम करते हुए ॥ २४ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मणजीके सहित ऋषिजीके चरणोंकी वंदना करके करजोड उनके आगे खडे रहे ॥ २५ ॥ यह देखकर महर्षि अगस्तजीनें आदर सहित रामचन्द्रजीको ग्रहण किया चरण पखारनेके लिये जल मंगवा दिया, आसन देकर बैठनेकी अनुमतिदी फिर कुशल प्रश्न किया ॥ २६ ॥ तिसके पीछे अगस्त्यजीनें अग्निमें आहुति देकर उन आये हुए पाहुनोंको अर्घ्य दिया, और वानप्रस्थ धर्मके अनुसार आहार करनेंकी सामग्रीदी ॥ २७ ॥ अनन्तर धर्मके जाननेवाले महर्षि अगस्त्यजी प्रथम स्वयं बैठ पीछे कर जोडकर बैठे हुए धर्मपंडित श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ २८ ॥ हे रामचन्द्रजी ! तपस्वी यदि पाहुनेका सत्कार न करके उसके प्रति और कोई अन्यथा आचरण करै तो वह झूठी गवाही देनेवाले मनुष्यकी समान परलोकमें अपना मांस भक्षण करताहै ॥ २९ ॥ फिर आप तो महारथी और सब लोकोंके धर्मचारी राजाहैं तिस पर आपने प्रिय अतिथि की भांति हमारे आश्रममें आगमन कियाहै । अतएव आपकी पूजा और सन्मान करना हमारा सब भांतिसे कर्त्तव्यहै ॥ ३० ॥ यह कहकर महर्षिजी फल, मूल, पुष्प, व औरभी उत्तम २ वनके पदार्थोंसे यथाभिलाषित भांतिसे रामचंद्रजीकी पूजा करके फिर कहनें लगे ॥ ३१ ॥ हे पुरुष

श्रेष्ठ ! हमको यह विश्वकर्माका बनाया हुआ, स्वर्ण और वज्र मणिसे विभूषित दिव्य और बडा वैष्णव चाप ॥ ३२ ॥ और सूर्यकी समान प्रभासम्पन्न उत्तम बाण यह दोनों चीजें हमें ब्रह्माजीनें दीहैं और इन्द्रजीने दो तरकस जिनके बाण कभी नहीं निवडते हमको दियेहैं ॥ ३३ ॥ तीखे बाणोंसे परिपूर्ण और अग्निकी समान चमकते हुए यह उत्तम दो तरकस और यह स्वर्णमय कोश बद्ध खड्ग इन्द्रजीने हमको दियाहै ॥ ३४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! पहले भगवान् विष्णुजीनें इस वैष्णव धनुकी सहायतासे युद्धमें महाबली छली असुरोंको संहार करके देवताओंको दीप्ति मती लक्ष्मी प्रदानकीथी ॥ ३५ ॥ हे मानद ! वज्र धर इन्द्रजी जिस प्रकार वज्र धारण करतेहैं, तुमभी तैसेही पवित्र यश प्राप्त करनेंके अर्थ यह शर चाप खड्ग और दो तरकस ग्रहण करो ॥३६॥

एवमुक्त्वामहातेजाःसमस्तंतद्वरायुधम् ॥
दत्त्वारामायभगवानगस्त्यःपुनरब्रवीत् ॥ ३७ ॥

महा तेजवान् भगवान् महर्षि अगस्त्यजी ऐसा कह कर महा पण्डित प्रवीण रामचन्द्रजीको वह समस्त अतिश्रेष्ठ वैष्णव आयुध देकर फिर बोले ॥ ३७ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आ० द्वादशः सर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशःसर्गः॥

रामप्रीतोस्मिभद्रंतेपरितुष्टोस्मिलक्ष्मण ॥
अभिवादयितुंयन्मांप्राप्तौस्थःसहसीतया ॥ १ ॥

हे श्री रामचन्द्र! तुमजो सीता सहित हमको प्रणाम करनें आये हो इस्से हम तुम्हारे और लक्ष्मणके प्रति बहुतही प्रसन्न हुए हैं; तुम्हारा मंगल होवे ॥ १ ॥ यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि मार्ग चलनेकी थकावट से तुमको महा कष्ट हुआ है। जनककुमारी सुकुमारी जानकीजीभी विश्राम करना चाहती हैं ॥ २ ॥ यह बडी ही सुकुमार हैं; इन्होंने भला कभी काहेकोही कष्ट सहा होगा परन्तु पतिसे स्नेहके कारण इस बडे कष्ट देनेवालें वनमें यह आई हैं ॥ ३ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! जानकी जीका मन जिसमें प्रसन्न रहे वही तुमको करना चाहिए, क्योंकि तुम्हारे

साथ २ वनको आकर इन्होंनें बडा दुष्कर काम किया है ॥ ४ ॥ हे रघुनन्दन ! जबसे स्वयंभूकी उत्पत्ति हुई है तबसे स्त्रिओंका स्वभावही ऐसा है कि धनवान पुरुषको ग्रहण करती और दरिद्र को त्याग करती हैं ॥ ५ ॥ स्त्रियें बिजलीकी चपलता, अस्त्रोंकी तीक्ष्णता, गरुड और पवनकी शीघ्रताका अनुकरण करती हैं ॥ ६ ॥ परन्तु इन तुम्हारी भार्या जानकीजीमें इन सबमें से कोई दोष भी नहीं है। यह देवता ओंके बीचमें अरुन्धती की समान प्रशंसनीय और कीर्तिवान हैं ॥ ७ ॥ हे शत्रुदमनकारी ! तुम सुमित्राकुमार और सीताजीके साथ जिस देशमें वास करोगे वही देश शोभायमान हो जायगा ॥ ८ ॥ जब ऋषिनें इस प्रकार कहा तब श्रीरामचन्द्रजीनें हाथ जोड विनीत वचनसे अग्नि समान तेजवान उन महर्षि अगस्त्यजीसे कहा ॥ ९ ॥ हे मुनिवर ! हमारे हमारी भार्याके, और हमारे भ्राताके गुणोंसे जो आप प्रसन्न हुएहैं इससे मैं धन्य और अनुग्रह भाजन हुआ ॥ १० ॥ तिस्से आज्ञा कीजिये कि ऐसा कोई स्थानहै जहां वनभी बडा हो और जलभी सरलतासे प्राप्त हो जाया करे और वहां हम कुटी बनाकर स्वच्छन्दतासे वास कर सकें ॥ ११ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके वचन श्रवण करकै धर्मात्मा मुनिवर मुहूर्त भरतक चिंता करकै शुभ वचन बोले ॥ १२ ॥ वत्स ! इस स्थानसे आठ कोशके अन्तर पर पंचवटी नामक विख्यात एक अति सुन्दर स्थान है इस स्थानमें फल, मूल और जल बहुतायतसे मिलताहै और अनेक प्रकारके पशुभी वहां वास करते हैं ॥ १३ ॥ तुम लक्ष्मणजीके साथ वहां जा और आश्रम बनाकर पिता दशरथजीका सत्य पालन करते हुए सुखसे वास करो ॥ १४ ॥ हे पाप रहित! हम स्नेहके वश होनेके कारण तपके प्रभावसे तुम्हारा और दशरथजीका समस्त वृत्तान्त जानते हैं नहीं ऐसे वृत्तान्त जान्नेकी क्या आवश्यकता थी॥ १५ ॥ और हम तपके प्रभावसे यहभी जानते हैं कि यह प्रतिज्ञा करकै कि हमारे निकट आप बसेंगे, । और फिर अब वास स्थानकी वार्त्ता क्यों पूछते हैं? अर्थात् हमारे निकट राक्षस नहीं आसक्ते आप उनका मारना चाहते हैं इस कारण आप यहां रहना नहीं चाहते ॥ १६ ॥ इसही कारण हम कहते हैं कि तुम पंचवटीको चले जाओ वह बनैला

देश अति रमणीय है वहां सीताके मनको भी सन्तोष होगा ॥ १७ ॥ पंचवटी बडाई करनेंके योग्य है और बहुत दूर भी नहीं है, इस गोदावरीके निकटही है मिथिलेश दुलारी वहां पर प्रसन्न होकर रहैंगी ॥१८॥ हे महाबाहो वह बहुत फल मूल करके युक्त अनेक भांतिके विहंगमोंसे परिपूर्ण पुण्य मय और निर्जन देश अति रमणीय है ॥ १९ ॥ तुमभी सदाचारी और रक्षा कार्य करनेंमें समर्थ हो उस स्थानमें वास करके तपस्वी लोगोंका पालन भली प्रकार कर सकोगे ॥ २० ॥ हे वीर! यह जो महुयेके वृक्षोंका महावन दिख लाई देताहै उसके उत्तर ओर होकर तुमको जाना होगा, फिर उसके पीछे तुमको न्यग्रोध आश्रम प्राप्त होगा ॥२१॥ तिसके पीछे विशेष स्थानपर पहुँचने से तुमको एक पर्वत दिखाई देगा, उस पर्वतके कुछ दूर ही विख्यात पंचवटीका वन है वहसदाही फूला फला रहता है॥२२॥ श्रीअगस्त्यजीकें ऐसे वचन श्रवण करके श्री रामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित ऋषिका भली भांति आदर सत्कार करके उनसे विदा मांगते हुए ॥ २३ ॥ अगस्त्यजीकी आज्ञा पाकर दोनों जन उनके चरणोंकी वन्दना करकै सीताजीके साथ पंचवटी आश्रमके लिये चले ॥ २४ ॥

गृहीतचापौतुनराधिपात्मजौविषक्ततूणीसम
रेष्वकातरौ ॥ यथोपदिष्टेनपथामहर्षिणाप्र
जग्मतुःपंचवटींसमाहितौ ॥ २५ ॥

समर में न डरने वाले दोनों नृपकुमार धनुष धारण कर और तरकस बांधकर महर्षि अगस्त्य जीनें जो मार्ग बता दियाथा अति सावधानसे उस मार्गके द्वारा पंचवटीकी यात्रा करते हुए ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आरण्य कांडे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः ॥

अथपंचवटींगच्छन्नंतरारघुनंदनः ॥
आससादमहाकायंगृध्रंभीमपराक्रमम् ॥ १ ॥

अनन्तर श्रीरामचन्द्रजीनें पंचवटीके मार्गमें जाते २ एक भयानक पराक्रमवान महाशरीर वाले गीधको देखा ॥ १ ॥ महाभाग श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजी वनमें इस पक्षीको देख राक्षस समझ कर उससे पूछनें लगे, कि तुम कौन हो? ॥ २ ॥ गीध मधुर और प्यारे वचनोंसे उनको प्रसन्न करके बोला, कि— वत्स! तुम हमको अपने पिताका मित्र समझो ॥ ३ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजीनें उसको पिताका मित्र जानकर पूजा करते हुए व्यग्र भावसे उसका कुल और नाम पूछा ॥ ४ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर गीध सब जीवोंकी उत्पत्ति का वर्णनाका प्रसंग वर्णन करके अपना कुल और नाम कहनें लगा ॥ ५ ॥ हे महाबाहो हे राघव! पूर्वकालमें जो कि प्रजापति हुएथे, हम क्रमशः उन सबका नाम बतलाते हैं आप श्रवण कीजिये ॥ ६ ॥ कर्द्दम उन सबमें बडेथे उनके बाद विकृत, शेष, संश्रय, वीर्यवान् बहु पुत्र ॥ ७ ॥ स्थाणु, मरीचि, अत्रि महाबलवान क्रतु, पुलस्त्य, अंगिरा, प्रचेता; पुलह ॥ ८ ॥ दक्ष, विवस्वान, अरिष्टनेमि यह क्रमसे उत्पन्न हुए महात्मा कश्यप उन सबमें छोटेथे ॥ ९ ॥ हे महायशवान् श्रीरामचन्द्रजी उनमें दक्ष प्रजापतिके यशस्विनी लोकमें विख्यात साठ ६० कन्यायें उत्पन्न हुई ॥ १० ॥ उनमें अति सुन्दरी आठ कन्याओंका कश्यपजी विवाह करते हुए। उनके नाम अदिति, दिति, कालका, ॥ ११ ॥ ताम्रा, क्रोधवशा, मनु, व अनला, विवाह होजानें पर प्रसन्नहो कश्यपजी इन दक्ष कन्याओंसे बोले ॥ १२ ॥ कि तुम हमारी समान त्रिलोकीका भरण पोषण करनेंवाले पुत्र उत्पन्न करो यह सुन दिति अदिति दनु ॥ १३ ॥ और कालका यह तो वैसे पुत्र प्राप्त करनेंके लिये अभिलाषिता हुई और शेष चारोंने पतिके कहनेंमें ध्यान न लगाया अदितिके तेंतीस ३३ देवता हुए ॥ १४ ॥ अदितिके गर्भमें १२ आदित्य ८ वसु ११ रुद्र २ अश्विनी कुमार उपजे। और दितिने भी बडे यशवान् दैत्य उत्पन्न किये ॥ १५ ॥ पहले वन और समुद्र सहित यह पृथ्वी उनहीकी थी। हे अरिन्दम दनुने अश्वग्रीव नामक एक पुत्र उत्पन्न किया ॥ १६ ॥ और कालकाने नरक और कालक नामक दो पुत्र उत्पन्न किये क्रौञ्ची मासी श्येनी, धृतराष्ट्री और शुकी ॥ १७ ॥ ताम्रासे यह लोक विख्यात पांच

कन्या जन्मी उसमें क्रौञ्चीसे उलूक पैदा हुए भासीसे भास जन्मे ॥ १८ ॥ श्येनीने अति तेजस्वी श्येन और गीधोंको प्रसव किया और धृतराष्ट्री से सब हंस ॥ १९ ॥ और चकवा चकवियोंको भी उसीनें उत्पन्न किया शुकि के नता कन्या हुई और नताके विनता उत्पन्न हुई ॥ २० ॥ हे राम क्रोधवशाके दश कन्या उत्पन्न हुई उनके नाम यहहैं यथा—मृगी मृग मदा, हरी भद्रमदा ॥ २१ ॥ मातंगी शार्दूली, श्वेता, सुरभी, सुरसा, कद्रुका यह सब कन्यायें शुभ लक्षण सम्पन्न थीं॥२२॥हेनर श्रेष्ठ। समस्त मृग, मृगीसे उत्पन्न हुए और काले व सफेद रीछ सृमर चमरी आदि मृग मन्दाके जन्मे ॥ २३ ॥ भद्रमदानें इरावती नामक कन्या प्रसवकी उसका पुत्रलोकपाल महा गज ऐरावत हुआ ॥ २४ ॥ सिंह वानर और गो पुच्छ गण हरीके उत्पन्न हुए शार्दूलीने व्याघ्रोंको प्रसव किया ॥२५॥ हे पुरुषवर! श्रीरामचंद्रजी! सब हाथी मातङ्गीके पुत्र हुए। श्वेताने दिग्गजोंको उत्पन्न किया ॥ सुरभीके दो कन्या हुई, यशस्विनी रोहिणी और गन्धर्व्वी ॥२६॥२७॥ रोहिणीने गौ बैल आदिकों को और गन्धर्वीनें अश्वोंको प्रसव किया हे राम! सुरसाने नागोंको प्रसव किया, और कद्रुके सर्प उत्पन्न हुए ॥ २८ ॥ महात्मा कश्यपजीकी दूसरी स्त्री मनुसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, और शूद्र यह सब मनुष्य जन्मे ॥ २९ ॥ सो ऐसी कहावत चली आतीहै कि मुखसे ब्राह्मण, वक्षःस्थलसे क्षत्रिय, जंघाओंसे वैश्य, और चरणोंसे शूद्रोंकी उत्पत्ति हुई ॥ ३० ॥ अनलानें परम श्रेष्ठ फल युक्त वृक्ष जनें, विनता शुकीकी पौत्री, और कद्रु सुरसा-की कन्या हुई ॥ ३१ ॥ उनमें कद्रुनें सहस्रों नाग पुत्र उत्पन्न किये यही सब पृथ्वीको धारण किये हुएहैं और विनताके दो पुत्र गरुड व अरुण हुए ॥ ३२ ॥ हम तिनही गरुडजीसे उत्पन्न हुएहैं, सम्पाति हमारे बडे भाईहैं। हे अरिनाशक! हमारा नाम जटायु व हमारी माताका नाम श्येनी जानिये ॥ ३३ ॥ हे तात! यदि इच्छा होवे तौ हम तुम्हारी वनमें वसने के समय सहायता करैं और जब तुम लक्ष्मणजीके सहित कहीं वनमें कंद, मूल, फल लेने जाया करोगे तो हम सीताजीकी रक्षा किया करेंगे ॥ ३४ ॥ रामचंद्रजी प्रफुल्लता से जटायुको भेंट और उसकी पूजा-

कर उसको प्रणाम करते हुए, और पिताजीके साथ जो मित्रता उसकी थी सो उस जटायुके मुखसे वारंवार श्रवण करने लगे ॥ ३५ ॥

सतत्रसीतांपरिदायमैथिलींसहैवतेनातिबलेन पक्षिणा ॥ जगामतांपंचवटींसलक्ष्मणोरिपून्दिधक्षन्सवनानिपालयन् ॥ ३६ ॥

फिर वह बलवान जटायुके हाथमें सीताजीकी रक्षाका भार सौंपकर उसको साथले लक्ष्मणजीके सहित शत्रुओंको जलाते वनकी रक्षा करनेंके लिये सुप्रसिद्ध पंचवटीमें गमन करते हुए ॥ ३६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे चतुर्दशःसर्गः ॥१४॥

पंचदशः सर्गः ॥

ततःपंचवटींगत्वानानाव्यालमृगायुताम् ॥ उवाचलक्ष्मणंरामोभ्रातरंदीप्ततेजसम् ॥ १ ॥

तिसके पीछे यह अनेक प्रकारके सर्प और पशुयुक्त पंचवटीमें गमन करके तेजसे प्रकाशमान भ्राता लक्ष्मणसे बोले ॥ १ ॥ हे सौम्य महर्षि अगस्त्यजीनें जिसको बतायाथा अब हम उसी सदा फूले फले वन करके शोभायमान पंचवटीमें आगयेहैं ॥ २ ॥ आश्रम बनानेके लायक स्थान निर्णय करनेंमें तुम भलीभांति चतुरहो तिस्से इस काननके चारों ओर दृष्टि डालिये कि कौनसे स्थानमें हमारे मनमाना आश्रम बनसकताहै हेलक्ष्मण! जिस स्थानमें तुम हम और जानकीजी विशेष प्रसन्नता सहित रहसकें और जल भी जहां निकटही हो ऐसे स्थानको तुम खोजो॥३॥४॥ जिस जगह वन और जल दोनोंही रमणीय और पावनहों व ईंधन, पुष्प, कुश, जल जहां निकटही पाया जावे ऐसा स्थानदेखो॥५॥ श्रीरामचंद्रजीनें जब इस प्रकार कहा तब लक्ष्मणजीनें कर जोड कर सीताजीके सामने रामचंद्रजीसे कहा ॥ ६ ॥ हे भाई साहब! हम आपके विद्यमान रहते सैकडों वर्ष तकभी स्वाधीन नहींहैं न कुछ विचार करही सकतेहैं और हमारा विचार ठीकभी नहींहै तिस्से अब आप स्वयंही मनोहर स्थान देख भाल हमको वहां आश्रम बनानेकी आज्ञा दीजिये॥७॥ महाद्युतिमान श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके यह वचन सुन परम प्रसन्न हो

विचार करकै सर्व गुणों करकै युक्त एक मनोहर स्थान खोज लेते हुए ॥ ८ ॥ यह स्थान सब भांतिसे मनोहर और आश्रम बनानेंके लायक था वहां श्रीरामचंद्रजी पदार्पणकर अपने हाथसे लक्ष्मणजीका हाथ पकडकर बोले ॥ ९ ॥ यह स्थान परम श्री सम्पन्न भूमि वहांकी बराबरहै और फूले हुए वृक्षोंसे घिराहुआहै तिस्से तुम इस स्थानमें वित्तानुसार पर्णकुटी बनाओ ॥ १० ॥ सूर्यकी समान उज्वल चित्त प्रसन्न करनेवाली सुगन्धि जिनमें आरहीहैं ऐसेकमलके फूलोंके सहित यह पुष्करणी यहांसे निकटही बहरहीहै॥११॥विशुद्धात्मा महर्षि अगस्त्य-जीने जिस प्रकार कहाथा यह देखो वैसेही फुलाने वृक्षोंसे शोभित गोदावरी दृष्टि आतीहै ॥ १२ ॥ वहां हंस और कारंडव बोल रहेहैं चकवा चकवी पक्षियोंसे शोभायमान यह नदी न यहांसे बडी दूरहै न बहुत निकटहीहै मृगोंके यूथके यूथ जहां घूम रहेहैं ॥ १३ ॥ खिले हुए वृक्षोंसे शोभित मोर गण जहां नाद कर रहेहैं बहुत गुफा जिनमें विद्यमान परम मनोहर देखनेमें दिव्य बड़े २ ऊंचे यह सब पहाड दिखाई देतेहैं ॥ १४ ॥ उन सब पहाडों के स्थान २ में सब हाथी सुवर्ण चां-दी और ताम्र वर्ण की विचित्र रचना से सजे हुएकी समान शोभा पार-हेहैं ॥१५॥साल,ताल, तमाल,खजूर, कटहल, निवार, निमिश,पुन्नागसे शो-भित॥१६॥आम, अशोक,तिलक, केतकी, और चंपा आदि पुष्प, गुल्म, लता इत्यादि वृक्षोंसे शोभाय मान॥१७॥स्यन्दन, चन्दन, कदंब, लुचकुच, धव, अश्वकर्ण, खैर, शमी, ढाक और पटल इन तरुवरोंसभी वृक्ष घिरे हुएहैं ॥ १८ ॥ हे लक्ष्मण ! यह स्थान अतिशय पवित्र, अतिशय मनो-हर, अनेक प्रकारके मृग और पक्षियोंसे परिपूर्णहै; सो जटायुके सहित इस स्थानपर हम वास करेंगे ॥ १९ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब श्रीलक्ष्मणजीनें बहुत शीघ्र रामचंद्रजीके रहनेके लिये परम श्रेष्ठ एक स्थान बनाया ॥ २० ॥ उसमें बडी भारी पर्णशाला बनाई, भीतें मिट्टीसे उठादीं सुन्दर थंभ गाड दिये, ऊपर लंबे २ बांस धरे ॥ २१ ॥ उन तिरछे वासोंपर शमीकी डालियें काट २ कर छादीं फिर उन शाखाओंको रस्सियोंसे अति दृढता सहित बांध दिया, कुश, कांश, और शर पत्रसे भलीभांति उसको छाकर बराबर करदिया ॥ २२ ॥ तिसपर

शमीकी डालियोंकी बतियें छा कसकर बांधदीं, ऐसा मनोहर स्थान लक्ष्मणजीनें श्रीरामचंद्रजीके रहनेके लिये बनाया ॥ २३ ॥ जब स्थान बन चुका तौ श्रीमान् लक्ष्मणजी गोदावरी नदीमें नहाकर वहांसे कमलके फूल और अनेक फल लेकर आश्रमको लौटे ॥ २४ ॥ फिर लक्ष्मण-जीनें फूलोंसे यथा विधि वास्तु शान्ति करके उस कुटीको पवित्रकर श्रीरामचंद्रजीको दिखाया ॥ २५ ॥ श्रीरघुनंदन रामचंद्रजी सीताके सहित लक्ष्मणजीकी बनाई वह शुभ दर्शन कुटी देखकर परम प्रसन्न हुए ॥ २६ ॥ और बहुतही हर्षमें भरकर दोनों बाहोंसे लक्ष्मणजीको स्नेह सहित अपनी छातीसे लगा लिया और बडे मनोहर प्रेमसने वचन बोले ॥ २७ ॥ हे कार्य करनेमें चतुर! हम तुम पर बहुतही प्रसन्न हुए हैं तुमनें यह बडा भारी कार्य किया सो इस कार्यका तुमको इनाम देना चाहिये अतएव इसके बदलेहीमें हमनें तुमसे भेंटकी ॥ २८ ॥ हे लक्ष्मण-जी ! तुम्हारी समान विचारवान् सबका भाव जाननें वाले, उपकार माननें वाले, और धर्मके जाननेंवाले पुत्रके रहते राजा दशरथजीकी मृत्यु नहीं हुई ॥ २९ ॥ लक्ष्मीके वढानेवाले श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणसे ऐसा कहकर परम सुखभोगमय बहु फल युक्त उस आश्रम पदमें वास करने लगे॥ ३० ॥

कंचित्कालंसधर्मात्मासीतयालक्ष्मणेनच ॥
अन्वास्यमानोन्यवत्स्वर्गलोकेयथामरः ॥ ३१ ॥

वह धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मण करके सेवित होनेंपर देवलोकमें देवताकी समान वहां कुछदिन वास करते हुए ॥ ३१ ॥
इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर० पंचदशःसर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः ॥

वसतस्तस्यतुसुखंराघवस्यमहात्मनः॥
शरद्व्यपायेहेमंतऋतुरिष्टःप्रवर्तत ॥ १ ॥

महात्मा रामचंद्रजीके वहां सुखसे वास करते२शरत् काल वीता और सबका प्यारा हेमन्त समय आया ॥ १ ॥ एक समय रात्रि वीतकर प्रभात हुआ तो उस समय श्रीरामचंद्रजी स्नानकरनेंके लिये रमणीक गोदावरी नदीपर जाते हुए ॥ २ ॥ वीर्यवान् भ्राता लक्ष्मणजी सीता-

जीके साथ जलका कलश हाथमें लेकर उनके पीछे २ चलते हुए नम्रता से बोले ॥ ३ ॥ हे प्रिय बोलनें वाले ! जो इस समय आपको प्याराहै; यह वही हेमन्तकाल उपस्थित हुआहै । इस हेमन्तके समागमसेही शुभ संवत्सर मानों सजकरही मनोहर हुआहै ॥४॥ शरदीके प्रभावसे सबही लोगोंके शरीर रूखे होगये, और पृथ्वी अनाजोंसे भरपूर होरहीहै और अग्निही इस समय लोगोंको प्रिय लगतीहै शरदीसे पानी नहीं छुआ जाता ॥ ५ ॥ इस समय मनुष्य गण नये अनाजसे देवता और पित्रोंकी विशेष भांतिसे पूजा करके नवशस्य निमित्तक यज्ञ करते हुए निष्पाप हुएहैं ॥ ६ ॥ इस समय सब देशोंमें काम्यवस्तु; दही, दूध, गोरस आदि बहुत प्राप्त होताहै इस समय विजयकी इच्छा किये हुए राजा लोग देशोंमें घूमनेंके लिये यात्रा करतेहैं ॥ ७ ॥ दक्षिण दिशामें सूर्य भगवानका अधिक अनुराग होनेसे उत्तर दिशा तिलक हीन स्त्रीकी नांई शोभा रहित हो गईहै ॥ ८ ॥ एकतो हिमालय पर स्वभावसेही बहुत पाला पडताहै तिसपर अब सूर्य भगवान् उस्से बहुत दूर होगयेहैं; तिस्से हिमवानका हिमालय (पालेका घर) नाम ठीक २ होरहाहै ॥ ९ ॥ इस समय दुपहरियामें घूमना अच्छा लगताहै धूप लगनेसे सुख होताहै, इस समय सूर्य सबके सुख देनेंवाले, और छाया जल एकवारही नहीं सेवन किया जाता ॥ १० ॥ अब सूर्य नारायणका वह पहला सा तेज नहींहै । कुहरा पडने व पवन चलनेसे जाडा बहुतही अधिक पडताहै तिस जाडेके पडनेंसे जीवमात्रही जडीभूत होगये, तिससे सब ही वन सूनेसे जान पडतेहैं प्रभातकाल हिमग्रस्त होकर प्रकाशित होताहै ॥ ११ ॥ पुष्य नक्षत्र युक्त इस पुष्य मासमें और पाला पडती हुई धूसर वर्ण इन दिनोंको रात्रिमें विना छाये हुए स्थानमें नहीं सोया जाता अब रात्रियों में शीत अधिक पडताहै ॥१२॥ जिस प्रकार श्वासकी बाफ लगनेंसे दर्पण अंधासा होजाताहै, वैसेही सुखसेव्यतादि सबही सौभाग्य इस समय सूर्यसे दबजानें और बरफके द्वारा किरणोंके ढक जानेंने धूसर वर्ण होजानेंसे चंद्रमाकाभी अब प्रकाशनहींहैं ॥१३॥ तुषार करके मलीन होनेंसे चांदनी अब पूर्णमासीकी रात्रिमेंभी नहीं खिलती केवल दीखतीहै जैसे सीताजी धूमके लगनेंसे श्याम होगईहैं और शोभित

नहीं होतीं ॥ १४ ॥ स्वभावतः शीतलता युक्त पछादिया पवन अब हिमसे आवृत और उससे मिलकर दूना शीतलहो चल रहाहै ॥ १५ ॥ यव और गेहुओं करके पूर्ण ओस जिनमें पडी हुई ऐसे समस्त वन सूर्यके उदय होनेपर शब्द करते हुए सारस और क्रौञ्चादिक पक्षियोंसे व्याप्त होकर शोभा विस्तार करतेहैं ॥ १६ ॥ सुवर्णके वर्णवाले शालि समूह खजूरके फूलकी समान तन्दुल भरी हुई बालोंके लगनेसे कुछ एक झुके हुए विराजरहेहैं ॥ १७ ॥ सूर्य आकाशमें ऊँचे उठकर चन्द्रमाकी समान शीतल अल्प प्रकाशमय दृष्टि आतेहैं; क्योंकि इधर उधर फैली हुई उनकी किरणें पालेसे ढक रहीहैं ॥ १८ ॥ धूपका तेज सवेरे २ तो कुछ होताही नहीं दुपहर को कुछ एक सुखका देनेवाला होता॰ है और उसी समय वर्ण कुछ पीला पड जानेंसे पृथ्वीमें शोभित होता है ॥ १९ ॥ प्रभातमें ओसकी बूंदोंके गिरनेंसे हरी २ घास गीली होरहीहै उस घासकर सूर्यकी किरणें पडनेसे वन भूमिकी शोभाकी सीमा नहीं रहती ॥ २० ॥ वनैला हाथी अधिक प्यासा होनेपरभी शीतल जल छूतेही उसी समय शूंड खेंच लेताहै॥ २१ ॥ डरपोक आदमी जिस प्रकार युद्धमें नहीं जाते, वैसेही यह जलचर पक्षी गण जलके समीप बैठे रह करभी किसी प्रकारसे जलमें डुबकी नहीं मारते ॥ २२ ॥ प्रसून शून्य वन श्रेणी रात्रिमें ओस और अंधकारसे ढक जाने और प्रभातको कुहरके अंधेरेसे छिपजानेंपर ऐसी लगतीहै मानों सोयरहीहै ॥ २३ ॥ अब समस्त नदियें वाफसे ढकी हुईहैं, और उनके तीरका रेतभी पालेके पडनेंसे गीला हो रहाहै; और शब्द करते हुए सारसोंके घूमनेंसे सब नदियें बहुतही शोभा युक्त हुईहैं ॥ २४ ॥ वर्फके गिरनें और सूर्यका तेज मंद होनेंसे,शीतके वशहो पर्वतोंके अग्रभागका जलभी प्रायः स्वादिष्ठ होगयाहै ॥ २५ ॥ अब जरा के वश हो जानेंसे पत्तोंके गिरजानें और पखंडियोंछे टूट जानें व हिमग्रस्त होजानेंसे कमल फूलमें केवल डंडी मात्र रह गईहै अब कमलाकर सरोवर शोभा नहीं पाते ॥ २६ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ! इस दारुण हेमन्त कालमें धर्मात्मा भरतजी आपकी भक्तिके वशहो नगरमें रहकरभी दुःखका बोझ सहन करते हुए तपस्या करते होंगे ॥ २७ ॥ और राज्य मान और अनेक प्रकारके राज्योचित सुख

छोडकर नियत समयपर आहार करके तपस्वीहो शीतल पृथ्वीपर शयन करते होंगे ॥ २८ ॥ वह निश्चय प्रति दिन इस समय निरालस्यहो मंत्री आदिकोंके साथ सरयू नदीमें नहानेके लिये जाते होंगे ॥ २९ ॥ भरतजी स्वभावसेही सुकुमारहैं और परम सुखसे पलकर इतनें बडे हुएहैं । सो अब वह किस प्रकारसे पाला पडते हुये प्रभात कालमें सरयूके जलसे स्नान करते होंगे। ॥३०॥आर्य! वह कमलनेत्र,श्यामवर्ण,बडाई करके युक्त शोभवान सूक्ष्मोदर, धर्मज्ञ, सत्यवादी, सभामें बडे ढीठे जितेन्द्रिय॥३१॥ प्रिय वचन बोलनेवाले शत्रुओंका दमन करनेवाले लंबी भुजाओंवाले लज्जाशील श्रीमान् भरतजी सब सुख भोगको जलांजलि देकर अंतःकरणसे आपकोही आश्रय किये हुएहैं ॥ ३२ ॥ हे वनवासिन् । यद्यपि आपके भ्राता महात्मा भरतजी तापस धर्मका आश्रय करके वनवासी नहीं हुएहैं तथापि उन्होंने आपके अनुरूप कार्यकर स्वर्गको जीत लियाहै ॥ ३३ ॥ जगत्में जो यह कहावत चली आतीहै कि मनुष्योंमें पिताका भाव नहीं आता वरन माताहीका स्वभाव आताहै सो भरतजीनें इस कहावतके विरुद्ध किया क्योंकि उनमें कैकेयीका स्वभाव नहींहै॥३४॥परन्तु श्रीराजाधिराज महाराज दशरथजी जिसके स्वामी और साधु भरतजी जिसके पुत्र वह जननी कैकेयी किस प्रकारसे ऐसी क्रूर बुद्धि वाली हुई ? ॥ ३५ ॥ महात्मा लक्ष्मणजीनें जब भाईके स्नेहके वशहो इस प्रकार कहा तब श्रीरामचंद्रजी माता कैकेयीकी वह निन्दा न सहते हुए कहनें लगे ॥ ३६ ॥ हे भइया । मँझली माता कैकेयीकी निन्दा मत करो तुम केवल इक्ष्वाकुनाथ भरतजीकेही गुणगणोंका बखान करो ॥ ३७ ॥ यद्यपि हमारी बुद्धि एक मात्र वनवासमें निश्चित और दृढ व्रत हुईहै तथापि भरतजीके स्नेहके वश होकर बावरीसी होगईहै ॥ ३८ ॥ भरतजीकी प्रिय मधुर हृदयको अमृतकी नांई सिंचन करने वाली मनको आह्लाददेने वाली वार्त्ता बार २ हमारे मनमें स्मरण होरहीहै ॥ ३९ ॥ नहीं जानते कि कितनें दिनोंमें फिर महात्मा भरतजी और शत्रुघ्नजीसे तुम्हारे सहित हम मिलेंगे । ॥ ४० ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारसे विलाप करते २ भ्राता लक्ष्मण और सीताके सहित गोदावरी नदीपर पहुंचकर स्नान करते हुए ॥ ४१ ॥ फिर सबनें गोदा-

वरीके जलसे पितृगणोंको देवतोंको तर्पण करके उदित सूर्य व और दूसरे देवताओंका स्तोत्र किया ॥ ४२ ॥

कृताभिषेकःसरराजरामःसीताद्वितीयःसहल क्ष्मणेन ॥ कृताभिषेकस्त्वगराजपुत्र्यारुद्रः सनंदिर्भगवानिवेशः ॥ ४३ ॥

भगवान् भूतनाथ पार्वती और नन्दिके सहित स्नान करके जिस प्रकारसे शोभाको प्राप्त होते हैं सीताजी और लक्ष्मणजीके सहित नहाकर श्रीरामचन्द्रजीनेंभी वैसेही शोभा धारण की ॥ ४३ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० अर० षोडशः सर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः ॥

कृताभिषेकोरामस्तुसीतासौमित्रिरेवच ॥ तस्माद्गोदावरीतीरात्ततोजग्मुःस्वमाश्रमम् ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजी, सीताजी, व लक्ष्मणजी तीनों जन स्नान करके गोदावरीके तीरसे आश्रमको लौटे ॥ १ ॥ और श्रीरामचन्द्रजीने आश्रममें पहुँच कर लक्ष्मणजीके साथ प्रथम कालकी सब क्रिया कर पर्णशालामें प्रवेश किया ॥ २ ॥ और महर्षि लोगों से पूजे जाकर वहां सुखसे वास करनें लगे उस काल सीताजीके सहित पर्णशालामें आसीन होनेंसे ॥ ३ ॥ महाबाहु रामचन्द्रजी; चित्रा नक्षत्र युक्त चन्द्रमा की समान शोभा पानें लगे। तिसके पीछे भ्राता लक्ष्मणजीके सहित रामचन्द्रजीनें अनेक प्रकारकी कथा वार्त्ता आरंभ करदी ॥ ४ ॥ इस प्रकारसे बैठे रहकर कथा वार्त्ता कहनेंमें लगे हुयेहैं कि इतनेंही में कोई राक्षसी अपनी इच्छासे घूमतीहुई वहां आई ॥ ५ ॥ यह राक्षसी दशवदन रावणकी बहनथी नाम इसका शूर्पणखा था वह देवताओंकी समान रामचन्द्रजीके निकट आकर उनको देखती हुई ॥ ६ ॥ उसनें देखा कि रामचन्द्रजीका वदन प्रदीप्तमान है बाहें घुटनोंतक आती हैं दोनों नेत्र कमल दलकी समान बडे हैं चाल हाथीकी समान है शिर पर जटा धारण किये हुयेहैं ॥ ७ ॥ अंग प्रत्यंग अति कोमल हैं बल विक्रम

अपार है। शरीर राजलक्षणों करकै युक्त है। वर्ण नीले कमलकी समान श्यामता लिये हुयेहैं कोटि मदनकी समान सुन्दर हैं ॥ ८ ॥ इस प्रकार साक्षात् इन्द्रकी समान श्रीरामचन्द्र जीको देखकर राक्षसी कामसे मोहित हुई । श्रीरामचन्द्रजीका वदन मण्डल श्रेष्ठथा। राक्षसीका मुख खरावथा रामचन्द्रजीका मध्य देश गोलाकार व राक्षसीका उदर अति वृहत् था ॥ ९ ॥ श्रीरामचन्द्रजीके दोनों नेत्र अति विशाल व राक्षसी की आंखें अति बुरीथीं रामचन्द्रके अति श्रेष्ठ । घूंघर वाले वालथे और राक्षसी के केश ताम्रवर्ण थे। श्रीरामचन्द्र जी प्रिय रूपवान और राक्षसी महाभयानक रूपथी श्रीरामचंद्रजीका अति मधुर स्वरथा और राक्षसीका स्वर नितान्त कर्कश भीषण और भयंकरथा ॥१०॥ श्रीरामचंद्रजी युवाथे, व राक्षसी महावृद्धाथी, श्रीरामचंद्रजी अति मधुर वचन बोलनें वाले, व राक्षसी अत्यन्त कर्कश भाषिणी थी, श्रीरामचंद्रजी न्याय वृत्त, और राक्षसी दुर्वृत्तथी, श्रीरामचंद्रजी देखनें में जैसे प्यारे थे ! वह राक्षसी देखनें में वैसीही कुप्यारीथी ॥ ११ ॥ ऐसी शूर्पणखा महाकामातुर होकर श्रीरामचंद्रजीसे बोली कि तुम जटा रखाये तपस्वीका वेष धारे धनुप वाण लिये स्त्री सहित ॥ १२ ॥ किस कारणसे राक्षसोंसे सेवित देशमें आयेहो तुम्हारे यहां पर आनेका क्या प्रयोजन है ? सो यथार्थ कहो ॥ १३ ॥ शत्रुओंके तपानेवाले श्रीरामचंद्रजी राक्षसी शूर्पणखाकी यह वार्त्ता सुनकर सरलता सहित कुछ न छिपाते हुए सब वर्णन करने लगे ॥ १४ ॥ श्रीरामचंद्रजी बोले कि देवताओंकी समान विक्रमवान दशरथजी नामक एक राजाथे हम उनके ज्येष्ठ पुत्रहैं लोकमें हमारा नाम रामहै ॥ १५ ॥ और इनका नाम लक्ष्मणहै, यह हमारे आज्ञाकारी छोटे भ्राताहैं, और यह विदेहकुमारी हमारी भार्या हैं इनका सीता ऐसा नामहै ॥ १६ ॥ पिता और माता कैकेयीके कहनेंसे धर्मके लाभकी आशा और धर्मकी रक्षा करनेंके कारण वनमें वास करनेंके लिये हम इस स्थानमें आयेहैं ॥ १७ ॥ इस समय यह हमारी इच्छा तुमको जाननेंकी हुईहै, तुम कौनहो किसकी बेटीहो; और किसकी स्त्रीहो ! हमें तो ऐसा जान पडताहै कि तुम राक्षसोंका मन मोहने वालीहो ॥ १८ ॥ और तुम किसलिये यहां आई हो सो सत्यही सत्य

कहो! यह वचन सुनकर वह मदनसे आतुर हुई राक्षसी बोली ॥ १९ ॥ हे रामचंद्र! तुम ठीक २ हमारा परिचय सुनो हम कहती हैं; शूर्पणखा नामक कामरूपा राक्षसी ॥२०॥ सबको भय उपजाती हुई अकेली इस वनमें घूमा करतीहैं हमारे भइयाका नाम रावणहै सो कदाचित् तुमने उसका वृत्तान्त व नाम सुनाही होगा॥२१॥हमारे और दो भाइयोंका नाम कुम्भकर्ण और विभीषणहै कुंभकर्ण अति बलवानहै और सदा सोताही रहता है और विभीषण परम धार्मिक है राक्षसोंके चरित्र उसमें नहीं हैं ॥२२॥ खर और दूषण यह दोनोंभी हमारे भ्राता रणमें बडे वीर्यवान और बलशाली लोकमें प्रसिद्ध हैं ॥ २३ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचन्द्रजी तुमको प्रथम देखते ही हम उन सबको छोड छाँड तुम्हारा अपूर्व रूप देख पुरुषोत्तम जान प्रेमके मारे अपना पति बनानेके लिये यहां आईहैं॥२४॥ हममें बडा पराक्रमहै; और बल होनेके कारण जहां इच्छा होतीहै वहीं स्वच्छन्दतासे घूमती रहती हूं।सो तुम सदाके लिये हमारे स्वामी बनो।इस सीताको लेकर क्या करोगे? ॥ २५ ॥ यह सीता विकटाकार और कुरूपाहै; किसी भांतिभी यह तुम्हारे योग्य नहींहै हमको देखो; हमहीं रूपके हेतु तुम्हारी भार्या बननेके लायकहैं ॥ २६ ॥ हम तुम्हारे इस भ्राताके सहित इस मानवी, कुरूपा, असती, कराला और नतोदरी सीताको भक्षण कर जांयगी ॥ २७ ॥ तुम काम भोग में तत्पर होकर हमारे सहित और पर्वतोंके शृङ्गोंको देखते हुए दंडकारण्यमें विचरण करोगे ॥ २८ ॥

इत्येवमुक्तःकाकुत्स्थःप्रहस्यमदिरेक्षणाम् ॥
इदंवचनमारेभेवक्तुंवाक्यविशारदः ॥ २९ ॥

वचन बोलनेमें चतुर रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी यह वचन सुन ऊंचे स्वरसे हँसकर क्रूरनयना शूर्पणखासे बोले ॥ २९ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आ० सप्तदशः सर्गः॥१७॥

अष्टादशः सर्गः ॥

तांतुशूर्पणखांरामःकामपाशावपाशिताम् ॥
स्वेच्छयाश्लक्ष्णयावाचास्मितपूर्वमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

श्रीरामचंद्रजीने उपहास करनेंके लिये हँस कर मधुर वचनसे उस कामके फंदमें फँसी शूर्पणखासे कहा ॥ १ ॥ अयि कल्याणी! हमारा विवाह होगयाहै यह सीताजी हमारी स्त्रीहै । सो तुम सरीखी स्त्रियोंको सौतका होना बहुतही दुःखका विषय है ॥ २ ॥ परन्तु हमारे यह छोटे भ्राता लक्ष्मणजी सच्चरित्र श्रीमान् वीर्यवान और प्रियदर्शनहैं । इनका विवाह अभी नहीं हुआहै अथवा अकृतद्वार. इनके निकट स्त्री नहींहैं अथवा इन्होंने स्त्री परिग्रह नहीं कियाहै ॥ ३ ॥ इन्होंने पहले कभी स्त्रीका सुख नहीं भोगा है इसी कारण यह विवाहार्थी हुएहैं और विशेष करके यह युवाहैं तिस्से यह सब प्रकारसे तुम्हारे लायक स्वामी होंगे ॥ ४ ॥ हे बडे नेत्रोंवाली! सूर्यकी प्रभा जिस प्रकार सुमेरुकी भजना करतीहै, तुमभी वैसेही सौत रहित होकर हमारे इन भाईकी स्वामीकी भांतिसे सेवा करो ॥ ५ ॥ वह कामसे मोहित हुई राक्षसी रामचंद्रजीके यह वचन सुनकर तुरन्त लक्ष्मणजीके निकट जाकर कहनें लगी॥६॥मैं सब स्त्रियोंसे अधिक सुन्दरहूं तिससे तुम्हारे इस रूप लायकही भार्या बनूंगी तुम हमारे सहित सुखपूर्वक समस्त वनोंमें विचरण करोगे ॥ ७ ॥ उस राक्षसीसे ऐसा सुन वचन बोलनेंमें चतुर सुमित्रानंदन लक्ष्मणजी मन्द मन्द हँसकर उस्से यह युक्तियुक्त वचन बोले ॥ ८ ॥ अयि कमलवर्णनि! हम दासहैं फिर किस कारण तुम हमारी स्त्री बनकर दासी बननेंकी अभिलाषिणी हुईहो! हम इन बडे भ्राता रामचन्द्रजीके दासहैं ॥ ९ ॥ हे विशालनेत्रवाली! तुम सिद्धकामा, और आनन्दिता होकर सर्व भावसे संपत्तिमान हमारे बडे भ्राता आर्य श्रीरामचन्द्रजीकी दूसरी स्त्री बनो क्योंकि उनसे विवाह करनेंमें तुम्हारी विधि भली मिलेगी। उनका श्यामरंग तुम्हारे वर्णसे कुछ २ मिलता हुआहै । परन्तु हमारा तुम्हारा रंग कुछभी नहीं मिलता ॥ १० ॥ फिर जब इनसे विवाह कर लोगी तो यह कुरूपा, असती, भय उपजानें वाली, कृशोदरी, और वृद्धा भार्याको त्याग करके तुममेंही अनुरागी हो जांयगे ॥११॥अयि वरवर्णिनि! अयि वरारोहे! कौन चतुर पुरुषहै जो तुम्हारे इस श्रेष्ठ रूपका अनादर करके मानुषीमें अनुरागीहो ? ॥ १२ ॥ जब लक्ष्मणजीनें इस प्रकार कहा तौ बडे पेटवाली सबलोकोंको डरावनेंवाली निशाचरी शूर्पणखा

उस हँसीकी वातको न समझकर लक्ष्मणजीकी बातको सत्यही समझी ॥ १३ ॥ तिसके पीछे वह मोहित होकर पर्णकुटीमें सीताजीके साथ बैठे हुये शत्रुओंके तपानेंवाले अजेय श्रीरामचन्द्रजीसे कहनें लगी ॥ १४ ॥ कि तुम इस बुढिया कुरूपा कृशोदरी, भय उपजानेंवाली असती स्त्रीमें अनुरागी होकर हमारा आदर सन्मान नहीं करते ॥ १५ ॥ तिससे तुम्हारे सामनेही इसी मुहूर्त्तमें हम इस मानुषीको भक्षण करेंगी और सौतहीन होकर यथा सुखसे घूमा करेंगी ॥ १६ ॥ यह कहकर जलते अंगारेकी समान चमकते हुये नेत्रोंवाली निशाचरी महा क्रोधमें भरकर हरिणके बच्चोंकी समान नेत्रहैं जिनके ऐसी सीताजीके सामनेको दौडी जैसे रोहिणीकी ओर उल्का धावमानहो ॥ १७ ॥ उस यमकी फांसीकी समान राक्षसीको सामने आते देखकर श्रीरामचन्द्रजी क्रोधमें भर उसको रोक लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १८ ॥ हे लक्ष्मण ! क्रूर स्वभाव वाले ! दुष्टोंके साथमें हँसी करनाभी किसी भांति कर्त्तव्य नहींहै । देखो इस परिहासके होनेंसेही जानकीजीको अपने जीवनमें संदेह हुआहै॥१९॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! इस समय तुम इस कामसे मत्त हुई वडे पेट वाली कुरूपिणी असती राक्षसीको औरभी कुरूप करदो ॥ २०॥ महा बलवान श्रीलक्ष्मणजीनें श्रीरामचन्द्रजीके यह वचन सुनकर महाक्रोधितहो तलवार उठाकर उनके सामनेही राक्षसी शूर्पणखाके नाक कांन काट डाले॥२१॥ नाक कान कटाये हुए घोर स्वभाववाली वह राक्षसी उस समय विकट शब्दसे चिल्लातीहुई जहांसे आईथी उसी वनकी ओर शीघ्रतासे दौडी॥२२॥ अति भयंकर शरीर वाली कुरूपा वह राक्षसी शरीरमें रुधिर लगाये हुए वर्षा कालीन बादरकी समान विविध प्रकारके शब्द करनें लगी॥२३॥ तिसके पीछे वह बांहे उठाकर घावोंसे रुधिर बहाती–गर्जती हुई महा वनमें प्रवेश कर गई ॥ २४ ॥ वहां प्रवेश करके उसी कुरूप रूपसे राक्षस गणोंसे घेरे हुए जनस्थानवासी उग्र तेजवान अपनें भाई खरके निकट जाकर आकाशसे वज्र पातकी समान पृथ्वीमें गिरी ॥ २५ ॥

ततःसभार्यंभयमोहमूर्छितासलक्ष्मणंराघव
मागतंवनम् ॥ विरूपणंचात्मनिशोणितो

क्षिताशशंससर्वंभगिनीखरस्यसा ॥ २६ ॥

रुधिर जिसके सब अंगोंमें लगा हुआ भय और मोहसे जिसका चित्त ठिकानें नहीं ऐसी उस खरकी बहिन राक्षसी शूर्पणखानें खरसे स्त्री और भ्राताके सहित श्रीरामचन्द्र जीका वनमें आना और उनसे अपने नाक कान काटे जानेंका सब वृत्तान्त कह सुनाया ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा० वा० आ० पण्डितज्वालाप्रसादमिश्रकृत भाषानुवादे आर० अष्टादशः सर्गः ॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः ॥

तांतथापतितांदृष्ट्वाविरूपांशोणितोक्षिताम् ॥
भगिनींक्रोधसंतप्तःखरःपप्रच्छराक्षसः ॥ १ ॥

राक्षसगण खर अपनी बहनको कुरूपा, शरीरमें रुधिर लगा हुआ और पृथ्वीमें पडा हुआ देखकर क्रोधसे संतापित हो, बूझनें लगा ॥ १ ॥ खरनें कहा, उठकर बैठो, वृत्तान्त तो कहो, मूर्च्छा और चित्त की चपलताको छोडो, साफ २ कहो कि किसनें तुमको ऐसा विरूप किया? ॥ २॥ किसने सामने बैठे हुए, कुण्डली बाँधे हुए निरपराध विष धर काले सांपको खेलसेही उंगली के पोरुएसे छेडकर जगायाहै? ॥३ ॥ उसनें तेरे साथ कुत्सित व्यापार कर अब भयंकर विष पिया, अपने गले में कालकी फांसी डाली सो वह अज्ञानी इस बात को जो विपत्ति उसके ऊपर पडेगी उसको नहीं समझा है ॥ ४ ॥ बल विक्रम सम्पन्न यमराजकी समान चलनेवाली काम रूपिणी यमसमान तुम किसके पास गईथी, कि जिसनें तुम्हारी यह दशा की है ? ॥ ५ ॥ देव गन्धर्व भूत और महात्मा ऋषि लोगों में कौन ऐसा वीर्यवान है कि—जिसनें तुमको विरूप किया है ॥ ६ ॥ देवता ओंमें पाक शासन सहस्रलोचन, इन्द्रके सिवाय, ब्राह्मण में हम ऐसा और किसीको नहीं देखते जो हमारा अप्रिय कार्य करे ॥ ७ ॥ हंस जिस प्रकार जलसे मिले हुए दूधको अलग कर पीलेताहै आज हम भी प्राण हरणकारी तीरोंके समूहसे उसके शरीरसे प्राण अलग करेंगे, कि जिसनें तुमको विरूप

किया है ॥ ८ ॥ समर में मुझ करके शर जाल द्वारा छिन्न मर्म किसमरे हुए पुरुषका फेन सहित रुधिर पृथ्वीनें पीनेंकी इच्छा की है॥ ९ ॥ लडाई में मुझ करके मारे हुए किस पुरुषके देहसे मांस नोच २ कर आनंद सहित चील गिद्धादि पक्षी खांयगे ॥ १० ॥ हम संग्राम में जिसके ऊपर चढाई करेंगे उस हतभागेको, क्या देवता, क्या गन्धर्व, क्या पिशाच, क्या राक्षस, कोई भी उद्धार करनेंको समर्थ नहीं होगा॥११॥ इस समय तुम सहज २ सावधान होकर हमसे कहो कि किस दुष्ट व्यक्ति नें वनमें पराक्रम प्रकाश करके तुमको पराजय किया है? ॥ १२ ॥ महा क्रोधित हुए अपनें भाई खरके यह वचन सुनकर शूर्पणखा आंसू पोंछती हुई बोली ॥ १३ ॥ कि तरुण, रूप सम्पन्न, सुकुमार, महा बलवान कमलनयन चीर व मृग चर्म धारण किये ॥ १४ ॥ कन्द मूल फलके खानेवाले जितेन्द्रिय तपस्वी, ब्रह्मचारी राजा दशरथके दो पुत्र राम, व लक्ष्मण ॥ १५ ॥ वह देखनेंमें गन्धर्वराजकी समान और राज लक्षणोंकरके युक्त जान पडते हैं। वह दोनों जन देव हैं, अथवा दानव इसका कुछ निश्चय नहीं हो सकता ॥ १६ ॥ हमने देखा है कि वहां पर उन दोनों जनोंक साथ एकरूपवती सब भूषण धारण किये हुए युवाअवस्थाको प्राप्त एक स्त्रीभीहै ॥ १७ ॥ उन दोनों भाइयोंनें मिलकर उस स्त्रीके कहने से, जैसे कोई अनाथ कुलटा स्त्रीकी दुर्दशा करताहै, वही दशा हमारीकी अर्थात् नाक कान काट डाले ॥ १८ ॥ हम कुटिल चरित्रवाली उस स्त्रीका और उन दोनों जनोंका झाग सहित रुधिर समरमें पान करनेकी इच्छा करतीहैं ॥ १९ ॥ तुम हमारी यह पहली अभिलाषा पूर्ण करो हम संग्राममें उस स्त्रीका और उन दोनों का खून पियेंगी ॥ २० ॥ जब शूर्पणखाने यह वचन कहे तब खरने क्रोधित होकर महाबलवान् [१४] राक्षसोंको आज्ञादी कि ॥ २१ ॥ शस्त्र लगाए हुए चीर व मृग चर्म पहरे हुए, दो मनुष्य घोर दण्डकारण्यमें स्त्री सहित आये हैं ॥ २२ ॥ सो तुम उन दोनों जनोंको और उस दुष्टा स्त्रीको मार करके लौट आओ क्योंकि हमारी यह बहन उनका रुधिर पियगी ॥ २३ ॥ हे राक्षसा! तुम लोग शीघ्र जाकर बलसे उन दोनों जनोंको संहार करके हमारी बहनका यह अभीष्ट मनोरथ पूरा

करो ॥ २४ ॥ तुमनें युद्धमें उन दोनों भाइयोंको मार डालाहै सो देख-कर हमारी यह बहन अतिशय संतोषित और हर्षित होकर युद्धके स्थलमें उनका रुधिर पियेगी ॥ २५ ॥

इतिप्रतिसमादिष्टाराक्षसास्तेचतुर्दश ॥
तत्रजग्मुस्तयासार्धंघनावातेरिताइव ॥ २६ ॥

इस प्रकारकी आज्ञा पाकर यह चौदह राक्षस वायुसे चलायमान मेघ-की समान शूर्पणखाके साथ जहां श्रीरामचन्द्रजीथे- उस स्थानकी यात्रा करते हुए ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०आर०एकोनविंशःसर्गः॥१९॥

विंशः सर्गः ॥

ततःशूर्पणखाघोराराघवाश्रममागता ॥
राक्षसानाचचक्षेतौभ्रातरौसहसीतया ॥ १ ॥

तिसके पीछे शूर्पणखा श्रीरामचन्द्रजीके आश्रममें आई, और राक्ष-सोंको सीताजीके सहित उन दोनों भ्राताओंको दिखा दिया ॥ १ ॥ उन राक्षसोंनें पर्णशालामें महाबलवान् श्रीरामचन्द्रजीको श्रीसीताजीके सहित बैठा और लक्ष्मणजीसे सेवित देखा ॥ २ ॥ श्रीमान् रघुनन्दन रामचन्द्रजी इन राक्षसोंको आया हुआ देखकर दीप्तिसे तेजमान भ्राता लक्ष्मणजीसे बोले ॥ ३ ॥ हे लक्ष्मण! एक घडीभर तुम सीताजीके निक-ट रहो। इतने में हम इस राक्षसीके पक्षपाती इन सब राक्षसोंको मार डालें ॥ ४ ॥ तब विदितात्मा लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके वचन श्रवण करके तथास्तु कह उनकी बात शिरमाथे चढाते हुए ॥ ५ ॥ व इधर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रभी सुवर्णभूषित महा धनुषमें रोदा चढाय इन सब राक्षसोंसे बोले ॥ ६ ॥ हम दो भ्राता हैं, नाम हमारा राम व लक्ष्म-ण है राजा दशरथजीके पुत्र हैं; हम सीता सहित इस दुर्गम दण्डका-रण्यमें आयेहैं ॥ ७ ॥ हम फल मूल खानेवाले अपनी इन्द्रियोंको जीते हुएहैं तपस्वी और धर्मचारी होकर दण्डकारण्यमें वास करतेहैं, सो तुम किसकारण हमको मारते हो ॥ ८ ॥ यदि कहो कि तुम तपस्वी होकर धनुष क्यों धारण किये हो तो इसका उत्तर यह है कि

तुम लोग पापात्मा हो सो महावनमें ऋषि लोगोंकी आज्ञासे हम तुमको विनाश करनेके लिये धनुष धारणकर यहां आयेहैं ॥ ९ ॥ सन्तुष्ट हो कर इसी स्थानमें खडे रहो, और आगे न बढो; हे निशाचरगण! यदि प्राणोंका मोह होवे, और तुम इसका प्रयोजन समझते हो तो यहांसे लौट जाओ हम किसीको नहीं मारेंगे ॥ १० ॥ ब्रह्मघाती, शूलधारी, भयंकर यह चौदह राक्षस श्रीरामचंद्रजीके यह वचन श्रवण करके महाक्रोधित हो बोले ॥ ११ ॥ सबही लाल २ नेत्र कर रामचंद्रके प्रति कठोर वचन कहते थे वह सब श्रीरामचंद्रजीके पराक्रमको नहीं जानतेथे इससे हर्षयुतहो मधुर वचन बोलनेंवाले श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ १२ ॥ तुमने हमारे प्रभु महात्मा खरको क्रोध उपजायाहै, इस कारण अभी युद्धमें हमारे हाथसे मारे जाकर तुमको शीघ्रही प्राण छोडने पडेंगे ॥ १३ ॥ तुम इकले हो और हम बहुतहैं, इसलिये लडाईमें युद्ध करना तो दूर रहै हमारे सामनें भी तुम खडे नहीं हो सकोगे ॥ १४ ॥ हमारे इन बाहोंसे परिघ, शूल, और पटासे घायल होकर तुमको प्राण, वीर्य और हाथमें धारण किया हुआ धनुष त्याग करना पडेगा ॥ १५ ॥ यह चौदह राक्षस इस भांतिसे कहकर महा क्रोधित हो आयुध और खड्ग उठाकर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौडे॥१६॥ और यह सब दुर्जय अस्त्र शस्त्र शूलादि श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चलानें लगे। उन चौदह राक्षसोंके चलाये हुए शूल आदि श्रीरामचंद्रजीनें ॥ १७ ॥ चौदहही स्वर्ण भूषित बाणोंसे काटकर फेंक दिये। तत्पश्चात् महातेजवान् श्रीरामचंद्रजीनें सूर्यकी समान प्रभा वाले बाण ग्रहणकर ॥ १८ ॥ उनको धनुष पर चढाय महा क्रोधवान हो चौदह राक्षसोंको ताक कर शिलपशाणित नामक बाण ॥ १९ ॥ छोडे, जिस प्रकार इन्द्र वज्र छोडतेहैं। यह सब नाराच अति वेगसे राक्षसोंकी छातियों में प्रवेश कर रुधिरमें सन ॥ २० ॥ पृथ्वीमें गिरे जिस प्रकार बँमईमें से सांप निकला करतेहैं। राक्षसभी इन सब बाणोंसे छिन्न भिन्न हृदयहो पृथ्वी में गिरे। जैसे जड कटे हुए वृक्ष भूमिमें गिर पडतेहैं ॥ २१ ॥ वह राक्षस कलेजेमें बाण लगनेके कारण रुधिरमें सराबोर हो रहेथे, प्राण जाते रहेथे उनकी सूरतें बिगडगईथीं ऐसा उन राक्षसोंको गिरा हुआ देखकर

राक्षसी शूर्पणखा क्रोधसे अधीरा होकर ॥ २२ ॥ अपने भाई खरके पास जा फिर कातरहो गिर पडी उस समय उसके शरीरका रक्त कुछेक सूख गयाथा इस कारण वह गोंद लगी लताके समान दृष्टि आतीथी ॥ २३॥ राक्षसी अपने भ्राता खरके निकट शोकसे पीड़ितहो घोर चिल्लाने लगी और उदासीन मुख व विकट शब्दसे रोने लगी ॥ २४ ॥

निपातितान्प्रेक्ष्यरणेतुराक्षसान्प्रधाविताशू
र्पणखापुनस्ततः ॥ वधंचतेषांनिखिलेनर
क्षसांशशंससर्वंभगिनीखरस्यसा ॥ २५॥

खरकी बहन शूर्पणखा राक्षसी राक्षसोंको मरा हुआ देख वेगसे दौड आकर खरसे बोली कि राक्षस सब मारे गये ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे आदिकाव्ये वाल्मीकीये आरण्यकांडे विंशतितमःसर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः ॥

सपुनःपतितांदृष्ट्वाक्रोधाच्छूर्पणखांपुनः ॥
उवाचव्यक्तयावाचातामनर्थार्थमागताम् ॥ १ ॥

अनर्थके निमित्त आई हुई शूर्पणखाको फिर पृथ्वीमें पडा हुआ देखकर खर क्रोधमें भर फिर जोरसे कहनें लगा ॥ १ ॥ कि हमनें तुम्हारा प्रिय कार्य करनेंके लिये मांस खानेवाले, चौदह राक्षसोंको आज्ञादीहै सो अब फिर तुम किस कारणसे रो रहीहो? ॥ २ ॥ वह राक्षस जो कि हमनें भेजेहैं सब हमारे अनुरागी भक्त और सदाही हित करनेंवालेहैं वह किसीके मारेसे मरनेंवाले नहींहैं और सबही अंतःकरणसे हमारी आज्ञाका पालन करते रहतेहैं ॥ ३ ॥ फिर तुम किस कारण हानाथ कह वार २ चिल्लाकर सर्पकी समान लोट रहीहो सो इसका क्या कारणहै। उसको मैं जानना चाहताहूं ॥ ४ ॥ हमसा रक्षक होनें परभी तुम किस कारण अनाथकी समान विलाप करतीहो। उठो और शोकका त्याग करो ॥ ५ ॥ खरनें जब इस प्रकार कहकर विशेष भांतिसे शूर्पणखाको समझाया बुझाया तब दुर्द्धर्ष शूर्पणखा आंसूभरे नेत्रोंको पोंछे बोली ॥ ६ ॥ कि हमारे नाक कान दोनोंही गयेहैं और मैं खूनसे भीज

गईहूं इस अवस्थामें पहले की समान फिर तुम्हारे पास आईहूं और तुमने हमको बहुत समझाया बुझाया ॥ ७ ॥ परन्तु तुमनें जो हमारा प्रिय कार्य करनेंकी कामनासे लक्ष्मण सहित भयानक रामचंद्रको मार डालनेंके लिये जो वीर चौदह राक्षस भेजेथे ॥ ८ ॥ रामचंद्रनें मर्मभेदी बाणोंको छोडकर शूल, पटा आदि, हाथमें लिये हुए क्रोधपरायण, उन सबही राक्षसोंको युद्धमें मारडाला ॥ ९ ॥ अतिशय तेजस्वी राक्षसोंको क्षण भरमेंही पृथ्वी पर पडा हुआ देख और रामचंद्रका यह भारी कार्य देख मुझको महा भय लगताहै ॥ १० ॥ मैं डरी हुईहूं, उत्कंठितहूं, और विषादित होकर सबही जगह भय देखती हुई तुम्हारी शरणमें आईहूं ॥ ११ ॥ तुम किस कारणसे हमारा उद्धार नहीं करते ? हम विषाद रूप मगर और गोहोंसे भरे हुए तरङ्ग उठते हुए गंभीर शोक सागरमें डूब रहीहैं ॥१२॥ जो मांस खानेवाले राक्षस हमारे साथ तुमनें भेजेथे उन सबको रामचंद्रनें तीखे बाणोंसे मारडाला ॥ १३ ॥ यदि हमारे ऊपर और उन सब राक्षसोंकी सन्तानोंके ऊपर तुमको दयाहो, यदि रामचंद्रसे युद्ध करनेकी शक्ति और तेज तुममेंहो ॥ १४ ॥ तब तौ राक्षस कुलके कण्टक रूप दंडकारण्यवासी रामचंद्रको आजही मारडालो यदि शत्रुओंके मारनेवाले रामचंद्रको तुम आजही संहार न कर डालोगे ॥ १५ ॥ तौ हम लाजरहित होकर तुम्हारे सामनेंही प्राण त्याग करेंगी क्योंकि हमें अपनी बुद्धिसे जान पडताहै कि तुम संग्राममें ॥ १६ ॥ रामचंद्रके सामने खडे न हो सकोगे यद्यपि तुम्हारे साथ चतुरंगिनी सेनाभी भारीहै और तुम अपनेको शूर कहकर अभिमानभी करतेहो किन्तु वास्तवमें तुम शूर नहीं हो और तुम्हारा विक्रमभी मिथ्या कहनेकेही लियेहै॥१७॥ हे मूढ ! हे कुलाधम ! तुम इस मुहूर्त्तही बन्धु बान्धव कुटुम्ब सहित इस जनस्थानसे भाग जाओ ॥ १८ ॥ नहीं तौ राम और लक्ष्मणको संग्राममें संहार करो, राम लक्ष्मण मनुष्यहैं यदि उनको मारनेकीभी सामर्थ्य तुममें नहींहै तौ हीनवीर्य दुर्बल होकर किस प्रकारसे यहां रह सकोगे ॥ १९ ॥ रामचंद्रके तेजसे निन्दितहो थोडेही समयमें तुम्हारा नाश हो जायगा । दशरथकुमार रामचंद्र स्वभावसेही अतिशय तेजमानहैं ॥ २० ॥ और उनके भाई लक्ष्मणभी महावीर्यवानहैं कि जिन्होने

हमारे नाक कान काट डालेहैं इस प्रकारसे वह बडे उदरवाली राक्षसी बहुत भांतिसे विलाप कर ॥ २१ ॥

भ्रातुःसमीपेशोकार्तानष्टसंज्ञाबभूवह ॥
कराभ्यामुदरंहत्वारुरोदभृशदुःखिता ॥ २२ ॥

अपने भ्राता खरके निकट शोकके मारे व्याकुलहो अचेतन होगई और दुःखसे व्याकुलहो दोनों हाथोंसे छाती पीट २ कर रोनें लगी॥२२॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वालमीकीये आ० आर० एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशःसर्गः ॥

एवमाधर्षितःशूरःशूर्पणख्याखरस्ततः ॥
उवाचरक्षसांमध्येखरःखरतरंवचः ॥ १ ॥

शूर्पणखानें जब क्रोधमें भरकर इस प्रकार खरका तिरस्कार किया तब तेजस्वभाववाला शूरवीर खर राक्षसोंकी सभाके बीचमें उससे कठोर वचन कहने लगा ॥ १ ॥ कि तुम्हारा अपमान होनेसे जो क्रोध हमको हुआहै उसकी तुलना नहींहै घावमें छोडे हुए नमकीन जलकी समान इस क्रोधको धारण करनेंकी हममें शक्ति नहींहै ॥ २ ॥ रामचंद्र और लक्ष्मण तौ मनुष्यहैं. हममें जो पराक्रमहै उससे हम रामको कुछ नहीं गिनते उस रामनें जो कुकर्म कियाहै उसके पापसे वह आजही निहत होकर प्राण त्याग करेगा ॥ ३ ॥ इसकारण तुम रोना धोना छोड डरका त्याग करो हम अवश्यही रामके सहित लक्ष्मणको यमपुरीमें पठावेंगे ॥ ४ ॥ अयि राक्षसि ! अब मरणोन्मुख रामचंद्रजी जब हमारे शरसे घायल होकर मर जायगा तब तुम उसका लाल २ गरम २ रुधिर पान करना ॥ ५ ॥ शूर्पणखा खरके मुखसे निकले हुए यह वचन सुन मोहसे अधिक हर्षमें भर फिर उस राक्षसश्रेष्ठ खरकी बडाई करनें लगी ॥ ६ ॥ जब निशाचरी शूर्पणखानें प्रथम निन्दाकी और फिर प्रशंसाकी तब तत्क्षण खर दूषण नामक अपने सेनापतिसे बोला ॥ ७ ॥ कि हे शुभ दर्शन ! जो सब भांतिसे हमारा प्रिय अनुष्ठान करनेंवालेहैं जो कभी युद्धमें पीठ नहीं दिखाते अति वेगवान् भयंकर चौदह हजार

राक्षस ॥ ८ ॥ जो लोगोंकी हत्या करके सदा खेला करतेहैं जिनका पराक्रम भयानक और जिनका वर्ण नीले बादरकी समानहै ऐसे राक्षसोंको सब प्रकारसे सजाकर हमारे सामनें लाओ ॥ ९ ॥ इसके सिवाय शीघ्र चलनें वाला रथ, धनुष, विचित्र बाण समूह तेजधारवाली अनेक भांति की शक्तियें और खड्गभी ले आओ ॥ १० ॥ हे रण पंडित ! महानुभव राक्षसोंके प्रथमही; हम महात्मा पुलस्त्यवंशसे, उत्पन्न जो रामचंद्र राक्षसोंको मारनेंके लिये आयेहैं उन दुर्विनीत रामचंद्रके वधार्थ संग्राममें जानेंकी इच्छा करतेहैं ॥ ११ ॥ खरनें जब इस प्रकार कहा तो दूषण तुरन्तही विचित्र वर्णवाले श्रेष्ठ घोडे जिसमें जुते हुए सूर्यकी समान चमकता हुआ रथ खरके समीप ले आया ॥ १२ ॥ इस रथका आकार मेरु पर्वतकी समान सब गहनें इसमें तपाए हुए सुवर्णके लगेथे पहिये सुवर्णके बनेथे और दोनों गुम्मजभी वैदूर्य मणिके बनेथे ॥ १३ ॥ जिसमें मछली पुष्प, द्रुम, शैल, चन्द्रकान्त मणि यह सुवर्णके लगे हुएथे और सुवर्णकेही पक्षि और तारागणभी इस रथमें जड रहेथे ॥ १४ ॥ छोटी २ पेटिय, इसमें लगी हुईथीं खर क्रोधमें भरा हुआ, कुछभी विलम्ब न करके ध्वजा पताका युक्त अच्छे घोडों करके चलाये जाते हुए रथपर सवार हुआ ॥ १५ ॥ खरको सवार हुआ देखकर दूषणनें रथ चर्म आदि हथियार लिये, ध्वजा युक्त बडी सेनाको युद्धके लिये कूच करनेंकी आज्ञादी उसनें जब सब राक्षसोंसे इस प्रकार कहा ॥ १६ ॥ तब भयंकर चर्म, ध्वजा युक्त वह राक्षसोंकी सेना महा वेगसे महा कुलाहल मचाती हुई जन स्थानसे चली ॥ १७ ॥ उस सेनामें राक्षस, मुद्गर, पटा, तेजशूल, फरशे, खड्ग, चक्र, व तोमरादि शस्त्र धारण किये शोभायमान थे ॥ १८ ॥ शक्ति, परिघ, महा भयंकर धनुष, गदा, तलवार, मूसल और भयंकर अस्त्र शस्त्र ग्रहण कर राक्षस जनस्थानसे निकले ॥ १९ ॥ इस प्रकार खरके मनकी बात करनेंवाले बडे भयंकर स्वरूप चौदह हजार राक्षस जनस्थानसे बाहर हुए ॥ २० ॥ वह भयंकर राक्षस जब महा वेगसे दौडे तब इसको देखकर खरका रथभी कुछ तिनके निकटही पहुँचा ॥ २१ ॥ सारथिनें खरकी आज्ञा जानकर विचित्र वर्णवाले सुवर्णके गहनें पहनें

घोड़ोंको शीघ्रतासे चलाया ॥ २२ ॥ उस समय रिपुघाती खरका चलता हुआ रथ अपने शब्दसे सहसा दिशा विदिशाओंको भर देता हुआ ॥ २३ ॥

प्रवृद्धमन्युस्तुखरःखरस्वरोरिपोर्वधार्थत्वरि
तोयथांतकः ॥ अचूचुदत्सारथिमुन्नदन्पुनर्म
हाबलोमेघइवाश्मवर्षवान् ॥ २४ ॥

अति बलवान् वह बडे स्वरवाला खर क्रोधमें भर यमराजकी समान शत्रुसंहार करनेमें विशेष शीघ्रता युक्त हो ओले वर्षाने वाले महामेघकी समान गर्जता हुआ सारथीसे बोला कि, रथ जल्दी २ चलाओ ॥ २४ ॥

इत्यार्षे श्रीरा० वा० आ० आ० द्वाविंशः सर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशः सर्गः ।

तत्प्रयातंबलंघोरमशिवंशोणितोदकम् ॥
अभ्यवर्षन्महाघोरस्तुमुलोगर्दभारुणः ॥ १ ॥

जब इस प्रकारके वह भयंकर राक्षसोंकी सेना युद्ध करनेके लिये चली, तब गंधर्वकी समान धूसरवर्ण महा डरावने मेघ आकाशमें उठकर कडा शब्द करके रुधिर मिला हुआ जल वर्षाने लगे ॥ १ ॥ खरके रथमें जो तेज चलने वाले घोडे जुत रहेथे वह राजमार्गमें चलनेके समय सहसा कुल बिछी हुई बराबर हुई पृथ्वीमें गिर पडे ॥ २ ॥ सूर्यमंडलके चारों ओर श्यामवर्णका घेरा बन गया इस घेरका बाहरी भाग अरुण वर्ण और आकार अंगार चक्रकी समान गोलथा ॥ ३ ॥ इसके पीछे बडे आकार वाला भयंकर गिद्ध बडी ऊंची सुवर्णकी रथकी ध्वजाके निकट आकर पंख उठाकर उसके ऊपर बैठ गया ॥ ४ ॥ विकट शब्दकारी, मांस खाने वाले पशु पक्षीगण जनस्थानके समीप आकर भयंकर शब्द करके चिल्लाने लगे ॥ ५ ॥ भयंकर सियार पूर्व दिशामें राक्षसोंका अमंगल-दायक भयंकर घोर शब्द करने लगे ॥ ६ ॥ मतवाले हाथियोंकी समान भयंकर मूर्तिवाले मेघ जलकी समान रुधिरकी वर्षा करके वहांके सब आकाशको एक वारही छालेते हुए ॥ ७ ॥ रुवें खडा करने वाला ऐसा घोर अंधकार छाया कि दिशा विदिशा समस्त एक साथही उससे ढक

गईं, फिर कुछभी दृष्टि न आया ॥ ८ ॥ संध्या खूनसे भीगे वस्त्रकी समान वर्ण धारण करके अकालमेंही प्रकाशित होगई भयंकर पशुपक्षी गणोंने खरके सन्मुख मुख करके कठोर स्वरसे चिल्लाना आरंभ किया ॥ ९ ॥ सफेद चील सियार और गिद्धगण खरको भय उपजाते हुए ऊँची आवाजसे शब्द करने लगे और युद्धमें जिनका बोलना महा अमंगलका उपजाने वालाहै ऐसी शृगालियांभी भय उपजाती हुई सेनाके सामने घोर शोर करने लगीं सूर्यके निकट परिघाकार कबंध दिखलाई देने लगा ॥ १० ॥ ११ ॥ महा ग्रह राहुने विना अमावास्या और पर्वकालकेही सूर्यको ग्रस लिया पवन प्रचंड चलने लगी सूर्यकी दीप्ति जाती रही ॥१२॥ और रात्रि न होने परभी तारागण पटवीजनेकी समान चमककर उदय हुए तालावोंके कमल सूख गये मछलीभी सागर सरोवरोंमेंही लीन होगईं और पक्षीभी नाशको प्राप्त होगये ॥ १३ ॥ उस समय सब वृक्ष फल फूलों करके रहित होगये और विना पवनके चलने परभी महा धूरि उडने लगी बादल लाल होगये ॥ १४ ॥ उस काल मैना पक्षी शिखाये हुए शब्दोंको त्याग करके (चीची कूचि इत्यादि) अर्थ रहित शब्द करने लगे घोर भयावन उल्कायें यह काँप करके पृथ्वीपर गिरने लगीं ॥ १५ ॥ और वन उपवन और पर्वत सहित पृथ्वी काँपने लगी धीमान् खर रथमें बैठकर गर्जन करने लगा ॥ १६ ॥ खरकी बाँईं भुजा बहुतही काँपने लगी स्वर बिगड़ गया इस प्रकार इधर उधर देखते २ उसके दोनों नेत्रोंमें आँसू भर आये ॥ १७ ॥ उस खरके शिरमें वारंवार पीर होने लगी तथापि मोहके मारे वह संग्राममें जानेसे नहीं लौटा इन सब रोमहर्षण महा उत्पातोंको उपस्थित हुआ देख ॥ १८ ॥ खर हँसता २ सब राक्षसोंसे बोला कि, यह तो घोर दिखाई देने वाले महा उत्पात इस समय हो रहेहैं इनको देखकर मैं ॥ १९ ॥ ऐसे कुछ नहीं समझता कि, बलवान् जिस प्रकार दुर्बलोंको नहीं गिनता वैसेही हमारे पराक्रमसे इन उत्पातोंको मनमें स्थान नहीं देते ! जो हम क्रुद्ध होवें तो तीखे बाणोंसे आकाशमंडलसे तारागणोंकोभी पृथ्वीपर गिरादें ॥ २० ॥ हम क्रोधित होतो यमराजकीभी मृत्यु शीघ लावें; इस्से हम बलसे दर्पित रामचंद्रको उसके भाई लक्ष्मण सहित ॥ २१ ॥ तीखे बाणोंके आघातसे विना मार

डाले हुए नहीं लौटेंगे। जिसके लिये रामचंद्र व लक्ष्मणकी विपरीत बुद्धि हुई और उन्होंने इसके नाक कान काट डाले ॥ २२ ॥ ऐसी हमारी बहन शूर्पणखा भ्राताके सहित रामका रुधिर पीकर सफल मनोरथ होवे और हमें पराजय होनेका कुछ डरही नहीं क्योंकि आजतक हम किसी संग्राममें पहले नहीं हारेहैं ॥ २३ ॥ सो तुम लोगोंको ज्ञातहीहै इस कारण हम मिथ्या नहीं कहते जो हम क्रुद्ध हो जाँय तो मत्त ऐरावत हाथीपर असवार इन्द्रको ॥२४ ॥ यद्यपि रणके मध्य उसके हाथमें वज्रभी हो तथापि मार डालें फिर राम लक्ष्मणके मारनेमें क्या बडी बातहै वह तो मनुष्यहैं यह कहकर खर गर्जने लगा जिसे श्रवणकर राक्षसोंकी बडीभारीफौज॥२५॥ अतुलित हर्षित हुई, यद्यपि यमके फंदमें फँसीथी। इस ओर युद्धके देख-नेकी वासनासे महात्मा लोग आये ॥ २६ ॥ उनमें ऋषि गण, देवगण गन्धर्वगण, व सिद्ध लोग सबही आये। वह पुण्य कर्म करने वाले वहाँ सबही एकत्र होकर परस्पर कहने लगे ॥ २७ ॥ कि गौ, ब्राह्मण, सुखसे रहें इसके सिवाय औरभी सब लोकसम्मत प्राणियोंका मंगल होवे और श्रीरघुनंदन श्रीरामचन्द्रजी युद्धमें पुलस्त्यवंशी राक्षसोंको जीतें ॥ २८ ॥ जैसे चक्रधारी विष्णुजीने समस्त असुर श्रेष्ठोंको जीताथा। परमर्षिगण ऐसे व औरभी अनेक प्रकारके वचन परस्पर कहने लगे ॥ २९ ॥ विमानमें बैठे हुए देवता लोग कौतूहलके वश होकर मृत्यु जिनकी निकट आई है ऐसे राक्षसोंकी बड़ी सेनाको देखने लगे ॥ ३० ॥ इस समय खर रथपर चढा हुआ सेनाके अगले भागमें हुआ, तब उसके अगल बगल श्येन गामी, पृथु श्याम, यज्ञ शत्रु, विहङ्गम ॥ ३१ ॥ दुर्ज्जय, पर-वीराक्ष, पुरुष, कालिका मुक, मेघ माली, महबाली वरास्य और रुधिराशन। यह बारह महावीर राक्षस खरको घेरे हुए जातेथे ॥ ३२ ॥ महाकाल, स्थूलाक्ष, प्रमाथि और त्रिशिरा, यह चार राक्षस दूषण सेनापतिके पीछे २ चले जातेथे ॥ ३३ ॥

सा भीमवेगा समराभिकांक्षिणी सुदारुणा रा
क्षसवीरसेना ॥ तौ राजपुत्रौ सहसाभ्युपेता
माला ग्रहाणामिव चंद्रसूर्यौ ॥ ३४ ॥

क्षुद्रारुण, महाबलवान् राक्षसगण समीपको आनेवाले किये हुए तबतो राजपुत्र रामचन्द्र और लक्ष्मणजीके निकट पहुँचे ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः ।

आश्रमंप्रतियातेतुखरेखरपराक्रमे ॥
तानेवौत्पातिकान्रामः सहभ्रातादर्शह ॥ १ ॥

इस भाँति तीक्ष्ण पराक्रम वाला खर जब रामचंद्रजीके आश्रमकी ओर चला तब श्रीरामचंद्रजीने भ्राता लक्ष्मणके सहित वह उत्पात जोकि खरके चलनेके समय हुएथे वह सब देखे ॥ १ ॥ श्रीरामचंद्रजी प्रजागणोंके अमंगलकारी महा घोर इन सब उत्पातोंको देखकर अस्वस्थ चित्तसे लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २ ॥ हे महाबाहो ! सब प्राणियोंके प्राणनाश करने वाले यह बड़े भारी उत्पात राक्षसकुलका संहार करनेके लिये होरहेहैं सो तुम देखो ॥ ३ ॥ गर्दभकी समान धूसर वर्ण वाले बादलोंका समूह इस आकाशमें इधर उधर दौडकर बडे शब्दसे गर्ज २ रुधिर वर्षाताहै ॥४॥ हमारे सब बाणोंसे धुआँ निकलताहै, सो यह युद्ध होनेका आनंद मना रहेहैं और स्वर्ण जिनकी पीठमें लगा हुआहै ऐसे धनुषभी विचलित हो रहेहैं ॥ ५ ॥ वनचर पक्षीगण जिस प्रकारसे शब्द करते हैं इससे राक्षसोंको भय और प्राण संशय आकर उपस्थित हुआहै ॥ ६ ॥ अब शीघ्रही महा युद्ध होगा, इसमें कुछभी संदेह नहीं है । परन्तु हे वीर ! हमारा यह दहना हाथ बार २ फडककर हमारे जयकी सूचना करताहै ॥ ७ ॥ हे शूर ! हमारी जय और शत्रुओंकी पराजय निकट आय पहुँची है, तुम्हारा वदनभी प्रसन्न और प्रभायुक्त देख पडता है ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण ! युद्ध करनेके लिये तैयार हुए जिन पुरुषोंका मुख मलीन हो जाताहै, इससे उन लोगोंकी आयुका क्षय होताहै ॥ ९ ॥ राक्षसोंके घोर और गंभीर गर्जनका यह शब्दभी अब सुनाई आताहै । व उन क्रूर कर्म करने वाले राक्षसोंके भेरीकी ध्वनिभी अब सुनाई आती है ॥ १० ॥ कल्याणके चाहने वाले पंडित पुरुष विपत्तिकी शंका रहनेसे प्रथमही उस आने

वाली विपत्तिका ऐसा उपाय करतेहैं कि जिस्से वह विपत्ति निकट न आवे ॥ ११ ॥ इस कारण तुम धनुष धारण करके जानकीजीको ले वृक्षों करके युक्त दुर्गम पर्वतकी कन्दरामें चले जाओ ॥ १२ ॥ तुम हमारे इन वचनोंके प्रतिकूल आचरण मत करना। वत्स! हम तुमको अपने चरणोंकी सौगन्ध देतेहैं कि तुम शीघ्रही जानकीको लेकर गिरी गुहामें चले जाओ ॥ १३ ॥ तुम शूर और बलवान्हो. निश्चय इन राक्षसोंका वध कर सकतेहो इसमें सन्देह नहीं है परन्तु हम आपही इन सर्व निशाच-रोंके मार डालनेकी इच्छा करते हैं ॥ १४ ॥ जब श्री रामचंद्रजीने ऐसा कहा तब लक्ष्मणजी सीताजीके सहित शर और चाप ग्रहण करके दुर्गम पर्वतकी कन्दरामें चले गये ॥ १५ ॥ जब जानकीजीके साथ लक्ष्मणजी पर्वतकी कन्दरामें चले गये, तब श्रीरामचंद्रजी बड़े हर्षित हुए और कवच व बाण रघुनंदनजीने ग्रहण किया ॥ १६ ॥ अग्नि वर्ण वाले कवच धारण करनेसे श्रीरामचंद्रजी अन्धकार मध्यमेंसे उठे हुए महा अग्निकी समान जान पडने लगे ॥ १७ ॥ तत्पश्चात् वीर्यवान श्रीरामचंद्रजी धनु-षको उठाय, बाणोंको ग्रहण कर प्रत्यंचाकी टंकारके शब्दसे दशोंदिशा-ओंको पूर्ण करते हुए भली भाँतिसे दृढहो वहाँ खडे होगये ॥ १८ ॥ उस समय महात्मा देवगण. गन्धर्वगण सिद्धगण और चारण गण संग्राम देखनेकी अभिलाषसे वहाँ आये ॥ १९ ॥ लोकमें जो ब्रह्मर्षि प्रसिद्धहैं वह सब महर्षिभी वहां आये वह सब पुण्य कर्म करनें वाले एकत्र होकर परस्पर मिल कहने लगे ॥ २० ॥ गौ, ब्राह्मण व और सब लोकोंका सब प्रकारसे मंगलहो और श्रीरामचंद्रजी युद्धमें पुलस्त्य वंशीय निशाचरोंको जीतें ॥ २१ ॥ जिस प्रकार श्री विष्णुजीने चक्र हाथमें लेकर असुर श्रेष्ठोंको हराया था। इस प्रकार कहकर वह फिर परस्पर अवलोकन करते हुए कहने लगे ॥ २२ ॥ कि भयंकर कर्म करने वाले राक्षस तो चौदह हजार [१४०००] हैं और धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी इकले हैं; सो इस्से कह नहीं सक्ते कि किस प्रकार युद्ध होगा ॥ २३ ॥ इस प्रकारसे राजर्षिगण, सिद्धगण, विद्याधरादि समस्त देवयोनि गण प्रधान २ ब्रह्म-र्षिगण कौतूहलाक्रांत चित्त किये वहाँ खड़ेथे ॥ २४ ॥ महा तेजवान श्रीरामचंद्रजीको समर स्थलमें अकेला खड़ा देख देख, प्राणि मात्रही

भयके मारे दुःखी हुए कि न जाने महाराजको आज कैसा परिश्रम पडैगा और कैसे इन १४००० हजार दुष्टोंसे लडेंगे ? ॥ २५ ॥ महात्मा रुद्रजी जब क्रोध करतेहैं और उनका रूप जैसा हो जाताहै, वैसाही क्लेश रहित कर्म करने वाले श्रीरामचंद्रजीका रूप होगया जिसके समान विकराल रूप और नहीं था ॥ २६ ॥ आकाशमें देव गन्धर्व और चारण लोग ऐसा कहही रहेहैं कि इतनेमें महागंभीर शब्द करती, अति घोर ढाल खड्गादि हथियार लिये ॥ २७ ॥ चारों ओरसे राक्षसोंकी सेना अनी बनी ठनी आ पहुँची जो वीरपनेकी वार्ता आपसमें कर रहीथी ॥ २८ ॥ उस सेनाके कोई २ लोग धनुषकी प्रत्यंचा खेंच २ बजाते कोई बार २ जँभाई लेते कोई ऊँचे स्वरसे चिल्लाते और कोई नगाडोंकोही बजाते थे ॥ ३० ॥ इस सब सेनाके राक्षसोंका ऐसा घोर शब्द हुआ कि जिस्से वह वन भर गया और उस शब्दसे वनचारी पशु पक्षीभी घबडा गये ॥ ३० ॥ और लौटकर पीछेको न देखते हुए जिस जगह वह शब्द श्रवणगोचर न होवे वहांको भागे। व इस ओर राक्षसी सेना धूम धामसे श्रीरामचंद्रजीके निकट आय पहुँची ॥ ३१ ॥ उस सेनाके वीरगण अनेक प्रकारके हथियार धारण किये थे, वह समुद्र समान उफनती चली आती थी समर पंडित श्रीरघुनंदन रामचंद्रजीने नेत्र डाल चारों ओर निहारा तो ॥ ३२ ॥ युद्ध करनेको खरकी सेना, उनकी सोंही चली आती है, तब श्रीरामचंद्रजीने धनुषको उठाय और तरकसमेंसे बाण समूहको ग्रहण कर ॥ ३३ ॥ राक्षस कुलका संहार करनेके लिये महाक्रोध किया उस समय श्रीरामचंद्रजीका ऐसा विकट स्वरूप होगया मानों प्रलयकालकी अग्निहो॥३४॥ वनदेवता लोग उनका वह तेजवान् स्वरूप देखकर बडेही व्यथित हुए क्योंकि उन्होंने वह भयावना रामचन्द्रजीका रूप काहेको देखाया था। परन्तु दक्षका यज्ञ विनाश करनेको तैयार महादेवजीकी समान श्रीरामचन्द्रजीकी वह क्रोधभरी मूर्त्ति उस समय उन सबने देखीथी ॥ ३५ ॥

तत्कार्मुकैराभरणैरथैश्चतद्वर्मभिश्चाग्निसमान
वर्णैः ॥ बभूवसैन्यंपिशिताशनानांसूर्योदये
नीलमिवाभ्रजालम् ॥ ३६ ॥

जैसे नीले रंगके बादल सूर्योदयमें शोभा पाते हैं राक्षस सेनाभी अग्नि सम वर्ण, कवच, रथ, आभरण और धनुष युक्त होकर उस काल वैसीही शोभा पाने लगी ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

पंचविंशः सर्गः ।

अवष्टब्धधनुं रामं क्रुद्धं तं रिपुघातिनम् ॥
ददर्शाश्रममागम्य खरः सहपुरःसरैः ॥ १ ॥

अपने साथियोंके साथ आश्रममें आकर खरने शत्रुओंके मारनेवाले श्रीरामचन्द्रजीको क्रोधमें भरे और धनुष ग्रहण किये देखा ॥ १ ॥ ऐसा देखकर उनने कठोर प्रत्यंचा युक्त धनुष उठाकर सारथिसे ऊंचे स्वरसे कहा कि रामचन्द्रके सामने रथ ले चलो ॥ २ ॥ सारथिने खरकी आज्ञानुसार जहाँ महाबाहु श्रीरामचन्द्रजी धनुषपर टंकार देते हुए इकले खडेथे वहांपर घोडोंको चलाया ॥ ३ ॥ खरको रामचन्द्रजीके आगे जाता हुआ देखकर उसके मंत्री श्येन गम्यादि बारह राक्षस उसके चारों ओर हो लिये ॥ ४ ॥ तब रथ पर चढ़ा हुआ खर दुर्विनीत राक्षसोंके बीचमें ऐसा शोभित होताथा, जैसे ताराओंके बीचमें प्रदीप्त मंगल ग्रह शोभित होता है ॥ ५ ॥ अनन्तर वह खर श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर युद्धमें हजार बाण छोड़कर महा शब्दसे चिल्लाने लगा ॥ ६ ॥ तिसके पीछे सब निशाचर क्रोधित होकर भयंकर धनुषधारी, निवारण करनेके योग्य श्रीरामचन्द्र जीको ताककर विविध भाँतिके शर वर्षाने लगे ॥ ७ ॥ वह राक्षस सेना, युद्धमें क्रोधितहो अनेक २ लोहेके सुन्दर शूल, फाँसीतलवार, और फरसे आदिकसे श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर प्रहार करने लगे ॥ ८ ॥ फिर वह बड़े २ शरीर वाले महा बलवान्, मेघ समान निशाचर गण, रथ, घोडे, हाथियोंपर चढ २ युद्धमें श्रीरामचन्द्रजीको मार डालनेके लिये उनके पीछे दौड़े ॥ ९ ॥ उनसे कुछ राक्षस पर्वतोंके शृंग समान आकारवाले हाथियोंपर चढकर श्रीरामचन्द्रजीके युद्धमें मार डालनेके लिये आयेथे इस कारण वह सब रामचन्द्रजीपर बाणोंकी वर्षा करने लगे ॥ १० ॥ जैसे मेघमाला पर्वतोंपर वर्षा करतीहै वैसेही बाण वर्षा

उन निशाचरोंने श्रीरामचन्द्रजीके ऊपर की, सब राक्षसोंके मध्य जानकी जीवन कैसे शोभित होतेथे ॥ ११ ॥ जैसे प्रदोषकी यामिनीयोंमें पार्षदोंके मध्य महादेवजी शोभित होते हैं। राक्षसोंके चलाये अस्त्र शस्त्र श्रीरामचंद्रजीने ॥ १२ ॥ अपने बाणोंके सहित ग्रहण किये, जैसे नदियोंकी धाराओंको महोदधि ग्रहण करताहै यद्यपि श्रीरामचंद्रजीके अंगमें अतिघोर वह अस्त्र शस्त्र लगेथे पर इससे उनको कुछ व्याधि न हुई ॥ १३ ॥ जैसे प्रकाशमान बहुतसे वज्रोंसे हिमालय पर्वतको पीडा नहीं होती । सर्व शरीरमें बाणोंके लगनेसे श्रीरामचन्द्र ऐसे शोभित हुए ॥ १४ ॥ जैसे संध्या कालीन बादलोंके बीचमें होनेसे सूर्य भगवान् शोभित होते हैं। रघुनंदन जीकी यह अवस्था देख देव गन्धर्व और सिद्ध व परमर्षि गण बडे विषादित हुएथे । ॥ १५ ॥ कारण कि, अकेले रामचंद्रजीको सहस्रों निशाचर घेरे हुएथे । ऋषि आदिकोंकी यह अवस्था देख श्रीरामचंद्रजीने महा क्रोध युक्तहो धनुषको जोरसे खैंच ॥ १६ ॥ शत २ सहस्र २ अति तीखे बाण छोडे वे सब बाण किसीके रोकनेसे नहीं रुकते, वरन् अनिवारथे । सहन करनेके योग्य नहींथे और देखनेमें यमराजकी फाँसीके समानथे ॥ १७ ॥ श्रीरामचंद्रजीने लीलापूर्वक सुवर्णसे चित्र विचित्र कंक पत्र युक्त बाण शत्रुकी सेनामें चलाये । वह सब बाण शत्रुकी सेनामें पहुँच २ ॥ १८ ॥ चलाई हुई यमकी फाँसियोंकी समान राक्षसोंका देह भेद व प्राण ग्रहण करके रुधिरके लगनेसे लाल रंगकेही ॥ १९ ॥ आकाशमें जाकर जलती हुई अग्निकी समान शोभा पाने लगे उस समय श्रीरामचन्द्रजीके चाप मंडलसे असंख्यों बाण छूटे ॥ २० ॥ श्रीरामचन्द्रजी उन सब बाणोंसे राक्षसोंके शत २ शरासन और सहस्र २ शरासन, ध्वजाके अग्रभाग ढाल, कवच ॥ २१ ॥ हाथके गहनों करके युक्त बाहु हाथियोंकी शुण्डके समान जंघाएँ सैकडों हजारों काट डालीं ॥ २२ ॥ इनके अतिरिक्त सुवर्णके कवच धारण किये घोडे रथ और सारथी महावत व सवार सहित हाथी घुडसवार सहित घोडे ॥ २३ ॥ इन सबको प्रत्यंचासे छूटे हुए श्रीरामचंद्रजीके बाणोंने छिन्न भिन्न किया और पैदलोंकोभी संहार करके यमराजके भवनमें पहुंचाया ॥ २४ ॥ राक्षस गण, अग्रभाग जिनका महातीक्ष्ण है ऐसे

नालीक, नाराच, और विकर्ण समूहसे कट कुट कर भयंकर शब्द कर आरत पुकारने लगे ॥ २५ ॥ पुष्कवन श्रेणी जिस प्रकार अग्निको पाकर खूबही घूम २ कर जलतीहै, वैसेही राक्षस सेनाभी श्रीरामचंद्रजीके मर्म भेदी बाणोंसे पीडित होकर सुख प्राप्त करनेंको समर्थ नहीं होसकी॥२६॥ उस सेनाके कोई २ महाबलवान् शूरवीर राक्षस महा क्रोधित होकर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर, प्रास, फरसे और शूल इत्यादि चलानेंलगे ॥२७॥ महाबाहु वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजीनें अपनें बाणोंसे राक्षसोंके चलाये हुए अस्त्र शस्त्रोंको रोक उनके प्राण हरण करके उनके मस्तकभी धडसे उडा देते हुए ॥ २८ ॥ गरुडजीके उडनेंके समय जो उनके पंखोंसे पवन निकलती जिस प्रकार उससे वृक्षसमूह पृथ्वीपर गिर जातेहैं वैसेही राक्षस गण छिन्नमस्तकहो पृथ्वीपर गिरनेंलगे उनका धनुष और ढाल तलवारभी टूट टाट गईं ॥ २९ ॥ बचे बचाये राक्षस श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसें घायल होनेके कारण व्याकुल हो मलीनभावसे खरकी शरणमें गये ॥ ३० ॥ यह देखकर दूषण महा क्रोधित होकर धनुष सँभाल भागे हुए राक्षसोंको धीर बँधाता हुआ क्रोधित कालकी समान रोष परायण श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौडा ॥ ३१ ॥ तब रणसे भागे हुए निशाचर गण दूषणका आसरा पाय लौटकर शाल, ताल, शिला, पाश, मुद्गर, और शूल इन सब आयुधोंको धारण कर श्रीरामचंद्रजीके सामने धाये ॥ ३२ ॥ उन राक्षसोंने संग्राममें आतेही शूल, मुद्गर, पाशादि,अस्त्र शस्त्रोंकी वर्षा श्रीरामचंद्रजीके ऊपर की ॥३३॥ फिर वृक्षोंकी वर्षा और शिलाकी वृष्टि प्रारंभ होनेंपर तिस समय महाभयानक और घोर लोम हर्षण संग्राम होनें लगा ॥ ३४ ॥ उधरसे राक्षसगण श्रीरामचंद्रजी पर अस्त्र शस्त्र चलारहेथे इधरसे श्रीरामचंद्रजी राक्षसोंपर बाण वर्षा करतेथे यह देखकर राक्षसोंने फिर अस्त्र शस्त्रोंसे श्रीरामचंद्रजीको पीडित किया ॥ ३५ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें देखा कि सर्व दिशा विदिशा राक्षसोंसे भर गईहैं और हमभी उनके बाणोंसे ढक गयेहैं ॥ ३६ ॥ यह देख श्रीरामचंद्रजीनें बडा भयंकर राक्षसगणोंके ऊपर परम देदीप्यमान गान्धर्वास्त्र चलाया ॥ ३७ ॥ इस गान्धर्वास्त्रके चलानेंके पीछे श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे हजार २ बाण निकलनें

लगे; उन निकलते हुए बाणोंसे समस्त दिशायें भरगईं ॥ ३८ ॥ राक्षसगण इस समय यह नहीं देख सके कि कब श्रीरामचंद्रजी श्रेष्ठ और भयंकर शर ग्रहण करते कब छोडते और कब धनुषको आकर्षण करतेहैं परन्तु केवल उनके बाणोंसे महा व्यथित होनें लगे ॥ ३९ ॥ श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे अन्धकार उत्पन्न होकर दिवाकर सहित आकाश मंडलको ढक लेता हुआ। परन्तु श्रीरामचंद्रजी बराबर शर धारा छोडते चले जातेथे ॥ ४० ॥ उस बाण धारासे अनेक २ राक्षस महा घायल हुए कोई २ गिरे हुए कोई२गिरते हुए दिखाई देतेथे ऐसे राक्षसोंसे पृथ्वी पूर्ण होगई ॥ ४१ ॥ रणभूमिमें सर्वत्रही सहस्र २ राक्षस पतित, छिन्न, भिन्न, विदारित और कंठगत प्राण दृष्टि आने लगे। श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे छिन्न भिन्न पगडी सहित मस्तक बाजू युक्त बाँह व अनेक २ भांतिके गहनें ॥ ४२ ॥ ४३ ॥ अश्व, हस्ती, चमर, व्यजन, छत्र, व नाना प्रकारकी ध्वजाओंसे ॥ ४४ ॥ व शूल पटादि शस्त्रोंसे जोकि रामचंद्रजीके बाणोंसे कट २ टूट गयेथे यह पृथ्वी अति भयंकर होगई ॥ ४५ ॥

तान्दृष्ट्वानिहतान्सर्वेराक्षसाःपरमातुराः ॥
नतत्रचलितुंशक्तारामंपरपुरंजयम् ॥ ४६ ॥

इस प्रकार बहुतसे राक्षसोंको मारे हुए व पृथ्वीमें पडे देख बचे बचाये राक्षस गण अतिशय कातर होकर शत्रुओंके जीतनेवाले श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख जानेंको और समर्थ नहीं हुए ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे पंचविंशःसर्गः॥२५॥

षड्विंशः सर्गः ॥

दूषणस्तुस्वकंसैन्यंहन्यमानंविलोक्यच ॥
संदिदेशमहाबाहुर्भीमवेगान्दुरासदान् ॥ १ ॥

महाबाहु दूषण अपनी सेनाको श्रीरामचंद्रजीसे मारा हुआ देख भयंकर वेषवाले आक्रमण करनेके अयोग्य ॥ १ ॥ पांच हजार राक्षसोंको जो कि समरसे लौटनाही चाहतेथे और महावेगवानथे उनको युद्ध करनेके लिये आज्ञादी वह सब राक्षस समरमें जाय शूल, पटा, खड्ग, और वृक्षादिक व बाणोंकी वर्षा लगातार श्रीरामचंद्रजीके ऊपर करनें

लगे वह वृक्ष और पर्वतोंकी वर्षा प्राणोंकी हरण करनेंवालीथी ॥ २ ॥३॥ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीने अपनें तीखे बाणों पारही उस वर्षाका ग्रहण किया और उसे ग्रहण करके नेत्र बंद कर लिये ॥ ४ ॥ फिर बडा कोप किया और सब राक्षसोंके संहार करनेंका संकल्प किया उस समय क्रोध और तेजसे प्रकाशमान होते हुए श्रीरामचंद्रजीनें॥५॥दूषण सहित सेनाके ऊपर बाणोंकी वर्षाकी । फिर शत्रु दूषण सेनापति दूषण क्रोधित होकर ॥ ६॥ वज्रकी समान बाणोंसे श्रीरामचंद्रजीको निवारण करनें लगा। तब श्रीरामचंद्रजीनें महाक्रोधकर छुरेकी समान तेज बाणोंसे दूषणका धनुष॥७॥ काट कर चार बाणोंसे उसके रथमें जो घोडे लगेथे उनको मार डाला।अश्वोंको तीक्ष्ण बाणोंसे वधकर अर्द्धचंद्र बाणसे उसके सारथिका ॥ ८ ॥ शिर काट डाला । और तीन बाण राक्षस खरकी छातीमें मारे। तब दूषणका धनुष भी टूटा रथभी चूर्ण हुआ और घोडे व सारथि भी उसके मारे गये॥९॥तब उसने जिसके देखनेसे सनाटे रुएं खडे हो जाँय ऐसा पहाडके शृंग समान एक परिघ ग्रहण किया वह सुवर्ण के बन्धोंसे बँधा देवताओंकी सेनाको मर्दन करनेवाला ॥ १० ॥ लोहेकी कीलोंसें जडा शत्रुओंकी चरबी जिसमें लगी हुई वज्र के समान कठोर व शत्रुपुरके द्वारका विदारण करनेंवाला ॥ ११ ॥ ऐसे महासर्पके समान उस परिघको ले संग्राममें क्रूरकर्मकारी दूषणराक्षस श्रीरामचंद्रजीकी ओर धाया॥१२॥श्रीरामचंद्रजीने उस दौडे आतेहुए दूषणके भूषणसहित दोनों कर काटडाले ॥ १३ ॥ हाथोंके कट जानेपर उसका वह बृहदाकर परिघ स्थानभ्रष्टहोकर इन्द्रध्वजाकी समान समरमें गिरा ॥ १४ ॥ हाथ कटजानेंसे मुंहके बल दूषणभी इसभांति पृथ्वीमें गिरा जैसे दांतटूट जानेपर महा मनस्वी गजराज पृथ्वीमें गिरताहै ॥ १५ ॥ दूषण को संग्राम में माराहुआ और पृथ्वीमें पडाहुआ देखकर सबही प्राणी साधु २ कह कर श्रीरामचंद्रजीकी प्रशंसाकरनें लगे ॥ १६ ॥ इसीसमय उस खरके तीन सेनापति जो निशाचर सेनाकेह आगेही चलेथे परस्पर मिलकर मृत्युकी फाँसीसे बँधकर क्रोधमें भरकर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख धाये ॥ १७ ॥ इन तीनोंके नाम महाकपाल, स्थूलाक्ष और महाबलवान् प्रमाथीथे, इनमें महाकपाल विशाल शूक, उठाय ॥ १८ ॥ स्थूलाक्ष-

पटलेकर, व प्रमाथी फरशा ग्रहण करके श्रीरामचंद्रजीकी ओरेचले, इन तीनोंको अपनें ऊपर आयाहुआ देख श्रीरामचंद्रजीनें तीक्ष्ण बाणों से ॥१९॥ इनकी अगवानीकी। जैसे मनुष्य आयेहुए पाहुनोंकी अगुवानी व उचित पूजा करतेहैं। और महा कपालका तो रघुनंदनजीनें शिर ही उड़ादिया ॥ २० ॥ व अगणित बाणोंसे प्रमाथीका माथा, और स्थूलाक्षकी मोटी आखोंको पूरण करदिया ॥२१॥ यह तीनों कटेहुए वृक्षोंकी नांई पृथ्वीमें गिर पडे। इसके पीछे पांचहजार जो दूषणके अनुयायी राक्षसथे उन सबको अति क्रोधकर एक क्षणभरमें ॥ २२ ॥ संहारकर उन सबको श्रीदशरथकुमारनें यमपुरको पठादिया, तब दूषण, व उसके अनुगामी सैन्यको मरा गयाहुआ सुन ॥ २३ ॥ खरनें क्रोधित होकर महाबलवान् और दूसरे सेनापतियोंको इस प्रकारसे आज्ञा दी, कि, सेनापति लोगो! दूषण तो अपने अनुगामियों समेत मारागया ॥ २४ ॥ बस अब तुम सब राक्षसगण एकत्रहो बडी भारी सेनाको साथ लेकर विविध आकार अस्त्र शस्त्र छोडकर मनुष्याधम रामचंद्रको मारडालो॥२५॥ खर सेनापतियोंसे इस प्रकार कहकर क्रोधमें भर आपही श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख दौडा। श्येनगामी, पृथुग्रीव, यज्ञशत्रु, विहङ्गम, ॥ २६ ॥ दुर्ज्जय, परवीराक्ष, पुरुष, कालकामुक, हेममाली, महामाली, सर्प्पास्य, रुधिराशन, ॥ २७ ॥ यह बारह महावीर सेनापति अपनी सेनाके साथ श्रेष्ठ बाण वर्षातेहुए श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख धाये ॥ २८ ॥ इन सब राक्षसोंको तेजस्वी श्रीरामचंद्रजीने अपने ऊपर आता हुआ देखकर हेमवज्र विभूषित अग्नितुल्य बाणोंसे खरकी इस बची बचाई सेनापर प्रहार करना आरंभकिया ॥ २९॥ वज्रपडनेसे जिस प्रकार बडे २ वृक्ष गिर जातेहैं वैसेही श्रीरामचंद्रजीके सुवर्ण पंख सायक सधूम अग्निकी समान राक्षसोंको संहार करनेलगे ॥ ३० ॥ श्रीरामचंद्रजीने एक शत बाण चला एकशत राक्षसोंका संहारकिया, व हजार बाण चलाकर हजार राक्षसोंका प्राण लेलिया ॥ ३१ ॥ राक्षसगण रुधिरमें सने हुए पृथ्वीमें गिरे, उनके कवच भूषण और धनुष छिन्नभिन्न और विदीर्ण होगये ॥३२॥ यज्ञकी वेदीपर जिसप्रकार कुश बिछे होतेहैं वैसेही संग्रामकी समस्त पृथ्वी रुधिरसे सराबोर बाल खुलेहुए राक्षसों से छारहीथी ॥ ३३ ॥ सब राक्षसों

के मारे जानेसे वनभूमि उनके मांस व रुधिरकी कीचसे ढककर क्षण भरमेंही महाभयंकर नरककी समान होगई ॥ ३४ ॥ मनुष्य शरीरधारी रामचंद्रने इकलेही विना रथपर चढे चौदह हजार भयंकरकर्म करनें वाले राक्षसोंको मारडाला ॥ ३५ ॥ सब सेनाके बीचमें महारथी खर, त्रिशिरा और शत्रुओंके हनन करनेंवाले श्रीरामचंद्रजी के वह यह तीनजन शेषरहे ॥३६॥ बचेबचाये राक्षस सबही लक्ष्मणजीके बडेभाई श्रीरामचंद्रजीसे मारेगये, यह समस्त राक्षस अतिशय बलवान, भयंकर, व बडेदुःखसे सहनेके योग्यथे ॥ ३७ ॥

ततस्तुतद्भीमबलंमहाहवेसमीक्ष्यधर्मेणह
तंबलीयसा ॥ रथेनरामंमहताखरस्ततः
समाससादेंद्रइवोद्यताशनिः ॥ ३८ ॥

इस प्रकार महा संग्राममें समस्त भयंकर बलवान राक्षसोंको श्रीरामचंद्रजी से माराहुआ देखकर खर बडे भारी रथपर सवार होकर वज्र उठाये हुए इन्द्रकी समान रामचंद्रजीके मारनेंको चला ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० आरण्यकांडे षड्विंशः सर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशः सर्गः ॥

खरंतुरामाभिमुखंप्रयांतंवाहिनीपतिः ॥
राक्षसस्त्रिशिरानामसन्निपत्येदमब्रवीत् ॥ १ ॥

इसके पीछे खर जब श्रीरामचन्द्रजीके सन्मुख धाया, तब सेनापति त्रिशिरा राक्षस उसके समीप आकर कहनें लगा ॥ १ ॥ मैं विक्रमवानहूं आप यह साहस त्याग करके मुझको रामचंद्रको मार डालनेके लिये नियत करके समरमें महाबाहु रामचंद्रको मुझकरके माराहुआही देखिये ॥ २ ॥ मैं आपके समीप हथियार छूकर सत्यही प्रतिज्ञा करताहूं कि समस्त राक्षसोंके मारनें योग्य रामचंद्रको मैं निश्चयही मार डालूंगा ॥ ३ ॥ या तो संग्राममें मैंही मरूंगा, अथवा उस रामकोही मार डालूंगा आप क्षणके लियें रणके उत्साहको छोडकर दोनों ओरका युद्ध देखते रहिये ॥ ४ ॥ राम मारा जायगा तो आप आनन्दित चित्तसे जन

स्थानको चले जाइये और जो मेरा संहार होवे तौ आप स्वयंही युद्ध करनेंके लिये रामचंद्रके सन्मुख होना ॥ ५ ॥ त्रिशिरा इस प्रकार खरको प्रसन्न करके युद्ध करनेंके लिये उसकी आज्ञा लेकर श्रीरामचंद्रजीके सामनें दौडा ॥ ६ ॥ तीन शृंगवाले पर्वतकी समान वह तीन शिर वाला राक्षस देदीप्यमान घोडे जुते हुए रथमें सवार होकर श्रीरामचंद्रजीके सन्मुख धाया ॥ ७ ॥ और महा मेघ जिस प्रकार जलधारा वर्षाता हुआ हो वैसेही जलके भीगे नगाडेकी समान शब्द करनेलगा ॥ ८ ॥ रघु- नंदन श्रीरामचंद्रजीनें त्रिशिरा राक्षसको अपने सन्मुख आते देखकर धनुष उठाय शब्दकर तीखे बाण चढाय ॥ ९ ॥ त्रिशिराके मारे, उस समय अतिबलवान सिंह और हाथीकी समान श्रीरामचंद्रजी और त्रिशि- राका तुमुल संग्राम आरंभ हुआ जिसके देखनेंसे रोम खडे हो जातेथे ॥ १० ॥ अनन्तर क्रोध न करनें वाले श्रीरामचंद्रजी त्रिशिरा करके तीन बाणोंके द्वारा ताडित होकर जो उनके माथें में लगेथे; उनके लगनेंसे रोषयुक्तहो गर्वित वचन कहनें लगे ॥ ११ ॥ कि अरे! विक्रम शूर निशाचर! बस तेरा इतनाही बलहै कि तेरे चलाये हुए बहुत सारे बाण हमारे माथेमें फूलोंकी समान लगे हम तो जानतेथे कि तुममें कुछ विक्रम होगा, सो कुछभी नहीं ॥ १२ ॥ क्या आश्चर्यहै! अब तू हमारे धनुषके रोदेसे छूटे हुए बाणोंके समूहको ग्रहण कर। यह कह बडा क्रोधकर विषधर सर्पोंकी समान ॥ १३ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें चौदह बाण त्रिशिराके हृदयमें मारे और चार घोडोंको ॥ १४ ॥ महा तेजवान श्रीरामचंद्रजीनें मार डाला और आठ बाणोंसे रथपरही उसके सारथिको मार गिराया ॥ १५ ॥ व एक बाणसे अति ऊंची उसकी ध्वजाको काट डाला जब सारथि और घोडे उसके मारे गये तब त्रिशिरा रथसें कूदनेंको हुआ ॥ १६ ॥ तो उसी बीचमें श्रीरामचंद्रजीनें अनेक बाण उसके हृदयमें मारे जिनके लगनेंसे वह फिर हथियार ग्रहण कर- नेंको समर्थ नहीं हुआ ॥ १७ ॥ फिर अप्रमेयात्मा श्रीरामचंद्रजीनें क्रोधमें भरकर वेगवान् तीन बाणोंकी सहायतासे उसके तीनों शिर काट डाले, तिसके पीछे धुवेंके समान रुधिर गिरता श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे पीडित त्रिशिरा ॥ १८ ॥ समरमें गिरा, जिसके शिर पहलेही

गिर गयेथे। त्रिशिराके मारे जानेंके बाद शेष राक्षस भागकर खरकी शरणमें गये ॥ १९ ॥

द्रवंतिस्मनतिष्ठंतिव्याघ्रत्रस्तमृगाइव॥ ता
न्खरोद्रवतोदृष्ट्वानिवर्त्यरुषितस्त्वरन्॥ रा
ममेवाभिदुद्रावराहुश्चंद्रमसंयथा ॥ २० ॥

और वहांभी खडे न होकर सिंह करके भय पाये हुए मृग यूथकी समान भागेही चले गये तिनको भागे हुए देख खरनें रोषमें भर शीघ्रतासे श्रीरामचंद्रजीकी ओर दौडा जैसे राहु चंद्रमाकी ओर दौडताहै ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० आरण्यकांडे सप्तविंशः सर्गः॥२७॥

अष्टाविंशः सर्गः ॥

निहतंदूषणंदृष्ट्वारणेत्रिशिरसासह ॥
खरस्याप्यभवत्त्रासोदृष्ट्वारामस्यविक्रमम् ॥ १ ॥

दूषण और त्रिशिरा राक्षसको मरा हुआ देख और संग्राममें श्रीरामचंद्रजीकी शूरता निहार खरके मनमेंभी भयका संचार हुआ ॥ १ ॥ खर विचार करनें लगा कि दूषण और त्रिशिराको, सहनेंके अयोग्य पराक्रमवान महाबलवान् राक्षसी सेनाके सहित अकेले रामचंद्रनें संग्राममें मार डाला ॥ २ ॥ ऐसा विचार करता हुआ वह राक्षस खर उदास होकर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर दौडा, जैसे नमुचि दैत्य, इन्द्रके ऊपर धायाथा ॥ ३ ॥ और बडे जोरसे धनुष खैंचकर श्रीरामचंद्रजीके ऊपर, सर्पके विषकी समान रुधिर पान करनेंवाले बाण छोडे ॥ ४ ॥ फिर वह प्रत्यंचाको वारंवार टंकार देता, अपनी शिक्षा और अस्त्रोंको दिखाता हुआ अनेक भांतिके बाण छोडते २ संग्राम भूमिमें घूमनें लगा ॥ ५ ॥ और सब दिशा विदिशाओंको उस महारथी खरनें बाणोंसे पूर दिया। रामचंद्रजीनें सब दिशाओंको बाणोंसे भरा देख बडा भारी धनुष हाथमें लिया ॥ ६ ॥ व अग्निके अंगारोंकी समान सहन करनेके अयोग्य सायक समूहसे आकाशको पूर्ण कर दिया जैसे मेघमंडल वृष्टि करतेहैं ॥ ७ ॥ आकाश खर और श्रीरामचंद्रजीके छुटे हुए बाणोंसे

छाकर सब प्रकारसे अवकाशरहित होगया अर्थात् पृथ्वी आकाशके बीच २ में सबही जगह बाणही बाण भरेथे ॥ ८ ॥ तब परस्पर एक दूसरेकी मार डालनेकी इच्छासे छोडे हुए बाणोंके जाल करके आकाशके छा जानेसे सूर्य भगवानभी छिप गये ॥ ९ ॥ इसके पीछे महावत महा गजके जिस प्रकार अंकुश मारताहै वैसेही खरनें तीखे नालीक नाराच और विकीर्ण अस्त्र शस्त्रोंसे श्रीरामचंद्रजीको घायल करनें लगा ॥ १० ॥ उस समय सबही प्राणी रथमें बैठे धनुष धारी खरको पाश धारी यमराजकी समान देखने लगे ॥ ११ ॥ उस काल खरनें अपनी समस्त सेनाके विनाश करनेंवाले पुरुषार्थमें टिके हुए धीर्यवान् रामचंद्रजीको रण करनेंसे थके समझा ॥ १२ ॥ और सिंहकी समान विक्रम दिखाता हुआ इधर उधर घूमनें लगा सिंह जिस प्रकार मृग छौनाको देखकर नही डरता वैसेही श्रीरामचंद्रजी खरको देख कुछभी नहीं घबडाये॥१३॥ अनन्तर खर सूर्यसमान द्युतिशाली महारथ पर चढकर श्रीरामचंद्रजीके निकट पहुंचा जिस प्रकार आगके धोरे पतंग पहुंचतेहैं ॥ १४ ॥ तिसके पीछे महात्मा श्रीरामचंद्रजीको खरने अपने हाथोंकी फुरती दिखाई और रामचंद्रजीका बाण चढा हुआ मुट्ठीके धोरेसे काट डाला ॥ १५ ॥ फिर क्रोधमे भरकर इन्द्रके वज्रकी तुल्य प्रतापशाली तीषे सात बाण ग्रहण करके श्रीरामचंद्रजीके मर्म स्थानमें मारे॥१६ ॥और फिर सैकडों हजारों बाणों से श्रीरामचंद्रजीको पीडितकर समरमें अपना उपमा रहित तेज दिखाताहुआ महाशब्दसे गर्जनेलगा॥१७॥उससमय श्रीरामचंद्रजीका सूर्यकी समान प्रकाशमान कवच, सुन्दर तेज धार वाले बाणोंके समूहसे छिन्न भिन्न होकर पृथ्वीमें गिरपडा ॥ १८ ॥ उस समय रघुनंदन श्रीरामचंद्रजीका सब शरीर बाणोंसे विधगया, तब श्रीरामचंद्रजी क्रोधित होकर प्रज्वलित धूम्ररहित अग्निकी शोभा धारण करतेहुए ॥ १९ ॥ उसके पीछे उन शत्रुओंका नाशकरनेंवाले श्रीरामचंद्रजीनें शत्रुओंका संहार करनेके लिये और एकगंभीर शब्द करनेंवाले धनुषपर रोदा चढाते हुए ॥ २० ॥श्रीरामचंद्रजी महर्षि अगस्त्यजीका दियाहुआ वह बृहत् वैष्णव धनुषउठाकर खरके ऊपर क्रोधित होकर धाये ॥ २१ ॥ तदनन्तर सुवर्णके पंखलगे तीखे बड़े भारी बाणोंसे समरमें श्रीरामचंद्रजीनें

खरकी ध्वजा काटडाली ॥ २२ ॥ वह सुन्दर सुवर्णकी ध्वजा सहसा छिन्न होकर गिरनेंके कालमें ऐसी शोभा धारण करतीहुई जैसे कभी देवताओंके नियमसे सूर्यनारायण पृथ्वीमें आयकर शोभितहों ॥ २३ ॥ यह देखकर मर्म जाननेंवाले खरनें क्रोधितहो चार बाण छोडकर; जिस प्रकार लोग भालोंसे मतवाले हाथी को मारतेहैं, वैसेही श्रीरामचंद्रजीके हृदयको व और दूसरे मर्मस्थानोंको घायल किया ॥ २४ ॥ तिस समय वह महा धनुर्द्धारी श्रीरामचंद्रजी, खरके धन्वासे छूटे हुए बहुतसे बाणोंसे विंधे जाकर. और रुधिरमें भीग महा क्रोधित हुए ॥ २५ ॥ और दृढभावसे श्रेष्ठ धन्वा ग्रहण करके खरको भली भांति निशाना बनाय उसके ऊपर छैः बाण छोडे ॥ २६ ॥ उनमेंसे एक बाणसे खरका मस्तक बींधा दोबाणोंसे दोनों भुजाओंको घायल किया, और अर्द्धचंद्रतुल्य टेढे तीन बाणोंसे खरकी छातीमें प्रहार किया ॥ २७ ॥ उसके पीछे उन इन्द्र समान महाबलवान् तेजवान् श्रीरामचंद्रजीनें बडा क्रोध कर सूर्यकी समान, धार धराये हुए तेरहबाण ग्रहण करके उस खर निशाचरको निशाना बनाकर छोडे ॥ २८ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें एक बाणसे रथका युगकाय चार बाणोंसे चार चित्र विचित्र घोडे, और एक बाणसे उसके सारथिका मस्तक ॥ २९ ॥ तीन बाणोंसे रथके तीनों बांश; और दो बाणोंसे दोनों पहिये, और बारह बाणोंसे खरका बाण सहित शरा सन युक्त बायां हाथ, ॥ ३० ॥ काटकर हँसते २ वज्र समान एक बाणसे खरको श्रीरामचंद्रजीनें मारा ॥ ३१ ॥ तब वह खर राक्षस धनुष सहित, रथ रहित, सारथि रहित होकर गदाले रथसे कूद पृथ्वी पर खडा होगया ॥ ३२ ॥

तत्कर्मरामस्यमहारथस्यसमेत्यदेवा
श्चमहर्षयश्च ॥ अपूजयन्प्रांजलयःप्रहृष्टा
स्तदाविमानाग्रगताःसमेताः ॥ ३३ ॥

उस काल विमानमें बैठे हुए देवता और महर्षिगण महारथी श्रीरामचंद्रजीका यह कार्य अवलोकन करके परम हर्ष प्राप्त करते हुए और

परस्पर एकत्रहो हाथजोड स्तुतिकर श्रीरामचंद्रजीकी पूजा करते हुए ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे अष्टाविंशःसर्गः ॥ २८ ॥

एकोनत्रिंशः सर्गः ॥

खरंतुविरथंरामोगदापाणिमवस्थितम् ॥
मृदुपूर्वंमहातेजाःपरुषंवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

इसके पीछे खर रथहीन और हाथमें गदा धारण करके जब पृथ्वीमें खड़ा होगया तब महातेजवान् श्रीरामचंद्रजी बोलनेमें मधुर परंतु वास्तवमें कठोर वचनसे खरसे बोले ॥ १ ॥ हेखर! तैंने हाथी! अश्व और रथादि युक्त सेनाके मध्यमें टिककर सर्व लोकमें निन्दित महा भयंकर कर्म कियाहै। ॥ २ ॥ यदि त्रिलोकीका स्वामीभी निर्लज्ज होकर पाप कर्म करै और सर्व प्राणियोंको घबडानेंवाला हो तौ वहभी अपने पदसे भ्रष्ट होजाताहै ॥ ३ ॥ अरे निशाचर! सभी पुरुष लोकोंके विरुद्ध कर्म करनेवाले तीक्ष्ण स्वभाववाले पुरुषको, आये हुए काल सर्पकी समान संहार कर डालतेहैं ॥ ४ ॥ जो व्यक्ति फल जान करभी लोभ, या कामदेवके वश होकर हिंसा परस्त्रीगमन इत्यादि पाप कर्म करताहै वह निश्चयही उस पापके फलको पाताहै, जैसे अकाल वृष्टिके साथ गिरे हुए पत्थरोंको लालचसे ब्राह्मणी (बामनी नामक कीडा) खाकर मर जातीहै ॥ ५ ॥ रेराक्षस! दंडकारण्यवासी धर्माचरण करनेंवाले महातेजवान तपस्वियोंको मारकर तुझको कैसा बुरा फल प्राप्तहोगा सो हमारी समझमें नहीं आता ॥ ६ ॥ अथवा जो क्रूरस्वभाव वाले जन चिरकाल पापकर्म करके लोकोंकी निन्दा पानेंके पात्र हो जातेहैं, वह जन ऐश्वर्य पाकरभी जड गले हुए वृक्षकी समान बहुत दिनोंतक नहीं रहसकते अर्थात् गिर पडतेहैं ॥ ७ ॥ वृक्ष जिस प्रकार समय पाय कर फूलताहै, वैसेही समयके आजानें पर पाप कर्मका भयावना फल निश्चयही प्राप्त होताहै ॥ ८ ॥ हे निशाचर! जिस प्रकार जहर मिला हुआ अन्न खानेंसे शीघ्रही मृत्यु होतीहै, वैसेही पाप कर्म करनेंका फल थोडेही समयमें फलजाताहै ॥ ९ ॥

रेराक्षस! भयानक पाप कर्म करनेंवाले और लोकोंका बुरा चाहनें वाले दुष्टोंको मारनेंकेही लिये ऋषिलोगोंनें हमें यहां पठायाहै ॥ १० ॥ सर्प जिस प्रकार बंमईको फोडकर पृथ्वी पर निकल आताहै, वैसेही इस समय हमारे शरासनसे छूटे हुए बाण तेरे शरीरको चीर फाडकर निकल आवेंगे ॥ ११ ॥ पहले तैनें जिस २ दंडकारण्यवासी धर्मचारी तपस्वीका भक्षण कियाहै सो आज हमसे युद्धमें मारे जाकर तू सेना सहित उनके पीछे २ जायगा ॥ १२ ॥ पहले जो समस्त तापसे तुझ करके मारे गयेहैं, आज वह विमानमें बैठकर तुझको हमारे बाणसे मरा और नरकमें जाता हुआ देखें ॥ १३ ॥ रेनीचकुलमें उत्पन्न हुए! तू भली भांतिसे यत्न करके हमारे ऊपर प्रहार कर, किन्तु आज हम निश्चयही तालफलके समान तेरा शिर काटकर गिरादेंगे ॥ १४ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब क्रोधके वश होकर खरके दोनों नेत्र लालहो आये और क्रोधके मारे ज्ञान रहितहो खर हँसतेर श्रीरामचंद्रजीसे बोला ॥ १५ ॥ रेदशरथकुमार! समरमें साधारण राक्षसोंको मार वास्तवमें प्रशंसित न होनेंपरभी तुम आपही किस प्रकारसे अपनीही प्रशंसा करतेहो ॥ १६ ॥ बलवान पराक्रमशाली नरगण तेजके मारे गर्वित होकर किसी समयभी अपनी प्रशंसा नहीं किया करते ॥ १७ ॥ जिनका चित्त शुद्ध नहींहै, ओछा स्वभावहै ऐसे क्षत्रियोंमें अधम लोगही तुम्हारी समान निरर्थक गर्व प्रगट किया करतेहैं ॥ १८ ॥ मृत्यु समयके निकट आजानेंपर कौन वीर अपनें वंशका परिचय देकर प्रशंसाके अयोग्य विषयमें अपनी प्रशंसा करताहै ॥ १९ ॥ जिस प्रकार आग अपने तापसे सुवर्णकी समान पीतलकी अधमताई प्रगट करतोहै वैसेही तुमनें जो अपनी प्रशंसा की इससे तुम्हारा ओछापनही प्रगट हुआ ॥ २० ॥ तुम क्या गदा धारण किये हुए समरमें टिके देखकर विविध धातुओंके आकार धराधर पर्वतकी समान हमको अकम्पनीय नहीं समझतेहो ॥ २१ ॥ हम लीलासेही गदा हाथमें लेकर समरमें पाशधारी यमराजकी समान तुम्हारा वरन त्रिलोकीके सबही प्राणियोंका संहार कर सकतेहैं ॥ २२ ॥ हमको तुमसे औरभी कुछ कहनाथा, परन्तु उसको अब कुछ नहीं कहेंगे क्योंकि सूर्य अस्त होनेंपर आगयेहैं सो विशेष देर लगानेसे युद्धमें विघ्न

हो जायगा ॥ २३ ॥ तुमनें जो १४००० चौदह हजार राक्षस मार डालेहैं सो अब तुझको मारकर उनकी स्त्री पुत्रादिकोंके आंसू पोंछेंगे॥ २४ ॥ यह कहकर खरनें महाक्रोधितहो अतिश्रेष्ठ सुवर्णके बँद जिसमें बँधे ऐसी जो गदा उसके हाथमें थी वह देदीप्यमान इन्द्रके वज्रकी समान उसनें रामचंद्रजीके ऊपर चलाई ॥ २५ ॥ यह प्रज्वलित बडी गदा उसकी भुजासे छूटकर अगल बगलके वृक्ष लतादिकोंको जलातीहुई श्रीरामचंद्रजीके समीप आनें लगी ॥ २६ ॥ तब श्रीरामचंद्रजीने बाण जाल चलाकर साक्षात् मृत्युके फंदकी समान निकट आती हुई, उस बडी गदाके आकाशमें खंड २ कर डाले ॥ २७ ॥

सा विशीर्णा शरैर्भिन्ना पपात धरणीतले ॥
गदा मंत्रौषधिबलैर्व्यालीव विनिपातिता ॥ २८ ॥

अतीव हिंसा करनेंका स्वभाव जिसकाहो ऐसी सांपिनि जिसप्रकार मंत्र और दवाईके प्रभावसे गिर जातीहै, वैसेही यह गदा श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे टुकडे २ हो पृथ्वीमें गिरपडी ॥ २८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे एकोनत्रिंशःसर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशः सर्गः ॥

भित्त्वा तु तां गदां बाणै राघवो धर्मवत्सलः ॥
स्मयमान इदं वाक्यं संरब्धमिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

धर्मवत्सल श्रीरामचंद्रजी अपनें बाणोंसे उस गदाको काटकर मुसकाय क्रोधमें भरे खरसे कहनेंलगे ॥१॥ रे राक्षसाधम! बस तुमनें इतनाही अपना सब बल दिखाया तुम हम करके हीन बल होकर वृथा क्यों गर्जना करतेहो ॥ २॥ तुम केवल निरर्थक बकवाद करनेमें समर्थहो। तुम्हारी गदानें हमारे बाणोंसे टुकडे २ होकर पृथ्वीमें गिरकर तुम्हारे विश्वासको नष्ट किया ॥ ३॥ और तुमने जो कहाथा कि मरे हुए राक्षसोंके स्त्री पुत्रादिकोंके आंसू पोंछेंगे; सो तुम्हारी यह बातभी मिथ्याहुई ॥ ४ ॥ और गरुडजीनें जिस प्रकार अमृत हरण कियाथा इस समय हमभी वैसेही नीच, ओछे स्वभाववाले झूंठी प्रतिज्ञा करनेवाले तुम जो हो सो तुम्हा-

रा प्राण हरण करेंगे ॥ ५ ॥ आज हमारे बाणों करके विदारित होनेसे जब तुम्हारा शिर कट जायगा, तब पृथ्वी तुम्हारे गलेका झाग सहित रुधिर पान करेगी ॥ ६ ॥ आज तुम शिथिलहो गिरेहुए दोनों हाथोंसे सर्वांगमें रुधिर लगाये हुए दुर्लभस्त्रीके समान पृथ्वीको चिपटाकर शयनकरोगे ॥ ७ ॥ रे राक्षसकुलका नाश करनेंवाले! यह दंडक वन सब लोकोंका आश्रय स्वरूप ऋषिगणोंका आश्रय हो जायगा ॥ ८ ॥ रे राक्षस! मेरे बाण समूहकरके जनस्थान राक्षसशून्य होनेंसे मुनिगण निर्भय होकर सब प्रकारसे वनमें निर्भय होकर घूमेंगे ॥ ९ ॥ भयंकरी सब राक्षसीयें आज बन्धु बान्धवोंके मारे जानेसे रुदन करती हुई हमारे भयसे आज जनस्थानसे भाग जायगी ॥ १० ॥ तुम जिनके पतिहो सो वह तुम्हारेही समान वंशकी पतियें आज शोकरसके मर्मको जानकर हीनवीर्य होजायँगी ॥ ११ ॥ रे निर्लज्ज! क्षुद्रात्मा! ब्राह्मणकंटक! मुनिगण तुमसे शंका करके अग्निमें आहुति दिया करतेहैं सो आजसे वह भयजाता रहेगा ॥ १२ ॥ जब रघुकुमार श्रीरामचंद्रजीने महा क्रोधके वशहोकर इस प्रकार कहा तब निशाचर खर क्रोधयुक्तहो फिर बड़े ऊंचे स्वरसे रामचंद्र जीको दुर्वादिक कहताहुआ बोला ॥१३॥ कि तुम निश्चयही गर्वितहो और भयहोनेपरभी भयनहीं करते इसीकारण मृत्युके वश होकर क्या कहनें लायक क्या नलायकहै, उसको नहीं समझ सकते॥१४॥जो पुरुष कि काल की फांसीमें बंध जातेहैं, उनकी अन्तःकरणादि छेःइन्द्रियोंकी वृत्ति विषय जाती रहनेंके कारण उनको कार्याकार्यका ज्ञान नहीं रहता ॥ १५॥ निशाचर खरनें श्रीरामचंद्रजीसे इस प्रकार कहकर भ्रुकुटी टेढीकर निकटही बहुत बडा एक शालका वृक्ष देखा ॥ १६ ॥ उस बड़े भारीशालके पेड़को देखकर युद्धमें उसकोही अपना अस्त्ररूप बनानेंके लिये खरनें किच किचाकर उसको उखाड लिया ॥ १७ ॥ और घोर गंभीर शब्द करके दोनों भुजाओंसे इस वृक्षको उठा " लो तुम मारे गये" यह कहकर वह वृक्ष श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चलाया ॥ १८ ॥ प्रतापवान् श्रीरामचंद्रजीनें अपनें ऊपर आतेहुए इस शालके वृक्षको अनेक बाणोंसे काट डालकर युद्धमें खरको मारडालनेंके लिये महाकोप किया ॥ १९ ॥ महाक्रोध करनेंके कारण श्रीरामचंद्रजीके नयन लाल २ हो आये, शरीरसे पसीना

निकलनें लगा, उन्होंनें हजार बाणोंसे खरके अंगको छिन्न भिन्नकर डाला ॥ २० ॥ पर्वतके झरनेंसे जिसप्रकार पानीकी धारा निकलती रहतीहै, वैसेही खरकी देहमें जो बाण लगनेके कारण छिद्र होगयेथे, उनसे रुधिर गिरनें लगा ॥ २१ ॥ खर श्रीरामचंद्रजीके बाणोंसे व्याकुलहो और रुधिर गन्धसे मतवाला होकर श्रीरामचंद्रजीके सामने बहुत शीघ्रतासे धाया ॥ २२ ॥ यह रुधिरसे डुबाहुआ और अतिशय क्रोधाविष्ट होकर इसप्रकारसे दौडा कि कृतास्त्र श्रीरामचंद्रजी शीघ्रतासे दो तीन परग पीछेको हटगये ॥ २३ ॥ इसके पीछे श्रीरामचंद्रजीनें खरके मारडालनेंके लिये दूसरे ब्रह्मदंडकीसमान अग्निसमान बाण ग्रहणकिया ॥ २४ ॥ धीमान् देवराज इन्द्रजीनें यह बाण श्रीरामचंद्रजीको दियाथा धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीनें वही बाण धनुषपर चढाकर खरके ऊपर छोड़ा ॥ २५ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें धनुषको खैंचकर वह महाबाण छोडा, तब वह बाण वज्रकीसमान शब्द करताहुआ खरकी छातीमें लगा ॥ २६ ॥ खर उस बाणकी अग्निसे भस्महोकर, श्वेतारण्यमें रुद्रकरके भस्महुए अन्धकासुरकी[1] समान पृथ्वीमें गिरपडा ॥ २७ ॥ वृत्रासुर[2] जिसप्रकार वज्रसे, नमुचि[3] जिसप्रकार फेनसे, और बलासुर जिसप्रकार इन्द्रके वज्रसे हत होकर गिरेथे खरभी वैसेही श्रीरामचंद्रजीके बाणसे नाशहोकर पृथ्वीमें गिरा ॥ २८ ॥ इससमय देवतागण चारणोंके सहित महाहर्ष और विस्मय युक्तहोकर नगाडे बजातेहुए श्रीरामचंद्रजीके ऊपर चारों ओरसे फूलोंकी वर्षा करनें लगे* ॥ २९ ॥ और सब देवता चारण गण फूल बरसाकर बडे विस्मित हुए कि डेढही मुहूर्तमें तीखे बाणोंसें श्रीरामचंद्र-

१ कावेरीनदीके किनारे श्वेतारण्यमें एक श्वेत नाम राजर्षि तप करतेथे तब अन्धकासुर उन्हे मारनेको धाया उस समय शिवजीनें लात मारकर उस राक्षसका संहार किया ॥ २ बृहस्पतिजीके रूठ जानेपर जब इन्द्रने विश्वरूपको पुरोहित्त किया तब इन्द्रनें गुप्त रूपसे दैत्योंके निमित्त उसे आहुति देते देख मारडाला विश्वरूपके मरनेपर उसके पिताने यज्ञ कुंडसे वृत्रासुरको उत्पन्न किया बडा युद्ध इंद्रके साथ हुआ तब इन्द्रनें दधीच ऋषिसे उनकी जांघका हाड मांग वज्र बनाय उस्से वृत्रासुरका संहार किया ॥ ३ नमुचि दैत्यको ब्रह्माजीका वरदानथा तुम गीले सूखे किसी प्रकारके आयुधसे न मरोगे तब इन्द्रने वज्रमें फेन लपेटकर मारा जो गीला सूखा नहींथा ॥

* राम २ कह तन तजहिं, पावहिं पद निर्वान । कर उपाय रिपु मारे, छिनमें कृपानिधान ॥

जीनें ॥ ३० ॥ इस महायुद्धमें खर दूषण इत्यादि मुख्य राक्षसोंके सहित कामरूपी चौदह हजार राक्षसोंको मार डाला ॥ ३१ ॥ साक्षात् विष्णु जीकी समान सर्वदर्शी श्रीरामचंद्रजीका क्याही बडा आश्चर्यका कार्यहै! अहो! क्या अद्भुत वीर्यहै! और क्या विस्मय उपजानेंवाली दृढता हमनें इनमें देखी! ॥ ३२ ॥ यह बात कहते २ एकत्र हुए सब देवता लोग अपनें २ स्थानको चलेगये । तिसके पीछे राजर्षि व महर्षिगण एकत्र होकर आये ॥३३॥ अगस्त्यजीके सहित श्रीरामचंद्रजीकी बडाई कर मुदित होकर सब ऋषिश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीसे बोले, कि इसी कारणसे महातेजवान् इन्द्रजी ॥ ३४ ॥ शरभंगजीके पुण्य आश्रममें आपके निकट आयेथे । इसी कारणसे महर्षि गण बडे उपायसे आपको यहां पर लायेहैं ॥ ३५ ॥ बस एक यही कार्य था कि केवल इन पाप कर्म करनेंवाले राक्षसोंको मरवानाथा क्योंकि यह सब हमारे शत्रुथे, सो हे दशरथकुमार । आपनें यह हमारा कार्य सिद्ध किया ॥ ३६ ॥ अब महर्षिलोग दंडकारण्यमें अपना२ धर्म स्वच्छन्द हो करेंगे । मुनिगण इतना कहही रहेथे कि इतनेमें वीर लक्ष्मणजी सीताजीके सहित ॥ ३७ ॥ गिरिगुहासे सुख सहित बाहर आकर अपनें आश्रममें प्रवेश करते हुए इसके पीछे विजयी श्रीरामचंद्रजी महर्षियों करके पूजित होकर ॥ ३८॥ और लक्ष्मणजीसेभी पूजितहो अपनें आश्रममें आगमन करतेहुए तिन महर्षियोंके आनंद बढानेवाले शत्रुओंके दमन करनेंवाले श्रीरामचंद्र जीको देख ॥ ३९ ॥ श्रीजानकीजी प्रसन्न हुईं; और अपनें पति श्रीराम-चंद्रजीसे अति प्रेम पूर्वक मिलीं, और फिर राक्षसोंको मारे हुए देखा४०॥ व श्रीरामचंद्रजीको समस्तही निरापद देखकर श्रीजानकीजी अति संतोषको प्राप्त हुईं ॥ ४१ ॥

ततस्तुतंराक्षससंघमर्दनंसंपूज्यमानंमुदितैर्म
हात्मभिः ॥ पुनःपरिष्वज्यमुदान्विताननाब
भूवहृष्टाजनकात्मजातदा ॥ ४२ ॥

अनन्तर सुकुमारी जनकदुलारी परम प्रेम और हर्षमें भरकर राक्षस कुलके संहार करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीसे फिर मिलीं और महात्मा ऋषि-

गण प्रफुल्लित होकर अनेक २ प्रकारसे श्रीरामचंद्रजीकी पूजा करनें-लगे ॥ ४२ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० आर० त्रिंशः सर्गः ॥ ३० ॥

एकत्रिंशः सर्गः ॥

त्वरमाणस्ततोगत्वाजनस्थानादकंपनः॥
प्रविश्यलंकांवेगेनरावणंवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

खर दूषण त्रिशिरा आदि राक्षसोंके मारेजानेंपर अकम्पन नामक राक्षस शीघ्रतासे जनस्थानसे पलायन कर लंकामें जाकर रावणसे कहनें लगा ॥ १ ॥ हे राजन् ! जनस्थानवासी अनेक राक्षस संग्राममें मारे-गये, और उनके स्वामी खरकाभी संहार होगया। और मैं किसी भांतिसे जीता वच यहां भागकर आयाहूं ॥ २ ॥ जब अकम्पननें ऐसा कहा तो क्रोधमें भरनेंके कारण रावणके नेत्र लालहो आये और वह अपनें तेजसे अकंपनको भस्मसा करता हुआ वोला ॥३॥ किसकी उमर वीत चुकी? त्रिलोकीमें किसको आश्रय मिलना दुर्लभ हुआहै? वह कौनहै जिसनें हमारा महाभयंकर जनस्थान ध्वंस कर दिया? ॥ ४ ॥ हमारा अप्रिय कार्य करके इन्द्र, यम, कुबेर अथवा विष्णुभी सुखसे नहीं रह सकते॥५॥ हम कालकेभी कालहैं; हम अग्निकोभी जला सक्तेहैं, अधिक क्या कहैं हम मृत्युकोभी मृत्युधर्ममें योजित कर सकतेहैं ॥ ६ ॥ हम क्रोधित हों तो अग्नि और सूर्यकोभी भस्म कर डालैं और हम अपनें वेगसे पवन-काभी वेग रोक सकतेहैं ॥ ७ ॥ दशवदन रावण जब इस प्रकारसे क्रोधित हुआ तब अकंपननें मारे भयके हाथ जोड सन्दिग्ध वचनोंसे अभय दान मांगा ॥ ८ ॥ तब राक्षसवर दशाननने अकंपनको अभय दिया। तब अकंपन विश्वास कर साफ २ वृत्तान्त कहनें लगा ॥ ९ ॥ कि श्रीराजा दशरथजीके पुत्र सिंहसमान पुष्ट अंगवाले युवा अवस्थाको प्राप्त एक रामचंद्र नामकहैं। उनके ऊंचे स्कंधे व बडी २ भुजाहैं ॥१०॥ श्यामरूप, महा यशवान, शोभायमान, अपनें तुल्य किसी दूसरेका वल विक्रम न रखनेंवाले उनही श्रीरामचंद्रजीनें जनस्थानमें दूषणके सहित खरका संहार कियाहै ॥ ११ ॥ राक्षसोंका राजा रावण अकंप-नकी यह वार्त्ता सुनकर मदसे अंधे हाथीकी समान श्वांस लेताहुआ

यह वचन कहनें लगा ॥ १२ ॥ हे अकम्पन ! तू यह तौ बताकि रामचंद्र समस्त देवता और इन्द्रके साथ मिलकर क्या जनस्थानमें आगमन करतेहैं ? ॥ १३ ॥ अकम्पन रावणके ऐसे वचन सुनकर उसके निकट फिर महात्मा श्रीरामचंद्रजीका बल और विक्रम कीर्त्तन करके कहनें-लगा ॥ १४ ॥ कि रामचंद्रजी महा तेजवानहैं, सर्व धनुष धारण करनें-वालोंमें श्रेष्ठहैं, दिव्य शस्त्रास्त्रोंके गुणोंसे सम्पन्न संग्राममें बडेही धर्मात्मा इस प्रकार श्रीरामचंद्रजीहैं ॥ १५ ॥ उनका छोटा भाई लक्ष्मणजीभी उनकेही समानहै उनका शब्द देवदुन्दुभीकी समान गंभीरहै दोनों नेत्र अरुण वर्णहैं और उनका मुख मंडल पूर्णमासीके चंद्रमाकी समानहै॥१६॥ वायु जिस प्रकार अग्निके साथ मिलकर जनस्थानको जला डालतीहै, श्रीराजश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीनेंभी वैसेही लक्ष्मणजीके साथ मिलकर जन-स्थानको ध्वंस कर डालाहै ॥१७॥ महात्मा देवतालोग वहां नहीं आयेथे केवल श्रीरामचंद्रजीनेंही फलका लगे हुए सुवर्ण पंख युक्त बाण छोडेथे इस कारण इस विषयमें संदेह करनेंका प्रयोजन नहींहै ॥ १८ ॥ श्रीरा-मके सब बाणोंने पंचमुखके सर्प होकर राक्षसोंको भक्षण कियाहै। राक्षसलोग युद्धमें भयभीतहो जिस तिस दिशाको भागनें लगे ॥ १९ ॥ उसी २ ओर उन्होंनें देखा कि रामचंद्र उनके आगे खडेहैं हेनिष्पाप ! इस प्रकार उन्होंनें आपका अधिकार किया हुआ जनस्थान उजाड-डाला इसमें रामचंद्रजीकी अनंत शक्ति ईश्वरता सूचन करीहै ॥२०॥ अकम्पनकी यह भयानक वार्त्ता सुनकर रावणनें कहाकि हम राम लक्ष्मणको मारनेके कारण अभी जनस्थानको जांयगे ॥ २१ ॥ जब रावणनें इस प्रकार कहा तब अकंपन कहनें लगा कि हे राजन् ! राममें जिस प्रकारका बल और पौरुष और चरित्रहै उसको श्रवण करो ॥२२॥ कि जब महायशवान श्रीरामचंद्रजी क्रोध करैं तो उनको निवारण कर-नेंकी ब्रह्मादि देवताओंकोभी साध्य नहींहै। वह जलसे पूर्ण नदीका वेगभी अपनें बाणोंसे रोक सकतेहैं ॥ २३ ॥ आकाशमंडलसे ग्रह नक्षत्र और सर्व तारागणोंको रामचंद्रजी गिरा सकतेहैं और वह विपदमें पडी हुई पृथ्वीकोभी उधार सकतेहैं ॥ २४ ॥ समुद्रकी वेला भूमिको तोड

ताड़कर रामचंद्र सब लोकोंको जलमें डुबो सकतेहैं वह अपने बाणोंसे सागरका अथवा पवनका वेगभी रोक सकतेहैं ॥ २५ ॥ और वह महा यशवान् श्रीरामचंद्रजी श्रेष्ठ पुरुष अपने २ विक्रमसे समस्त लोकोंका संहार करके फिर नई प्रजाको उत्पन्न कर सकतेहैं ॥ २६ ॥ हे दशानन! पापात्मा लोग जिस प्रकार स्वर्गके जीतनेंकी सामर्थ्य नहीं रखते सो आप या आपके राक्षस लोग कोईभी युद्धमें श्रीरामचंद्रजीके जीतनेको समर्थ नहींहैं ॥ २७ ॥ मैं तो यह जानताहूं कि देवासुर सब एकत्र होकरभी उनको नहीं वध कर सकते तौभी उनके मारनेंका एक उपायहै सो चित्त देकर सुनिये ॥ २८ ॥ सीता नामक उनकी स्त्री एक लोकके मध्यमें सर्व श्रेष्ठ श्यामा अवस्थावालीहै वह स्त्रियोंमें रत्नकी नाईहै वह रत्नोंसे भूषितहै युवा अवस्था आरहीहै उसके सब अंग बराबरहैं कोई बड़ा छोटा नहींहै ॥ २९॥ न देवी, न देवता, न गन्धर्वी, न अप्सरा, न पन्नगी कोईभी उसकी तुल्यता नहीं करसकती फिर मनुष्यकी स्त्री किस भांति उनके समान होसकतीहैं ॥ ३० ॥ सो अब महावनमें जाकर किसी प्रकार छल बल चतुराईसे उनकी वह स्त्री हर लीजिये जब उनकी स्त्री हरी जायगी तब राम न बचैंगे वरन अवश्यही मर जांयगे ॥ ३१ ॥ यह बात महाबाहु, राक्षसराज रावणके मनको भाई । वह सोच विचार, करके अकम्पनसे बोला ॥ ३२ ॥ कि अच्छा! हम अकेले सारथीके साथ वहां जांयगे, और जानकीको हर्ष सहित इस लंकापुरीमें लावैंगे ॥ ३३ ॥ इस प्रकार कह कर राक्षसराज रावण सूर्यकी समान प्रभावाले रथपर जिसमें खच्चड़ जुतेथे सवारहो समस्त दिशा विदिशाओंको प्रकाशित करताहुआ चला ॥ ३४ ॥ राक्षसेन्द्रका वह रथ तारागणोंके मार्गमें वेगसे भराहुआ चलनेंके कारण मेघमंडलमें चंद्रमाकी समान शोभा विस्तार करता हुआ ॥ ३५ ॥ इसके पीछे रावण बहुत दूर चलकर ताडकाके पुत्र मारीचके स्थानपर पहुंचा मारीचनें विविध प्रकारके खानें पीनेंके पदार्थोंसे रावण राक्षसनाथकी पूजाकी । वह पदार्थ मनुष्योंके भक्षण करनेंके अयोग्यथे ॥ ३६ ॥ जब मारीच इस प्रकार आसन, जल, और खानें पीनेंकी वस्तुओंसे रावणकी पूजा कर चुका तब अर्थयुक्त वचन रावणसे बोला ॥ ३७ ॥ राजन्! राक्षसाधिप! राक्षस

गण कुशलहैं?परन्तु आपके शीघ्र यहां आगमन करनेंसे मुझको राक्षसोंकी कुशलमें शंका होतीहै ॥ ३८ ॥ जब मारीचनें इस प्रकार कहा तो वचन बोलनेंमें चतुर महातेजवान् रावण कहनेंलगा ॥ ३९ ॥ हेतात! बडे कठिन कर्म करनेंवाले रामचंद्रजीनें हमारे खर आदि जो सीमारक्षक (हदकी रखवाली करनेंवाले) थे उनको मार डाला और अब जन स्थानकोभी युद्धमें समस्तही विध्वंस कर दियाहै ॥ ४० ॥ इसकारणसे तुमको रामचंद्रजीकी स्त्री हर लानेंके कार्यमें हमारी सहायता करनी होगी। मारीच असुरनाथ रावणकी यह वार्त्ता सुनकर कहनें-लगा ॥ ४१ ॥ ॥ कि किस मित्ररूपी शत्रुनें तुमसे सीताकी वार्त्ता कही? हे राक्षसश्रेष्ठ! आपके विशेष भांतिसे संतुष्ट करनेंपरभी कोई आपसे संतुष्ट नहीं ज्ञात होता ॥ ४२ ॥ "सीताको लंकामें ले आओ" यह बात किसनें आपसे कही, सो बताओ। किसनें समस्त राक्षसकुलके शृंग काटनेंकी इच्छा कीहै ॥ ४३ ॥ जिसनें आपको इस प्रकारका उत्साह दियाहै वह निश्चयही तुम्हारा शत्रुहै. कारण कि, उसनें सर्पके मुखसे दांत निकालनेंके लिये आपको आगे बढायाहै ॥ ४४ ॥ किसनें ऐसा कर्म करके तुम्हारे विनाशका मार्ग खोजा अर्थात् तुम्हें इस मार्गमें चलाना चाहा? राजन्! आप सुखसे सो रहेथे सो किसनें तुम्हारे मस्तक पर प्रहार किया ॥ ४५ ॥ हे रावण! विशुद्धवंश सूर्य कुलही जिनकी लंबी शुण्डहै. प्रतापही जिनका मदहै, जिनकी बडी भुजायेंहीं दोनों दांतहैं, उन राम रूप मदवाले हाथीको संग्राममें दर्शन करनेंके योग्य आप नहींहैं ॥ ४६ ॥ हे राजन्! संग्रामके मध्यकी स्थिरताके लिये जो उत्सुकता सोई मानों केवारहै जिसके व चतुर राक्षसगणही मृगहैं तिनके नाशकरनेंवाले बाणही मानों अंगहैं जिसके, पूर्ण पैने खड्ग सोई जिनके दांतहैं, सो इस प्रकारके रामरूप सोते हुए सिंहको जगा देनेंके योग्य आप नहींहैं ॥ ४७ ॥ हे राक्षसराज! जिसमें धनुरूप प्राणोंको हरण करनेंवाले ग्राहादिक हिंसक जन्तु विद्यमानहैं, बाहु-द्वारा बाणोंका छोडना जिसमें दल २ हैं, और बाण रूप तरँगे जिसमें उठतीहैं और घोर युद्ध रूप जलसे जो भरा हुआहै।सो ऐसे अति घोर राम रूप पातालके मुखमें कूदना तुमको उचित नहींहै ॥४८॥ इस कारण हे

लंकेश्वर! राक्षसेन्द्र! प्रसन्नहोओ और प्रसन्न होकर सीधे २ लंकाको चले जाओ. और वहां जाकर नित्य अपनी स्त्रियोंके सहित सुखसे विहार करो। और भार्यासहित श्रीरामचंद्रजीभी वनमें आनंद भोगें ॥ ४९ ॥

एवमुक्तोदशग्रीवोमारीचेनसरावणः ॥
न्यवर्ततपुरींलंकांविवेशचगृहोत्तमम् ॥ ५० ॥

जब मारीचनें इस प्रकार कहा तब दशवदन रावण लंकाको लौट-कर अपने श्रेष्ठ गृहमें प्रवेश करता हुआ ॥ ५० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकत्रिंशःसर्गः ॥ ३१॥

द्वात्रिंशःसर्गः ॥

ततःशूर्पणखांदृष्ट्वासहस्राणिचतुर्दश ॥
हतान्येकेनरामेणरक्षसांभीमकर्मणाम् ॥ १ ॥

इसी अवसरमें इधर इकले श्रीरामचंद्रजीसे भयंकर कर्म करनें वाले चौदह हजार राक्षसोंको मराहुआ देखकर ॥ १ ॥ व खर दूषण और त्रिशिराको मारा हुआ देखकर शूर्पणखा मेघकी समान गंभीर शब्दसे गर्जनें लगी ॥ २ ॥ औरके करनेंके अयोग्य श्रीरामचंद्रजीका किया हुआ कर्म देखकर अति उकसाके रावणपालिता लंका नगरीको शूर्पणखा गई ॥ ३ ॥ वहां जाकर देखा कि महातेजवान् रावण विमान पर बैठाहै, देवतागण जिस प्रकार इन्द्रके निकट बैठे रहतेहैं। मंत्रीगण वैसेही रावणके धोरे बैठेहैं ॥ ४ ॥ सूर्यकी समान प्रकाशित हुए सुवर्णमय श्रेष्ठ आसनपर बैठनेसे, सुवर्णमय वेदिमध्यगत प्रज्वलित अग्निकी समान उसकी शोभा होरहीहै ॥ ५ ॥ देवता, गन्धर्व, भूत व महात्मा व ऋषि-लोगोंके जीतनें अयोग्य अति भयंकर मुँह बाये मानों दूसरा यमराजही बैठाथा ॥ ६ ॥ फिर देवताओं व राक्षसोंके मणियुक्त वज्र कक्ष घाव सहित, और ऐरावताचल हाथीके दांतोंसे बडाभारी चिह्न छातीमें विद्यमान ॥ ७ ॥ उसकी बीस भुजा व दशशिर, पोशाक बडी सुहावन मनभावन, चौडी छाती, और शरीर राजलक्षण युक्त ॥८ ॥ वह जो वैदूर्य मणि पहर रहाहै, उसकी देहकी कान्तिभी वैदूर्यमणिके सदृश कानोंके

कुंडल तपाये हुए सुवर्णके बने, वीसों भुजा परमसुन्दर, दाँतोंकी कतार अति सुन्दर, वदन मंडल अतीव महान्, आकार पर्वतकी समान ॥९॥ देवताओंके सहित सैकडों संग्रामोंमें विष्णुचक्रके लगनेसे व और २ अनेक महासंग्रामोंमें अस्त्रोंके प्रहारसे बहुत भांति ताडित हुआ ॥ १० ॥ और उसके सब अंगभी देवताओं करके शस्त्रद्वारा घायल हुएहैं किसीसे चलायमान नहींहों ऐसे समुद्रोंकोभी खल बलानेंको जिसमें विशेष सामर्थ्य है, और शीघ्रही सब कार्य करनेंवाला ॥११॥ पर्वतोंके कंगूरोंको उखाड डालनेंवाला देवताओंका मर्दन करनेंवाला सबधर्मोंका जडसे उखा-डनेंवाला पराई पतिव्रता स्त्रियोंका सत्य हरणकारी ॥ १२ ॥ दिव्या-स्त्रोंका प्रयोजककारी और सर्व यज्ञ विघ्नकारी, भोगवती नगरीमें जाय नागराज वासुकिको जीत ॥ १३ ॥ तक्षक नामक सर्पको पराजय करता हुआ उसकी प्रियस्त्रीको हरण करनेवाला कैलाशपर्वत पर गमन करके नरवाहन कुबेरको जीतनेवाला ॥ १४ ॥ और उसका मन इच्छासे चलनेवाला पुष्पक विमान हरण करनेवाला, चैत्ररथ नामक दिव्यवन, नलिनी, नन्दन, कानन, ॥ १५ ॥ व औरभी सबदे-वताओंके उद्यानोंका विनाश क्रोधसे जिसनें करदिया है; फिर उदय होते हुए महाभाग्य चंद्रमा व सूर्योंको ॥ १६ ॥ दोनों वाहोंसे निवारण करनेंवाला । पर्वतोंके समान ऊंचा व वीर्यवान व दश हजार वर्ष वनमें तपकर ॥ १७ ॥ब्रह्माजीको अपनें सब शिर काट २कर जिसनें चढादियेथे, देव, दानव, गन्धर्व, पिशाच, पतंग, वा उरग ॥ १८ ॥ किसीके द्वाराभी जिसको मृत्युका भय नहीं जिसने केवल मनुष्योंको कु-छ न समझ उनसे अभय नही मांगा, और ब्राह्मण लोग यज्ञोंमें मंत्र पढ२ कर जिसकी स्तुति करनें लगेथे ॥ १९ ॥ यह महाबलवान रावण होमशालामें गमन करके पवित्र सोमको नष्टकरदेता और दक्षिणा देनें के समय यज्ञको ध्वंसकरदेता सर्वदा ब्राह्मणहननादिक क्रूरकार्योंको कि-याकरता ॥ २० ॥ सदा प्रजागणोंका अहित आचरण करता कर्कशथा अनेक प्रकारको पीडा देकर सब लोकोंका भय उपजानेंवाला होनेंके कारण लोक उसको रावण कहा करतेथे ॥ २१ ॥ राक्षसी शूर्पणखानें अपनें क्रूर महाबली भ्राताको देखा । वह रावण दिव्यवस्त्र, दिव्य गहनें,

और माला पहर रहाथा ॥ २२ ॥ आसनपर भली प्रकारसे बैठाथा, उस काल कालकी मूर्त्तिसा प्रतीत होताथा । ऐसा राक्षसनाथ महाभाग पौलस्त्यकुलनंदन रिपुओंका नाश करनेंवाला ॥ २३ ॥ इस प्रकारके गुणोंसे युक्त रावणको देख लक्ष्मणजीनें जो नाक कान काट डालेथे इस कारण भयसे विह्वलहो, मंत्रियोंके बीचमें बैठेहुए रावणसे बोली ॥ २४ ॥

तमब्रवीद्दीप्तविशाललोचनंप्रदर्शयित्वाभय लोभमोहिता ॥ सुदारुणंवाक्यमभीतचारि णीमहात्मनाशूर्पणखाविरूपिता ॥ २५ ॥

इस प्रकारकी निशाचरी जो कि श्रीरामचंद्रजीके द्वारा कुरूपको प्राप्त होगईथी जिसका नाम शूर्पणखाथा वह निर्भय दारुण वचन कहती हुई रावणसे बोली ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि-काव्ये आरण्यकांडे द्वात्रिंशः सर्गः ॥ ३२ ॥

त्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥

ततःशूर्पणखादीनारावणंलोकरावणम् ॥ अमात्यमध्येसंक्रुद्धापरुषंवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

उस समय दीन होरही शूर्पणखा क्रोधयुक्तहो सब लोकोंके रुवानें-वाले रावणसे मंत्रिगणोंके सामनें कडुवे वचन कहनें लगी ॥ १ ॥ कि तुम स्वेच्छाचारी होकर सदाही काम भोगमें मतवाले रहतेहो। और तुम किसी विषयमें किसीकाभी निषेध करना या बाधा देना नहीं मानते । इसी कारण अवश्यही जाननेंके योग्य जो इससमय भयंकर वि-पद आ पहुंचीहै, तुम उसको नहीं जानते ॥ २ ॥ परन्तु जो राजा स्त्री इत्यादिक ग्राम्य भोग वस्तुओंमें सदाही आसक्त रहता, स्वेच्छाचारी और लोभी होताहै । प्रजागण मशानकी अग्निकी समान उस राजाका आदर नहीं करते ॥ ३॥ जो राजा यथाकालमें अपनें सब कार्योंको नहीं करताहै । वह राजा और उसके कार्य न करनेंसे अपने राज्य सहित वि-नाशको प्राप्त होताहै ॥ ४ ॥ जो राजा स्त्रीआदिकोंके आधीन रहकर दूतोंको नियुक्त करके प्रजाका हाल नहीं जानताहै । तो हाथी जिस प्रकार

दूरसेही दल २ वाली नदीको त्याग करके चले जातेहैं, प्रजा लोगभी वैसेही उस राजाको त्याग देतेहैं ॥ ५ ॥ औरभी जो नृपतिलोग अपनें आधीनमें न आये हुए राज्योंको उपाय करके अपनें वश नहीं करलेते। वह समुद्रमें पडेहुए पर्वतोंकी समान प्रकाश को नहीं प्राप्त होते ॥ ६ ॥ एकतो तुम स्वभावसेही चंचलहो और दूसरे कुछ तुम आचारभी नहीं करते; भला फिर विशुद्ध चित्त देव, दानव और गन्धर्वोंसे वैर करके तुम किस प्रकार राज कर सकोगे ॥ ७ ॥ हेराक्षस! तुम बुद्धिरहित हो,बालकोंकेसा तुम्हारा स्वभावहै और जिस बातको जानना उचितहै; उसकोभी नहीं जानते भला फिर किस प्रकारसे अपने इस राज्यकी रक्षा कर सकोगे? ॥ ८ ॥ हे विजयी श्रेष्ठ! जिन राजा लोगोंके आधीन खजाना, दूत, और नीति नहीं होती, ऐसे राजालोग साधारण मनुष्योंके समानहैं ॥ ९ ॥ राजा लोग सबजगह अपने दूतोंको नियुक्त करके सब दूरका वृत्तान्त मानों देखते रहतेहैं इसी कारण वह दीर्घ चक्षु, कहे जाते हैं ॥ १० ॥ हम जानतीहैं कि तुमनें कहीं भी दूतादि नहीं नियत कियेहैं और तुम साधारण बुद्धिवाले मंत्रियोंके साथ सदाही बैठे रहतेहो। इसी कारणसे निजजन और जनस्थानका जो नाशहोगयाहै उसको तुम नहीं जानते ॥ ११ ॥ देखो! अति कठिन कर्म करनेंवाले रामचंद्रनें इकलेही भयंकरकर्म करनेंवाले चौदह हजार राक्षस खर दूषणसहित मार डाले॥१२॥उन रामचंद्रनें ऋषिगणोंको अभय करदियाहै समस्त दंडकारण्यको निष्कंटक और जनस्थानको भयभीत कर दियाहै ॥ १३ ॥ परन्तु हे रावण! तुम तो लोभी मतवाले और सदाही पराये आधीन रहनेंवालेहो इसीकारण तुम नहीं जानते कि तुम्हारे राज्यपर क्या भय आ पहुंचाहै ॥ १४ ॥ जो राजा अति तीक्ष्णस्वभाववाला, असावधान, गर्वित, शठ, और अल्पदान करनेंवाला होताहै, विपदके समय प्रजाभी उस राजाकी रक्षाकरनेंके लिये कोई यत्न नही करती ॥ १५ ॥ जो राजा अतिशय अभिमानी होता, क्रोध स्वभाववाला होता, और जो अपने आपही अपना गौरव करताहै, कोई जिसकी बातको नहीं सुनते। विपदके समय उसके सगेही उसका नाश कर देतेहैं ॥ १६ ॥ जो राजा राजकार्यको अपने हाथसे नहींकरता। और भय होनेपरभी नहींडरता, ऐसे रा-

जाको शीघ्रही राज्यभ्रष्ट होना पडताहै और सबहीकोई उसे तृणकी समान जाननें लगतेहैं ॥ १७ ॥ सूखे काठ ढेले और धूलसेभी बहुतकार्य हो सकतेहैं, परन्तु राज्यभ्रष्ट हुए राजासे कोई कार्यभी नहीं होसकता१८॥ पहराहुआ वस्त्र और मलगिजी माला जिसप्रकार किसीकार्यकी नहीं होती। राज्यभ्रष्ट राजाभी वैसेही शांतिसम्पन्न होकरभी निरर्थक कहाताहै ॥ १९ ॥ जो राजा प्रमादहीन, सर्वज्ञ भली भांतिसे जितेन्द्रिय, कृतज्ञ, और धर्ममें रहतेहैं वही राजपदपर चिरस्थाई होतेहैं ॥ २० ॥ जो राजा नेत्रोंसे निद्रित होनेपरभी नीतिरूप नेत्र विस्तार करके जागते रहतेहैं; और जिनका क्रोध, व प्रसन्नता कार्यके समय प्रगटहो, वह राजाही लोकसमाजमें पूजे जातेहैं ॥ २१ ॥ परन्तु हे रावण! तुम कुबुद्धि और इन समस्त गुणोंसे रहितहो, कारण कि राक्षसोंका वह सर्व नाशहुआ और तुमनें दूतोंके द्वारा उसका कुछ वृत्तान्त न जाना ॥ २२ ॥ तुमकेवल पराया अपमान करतेहो, सदाही भोगविलासमें मतवाले बने रहतेहो देशकालका निश्चय करना नहीं जानते,और गुण दोषका विचार करनेका सामर्थ्य तुम्हारी बुद्धि नहीं रखती, इस कारण तुमको शीघ्रही विपद ग्रस्त और राज्यभ्रष्ट होना पडेगा ॥ २३ ॥

इतिस्वदोषान्परिकीर्तितांस्तयासमीक्ष्यबुद्ध्या
क्षणदाचरेश्वरः ॥ धनेनदर्पेणबलेनचान्वितोवि
चिंतयामासचिरंसरावणः ॥ २४ ॥

धन, बल, और गर्वयुक्त राक्षसनाथ रावण शूर्पणखाको इस प्रकारसे अपनें समस्तदोष कहतेहुए देखकर बहुतही देरतक मनही मन विचार करतारहा ॥ २४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० आ० त्रयस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशःसर्गः ॥

ततःशूर्पणखांदृष्ट्वाब्रुवतींपरुषंवचः ॥
अमात्यमध्येसंक्रुद्धांपरिपप्रच्छरावणः ॥ १ ॥

शूर्पणखा मंत्रियोंकी सभाके बीचमें अनेक प्रकारके कटुवचन कह रहीहै यह देखकर रावणने क्रोधित होकर पूछा ॥ १ ॥ राम कौनहै? उन-

का वीर्य, रूप और पराक्रम कैसाहै ? वह किस कारणसे इस दुस्तर दंड-कारण्यमें आयेहैं । ॥ २ ॥ उन्होंने जिनसे कि, खर दूषण और त्रिशिरा आदि राक्षसोंको युद्धमें मार डाला वह उन रामचंद्रके आयुध कैसेहैं ? ॥ ३ ॥ हे मनोहर शरीर वाली ! तुमको किसने विरूप कर दिया ? सब यथार्थही कहो ? जब राक्षसराज रावणने इस प्रकारसे कहा तब राक्षसी क्रोधसे मूर्च्छितहो ॥ ४ ॥ जैसेका तैसा ठीक २ श्रीरामचंद्रजीका वृत्तान्त कहने लगी । उसने कहा रामचंद्र दशरथके पुत्र कामदेवकी समान रूपवान् दीर्घ-बाहु और विशाल नेत्र, वल्कल व मृग चर्म धारण किये हुए ॥ ५ ॥ उनका धनुष इन्द्रके धनुषकी समानहै उसमें सुवर्णके बंद लगेहैं उस धनुषको खैंचकर ॥ ६ ॥ तेज विष वाले सर्पोंकी समान प्रतीप नाराच रामचंद्र छो-डते हैं यह हमने नहीं देखा ॥ ७ ॥ और धनुषको किस समयमें खैंचतहैं यहभी हमने नहीं देखा केवल इतनाही देखाहै कि बाण वर्षा करके वह संग्रा-ममें राक्षसोंका संहार करतेथे ॥ ८ ॥ जैसे इन्द्र अकालमें ओले वर्षाकर श्रेष्ठ अन्नका नाश कर देते हैं इसी प्रकार भयंकर वीर्यवान् १४००० हजार राक्षसोंको ॥ ९ ॥ तीक्ष्ण बाणोंके प्रहारसे अकेले पैदल रामचंद्रजीने मार डाला । केवल आधही मुहूर्त्तमें खरको दूषणके सहित संहार कर ॥ १० ॥ ऋषि गणोंको अभयदे समस्त दंडकवनको मंगलमय कर दिया ॥ ११ ॥ उन आत्मज्ञानी महात्मा श्रीरामचंद्रजीने स्त्रीके वधकी शंका करके, केवल नाक कानही काटकर हमहींको अकेला छोडाहै ॥ १२॥ लक्ष्मण नाम रामचंद्र का छोटा भाई महातेजस्वी गुण और विक्रममें अपने बडे भ्राताकी तुल्यहै, वह उनकाही अनुरागी भक्तहै । वह अतिशय बुद्धिमान् बलवान् और वीर्यवान्‌है ॥ १३ ॥ विक्रमप्रधानहैं, क्रोधावि-ष्टहैं, सबहींके जीतनेवाले, और आप किसीसे जीते जानेके योग्य नहीं और श्रीरामचंद्रजीके दहिनेहाथ, बरन् शरीरके बाहर रहने वाले प्राणहैं॥ १४॥ और रामचंद्रजीकी जो स्त्री है उसके नेत्र बडे २ हैं और वदन पूर्णमासीके चंद्रमाके समानहै, रामचंद्रको बहुत प्यार करती हैं और वहभी सदा पतिकी प्यारी और हितकरने वाला कार्य करती रहती हैं ॥ १५ ॥ उस यशस्विनी रामचंद्रजीकी स्त्रीके केश, नासिका, ऊरू और रूप अति उत्तमहैं । वह मानों

उस वनकी अधिष्ठात्री देवी और दूसरी लक्ष्मीकी समान विराजमानहो रहीहैं ॥ १६ ॥ उनके वर्णकी ज्योति तपाये हुए सुवर्णकी समानहै, कमर, पतली और नखोंकी पंक्तिका शिर लालहै। वह अतिशय सुन्दरतायुक्तहैं और सब स्त्रियोंकी शिरोमणिहैं, उन्होंने विदेहवंशमें जन्म ग्रहण कियाहै, और वह सीता नामसे संसारमें विख्यातहैं ॥ १७ ॥ न देवी, न गन्धर्वी, नयक्षिणी, न किन्नरी, किसीकीभी सुन्दरताई उनकी शोभाके संगमें नहीं चल सकती यहाँतक कि, कभी हमने इस पृथ्वीपर इस प्रकारकी रूपवान् रमणी नहीं देखीथी ॥ १८ ॥ वह सीता जिसकी स्त्रीहो और वह जिसको हर्षमें भर कर भेंटे वह पुरुष समस्त प्राणी क्या, वरन इन्द्रसेभी अधिक सुखसे जीवन बिताताहै ॥ १९ ॥ सीताके सबही अंग सब लोकोंके प्रशंसा करनेके योग्य हैं और पृथ्वीमें उसका रूप अतुलनीय है। वह सुशीला तुम्हारेही लायक भार्या है और तुम उसकेही अनुरूप पति हो ॥ २० ॥ उसके दोनों पयोधर ऊंचेहैं. जंघा अति विशालहैं और मुखमंडल अति श्रेष्ठ है उसको हम शोच विचार कर तुम्हारी स्त्री होनेके योग्य जान लैने गई थीं ॥ २१ ॥ हे महाभुज ! सो इस कार्यको करतेही हुए क्रूर लक्ष्मण ने हमारे नाक कान काट डाले उस पूर्ण चन्द्रमुख वाली विदेह कुमारीको देखतेही ॥ २२ ॥ तुम फल बाण धारीके पुष्प बाणोंका निशाना बनोगे, यदि उसको अपनी स्त्री बानानेका तुम्हारा आशय हो तो शीघ्रही रामचन्द्रके जीतनेको दहिना चरण आगे धरकर चलो ॥ २३ ॥ हे राक्षसराज रावण ! हमारा यह वचन यदि तुम्हे रुचाहो, तो जो हमने कहा उसको चित्तसे शंका त्यागकर करो ॥ २४ ॥ हे महाबल ! तुम उनको असमर्थ और अपनेको समर्थ जानकर इस सर्वाङ्ग सुन्दरी सीताको स्त्री बनानेमें यत्नवान् होवो ॥ २५ ॥

निशम्यरामेणशरैरजिह्मगैर्हताञ्जनस्थानगता न्निशाचरान् ॥ खरंचदृष्ट्वानिहतंचदूषणंत्वमद्यकृ त्यंप्रतिपत्तुमर्हसि ॥ २६ ॥

रामचंद्रने सीधे चलने वाले बाणोंसे समस्त उन जनस्थानवासी राक्षसोंको खर व दूषणके सहित मार डालाहै यह सुनकर अब जो

कुछ कर्त्तव्यहो सो करो ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे चतुस्त्रिंशः सर्गः॥ ३४ ॥

पंचत्रिंशः सर्गः ।

ततःशूर्पणखावाक्यंतच्छ्रुत्वारोमहर्षणम् ॥
सचिवानभ्यनुज्ञायकार्यंबुद्ध्वाजगामह ॥ १ ॥

शूर्पणखाके यह रोमहर्षण वचन सुन कर्तव्य स्थिरकर मंत्रियोंकी सम्मतिले रावण जनस्थानमें जानेको तैयार हुआ ॥ १ ॥ गमन करनेके समय उस कार्यको भली भाँतिसे छानकर और उसके सब विषयोंको भली प्रकार सोच विचार दोष गुणभी समझ लेता हुआ, बल, अबल सब जानलिया, उसने जानकीका हरलाना महात्मा रामचंद्रसे वैर करनाही ठीक जांचा ॥ २ ॥ सब कर्त्तव्योंका मनमें निश्चय कर स्थिर बुद्धिहो प्रथम रमणीक यानशालामें गया ॥ ३ ॥ और यानशालामें पहुँच कर राक्षसराज रावण गुप्त भावसे सारथिसे बोला कि, शीघ्रही रथ तैयार करो ॥ ४ ॥ रावणके ऐसा कहतेही एक क्षणमें जल्दबाज सारथिने जो रथ रावणकी इच्छानुसार था उस रथको सजाया ॥ ५ ॥ रावण उस इच्छानुसार कंचनसे बने हुए रत्नभूषित पिशाचवदन वाले गधे जिसमें जुते हुए, ऐसे रथ पर सवार हुआ ॥ ६ ॥ जब वह रथ चला तब उसका शब्द मेघोंके गर्जनेकी समान होता था। कुबेरका छोटा भाई राक्षसपति श्रीमान् दशानन उस रथपर चढ; नदनदीपति समुद्रकी ओर चला ॥ ७ ॥ रावणके ऊपर जो चमर और छत्र लगे थे वह दोनों श्रेष्ठ थे, रावणके देहकी कांति वैदूर्य मणिके समान नीली थी, वह सब तपाये हुए सुवर्णके भूषण पहरेहुए था ॥८॥ उसके दश मुख, दशमस्तक, दश गर्दन और बीस भुजा, देवगणोंके शत्रु और मुनियोंके हनन करनेको यह रावण साक्षात् दश कँगूरों करके युक्त पर्वत राजसा दिखाई देता था ॥ ९ ॥ वह रावण उस यथेच्छाचारी विमानपर चढकर ऐसा शोभित हुआ मानों सौदामिनीके संग घनश्याम बगलोंकी पाँतिके साथ गगन मंडलमें जाता है ॥ १० ॥ रावण चलते २ समुद्रके तीर पर पहुँचा, बीचमें उसने बहुतसे पर्वत व समुद्रकी तलेटीके

देश देखे वह स्थान अनेक प्रकारके पुष्प फल और वृक्षोंसे शोभायमान थे ॥ ११ ॥ शीतल मंगल जलयुक्त तलैयां वहाँपर थीं. वेदीयुक्त और बडे २ आश्रमोंसे वह देश अलंकृत था ॥ १२ ॥ केलेका वन चारों ओर लगा, नारियलके पेड़ अलगही लह लहा रहे थे और साल ताल तमालादि नाना जातिके पुष्पित वृक्ष लगे थे ॥ १३ ॥ वह स्थान जो सदा नियमित भोजनमें मग्न रहते ऐसे परमर्षियोंसे शोभायमान था नाग गरुड गन्धर्व और सहस्रों किन्नरभी वहाँपर थे ॥ १४ ॥ और कामदेवको जिन्हाने जीत रक्खा है, ऐसे सिद्ध और चारणगणभी उस स्थानमें शोभित हो रहे थे. आज्य, धूम्र, वैखानस, साख, वालखिल्य, मरीचि आदि ॥ १५ ॥ दिव्य वस्त्राभूषण दिव्य माला और दिव्य रूप स्त्रियोंके संग घूम रहे थे। क्रीडा व रतिकी विधि जानने वाली हजारों अप्सराओंके साथ सिद्धगण विहार करते थे ॥ १६ देवोंकी श्रीसम्पन्न स्त्रियाँभी घूम रही थीं. अमृत पीनेवाले देव दानवोंके समूहभी इधर उधर फिरतेथे ॥ १७ ॥ हंस, क्रौञ्च, मण्डूक, और सारस समूह चारों ओर बोल रहे थे. वैदूर्य मणिके समान नील वर्णके पत्थर वहाँ पर विराजते थे और समुद्र तरंगोंकी हिल्लोलवश वह देश सदाही शीतल और स्निग्ध भाव करके युक्तथा ॥ १८ ॥ इन सब वस्तुओं के सिवाय, रावण दिव्य माला युक्त, गीत और बाजोंकी ध्वनि जिसमें होरही ऐसे श्वेत वर्ण विशाल विमान पर चढा रावण चारों ओर देखने लगा ॥ १९ ॥ जिन लोगोंने अपने तपोबलसे अनेक लोगोंको जीत लिया है और इच्छाचारी विमानों पर जो बैठे हैं; कुबेरके छोटे भाई रावणने जानेके समय मार्गमें उन गन्धर्वगणोंको अप्सराओंके साथ देखा ॥ २० ॥ वहाँ पर वनमें गोंद रसमूल सहित हजारों सुन्दर, नासिकाको अपनी सुगन्धिसे तृप्त करने वाले चंदनके वृक्ष देखे ॥ २१ ॥ अगरके मुख्य वन उपवन अंकोल वृक्षोंके सुगन्धित पुष्पित और जायफलके फलित वन उपवनादि देखे ॥ २२ ॥ तमालनामक वृक्षके फूल, और काली मिर्च गुल्म समूह समुद्रके किनारे फूले व मोतियोंके समूह गिरेहुए देखे ॥ २३ ॥ पर्वत व मूँगोंकी चटानोंके समूह व चाँदी सुवर्णके शृंगभी रावणने देखे ॥ २४ ॥ सुविमल जल पूर्ण अद्भुत मनोहर सोते धन धान्यके सहित

स्त्री रत्न युक्त ॥ २५ ॥ हाथी घोडे सहित अनेक प्रकारके नगर देखता हुआ, रावणने शीतल मंद सुगन्ध पवन सहित ॥ २६ ॥ सिन्धु राजका अनूप किनारा देखा, वह देखनेमें स्वर्गकेही सम तुल्य था, वहां पर सब ओरसे मुनियों करके सेवित मेघ सम श्याम एक बरगदका वृक्ष देखा ॥२७॥ उसकी समस्त शाखा चारों ओर शत योजनके घेरेमें फैल रही थीं जहांपर बडे शरीर वाले हाथी और कछुएको ॥ २८ ॥ गरुडजी भोजन करनेके लिये, इस पेडकी एक शाखापर बैठेथे पक्षियोंके स्वामी गरुड़जीने मारे बोझके उसकी एक डाली ॥ २९ ॥ जिसमें बहुत पत्र लगेथे तोड डाली उसी शाखाका आश्रय कर वैखानस, माष, मरीचि, पायी, वालखिल्य॥ ३० ॥ और धूम्रास्य परमर्षिगण मिलकर तपस्या कर रहेथे। धर्मात्मा गरुडजी उन ऋषियोंके प्रति दया करके एक पैरसेही उस शत योजनकी ॥ ३१ ॥ टूटी हुई शाखाको पकड दूसरे पैरसे गज कच्छपको दबाय महात्मा गरुडने उनका मांस खाकर ॥ ३२ ॥ उस टूटी हुई शाखाकी सहायसे समस्त निषाद देशको नाश करदिया इस प्रकार मुनिगणोंको बचाकर गरुडजी परमहर्षित हुएथे ॥ ३३ ॥ अनन्तर उस हर्षके वशहो गरुडजीका विक्रम दूना बढगया तो इस कारण मतिमान् गरुडजी अमृतके लानेका विचार करते हुए ॥ ३४ ॥ और लोहेके जालको तोड ताड रत्नमय श्रेष्ठ गृह फोड फाड महेन्द्र भवनसे अमृतले आये ॥ ३५ ॥ सो इस समय कुबेरका अनुज रावण गरुड चिह्नित महर्षिगण सेवित सुभद्र नामक इस वट वृक्षको देखता हुआ ॥ ३६ ॥ वहाँसे नदीपति समुद्रके दूसरीपार जाकर दूसरे वनमें परम पवित्र रमणीक एक निर्जन आश्रय रावणने देखा ॥ ३७ ॥ रावणने यहभी देखा कि, मारीच नामक निशाचर मृगचर्म और जटाजूट धारण करके नियताहार कर वहां वास करताहै ॥ ३८ ॥ राक्षस मारीच रावणको देखतेही मिला और यथा विधानसे विविध भाँतिकी अमानुषी भोग्य वस्तुओंसे रावणकी पूजा करता हुआ ॥ ३९ ॥ इस प्रकार भोजनकी सामग्री व जलसे स्वयं रावणकी पूजाकर मारीच अर्थयुक्त वचन बोला ॥ ४० ॥ राजन् ! राक्षसेश्वर ! आपकी और लंकाकी कुशलतोहै ? फिर आप किस कारणसे यहाँ शीघ्रही पधारे हैं? ॥ ४१ ॥

एवमुक्तोमहातेजामारीचेनसरावणः ॥
ततः पश्चादिदंवाक्यमब्रवीद्वाक्यकोविदः ॥ ४२ ॥

जब मारीचने ऐसा कहा तब वचन बोलनेमें चतुर महातेजस्वी रावणने इसप्रकार कहना आरंभ किया ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशः सर्गः।

मारीचश्रूयतांतातवचनंममभाषतः ॥
आर्तोस्मिममचार्तस्यभवान्हिपरमागतिः ॥ १ ॥

तात मारीच ! कहताहूं श्रवण करो। हम बडे दुःखीहैं, तुमही विपदके समय हमारी परमगति हो ॥ १ ॥ जिस स्थानमें हमारा भाई खर और महा बाहु दूषण व बहन शूर्पणखा रहा करतीथी उस जनस्थानको तुम जानतेहीहो ॥ २ ॥ मांसका खानेवाला राक्षस त्रिशिरा व औरभी बहुत निशाचरगण युद्धमें उत्साही व शूरवीर ॥ ३ ॥ मेरी आज्ञा पालन करते हुए वहां वसा करतेथे। वह सब निशाचरगण महावनमें धर्मचारी ऋषियोंके अनुष्ठानमें सदाही बाधा दिया करतेथे ॥ ४ ॥ इस सब राक्षसोंकी संख्या १४०००.० चौदह हजारथी । वह सबही भयंकर कर्म करने वाले, शूर युद्धमें उत्साही और खरके चित्तके अनुसार कार्य करने वाले थे ॥ ५ ॥ इस समय जनस्थानके रहने वाले महा बलवान् खर इत्यादि राक्षस युद्धमें रामचंद्रके साथ ॥ ६ ॥ विविध भाँतिके अस्त्र शस्त्र धारण करके व दुर्भेद्यकवच बाँधकर युद्धमें भिडेथे तब रामचंद्रने महा क्रोध करके ॥ ७ ॥ कुछभी कठोर वचन न कहकर धनुष पर बाण चढाय उनको छोड चौदह हजार उग्र तेजवान् राक्षसोंको ॥ ८ ॥ मनुष्यका अवतार लिये रामचंद्रने खर व दूषण सहित सबको संग्राममें तीक्ष्ण दीप्तिमान् नाराचोंसे संहार किया ॥ ९ ॥ और त्रिशिराकोभी मार दंडक वनको अभय करदिया। उस रामचन्द्रका चाल चलनभी ठीक नहीं मालूम होता क्योंकि उसके पिताने उसको निर्लज्ज जानकर स्त्री सहित घरसे निकाल दियाहै ॥ १० ॥ वही दुःशील कर्कश, तीक्ष्ण, मूर्ख, लोभी अवि

जितेंद्रिय, क्षत्रियकुल कलंक रामचंद्र इस राक्षसोंकी सेनाका मार डालने वालाहै ॥ ११ ॥ जो धर्मका त्याग और अधर्मका आश्रय करके सदाही प्राणियोंका अहित करनेमें रत रहते हैं जिसने विना वैरही केवल अपने बलके घमंडमें आय ॥ १२ ॥ नाक कान काटकर हमारी बहन शूर्पणखा को विरूप करदिया । इस कारण जनस्थानसे उसकी स्त्री सीता जो कि देवताओंसेभी चढकर रूपमें हैं ॥ १३ ॥ हम अपने विक्रमसे ले आवेंगे तुमको हमारी सहायता करनी होगी, तुम महा बलवान सहायके साथ१४ व अपने भायोंके संग हम सारे देवताओंकोभी कुछ नहीं गिनते, तिससे हे मारीच! तुम हमारे इस विषयमें सहायकहो क्योंकि तुम समर्थहो ॥ १५ ॥ तुम महाशूरहो और सब प्रकारकी माया जानते हो, वीर्यमें, युद्धमें, दर्पमें और उपायमें तुम्हारी समान दूसरा कोई नहीं है ॥ १६ ॥ हे निशाचर! इसी कारणसे इस समय हम तुम्हारे समीप आये हैं, इस समय हमारी सहायता करनेके लिये जो कुछ तुमको करना होगा, सो हम कहतेहैं; तुम श्रवण करो ॥ १७ ॥ तुम चांदीकी बिन्दिये युक्त स्वर्णके मृग बनकर रामचंद्रके आश्रममें जा सीताके सामने इधर उधर फिरना ॥ १८ ॥ सीता मृगरूपी तुमको देखकर निःसन्देहही अपने स्वामी रामचंद्रसे और लक्ष्मणसे यह कहेगी कि इस मृगको पकडदो ॥ १९ ॥ जब वह रामचंद्र और लक्ष्मण मृगको पकडनेके लिये आश्रमसे दूर निकल जाँयगे तब हम शून्य आश्रम पाकर सीताको सुख सहित निर्विघ्न लेआवेंगे; जिस प्रकार राहु चंद्रमाकी प्रभाको हरण कर लेताहै ॥ २० ॥ जब उनकी स्त्री हर लीजायगी तब रामचंद्र शोकके मारे दुर्बल हो जाँयगे तब हम कृतार्थ होकर यथा सुख और निःशंक चित्तसे रामचंद्रको संग्राममें जीतलेंगे ॥ २१ ॥ रावणके ऐसे वचन सुनतेही महात्मा मारीचका मुख सूख गया और वह अतिशय भयभीत होगया ॥ २२ ॥ और चिन्ताके वश होकर अपने सूखे होठोंको जीभसे चाटने लगा और उसके नेत्र मानों निमेष हीन होगये । मारीच आरत भावसे मृतक तुल्य होकर रावणकी ओर देखता रह गया ॥ २३ ॥

सरावणंत्रस्तविषण्णचेतामहावनेरामपराक्रमज्ञः ॥

कृतांजलिस्तत्त्वमुवाचवाक्यंहितंचतस्मैहितमात्मनश्च २४

वह पहलेहीसे महावनमें श्रीरामचंद्रके पराक्रमको जानता था। इसी कारणसे भयभीत और शोकित चित्तसे हाथ जोडकर रावणसे अपने व उसके हितके करने वाले वचन बोला ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे षट्त्रिंशःसर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशः सर्गः ।

तच्छ्रुत्वाराक्षसेंद्रस्यवाक्यंवाक्यविशारदः ॥
प्रत्युवाचमहातेजामारीचोराक्षसेश्वरम् ॥ १ ॥

महातेजवान् राक्षसराजके यह वचन सुन वाक्यविशारद मारीच उससे बोला ॥ १ ॥ हे राजन् ! मुँह देखी कहनेवाले लोग बहुत मिलतेहैं किन्तु सुननेमें कुप्यारे और वास्तवमें हितकारीहों ऐसे वचनोंके कहने सुनने वाले दोनोंही संसारमें कम मिलतें है ॥ २ ॥ एकतो तुमने दूतोंको नियुक्त नहीं कर रक्खाहै कि जिससे सब स्थानोंका वृत्तान्त तुमको मिलता रहै दूसरे तुम्हारा स्वभाव चंचलहै । इसी कारणसे रामचंद्र जो साक्षात् महेन्द्र और कुबेरकी समान महावीर्यवान् और श्रेष्ठ गुणों करके युक्तहैं इस बातको तुमने नहीं जाना ॥ ३ ॥ हे तात ! रामचंद्रसे वैर करनेमें क्या राक्षस कुलका मंगल होगा ! रामचंद्र क्रोधित होने पर क्या सर्व लोक राक्षसोंसे शून्य नहीं कर सकते हैं ॥ ४ ॥ क्या जानकी तुम्हाराही नाश करनेके लिये उत्पन्न हुईहै ? कहीं सीताके ले आनेका यह व्योहार तुम्हारे दुःखका कारण नहो ? ॥ ५ ॥ तुम इच्छानुसार चलने वाले और निरंकुशहो अर्थात् तुम्हारा कहने सुन्ने वाला कोई नहीं है । इसकारण तुम्हारे राजा होते समस्त लंका तुम्हारे और सर्व राक्षसोंके साथ क्या विनष्ट नहीं होगी ! अर्थात् अवश्य होगी ॥ ६ ॥ तुम्हारी समान जो राजा, बुरे शील वाला, पाप बुद्धि और इच्छानुसार चलने वाला होताहै, वह राजा अपनेको, समस्त राज्यको अपने कुटुंबियोंका नाश करनेका कारण होताहै ॥ ७ ॥ रामचंद्र अपने पिता करके नहीं त्यागे गये हैं । वह मर्यादा रहित भी नहीं हैं, अथवा लोभी

दुःशील और क्षत्रिय वंशके नाशकभी नहींहैं ॥ ८ ॥ कौशल्याकुमार अपनी माताके आनंदको बढानेंवाले धर्मसे वा गुणोंसे हीन नहींहैं; उनका तीक्ष्ण स्वभावनहींहैं । और वह सदा सब प्राणियोंका अहित करनें में रतभी नहींहैं वरन सबका हित करनेंमें तत्परहैं ॥ ९ ॥ अपनें सत्यवादी पिताको कैकेयी करके ठगा हुआ देखकर, वह उनके सत्यकी रक्षा करनेके लिये रामचंद्रजी वनको चले आयेहैं ॥ १० ॥ और पिता दशरथ, व रानी कैकेयीका प्रिय कार्य करनेंकी वासनासे, राज्य सुखको जलांजलि देकर श्रीरामचंद्रजी दंडकारण्यमें आयेहैं ॥ ११ ॥ हे तात! रामचंद्र कर्कश स्वभाव वालेभी नहींहैं, मूर्खभी नहींहैं, अजितेन्द्रियभी नहींहैं, और मिथ्या कहना तो दूरहै, वह इस झुंठाईके प्रसंगमेंभी नहींहैं। सो उनके प्रति ऐसे वचन कहना आपको उचित नहींहै ॥ १२ ॥ अधिक कहांतक कहूं; रामचंद्र धर्म मूर्तिहैं, साधूहैं; सत्यपराक्रमवानहै और इन्द्र जिस प्रकार देवता ओंके स्वामीहैं वैसेही वहभी सब लोकोंके राजा हैं ॥ १३ ॥ वह अपनें तेजसे जनककुमारी जानकीजीकी रक्षा करतेहैं तुम किस प्रकारसे उनकी जानकी को हरण करनेंकी इच्छा करतेहो ? क्योंकि उनके हरण करनेंकी इच्छा करना मानो सूर्यकी किरणको हाथसे पकड़नाहै ॥ १४ ॥ सब बाणही जिसकी शिखाहैं, धनुष और खड्ग जिसका ईंधनहैं, और जिसकी त्रिसीमामें गमन करना असंभवहै सो उस राम रूप प्रज्वलित अग्निमें सहसा प्रवेश करना तुमको उचित नहींहै ॥ १५ ॥ धनुषका चढानाही जिसका प्रकाशित मुखहै, बाणही जिसकी दीप्तिहैं इसीसे असह्य धनुर्बाण धारण किये; इसीसे तीक्ष्ण और शत्रुओंकी सेनाके संहार कर्ता ॥ १६ ॥ कृतान्त समान रामचंद्रजीके सन्मुख राज्य सुख छोडकर तुम जाओ । यदि गयेभी तो जातेही तुम्हारा नाश होजायगा ॥ १७ ॥ उनके तेजकी तुलना नहींहै; जानकी उनकीही स्त्री है, और सदाही उनके धनुर्बलका आश्रय करके वनमें वास करती है । तुम किसी भांतिभी जानकीको हरण नहीं कर सकोगे ! ॥ १८ ॥ सिंहकी समान चौडी छातीवाले नरसिंह रामचंद्रजी नित्य अनुगत

सीताजीको प्राणसे भी प्यारी समझतेहैं ॥ १९ ॥ प्रज्वलित अग्निकी शिखाके समान तेजस्वी रामचंद्रजीकी प्रिय स्त्री श्यामा अवस्थावाली जानकीको हर लानेंकी किसीकोभी सामर्थ्य नहींहै ॥ २० ॥ हे राक्षस राज ! तुम्हारा इस निरर्थक उद्यमसे प्रयोजन क्याहै ! जो वनमें रामचंद्र कहीं तुम्हें मिलभी गये तौ वहीं तुम्हारे जीवनकी इतिश्री होजायगी॥२१॥ देखो राज्य, सुख प्राण यह इस संसारमें महा दुर्लभहैं इससे जो सुख भोग किया चाहो तो रामचंद्रजीसे वैरभाव न करो अब यहांसे जाय सब विभीषणादि मंत्रियोंके साथ ॥ २२ ॥ सलाहकर अपना मतभी स्थिर-कर गुण दोषोंको विचार रामचंद्रजीके और अपने बलको जांचक-र ॥ २३ ॥ फिर रामचंद्रजीके बलमें अपना बल मिथ्या जान मेरी रायमें तो तुमको चुप रहना उचितहै बस तुम्हारा हित इसीमें होगा, हमारे इन कडे वचनोंको जो मैनें आपका हित करनेंके लिये कहेहैं क्षमा करना ॥ २४ ॥

अहंतुमन्येतवनक्षमंरणेसमागमंकोसलराज
सूनुना ॥ इदंहिभूयः श्रृणुवाक्यमुत्तमंक्षमंच
युक्तंचनिशाचराधिप ॥ २५ ॥

हमें कौशल्याधिप दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजीके साथ तु-म्हारा युद्धमें समागम करना अच्छा नहीं लगता, इस कारण हे राक्षस नाथ। फिरभी तुम्हारे हितकी युक्तियुक्त वार्ता कहताहूं तुम श्रवण करो ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्य कांडे सप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशः सर्गः ॥

कदाचिदप्यहंवीर्यात्पर्यटन्पृथिवीमिमाम् ॥
बलंनागसहस्रस्यधारयन्पर्वतोपमः ॥ १॥

में एक समय अपने बलवीर्यके घमंडके मारे पृथ्वीपर घूमता हुआ फिरताथा मेरे पर्वतकी समान शरीरमें सहस्र हाथियोंका बलथा ॥ १ ॥ हाथमें परिघ आयुध लिये मस्तक पर किरीट कानमें तपाये हुए सोनेके

वने कुण्डल पहरेथा। मेरे देहकी कान्ति नीले वादरोंकी समानथी इस प्रकारकी अवस्थामें लोकोंको भय उपजाताहुआ ॥ २ ॥ मैं दंडक वनमें घूम २ कर ऋपि लोगोंका मांस भक्षण करताथा। अनन्तर धर्मात्मा महामुनि विश्वामित्रजी मेरे भयसे भीत होकर ॥ ३ ॥ स्वयं जाकर राजा दशरथसे यह वोले कि अमावस्या और पूर्णमासीको जब हम समाधि अवस्थामें रहेंगे उस समय इन रामचंद्रको हमारी रक्षा करनी होगी ॥ ४ ॥ हे राजन्! मारीच राक्षससे हमको घोर भय उत्पन्न हुआ है। जब ऋपिनें इस प्रकार कहा तब धर्मात्मा राजा दशरथ ॥ ५ ॥ उन महर्पि महाभाग विश्वामित्रको प्रत्युत्तर देते हुए कि रामकी अवस्था अभी सोलह वर्पसेभी कमहै और अस्त्रविद्याभी अभी इन्हें नहीं आती ॥ ६ ॥ इस कारण इनको नहीं दे सकते। परन्तु तुम्हारा कार्य करनेंके लिये हम अपनी वडी भारी चतुरंगिनी सेना सहित चलकर वहां उस निशाचरको ॥ ७ ॥ यमलोकमें पठावेंगे जोकि आपका शत्रुहै जिसका संहार करना आपको अभीष्टहै, विश्वामित्रजी राजा दशरथजीके यह वचन सुन उनसे बोले ॥ ८ ॥ यद्यपि यह सत्यहै कि आप संग्राममें देवताओंकेभी रक्षक हो और तुम्हारा किया कर्मभी तीनों लोकोंमें प्रगटहै परन्तु रामचंद्रके सिवाय और किसीका बलभी इस राक्षसका नाश करनेंमें समर्थ नहीं होगा इस कारण हेपरंतप! तुम्हारी जो वडी भारी चतुरंगिनी सेनाहै वह यहीं रहे ॥ ९ ॥ ॥१०॥ यह महातेजवान रामचंद्र बालक होनें परभी राक्षसका नाश करनेंमें समर्थ होंगे इस्से हम इनको लेजांयगे। हे राजन्! तुम्हारा कल्याणहो ॥ ११ ॥ महर्पि विश्वामित्रजी यह कहकर श्रीरामचंद्रजीको साथले परम प्रीतियुक्त हो अपने सिद्धाश्रममें आये ॥ १२ ॥ तिसके पीछे जब महर्षि विश्वामित्रजी यज्ञ करनेंके लिये दीक्षित हुए तब श्रीरामचंद्रजी विचित्र धनुषकी टंकार करनेंके लिये विश्वामित्रजीके समीप आये ॥ १३ ॥ उनके गलेमें सुवर्णकी माला मस्तकपर अलकें हाथमें धनुष, दोनों नेत्र परम सुन्दर, एक मात्र जांघिया पहरे ब्रह्मचारी शरीर श्यामल वर्ण और अति सुन्दरताईसे शोभायमान, तबतक

उनके रेख इत्यादि पुरुष चिह्न नहीं प्रगट हुएथे ॥ १४ ॥ वह अपने तेजसे समस्त दंडकारण्यको सुशोभित करके द्वितीयाके चंद्रमाके समान उदय होते हुए दिखलाई देनें लगे ॥ १५ ॥ उस समय हम तप्त काञ्चन कुण्डलधारी, मेघका रंग धारण करके ब्रह्माजीके दिये हुए वर प्रभावसे बल मदसे दर्पित हो विश्वामित्रजीके आश्रममें आये ॥ १६ ॥ मैं जैसेही उनसे छिपकर हथियार लेकर आया वैसेही हमको आया हुआ देखतेही श्रीरामचंद्रजीनें तत्क्षणात् आयुध उठाकर हर्षित हो धनुषपर शर चढाया ॥ १७ ॥ बहुतही मोह वश होनेके कारण हमनें बालक समझ उनको ध्यानमें न लाकर बड़ी शीघ्रतासे विश्वामित्रजीकी यज्ञ वेदीके ऊपरको दौडे ॥ १८ ॥ यह देखकर श्रीरामचंद्रजीनें शत्रुओंके मारनेवाले तीखे बाणोंको चला हमें घायल कर शत योजन दूर समुद्रको फेंक दिया ॥ १९ ॥ हे तात! हमारे मारनेंकी इच्छा उस समय उनको नहींथी इसी कारणसे उन्होंनें उस समय हमको संहार न कर रक्षा की तिसके पीछे हम रामचंद्रजीके बाण वेगसे मूर्छित होकर उतनी दूर चले गये ॥ २० ॥ गंभीर समुद्रके जलमें गिरे और बहुत देरके पीछे चैतन्यता प्राप्त कर लंकामें आये ॥ २१ ॥ इस प्रकारसे हमनें तो रक्षा पाई। परन्तु कठिन कर्म करनेंवाले रामचंद्रनें अशिक्षितास्त्र और बालक होनेंपरभी हमारे सहाय सब राक्षसोंको मार डाला ॥ २२ ॥ इसी कारणसे निवारण करताहूं कि यदि तुम रामचंद्रजीके साथ युद्ध करोगे तो भयंकर विपदमें पडकर नाशको प्राप्त होजाओगे ॥ २३ ॥ और अपनें आप यत्न करके समाज उत्सवोंके देखनेवाले और क्रीडा रतिकी विधि जाननेवाले राक्षसोंके कारण वृथा संताप बटोरोगे ॥ २४ ॥ बस सीताहीके लिये, अटा, और अटारि, वा धवरहरोंसे पूर्ण नानारत्नभूषिता लंका नगरीको तुम नाशवान देखोगे ॥ २५ ॥ जिस प्रकार किसी तालावमें सर्प होतेहैं तो वहांकी बिचारी मछलियांभी गरुड करके मारडाली जातीहैं; इसी प्रकार जो लोक पाप नहीं करते; ऐसे शुद्धात्मा पुरुषभी, पापात्माके आश्रयमें रहनेंसे उस पापात्माके पापसे विनाशको प्राप्त होतेहैं ॥ २६ ॥ इस कारण तुम देखोगे कि तुम्हारे निजके दोषसे दिव्य चंदन

शरीरमें लगाये हुए; दिव्य वस्त्राभूषण पहरे हुए निशाचर गण समूल भूमियोंमें गिरेंगे ॥ २७ ॥ और आश्रय रहित राक्षस गण कोई स्त्री रहित हो कोई स्त्रीके सहित दशों दिशाओंको भागेंगे ॥ २८॥ तुम शर जालसे छाई हुई अग्निकी शिखासे पीडित हुई, ऐसी लंकापुरीके सबही गृह एकही कालमें भस्म हुए देखोगे ॥ २९ ॥ क्योंकि पराई स्त्रीके हरन करनेंकी तुल्य और कोई भारी पाप नहीं है! हे राजन्! तुम्हारे रनवासमें सैकडों हजारों स्त्रियां विराजमान हैं ॥ ३० ॥ तुम अपनी ग्रहणकी हुई उनही समस्त स्त्रियोंमें आसक्त रहकर अपने वंश, अभीष्ट प्राण, राज्य, संपद् मान और राक्षसकुलकी रक्षा करो ॥ ३१ ॥ यदि परम सुन्दरी स्त्रिये और मित्रोंके साथ सदाही सुख भोगनेंकी इच्छा करतेहो तौ रामचंद्रका अप्रिय कार्य मत करो ॥ ३२ ॥

निवार्यमाणः सुहृदामयाभृशंप्रसह्यसीतांयदि धर्षयिष्यसि ॥ गमिष्यसिक्षीणबलः सबांधवो यमक्षयंरामशरास्तजीवितः ॥ ३३ ॥

हम तुम्हारे सुहृद्हैं इसी कारण वारंवार तुमको निवारण करतेहैं यदि इतनेपरभी तुम बलपूर्वक सीताको हर लाओगे तौ निश्चयही तुमको रामबाणसे बन्धु बान्धवों सहित, क्षीणबल और क्षीण प्राण होकर यमराजके भवनमें जाना पडेगा ॥ ३३ ॥ इत्यार्षे० श्रीम० वा० आ०आ० अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः॥

एवमस्मितदामुक्तः कथंचित्तेनसंयुगे ॥ इदानीमपियद्वृत्तंतच्छृणुष्वयदुत्तरम् ॥ १ ॥

उस कालमें तौ हम किसी प्रकारसे युद्धमें रामचंद्रजीके द्वारा इस भांति युद्धमें छूट गयेथे, इस समय वह कहताहूं जो अब हुआहै, सो तुम श्रवण करो ॥ १ ॥ जब दो मृगरूपी राक्षसोंके साथ हम दंडकारण्यको गये वहांभी इसी प्रकार पराजित हुए ॥ २ ॥ जब हम दंडकारण्यको गयेथे तौ हमारी बडी अग्निके समान तौ जिह्वाथी, बडे तीखे दांतथे,

बडे २ सींगथे महाबलवान् भयंकर रूप था, और दंडकारण्यमें मांस खाते हुए हम विचरण करतेथे ॥ ३ ॥ फिर जहां २ तीर्थरूपी वृक्षथे, अग्निहोत्र होतेथे, वहींपर तपस्वियोंको संहार भक्षण करते हुए हम घूमतेथे ॥ ४ ॥ उस दंडक वनमें धर्मात्मा ऋषिगणोंको संहार २ उनका रुधिर पान करके मांस खा जातेथे ॥ ५ ॥ और महा कुटिल स्वभाववाले हो जो कोई मिलता उसे भय उपजाते, इस भांति रुधिर पीनेंसे मतवाले हो हम दंडक वनमें घूमतेथे ॥ ६ ॥ जब तपस्वी धर्मका अवलंबन किये हुए रामचंद्रको हमनें पीडित किया जबकि वह वनमें फिरतेथे ॥ ७ ॥ व महाभाग्यवाली जानकीजीकोभी डरवाया, तब महारथी, तपस्वीरूप सब प्राणियोंका हित करनेंमे तत्पर लक्ष्मणजीकोभी पीडित किया ॥ ८ ॥ फिर महाबलवान् वनमें घूमनेंवाले, रामचंद्रजीको तपस्वी मान! पहले वैरका स्मरण कर ॥ ९ ॥ मार डालनेकी इच्छासे क्रोधित हो, यद्यपि उनके पराक्रमको जानतेथे तथापि अपने बडे २ सींग आगेको झुकाय उनपर धावित हुए ॥ १० ॥ तब उन्होंनें कानके समीप तक धनुषको खेंचकर तीन नाराच हम तीन मृगोंके ऊपर चलाये, वह बाण गरुड व पवनकी गति समान चले ॥ ११ ॥ वह वज्रसम आकार वाले, अति घोर रक्त पीनेंवाले बाण हम तीनोंके ऊपर आगमन करनें लगे ॥ १२ ॥ हम बडे मूर्ख हैं, इस कारण पहलेही रामचंद्रसे भय देखकर उनका पराक्रम भली भांति जानतेथे तौभी लडे परन्तु हम तो भागकर किसी रीतिसे बचगये। परन्तु वह हमारे सहाई राक्षस रामचंद्रजीके दो बाणोंसे मारे गये ॥ १३ ॥ हे रावण! हम किसी प्रकारसे रामचंद्रजीके बाणसे अपने प्राणोंको बचा तबसे तपस्वीका धर्म ग्रहण कर चित्तको रोके हुए इस स्थानमें योगका अवलंबन करके तपस्या करतेहैं ॥ १४ ॥ तबसे हम फांसी हाथमें लिये यमराजकी समान उन चीर व मृग चर्म धारण किये धनुषधारी रामचंद्रको मानों प्रत्येक वृक्षके तले देखतेहैं ॥ १५ ॥ हम भयके मारे भीतहो निरन्तर सहस्रों रामको जहां तहां देखतेहैं। इस समस्तही वनमें मानों श्रीरामचंद्रजी हमको दिखाई देरहेहैं ॥ १६ ॥ हे राक्षसेश्वर! हम रामचंद्र करके रहित स्थानमेंभी, बराबर केवल उन्ही रामचंद्रको देखतेहैं! वरन स्वप्नमेंभी उनको

देखकर मैं डरके मारे जागतेकी समान इधर उधर दौडने लगताहूं ॥ १७ ॥ हे रावण! हम तुमसे अधिक कहांतक कहैं कि हम रामचंद्रसे यहांतक डर गयेहैं, कि रत्न, रथ, इत्यादि जिन शब्दोंकी आदिमें रकारहै उन शब्दोंके श्रवण करनेंसेभी हमें डर लगताहैं * ॥ १८ ॥ हम भली भांति उन रघुनंदन रामचंद्रजीके पराक्रमको जानतेहैं। इस कारणसे उनके साथ युद्ध करना तुमको उचित नहीं है। वह राम बलि, अथवा नमुचिको संहार करनेंमेंभी समर्थ हैं ॥ १९ ॥ हे रावण! तुम रामचंद्रके सहित युद्ध करो वा न करो, परन्तु यदि हमको देखनेंका अभिलाष करतेहो तौ हमारे साथ श्रीरामचंद्रजीकी वार्ता मत करो नहीं तौ हम यहाँसे चले जायगे ॥ २० ॥ इस लोकमें धर्मका अनुष्ठान करनेंवाले योगयुक्त होकरभी बहुतसे पुरुष पराया अपराध करनेंसे सपरिवार विनाशको प्राप्त हुए हैं ॥ २१ ॥ इसी प्रकार तुम्हारे अपराधसे हमको नाश होना पडेगा. हेनिशाचर। जो तुम्हारी इच्छाहो सो करो, परंतु हम तुम्हारे साथ नहीं चलेंगे, हमें अपनें प्राण प्यारेहैं ॥ २२ ॥ वह महातेजवान् महाबुद्धिमान्, महा बलवान् रामचंद्रजी वास्तवमेंही निशाचरों के कालहैं ॥ २३॥ यद्यपि पहले जनस्थानका रहनेंवाला अपावन खर, शूर्पणखाके लिये रामचंद्रसे मार डाला गयाहै, परन्तु इस विषयमें रामचंद्रजीका क्या अपराधहै सो तुम्हीं सत्य २ कहो ॥ २४ ॥

इदंवचोबंधुहितार्थिनामयायथोच्यमानंयदि
नाभिपत्स्यसे॥ सबांधवस्त्यक्ष्यसिजीवितंर
णेहतोऽद्यरामेणशरैरजिह्मगैः॥ २५॥

तुम हमारे बन्धुहो इस कारणसे हमनें तुम्हारे मंगलकेही लिये यह सत्य वचन कहे, यदि तुम हमारे वचनों को न मानकर रामचंद्र से वैर करोगे तो निश्चयही बन्धु बान्धवों सहित रामचंद्रजीके बाणोंसे युद्धमें विनाश को प्राप्तहो तुमको प्राण परित्याग करना पडेगा ॥२५॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकोनचत्वारिंशःसर्गः ॥ ३९ ॥

* "दोहा" रावण राके सुनतही रहत न मोहिं तन प्राण ॥ तिन रघुनंदन सों न छल, करहु वचन मम प्राण ॥

चत्वारिंशः सर्गः ॥

मारीचस्यतुतद्वाक्यंक्षमंयुक्तंचरावणः॥
उक्तोनप्रतिजग्राहमर्तुकामइवौषधम्॥ १ ॥

जिस प्रकार मृत्यु जिसकी निकटहै ऐसा रोगी औषधि ग्रहण नहीं करता ऐसेही सहनेंके योग्य व उचित मारीचके वचन रावणनें ग्रहण नहीं किये ॥ १ ॥ उस काल प्रेरित निशाचरपति रावणनें मंगलजनक और युक्तियुक्त संग वचन कहनें वाले मारीचसे अयोग्य व कठोर वचन कहे ॥२॥३॥ हे मारीच! तुमनें जो यह प्रतिकूल वचन हमसे कहे, यह अयोग्यहैं निष्फलहैं ॥ ४ ॥ जो पुरुष साधारण स्त्रीके कहनेंसे माता, पिता, राज्य, और सुहृद् गणोंको छोडकर वनमें चला आयाहै ॥ ५ ॥ सो हम तुम्हारे सामने अवश्यही युद्धमें खरका नाशकरनेंवाले उस रामकी प्राणसे अधिक प्यारी भार्याको हरण करेंगे ॥ ६ ॥ रे मारीच! हमनें अपनी बुद्धिसे अपने हृदयमें ऐसा निश्चय करही लियाहै, सो इन्द्रके सहित सुरासुरगणभी इसके विरुद्ध नहीं कर सकते! अर्थात् हमको इस संकल्पसे नहीं हटा सकते ॥ ७ ॥ यदि हम इस कार्यके विषय में कर्त्तव्याकर्त्तव्य निश्चय करनेंको तुमसे पूछते, तब तुमको इसके दोष, गुण, हानि, लाभ, उपाय, इत्यादि कहने उचितथे ॥ ८ ॥ जो ज्ञानवान् मंत्री अपने ऐश्वर्यके अभिलाषी होतेहैं वह राजा करके पूजे जानेंपर हाथ जोड पूछे हुए विषयका उत्तर नम्रतासे निवेदन करतेहैं ॥ ९ ॥ कारण कि राजा ओंके समीप, उपचार युक्त मनोहर, मंगल जनक अप्रतिकूल वचनही कहनें ठीकहै ॥ १० ॥ मंगलजनक वचनसे भी यदि अपमान होताहो तो माननीय राजा लोग उस सन्मान रहित वचनोंको सुन प्रसन्न नहीं होते अथवा ग्रहण नहीं करते ॥ ११ ॥ हे निशाचर! अमित तेजवान् महात्मा भूपति लोग अग्नि, इन्द्र, चंद्र, यम और वरुण इन पंच देवताओंका रूप धारण करतेहैं ॥ १२ ॥ इससेही हे मारीच! उनमें, अग्निकी गरमाई, इन्द्रका पराक्रम; चंद्रमाकी शीतलताई, यमराजकी समान दंडता, और वरुणके समान प्रसन्नता होतीहै ॥ १३ ॥ इस कारणसे सबही अवसरमें उनकी पूजा व सन्मान

करना योग्यताहै । तुम धर्मका विषय कुछभी न जानकर केवल मायाके ही आधीन हो रहेहो ॥ १४ ॥ इसीसे तुम्हारे ग्रहमें आनें पर भी तुमनें हमारी पूजा नकी, वरन दौरात्मके वश होकर ऐसे कठोर वचन कहताहै हे राक्षस ! हमनें तुमसे इस कार्यके गुण दोष नहीं पूछे न यह कि इस कार्यका करना कर्तव्यहै, अथवा नहीं ॥ १५ ॥ हे अमितविक्रम! हमनें तो तुमसे यही कहाथा कि तुम इस कार्यमें हमारी सहायता करो ॥ १६ ॥ यह मेरे वचनानुसार जो कार्य तुमको करनाहोगा हम उसको कहतेहैं तुम श्रवणकरो कि तुम रजतबिन्दु विचित्र सुवर्ण मृग होकर ॥ १७ ॥ उन रामचंद्रके आश्रममें जायकर विदेह राज कुमारी सीताके सामनें विचरण कर उनको लुभा हमारे अभिलषित स्थानमें चले जाओ ॥ १८ ॥ जनककुमारी सीताजी तुमको मायामयको सुवर्णका देखकर विस्मयको प्राप्त हो रामसे शीघ्र मृगके ले आनेंको कहेगी ॥ १९ ॥ तिसके पश्चात् जब काकुत्स्थनंदन राम आश्रमसे बाहर आकर तुम्हारे पीछे धावैं तब तुम उनको बहुत दूर तक ले जाना, और वहां ठीक रामचंद्रजीके बोलसा शब्द बनाकर बड़े जोरसे "हा सीता ! हा लक्ष्मण ! ऐसा वचन उच्चारण करना ॥ २० ॥ तब ऐसा शब्द सुन करके सीता-जीकी प्रेरणासे, व भाईकी सुहृदताके प्रेमसे, लक्ष्मणजीभी सम्भ्रान्त चित्तहो रामके निकट चले जायँगे ॥ २१ ॥ इस प्रकार राम लक्ष्मण दोनोंही जब उस आश्रममें चले जांयगे, तब हम सीताको सुखसे हरण करेंगे । जिस प्रकार इन्द्रने शचीका हरण कियाथा ॥ २२ ॥ हे सुव्रत निशाचर मारीच ! तुम इस प्रकार कार्यके पूरा करके जहां इच्छा हो वहां चले जाना । इस कार्यको पूरा होनेंपर हम तुमको आधा राज्य देंगे ॥ २३ ॥ हे शुभ दर्शन ! तुम इस कार्यको पूर्ण करनेंके लिये दंड-कारण्यके मार्गमें मंगल सहित चलो, हमभी रथपर चढकर तुम्हारे पीछे२ चलतेहैं ॥ २४ ॥ हम रामको ठगकर बिना युद्ध किये सीताको प्राप्त कर कृत कार्य हो फिर लंकापुरीको तुम्हारे सहित लौटेंगे ॥ २५ ॥ हे निशाचर मारीच ! यदि तुम हमारे वचनोंके प्रतिकूल करोगे तो अभी हम तुमको मार डालेंगे, कोई पुरुष राजाके विरुद्ध आचरण करकै सुख संपत्ति नहीं पासकता ॥ २६ ॥

आसाद्यतंजीवितसंशयस्तेमृत्युर्ध्रुवोह्यद्यमया विरुध्यतः॥ एतद्यथावत्परिगण्यबुद्ध्याय दत्रपथ्यंकुरुतत्तथात्वम्॥ २७॥

रामचंद्रके निकट जानेंसे तुम्हारे जीवनमें संशय मात्र है, परन्तु हमारे साथ विरुद्धाचरण करनेंसे इसी समय तुम्हारीमृत्यु निश्चय होगी; सो अपनी बुद्धिसे यथोचित विचार कर इस विषयमें जो कर्तव्य हो सो करो॥ २७॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे चत्वारिंशः सर्गः॥ ४०॥

एकचत्वारिंशः सर्गः॥

आज्ञप्तोरावणेनेत्थंप्रतिकूलंचराजवत्॥ अब्रवीत्परुषंवाक्यंनिःशंकोराक्षसाधिपम्॥ १॥

मारीच राक्षस पति रावण करके राजाकी समान मनोगत विषयमें आज्ञा पाकर शंका रहित चित्तसे यह कठोर वचन बोला॥ १॥ कि हे निशाचर राज! किस पाप कर्म करनेंवाले पुरुषनें तुम्हें राज्य मंत्रि, वर्ग, और पुत्रोंके सहित विनाश होनेंका यह उपदेश दियाहै॥ २॥ कौन पापात्मा तुम्हारे सुखसे सुखीनहीं हो सकताहै? किस पापीनें उपायके छलसे यह तुम्हारी मृत्युका उपाय तुम्हें बतला दियाहै? ॥ ३॥ हे राक्षस नाथ; तुम्हारे हीन वीर्य शत्रु लोग, निश्चयही बलवान् पुरुषके साथ तुम्हारा विरोध कराकर तुम्हारा नाश होता देखनेके अभिलाषी हुएहैं ४॥ हे रावण! किस दुष्ट बुद्धि वालेने तुमको ऐसा उपदेश दियाहै ? उस दुष्टका यही अभिलाषहै कि तुम अपने कर्मोंके प्रभावसेही नाशको प्राप्त होओ॥ ५॥ हे रावण! मंत्रिगण किसी प्रकारसे मार डालनेंके योग्य नहीं होते, परन्तु जो खोटे रस्ते में चलनेंसे तुमको नहीं रोकते, वही मार डालनेंके लायकहैं॥ ६॥ देखो तुम कामके वश होकर खोटे मार्ग में चलना चाहतेहो, और तुम्हारे मंत्री तथापि तुमको सब प्रकारसे नहीं रोकते॥७॥ हे निशाचर! हे विजय करनें वालों में उत्तम! मंत्रिगण अपनें स्वामी कीही प्रसन्नतासे, अर्थ, धर्म, काम व यशको प्राप्त होतेहैं॥ ८॥ और जो स्वामीकीही प्रसन्नता नहुई तो सबही व्यर्थ जाताहै और स्वामी

के गुणोंमें विकार होनेंके कारण सबही दुःख पातेहैं, और प्रजापर भी महाभय प्राप्त होताहै ॥ ९ ॥ नरपाल प्रजाओंके यश व धर्मकी प्राप्तिके मूलहोतेहैं! इस कारण सबही अवस्था में भली भांति राजाकी रक्षा करनी ठीकहै ॥ १० ॥ हे निशाचर। अति तीक्ष्ण स्वभाव वाला सबका अनभल चाहनेंवाला महात्मा ओंके आगे नम्रतासे नहीं रहनेवाला राजा राज्यका पालन नहीं कर सकताहै ॥ ११ ॥ जो मंत्री लोग बडी कठोर आज्ञासें राजासें कहकर प्रकाशित करा देतेहैं; फिर वे लोगभी राजासे दुःख पातेहैं! जैसे अयोग्य ऊंचे रथ हांकनेंवाले सारथीभी मालिकके साथ झटके सहतेहैं ॥ १२ ॥ इस लोकमें अनेक मनुष्य उचित धर्मानुष्ठान किये अपने पदके योग्य पराये अपराधसें बंधु बांधवों सहित नाशको प्राप्त हो गयेहैं ॥ १३ ॥ हे दशानन ! प्रजा प्रतिकूलाचारी तीक्ष्ण स्वभाव राजा करके रक्षमान होकर, शियारों करके रक्षित ससा आदि मृग गणोंकी नांई आगे प्रजा वृद्धिको प्राप्त नहीं होती ॥ १४ ॥ अरे रावण! तुम खोटी बुद्धिवाले हो इन्द्रियोंके वश हुए हो, कैडे स्वभाववालेहो, ऐसे जो तुम जिनके राजा हो वह समस्तही निशाचर अवश्यही मृत्युके ग्रास हो जांयगे ॥ १५ ॥ जिससे कि तुम ससैन्य भावना की हुई मृत्युसे भरे हुए शोचनीय हो, वैसेही तुम्हारा हमारे ऊपरभी यह घोर दुःख आन पडाहै ॥ १६ ॥ रामचंद्रजी हमको मारकर फिर तुम्हारा संहार करेंगे! युद्ध करके शत्रुके हाथसे मारे जानेंपर हम तो कृत कृतार्थ हो जांयगे ॥ १७ ॥ परन्तु तुम निश्चय जानों कि, हम तो रामको देखतेही मरे धरेहैं और यहभी भली भांति समझ रक्खो कि सीताको हरण करतेही तुमभी अपने परिवार सहित मारे जाओगे ॥ १८ ॥ यदि हमारे साथ मिल रामचंद्रजीको धोखादे! तुम सीता महारानीको आश्रमसे लेभी आये, तौ हमारी, तुम्हारी, लंकापुरी, व निशाचर गणोंकी किसी कीभी रक्षा न होगी ॥ १९ ॥

निवार्यमाणस्तुमयाहितैषिणानमृष्यसेवाक्य मिदंनिशाचर॥ परेतकल्पाहिगतायुषोनराहितं नगृह्णंतिसुहृद्भिरीरितम्॥ २०॥

यदि तुम हमारे इन हितकारी वचनोंको न सुनकर ऐसा कार्य करने से नहीं रुकोंगे तो तुम्हारा नाश हो जायगा क्योंकि जिस मनुष्यकी आयु क्षीण हो जातीहै वह किसी सुहृदके हितकारी वचनोंको नहीं माना करता॥२०॥इ०श्रीम०वा०आ०आर०एकचत्वारिंशः सर्गः ४१॥

द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥

एवमुक्त्वातुपरुषंमारीचोरावणंततः॥
गच्छावेत्यब्रवीद्दीनोभयाद्रात्रिंचरप्रभोः॥ १॥

मारीचनें राक्षसराज रावणसे ऐसे कठोर वचन कहकर, फिर उसके भयसे भीतहो यहभी कह दिया कि अच्छा हम चलतेहैं ॥ १ ॥ वह धनुर्बाणधारी, और खड्ग धारण किये हुए रामचंद्रजी आयुध उठाकर हमारी ओर व तुम्हारी ओर रामचंद्रजीनें देखातो तुम अपनें व हमारे प्राण गएही जानो ॥२॥हे तात! रामचंद्रजीसे कैसाही पराक्रम प्रकाश कर कोईभी जीवित नहीं लौट सकता फिर हम तो तुम्हारे खोटे आचारोंके कारण यमराजरूप रामचंद्रके बाणोंसे मृत्युको प्राप्तहो तुम्हारेही समान हो जायँगे अर्थात् हम तुम दोनों मारे जायँगे ॥ ३ ॥ तुम्हारे ऊपर अपनी सामर्थ्य प्रकाश करके जीता हुआ रहना संभव नहीं क्योंकि तुम अति दुरात्माहो! हम तुम्हारा करही क्या सकतेहैं! हे राक्षस राज तुम्हारा मंगलहो हम चलतेहैं ॥ ४ ॥ राक्षसपति रावण मारीचके यह वचन सुन परम हर्षित हो उस्से भली भांति भेंटा और यह वचन बोला ॥ ५ ॥ कि तुमनें हमारे अभिप्रायके अनुसार जब कार्य करनेंको कहा तब यही वचन तुम्हारा वीरोचित हुआ। पहले तुम एक साधारण मारीच राक्षसथे पर अब तुम हमारी समान हुए ॥ ६ ॥ अब तुम हमारे साथ शीघ्रही इस रत्न विभूषित अंतरिक्षमें टिके हुए रथपर जिसमें कि पिशाचोंकी समान गधे जुत रहेहैं बैठो ॥ ७॥ फिर वहां पहुंचकर विदेह राजकुमारी सीताको लुभाकर इच्छानुसार स्थानमें चल देना। तब हम राम लक्ष्मण सहित शून्य आश्रममें प्रवेश करकै बल पूर्वक सीताको हर लावेंगे ॥८॥ ऐसा सुनकर ताडका तनय मारीचने कहा कि बहुत अच्छा चलिये। तत्पश्चात् रावण व मारीच विमान समान उस रथपर चढ ॥ ९ ॥ जलदी

से उस आश्रमसे चले और अनेक भांतिके पत्तन वन ॥ १० ॥ पर्वत नदी राज्य व नगरोंको देखते भालते दंडकारण्यमें आये जहां रामचंद्रजी-का आश्रमथा ॥ ११ ॥ और आश्रमको मारीचके सहित रावणनें देखा और दोनों जने उस रत्न भूषित रथसे उतरे ॥ १२ ॥ और मारीचका हाथ पकडकर रावण कहनें लगा कि हे सखे! वनमें केलोंके वृक्षोंसें घिरा हुआ यह रामचंद्रका आश्रम दिखाई देताहै ॥ १३ ॥ जिस कारणसे किहम लोग यहां आयेहैं; इस समय शीघ्रतासे उस कार्यका आरंभ करो। निशाचर मारीच रावणके यह वचन सुनकर ॥ १४ ॥ महा अद्भुत मृग रूप धारण करके रामचंद्रजीके आश्रमके द्वारपर फिरनें लगा॥१५॥ इस मृगके शींगोंका अग्रभाग मणि प्रवर सदृशथा, और मुखकी आकृति श्वेत कृष्ण विविध वर्णोंसे चित्रितथी वदनमंडल कमलके फूलकी समान श्रवण युगल इन्द्र नील पद्मकी समानथे ॥ १६ ॥ गरदन कुछ एक ऊंची उदरभी इन्द्र नील मणिकी समता रखताथा पीछेका भागमहुयेके सुमनकी समान और वर्ण पद्म परागकी तुल्यथा ॥ १७ ॥ खुरियें वैदूर्य मणिकीतुल्यथीं,दोनों जांघें पतलीथीं सब सन्धियें एक दूसरीसे गठी हुईथीं, और पूंछ इन्द्रधनुषकी समान ऊपरको उठी हुई विराजमान होरहीथी ॥ १८ ॥ उसका वर्ण चिकना और मनोहरथा और शरीर उसका अनेक भांतिके रत्नोंसे विभूषितथा उस मारीच राक्षसनें क्षण भरमें यह परमशोभा युक्त मृग मूर्ति धारणकी ॥१९॥ उस वनको शोभित करता हुआ और श्रीरामचंद्रजीके आश्रमकोभी अपनें परम मनोहर देखनें योग्यरूपसे वह राक्षस प्रकाश मान करनें लगा ॥ २० ॥ जानकी जीको ललचानेके लिये अनेक प्रकारकी धातुओंसे चित्र विचित्ररूप धारण किये चारों ओर हरी २ घास चरता हुआ वह मृग रामचंद्रजीके आश्रम पर विचरनें लगा ॥ २१ ॥ उसके शरीरपर सैकडों चांदीके बिन्दु लगेथे ऐसे कि जिनके देखनेंसे परम प्रीति उपजे वह मृगकभी २ वृक्षोंकी कोंपलके नये २ पत्ते खाता हुआ घूमने लगा ॥ २२ ॥ कभी केलोंकी बगियामें और कर्णि कारके वनमें प्रवेश करके और कभी श्रीसीताजीकी दृष्टिके सन्मुख जाकर इस प्रकार आश्रमके इधर उधर वह मृग मन्द गतिसे चलनें लगा ॥ २३ ॥ पीठ पर सुवर्णके

द्वारा चित्र विचित्र होनेंसे उसकाल इस महा मृगकी अतिशय शोभा हुई थी, वह यथा सुखसे रामचंद्रजीके निकट घूमनें लगा ॥ २४ ॥ आश्रममें घूमनेंके समय कभी दौडता, कभी ठिठक कर खडा होजाता, कभी मुहूर्त भरतक आगेको आश्रममें चलता, कभी फिर झट पट लौट आता ॥ २५ ॥ कभी इधर उधर खेलता, कभी पृथ्वी पर लेट जाता, कभी आश्रमके द्वार पर आकर सुखसे चरते हुए मृग झुंडोंके साथ चरनें लगता ॥ २६ ॥ कभी मृगोंके साथही साथ आकर फिर सीताजीको दिखाई देनेंकी वांछासे फिर आश्रममें चला आता जानकीके दर्शनकी इच्छासे वह राक्षश मृग होगया ॥ २७ ॥ इस प्रकार वह मृग ताको प्राप्त होकर विचित्र मंडल देखता कूद फांद करनें लगा इसकी कूद फांद देख और वनके मृग ॥ २८ ॥ उसके निकट आये और उसको सूंघतेही दशों दिशा ओंको भागनें लगे। मारीच यद्यपि सदा मृगोंके मारनें में रतथा ॥ २९ ॥ तथापि उसनें अपना भाव छिपानेंके लिये उन मृगोंको भक्षण नहीं किया केवल स्पर्श करनें लगा। इसी समय शुभ लोचना वैदेहीजी॥ ३० ॥ फूल चुननेंके लिये, कभी अशोक कभी कर्णि और कभी आम वृक्षके निकट जातीथीं ॥ ३१ ॥ वनवास करनेंके अयोग्य उन रुचिर वदना सीताजीनें फूल चुनते हुए, घूमते २ उस रत्न मय मृगको देखा ॥ ३२ ॥ उसके सब अंग मुक्ता मणियोंसे चित्रितथे। ऐसी वराङ्गना और अति सुन्दर दांत व अधर वाली जानकी जीनें भली भांति उस मृगको देखा इस मृगके रुयें चांदी और गेरु धातुके समान थे ॥ ३३ ॥ श्रीजानकीजी विस्मयसे प्रफुल्ल नेत्रोंसे स्नेह सहित उस मृगको देखनें लगीं माया मय मृगभी राम प्यारी सीताजीकी ओर देखता रहा ॥ ३४ ॥

विचचारततस्तत्रदीपयन्निवतद्वनम् ॥
अदृष्टपूर्वंदृष्ट्वातंनानारत्नमयंमृगम् ॥
विस्मयंपरमंसीताजगामजनकात्मजा ॥ ३५ ॥

अनन्तर वह मृग उस वनको प्रकाशित करता हुआ इधर उधर

घूमने लगा। जनक कुमारी श्रीसीताजी अनेक रत्नमय अदृष्टपूर्व (जो पहले कभी नहीं देखा) मृगको देखकर अति विस्मयको प्राप्त हुई॥३५॥ इत्यार्षे श्रीरामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आ० द्विचत्वारिंशःसर्गः ४२

त्रिचत्वारिंशःसर्गः॥

सातंसंप्रेक्ष्यसुश्रोणीकुसुमानिविचिन्वती॥
हेमराजतवर्णाभ्यांपार्श्वाभ्यामुपशोभितम्॥ १॥

सुश्रोणी,फूल चुनती हुई सीताजीनें इस मृगके शरीरके मध्य चांदीके बिंदु शोभाय मान देख दोनों बगल उसके सुवर्ण व चांदीके देखे॥१॥ यह देखकर परम हर्षित हो अनन्दि ताङ्गी,विशुद्ध वर वर्णिनी सीताजीनें आयुध धारण किये हुए रामचंद्र व लक्ष्मणजीको पुकारा॥२॥हे आर्यपुत्र! लक्ष्मणके सहित शीघ्र आओ इस प्रकारसे कहकर रामचंद्रजीको पुकारतेर उस मृगकी ओर देखनें लगीं॥ ३ ॥ सीताजीके पुकारनें पर पुरुषोत्तम श्री रामचंद्रजी और लक्ष्मणजी दोनों जनोंनें इधर उधर देखते वहां आये और इस मृगको देखा॥ ४ ॥ परन्तु लक्ष्मणजी मृगको देख शंकितहो श्रीरामचंद्रजीसे कहनें लगे कि महाराज! हमें तो ऐसा समझ पडताहै कि यह मृगरूपी निशाचर मारीचहै॥ ५॥ यह पापात्मा मारीच मृग रूप धारण करकै परम हर्ष सहित आखेटको वनमें आये हुए राजा लोगोंको मारडाला करताहै॥ ६ ॥ यह राक्षस मायाका जाननें वालाहै, इसनें मायाके बलसे इस प्रकारका मृगरूप धारण कर लियाहै। हे पुरुषसिंह! यह मृगरूप गन्धर्व नगरकी समान अव रमणीय और परम दीप्ति युक्तहै परन्तु वास्तवमें यह मृग नहींहै॥ ७॥ हे रघुनंदन! इस प्रकार रत्न चित्रित मृग कभी पृथ्वी पर नहीं हो सकता। हे जगत् नाथ! यह निश्चयही माया है इसमें कुछ सन्देह नहीं॥ ८ ॥ जब लक्ष्मणजी इस प्रकार कहनें लगे तब कुछ एक मुस्काई हुई सीताजीनें राक्षसके छलसे मोहितहो लक्ष्मणजीको इस कहनेसे रोक दिया और आप परम हर्षितहो बोलीं॥ ९ ॥ हे आर्यपुत्र! इस अभिराम मृगनें हमारे मनको हरण कियाहै हे महाबाहो! इसको पकड लाओ हम इस मृगके साथ खेला करेंगी॥ १० ॥ क्योंकि हमारे इस पुण्याश्रममें बहुतसे पुण्यदर्शन मृगगण चमर सृमर घूमा क-

रतेहैं, जिनकी काली और सफेद पूछ होतीहै ॥ ११ ॥ और ऋक्ष, पृषत वानर, व किन्नरादिभी घूमतेहैं यह सब महाबलवान और रूपवान् हैं ॥ १२ परन्तु हे राजन्! पहलेकभी इस प्रकारका मृग हमारी दृष्टिमें नहीं आया; तेज क्षमा कान्तिमें यह मृगोंमें श्रेष्ठ ज्ञात होताहै ॥ १३ ॥ इसका सबही शरीर विविध वर्णोंसे विचित्रहो रहाहै। मध्य २ में रत्नोंके विन्दु बनेहैं। यह मृग चंद्रमाकी समान वन भूमिको शान्ति भावसे प्रकाशित करता हुआ हमारे सन्मुख विराजमान हो रहाहै ॥ १४ ॥ अहहह क्या सुन्दरताईहै! अहो क्या श्रीहै! आहा क्या शोभाहै! क्या मधुर इसका बोलहै! यह अपूर्व विचित्र अंगवाला मृग हमारे मनको चुराये लेताहै ॥ १५ ॥ यदि आप इसको जीता हुआही पकड देंगे तो बडा अपूर्व यह पदार्थ सदा निकट रहकर विस्मय उपजाता रहा करैगा॥१६॥ जब हम वनवासके व्रतको पूरा करकै फिर अपने राज्यमें चलेंगे तब यह मृग हमारे रन वासका भूषण होगा ॥ १७ ॥ हे प्रभो! भरतजीको, आपको, हमारी सासोंको, वरन सबकोही यह दिव्य मृग रूप विस्मय उत्पन्न करावैगा ॥ १८ ॥ हे पुरुषोत्तम! यदि इस मृगको आपजीता न पकड सकें, तो इसका चर्मही परम मनोहर होगा ॥ १९ ॥ इस निहत-मृगके सुवर्णमय चर्मको कुशासनपर बिछाकर उस पर बैठ तुम्हारे सहित भगवानकी पूजा करनेंको हमारा अभिलाष हुआहै ॥ २० ॥ यद्यपि स्वामीको इस प्रकारकी प्रेरणा करना स्त्रियोंके लिये स्वेच्छा चारिताहै, और भयंकर, व अनुचितभीहै, तथापि इस मृगकी विचित्र देहनें हमको बहुतही विस्मय उपजायाहै ॥ २१ ॥ उसके कंचनके समान रोम भली श्रेष्ठ मणिकी समान शृंग प्रभात कालीन सूर्यकी नांई और आकाशकी समान प्रकाशमान ॥ २२ ॥ रूपसे रामचंद्रजीके हृदयमेंभी विस्मय इसकी अवाई हुई सीताजीके ऐसे वचन सुनकर और उस अद्भुत मृगको देख ॥ २३ ॥ तिसके शरीरकी सुन्दरताईसे रामचंद्रजी लुभागये, तिस पै सीताजीने प्रेरणाकी इस कारण हर्षित चित्त हो! श्रीरामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मणसे बोले ॥ २४ ॥ कि हे लक्ष्मण! अवलोकन करो इस मृगका श्रेष्ठ रूप देखकर जानकीजीकी अभिलाषा उल्लसित हो उठीहै। अतएव इस समय इसका प्राण धारण करना असंभव है ॥ २५ ॥ हे लक्ष्मण!

क्या वनमें, क्या नन्दनमें, क्या चैत्ररथ काननमें, अथवा पृथ्वीके किसी स्थानमेंभी इसके समान मृग नहीं है ॥ २६ ॥ देखो इसके रोमोंकी पंक्तियें कुछ सीधी कुछ वंकिमाकार कैसी शोभाको प्राप्त होरही हैं और तिसपर उसमें सुवर्ण बिन्दुओंके चित्रित होनेंसे औरभी सुन्दरताई आई है ॥ २७ ॥ देखो भइया ! मेघमें बिजली जिस प्रकार चमकती है वैसेही जमुहाई लेनेंके समय उसके मुखसे अग्निकी शिखाके समान प्रदीप्त जीभ निकलती है ॥ २८ ॥ इसका मुखमंडल इन्द्रनीलमणि निर्मित पान पात्रके आकारसाहै । पेट शंख और मोतीको समानहै, और इसके स्वरूपका निर्णय करना दुःसाध्यहै, इसको देखनेंसे किसका मन मोहित नहीं होता ? ॥ २९ ॥ इसका रूप पक्के सुवर्णकी प्रभासे परिपूर्ण है, और नाना प्रकारके रत्नमयहै ऐसा दिव्य स्वरूप दृष्टि आनेंसे किसका मन विस्मयको प्राप्त नहीं होता ? ॥ ३० ॥ धनुर्द्धारी नृपतिगण महा वनमें शिकार करनेंके लिये प्रवृत्त हो मांसके लिये अथवा विहारके लिये बहुत मृगोंको मार डालतेहैं ॥ ३१ ॥ अधिक करके वह राजा लोक मृग वधमें उद्यत होकर बड़े २ वनोंमें मणिरत्न सुवर्णादि धातुरूप धनका संग्रहभी करतेहैं ॥ ३२ ॥ हे लक्ष्मण ! इस प्रकार धन धान्यकी राशिसे खजाना बढताहै । इस लिये वनमें सबही पुरुषोंको ब्रह्मकी नांई मनकी इच्छा सफल होतीहै ॥३३॥ हे लक्ष्मण ! अर्थको इच्छा करनेंवाला पुरुष अर्थसाधन वस्तुके कारण निःसंशय चित्तसे उस कार्यमें लगे तो अर्थ शास्त्रज्ञ पंडित लोग उसकोही ठीक अर्थ कहते हैं ॥ ३३ ॥ इस कारणसे इस मृगके वध करनेंमें कुछ दुविधा करनेंकी आवश्यकता नहीं है। सुमध्यमा जानकीजी हमारे साथ इस मृग रत्नके श्रेष्ठ व सुवर्ण मय चर्म पर बैठेंगी ॥ ३५ ॥ क्या कदली और प्रियक मृगका चमडा क्या प्रवेणी नामक छागलका चमडा क्या मेषादिकका चमडा । कोई भी चमडा इस मृगके चमडे की समान कोमल, चिकना, व मनोहर हमको नहीं ज्ञात होताहै ॥ ३६ ॥ यह ही मृग श्रीमानहै, और आकाशमें जो मृग विचरण करतेहैं; वही श्रीमानहै । बस इससे वह तारा मृग (मृग शिरा नक्षत्र) और यह महीमृग यही दोनों मृग दिव्यहैं ॥३७॥ हे ल-

क्ष्मण ! तुम कहतेहो कि यह राक्षसकी मायाहै; सो यदि वास्तवमें ऐसाही हो तोभी हमको इसका संहार करना कर्त्तव्यहीहै ॥ ३८ ॥ क्योंकि देखो इस दुरात्मा निर्दय मारीचने वनमें घूमते २ अनेक मुनिश्रेष्ठोंको मारडालाहै ॥ ३९ ॥ और शिकार खेलनें जब राजा लोग इस वनमें आये तो इस राक्षसनें इसी भांति माया मृग बनकर परम धनुर्द्धर अनेक राजा ओंको संहार कियाहै । इस कारण इस मृगको वधकरनाही कर्त्तव्यहै ॥ ४० ॥ पेटमें रहतेही हुए जिस प्रकार । खिचडीकी गर्भ अपनी माताको मार डालताहै; वैसेही पूर्व समय इस वनमें राक्षस वातापिनेंभी तपस्वी ब्राह्मणोंके पेटमें प्रवेश करके उनको संहार किया करता था ॥ ४१ ॥ बहुत काल पीछे किसी समय वह वातापि तेजस्वी महा मुनि अगस्त्यजीको प्राप्त होकर उनके द्वारा पचाया गयाथा ॥ ४२ ॥ फिर जबकि श्राद्धके पूर्ण होनेउपरान्त वातापिको राक्षस रूप धारण करनेंका इच्छुक देख भगवान अगस्त्यजी मुसकाय कर बोले ॥ ४३ ॥ वातापि ! तूनें अपने तेजसे ज्ञानरहित हो इस जीव लोकमें अनेक श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको मारडालाहै, इसी कारणसे हमनें तुमको पचाडाला ॥ ४४ ॥ हे लक्ष्मण ! जो हमारी समान धर्म निरत और जितेन्द्रिय पुरुषका निरादर करताहै; उस राक्षसके प्राण वातापिही समान नष्ट होजाते हैं ॥ ४५ ॥ अतएव मारीच इस आश्रममें आकर अगस्त्यजी करके वातापिकी नांई हमारे द्वारा मारडाला जायगा । इस समय तुम कवच इत्यादि बांधकर यत्न सहित सीताजीकी रक्षा करो ॥ ४६ ॥ हे रघुनंदन ! हमारा कर्त्तव्य कार्य जानकीके आधीनहै इसलिये तुम साव धानसे यहां टिके रहो, हम इस मृगको मारही डालेंगे, अथवा जीता हुआ पकड लावेंगे ॥ ४७ ॥ हे लक्ष्मण ! इस मृग चर्म लेनेकी जानकीको बडी अभिलाषा हुईहै, देखो, अब हम बहुत शीघ्रतासे इस मृगको पकडनेंके लिये जायगे ॥ ४८ ॥ इस मृगका चर्म सब मृगोंसे अच्छाहै, आज निश्चयही इसको प्राण त्याग करना पडेगा । लक्ष्मण ! हम जब तक इस मृगको नहीं मारडालें तब तक तुम सीताजीके साथ सावधानतासे आश्रममें टिके रहो ॥ ४९ ॥ हे लक्ष्मण ! हमें एक बाणसे शीघ्रही

मृगको मार कर इसका चर्म ले आऊंगा जब तक हम लौट कर न आवें तब तक तुम सावधानीसे यहां पर रहना ॥ ५० ॥

प्रदक्षिणेनातिबलेनपक्षिणाजटायुषाबुद्धि
मताचलक्ष्मण ॥ भवाप्रमत्तःप्रतिगृह्यमै-
थिलींप्रतिक्षणंसर्वतएवशंकितः ॥ ५१ ॥

हे लक्ष्मण ! तुम जानकीको लेकर अति बलवान बुद्धिमान, अच्छे कार्योंको करनेंमें चतुर, बली श्रेष्ठ जटायुके साथ निरंतर शंकित और सावधानीसे यहां पर रहना ॥ ५१ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० आर० त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥

तथातुतंसमुद्दिश्यभ्रातरंरघुनंदनः ॥
दधारासिंमहातेजाजांबूनदमयत्सरुम् ॥ १ ॥

परम तेजस्वी रघुनंदन ! रामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मणजीको इस प्रकारसे समझाय बुझाय सुवर्ण निर्मित मुष्टि लगा हुआ खड्ग हाथमें लेते हुए ॥ १ ॥ तिसके पीछे जिसका विचला भाग तीन जगहसे झुका हुआथा, ऐसा अपना भूषण स्वरूप धनुष ग्रहण करके और दो तरकश बांध करके प्रचंड पराक्रमी श्रीरामचंद्रजी गये ॥ २ ॥ वह मृगश्रेष्ठ मृगोंका राजा रामचंद्रजीको अपनें सन्मुख आतां हुआ देखकर भयके मारे अन्तरध्यानहो फिर थोडी दूरपै उनको दीख पडा ॥ ३ ॥ श्रीरामचंद्रजीभी खड्ग और धनुष बाण धारण करके जिस ओर मृगथा उसी ओर को धाये। और देखते हुए कि मृग अपनें रूपसे चारों ओर को प्रकाश करता हुआ मानों सामनेंही विराजरहाहै ॥ ४ ॥ कभी वह मृग शारंगपाणि रामको वारंवार देखकर वनमें दौडता कभी कुलांच मारकर दूर हो रहता ॥ ५ ॥ कभी शंकित और भ्रान्त चित्त होकर मानों आकाशको चला जायगा ऐसी छलांग मारता, कभी अदृश्य होजाता, कभी दिखाई पडने लगता ॥ ६ ॥ और कभी छिन्न भिन्न मेघ समूहमें घिरे हुए शारदीय चंद्र मंडलकी समान मुहूर्त भरमें

अदृश्य होजाता और मुहूर्तमात्रमेंही दूर दिखाई देता ॥ ७ ॥ इस प्रकारसे मृगरूपी मारीच छल बलकर दीखता छिपता रामचंद्र-जीको आश्रमसे बहुत दूर ले गया ॥ ८ ॥ रामचंद्रजी उसकी मायासे मोहित और नितान्त अवश होकर क्रोधसे घिरे और बहुतही थक कर एक पेडकी छायाके नीचे हरी दूबके खेत में बैठ गये ॥ ९ ॥ मृगरूपी मारीचनें उनको उन्मादित करदियाथा, वह मारीच फिर अन्य-मृगोंके साथ बहुत निकटही रामचन्द्रजीको दृष्टि आया ॥ १० ॥ वह मा-रीच राक्षस श्रीरामचन्द्रजीको अपनें पकडनेका अभिलाषी जानकर दौडा । और मारे भयके उसी समय फिर अन्तर्ध्यान होगया ॥ ११ ॥ और बहुत दूर जाकर फिर वृक्ष समूहोंके नीचे दिखाई दिया, महातेजवान् रामचन्द्रजी यह देखकर अब उस मृगका मार डालनाही निश्चय करते हुए ॥ १२ ॥ उन्होनें रोषमें भरकर फिर तरकशसे सूर्यकी किरणोंकी समान शत्रुका नाश करनेंवाला प्रज्वलित एक बाण निकाला ॥ १३ ॥ और उसको दृढ धनुष्यपर चढा बलसे खेंच जलती अग्निकी समान प्रकाशित तिस मृगपर ॥ १४ ॥ ब्रह्माका बनाया हुआ अतिप्रज्वलित अस्त्र, उस मृगरूपी राक्षस मारीचके लायकही छोडा॥ १५॥शर श्रेष्ठ ब्रह्मा-स्त्रनें छूटतेही वज्रकी समान मृगरूपी मारीचका हृदय विदारण करडाला तब वह मारीच अतिशय आतुर होकर ताडके वृक्ष समान ऊपरको उछल पृथ्वीपर गिर पडा ॥ १६ ॥ और क्षीण प्राण मरनेंके निकट पहुँच पृथ्वी-पर गिरकर भयंकर शब्दसे बहुत चिल्लाया । उस राक्षसनें मरनेंके समय वह अपनी बनावटी छलकी देह त्यागन करदी ॥ १७ ॥ अनन्तर मारीच मरनेंके समय उस मायामय देहको त्याग रावणकी आज्ञा स्मरण कर विचारनें लगाकि किस उपायका अवलंबन करनेंसे सीता लक्ष्मणको यहां भेजें, और रावण शून्य आश्रमको पाकर सीताको हरण करले ॥ १८ ॥ यह विचारकर अपना काल आया हुआ जान रावणकी उपदेश कीहुई सलाहके अनुसार, "हा सीते ! हा लक्ष्मण" ! कहकर रामचंद्रजीके समान कंठस्वर बनाकर उस राक्षसनें चिल्लाना आरंभ किया ॥ १९ ॥ श्री रामचंद्रजीके अनुपम बाणसे उसको मर्म स्थानमें इतना विंध गयाथा; कि

फिर वह मृगरूप धारण नहीं कर सका और राक्षसमूर्ति ग्रहणकी॥ २० ॥ मरनेंके समय मारीचकी देह बडी भारी होगई उस भयंकर निशाचर मारीचको भूमिमें ॥ २१ ॥ रुधिरसे लिपटा पृथ्वीमें लोटता हुआ श्रीरामचंद्रजीनें देखा और मनही मनमें सीता और लक्ष्मणके वचन याद करके आश्रमकी ओर लौटे ॥ २२ ॥ आश्रमको लौटनेंके समय विचारनें लगे कि लक्ष्मणजीनें पहलेही कहाथा कि यह मारीचकी मायाहै । उनकी ही बात इस समय सत्य हुई । यथार्थही मारीचको हमनें मारडाला ॥२३॥ इस समय मारीचनें " हा सीते ! हा लक्ष्मण " बडे ऊंचे शब्दसे यह कह; कर प्राण त्याग कियेहैं; न जाने सीता इस शब्दको सुनकर क्या करैंगी ॥ २४ ॥ अथवा महाबाहु लक्ष्मणजी किस अवस्थाको प्राप्त होंगे? इस प्रकार चिन्ता करते २ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीके रोम खडे होगये॥२५॥ उस काल मृगरूपी राक्षसको मार डालकर और इसका इस प्रकार चिल्लाना सुनकर विषादके मारे तीव्र भयसे रामचंद्रजी भीत हुए॥ २६॥

निहत्यपृषतंचान्यंमांसमादायराघवः ॥
त्वरमाणोजनस्थानंससाराभिमुखंतदा ॥ २७ ॥

तिसके पीछे वह एक और मृगको मारकर और उसका मांस ग्रहण करके शीघ्रतासे जनस्थानकी ओर चले ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर० चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४४ ॥

पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥

आर्तस्वरंतुतंभर्तुर्विज्ञायसदृशंवने ॥
उवाचलक्ष्मणंसीतागच्छजानीहिराघवम् ॥ १ ॥

यहां आश्रममें वनके मध्य अपने स्वामीकी समान बहु करुणाका शब्द सुनकर सीताजी लक्ष्मणसे बोली जाकर देख आओ रामचंद्रजीको क्या हुआ?॥ १ ॥ वह महाआरत वचनसे चिल्ला रहेहैं यह शब्द सुनकर हमारा मन प्राण अपने२ ठिकाने नहीं है ॥ २ ॥ वनके बीच ऊंचे स्वरसे रोते हुए अपने भ्राताका उद्धार करना तुमको अवश्य कर्तव्यहै । इस कारण तुम वेगही शरणार्थी अपने भ्राताकी रक्षाके लिये दौडो ॥ ३ ॥ गाय बैल जिस प्रकार सिंहके वशमें पडताहै,तुम्हारे भइयाभी वैसेही राक्षसके

वशमें पडेहैं । परन्तु लक्ष्मणजीको मृग मारनेको गमन करनेके समय जो रामचंद्रजी आज्ञा देगयेथे उसको याद करके सीताजीसे इस प्रकार कहे जानें परभी रामचंद्रजीके समीप नहीं गये ॥ ४ ॥ तब सीताजी नितान्त क्षुभित होकर लक्ष्मणजीसे बोलीं कि हे लक्ष्मण ! तुम रामचंद्रजीके मित्र रूपी शत्रुहो ॥ ५ ॥ देखो तुम इस प्रकारकी अवस्थामेंभी उनकी रक्षा करनेंके लिये नहीं जाते । इस्से समझ पडा कि तुम हमको लेलेनेंके लिये रामचंद्रजीके विनाशकी कामना करतेहो ॥ ६ ॥ निश्चयही हमारे प्रति लुभानेंसे तुम उनके समीप नहीं जाते इसी कारणसे रामचन्द्रजीकी यह विपद तुमको प्रिय लगतीहै । और तुमको उनसे कुछ स्नेह नहीं है ॥ ७ ॥ इसी कारण तुम महाद्युतिमान् रामचन्द्रजीको न देख करभी निश्चिन्त बैठे हो । किन्तु तुम जो रामचन्द्रजीके आधीनमें होकर वनमें आये हो । तो उनके यहां संशयापन्न होनेंसे ॥ ८ ॥ मुझसे यहां रहकर क्या कार्य होगा जब वैदेहीजीनें आँखोंमें आंसू भरकर यह कहा कि तुम्हारी तो यह दशा रही तो अब हम क्या करें ॥ ९ ॥ तब मृगीके समान डरी हुई सीताजीसे लक्ष्मणजी बोले कि हे विदेहकुमारी ! नाग, असुर, गन्धर्व, देव, दानव, राक्षस ॥ १० ॥ कोईभी आपके स्वामीको जीतनेंमें समर्थ नहींहैं; इसमें कुछभी सन्देह नहींहै । हे देवि ! मनुष्य, गन्धर्व, पक्षी ॥ ११ ॥ राक्षस, पिशाच, किन्नर, मृग, व अतिघोर इनमें-भी ऐसा कोई नहीं है;॥ १२ ॥ जो इन्द्रके समान पौरुषी श्रीरामचन्द्रजी-का सामना करसके फलतः उनको समरमें कोई मारभी नहीं सकता इस लिये तुमको ऐसा अनुचित नहीं कहना चाहिये ॥ १३ ॥ और रामच-न्द्रजीके विना इकेली इस वनके बीच त्याग करनेंकोभी किसी प्रकारसे हमारा साहस नहीं होता, इन्द्रादि बलवान् देवगणभी अपनें बलसे रामच-न्द्रजीके बलको नहीं रोक सकते॥ १४॥अथवा सब त्रिलोकी समस्त देवता गणोंके सहित एकत्र मिलकरभी रामचंद्रजीके पराजय करनेंको सामर्थ्य नहीं रखते इससे आप शोक त्याग करकै स्थिर चित्त हूजिये ॥ १५ ॥ आपके स्वामी रामचंद्रजी मृगोत्तमको हनन करकै शीघ्रही लौटेंगे और हम निश्चय कहतेहैं कि यह शब्द उनका नहींहै और न कोई यह देव

प्रेरित शब्दहै ॥ १६ ॥ निशाचर मारीचही गन्धर्व नगर सदृशी मिथ्या माया विस्तार करकै इस प्रकार शब्द चिल्लाकर कररहाहै । हे जानकि ! महात्मा राम करकै आप हमारे निकट सौंपी गईहैं ॥ १७ ॥ इसही कारणसे आपको त्याग करनेंमें हमारा उत्साह नहीं होता । हे कल्याणि ! हे वरारोहे ! इन सब राक्षसोंके सहित हमारी शत्रुता होगई है ॥ १८ ॥ हे देवि ! खरको मार और जनस्थानको विध्वंस करनेंसे राक्षस लोग इस महावनमें हमारे ऊपर अनेक प्रकारके वचन प्रयोग किया करतेंहैं ॥१९ ॥ हे जानकि ! साधु लोगोंकी हिंसा करनाही राक्षस लोगोंका एक मात्र खेल है । इस कारण इस विषयमें चिन्ता करना किसी प्रकारसेभी आपको उचित नहीं है । जब लक्ष्मणजीनें इस प्रकार कहा तब क्रोधके मारे जानकीजीके नेत्र लाल हो आये ॥ २० ॥ वह कठोर वचन सत्यवादी लक्ष्मणजीसे बोलीं कि रे नृशंस ! कुलनाशक ! तुम श्रीरामचंद्रको मरवाकर दया करके हमारी रक्षा करनेंको तैयार हुए हो, इस कारणसे यह ध्यान आर्यजनोचित नहींहै ॥ २१ ॥ हमनें जाना कि रामचन्द्रजीकी यह बडी भारी विपद तुम्हारी परम प्यारी हुईहै इसी कारण तुम उनको विपदमें पडा हुआ देखकर ऐसा कहतेहो॥२२॥ हे लक्ष्मण ! तुम्हारी समान सदा क्रूर स्वभाव व गुप्त पापी शत्रुके मनमें जो ऐसा निन्दनीय पाप रहैगा तौ इसमें आश्चर्य ही क्या है?॥२३॥तुम्हारा स्वभाव वड़ा खोटा है रामचन्द्रजी जो अकेले वनको आनें लगे, तौ हमारा लालच करकै तुमभी अकेले ही उनके साथ आये । अथवा छिपकर भरतके भेजे हुए तुम स्वामीके साथ आये हुए हो ॥ २४ ॥ किन्तु हे लक्ष्मण ! तुमनें या भरतनें जो मनमें सोचाहै, वह सिद्ध नहीं होगा।क्योंकि हम पद्मपलाशलोचन, नीलोत्पलश्याम ॥ २५ ॥ श्रीरामचन्द्रजीकी स्त्री होकर किस प्रकारसे अन्यजनकी अभिलाषा करेंगी । इससे हे लक्ष्मण ! हम तुम्हारे सामने निश्चयही प्राणत्याग देंगी ॥ २६ ॥ क्योंकि रामचन्द्रजीके विना क्षण कालभी हम इस लोकमें प्राण धारण नहीं कर सकतीं । सीताजीके इस प्रकार रोमहर्षण कठोर वचन ॥ २७ ॥ सुन जितेन्द्रिय लक्ष्मणजी हाथ जोडकर उनसे बोले कि आप हमारी साक्षात्

देवता हैं, इस प्रकार उत्तर देनेंको हमारा साहस नहीं होता ॥ २८ ॥ परन्तु हे जानकि ! आपनें जो यह अयोग्य वार्ता कही है सो स्त्रियोंके लिये इसका कहना कुछ विचित्र बात नहीं है, क्योंकि इस लोकमें स्त्रियोंका स्वभाव ऐसा देखा ही जाता है ॥ २९ ॥ स्त्रियोंकी जाति, स्वभावसेही क्रूर चञ्चल, धर्मज्ञान हीन है, यह पिता पुत्र इत्यादिमें परस्पर भेद करा देती हैं। किन्तु हे जानकि ! तुम्हारी यह वार्ता हम पर नहीं सही जाती है ॥ ३० ॥ अति तपे हुए बाणोंकी नांई यह तुम्हारे वचन हमारे दोनों कानोंको विद्धकर रहे हैं। अच्छा ! वनवासी देवता गण सबही हमारे साक्षी रह कर श्रवण करैं ॥ ३१ ॥ हमनें यथार्थ वार्ता कही है तथापि तुमनें हमको कठोर वचन कहे तुमको धिक्कार है ! निश्चयही तुम्हारा विनाश काल उपस्थित है (राक्षसकुलकी नाश करानेंवाली तुझको धिक्कार है यह गूढ है) जो हम पर ऐसी शंका करती हो ॥ ३२ ॥ हम सदाही गुरुजनोंकी आज्ञाका पालन किया करते हैं इस रामचन्द्रजीकी आज्ञा मान तुम्हें छोड नहीं जातेथे। किन्तु तुमनें स्त्रीके स्वभाव और दुष्ट प्रकृतिके वश होकर हमको दुर्वचन कहे। हे वरानने ! जहां रामचन्द्रजी हैं हमभी वहां जाते हैं; तुम कुशल क्षेमसे रहो ॥ ३३ ॥ और समस्त वन देवता गण तुम्हारी रक्षा करैं; हे विशालाक्षि ! बडे २ बुरे शकुन हमारे सामने प्रगट हो रहे हैं; इस कारणसे फिर रामचन्द्रजीके साथ आकर तुमको कुशल सहित देखें ॥ ३४ ॥ जब लक्ष्मणजीनें इस प्रकारसे कहा तब जनकनन्दनी ! सीताजी अविरलवाहिनी अश्रुधारासे भीजकर रोते २ लक्ष्मणजीसे बोलीं ॥ ३५ ॥ हे लक्ष्मण! रामके विना हम गोदावरीमें डूब मरेंगी अथवा फांसीसे प्राण त्याग करेंगी अथवा किसी ऊंचे पर्वत इत्यादिक पर चढकर वहांसे अपनी देहको नीचे गिरा देंगी ॥ ३६ ॥ या तीक्ष्ण विष पान करैंगी, अथवा अग्निमें प्रवेश करेंगी। तथापि श्रीरामचन्द्रजीके विना और किसी पुरुषको हम कभी स्पर्श नहीं करेंगी ॥ ३७ ॥ सीताजी इस प्रकार शोक युक्त होकर रोते २ लक्ष्मणजीसे ऐसा कहकर दुःखके मारे अपनीछाती पीटनें लगीं (सर्व राक्षसोंके नाश विना मेरी उदरपूर्ति न होगी यह शास्त्र की ध्वनि

है) ॥ ३८ ॥ लक्ष्मणजीनें विशाल नयना जनकदुलारी सीताजीको महा आरत भावसे रोते देखकर बहुत समझाया बुझाया परन्तु फिर जानकीजीनें अपने देवर लक्ष्मणजीसे और कुछ न कहा ॥ ३९ ॥

ततस्तुसीतामभिवाद्यलक्ष्मणःकृतांजलिः
किंचिदभिप्रणम्य ॥ अवेक्षमाणोबहुशः
समैथिलींजगामरामस्यसमीपमात्मवान् ॥ ४० ॥

तिसके पिछे जितेन्द्रिय और विशुद्ध चित्त लक्ष्मणजी हाथ जोड प्रणाम कर कुछ एक विनती करते हुए और वारंवार उनकी ओर देखते दुःखित हो रामचन्द्रजीके निकट को चले ॥४०॥ * इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये पंडितज्वालाप्रसादमिश्र कृत भाषाटीकायां आर० पंचचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ॥

तयापरुषमुक्तस्तुकुपितोराघवानुजः ॥
सविकांक्षन्भृशंरामंप्रतस्थेनचिरादिव ॥ १ ॥

लक्ष्मणजी जानकीजीकी कटूक्तिसे पीडित हो क्रोधमें भर श्रीरामचन्द्रजीको देखनेंके लिये अतिव्यग्रचित्तसे चले ॥ १ ॥ तिसके पीछे दशानन रावण यह सुअवसर पाकर यतीका रूप धारण कर शीघ्रही श्रीसीताजीके सामनें आया ॥ २ ॥ वह कोमल गेरुआ वस्त्र पहरे, । शिर पर वार रखाये छत्री लगाये खडाऊं पहरे, बांये कंधे पर लाठी और कमंडलु हाथमें ॥ ३ ॥ ऐसा त्रिदंडी संन्यासीका रूप बना सीताजीके सन्मुख हुआ जबकि दोनों भाई आश्रममें नहींथे ॥ ४ ॥ जिस प्रकार विना चन्द्र सूर्यके सन्ध्याकालमें महा अंधकार हो आता है । वैसेही बिना राम और लक्ष्मणजीके सीताजीके निकट दशानन आकर परम यशस्विनी राजपुत्री जनकनन्दनीजीको देखनें लगा ॥ ५ ॥ जैसे चन्द्रमाकरकै हीन रोहिणी नक्षत्रको राहु देखे जन स्थानके समस्त वृक्ष उग्र

* कूर्म पुराणसे भी सिद्धहै कि जानकीजीकी यही प्रतिज्ञा पूर्णथी कि अन्य पुरुषको स्पर्श न करूंगी अग्निमें प्रवेश कर जाऊंगी इससेभी ध्वनि निकलतीहै कि जानकी अग्निमें प्रवेश कर गईथीं और यह मायाकी जानकीनें लक्ष्मणसे ऐसे वचन कहे क्योंकि मायासेही ऐसा होताहै

स्वभाव पाप कर्म करनें वाले रावणको देखकर ॥ ६ ॥ हिलनें झुलनेंसे रहित होगये पवनका चलना बंद हो गया।लाल २ नेत्र किये सीताजीके प्रति उसकी दृष्टिको लगा देख नदीभी शीघ्र गतिको त्याग मंद२वहनें लगी ॥ ७॥ गोदावरी नदीका जलभी शंकाके वश होकर मंद२वहनें लगा । इसी अवसरमें रामचंद्रजीका अन्तर चाहनें वाला दशग्रीव ॥ ८ ॥ भिक्षुकका वेश बनाकर बैदेहीजीके निकट आन पहुंचा, यह महाकुरूप दशानन, अति रूपवती अपने पतिके लिये शोक करती हुई ॥ ९ ॥ जानकीजोको ऐसे प्राप्त हुआ जिस प्रकार चित्राग्रहके निकट शनि आताहै, वहां पहुंच उसनें ऐसा टीप टापका संन्यासी वेश बनाया, जिस प्रकार तिनकोंसे कोई कुएँको पाटै; और वहां आनें वाला चट उसमें गिरे ॥ १० ॥ ऐसा छद्मवेशी साधुका वेश धारण किये हुए रावण उन यशस्विनी राम दयिता जानकीजीकी ओर देखकर खड़ा हुआ ॥ ११ ॥ सुन्दर स्वरूप, दशनपंक्ति जिनकी मनोहर. वदन पूर्ण चन्द्र समान जो जानकीजी पर्ण शालामें बैठी अपने पतिके शोकसे पीडित होरहीथीं ॥ १२ ॥ तिन कमलनेत्रा पीताम्बर धारण किये जानकीजीके निकट वह निशाचर हर्ष सहित पहुंचा ॥ १३॥ ऐसी जानकीजीको देख रावण मारके बाणसे माराहुआ पीडित हुआ उस समय रावणने वेदका उच्चारण करके जानकीजीकी प्रशंसा करकै कहा॥१४॥ तुम तीनों लोकमें उत्तमहो; और पद्मीनीकी समान मनोहर कमल फूलोंसे समाकुल होरहीहो ऐसी प्रशंसा रावणनें की ॥ १५ ॥ फिर कहा कि हे शुभानने! तुम्हारा वर्ण विशुद्ध कांचनकी सदृशहै तिसपर तुम पीले वर्णके रेशमीन वस्त्र पहरेहो, कमल फूलोंकी माला गलेमें धारण कियेहो ॥ १६॥ हेवरारोहे! तुम ह्री, श्री, कीर्ति, लक्ष्मी, अप्सरा, अथवा भूति, या साक्षात् रतिकी समान जो बनमें इच्छानुसार विहार करती होसो बतलाओ कि तुम कौनहो ॥ १७ ॥ तुम्हारे सब दांत परस्पर समानहैं, उनका अग्र भाग कुन्दकी कोर सदृश मनोहर और श्वेत वर्णहै । तुम्हारे नेत्र युगल विशाल निर्मल, अरुणाई लिये, और कृष्णताराओं करकै युक्तहैं ॥ १८ ॥ तुम्हारा जघन, अति पीन. व विशालहैं और जांवें हाथीकी शुण्डके समान चढ़ा उतार, बडे२गोलाकर एकमें एक मिले कुछ कम्पायमान ॥ १९ ॥ तुम्हारी दोनों छातियें पीनहैं और जिनका अग्रभाग उठा हुआहै, परम म-

नोहरहै और चिकने ताल फलके आकार वालेहैं! और उनपर मणियोंकी माला पडीहैं ॥ २० ॥ फलतः तुम्हारे दांत नेत्र और मुसकुराना सबही कुछ रमणीयहै । हे रमणीये! नदी जिस प्रकार जलके वेगसे कूलको हरण करतीहै तैसेही तुमभी इन सबसे हमारे चित्तको हरण करतीहो ॥ २१ ॥ तुम्हारे केश परम सुन्दरहैं, दोनों पयोधर अत्यन्त घनेहैं, और तुम्हारा मध्य देश अर्थात् कमर इतनी पतलीहै कि मुट्ठीके बीचमें आजाय। क्या देवी, क्या गन्धर्वी, क्या यक्षी, क्या किन्नरी, ॥२२॥ कोईभी तुम्हारे समान रूपवान नहींहै । हमनें इस्से इससे पहले पृथ्वीपर तुम्हारे समान रूपवती राजरानी नहीं देखी, तुम्हारा रूप यौवन, सुकुमारता॥ २३ ॥और इस निर्जन वनमें वास यह चारोंही त्रिलोकीमें श्रेष्ठहैं, इस कारण इन बातोंसे हमारा चित्त क्षुभित होताहै। इस कारण बाहर चली आओ । तुम्हारा कल्याणहो; वनवास करना तुम को उचित नहींहै ॥ २४ ॥ यहां तो काम रूपी भयंकर निशाचर गण रहा करतेहैं तुम तो अति रमणीय प्रासादशिखर, नगर व उपवनोंमें ॥ २५ ॥ जहां सब भोग्य वस्तु प्रस्तुतहैं, और सुगन्धिके पदार्थ धरे रहतेहैं यह स्थान तुम्हारे रहनेंके योग्यहै; श्रेष्ठ मालायें,श्रेष्ठ सुगन्धिएं श्रेष्ठ वस्त्रोंके तुम भोगनें योग्यहो॥२६॥हेअसितेक्षणी ! फिर तुम्हारे लिये स्वामीभी तो श्रेष्ठही चाहिये, हेशुचिस्मिते ! रुद्रगण अथवा मरुद्गण ॥ २७ ॥ या आठ वसुओंमेंसे किसीकी स्त्री हो, हे वरारोहे! हमको तो तुम स्पष्टही देवता प्रतीत होतीहो, क्योंकि यहां गन्धर्व, देवता, किन्नर कोई नहीं आने पाते ॥ २८॥ यहां बनमेंतो राक्षसगणही वास किया करतेहैं; फिर तुम यहां किस प्रकारसे आईहो; यहां तो बनमें वानर, सिंह, चीता, व्याघ्र, भेड़िया, मृग. ॥२९॥ गेंडे ऋक्षादि जीव रहतेहैं. सो इनको देखकर तुम क्यों नहीं डरतीहो? और मतवाले, कठोर मन शीघ्र चलनेंवाले हाथियोंसे ॥ ३० ॥ तुम अकेली कैसे इस महावनमें नहीं डरतीहो, हे वराननें, तुम कौनहो, किसकी स्त्रीहो, कहांसे आईहो, और किस कारण इस दंडकारण्यमें ॥ ३१ ॥ अकेली विचरतीहो; क्योंकि यह जगह घोर राक्षसों करके युक्तहै इस प्रकारसे महात्मा रावणने वैदेहीजीकी प्रशंसाकी ॥३२ ॥ उसको; ब्राह्मण वेष धारण किये आया हुआ देख जानकीजीनें यथाविधि अतिथि सत्कारसे उसकी पूजाकी ॥ ३३ ॥ प्रथम

बैठनेंके लिये आसन दिया फिर चरण धोनेंको जल, पुनः फलाहारादिक जो रक्खेथे वह सौम्यदर्शन रावणको निवेदन किये ॥ ३४ ॥ ब्राह्मणका वेष धारण किये लाल वस्त्र पहरे जानकीजीनें ब्राह्मणकेही समान रावणका निमंत्रण करकै कहा ॥ ३५ ॥ हे विप्र! आप कुशासनपर सुख सहित बैठ जाइये, और यह पाद्य ग्रहण कीजिये, व यह वनके फल सब आपकेही लियें रखेहैं, इनको भोजनकीजिये ॥ ३६ ॥ नरेन्द्रभार्या जानकीजीनें जब इस प्रकार निमंत्रण किया तब रावण उनकी ओर देख अपनें वध करनेंको बलपूर्वक उनके हरलेजानेंका निश्चय करताहुआ ॥ ३७ ॥

ततःसुवेषंमृगयागतंपतिंप्रतीक्षमाणासह-
लक्ष्मणंतदा ॥ निरीक्षमाणाहरितंददर्शतन्म-
हद्वनंनैवतुरामलक्ष्मणौ ॥ ३८ ॥

परम प्रिय मूर्ति रामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित मृगया करनें गयेथे. जानकी उस समय उनकी वाट देखती हुई इधर उधर दृष्टि करनें लगीं तौ केवल चारों ओर बड़े विस्तार वाली हरे वर्णकी वनभूमिही दृष्टि आई,परन्तु राम लक्ष्मणजी दिखाई नहीं दिये ॥ ३८ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०आर० षट्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशःसर्गः।

रावणेनतुवैदेहीतदापृष्टाजिहीर्षुणा ॥
परिव्राजकरूपेणशशंसात्मानमात्मना ॥ १ ॥

जब संन्यासी वेशधारी रावणनें हरण करनेंके अभिलाषसे इस भांति पूछा तब सीताजी आपही आप विचार करनें लगीं ॥ १ ॥ कि एकतो यह ब्राह्मणहै दूसरे अतिथिहै जो हम इस्से नहीं बोलतीं, तौ कदाचित् शाप न देदे, एक मुहूर्त भर यह शोच विचार कर जानकीजी उस्से बोलीं ॥ २ ॥ आपका कल्याणहो ! हम मिथिलानरेश महात्मा जनकजीकी तौ कन्याहैं और श्रीरामचंद्रजीकी प्रिय भार्याहैं हमारा नाम सीताहै ॥ ३ ॥ विवाह होनेंके पीछे इक्ष्वाकुवंशियोंकी राजधानी अयोध्यानगरीमें बारह वर्षतक रहकर पूर्णमनोरथहो अनेक प्रकारके मनुष्योंको दुर्लभ सुख हमनें भोगे ॥ ४ ॥ फिर तेरह वर्षमें राजा दशरथजीनें मंत्रिगणोंके साथ स-

लेह करके रामचंद्रजीके अभिषेक करनेंका उद्योग किया ॥ ५ ॥ उनकी आज्ञानुसार सब अभिषेककी तइयारियां होनें लगीं उस समय हमारी माननीया सासु कैकेयीनें अपनें स्वामी राजा दशरथजीसे दो वर मांगे॥६॥ कैकेयीजीनें अपनी कृतिके बलसे श्वशुरको धर्मके वशमें करके हमारे स्वामी रामचंद्रजीको वनवास, और भरतजीको अभिषेक, यह दो वर नृपश्रेष्ठ सत्यप्रतिज्ञ महाराज दशरथजीसे मांगे ॥ ७ ॥ और उन्होंने सत्यप्रतिज्ञ, नृपतिश्रेष्ठ राजा दशरथजी अपनें स्वामीसे दो वर मांगे और यहभी कहा कि जो रामचंद्रजीका अभिषेक होगा. तौ हम किसी प्रकारसे भी भोजन पान वा शयन न करेंगी ॥ ८ ॥ और यही हमारे जीवनका अंत हो जायगा जो रामचंद्रजीका अभिषेक हुआ तौ हम न जियेंगी । जब कैकेयीनें इस प्रकार कहा तौ हमारे श्वशुर महाराज दशरथजीने ॥ ९ ॥ उनसे बहुत और धनादि देनेंकी प्रार्थनाकी परन्तु उन कैकेयी जीनें न मानी उस समय महा तेजवान हमारे स्वामी पच्चीस वर्षके ॥ १० ॥और हमारी आयु जन्मसे गणना करकै पच्चीस वर्ष कीथी, हमारे स्वामी रामनामसे विख्यात हैं, वह सत्यवान, सुशील, निर्मलस्वभाव ॥ ११ ॥ विशाल नेत्र, सर्व प्राणियेंके हितकारी महाबाहु हैं परन्तु इनके पिता महाराज दशरथजी बडे कामी थे ॥ १२ ॥ इसकारण कैकेयीका प्रिय करनेंके लिये उन्होंने इस प्रकारके गुणसम्पन्न रामचंद्रजीको अभिषेक न किया और जब श्रीरामचंद्रजी अभिषेकार्थ अपने पिताके निकट आये तौ ॥ १३ ॥ कैकेयीने शीघ्रही उनसे यह वचन कहा, कि, हे रघुनंदन! तुम्हारे पिताजीनें तुमको जो आज्ञा दीहै वह हमसे सुनो ॥ १४ ॥ हे काकुत्स्थ! भरतको यह निष्कंटक राज्य देना होगा और तुम्हें चौदह वर्षके लिये वनमें रहना पडेगा ॥ १५ ॥ इसकारण तुम वनमें जाकर पिताके सत्यकी रक्षा करो और मिथ्यावादी न करो पिताको इस ऋणसे छुटाओ, तब दृढव्रत हमारे स्वामी श्रीरामचंद्रजीनें निडरहोकर कैकेयीसे ऐसाही होगा; यह कहा ॥ १६ ॥ हमारे दृढ व्रत धारी स्वामीनें उनके वचन सुनकर उसीके अनुसार कार्य किया हे विप्र! वह के-

वल लोकोंको दान किया करतेहैं; परन्तु कभी किसीसे कुछ ग्रहण नहीं कर-ते सदाही सत्य कहतेहैं कभी मिथ्या नहीं कहते ॥ १७ ॥ हे ब्राह्मण! वस : यही रामचंद्रजीका श्रेष्ठ व्रतहै। उनके सौतेले भाई लक्ष्मणजी अतिशय वीर-हैं ॥ १८ ॥व सदा रामजीके संग रहा करतेहैं पुरुष व्याघ्रहैं समरमें निहार-तेही शत्रुका संहार करतेहैं वह ब्रह्मचारी और दृढव्रतधारीहैं ॥ १९ ॥ धनुषवाण हाथमें ले, जटा रखाय तपस्वीका भेष बनाय रामचंद्रजीके साथ२ वनमें चले आये॥२०॥ इस प्रकार दृढव्रतधारी महात्मा रामचंद्रजी भ्राता लक्ष्मण और अपनी स्त्री सहित जटा रखाय तपस्वी वेष धारण कर दंडकारण्यमें आये ॥ २१ ॥ हे द्विजश्रेष्ठ! अव हम तीन जन कैकेयी के कारण राज्यभ्रष्ट होकर अपने तेजके प्रभावसे गंभीर वनमें विचरण करते हैं। हे द्विजश्रेष्ठ एक मुहूर्त भर विश्रामकरो ॥ २२ ॥ अभी हमारे स्वामी बहुत सारे वन फल, मूल, और, रुरु, वराह व गोधा वध करके बहुत मांस द्रव्य ले यहां आते होंगे जब वह आवेंगे तव आपका भली भांतिसे सत्कार होगा इस्से विराजिये ॥ २३ ॥ इस समय आप अपना नाम गोत्र और वंश सत्य२ही कहिये हे द्विज! किस कारण से आप इस दंड कारण्यमें अकेले घूमतेहैं ॥ २४ ॥ जब रामभार्या सीताने इस प्रकारके वचन कहे तो महा बलवान राक्षसराज रावण उनको तीखा उत्तर देता हुआ बोला ॥ २५ ॥ हे जानकि! सुर असुर और मनुष्यसहित समस्त लोक जिसके डरके मारे थर २ कांपतेहैं हम वही राक्षसोंके राजा राव-णहैं ॥ २६ ॥ तुम्हारा लावण्य कांचनकी समानहै और तुम रेशमी वस्त्र पहररहीहो हे अनिन्दते! तुमको देखकर अपनी स्त्रियोंमें हमारा अब कुछभी अनुराग नहीं रहा ॥ २७ ॥ हम बहुत सारी उत्तम स्त्रियें अनेक स्थानोंसे हर कर लायेहैं सो तुम उन समस्तके बीचमें पटरानी बनो ॥ २८ ॥ तुम्हारा मंगलहो हे जानकि! चारो तरफ समुद्रसे घि-री हुई पर्वतके शिर त्रिकूट पर लंका नामक जो नगरीहै वह हमारीही है ॥ २९ ॥ तुम वहां हमारे साथ महावनोंमें विचरण किया करोगी. हे भामिनि! वहां विचरण करनेंपर फिर तुमको इस वनमें वास करनेंकी अभिलाषा नहीं रहेगी ॥ ३० ॥ हे सीते यदि तुम हमारी भार्या बनोगी तो सर्व वस्त्राभूषण भूषित पांच हजार दासिये तुम्हारी सेवा

किया करेंगी ॥ ३१ ॥ रावण यह जान्ताथा कि मैंने ऐसे पाप कियेहैं किजिससे जप तप करनेंसे कदाचित् मुक्ति नहीं प्राप्त हो सकती इस कारण विरोध करके राम जिनको तत्त्वसे ईश्वर जानताथा उनके हाथसें मरनेंमें मुक्तिकी प्राप्ति विचार कर जानकीसे ऐसे वाक्य कहेकि जो ऐसे निठुर वचन कहूंतो अधिक पाप करनेसे रामचंद्रके हाथसे परम पद पाऊंगा अनन्दिता जनककुमारी जानकी जी राक्षस राज रावण करके इस प्रकार कही जानेंपर महा क्रोधित हुई, और उसका अनादर करके कहनें लगीं ॥ ३२ ॥ जो यहां पर्वत सुमेरुकी समान अकंपनीय, महासागरकी समान क्षोभ रहितहैं, ऐसे महेन्द्र तुल्य हम स्वामी रामचंद्रजीकी अनुगताहैं ॥ ३३ ॥ जो शुभलक्षण युक्त वट वृक्षकी समानहैं, हम उनही सत्य प्रतिज्ञ महाभाग रामचंद्रजीकी अनुगताहैं ॥ ३४ ॥ जो आजानुबाहु वालेहैं, विशाल हृदयहैं, और सिंहकी समान विक्रमके साथ चलनेंवालेहैं, हम उनही नृसिंह और सिंह सदृश रामचंद्रजीकी अनुगताहैं ॥ ३५ ॥ उनका मुख पूर्ण चंद्रमाकी समानहै कीर्ति बहुतही विस्तारित होरहीहै; और बांहें जिनकी अति बडीहैं हम उन्हीं राजकुमार जितेन्द्रिय रामचंद्रजीकी अनुगताहैं ॥ ३६ ॥तुम शृगाल होकर सिंहीका अभिलाष करतेहो, परन्तु तुम हमको नहीं ले सकते, जैसे सूर्यकी प्रभाको कोई नहीं छू सकता ऐसेही श्रीरामचंद्रजीके तेज रूप अग्निसे घिरी हमको तुम पानेंकी सामर्थ्य नहीं रखते ॥३७॥ अरे अभागे राक्षस! जब कि तैंनें रघुनंदन श्री रामचंद्रजीकी भार्याके हरनेंका अभिलाष कियाहै, तब तू निश्चयही सब वृक्षोंको सुवर्णमय देखता होगा (स्वप्नमें सोनेका वृक्ष देखना मृत्युरूपहै) अर्थात् तुमको हमारा प्राप्त करना ऐसा दुर्लभहै जैसे कोई दरिद्र सुवर्णके सहस्रों पेड अपनें गृहमें देखनेकी इच्छाकरै ॥ ३८ ॥ मृगारि शीघ्रगामी, और बडे क्षुधित सिंहके मुखसे या विषधर सर्पके मुखसे तुम दांत निकालनेंकी इच्छा करतेहो ॥ ३९ ॥ तुम पर्वतवर मन्दराचलको भुजासे उत्पाटन करना चाहतेहो, और कालविष पीकरभी इस शरीर सहित कुशल जाया चाहतेहो ॥ ४० ॥ क्या तुम सूची (सुई) से अपने नेत्रोंके खुजानेंकी इच्छा करतेहो, या छुरेकी धारसे अपनी रसनाको चाटना अच्छा समझतेहो; क्योंकि जो तुम हमें श्री रामचंद्रजीकी परम प्यारी

स्त्री नारी हमको पानेंकी इच्छा करतेहो ॥ ४१ ॥ तुम ग्रीवामें पर्वतका शिखर बांध समुद्र उतरना विचारतेहो, और सूर्य चंद्रमा दोनोंको उभय भुजासे पकडना चाहतेहो ॥ ४२ ॥ जो कि तुमनें श्रीरामचंद्रजीकी प्यारी नारीको बलपूर्वक प्राप्त होनेंकी इच्छाकीहै, सो यह इच्छा ऐसीहै, जैसे कोई जलती हुई अग्नि वस्त्रमें बांधकर लेजाना चाहै ॥ ४३ ॥ तुमने जो रामचंद्रजीकी कल्याणव्रतवाली भार्याको हरनेंकी इच्छा कीहै सो यह इच्छा लोहेके त्रिशूलोंके बीचमें चलनेंकी समानहै ॥ ४४ ॥ सिंह और शृगालमें, क्षुद्रनदी व सागरमें अमृत और सिरकेमें जितना भेदहै उतनाही भेद श्रीरामचंद्रजी और तुममें है ॥ ४५ ॥ कांचन, शीशे, और लोहे में, चंदन जल और कीचडमें, वनमें हाथी और बिलाव में जितना अंतरहै, उतनाही अंतर श्रीरामचंद्रजी और तुममें है ॥ ४६ ॥ गरुड और काकमें, मोर और जलमुर्गीमें, हंस और गीधमें जितना अंतरहै उतनाही अंतर श्रीरामचंद्रजी और तुममें है ॥ ४७ ॥ महेन्द्रसम प्रभावशाली श्रीरामचंद्रजी जो धनुष बाण धारण किये इस पृथ्वीपर टिकेहैं, तौ यदि तुम हमको हरभी ले जाओगे तौ तुम्हारे यहां हम वृद्धावस्थाको प्राप्त न होंगी अर्थात् वह बहुत शीघ्र तुमको मारकर हमको लेआवेंगे । जिस प्रकार घृतमें मक्खी पडजाय, तौ घृत दूषित नहीं होता, वरन मक्खी ही प्राण देतीहै । अर्थात् हमारा कुछ न होगा, तुमही मारे जाओगे ॥ ४८ ॥ जिस प्रकार पवनके चलनेंसे कदलीका वृक्ष कंपायमान होकर हिलनें लगताहै, वैसेही शुद्धस्वभाववाली जानकीजी दुष्ट राक्षससे इस प्रकारके वचन कह थर२ कांपने लगीं ॥ ४९ ॥

तांवेपमानामुपलक्ष्यसीतांसरावणोमृत्यु
समप्रभावः ॥ कुलंबलंनामचकर्मचात्मनः
समाचचक्षेभयकारणार्थम् ॥ ५० ॥

तिन जनकात्मजा सीताजीको कंपमान देखकर मृत्यु सम प्रभावयुक्त रावण उनको डर पानेंके लिये अपना कुल नाम और कर्म कहता हुआ ॥ ५० ॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥

एवंब्रुवत्यांसीतायांसंरब्धःपरुषंवचः ॥
ललाटेभ्रुकुटिंकृत्वारावणःप्रत्युवाचह ॥ १ ॥

जब सीताजीनें इस प्रकारसे कठोर वचन कहे तब रावणनें महा क्रोधित होकर भ्रुकुटि टेढी करके कहा ॥ १ ॥ हे वरवर्णनि! हम कुबेरके सौतेले भाईहें। हम परमप्रतापशालीका नाम दशग्रीव रावणहै, तुम्हारा मंगलहो ॥ २ ॥ जिस प्रकार प्रजागण मृत्युसे भय करतेहैं, वैसेही हमारे भयसे भीत होकर, देव, गन्धर्व, पिशाच, पन्नग, और उरग गण समस्तही सदा भागतेहैं ॥ ३ ॥ हमने किसी कारण वशसे क्रोधमें भर द्वन्द्व करके संग्राममें विक्रम प्रकाश करके सौतेले भाई कुबेरको सब प्रकारसे जीत लियाहै ॥ ४ ॥ इस कारण वह हमसे डरकर धन धान्य ऋषि सिद्धसे भरी पुरी अपनी लंकापुरी त्यागकर पर्वतराज कैलासमें वास करतेहैं॥५॥ हे भद्रे! हमने अपने वीर्यके प्रभावसे उन कुबेरका इच्छानुसार चलनें वाला परम सुन्दर पुष्पक नामक विमानभी हरण कर लियाहै तुम उसी विमानमें बैठकर हमारे साथ आकाशमार्गमें चलोगी ॥ ६ ॥ हे मैथिलि! हमें क्रोध उत्पन्न हुआ कि हमारा मुख देखतेही इन्द्रादि मुख्य देवता गण महाभयभीत होकर दशोदिशाओंको भाग जातेहैं ॥ ७ ॥ जहां पर हम रहा करतेहैं, वायु वहांपर शंका सहित चला करतीहै और सूर्यभी हमारे भयसे आकाश मंडलमें चंद्रमाकी समान देख पडताहै ॥ ८ ॥ अधिक क्या कहें? जहां पर हम बैठते उठते व घूमते घामतेहैं वहां पर वृक्षोंके पत्तेभी नहीं हिलते डुलते, नदियोंका जलभी वहनेसे रुक जाताहै ॥ ९ ॥ समुद्रके पार हमारी लंका नामक परम सुन्दरी नगरीहै वहपुरी देखनेमे इन्द्रकी दूसरी अमरावतीहै भयंकर निशाचर गण उसमें रहा करतेहैं ॥ १० ॥ और वहांपर श्वेत धवरहरे वृक्ष बहुतसे शोभित हो रहेहैं, उस लंकापुरीके सब फाटक वैडूर्य मणिके बनेहैं, और चहारदीवारी सुवर्णकीहै चारों ओर जिसके समुद्र रूपी खाईहै जिस्से यह पुरी परम मनोहारिणी होगईहै ॥ ११ ॥ वहांपर सदाही बाजोंकी ध्वनि गूंजती रहतीहै। उसमें हाथी घोडे और रथ समूह बहुत भर रहेहैं। वहांकी सब

फुल वाडियें अभिलाषित फल देनेवाले वृक्षोंसे युक्तहैं जिस्से वाडियोंकी अति शोभा होरहीहै ॥ १२ ॥ हे राजपुत्री सीते! तुम हमारे साथ उस नगरीमें वास करोगी, तब फिर मनुष्योंकी स्त्रियोंको कभी स्मरणभी नहीं किया करैंगे ॥ १३ ॥ हेमनस्विनी वरवर्णिनी ! वहां पर तुम वह दिव्य भोग करके जो मनुष्योंको महादुर्लभहैं क्षीणायु रामचंद्रको कभी मनमें याद न करोगी ॥ १४ ॥ और राजा दशरथजीनें भरत जीको राज्याभिषेक करके मन्द वीर्य वाले अपने बड़े पुत्र श्रीरामचंद्रजीको वनमें भेज दिया ॥ १५ ॥ हे बडे २ नेत्रवाली! तुम उन राज्यभ्रष्ट, गतचित्त, तपस्वी रामके साथ रहकर क्या करोगी? ॥ १६ ॥ हम समस्त राक्षसोंके राजा, काम बाणसे बींधे जाकर तुम्हारे पास आपही आयेहैं; सो हमारा निरादर करना तुमको उचित नहींहै ॥ १७ ॥ हेभीरु! हमारा निरादर करनेंसे पीछे तुमको पछताना पडेगा।जिस प्रकार उर्वशी राजा पुरूरवाको लात मार कर संतापित हुईथी ॥ १८ ॥ राम मनुष्यहै, वह युद्धमें हमारी एक अंगुलीकी समानभी नहीं होगा। हे वरवर्णिनि! हम तुम्हारे सौभाग्यसेही आप यहां आयेहैं, इस्से तुम हमको अपना पति बनाओ ॥ १९ ॥ जब रावण नें इस प्रकारके वचन कहे, तब सीताजीके नेत्र क्रोधके मारे लाल २ होगये। वह उस निर्जन वनमें रावणसे यह कठोर वचन बोली ॥ २० ॥ सब देवताओंके नमस्कार करनेंके योग्य उन परम पूजनीय, कुबेरजीको अपना भाई बताकर तुम किस प्रकार निन्दनीय कार्य करनेंका अभिलाष करते हो? ॥ २१ ॥ हे रावण! तुम्हारी समान खोटी बुद्धिवाला कर्कश और जितेन्द्रिय पुरुष जिनका राजाहै, उन सबही राक्षस गणोंको नाशको प्राप्त होना पडेगा ॥ २२ ॥ इन्द्र पत्नी शचीको हरण करके; चाहे कोई जीवित रहजाय;परन्तु रामभार्या हमको हरण करके कौन पुरुष बच कल्याण पासकताहै ॥ २३ ॥

जीवेच्चिरंवज्रधरस्यपश्चाच्छचींप्रधृष्याप्रतिरूपरूपाम् ॥ नमादृशींराक्षसधर्षयित्वापीतामृतस्यापितवास्तिमोक्षः ॥ २४ ॥

रे राक्षस। अत्यन्त रूपवती देवराज इन्द्रके पीछे उनकी भार्या को बलपूर्वक हरण करके चाहे किसीका जीवित रहना संभवभीहो, परन्तु हम समान स्त्रीको रामचन्द्रजीके पीछे अपमानता करके अमृत पिया हुआ पुरुषभी मृत्युके हाथसे नहीं बच सकैगा ॥ २४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे अष्टचत्वारिंशःसर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपंचाशःसर्गः ॥

सीतायावचनंश्रुत्वादशग्रीवःप्रतापवान् ॥
हस्तेहस्तंसमाहन्यचकारसुमहद्वपुः ॥ १ ॥

प्रतापवान् दशग्रीव रावण सीताजीके यह वचन सुनकर, हाथपर हाथमार अपनें शरीरको बहुत बढाता हुआ ॥ १ ॥ तिसके पीछे वचन बोलनें में चतुर दशशीश फिर जानकीजीसे बोला; समझपडा कि तुम उन्मत्त सी हो गईहो। क्या हमारा वीर्य और पराक्रम तुम्हारे श्रवण गोचर नहीं हुआ ॥ २ ॥ हम आकाशमें टिके रह कर अपनी दोनों भुजाओं से पृथ्वीको उठा सकतेहैं सब समुद्रके जलकोभी पीसकतेहैं; और युद्धमें यमराजकोभी मार सकतेहैं ॥ ३ ॥ और तीखे बाणजालसे आकाशमें टिके हुए सूर्यकोभी व्यथित कर सकते, और पृथ्वीमें गिरा सकतेहैं ॥ ४ ॥ इस प्रकार कहतेही क्रोध युक्त होनेंके कारण रावणके सांवरे नेत्र समान हो गये और जलती हुई अग्निकी समानताको पहुँचे ॥ ५ ॥ फिर वह कुबेरका छोटा भाई रावण डंडी भेसको त्यागकर शीघ्रही यमरूप समान अपनां तीक्ष्ण रूप धारण करता हुआ ॥ ६ ॥ और महा क्रोध परायण होकर तपाये सोनेके बनेहुए गहनोंसे सुशोभित होकर नील मेघ सदृश श्रीमान् निशाचर रूप प्रगट हुआ ॥ ७ ॥ उस समय वह दशमुख व वीस भुजा वाला होगया, और छलसे जो दंडीका भेष बनायाथा उसको छोड दिया और बडी कायावाला बनगया ॥ ८ ॥ उस राक्षसपति रावणनें पहला रूप धारण कर लिया, परन्तु वस्त्र लाल रंगकेही पहरे रहा, और रमणीरत्न सीताजीको देखकर ॥ ९ ॥ उन सूर्यकी समान प्रभावाली, काले बालों करकै युक्त वस्त्राभूषण धारण किये

हुए जानकीजीसे कहनें लगा ॥ १० ॥ कि त्रिभुवनविख्यात स्वामीके प्राप्त करनेंकी यदि इच्छाहो तौ हे वरारोहे! हमारा आश्रय ग्रहण करो, हमही तुम्हारे समान पतिहैं ॥ ११ ॥ तुम वहुत कालके लिये हमारी भजना करो.हमहीं तुम्हारे वांछित और बडाई करनें योग्य पतिहैं। हेभद्रे! हम कभी ऐसा आचरण नहीं करेंगे जो तुम्हें प्यारा नहो ॥ १२ ॥ तुम मनुष्यके प्रति प्रीति त्यागकरकै हमारी ओर अपना प्रेम लगाओ,राज्यसे भ्रष्ट आयुहीन, अर्थरहित, राममें ॥ १३ ॥ किन गुणोंसे तुम अनुरागिणी हुईहो? हे मूढे पंडित मानिनि मैथिलि! जो रामचंद्र स्त्रीके कहनेंसे राज्य और सुहृद्गणोंको छोडकर ॥ १४ ॥ जोकि हम हिंसक जन्तुओंके वास करनें की भूमिमें वनके वीच वह दुर्मति रहताहै । इस प्रकार प्रिय वचन कहनें के योग्य मैथिलीजीसे ॥ १५ ॥ यह कहकर अति दुष्टात्मा रावण जानकीजीके समीप आया और उनको ग्रहण किया, उस समय ऐसा वोध हुआ मानों आकाशके वीच वुधनें रोहिणीको ग्रहण किया ॥ १६ ॥ उस समय सीता महारानी रावणके कठोर वचन सुन और इसका रूप देखकर कुछ ऐसी मूर्छितसी होगई थीं कि वाम वाहुसे तौ रावणनें उनपद्माक्षीका केशपाश और दाहिनी भुजासे दोनों चरणोंको पकड उठा लिया॥ १७॥ वन देवता लोकभी उस समय उस पर्वत शृङ्ग सदृश तीक्ष्ण डाढ वाले महा सर्प तुल्य रावणको देख भयभीत होकर दशों दिशाओंको भाग गये ॥ १८ ॥ देखतेही देखतेही रावणका वह मायामय स्वर्ण मंडित गर्दभाजुता हुआ भयंकर शब्दकारी दिव्यरथ वहां पर आ पहुंचा ॥ १९ ॥ उस रथको देख रावण नें गंभीर स्वर और कठोर वचनों से जानकीजीको डांटा और धमकाया और उनको गोदमें लेकर रथमें डाल दिया ॥ २० ॥ यशस्विनी सीताजी उस करकै ग्रही जानेपर और भयसे व्याकुलहो हाराम! हा! राम! कहकर पुकार करनें लगीं परन्तु रामचंद्रजी उस समय वहुत दूरथे ॥ २१ ॥ रावणके प्रति जानकीजीका कछुभी अनुराग नहींथा इस कारणसे वह अपने छुटानेंके लिये यथाशक्य चेष्टा करनेंलगीं, परन्तु कामके वशहुआ रावण पन्नग राजकी स्त्रीके समान उनको लेकर आकाशको उडगया ॥ २२ ॥ इस प्रकारसे राक्षसराज रावण आकाशमें जानकी हरण करके लेचला जानकीजी

मत्त भ्रान्त चित्त और आतुरकी समान यह कहकर बडे जोरसे विलाप करनेंलगीं ॥ २३ ॥ हा गुरुचित्तप्रसादक! महाबाहु लक्ष्मणजी! काम रू, पी राक्षस करके मैं हरी जातीहूं सो इसको तुम नहीं जानतेहो ॥ २४ ॥ हाराम! तुम धर्मकी रक्षा करनेंके लिये, प्राण, सुख, संपत्ति सबकाही त्याग करतेहो, इस समय हम अधर्मके द्वारा हरी जातीहैं सो क्योंनहीं हमें आनकर बचाते, ॥ २५ ॥ हे शत्रुओंके तपानेंवाले! जो अविनयी होतेहैं आप उनका सदाही शासन किया करतेहैं, फिर क्योंनहीं ऐसेही पापात्मा रावणका शासन करतेहो, ॥ २६ ॥ अन्यायी पुरुषके कर्मका फल शीघ्रही नहीं मिलता; जिस प्रकार नाजके पकनेंमें कुछ समय का प्रयोजन होताहै इसी प्रकार समय आनेंपर अन्याय का फल मिलताहै ॥ २७ ॥ हे रावण! तुमनें कालके प्रभावसे चेतना रहित होकर यह जो कर्म किया इसके लिये तुमको रामचंद्रजीसे प्राणान्त करनेंवाली घोर विपद में पडना होगा ॥ २८ ॥ हाय! हम धर्म की इच्छा करनें वाले यशस्वी रामचंद्रजीकी धर्म पत्नी होकर भी हरी जातीहैं। इतनें दिन पीछे सब कुटुम्बियों सहित कैकेयीकी मनो कामना पूर्ण हुई २९॥ इन पुष्पित कर्णि कार और जन स्थान, सब सेही हम यह प्रार्थना करती हैं कि सब रामचंद्रजीसे कहदेना कि रावण सीताजीको हरण कर लेगया है ॥ ३० ॥ हे संसार सेवित तरंगिणि गोदावरी! हम तुम्हारी वंदना करती हैं; तुमभी शीघ्र रामचंद्रजीसे यह कह देना रावण जानकीको हरण करके ले गयाहै ॥ ३१ ॥ इस विविध प्रकारके वृक्ष कानन में जो देवता वास करते हैं, हम उन सबको नमस्कार करतीहैं, वहभी हमारे स्वामी श्रीराम चंद्रजीसे हमारे हरणकी वार्ता कहैं॥ ३२ ॥ इस वनमें. मृग. पक्षी,इत्यादि जो कोई प्राणी भी वसतेहैं, हम उन सबकी ही शरण आतीहैं ॥ ३३ ॥ वह सबही पशु पक्षी हमारे स्वामीसे उनकी प्यारी स्त्रीके हरनेंका वृत्तान्त सुनावैं,और कहैं कि विवश होकर सीता रावण करके हरी गईहैं ॥ ३४ ॥ हमको यदि यमराज भी हर कर ले जांय और महाबाहु रामचंद्रजीको समाचार मिल जावैं, तो वह अपना पराक्रम प्रकाश करकै वहांसेभी हमको लेआवेंगे ॥३५ ॥ विशाल नेत्र वाली जानकीजीनें अतिशय दुःखित होकर विलाप करते २ अचानक देखा कि गृद्ध्रराज जटायु पेड पर बैठेहैं ॥ ३६॥

जटायुको देखकर रावणके वशमें पडी हुई सुश्रोणी जानकीजी भयके मारे दुःखित हो रोकर बोलीं ॥ ३७ ॥ आर्य जटायु! अवलोकन करो यह पापात्मा राक्षस राज रावण हमको अनाथकी समान निर्दय भावसे हरण करके लिये जाता है॥ ३८॥ आप इस महाबलवान् विजय चिह्न धारी दुर्मति क्रूर आयुध धारी निशाचर रावणको निवारण नहीं कर सकेंगे॥ ३९॥

रामायतुयथातत्त्वंजटायोहरणंमम
लक्ष्मणायचतत्सर्वमाख्यातव्यमशेषतः ॥ ४० ॥

आप इस निशाचर को निवारण करनेमें समर्थ नहींहैं, इस कारण ही श्री रामचंद्रजीसे हमारे हरणकी वार्ता ठीक २ कह देना, और लक्ष्मणजीसे यह सब वृत्तान्त ब्यौरे वार कहना ॥ ४० ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ०आ० एकोनऽपंचाशः सर्गः ॥ ४९ ॥

पंचाशत्तमः सर्गः ॥

तंशब्दमवसुप्तस्तुजटायुरथशुश्रुवे ॥
निरैक्षद्रावणंक्षिप्रंवैदेहींचददर्शसः ॥ १ ॥

जटायु भोजन करके गहरी नींदमें सोरहे थे वह यह शब्द सुनतेही जाग पडे और, रावण और जानकी दोनों को देखा ॥ १ ॥ फिर पर्वतके शृंगसमान बडी तेज चोंच वाले वृक्षपर बैठे हुए श्रीमान् पक्षिराज जटायु मीठे वचन से रावण को पुकारते हुए ॥ २ ॥ भ्रातः दशवदन! हम पुराण धर्म निरत और सत्य प्रतिज्ञहैं; इस कारण तुम हमारे सामने ऐसा निन्दनीय कार्य करनेमें प्रवृत्त न होवो ॥ ३ ॥ हम महा बलवान गृद्ध्रराज जटायु हैं और दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजी भी साक्षात् महेन्द्र और वरुणजीके समान सब लोकों के राजाहैं॥ ४ ॥ वह सब लोकों के हित कारी कार्य करनेंको तैयार रहतेहैं, यह वरारोहा यशस्विनी उन्ही लोक नाथ रामचंद्रजीकी धर्मपत्नीहैं ॥ ५ ॥ सीता इनका नामहै जिनको तुम हरण करनेंको उद्यत हो सो तुम प्रजा पालन रूप धर्ममें स्थिर रहकर किस प्रकारसे पराई स्त्रीको हरण करोगे ॥ ६ ॥ हे महा बलवान! विशेष कर राज पत्नियोंकी रक्षा करना सब भांतिसे कर्त्तव्य है; अतएव तुम पराई

स्त्रीके हरण करने ओछे विषय की नीच बुद्धिको निवारण करो ॥ ७ ॥ जिस कर्मके करनें से लोकमें निन्दाहो, धीर पुरुष कभी ऐसे कार्यको नहीं किया करतेहैं। अपनी स्त्रीके समान पराई स्त्रीको पर पुरुषके स्पर्श से रक्षा करना सबही पुरुषोंको कर्त्तव्यहै ॥ ८ ॥ हे पौलस्त्यनंदन! शास्त्रसे निश्चित न होने पर भी शिष्ट जब राजा के अनुवर्ती होकर अनेकानेक धर्म, अर्थ अथवा काम विषयके अनुष्ठानमें रत होतेहैं ॥ ९ ॥ राजाही धर्म, राजाही काम और राजाही समस्त द्रवों में उत्तम रत्न स्वरूपहै; धर्म, काम, वा पाप समस्त ही राज मूलकहैं ॥ १० ॥ हे राक्षस राज! हम नहीं कह सकते कि तुम पाप स्वभाव और चपल होकर किस प्रकार दुष्कर्म करने वाले जनको देव योनि प्राप्त होने के समान ऐसे ऐश्वर्य को प्राप्त हुए? ॥ ११ ॥ जो पुरुष स्वेच्छाचारी होताहै वह उस अपने स्वभावको त्याग न नहीं कर सकता, क्यों कर दुरात्मा ओंके स्थानों में पुण्य कभी टिक नहीं सकताहै ॥ १२ ॥ महा बल धर्मात्मा रामचंद्रजी तुम्हारे नगर व अधिकारमें कोई अपराध नहीं कियाहै; फिर तुम किस कारण से उनका अपराध करतेहो? ॥ १३ ॥ देखो जनस्थानका रहनें वाला खर अतिशय दुष्टथा तिससे सरलता करनें वाले रामनें शूर्पणखाके लिये यदि उसको मार डालाहै ॥ १४॥ तौ इस्में रामचंद्रजीका क्या अपराधहै? तुम वही लोकनाथ रामचंद्रजीकी भार्या हरण करके लिये जातेहो॥१५॥ अभी जानकीको छोड दो; इन्द्रने जिस प्रकार वज्रसे वृत्तासुरको जलाडालाथा वैसेही कहीं रामचंद्रजी तुमको अनल कल्प रूप-भयंकर दृष्टिसे भस्म न कर दें ॥ १६ ॥ तुमने जो अपने वस्त्रके अंचलमें महा विषदार सर्प बांधाहै सो उसको तुमनें सर्प नहीं जाना है अथवा तुम उस काल पाशको नहीं देखते हो जो तुम्हारे गलेमें पडीहै ॥ १७ ॥ हे सौम्य! जिस भारको वहन करनेंसें दब जाना न पडे वही बोझा लेकर चलना चाहिये। और जो सहजही से पच जावे, और किसी प्रकार पीडा नकरै उसही अन्नको खाना चाहिये॥१८ ॥ जिसकार्य करनेंसें धर्म, कीर्ति, वा चिरस्थाई यश, किसीके मिलनेंकी भी संभावना हो, वरन उलटा उससे शरीर में खेद, हो, भला ऐसे कार्यके करने की कौन पुरुष इच्छा करेगा? ॥१९॥हे रावण! हमें साठ हजार वर्ष जन्म लिये हुए, तबसे विधि पूर्वक पिता

पिता महादिकोंका पक्षियोंका राज्य पालन करते हैं॥ २०॥यद्यपि हम बूढे होगयेहैं और तुम युवा धनुरबाण धारी कवच सम्पन्न और रथ पर सवारहो, तथापि हमारे सामनें तुम निरापद जानकीको न लेजा सकोगे* ॥२१॥ यदि तुम शूर हो युद्ध करो। अथवा हे रावण! एक मुहूर्त भर ठहर, पहले खर जिस प्रकार पृथ्वी पर शयन कर चुका तुमभी वैसेही मारे जाकर पृथ्वीपर शयन करोगे॥२२॥ २३ ॥जिन तुमने वारंवार युद्धमें दैत्य और दानवोंको मार डाला है, सो जटा वल्कल धारी रामचन्द्रजी शीघ्रही संग्राममें तुमको वध करेंगे ॥ २४ ॥ वह दो राज कुमार, राम लक्ष्मण अभी दूर हैं हम क्या करैं, रे नीच! तुमको शीघ्रही उनसे भीत होकर विनाशको प्राप्त होना पडेगा इसमें कुछ सन्देह नहीं है ॥ २५ ॥ और जबतक कि हम जीते हैं तब तकभी तुम हमारे सामनें रामचन्द्र-जीकी प्रिय स्त्री कमलनेत्र सुस्वभावा इन जानकीजीको ले नहीं जा सकोगे ॥ २६ ॥ क्योंकि जब तक हम जीवित हैं तब तक प्राण तलकभी देकर महात्मा रामचन्द्र और दशरथजीका प्रिय कार्य हमको अवश्य करना उचित है ॥ २७ ॥

तिष्ठतिष्ठदशग्रीवमुहूर्तंपश्यरावण ॥
वृंतादिवफलंत्वांतुपातयेयंरथोत्तमात् ॥ २८ ॥
युद्धातिथ्यंप्रदास्यामियथाप्राणंनिशाचर ॥ २९ ॥

इस कारण हे रावण! एक मुहूर्त खडा रह खडा रह. तुझको हम देखेंगे जिस प्रकार बौर से फल तोड लिया जाता है वैसेही तुमको हम रथसे नीचे गिरावेंगे ॥ २८ ॥ रे निशाचर! जब तक हमारे प्राण हैं तब तक भली भांति हम तुम्हारी युद्धकी पहुनई करेंगे ॥ २९ ॥इत्यार्षे श्री-मद्रामायणे वाल्मीकीये आ० आर० पंचाशः सर्गः ॥ ५० ॥

---

* भजन—गीधराज मुनि आरत वानी। नैन उठाय विलोकन लागे रघुकुल तिलक नारि पहिचानी॥१॥परीं अधम निश्चरके वशमें जात पुकारत सारंग पानी२महा क्रोधमें भर अधीरहो रार करन की मनमें ठानी ३ पवन समान वेगसों धाये बोले ठहर तनक अभिमानी ४ चोर समान लिये सीताको जात कहां बचके अभिमानी ५ यह कह चोंच मार रथ तोर्यो रथीमार सुमिरे सुत्र दानी॥पुनि रावणको कियो मूर्छित लई उतार सीय महारानी ६ यह बलदेव भक्त के कर्तव युग२. कीरत चली सुहानी ॥ ७ ॥

एकपंचाशः सर्गः ॥

इत्युक्तःक्रोधताम्राक्षस्तप्तकांचनकुंडलः ॥
राक्षसेंद्रोऽभिदुद्रावपतगेंद्रममर्षणः ॥ १ ॥

पक्षी राज जटायुनें जब इस प्रकारसे कहा तब शुद्ध सुवर्णके बने कुंडल पहरे राक्षस राज रावण क्रोधके मारे लाल २ नेत्र कर उनके सामनें बडे वेगसे दौडा ॥ १ ॥ फिर गगन मण्डलमें वायु प्रेरित दो मेघोंकी टक्कर जिस प्रकार लडती है वैसेही इन दोनोंका महा घोर संग्राम आरंभ हुआ ॥ २ ॥ पर लगे हुए माला पहरे हुए दो श्रेष्ठ पर्वतोंकी समान गृद्ध्र राज जटायु और राक्षसेन्द्र रावणका अद्भुत संग्राम उपस्थित हुआ ॥ ३ ॥ तिसके पीछे रावणने महाबलवान गृद्ध्रराजके ऊपर अन वरत महा भयंकर तीक्ष्णफलक लगे हुए नालीक और नाराच व विकर्णि समूह बाणोंकी वर्षा की ॥ ४ ॥ पक्षिराज जटायुनें युद्धमें रावणके चलाये हुए अस्त्र और समस्त शर जाल ग्रहण किया ॥ ५ ॥ और अति तीखे नख्न लगे हुए अपने दोनों चरणोंसे रावणके शरीरमें सहस्रों घाव कर दिये ॥ ६ ॥ अपने शरीरमें घाव हुए देख महावीर दशवदन रावणनें क्रोध पूर्ण हो शत्रुओंके मार डालनेकी इच्छासे यमराजके दंडकी समान भयंकर दशबाण ग्रहण किये ॥ ७ ॥ और कान तक धनुषकों खेंचकर उन सीधे चलनें वाले तीखे रुधिरके प्यासे भयंकर शिलीमुख बाणोंको छोडकर जटायुको वध किया ॥ ८ ॥ राक्षस राज रावणके रथमें रुदन करती हुई जानकीको देखकर पक्षीराज जटायु उन समस्त बाणोंको कुछ न गिनते हुए रावणके सन्मुख दौडे ॥ ९ ॥ और अपनें दोनों चर-णोंसे तेजमान जटायुनें रावणका मणि मुक्ता भूषित बाण सहित शरासन तोड डाला ॥ १० ॥ अपने धनुष बाणको टूटा हुआ देखकर रावण महा क्रोधयुक्तहो दूसरा धनुष ग्रहण करकै शत २ सहस्र २ बाणोंकी वर्षा जटायु पर करनें लगा ॥ ११ ॥ उस समय पक्षिराज जटायु उन शर समू-हसे विधकर घौंसलेमें बैठे हुए पक्षीकी समान शोभित होनें लगे ॥ १२ ॥ तिसके पीछे महा तेजस्वी जटायुजीनें अपने दोनों पखोंसे उस शर जालको तोड ताड फिर अपने पंजोंसे रावणके महा धनुषको तोड

डाला ॥ १३ ॥ और पंखोंके प्रहारसे महा तेजस्वी जटायुनें रावणका अग्निकी समान प्रदीप्त कवचभी खण्ड २ कर दिया ॥ १४ ॥ समरमें रावणका सुवर्ण मय दिव्य कवच तोडकर जटायुजीने अतिशय शीघ्र चलनें वाले पिशाच वदन गधोंको जो रावणके रथमें जुतेथे मार डाला ॥ १५ ॥ फिर वेगमें भर कर रावणकी इच्छानुसार चलनें वाले अग्निकी समान प्रभावाले, मणिरचित सोपान युक्त, तीन बांस जिसमें लगे हुए ऐसे रावणके रथकोभी जटायुनें तोडा ॥ १६ ॥ छत्र आदि धारण करनें वाले राक्षसोंके सहित पूर्ण चन्द्रमाकी समान छत्र और व्यजनभी जटायुनें नीचे गिराया ॥ १७ ॥ और फिर अपनी चोंचके प्रहारसे सारथीका वडा भारी शिरभी वडे वेगसे जटायुनें काटा इस प्रकार परम श्रीसम्पन्न महा वलवान पक्षिराज करके ॥ १८ ॥ शरासन छिन्न रथके टूट जानें पर सारथी और घोडोंके मर जानेंसे जानकी जीको दोनों भुजाओंसे पकडे हुए रावण पृथ्वीपर गिरा ॥ १९ ॥ रावणकी सवारीको टूटा फूटा देख; और स्वयं रावणकोभी पृथ्वीपर गिरा देख, समस्त प्राणी वारंवार " साधु साधु ! " कह कर गृध्रराजकी वडाई करनें लगे ॥ २० ॥ तिसके पीछे रावण वडी उमर होनेंके कारण । बुढापा ग्रस्त पक्षियूथ पति जटायुको थका हुआ देख हर्ष सहित मैथिलि सीता-जीको ग्रहण कर आकाश मार्गमें गमन करनें लगा ॥ २१ ॥ रावणके समस्तही युद्ध साधन विनष्ट और हत हो गयेथे केवल एक खड्ग बच रहाथा । वह रावण उस अवस्था में भी नितान्त हृष्टचित्त होकर जानकीजी को गोदीमें वैठाय जानेंको तैयार हुआ॥२२॥महा तेजस्वी गृध्रराज जटायु नें वडे जोरसे कूद रावणके सामनें दौडे और उसको भली भांति रोक कर कहनें लगे ॥ २३ ॥ अरे अल्पज्ञानी रावण! तुम समस्त राक्षस कुलको विनाश करनेंके लियेही उन वज्र समान बाण धारण करनें वाले श्रीराम-चन्द्रजीकी इन जानकीजीको हरण करता है ॥ २४ ॥ हम समझे, कि प्यासा होकर मनुष्य जिस प्रकार जल पीता है तूभी वैसेही मित्र, वन्धु, मंत्री, चतुरंग सेना और दास दासी इत्यादि समस्त परिजनोंके सहित विष पीनेंको तैयार हुआ है ॥ २५ ॥ मूर्खलोग जिस प्रकार कर्मके फलको न जान कर शीघ्रही विष पीकर शीघ्रही विनाशको प्राप्त होते हैं

वैसेही तुम्हारा सब परिवारके साथ सत्यानाश हो जायगा॥ २६ ॥ तू कालकी फांसीमें बँधा है, मछली जिस प्रकार मांसका टुकडा लगी हुई वंशीको ग्रहण करनेंके अर्थ अपना प्राण खोनेंको उसके सामनें को दौडती है और निश्चयही उसके प्राण जाते हैं । सो इसी प्रकार तूभी किसी स्थानमें गमन करके भी इस भांतिकी काल फांसीसे न छूटेगा ॥ २७ ॥ हे रावण! राम लक्ष्मणको कोई नहीं जीत सकता । सो तू जो इस आश्रमका निरादर कर जानकीजीको लिये चला जाता है इस बातको यह सुनकरभी तुझे किसी भांति क्षमा नहीं करेंगे ॥ २८ ॥ तुझ डरपोकनें सर्व लोक निन्दित जैसे कर्मका अनुष्ठान किया है सो ऐसे मार्गमें तस्कर लोग चला करते हैं, और वीर लोग इस मार्गमें नहीं चलते ॥२९॥ अरे रावण! यदि तुझमें शूरताहो तो युद्ध कर ! नहीं तो एक मुहूर्त ठहर बस अपनें भ्राता खरकी समान तूभी पृथ्वीमें शयन करैगा ॥३०॥ मृत्युके समय! लोग जिस प्रकारके कार्यको करते हैं, सो तूभी अपना नाश करनें के लिये उसी भांतिके अधर्म कार्य करनेंको तैयार हुआ है ॥ ३१ ॥ जिस अधर्म कार्यके करनेंसे केवल पापही होता है, उस कार्यके करनें में कौन जन हाथ डालता है? इन्द्रादि लोकपाल अथवा स्वयं भगवान् ब्रह्माजीभी नहीं करते ॥ ३२ ॥ महाबलवान् जटायुजी इस प्रकारका नीति युक्त वचन कह कर दशानन रावणकी पीठ पर चिपट गये ॥३३ महावत दुष्ट हाथीपर चढकर जिस प्रकार अंकुश और भाला आदिसे उसके मस्तकको बींधता है, जटायुनेंभी वैसेही रावणको पकड अपने तीक्ष्ण नखोंकी चोटसे भली भांति रावणको घायल किया ॥ ३४ ॥ और इसी भांतिसे चोंचके आघात और पंजोंके प्रहारसे रावणकी पीठ नोंचकर फिर उन्होंनें नखून पंख और चोंचरूपी इन हथियारोंकी सहायतासे रावणके सब बाल उखाड डाले ॥ ३५ ॥ गृद्धराजके वारंवार प्रहार करनेंसे रावण महा पीडित होगया, और क्रोधमें भरनेके कारण उसके अधर और सब शरीर कांपने लगे ॥ ३६ ॥ तब रावणने अतिव्याकुल और मूर्च्छित होकर बांई बगलमें भली भांति जानकीजीको दाब जटायुके एक लात मारी ॥३७॥शत्रु दमन कारी पक्षिराज जटायुजीनें उस लातके प्रहारको सहकर अपनी चोंचसे रावणके दश बायें हाथ उखाड डाले॥ ३८ ॥ बांहें

उखड जानें परभी, रावणके शरीरसे सहसा नये हाथ निकल आये। उस समय ऐसा ज्ञात हुआ मानों विष ज्वाला युक्त सर्प गण वमईसे वाहर निकले ॥ ३९ ॥ इसके वाद वीर्यवान् दशवदन क्रोधमें भर जानकीजीको छोड मुक्के और लातोंसे जटायुजीको मारने लगा ॥ ४० ॥ और जटायुजोभी उसें खुरचनें व काटनें लगे तव अनुपम पराक्रम गृद्धराज और राक्षस राजका घोर युद्ध होनें लगा ॥ ४१ ॥ जटायुजी रामचंद्रजीके उपकार करनेंको युद्ध करतेथे तव रावणनें खड्ग उठाकर उनके दोनों पंख दो चरण और दो वगलें काट डालीं ॥ ४२ ॥ जव घोर कर्म करनें वाले निशाचरनें पंख काट डाले तव गृद्धराज जटायु मृत्युके निकट पहुंच कर तत्क्षण पृथ्वीमें गिरे ॥ ४३ ॥ उनको रुधिर लगी देहसे पृथ्वीमें गिरा हुआ देखकर सीताजी दुःखितहो वन्धुकी समानके समीप शीघ्रतासे उनकी ओर दौडीं ॥ ४४ ॥ लंकापति रावणने नीले मेघकी समान विपुल वीर्यवान श्वेत वर्ण युक्त छाती वाले और भूपतित जटायुजीको बुझी हुई दावानलके समान शांत देखा ॥ ४५ ॥

ततस्तुतंपत्ररथंमहीतलेनिपातितंरावण
वेगमर्दितम् ॥ पुनश्चसंगृह्यशशिप्रभान-
नारुरोदसीताजनकात्मजातदा ॥ ४६ ॥

अनन्तर चंद्र वदना सीताजी रावणके वेगसे मर्दित व पृथ्वीपर पडे हुए जटायुजीको दोनों वाहोंसे पकडकर वारंवार विलाप करके रोनें लगीं ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एक पंचाशःसर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपंचाशः सर्गः ॥

सातुताराधिपमुखीरावणेननिरीक्ष्यतम् ॥
गृध्रराजंविनिहतंविललापसुदुःखिता ॥ १ ॥

रावण करके गृद्ध राजका नाश देखकर चंद्रमुखी जानकीजी महादुःखित हो यह कहकर विलाप करनें लगीं॥ १ ॥नेत्रोंका फडकना कृष्ण पुरुष दर्शनादि विषयक स्वप्न, पक्षियोंका देखना और पक्षियोंका स्वर श्रवण करना

इत्यादि निश्चयही मनुष्योंके होंनहार सुख दुःखकी सूचना करतेहैं ऐसा देखा जाताहै ॥ २ ॥ हे काकुत्स्थ रामचंद्र, आज निश्चयही मृग और पक्षी गण इस विपदकी सूचना करकै हमारा वियोग जतानेको तुम्हारे सामनें दौडते होंगे; तथापि तुम इस अपनें बडे कष्टको नहीं जानतेहो॥३॥ हे काकुत्स्थ! यह विहङ्गम जटायु कृपा करकै हमारा उद्धार करनेंके लिये यहां आकर हमारेही भाग्य दोषसे निहतहो पृथ्वीपर पडेहैं ॥४॥ हे नाथ रामचंद्रजी! लक्ष्मणजी! तुम यहां पर हमारी रक्षा करो यह कहकर स्त्री रत्न सीताजी अतिशय शंकित होकर बडे जोरसे रुदन करनें लगीं। उनके रोनेंको निकट वर्ती प्राणियोंनें सुना ॥ ५ ॥ उनके सब गहने और माला इत्यादि मैली होगईं और अनाथकी नांई विलाप करनें लगीं तब राक्षस पति रावण उनके सन्मुख दौडा ॥ ६ ॥ और जटायुको पकडे हुए सीताजीको देखकर बारम्बार, इसे छोडो, इसे छोडो, ऐसा रावणनें कहा, जिस प्रकार लता वृक्षोंको घेर लेतीहै, ऐसे जटायुको पकडे जो सीताजी बैठीथीं उनके समीप ऐसी दशामें रावण आया ॥ ७ ॥ इस समय सीताजी रामचंद्रजीके विरहके मारे वनमें बारं-बार, राम! राम! करकै बडे शब्दसे रुदन करती हुई चिल्लानें लगीं तब साक्षात् यमराजकी समान रावणनें अपना नाश करनेंके लिये उनके केश ग्रहण किये ॥ ८ ॥ जब जानकीजीका इस प्रकारसे अपमान हुआ तब सचराचर समस्त जगत् मर्यादा शून्य होकर घोर निविड़ अंधकारसे छागया ॥ ९ ॥ फिर पवन वहां नहीं चले, प्रभाकर प्रभा शून्य होगये उसी समय दिव्य दृष्टिसे यह केशाकर्षण घटना देखकर ब्रह्माजीनें जानाकि रावण सीताको हर लेगया* ॥ १० ॥ और श्रीमान् देव पितामह ब्रह्माजीनें सब देवताओंसे यह बात कही कि अब कार्य सिद्ध हुआ क्योंकि अब अवश्यही श्रीरामचंद्रजी रावणको मार डालेंगे यह सुनकर कि अब देवताओंको कष्ट न होगा इससे तौ सब देवगण

*रागनी वरुनाताल ॥ रोदन कर शिर धुनत जानकी ॥ हा रघुपति कित गये छोड मुहि रक्षाकीजे आन प्रानकी ॥ कपट भेष धरि दुष्ट हरन कियो सुधि न रही मोहि रेख आनकी॥हा लक्ष्मण तव वचन न माने अपने हित मै आय हानकी॥मम रोदन धुनि सुनत न कोऊ क्या इच्छाहै कृपानिधानकी ॥ नारद काल आय नियरानो मति बौरानी यातुधानकी ॥

हर्षित हुए व जानकीजीका हरण सुन परम दुःखित हुये ॥ ११ ॥ जानकीजीको हरा हुआ देखकर दंडकारण्य वासियोंनेंभी जान लिया कि दैवयोगसे रावणका विनाश आ पहुँचा इसमें कुछभी सन्देह नहींहै॥१२॥ इस ओर सीताजी वारम्वार राम और लक्ष्मणजीका नाम लेकर रोनें लगीं. राक्षस राज रावण उनको ग्रहण करके आकाश मार्गमें गमन करनें लगा ॥ १३ ॥ तपे हुए सुवर्णके गहने पहने पीले रेशमीन वस्त्र पहरे राज नंदनी जानकीजी अतीव शोभान्विता सौदामिनी (बिजली) की समान दीप्ति धारण करती हुई ॥ १४ ॥ उस कालमें सीताजीके पीत वसन उडनें के कारण रावणभी अग्निद्वारा प्रदीप्त पर्वतकी समान अधिक विराजमान हुआ ॥ १५ ॥ परम कल्याणि सीताजीके शरीरमें जो सुगन्धि युक्त अरुण वर्णके कमल दलथे; वह समस्त दशाननके अंगपर गिरते जाते-थे ॥ १६ ॥ इसके सिवाय जानकीजीके विशुद्ध स्वर्ण वर्णके रेशमीन वस्त्र आकाशमें उडकर सन्ध्या कालीन सूर्य किरण शोभान्वित मेघोंकी समान शोभा विस्तार करने लगे ॥ १७ ॥ और सीताका निर्मल मुख मंडल रावणके अंकमें रहनेंके कारण श्री रामचंद्रजीके विना मृणाल रहित कमलकी समान किसी भांति शोभित नहीं हुआ ॥ १८ ॥ नील मेघको भेदनकर उदय होते हुए चंद्रमाकी समान सुन्दर ललाट सहित सुन्दर केश पर्यन्त पद्मगर्भ सम प्रकाशित विस्फोटकका चिह्न रहित॥१९॥ दीप्तमान् श्वेतवर्ण दन्त पंक्तिकी प्रभासे सुशोभित सुन्दर नेत्रयुक्त जानकीजीका वदन रावणके अंगमें स्थित आकाशमें इस प्रकारसे शोभा पाने लगा ॥ २० ॥ अनवरत रोदन युक्त आंसुओंके जलसें मलीन चंद्रमा-की समान प्रियदर्शन सुन्दर नासिका सहित, मनोहर, व लाल अधरों करके युक्त सुवर्णके समान आकार कान्तिवाला ॥ २१ ॥ रावण करके कंपायमान हुआ तिन श्री जानकीजीका मुख मंडल आकाशमें दिनके चंद्रमाकी समान विना श्री रामचन्द्रजीके शोभाको प्राप्त नहीं हुआ ॥ २२ ॥ सुवर्णकी बनी हुई क्षुद्रघंटिका जिस प्रकार नील वर्णके हाथीके आश्रयमें शोभा पातीहै, स्वर्ण वर्ण जानकीजीभी वैसेही रावणके साथ शोभाको प्राप्त हुई ॥ २३ ॥ सीताजी पद्म केशरवर्ण और सुवर्णकी समान कान्ति युक्तथीं और उनके सब गहने तपे हुये सुवर्णके बनेथे। इस

कारण रावणके सामनें वह ऐसी शोभा धारण करती हुई, जिस प्रकार बिजली मेघमें विराजमान रहतीहै ॥ २४ ॥ उस कालमें सीताजीके गहनोंके शब्दसे दशानन शब्द करते हुए सुविमल नील वर्ण मेघकी समानता धारण करता हुआ॥२५॥ जब सीताजीको रावण हरकर ले चला तो उनके मस्तकसे फूलोंकी झडीसी लगकर पृथ्वीपर गिरनें लगी॥२६॥परन्तु वही पुष्पवृष्टि रावणके गमन वेगसे उत्पन्न हुए पवन द्वारा कंपाई जाकर फिर कुबेरके छोटे भाई रावणकेही चारों ओर गिरनें लगी ॥२७॥ वह सीताजीके शिरके फूलोंकी झडी रावणके चारों ओर सुमेरु पर्वतके चारों ओर नक्षत्रोंकी पांतिकी समान शोभित होतीथी ॥२८॥ उसी समय जानकीजीके चरणसे रत्न भूषित नूपुर खसकर बिजलीके मंडलकी समान पृथ्वीपर गिर पडा॥२९॥श्रीजानकीजी नवतरु पल्लवकी समान रक्त वर्ण वालीथीं, उनके साथ नीले वर्णका रावण कांचन कक्ष्या वेष्टित हस्तीकी समान शोभा पानें लगा इससे जानकीजी हाथीकी सुवर्णकी कौंधनीकी समान शोभा पानें लगीं ॥ ३० ॥ श्रीसीताजी महा ज्वालाकी समान अपनें तेजसे अकाशके वीच देदीप्यमान होने लगीं, कुवेरका भाई रावण उस अवस्थामें उनको आकाश मार्गमें गमन करके ले जानें लगा ॥ ३१ ॥ उस समय सीताजीके अग्नि वर्णवाले शब्दाय मान उनकी देहसे खसककर सब भूषण पृथ्वीमें गिरने लगे, उस समय ऐसा बोध हुआ मानों पुण्यक्षीण हुए तारागण आकाशसे गिर रहेहैं ॥३२ ॥ सीताजीका चंद्र सदृश दीप्तिवाला हार उनके दोनो उरोजोंके मध्यसे भ्रष्ट होकर गगनसे गिरी हुई गंगाजीके समान शोभा विस्तार करता गिरने लगा ॥ ३३ ॥ उत्पातकी वायुके चलनेंसे शिरः समूह कम्पित होनेके कारण विविध विहंगम युक्त वृक्ष मानों जानकीसे "कुछ भय नहींहै!" यह कहने लगे ॥ ३४ ॥ कमलदलोंके विध्वंस हो जानेंसे, और मत्स्य इत्यादिकोंके जलचरोंके व्याकुल हो जानेपर सब सरोवर सखीकी समान उत्साह रहित जानकीजीके शोकसे विह्वल होरहेथे॥ ॥ ३५ ॥ सिंह, व्याघ्र, मृग, और पक्षी समूह क्रोधमें भरकर सीताजीकी परछांईके पकडने के लिये चारों ओरसे आकर उनके पीछे२ दौडने लगे३६ जानकीजीके हर जानेसे समस्त पर्वत शृङ्गरूप बाहु परम्परा उठाकर झरने रूप अश्रुधारा कुल वदनसे मानो रुदनही करने लगे ॥ ३७ ॥

श्रीमान्! सूर्य नारायणभी उस अवस्थामें जानकीजीको देखकर दीन और तेज हीन होगये और उनका मंडल प्रदेश धूंधला होगया ॥ ३८ ॥ जब कि रावण सीताजी राम भार्याको हरण करके लिये जाताहै, तब फिर सत्य, दया, धर्म, सरलता और सुशीलता सबही संसारसे लोप होगई यदि ऐसा न होता तौ रावण कैसे जानकीजीको हरता? ॥ ३९ ॥ सबही प्राणी झुन्डके झुन्ड मिलकर यह कह विलाप करनें लगे, मृगछौना गण त्रासित होकर बारंबार शोभा रहित नेत्रोंसे दीन मुखहो रोनें लगे ॥४० ॥ नेत्र खोल२ बार२ यह देख वन देवताओंका शरीर मारे भयके थरथरा कर कांपने लगा ॥ ४१ ॥ "राम-राम" लक्ष्मण-लक्ष्मण" कह२कर जोरसे रोती व दुःखसे पुकारती जानकीजीको मधुर स्वरसे बोलती हुई सुन ॥ ४२ ॥ और बार२ उनको पृथ्वीपर निहारती हुई देख, जिनका तिलक बिसना हुआ और अति व्याकुल हो रहाहै चित्त जिनका ऐसी जानकीजीको अपना सर्व नाश करानेके कारण रावण हर कर लेगया ॥ ४३ ॥

ततस्तुसाचारुदतीशुचिस्मिताविनाकृता
बंधुजनेनमैथिली ॥ अपश्यतीराघवलक्ष्मणा
वुभौविवर्णवक्राभयभारपीडिता ॥ ४४ ॥

अनन्तर मनोहर दन्त वाली मन्द२ हास्य युक्त, जानकीजी राम और लक्ष्मण दोनोंको नहीं देखनेपर बन्धु जनके विरहसे मलीन मुखी और भयसे बहुतही पीडित हुई ॥ ४४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे द्विपंचाशः सर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशः सर्गः ॥

खमुत्पतंतंतंदृष्ट्वामैथिलीजनकात्मजा ॥
दुःखितापरमोद्विग्नाभयेमहतिवर्तिनी ॥ १ ॥

रावणको आकाशमें उडता हुआ देखकर जनक कुमारी, सुकुमारि सीताजी महाभीत होकर घबडाई और बहुतही दुःखित हुई ॥ १ ॥ क्रोध करनेंके कारण और रोते२ उनके दोनों नेत्र लाल हो आये, वह आरत स्वरसे रोकर उस कालमें भयंकर नेत्र कियेहुए राक्षसपतिसे कहने लगीं॥ २।

रेराक्षसाधम रावण! हमको अकेला पाकर चोरी करके तू लिये भागा-
जाताहै अरे क्या इस नीच कर्मसे तुझे लाज नहीं आती? ॥ ३ ॥ रे दुरा-
त्मन! मैं जान गई कि तू डरपोक स्वभाव वालाहै इसी कारणसे हमारे
हरण करनेका अभिलाष कर मायामय मृगरूप बना हमारे स्वामी रामचं-
द्रजीको छलसे दूरले गया॥४॥और इस समय हमारी रक्षा करनेके लिये जो
तैयार हुएथे उन हमारे श्वशुरके सखा गृद्धराज जटायुजीकोभी तैंनेमारडा-
लाहै राक्षसाधम ! इससेही जाना गया कि तुझमें कुछ वीरता नहींहै तूने के-
वल हमको अपना नामही सुनाकर हरण किया, कुछ जुझ करके हम जी-
ती नहीं गई. हाँ राम लक्ष्मणसे युद्ध कर हमें जीतता तो एक बातथी५॥६
रेनीच! शून्यमें पराई स्त्रीके हरण करनेंका यह नीच निन्दनीय कार्य कर-
के तू लज्जित नहीं होता ॥७॥रेअपनेंको शूर माननें वाले! तूनें जो यह अ-
ति निर्लज्ज और निन्दनीय कार्य कियाहै सो इसकी चरचा सब पुरुष कर२
के तुझे बुरा कहेंगे॥ ८॥ तूनें जो अपनी शूरताईकी और शरीरक बलकी
वार्ता कही सो तेरी इस शूरताको धिक्कारहै! तेरे इस बलकोभी धिक्कारहै!
तेरे कुलके कलंक जनक ऐसे चरित्र परभी धिक्कारहै ॥ ९ ॥ तू इस प्रका-
रसे हरण करकै शीघ्रताके साथ दौड़ा जाताहै फिर भला हम क्या कर स-
कें हां यदि एक मुहूर्तभी तू खड़ा रहै, तौ प्राण लेकर नहीं लौटने पा-
वेगा ॥ १० ॥ राजकुमार रामचंद्र और लक्ष्मणजीकी दृष्टिके आगे आते-
ही तू सेना सहित एक मुहूर्तभरभी प्राण धारण नहीं कर सकेगा॥११॥पक्षी
जिस प्रकार वनमें लगी हुई दावानलको नहीं छू सकता, वैसेही उन राजकु-
मारोंके बाणोंका स्पर्श सहन करनेंकी किसी भांति तुझमें सामर्थ्य नहीं-
है ॥ १२ ॥ इस कारण हे रावण! भली भांति अपना हिताहित विचार
करकै सीधी तरहसे हमको छोड़दे । नहीं तौ हमारे स्वामी अपने भ्राताके
सहित हमारे इस पकड़े जानें पर महा क्रोधितहो? ॥ १३ ॥ यदि तू हम-
को न छोड देगा तौ तेरा विनाश करनेंके लिये यत्न करेंगे, तू जिस आश-
यसे हमको हरण करकै लिये जाताहै ॥ १४ ॥ सो हे राक्षस नीच! वह तेरा
आशय कभी सिद्ध नहीं होगा हम उन देव समान अपनें स्वामीको न दे-
खनें पर ॥ १५ ॥ शत्रुके वशमें रहकर बहुत कालतक प्राण धारण करनें-

को समर्थ न होंगी, हमको समझ पड़ताहै कि तू अपना कल्याण और हित नहीं देखता ॥ १६ ॥ जिस प्रकार मृत्युके समय लोगोंकी बुद्धि विपरीत हो जातीहै अथवा मरनेके निकट किसीको पथ्य रुचिकर नहीं होता ॥ १७ ॥ रेराक्षस! तू इस समयके कार्यमेंभी भय नहीं करता, इस कारण हम देखतीहैं कि तेरा गला कालकी फाँसीसे बँध गयाहै ॥ १८ ॥ और साफही समझ पड़ताहै कि तेरी मृत्यु जो निकटहै इस्से सब वृक्ष तुझे सुवर्णके दृष्टि आते होंगे,कारणकि जिनकी मृत्यु निकट होतीहै, उनको वृक्ष सुवर्णकेही दीखतेहैं, और रक्त वाहिनी भयंकर वैतरणी नदी ॥ १९ ॥ और महाभीषण खड्ग रूप पत्र युक्त वृक्षोंका वन तू अति शीघ्र देखेगा।और उत्कृष्ट वैदूर्य मणिमय पत्ते लगे हुए तपाये हुए सुवर्णके बने फूल लगे हुए ॥ २० ॥ और भी महद् कंटकाकीर्ण सुतीक्ष्ण शाल्मली वृक्ष यह सब बहुत शीघ्र तुझको दिखाई देंगे ! तुम उन महात्मा रामचंद्रजीका ऐसा अप्रिय कार्य करकै नहींजी सकोगे ॥ २१ ॥ जिस प्रकार विषका पीनें वाला बहुत देर तक नहीं प्राण रख सकता, रेनिर्घृण! रावण! इन सब बातोंसे स्पष्टहै कि तू कठिन कालकी फांसीसे बँधाहै ॥ २२ ॥ महात्मा हमारे स्वामीके सन्मुख संग्राममें प्राप्त होकर फिर तुम्हारा कहीं निस्तारा नहीं, फिर तू कहां जायकर बचेगा; उन्होंने अकेलेही बिना अपनें भ्राताकी सहायताके एक निमेष मात्रमें ॥ २३ ॥ चौदह हजार राक्षस मारडाले,वही सब अस्त्र शस्त्रोंके जाननें वाले महा बलवान वीर्य सम्पन्न श्रीरामचंद्रजी ॥ २४ ॥ सुतीक्ष्ण बाणोंके समूहसे अपनी प्रिय भार्याके हरनें वाले तुझको अवश्यही मार डालेंगे, रावणके हाथोंके बीचमें बैठी वैदेहीजी भय और शोक युक्त होकर इस प्रकारसे व औरभी बहुत भांतिसे कठोर वचनके साथ करुणास्वरसे विलाप करनें लगीं २५ ॥

तदाभृशार्ताबहुचैवभाषिणींविलापपूर्वंकरुणंः
चभामिनीम् ॥ जहारपापस्तरुणींविचेष्टतीं
नृपात्मजामागतगात्रवेपथुः ॥ २६ ॥

वह महा व्याकुल होकर अपने छुडानेंकी चेष्टा करती हुई करुणा स-

हित विलाप करके अनेक वचन कहनें लगीं, उस समय पापचारी रावण अपनें शरीरको कंपाता हुआ उनको हरण करके ले चला ॥ २६ ॥ इ०श्रीम० वा०आ० आर० त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुष्पंचाशः सर्गः ॥

ह्रियमाणातुवैदेहीकंचिन्नाथमपश्यती ॥
ददर्शगिरिशृंगस्थान्पंचवानरपुंगवान् ॥ १ ॥

जब रावण हरण करके ले चला तब जानकीजी और किसी को रक्षा करनें वाला न पाकर चली जानें लगीं। और जाते २ उन्होंनें पर्वतके शृंग परबैठे हुए प्रधान पांच वंदरोंको देखा ॥ १ ॥ तब उन बडे २ नेत्र वाली जानकीजीनें सुवर्णके रंगका अपना एक वस्त्र व कुछ गहनें उतार उन वन्दरोंके बीचमें ॥ २ ॥ इस विचारसे डाल दिये कि यह कदाचित् रामचंद्रजीसे यह सब वृत्तान्त कहभी सकतेहैं। वह जानकीजी का छोडा हुआ वस्त्र व भूषण वन्दरोंके बीचमें गिरा ॥ ३ ॥ जानकी जीके वस्त्र और भूषण डालनें का यह कर्म घबडाहटके मारे रावणनें नहीं जाना, उस कालमें सीताजी बहुतही रुदन कर रही थीं उनको अनिमेष लोचनसे ॥४॥ पीली आंखों वाले वानर श्रेष्ठोंनें सीताजीको अपनें नेत्रोंसे वारंवार देख-लिया व रावण पम्पापुरीको नांघ लंकापुरीकी ओर ॥ ५ ॥ रोती हुई सीताजीको लेकर चला गया, अपनी मूर्तिमान मृत्युस्वरूप सीताजीको हर-ण करके रावणके हर्षकी सीमा न रही ॥ ६ ॥ वह तेज डाढ वाली और तेज विष वाली सर्पिणीकी समान सीताजीको अंकमें भरकर आकाश मा-र्गमें होकर बहुतसे पर्वत वन नदियां व तडागादि देखता हुआ ॥ ७ ॥ बडी शीघ्रताके साथ रावण मत्स्य कच्छप मगर नाके इत्यादिकों के स्थान समुद्रको उतर गया, जिसप्रकार कि कमानसे छूटा हुआ बाण अति शीघ्रतासे सीधा चलताहै ॥ ८ ॥ जब रावणनें जानकीजीको हरण किया, तब जगमाताका हरण होनेके कारण क्षुभित होकर वरुणालय समुद्र तरंग विहीन होगया, और उसमेंके मीन और बडे २ सब सर्प व्या-कुल होगये ॥ ९ ॥ इस प्रकार जानकीजीके हरण करनेंके समय यह दशा तो नदीनाथकी हुई और अन्तरिक्षमें विचरण करनें वाले चारण

गण कहनें लगे ॥ १० ॥ कि अब रावण किसी प्रकार नहीं बच सकता यहींतक इसके जीवनका शेष होगया। सिद्ध गणभी ऐसाही कहने लगे इस ओर रावण विचेष्ट माना सीताजीको गोदीमें लिये ॥ ११ ॥ अपनी लं-का पुरीमें लेआया, वह सीताजीको नहींलाया वरन कहींसे अपनी मृत्यु-को मोल ले आया। उस समय लंका नगरीमें बडे २ चौराहे और मार्ग सुशोभित हो रहेथे ॥ १२ ॥ वहां पहुंचकर अपनें परम सुन्दर रणवास में रावणने शोक मोहसे युक्त तिन परम सुन्दरीको जाकर बैठा दिया१३ उस समय ऐसा बोध हुआ मानों मय दानव अपने पुरमें आसुरी मायाले आयाहै, दशानन सीताजीको अपने रणवासमें स्थापन करके घोर दर्शना पिशाचनियोंको आज्ञा देताहुआ ॥ १४ ॥ कि तुम भली भांतिसे इन-की रक्षाकरो। कोई स्त्री व पुरुष हमारी विना आज्ञा इन सीताको नहीं देखनें पावै मुक्ता, मणि, सुवर्ण वस्त्र भूषण ॥ १५ ॥ इत्यादि जिस २ वस्तुकी यह इच्छा करैं वह समस्तही इनको दीजाय यह मेरी आज्ञाहै व जोकोई स्त्री तुममेंसे इन जानकीको अप्रिय वचन ॥ १६ ॥ ज्ञानसे व अज्ञानसे कहेगी वह निज शरीरमें अपने प्राणोंको न समझै इस तरह सब रक्षाकर नें वालियोंसे कह महा प्रतापवान रावण ॥ १७ ॥ रनवास से बाहर आ विचारै करनें लगाकि इससमय हमको क्या करना उचितहै, यह सोच उस नें इधर उधर देखा तो आगही मांसके खानेंवाले आठ राक्षस बैठेथे॥ १८॥ उन राक्षसों को देखकर ब्रह्माजीके वरदानसे मोहित हुआ रावण उन राक्षसोंके बल वीर्यकी प्रशंसा करनें लगा ॥ १९ ॥ तुम लोग अनेक भांतिके अस्त्र शस्त्र धारण करकै शीघ्र इस स्थानसे जहां पर खर रहा करताथा उस जन शून्य जनस्थानको जाओ ॥ २० ॥ और तुम लोग वहां बल और पौरुषका आश्रय लेकर किसीकाभी डर न करकै जन शून्य जनस्थानमें जाय टिके रहो ॥ २१ ॥ वहां पर खर और दूष-णके सहित हमारी जो महावीर्य वान बहुत सारी सेना रहतीथी, वह समस्त रामचंद्रके बाणसे खर दूषण सहित मारी गई ॥ २२ ॥ इस कार-णसे हमको बडा क्रोध हुआहै, और इससेही हम बडे धीर्यवानका धीर-जभी लोप होगया। इस समय रामचंद्रके प्रति हमारा महा वैरभाव उप-स्थित हुआहै ॥ २३ ॥ सो इस समय परम शत्रु रामके प्रति वह अपना

क्रोध हम प्रगट करना चाहतेहैं, जब तक हम युद्धमें उस महा शत्रुका वध नहीं करलेते, तब तक हमको सुखकी नींद न आवैगी ॥ २४ ॥ जिस प्रकार निर्धन पुरुष धन प्राप्त करकै सुखी होताहै, वैसेही हमभी खर दूषणके मारनें वाले रामचंद्रजीका नाश करके हमभी सुखी होंगे ॥ २५ ॥ तुम लोग जनस्थानमें रहकर राम किस समय क्या करतेहैं, सदाही इस विषयकी यथा तथा खोज खबर लेते रहो ॥ २६ ॥ तुम सब लोग बडी सावधानीसे वहां पर चले जाओ, और सदा उस रामचंद्रको मार डालनेंके लिये यत्न करते रहना ॥ २७ ॥ हमनें पहले संग्राममें अनेक वार तुम लोगोंके बलको जान लियाहै, वस इसी कारणसे हमनें तुम लोगोंको जन स्थानमें विठाया ॥ २८ ॥ वह आठ राक्षस इन अर्थ युक्त मीठे वचनोंको सुन और रावणको प्रणाम कर लंका छोड करकै जनस्थानकी ओर गुप्त भावसे सबके सब चले ॥ २९ ॥

ततस्तुसीतामुपलभ्यरावणःसुसंप्रहृष्टः
परिगृह्यमैथिलीम् ॥ प्रसज्जरामेणचवैरमुत्तमं
बभूवमोहान्मुदितःसरावणः ॥ ३० ॥

इस प्रकारसे रावण श्रीजानकीजीको परम हर्षित चित्तसे ग्रहण करकै और उनको अपनें रनवासमें टिका, रामचंद्रजीसे महा शत्रुता करकै मोह युक्तहो परमानंदित हुआ ॥ ३० ॥ इ०श्रीम०वाल्मीकीये आदि काव्ये आर० चतुष्पंचाशःसर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशः सर्गः ॥

संदिश्यराक्षसान्घोरान्रावणोऽष्टौ महाबलान् ॥
आत्मानंबुद्धिवैक्लव्यात्कृतकृत्यममन्यत ॥ १ ॥

रावणकी मतिमें भ्रम होगयाथा इसी कारणसे वह घोर महा बलवान् आठ राक्षसोंको जनस्थानमें भेजकर अपनेको कृत कृत्य समझता हुआ कि अब हमें कोई कार्य करनेंको बाकी नहीं रहा ॥ १ ॥ अनन्तर वह वरावर जानकीजीका स्मरण करते हुए राम बाणसे पीडित होकर उन जानकी-जीको देखनेंके लिये शीघ्रतासे अपने रमणीय गृहमें प्रवेश करता

हुआ ॥ २ ॥ राक्षस पति रावणनें उस घरमें प्रवेश करके दुःखपरायण सीताजीको राक्षसियोंके वीचमें वैठे हुए देखा ॥ ३ ॥ सीताजी शोकके भारसे महा पीडा पा अतिशय दीन भावको प्राप्तहो नेत्रोंसे आंसू वहाती हुई वैठीथीं, उस समय ऐसा वोध होताथा मानों नौका वायुके वेगसे कांपकर जलमें डूबी हुईहै ॥ ४ ॥ अथवा जैसे मृगी यूथसे विछुड कर कुत्तोंसे घिरीहो सीताजी शोकके वश पडनेंसे विवश और व्याकुलहो शिर झुकाये वैठीथीं ॥ ५ ॥ राक्षसपति रावण सन्मुख होकर उन शोकसे दीन हुई सीताजीकी इच्छा न रहनें पर भी वलात्कारसे उनको उस देव गृह सदृश दिव्य भवनको दिखाने लगा ॥ ६ ॥ यह घर अनेक प्रकार अटा अटारी और धवहरोंसे परिपूर्णहै, सहस्रों स्त्रियां इसमेंहैं व अनेक प्रकारके पक्षी और विविध भांतिके रत्नभी इस गृहमेंहैं ॥ ७ ॥ उसके सव थंभ हाथीदांतके वनेथे, सुवर्ण स्फटिक, रजत, और वैदूर्य निर्मित परम चित्रित और देखनेमें मनके हरण करनें वालेथे ॥ ८ ॥ वहां पर समस्त वंदनवारें तपाये हुए सुवर्णकी वनी हुईथीं, और वहां पर निरन्तर दिव्य दुन्दुभी आठ पहर वजती रहतीथीं, रावण सीताजीके सहित इस गृहकी सुवर्ण से वनी हुई विचित्र सीढियोंपर चढा ॥ ९ ॥ वह घर हाथी दांत और चांदी निर्मित होनेंके कारण अति सुन्दर हजारों जालियें वहां लगी हुईथीं जिनको देखतेही मन हर जाय औरभी वहुतसे घर वहां वनेथे जिनमें सुवर्णके जंगले लगेथे ॥ १० ॥ सव भूमि भाग सुधा धवलित और मणि समूह चित्रित रहनेंके कारण विचित्र शोभा दे रहाथा, इस प्रकारका भवन रावणनें सीताजीको दिखाया ॥ ११ ॥ उस मन्दिरमें जगह२ वावली और छोटी २ तलैयेंभी वनीथीं जिनमें अनेक प्रकारके पुष्प खिल रहेथे दशग्रीव रावणनें जानकीजीको यह सव कुछ दिखाया १२ इस प्रकारसे पापात्मा रावण जानकीजीको लुभानेंकी इच्छासे अपना वह समस्त दिव्य गृह दिखलाकर कहनें लगा ॥ १३ ॥ कि हे जानकी! यहां वत्तीस करोड राक्षस वालक और वूढोंको छोडकर हमारे आधीनहैं ॥१४॥ उन सव भयंकर कर्म करनें वाले राक्षसोंके हम स्वामीहैं। और हमारे इकले केही एक सहस्र दासहैं ॥ १५ ॥ अव हमारा यह समस्त राज्य तुम्हारेही वशमेंहै हे विशालाक्षि! हमारा जीवन पर्यन्तभी तुम्हारे

आधीनहै; अधिक क्या कहैं तुम हमारे प्राणोंसेभी प्यारीहो ॥ १६ ॥ हे मैथिली! हमारे रनवासमें जो सब उत्तम स्त्रियांहैं, सो तुम हमारी भार्या होकर उन सबके ऊपर पटरानी बनो ॥ १७ ॥ हे जानकी! हमनें जो कुछ कहा वह तुम्हारे लिये विशेष हितकारीहै; तुम इस बातमें राजी होजाओ, दूसरी भांतिका अभिप्राय करके क्या करोगी; तुम्हारे कारण हम बहुतही संतापित हुएहैं सो तुम प्रसन्न होकर हमको भजो ॥ १८ ॥ चारों ओर समुद्रसे घिरी हुई शतयोजनके विस्तार वाली इस लंकापुरीको इन्द्रके सहित समस्त देव दानवभी किसी प्रकारका भय नहीं करासकें ॥ १९ ॥ क्या देवता, क्या गन्धर्व, क्या यक्ष, क्या ऋषि इन लोगोंमें हम किसी-कोभी ऐसा नहीं देखते जो वीरतामें हमारी समानहो ॥ २० ॥ तौ फिर भला; दीन, तपस्वी राज्य भ्रष्ट, पादचारी, अल्प प्राण मनुष्य रामको लेकर तुम क्या करोगी ॥ २१ ॥ इस कारणसे हे सीते! हमही तुम्हारे योग्य पतिहैं; तुम हमारीही भजनाकरो; हेभीरु! यौवन सदा नहीं रहता, इस्से हमारे साथ इस लंका नगरीमें विहार करो ॥ २२ ॥ हे वरानने! अब तुम रामचंद्रके देखनेंकी आशा छोडो! उनमें क्या शक्तिहै जो वह मनो-रथ सेभी यहां पर आसकें? ॥ २३ ॥ जिस प्रकार कोई वहां प्रचंड पवन आकाशमें चलते हुये बांधाचाहै, परन्तु नहीं बांध सकता, या प्रदीप्त अग्निकी शिखाको कोई हाथसे पकडनाचाहै तौ नहीं पकड सकता, ऐसेही रामभी यहां नहीं आ सकता ॥ २४ ॥ हे शोभने! समस्त भुवनोंमें हम ऐसा किसीको नहीं देखते कि जो पराक्रम प्रकाश करके हमारी भुजा-ओंसे रक्षित तुमको लेजासके ॥ २५ ॥ अतएव तुम इस विशाल लं-काके राज्यका पालन करो, हमारी समान सब पुरुष तुम्हारे आज्ञाकारी दास हो जांयगे । और हमकोभी यदि सेवक समझकर ग्रहण करो तो हमभी तुम्हारी आज्ञाके आधीन हो जांयगे। सब देवता गण वरन स्था-वर जंगमादि समस्त जगत् तुम्हाराही दास हो जायगा ॥ २६ ॥ अब तुम अभिषेकके जलसे धौत देहाहोकर सन्तुष्ट चित्तसे हमको तृप्तकरो पहले ज-न्मके तुम्हारे जो कुछ पापथे वह सब वनवास करनेंसे क्षयको प्राप्त होगये२७ अब तुम लंकामें रहकर अपने पहले कियेहुए पुण्योंके फलको प्राप्तहो! हे मैथिलि! यहांपर जो दिव्य मालायें दिव्यगन्ध और दिव्यभूषण रक्खेहैं

तुम॰उन सबको हमारे साथ भोगकरो! हे सुमध्यमे! भाई कुवेरका पुष्पक नाम ॥२८॥२९॥ विमान सूर्यके समान प्रकाश मान हमारे यहांहै कुवेरके साथ संग्राम करके उसको हम जीत लायेहैं,वह अति विशाल रमणीयहै उसका वेग मनके वेगकी समानहै ॥ ३० ॥ सो हे सीते! उस विमानपर चढकर तुम हमारे साथ विहार सुखसहित करो। हे वरानने! पद्मकी समान परम सुन्दर और सुविमल कान्ति सम्पन्न तुम्हारा मुख ॥ ३१ ॥ शोकके मारे मलीन होनेंसे अव शोभित नहीं होता, इसकारण तुम शोक नकरो जव रावणनें इस प्रकार से कहा तव पतिव्रता शिरोमणि सीताजी वस्त्रको आडमें ॥ ३२ ॥ अपना चंद्रसमान वदन मंडल ढक कर रोनें लगीं चिन्तासे उनकादेह पीला पडगया वह वहुतही अस्वस्थकी समान ध्यानमें मग्न होगई ॥ ३३ ॥ इसको देखकर वीर्यवान निशाचर रावण उनसे वोला कि-हे वैदेही! धर्मलोप होजानेकी शंकासे लज्जित मतहोवो ॥ ३४ ॥ देखो तुम्हारे प्रति हम ऋषि गणोंकेही उपदेश कियेहुए विधिक्रमसे प्रणय वन्धन वांधने को तैयार हुएहैं यह लो हम अपनें दशों शिरोंसे तुम्हारे मनोहर चरणोंको दवातेहैं ॥ ३५ ॥ हमारे प्रति प्रसन्नता प्रगटकरने में और विलंव मतकरो हम तुम्हारे वशवर्ती दास होजायँगे, हमनें कामके वशहोकर यह जो वार्ताकही देखो इसकाकोई अंश निरर्थक नहीं जाय ॥ ३६ ॥

नचापिरावणःकांचिन्मूर्ध्नास्त्रींप्रणमेतह ॥
एवमुक्त्वादशग्रीवोमैथिलींजनकात्मजाम् ॥
कृतांतवशमापन्नोममेयमितिमन्यते ॥ ३७ ॥

रावणनें कभी इसप्रकारसे किसी स्त्रीके चरणोंमें प्रणाम नहीं कियाथा न शिरधराथा। दशानन मृत्युके वशहोकर जनक नंदिनी मैथिली जीसे इसप्रकार कहकर मनमें समझा कि यह हमारीही होगई ॥ ३७ ॥ इ॰ श्रीम॰ वा॰ आ॰ आरण्य॰ पंच पंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पंचाशः सर्गः ॥

सातथोक्तातुवैदेहीनिर्भयाशोककर्शिता ॥
तृणमंतरतः कृत्वारावणंप्रायभाषत ॥ १ ॥

शोकसे तपीहुई जानकीजी यह वचन सुन कुछ भय न करकै मनहीमन रावणको तृणसमान समझतीहुई उत्तर देतीहुई कि ॥ १ ॥ राजा दशरथ-साक्षात् धर्मके पर्वत सदृश अभेद्यसेतु और सत्य प्रतिज्ञतासे सर्व संसारमें विख्यातथे श्रीरामचंद्रजी उनकेही पुत्रहैं ॥ २ ॥ यहभी धर्मात्माके नामसे तीनों भुवनमें विख्यातहैं,वही दीर्घबाहु विशाल लोचन श्रीरामचंद्रजी हमारे स्वामी और साक्षात् देवताहैं ॥ ३ ॥ उनके कंधे सिंहकी समानहैं, वह म-हाद्युतिमान और इक्ष्वाकुवंशमें उत्पन्न हुयेहैं वे भ्राता लक्ष्मणके सहित अवश्यही तेरे प्राणोंका वध करनें यहां आवेंगे ॥ ४ ॥ यदि हम उनके स-न्मुख बलपूर्वक इसप्रकारसे खेंचीजाती तबतौ युद्धमें खरकी समान निहत होकर तुमको भी रणभूमिसें शयन करना पडता ॥ ५ ॥ तुमनें जिन सब घोरतर महा बलवान राक्षसोंकी वार्ताकही सो गरुडके निकट सर्पसमूह की समान रामचंद्रजीके निकट यह सब राक्षस हीनबल विहीनतेज होजा-यँगे ॥ ६ ॥ तरंग जिसप्रकार गंगाजीके किनारेको तोडतीहै वैसेही श्रीरा-मचंद्रजी अपने धनुषसे छूटेहुए उन स्वर्णभूषित बाणोंके समूहसे राक्षसोंके शरीरका भेदनकरेंगे ॥ ७ ॥ रावण! यद्यपि तू देव दानवोंसे अवध्यहै, परन्तु रामचंद्रकेसाथ यह बडाभारी वैर करकै किसीप्रकार तेरे प्राण न बचेंगे ॥८॥ वह बलवान श्रीरामचंद्रजीही तुम्हारे बचेहुए जीवनका समय पूरा कर देंगे। इससे यज्ञस्तम्भसे बँधेहुए पशुकी समान अब तुम्हारा जीना दुर्लभहै ॥ ९ ॥ यदि श्रीरामचन्द्रजी क्रोध भरे नेत्रोंके दृष्टिसे एक बारही तुझको देखें तौ हे राक्षस! तू तत्क्षणही भस्म हो जायगा जिस प्रकार महादेवजीकी नेत्रा-ग्निसे कामदेव भस्म हो गयाथा ॥ १० ॥ जो चंद्रमाकोभी आकाशसे पृथ्वीपर गिरा सकते या नाश कर सकतेहैं वह सीताको भी अवश्यही यहां आकर इस स्थानसे छुडावेंगे ॥ ११ ॥ तेरी उमर बीतचुकी, श्री जाती रही, वीर्य समाप्त होगया, इन्द्रियांभी अपने २ कार्यसे शिथिल होगईं, इस्से विदित होताहै कि तुम्हारे लिये लंकानगरी निश्चयही विधवा हो जायगी ॥ १२ ॥ तुमनें जो पाप कार्य कियाहै इसका परिणाम कभी सुखकर नहीं होगा, क्योंकि तूनें बिना विचारे बलात्कारकर पतिकी सेवासे हमको अलग कियाहै ॥ १३ ॥ हमारे वह महाद्युतिमान स्वामी अपने भ्राता लक्ष्मणके सहित केवल अपनें वीर्यका आश्रय लेकर निडरहो निर्जन वनमें वास

करतेहैं ॥ १४ ॥ वह संग्राम स्थलमें बाणोंकी वर्षा करके तेरी देहसे, बल वीर्य, घमंड, व ऐसा अहंकार अलग करदेंगे ॥ १५ ॥ कालके वश होकर जबकि प्राणियोंका नाश निकट आजाताहै तब वह कालके वशहोकर कार्य अकार्यका विचार करनेंमें ज्ञान रहित हो जातेहैं ॥ १६ ॥ रे राक्षसा धम! जब कि तैंनें हमारा अपमान कियाहै, तब स्वयं तेरा, समस्त राक्षसोंका और सर्व रनवासोंके नाश होनेंका काल आ पहुँचाहै ॥ १७ ॥ जिस प्रकार ब्राह्मणों करके मंत्रसे पढी हुई यज्ञकी सामग्रीसे विभूषित यज्ञ वेदी चंडालके छूनें योग्य नहीं होती वैसेही हमभी तेरे स्पर्श करनेंके योग्य नहींहैं ॥ १८ ॥ रेराक्षसाधम ! रेपापात्मा ! हम नित्य धर्मपरायण श्रीरामचन्द्रजीकी धर्मपत्नीहैं, मन वचन कायसे स्वामीहीके प्रति दृढव्रताहैं; इस कारण हम किसी प्रकारसेभी तेरे छूनेंके योग्य नहींहैं ॥ १९ ॥ जो हंसिनी कमल पुष्पोंके मध्यमें राज हंसके साथ नित्य क्रीडा करतीहै वह किस प्रकारसे तृणोंके बीच बैठे हुए मद्गुर (जलका कविशेष) के प्रति दृष्टि डालेगी ॥ २० ॥ रेराक्षस! यह देहस्वभावसेही संज्ञाहीनहै, इसको बांध, या इसपर आघातदे, जो तेरी इच्छाहो सो कर हम किसी प्रकारसे इस शरीरकी रक्षा नहीं करेंगी ॥ हमें प्राणोंसे कुछ प्रयोजन नहींहै ॥ २१ ॥ और अधिक तू जो हमारे शरीरको स्पर्श करे तौ हम अपने जीतेजी यह कलंक पृथ्वीपर विस्तार नहीं कर सकेंगी ! वैदेही जी इस प्रकारसे कठोर वचन कह ॥ २२ ॥ फिर रावणसे और कुछ न बोलीं तब रावण सीताजीके कठोर और रोम हर्षण वचन सुनकर ॥२३॥ सीताजीको डर पानेंके लिये कहनें लगा। कि हे मैथिली ! बारह महीनें तक कुछ न कहूंगा ॥ २४ ॥ हे चारुहासिनी ! इस समयके मध्यमें यदि तुम हमको न प्राप्त होगी तौ रसोई करनें वाले हमारे प्रातः कलेवेके लिये तुमको टुकडे २ कर काट डालेंगे ॥ २५ ॥ शत्रुओंको रुवानें वाला रावण इस प्रकारसे कठोर वचन कहकर फिर क्रोधितहो राक्षसि-योंको आज्ञा देता हुआ ॥ २६ ॥ हे विकटरूपा, घोर दर्शना, रक्त, मांसभोजी राक्षसिगण ! तुम सब शीघ्रही जानकीका समस्त गर्व तोड डालो ॥२७॥ वह घोर दर्शना निशाचरी गण यह सुन तत्क्षणही हाथ जोड जो आज्ञा कहकर रावणके कहनेंके अनुसार सीताजीको घेर लेतीहुईं॥२८॥

यह देखकर रावण मानों पृथ्वीको कंपित और विदीर्ण करता हुआ कई एक परग चलकर, उन घोर दर्शन वाली राक्षसियोंको विशेष रूपसे फिर आज्ञा करता हुआ ॥ २९ ॥ तुम जानकीको अशोक वनमें लेकर चली जाओ और सब मिलकर सदा इनको घेरे रहकर गूढ भावसे इनकी रक्षाकरो॥३०॥वनकी हथिनीको जिस प्रकार वशमें किया जाताहै, तुम सबभी उसीतरहसे घोर तर्जन करकै अथवा समझा बुझाकर इनको हमारे वशमें लाओ ॥ ३१ ॥ जब राक्षसेन्द्र रावणनें इस भांति आज्ञाकी तब राक्षसियें सीताजीको घेरकर अशोक वनमें ले गई ॥ ३२ ॥ अनेक जातिके मन वांछित पुष्प फल सम्पन्न वृक्ष समूह और सब काल मतवालेही विविध भांतिके विहंगम इस अशोक वनकी शोभाको बढातेथे ॥ ३३ ॥ शोकके वशमें पड़ी हुई जनक दुलारी मैथिलीजी अशोक वनके मध्य राक्षसोंके वशमें पड़कर रहीं, जिस प्रकार व्याघ्रनियोंमें हरिणी रहतीहै ॥ ३४ ॥ अशोक वनमें फांसीसे बँधी डरपोक मृगीके समान अतिशय शोकमें सीताजी रहीं, वह वहां पर किसी भांतिका सुख न प्राप्त कर सकीं ॥ ३५ ॥

नविंदतेतत्रतुशर्ममैथिलीविरूपनेत्राभिरतीवतर्जीता ॥
पतिंस्मरतीदयितंचदेवरंविचेतनाभूद्भयशोकपीडिता३६

विरूप नेत्र वाली राक्षसियों करकै घुडकी डरपाई व धमकाई जाकर; परमप्रिय स्वामी और देवरको सदा याद करकै और शोकसे सतानेंके कारण चेतना रहित होकर जानकीजीनें वहां किसी प्रकार शान्ति नहीं पाई ३६॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकाण्डे षट्पंचाशः सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपंचाशः सर्गः

प्रवेशशितायांसीतायांलंकांप्रतिपितामहः॥
तदाप्रोवाचदेवेंद्रंपरितुष्टंशतक्रतुन् ॥ १ ॥

जिस समय जानकीजीको लंकामें रावण लेगया उस समय ब्रह्माजीनें देवताओंके राजा इन्द्रसे इस प्रकारके वचन कहे ॥ १ ॥ त्रिलोकीके हित

करनेके वास्ते और राक्षसोंके नाशके निमित्त दुरात्मा रावण जानकीजी-को लंकामें ले गयाहै॥२॥वहां महाभाग्य वाली पतिव्रत धर्म युक्त जो सदा सुखहीसे इतनी बड़ी हुईहैं अपने स्वामीको न देखकर और राक्षसोंको दे-खकर ॥ ३ ॥ राक्षसियोंसे घिरी हुई पतिव्रत धर्म वाली जानकी समुद्रके बीचमें जो लंका पुरीहै उसमें स्थित हैं॥ ४ ॥ रामचंद्रजी किस प्रकार जा-नेंगे कि वहां निन्दा रहित जानकीजीहैं बड़े कष्ट और दुःखसे रामचंद्रको स्मरण करती हुई जानकी ॥ ५ भोजनादिके न करनेंसे निश्चय प्राणोंको त्यागन करदेंगी, सो जानकीजीके प्राण रक्षा करनेंमें हमको बड़ा सन्दे-हहै ॥ ६ ॥ सो तुम शीघ्र यहांसे जाकर सुन्दर मुख वाली जानकीका दर्श-नकर लंका पुरीमें प्रवेशकर यह हवि ले जाकर जानकीजीको देदो ॥७॥ जब यह वचन ब्रह्माजीनें कहा तब रावणकी लंकापुरीमें इन्द्रजी आये और निद्राको अपनें साथ लेते आये ॥ ८ ॥ तव इन्द्रनें निद्रा देवीसे कहा, कि तू जाकर राक्षसों को मोहित कर निद्रा देवी इन्द्रके यह वचन सुन-कर परम प्रसन्न हुई ॥ ९ ॥ देवताओंके कार्य सिद्धके निमित्त राक्षसोंको मोहित करती हुई इसी अवसरमें इन्द्राणीके पति इन्द्रजी ॥ १० ॥ उस स्थानमें प्राप्तहो वनमें स्थित हुई जानकी से बोले कि हे भद्रे! मैं देवता ओंका राजा इन्द्रहूं. हे सुन्दर हास्य युक्त जानकी! ॥ ११ ॥ मैं तुम्हारे और रामचंद्रके कार्य सिद्ध करनेंके निमित्त सहाय करनेंको आयाहूं हे जनककुमारी! तुम शोच मत करो ॥ १२ ॥ मेरी कृपासे सैना सहित रामचंद्रजी सागर तर जांयगे, हे कल्याणी! मेरीही मायाने इन राक्षसियों को मोहित कियाहै॥१३॥ इसी कारण हे जानकी! मैं यह हवि अन्न तुम्हें देनेको निद्राके साथ आयाहूं सो हे जानकी ! तुम इसे लो ॥ १४ ॥ हे जानकी! मेरे हाथसे यह विभक्षण करनेंसे तुमको क्षुधा दश हजार वर्ष तक भी न व्यापैगी ॥ १५ ॥ जब इन्द्रने ऐसा कहा तो डरती हुई जानकी बोलीं कि मैं यह कैसे जानूं कि तुम शचीके पति इन्द्रहो ॥ १६ ॥ जो चिह्न राम लक्ष्मणके साथ मैंने आपके देखेथे यदि तुम देवता ओंके राजा इन्द्र हो तौ उन चिह्नोंको दिखाओ ॥ १७ ॥ इन्द्रजी जान-कीजी के वचन सुन पैरोंसे पृथ्वी न स्पर्श करते हुए और नेत्रोंको पलक लगना बंदहोगया देवताओंकी यही पहचानहै कि पैरोंसे

पृथ्वी नहीं स्पर्श करते उनके नेत्रोंके पलक नहीं लगते ॥ १८ ॥ धूलि रहित वस्त्र धारण किये हुए जो फूल मलीन नहीं ऐसे फूलोंकी माला धारण किये इन लक्षणोंसे जानकीजी इन्द्रको पहचान परम हर्षित हुईं ॥ १९ ॥ और फिर रोती हुई बोलीं, हे भगवन् ! भाग्यसे महाबाहु रामचंद्रका नाम उनके भाई सहित आज मैंनें सुना ॥ २० ॥ जैसे मेरे श्वशुर दशरथजी, पिता जनकजी हैं तैसेही आज मैं तुम्हें देखतीहूं तुमसे मेरे पति सनाथ हुए ॥ २१ ॥ हे देवेन्द्र ! तुम्हारी आज्ञासे यह दूधकी बनी खीर रघु कुलके बढानें हारे तुम्हारे हाथकीदी हुई मैं खाऊंगी॥२२॥ सुहासिनी जानकीजीनें वह हवि इन्द्रके हाथसे लेकर प्रथम अपने स्वामी रामचंद्र और देवर लक्ष्मणजीको निवेदितकी ॥ २३ ॥ और कहा कि यदि मेरे महा बली भर्ता लक्ष्मण भाई सहित जीवितहैं तो यह जो मैं प्रेमसे देतीहूं यह वह पायस ग्रहण करै ॥ २४ ॥ वह सुमुखी इस प्रकार खीरको निवेदन कर पीछे आप भक्षण करती हुई. जिसके खातेही भूंख प्यासका दुःख जाता रहा, इन्द्रसे यह कथा सुनकर कि रामचंद्र शीघ्र आवेंगे रामचंद्रमें मन लगाती हुई ॥ २५ ॥

सचापिशक्रस्त्रिदिवालयंतदाप्रीतोययौराघवकार्य सिद्धये ॥ आमंत्र्यसीतांसततोमहात्माजगाम निद्रासहितः स्वमालयम् ॥ २६ ॥

वह इन्द्रभी उस समय रामचंद्र की कार्य सिद्धिके निमित्त प्रसन्न होकर स्वर्गको गये, और वह महात्मा चलते समय जानकीको समझाकर निद्रा सहित स्वर्गको पधारे ॥ २६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये आरण्य कांडे क्षेपक सर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपंचाशः सर्गः ॥

राक्षसंमृगरूपेणचरंतंकामरूपिणम् ॥ निहत्यरामोमारीचंतूर्णपथिन्यवर्तत ॥ १ ॥

उस ओर श्रीरामचंद्रजी मृग रूपसे विचरण करनें वाले काम रूपी निशाचर मारीचको संहार करके शीघ्रही आश्रमके मार्गको लौटे ॥ १ ॥ और श्रीजानकीजीको देखनेंके लिये अति वेगसे चले। इसी समयमें

एक शियार उनकी पीठके पीछे महा कठोर शब्द करने लगा ॥ २ ॥ श्रीरामचंद्रजी शियारके इस रोमाञ्चकर दारुण बोलको सुन अति भयभीतहो मनही मनमें शंका करनें लगे ॥ ३ ॥ जिस प्रकारका शब्द यह शियार कर रहाहै, इससे तौ ऐसा जान पडताहै, कि कोई अशुभ होगा। इस समय राक्षसोंनें जानकीको भक्षण न कर लियाहो, और सीताजी कुशलसेहों तभी मंगलहै ॥ ४ ॥ मृग रूपी मारीचनें जान बूझकर हमारे बोलकी समान जो चिल्लाहटकीहै यदि लक्ष्मणनें उस बोलको सुनाहो ॥ ५ ॥ बस लक्ष्मणजी उस स्वरके सुन्तेही तुरत सीताजी करके भेजे जाकर सीताको छोडकर वह शीघ्रही हमारे निकट आवेंगे ॥ ६ ॥ निश्चयही राक्षसोंनें मिलकर जानकीके वध करनेंकी अभिलाषकीहै और इसी कारणसे राक्षस मारीचने सुवर्ण मृग रूप धारण करकै हमको आश्रमसे बहुत दूर किया ॥ ७ ॥ और हमको दूर लाकर फिर हमारे बाणसे घायल होकर लक्ष्मणकोभी यहां लानेंके लिये, हाय लक्ष्मण ! हम मारे गये ! यह कहकर उस राक्षसनें प्राण छोडे ॥ ८ ॥ इस शब्दको सुन लक्ष्मणभी तौ चलेही आये होंगे फिर जब वनमें आश्रम पर हम दोनों भाई नरहेंतौ कैसे कहैं कि मंगल होगा। कारण कि जनस्थानका नाश करनेंके कारण हमसे और राक्षसोंसे भारी वैरहै ॥ ९ ॥ और तिसपर यहां हमको घोर दुर्निमित्त दिखाई देतेहैं, आत्मवान श्रीरामचंद्रजीनें शृगालका शब्द सुनकर इस प्रकार चिन्ता करते २ ॥ १० ॥ लौटकर बडी शीघ्रतासे आश्रमकी ओर गमन करने लगे। मृग रूपी मारीच जो उनको आश्रमसे दूर ले आयाथा, इस कारण रामचंद्रजी जल्दीसेआश्रमको चले ॥ ११ ॥ और शंकित चित्त होकर श्रीरामचन्द्रजी आश्रममें पहुँचे तब सब मृग पक्षी गण इनके मनको उदास देखकर सब इनके निकट आये ॥ १२ ॥ वह सब मृग पक्षीगण उस कालमें रामचन्द्रजीकी बांई तरफ होकर कठोर स्वरसे शब्द करनें लगे उन महा घोर सब दुर्निमित्तोंको देखकर श्रीरामचन्द्रजीनें देखातौ॥ १३॥प्रभा हीन हुए लक्ष्मणजीचले आतेहैं देखते ही देखते लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीके निकट आ पहुँचे ॥ १४॥ रामचन्द्रजीको विषादित व दुःखित देखकर लक्ष्मणजीभी विषादित और दुःखित हुए। तब श्रीरामचन्द्रजी अपनें भ्राता लक्ष्मणजीकी निन्दा करनें लगे ॥ १५॥ क्योंकि

लक्ष्मणजी सीताजीको राक्षस सेवित सूने वनमें अकेली छोडकर आयेथे लक्ष्मणजीका बांयां हाथ पकडकर श्रीरामचन्द्रजी ॥ १६ ॥ आरतकी समान श्रवण कठोर परिणाम मधुर वचन कहने लगे कि—हे लक्ष्मण! तुम सीताजीको त्याग कर जो यहां चले आये हो, यह तुमनें अतीव निन्दा का कार्य किया है ॥१७॥ हे शुभदर्शन! तुमनें जो अकेला छोडा इस्से क्या सीताका भला होगा? कभी नहीं! हे वीर! जनककुमारी अब आश्रममें नहीं हैं इस बातमें हमको अब कुछ संशय नहीं होता ॥ १८ ॥ परग परग पर जिस प्रकारके अशकुन होरहे हैं इस्से यह ज्ञात होता है कि यातो सीताको कोई वनचारी राक्षस चुराकर ले गया या मारकर खा गया होगा ॥ १९ ॥ हे लक्ष्मण! जनक कुमारीजी सब प्रकारसे कुशल हैं, क्या हम ऐसा देख पावेंगे? हे पुरुषसिंह! क्या जानकी सब प्रकार कुशलसे जीती हैं ॥ २० ॥ हे महाबलवान्! यह मृग गण, शियार, और पक्षी गण सूर्यकी ओरको मुख करके महा भयंकर शब्द कर दशोंदिशा ओंको देखते हैं मानों इनमें आग लगी है। ऐसे अपशकुन देखकर किस प्रकार कह दें कि राजपुत्री सीताजी कुशलसे हैं? ॥ २१ ॥ यह मृग रूपी राक्षसभी हमको ललचाकर दूर ले आया, जिसको फिर हमनें बहुतही परीश्रम करके किसी भांति मार पाया मरनेंके समय उसनें निज राक्षस मूर्ति धारण की ॥ २२ ॥

मनश्चमेदीनमिहाप्रहृष्टंचक्षुश्चसव्यंकुरुतेविकारम् ॥
असंशयंलक्ष्मणनास्तिसीताहृतामृतावापथिवर्ततेवा २३

हमारा मनभी बहुतही दीन और घबडाया हुआ है; और बांईं आंखभी फडक रही है! हे लक्ष्मण! निसन्देह सीता आश्रममें नहीं, यातो उनको कोई हरण करके ले गया, या मार्गमें मरी पडी होंगी ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आर० "पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र" कृत भाषानुवादे सप्त पंचाशःसर्गः॥ ५७ ॥

अष्टपंचाशः सर्गः ॥

सदृष्ट्वालक्ष्मणंदीनंशून्यंदशरथात्मजः ॥

पर्यपृच्छतधर्मात्मावैदेहीमागतंविना ॥ १ ॥

लक्ष्मणजी महादीन और उदास मन हो रहेथे। उनको सीताके बिना आता हुआ देखकर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी पूछनें लगे ॥ १ ॥ हे लक्ष्मण! जब हम वनको आये और उस समय जो हमारेसाथही वनको आईथीं; और तुम जिनको छोडकर यहां आये हो; वह सीता कहां हैं? ॥ २ ॥ जब हम राज्यसे भ्रष्ट होकर दीन भावसे दंडकारण्यको आये, और उस समय जो हमारे दुःखमें सहाय हुई, वह तनुमध्यमा जानकीजी कहां हैं? ३॥ जिसके विना हम एक मुहूर्त भरभी प्राण धारण करने को उत्साही नहीं, वह देव कन्याकी समान प्राण सहाय जानकीजी कहां हैं? ॥ ४ ॥ हे लक्ष्मण! हम उन तपाये हुए सुवर्णको समान प्रभावाली जनकात्मजाके विना देवता, ओंकी प्रभुताई अथवा पृथ्वीकी रजाई लेनेंकीभी अभिलाषा नहीं करते॥५॥ हे वीर! हमारी प्राणोंसेभी प्यारी जानकी क्या अभीतक जीतीहैं, क्या हमने जो चौदह वर्ष तक वनमे रहनेकी प्रतिज्ञा की है यह मिथ्या तो नहोजाय ॥ ६ ॥ लक्ष्मण! सीताके लिये हमारे प्राण त्यागने पर और तुम्हारे अयोध्यामें लौट जानेपर कैकेयी क्या सफल मनोरथ और सुखी होगी॥७॥ कैकेयी इस प्रकार अपनें पुत्रकी राज्य प्राप्तिसे जब सिद्ध काम होगी, तब क्या मृतपुत्रा, दीना, तपस्विनी, हमारी माता कौशल्याजीको विनयके साथ उसकी सेवा करनी होगी ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मण ! वैदेही यदि जीवितहैं. तब तो हम फिर आश्रमको चलतेहैं, और वह शुद्ध चारिणी यदि परलोकमें चलीं गईहैं तो हमभी प्राण त्यागन करेंगे ॥ ९ ॥ जब हम आश्रममें पहुंचेंगे और सीता सन्मुख हँसकर यदि हमसे न बोलेंगी तवभी हम प्राण त्यागेंगे ॥ १० ॥ इस कारणसे हे लक्ष्मण ! तुम बताओ कि जानकी जीवितहैं ? अथवा तुम्हारी असावधानतासे उन तपस्विनी जानकीजीको राक्षसोंने तो नहीं भक्षण कर लिया ॥ ११ ॥ वैदेही जी सुकुमारीहैं, बालिकाहैं, और दुःख भोग करनेंके अयोग्यहैं, वह इस समय हमारे दुःखसे निश्चयही दुःखीहो सोच करके शोक करती होंगी ॥ १२ ॥ अतिशय दुरात्मा क्रूर निशाचर मारीचनें ऊंचे शब्दसे (हा लक्ष्मण!) कहकर सब प्रकारसे तुमको भय उत्पन्न करा दियाहै ॥ १३ ॥ मह

जानतेहैं कि हमारे बोलकी समान वह बोल जानकीजीनें सुनकर तुमको यहांपर भेजाहै और तुमभी हमारे देखनेंके लिये शीघ्रही यहांपर आये हो ॥ १४ ॥ तुमनें सीताजीको अकेला वनमें छोड यहां आकर बडा कष्टकर कार्य कियाहै। इस्से निर्दयी राक्षसोंको हमारे किये हुए अपकारका प्रतिकार करनेंको तुमनें अवसर दे दिया ॥ १५ ॥ खरको मार डालनेंसे मांस भोजी राक्षस गण बहुतही दुःखित होगयेहैं। उन घोर निशाचरोंने निश्चयही जानकीको मार डाला होगा इस्में सन्देह नहीं-है ॥ १६ ॥ हाय! शत्रुसूदन लक्ष्मण! हम सब भांतिसे विपदमें डूबे अब हम क्या करें? हमको शंका होतीहै कि यह विपद अवश्य होनहारहै ॥ १७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुमुखी जानकीके लिये इस प्रकार चिंता करके लक्ष्मणजीके सहित शीघ्रतासे जनस्थानमें आये ॥ १८ ॥ क्षुधा, श्रम, और प्यासके मारे रामचन्द्रजीका मुख सूख गयाथा, वह शोकित चित्तसे दीर्घ निश्वास त्याग करते लक्ष्मणजीकी आर्य भावसे निन्दा करते २ इस प्रकारसे आश्रममें आयकर देखा तो वहां सीता नहींहै वह आश्रम शून्य पडाहै ॥ १९ ॥

स्वमाश्रमंसप्रविगाह्यवीरोविहारदेशाननुसृत्यकांश्चित्॥
एतत्तदित्येवनवासभूमौप्रहृष्टरोमाव्यथितोबभूव ॥२०॥

जब सीताजीको न देखा तब श्रीरामचन्द्रजी आश्रममें प्रवेश करके सीताजीके खेलनेंके सब स्थान और वनवासके उठनें बैठनेंके स्थानमें ढूंढनें लगे, परन्तु वहांभी जनकनंदिनीको न पाया, तब श्रीरामचन्द्रजीनें जानकीजीके उठनें बैठनें और खेलनेंके स्थानोंको विसूर २ याद किया, याद करतेही उनके रोम खडे होगये और बहुत घबडाये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर० अष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमः सर्गः ॥

अथाश्रमादुपावृत्तमंतरारघुनंदनः ॥
परिपप्रच्छसौमित्रिंरामोदुःखादिदंवचः ॥ १ ॥

जब इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजीनें आश्रमके मार्गमें वचन कहे और वह लक्ष्मण कुछ न बोले तब फिर महादुःखीहो रामचन्द्रजी सुमित्राकुमारसे बोले ॥ १ ॥ भाई तुम कैसे सीताको छोड़कर यहां चले आये ? जबकि हम तुम्हारेही विश्वासपर सीताको वनके बीच छोड आयेहैं ॥ २ ॥ यह देखतेही कि तुम सीताजीको त्याग कर यहां आयेहो, हमारा मन जो महा अनिष्टकी शंका करकै व्यथित होताथा वह हमारी शंका सत्यही सत्य हुई ॥ ३ ॥ तुमको मार्गमें दूरसेही जानकीके विन अकेला आता देखकर हमारा, वामकर, वामनेत्र और हृदयका वायांभाग फड़कने लगा ॥ ४ ॥ शुभलक्षण युक्त लक्ष्मणजी रामचन्द्रजीकी यह वार्ता सुन महा दुःखित हो श्रीरामचन्द्रजीसे बोले॥५॥हम आप अपनी इच्छानुसार सीताजीको त्याग करकै यहां नहीं आये वरन उनके पठाये हुयेही आपके निकट आयेहैं॥६॥ आपके बोलकी समान बोल बनाकर जो किसीनें (हमें बचाओ) कहकर भय और व्याकुलताके स्वरसे जो चीत्कार कियाथा, सो वही चिल्लाहट जानकीजीके श्रवण गोचर हुई ॥ ७ ॥ उन्होनें लक्ष्मण हमें बचाओ वह करुणाका बोल सुनकर भयसे विकलहो आपके स्नेहके वशके मारे रोते२ हमसे यह कहना आरंभ किया कि शीघ्र जाओ ॥ ८ ॥ वह वारंवार हमसे जानेको कहनें लगीं, तब हमनें उनको विश्वास दिलानेंके लिये यह वार्ता कही ॥ ९ ॥ हम ऐसा किसी राक्षसको नहीं देखते जो श्रीरामचंद्रजीको भय उपजासके, इस्से यह करुणाका वचन रामचंद्रजीका नहीं, वरन यह वचन किसी राक्षसनें वा और किसीनें कहा होगा इस कारण आप वेखटके रहें ॥ १० ॥ हे सीते! जो देवताओंकीभी रक्षा कर सकतेहैं, वह श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी "हमको बचाओ" यह नीच जनोचित वार्ता किस प्रकारसे कह सकतेहैं ॥ ११ ॥ इस कारणसे किसीने किसी कारण वश रामचंद्रजीके बोलसा बोल बनाकर "लक्ष्मण हमको बचाओ" यह कह व्याकुल स्वरसे चिल्लाहट कीहै इसमें कुछभी सन्देह नहींहै ॥ १२ ॥ हे शोभने! किसी राक्षसनें त्रासके मारे "बचाओ" यह शब्द कियाहै । इस्से आप नीच स्त्रीजनोचित मनो वेदना त्याग कर दीजिये ॥ १३ ॥ व्याकुल होनेंकी कोई आवश्यकता नहीं, नघबडानेका कुछ प्रयोजन, इस बातका विचार आप छोडें, क्योंकि लोकमें ऐसा कोई पुरुष नहींहै जो संग्राममें श्रीरघुनंदन

रामचंद्रजीको ॥ १४ ॥ जीतसकै आजके समयही क्या वरन कभी ऐसा नहीं हुआ और न आगेको होगा; श्रीरामचंद्रजीको तौ संग्राममें इन्द्रादि देवताभी नहीं जीत सकते ॥ १५ ॥ मोहितचित्त वैदेहीजीने हमारे यह बचन सुन आँसू त्यागकर रोतेर हमको यह दारुण वचन कहे ॥ १६ ॥ कि हमारे प्रति तुम्हारा अत्यन्त पाप भाव स्थापित हुआहै, परन्तु भ्राताके विनष्ट होनेपर तुम किसी भांतिसे हमको प्राप्त नहीं कर सकोगे ॥ १७ ॥ हम समझीं कि तुम भरतके गुप्त भावसे पठाये श्रीरामचंद्रजीके साथ आये हो इसीसे रामचंद्रजीका आरत नाद करना सुन करभी तुम उनकी सहायतार्थ नहीं जाते ॥ १८ ॥ अथवा तुम हमारे गुप्त शत्रुहो, हमारेही लेलेनेके लिये रामचंद्रजीके पीछेर वनमें फिरतेहो और सर्वदा अवसर ढूंढतेहो कि कब रामचंद्र कहींको जाँय, और हम इनको ग्रहण करें इस कारणसे तुम उनकी सहायता करनेके लिये नहीं जाते ॥ १९ ॥ जब वैदेहीजीनें इस प्रकार कहा, तब अति क्रोधके मारे हमारे नेत्र लाल हो आये, रोषमें भरकर अधर फडकने लगे और हम तैसेही आश्रमसे चल खडे हुए ॥२०॥ जब लक्ष्मणजीनें इस प्रकारसे कहना आरंभ किया, तब रामचंद्रजी शोकसे मोहित होकर उनसे बोले, कि हे सौम्य! तुमजो जानकीको छोडकर यहां चले आये यह अतिशय दुष्कर कर्म हुआ ॥ २१ ॥ देखो, राक्षसोंका बल निवारण करनेकी हममें विलक्षण सामर्थ्य है उसको जानबूझ करभी तुम जानकीके यह क्रोध वचन सुन आश्रमसे बाहर चले आये ॥ २२ ॥ एक तौ स्त्री, दूसरे क्रोधित, ऐसी जानकीके कठोर वचनोंसे तुमभी उनको छोडकर यहां पर चले आये इससे हम तुम्हारे ऊपर प्रसन्न नहीं हुए॥२३॥ तुमनें सीताके वचन सुन क्रोधके वशहो हमारी आज्ञाका उल्लंघन किया इस्से तुम्हारा यह कार्य बहुतही निन्दनीय हुआहै ॥ २४ ॥ देखो! यह राक्षसजो मृग बनकर हमको आश्रमसे दूर तक लायाहै वह हमारे बाणसे मरा हुआ पडाहै॥ २५ ॥ हमनें धनुष चढा खेंच उस पर बाण चढा लीलासेही एक बाणका इसके ऊपर प्रहार किया जिस बाणके लगनेसे इस राक्षसने मृग तनु छोड विकल स्वरकर बाजू पहरे हुये निशाचरका शरीर धारण कियाहै ॥ २६ ॥

शराहतेनैवतदार्तयागिरास्वरंममालंव्यसुदूरसुश्रवम् ॥
उपाहृतंतद्वचनंसुदारुणंस्वमागतोयेनविहायमैथिलीम् २७॥

उसकाल हमारे बाणसे घायल होकर दूरसेही श्रवण गोचरहो इस प्रकारका हमारा बोल बनाकर इस राक्षसके दारुण आर्त्तनाद करनेसे तुम उसको सुन इस समय जानकीको छोडकर यहां आयेहो ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकोनषष्टितमःसर्गः ५

षष्टितमः सर्गः ॥

भृशमाव्रजमानस्यतस्याधोवामलोचनम् ॥
प्रास्फुरच्चास्खलद्रामोवेपथुश्चास्यजायते ॥ १ ॥

आश्रममें आनेके समय श्रीरामचंद्रजीके वामनेत्रके नीचेका भाग अत्यन्तही फडकनेंलगा, परग २ पर चरण फिसलता, और शरीर कांपरहाथा ॥ इन अपशकुनोंका यह प्रभावहै कि जिस कार्यके लिये जाओ उसकी सिद्धि नहींहोती ॥ १ ॥ श्रीरामचंद्रजी वारंवार अपशकुन होते देखकर आपही कहनेंलगे कि जनें सीता कुशलसेंहैं अथवा नहीं॥ २ ॥ यह सोचते विचारते सीताके दर्शनकरनेंकी लालसासे शीघ्र २ चलकर देखतेहुए कि आश्रम सूनापडाहै यह देखकर श्रीरामचंद्रजी बहुत उकसाये॥ ३ ॥वह वेग सहित इधर उधर भुजायें चला और घूमकर समस्त पर्ण शालाके स्थान २ करकै खोजनेलगे ॥ ४ ॥ रामचंद्रजीनें पर्णशालामें गमन करकै देखाकि वहां सीता नहींहैं जानकी बिन हेमंतऋतुके समागम से ध्वस्तपद्मिनीकी समान हो पर्णशाला अत्यन्त श्री विहीन अवस्थामें पडीथी ॥ ५ ॥ बन देवतागण आश्रमको श्रीभ्रष्ट और विध्वस्त देखकर एकवारही छोडकर चलेगये आश्रमके मृग पक्षी और समस्त पुष्पभी मलीन होगयेथे, वहांपरके वृक्ष मानों रोरहेथे ॥ ६ ॥ मृगचर्म और कुश इधर उधर पडे और कुशासन छिन्नभिन्न और गिरे पडेथे, पर्णशालाकी ऐसी अवस्था देखकर श्रीरामचंद्रजी वारंवार यह कहकर विलाप करनें लगे ॥ ७ ॥ कि निश्चय जानकी हरीगई वा मृतक होगई, अथवा किसी करकै भक्षण करडालीगई, या वह डरपोक स्वभाववाली छिप रहींहैं या

वनमें चली गईहैं ॥८॥ अथवा वह फूल फल चुननेंके लिये कहीं वनमें गई हैं वा जल लानेकेलिये सरोवर वा नदीपर गई होंगी ॥ ९ ॥ श्रीरामचंद्र जीने यत्नपूर्वक ढूंढने भालने परभी वनके बीच प्रियाको कहीं नपाया, तब शोकके मारे उनके नेत्र लाल २होगये उससमय वह उन्मत्तोंकी समान फिरनेलगे ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजी शोकके समुद्रमें डूबकर एक वृक्षसे दूसरे वृक्षके नीचे दौडकर जानेलगे और विलाप करते २ नद नदी और पर्वतोंपर घूमनेलगे ॥ ११ ॥ अनन्तर श्रीरामचंद्रजी उन्मत्तकी समान कदम्बादि वृक्षोंसे सीताजीको पूछनें लगे कि हे कदम्ब! तुमने उन कदम्बप्रिया हमारी प्राणप्यारी जानकीको देखाहै? यदि देखाहो तौं उन शुभाननाकी वार्त्ता हमसे कहो॥ १२ ॥ हे बिल्व? वह बिल्वसदृश स्तनवाली पल्लव समान कान्तियुक्त पीले रेशमीन वस्त्र धारणकिये सीताको यदि तुमने देखाहो तो बताओ ॥ १३ ॥ अथवा हे अर्ज्जुन! प्रिया तुमको अतिशय चाहतीथी,सो वह क्षीणाङ्गी जनककुमारी जीवितहैं या नहीं सो बताओ १४॥ अथवा यह ककुभवृक्ष ककुभके समान जांघवाली सीताको निश्चयही जानताहोगा. क्योंकि इस वृक्षपर लता पुष्पफल सबही लगेहैं ❋ ॥ १५ ॥ और भ्रमरगणोंके संगीत रवसे परिपूर्ण शोभा पारहाहै । हे वनस्पति! तुम सब वृक्षोंमें प्रधानहो । और जानकीभी सब रमणीयोंमें श्रेष्ठहैं अतएव वह कहांहैं सो बताओ, ❋ अथवा प्रिया तिलक पुष्पको बहुत प्यार करतीथी इससे यह तिलक वृक्ष निश्चयही उनके वृत्तान्तको जानता होगा ॥ १६ ॥ हे अशोक ! तुम शोकको दूर किया करतेहो, इससे शोकसे हत चित्त मुझको प्रियाके साथ मिलाकर अपनें नामको सार्थक करो ॥ १७ ॥ हे ताल ! यदि तुमने उन पकतालकी समान स्तनवाली जानकीको देखाहै और हमारे ऊपर कुछभी दया करतेहो तब वह वरारोहा सीता कहांहै ? सो हमको बतादो ॥ १८ ॥ हे जामुन ! यदि जाम्बूनद सुवर्ण सम प्रभावाली हमारी प्रियाको तुमनें देखाहै तौ निःशंक

❋रागनी झंझौटी तालएक ताला।सीता बिनु देख कुटी सोचत्त रघुराई।।आस्ताई।।लक्ष्मण तुम कहा कीन इकली सिय छांडदीन निश्चर कोइ दाओचीन्ह लेगयो उडाई ॥ १ ॥ सियबिन व्याकुल शरीर मनना तनक धरतधीर पीर कौन हरै नीरद्रगचले वहाई ॥ २ ॥ प्रेमविवस राम भये द्रुमलतासों पूछनगये सोकबिवस बोलत्त नहिं सबरहे मुरझाई ॥ ३ ॥ आगे गृद्ध भेटभई ताने सकल बातकही तेहि का प्रभु मोक्षदई नारद बलिजाई ॥ ४ ॥

चित्तसे बताओ ॥ १९ ॥ हे कर्णिकार ! आज तुम पुष्पित होकर अत्यन्त शोभा पारहे हो और हमारी प्रियाभी तुमसे बहुतही स्नेह करतींथीं सो यदि कहीं उन साध्वीको देखाहो तौ कहो ॥ २० ॥ इसी प्रकार आम, नीम, महाशाल, कटहल, व अनारको देख २ कर श्रीरामचंद्रजी उनसे कहतेथे ॥ २१ ॥ और बकुल, पुन्नाग, चन्दन, केतकी आदि और वृक्षोंके नीचे २ जाकर भ्रान्त चित्तहो उन्मत्तकी समान श्रीरामचंद्रजी वनमें विचरने लगे ॥ २२ ॥ तिसके पीछें श्रीरामचंद्रजी मृग इत्यादि पशुओंसे पूछते हुए बोले कि, हे मृग ! तुम क्या उन मृगछौनाकीसी आंखोंवाली सीताका कुछ वृत्तान्त जान्तेहो ? अथवा वह मृगलोचना मृगीगणों-के साथ मिलकर घूमती होंगी ॥ २३ ॥ हे गज ! तुम्हारीही शूं-ड समान आकार वाली उनकी जांघेंहै, यदि तुमनें उनको देखाहो तौ कहो ? इस्से हे गजराज ! हमें बतादो कि वह कहांहै ? ॥ २४ ॥ हे शार्दूल ! उन चंद्र वदना हमारी प्यारी मैथिलीको यदि देखाहो तो हमारा विश्वास करकै हमें बतादो ! तुमको कुछ भय नहींहै अर्थात् तुम इस बातसे नडरो, कि हम तुम्हें मार डालेंगे ॥ २५ ॥ हे प्रिये ! हे कमलेक्षणे ! तुम अब क्यों दौडी जातीहो ? हमने अब निश्चयही तुमको देख लियाहै तुम किस कारणसे इन वृक्षोंके मध्यमें छिप कर हमसे नहीं बोलती हो ? ॥ २६ ॥ हे वरारोहे ! हम वारंवार कहतेहैं कि तुम खडी रहो, व इधर उधर दौडती न फिरो, क्या हमारे ऊपर तुमको दया नहीं आती ? तुमतो कभो हमारे साथ इतना उपहास नहीं करती थी ॥ २७ ॥ हे वरवर्णिनी ! हमने तुम्हारे पीले रेशमीन वस्त्र देखकर तुमको पहचान लिया है, और यहभी हम देख रहेहैं कि तुम भागही रहीहो इस्से यदि तुम कुछ प्रेम हमारे साथ रखतीहो तौ लौट आओ और भागती न फिरो ॥ २८ ॥ अथवा हे चारुहासिनी ! हमनें जिसको देखाहै वह तुम नहींहो, तुमको तो निश्चयही किसीनें मारडाला, यदि ऐसा नहोता तो इस दारुण क्लेशके समयभी क्या तुमभी हमको छोड सकतीहो ॥ २९॥ साफ मालूम होताहै कि मांस खानें वाले राक्षसोंनें हमारा वियोग पाई हुई हमारी प्रियाके अंगोंको खंड २ करके खा लिया ॥ ३० ॥ अहो ! इनका वह मनोहर दांत वाला, श्रेष्ठ नासिका युक्त, शुभकुंडलसमन्वित, पूर्ण

चंद्रमाकी समान वदन राक्षसों करके ग्रस्त होजानें पर निश्चयही प्रभाही-न होगया होगा ॥ ३१ ॥ उनकी कोमल गरदन हार आदि भूषणोंसे भूषित जिसके वर्णकी ज्योति चंदनकी समान चिकनी और विशदहै-सो राक्षसोंनें ऐसी मनोहर गरदनकोभी खा डाला, राक्षसोंनें जब हमारी प्रियाको भक्षण किया होगा, तो न जानें उन्होंनें कितना विलाप किया होगा ॥ ३२ ॥ उनकी दोनों बाँहैं पल्लवकी समान कोमल और हाथोंके गहनोंसे सुशोभितहैं निश्चयही राक्षसोंनें इधर उधर फेंक फांक कर उनको खालिया उस कालमें उन दोनों बाहोंका अग्रभाग अवश्य कंपित हुआ होगा ॥ ३३ ॥ हाय ! हम क्या राक्षसोंके भोजनार्थ ही उनको आश्रममें अकेला छोडकर यहां आयेथे इस्सेही वह बन्धु बान्धव युक्त हो-करभी राक्षसोंके पेटमें पड गईं और कोई बन्धु बान्धव काम न आया॥३४॥ हे लक्ष्मण ! क्या तुमनें प्राणप्यारीको कहीं देखाहै ? हा प्रिया ! हासीते अहा भद्रे! तुम कहां गईं इन शब्दोंको रामचंद्रजी वार २ कहतेथे॥३५॥इस प्रकार वारंवार विलाप करते२रामचंद्रजी वन२में वेग सहित घूमनें लगे कहीं ठोकर खाकर गिर पडते और कभी२ दिशा विदिशाओंमें घूमनें लगते॥३६॥ कभी रामचंद्रजी उन्मत्तकी समान दृष्टि आते कभी२प्रियाके ढूंढनें में तत्पर होकर वेग सहित नदी पर्वत झरनें और समस्त वनोंमें भ्रमण करने लगे ३७॥

तदासगत्वाविपुलंमहद्वनंपरीत्यसर्वंत्वथमैथिलींप्रति ॥
अनिष्ठिताशःसचकारमार्गणेपुनःप्रियायाःपरमंपरिश्रमम्

उस समय श्रीरामचन्द्रजी स्थिर होकर कहीं भी न रह सकते।और एक महा वनमें प्रवेश करके उसमें चारों ओर जानकीजीको एक २ वृक्ष और एक२ स्थल ढूंढने परभी रामचन्द्रजीका अभिलाष पूर्ण नहीं हुआ । परन्तु वह फिरभी प्यारी सुकुमारी जनकदुलारीकी खोज करनेमें परिश्रम करने लगे ॥ ३८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आ० आर० षष्टितमः सर्गः६० ॥

एकषष्टितमःसर्गः

दृष्ट्वाश्रमपदंशून्यंरामोदशरथात्मजः ॥
रहितांपर्णशालांचप्रविद्धान्यासनानिच ॥ १ ॥

इस प्रकार ढूंढते भालते श्रीरामचन्द्रजी फिर आश्रममें आये तो देखा कि शून्य पडा है, पर्णशालामें कोई नहीं है आसन भी सब इधर उधर पडे हैं ॥ १ ॥ सब ओर वहां पर देख और वैदेहीजीको न पाकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके दोनों हाथ पकड रोकर बोले ॥ २ ॥ हे लक्ष्मण! सीता कहां हैं? इस आश्रमसे किस स्थानको चली गई हैं? हे सौमित्र! प्रियाको किसनें हरण किया, वा भक्षण किया? ॥ ३ ॥ हे सीते! यदि वृक्षकी आडमें छिपी रहकर तुम्हें उपहास करनेंकी इच्छा हुई हो, तब तो जितना चाहियेथा उतना उपहास होगया, अब अधिक न सताओ । देखो! हम महादुःखके पडनेंसे व्याकुल होरहे हैं सो इस समय आनकर तुम शीघ्र हमको धीरजदो, और समझाओ ॥ ४ ॥ हे सौम्य! तुम जो इन सब विश्वासी मृगछौनोंके सहित खेल करतीथीं सो इस समय यह सब तुम्हारे बिना नेत्रोंसे अश्रुजल भरे चिंता कर रहे हैं ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मण! सीताके विरहमें हम कभी जीवन धारण नहीं कर सकते, उनके हर जानेंसे उत्पन्न हुए घोरतर शोकनें हमको ढक लिया है ॥ ६ ॥ पितृदेव महाराज दशरथजीको निश्चयही हम परलोकमें मिलेंगे, और वह निश्चयही हमसे यह कहेंगे कि हे राम! हमनें तो तुमको प्रतिज्ञा पूर्ण करनेंको कहाथा, और तुमनेभी स्वीकार कियाथा, कि हम चौदह वर्ष वनमें बसेंगे॥ ७ ॥ सो तुम उस प्रतिज्ञाको पूर्ण बिना कियेही इस समय कैसे यहां पर आये? तुम स्वेच्छाचारी, मिथ्यावादी, और नीचता युक्त तुमको ॥ ८ ॥ धिक्कार है! सो निश्चयही इस प्रकारके वचन पिताजी हमें कहेंगे, विवश शोकसे व्याकुल, दीन और मनोरथ टूटे हुए ॥ ९ ॥ व दया करनेंके योग्य हमको यहां छोड कहां जातीहो? जिस प्रकार कुटिल मनुष्यको कीर्ति छोड देती है । हे वरारोहे! हे सुमध्यमे! तुम हमको न छोडो ॥ १० ॥ हम तुम्हारे विरहमें अपना जीवन परित्याग करेंगे श्रीरामचन्द्रजी सीता के दर्शनाभिलाषी होकर इस प्रकार विलाप करनें लगे ॥ ११ ॥ परन्तु दुःखसे आरत हुए उन्होंने जानकीजीको न देखा; इस कारण वह जानकीके शोकमें निमग्न होकर ॥ १२ ॥ अतीव दलदलमें फँसे हुए महा गजकी समान बहुतही व्याकुल होगये । रामचन्द्रजीकी यह दशा देख लक्ष्मणजी उनके हितकी कामनासे कहनें लगे ॥ १३ ॥ हे महाद्युतिमान्

आप विषाद न कीजिये। हमारे साथ यत्न कीजिये तब अवश्यही सीताका दर्शन मिलैगा। हे वीर! यह बहुत कन्दराओंसे शोभित गिरिवर जो है और इस वनमें घूमना जानकीजीको बहुत प्यारा है, क्योंकि वनको देख वह सदा मत्त हो जातीथीं सो क्या अचरजहै कि वह वन देखनें न चली गईहों अथवा कोई पुष्प शोभित कमल युक्त तलैयां देखनें गई हों ॥ १४ ॥ १५ ॥ अथवा मत्स्ययुक्त वेतसनामक विहंगसेवित नदीपर तौ न चली गई हों अथवा हम तुमको त्रासित करनेंकी कामनासे इस वनके किसी स्थानमें तो न छिप रहीं हों ॥ १६ ॥ हे पुरुषसिंह! वह यह जाननेंके लिये बनमें लुकाई हैं कि, हम वा आप किस प्रकारसे उनको खोजकर पालेंगे, सो हमको चाहिये कि उनके खोजनेंका अवश्य यत्न करें ॥ १७ ॥ हे काकुत्स्थ! आपतोभी यह मानते हों कि जानकी इसी वनमें हैं तब तौ इस वनके सबही आश्रमोंमें खोजेंगे, अब शोक न कीजिये ॥ १८ ॥ जब सौहार्दिके वश होकर लक्ष्मणजीनें इस प्रकार कहा तब रामचन्द्रजी सावधान चित्त होकर लक्ष्मणजीको संग ले ढूंढनें लगे ॥१९॥ वन,गिरि,तलाव, एक२करके दोनों भाइयोंनें सीताको ढूंढनेंके लिये छाने ॥ २० ॥ फिर उन पर्वतोंके कंगूरों,चटान,व शिखर, सब रत्ती२खोजे पर जानकीजीके दर्शन न हुए॥२१॥ उस कालमें समस्त पर्वतको ढूंढ भालकर श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीसे बोले कि हे भाई! इस पर्वत पर प्यारी जनकदुलारी तौ दृष्टि नहीं आतीं ॥ २२ ॥ लक्ष्मणजी समस्त दंडकारण्य में विचरण करते हुए भी जानकीजीको न पाकर दुःखसे संतप्त हो प्रदीप्त तेजवाले अपने भ्राता रामचंद्रजी से बोले ॥ २३ ॥ कि महाबलवान् विष्णु जीने जिसप्रकार बलियोंको बांधकर इस पृथ्वीको प्राप्त कियाथा हे बुद्धिमान्! आपभी वैसेही जनक कुमारी सीताजीको पामेंगे ॥ २४ ॥ वीर लक्ष्मणजीके यह वचन सुन दुःखसे चित्त हरे हुये श्रीरामचंद्रजी अतिदीनतासे बोले ॥ २५ ॥ हे महा बुद्धिमान्! सारा वन खिले हुये कमल कमलाकरसरोवर बहुत सारी कन्दराओंसे युक्त बहुत झरनोंसे सुशोभित यह पर्वत जरा २ करके देखा व ढूंढा तथापि प्राणोंसे भी बहुत भारी प्यारी जानकीजीके दर्शन हमने न पाये ॥ २६ ॥ सीताजीके हरणसे संतापितहो श्रीरामचंद्रजी शोकसे दुःखी और व्याकुल होकर इस प्रकार विलाप करते२एक मुहूर्त्त भर तक

रामचंद्रजी विह्वल होरहे ॥ २७ ॥ वह बुद्धिहीन और चैतन्य रहित हो गये और सर्व शरीर विह्वल होगया इस प्रकार श्रीरामचंद्रजी अतिशय व्याकुल और स्पन्दनाहीन होकर गरम लंबे २ श्वासलेकर विलाप करनें लगे ॥ २८ ॥ इसके पश्चात् राजीवलोचन श्रीरामचंद्रजीनें वारंवार श्वास ले हाप्रिये! ऐसा कह गद्गद हो आंसूभर बडे शब्दसे रोदन करना आरंभ किया ॥ २९ ॥

अनादृत्यतुतद्वाक्यंलक्ष्मणोष्ठपुटच्युतम् ॥
अपश्यंस्तांप्रियांसीतांप्राक्रोशत्सपुनःपुनः ॥ ३० ॥

रामचंद्रजीको देखकर उनके प्रिय भ्राता लक्ष्मणजी शोकसे आरत हो विनय सहित हाथ जोड उनको समझाने बुझाने लगे। परन्तु श्रीरामचंद्रजी उनके मुखसे निकले हुए वचनोंको अनादर करके प्रियतमा सीताजीके अदर्शनसे वारंवार रोदन करनें लगे ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकषष्टितमः सर्गः ॥ ६१ ॥

द्विषष्टितमः सर्गः ॥

सीतामपश्यन्धर्मात्माशोकोपहतचेतनः ॥
विललापमहाबाहूरामःकमललोचनः ॥ १ ॥

महाबाहु धर्मात्मा कमललोचन श्रीरामचंद्रजी सीताजीके दर्शन ना पाकरके शोकके मारे चेतना रहित हो विलाप करने लगे ॥ १ ॥ वह सीताजीके दर्शन ना पाकरभी, मानों उनको देखही रहे हैं इस भाव करकै कामबाणसे पीडितहो विलाप युक्त दुःखके साने वचन कहने लगे ॥ २ ॥ हे प्रिये! तुम पुष्पोंको अतिशय प्यार करती हो सो इस समय अशोक शाखा समूह द्वारा अपना शरीर ढक कर हमारे शोकको अतिशय बढाती हो ॥ ३ ॥ हे देवि! तुम्हारी दोनों जांघें केलेके खंभकी सदृश हैं तुमनें उनको कदलीसे छिपा रक्खाहै सो हम उनको देख रहेहैं तुम अब उनको नहीं छिपा सकतीहो ॥ ४ ॥ हे भद्रे! तुम हँसते २ कर्णिकारके वनमें प्रवेश करतीहो, परन्तु हमको पीडन करकै और अधिक उपहास करनेंका प्रयोजन नहींहै ॥ ५ ॥ विशेष करकै आश्रमके स्थानमें परि-

हास करना अच्छा नहीं होता, हे प्रिये! यह तौ हम जानतेहैं कि स्वभावसे ही तुम परिहासप्रियहो ॥ ६ ॥ परन्तु हे विशालाक्षी! यह पर्णशाला शूनी पडीहै इस कारण आओ। हे लक्ष्मण! निश्चय होताहै कि. सीताको राक्षसोंनें भक्षण कर लिया. अथवा वह उनको हरण करके लेगये ॥ ७ ॥ इसी कारण वह हमको विलाप करते हुए देख कर भी हमारे निकट नहीं आतीं; हे लक्ष्मण! इस पर ये मृग यूथ गण रोदन करते हैं ॥८॥ यह भी मानों यही कह रहे हैं कि राक्षसोंनें सीताका भक्षण कर लिया। हा अच्छेशीलवाली साधवि! हा वरवर्णिनी सुमुखि! हा आर्या! तुम कहां गई हो ॥ ९ ॥ अब सीताकरकै रहित देशको गमन करना पडेगा, इतने दिनोंके पीछे कैकेयीदेवी सफल मनोरथ हुई क्योंकि अब वह देखेंगी कि सीता सहित गयेथे। और आये सीता रहित! ॥ १० ॥ किस प्रकारसे हम सीता रहित अपनें रनवासमें प्रवेश करेंगे? सब लोग हमको वीर्य रहित और निर्दयी कह कर निन्दा करेंगे॥११॥सीताजीके विना संग होनेंसे निश्चय ही हमको कातरता प्राप्त हो जायगी, कारण कि जब हम वनवास करकै घरको लौटेंगे और उस समय मिथिलानाथ जनकजी॥१२॥कुशल पूछैंगे तौ किस प्रकार हम उनको अवलोकन करनेंमें समर्थ होंगे? विदेहराज निश्चय हमको विना सीताके देखकर ॥ १३ ॥ अपनी पुत्री जानकीके विनाशसे संतप्तहो मोहके वश हो जांयगे ॥ पिता दशरथजीही धन्यहैं!क्योंकि वे स्वर्गमें वास करतेहैं।अथवा अब हम भरतकी पालित अयोध्यापुरीको न जांयगे॥१४॥अयोध्याकी बात तौ एक ओर रही सीताके विना तौ हम स्वर्गकोभी शून्य समझतेहैं इस कारण हे लक्ष्मण; तुम अब हमको इस वनमें छोडकर अयोध्याको चले जाओ ॥ १५ ॥ हम जानकीके विना किसी प्रकारभी जीवन धारण करनेंको समर्थ नहींहैं। तुम हमारी ओरसे भली भांति भरतजीको गाढ आलिंगन कर कहना ॥ १६॥ कि रामचंद्रजीने यह आज्ञाकीहै कि तुमही इस राज्यका पालन करो ॥ हेविभो! माता कैकेयी व सुमित्रा अपनी मातासे ॥ १७ ॥ और कौशल्याजीसे इनमेंसे प्रत्येकको हमारी आज्ञानुसार यथायोग्य तुम प्रणाम कह देना। और सदा नीके वचनोंसे समझा बुझाकर यत्न सहित उनकी रक्षाभी करते रहना ॥ १८ ॥ हे शत्रुके मारनेवाले! और सब माता-

ओंसे सीताजीके व हमारे विनाशका वृत्तान्तभी विस्तार सहित तुम निवेदन कर देना ॥ १९ ॥

इतिविलपतिराघवेतुदीनेवनमुपगम्यतयाविना सुकेश्या ॥ भयविकलमुखस्तुलक्ष्मणोऽपिव्य थितमनाभृशमातुरोबभूव ॥ २० ॥

श्रीरामचंद्रजी सुकेशी सीताके विरहमें महा व्याकुल होकर इस प्रकारसे विलाप करने लगे। तब भयके मारे लक्ष्मणजीका मुख पीला पडगया मन व्यथित हुआ और वह बहुतही आतुर होगये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्य कांडे द्विषष्टितमःसर्गः६२॥

त्रिषष्टितमः सर्गः ॥

सराजपुत्रःप्रिययाविहीनःशोकेनमोहेनचपीड्यमानः ॥ विषादयन्भ्रातरमार्तरूपोभूयोविषादंप्रविवेशतीव्रम् ॥१॥

राजकुमार श्रीरामचंद्रजी प्रियाविहीनहो शोक मोहसे आतुर होनेंके कारण लक्ष्मणजीको विषाद उत्पन्न कराते हुए आपभी बडे तीव्र विषादको प्राप्त हुए ॥ १ ॥ तिसके पीछे वह विपुल शोकमें डूबकर लंबे२ श्वास लेते हुये, रोते२ शोकसे घिरे हुए लक्ष्मणजीको उपस्थित विपदके अनुरूप वचन कहने लगे. ॥ २ ॥ हम समझतेहैं कि हमारी समान बुरे कर्म करनेवाला दूसरा पुरुष पृथ्वीपर और नहींहै, देखो एकके पीछे एक इस प्रकार लगा तार शोक इकट्ठे होकर हमारे मन और हृदयको वेधे डालतेहैं ॥ ३ ॥ पहले जन्ममें हमनें इच्छानुसार वारंवार बहुत सारे पाप कर्म कियेहैं आज उनका फल मिलरहाहै। इसीकारण हमारे ऊपर दुःखके ऊपर दुःख पड रहेहैं ॥४॥ राज्यका नाश होना, पिताजीका मरना, माताजीका वियोग होना, और बन्धु बान्धवोंसे छूटना, यह सब बातें जब याद आतीहैं तो हमारे शोकके वेगको परिपूर्ण कर देतीहैं ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मण! वनमें आकर सीताके साथ रहनेंसे वह सब दुःखही छूट गयेथे वरन शरीरको क्लेशका नाम नहीं जान पडताथा, परन्तु आज जानकीके वियोगसे, काष्ठके संयोगसे सहसा प्रदीप्त हुई अग्निकी समान वही दुःख फिर

प्रबल होगयेहैं ॥ ६ ॥ निश्चयही कोई राक्षस उन भीरुस्वभाववाली आर्या सीताको आकाशमार्गसे आय हरण करके लेगयाहै! हाय! इसमें कोई सन्देह नहींहै । कि उस समय उन सुन्दर बोलनेंवालीनें भयके विवशहो विकृतस्वरसे वारंवार रोदन किया होगा ॥ ७ ॥ सुंदर सदाही लाल चंदन लगानेंके योग्य हमारी प्रियाके दोनों सुन्दर कुच निश्चयही राक्षसोंनें भक्षण करनेंके समय उनमें रुधिर लगादिया होगा जिस्से वह शोभित नहीं होतेहोंगे हाय इतने परभी हमारे प्राण नहीं जाते ॥ ८ ॥ अब हम इस शरीरसे उनको न भेट सकेंगे । उनका मुखमंडल घूंघरवाले-के बीचमें शोभित, और सुन्दर,सुमधुर सुकोमल, और साफ चिकना सँवाराहुआहै, सो जानकीको राक्षसके वश होनेसे राहुमुखमें ग्रसेहुये चंद्रमाकी समान निश्चय उस मुखकी अब सब सुंदरताई अलगहोगई होगी ॥ ९ ॥ पतिव्रतप्रियाकी वह सुन्दर गरदन सदाही हारके गुच्छोंसे भूषित रहतीथी. सो रुधिरपान करनेंवाले राक्षसोंने शूनेमें पाकर निश्चयही उसको भेदकर रुधिरपान कियाहोगा ॥ १० ॥ हमारे न होनेपर निर्जन वनमें राक्षसोंने चारों ओरसे घेरकर जब उनको खेंचना आरंभ कियाहोगा; तौ उससमय वह रुधिर और बडे नेत्रवाली सीताने निश्चयही हरिणीकी समान विलाप कियाहोगा ॥ ११ ॥ हे लक्ष्मण! हम व हँसमुख उदारस्वभाववाली सीता प्रथम हमारे साथ इस शिलातल पर तुम्हारे निकट बैठकर हँसते २ तुमसे कितनी बातें कहतीथीं ॥ १२ ॥ यह नदियोंमें श्रेष्ठ गोदावरीहै, जो हमारी प्रियाको सर्वदाही बहुत प्यारीथी, सो हमारे मनमें यह बातभी आतीहै कि कदाचित् वह इस नदीके तीरपर चली गईहो । परन्तु नहीं वह अकेली यहांपर कभी नहीं आतीथीं ॥ १३ ॥ तब क्या वह कमल दलके समान नेत्रवाली कमलमुखी जानकी कमल लेनेंको चली गईहैं यहभी किसी प्रकार ठीक नहीं हो सकता; क्योंकि वह कभी हमारे विना कमल लेनें नहीं जातीथीं ॥ १४ ॥ अथवा वह इस पुष्पित वृक्ष समूह शोभित अनेक जातिके विहंगमोंसे पूर्ण यह वन अपनी इच्छानुसार देखनेंको गईहैं यहभी बात किसी भांति संभव नहीं हो सकती; क्योंकि उनका डरपोक स्वभावहै अकेली वनके मध्य प्रवेश करनेंसे वह बहुत डरतींथीं ॥ १५ ॥ हे भगवन् ! सूर्य ! आप सबके कृता कृतको जानतेहैं,

और सत्य मिथ्या सबके साक्षीभी आपहैं. इस कारणसे शोक हत हमको बतला दीजिये कि हमारी प्रिया कहां चलीगई अथवा कौन उनको हरकर लेगया ॥ १६ ॥ हे पवन ! समस्त लोकोंमें ऐसा कुछ नहींहै जो नित्यही तुम्हारे ज्ञान मार्गमें उदित न होताहो, इससे बतला दीजिये कि हमारी उन कुलमर्य्यादा रक्षनी सीतानें प्राण दियेहैं या वह किसीसे हरी गईहैं, अथवा कहीं मार्गमें टिक रहीहैं ॥ १७ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीनें शोक युक्त शरीरसे अचेतन अवस्थामें विलाप करना आरंभ किया तब न्याय शास्त्रमें स्थितहो अदीन हुये सौमित्र लक्ष्मण उनसे समयानुसार वचन बोले ॥ १८ ॥ हे आर्य ! शोक छोडकर धीरज धारण करके उत्साह युक्तहो जानकीजीको ढूंढिये । उत्साही पुरुष संसारी दुष्कर कार्य करनें मेंभी कभी नहीं घबडाते ॥ १९ ॥

इतीवसौमित्रिमुदग्रपौरुषंब्रुवंतमार्तरघुवंशसत्तमः ॥ नाचिंतयामासधृतिंविमुक्तवान्पुनश्चदुःखंमहद प्युपागमत् ॥ २० ॥

बडे पौरुषी लक्ष्मणजीनें जब ऐसा कहा तब रघुवंशियोंमें उत्तम श्री रामचन्द्रजीनें उस वचनको चिन्तनीय समझकर न गिना वरन वह एक बारही धीरजको छोडकर फिर महा दुःखमें डूबगये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर० त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ॥

सदीनोदीनयावाचालक्ष्मणंवाक्यमब्रवीत् ॥ शीघ्रंलक्ष्मणजानीहिगत्वागोदावरींनदीम् ॥ १ ॥

दीनभावापन्न श्रीरामचन्द्रजी दीन वचन कह लक्ष्मणजीसे बोले कि हे लक्ष्मण ! शीघ्र गोदावरी नदीपर जाकर जान आओ ॥ १ ॥ कि सीता कमल फूल लेनेंको तौ वहां नहीं चली गईहैं? जब श्रीरामचंद्रजी नें ऐसा कहा तौ लक्ष्मणजी फिर ॥ २ ॥ शीघ्र २ पग धरकै गोदावरी नदीपर गये, और उस रमणीय घाटवाली गोदावरीके चारों ओर जरा २ करकै ढूंढ भाल रामचंद्रजीसे शीघ्रही आकर कहा ॥ ३ ॥ कि हमनें

सबही घाटोंपर ढूंढा परन्तु कहींपर उनको न पाया पुकारा भी परन्तु उन्होंनें नसुना। हे आर्य! जनें कौन देशमें क्लेशहरिणी जानकीजी चली गईहैं ॥ ४ ॥ सो उनका जिनका मध्यमस्थान सूक्ष्महै पता हम नहीं जानते लक्ष्मणजीके वचन सुनकर रामचंद्र और भी दीन व संतापसे मोहित हो ॥ ५ ॥ श्रीरामचंद्रजी आपही गोदावरी नदीके तटपर गये और वहां खडे होकर बूझने लगे कि सीता कहां है ! ॥ ६ ॥ समस्त प्राणियोंनें तथा गोदावरी नदी किसीनें भी श्रीरामचंद्रजीको यह न बतायाकि मारे जानेंके योग्य राक्षस रावण सीताको हरकर लेगयाहै ॥ ७ ॥ तब पृथ्वी जल, वायु, अग्नि, आकाश इन पांच महाभूतोंनें व प्राणियोंनें गोदावरी नदीसे कहा कि रामचंद्रजीसे सीताजीको बताओ, और सोच करते हुये रामचंद्रजीनें भी पूछा परन्तु गोदावरीने न बताया ॥ ८ ॥ न बतानें का कारण यह हुआ कि रावण का रूप और उस दुष्टात्माके कार्योंका स्मरण करनेंके मारे भयसे गोदावरीनदीनें श्रीरामचंद्रजीसे सीताको न बताया ॥ ९ ॥ इस प्रकार जब गोदावरीने सीताजीके दर्शनसे निराश किया तब श्रीरामचंद्रजी सीताके विरहसे व्यथित होकर लक्ष्मणजीसे बोले॥१०॥ हे शुभदर्शन! यह गोदावरी तो कुछभी उत्तर नहीं देती परन्तु हम सीताके विना अपने देशमें जाकर पिता जनकजीसे क्या कहेंगे ॥ ११ ॥ और वैदेहीजीकी मातासे विना जानकीके कैसे अप्रिय वचन कहेंगे, जो जानकीजी राज्यविहीन वनमें कंद मूलादि भोजन कर जीतेहुये हमारे ॥ १२ ॥ सब शोक अपनयन करतींथीं वह वैदेहीजी कहां गई? हम जातिके लोगोंसे सहायक विहीन होनेंके कारण और सीताजीका दर्शन न पानेंके कारण ॥ १३ ॥ जागरित रहनेंसे रात्रि हमको बडी जान पडेंगी अब हम मन्दाकिनी नदी जटा स्थान और झरना झरता हुआ यह पर्वत ॥ १४ ॥ इन सबही स्थानोंमें विचरण किया करेंगे ! जिस्से कि सीताजीको देखें। हे वीर ! यह मृगगण हमको वार २ देखतेहैं ॥ १५ ॥ इनके इशारेसे जान पडताहै कि मानों यह हमसे कुछ कहा चाहतेहैं, लक्ष्मणजीसे ऐसा कह उन मृगोंको देख पुरुषश्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी उन मृगोंसे बोले ॥ १६ ॥ हे मृगो? सीता कहांहैं ? यह कहतेही आंसू निकल आये वाणी गद्गद होगई, जब महाराज श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तो वह

सब मृग सहसा उठ खडे हुए॥ १७॥ और जिस दिशाको रावण जानकीजीको हरण कर लेगयाथा? उसी दक्षिण दिशाको मुखकर आकाशकी ओर निहार २ देखनें लगे॥ १८॥ वह सब मृगगण वारंवार उसी दक्षिण दिशाकी ओर मुखकर, चिंघडते, और फिर श्रीरामचंद्रजीकी ओर देख दक्षिणको दौडते। मृग गणोंकी यह दशा देख लक्ष्मणजीनें उनके हृदयका वृत्तान्त जान लिया॥ १९॥ अत्यन्त धीमान् लक्ष्मणजी अपनें बड़े भ्राता रामचंद्रजीसे आरतकी समान बोले कि हे देव! जब आपनें इन मृगोंसे पूछा कि सीता कहां हैं? तब यह सब एक एक उठ खडे होकर॥ २०॥ दक्षिण दिशा और पृथ्वीको दिखाने लगे। इस कारण चलिये हम लोगभी इसी दक्षिण दिशाको चले चलें॥ २१॥ क्योंकि कदाचित् आपी सीता वहां मिलजांय, अथवा उनकी प्रातिका कोई उपाय मिलजावे, तब श्री रामचन्द्रजी ऐसाहीहो कहकर दक्षिण दिशाकी ओर चले॥ २२॥ इसके पश्चात् २ लक्ष्मणजी आगे २ आप चले दोनों भाईजन इधर उधर देखते भालते व आपसमें बात चीत करते २ चले॥२३ आगे चलकर देखा तो कहींपर फूल पडेहैं। पृथ्वीपर फूलोंकी वृष्टि पडी देखकर श्रीरामचन्द्रजी॥ २४॥ वह वडे दुःखित हो दुःखित लक्ष्मणजीसे बोले, कि हे लक्ष्मण हम जानतेहैं कि यह वही पुष्पहैं॥ २५॥ जो हमनें वैदेहीजीको दियेथे और उन्होंने यह सब अपनें अंगोंमें धारण कियेथे, यह अभी कुम्हलाये नहीं, ऐसा वोध होताहै कि हमारा प्रिय करनेंके लिये सूर्य, पवन, तपस्विनी पृथ्वीनें॥ २६॥ इन पुष्पोंकी रक्षाकीहै, महाबाहु धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मणजीसे ऐसा कहा॥ २७॥ बहुत सारे झरनें जिसमें झररहे ऐसे सामनेंवाले पर्वतसे पुकारकर बोले. हे पर्वत श्रेष्ठ! तुमनें क्या उन सर्वांगसुन्दरीको देखाहै॥ २८॥ हमारी प्रिया हमारे विना रमणीय इस वनमें देखीहै? जब उस पर्वतनें इनकी बातका कुछ उत्तर न दिया तब यह क्रुद्ध होकर उस पर्वतसे बोले जिस प्रकार सिंह छोटे मृगोंसे कडककर बोलताहै॥ २९॥ हे पर्वत! जब तक हम तुम्हारे शृङ्ग तोड न डालें, तबतक तुम सोनेकी समान वर्णवाली हमारी सीताजीको हमें दिखादो॥ ३०॥ जब श्रीरामचन्द्रजीनें ऐसा कहा तो मानों वह पर्वत जानकीजीको जानता हुआ श्रीरामचंद्र-

जीको बताना चाहताथा परन्तु रावणके भयसे नहीं बताया ॥ २१ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी उस पर्वतसे फिर बोले, कि तुम हमारे बाणानलकी अनन्त अग्निसे भस्म हो जाओगे ॥ २२ ॥ फिर तृण वृक्ष व पल्लवादि जल जानेंसे फिर कोई तुम्हारा आश्रय न लेगा हे लक्ष्मण ! आज इस गोदावरी नदीकोभी शुष्क करदेंगे ॥ २३ ॥ यदि यह सब हमारी चंद्रमुखी सीताको नहीं बताते तौ हम ऐसाही करेंगे, इस प्रकारसे श्रीरामचन्द्रजी क्रोधान्वित होकर मानों उनको नेत्रोंसे भस्मही किये देतेथे ॥२४॥ इधर उधर देखते २ श्रीरामचन्द्रजीनें पृथ्वीपर देखा जहांकि राक्षसके चरण चिह्न बनेथे, व उसी स्थानपर भयभीत और रामचन्द्रजीके दर्शनकी इच्छा किये इधर उधर दौडती हुई॥२५॥राक्षसके अनुसरण करनेंसे जानकीजीकेभी पैरोंके चिह्न उन चिह्नोंके बीचमें बनें देखे, सीताजीके व राक्षसके पद एकमें मिले देख श्रीरामचन्द्रजीनें बडा क्रोध किया॥२६॥ धनुप व तूणीर (तरकस) कोभी टूटा फूटा पृथ्वीपर पडा देख रथकोभी रत्ती २ चूर्ण देख व्याकुलहो चकित होते हुये श्रीरामचन्द्रजी अपने प्यारे भ्रातासे बोले ॥ २७ ॥ हे लक्ष्मण! देखो! जानकीजीके गहनोंके सुवर्ण बिन्दु और बहुत सारी मालायें यहांपर टूटी पडीहैं ॥ २८ ॥ हे भइया! इस ओर देखो भूमिमें चारों ओर सुवर्ण बिन्दु सम विचित्रित रक्त बिन्दु समूह छिटक रहेहैं यह सीताका तो रुधिर नहींहै ॥ २९ ॥ हे भइया, लक्ष्मण! हमको जान पडताहै कि कामरूपी राक्षसोंने जानकीजीके खंड २ कर आपसमें बांट चूंट उनको खाडाला ॥ ४० ॥ हे लक्ष्मण! ऐसा समझमें आताहै कि सीताके लिये झगडा होनेंसे यहां दो राक्षसोंका घोर युद्ध हुआथा इसमें कुछ सन्देह नहीं ॥ ४१ ॥ हे सौम्य ! किसीका यह मुक्ता मणिसे बना हुआ रमणीय विभूषित धनुष पृथ्वी पर टूटा हुआ पडाहै ॥ ४२ ॥ हे वत्स! या तौ यह धनुष राक्षसोंका है । वा देवताओंका है । प्रातःकालके सूर्यकी समान अरुण (लाल) वैदूर्य मणिकी मूठ इसमें लगीहै ॥ ४३ ॥ किसीका यह सुवर्णका कवचभी रत्ती २ टूटा फूटा हुआ पृथ्वीपर पडाहै और यह शत २ शलाका समन्वित दिव्य माला शोभित छत्र किसका भूमिपर पडाहै ॥ ४४ ॥ हे सौम्य!

इसका दंडा टूट गयाहै किसने तोडाहै व सोनेंकी गर्दनी पडी पिशाचों समान मुख वाले गधे भी ॥ ४५ ॥ महा भयंकर व बडे आकार वाले किसीके रणमें मरे पडे हैं। फिर दीप्तिमान अग्निके समान अति देदीप्यमान किसीका युद्ध में काम देनेवाला रथभी पडाहै ॥ ४६ ॥ जो जगह२ पटकने व दे मारनेंसे टूट गयाहै! वह किसीके रथके लम्बे२ बांसभी सुवर्णके विभूषणोंसे भूषित ॥ ४७ ॥ हे लक्ष्मण! टूटे फूटे पडेहैं जिनको देखनेंसे भय उत्पन्न होताहै। बाणोंसे पूर्ण किसीके तूणीरभी पृथ्वीमें पडेहैं ॥ ४८ ॥ देखो! चाबुक और बाण हाथमें लिये किसीका सारथिभी मृतक पडाहै। देखो यह किसी पुरुष राक्षसके जानेंका प्रगट मार्ग बनाहै ॥ ४९ ॥ हे शुभ दर्शन! किस कारणसे अतीव कठिन हृदय कामरूप निशाचर गणोंके सहित हमारा पहलेसे शत गुण अधिक वैर होगया! तुम देखलेना कि इस्से उनके जीवनका अंत होगा ॥ ५० ॥ या तो राक्षसोंनें सीताको हर लिया वा भक्षण कर लिया, अथवा उन तपस्विनींनें प्राणत्याग करदिया होगा, किन्तु जब इस महा अरण्यमें जानकीजी मरणके निकट पहुँची तब पतिव्रत धर्मनेभी उनकी रक्षा न की! ॥ ५१ ॥ हे लक्ष्मण! इस प्रकारसे जब कि जानकी हरी गईं और उस समय धर्मनेंभी उनकी रक्षा न की तब संसारमें ईश्वरीय शक्ति सम्पन्न और कौन पुरुष हमारा प्रिय करनेंमें समर्थ होगा? ॥ ५२ ॥ प्राणीगण इनही सब कारणोंसे अज्ञान प्रयुक्त समस्त लोकोंके कर्त्ता परम दयालु सुरवर परमेश्वरको नहीं मानतेहैं ॥ ५३ ॥ हमारा स्वभाव अतिशय कोमलहै, और सर्वदाही हम सब लोकोंका हित कार्य करतेहैं और करुणा सहित उनका शुभाशुभ विधान करतेहैं परन्तु हम सीताका उद्धार नकरसके, इस कारण इन्द्रादि देवता गण निश्चयही हमको वीर्य रहित समझेंगे ॥ ५४ ॥ हे लक्ष्मण! विचार करके देखो! कि हमको प्राप्त होकर दया दाक्षिण्यादि समस्त गुण दोष रूपमें बदल गये इन दोषोंसे हम छिप गये, अब कोई हमको पराक्रमवान् नहीं समझता इस्से अभी सब प्राणी व राक्षसोंका नाश करनेंके लिये ॥ ५५ ॥ चंद्रमाकी चांदनीको मिटाय, महा सूर्यके समान उदयवत् हमारा प्रकाश देखो, जो कि सुशीलता इत्यादि गुणोंको छोड अब सबको ठीक करतेहैं ॥ ५६ ॥ हे लक्ष्मण! तुम देखते रहो कि अब यक्ष, गन्धर्व,

पिशाच, राक्षस, किन्नर, वा मनुष्य कोईभी सुख प्राप्त करनेंको समर्थ नहीं होगा ॥ ५७ ॥ हे लक्ष्मण आज हमारे बाण समूहसे समस्त आकाश व्याप्त हो जायगा, देखो आज हम त्रिलोक वासी प्राणियोंके गमनागमन रोके देतेहैं आज हम त्रिलोकीको कालके कवरमें निक्षेप करैंगे ॥ ५८ ॥ जब हम सबका गमनागमन रोक देंगे तौ इस्से ग्रहोंकी चाल रुक जायगी चंद्रमा अन्तर्हित हो जांयगे, वायु, अग्नि, और सूर्य इत्यादिकी द्युतिके नाश होनेंसे, सब जगह गाढा अंधकार छा जायगा ॥ ५९ ॥ सबही शैल शिखर मथित हो जांयगे, समुद्र सूख जांयगे, वृक्षलता, और गुल्म विध्वंस हो जांयगे, और वन एक साथही उजड जांयगे ॥ ६० ॥ हम तीनों लोकोंका नाश करदेंगे यदि इन्द्रादि देवगण मंगलमय जानकीजीको नदेंदेंगे ॥६१॥ तौ हमारा पराक्रम देखना हे लक्ष्मण। उस समय आकाशमेंभी कूदकर कोई न बच सकेगा ॥ ६२ ॥ हे लक्ष्मण! आज हमारे चापके मुखसे छूटे हुये शर जालसे निरन्तर मर्दित होकर सब जगत् महा व्याकुल मर्यादा शू-न्य हो जायगा, और मृग व पक्षीगण सबही सब भांतिसे भ्रान्त और विनष्ट हो जांयगे ॥ ६३ ॥ आज हम सीताके लिये कानतक प्रत्यंचा खेंच छोडे हुए बाणोंसे सब संसार पिशाच और राक्षसोंसे रहित कर देंगे ॥ ६४ ॥ इस संसारमें कोईभी हमारे इन बाणोंको निवारण नहीं कर सकैगा, देवता लोग देखेंगे कि समूहके समूह बाण हम करके रोष और क्रोधमें कर चलाये हुए कितनी २ दूर पर जाकर गिरते हैं न देवता न दैत्य न पिशाच न राक्षस ॥ ६५ ॥ जब हमारे क्रोधसे तीनों लोकोंका नाश हुआ तब कोईभी रक्षा न पावैगा ॥ ६६ ॥ अधिक क्या कहें, सुर, असुर, यक्ष और राक्षसोंके समस्तही लोक हमारे बाण जालसे खंड २ होकर गिरेंगे आज हम बाणोंको छोडकर समस्त लोकको मर्यादा शून्य करेंगे ॥ ६७ ॥ प्रिया वैदेहीजी मरही गईहों अथवा हरही गईहों सो किसी अवस्थामेंहों यादि ब्रह्मादि देव गण उने हमको न देदें ॥ ६८ ॥ हम चराचर सहित इस सब जगत्का विनाश कर डालेंगे और जबतक हम सीताको न देख पावेंगे तबतक बाणोंसे चराचरको संतापित करेंगे ॥ ६९ ॥ यह कह कर क्रोधसे श्रीरामचन्द्रजीकी आंखें लाल २ हो आईं, होठ फडकने लगे, श्रीरामच-न्द्रजीनें चीर वल्कल मृगचर्म और जटाजूट कस कर बांधा ॥ ७० ॥उस

कालमें धीमान् रामचन्द्रजीनें क्रोधित होकर जब ऐसे कार्यका अनुष्ठान किया, तब उनका देह ऐसा प्रतिभात होनें लगा कि जैसे पूर्व कालमें रुद्र-जी त्रिपुर वध करनेंको तैयार हुएथे ॥ ७१ ॥ अनन्तर उन्होंनें लक्ष्मण-जीके निकटसे धनुष ग्रहण कर और दृढ रूपसे धारण करके सर्प विष सदृश घोर प्रदीप्त सायक ॥ ७२ ॥ श्रीरामचन्द्रजीनें उस धनुष पर चढाया! और प्रलयकालकी अग्निके समान क्रोधमें भरकर कहने लगे ॥ ७३ ॥ हे लक्ष्मण! जरा, मृत्यु, काल, और विधि यह सब जिस प्रकारसे प्राणिमात्र-के रोकनेंसे नहीं रुक सकते, वैसेही हम क्रोधित हुए हैं । निःसन्देह कोई हमको निवारण नहीं कर सकैगा ॥ ७४ ॥

पुरेवमेचारुदतीमनिंदितांदिशंतिसीतांयदि
वाद्यमैथिलीम् ॥ सदेवगंधर्वमनुष्यपन्नगंज
गत्सशैलंपरिवर्तयाम्यहम् ॥ ७५ ॥

सुदन्त युक्त निन्दा रहित मिथिलाराजनंदिनी सीताको बिना प्राप्त हुए हम देव, गन्धर्व, मनुष्य, पन्नग और पर्वत सहित समस्त जगत् मर्दित कर डालेंगे ॥ ७५ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० आर० चतुःषष्टितमः सर्गः॥६४॥

पञ्चषष्टितमःसर्गः

तप्यमानंतदारामंसीताहरणकर्शितम् ॥
लोकानामभवेयुक्तंसांवर्तकमिवानलम् ॥ १॥

सीताजीके हरणसे कातर हुये श्रीरामचन्द्रजी सन्तापित हो संवर्तक प्रलयकालकी अग्निके समान लोकोंका नाश करनेंको तैयार हुए ॥१॥ और प्रलयकालमें समस्त जगत् दग्ध करनेंके अभिलाषी महादेवजीके समान वारंवार श्वास त्याग करते हुए प्रत्यंचायुक्त शरासनको श्रीराम-चन्द्रजी देखनें लगे ॥ २ ॥ लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीका अदृष्ट पूर्व जो पहले कभी नहीं देखाथा, ऐसा क्रोध देखकर शुष्क मुख बना हाथ जोड उनसे बोले ॥ ३ ॥ आप पहलेसे मृदु, सर्व इन्द्रियोंके जीतनेंवाले और सर्व भूतोंके हितकारी कार्य करनेंमें तैयार हैं सो इस समय क्रोधके वश होकर अपना स्वभाव छोडना आपको योग्य नहीं है ॥ ४ ॥ चन्द्रमा-

मेंश्री, वायुमें गति, पृथ्वीमें क्षमा, सूर्यमें दीप्ति, इन चारोंमें यह चार पदार्थ नित्य हैं और आपमें यश सहित यह चारों पदार्थ विद्यमान हैं॥५॥एक जनके अपराधसे समस्त लोकको हनन करना आपको उचित नहीं है, निश्चयही हम जानते हैं कि यह जो रथ टूटा पडा है यह एकही जनका है बहुतोंका नहीं ॥ ६ ॥ किन्तु यह जुआ युक्त और परिच्छेद सहित रथ किसका है, और क्योंकर टूटा है इसको हम नहीं जानते, देखिये यह स्थान खुरियोंसे खुद खुदाय रहा है और रुधिरसे भीगनेंके कारण अतिशय भयंकर हो रहाहै ॥ ७ ॥ निश्चयही यहांपर संग्राम हुआहै ॥ और इन सब कारणोंसे यहभी बोध होताहै कि एक रथीके सहित और किसी पशुका युद्ध हुआहै दोजनोंका युद्ध नहीं हुआहै ॥ ८ ॥ बडी भारी सेनाके चरण चिह्न यहां पर नहीं दृष्टि आते इसलिये एक जनके अपराधसे समस्त लोकोंको विनाश करना आपको उचित नहींहै ॥ ९ ॥ राजा लोग सचराचरपर अतिशय शान्त और मृदु स्वभाव वाले होतेंहैं, और अपराधानुसार दंड दिया करतेहैं आपभी सर्वदा सब भूतोंके शरण्य और परम गतिहैं ॥१०॥ हे रघुनंदन! संसारमें कौन पुरुष आपकी भार्याका वियोग आपसे अच्छा समझताहै कारण कि नदी, समुद्र, पर्वत, देवता, गन्धर्व, दानव, सरित सागर ॥ ११ ॥ और शैल कोईभी आपका अप्रिय नहीं करसकते, जैसे यजमानका अप्रिय साधुलोग नहीं कर सकते । हे राजन्! जिसनें सीताको हरण कियाहै इस समय उस जनकी खोज करना आपका कर्त्तव्य हुआ है ॥ १२ ॥ आप हमारे साथ धनुष हाथमें लेकर चलिये, और परमर्षि गणोंको सहायक बनाय समुद्र वन पर्वत ढूढेंगे ॥ १३ ॥ विविध प्रकारकी ताल तलैयां व गुफायें और देवता गन्धर्वोंके लोक समस्तही यत्न सहित आप ढूंढिये ॥ १४ ॥ जब तक कि आपकी स्त्रीके हरनेंवालेको न पावेंगे, और इस प्रकार शान्त भावसे ढूंढनेंपरभी इन्द्रादि देव गण यदि आपकी भार्याको नदें तब हे कौशलेन्द्र! पीछेसे आप उनको यथायोग्य दंड दीजियेगा ॥ १५ ॥

शीलेनसाम्नाविनयेनसीतांनयेननप्राप्स्यसिचेन्नरेंद्र ॥
ततःसमुत्सादयहेमपुंखैर्महेंद्रवज्रप्रतिमैःशरौघैः ॥ १६ ॥

हे नरेन्द्र! शीलतासे सामसे और विनय अवलंबन करकेभी यदि आप सीताको न पावें, तब आप इन्द्रके वज्र सदृश सुवर्ण पंख वाले शरजालसे समस्त संसारको संहार कर डालियेगा ॥ १६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे पंचषष्टितमः सर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ॥

तंतथाशोकसंतप्तंविलपंतमनाथवत् ॥
मोहेनमहतायुक्तंपरिद्यूनमचेतसम् ॥ १ ॥

श्रीरामचंद्रजीनें लक्ष्मणके वाक्यसे क्रोध त्यागकर इस प्रकार शोक संतप्त और महा मोहसे युक्त चेतना रहित होकर अनाथोंकी समान विलाप करना आरंभ किया ॥ १ ॥ लक्ष्मणजी उनके चरण छूकर एक मुहूर्त भर-तक उनको समझाते बुझाते हुए कहनें लगे ॥ २ ॥ कि राजा दशरथजीनें अनेक तपस्या और बहु विधि धर्मानुष्ठान करके आपको प्राप्त कियाथा जिस प्रकार देवता लोगोंनें अमृतको बडे२ उपायोंसे प्राप्त कियाथा ॥३॥ भरतजीसे जैसा जैसा सुनाथा उस्से तौ यही ज्ञात होताहै कि राजा दश-रथ आपहीके गुणोंमें बंधकर, व आपकेही वियोगमें देवलोकको प्राप्त हुयेहैं ॥ ४ ॥ हे काकुत्स्थ! यदि आपही इस आई हुई विपदको न झेलेंगे तौ अल्प प्राण मनुष्य कौन सह सकेगा ? ॥ ५ ॥ हे नरश्रेष्ठ! आप अपनें चित्तको सँभालिये। विपद अग्निकी समान सबही प्राणियोंको स्पर्श कर-तीहै किन्तु क्षण काल मेंही दूर चली जातीहै ॥ ६ ॥ लोकका स्वभावही यहहै। देखिये नहुषपुत्र ययाति, इन्द्रपदवी प्राप्त करकेभी अनीतिसे स्वर्गसे च्युत हुआथा ॥ ७ ॥ जो हमारे पिताजीके पुरोहितहैं, उन महर्षि वशिष्ठजीनें एक दिनमें शतपुत्र उत्पन्न किये, और एक दिनमेंही वह सब नष्ट होगये ॥ ८ ॥ हे कौशलेश्वर। जगन्माता, सर्व लोकके नमस्कार करनें योग्य इस पृथ्वीकाभी चलायमान होना पाया जाताहै अर्थात् भूकंपादि दुःख इसको हुआ करतेहैं ॥ ९ ॥ जो सूर्य चन्द्रमा कि जगत्के नेत्र और साक्षात् धर्मस्वरूप हैं, और जिनमें

समस्त संसार टिका हुआ है उन महाबलवान सूर्य चन्द्रमाकाभी ग्रहण हो जाता है ॥ १० ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! इस प्रकारसे अति महत् भूत और देवता लोगभी जब दैवके वश हैं तब साधारण शरीर धारी प्राणियोंकी क्या गिनती है? ॥ ११ ॥ अधिक क्या कहैं इन्द्रादि देवताओंमेंभी नीति और अनीति सुख दुःख सुना जाया करता है, इस्से हे नरसिंह! आप अब व्यथित न हूजिये॥१२॥हे रघुनंदन!यदि जानकीजी हरी गई हों, वा मृतक होगई हों तौभी साधारण पुरुषोंकी समान आपको शोक करना योग्य नहीं है१३॥ हे वीर! आप की समान सर्वदर्शी और हितदर्शी मनुष्य गण सचराचर बडी भारी विपद पडनें परभी शोक नहीं करते ॥ १४ ॥ हे नरश्रेष्ठ! आप भली भांति विचार करकै यथार्थतासे शुभाशुभका विचार कीजिये। आपकी समान महाप्राज्ञ पुरुषगण बुद्धिसे विचार करकै शुभाशुभ भली भांतिसे जान लेते हैं ॥ १५ ॥ जिनके गुण और दोष जबतक प्रगट दृष्टिमें नहीं आते, तबतक उन सब अध्रुव अर्थात् अस्थिर अनुष्ठानसे कभी इष्ट फलकी प्राप्तिकी आशा नहीं होसकती और उनका जानना बिना क्रिया योगके नहीं होता ॥ १६ ॥ हे वीर! आपनें ही प्रथम हमको अनेक वार इस प्रकारका उपदेश दिया है और आपको उपदेश देने में तो साक्षात् बृहस्पतिजीभी समर्थ नहीं हैं ॥ १७ ॥ हे महाप्राज्ञ! आपकी बुद्धिको देवता लोगभी नहीं पहुँच सकते अब आपकी वह बुद्धि शोकसे इस प्रकार ढक रही है, कि इस समय हम उसको जगा रहे हैं ॥ १८ ॥ हे इक्ष्वाकु प्रवर! आप आपना दिव्य और मानवी पराक्रम विचार शत्रु संहार करनेंमें यत्न कीजिये॥ १९ ॥

किंतेसर्वविनाशेनकृतेनपुरुषर्षभ ॥
तमेवतुरिपुंपापंविज्ञायोद्धर्तुमर्हसि ॥ २० ॥

हे पुरुषश्रेष्ठ! आपको समस्त लोकोंके संहार करनेंका क्या प्रयोजन है? आप उसी अपने शत्रुको जानकर उसे विध्वंसकर सीताको बचाइये ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आरण्यकांडे "पंडितज्वालाप्रसाद" मिश्रकृतभाषानुवादे षट्षष्टितमः सर्गः ॥ ६६ ॥

सप्तषष्टितमः सर्गः

पूर्वजोऽप्युक्तवाक्यस्तुलक्ष्मणेनसुभाषितम् ॥
सारग्राहीमहासारंप्रतिजग्राहराघवः ॥ १ ॥

लक्ष्मणजीके इस प्रकार अतिशय सार गर्भ सुन्दर वचन कहनें पर सारके ग्रहण करनेंवाले महाबाहु रामचन्द्रजीनें उनको ग्रहण किया ॥ १ ॥ तिसके पीछे वह अपना बढा हुआ क्रोध शान्तकर विचित्र धनुष धारण करकै लक्ष्मणजीसे कहनें लगे ॥ २ ॥ हे वत्स! हम इस समय कहां जांय क्या करें, और किस उपायसे जानकीको प्राप्त होवैं? सो तुम इसका विचार करो॥३॥तब लक्ष्मणजी अति संतापित रामचन्द्रजीसे बोले कि इस जनस्थानकोही ढूंढना और खोज करना आपको उचित है ॥ ४ ॥ बहुत सारे राक्षसों करकै समाकीर्ण और विविध भांतिके लता वृक्षोंसे युक्त इस जन स्थानमें अनेक गिरि गुहा कंदरा ॥ ५ ॥ पत्थरोंकी चटानें और अनेक जाति वाले मृग गणोंसे पूर्ण गुफायें किन्नर व गन्धर्व गणोंके फिरनेंके स्थान और भवन जहां बहुत सारे हैं ॥ ६ ॥ सो आप हमारे सहित सावधान होकर इन सब जगहको ढूंढ लीजिये, आपकी समान बुद्धिसम्पन्न महात्मा पुरुषोत्तम ॥७॥ आपदके समय कभी नहीं विचलते, जैसे वायुके वेगसे पर्वत नहीं कांपते यह सुन श्रीरामचन्द्रजीनें लक्ष्मणजीके साथ समस्त बन खोजा ॥ ८ ॥ उस समय श्रीरामचन्द्रजीनें बडा कोप करकै पैनी धारवाला भयंकर बाणभी धनुषपर चढायाथा, वहां जाते २ पर्वतकी समान आकारवाला बडा भाग्यवान् पक्षी श्रेष्ठ ॥ ९ ॥ जटायुको पृथ्वीपर पडा और रुधिरसे लिपटा हुआ देखा उसको पर्वतके शृंगकी समान आकारवाला देख श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीसे बोले ॥ १० ॥ इसमें कुछ संशय नहीं है कि इस गृध्ररूपी वनचर निशाचरनेंही जानकीको भक्षण कर लियाहै, बस यह ठीकही ठीक जान पडता है गृध्र बना वनमें घूमताहै ॥ ११ ॥ यह राक्षस उन विशालाक्षी सीताजीको भक्षण करकै यथा सुखसे विश्राम कर रहाहै । इस कारण हम सीधे चलनेवाले अग्निकी समान प्रकाशमान भयंकर बाणोंसे इसका संहार करेंगे ॥ १२ ॥ श्रीरामचंद्रजी यह कहकर क्रोधित हो समुद्र पर्यन्त

पृथ्वीको कँपाते हुये धनुष पर तीक्ष्ण बाण चढाय उसके देखनेंको चले ॥ १३ ॥ तिसके पीछे पक्षिराज जटायु सफेन रुधिर उगलता हुआ अतिशय कातर वचनोंसे उन दशरथ कुमार श्रीरामचंद्रजीसे बोला॥१४॥ आयुष्मान्। तुम औषधिकी समान जिनको इस महा वनमें खोजते हो, वह देवी जानकी और हमारे प्राण दोनोंही रावणनें हर लियेहैं ॥ १५ ॥ हे रघु-नंदन! महा बलवान दशानन आपके और लक्ष्मणजीके आश्रममें नरहनें पर सूनेसे जानकीको हर लेजाता हुआ हमने देखाहै ॥ १६ ॥ उस समय हमनें सीताजीको छुटानेंके लिये सन्मुख हो युद्ध करकै उसके रथ और छत्रको तोड डाला तब रावण पृथ्वीमें गिरा ॥ १७ ॥ यह जो धनुष और बाण टूटे हुये पडे हैं यह उसकेही हैं और रामचंद्रजी! यह उसकाही संग्राममें काम देनेंवाला रथहै। जो टूटा हुआ पडाहै ॥ १८ ॥ और यह सारथी भी उसीका है जो हमारे पंखोंके प्रहारसे मरकर पृथ्वीपर पडाहै जब हम बूढे होनेंके कारण लडते २ थक गये तब राक्षसनाथ रावण नें खड्ग से हमारे पंख काट डाले ॥ १९ ॥ और सीताजीको लेकर आकाश मार्गमें चला गया, प्रथम तो हम रावण करकै मारेही गये हैं, सो इस समय हमारा वध करना आपको उचित नहींहै ॥ २० ॥ श्रीरामचंद्रजी गिद्धके मुखसे सीताजीके विषयक प्रिय वचन सुनतेही महा धनुष को त्याग करके आलिंगन करलेते हुये ॥ २१ ॥ और शोकसे अवश हो पृथ्वी में गिर कर लक्ष्मणजीके सहित रोदन करनें लगे । यद्यपि श्रीरामचंद्रजी महावीरथे तथापि दूना संताप पाकर बहुत व्याकुल होगये ॥ २२ ॥ उसकाल जटायुको एकान्त में पडे वारंवार ऊंधी श्वास लेते हुये देख शोकसे आतुर हो श्रीरामचंद्रजीने लक्ष्मणजीसे कहा ॥ २३ ॥ हम राज्यसे भ्रष्ट हुये वनमें वास हुआ, सीताजी हरी गई और जटायुकी मृत्यु होगई हमारे खोटे कर्मसे उपस्थित हुई यह विपत्ति अग्निकोभी भस्म कर सकतीहै ॥ २४ ॥ हम अपने भाग्यकी क्या बात कहैं! हम इस दुःखके संतापसे शान्ति पानेंके लिये तलहीन तटहीन महासागरको भी उतरें! तो वह सरित स्वामी समुद्र भी निश्चयही हमारे दुर्भाग्यके प्रभावसे एक वारही सूख जायगा२५॥ सचराचर लोकोंमें हमसा अधिक मन्दभाग्य और कोई नहीं है क्योंकि हमनें इतनी बडी दुःखकी फांसी पाई है॥ २६ ॥ यह महाबली गिद्धराज

हमारे पिताके प्रिय सखाहैं, सो यह भी हमारे भाग्यके फेरसे घायल होकर पृथ्वीपर शयन कर रहेहैं * ॥ २७ ॥ रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी इस प्रकारके अनेक वचन कहते लक्ष्मणजीके पिताकी समान स्नेह दिखाते हुये जटायुको स्पर्श करते हुये ॥ २८ ॥

निकृत्तपक्षंरुधिरावसिक्तंतंगृध्रराजंपरि
गृह्यराघवः ॥ क्वमैथिलीप्राणसमागते
तिविमुच्यवाचंनिपपातभूमौ ॥ २९ ॥

फिर श्रीरामचंद्रजी पंख कटे रुधिर में डूबे गृद्धराज जटायुको चिपट कर "हमारी प्राणप्रिया मैथिली कहांगई हैं" यह कह कर पृथ्वीमें गिर पडे ॥ २९ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० आ० सप्तषष्टितमः सर्गः ॥ ६७ ॥

अष्टषष्टितमःसर्गः ।

रामःप्रेक्ष्यतुतंगृध्रंभुविरौद्रेणपातितम् ॥
सौमित्रिंमित्रसंपन्नमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

श्रीरामचंद्रजी भयंकर राक्षसके प्रहारसे पृथ्वीपर पडे हुये जटायुको देखकर परमबंधु सुमित्रापुत्र से कहते हुये ॥ १ ॥ निश्चयही यह पक्षी हमारे लिये यत्न करके हमारे ही लिये राक्षससे मारा जाकर अब प्राणत्याग करताहै॥२॥हेलक्ष्मण! इसका बोल धीमा पडगया, और दृष्टि हीन हो आईहै और प्राणभी अति मात्र व्याकुल होकर कुछेक इसकी देहमें टिक रहेहैं ॥३॥ हे जटायु ! तुम्हारा कल्याणहो, यदि फिर तुममें कुछ बोलनेंकी शक्तिहो तो सीताहरणका वृत्तान्त, और तुम कैसे मारे गये, यह सब कह दीजिये ॥ ४ ॥ और रावणनें किस निमित्त आर्या जानकीको हरण किया? और हमनें उसका क्या अपराध कियाथा, जो वह हमारी प्राणप्यारीको

*कवित्त॥ दीन मलीन अधीन है अंग विहंग परचो क्षिति खिन्न दुखारी॥ राघव दीन दयालुकृपालु को देख दुखी करुणा भयभारी॥ गीधको गोदमें राख कृपानिधि नैन सरोजनमें भरिवारी ॥वार हि वार सुधारत पंख जटायुकी धूरि जटान सों झारी॥ १॥गीधको गोदमें राख कृपानिधि निहारैं और नैनन सोंजलडारैं॥टूक हो जातहैं सीता विथाके जो याकी स्नेह कथाको विचारैं॥ छोड चलेकेहि हेतु हमें हमें सोंह तिहारीहै संग सिधारैं ॥ यों कहिराम भरे जल नैन जटायुकी धूरि जटान सोंझारैं ॥ २॥

हरण करके लेगया ॥ ५ ॥ हे विहंगवर ! हरणके समय जानकीका वह पूर्ण शशि सदृश मनोहर मुखमंडल कैसा हो गयाथा ? और उन्होंने उस समय क्या कहाथा ॥ ६ ॥ उस राक्षसराज रावणका वीर्य, रूप, और कर्म किस प्रकारकाहै । हे तात ! उसका निवास कहांपरहै ? जो हम पूछतेहैं सो सब बता दीजिये ॥ ७ ॥ तब धर्मात्मा जटायु लड खडाती वाणीसे विलाप करते व पूछते हुये श्रीरामचन्द्रजीसे यह वचन बोला ॥ ८ ॥ राक्षसोंके राजा दुरात्मा रावणनें वायु और दुर्दिन (जबकि आकाशमें बादल आजातेहैं) कारिणी महामायाका आश्रय करकै सीताका हरण कियाहै ॥ ९ ॥ हे तात ! जब हम लडते २ बहुत थकगये, तब निशाचर हमारे दोनों पंख काट सीताको ग्रहण करकै दक्षिण दिशाको चला गया ॥ १० ॥ हे रघुनंदन ! अब हमारे प्राण रुकतेहैं, और दृष्टिभी भ्रमित होतीहै और हमको सब वृक्ष सुवर्णके दिखाई देतेहैं, मानों सब वृक्ष अपनें शिरके केशोंमें खश और फूलोंकी माला पहर रहेहैं ॥ ११ ॥ रावण जिस मुहूर्त्तमें सीताको हर लेगयाहै, उस मुहूर्त्तमें धनका स्वामी अपना बहुत दिनका नष्ट (खोया हुआ) धनभी शीघ्रही प्राप्त करलेताहै, अर्थात् इस मुहूर्तकी खोई चीज शीघ्र मिलजातीहै ॥ १२ ॥ इस मुहूर्तका नाम विन्दुहै, इस मुहूर्तकी खोई हुई वस्तु शीघ्र मिलजातीहै, सो रावण इसको नहीं जानताहै, इस कारण वंशीका मांस ग्रहण करनेंसे काली मछलीके समान शीघ्र उसका विनाश होगा ॥ १३ ॥ इस मुहूर्तमें खोई हुई वस्तुही नहीं मिलती किन्तु शत्रुका नाशभी होताहै; तुमभी श्री जानकीजीके प्राप्त होनेके विषयमें और कुछ संदेह न करो । रावणको संग्राममें मारकर शीघ्रही सीताके सहित विहार करनेंको तुम समर्थ होगे ॥ १४ ॥ तिसके पीछे रामचन्द्रजीके साथ संभाषण करनेंवाले सावधान चित्त मरनेंके निकट गिद्धराज जटायुके मुखसे मांस युक्त रुधिर वहनें लगा ॥ १५ ॥ उस समय जटायुनें रावण विश्रवाका पुत्र, और कुबेरका भाईहै केवल इतनाही कहकर दुर्लभ प्राण त्याग करदिये॥१६॥ श्रीरामचन्द्रजी हाथ जोडे बोलिये ! बोलिये ! इस प्रकारसे कहनें लगे, उसी समय उनके सामनेही जटायुके प्राण शरीरको त्याग करकै आकाशको चलेगये ॥ १७ ॥ उस समय गिद्धराज चरण युगल फैलाय अपना

शरीर फटफटाय भूमिमें शिर गिराय पृथ्वीमें गिरपडे ॥ १८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी पर्वत समान बडे आकारवाले ताम्रवत् रक्तनेत्र गृद्धको मरा हुआ देखकर दुःखितहो लक्ष्मणजीसे बोले॥१९॥राक्षसोंके वसनें योग्य दंडकारण्यमें बहुत वर्षोंसे यह जटायुजी रहतेथे, सो आज उन्होंने देह त्याग करदिया ॥ २० ॥ इस प्रकार यह अनेक वर्षतक जीवितथे; वह आज निहत होकर पृथ्वीमें शयन कररहेहैं; हम समझे कि कालको उल्लंघन करना सहज नहींहै,लक्ष्मण ! देखो ये गृद्ध हमारा कैसा उपकारीहै, सीताजीको उद्धार करनेंमें तैयार होकर रावण दुरात्मा करकै यह मारे गयेहैं॥२१॥ २२और हमारे निमित्त पितृपितामहप्राप्त महत् राज्य परित्याग करकै इन गृद्धराजनें प्राण छोडेहैं॥२३॥हम जानतेहैं कि सभी जातियोंमें शूरता युक्त शरण देनेवाले धर्माचरण करनें वाले साधु देखे जातेहैं,सो मनुष्यादिके सिवाय पक्षिआदितिर्यग्योनिमेंभी ऐसे लोग देखे जातेहैं ॥२४॥ हे सौम्य !हमारेही लिये इस गृद्धनें प्राण छोडेहैं इसलिये इसकी मृत्युसे सीताके हरणसेभी अधिक हमको दुःख हुआहै ॥ २५ ॥ महा यशमान श्रीमान् राजा दशरथजी जिस प्रकारसे हमारे पूजनीय और माननीयहैं परोपकार करनें और पिताजीका सखा होनेंसे यह विहंगमश्रेष्ठभी हमको वैसाही है ॥ २६ ॥ हे सुमित्रानंदन ! तुम काठ ले आओ हम अग्नि उत्पन्न करकै हमारे लिये प्राण दिये हुए इन गृद्धराजका दाह करेंगे ॥ २७ ॥ हे लक्ष्मण! यह जटायु पक्षियोंका राजा, और घोर कर्म करनेंवाले राक्षसके हाथसे मारे गये हैं, हम इनका चितापर रखकर दाह करेंगे ॥ २८ ॥ यज्ञ शील और अहिताग्नियोंकी जो गति होती है, समरसे परांमुख न होनेंवाले; और भूमि दान करनें वाले पुरुषोंकी जो गति होती है ॥ २९ ॥ हे महाबलवान् गृद्ध राज! तुम हम करकै संस्कृत और हमारीही आज्ञासे उन सब श्रेष्ठ गतियोंको प्राप्त होवो ॥ ३० ॥ धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी इस प्रकारसे कह कर दुःखित हो अपने बंधुकी समान पक्षिराज जटायुको जलती हुई चितामें चढाकर दाह करते हुए ॥ ३१ ॥ फिर वह महा यशवान् वीर्यवान् श्रीरामचन्द्रजी सुमित्रानन्दन, लक्ष्मणजीके साथ वनमें गये और बडे आकार वाले मृगोंका वधकर उनका मांसले फिर वहां आये जहां जटायुको दाह कियाथा। वहां आ जटायुको पिंड देनेंके लिये तृण फैलाये ॥ ३२ ॥और

उस समस्त मांसके टुकडे २ कर डाले और उनके पिंड बना उनको हरी घासपर रख जटायुके अर्थ प्रदान किये ॥ ३३ ॥ ब्राह्मणलोग प्रेत पुरुषकी स्वर्ग प्राप्ति होनेंके लिये जिन मंत्रोंका जप किया करते हैं, श्रीरामचन्द्रजी जटायुको शीघ्र स्वर्ग प्राप्त करानेंके लिये उन्हीं समस्त मंत्रोंका जप करनें लगे ॥ ३४ ॥ तिसके पीछे राजकुमार श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजी दोनों जन गोदावरी नदीपर जाकर जटायुके लियें तर्पण करते हुए ॥ ३५ ॥ वह दोनों जन स्नान करकै शास्त्रमें कही हुई विधिके अनुसार जटायुको जल देकर पिंड व तिलाञ्जलि देते हुए ॥ ३६ ॥ गृध्रराज जटायु दुष्कर कार्य करते हुए युद्धमें मारे जाकर, और महर्षि सदृश श्रीरामचन्द्रजीके संस्कारित हो परम पवित्र पुण्य गतिको प्राप्त हुए ॥ ३७॥

कृतोदकौतावपिपक्षिसत्तमेस्थिरांचबुद्धिं
प्रणिधायजग्मतुः ॥ प्रवेश्यसीताधिगमेततोमनो
वनंसुरेंद्राविवविष्णुवासवौ ॥ ३८ ॥

तब राम और लक्ष्मण दोनों जन जलादि क्रिया समाप्त करकै पक्षि श्रेष्ठ जटायुके प्रति पितृबुद्धि स्थापित कर वहांसे प्रस्थान करते हुए, और सीताजीके खोजनेंमें मन लगाकर सुर श्रेष्ठ विष्णु और इन्द्रजीकी समान वनमें प्रवेश करतेहुए॥३८॥इ० श्रीम०वा०आ०आ०अष्टषष्टितमः सर्गः ॥ ६८ ॥

एकोनसप्ततितमः सर्गः

कृत्वैवमुदकंतस्मैप्रस्थितौराघवौतदा ॥
अवेक्षंतौवनेसीतांजग्मतुःपश्चिमांदिशम् ॥ १ ॥

जब पक्षिराज जटायुकी जल क्रिया होचुकी तब श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजी दोनों वहांसे चलकर वनमें सीताजीको ढूंढते भालते हुए पश्चिम दिशाकी ओर चले ॥ १ ॥ और धनुष बाण खड्ग हाथमें लेकर दोनों भ्राता जिस मार्गमें तबतक कोई मनुष्य नहीं गयाथा, उसी पश्चिम दक्षिण कोण वाले मार्गको चले ॥ २ ॥ उस मार्गमें अनेक प्रकारके झाड वृक्ष वल्लीलता आदि लगनेंके कारण वह चारों ओरसे घिर रहाथा, इसी कारणसे वह अतिभयानक वा दुर्गम बोध होताथा॥३॥उस मार्गमें होकर फिर वह महाव-

लवान् दोनों रघुवीर दक्षिणदिशाकी ओर बडी वेगसे महावनमें हो करके च-
ले ॥४॥ इस प्रकारसे जाते२जनस्थानसे तीन कोश दूर क्रौञ्च नामक वनें वन
में पहुँचे॥५॥यह वन अतिशय दुर्गम देखनेंमें बहुत सारे मेघोंकी समान महा-
बनाथा, अनेक प्रकारके सुन्दर फूलोंके खिले रहनेंसे मानों वह सब भांतिसे
हर्षपूरितथा, और मृग व पक्षीभी उसमें बहुतथे ॥६॥दोनों भ्राता सीता-
जीके हरणसे दुःखितहो और उनके दर्शनकी कामनासे वह वन ढूंढते२
शान्तिके वश स्थान२ पर खडे हो जानें लगे ॥७ ॥ फिर वह पूर्वकी ओर
तीन कोश चलकर क्रौंचारण्यको नांचकर मातंग मुनिके आश्रमको देखते
हुए ॥ ८ ॥ उस आश्रमका वन महा भयंकरथा, और भयंकर स्वभाववाले
अनेक जातिके मृग और पक्षीभी वहां बहुतथे, और अनेक प्रकारके वृक्षोंसे
घिरे रहनेंकें कारण वह वन बडा बनाथा ॥ ९ ॥ फिर उस वनमें श्रीराम-
चंद्र व लक्ष्मणजीनें पातालकी समान गहरी एक गिरी गुफा देखी, इस
गुफामें नित्यही अंधकार रहताथा ॥ १० ॥ श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीनें
उसके निकट पहुँचकर उसमें भयंकर आकारवाली और विकृत वदन
एक राक्षसीको देखा ॥ ११ ॥ राक्षसी देखनेंमें अति भयंकरीथी, खाल
अति कडीथी ॥ १२ ॥ स्वभाव अति भयंकरथा बडे२ मृगोंको वह भ-
क्षण करती, रूप बडा भयावना शिरके बाल खुले, ऐसी उस राक्षसीको
दोनों भाइयोंनें देखा ॥ १३ ॥ तिसके पीछे वह निशाचरी रामचंद्रजीके
आगे खडे हुये लक्ष्मणजीके निकट आकर कहनें लगी कि "आओ हम
तुमसे विहार करें" ऐसा कहकर उसनें लक्ष्मणजीको ग्रहण किया ॥१४॥
और वह राक्षसी उनको चिपटायकर कहनें लगी कि हे नाथ! हमारा
अयोमुखी नामहै, अब तुमको परम लाभ हुआ और तुमही हमारे प्यारे
हुये ॥ १५ ॥ हे नाथ! हमारे सहित सब जीवनतक नदियोंके किनारों पर
और नाना प्रकारके पर्वतोंपर तुम विहार किया करना ॥ १६ ॥ शत्रुओंका
नाश करनेंवाले लक्ष्मणजीनें इस बातसे क्रोधित होकर खड्ग उठाकर उस
राक्षसीके नाक कान व स्तन काट डाले ॥ १७ ॥ जब उसके कान नाक
व स्तन काट डाले गये तब वह घोर दर्शन वाली राक्षसी विकट शब्दसे
चिल्लाकर शब्द करती हुई जहांसे आईथी वहांको दौडी ॥ १८ ॥ जब वह
वहांसे भाग गई तो महातेजमान शत्रुओंके मारनेंवाले श्रीराम लक्ष्मण

दोनों भाई वेग सहित चलतेहुए एक गहन वनमें पहुँचे ॥ १९ ॥ वहां पहुँचकर सत्यवक्ता, शीलवान् पवित्र स्वभाव और परम तेजस्वी लक्ष्मणजी हाथ जोड कर तेजसे प्रदीप्तमान श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ २० ॥ हे भ्रातः हमारा बांया हाथ जलदी२ फडकताहै और मन मानो बहुत उकसाताहै, और प्रायः दुर्लक्षणभी बहुत दृष्टि आतेहैं ॥ २१ ॥ इस्से हे आर्य! आप सज करके तैयार होरहैं; और हमारी बात सुनें यह सब अपशकुन स्पष्टही कहे देतेहैं कि भय आयाही चाहताहै ॥ २२ ॥ परन्तु विजय हमारी अवश्य होगी। क्योंकि यह अति भयानक वञ्जुल पक्षी मानों हमारी युद्ध विजय कहता हुआ शब्द कर रहाहै ॥ २३ ॥ फिर जब महा तेजस्वी श्रीराम लक्ष्मणजी उस समस्त वनको ढूंढ रहेथे कि इतनेमेंही एक विपुल शब्द मानों उस वनको विध्वंस करता हुआ होनें लगा ॥२४॥ उस वनमें एकाएकी प्रचंड पवन चलनें लगा, और इस वायुके चलनेंसे वृक्ष आपसमें टकरानें लगे। तब उसमेंसे एक शब्द समस्त वनको शब्दायमान करता उत्पन्न हुआ ॥ २५ ॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित खड्ग धारण करके "यह शब्द कहांसे हुआ" यह जाननेंके लिये अभिलाषी होकर इधर उधर देखतेथे कि चौडी छातीवाला बृहदाकार एक राक्षस सहसा देख पडा॥२६॥उसका पेट बहुत बडा व नाम उसका कवन्धथा, वह श्रीरामचंद्रजीके आगे आनकर खडा होगया,उसके मस्तक और गर्दन नहींथी शरीर बहुत बडाथा,मुख पेट में था॥२७॥रुवें भालेके समान तीखे और सीधेथे आकार उसका महा पर्वतकी समान ऊंचाथा स्वर मेघके गर्जनेंकी तुल्य, रंग नीले मेघकी समान, व स्वभाव और आकार उसका बडा भयंकरथा२८॥ और उसका नेत्र यह अग्निकी ज्वालाके समान प्रदीप्त और बडी२ धूमिली पलकें इस परथीं और यह नेत्र बडाभी बहुत था ॥ २९ ॥ और उसका दूसरा नेत्र छातीमें था यह नेत्र अतिशय भयंकर और तीक्ष्ण दिखावका था, उसका मुखभी बडा भारीथा और उसके मुखमें बडे २ दांतोंकी पंक्तियांथीं, वह उस मुखसे मानो लीलेही लेताथा ॥ ३० ॥ और वह अपनी चार २ कोशकी लंबी दोनों बांहोंसे पकड २ ऋक्ष, सिंह, मृगादिकोंको भक्षण करता चला आताथा ॥ ३१ ॥ वह अपनी दोनों बाहोंसे विविध प्रकारके मृग पक्षी, ऋक्ष और मृग यूथोंको पकडता और अपने मुखमें

छोडताथा ॥ ३२ ॥ जिस मार्गसे होकर राम लक्ष्मणजीको जानाथा, वह उसीको रोके हुये पडाथा, तब राम लक्ष्मणजीनें घूमकर एक कोश पर जाकर देखा तो ॥ ३३ ॥ अति घोर दर्शन दारुण भयंकराकार बडे शरीरवाला कवन्ध दिखलाई पडा वह अपनी दोनों भुजाओंसे जीव जन्तुओंको सब प्रकारसे पकडताथा और उसके शरीरकी गठन देखनेंसे ठीकही वह कवंध ज्ञात होताथा ॥ ३४ ॥ फिर महा बलवान कबन्धने दोनों बडी २ वाहें फैलाकर राम और लक्ष्मण दोनोंकोही बलसे पीडन करकै दोनोंको एक साथही ग्रहण करलिया ॥ ३५ ॥ दृढ धनुष और खड्ग धारण किये हुए तीव्र तेजमान्! महा बलवान्, महाबाहु, वह दोनों भ्राता कबन्धसे खेंचे जाकर अवश होगये ॥ ३६ ॥ श्रीरामचन्द्रजी तो स्वभावसेही धीर्यवान् और शूरतासंपन्नथे, वह तो कुछभी व्याकुल न हुये, परन्तु लक्ष्मणजी बालक और अनाथ होनेंके कारण एकवारही महा व्याकुल होगये ॥ ३७ ॥ और शोक करके राघव नंदन श्रीरामचन्द्रजीसे बोले कि हे वीर! देखो हम विवश होकर राक्षसके वश हुयेहैं ॥ ३८ ॥ इस कारण एक मात्र हमकोही देकर आप छूट जाइये। और हमें इस राक्षसके आगे बलिकी भांति देकर यथा सुखसे आप भाग जाइये ॥ ३९॥ हे काकुस्थ राम! हम निश्चयही समझतेहैं कि आप शीघ्रही वैदेहीको प्राप्त होंगे, और पिता पितामहका राज्यभी शीघ्रही आप करेंगे ॥ ४० ॥ अब इस समय यही प्रार्थनाहै कि आप राज्य पदपर प्रतिष्ठित होकर आप सदाही हमको याद करते रहा कीजिये जब लक्ष्मणजीनें इस प्रकार कहा तब श्रीरामचंद्रजी उनसे बोले ॥ ४१ ॥ कि हे वीर! वृथाभीत न हूजिये तुम सरीखे पुरुष कभी व्यथित नहीं होतेहैं दोनों भाइयोंसे इसी समय वह क्रूर ॥ ४२ ॥ महाबाहु, दानव श्रेष्ठ कवन्ध कहनें लगा कि तुम्हारे कंधे बैलोंकी समान ऊँचेहैं और हाथमें तुमने बडे २ धनुष और खड्ग धारण कियेहैं, सो बताओ कि तुम कौनहो ॥ ४३ ॥ तुम लोग भाग्यसेही इस भयंकर देशमें आकर हमारे नेत्रोंके सन्मुख पडेहो तुम्हारा यहांपर क्या कार्यहै, और तुम किस कारणसे यहांपर आयेहो सो कहो॥४४॥ हम भूखे होकर यहांपर टिकरहेहैं सो तुम धनुष बाण और खड्ग धारण किये हुये तेज सींगवाले बैलकी समान यहांपर हमारे मुखमें आय

पडेहो ॥ ४५ ॥ परन्तु अब हमारे मुखमें पड तुम्हारा जीवित रहना दुर्लभहै दुरात्मा कवंधके यह वचन सुनकर ॥ ४६ ॥ श्रीरामचंद्रजी वदन सुखाकर लक्ष्मणजीसे बोले कि यह सत्यविक्रम ! प्रिया सीताजीके हरणसे विषम विपद आपडी है, सो इस्से निश्चयही प्राण संहार होनेंकी संभावनाहै तिसके ऊपर फिर वारंवार यह कष्टके ऊपर कष्ट पड रहे हैं ॥ ४७ ॥ अब तो यह महा दुःख हमको प्राप्त हुआ है, अब प्रियाके पानेकीभी आश त्याग करें । हे लक्ष्मण! सब प्राणियोंमें कालका बडा वीर्य दिखलाई देता है ॥ ४८ ॥ हे नरश्रेष्ठ लक्ष्मण! देखो हम तुम दोनों कालकेही प्रभावसे कैसे दुःखमें पडे हैं, प्राणियोंको दुःख देनेंमें कालको कुछभी डर नहींहै ॥ ॥ ४९ ॥ कालके वश हो वडे शूरवीर अस्त्र शस्त्रोंके जाननेंवाले पुरुषभी रेतेसे बनाये हुये पुलकी समान संग्राममें खस जाते हैं ॥ ५०

इतिब्रुवाणोदृढसत्यविक्रमोमहायशादाशरथिः प्रतापवान् ॥ अवेक्ष्यसौमित्रिमुदग्रविक्रमः स्थिरांतदास्वांमतिमात्मनाकरोत् ॥ ५१ ॥

सत्य और अनतिक्रमणीय दृढविक्रम सम्पन्न, प्रतापवान महायशस्वी दशरथनंदन बुद्धिमान श्रीरामचन्द्रजीनें लक्ष्मणजीको देख ऐसा कहते२ ज्ञानके प्रभावसे अपने चित्तको स्थिर किया ॥ ५१ ॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आदिकाव्ये आरण्यकांडे एकोनसप्ततितमः सर्गः॥ ६९ ॥

सप्ततितमः सर्गः

तौतुतत्रस्थितौदृष्ट्वाभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ बाहुपाशपरिक्षिप्तौकबंधोवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजी और लक्ष्मण इन दोनों भाइयोंको अपनी बाहोंकी फांसीमें बँधा हुआ वहां खडा देख कवन्ध उनसे बोला ॥ १ ॥ अरे क्षत्रिय श्रेष्ठ! दोनों जन! हम भूखे हुए हैं , विधातानें तुम दोनोंको चेतना रहित करके हमारे खानेंको भेज दिया है । इसलिये हमको देख अब तुम क्या राह देख रहे हो तैयार होवो ॥ २ ॥ उसके ऐसे वचन सुनकर लक्ष्मणजी

दुःखित व विक्रम प्रकाश करनेंमें कृत निश्चय होकर उस कालके अनुसार वाक्य श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ ३ ॥ कि यह राक्षसाधम हम दोनोंही जनको पकडे हुए है इस कारण आइये हम अभी दो खड्गोंसे इसके बडे भारी दोनों हाथ काट डालें ॥ ४॥ यह बडे आकारवाला भयंकर राक्षस केवल अपनी भुजाओंकी ही सहायतासे सब लोकोंको सर्व प्रकारसे जीत अब हम तुमको मारनेंके लिये तैयार हुआ है ॥ ५ ॥ परन्तु हे राजन्! यज्ञमें आये हुए छागोंकी समान चेष्टा रहित होकर मरना क्षत्रियोंके लिये बहुतही निंदाकी बात है ॥ ६ ॥ श्रीराम लक्ष्मणजीकी ऐसी वार्ता सुन निशाचर कबंध क्रोधित होकर मुँहबाय उनको भक्षण करनेंके लिये तैयार हुआ ॥ ७ ॥ तब देश और कालके जाननेंवाले श्रीराम और लक्ष्मण दोनों भ्राताओंनें खड्ग ग्रहण करकै उसकी दोनों भुजायें खंभे परसे काट डालीं ॥ ८ ॥ चतुर श्रीरामचन्द्रजीनें उसकी दाहिनी भुजा और वीर्यवान लक्ष्मणजीनें उसकी बांई भुजा शीघ्रतासे काट डाली ॥ ९ ॥ जब बाहें काट डाली गई तब भयंकर शब्द करता हुआ महाबाहु कबन्ध मेघकी समान घोर शब्द करकै गगनमण्डल और दशोंदिशाओंको अपने शब्दसे भर देता हुआ गिर पडा ॥ १० ॥ फिर अपनी दोनों भुजा ओंको कटा हुआ देखकर दानव कबंध रुधिरसे डूबा हुआ दोनों भाइयोंसे । बोला कि तुम कौनहो? ॥ ११ ॥ जब कबन्धनें इस प्रकारसे पूछा तब महाबलवान् शुभ लक्षण युक्त काकुत्स्थ लक्ष्मणजी कबंधसे बोले ॥१२॥ यह इक्ष्वाकु वंशमें उत्पन्न हुए हैं और श्रीराम नामसे यह लोकमें विख्यात हैं और हम इनके छोटे भाई हमारा नाम लक्ष्मण है ॥ १३ ॥ सौतेली जननी कैकेयी करकै इनकी राज्य प्राप्ति रोकी जाकर सर्व त्यागी करा यह वनको पठाये गये सो यह हमारे और अपनी भार्याके साथ वनमें विचरण करतेथे १४ कि वनमें वास करनेंके समय इन देव तुल्य प्रतापशाली श्रीरामचन्द्रजी की भार्या हरी गई हैं सो उनको ही ढूँढतेर हम लोग यहां पर आये हैं॥१५ और तुम कौन हो? जो कबन्धकी समान वनमें घूमते हो! तुम्हारी जांघ टूटी हुई हैं, और अतिशय दीप्त युक्त वदन मंडल छातीमें लगा हुआ है ॥ १६ ॥ जब लक्ष्मणजीनें ऐसा कहा तब इन्द्रके वचनका स्मरण करता हुआ कबन्ध प्रसन्न होकर बोला ॥ १७ ॥ कि आप लोग दोनों

हीं पुरुषोंमें श्रेष्ठहैं । आप अच्छी तरहसे तो आये आज भाग्यसे ही हमनें आप लोगोंको देखाहै और आपनें जो हमारे बंधन रूप हाथ काट डाले सो यह भी हमारे वडे सौभाग्यकी वात है; इसमें कुछ संदेह नहींहै ॥१८॥

विरूपंयच्चमेरूपंप्राप्तंह्यविनयाद्यथा ॥
तन्मेशृणुनरव्याघ्रतत्त्वतःशंसतस्तव ॥ १९ ॥

जिसभांतिसे हमारा इस विरूपताका रूपथा, व जिस ऊधमसे हम इस कुरूपताको प्राप्त हुये सो सब ज्योंका त्यों कहतेहैं आप श्रवण करें॥१९॥
इ०श्रीम०वा०आ०आ० सप्ततितमःसर्गः ॥ ७० ॥

एकसप्ततितमः सर्गः ।

पुरारामहाबाहोमहाबलपराक्रमम् ॥
रूपमासीन्ममाचिंत्यंत्रिषुलोकेषुविश्रुतम् ॥ १ ॥

हे महाबाहु श्रीरामचंद्रजी! पूर्वकालमें हमारा रूप अत्यन्त सुन्दर अचिन्तनीय ऐश्वर्य महाबल व पराक्रम युक्त और तीनों लोकोंमें विख्यात था ॥ १ ॥और सूर्य चंद्रमा व इन्द्रके शरीरकी समान हमारा भी रूप-था, सो ऐसा रूप धारण कर हम तीनो लोकोंको डर पाने लगे ॥ २ ॥ हम घूम २ कर वनवासी ऋषि लोगोंको भयभीत करतेथे एक समय जाते २ हमनें स्थूलशिरा नामक महर्षि को कोपित कराया ॥ ३ ॥ वे महर्षि जी विविध भांतिके वनके फूल फलादि इकट्ठे कर रहेथे कि हमने अपने रूपके गर्वसे उनको धिक्कारा और क्रोधित कराया तब उन्होनें हमारी ओर देख अति घोर शाप दिया॥ ४ ॥ कि जाओ मूर्ख! तुम्हारा रूप भी हमारे ही सा कुरूप होजायगा जब हमनें क्रोध युक्तहो उनको शापदेते हुये देखा तो शापके उद्धारके लिये प्रार्थना की, कि इसका निवारण कब होगा ॥ ५ ॥ तब शापके अन्त होनेंके लिये उन्होंने कहाकि जिस समय श्रीरामचंद्रजी तुम्हारे हाथ काट डालेंगे और विजन वनमें तुमको फूँक देंगे ॥ ६ ॥ वस उसी समय तुम अपना सुविपुल और मनोहर रूप प्राप्त कर लोगे सो हे लक्ष्मण ! हम दनुके श्रीमान् पुत्रहैं ॥७॥संग्राममें इन्द्रजी-के शापसे यह कबंधकासा रूप हमने पायाहै उसका ठीक २ वृत्तान्त यह है

कि आगे हमनें अत्युग्र तप करके ब्रह्माजी को प्रसन्न किया ॥ ८ ॥ तब उन्होंने हमको दीर्घायु प्रदानकी तिसके पीछे हमारे चित्तमें भ्रम हुआ जिस्से हमनें गर्वित होकर विचारा कि । इन्द्र हमारा क्या कर सकते हैं क्योंकि अब तौ हमनें दीर्घायु पालीहै ॥ ९ ॥ ऐसी बुद्धिमें स्थिर हो संग्राममें हमनें इन्द्रको ललकारा तब उन्होंनें अपना सौधारका वज्र हमारे ऊपर छोडा जिसके लगनेंसे ॥ १० ॥ मस्तक कनपटी आदि सब अंग हमारे शरीरके भीतर पैठ गये । तिसके पीछे हमने अपनी मौत चाही भी परन्तु उन्होनें हमें यमपुरको न भेजा ॥ ११ ॥ वरन केवल उन्होंनें इतनाही कहा कि जाओ पितामह ब्रह्माजीका वचन सत्य होवे और तुम बहुत दिनोंतक । जीवित रहो तब हमनें उनसे कहाकि आपका वज्र लगनेसे हम शिर कनपटीमुख आदि अंगोंसें रहित होगये फिर भला हम किस प्रकारसे विना कुछ खाये पिये दीर्घकालतक जीवन धारण करनें में समर्थ होंगे ॥ १२ ॥ इस बातको सुनकर इन्द्रजीने कहाकि बहुत अच्छा अब तेरी बाहें एक योजन लंबी हो जायँगी ॥ १३ ॥ यह कह कर उन्होंनें हमारे पेटमें बडे २ दांत सहित मुख भी बना दिया तबसे हम अपनें बडे हाथ फैलाकर वनचरोंको पकड२मुखमें डाललेते हैं॥१४॥ उनमें सिंह व्याघ्र ऋक्ष आदि जो मिलते उनको पकड २ कर हम भक्षण किया करतेथे, इन्द्रजीनें फिर यहभी कहाथा कि जब श्रीरामचंद्रजी और लक्ष्मणजी ॥१५॥ समरमें तुम्हारे दोनों हाथ काटेंगे तब तुम स्वर्गको जाओगे । तबसे हे राजसत्तम ! हम इसी शरीरसे इस वनमें ॥ १६ ॥ जिस २ को देख लेतेहैं उसको ग्रहण कर लेतेहैं, व यहभी हमको निश्चयथा कि इन्द्रके वचनानुसार कोई न कोई अवश्य हमको मिलता रहेगा ॥ १७ ॥ सदा अपना ऐसाही विचार रखतेहैं कुछ विशेष भ्रमभी नहीं करतेथे सो इस समय हमनें सत्य २ जाना कि श्रीरामचंद्रजी आपही हैं क्योंकि और कोई हमको नहीं मार सकता ॥ १८ ॥ क्योंकि महर्षिजीनें जो कुछ कहा सो सत्यही हुआहै, इस कारण हे श्रीरामचंद्रजी और तो हमसे कुछ नहीं हो सकता । परन्तु हे नरश्रेष्ठ! बुद्धिद्वारा आपकी कुछ सहायता कर सकेंगे ॥ १९ ॥ अर्थात् जब आप हमको अग्निमें जलादेंगे तब हम आपको एक मित्र बतावेंगे, जब इस प्रकारसे उस दनुके पुत्रनें महात्मा

धर्मात्माश्री रामचंद्रजीसे कहा तौ ॥ २० ॥ लक्ष्मणजीके सामनें उस्से श्रीरामचंद्रजी बोले कि रावण करके हमारी यशस्विनी भार्या सीताजी हरी गईहैं ॥ २१ ॥ हम उस समय भ्राताके सहित जनस्थानसे सुख पूर्वक कहींपर चले गयेथे तब वह उनको हरण करके ले गयाथा हम उस राक्षस रावणका केवल नाम मात्र जानतेहैं, परन्तु उसका रूप ॥ २२ ॥ निवास व प्रभाव कुछभी नहीं जानते । केवल शोकसे आरत हुये अनाथकी समान इसी भांतिसे वन २ में घूमते फिरतेहैं ॥ २३ ॥ सो तुम हमारे ऊपर उपकार करके हमारे ऊपर दया करो उसको बताओ और हाथियोंके दातोंसे टूटे हुये सूखे काठ बटोरकर तुमको ॥ २४ ॥ एक गढा खोद उसमें हे वीर ! हम तुमको जलादेंगे अब जो पुरुष सीताको हरण करके जिस जगह लेगयाहै. सो समस्त हमसे कहो ॥ २५ ॥ यदि यथार्थही तुम इस बातको जानतेहो तौ इस्से हमारा बडा मंगल हो जायगा, जब श्री रामचंद्रजीनें ऐसा कहा तो वह दानव श्रेष्ठ ॥ २६ ॥ अच्छा बोलनेंवाला श्री रामचंद्रजीसे बडी कुशलताके साथ कहनें लगा हमको अभी दिव्य ज्ञान नहींहै इस कारण यह नहीं जानते कि जानकी कहांहैं ॥ २७ ॥ परन्तु जो तुमको उन्हें बतावेगा, उसको हम तुम्हें बतामेंगे, आप हमें भस्म कीजिये फिर हम अपना पहला रूप प्राप्त करके जोकि रावणको जानताहै उसको आपसे बतादेंगे ॥ २८ ॥ हे प्रभो ! जिस महावीर्य राक्षसनें आपकी सीताजीको हरण कियाहै सो बिना भस्म हुये हम किसी प्रकारसेभी उनको न जान सकेंगे ॥ २९ ॥ पहले हममें बडा विज्ञानथा सो इस शापके प्रभावसे हमारा वह दिव्यज्ञान नष्ट होगया, और हम अपनेही कर्मके दोषसे ऐसे संसारमें निन्दित रूपको प्राप्त हुयेहैं ॥ ३० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! जबतक सूर्य भगवानके घोडे थककर अस्ताचलको न चले जांय क्योंकि अब अस्ताचलको जानाही चाहतेहैं तिससे पहलेही आप हमको गढेमें डालकर यथा विधिसे भस्म कर दीजिये॥ ३१॥ हे महावीर! रघुनंदन! जब यथा विधिसे आप हमको गढेमें रखकर फूंक देंगे तब हम बतलावेंगे कि कौन रावणको जानताहै ॥ ३२ ॥ हे राघव ! आप उस अच्छी वृत्तिवाले पुरुषके साथ मित्रता करलेना वह पराक्रमी वीर आपकी बडी भारी सहायता करैगा ॥ ३३ ॥

नहितस्यास्त्यविज्ञातंत्रिषुलोकेषुराघव ॥
सर्वान्परिवृतोलोकान्पुरावैकारणांतरे ॥ ३४ ॥

हे महाराज! त्रिलोकीमें ऐसा कुछभी नहींहै जिसको यह पुरुष न जानता हो वह प्रथम किसी बडेही कारणके वश होकर त्रिलोकीमें घूमा है ॥ ३४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० आर० एकसप्ततितमः सर्गः ॥ ७१ ॥

द्वासप्ततितमः सर्गः ॥

एवमुक्तौतुतौवीरौकबंधेननरेश्वरौ ॥
गिरिप्रदरमासाद्यपावकंविससर्जतुः ॥ १ ॥

जब कबन्धनें उन दोनों वीर शिरोमणियोंसे ऐसा कहा तब नर-श्रेष्ठ श्रीरामचंद्र व लक्ष्मणजीने पर्वतकी गुफामें लेजाकर उसको अग्नि देदी ॥ १ ॥ लक्ष्मणने बडी २ उल्काओंको प्रज्वलित करके चारों ओर अग्नि लगादी तब चिता भली भांतिसे जलनें लगी ॥ २ ॥ तब कबन्धका घीके पिंडेकी समान चरबीसे परिपूर्ण बडा भारी शरीर धीरे२ जलनें लगा ॥ ३ ॥ जब चिता जल कर रहगई तब महा बलवान कबंध उसी समय चिताको कंपायमान करता हुआ निर्मल वस्त्र और दिव्य माला धारण करके धुआं रहित अग्निकी समान उसमेंसे निकला ॥ ४ ॥ और दिव्य कांति युक्त शरीरसे वेगमें भर आनंद सहित उसी समय आ-काशको गया उसके समस्त अंग प्रत्यंग गहनोंसे भूषितथे ॥ ५ ॥ तिसके पीछे वह अतिशय उजले हंस युक्त यशस्कर विमानमें बैठकर अपनी शरीरकी प्रभासे दशो दिशाओंको प्रकाशता हुआ ॥ ६ ॥ आकाशमें उठ श्रीरामचंद्रजीकी ओर दृष्टि करके कहनें लगा कि हे रघुनंदन! जिस उ-पायसे आप सीताको प्राप्त कर सकेंगे वह रीति ठीकर२सुनो ॥ ७ ॥ सन्धि, विग्रह, यान, आसन, द्वैधी भाव और समाश्रय, यह जो छैः युक्ति व उपा-यहैं, सो राजा लोग इनकी सहायतासेही सब वातोंका विचार करतेहैं और विना इनका आश्रय लिये किसी कार्यकीभी सिद्धि नहीं होती ॥ ८ ॥ सो इसमें दुर्दशाके समय समाश्रय नामकजो उपायहै, उसका आश्रय करना कहाहै सो जब बहुतही दुर्दशा होजाय तब लोग उसका आश्रय करतेहैं, सो इस समय आपकोभी इसी समाश्रयके आश्रय लेनेंका प्रयोजन हुआहै

क्योंकि इस समय आप लक्ष्मणजीके सहित वैसेही दुर्दशासे ग्रसे जाकर राज्यादिसे भ्रष्ट हुएहैं ॥ ९ ॥ और इसी कारणसे आपके ऊपर तुम्हारी स्त्रीका हरण स्वरूप महा दुःखभी आनकर पडाहै । इस कारणसे हे राजवर! आपको दूसरेके सहित जिसका परिवारभी बहुत हो; उस्से अवश्यही मित्रता करनी होगी, हमनें भली भांतिसे सोच विचारकर देख लियाहै कि ऐसे उपायका अवलंबन न करनेंसे आपके कार्यकी सिद्धि नहीं होगी ॥ १० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी सुनिये एक सुग्रीव नामक वानरहै उसके भाईका नाम जो कि इन्द्रका पुत्रहै वालि है; उस वालिनें क्रोधकर सुग्रीवको घरसे निकाल दियाहै ॥ ११ ॥ अब वह सुग्रीव ऋष्यमूक पर्वतपर अपनें चार वानरोंके सहित रहताहै । यह ऋष्यमूक पर्वतके चारों ओर पंपानदीतक शोभित हो रहीहै ॥ १२ ॥ वह वानरेन्द्र सुग्रीव महा वीर्यवान्, महा तेजस्वी, महा दीप्तिमान, सत्यप्रतिज्ञ, नीतिशास्त्रका जाननें वाला, धारण शक्ति युक्त महान् ॥ १३ ॥ दक्ष प्रगल्भ प्रकाशमान और महाबल पराक्रम युक्तहै । परन्तु उस महात्माको राज्यके कारण वालिनें घरसे निकाल दियाहै ॥ १४ ॥ वह निश्चयही सीताके ढूंढनें भालनेंमें आपका सहायक और मित्र होगा । सो आप अब शोक करनेंमें अपने मनको न लगाइये वहां जाइये ॥ १५ ॥ कोईभी होनहारको नहीं मेट सकता, जो होनहारहै वह अवश्यही होगी, हे इक्ष्वाकुश्रेष्ठ! कालकी गति बडी दुर्गमहै ॥ १६ ॥ इस कारणसे हेवीर! आप शीघ्रही इस स्थानसे महा पराक्रम वान सुग्रीवके पास जाकर उस्से मित्रता कर लीजिये हे रघुनंदन! इसी समय आप चले जाइये ॥ १७ ॥ प्रज्वलित अग्निके सन्मुख उसको साक्षीकर सुग्रीवसे मित्रता कीजिये, परन्तु उस वानरनाथका अपमान आप कभी न कीजिये ॥ १८ ॥ क्योंकि वह कृतज्ञहै कामरूपी इच्छानुसार रूप धारण करलेनेंवालाहै वीर्यवान्भीहै, और विशेष करके इस समय स्वयंभी किसीकी सहायता चाहताहै ॥ सो आपभी उसके कार्यको कर देंगे ॥ १९ ॥ फिर वह कार्यका चाहनेंवाला सुग्रीव सफल मनोरथ हो आपका कार्य भी अवश्य कर देगा वह ऋक्षराजकी स्त्रीमें सूर्य भगवानसे उत्पन्न हुआ है, और इस समय भाईकी शंकासे पंपाके किनारे २ फिरा करता है॥२०॥

वह सूर्य नारायणका औरसपुत्र वालिके संग वैर होनेंके कारण दुःखित है इस्से आप अस्त्र शस्त्र दूर धरकर ऋष्यमूक पर्वत पर बैठे हुए उस वानर नाथसे ॥२१॥ सत्यताके साथ मित्रताई कीजिये हे राघव! वह वानर श्रेष्ठ सब स्थानोंमें कपि कुंजरोंके साथ जाजाकर ॥ २२ ॥ फिर भली भांतिसे नरमांसके खानें वाले राक्षसोंकेभी लोकमें चला जायगा हे राघव ! लोकमें ऐसा कोई स्थान नहीं जिसे सुग्रीव न जानता हो ॥ २३ ॥ हे शत्रु-ओंके तपानें वाले रघुनन्दनजी ! सहस्र किरण सूर्य भगवानकी किरणें जहांतक पडती हैं, उतनें बीचमें जितनी २ नदियां और बडे २ पर्वत व पर्वतोंकी गुफा हैं ॥ २४ ॥समस्त जगत्में जहां कहाँ आपकी भार्या जानकीजी होंगी सो हे रघुनन्दन! यह सुग्रीव ढुँढवायकर आपसे मिला देगा कारणकि वह तुरंत सब दिशाओंमें बडे शरीरवाले वानरोंको पठावेगा ॥ २५ ॥ व तुम्हारे वियोगसे शोच करती हुई श्रीजानकीजीको वह रावणके घरमें हुई तौ वहांसेभी ढूंढ लाकर आपको मिला देंगे ॥ २६ ॥

सुमेरुतुंगाग्रगतामनिंदितांप्रविश्यपाताल
तलेपिवाश्रिताम् ॥ प्लवंगमानामृषभस्तव
प्रियांनिहत्यरक्षांसिपुनःप्रदास्यति ॥ २७ ॥

अनाथा निंदा रहित सीताजी मेरु पर्वतके शिखरके अग्रभागमें हों अथवा पातालमें निवास करतीं हों कपिराज सुग्रीवजी वहीं जाकर राक्षसोंका नाश करकै आपकी भार्या सीताको ले आवेंगे और आपसे मिला देंगे ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आर० द्विसप्ततितमः सर्गः ॥ ७२ ॥

त्रिसप्ततितमः सर्गः

दर्शयित्वातुरामायसीतायाःपरिमार्गणे ॥
वाक्यमन्वर्थमर्थज्ञःकबंधःपुनरब्रवीत् ॥ १

कबन्ध इस प्रकारसे सीताजीके शोधका उपाय बताकर फिरभी श्रीराम चन्द्रजीसे यह अर्थ युक्त वचन बोला॥१॥कि हे श्रीरामचन्द्रजी यही वहांका कल्याणदायक मार्ग है जिधर यह फूले हुए मनोहर वृक्ष लगरहे हैं, जो

यहांसे पश्चिमकी ओर दृष्टि आते हैं ॥ २ ॥ उन वृक्षोंमें जामन, चिरोंगी, कटहर, वट, पाकर, तेंदू, पीपल, कठचंपा, आम आदि अनेक प्रकारके हैं ॥ ३ ॥और धवई, नागकेशर, अगेथू , तिलक, किलवार, श्याम, अशोक, कदम्ब, कंदैल, यह सब पुष्पित वृक्ष लगे हैं ॥ ४ ॥ हरे २ अशोक, नींबके वृक्ष सब प्रकारके औरभी उत्तम २ वृक्ष हैं सो आप उनपर चढके अथवा बलसे हिलाकर फल भूमिमें गिराकर ॥ ५ ॥ अमृत समान फल खाते पीतें हुए दोनो जने चले जाओ हे काकुत्स्थ! उस फूले वृक्ष द्वारा परिपूर्ण वनसे आप निकल जांयगे ॥ ६ ॥ तब और एक नन्दन और उत्तर कुरुदेशके समान वन मिलेगा; जिसमें सब कालमें फले ऐसे मीठे फल वाले वृक्षभी लग रहे हैं॥ ७ ॥उस वनमें सब समयमें सब ऋतु चैत्र रथ वनकी समान विद्यमान रहती हैं, वहां सब वृक्ष फल भारसे झुके हुए देख पडते हैं ॥ ८ ॥वह सब मेघों और पर्वतोंकी समान शोभायमान होते हैं । वहां परभी उनपर चढकर अथवा जोरसे हिला झुला भूमिमें गिराकर जैसा ठीक समझा जाय ॥ ९ ॥ अमृतकी समान फल वह वृक्ष आपको देंगे, इस भांतिसे दोनों भ्राता पर्वतों पर होते हुए इस बनसें उस बनमें जाय ॥ १० ॥ फिर पंपा नामक सरोवर पर पहुँचोगे, यह सरोवरमें शिवार, शर्करा, कंकर और फिसलनी भूमि नहीं है सब घाट बराबर बने हैं ॥ ११ ॥ हे राम! उसमें रेती बहुत श्रेष्ठ है विविध भांतिके कमल उसमें फूलते हैं, हंस, राजहंस, क्रौंच, कुरर आदि पक्षी ॥१२॥ पम्पाके जलमें पैरते हुए मनोहर शब्द बोलते हैं, वह मनुष्योंको देखकरभी नहीं डरते, क्योंकि पहले उन्हें किसीनें कभी नहीं मारा है ॥१३॥ हे श्रीरघुनंदन ! आप बडे शरीरवाले घीके पिंडकी समान इन सब पक्षियोंको, और रोहित, चक्र तुंड व नल नामक मछलियोंको वहां पर भक्षणकीजिये ॥ १४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! जिनके पंख नहीं होते, और बडे शरीर जिनके होतेहैं, त्वक्, और बहुत कांटौ करकै युक्त एसा श्रेष्ठ मछलियोंको बाणोंसे मारकर और अग्निमें भूंनकर आप पंपासर पर भक्षण कीजिये ॥ १५ ॥ इसके सिवाय लक्ष्मणजी आपके प्रति भक्तिके वश होकर वहांके कमल पुष्पोंमें विचरती हुई उक्त मछलियोंके समूह आपकोदेंगे ॥ १६ ॥ पंपाका जल कमल पुष्पोंकी सुगंधिसे युक्त रोग विहीन स्वास्थ कर सुशीतल, चांदी और स्फटिक मणिके समान निर्मल

जिसके पीनेंसे कोईभी क्लेश नहीं होता ॥ १७ ॥ उस समयमें लक्ष्मणजी पुरैनके पत्तोंका दोना बना वह जल लाकर आपको पिलावेंगे और बडे२ वन्दर पर्वतोंकी कन्दराओं और वृक्षोंके रहनें वाले ॥ १८ ॥ सन्ध्याके समय घूमनेके कालमें लक्ष्मणजी आपको दिखावेंगे, वह बडे २ वानर जल पीनेंके अर्थ बैलोंके समान शब्द करते हुये आतेहैं ॥ १९ ॥ हे नर श्रेष्ठ फिर पंपा पर बडे हृष्ट पुष्प नीले पीलेभी बहुतसें वन्दर वृक्षोंकी शाखा हाथमें लिये हुये आप देखेंगे ॥ २० ॥ पंपाका शीतल जल देखकर व पीकर आप शोक भूल जांयगे, और वहां फूले हुये तिलक, नक्तमालक आदिक वृक्षहैं ॥ २१ ॥ और हे रघुनंदन ! वहां पर भांति२ के कमलभी फूल रहेहैं, परन्तु उन पुष्पोंकी माला वनाकर पहरनेंवाला वहां पर कोई पुरुष नहीं रहता ॥ २२ ॥ वह फूल न कभी मुरझातेहैं, न अपने आपसे गिरतेहैं कारणकि वहां पर मतंग ऋषिके चेले जो ऋषि लोगहैं, वह एकाग्र चित्त होकर वहां रहतेथे॥ २३ ॥वह सव शिष्य ऋषि लोग अपने गुरूजीके लिये वनके फल फूल लेनें जाते हुये, वोझके मारे थक जानें पर उनके शरीरसे जो पसीनें की वूंदें पृथ्वीपर गिर पडतीथीं॥२४॥ वहीं २ स्वेद बिन्दु उस कालमें उनके तपके प्रभावसे फूल होगये हैं हे रघुनंदन ऋषि लोगोंके पसीनेंकी बूंदोंसे उत्पन्न होनेंके कारण यह सव पुष्प अविनासी होगयेहैं ॥ २५ ॥ यद्यपि सव ऋषि लोग वहांसे अन्तर्ध्यान होगयेहैं परन्तु अवतक उनकी परिचारिका श्रमणी नामक शवरी वहांपर दृष्टि आतीहै ॥ २६ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी आप साक्षात् देवता ओंकी समान सव लोकोंके नमस्कार करनें योग्य हैं नित्य धर्म परायण श्रमणी आपको अवलोकन करकै स्वर्गको चली जायगी ॥ २७ ॥ हे काकुत्स्थनंदन! जब आप पंपाके पश्चिम तीरपर जांयगे तब महर्षि मतंगका अनेक आश्रमोंमें गुप्त आश्रम दृष्टि आवैगा ॥ २८ ॥ पृथ्विीमें यह आश्रम अतुलनीय है मतंग मुनिजीके प्रभावके वशसे हाथीभी इस आश्रम काननको नहीं खलवला सकते ॥२९॥ इसी कारणसे वह वन मतंग वनके नामसे प्रसिद्ध हुआ है हे रघुनंदन! वह वन देवताओंके नंदन वनकी समानहै रमणीय है ॥ ३० ॥ उसमें अनेक प्रकारके पक्षी सुहावनी वोली वोलते हैं वहां प्रवेश करकै आप अच्छी तरहसे विहारकर सकैंगे और

पंपाके सामनेही वृक्ष समूहसे सुशोभित ऋष्यमूक पर्वतहै ॥ ३१ ॥ इस कठिन से आरोहण करनेंके योग्य पर्वतकी रक्षा छोटे सर्प किया करते हैं और यह पर्वत उदार ब्रह्माजी करकै पहले समयमें बनायागयाथा ॥३२॥ इस उदार पर्वतके शृंगपर जो पुरुष शयन करके स्वप्नमें जो धन प्राप्त करैं तो जागनेंपरभी उसको वही धन मिलताहै ॥ ३३ ॥ अधर्म कार्य करनेमें रत पापकर्म करनेवाले पुरुषके उस पर्वतपर चढनेपर राक्षस लोग उसके शयन करनेंके समय उसको पकड कर वहीं संहार करदेतेहैं ॥ ३४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी तिसके पीछे आप मतंगाश्रम निवासी पंपातट विहारी हाथियोंके बच्चोंका घोर शब्द श्रवण करोगे ॥ ३५ ॥ उन सबके सिवाय आप कुछ एक लाल वर्णकी मद धारा चुआतेहुए मेघ वर्ण वेग युक्त हाथियोंके दलके दल इधर उधर घूमते हुए देखोगे॥ ३६ ॥ वह हाथी पंपाका निर्मल सुन्दर और अत्यन्त सुखकारी सुवासित नीर पीकरके ॥ ३७ ॥ पंपा सरोवरमें विहारसे निवृत्तहो वनमें विहार किया करतेहैं । हे श्रीरामचंद्रजी! वहांपर आप रीछ ,गैंडे ,व्याघ्र, और नील मणिवत कोमल कान्ति वाले ॥ ३८ ॥ कोमल और सुन्दर बनैले पशु रुरु मृग देख शोक परित्याग करदेंगे, हे श्रीरामचंद्रजी! उस पर्वतकी कंदराभी अति शोभायमान हैं ॥ ३९ ॥ उस कंदराके द्वारपर सदाही भारी शिला लगी रहतीहै, इस कारण सरलतासे उसमें प्रवेश करना नहीं हो सकता, उस गुफाके पूर्व द्वार पर एक बडा भारी अचल जलका कुंडहै ॥ ४० ॥ उस कुंडके किनारे पर बहुत सारे फूल व फलोंसे युक्त अनेक२ भांतिके रमणीक वृक्ष लगेहैं, और वहींपर धर्मात्मा सुग्रीवजी वानरोंके सहित वास करतेहैं ॥ ४१ ॥ और वह सुग्रीवजी कभी२ उस पर्वतके शिखर परभी बैठे रहतेहैं, इस प्रकारसे वह कबंध श्रीराम लक्ष्मणजीसे बताय ॥ ४२ ॥ फूलोंकी माला पहरे, सूर्यके समान प्रकाशित आकाशमें टिका हुआ शोभित होनें लगा, उस बडे भाग्यवालेको श्रीराम लक्ष्मणजीनें देखकर ॥ ४३ ॥ उस कबंधसे कहा कि अच्छा इस समय हम सुग्रीवके निकट जाते हैं, और तुमभी स्वर्गको जाओ ॥ ४४ ॥ तब कबंध श्रीराम लक्ष्मणजीकी आज्ञा लेकर प्रसन्न होकर स्वर्गको चला ॥ ४५ ॥

सतत्कबंधःप्रतिपद्यरूपंवृतःश्रियाभास्वरस
र्वदेहः ॥ निदर्शयन्राममवेक्ष्यखस्थः
सख्यंकुरुष्वेतितदाभ्युवाच ॥ ४६ ॥

उस कालमें कबंध अपना पहला रूप प्राप्त करकै शोभा समन्वित और प्रदीप्त शरीर होकर श्रीरामचन्द्रजीकी ओर दृष्टि करकै कहने लगा कि आप सुग्रीवके साथ मित्रता स्थापन कीजिये ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वा० आदिकाव्ये आरण्यकांडे त्रिसप्ततितमः सर्गः ॥ ७३ ॥

चतुःसप्ततितमः सर्गः

तौकबंधेनतंमार्गंपंपायादर्शितंवने ॥
आतस्थतुर्दिशंगृह्यप्रतीचींनृवरात्मजौ ॥ १ ॥

जब कबंध इस प्रकारसे कहकर स्वर्गको चला गया तब श्रीराम लक्ष्मणजी कबंधका बताया हुआ मार्ग लेकर पंपानदीकी ओर पश्चिम दिशाको चले ॥ १ ॥ जिस समय श्रीराम लक्ष्मणजी सुग्रीवके देखनेंको जा रहेथे उस समय पर्वतोंके शिखरोंपर मधु समान स्वाद युक्त फल व फूल वाले अनेक २ वृक्ष उनके नयन गोचर होनें लगे ॥ २ ॥ वह दोनों भ्राता मार्गमें एक रात्रि एक पर्वतके ऊपर रहकर प्रभात होतेही पंपाके पश्चिम किनारे पर जा पहुँचे ॥ ३ ॥ पंपाके पश्चिम किनारे पर पहुँचकर शबरीका रमणीय आश्रम श्रीराम लक्ष्मणजीनें देखा ॥ ४ ॥ और उस विविध वृक्षसमूहसे समाकीर्ण रमणीय आश्रमको देखते हुये उसमें प्रवेश करकै शबरीके निकट आये ॥ ५ ॥ तब सिद्ध शबरी श्रीराम लक्ष्मणजीको देखतेही हाथ जोडे हुये बुद्धिमान् दोनों भाइयोंके चरणोंमें प्रणाम करती हुई ॥ ६ ॥ और यथाविधिसे पाद्य आचमनीयभी शबरीने किया, तिसके पीछे श्रीरामचन्द्रजी धर्म निरता शबरीसे बोले ॥ ७ ॥ कि तुमनें सुख व विघ्नोंको तौ जीत लिया है, तुम्हारा तप बढता तो है और क्रोध तौ तुम्हारे वशमें है, हे तपोधने! ॥ ८ ॥ तुम्हारे सब नियम तौ भली भांतिसे चले आते हैं, तुम्हारे मनको तौ सदा सुख रहता है? हे चारुभाषिणी! तुम्हारे गुरुकी सेवा करनी तौ तुम्हें फलवती हुई है ॥ ९ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीनें इस प्रकार पूछा तौ सिद्ध लोगोंकी अभिमता और तप सिद्धा शबरी सामने

निकल कर उनसे निवेदन करती हुई ॥ १० ॥ आज आपके दर्शनोंसे मेरे तपकी सिद्धि हुई, जन्म सफल हुआ, गुरु गणोंकी पूजा भली भांतिसे होगई ॥ ११ ॥ और तपस्याभी सार्थक होगई, हे पुरुषोत्तम! आप देवताओंमें श्रेष्ठ हैं सो इस समय आपकी पूजा करनेसे हमें ब्रह्मलोक प्राप्त होगया ॥ १२ ॥ हे सौम्य! हे मान देनें वाले हे शत्रुघाती! आपके शुभकारी नेत्रोंकी दृष्टि पडनेंसे हम पवित्र होगईं, अब आपके प्रसादसे हमको सब अक्षय लोकोंकी प्राप्ति हो जायगी ॥१३ ॥ जिनकी हम सेवा करतीथीं वह ऋषि आपके चित्रकूट पर्वतपर पधारतेही अनुपम देदीप्यमान देव विमानोंमें सवार होकर इस आश्रमसें स्वर्गको चले गये हैं ॥ १४ ॥ वह सब महा भाग्यवान धर्मात्मा महर्षि लोक स्वर्ग जानेंके समय हमसे कह गये कि श्रीरामचन्द्रजी तुम्हारे इस पुण्य जनक आश्रममें आवेंगे ॥ १५ ॥ सो तुम लक्ष्मणजीकी और उन श्रीरामचन्द्र-जीकी अतिथिकी समान आदरसत्कारसे पूजा करना,उनके दर्शन करनेसे-ही तुमको सर्व अक्षय लोकोंको प्राप्ति हो जायगी ॥ १६ ॥ हे पुरुषोत्तम! उस समय वहां महाभाग्यशाली महर्षिलोग हमसे इस प्रकार कह गयेथे हे पु-रुषश्रेष्ठ! तभीसे हमनें विविध भांतिके भले २ फल ढूंढकर॥ १७ ॥आपकी सेवा के लिये धररक्खे हैं यह सब फल इसी पंपाके तीर वाले वृक्षोंके हैं धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी शबरी करके इस प्रकार कहे जाकर उससे यह वचन बोले ॥ १८ ॥ कारणकि श्रीरामचन्द्रजीनें अपनें मनमें विचार लिया कि यह परमात्माकोभी भली भांति जानती है यह समझ उससे कहाकि हमनें कबंधसे तुम्हारा प्रभाव और आचारका माहात्म्य ॥ १९ ॥ श्रवण कियाथा सो तुम यदि उचित समझो तौ हम उसको प्रत्यक्ष उन-का वृत्तान्त देखनेंकी इच्छा करते हैं, श्रीरामचन्द्रजीके मुखसे निकला हुआ ऐसा वचन सुन ॥ २० ॥ शबरी उन दोनों भ्राताओंको वह बडा वन दि-खाकर कहनें लगी कि मृग और पक्षियोंसे परिपूर्ण काले बादरकी समान श्यामरंगका यह वन देखिये ॥ २१ ॥ हे रघुनन्दन! इस वनका नाम मतंग वन प्रसिद्ध है, हे महाद्युतिमान् । इस वनमें विशुद्धात्मा हमारे गुरु लोग मंत्र पूजित यज्ञ करनेंके लिये वेदके मंत्रोंसे काल हरण करतेथे ॥ २२ ॥ यह वही प्रत्यक्स्थल नामक वेदी है; जिस वेदीपर बैठकर हमारे परम

पूजनीय गुरु लोग पुष्पांजलि सहित श्रम युक्त हाथोंसे देवताओंकी पूजा करतेथे ॥ २३ ॥ हे रघुवर! देखिये यह वही अनुपम प्रभायुक्त वेदी उनके तपोवलसे आजभी अपनी दीप्तिसे दशों दिशाओंको दिपा रही है ॥ २४ ॥ जब वह ऋषि लोग उपवासोंके परिश्रमसे आलस्यीहोकर स्नान करनें-को जानेंमें समर्थ हीन होगये, तब उनके चिंता करतेही यह सात समुद्र यहां आगये सो आप देखिये॥२५॥ हे रघुनन्दन! ऋषि लोगोंनें स्नान करके यहां वृक्षोंपर जो अपने गीले वस्त्र टांग दिये हैं सो वह अवतक नहीं सूखे हैं॥२६ उन्होनें देवताओंका कार्य साधन करनेंके लिये जो नीले कमलके सहित यह जो समस्त पुष्प देवता ओंको चढायेथे, सो वह अवतक नहीं मुरझायेहैं ॥ २७ ॥ आप सब वन देख चुके, और जो बात श्रवण करनेंके योग्यथी वह श्रवणभी कर चुके अब हमनें इस देहके छोडनेंका अभि-लाष कियाहै सो आप आज्ञा दीजिये ॥ २८ ॥ जिनका यह आश्रमहै और जिनकी हम परिचारिका हैं उन विशुद्धात्मा महर्षियोंके निकट जानेंका हमारा अभिलाष हुआहै ॥ २९ ॥ श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मणजीके सहित शबरीकी यह धर्म युक्त वार्त्ता सुनकर अतिशय हर्षित हुये और बोले कि यह बडे आश्चर्य की बातहै ॥ ३० ॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी दृढव्रत वाली शबरीसे बोले कि हे भद्रे! तुमने हमारी पूजा भली भांतिसे की अब तुम सुख सहित जहां जाना चाहती हो वहां पर चली जा-ओ * ॥ ३१ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें इस प्रकारसे आज्ञादी तब जटा,चीर. और काले वसन पहरे हुये शबरीनें अपने शरीरको अनलमें आहुतिदे३२॥ प्रज्वलित अग्निके समान स्वर्गको चली गई स्वर्ग में गमन करनेंके समय उसके आभरण मालायें व चंदनादि सुगन्धित लगानेंके सब पदार्थ दिव्य होगये ॥ ३३ ॥ उसकालमें वह दिव्यही वस्त्र पहरनेके कारण परम मनोहारिणी दृष्टि आतीथी और वह दीप्तिमान विद्युतकी समान उसस्थानको प्रकाशित करनेंलगी ॥ ३४ ॥

---

* भामिनि जो तैं नेहलगायो॥मुक्त भई सब आस पासते ब्रह्मलोक फलपायो॥युगयुग की-रति चलिहै तेरी कियो ऋषिन मन भायो ॥ प्रातकाल तेरो सुमिरन करिकै रैनको पाप न-शायो ॥ यों बलदेव प्रसाद कहैं प्रभु वेद विरद अस गायो ॥

यत्रतेसुकृतात्मानोविहरंतिमहर्षयः ॥
तत्पुण्यंशबरीस्थानंजगामात्मसमाधिना ॥ ३५ ॥

उसके गुरु वह विशुद्धात्मा महर्षि गण जिस स्थानोंमें । विराजमानथे श्रमणी भी आत्मसमाधिके प्रभावसे परम पवित्र उस पुण्य लोकको चली गई ॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये आर० चतुः सप्तति तमः सर्गः ॥ ७४ ॥

पंचसप्ततितमः सर्गः ॥

दिवंतुतस्यांयातायांशबर्यांस्वेनतेजसा ॥
लक्ष्मणेनसहभ्रात्राचिंतयामासराघवः ॥ १ ॥

जब शबरी अपनी तपस्याके प्रभावसे स्वर्गको चलीगई तब धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी लक्ष्मण जीके सहित चिन्तनकरनें लगे ॥ १ ॥ वह उन धर्मात्मा महर्षि गणोंका अद्भुत प्रभाव विचार एकही परम हितकारी अपने भ्राता श्री लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २ ॥ हे सौम्य हमने उन विशुद्धात्मा महर्षियोंके आश्चर्य युक्त यह आश्रम देखे यहांपर मृग और व्याघ्र लोग वैर भाव छोडकर विचरण करते हैं और अनेक प्रकारके पक्षी भी वास करतेहैं ॥ ३ ॥ उनके स्थापन किये हुये इन सप्त सागर तीर्थोंमें हमनें यथा विधान से स्नान और पितृ लोगोंको तर्पण भी किया ॥ ४ ॥ इससे हमारे अशुभ भी नष्ट होगये और कल्याण भी प्राप्त होगया हे लक्ष्मण इस्से हमारा मन इस समय बहुत ही प्रफुल्ल हो रहाहै ॥ ५ ॥ और हे नर व्याघ्र इस समय हमारा हृदय भी शुभ भावसे पूरितहै सो अब अच्छाही होगा इस कारण हम उस मनोहर पंपासर पर चलें ॥ ६ ॥ जिस पंपाके निकट ही ऋष्यमूक पर्वत प्रकाशित होरहाहै जहांपर धर्मात्मा सूर्यके पुत्र सुग्रीवजी बसतेहैं ॥ ७ ॥ नित्य वालिके भयसेभीत चारों वानरों सहित वहांपर रहतेहैं हम चारों वानरों के सहित शीघ्रही उन वानरश्रेष्ठ सुग्रीव जीको वहांपर देखने चलेंगे॥८॥कारण कि सीताजीको खोजना हमारा कार्य है,वह उन्हीं सुग्रीवके हाथमें है जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब लक्ष्मणजी उनसे बोले ॥ ९ ॥ कि हमारा मन भी शीघ्रता करताहै इसकारण जलदी चलिये । यहसुन पृथ्वीश्वर दोनों भाई उस मतंगाश्रमसे

चले॥१०॥और वहांसे चलकर पंपा नदीके तीर पर पहुँचे वहांपर देखा तो उसके चारों ओर अनेक प्रकारके पुष्पित वृक्ष लगेथे॥ ११ ॥ वहांपर पहुंचने के समय कोयल अर्जुन तोता मैना आदिपाक्षी गण वहांपर शब्द कर रहेथे ऐसा शब्दय मान होता हुआ इस महावन ॥१२॥ ऐसे जात२ के वृक्ष और समस्त सरोवरोंको देखते कामसे संतप्त हो श्रीरामचंद्रजी उस श्रेष्ठ ह्रदके तीर पहुंच गये ॥ १३ ॥ उस ह्रदका जल अति मीठा शीतल है और यह मतंग सरनामसे विख्यातथा ऐसे उस उत्तम जल वहते हुये मतंग सरमें श्रीरामचन्द्रजीनें स्नान किया॥१४॥तब वहां पर अव्याकुलतासे और मोहित चित्तसे श्रीरामचन्द्रजी गये फिर दशरथ कुमार श्रीरामचन्द्रजी शोकसे व्याकुल हो॥ १५ ॥ पुरेनके पत्तोंसे छाये और कमल फूलोंसे छाया पंपा सरोवर पर तिलक,अशोक, पुन्नाग वकुल,उद्दाल इत्यादि वहुत लग रहे हैं ॥ १६॥ मनोहर वन उसके किनारे पर लगा हुआ है पद्मों करके आवृत और स्फटिककी समान निर्मल जल और सुख स्पर्श चिकना रेतीसे घिरा हुआ है १७ वह पंपासर मछलियें और कछुओंसे शोभित फैली फली बेलें जिसको सखियोंके समान घेरे हुये हैं जिसके किनारे२बहुतसे वृक्ष लगे हुये हैं, गन्धर्व, किन्नर, सर्प, यक्ष, और राक्षसगण ॥ १८ ॥ उसके इधर उधर घूमते हैं और वह अनेक जातिके वृक्ष और लताओंसे घिरा हुआ है उसका जल शीतल और महाशोभायमान है ॥ १९ ॥ वह कहीं लाल कमल और कल्हारसे छारहाहै इस्से लाल वर्ण,और कहीं नीलेकमल फूलोंके खिलनेंसे नीला और कहीं बबूलोंसे छायाजानेके कारण श्वेत वर्ण हो गया है और अनेक वर्णोंसे चित्रित होनेके कारण रंग बिरंगी हाथीकी झूलकी समान शोभायमान है ॥२०॥वह अरविन्द, उत्पल और पुष्पित आम वनके समूह पूरित और मयूरोंके शब्दसे शब्दायमान् ॥ २१ ॥ पंपा सरोवरको रामचन्द्रजीनें लक्ष्मणजीके सहित देखा उसको देखकर, तेजस्वी दशरथ कुमार श्रीरामचन्द्रजी विलाप करनें लगे ॥ २२ ॥ श्रीरामचंद्रजीने फिर देखाकी तिलक वीज पूरक, वट लोध, द्रुम पुष्पित करवीर फूला हुआ,पुन्नाग ॥२३॥ मालती,कुंद,गुल्म,भांडीर, निचुल, अशोक सप्तवर्ण केतकी, चमेली अतिमुक्तक॥२४॥ इत्यादि औरभी अनेकप्रकारके वृक्ष वहां शोभित होरहेहैं श्रीरामचंद्रजी बोले, इसके ही किनारे पहले कहा

हुआ धातुओंसे सजा हुआ पर्वत ॥ २५ ॥ विख्यात ऋष्यमूक विचित्र पुष्प युक्त वृक्षोंसे युक्तहै महात्मा हरि ऋक्षराजके पुत्र ॥ २६ ॥ महावीर सुग्रीव नाम करके वहां वसते हैं सो हे नरश्रेष्ठ! उस वानर नाथ सुग्रीवके पास चलें ॥ २७ ॥ सत्य विक्रमवान् श्रीरामचंद्रजी फिर लक्ष्मणजीसे बोले कि हे लक्ष्मण! हम राज्यभ्रष्ट दीन और सीतागत प्राण होकर किस भांतिसे सीताके विरह में जीवन धारण करें? ॥२८॥ श्रीरामचंद्रजी सीताजीमें चित्त लगाये और मदनसे पीडितहो लक्ष्मणजीसे ऐसा कह महाशोक प्रकाश करते हुये उस कमल पुष्पोंसे युक्त मनोहर पंपाके तीरमें पैठते हुये॥२९॥

क्रमेणगत्वाप्रविलोकयन्वनंददर्शपंपांशुभदर्शकाननाम्॥
अनेकनानाविधपक्षिसंकुलांविवेशरामःसहलक्ष्मणेन॥३०॥

और चारों ओरका विविध भांति वन देखते भालते जाते हुये धीरे २ अनेक प्रकारके पक्षियोंके समूहसे आकुल सुन्दर वन शोभित पंपासरमें बैठे ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये पंडितज्वालाप्रसादमिश्रकृत टीकायां आरण्यकांडे पंचसप्ततितमः सर्गः ॥ ७५ ॥

आरण्यकांडः समाप्तः ॥

अतःपरंकिष्किधाकांडंभविष्यतितस्यायमाद्यःश्लोकः॥
सतांपुष्करिणींगत्वापद्मोत्पलझषाकुलाम् ॥
रामःसौमित्रिसहितोविललापाकुलेंद्रियः ॥ १ ॥

इसके आगे किष्किधाकांड है जिसके प्रथम यह श्लोक है कमल, लाल कमल मछलियोंसे युक्त पंपासरोवरके किनारे लक्ष्मण सहित जाकर महात्मा रामचन्द्र व्याकुलेन्द्रियहो विलाप करनें लगे

दोहा—रघुनंदन शंकट हरन, विघ्न विनाशन आप।
ब्रह्म सच्चिदानंदघन, दूर करो संताप॥

गुणसागर नागर परम, नरतनु धारि खरार ।
लीला विस्तारी जगत, नित मंगल दातार ॥
जो नर नित सुमिर करैं, गुणगण प्रभुके गाय।
ते बिनु श्रम संसारके, पारभये सुख पाय ॥
भक्तन हित कारण धरो, प्रभुनें मनुज शरीर ।
ऋषि मुनियनकी दासकी, दूर करी सबपीर ॥
कृपा अनुग्रह अस करो, रहै तुम्हारे ध्यान ।
प्रभु ज्वाला परसादको, यह वरदान न आन ॥
जिमि २ ऋषियनसों भयो, प्रभुको शुभ संवाद ।
सो सब भाषामें कियो, लख ज्वालापरसाद ॥
पढहिं सन्तजनकृपा करि,सुमिरहिंलक्ष्मणराम ।
यामें कुछ संशय नहीं, सिद्ध होत सब काम ॥

इदं पुस्तकं श्रीकृष्णदासात्मज खेमराजेन स्वकीये
श्रीवेङ्कटेश्वराख्य यंत्रालये मुद्रापितम्

इति आरण्यकांड समाप्त ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना—
खेमराज श्रीकृष्णदास
"श्रीवेङ्कटेश्वर" छापाखाना बम्बई.

सबको विदित हो कि हमारे यहां मूल संस्कृत और हिंदी
भाषाटीकासहित वाल्मीकीय रामायण छपरहीहै जिस्में
बालकाण्ड अयोध्याकाण्ड आरण्यकाण्ड और
किष्किन्धाकाण्ड छपकर विक्रयार्थ
उपस्थितहै बाकीके तीन कांड
बहुत जल्दी छपेंगे

इति श्रीमद् वाल्मीकीय रामायणे भाषाटीका समेते आरण्यकांड सम्पूर्णम्

सुग्रीव सख्य.
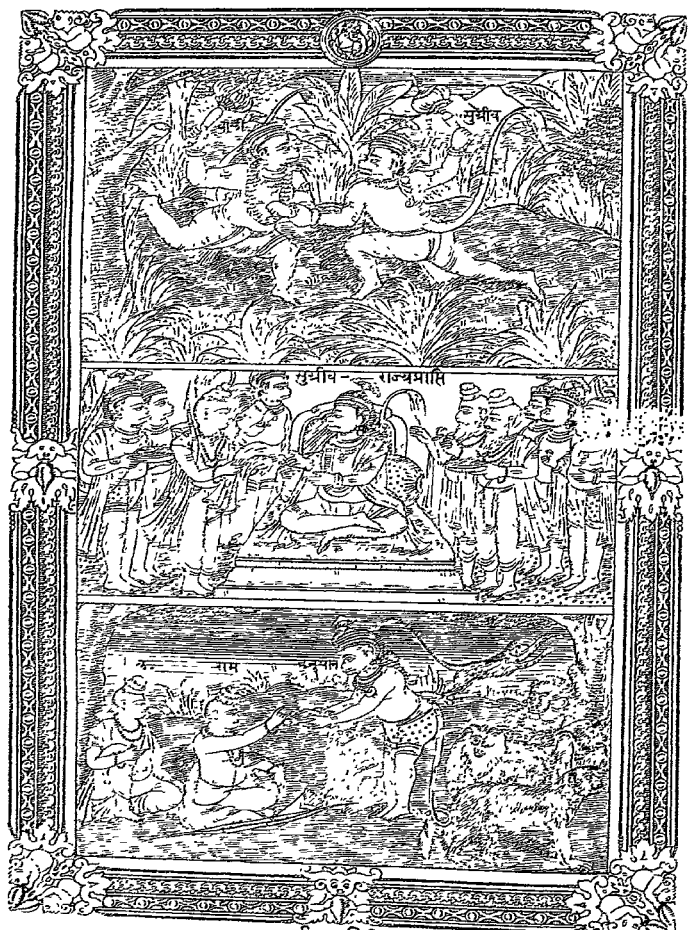
सीताशुद्धि विचार.

श्रीरामचन्द्रायनमः ।

श्रीवाल्मीकीयरामायणभाषा।

किष्किन्धाकांड।

सतांपुष्करिणींगत्वापद्मोत्पलझषाकुलाम् ॥
रामःसौमित्रिसहितोविललापाकुलेंद्रियः ॥ १ ॥

दोहा—सीता ढूढन चित दिये, बाण विराजत हाथ ॥
श्यामवरणदुखहरणभव, वंदौं श्रीरघुनाथ ॥ १ ॥

जब इस प्रकार श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित पद्म, उत्पल, और मछलियोंसे परिपूर्ण उस परम मनोहर पुष्करिणी पर गये तब उनकी इंद्रियें व्याकुल होगईं, उस समय वह बहु भांतिसे विलाप करनें लगे ॥ १ ॥ और फिर जब उस पंपा सरोवरको भली भांति देखा, तब हर्षमें भरनेंके कारण उनकी इन्द्रियां कांपनें लगीं, और वह कामदेवके वशहो लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २ ॥ हे सुमित्राकुमार! देखो, देखो, वैदूर्य मणिकी समान स्वच्छ जलवाली पंपा, खिले हुये कमल और कमल पत्र व विविध भांति वृक्षोंके विराजित होनें पर कैसी शोभित होती है ॥ ३ ॥ देखो लक्ष्मण! पंपाके निकट वाले वन कैसे मनोहर दिखलाई देते हैं, और वहां ऊंचे शिखर वाले शैल और वृक्ष कैसे मनोहर रूपसे विराज रहे हैं ॥ ४ ॥ तुम विचार करके देखोकि हमारा हृदय राज्य भ्रष्ट होनेंसे, भरतजीके जटा वल्कलादि धारण करनेंसे, व सीताजीका हरण हो जानेंके शोकसे बहुतही सन्तापित है और इससे मनको पीडाभी होती है, और माता पिताके छूटनेंकाभी महा दुःख है॥ ५ ॥ तथापि शीतल जल वाली अनेक प्रकारके पुष्पोंसे शोभित, विचित्र कानन युक्त यह पंपा हमारे मनको हरण करके सुख और शांति दे रही है ॥ ६ ॥ यह पंपा सरोवर कमल फूलोंसे व उनके पत्रोंसे छा रहा है इसका दर्शन बडाही मनोहर है, इस पर सर्प, व्याल, मृग, व पक्षीगण सदाही घूमा करते हैं ॥ ७ ॥ इसका नीला पीला व

हरित काला वृक्षोंसे ढेरके ढेर फूलोंके गिरनेंसे अधिक तर शोभा पा रहा है ॥८॥ पुष्प भारसे शोभित सब तरु शिखर पुष्पिताग्र लता वेलोंसे घिरनेके कारण परम शोभा धारण कर रहे हैं ॥ ९ ॥ हे सुमित्रासुवन! इस समय इस स्थानमें पंच बाणका जगानेंवाला वसंत काल वर्त्तमान है, सुख दायक समीर सन सन करके मन्द २ चल रही है, मनोहर मधु मास (चैत्र) मधुर सुगंधिके सहित आया हुआ है, वृक्षोंके शिखर फूल फलसे शोभित होरहे हैं, इसकारणसे यह स्थान कैसा मनोहर हो गया है ॥ १० ॥ लक्ष्मण! देखो जिस प्रकारसे जलधर गण जलकी वर्षा करते हैं, वैसेही पुष्प वर्षण कारी वनोंका कैसा अपूर्व मनोहर रूप प्रकाशित हो रहा है ॥ ११ ॥ मनोहर पत्थरोंके ऊपर उगे हुये वृक्ष पवनके वेगसे कंपायमान हो पृथ्वीके ऊपर फूलोंके ढेरके ढेर छोड उसको ढके लेते हैं ॥ १२ ॥ हे भइया! देखो! वृक्षोंके ऊपरसे बहुतसे फूल गिर पडे हैं और बहुत फल चारों ओर गिर रहे हैं इससे ऐसा जान पडता है मानों पवन उन फूलोंकी राशिसे विहार कर रहा है ॥ १३ ॥ और पवन बहु कुसुम शाली वृक्षोंकी शाखाओंको इधर उधर कंपायमान कर रहा है, इसलिये मधुपान मत्त भ्रमरगण अपनें २ स्थानसे खसक कर पवनका पीछा करते हैं ॥ १४ ॥ और पवन, मतवाले कोकिल कुलके कलरव रूप मृदंगकी ध्वनिसे नृत्य सीखकर पर्वतकीकंदरा ओंसे निकलनेंके समय मानों गान कर रहा है॥१५॥ हे लक्ष्मण! और देखो यह पवन सब शाखाओंको कंपायमान करके मानों सब वृक्षोंको बांध देता है ॥ १६ ॥ यह पवन चन्दनकी समान शीतल और सुख स्पर्श व महकता हुआ पुण्य रूप होकर प्राणियोंका आश्रय धारण करता है ॥ १७ ॥ यह देखो मधुगंध युक्त बनमें पवन करके हिलनेंसे सब वृक्ष, गुंजार करते हुये भौंरोंके द्वारा मनोहर शब्द कर रहे हैं१८॥ फिर पर्वत अपनें ऊपर ऊपर उत्पन्न मनोरम महा वृक्षोंके द्वारा मानों शिखर युक्त होकर विराजमान हो रहे हैं ॥ १९ ॥ वृक्षोंकी फुनगियां फूलोंके द्वारा ढक जानेंसे और उनके ऊपर भौंरोंके गुंजार करनें, व पवन वेगके कारण उनके चलायमान होनेंसे ऐसा जान पडता है मानों सब वृक्षोंने एक वारही नृत्य गीत आरंभ कर दियाहै॥२०॥ देखो लक्ष्मण! कठचम्पेके वृक्ष पीत फूलोंसे छाये रहने के कारण ऐसे

जान पडते हैं मानों वह सुवर्णके गहने पहने पीताम्बर धारी वृक्षोंकी समान शोभा पारहेहैं ॥ २१ ॥ हे लक्ष्मण! इस वसंतकालमें अनेक भांतिके पक्षी गण मनोहर ध्वनि कर रहे हैं तिससे हमारा सीताजीका विरह दुःख एक वारही उकसा आताहै॥ २२ ॥ इस समय हम जानकी की विरहानलमें महा संतप्त हो रहेहैं तिसके ऊपर यह पंच बाण अतिशय पीडा दे रहाहै और कोकिल कलकंठ से ध्वनि करके मानों हमारे प्रति अपना साहस दिखारहे हीहैं॥ २३ ॥ यह देखो मनोरम वनके झरनोंमें सब जल कुक्कुट हर्षित होकर कल निनाद करके हमको शोचनीय और शोकातुर करे देताहै ॥ २४ ॥ पहले जब हम प्रियाके सहित एक आश्रममें रहतेथे, उस समय यह कोकिल कलनादसे हमको पुकार कर अत्यानंद देताथा ॥ २५ ॥ यह देखो! चित्र विचित्र अनेक प्रकारके पक्षी विविध भांतिके शब्दोंसे ध्वनि करते हुये चारों ओर वृक्ष लता और पौधोंपर उड २ कर बैठते हैं ॥ २६ ॥ भइया यह देखो! अनेक जातिके पक्षी और भ्रमर अपने २ जोडेके साथ मिल और हर्षित होकर झुंडके झुंड घूम रहेहैं॥२७॥इस पम्पाके किनारे पर पक्षियोंके झुंडके झुंड जल मुरगी व कोकिला की बोलीके समान बोल आनंदित होते हैं ॥२८॥ यह सब वृक्ष भ्रमर गणोंके गुंजार करनेंसे मानों बोल रहेहैं व इसी कारणसे हमको कामोद्दीप्त कराते हैं अशोकके पत्ते अंगारोंकी समान, भ्रमर गुंजार बडे शब्दकी समान ॥ २९ ॥ नये २ पत्ते अरुण रंगकी ज्वालाके समान हो वसंत ऋतु अग्निवन मानों हमको भस्म करैगा । अब सूक्ष्म पलक नेत्रा,सुकेशी, व मीठे वचन बोलनें वाली ॥ ३० ॥ जानकीजीके बिना देखे हमारे जीवित रहनेंका क्या प्रयोजन है कारण कि यह सुन्दर वन युक्त वसंत समय ॥ ३१ ॥ कोकिलका शब्द जिसका डांड है वह हमें और जानकीजीको एक संग साथ रहनेंसे सुखदायी होता फिर कामके प्रयासों समेत वसंतके गणोंसे वढा॥३२॥यह शोकानल अति शीघ्र हमको भस्म कर देगा। प्राणप्यारी जानकीको विना देखे इन सुन्दर वृक्षोंके देखनेंसे ॥ ३३ ॥ यह काम वढताही जायगा, तिसपर विना देखे जानकीके यह हमको शोक ही उपजाता है ॥ ३४ ॥ यह वसंतकाल देखते हो देखते ठंडी पवन चलाय स्वेदको बंद करताहै और मृग शावक नयनी श्रीजानकीजीकी

चिन्ता और शोकके मारे व्याकुल कराय हमको ॥३५ ॥ बहुत ही संता-पित करता है और ऐसेही चित्ररथ नामक वनका यह महा क्रूर पवन भी हमको तपाता है । और यह मोर नाचते हुये इधर उधर शोभायमान होरहे हैं ॥ ३६ ॥ मानों स्फटिक मणियोंके झरोखोंमें बैठे हुये अपने पंख पवनसे हिला झुला रहेहैं यह सब अपनी २ मोरनियोंके साथ उन्मत्त हो रहेहैं ॥ ३७ ॥ यह सब मोर कामदेवसे व्याकुल हुए हमको अधिक काम बढाते हैं हे लक्ष्मण! देखो इस नृत्य करते हुये मोरके पास ॥ ३८॥ कामसे व्याकुल हुई मुरैलिया कैसी पर्वतों परके कंगूरों पर नाच रहीहैं । उन्हीं मोरनियोंके निकट मनसे मोरभी दौडताहै ॥ ३९॥ फिर पंख फैला-य खडा होजाताहै. कुछ विलम्बमें अपनी बोली बोल मानों उस मोरनीको हँसाताहै । हम जानते हैं कि जिस वनमें हमारी प्राणजीवनी हरीगई हैं, उस वनमें मोर नहींथे ॥ ४० ॥ इसीकारण यह मोर अपनी स्त्रीके साथ इस रमणीक वनमें नाचताहै, यदि इसके सन्मुख जानकीजी हरी जातीं तो शोकके कारण इसको नाचनेंकी याद नरहती । हेलक्ष्मण ! बिनाजा-नकीजीके यह चैत्रमास हमको तो बडाही दुष्कर जान पडताहै ॥ ४१ ॥ क्योंकि इस समयमें पशु पक्षियोंकी योनियेंभी प्रियानुराग प्रगट करतीहैं; देखो लक्ष्मण ! यह मोरनियें कामसे पीडितहो मोरोंके पास दौडी जाती हैं ॥ ४२ ॥ हाय ! यदि वह विशालनेत्रवाली देवी जानकीजी इस समय न हरी जातीं, तो वहभी मदनसे चंचलायमान मन होकर हमारे निकट प्राप्त होनेंकी वासना करतीं ॥ ४३ ॥ इस वसंतके समयमें पुष्प भारसे छाये वन समूहोंके सब पुष्प हमारे जानतो अतिशय निष्फल होरहेहैं४४॥ वृक्षोंके अति सुन्दर मनोहर पुष्प भ्रमर गणोंके सहित पृथ्वीपर गिर रहेहैं पर विना सीताके हमारे लेखे व्यर्थहैं ॥ ४५ ॥ हमारे चित्तको मतवाला करनेंवाले पक्षी गण हर्षित होकर झुंड २ कलरव करकै कल ध्वनि कर रहेहैं ॥ ४६ ॥ हाय! जबकि यहां वसंतहै, तबतो उन प्राणप्यारीके निकट भी वसंतका उदय हुआ होगा । इस कारण हम विना, हमारी समान वहभी निःसन्देह कातर और शोकसे व्याकुल हुई होंगी ॥ ४७ ॥ यदि वहां वसंतका उदय नभीहुआहो तथापि वह नलिनीनयनी हमारे विना वहां किस प्रकारसे रहती होंगी ॥ ४८ ॥ अथवा यदि उस स्थानमें वसंत

विद्यमानभी हो तथापि वह सुश्रोणी सीता शत्रुओंसे भयभीता होकर क्या करेंगी? सोकुछ हमारी समझमें नहीं आता ॥ ४९ ॥ हाय! वह श्यामा, कमल दलकी समान नेत्रयुक्त मृदुभाषण करनेंवाली जनकनंदिनीजी, वसंत कालको प्राप्त होकर हमारे विरहमें निश्चयही प्राण त्यागदेंगी इसमें कोई संदेह नहींहै ॥५०॥हमनें बुद्धिसे, हृदयसे निश्चय कियाहै कि हमारे विरहमें वह साध्वी पतिव्रता सीताजी कभी जीवित नहीं रहसकैंगी॥५१॥ जानकीजीके हृदयका भाव निश्चयही हमारे प्रति स्थापितहै, और हमारा भावभी निश्चयही सीताजीके प्रति लगाहुआहै ॥ ५२ ॥ यह पुष्प गंध वहन करनेवाला. सुशीतल व स्पर्शसे सुख उपजानें वाला वायु स्त्रीकी चिन्ता करते हुये हमारे वास्ते अग्निकी समान उष्ण लगताहै ॥५३॥ पहले सीताजीके साथ रहते जिसको सदाही हम परम मित्र समझतेथे, इस समय सीताजीके विना वही समीर हमको शोक उत्पन्न करानेंवाला होरहाहै ॥ ५४ ॥ सीताजीके संयोग समयमें इस काक पक्षीनें आकाशमें उडकर अपनी कठोर बोली बोल जानकीजीके वियोगकी सूचना दीथी अब इस समय जबकि उनका वियोग होरहाहै, तब यह पक्षी प्रसन्नतासे वृक्ष पर बैठा फिर उनके मिलनेंको जतारहाहै ॥ ५५॥ इसलिये इस विहंगमनेंही सीताजीको हरण कर लियाहै, और फिर यही पक्षी हमारे साथ उन विशालनयना जानकीजीका मिलन करादेगा ॥ ५६ ॥ हे लक्ष्मण! यह सुनो, फूले हुये वृक्षकी फुलगीपर बैठे कूजन करके यह पक्षिगण मदनानंद बढानेंवाला मधुर शब्द कर रहे हैं ॥ ५७ ॥ देखो यह सब भ्रमर तिलक मंजरीके ऊपर बैठ परम सुखसे मधु पीरहेथे, सो अचानक पवनसे ताडित होकर फिर वेग सहित तिलक मंजरीके निकट जा रहे हैं जैसे कोई मदसे कंपायमान अपनी प्रियाके निकट पहुँचता है ॥ ५८ ॥ यह अशोक वृक्ष कामी जनोंको अत्यन्तही शोक का बढानेवाला होता है देखो मानों यह पवनसे कंपित अपने पत्रोंद्वारा हमको डर पाताहुआ खडा है ॥ ५९ ॥ हे लक्ष्मण! यह फूला हुआ आमका वृक्ष मानों कामके रससे आसक्त, व अंगराग लगाये हुये मनुष्य की समान ही खडा है सो तुम देखो॥६०॥ हे पुरुष सिंह लक्ष्मण! यह देखो! इस पंपाके तीर वाले विचित्र बनमें किन्नर लोग जिधर तिधर विचरण करते हुये घूम रहेहैं६१॥फिर यहां

पर यह सुगन्धित कमल जलमें तरुण सूर्यकी समान शोभा विस्तार कर रहे हैं ॥ ६२ ॥ यह प्रसन्नसलिला पंपा सुगन्धि युक्त नील अरुण कमलसे और हंस कारण्डव इत्यादि जलचर पक्षियोंसे व्याप्त होकर शोभा पा रहा है॥ ६३ ॥जलमें जो कमल फूल तरुण सूर्यकी समान शोभा विस्तार कर रहे हैं, सो भ्रमरोंके समूह उनको वँगोलों पर बैठे हैं, यह पंपा सरोवर चारों ओर कमल फूलोंके छा जानेंसे अपूर्व शोभा प्रगट कर रहा है ६४ इस पंपाकी बगल वाले विचित्र वन, वराबर चक्रवाकोंके झुण्डोंसे, और पानी पीनेंके अभिलाषी हाथियोंके दलसे युक्त होकर शोभा पाते हैं ॥ ६५ ॥ देखो लक्ष्मण! इसके विमल जलमें पवनसे उत्पन्न हुई लहरोंके द्वारा ताडित होकर यह कमल फूल नर्तकीके समान विराजमान हैं॥ ६६ ॥ हे लक्ष्मण! इस समय पद्म पलाश नेत्र वाली प्रिया पंकजा जनकसुताके विना देखे हम अब जीवन धारण करनेंका अभिलाष नहीं करते ॥ ६७ ॥ अहो! कामकी कैसी कुटिलता है! देखो जिनके साथ वियोग होगया और जिनका मिलना अति दुर्लभ है सो यह कुटिलता, उनही कल्याणके वचन कहनें वाली कल्याणी प्रियाको बार२याद दिलाती है॥६८॥अहो! हम इस कठिन मदनकोभी धारण कर सक्ते! किन्तु यह फूले हुये वृक्ष और वसंत बहुत पीडित करता है, इसलिये हम बहुतही सामर्थहीन हो गये हैं ॥ ६९ ॥ उन जानकीजीके साथ रहकर जिनको हम परम रमणीय समझतेथे, उस समय सीताके विरहमें वही हमको अत्यन्त अप्रिय लगते हैं ॥ ७० ॥ यह कमल दल यद्यपि कामके जगानेंवालेभी हैं तथापि सीताजीके नेत्रोंकी समता, धारण करते हैं, यह समझ कर हमारे नेत्र उनके दर्शनमें मन लगाये हैं ॥ ७१ ॥ दूसरे वृक्षोंके मध्यमें हो बाहर निकलकर कमलकेशरको छू करके सीताजीके श्वास पवनके समान यह मनोरम समीर वह रही है ॥ ७२ ॥ हे लक्ष्मण! पंपाकी दक्षिण तरफको देखोकि गिरिशृङ्गोंके ऊपर कठ चंपाके वृक्षोंकी फूली हुई शोभायमान शाखायें कैसी मनोहर दीख रहीं हैं ॥ ७३ ॥ यह पर्वतराज विविध भाँतिकी गेरू आदि धातुओंसे विभूषित होकर वायु वेगसे उठा हुआ विचित्र रेणुजाल विस्तार कर रहा है ॥ ७४ ॥ गिरिकी सब स्थलियां पल्लवहीन सब भांतिसे खिले हुये टेसूके वृक्षोंसे प्रदीप्त अग्निकी समान शोभित होरही हैं ॥ ७५ ॥ पंपाके

तीर वाले मधुगन्धि वृक्ष इसके जलसे सींचे जाकर सदा बढते रहते हैं. इस पंपाके किनारे पर कुसुमित मालती, मल्लिका, कँवल, कंदेला ॥७६॥ केतकी, सिन्दुवार, चमेली, बिजोरा, नींबू, पुरैन, कुन्द, ॥ ७७॥ चिलोलु, महुआ, अशोक, वकुल, चम्पा, तिलक, नाग वृक्ष ॥ ७८ ॥ नील कमल, फूलाहुआ अनिल, शोक, लोध्र, सिंहकेशर, पिंजर, गिरि पृष्ट ॥ ७९ ॥ अंकोल, कुरट, चूर्णक, नींब, आम, पाटलि, फूलाहुआ कोविदार ॥ ८० ॥ मुचकुन्द, अर्जुन, केतकी, दूसरी जातिकी शतावरी, शिरस, खैर, शीसम, यहभी पहाडके शृंगोंपर दिखलाई देतेहैं ॥ ८१ ॥ शाल टेसू लाल कुरबक, तिनिश, नक्तमाल, चन्दन, स्यन्दन, ॥ ८२ ॥ दूसरी जातिके तिलक, फूले हुये नाग वृक्ष, यह सब वृक्ष फूलरहेहैं व इनके अग्र भागमें फूलीहुई वेलें लिपट रहीहैं. इस्से यह अति शोभित होरहे हैं ॥ ८३ ॥ हे लक्ष्मण! देखो पंपाके किनारे यह अति चित्र विचित्र, विविध भांतिके वृक्ष देखो,कि इनकी डालियां पवनके लगनें से कैसी हिल रही हैं, और उनसे कैसी शोभा होतीहै ॥ ८४ ॥ वृक्षोंमें बेलैं लिपट रहीहैं, जैसे कामसे उत्पन्न हो श्रेष्ठ स्त्रियें अपने २ पतिको चिपट जातीहैं, और देखो कि पवन इस वृक्षसे उस वृक्षको इस पर्वतसे उस पर्वतको एक वनसे दूसरे वनको जाकर ॥ ८५ ॥ बहुत सारारस चख आनन्दित होकर महकताहै, पंपाके किनोरवाले किसी २ वृक्षको शाखा अधिक पुष्प युक्त होनेंके कारण सुशोभित हो सुगन्धित होरही हैं ॥ ८६ ॥ और कोई कुछेक निकली हुई कलियोंकी मंजरीसे श्याम वर्णकी समान शोभा पारहे हैं यह फूल मीठेहैं, यह स्वादु युक्त हैं, यह फूल खिलाहुआहै ॥ ८७ ॥ इस प्रकार समझ और अनुरागी होकर भ्रमर गण उड २ कर पुष्पों पर बैठते हैं और रसलेकर उडके और फूलों पर बैठ जातेहैं, इसप्रकारसे मधुके लोभी मधुकर पंपाके तीर वाले वृक्षोंपर बैठते उठतेहैं ॥ ८८ ॥ देखो तो इस भूमिपर कैसे फूल बिछेहैं, इस कारण यह सुख सहित शयन करनेंके योग्यहै यह पुष्प अपने आप गिरेहैं, किसीनें तोडकर नहीं गिराये, परन्तु ऐसे गिरेहैं, मानों शयन करनें के लिये सेज बिछाई गई है ॥ ८९ ॥ इस पर्वतके सब कँगूरोंपर पीले लाल इत्यादि विविध भांतिके पुष्प समूह द्वारा विविध भांतिकी चादरसी बिछरही हैं ॥ ९० ॥ हे लक्ष्मण! हिम-

के अंत वसंतकालमें वृक्ष गणोंकी पुष्पोत्पत्ति देखो! मानों सब वृक्ष एक दूसरेको पुकार २ पुष्प उत्पन्न कररहे हैं ॥ ९१ ॥ वृक्ष समूहोंकी फूलभरी शाखायें भौंरोंकी गुंजारसे परस्पर पुकार २ मानों शोभा विस्तार कररही हैं ॥ ९२ ॥ देखो लक्ष्मण! यह कारण्डव पक्षी इस विमल जलमें डुबकी मार कामदेवको जगाताही हुआ मानों अपनी स्त्रीके सहित रमण कर रहाहै ॥ ९३ ॥ मन्दाकिनीकी समान पम्पाका यह रूप और मनको रमानें वाले इसके गुणोंका समूह, जो पृथ्वीपर विख्यातहै सो यह ठीक ही ठीक है ॥ ९४ ॥ हे लक्ष्मण! हम यदि इस स्थानमें उन पतिव्रता सीताजीके दर्शन पाते तो इन्द्रपुरी व अयोध्याका लालच न करके इस स्थानमेंही बास करते ॥ ९५ ॥ हे लक्ष्मण! जो हम तुम्हारे साथ इन रमणीक हरे भरे क्षेत्रोंमें वासकरें तो हमारी और जगह वास करनेंकी वासना नरहे ॥ ९६ ॥ विविध भांतिके पुष्प समूह और विविध वर्णके यह वृक्ष, इस वनमें विना प्राणप्यारीके हमको विविध भांतिकी चिन्ता उत्पन्न करातेहैं ॥ ९७ ॥ हे लक्ष्मण! शीतल जल युक्त, कमल सहित, चकई चकवा, जल मुरगी और बत्तक आदि सेवित इस पंपाको देखो॥ ९८॥ करांकुल, जल बुड्डी, आदि जलचर पक्षियोंसे सेवित व किनारे २ और दूसरे पक्षियोंके बोलनेंसे यह पंपा अधिक शोभायमान होरहीहै ॥ ९९ ॥ यह प्रमुदित विविध भांतिके पक्षी हमें उन पंकज नयनी, चंद्रमुखी श्यामा* जनकनंदिनी,प्रिया जानकीजीको याद दिलातेहैं। और देखो! इन विचित्र पर्वतके कंगूरों पर मृग गण हरणियोंके साथ ॥ १०० ॥ इधर उधर विहार करके मृगशावक नयनी वैदेहीके विरहमें हमको व्यथित कर रहेहैं १०१॥ यदि हम मतवाले पक्षियोंसे पूर्ण इस मनोहर कंगूरे पर उन प्राणप्यारीका दर्शन पावें तबही हमको शान्ति और सुखकी प्राप्तिहो सकतीहै ॥१०२॥ हे लक्ष्मण! यदि वह सुमध्यमा पतिव्रता जानकीजी हमारे साथ इस पंपाकी पवन सेवन करें तबही हम जीवन धारण करनेंको समर्थ होवें ॥ १०३ ॥ हे लक्ष्मण! कमलकी सुगन्धि वहन करनेंवाला, शोक विनाशन यह पुण्यवान पवन पुण्यवान और धन्य पुरुषोंहीकी सेवा

* जो नारी शीतकालमें उष्ण और उष्ण कालमें शीतल होती है और जिसके सर्वाङ्ग निन्दारहित हों उसको श्यामा कहतेहैं ॥

करताहै ॥ १०४ ॥ वह श्यामा, कमलनयनी जनककुमारी सीताजी हमारे विरहमें अवश होकर प्राण धारण करनेंमें कभी समर्थ नहींहोंगी १०५ हाय! वह धर्मशील, सत्यवादी, महाराज जनकजी जब सभाके बीचमें हमसे सीताजीकी कुशल पूछेंगे तब हम उनसे क्या कहैंगे ॥ १०६ ॥ हम अतिशय मंद भागीहैं, पिताजीने हमको वनमें पठाया तब सीताजी हमारे साथ २ आई। हा! इस प्रकारके पतिव्रत धर्ममें टिकी हुई सीताजी इस समय कहांहैं ॥ १०७ ॥ हाय लक्ष्मण! हम राज्य भ्रष्ट और हतबुद्धि होकर वनको आये, सो उस समय जो जानकीजी हमारे साथ २ आईथीं उन सीताजीके विना इस समय दीन होकर हम किस प्रकारसे प्राण धारण करनेको समर्थ हों ॥ १०८ ॥ उन सीताजीका कमल समान मनोहर सीतला आदिके दागोंसे रहित सुगन्धि मुख कमल न देख पाकर हमारा मन मोहके वशहो व्याकुल हुआ जाताहै ॥ १०९ ॥ हे लक्ष्मण! उन सीताजीका मुसकान सहित गुण युक्त सुमधुर हितकारी अतुल वचना मृत कभी हम फिरभी श्रवण कर सकेंगे? ॥ ११० ॥ वह सर्व सुलक्षण वाली श्यामा साध्वी वनमें हमको प्राप्त होकर दुःखके समयभी सुखिनी होकर वचनामृत वर्षाकर हमको सुखी करतीं ॥ १११ ॥ हे राज कुमार लक्ष्मणजी! जबकि हम अयोध्याको लौटेंगे तब मनस्विनी कौश-ल्याजी " सीता कहांहैं? " यह पूछेंगी तब हम उनसे क्या कहेंगे? ॥ ११२ ॥ हे लक्ष्मण! इस समय तुम निश्चय जानो कि हम सीताके विना कभी जीवन धारण करनेंको समर्थ नहीं होंगे, इसलिये हमारा मरण निश्चयजान तुम अयोध्याजीको चले जाकर, भरतजीके साथ मिलो ॥ ११३ ॥ महा-त्मा श्रीरामचंद्रजीनें इस प्रकार अनाथकी समान जब विलाप करना आरंभ किया, तब लक्ष्मणजीनें उनसे अर्थ युक्त वचन कहने आरंभ किये ॥ ११४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी । आप शोक का त्याग कीजिये आप पुरुषोत्तमहैं इसलिये आपको शोक करना उचितनहीं हैं. आपसरीखे न्यायवान, धीरवान, निष्पाप पुरुषोंमें ऐसी शोक बुद्धिका होना सब भांतिसे असंभवहै ॥ ११५ ॥ विरहसे उत्पन्न हुआ दुःख और प्रियजनके प्रति स्नेहको छोड दीजिये देखिये अतिशय स्नेह युक्त अर्थात् तेलमें पडनेंसे गीली वत्तीभी जल जाती है ॥ ११६ ॥ यदि रावण पातालमें वा उससेभी

अधिक गुप्तदेशमें भागजाय, तथापि कदापि वह जीवित नहीं रहसकता ॥ ११७ ॥ वह पापमति वाला राक्षस कहां रहताहै? और उसकी क्या इच्छाहै? पहले इस बातको आप जान लीजिये, तब इसके पीछे यातो वह सीताको छोडही देगा अथवा मारा जायगा ॥ ११८ ॥ यदि रावण जानकीजीको न देगा तब वह सीताजीके सहित चाहैं दैत्य माता दितिके गर्भमें चला जाय तोभी हम उसको निःसन्देह मारडालेंगे ॥ ११९॥ हे आर्य! आप मनकी दीनताको छोडकर स्वस्थ हूजिये आपतो जानते ही हैं कि नष्ट कार्य विना यत्न किये कभी सिद्ध नहीं होता१२०॥ हे आर्य! उत्साहही बलवान् है उत्साहसे अधिक श्रेष्ठबल और कुछभी नहीं है इससंसारमें उत्साहको कुछभी दुर्लभ नहीं है इसलिये उत्साहका अवश्य ही आसरा लेना चाहिये ॥ १२१ ॥ उत्साह युक्त पुरुषगण कभी नहीं घबडाते, इसलिये हम केवल उत्साहकाही अवलंबन करके जानकीजीको फिर प्राप्त करलेंगे। इसमें कुछभी संदेह नहींहै ॥ १२२ ॥ आप महात्मा और कृत्यविद्यहैं सो आप अपनें आत्म स्वरूप को क्यों नहीं जानते इसलिये शोकको त्याग करके यह कामी पुरुषोंकीसी वृत्ति छोड दीजिये ॥ १२३ ॥ जब श्रीलक्ष्मणजीनें इस प्रकारसे समझाया बुझाया तब शोकसे हतचित्त हुए श्रीरामचंद्रजीनें शोक और मोहको छोडकर धीर्य धारण किया॥ १२४ ॥तब अचिन्त्य पराक्रम श्रीरामचंद्रजी अव्यग्र चित्तसे उस वृक्ष समूहसे परिपूर्ण मनोरम पंपासरको घूम २ देखने लगे ॥ १२५ ॥ तिसके पीछे महात्मा श्रीरामचंद्रजी वनस्थली, झरने,व कंदराओंकोअवलोकन करते २ लक्ष्मणजीके सहित उद्विग्नचित्तहो उन सबका विचार करते सीताजीके दुःखसे उपहत चित्तहो आगे चले ॥ १२६ ॥ सुस्थिर चित्त महात्मा मत्त मातंगकी समान चाल चलनेंवाले लक्ष्मणजी श्रीरामचंद्रजीका इष्ट विचार करते हुए धर्मके बलसे उनकी रक्षा करनेंलगे ॥१२७॥ अद्भुत दर्शन श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मण दोनोंजनें ऋष्यमूक पर्वतके निकट विचरण कर रहेथे, कि उसी समय वानर गणोंके राजा सुग्रीवजीनें ऋष्यमूककी ओर घूमते २ इन दोनों जनोंको देखा, वह उनको देख त्रास युक्त हो भोजनादिकी चेष्टासे विरत हुए ॥ १२८ ॥ श्रीराम लक्ष्मणजीभी उसी स्थानमें घूमनें लगे गज तुल्य मंद चाल चलनें वाले महात्मा वह शाखा-

मृग उस स्थानमें घूमकर चिन्तायुक्त और भयसे अति भीतहो उन राम लक्ष्मणजीको देख अति विषादको प्राप्त हुए ॥ १२९ ॥

तमाश्रमंपुण्यसुखंशरण्यंसदैवशाखा मृगसेवितांतम् ॥ त्रस्ताश्चदृष्ट्वाहरयो विजग्मुर्महौजसौराघवलक्ष्मणौतौ ॥ १३० ॥

उन वानर गणों करके सेवनीय मतंग मुनिके शापसे वालि जिसमें प्रवेश नहीं कर सकताथा,ऐसे पुण्याश्रममें वानर सुग्रीवादि वहां सदा रहा करतेथे । इस समय महावीर्यवान् श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको वहां आता हुआ देखकर वह शाखामृग अतिशय भीत और त्रासित हुए ॥ १३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० किष्किन्धाकांडे प्रथमःसर्गः ॥१॥

द्वितीयः सर्गः ॥

तौतुदृष्ट्वामहात्मानौभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥ वरायुधधरौवीरौसुग्रीवःशंकितोऽभवत् ॥ १ ॥

उन अति श्रेष्ठ आयुध धारण किये हुए महात्मा श्रीराम लक्ष्मण दोनों भाइयोंको देखकर वानरराज सुग्रीव अत्यन्त भय पाय गये ॥ १ ॥ वह वानरवर व्याकुल चित्तहो दशों दिशाओंमें देखते किसी एक स्थानमें स्थिर होकर न टिक सके ॥ २ ॥ उन महा बलवान दोनों वीरोंको देखकर सुग्रीवजीनें वहां ठहरनेंकी इच्छा नकी उन अति डरे हुए कपि श्रेष्ठका चित्त अत्यन्त विषादको प्राप्त हुआ ॥ ३ ॥ वह धर्मात्मा सुग्रीवजी परम व्यग्र चित्तसे ऊंच नीचका विचार कर सब वानरोंके साथ ॥ ४ ॥ श्रीरामलक्ष्मण दोनों भाइयोंको देख बडी ऊबके साथ अपने मंत्रियोंसे कहनेलगे ॥ ५ ॥ यह दोनों वीर निश्चयही वालिके भेजे हुये चीर वसन पहर, वह रूप बना यहांपर आकर घूमरहेहैं ॥ ६ ॥ इसके पीछे सुग्रीवजीके साथी उन धनुषधारी श्रीराम लक्ष्मणजीको देखकर उस गिरिके तटसे और दूसरे पर्वतके शिखरपर चले गये॥७॥उन्मेंसे बडे२ वानर गण यूथपतिके निकट जाकर उनको घेरकर खडे हुये ॥ ८ ॥ एक दूसरे का सुख दुःख भोग करने वाले वह वानर गण पर्वतके कँगूरोंको कंपित करते

हुये येक शिखरसे दूसरे शिखर पर कूद फांद करनें लगे ॥ ९ ॥ तिसके पीछे वह महाबलवान छलाँग मार २ कर उस पर्वत परके जमे हुये फूले फले वृक्षोंको उखाडने लगे॥ १० ॥अनन्तर वह बडे २ महाबलवान कपि गण उस महा पर्वतके सब स्थानोंमें मृग, बिलाव,वाघादिकोंको त्रास उपजाकर कूद फांद कर चलनें लगे ॥११॥ फिर सुग्रीवजीके मुख्य२ साथी जोकि मंत्रीथे वह कपि श्रेष्ठ सुग्रीवके सन्मुख जा हाथ जोडकर खडे होगये ॥ १२ ॥ तब वचन बोलनेमें चतुर हनुमान्जी वालिके डरसे अनिष्ट की शंका करते हुये भयभीत सुग्रीवजीसे बोले ॥ १३ ॥ सब वानर गण भयका त्याग करैं कारण कि यह मलयाचल पर्वत है यहांपर वालिके भयकी कोई संभावना नहीं ॥ १४ ॥ हेवानर श्रेष्ठ! आप जिसके भयकी शंका करके व्याकुल चित्त होते हैं उस दुदर्शन क्रूर स्वभाव वाले वालिको हम यहां नहीं देखते हैं ॥ १५ हे सौम्य! जिस पापकर्म करनें वाले अपने बडे भाईसे आपको डर है वह दुष्टात्मावालि यहां पर नहीं है, इसलिये उस करकै कोई भयका कारणभी हम नहीं देखते हैं ॥ १६ ॥ हे कपीश्वर! आप वानर जातिहैं उसी लघुचित्तताके कारण आप अपनी बुद्धिको स्थिर नहीं कर सकतेहैं ॥ १७ ॥ बुद्धि और विज्ञान युक्तहो संकेतमात्रसे आपको सब काम करलेने चाहिये राजाकुबुद्धिका आश्रयकरके सर्व जीवकी रक्षा नहीं कर सकता ॥ १८ ॥ सुग्रीवजी हनुमान्जीके यह शुभकारी वचन सुनकर उनसे अति हितकारी वचन कहते हुये॥१९॥हनु-मन् दीर्घबाहु युक्त बडी२आंखों वाले शर चापखड्ग धारण किये हुये शूर पुत्र सम इन दोनों वीरोंको देखकर किसको भय उपस्थित नहीं होगा॥२०॥ हम जानते हैं कि यह दोपुरुष श्रेष्ठ वालिके ही भेजे हुये यहां आये हैं क्योंकि राजा लोगोंके बहुत सारे मित्र हुआ करते हैं इस कारण इस विषयमें विश्वास न करना चाहिये॥२१॥मनुष्योंको अवश्य जानना कर्तव्य है, कि शत्रु लोग गुप्त भेदसे घूमा करतेहैं अविश्वासी वह शत्रुगण विश्वासी पुरुषोंको समय पातेही मार डालतेहैं ॥ २२ ॥ वालि कार्य करनेंमें बडा कुशल है, वह इस बातको भली प्रकार करसकता है, अर्थात् हमें मार डालनें सकता है, क्योंकि राजालोग बहुदर्शी और उपायोंके जाननें वाले होतें हैं; इसलिये मनुष्योंको चाहिये कि प्राकृत

वेशमें उनके आशय को जानें ॥ २३ ॥ कपिवर! स्वाभाविक वेशसे जाकर उन दोनों जनोंके समाचार रूप और बोल चालसे भली भांति जानकर आओ ॥ २४ ॥ तुम हर्षित मनसे जाकर प्रशंसा व इङ्गितसे उनको विश्वासमें लाकर उनके मनका भाव जान लेना ॥ २५ ॥ हे वानरवर! तुम हमारी ओरको मुखकर, उनके धनुष धारण करके यहां आनेंका कारण और प्रयोजन जान आओ ॥ २६ ॥ ऐसा करनेंसे यदि यह लोग विशुद्ध-भाव युक्त होंगे तोभी तुमको अवश्य ज्ञात हो जायगा, और भाषण व रूपादि द्वारा यदि वह दुष्ट भाव रखते होंगे तो वहभी सब समझ पडैगा२७ कपिराज सुग्रीवजीसे इस प्रकार आज्ञा पाकर पवन पुत्र हनुमान्जी श्रीराम लक्ष्मणजीके निकट जानेंको मन करते हुये ॥ २८ ॥

तथेतिसंपूज्यवचस्तुतस्यकपिःसुभी
तस्यदुरासदस्य ॥ महानुभावोहनुमा
न्ययौतदासयत्ररामोतिबलीसलक्ष्मणः ॥ २९ ॥

महानुभव कपिवर हनुमानजी उन अतिभीत दुर्द्धर्ष सुग्रीवजीके वचन मान जहां श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मणजीके सहित विचरतेथे उस स्थानमें गमन करते हुये ॥ २९ ॥ इ० श्री० वा० आ० किष्किन्धाकांडे द्वितीयः सर्गः ॥२॥

तृतीयः सर्गः ॥

वचोविज्ञायहनुमान्सुग्रीवस्यमहात्मनः ॥
पर्वतादृष्यमूकात्तुपुप्लुवेयत्रराघवौ ॥ १ ॥

हनुमान्जी महात्मा सुग्रीवजीके वचन सुनकर ऋष्यमूक पर्वतसे राम लक्ष्मणजीके निकट गमन करते हुये ॥ १ ॥ जब हनुमान्जी चले तो इन्होंनें शठ बुद्धिका आश्रय करके कपिरूप छोड भिक्षुकका रूप धारण किया ॥ २ ॥ तिसके पीछे हनुमानजी मनोहर और विनीत होकर उनके निकट जा प्रणाम करकै उन दोनों भ्राताओंसे बोले ॥ ३ ॥ प्रथमतो उन दोनों वीरोंकी बडी प्रशंसाकी, और फिर वानरोत्तम हनुमानजीनें विधि विधानसे उनकी पूजा भी की ॥ ४ ॥ फिर मृदुभावसे उन सत्य पराक्रम दोनों वीरोंसे कहनें लगे कि आप राजर्षि सदृश, और देव तुल्य व्रतधारी तपस्वी और ब्रह्मचारियोंसे अग्रणीय ॥ ५ ॥ इन सब मृग व और दूसरे

बनचारियोंको भयभीत करते हुये किस कारणसे यहां पर आये हैं ॥ ६॥ आप लोग पंपाके तीर वाले वृक्षोंको चारों ओरसे देखकर इस पुण्य जल वाली नदीकी शोभाको बढा रहे हो ॥ ७ ॥ आप लोग कृतकार्य, धैर्यवान् सुवर्ण कांति चीर पहरे बडी बाहों वाले और ऊंची श्वासें लेते हुये कौन हैं जो अपना अपूर्व रूप दिखा इन वनवासिनि प्रजा ओंको पीडा देते हो॥८॥ आपका देखना सिंहकी समान है आप महाबलवान् और महापराक्रम युक्त हैं; और आप दोनों जनोंके इन्द्र धनुषकी समान धनुष देखकर ज्ञात होता है कि आप देखतेही शत्रुओंका नाश करेदेंगे॥ ९ ॥ हम देखते हैं कि आप श्रीमान् रूपसम्पन्न वृषभ तुल्य पराक्रम करनेंवाले हाथीकी शुंड समान चढा उतारवाली लंबी भुजायें धारण किये द्युतिमान् नर श्रेष्ठ ॥१०॥ आपदोनों जनोंकी प्रभासे यह पर्वत प्रकाशित हो रहाहै और दोनोंही जन आप राज्य करनेंके समान यहां पर कैसे आये? ॥ ११ ॥ आप दोनों जनोंके नयन कमल दलकी समानहैं और आप दोनों वीर जटा मंडल धारण कियेहैं; परस्पर एक दूसरेसे मिलता हुआ रूप धारण किये हमारी समझमें देवता ओंकी समान आप यहां पर आयेहो ॥ १२ ॥ अथवा आपलोग चंद्रमा सूर्यतो नहींहैं? जो देवलोकसे अपनी इच्छानुसार मनुष्य लोकमें आयेहैं आपलोग विशाल वक्षस्थल सहित मनुष्यों का रूप धारण किये कोई देवहीहो ॥ १३ ॥ आपदोनों वीरोंके कंधे सिंहकी समानहैं, मानों वीररसही दोरूप धारण कर आयाहै? आपमानों मद युक्त वृषभहीहो बाहें आपकी लंबी, गोल, और परिघाकारहैं ॥ १४॥ आप सब भूषण धारण करनेके योग्य किस कारणसे भूषण धारण नहीं कर रहेहैं? हम आप दोनों जनोंको ऐसा समझतेहैं कि आप इस पृथ्वीकी रक्षा करनेंके योग्यहैं ॥ १५ ॥ वन सागर वन, विन्ध्य हिमालयादि पर्वत सहित भूमिका पालन करनेंके योग्य आपहैं, यह जो दो धनुष आप धारण कियेहैं, यह भी चित्र विचित्र, सचिक्कण और चित्र विचित्र चन्दनानुलेपन युक्तहैं ॥ १६ ॥ यह आपके धनुष वज्रधारी इन्द्रके धनुषकी समान प्रकाशित होतेहैं, और आप दोनों जनोंके तरकशभी तीखे नाराचोंसे भरपूरहैं ॥ १७ ॥ जितने इनमें बाणहैं, यह शत्रुको स्पर्श करतेही प्राण लेनें वालेहैं और प्रज्वलित सर्पकी समान दीप्ति वाले बडे लंबे चौडे

तपाये हुये सुवर्णसे भूषित जिनमें कब्जे लगे ॥ १८ ॥ यह खड्ग विराजमानहैं मानों केचली छोडे हुए सर्प हैं । फिर हम आपसे इस प्रकार कह रहेहैं, परन्तु आपलोग हमसे क्यों नहीं भाषण करते? ॥ १९ ॥ हे वीरो ! इस समय हमारा आप परिचय श्रवण करें; सुग्रीव नामक एक धर्मात्मा श्रेष्ठ वानरहै वह अपने बडे भाईसे निकाले जाकर त्रासित व दुःखित होकर इस समस्त पृथ्वीपर भ्रमण किया करतेहैं ॥ २० ॥हम हनुमान नाम वानर उन वानरराज महात्मा सुग्रीवजीके भेजे हुए आपके पास आये हैं॥ २१ ॥ उन धर्मात्मा सुग्रीवजीनें आपके सहित मित्रता करनेंकी इच्छाकीहै, हम पवनके पुत्र उन सुग्रीवजीके मंत्री और साथीहैं ॥ २२ ॥ हम कामचारी और इच्छानुसार चलनेंवाले सुग्रीवजीकी प्रियकामनासे भिक्षुकके रूपसे गुप्त वेषमें आपके निकट आयेहैं ॥ २३ ॥ वचनके जाननेंवाले और बोलनेमें चतुर हनुमानजी श्रीराम लक्ष्मणजी दोनों वीरोंसे ऐसा कहकर फिर कुछ न बोले ॥ २४ ॥ श्रीमान् रामचंद्रजी उनके यह वचन सुन प्रफुल्ल वदन हुये और बगलमें खडेहुये अपने भ्राता लक्ष्मणजीसे बोले ॥ २५ ॥ कि यह हनुमान महात्मा कपिराज सुग्रीवजीके मंत्रीहैं, व उन्हींका प्रिय करनेंकी कामनासे यह हमारे पास आयेहैं ॥२६॥ हे लक्ष्मण! सुग्रीवजीके सचिव वाक्यविशारद शत्रुओंका नाश करनें वाले इन कपिश्रेष्ठसे तुम मधुर वचनोंके साथ वार्त्ताकरो ॥ २७ ॥ तुम यह भी जानलो कि जिस पुरुषनें ऋग्वेद नहीं पढा यजुर्वेद अथवा सामवेद नहीं पढा वह पुरुष कभी ऐसे वचन कहनेंमें समर्थ नहीं होसकता कि जैसे वचन, इन्होंने कहे ॥ २८ ॥ हम समझतेहैं कि इन वानर श्रेष्ठनें निश्चय समस्त व्याकरण शास्त्र पढाहै, क्योंकि यह हमारे साथ बहुत देरसे गीर्वाण भाषा बोल रहेहैं, परन्तु उसमें इन्होंनें एकभी दूषित शब्द प्रयोग नहीं किया ॥ २९ ॥ उनके मुख, नेत्र, ललाट अथवा भौंह आदि और अंगोंमें बोलनेंके समय कोई दोष नहीं पाया जाता ॥ ३० ॥ इनके वचन विस्तारसे होते हैं, सन्देह युक्त नहीं होते इन्होंने साफ २ मध्यम स्वरमें बिना देर लगाये हुये अन्तरमें टिके हुये कंठ गत सब वचन कहे हैं ॥ ३१ ॥ इन्होंनें संस्कार युक्त अविलम्बित अद्भुत कल्याणदायिनी हृदय हरणकरनेंवाली मनोहर वाणी उच्चारण की है ॥ ३२ ॥छाती,कंठ,शिर इन तीन स्थानोंसे निकली हुई इन-

की विचित्र वाणी हाथसे खड्ग उठाये हुये शत्रुका चित्तभी श्रवण करतेही प्रसन्न करदे ॥ ३३ ॥ हे लक्ष्मण! जिस राजाके ऐसे श्रेष्ठ दूत हैं उन राजाके सब कार्य क्यों न सिद्ध होंगे॥ ३४ ॥जिनके इस प्रकारसे गुणवान् कार्यका साधन करनेंवाले दूत विद्यमान हों, उनके सब कार्य निःसन्देह सिद्ध होजाते हैं ॥ ३५ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीनें इस प्रकारसे कहा तो वचन बोलनेंमें चतुर लक्ष्मणजी पवनपुत्र सुग्रीवजीके मंत्री हनुमानजीसे कहने लगे॥३६॥ हे बुधवर! महात्मा सुग्रीवजीके गुण हम लोग जानते हैं और उन्ही कपिश्रेष्ठ सुग्रीवजीको हम खोजते हैं॥ ३७ ॥ हे वानरश्रेष्ठ! सुग्रीवजी जो कुछ कहैंगे हम तुम्हारे वचनोंका गौरव करके वैसेही करैंगे इसमें कुछभी सन्देह नहीं है ॥ ३८ ॥

तत्तस्यवाक्यंनिपुणंनिशम्यप्रहृष्टरूपः
पवनात्मजःकपिः ॥ मनःसमाधायजयो
पपत्तौसख्यंतदाकर्तुमियेषताभ्याम् ॥ ३९ ॥

इसके पीछे कपिश्रेष्ठ पवनपुत्र हनुमानजी लक्ष्मणजीके यह वचन सुन करकै अत्यन्त हर्षित हुये, और जयकी सिद्धिके विषयमें मनको समाधानकर सुग्रीव और श्रीरामचन्द्रजीमें मित्रता करानेंकी इच्छा करते हुये ॥ ३९ ॥ इत्यार्षे श्री० वा० आ० किष्किन्धाकांडे तृतीयः सर्गः॥ ३॥

चतुर्थः सर्गः ॥

ततःप्रहृष्टोहनुमान्कृत्यवानितितद्वचः ॥
श्रुत्वामधुरभावंचसुग्रीवंमनसागतः ॥ १ ॥

हनुमान्जी श्रीलक्ष्मणजीके वह मधुर भावभरे वचन श्रवण करकै अत्यन्त हर्षित चित्त हुये और मनही मनमें इन्होंने सुग्रीवजीके कार्यकी सिद्धि जानी ॥ १ ॥ और विचारा कि महात्मा सुग्रीवजीको राज्य प्राप्त होनेंकी विलक्षण संभावना है क्योंकि यह कृतकार्य दोनों वीर अचानक यहां पर आय पहुंचे हैं, और इनके साथ मित्रताई होनेंकीभी पूरी२आशा है अनन्तर वानरोंमें श्रेष्ठ हनुमानजी अत्यन्त हृष्ट होकर वचन बोलनेंमें कुशल श्रीरामचन्द्रजीसे कहनें लगे॥२॥ ३ ॥ कि आप अपनें छोटे भाईके

साथ पंपाके कानन शोभित, दुर्गम अनेक प्रकारके हिंसक जन्तु ओंसे परिपूर्ण घोर वनमें किस कारणसे आये हैं? ॥ ४ ॥ हनुमानजीके यह वचन श्रवण करके, श्रीलक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके आदेशसे पवनपुत्रको सब बतानेंलगे॥५॥कि अयोध्यानगरमें दशरथजीनामक धर्मवत्सल द्युतिमान एक राजा हुये, वह अपनें धर्मके अनुसार नित्यही चारों वर्णकी प्रजाका पालन करते रहते॥६॥उनका द्वेष करनेंवाला कोई नहीं हुआ, उनके प्रति किसीनें वैरभाव नहीं प्रकाश किया वह दूसरे ब्रह्माजीकी समान समस्त जीवोंका पालन और रक्षा करते॥७॥इन्होंने बहुतर दक्षिणा सहित अनेक अग्निष्टोमादि यज्ञ किये। यह रामचंद्रजी लोकमें विख्यात उनके प्रथम पुत्रहैं ॥ ८ ॥ यह समस्त प्राणियोंको शरण देनेंवाले और पिताकी आज्ञाका पालन करनेंवालेहैं, दशरथजीके यह सबमें बडे पुत्र व गुणवानहैं॥ ९ ॥ सब राज लक्षणों करके युक्त और समस्त राज्य, सम्पद् विशिष्टहैं! यह राज्य भ्रष्ट होकर हमारे साथ वनमें वास करनेंके लिये यहांपर आयेहैं ॥ १० ॥ जिस प्रकार महातेजमान सूर्य नारायण प्रभाके सहित अस्ताचलचूडावलंबी होतेहैं वैसेही यह प्रिया भार्या सीताके सहित इस स्थानमें आयेथे ॥ ११ ॥ हम इनके छोटे भाई हैं यह कृतज्ञ और बहुज्ञहैं इनके गुणगणोंसे वश होकर इनकी सेवा किया करतेहैं और लक्ष्मण हमारा नामहै ॥ १२ ॥ यह सुख भोगनेंके योग्य, राज्य पानेंके लायक, सर्व जीवोंके हितकारी ऐश्वर्यसे विहीन वनवासमें निरत ॥ १३ ॥ इन श्रीरामचंद्रजीकी भार्या कामरूपी राक्षस करके हरी गईहैं जिस राक्षसनें सीताको हरण कियाहै उसको अभीतक हमनें नहीं जान पायाहै ॥ १४ ॥ दनु नामक दितिका एक पुत्र शापके वशसे कवन्ध राक्षस हुआथा, उस राक्षसनेंही वानरपति सुग्रीवजीका और उनकी सामर्थ्यका वर्णनकर हमसे कहाकि वह वानर नाथ महावीर्यवान सुग्रीवजीही तुम्हारी भार्याके हरण करनेंवालेको जानते होंगे वह कवन्ध राक्षस दनु हमसे ऐसा कह दिव्य रूपसे दीप्तिमानहो स्वर्गको चला गया ॥१५॥१६॥हे हनुमन्! इस प्रकार तुम्हारे पूछनेंसे जो कुछ वृत्तान्तथा सो सब यथार्थही कहदिया, अब हमनें व श्रीरामचंद्रजीनें सुग्रीवजीकी शरण ग्रहणकी ॥ १७ ॥ जो श्रीरामचंद्रजी पहले बहुतसा धनादि दान करके बहुतसे यशको प्राप्त हुएहैं जो पहले लोकोंके नाथथे

वही इस समय सुग्रीवजीका आश्रय ग्रहण करतेहैं ॥ १८ ॥ सीता जिनकी पुत्रवधू और जोकि लोकोंके शरण देनेंवाले और धर्म वत्सलथे उन्हीं लोक गणोंका आश्रय देने वाले दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवजीकी शरण लेतेहैं ॥ १९ ॥ जो धर्मात्मा पहले लोकोंके आश्रय देनेंवाले और शरण देनेंवालेथे सो वही श्रीरामचंद्रजी अब सुग्रीवजीकी शरण लेते हैं ॥ २० ॥ जिनकी प्रसन्नतासे समस्त लोक प्रसन्न होजातेथे, वही श्रीरामचंद्रजी अब वानरराज सुग्रीवजीकी शरण ग्रहण करतेहैं ॥ २१ ॥ पूर्व समयमें राजा दशरथजीनें जिन गुण युक्त पृथ्वीनाथोंका सन्मान किया था ॥ २२ ॥ उनकेही सर्व लोकमें विख्यात ज्येष्ठ पुत्र श्रीरामचंद्रजी वानरेन्द्र सुग्रीवजीकी शरण लेतेहैं ॥ २३ ॥ यह श्रीरामचंद्रजी इस समय अपनी प्रियाके शोकसे व्याकुल होकर सुग्रीवजीकी शरणमें आयेहैं; इसलिये सब यूथोंके सहित सुग्रीवजीको रामचंद्रजीके प्रति प्रसन्न होकर इनके सब कार्य अवश्यही करना चाहिये ॥ २४ ॥ वाक्यविशारद हनुमानजी लक्ष्मणजीके वह रोरो करकै कहे हुये वचन सुनकर यह उत्तर देते हुये ॥ २५ ॥ कि जितेन्द्रिय, बुद्धिमान् ऐसे महात्मा पुरुषके साथ सुग्रीवजीको अवश्य मिलना चाहिये, क्योंकि ऐसे लोग निःसंदेह भाग्यसेही निकट आतेहैं ॥ २६ ॥ वह सुग्रीवजीभी राज्यभ्रष्टहैं, और वालिके साथ वैर बँधनेंसे उस करकै सताये और भयभीत रह वनमें वास करतेहैं इसी कारणसे वालिनें उनकी स्त्रीकोभी हरण कर लियाहै ॥ २७ ॥ वह सूर्य पुत्र सुग्रीवजी हम लोगोंके साथ मिलकर सीताजीके ढूंढनेंमें अवश्यही आपकी सहायता करैंगे ॥ २८ ॥ हनुमानजी सुमधुर और कोमल वचनोंसे यह सब वार्त्ता कह श्रीरामचंद्रजीसे बोले कि हे वीर! अब हम सुग्रीवजीके पासको चलेंगे ॥ २९ ॥ जब हनुमानजीनें ऐसा कहा तब धर्मात्मा लक्ष्मणजी हनुमानजीकी यथायोग्य प्रशंसा कर श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ३० ॥ हे राघव! यह वानर पवनपुत्र जिस प्रकारसे हर्षित होकर बात कहतेहैं इस्से ज्ञात होताहै कि सुग्रीवजीभी कुछ कार्य आपसे करावेंगे इसलिये समझ पडताहै कि आपकाभी सब कार्य सिद्ध होजायगा ॥ ३१ ॥ पवनकुमार हनुमानजी जिस प्रकारसे हर्षित होकर प्रसन्न वदनसे वार्त्ता कर रहेहैं इससे ज्ञात होताहै कि इन्होंनें कभी झूंठ नहीं बोला ॥ ३२ ॥

तिसके पीछे महापंडित पवन पुत्र हनुमान्‌जी उन दोनों रघुवीरोंको लेकर सुग्रीवजीके पास चले॥२३॥ भिक्षुकका रूप छोड़ वानर रूप धारण कर अपनी पीठपर दोनों वीरोंको चढाय सुग्रीवजीके निकट गमन करनें लगे ॥२४॥

सतुविपुलयशाःकपिप्रवीरःपवनसुतःकृतकृत्यवत्प्रहृष्टः ॥ गिरिवरमुरुविक्रमःप्रयातः सशुभमतिःसहरामलक्ष्मणाभ्याम् ॥ २५ ॥

वह विपुल यशस्वी कार्य वीर अमित पराक्रम और विमल चित्त पवन पुत्र कृतकृत्य की समान हर्षित हो श्रीराम लक्ष्मण सहित उस गिरिवर पर जा पहुँचे ॥२५॥ इत्यार्षे श्रीम० वा० आ० किष्किन्धाकांडे चतुर्थःसर्गः॥४॥

पंचमः सर्गः ॥

ऋष्यमूकात्तुहनुमान्गत्वातंमलयंगिरिम् ॥ आचचक्षेतदावीरौकपिराजायराघवौ ॥ १ ॥

हनुमानजी ऋष्यमूक पर्वत परसे मलयाचलपर जाय सुग्रीवजीसे श्रीराम लक्ष्मण जीकी आगमन वार्ता निवेदन करके कहनें लगे ॥ १ ॥ कि यही महापंडित सत्य पराक्रम विपुल वीर्य शाली श्रीरामचंद्रजी हैं यह भ्राता लक्ष्मणजीके साथ इस स्थानमें आये हैं ॥ २ ॥ इन श्रीरामचंद्रजी ने इक्ष्वाकुओंके विशुद्ध वंशमें दशरथजीके औरससे जन्म ग्रहण कियाहै, यह अपनें धर्मको पालनेके लिये आज्ञा पाकर उसके पालन करनेंमें यत्नवान हुये हैं ॥ ३ ॥ उन नृपतिश्रेष्ठ दशरथजीनें राजसूय और अश्वमेधादि यज्ञोंमें अग्निको तृप्त किया, और उन यज्ञोंमें सैकडों हजारों गायें और मणियें दक्षिणादीं ॥४॥उन्होंने तपस्या और सत्य वचन द्वारा पृथ्वीका पालन किया उनकी स्त्रीके लिये उनके पुत्र यह श्रीरामचंद्रजी वनमें आयेहैं ॥ ५ ॥ तबसे यह महात्मा बराबर वनमें वास करतेथे कि किसी समय रावण आकर इनकी भार्याको हरण कर लेगया ॥६॥ यह श्रीराम लक्ष्मणजी पूजनीय जनोंमें अग्रणीय हैं यह दोनों जनें आपके सहित मित्रता करनेंकी वासनासे यहां आये हैं ॥ ७ ॥ कपिराज सुग्रीवजी हनुमानजीके वचन सुनकर प्रीति पूर्वक प्रफुल्ल देहसे श्रीरामचंद्रजीसे

बोले ॥ ८ ॥कि आप धर्मशील विनीत सबके वत्सल और महा तपस्वी हैं महात्मा हनुमान्‌जीने आपके समस्त गुण हमको बतायेहैं ॥ ९ ॥ हे राघव हम वानर हैं हमारे साथ आपनें जो मित्रता करनेंकी वासनाकी है यह हमारा सत्कार और परम लाभ ही है ॥१०॥ यदि हमारे सहित मित्र ताई करनेंकी आप वासना करते हो तो हम अपनें दोनों हाथ पसारते हैं आप हमको अपनें कर कमलसे ग्रहण करकै निश्चिन्त हो मित्रता रूपकी मर्यादा स्थापित कीजिये ॥ ११ ॥ श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवके यह सुखकर वचन सुनकर अत्यन्त हर्षित हुये और अपनें हाथसे सुग्रीवजीका हाथ पकडा ॥ १२ ॥ तब सुग्रीवजीभी सीताजीके वियोगसे पीडित श्रीराम-चंद्रजीसे भलीभांति मिले भेंटे तिसके पीछे शत्रुओंके दमन करनेंवाले हनुमान्‌जीनें भिक्षुकका रूप त्याग दिया जोकि उन्होंने सुग्रीवको विश्वास दिलानें के लिये फिर धारण कियाथा ॥ १३ ॥ भिक्षुकका रूप त्याग हनुमान्‌जी दो काष्ठ के लेआये और घिसकर उनमें से अग्नि निकाली फिर पुष्पादि द्वारा उस दीप्तिमान अग्निकी पूजा कर ॥१४॥श्रीरामचन्द्रजी और सुग्रीवजीके बीचमें उस अग्निको धर दिया तब वह दोनों जन दीप्तिमान अ-ग्निकी प्रदक्षिणा करने लगे ॥१५॥ तिसके पीछे श्रीरामचंद्रजी और सुग्रीवजी दोनों परम प्रसन्नतासे मित्र होगये फिर वानरेन्द्र व नरेन्द्र दोनों ॥ १६ ॥ परस्पर एक दूसरेको देखकर तृप्त नहीं होतेथे । „ आप हमारे प्रियसखा व हृदय निवासीहैं. हमारा व आपका सुख दुःख एकहै" सुग्रीवजीनें हर्षित होकर यह वचन श्रीरामचंद्रजीसे कह एक सालूकी शाखा जो अनेक पुष्प पत्रोंसे भूपितथी अपने हाथोंसें तोड॥१७॥१८॥भूमिपर बिछादी तब सुग्री-वजी स्वयं श्रीरामचंद्रजीके साथ उसी शाखापर बैठे और लक्ष्मणजीके लिये हर्षित होकर पवनपुत्र हनुमान्‌जीनें ॥ १९ ॥ परम पुष्पित चंदन वृक्षकी शाखा बैठनेंको दी तत्पश्चात् प्रसन्न हर्षितहो सुग्रीवजी मधुर. वाणीसे ॥ २० ॥ प्रफुल्ल लोचन श्रीरामचंद्रजीसे बोले. कि हे श्रीरामचंद्रजी! हम घरसे खदेडे जाकर भयभीतहो भ्रमणकिया करतेहैं ॥ २१ ॥ हमारी स्त्रीभी हरलीगईहै, इसी कारण हम त्रासित होकर इस दुर्गम वनमें वास करतेहैं, हमारा चित्त क्षणमात्रको अविचलित नहींहोता, रातदिन डरके मारे व्याकुल रहा करतेहैं ॥ २२ ॥ हे राघव ! वालिनें हमारे साथ वैर

कियाहै, वह हमारा बडा भाईहै, हे महाभाग! हम वालिके भयसे भीत हुयेहैं, सो आप हमारा उस भयसे उद्धार कीजिये ॥ २३ ॥ हे काकुत्स्थ! जिस्से वालिकरकै हमको कुछभी भय न रहै वैसाही उपाय करना आपको सबभांति उचितहै, जब सुग्रीवजीने यह कहा, तब धर्मज्ञ, तेजस्वी, धर्म वत्सल, ॥ २४ ॥ काकुत्स्थकुलतिलक श्रीरामचंद्रजी हँसकर सुग्रीवजीसे बोले, किहे कपिवर! हमारे साथ मित्रता करनेंमें तुम्हारा विशेष उपकार होगा यह हम भलीभांति जानतेंहैं ॥ २५ ॥ इस्में कुछ संदेह नहींहै कि तुम्हारी भार्याके हरण करनेंवाले वालिकों हम मार डालेंगे, देखो,हमारे, यह सूर्यकी प्रभाके तुल्य तीक्ष्ण फलक युक्त अमोघ बाण ॥ २६ ॥ उस दुष्ट वालिके ऊपर वेगसहित गिरेंगे और वह शायक कंकपत्रलगे, इन्द्रके वज्रकी समान ॥ २७ ॥ अति तेज सीधे क्रोधायमान भुजंगके समान वालिको डसैंगे, तुम अब पालिको तीक्ष्ण और विप समान ॥२८॥ बाणोंसे मरकर दूसरे पर्वतकी समान पृथ्वीपर गिरा हुआ देखोगे, अपनाहित करनेंवाले श्रीरामचंद्रजीके वचन सुन सुग्रीवजी परम प्रसन्न होकर उनसे कहनें लगे ॥ २९ ॥ कि हे नरसिंह वीर! हम आपके प्रसादसे राज्य और भार्याको प्राप्त करैंगे, हे नरदेव! हमारा शत्रु बडाभाई वालि जिस्से हमको मारनहीं सके आप ऐसा उपाय कर दीजिये ॥ ३० ॥

सीताकपींद्रक्षणदाचराणांराजीवहेमज्व
लनोपमानि ॥ सुग्रीवरामप्रणयप्रसंगे
वामानिनेत्राणिसमंस्फुरंति ॥ ३१ ॥

इन श्रीरामचंद्र और सुग्रीवजीकी मित्रताई होनेंके समयमें जानकीके वालिके और राक्षसोंके, कमल, सुवर्ण और अग्निकी समान वांये नेत्र एक बारही फडकनें लगे ॥ ३१ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे पंचमःसर्गः ॥ ५ ॥

षष्ठःसर्गः ॥

पुनरेवाब्रवीत्प्रीतोराघवंरघुनंदनम् ॥
अयमाख्यातितेरामसेवकोमंत्रिसत्तमः ॥ १ ॥

तिसके पीछे सुग्रीवजी प्रसन्न होकर फिर श्रीरामचंद्रजीसे कहनेलगे कि हे श्रीरामचंद्रजी हम आपका वृत्तान्त जानतेहैं हमारे श्रेष्ठमंत्री और तुम्हारे सेवक ॥ १ ॥ हनुमान्‌जीनें हमें यह सब बतला दियाहै कि जिस निमित्त आप भ्राता लक्ष्मणजीके सहित वनमें आकर वास करतेहैं ॥ २ ॥ आपकी भार्या मिथलेशकुमारी जानकीजीको राक्षस हरणकर लेगया आप और धीमान् लक्ष्मणजीके न रहनेपर रुदन करतीहुई सीताजीको वह लेगया ॥ ३ ॥ वह तो अवसर देखही रहाथा जैसेही आप दोनों जन दूरगये वैसेही वह उनको लेगया, कुछ दूर ले जानेके पीछे उसे गृध्रराज जटायु मिले. और उन्होंने सीता हरणका विरोध किया, तब राक्षस उनको संहार सीताजीको लेगया, और आपको भार्या वियोग-दुःखदेदिया ॥ ४ ॥ जो हुआ सो हुआ परन्तु अब हम थोडेही कालमें यह आपका भार्यावियोग दुःख दूरकरेंगे, हम नष्ट हुई देवश्रुतिके समान सीताजीको उद्धार करके आपके निकट लेआमेंगे इसमें कुछ संदेह नहींहै॥५॥६॥ हे श्रीरामचंद्रजी! हमारा यह वचन आप सत्यही जानें इन्द्रके सहित सुरगण व समस्त असुरगण कोईभी जानकीजीको नहीं छिपासकेगा ॥ ७ ॥ हे महाबाहु! आपकी भार्याको विषकी समान पचानें को कोईभी समर्थ नहीं होगा, हम निश्चय ही उनको ले आवेंगे, इसलिये आप शोक छोड दीजिये॥८॥हम अनुमानसे समझते हैं कि वह दुष्टाचारी रावण जब उनको हरण करके लिये जा रहाथा, तब हमनें उनको देखाथा,कदाचित्त वही जनककुमारी होंगी ॥ ९ ॥ उस समय वह (राम!राम!) और लक्ष्मण! यह कहकर बडे शब्दसे रो रहीथीं उस समय वह रावणके वशमें पडी पन्नगराज वधूकी समान प्रगटहोरहींथी ॥ १० ॥ उस समय हम और हमारे चार मंत्रियोंको पर्वत पर बैठे देख उन्होंनें अपना उत्तरीय वस्त्र और उत्तम २ कुछ गहने छोडे ॥ ११ ॥ हमनें उन सब आभूषणादिकोंको उठाकर धर रक्खाहै ! हम उन सबको लातेहैं आप उन सबको पहँचान लीजिये ॥ १२ ॥ जब सुग्रीवजीनें ऐसा कहा तो प्रियबोलनेंवाले श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवजीसे बोले कि हेसखे ! विलम्ब क्यों करतेहो? उनको शीघ्रले आओ ॥ १३ ॥ श्रीरामचंद्रजीसे इस प्रकार कहे जाकर सुग्रीवजी उनका प्रिय करनेंकी कामनासे शैलकाननसे शीघ्र पर्वतकी कंदरामें प्रवेश करते

हुये ॥ १४ ॥ वानरनाथनें शीघ्र उत्तरीय वस्त्र और वह सब गहनेले यह देखिये! यह कहकर शीघ्र रामचंद्रजीको दिखाये ॥ १५ ॥ श्रीरामचंद्रजी वस्त्र और गहने देख व ग्रहण कर कुहरसे ढके चंद्रमाकी समान अश्रुयुक्तहो रुद्धकंठहुये ॥ १६ ॥ सीताजीके स्नेहसे उत्पन्न आंसुओंसे दूषित हो हा प्रिये! कहकर धीरज छोड पृथ्वीपर गिर पडे ॥ १७ ॥ श्रीरामचन्द्रजी उन उत्तम गहनोंको वार २ हृदयमें लगा विलमें वैठे क्रोधित सर्पकी समान ऊंधे २ श्वास छोडनें लगे ॥ १८ ॥ तिसके पीछे जब आंसुओंका वेग कम हुआ तो बगलमें वैठे हुये लक्ष्मणजीको देख शोकके वेगसे श्रीरामचन्द्रजी औरभी विलाप करनें लगे ॥ १९ ॥ वह बोले देखो लक्ष्मण जब जानकीजी हरणकी जातीथीं तब उन्होंनें यह उत्तरीय और यह भूषण पृथ्वीपर फेंक दियेथे ॥ २० ॥ हरणके समय सीताजीनें हरी घासवाली भूमिपर यह भूषण अपनें अंगोंसे निकालकर डाल दिये हैं।देखो यह सब वैसेके वैसेही हैं, कुछ मलीन नहीं हुये ॥ २१ ॥ इस रीतिसें रामचंद्रसें लक्ष्मणजीसें कहा, तब लक्ष्मणजी कहने लगे कि, मैं जानकीजीके बाहु भूषण जानता नहीं हूं और कर्णकुंडलभी नहीं जानताहूं परंतु नित्य प्रति श्रीजानकीजीके चरणोंका नमस्कार करनेंसे उन्होंके पाद भूषण नूपुरको मात्र जानताहूं ॥ २२ ॥ तब श्रीरामचंन्द्रजी सुग्रीवजीसे बोले ॥ २३ ॥ कि हे सुग्रीवजी! तुमने उन हरण की जाती हुई को कहां देखा? और किस स्थानमें उग्ररूपी राक्षस हमारी प्राणप्रिया सीताजीको हरण करकै ले गया सो तुम बताओ ॥ २४ ॥ और वह राक्षस कहां वास करता है कि जिसके करनेंसे हम पर बडी विपद पडी है, और उसकेही निमित्त हम सब राक्षसोंका संहार करेंगे ॥ २५ ॥ उसनें जनकसुताको हरण कर हमको क्रोध उपजाया, मानो अपनी मृत्युकाबंद द्वार आपही खोल लिया ॥ २६ ॥

ममदयिततमाहृतावनाद्रजनिचरे
णविमथ्ययेनसा ॥ कथयममरिपुंत
मद्यवैप्लवगपतेयमसंनिधिंनयामि ॥ २७ ॥

हे कपिपते! जिस राक्षसनें हमारी प्यारी भार्याका अपमान कर उनको वनसे हरण कर लिया है, तुम उस राक्षसका नाम बताओ, हम उस आज संहार कर यमपुरीमें पठावेंगे॥ २७ ॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे षष्ठः सर्गः ॥ ६ ॥

सप्तमः सर्गः ॥

एवमुक्तस्तुसुग्रीवोरामेणार्तेनवानरः ॥
अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यंसबाष्पंबाष्पगद्गदः ॥ १ ॥

वानरराज सुग्रीवजी श्रीरामचन्द्रजीके यह आरत वचन श्रवण कर हाथ जोड आंसू भर गद्गद स्वरसे उनसे कहनें लगे ॥ १ ॥ कि हे श्रीरामचंद्रजी! हम उस पाप मति, और बुरे कुलमें उत्पन्न उस राक्षसका स्थान, कुल, विक्रम, या उसकी सामर्थ्यको कुछभी नहीं जानते हैं ॥ २ ॥ परन्तु हे अरिन्दम! हम सत्य करके प्रतिज्ञा करते हैं कि जिससे जानकीजी प्राप्त होजावें, हम वैसा करनेंमें सब भांति यत्न करेंगे, इस लिये आप शोक छोड़दीजिये ॥ ३ ॥ रावणको वंश सहित संहारकर आपके पौरुषका विस्तार कर आप जिस्से शीघ्र प्रसन्न और संतुष्ट होवें, हम वही कार्य करेंगे ॥ ४ ॥ आप इतने विकल न हूजिये अपने धीरजका आश्रय लीजिये आप समान पुरुषोंको हम इस प्रकारकी लघुताका आश्रय लेना उचित नहीं है ॥ ५ ॥ हमकोभी स्त्रीके हर जानेंसे उत्पन्न महाःदुख प्राप्त हुआहै, तथापि हमनें धीर्यका परित्याग करके शोकका आश्रय नहीं लिया ॥ ६ ॥ हमनें अतिनीच वानरजाति होकरभी शोक नहीं किया, फिर आप तो महात्मा विनीत, और धीरजवान पुरुषहैं, सो आपतो कभीभी शोक नहीं करेंगे, इसमें अधिक कहनाही क्या ॥ ७ ॥ आप शोकसे निकला हुआ अश्रुजल, अपनें धीरज और बलसे रोकिये, कारण कि पराक्रमी पुरुषोंकी मर्यादा और धारणा शक्ति आप त्याग करनेंके योग्य नहीं हैं ॥ ८ ॥ धीरजवान पुरुष, विपदके समयमें धनकी कमताईमें, भयके समय वा प्राणशंका उपस्थित होनें परभी अपनी बुद्धिसे विचारकर कार्य करनेंसे कभी व्याकुल नहीं होते ॥ ९ ॥ जो मूढ पुरुष नित्यही विकलाईका आश्रय लेता है, वह पुरुष बोझसे लदी नौकाकी समान अवश्यही शोकके जलमें डूबजाताहै ॥ १० ॥ यह हम आपके निकट हाथ जोड़कर कहते हैं कि आप प्रसन्न होवें, और पौरुषका आश्रय करके अपने अंतरमें शोकको बैठनेंका अवकाश नदें ॥ ११ ॥ जो पुरुष शोक किया करतेहैं उनको सुख नहीं होता वरन उनका तेजभी क्षी-

ण हो जाताहै, इसलिये आप शोकका परित्याग कीजिये ॥ १२ ॥ हे राजेन्द्र! अत्यन्त शोक करनेंवाले मनुष्योंके जीवन मेंभी संशय होजाताहै इसलिये आप शोकको छोड करके धीरज धारण कीजिये॥१३॥ हम मित्र भावसेही हितकी बात कहतेंहैं कुछ आपको उपदेश नहीं देते. सो आप हमारी मित्रताईका आदर करके केवल धीरजका आश्रय ग्रहण कीजिये ॥ १४ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें सुग्रीवके इस प्रकार सुमधुर समझानें वाले वचन सुनकर वस्त्रके सिरेसे अपना अश्रु परिपूर्ण वदन पोंछ डा-ला ॥ १५ ॥ लोकनाथ काकुत्स्थकुलतिलक श्रीसुग्रीवजीके वचनों से अपनी प्रकृतिमें टिक धीरज धारण करते हुये और वानर वा सुग्री-वजीको हृदयसे लगाय मिले और कहनें लगे ॥ १६ ॥ हे सुग्रीव! स्नेह युक्त हितकारी चतुर सखाको जो कर्तव्य और उचितहै, वह समस्तही तुमनें किया ॥ १७ ॥ तुम्हारे समझानेंने हमें स्वस्थ और अपनी प्रकृति पर स्थिर किया विशेष करके ऐसे समयमें तुम्हारी समान बन्धु मिलनें महादुर्लभहैं ॥ १८ ॥ परन्तु तुम घोर दुरात्मा रावणके संहार करनें और जनककुमारीका खोज करनेंके लिये विशेष यत्नकरो ॥ १९ ॥ और हमभी विश्वासी चित्तसे जिस कार्यको करें वहभी तुम हमसे कहो, क्योंकि वर्षाकालके समय अच्छेखेतमें बीजबोये हुयेकी समान तुम्हारेभी सब विचार सफलहैं ॥ २० ॥ हे वानरशार्दूल! हमनें जो अभिमानसे तुमसे कहाकि हम वालिको मारही डालेंगे,इस वाक्यको भी तुम सत्यही सत्यजा-नो ॥ २१ ॥ हमनें पहले कभी मिथ्या वचन नहीं बोला,और न कभी आगेको बोलेंगे हमनें अब सत्यही सत्य तुमसे प्रतिज्ञा और शपथकी ॥ २२ ॥ तिसके पीछे सुग्रीवजीनें हर्षित हो श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर अपनें बडे २ मंत्रियोंके साथ भली भांति अपनें मनमें समझ लिया कि श्रीराम चंद्रजी ने जो प्रतिज्ञाकी है वह अब पूरी हुई ॥ २३ ॥ इस प्रकारसे न्त में मिलकर नर और वानर दोनों अपने सुख दुःख प्रगट करते हुये॥२४॥

महानुभावस्यवचोनिशम्यहरिर्नृपाणा
मधिपस्यतस्य ॥ कृतंसमेनेहरिवीरमु
ख्यस्तदाचकार्यंहृदयेनविद्वान् ॥ २५ ॥

नृप गणोंके अधीश्वर महानुभाव श्रीरामचन्द्रजीके वचन सुनकर, वानर प्रधान सुग्रीवजी मनही मनमें विचार करनें लगे कि अब निः- संदेह हमारा कार्य सिद्ध होगया ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे सप्तमः सर्गः ॥ ७ ॥

अष्टमः सर्गः ॥

परितुष्टस्यसुग्रीवस्तेनवाक्येनहर्षितः ॥
लक्ष्मणस्याग्रजंशूरमिदंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

जब श्रीरामचंद्रजीनें प्रसन्न होकर ऐसे वचन कहे तो सुग्रीवजी हर्षित होकर वीर वर लक्ष्मणजीके बडेभ्राता श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥१॥ कि अब हम निः- सन्देह सर्व प्रकारसे देवता गणोंके अनुगृहीत हुये,क्योंकि आप समान गुण- वान पुरुष के साथ हमारी मित्रता हुई ॥२॥ हे शुद्धात्मा! प्रभो! जब आप सहाय हैं तब तो देवताओंका राज्य लेनेंमेंभी समर्थ हैं, हमारा अपना राज्य लेनातो एक अति साधारण बात है ॥३॥ हे राघव! जब कि हमनें रघुवंशमें उत्पन्न हुये पुरुषसे अग्निके सन्मुख मित्रता प्राप्त की तब अवश्य ही हम अपने बन्धु बान्धव और सुहृद् गणोंके प्रीत पात्र और माननीय हुये, इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ ४ ॥ और हमकोभी आप अपना योग्य ही मित्र समझिये,हमारे अंतःकरणमें आपके प्रति जिस प्रकारका स्नेह भाव उदय हुआहै उसको हम कहने और प्रगट करनेंमें समर्थ नहीं हैं ॥ ५ ॥ हे इन्द्रिय जीतनें वालोंमें प्रथम गिनेजानेंके योग्य! आप सरीखे कृत विद्य म- हात्मा गणोंमें सखा ओंकी निश्चल प्रीति होगी, इसमें संदेहही क्याहै? ॥६॥ साधु मित्र लोग, साधुसखाओंके, सुवर्ण, चांदी व और दूसरे उत्तम २ गहने आदिको अपना देखकर अलग नहीं देखते, वरन भेदरहित होकर परस्परही समझते हैं, कि यह अपना है सो उनका, और उनका है सो हमारा ॥ ७ ॥ धनवान्ही हों; वा निर्धनहों; दुःखीहो वा सुखीहो अथवा दोष रहितहो, परन्तु मित्र, मित्रहीको परमगति समझते हैं ॥ ८ ॥ हे पाप रहित! जो परस्पर एक स्नेहहीको देखते हैं वह परस्पर मित्रके लिये ध- नको छोड सुखसे मुँह मोड, और देशतकसे रिश्ता तोड मित्रके अनुसार वर्ताव करते हैं, और उसे कभी नहीं छोडते हैं ॥ ९ ॥ सुग्रीवजीके यह

वचन सुनकर श्रीरामचन्द्रजी, उत्फुल्लकान्ति धारण किये हुये, इन्द्र समान धीमान् लक्ष्मणजीके सन्मुख उन प्रिय दर्शन वानरराजसे बोले कि हे सखे निःसंदेह यह जो आपनें कहा सबही यथार्थ है ॥ १० ॥ तिसके पीछे दूसरे दिन सुग्रीवजीनें, श्रीरामचन्द्रजी और महाबलवान् लक्ष्मणजीको पृथ्वीपर बैठा हुआ देख चंचल भावसे चारों ओर दृष्टि डाली ॥ ११ ॥ तब वानर श्रेष्ठनें देखाकि उत्तम पुष्प, और कुछेक पत्तोंसे युक्त भ्रमर गणोंसे सुशोभित समीपही एक शालका वृक्ष लगा है ॥ १२ ॥ उस वृक्षकी बहुत पत्तोंवाली एक शाखा तोड श्रीरामचन्द्रजीके लिये आसन बना उनके सहित उसपर आपभी बैठे ॥ १३ ॥ सुग्रीव और श्रीरामचन्द्रजीको बैठा हुआ देखकर हनुमान्‌जीनेंभी लक्ष्मणजीके लिये एक शाल शाखा तोड आसन बना दिया और उसपर विनीत भावसे लक्ष्मणजीको बैठाया॥ १४॥ जब सुप्रसन्नमन सागरकी समान गंभीर स्वभाव युक्त, श्रीरामचन्द्रजीको शाल पुष्प परिपूर्ण उस गिरिवरपर बैठा हुआ देखकर॥ १५॥सुग्रीवजी हर्षित हो मधुर हितकारी वचनोंसे प्रेम और हर्षमें भरनेंके कारण व्याकुल होकर श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ १६ ॥ कि हम अपने भ्रातासे अपकारको प्राप्तहो भार्याको खोय और भयसे कातर होकर ऋष्यमूक पर्वतपर विचरतेहैं ॥ १७ ॥ सो यहांपरभी हम उस वालिके भयसे त्रासित और भयसे चेतना रहित रहा करतेहैं, कारण कि हमारे भ्राता वालिनें गृहसे हमको निकाल अबतकभी हमसे वैर नहीं छोडा ॥ १८ ॥ हे सर्व लोकोंको अभय देनेवाले ! हम वालिके भयसे महा आरत और अनाथ होगयेहैं सो हमारे ऊपर आप प्रसन्न हूजिये॥ १९॥ जब सुग्रीवजीनें ऐसा कहा तो धर्मज्ञ धर्मवत्सल तेजस्वी श्रीरामचंद्र हँसते हुए उनसे बोले ॥ २० ॥ उपकार करनेंहीसे मित्र और अपकार करनेंहीसे शत्रु होताहै तुमसे फिर कहतेहैं कि हम आजही तुम्हारी भार्याके हरण करनेंवाले उस वालिको मार डालेंगे ॥ २१ ॥ हे महाभाग! हमारे यह कार्त्तिकेय वनसे उत्पन्न सुवर्ण भूषित तीखे बाण देखो ॥ २२ ॥ कि जिनकी शिखा व नली चीलहके पंखोंकी समान बनीहैं ऐसे इन्द्रके वज्रकी समान सुपर्वा तीखे फलक युक्त और क्रोध सहित सर्पकी समान यह बाणहैं ॥ २३ ॥ हम तुम्हारी भार्याके हरनेंवाले पापी शत्रु भ्राता

वालिको इन्हीं अपनें बाणोंसे पर्वतकी समान गिराकर मार डालेंगे सो तुम देखोहीगे ॥ २४ ॥ वाहिनी सेनाके पति सुग्रीवजी श्रीरामचंद्रजीके ऐसे वचन सुन अतुल हर्ष प्राप्तकर साधु ! साधु ! कह श्रीरामचंद्रजीकी बडाई करनें लगे ॥ २५ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! हम शोकके मारे व्याकुलहैं और आप शोकसे पीडित पुरुषोंकी गतिहैं, सो आपको हम अपना मित्र जानकर अपना दुःख प्रगट करतेहैं ॥ २६ ॥ आपनें अपना हाथदे अग्निको शाखी करके हमको अपना मित्र बनायाहै सो हम सत्यही सत्य कहतेहैं कि आप हमारे प्राणोंसेभी अधिक प्यारे माननीयहैं ॥ २७ ॥ हम अपना विश्वासी मित्र समझकर आपसे अपना सब वृत्तान्त कहतेहैं, क्योंकि अपना वृत्तान्त आपके निकट कहनेंसे हमारे मनका दुःख बहुत हलका होजाताहै ॥ २८ ॥ इस प्रकारसे कहते २ सुग्रीवजीके नेत्रोंमें आंसू आगये और उनकी वाणी कफसे दूषित होगई जिस्से कि फिर वह ऊंचे स्वरसे कुछ न बोलसके ॥ २९ ॥ वानरराज सुग्रीवजीनें नदीके वेगकी समान आये हुए आंसुओंके वेगको सहसा अपने धीरजसे धारण कर लिया क्योंकि उन्होंने श्रीरामचंद्रजीके निकट बैठकर रोना उचित न जाना॥३०॥ तेजस्वी वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजी आंसुओंका वेग रोक दोनों नेत्रोंको पोछ श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ३१ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! पहले बलवान् वालिनें हमको हमारे राज्यसे भ्रष्टकर कठोर वचन सुनाकर घरसे निकाल दिया ॥ ३२ ॥ उसने हमारी प्राणसेभी अधिक प्यारी स्त्रीको हरण करकै हमारे सब इष्ट मित्रोंको बांध रक्खाहै ॥ ३३ ॥ हे राघव! वह दुष्टात्मा हमारा नाश करनेंके लिये अनेकवार यत्न कर चुकाहै परन्तु हमको मारनेंके लिये उसके भेजे हुए सब वानरोंको हमने मार डालाहै ॥ ३४ ॥ हम उसी हेतुसे आपको देखकर शंका करकै आपके निकट आनेंमें डरेथे क्योंकि भयसे सब पुरुष डरा करतेहैं ॥ ३५ ॥ केवल हनुमानादि वानर गण हमारी सहायता करतेहैं इसही कारणसे हम अतिशय कष्टमें पडकरभी प्राण धारण किये हुयेहैं ॥ ३६ ॥ यह हमारे स्नेही मित्र वानरगण हमारी सब प्रकारसे रक्षा करतेहैं यह लोग हमारे बैठनें पर बैठते और हमारे कहींको चलनें पर चलते हैं ॥ ३७ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी ! बहुत कहनेंसे क्याहै। हमनें अपना सबही वृत्तान्त संक्षेपसे कहदिया, हमारे

शत्रु और बडे भाई वालिका पौरुष अत्यन्त विख्यातहै ॥ ३८ ॥ उसका नाश होनेंसे हमारा दुःखभी नाशको प्राप्तहोगा, उसका वध होनेंही-में सुख और जीवन संचारकी आशा हो सकती है ॥ ३९ ॥ हमनें शोक-से पीडित होकर जो अपने शोकके नाश करनेंका उपाय बताया है, बस इस्से हमारा दुःख जा सकताहै, दुःखितही हो, वा सुखितही हो, मित्र ही मित्रकी गति होजाताहै ॥ ४० ॥ सुग्रीवजीके ऐसे वचन सुनकर श्रीरामचंद्रजी बोले कि. तुम्हारा वैर वालिसे किस कारण हुआ! सो उस-को हम यथार्थ रूपसे श्रवण करनेंकी इच्छा करते हैं ॥ ४१ ॥ हे वान-रवर! तुम्हारे बीचमें वैर होनेंका कारण सुन बलाबल विचारकर फिर तुम्हारा कार्य करेंगे ॥ ४२ ॥ तुम्हारा अपमान सुनकर हमारा कोप बल-वानहो हृदय कम्पनकारी वर्षाकालीन वारिवेगकी समान बढता जाताहै ॥ ४३ ॥ हम जबतक धनुष नहीं चढाते हैं तबतक तुम हर्षित चित्तसे सब वृत्तान्त कहदो जैसेही कि हम बाण छोडेंगे वैसेही तुम्हारा रिपु मर जायगा, इस बातको निःसंदेह ठीक २ कर जानो॥ ४४ ॥ महात्मा श्रीरामचंद्रजीसे इस प्रकार कहे जाकर सुग्रीवजी अपने चार मंत्रियों सहित अतुलित हर्ष प्राप्त करते हुये ॥ ४५ ॥

ततःप्रहृष्टवदनःसुग्रीवोलक्ष्मणाग्रजे ॥
वैरस्यकारणंतत्त्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ४६ ॥

तिसके पीछे सुग्रीवजीनें प्रसन्न वदन हो रामचंद्रजीसे वालिसे वैर होनेंका कारण वर्णन करना आरंभ किया ॥ ४६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रा-मायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडेऽष्टमः सर्गः ॥ ८ ॥

नवमः सर्गः ॥

वालीनाममम भ्राताज्येष्ठःशत्रुनिषूदनः ॥
पितुर्बहुमतोनित्यंममचापितथापुरा ॥ १ ॥

वालिनामक शत्रुओंका विनाशक हमारा बडाभाई पिताका और जबतक वैर न हुआथा तबतक हमाराभी अत्यन्त प्रियथा ॥ १ ॥ जब पिताजीकी मृत्युहुई तब वालिको बडा पुत्र समझ मंत्रियोंने परस्पर

सम्मतिकर उसको वानरोंका राजा बनाया ॥ २ ॥ वह पिता पितामहादिकोंका राज्य पालन करनें लगे, हम उनके निकट दास की समान विनीत भावसे रहनें लगे ॥ ३ ॥ पहले किसी समयमें मायावी नामक तेजस्वी दनुपुत्रके साथ स्त्रीके निमित्त वालिका वैर हुआथा, यह दानव पहले मयका पुत्रथा, फिर दुन्दुभीका पुत्र हुआ ॥ ४ ॥ एक समय जब कि रात्रिके कालमें सब सोरहेथे कि वही मायावी किष्किन्धा पुरीके द्वारपर आकर वालिको रण करनेके लिये पुकारनें लगा ॥ ५ ॥ हमारे भ्राता वालि उस समय सोतेथे, उसका भयंकर शब्द सुन और उसके न सह सकनें पर वेग सहित बाहरको चले ॥ ६ ॥ वह वहांसे झपट क्रोधके वशमें हो उस असुरश्रेष्ठको मारनेंके लिये तैयार हुये, तिसके पीछे समस्त स्त्रियोंने और हमनें उनको निवारण किया ॥ ७ ॥ परन्तु महाबलि वालिनें किसीकी एक बात न सुनी, और संग्राम करनेंके लिये चल दिये, और महा बलवान होनेंके कारण सुहृता के स्नेहसे हमभी उनके पीछे २ चलेगये ॥ ८ ॥ वह असुर हमारे भ्राता वालिको व हमको उनके पीछे २ दूरसे आता हुआ देखकर ॥ ९ ॥ भयभीतहो वेग सहित भागने लगा, जब वह त्रासितहोकर वेग सहित दौडा तब हम दोनों जनेभी उसके पीछे २ वेगयुक्तहो दौडे, क्योंकि निशानाथके उदय होनेंसे उस समय चांदनी खिल रहीथी ॥ १० ॥ वह राक्षस भागते २ पृथ्वीके तृणों करकै छायेहुये येक दुर्गम और बडे खोहमें प्रवेश करगया, तब हम दोनों भाई उस गुफाके आगे खडे रहे, ॥ ११ ॥ उस शत्रुको गुफामें बैठा हुआ देख हमारे भ्राता वालि क्रोधसे मूर्च्छित हो हमसे बोले॥ १२ ॥ कि हे सुग्रीव! जबतक हम इस शत्रुका संहार करकै न फिरैं तबतक तुम यहीं पर खडे रहना ॥ १३ ॥ हमनें उनके साथ बिलमें जानेके लिये प्रार्थनाकी परन्तु उन्होंनें अपना चरण भूमिमें मार (अर्थात् चरणकी सौगन्धदिला,) हमको साथले चलनेंसे रोका, और आप उस बिलमें प्रवेश कर गये ॥ १४ ॥ जब वह बिलमें प्रवेश करगये तब हमको बिलके द्वारे पर खडे २ एक वर्षसेभी अधिक काल बीतगया ॥ १५ ॥ जब इस प्रकार एक वर्ष बीतगया तब हमनें जानाकि हमारे भाई विनाशको प्राप्तहुये हमारा चित्तभी

स्नेहके मारे अत्यन्त चंचल होगया और हम अनिष्टकी शंका करनें लगे ॥ १६ ॥ तथापि हम वहां खडेही रहे तब कुछदिन पीछे उस बिलसे फेन सहित रुधिर निकलते हुये देखकर हम अत्यन्त दुःखित हुये ॥१७॥ तब गर्जना करने वाले असुर गणोंका घोर शब्द हमको सुनाई आया, परन्तु संग्राममें गयेहुये अपने बडे भाई साहब वालिका हमको कोई शब्द न सुनपडा ॥ १८ ॥ हमनें इन चिह्नोंसे जानाकि हमारे भाई साहब मारे-गये, तब इस कारणसे एक पर्वताकार शिला उस गुफाके द्वारपर अडादी ॥ १९ ॥ और शोकार्त्त चित्तसे उनकी जलक्रिया करके हम कि-ष्किन्धामें आये यद्यपि हमनें वालिके वधकी वार्त्ता बहुतही छिपाई, परन्तु मंत्री लोगोंनें उसको किसी प्रकारसे जानलिया ॥ २० ॥ तिसके पीछे उन सब मंत्रियोंनें मिलकर हमारी इच्छा न रहतेभी हमको राज्य पर बैठाल दिया, हम यथान्यायसे राज्यका पालन करतेथे ॥२१॥ कि इतनेंमें वालि उस रिपुदानवको संहार करके घर आगये, और हमको राज्य सिंहासन पर बैठे देखकर क्रोधसे लाल २ नेत्र कर लिये ॥ २२ ॥ तब उस समय उसनें हमारे मंत्रियोंको बँधुआकर उनका कठोर वचनोंसे तिरस्कार करनें लगा हे राघव ! यद्यपि हममें इतना बलथाकि उस पापाचारी वालिको बांधलें ॥ २३ ॥ परन्तु भ्राताकी प्रतिष्ठामान हमारी बुद्धि ऐसी न हुई कि हम उन्हें बँधुआकरें जब वह अपने शत्रुको मारकर पुरमें प्रवेश करते हुए ॥ २४ ॥ तब हमनें सन्मान करके उन महात्माके चरण ग्रहण कर प्रणाम किया, परन्तु नतो वह प्रसन्नही हुये और न हमको आशिर्वा-दही दिया ॥ २५ ॥

नत्वापादावहंतस्यमुकुटेनास्पृशंप्रभो ॥
अपिवालीममक्रोधान्नप्रसादंचकारसः ॥ २६ ॥

हमनें वार २ उनके चरणोंमें अपना मुकुट सहित मस्तक धर कर प्रणाम किया परन्तु वालि क्रोधके वशहो किसी प्रकारसेभी हमारे ऊपर प्रसन्न न हुआ ॥ २६ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०कि० नवमःसर्गः ॥ ९ ॥

दशमःसर्गः ॥

ततःक्रोधसमाविष्टंसंरब्धंतमुपागतम् ॥

अहंप्रसादयांचक्रेभ्रातरंहितकाम्यया ॥ १ ॥

तब हम उनके व अपने हितकी कामनासे, वेगसे आये हुए क्रोधसे भरकर बैठे अपने भ्राताको प्रसन्न करनें लगे ॥ १ ॥ हे अनाथोंकी रक्षा करनें वाले ! बडे भाग्यकी बातहै कि आप शत्रुका संहार करके कुशल सहित फिर अपने गृहको आयेहैं । हम अनाथहैं, हमारे तो एक आपही नाथहैं ॥ २ ॥ यह पूर्ण चंद्रमाकी समान दीप्तिमान बहु शलाका युक्त छत्र और चँवर जोकि इतने दिनों हम धारण करतेथे. सो अब इनको आप धारण कीजिये ॥ ३ ॥ हे नृपवर ! हम उस बिलके द्वार पर एक वर्षतक खडे रहे इस्से बहुत कातर होगये, फिर बिलसे उत्पन्न हुई शोणितकी धार अवलोकन करके ॥ ४ ॥ शोक और घबडाहटसे हमारा हृदय अत्यन्त चंचल हुआ और सब इन्द्रियेंभी अत्यन्त व्याकुल हो आईं तब हम पर्वतके शिखरसे गुफाका द्वार रोककर ॥ ५ ॥ उस स्थानसे फिर आकर किष्किन्धामें चले आये मंत्रियोंनें और पुरके लोगोंनें हमको अत्यन्त विषादित देखकर ॥ ६ ॥ राज्यसिंहासन पर बैठाल दिया, परन्तु राज्यसिंहासन पर बैठनेंकी हमारी इच्छा नहींथी । जोहो आप हमारे इस अपराधको क्षमा कीजिये, आप अबभी पहलेहीकी समान राजाहैं और जैसे प्रथम हम आपके सेवकथे वैसेही अबभीहैं ॥ ७ ॥ और हम जो राज्य सिंहासन पर बैठाये गये,यह बात तो आपके न होनें पर थी, जैसे आप मंत्रियोंको छोड गयेथे वैसेही सब मंत्रीभी अबतक हैं, और राज्यमें शत्रुभी कोई नहीं है ॥ ८ ॥ हमारे पास तो आपका यह राज्य मानो थाती की भांति रक्खारहा अब आप इसको लेलें । हे शत्रु निषूदन सौम्य! हमारे ऊपर अब आप रोष न करैं ॥ ९ ॥ हे राजन् ! हम आपके आगे हाथ जोड शिर झुकाकर यह प्रार्थना करते हैं, कि मंत्रि और पुरवासियोंनें बलात्कार ॥ १० ॥ हमको राज्य करनेंमें लगा दियाथा, इस कारण से कि आपके न रहनेंपर शूने देशमें कोई शत्रु चढ न आवे और इसे जीतन ले, हे श्रीरामचंद्रजी!हमनें विनीतभावसे ऐसे ऐसे मधुर वचन कहे पर उन हमारे बडे भ्राताने हमारा बडा अपमान कर ॥ ११ ॥ तुझ को धिक्कार है, तुझ को धिक्कार है; बारंबार ऐसे कठोर वचन कहे तत्प-

श्चात् सब प्रजा और मंत्रि व और नौकर चाकरोंको बुलाकर ॥ १२ ॥ सब सुहृद गणोंकि मध्यमें हमको अत्यन्त दुर्वचन कहने लगे कि तुम सब लोग जानते होकि पहले मायावी नामक महा असुर रात्रिमें यहां आयाथा ॥ १३ ॥ उसने क्रोधित और युद्धकांक्षी होकर हमको पुकारा उसका पुकारना सुनकर हम राज गृहसे बाहर निकले ॥ १४ ॥ और हमारे पीछे २ यह दारुण हमारे भाई भी चले उस रात्रिमें हमदोनों जनों को वह महाबलवान असुर देखकर ॥ १५ ॥ भयके मारे त्रासित हो भाग चला तब हम भी बराबर उसके पीछे२दौडे गये, तब वहबड़े वेगसे भागते २ एक बिलमें प्रवेश कर गया ॥१६॥ तब उस दुष्ट व कठोर चित्तको एडी गुफा-में घुसा हुआ देखकर हमनें इस अति क्रूर दर्शन अपने भाईसे कहा ॥ १७ ॥ इस असुरको बिनामारे हम नहीं जायँगे, सो जबतक हम इसको मार कर आवें तबतकतुम इस गुफाके द्वार पर हमारी राह देखते रहना ॥ १८ ॥ हम यह जानकर कि सुग्रीव तो द्वारपर खडेही हैं उस दुर्गम बिलमें घुसे सो वहांपर उसे ढूंढते ढूंढते ही हमें एक वर्ष लगगया ॥ १९ ॥ संवतसर बीतनेंके पीछे मारे डरके व्याकुल वह हमें मिला, बस हमनें देखतेही उसको बन्धु बान्धवों सहित मार डाला ॥ २० ॥ संहार करनें के समय वह ऐसा चिल्लाया कि उस्से और उसके मुखसे निर्गत रुधिर धारसे वह गुफा पूर्ण होगई ॥ २१ ॥ उस महाबलवान् शत्रुको संहार करके जब हम सुख पूर्वक गुफाके बाहेर को आरहेथे तब उस समय देखाकि गुफाका द्वार बंद पडा है ॥ २२ ॥ तब हम "भइया सुग्रीव! सुग्रीव" कह कर जोरसे पुकारने लगे परन्तु उस समय कुछ उत्तर न पाकर हम बडे दुःखी हुये॥ २३॥ फिर हम बहुत सारे चरण प्रहारोंके द्वारा उस शिलाको ढकेल उस गुफासे निकल नगरमें आये हैं॥२४॥यह सुग्रीव भायपन का स्नेह भुलाकर राज्यके लोभ-से हमको गुफामें बंदकर आया इससे हमको अत्यन्त क्रोध हुआ है ॥ २५ ॥ वानर राज निर्भय वालिने ऐसा कहकर एक मात्र धोती पहराकर हमको घरसे निकालदिया ॥२६॥ हे श्रीरामचंद्रजी! हमारी स्त्रीको हरण करके उस वालिने हमको बहुत ही मारदी उस वालिके ही भयसे समुद्र वन युक्त यह समस्त पृथ्वी हम घूमते थे ॥ २७ ॥ हम अपनी स्त्रीके हरण होजानेंके दुःखसे महा दुःखित इस ऋष्यमूक पर्वतपर चले आये! क्योंकि यहां

मतंगजीके शापसे वालि नहीं आसकता ॥ २८ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! हमनें आपसे वालिसे वैरभाव होनेंका समस्त ही कारण कह सुनाया; देखिये इस्में हमारा कुछभी अपराध नहीं है वरन हम विना अपराधही यह महा दुःख पारहेहैं॥२९॥हे सर्व लोकको अभय देनेंवाले! वालिको मार कर उसके भयसे भीत और व्याकुल हमारे ऊपर आप प्रसन्न हूजिये॥३०॥वह तेजस्वी धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी वह धर्म साने वचन सुन हँसकर बोले॥३१॥ हे सुग्रीव! हमारे यह तीखे सूर्यसमान प्रकाशित अमोघ बाण उस दुराचारी वालिके ऊपर क्रोधमें भरकर गिरेंगे ॥ ३२ ॥ हम जबतक तुम्हारी भार्याको हरण करनेवाले उस वालिको नहीं देख पातेहैं, तभीतक वह कुचरित्र पापाचारी जीवित रहैगा ॥ ३३ ॥ हम अनुमानसे देखतेहैं कि तुम शोक सागरमें डूब रहेहो, हम तुमको इस शोक सागरसे उद्धार करेंगे और तुमको फिर तुम्हारा राज्य प्राप्त होजायगा ॥ ३४ ॥

तस्यतद्वचनंश्रुत्वाहर्षपौरुषवर्धनम् ॥
सुग्रीवःपरमप्रीतःसुमहद्वाक्यमब्रवीत् ॥ ३५ ॥

श्रीरामचंद्रजीके हर्ष और पौरुषके वढानेवाले वचन सुनकर सुग्रीवजी परम प्रसन्नहो वडे अर्थ युक्त वचन बोले ॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किंधाकांडे दशमःसर्गः ॥ १० ॥

एकादशःसर्गः ॥

रामस्यवचनंश्रुत्वाहर्षपौरुषवर्धनम् ॥
सुग्रीवःपूजयांचक्रेराघवंप्रशशंसच ॥ १ ॥

श्रीरामचंद्रजीके हर्ष और पौरुपार्थके वढानें वाले वचन सुनकर सुग्रीव जी उनकी पूजाकर प्रशंसा करतेहुये ॥ १ ॥ कि आप क्रोधितहोकर रुधिरके प्यासे प्रज्वलित सुतीक्ष्ण मर्मभेदी वाणोंसे निश्चयही प्रलयकालीन सूर्य भगवानकी समान सम्पूर्ण लोकोंको भस्मकर सकतेहैं ॥ २ ॥ प्रथम आप वालिका पौरुप धीरता और वीर्य हमसे सावधान चित्त होकर श्रवण करलीजिये, फिर जैसा उचित हो समझ बूझकर कीजिये ॥ ३ ॥ वालि सूर्योदयके प्रथमही पश्चिम समुद्रसे पूर्व और दक्षिण समुद्र और उत्तर स-

मुद्रके किनारे तक घूमआताहै, परन्तु इतना चलनेंसेभी वह कुछ नहीं थकता॥४॥वह महावीर्यवान् वालि पर्वतोंके अग्रभाग पर चढकर शिखरोंको उखाडकर ऊपरको उछालदेताहै और फिर उनको हाथसे पकड लेताहै५॥ वालिनें अपना बल प्रकाश करनेंके लिये,वनमें लगे हुए बहुतेरे सारवान् वृक्षों को उखाडकर चूर्णकरदिया॥६॥ कैलास पर्वतके शिखरकी समान दुन्दुभी नामक वीर्यवान् महिष हजार हाथियोंका बल अपने शरीरमें धारण करता था॥७॥ वीर्यके मदसे मतवाला वन, और वरदान पानेके कारण मोहितहो वह महाकाय दुन्दुभी समुद्रके निकटगया, ॥ ८ ॥ वह रत्नाकर समुद्रकी तरंगोंको रोक समुद्रसे बोला कि तुम हमको युद्धदानदो ॥ ९ ॥ तब धर्मा-त्मा महा बलवान् समुद्रनें उठकर, उस बलसे मतवाले दुष्टकालप्रेरित-असुरसे कहा ॥ १० ॥ हे युद्धविशारद ! तुम्हारे साथ युद्ध करनेंकी हममें सामर्थ्य नहींहै, हां जो पुरुष तुम्हारे साथ युद्ध करैगा, उसको बतलातेहैं श्रवणकरो ॥ ११ ॥ महा अरण्यमें हिमवान नामसे विख्यात तपस्वि-योंको आश्रय देनेवाले, शिवजीके श्वशुर एक पर्वत राजहैं ॥ १२ ॥ उस-गिरिमें बहुतसे झरने, कन्दरा, और सोते विद्यमानहैं । सो वह गिरिराज तुमको प्रसन्न करनें में समर्थ होंगे, अर्थात् तुमसे युद्ध करसकैंगे ॥ १३ ॥ वह असुर श्रेष्ठ समुद्रको अपनेंसे डरा हुआ जानकर धनुषसे छूटेहुये बा-णकी समान शीघ्रताके सहित सीधाहिमालयके वनमें पहुँचा ॥ १४ ॥ और उन पर्वतराजपर पहुँच उनकी ऐरावत हस्तीके तुल्य सफेद शिलायें पृथ्वीपर फेंक २ कर सिंहनाद करनें लगा ॥ १५ ॥ तब श्वेतजल धर तुल्य—सौम्य, प्रीतिका उपजानेंवाला आकार धारणकर हिमवानजी अपने एक शिखापर खडे होकर दुन्दुभिसे बोले ॥ १६ ॥ हे धर्मवत्सल दुन्दुभे ! तुम हमको क्लेश नदो जो लोग रण कार्यको कुछभी नहीं जानते हमतो उन तपस्वियोंको आश्रयदाताहैं ॥ १७ ॥ बुद्धिमान् गिरिराज हि-मवानके ऐसे वचन सुनकर दुन्दुभीक्रोधसे लाल २ नेत्रकर उनसे बोला ॥ ॥ १८ ॥ यदि तुम हमारे साथ युद्ध करनेंमें असमर्थहो, और हमारे भयसे उद्यम विहीन हो तो हम युद्ध करनेकी इच्छा किये हुयेसे कौन पुरुष युद्ध कर सकताहै, तुम उसको हमें बतादो ॥ १९ ॥ वचन बोलनेंमें चतुर धर्मात्मा हिमाचलजी, उसके ऐसे वचन सुनकर उस

क्रोधसे मतवाले असुरश्रेष्ठसे बोले ॥ २० ॥ हे महाप्राज्ञ! वालि नामक इन्द्रका पुत्र बडा प्रतापी वानर है, वह अतुल प्रभावाली किष्किन्धा नाम नगरीमें वास करता है वह महा प्राज्ञ वालि तुम्हारे साथ युद्ध करनेकी सामर्थ्य रखता है जिस प्रकार नमुचि दैत्यके साथ इन्द्रनें युद्ध कियाथा, ऐसेही वालि तुम्हारे साथ द्वंद्व युद्ध करैगा ॥२१॥ २२ ॥ यदि तुमको युद्ध करनेंकी इच्छा हो तो तुम शीघ्रही उसके निकट चले जाओ वह समर कर्ममें कुशल, शूर, और अतिशय तेजस्वी है ॥ २३ ॥ जब हिमाचलजीनें ऐसा कहा तो दुन्दुभी क्रोध युक्त हो अतिशीघ्रताके सहित वालिकी किष्किन्धा नाम नगरीमें आया ॥ २४ ॥ उस असुरनें वर्षाकालके समय आकाशमें जलपूर्ण महा मेघकी समान तेज सींग युक्त अपना महाभयानक रूप धारण किया ॥ २५ ॥ फिर महाबलवान् दुन्दुभी किष्किन्धाके द्वार पर आ भूमिको कंपाता हुआ नगाडेके शब्द समान सिंह नाद करनें लगा ॥ २६ ॥ वह दर्पमें भरे मतवाले हाथीकी समान किष्किन्धाके द्वार वाले वृक्ष तोड और अपनें खुरोंसे भूमिको विदीर्ण कर सींगोंसे खोदनें लगा ॥ २७ ॥ उस समयमें वालि रनवासमें स्त्रियोंके निकट वैठाथा, वह उस शब्दको न सहन कर तारागणोंके सहित चन्द्रमाकी समान सब स्त्रियोंके साथ वाहर चला आया ॥ २८ ॥ समस्त वनचारियोंका, और वानर गणोंका राजा वालि दुन्दुभीसे स्पष्ट २ बोला ॥ २९ ॥ हे महाबलवान् दुन्दुभे! तुम किस कारणसे इन नगरके द्वारको रोके हुये गर्जना कर रहे हो? तुम हमारा वल भली भांति जानते हो, इस कारणसे इस समय अपनें प्राणोंकी रक्षा करो ॥ ३० ॥ वानरश्रेष्ठ बुद्धिमान वालिके ऐसे वचन सुनकर लाल २ नेत्र कर दुन्दुभी वालिसे बोला ॥ ३१ ॥ हे वीर! तुम अपनी स्त्रियोंके निकटही अपनी वडाईके वचन कह रहे हो; आज हमारे साथ युद्ध करो;तव तुम्हारा वल जाना जायगा॥३२॥अथवा अव हम रात्रिकालमें अपनें क्रोधको रोके रहते हैं, तवतक तुम सूर्यके उदय होनेंतक काम भोगमें आसक्त हो इन स्त्रियोंके सहित रात्रि विताओ॥३३॥प्रभात हम तुमसे युद्ध कर लेंगे। और तुम सव वानर गणोंसे मिल भेंटलो और सव सुहृदोंकोभी आदर मानसे प्रसन्न कर आओ ॥ ३४ ॥ किष्किन्धा पुरीको चारों ओरसे देखभाल लो और अपनें पुत्रोंमेंसे किसीको राज्य सिंहासनभी

देदो, क्योंकि हम तुम्हारा सब अहंकार तोड तुमको मार डालेंगे ॥ ३५ ॥ जो पुरुष, मत्त, प्रमत्त, भागेहुये, आयुधरहित, दुबले और तुम्हारीसमान मदसे मोहित पुरुषको मारता है वह गर्भहत्याके पापको प्राप्त होता है इस कारण इस समय हम तुमको नहीं मारते हैं ॥ ३६ ॥ यह श्रवण कर हँसता हुआ वालि उस क्रोधमें भरे मन्दमति असुरसे बोला कि यहलो हमनें तारा आदि स्त्रियोंको त्याग किया ॥ ३७ ॥ यदि तुम संग्राम करनेमें निडरहो, तब तो हमको मतवाला मत समझो, कारण कि यह स्त्रियों करके उपजा हुआ मद युद्धमें बल होनेके अर्थ वीरोंके मदपानकी समान जानो ॥ ३८ ॥ उस असुरसे इस प्रकार कह कर, वालि अपने पिता इंद्रकी दी हुई जय देनेंवाली काञ्चनमय माल गलेमें पहर कर युद्ध करनेंके लिये तैयार होगया ॥ ३९ ॥ कपिश्रेष्ठ वालिनें उस पर्वत समान दुन्दुभीके दोनों सींग पकड घोर शब्द कर उसको ढकेल कर गिरा दिया ॥ ४० ॥ वालि दुन्दुभीको गिराकर सिंहनाद करके गर्जनेंलगा । वालिनें दुन्दुभीको इतनें बलसे गिराया कि उसके कानोंसे रुधिर बहनें लगा॥४१॥फिर परस्पर जीतनेकी इच्छा किये वालि और दुन्दुभीका क्रोधमें भरनेके कारण महाघोर संग्राम आरंभ हुआ ॥ ४२ ॥ इंद्रतुल्य पराक्रमशाली वालि, लात, घूंसा, जांघ, शिला, और वृक्षोंके द्वारा युद्ध करनें लगा॥४३॥ इस प्रकारसे वानर और असुरका युद्ध होने लगा । युद्ध होते २ असुरका बल क्षीण होता और वालिका बल बढता जाताथा ॥ ४४ ॥ तब वालिनें दुन्दुभीको पकडकर पृथ्वीपर पटक दिया, उस प्राण विनाशक युद्धमें दुन्दुभी वालि करके चूर्ण करडाला गया ॥ ४५ ॥ दुन्दुभीके नाक कान आदिसे बहुतसा रुधिर निकलने लगा. वह महाबाहु असुर पृथ्वीपर गिरकर प्राण त्यागन करदेता हुआ ॥ ४६ ॥ वालिनें उस विगत प्राण और चेतना रहित असुरको अपनी बाहोंसे पकड और घुमाकर एकवारही एक योजनके अंतर पर फेंक दिया॥ ४७ ॥वह जब वेग सहित फेंका जारहाथा, तब उसके मुखसे रुधिरकी बूंदें पवनके सहारेसे छिटक कर मतंग मुनिके आश्रमपर गिरीं ॥ ४८ ॥ हे महाभाग! मुनिश्रेष्ठ मतंगजी अपनें आश्रम पर रुधिरकी बूंदे गिरी हुई देख विचारनें लगे कि यह कौनहै? ॥४९॥ कि जिसने हमको रुधिरसे भिगो दिया! वह दुर्बु-

द्धि, मूढ, और अज्ञान पुरुष कौनहै? ॥ ५० ॥ यह कहकर मुनिवर जीनें बाहर निकल कर देखा तो एक पर्वताकार भैंसा विगत प्राण होकर पृथ्वी पर पडाहै ॥ ५१ ॥ उन्होनें तपोबलसे जान लिया कि यह कार्य वालि वानरका किया हुआहै। तब उन्होंनें उसकें फेंकनेवाले वानरको महाघोर शापदिया॥ ५२ ॥ कि जिस वानरनें हमारा आश्रित यह वन रुधिर वहानेंसे दूषित कियाहै, वह यहां पर नहीं आसकेगा और जो आवेगा तो तत्क्षण मर जायगा ॥ ५३ ॥ असुरकी देह फेंककर जिस-नें हमारे आश्रमके बहुतसे वृक्ष तोड डालेहैं, वह यदि हमारे आश्रममें प्रवेश करैगा। वरन इस आश्रमके चारों ओर किनारे २ चार कोशके घेरमें ॥ ५४ ॥ भी वह दुर्बुद्धि आजायगा तो भी निश्चयही प्राणत्या-ग करैगा। उसका सखा या मंत्री जो कोईभी हमारे वनमें वास करे-गा ॥ ५५ ॥ उनके प्राणकाभी नाश हो जायगा ! वह लोग यहांपर वास नहीं करनें पावेंगे । सो वह हमारे वचन सुनकर कहीं और वसनेंको चले जांय, यदि वह लोग यहां वास करैंगे तो हम उनकोभी यही शाप-देवेंगे ॥ ५६ ॥ कारणकि इस वनकी रक्षा हम नित्यही पुत्रवत् करते हैं, और जो कोई वालिकी ओरका वानर यहांपर रहेगा, तो उसके रहनेंसे पत्र अंकुरका विनाश होगा, और फल मूलादिभी नहीं रहैंगे ॥ ५७ ॥ आजके दिनतक हमारे शापकी मर्यादाहै; प्रभात होतेही वालिकी ओरके जिस किसी वानरकोभी यहांपर हम देखेंगे; तो वह बन्दर हजारों वर्ष-तक यहां पर पर्वत होकर रहैगा ॥ ५८ ॥ तिसके पीछे उस वनके रहनें वाले सब वानर गण मुनिजीके यह वचन सुनकर वहांसे चलेगये; तब उनकों वहांसे निकल आये हुये देखकर वालि बोला ॥ ५९ ॥ मातंग वनके रहनेंवाले तुम सब लोग किस निमित्तसे हमारे निकट आयेहो सब वनवासी कुशलसहित तो हैं? ॥ ६० ॥ उन सब वानरोंनें सुवर्ण मालाधारी वालिसे वह समस्त कारण कह सुनाया और यहभी बतादि-या कि आपको मुनिजीनें शाप दियाहै ॥ ६१ ॥ वालि वानर गणोंके वचन सुनकर महर्षि मतंगजीके निकटजा हाथ जोड उनको प्रसन्न कर-नें लगा ॥ ६२ ॥ परन्तु महर्षिजी उसकी बातोंको एक न सुनकर अपने आश्रममें चलेगये, और वालि शापके भयसे अत्यन्त विह्वलहोग-

या ॥ ६३ ॥ हे नरनाथ श्रीरामचंद्रजी! फिर वालि शापके भयसे भीत होकर कभी महागिरि ऋष्यमूक पर्वतपर प्रवेश करनेंकी इच्छा नहीं करता, वरन इस पर्वतको कभी देखनेंभी नहीं आता ॥ ६४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी! इस वनमें उसका आना नहीं हो सकता यह जानकर हम विषादरहितहो मंत्रियोंके साथ इस वनमें वास करते हैं ॥ ६५ ॥ यह देखिये! उस मदोन्मत्त, गत प्राण महा असुर दुन्दुभिकी बडी २ हड्डियोंका ढेर गिरि शिखर की तुल्य यहां प्रकाशित हो रहाहै जिसको वालिनें अपनेवीर्यकी वृद्धिसे यहां उठाकर फेंक दियाथा ॥ ६६ ॥ यह जो सात शालके वृक्ष बहुत शाखाओं करके युक्त एकही जगह छता बाँधकर जमेहैं, सो कभी २ वालि अपने बलवीर्यको प्रगट करनेंके लिये एक वृक्षकी जड पकड हिलाता तो यह सातों वृक्ष हिल जातेथे ॥ ६७ ॥ हे नृपवर ! यह हमनें आपसे वालिके अद्भुत महावीर्यका वर्णन किया सो आप उस वालिको संग्रामके मध्य किस प्रकारसे संहार करनेंमें समर्थ होंगे?॥ ६८ ॥ सुग्रीवजीनें जब ऐसा कहा तो लक्ष्मणजी हँसकर सुग्रीवजीसे बोले कि । श्रीरामचंद्रजी कौनसे कर्मको कर डालें कि जिस्से तुमको वालिके वधका विश्वास होजाय ? ॥ ६९ ॥ सुग्रीवजी बोले कि पहले वालि इन शालके वृक्षोंमेंसे एकको पकड जब चाहताथा तब एकही बारमें बारम्बार सब वृक्षोंको हिला देताथा ॥ ७० ॥ सो रामचंद्रजी यदि एक बाणसे इनमेंका कोई वृक्षभी तोड डालें तबही हम इनका विक्रम देखकर वालिको मरा हुआ समझें ॥ ७१ ॥ और यदि उस मरे हुए भैंसेकी इन सब अस्थियोंको एक चरणसे उठाकर शीघ्रता सहित श्रीरामचंद्रजी दोशत धनुषकी दूरी परभी फेंकदे तोभी हम वालिको मरा हुआ समझें ॥ ७२ ॥ रक्तवर्ण लोचनवाले सुग्रीवजी लक्ष्मणजीसे ऐसा कह, श्रीरामचंद्रजी वालिको मारसकेंगे या नहीं ऐसी चिन्ता करकै फिर श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ७३ ॥ शूरश्रेष्ठ वालि, वीरश्रेष्ठ पुरुषकेही साथ युद्ध करनेंका अभिलाष किया करताहै, उसका वीर्य बल लोकमें प्रसिद्धहै, वह अत्यन्त बलवान् और युद्धमें जीतनेंके अयोग्यहै ॥ ७४ ॥ उसके सब कार्य देवताओंकोभी दुष्कर दृष्टि आतेहैं। उन्हीं सब कार्योंकी चिन्तना करते हुए हम ऋष्यमूकपर्वत परभी अत्यन्त भीत और चिन्तना युक्त रहतेहैं ॥ ७५ ॥

उस अजेय, ढिठाई करनेंसे बाहर और सहन करनेंके अयोग्य वालिकी चिन्तना करते हुये हम ऋष्यमूक पर्वतको नहीं छोड सकतेहैं ॥ ७६ ॥ हम हनुमानादि पांच मंत्रियोंके साथ जोकि हममें प्रीति रखतेहैं उद्विग्न और शंकितहो इस महावनमें विचरण करतेहैं ॥ ७७ ॥ हे मित्रवत्सल पुरुषश्रेष्ठ ! आप वांछनीय उत्तम मित्रहैं, हिमालयकी समान सार युक्त जानकर हमने आपका आश्रय लियाहै ॥ ७८ ॥ हे राघव ! हम उस बलशाली दुष्ट अपने भ्राता वालिका बल जानतेहैं परन्तु समरमें आपका वीर्य कैसाहै? इसको हम अभी नहीं जानते,इस कारणसे वालिके मारनेंमें दुबधा समझतेहैं ॥ ७९ ॥ न हम आपकी तुलना वालिकी बराबर करतेहैं न आपका निरादर करतेहैं, न भय दिखातेहैं, परन्तु उस वालिके भयंकर कर्मोंको विचार हम अत्यन्त कातर होतेहैं ॥ ८० ॥ परन्तु हे श्रीरामचंद्रजी ! आपकी वाणी, धीरता और आकृतिहीसे आपकी वीरशालिताका प्रमाण मिलताहै, यह सबही गुण राखसे ढकी हुई अग्निकी समान आपके तेजकी सूचना करतेहैं ॥ ८१ ॥ श्रीरामचंद्रजी महात्मा सुग्रीवजीके यह वचन सुन मंद मुसकाय उनसे कहनें लगे ॥ ८२ ॥ हे वानर नाथ ! यदि हमारे पराक्रममें तुम्हारा विश्वास नहींहै तो हम शीघ्रही समरके विषय उत्तम विश्वास उत्पन्न कराये देतेहैं ॥ ८३ ॥ लक्ष्मणजीके बडे भाई श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कह सुग्रीवजीको समझाय और अपने पैरके अँगूठेसे दुन्दुभीका देह लीला पूर्वक ॥ ८४ ॥ महाबाहु रामचंद्रजीनें उठाकर दश योजन अर्थात् चालीस कोसपर फेंक दिया इस प्रकार उस सूखे हुये असुरके तनुको पैरके अंगूठेसे वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजीनें उठाय कर फेंका ॥ ८५ ॥ तो इसको देखकर सुग्रीवजी फिर बोले ! वानर गणोंके और लक्ष्मण जीके आगे दीप्तिमान सूर्य नारायणकी समान श्रीरामचंद्रजीसे सुग्रीवजी फिर यह अर्थ युक्त वचन बोले ॥ ८६ ॥ हे सखे ! पहले यह देह गीला और मांस सहितथा, तब उस समय हमारे भाई वालिनें बडे परिश्रमसे यह देह उठाकर फेंकाथा ८७ ॥ हे रघुनंदन ! यह देह इस समय मांसहीन, लघु और तृण तुल्यहै, सो उसको आपने हर्ष युक्तहो विना परिश्रमके उठाकर फेंक दिया ॥ ८८ ॥ हे राघव ! सो इस फेंकनेंसे आपका बल अधिक या वालिका बल अधिकहै यह नहीं जानागया । क्योंकि गीली

और सूखी वस्तुके बोझमें बडा भारी अंतर होताहै ॥ ८९ ॥ अभी आपके और वालिके बल जाननेंके विषयमें संशय रही। जोहो, जिस समयकि आप इनमेंसे एकभी शालके वृक्षको तोड डालेंगे, तो बलाबल सब जाना जायगा ॥ ९० ॥ आप इस हाथीकी शूंडके समान धनुषपर रोदा चढा कर कानतक खींच महाशर छोडिये ॥ ९१ ॥ आपका छोडा हुआ बाण निश्चयही इस शालके वृक्षको तोड डालेगा इसमें कुछ संदेह नहींहै। और इसविषयमें कुछ विचार करनेंकाभी प्रयोजन नहीं, क्योंकि आप सौगन्ध करके हमसे मित्रता करनेंमें नियुक्त हुएहैं ॥ ९२ ॥

यथाहितेजस्सुवरःसदारविर्यथाहिशै लोहिमवान्महाद्रिषु ॥ यथाचतुष्पत्सुच केसरीवरस्तथानराणामसिविक्रमेवरः ॥ ९३ ॥

जिस प्रकारसे तेजसमूहके मध्यमें दिवाकर, पर्वतके समूहके मध्यमें, हिमवान्; और चौपायोंके मध्यमें केशरी सिंहहै. वैसेही आप मनुष्योंमें विक्रम करनेंके विषममें श्रेष्ठहैं। इसमें कुछभी संदेह नहींहै ॥ ९३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे एकादशःसर्गः ॥ ११ ॥

द्वादशःसर्गः ॥

एतच्चवचनंश्रुत्वासुग्रीवस्यसुभाषितम् ॥ प्रत्ययार्थंमहातेजारामोजग्राहकार्मुकम् ॥ १ ॥

सुग्रीवजीके कहे हुए ऐसे वचन सुनकर महा तेजमान श्रीरामचंद्रजीनें उनको विश्वास दिलानेंके लिये धनुष ग्रहण किया ॥ १ ॥ मानप्रद श्रीरामचंद्रजीनें उस घोर तर धनुषपर एक बाण चढा उसके शब्दसे दशों दिशाओंको पूर्ण करके शालके वृक्षके ऊपर वह बाण छोडा॥ २॥सुवर्णकी समान चमकता हुआ वह बाण बलवान् श्रीरामचंद्रजीके द्वाराचलाया जाक- र सात तालके वृक्षोंको तोडता, पर्वतको फोड़ता भूमिमें प्रवेश करगया॥३॥ वह सायक महा वेगसे सातो वृक्षोंको तोडकर घूमवाम फिर तरकसमें आन- कर प्राप्तहुआ ॥ ४ ॥ वानरश्रेष्ठ सुग्रीवजी श्रीरामचंद्रजीके बाण वेगसे सात तालके वृक्षोंको टूटा हुआ देखकर परम विस्मयको प्राप्तहुए॥ ५ ॥

तब सुग्रीवजीके मालादि सब भूषण खसक पडे, उन्होंनें पृथ्वीपर गिर शिरझुका श्रीरामचंद्रजीको प्रणाम किया, और श्रीरामचंद्रजीके ऊपर प्रीति प्रगटाय हाथ जोड कर खडे होगये ॥ ६ ॥ सुग्रीवजी श्रीरामचंद्रजीका यह कर्म देखकर प्रसन्नहो, सर्वशास्त्र विशारद वीरवर धर्मज्ञ श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ ७ ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ ! आप वालिको मार डालेंगे, इसमें संदेहही क्याहै, क्योंकि आप इन्द्रके सहित सब देवताओंकाभी संहार संग्राममें कर सकतेहैं। फिर वालि विचारा तो है हीक्या? ॥ ८ ॥ आपनें एकही बाणसे सप्तताल तोडे और पर्वतकी भूमि फोड डाली; इसलिये रणमें आपके आगे कौन पुरुष ठहर सकताहै? ॥ ९ ॥ इन्द्र और वरुणके तुल्य आपको सुहृद् पाय आज हमारा शोक बीता; और उत्तम प्रीति उत्पन्न हुई ॥ १० ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! यह हम आपके हाथ जोडतेहैं कि आप हमारी प्रसन्नताके लिये वैरीरूप हमारे भ्राताको मार डालिये ॥ ११ ॥ महाप्राज्ञ श्रीरामचंद्रजी, लक्ष्मणजीकी समान प्रियतम, प्रिय दर्शन सुग्रीवजीको भेंटकर कहनें लगे॥१२॥हे सुग्रीव ! अब यहांसे शीघ्रही किष्किन्धा पुरीको चलो और तुम आगे २ गमन करके उस अपने भाई वालिको पुकारो॥१३॥यह कहकर श्रीरामचंद्रजीव और भी सब वानर किष्किन्धा पुरीमें जाय वृक्षोंसे देह छिपाय सघन वनमें खडे हो गये ॥१४॥ सुग्रीवजी अपने वस्त्रोंको कस कर पहर वालिके पुकारनेंके लिये घोर शब्द करनें लगे मानों आकाशको भेदन करतेही हुये घोर शब्दकर रहेथे॥१५॥ अपने भाई सुग्रीवका वह गर्जना सुन महा वलवान वालि क्रोधसे अधीरहो अस्ताचलके समीप से निकलते हुये सूर्य नारायण की समान बडे वेगसहित अपने पुरसे निकला॥१६॥तिसके पीछे आकाश तलमें बुध और मंगल ग्रहकी समान वालि और सुग्रीवका घोर तुमुल युद्ध होने लगा ॥१७॥ दोनों भाई क्रोधसे अधीरहो वज्र तुल्य चपेट और वज्रतुल्य घूसोंके प्रहारसे परस्पर चोट चलानेलगे ॥१८॥ तब श्रीरामचंद्रजी धनुष धारण कर एकही प्रकारका रूप धारण किये हुये दो अश्विनी कुमारोंकी समान दोनों भाइयोंको अवलोकन करनें लगे ॥१९॥ जबतक श्रीरामचंद्रजीनें भली भांति यह न पहचाना कि इनमें कौन वालि और कौन सुग्रीवहै तब तक वह प्राणनाश कारी वाण न चलाया॥२०॥रामचंद्रजी तो इस विचारमेंथे कि इतनेंही में

सुग्रीवजी वालिसे हारकर भागे वह श्रीरामचंद्रजीको न देख पाकर ऋष्यमूक पर्वतकी ओर दौडनें लगे ॥ २१ ॥ वालिभी क्रोधमें भरकर पीछे ही पीछे दौडा तब थके हुये सुग्रीवजी उसके प्रहारसे जर्जर और रुधिरमें डूबकर महा वनमें प्रवेश करते हुये ॥ २२ ॥ महाबलवान् वालि उसवनमें सुग्रीवको पैठा हुआ देख शापके भयसे वहां नहीं जासका और बोला; जावो अब तुम बच गये । यह कह वहांसे लौट आया ॥ २३ ॥ श्रीरामचंद्रजी भी लक्ष्मण और हनुमानजीके सहित जहांपर सुग्रीवथे उसी वनमें प्रवेश करते हुये ॥ २४ ॥ सुग्रीवजी, लक्ष्मणके सहित श्रीरामचंद्रजीको आगमन करते हुये देखकर लज्जित हो नीचा मस्तक किये दीन वचनसे बोले ॥ २५॥ आपनें विक्रम दिखा और "वालिको युद्धके लिये पुकारो" ऐसा कहकर कुछभी न किया शत्रुसे हमको बडी मार दिलवाई, इस्से आपका क्या कार्य हुआ ॥ २६ ॥ हे राघव! जो उसी समय आप कह देते कि हम वालिको न मारेंगे, तोही अच्छाथा कारण कि फिर हम यहांसे वहां क्यों जाते ॥ २७ ॥ जब महात्मा सुग्रीवजीने इस प्रकार दीनवचन कहे तब श्रीरामचंद्रजी करुणा कर उनसे बोले ॥ २८ ॥ हे सुग्रीव! तुम क्रोधको त्यागन करो, जिसकारण से हमनें बाण न चलाया उस कारणको तुम सुनो ॥ २९ ॥ वस्त्राभूषण, वेष, प्रमाण और चालसे तुम दोनोंमें परस्पर एकहोनेंके कारण कुछभी अंतर नहीं देख पडताथा ॥ ३० ॥ स्वर, वचन, कान्ति और विक्रममेंभी तुम दोनों जन समान थे इससे हमने उस समय न जाना कि कौन वालि और कौन सुग्रीवहैं ॥ ३१ ॥ हेवानर श्रेष्ठ! इसी कारणसे हम रूप और समानता दिखावसे मोहितहो महावेगवान् शत्रुविनाशकारी बाण न चलासके ॥ ३२ ॥ तुम दोनोंका एकसारूपही देखनेके कारण शंकितहो, प्राणोंका अंत करनें वाला घोर बाण छोडनेंको हम असमर्थ हुये । यदि तुम दोनोंकी सदृश्यताके हेतुसे तुम्हारेही बाण लगजाय, तो बस मूलकाही विनाश होजाय, अर्थात् न हमें सीता मिलें न तुम्हें राज्य, बस यही बात हमारी शंकामें मूलकारण हुई ॥ ३३ ॥ हे कपीश्वर! अज्ञानता और बडी शीघ्रतासे यदि कहीं तुम्हारेही बाण लग जाता, तब हमारी मूर्खता, और बालकताका निःसन्देह सब जगह प्रचार होजाता ॥ ३४ ॥ हे वानर! अभयदान देकर

यदि फिर उसकाही वध कियाजाय तो बडा भारी अद्भुत पातक होताहै । यहभी तुम मानलोकि, हम लक्ष्मण, और श्रेष्ठ वर्णवाली सीताजी ॥३५॥ सबही तुम्हारेहैं; और तुम्हारेही आधीनहैं, क्योंकि इस वनमें तुमहीं हमारे एक मात्र रक्षाके करनेंवालेहो, इसलिये तुम फिर युद्ध करनेंको जाओ और कुछ शंका न करो ॥३६॥ तुम इसही मुहूर्त देखोगे कि वालि हमारे बाणसे घायल होकर पृथ्वीमें गिरकर छटपटाताहै ॥ ३७ ॥ हे वानर श्रेष्ठ ! तुम कोई चिह्न धारण किये जाओ कि जिस्से द्वन्द्व युद्ध करनेंके समय हम तुमको पहचानलें ॥ ३८ ॥ हे लक्ष्मण ! तुम यह सुन्दर खिली हुई गज पुष्पी उखाड़कर इन महात्मा सुग्रीवजीके गलेमें पहरा दो ॥ ३९ ॥ तिसके पीछे महात्मा लक्ष्मणजीनें पर्वतके तटपर उत्पन्न हुई कुसुमराशि युक्त गज पुष्पलता लाकर सुग्रीवजीके गलेमें डालदी॥ ४० ॥ तब सुग्रीवजी उनकंठलता द्वारा, बगलोंकी मालासे सुशोभित संध्याकालके जलधरकी समान शोभायमान होनें लगे ॥ ४१ ॥

विभ्राजमानोवपुषारामवाक्यसमाहितः ॥
जगामसहरामेणकिष्किंधांपुनरापसः ॥ ४२ ॥

सुग्रीवजी, श्रीरामचंद्रजीके वचनोंपर ध्यान देकर अपनी देहसे दिपनें लगे और श्रीरामचन्द्रजीके साथ किष्किन्धापुरीको चले ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे द्वादशःसर्गः ॥ १२ ॥

त्रयोदशः सर्गः॥

ऋष्यमूकात्सधर्मात्माकिष्किंधांलक्ष्मणाग्रजः ॥
जगामसहसुग्रीवोवालिविक्रमपालिताम् ॥ १ ॥

वह धर्मात्मा लक्ष्मणके बडे भ्राता श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवके सहित वालिके विक्रमसे पाली जातीहुई किष्किन्धा पुरीको गमन करते हुये ॥ १ ॥ श्रीरामचन्द्रजी सुवर्ण भूषित बडा धनुष उठाकर आदित्यतुल्य रणमें कार्यको सिद्ध करनेंवाले बाण ग्रहण करके गमन करनें लगे ॥ २ ॥ दृढ गरदनवाले सुग्रीवजीभी महाकालमहात्मा श्रीराम लक्ष्मणजीके आगे २ चलनें लगे ॥ ३ ॥ फिर पीछे वीर हनुमान और वीर्यवान् नल

नील, और महातेजस्वी तार यह चार वानर सुग्रीवजीके सेनापति और मंत्रीभी चले ॥ ४ ॥ यह सब मार्गमें फूलोंके भारसे झुके पेड, स्वच्छ जल वहनेंवाली नदियां और तडाग देखते जातेथे ॥ ५ ॥ कंदरायें, पर्वत झरने,और गुफा बडे२शिखर और प्रिय दर्शन दरें देखते हुये ॥ ६ ॥ वैदूर्य मणिके समान विमल जल वहते, फूले हुये कमल फूलोंसे युक्त, शोभायमान तड़ाग मार्गमें देखते जातेथे ॥ ७ ॥ कारंडव, सारस, हंस, वंजुल, जलकुक्कुट, चकवाक इत्यादि पक्षी मधुर बोल रहेथे ॥ ८ ॥ कोमल घास व अंकुर चरकर निर्भयहो वनमें फिरने वाले, वनस्थलियोंमें बहुत सारे हरिण इन्होंने बैठे हुये देखे ॥ ९ ॥ तडागोंके शत्रु और श्वेत दातोंसे भूषित, घोररूप, नदियोंके करारे गिरानेंवाले वनैले हाथीभी जाते२देखे१० ॥ जल वमनवाले पर्वतोंके तीर किलकिलाते चर पर्वताकार हाथियोंकी नाई रेणु उडाते प्राकृत वानरभी जाते २ देखे॥११॥और दूसरे वनमें चरनेवाले जीवगणोंको, व आकाशमें चरनेंवाले पक्षियोंको देखते सुग्रीवजी के वशवर्त्ती सब वानर चलेजातेथे॥१२॥वह वानर जबकि बडे वेगसे चलरहेथे तब श्रीरामचंद्रजी वृक्षोंसे परिपूर्ण एक वृक्ष झुंडको देखकर सुग्रीवजीसे बोले ॥ १३ ॥ इस वृक्ष झुंडके चारों ओर वृक्षोंका समूह लगाहै सो यह मिलेहुये बादलोंकी समूहोंके तुल्य प्रकाशमान होताहै ॥ १४ ॥ हे सखे! यह सब क्याहै? इसके जाननेंके लिये हमें बडा कौतूहल उत्पन्न हुआ है, सो तुम हमारे इस कौतूहलको दूरकरो ॥१५॥ महात्मा श्रीरामचंद्रजीका यह वचन सुनकर सुग्रीवजी मार्गमें ही चलते २ उस बडे वनका वृत्तान्त वर्णन करनें लगे ॥ १६ ॥ हे राघव! श्रमका विनाश करनें हारा बडे विस्तारवाला उद्यान और वन युक्त, स्वादुफल और जलयुक्त यह आश्रम ॥ १७ ॥ जो दृष्टि आताहै, इसमें सप्तजन नामक दृढव्रत धारण करनेंवाले सात मुनि रहा करतेथे; यह सातों ऋषि नीचेको शिर किये रात्रि दिन जलमें रहते ॥ १८ ॥ यह मुनिलोग सातवें रोज केवल पवनका आहार करतेथे, और अचल वास करते, इस प्रकारसे वह मुनिगण सातसौ वर्षतक तपस्या कर अपने २ शरीर सहित स्वर्गको चलेगये ॥१९॥ उन मुनिलोगोंकेही प्रभावसे यह आश्रम वृक्षोंके कोटसे घिराहुआहै इस

आश्रममें इन्द्रके सहित सुर और असुर गणभी कुछ उपद्रव नहीं कर-सकते ॥ २० ॥ पक्षी या दूसरे वनचारी जीवगण इस आश्रमके भीतर नहीं जाते और जोकोई मोहके वशहो इसमें चलाभी जाय सो वह वहांसे लौट नहीं सकता॥२१॥यहांसे अप्सराओंके मधुरगीत और गहनोंके शब्द, व बाजोंकी ध्वनि सुनाई आया करती है और दिव्य गन्धभी यहांसे आती रहती है ॥ २२ ॥ इस आश्रममें तीन अग्निभी दीप्तिमानरहते हैं इ-धर निहारियेकि कपोतके रंगका धूसरवर्णवाला धुआं इन सबवृक्षोंमें छाय रहाहै ॥ २३ ॥ मेघोंसे घिरे हुये वैदूर्यमणिके पर्वतोंकी समान धूम-युक्त होनेके कारण यह वृक्ष प्रकाशमान हो रहे हैं ॥ २४ ॥ हेधर्मात्मन् ! आप लक्ष्मणजीके सहित सावधान चित्तसे हाथ जोडकर इन मुनि जनोंके लिये प्रणाम कीजिये ॥ २५ ॥ हेश्रीरामचंद्रजी ! जो पुरुष इ-न सिद्धात्मा ऋषिलोगोंको प्रणाम करता है, उसके शरीरमें किंचित्मात्र पाप नहीं ठहर सकता ॥ २६ ॥ जब सुग्रीवजीने ऐसा कहा, तब श्रीराम-चंद्रजीनें लक्ष्मणजीके सहित हाथ जोडकर उन महात्मा मुनिजनोंके लिये प्रणाम किया ॥ २७ ॥ उनको प्रणाम कर धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजी भ्राता लक्ष्मण, सुग्रीव व औरभी सब वानर हर्पित होकर गमन करनें लगे ॥ २८ ॥ वह सब जन सप्तजन आश्रमसे दूर आकर वालिकी पाली हुई उस दुर्द्धर्ष किष्किन्धा नगरीमें पहुँचे ॥ २९ ॥

ततस्तुरामानुजरामवानराःप्रगृह्यश
स्त्राण्युदितोग्रतेजसः ॥ पुरींसुरेशात्मजवीर्य
पालितांवधायशत्रोःपुनरागतास्त्विह ॥ ३० ॥

फिर श्रीराम, लक्ष्मण, और वानरगण अपने २ उग्र तेजवाले अस्त्र शस्त्रोंको धारण कर शत्रुको मार डालनेंके लिये इंद्र पुत्रकी प्रतिपालित किष्किन्धा नगरीमें दूसरी वार आये ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे त्रयोदशः सर्गः ॥ १३ ॥

चतुर्दशः सर्गः ॥

सर्वेतेत्वरितंगत्वाकिष्किंधांवालिनःपुरीम् ॥
वृक्षैरात्मानमावृत्यव्यतिष्ठन्गहनेवने ॥ १ ॥

वह सब जन वालिकी किष्किन्धा पुरीमें शीघ्रतासे पहुँच अपने २ शरीरोंको वृक्षोंसे छिपाकर सघन वनमें खडे होगये ॥१॥ बडी गर्दनवाले और वनको देख प्रसन्नहोनहार सुग्रीवजी चारों ओर दृष्टि डाल बडाकोपकर ॥ २ ॥ सहायसे स्थितहो अत्यन्त घोर गर्जनकर वालिको संग्राम करनेंके लिये पुकारनें लगे, उनकी नादसे आकाश मंडल मानों फटा जाताथा ॥ ३ ॥ वायुके वेगसे चलायमान महा मेघकी समान गर्जकर बाल सूर्य सदृश सिंहसम गतिवाले सुग्रीवजी ॥ ४ ॥ श्रीरामचंद्रजीको कार्य करनेंमें चतुर देखकर बोले कि हे महाराज! वानरोंके बन्धनसे घिरी, तपाये हुये सुवर्णसे भूषित ॥ ५ ॥ और यंत्रादि युक्त वालिकी किष्किन्धा पुरीमें हम लोग पहुँच गये हेवीर! आपनें पहले वालिका वध करनेंके लिये जो प्रतिज्ञा कीहै ॥ ६ ॥उसको आप शीघ्र पूर्ण कीजिये जिस प्रकार फलनें फूलनेंका समय आकर वृक्षलताओंको पुष्प फलसे पूर्ण कर देता है। जब धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजीसे सुग्रीवजीनें ऐसा कहा ॥ ७ ॥ तब शत्रुओंका संहार-करनें वाले श्रीरामचंद्रजी उनसे बोलेकि गजवेल धारण कराय तुम्हारी देहमें जो पहँचान ॥ ८ ॥ लक्ष्मणजीने बनाईहै, उस गजलताके धारण करनेंसे तुम्हारी ग्रीवा औरभी शोभित होतीहै ॥ ९ ॥ जैसे कभी आकाशमें नक्षत्रोंकी मालाके निकट आजानेंसे सूर्य भगवान् शोभायमान होतेहैं आज इस समयतकतो वालिके द्वारा की हुई शत्रुता और भय तुमको प्राप्तहै॥ १० ॥ परन्तु आज एकही बाण द्वारा रण स्थलमें वह विनाश करदेंगे, हे सुग्रीव! आज तुम भ्राताख्पी शत्रुको शीघ्र हमें दिखादो ॥ ११ ॥ वह आज हमारे बाणसे घायल होकर वनमें धूलके ऊपर गिरकर छटपटावेगा, यदि इतने परभी उसके प्राण रहजांय, अर्थात् वह जीता हुआ बचकर फिर तुम्हें दीख पडे ॥ १२ ॥ तब तुम इस स्थानसे चले जाना, और हमारी निन्दा करना या हमको धिक्कारदेना, हमने केवल एकही बाणसे तुम्हारे सन्मुख सात-ताल वृक्ष तोड डाले ॥ १३ ॥ तिससे तुम जानलो कि वालि हमारे बाणसे मराहुआ धराहै, हमनें प्रथम कष्टमें पडनेंसेभी कभी मिथ्या वचन नहीं बोला ॥ १४ ॥ कारणकि धर्मका लोभ हमको बहुतहीहै । इस्से मिथ्या नहीं कहते, हम निःसंदेह अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करेंगे तुम भ्रम व शोकको छोडो ॥ १५ ॥ जैसे इन्द्रजी वर्षा करके धान्यके खेतोंको फलवान् करतेहैं

ऐसेही हम पराक्रम करेंगे। इसलिये हे सुग्रीव! उस सुवर्ण माला धारण किये हुए वालिको पुकारो ॥ २६ ॥ और तुम ऐसा शब्द करोकि जिस्से वालि क्रोधयुक्त होकर शीघ्रही बाहर चला आवे। क्योंकि वालि विजयको सदाही चाहताहै, और बडाईके पानेंको इच्छाकिये सदाही घूमा करताहै और पहले कभी तुम उसको पराजितभी नहीं कर सकेहो इस कारणसे वह शब्द सुन शीघ्रही आवैगा इसमें कोई संदेह नहीं ॥ १७ ॥ इस्से तुम्हारा पुकारना श्रवण करतेही वालि तुरंत आवैगा, क्योंकि वह अत्यन्तही रणप्रियहै इसके अतिरिक्त समरमें शत्रुका गर्जना सुनकरवालि नहीं सहसकेगा॥१८॥ जो अपने वीर्यको जानते हैं। वह शत्रुका गर्जन विशेष करके स्त्रियोंके सामने सुनकर कभी चुप चाप नहीं बैठे रहते। ऐसे श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर सुवर्णके समान वर्णवाले सुग्रीवजी ॥ १९ ॥ भयंकर शब्दसे आकाशमंडलको मानों भेदन करतेही हुये गर्जन करनें लगे। उस शब्दसे त्रासित और प्रभाहीन होकर गाय बैल इधर उधर भागनें लगे ॥ २० ॥ जैसे राजाकी ओरसे कुछ दोष होनेंपर कुलकी स्त्रियें तित्तर वित्तर हो फिरती हैं। संग्राम भूमिसे भागे हुये घोडोंकी समान सब मृग गण भागनें लगे ॥ २१ ॥ और क्षीण पुण्य गृहगणोंकी समान आकाशमें उडते हुये पक्षी पृथ्वीमें गिरनें लगे ॥ २२ ॥

ततःसजीमूतकृतप्रणादोनादंह्यमुंचत्त्वरयाप्रतीतः ॥ सूर्यात्मजःशौर्यविवृद्धतेजाःसरित्पतिर्वानिलचंचलोर्मिः ॥२३॥

तिसके पीछे पवनसे चलायमान होनेंके कारण चंचल तरंगे जिसमें उठती हों ऐसे नदियोंके पति समुद्रकी तुल्य, सूर्यपुत्र सुग्रीवजी, श्रीरामचंद्रजीके वचनोंका विश्वास कर अपनी शूरतासे वर्द्धित तेज होकर मेघकी समान गर्ज २ घोर शब्द करनें लगे ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे चतुर्दशःसर्गः ॥ १४ ॥

पंचदशः सर्गः ॥

अथतस्यनिनादंतंसुग्रीवस्यमहात्मनः ॥
शुश्रावांतःपुरगतोवालीभ्रातुरमर्षणः ॥ १ ॥

उस समय वालि रनवासमें अपनी स्त्रियोंके बीचमें बैठाथा। उससे महात्मा सुग्रीवजीका घोर गर्जना सुनकर न सहागया ॥ १ ॥ सर्व प्राणियोंका कंपायमान करनेंवाला वह नाद सुनकर एकवारही वालिका सब मद नष्ट होगया और महा क्रोधितहुआ ॥ २ ॥ सुवर्णकी समान दीप्तिशाली वालि क्रोधसे परिपूर्ण होकर राहुसे ग्रसे हुये सूर्यकी समान प्रभाहीन होगया ॥ ३ ॥ क्रोधके मारे दांत बाहर निकल आनेंसे कराल आकारवाले वालिके नेत्र जलती हुई अग्निके समान होगये, उस समय वह ऐसा ज्ञात होताथा कि जिस प्रकार किसी कुंडसे कमल फूल तोड लिये जांय, और कमलकी डंडियें ऊपर चमकनें लगें ॥ ४ ॥ वह सहनेके अयोग्य शब्द श्रवण कर वालि पैर धरनेंसे मानों पृथ्वीको फाडताही हुआसा बडे वेगसे बाहेरको चला ॥ ५ ॥ तब तारा वालिको लिपटकर, सौहार्द दिखाती भयके मारे व्याकुलहो आगेकी भलाईके लिये यह वचन बोली ॥ ६ ॥ हे वीरवर ! नदीके वेगकी समान आये हुये इस क्रोधको आप त्यागकर दीजिये जिस प्रकार शयनसे प्रातःकाल उठकर रात्रिकी धारणकी हुई फूलमाला लोग त्याग करदेते हैं ॥ ७ ॥ हे वीरेन्द्र! आप कल प्रातःकालेही संग्राम करलीजिये, क्योंकि आपका शत्रु अत्यन्त लघुहै, और इस समय युद्ध न करनेंसे किसी प्रकारकी तुम्हारी छुटाई भी तो नहीं होतीहै ॥ ८ ॥ आप जो सहसाही वाहेर युद्ध करनेंके लिये जाते हैं सो हमारी सम्मतिमें यह ठीक नहीं और जिस कारणसे हम रोकती हैं वह भी श्रवण कीजिये ॥ ९ ॥ यही सुग्रीव पहले महा क्रोधकर तुम्हें युद्धके लिये पुकारकर तुम्हारे आघातसे समरमें विमुख किस अवस्थाको प्राप्त हो भागाथा ॥ १० ॥ वह ऐसा समरविमुख और बहुत मार पाकरभी यहां आकर फिर तुम्हैं पुकारताहै इस्से हमको शंका होती है ॥ ११ ॥ इस समय उसका जिस प्रकारका अहंकार, वर्ताव और घोर गर्जन श्रवण करनेंसे ज्ञात होताहै कि अल्प कारणसे कदापि वह यहां पर नहीं आया ॥ १२ ॥ हम विचार करती हैं कि सुग्रीव विनासहायके इससमय यहां नहीं आया, वरन वह एक बडाभारी सहायकपाय यहां आकर गर्जरहाहै और सुग्रीव स्वभावसेही बुद्धिमान् और चतुर वानरहै; उसनें विना बलवीर्यकी परीक्षा किये कभी किसीसे मित्रता नकी होगी १३॥१४ हे वीरवर!

हमनें पहलेही कुमार अंगदसे जो वृत्तान्त सुनाहै; वही हितकर वचन कहतीहैं, तुम श्रवण करो ॥ १५ ॥ कि कुमार अंगद कहीं वनको घूमनेंके लिये चला गयाथा, वहांपर दूतोंनें उस्से आकर निवेदन किया ॥ १६ ॥ उन्होंनें कहा कि अयोध्याके राजा इक्ष्वाकु कुल उत्पन्न महाराज दशरथजीके पुत्र श्रीराम लक्ष्मणजी वनको आयेहैं ॥ १७ ॥ सुग्रीवजीका प्रिय कार्य साधन करनेंके लिये वह दोनों दुर्द्धर्ष वीर तैयार हुएहैं, वही संग्राम स्थलमें सुग्रीवके वडे सहाय वनेंहैं ॥ १८ ॥ वही रामचंद्रजी प्रलय कालकी अग्निके समान शत्रुओंके विनाश करनेंके लिये उठेहैं; वह साधुओंके आश्रयदाता वृक्ष, और दुःखी जनोंके परम गतिहैं ॥ १९ ॥ वह आरत जनोंको अभय देनेंवाले, यशके भाजन, ज्ञान और विज्ञान युक्त पिताकी आज्ञामें रतहैं ॥ २० ॥ जिस प्रकार शैलराज हिमवान् धातु समूहोंके आकारहैं, वैसेही श्रीरामचंद्रजीको गुण समूहकी महाखान जानों सो उन महात्मा श्रीरामचंद्रजीसे विरोध करके तुम्हारा भला नहीं होगा ॥ २१ ॥ हे शूर ! श्रीरामचंद्रजी रणकालमें अजीत और अप्रमेयहैं तुम उनके साथ विरोध कर मंगल न पाओगे । हे वीर ! हम कुछ तुम्हारी निन्दा नहीं करतीहैं ॥ २२ ॥ वरन हितकारी वचन कहतीहैं सो तुम श्रवण करके वैसाही करो वह यह कि तुम शीघ्रतासे सुग्रीवको युवराजपदवी देदो ॥ २३ ॥ हे वीरेन्द्र ! तुम छोटे भाईके साथ विरोध न करो हमारी तो यह इच्छाहै कि तुम्हारी और श्रीरामचंद्रजीकी प्रीति होजाय ॥ २४ ॥ और दूसरे हमारी यहभी इच्छाहैकि वैरभाव त्यागकर सुग्रीवके ऊपर तुम प्रसन्न हो जाओ, क्योंकि यह सुग्रीव तुम्हारा छोटा भाईहै, इस्से तुम्हें अवश्यही इसका लालन पालन करना चाहिये; सो ऐसा करनेंसे तुम्हारा मंगल होगा ॥ २५ ॥ सुग्रीव ऋष्यमूकपे रहै, अथवा यहांपे रहै, वह आपका वन्धुहीहै,इस समस्त पृथ्वीपर उसकी समान आपका वन्धु हम दूसरा नहीं देखतीहैं ॥ २६ ॥ इस कारण वैरभाव छोडकर दान मानादि द्वारा सत्कार कर उसको ग्रहण कीजिये, फिर वह स्वयंही वैर छोड तुम्हारे निकट रहने लगेगा ॥ २७ ॥ वडी गरदन वाला सुग्रीव तुम्हारा परम वन्धुहै; सो आप उसके साथ सुहृदता स्थापन कर लीजिये; इसके सिवाय तुम्हारी दूसरी गति हम नहीं देखतीं ॥ २८ ॥ यदि तुम

हमको अपना हित करनेंवाली जानतेहो, यदि हमारा प्रिय कार्य करना तुम चाहतेहो; तो हम अपना प्रिय कार्य समझकर जो कुछ तुमसे प्रार्थना करतीहैं उन हमारे वचनोंको आप क्षमाकरें॥२९॥ हे वीरेन्द्र! तुम हमारे हितकारी वचन श्रवणकर और क्रोधके वशमें न पडो; व इन्द्रतुल्य तेज सम्पन्न उन कौशलराज पुत्रोंके साथ विरोध करनेंसे तुम्हारा कल्याण नहीं होगा ॥ ३० ॥

तदाहितारा हितमेववाक्यंतंवालिनंप
थ्यमिदंबभाषे ॥ नरोचतेतद्वचनंहितस्यका
लाभिपन्नस्यविनाशकाले ॥ ३१ ॥

उस समय तारानें वालिसे इस प्रकारके हितकर वचन कहे परन्तु विनाशके समय कालसे ग्रसेहुए वालिको वह वचन कुछभी नभाये॥३१॥ सचकहाहै, "कि विनाशकाले विपरीतबुद्धिः" इ०श्रीम० वा० कि० पंचदशःसर्गः ॥ १५ ॥

षोडशः सर्गः ॥

तामेवंब्रुवतींतारांताराधिपनिभाननाम् ॥
वालीनिर्भर्त्सयामासवचनंचेदमब्रवीत् ॥ १ ॥

चन्द्रवदनी तारानें जब वालिसे इस प्रकार कहा,तो वह ताराको धिक्कारता हुआ ऐसे वचन बोला॥१॥हे श्रेष्ठ मुख वाली!हमारा भ्राता हमारा बडा शत्रुहै और फिर इस समय गर्व सहित गर्जन कर रहाहै तब भला हम किस प्रकारसे इसके गर्जनको सहलें॥२॥ जो लोग शत्रुकरकै कभी नहीं जीते गये और जो शूर रणस्थलसे विना शत्रुके जीते कभी नहीं लौटे हे भीरु उनके लिये अपमानका सहन करना मरनेंसेभी अधिक जानो ॥ ३ ॥ रण-स्थलमें युद्धाभिलाषी हीनग्रीव सुग्रीव का गर्व सहित गर्जना हम किसी प्रकार नहीं सह सकते॥ ४ ॥ हे प्रिये! श्रीरामचंद्रजीके कार्य्योंको विचार कर हमारे लिये विषाद करना तुमको उचित नहीं है क्योंकि वह धर्मके जाननेवाले और कृतज्ञ हैं वह कभी पापका कार्य नहीं करेंगे ॥ ५ ॥ तुम और सब स्त्रियोंके सहित लौट जाओ हमारे पीछे २ न आओ हमारे

प्रति तुम्हारी सुहृदता और भक्ति जितनी चाहिये उतनी दिखाई जा चुकी ॥ ६ ॥ हम संग्राममें जा सुग्रीवके सहित युद्ध कर उसका दर्प चूर्ण करेंगे परन्तु उसको प्राणोंसे नहीं मारेंगे सो तुम उसके मरनेंकी शंका छोड दो ॥ ७ ॥ हम रणमें खडे हुये सुग्रीवके प्रति विशेष अत्याचार नहीं करेंगे केवल वृक्षोंके प्रहारसे और घूसोंसे उन्हें मारेंगे जिस्से वह पीडित हो अपनी गुफाको चला जायगा ॥ ८ ॥ हे तारे! वह दुरात्मा हमारा हंकार और प्रहारादि नहीं सह सकैगा इसमें कुछ संदेह नहीं, कि तुमनें हमारी बुद्धिकी सहायता करके सुहृदता दिखाई ९॥ तुमको हमारे प्राणोंकी शपथ है कि तुम इन सब स्त्रियोंके साथ लौट जाओ, हम रणस्थलमें भ्राताको केवल जीतही कर लौट आमेंगे, और उसे प्राणोंसे नहीं मारेंगे ॥ १० ॥ प्रियवादिनी दक्षिणा नायका तारा वालिको भेंटकर उसकी प्रदक्षिणाकर रोते २ वहांसे लौटी ॥ ११ ॥ शोकसे मोहित हुई, स्वस्तिके मंत्र जाननेंवाली तारा विजयकी इच्छा किये स्वस्त्ययन करके सब स्त्रियोंके साथ अन्तःपुरमें चली गई ॥ १२ ॥ जब सब स्त्रियोंके साथ तारा अपने घरमें चली गई, तब वालि क्रोधित हुये महासर्पकी समान श्वास लेता हुआ नगरीसे बाहर निकला ॥ १३ ॥ वानरराज वालिनें लंबे २ श्वास लेकर बडे वेगसे आय रोषमें भर शत्रुको देखनेंकी वासनासे चारों ओरको दृष्टि डाली ॥ १४ ॥ तिसके पीछे श्रीमान् वालिनें सुवर्णसम पिंगलनेत्र, कच्छ, कसकर बाँधे हुये, पृथ्वीपर दृढरूपसे खडे देदीप्यमान अनलतुल्य सुग्रीवजीको देखा ॥ १५ ॥ महाबलवान् परम क्रोधित वालि सुग्रीवजीको इस प्रकारसे खडा देख आपभी वस्त्रोंको कसकर पहन लेता हुआ ॥ १६ ॥ वीर्यवान वालि कच्छ बाँध मुक्का उठाय सुग्रीवजीके सन्मुख जाय युद्धके लिये समयको देखनें लगा ॥ १७ ॥ सुग्रीवजीभी दृढ मुक्का बाँधकर दर्पमें भर हेमशाली वालिकी ओर गमन करनें लगे ॥ १८ ॥ वालि रणपण्डित क्रोधसे लाल२ नेत्र किये सुग्रीवको महा वेगसे आता हुआ देखकर बोला ॥ १९ ॥ यह देखो सब उंगलियोंको सकोड कर हमनें दृढ रूपसे जो यह महा मुष्टिका बाँधीहै हम इसको महा वेगसे तुम्हारे ऊपर चलामेंगे इसमें कोई संदेह नहींकि इसके लगतेही तुम्हाराप्राण निकल जायगा जब वालिनें ऐसा कहा तब सुग्रीवजीभी उस्से क्रोधित होकर बोले कि देख! यह

हमनें जो मुक्का बांधाहै यहभी तुम्हारे मस्तकपर पडकर प्राण लेहीलेगा२०॥ ॥ २१ ॥ तब वालिनें अत्यन्त क्रोधित होकर वेगसे जाकर सुग्रीवजीके मुक्कामारा।उस मुक्केके लगनेंसे सुग्रीवजी झरनें सहित पर्वतकी समान रुधिर उगलते २पृथ्वीपरगिरे॥२२॥फिर सुग्रीवजीनें झटपट उठकर अति तेजीसे निःशंकहो एक शालका वृक्ष उखाड वालिके मारा, जैसे इन्द्रजीनें वज्रसे पर्वतोंको माराथा ॥ २३ ॥ उस वृक्षके लगनेंसे विह्वलहो वालि समुद्रके मध्य चलती बहुत बोझसे लदीहुई नावके समान चल विचल होनें लगा ॥ २४ ॥ वह भयंकर बल वीर्यशाली चन्द्रमा सूर्यकी समान, गरुड तुल्य वेगवान् घोर तर देहधारी वालि और सुग्रीव महाघोर युद्ध करनें लगे ॥ २५ ॥ परस्पर एक दूसरेका दोष ढूढ़नेंमें तैयार हुये दोनोंवीर परस्पर चोट चलानें लगे। लड़ते २ बलवीर्य युक्त वालि समरमें जय शाली हो बढा ॥ २६ ॥ और सूर्य पुत्र महा बलवान् सुग्रीवजी हीनबल होनें लगे, वालिनें इनका गर्व खर्वकर डाला; और इनका विक्रमभी कम होनें पर आया ॥ २७ ॥ परन्तु सुग्रीवजी श्रीरामचन्द्रजीके दिखानेंके अर्थ वालिके ऊपर बडा कोपकर, जड़ व शाखा सहित वृक्ष उखाड, पर्वत शिखर, और वज्र सम धार वाले नखोंसे ॥ २८ ॥ और मुष्टिका, जांघ, चरण, और बाहोंसे फिर लडनें लगे और वालिभी; इन्ही आयुधोंसे लड-ताथा; इस कारण इन दोनों जनोंका संग्राम ऐसा हुआकि जैसा इन्द्रजीके साथ वृत्रासुरका हुआथा ॥ २९ ॥ वह वनचारी दोनों वानर रुधिरसे न-हाय महा मेघकी समान घोर शब्दसे परस्पर तर्जन गर्जन करनें लगे ३०॥ तब श्रीरामचन्द्रजीनें देखाकि सुग्रीव अब बहुतही हीनबल होगयेहैं; इस कारणसेही वारंवार सब दिशाओंकी ओर निहारतेहैं ॥ ३१ ॥ महाते-जस्वी श्रीरामचन्द्रजी सुग्रीवको भयातुर देखकर वालिके संहार करनेंकी इच्छासे वारंवार बाणोंकी ओर दृष्टि पात करनें लगे ॥ ३२ ॥ फिर वि-षधर सर्पकी समान बाण धनुषपर चढाकर यमराजके काल चक्रकी समान धनुषको टंकारनें लगे ॥ ३३ ॥ जब श्रीरामचन्द्रजीनें धनुषको टं-कारा तो उस शब्दसे मृग व पक्षीगण युगान्त होनेंके दुकालकी समान मोहको प्राप्तहो वेग सहित भागने लगे ॥ ३४ ॥ फिर श्रीरामचन्द्रजीनें प्रदीप्त अग्निकी समान वज्र तुल्य शब्द करता हुआ वह महाबाण छोडा

वह वालिकी छातीमें जाकर महावेगसे लगा ॥ ३५ ॥ तब महातेजमान् वीर्यवान् वानरराज वालि वाणसे घायल होकर पृथ्वीपर गिर पडा ॥३६॥ जिस प्रकार आश्विन मासमें पूर्णमासीके अंतमें इन्द्रध्वज गिर पडताहै, वैसेही वालिके प्राण निकलनें लगे, और वह वनाथ मूर्च्छित होगया॥३७॥ कफके मारे उसका कंठ रुकगया और सहज २ आरत स्वर उसनें प्रगट किया ॥ ३८ ॥ जिस प्रकार श्रीशंकरजी मुखसे धूम अग्नि छोडतेहैं वैसेही कालकी समान नरोत्तम श्रीरामचंद्रजीनें सुवर्ण विभूषित शत्रुओंका नाश करनेंवाला वाण वालिपर छोडा ॥ ३९ ॥

अथोक्षितःशोणिततोयविस्रवैःप्रपुष्पिताशो
कइवाचलोद्गतः ॥ विचेतनोवासवसूनुराह
वेप्रंभ्रशितेंद्रध्वजवंत्क्षितिंगतः ॥ ४० ॥

फिर शरीरसे रुधिर निकलता हुआ पर्वत परसे उत्पन्न हुए अशोक वृक्षकी समान इन्द्रसुत वालि चेतना रहित, पवन, वेगसे टूटे हुए इन्द्रध्वजकी समान पृथ्वीपर गिरपडा ॥ ४० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे षोडशःसर्गः ॥ १६ ॥

सप्तदशः सर्गः ॥

ततःशरेणाभिहतोरामेणरणकर्कशः ॥
पपातसहसावालीनिकृत्तइवपादपः ॥ १ ॥

जब श्रीरामचन्द्रजीनें वाण मारा, तब वह रणशूर वालि उस वाणसे घायल हो कटे हुये वृक्षकी समान पृथ्वीपर गिर पडा ॥ १॥ उज्ज्वल सुवर्णके भूषण धारण किये हुये वालि डोरी छोड दिये हुये इंद्रध्वजकी समान गिरकर अपने सब अंग पृथ्वीपर लुटाता हुआ ॥ २ ॥ जब वानर गणोंका राजा वालि पृथ्वीपर गिर पडा तब उसके राज्यकी भूमि चंद्रमा रहित आकाशकी समान शोभा हीन होगई ॥ ३ ॥ यद्यपि वालि पृथ्वीपर गिर पडा, परन्तु उस महात्माके लक्ष्मी, तेज, प्राण और पराक्रम कुछ न गये॥४॥ इन्द्रकी दी हुई अति उत्तम रत्न भूपित सुवर्णकी माला, उस वानरश्रेष्ठके प्राण, तेज, और देह लक्ष्मीको धारण किये रही ॥ ५ ॥ वानरराज उस

सुवर्णकी मालासे संध्याकालीन जलधरकी समान शोभा धारण करता हुआ ॥६॥ यद्यपि वालि गिर पडा, परंतु उस समयभी ऐसा शोभित होताथा कि मानों लक्ष्मी, माला, देह, और मर्म घाती शर इन तीन रूपोंमें प्रगटहो शोभायमानहोरही हैं॥७॥श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे छूटा हुआ स्वर्गका साधक वह बाण उस वीर वालिको परम गतिका देनें वाला हुआ॥८॥ युद्धस्थलमें शिखारहित अग्निकी समान गिरे पुण्य क्षय होनेंपर देवलोकसे खसे ययातिकी तुल्य ॥ ९ ॥ युगान्तके समय पृथ्वीमें गिरे हुये सूर्यकी समान इन्द्रकी समान दुर्द्धर्ष उपेन्द्रकी समान दुस्सह ॥ १० ॥ चौडी छाती वाले महाबाहु प्रदीप्त वदन सिंहलोचन इन्द्रके पुत्र हेममाली वालिको ॥ ११ ॥ रणस्थलमें देख श्रीरामचंद्रलक्ष्मणजीके सहित उसके निकट गये जहां वह वीर बुझी हुई अग्निके समान पृथ्वीपर गिरा पडाथा ॥ १२ ॥ वह मानके करने योग्य श्रीराम लक्ष्मणजी उस वीरश्रेष्ठ वालिके निकट उसको देखते २ निकट गये ॥ १३ ॥ वालि महाबलवान् श्रीरामचंद्रजी व लक्ष्मणजीको देखकर धर्म युक्त कठोर वचन बोला ॥ १४ ॥ अल्प तेज, अल्पप्राण, चेतना रहित, भूमि पतित वालि रण गर्वित श्रीरामचंद्रजीसे गर्वित वचन कहनें लगा ॥ १५ ॥ हेराम! आपके सहित हमनें सन्मुख युद्ध नहीं किया फिर भला आपने हमको मार कर किस गुणको प्राप्त किया हम सुग्रीवके साथ युद्ध करनेंमें लगे रहकर आपके द्वारा मारे गये ॥ १६ ॥ हे राम! आप करुणा मय प्रजा गणोंके हित में निरत कुलीन, सत्वसम्पन्न, तेजस्वी, वेदविहितकर्मकारी ॥ १७ ॥ महोत्साही, दृढ व्रतधारी, उचित अनुचित कालके जाननेवाले लज्जाशीलहैं पृथ्वीके सबही मनुष्य इस प्रकारसे कहकर आपका यश वखानते हैं ॥ १८ ॥ दम, शम, क्षमा, धर्म, धीरज, सत्यता और पराक्रम व अपकारियोंको दंड देना यह समस्त राजा लोगोंके गुण- हैं ॥ १९ ॥ सो हम आपमें यही समस्त गुण सुना करते थे और यह भी ज्ञातथा कि आप सत्कुलमें जन्मे हैं, यही कारण हुआकि ताराके रोकने पर भी हम सुग्रीवसे युद्ध करते हुये ॥ २० ॥ हम दूसरे के सहित यह विचार कर युद्ध में नियुक्त थे कि आप धर्मको

छोडकर हमको क्यों मारनें लगे हैं और इसी कारण वश आपकी ओर-से कुछ चिन्ता नकी हमारी बुद्धि आपके दर्शनसे पहले यह थी कि आप धर्मके प्रतिपालकहैं परन्तु अब यह बुद्धि जाती रही परन्तु हमने भली प्रकार चीन्ह लिया कि धर्मध्वज आप, अधार्मिक तृणोंसे ढके हुये अंध कूपकी समान, नष्टात्मा ॥ २१ ॥ २२ ॥ असज्जनहो परन्तु सज्जनोका वेश धारण किये हुये पापिष्ठी पावक तुल्य ढके हुये कपट धर्मसे छिपे हो हमने पहले न जानाकि आप ऐसे हैं ॥ २३ ॥ आपके राज्यमें या नगर में हमनें कोई पाप वा बुरा आचरण नहीं किया फिर आपनें किस कारणसे हमें मारा ? हम नहीं जानते कि आप कौन हैं ॥ २४ ॥ हम नित्य फल मूल भोजन करने वाले वनवासी वानर सुग्री-वसे युद्ध करतेथे कुछ आपको तो नहीं छेडाथा फिर आपनें क्यों हमें मारा? ॥ २५ ॥ हे राजन्! आप राजा दशरथजीके पुत्र प्रिय दर्शनहैं और आपमें धर्मानुसार चिह्नभी दृष्टि आतेहैं. कि जिस्से ज्ञात होताहै कि आप कभी अधर्म न करते होंगे ॥ २६ ॥ क्षत्रिय कुलमें उत्पन्न हुआ वेद जाननें वाला इसलिये संशय रहित धर्म चिह्न धारण करकै कौन पुरुप क्रूर कर्मका आचरण करताहै? ॥ २७ ॥ रघुकुलमें आपनें जन्म लियाहै, संसारमें धर्मवान्के नामसे आप विख्यातहैं; फिर भला शुभ रूप धारण करके आपनें अधर्म कर्म क्यों किया ? ॥ २८ ॥ हे राजन् ! साम, दान, क्षमा, सत्य, धीरज और पराक्रम व शत्रुको दंड देना यह समस्त राजा-ओंके गुणहैं ॥ २९ ॥ हे नरेश्वर! हम फल मूलके भोजन करनेंवाले वनचर पशु तुल्यहैं, हमारी बुद्धि पशुकी समान होजाय तो आश्चर्य नहीं, परन्तु आप नगरवासी पुरुपहैं आपका ऐसा स्वभाव क्योंकर हुआ ॥३०॥ आप सोना, चांदी, इत्यादिकोंके ऊपरही विवाद व युद्ध कर सकतेहैं, हम वनवासी और फलोंके खानेवालेहैं सो हमारे फल मूलके ऊपर आप किसी प्रकार लोभ नहीं कर सकते ॥ ३१ ॥ नीति, विनय, अनुग्रह, निग्रह, इन चार बातोंके अतिरिक्त राजा लोग और किसी बातमें स्वेच्छा-चारी नहीं होते ॥ ३२ ॥ आप स्वेच्छाचारी कोपनस्वभाव चंचलचित्त राज कार्योंमें अयोग्यहैं, जहां तहां धनुपसे बाण छोडते फिरतेहैं ॥ ३३ ॥ मनुष्योंके राजा होनेपरभी धर्ममें आपका आदर नहीं यथार्थ अर्थमें बुद्धि

स्थिर नहींहै, वरन आप स्वेच्छाचारी होकर इन्द्रिय गणोंके वशमें पड खिंचे फिरतेहैं ॥ ३४ ॥ हम बिन अपराधीको बाणसे मार अति निन्द-नीय कर्मका अनुष्ठान कर आप सज्जनोंके बीचमें क्या कहेंगे ? ॥ ३५ ॥ राजघाती, ब्रह्मघाती, चोर, प्राणियोंको मारनें वाला नास्तिक, परिवेत्ता ❋ यह सब पुरुष नरकको जातेहैं ॥३६॥ चुगली करनेंवाला, कादर मित्रका मारनेंवाला गुरुतल्पग × यह लोगभी निःसंदेह पापियोंके लोकको जाते हैं ॥ ३७ ॥ हम लोगोंका चर्म आप लोगोंके धारण करनें योग्य नहीं हमारे रुवें और हड्डियेंभी सज्जन लोग नहीं ग्रहण करते; और मांसभी आप सरीखे धर्मचारी गणोंके अयोग्यहै; इस कारण राजाओंके आखेट धर्मका बहा-नाभी आप हमपर नहीं कर सकते ॥ ३८ ॥ हे राघव ! गैंडा, सई, गोह, खरगोश, शशा, और कछुआ, यह पांच पंचनख वाले जीव ब्राह्मण और क्षत्रियोंके भक्षण करनें योग्यहैं ॥ ३९ ॥ बुद्धिमान् लोग वानरका चमडा, हड्डी, और रुवेंको स्पर्श तक नहीं करते और मांस तो हमारा अभक्ष्यहैही सो हम उन्हीं पंचनखवाले वानरको आपनें किस कारणसे वध किया ? ॥ ४० ॥ हाय ! सर्व ज्ञान सम्पन्न तारानें हमको सत्य और हितकारी वचन कहेथे, परन्तु हम अज्ञान वश उसके वचनोंको न मानकर कालके कराल गालमें पडे ॥ ४१ ॥ हे श्रीरामचंद्र ! विधर्मी पतिको प्राप्त कर जिस प्रकार सुशील स्त्री सनाथ नहीं होती वैसेही आपको पाय पृथ्वी सनाथ नहीं हुई॥४२॥महाराज दशरथजी तो महात्मा पुरुष थे उनसे शठ पराया बुरा करने वाले नीच मिथ्या भाषी आपनें किस प्रकारसे जन्म ग्रह-ण किया॥४३॥राम रूप हस्ती नें सज्जन लोगोंका धर्म उल्लंघन कर सदाचार की रस्सी तोड और धर्म रूप अंकुशको न मानकर हमको मार डाला॥४४॥ अशुभ, अयुक्त, सज्जनोंसे निन्दित कार्य कर, जब आप सज्जनसमाजमें बैठेंगे, तब उन लोगोंसे आप क्या कहेंगे ? ॥ ४५ ॥ हे राम ! आपनें हम उदासीन जनके ऊपर ऐसा विक्रम प्रकाश किया, परन्तु अपकारी पुरुषके ऊपर आपका पराक्रम दृष्टि नहीं आता ॥ ४६ ॥ हे राजकुमार ! यदि आप प्रगट होकर हमसे संग्राम करते तो अभी हमसे मारे जाकर

❋ बडे भाईका विवाह विनाही हुये छोटा जो बिवाह कर लेताहै उसको परिवेत्ता कहतेहैं ॥

× गुरुकी स्त्रीको हरण करनें वाला ।

निःसंदेह आप यमराजका भवन देखते ॥ ४७ ॥ हे राम ! मनुष्य लोग जिस प्रकार सोतेहुये सर्पको मार डालतेहैं आपनें भी वैसेही अप्रगट रह कर अतिशय दुर्द्धर्ष हमको प्राणसे मार डाला ॥ ४८ ॥ तुमनें सुग्रीवका प्रिय करनें और अपनी स्त्री प्राप्त करनेंके लिये हमको मार डाला, यदि पहलेहीसे आप हमें जतादेते तो हम एक दिनके बीचमें निःसंदेह आपकी भार्या मैथिलीको ला देते ॥ ४९ ॥हम निःसंदेह तुम्हारी भार्याके हरण करनेंवाले दुरात्मा राक्षस रावणको संग्राममें विनाहनें उसके गलेमें रस्सा बाँधकर आपके निकट ले आते ॥ ५० ॥ मैथिली समुद्रके जलमें, वा पातालमें, अथवा जहां कहीं भी होती आपकी आज्ञा पाते ही जानकी आपके पास ले आते; जैसे मधु कैटभ दैत्य करके हरी हुई शुक्ल यजुर्वेदकी श्रुतिको हयग्रीवजी ले आयेथे ॥ ५१ ॥ यह तौ ठीकही ठीक हुआ कि हमारे स्वर्ग जानें पर सुग्रीव राजा होंगे, परन्तु यह कार्य अत्यन्त अनुचित हुआ कि आपनें हमको अधर्मसे मार डाला ॥ ५२ ॥ एक दिन सबहीको कालके गालमें जानाहै, फिर इस्से हम मृत्युको प्राप्त हुए; तो क्या हुआ ? परन्तु आप हमको अधर्मसे वधकर जब राज्य प्राप्त करेंगे, और उस समय राज्य स्थित प्रजा गण प्रश्न करेंगे तो उनको आप क्या उत्तर देंगे ॥ ५३ ॥

इत्येवमुक्तापरिशुष्कवक्त्रःशराभिघा
ताद्व्यथितोमहात्मा ॥ समीक्ष्यरामंरविसन्निका
शंतूष्णींबभौवानरराजसूनुः ॥ ५४ ॥

इस प्रकार बाणकी चोटसे व्यथित होकर वानर राज महात्मा वालिका मुख पीला पडगया और वह सूर्य समान तेजवान देखते २ मौन होरहा ॥ ५४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे सप्तदशःसर्गः ? ॥ १७ ॥

अष्टादशः सर्गः ॥

इत्युक्तःप्रश्रितंवाक्यंधर्मार्थसहितंहितं ॥
परुषंवालिनारामोनिहतेनविचेतसा ॥ १ ॥

श्रीरामचंद्रजीके द्वारा घायल, अचेतन वालि, श्रीरामचंद्रजीसे इस प्रकार धर्म, अर्थ, काम सहित हितकारी व कठोर वचन बोला ॥ १ ॥ उस वानरवरको प्रभा हीन सूर्यकी समान, जल रहित मेघकी समान, और बुझी हुई आगके समान वचन कह चुप हुये ॥ २ ॥ धर्म, अर्थ, गुण युक्त, उत्तम वानरनाथ वालिसे बहुत निन्दा किये जानेंपरभी श्रीरामचंद्रजी बोले ॥ ३ ॥ धर्म, अर्थ, काम, लौकिक आचार इन सबको विनाजाने तुम बालककी समान हमारी निन्दा क्यों करतेहो ? ॥ ४ ॥ तुम आचार्य, समस्त, वृद्ध, और बुद्धिमानोंके विना पूछे ही, वानर स्वभावही की चपलताके हेतु हमारी निन्दा करनें की इच्छा करते हो ॥ ५ ॥ हम इक्ष्वाकु वंशियोंके पूर्व पुरुष मनुजीनें, शैलवन और काननादि सहित यह पृथ्वी हम लोगोंको दी तिस्से इस पृथ्वीके जितनें मृग पक्षी व मनुष्यहैं ,सब पर अनुग्रह और दंड करनेका अधिकार हमहींकोहै ॥ ६ ॥ सत्यशाली, सरल स्वभाव, दंड और अनुग्रह करनें में निरत,धर्म, अर्थ व कामके तत्वको जाननें वाले,धर्मात्मा भरतजी इस समय इस पृथ्वीका पालन करते हैं॥७॥ जिसमें नीति विनय और सत्य देखा जाय वही देश काल ज्ञाता पुरुष राजा हो सकताहै, सो यह सब भरतजीमें हैं॥ ८ ॥हम व और दूसरे नृपति गण, उनसे धर्माचरण करनेंके निमित्त आज्ञा पाकर इस पृथ्वीपर विचरतेहैं ॥ ९ ॥ जबकि नृपति श्रेष्ठ धर्म वत्सल भरतजी समस्त पृथ्वीका पालन कर रहेहैं, तब कौन पुरुष धर्मका अप्रिय साधन करनेंमें समर्थ हो सकताहै? ॥ १० ॥ हम अति उत्तम अपने धर्ममें टिके रह भरतजीकी आज्ञा शिर पर धारण कर, धर्म मार्ग छोडनेंवाले पुरुषोंका विचार किया करतेहैं ॥ ११ ॥ तुमनें धर्मको क्लेश देकर निन्दनीय कर्म कियाहै ॥ तुम राज धर्मका अपमानकर उसमें नहीं टिके हुए अधिक कर कामाधीन हुएहो ॥ १२ ॥ धर्ममें और अच्छे मार्गमें चलनेंवाले बडे भ्राता, पिता, और जो विद्या पढावे यह तीनोंजन पिताकी तुल्य होतेहैं ॥ १३ ॥ छोटाभाई पुत्र और गुणवान शिष्य इनतीनों जनोंको पुत्रकी तुल्य समझना चाहिये, इसमें धर्मही कारणरूप गिना जाताहै ॥ १४ ॥हे वानर! सज्जनोंका परम धर्म अति सूक्ष्महै, सो हृदयमें टिका हुआ आत्मा शुभ अशुभ समस्तही जान सकताहै ॥ १५ ॥ तुम चपल स्वभाव, जन्मान्ध

और मूढहो, चपल बुद्धि जन्मान्ध वानरगणोंके सहित सलाह कर व उनके निकट उठनें बैठनेंसे तुमभी वैसेही होगयेहो ॥ १६ ॥तुम श्रवण करो कि हम यह वचन स्पष्ट प्रगट कर कहतेहैं, कि तुम केवल रोषमें भर हमारी निन्दा करतेहो सो यह तुमको उचित नहींहै ॥ १७ ॥ हम तुमको यहभी बतलातेहैं कि जिस कारणसे हमनें तुमको माराहै तुम सनातन धर्मको छोड छोटे भ्राताकी स्त्रीसे रमण करते हो सो इसका विचार तुमही करलो कि यहबात उचित है वा अनुचित १८॥महात्मा सुग्रीवके जीवित रहते पापाचारी तुमनें उनकी स्त्री अपनी भ्रातावधूसे कामके अधीनहोरमणकिया १९इसलिये तुमनें कामाचारीहो धर्मके मार्गको उल्लंघनकिया।उस भ्रातृभार्याकी धर्षणा करनेंके हेतु हमनें यह दंड तुमको दिया॥२०॥ हेवानरवर! लोकोंके व्यवहारकी मर्यादाको उल्लंघन करनेंवाले लोक विमुख पुरुषको मारनेंके सिवाय हम और कोई दंड नहीं देखते ॥ २१ ॥ हम श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न हुये, क्षत्रिय पापको नहीं सहसकते, सहोदरा भगिनी अथवा छोटे भ्राताकी स्त्रीसे ॥ २२ ॥ रमण करनेंवाले पुरुषको मार डालनाही ठीक दंड है महिपाल भरतजीनें हमको इसी प्रकारकी आज्ञाकीहै; सो हमनें उनकी आज्ञानुसारही कार्य किया है ॥ २३ ॥ तुमनें धर्मकी मर्यादाको तोडा है; जो गुरु होकर धर्मकी मर्यादा तोडे; तौ परलोकमें धर्म पालक होकर उसकोभी विना दंड दिये नहीं छोड सकते ॥ २४ ॥ भरतजीनें कामाधीनहो स्वेच्छानुसार चलनेंवाले पुरुषोंको दंड देनेंकी व्यवस्थाकीहै; सो हम लोग उन भरतकी आज्ञा पालन करकै तुम्हारी समान धर्मकी मर्यादा तोडनेंवाले पुरुषोंको विनाश किये हैं ॥ २५ ॥जैसे लक्ष्मणजीके सहित हमारी मित्रताईहै, वैसेही सुग्रीवजीभी हमारे सखा हैं, सो सुग्रीवजी हमारी मित्रतासे अपना राज्य व स्त्री पानेंकेलिये हमारे निकट आये हैं, यह वानर हमारा वडा प्रियकारीहै ॥ २६ ॥ और दूसरे हमनें सब वानरोंके सहित प्रतिज्ञाभी कीहै कि तुम्हारा राज्य और तुम्हारी स्त्री तुम्हें दिलादेंगे । सो भला हम समान पुरुष प्रतिज्ञाको किस प्रकारसे त्याग कर सकते हैं ॥ २७ ॥ इन सब धर्म संयुक्त वडे कारणोंके समूहके निमित्त हमनें तुमको दंड दिया है सो तुमभी इसको उचितही समझो॥२८॥ तुमको दंड देना सब भांतिसेही धर्मानुसार ज्ञात होता है।और मित्रका

उपकार करनाभी धर्मचारी पुरुषोंको अवश्यही कर्तव्य है ॥ २९ ॥ सो तुमको दंड देकर हमने धर्महीका वर्ताव कियाहै महात्मा मनुजीके चरित्रवान दो श्लोक हमने सुन रक्खे हैं सो उनको हमनें तथा सबही धर्म कुशल जनोंनें ग्रहण कियाहै * ॥ ३० ॥ उन श्लोकोंका अर्थ यहहै कि पाप करने वाले मनुष्य गण राज दंड ग्रहण करकै सुकृति करनेवाले पुरुषोंकी समान निर्मल होकर स्वर्गमें गमन करते हैं ॥ ३१ ॥ हम पापीहैं इसलिये हमको पाप दंड दीजिये, यह कहकर जो पापी राजाके निकट चला जाय, उसको राजा दंड दे अथवा न देकर कृपा दिखा छोडदे तो उन दोनों वातोंसे पापी तो अपने पापसे छूटगया, परन्तु छोड देनेंसे उस पापका भागी राजा होताहै । इसलिये हमनें तुमको दंड दिया ॥ ३२ ॥ जैसा कि पाप तुमनें कियाहै; वैसाही पाप एक समय किसी श्रमण (आर्हत संन्यासी) नें कियाथा. कि जिसको हमारे पुरुषा मान्धाताजीनें घोर दंड दिया ॥ ३३ ॥ और राजा लोगोंने भी प्रथम पापियोंको दंड दियाहै, अधिक क्याकहें, पाप करने वाले पुरुष आपही पापका प्रायश्चित्त करकै शुद्ध हुआ करते हैं ॥ ३४ ॥ हे वानरशार्दूल ! पछतावा करनेंसे कुछ प्रयोजन नहींहै, हमनें धर्मानुसारही तुम्हारा संहार कियाहै, क्योंकि हमभी धर्मशास्त्रके वशहैं, कुछ स्वाधीन नहींहैं ॥ ३५ ॥ हे कपिश्रेष्ठ ! इस विषयमें औरभी कारणहैं; वह भी तुम्हें बतातेहैं, उनको सुनकर तुम मनमें उपजा हुआ क्रोध छोडदो ॥ ॥ ३६ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! नतो इसलिये कुछ हमारे मनको संतापहै, न कुछ क्रोधहीहै; क्योंकि बहुत सारे मांस खानेंवाले नर गण, जाल, फांसी; व विविध भांतिके कपट कर ॥ ३७ ॥ छिपकर, वा प्रगट होकर भागते और डरे हुये या विश्वास कर बैठे हुए बहुत मृगोंको पकडतेहैं ॥ ३८ ॥ जो राजा लोग सावधान या असावधान दुष्ट मृगोंको काननमें हनन करते हैं उनकोभी मनुष्य वध करनेंके समान अघ नहीं प्राप्त होता, चाहें मांसके अर्थ वा यज्ञार्थ चाहें जिसके लिये मारें उन्हें कुछभी दोष नहीं हो-

* राजभिर्धृत दण्डाश्च कृत्वा पापानि मानवाः ॥ निर्मला स्वर्गमायांति संतः सुकृतिनो यथा १ शासनाद्वापिमोक्षा द्वास्तेनःपापात्प्रमुच्यते ॥ राजात्वशासनात्तस्य तदवाप्नोति किल्बिषम् २

ता ॥ ३९ ॥ बहुत सारे धर्मके जाननेंवाले राजर्षि लोगोंनें शिकार खेल-ते २ अनेक वनैले मृग मार डालेंहैं, व इसी कारणसे हमने तुमको बाण मारकर संहार किया! क्योंकि तुमभी तो शाखामृगहीहो॥४०॥चाहें तुम हमसे युद्ध करतेथे या न करतेथे परन्तु थे तो मृगही;इस्से हमने तुम-को मारा ॥ ४१ ॥ हे वानर श्रेष्ठ! राजा लोग दुर्लभ और शुभकारी धर्म और जीवनतक दानकर देतेहैं इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ ४२ ॥ राजा लोगोंको न मारना चाहिये, उनके ऊपर क्रोध कर तर्जनादि न करना चाहिये, और न कुप्यारे वचन कहै, क्योंकि यह राजालोग देवता, और मनुष्यके रूपमें पृथ्वी पर फिरा करतेहैं ॥ ४३ ॥ तुम धर्मका मार्ग न जानकर केवल क्रोधके वशहो पिता पितामहादिकोंके धर्ममें टिके हुये हमारी निन्दा करते हो ॥ ४४ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा, तब वालि अपने कहे हुये पहले कठोर वचनोंका पछतावा कर व्यथित होनें लगा; और भली भांतिसे धर्मके तत्त्वको जानकर फिर रामचंद्रजीमें दोष बुद्धि नहीं करता हुआ ॥ ४५ ॥ तब उसनें हाथ जोडकर श्रीरामचंद्रजीसे कहाकि हे नरश्रेष्ठ! इस बातमें कुछ संशय नहीं कि आपनें हमसे जो कुछ कहा वह सब सत्यही सत्यहै ॥ ४६ ॥ श्रेष्ठ पुरुषके आगे नीच पु-रुष बोलनें को समर्थ नहीं होता, हमनें पहले अज्ञानताके मारे जो वचन कहेथे ॥ ४७ ॥ सो उनसे आप कुछ दोष न ग्रहण करें आप प्रमाणित धर्मादि तत्त्वके यथार्थही विचार करताहैं, और इसमें भी कुछ संदेह नहीं कि आप प्रजा गणोंका हित करनेंमें निरतभीहैं ॥ ४८ ॥ इसमें कुछ संशय नहीं कि आपकी स्थिर बुद्धि कार्य कारणके सिद्ध करनेंमें निपुणहै ॥ ४९ ॥ हे धर्मज्ञ! हम धर्म उल्लंघन करनेंवाले पुरुषोंके अग्र णीय और पापीहैं सो आप धर्म युक्त वचनोंसे हमको उत्तम लोक देकर प्रतिपालन कर लीजिये ॥ ५० ॥ वालि दल २ में फँसे हुये हाथी की समान आरत स्वरसे श्रीरामचंद्रजीसे दीन वचन बोला उस समय उसका कंठ आंसुओंसे रुक गयाथा ॥ ५१ ॥ हम अपनें लिये, ताराके लिये, और वानर गणोंके लिये शोक नहीं करते, हमतो केवल सोनेंके बाजू पहरे बालक अंगदके ही लिये शोक करतेहैं क्योंकि मैं तो भगवानसे मारा गया तारासे सुग्रीव प्रीति करैगा, वानर सेवा कर रह जांयगे, बस अंगदका

कहीं ठीक नहीं ॥ ५२ ॥ जब वह बच्चाहीथा तबसे हमनें उसका लालन पालन किया, वह हमको न देखकर दीन भावको प्राप्तहो उस तडागकी समान सूख जायगा; कि जिसका जल हाथियोंनें पीलियाहो ॥ ५३ ॥ हे राम! ताराके गर्भसे उत्पन्न हमारे इकलौते, कच्ची बुद्धि युक्त महा बलवान अंगद बालककी आप रक्षा कीजिये; हे महाराज! कहीं मेरे पुत्रको कष्ट नहो ॥ ५४ ॥ सुग्रीवकी बुद्धि ऐसी बदल दीजिये कि वह अंगदसे प्रीति करनें लगे। क्योंकि आप कार्य अकार्यके बीधनें में सबके सिखलानें और रक्षा करनेवाले हैं, इस कारण इनको आप भली भांतिसे पालते पोषते रहिये ॥ ५५ ॥ हे नरेश्वर! आप भरत और लक्ष्मणजीमें जिस प्रकारकी स्नेह बुद्धि रखतेंहैं; वही बुद्धि सुग्रीव और अंगदके प्रति कीजिये ॥ ५६ ॥ हमनें दोष कियाहै, कहीं यह समझ कर ताराको दोष नदिया जाय, हे श्रीरामचंद्रजी! आप ऐसा कीजिये कि जिस्से शोचनीय उस स्त्रीको सुग्रीव प्रतिपालनकरे व निरादर न करै ॥ ५७ ॥ आपके वशमें रहकर आपके चित्तका अनुयायी और आपके अनुग्रह का भाजन होकर वह वानर राज्यको पालन कर सकता ॥ ५८ ॥ समस्त पृथ्वीका पालन कर सकता, और स्वर्गका राज्य भी करनें में निःसंदेह समर्थ हो सकताहै, फिर इस तुच्छ राज्यकी क्या चलाई। हे श्रीरामचंद्रजी! हम इसीलिये तारा करकै रोके जाने पर भी आपके हाथसे अपने वधकी वांछा कर ॥ ५९ ॥ भ्राता सुग्रीवके साथ द्वंद्व युद्ध करनें लगे। वानरराज वालि रामचंद्रजीसे यह कह चुप होरहा ॥ ६० ॥ तब श्रीरामचंद्रजी धर्मार्थसंयुक्त साधु समस्त वचनोंसे ब्रह्मज्ञानी वालिको समझाने लगे ॥ ६१ ॥ हे वानरश्रेष्ठ वालि! हमनें गुप्त वध रूप अकार्य कियाहै,ऐसा तुम कभी मत समझना, और ऐसाभी न समझना कि तुमको हमने इसलिये माराहै; कि तुमनें अपने भाईकी स्त्रीको हर लियाहै, क्योंकि हम तुमसे अधिक परिशोधित बुद्धि द्वारा धर्म और शास्त्रानुसार कार्य करतेहैं, बस यही बात तुमभी समझो ॥ ६२ ॥ जो पुरुष दंडपानें योग्य जनको दंडदेताहै, और दंडपानें लायक जन जिस करके दंड पाताहै उसकी कार्य सिद्धि और कारण सिद्धि विनाशको नहीं प्राप्तहोती ॥ ६३ ॥ इसलिये दंड पाकर तुम पापसे छूटगये और दंडसे बताये हुए मार्ग द्वारा

तुम अपने धर्म संयुक्त मार्गको प्राप्त होगये ॥ ६४ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! तुम अपने हृदयमें टिका हुआ शोक और मोह दूर करदो; क्योंकि पहले किये हुए कर्मोंको तुम उल्लंघन करनेंमें समर्थ नहीं हो सकते ॥ ६५ ॥ जिस प्रकारसे अंगदमें तुम भाव रखतेथे. वही भाव हमारा और सुग्रीवका उसमें रहैगा; इसमें कुछ संदेह नहीं है ॥ ६६ ॥ वालि, उन महात्मा रणजयी श्रीरामचंद्रजीके धर्म युक्त सावधान मधुर वचन सुनकर उनसे बोला ॥ ६७ ॥

शराभितप्तेनविचेतसामयाप्रभाषितस्त्वंय
दजानताविभो ॥ इदंमहेंद्रोपमभीमविक्र
मप्रसादितस्त्वंक्षममेहरीश्वर ॥ ६८ ॥

हे इन्द्रकी समान. भीमविक्रम श्रीरामचंद्रजी ! हमनें बाणके आघातसे चेतना रहित और बुद्धिहीनहो जो कुछ दुर्वचन कहाहो सो आप प्रसन्न होकर हमारे उस अपराधको क्षमा करदीजिये ॥ ६८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे अष्टादशः सर्गः॥ १८ ॥

एकोनविंशः सर्गः ॥

सवानरमहाराजःशयानःशरपीडितः ॥
प्रत्युक्तोहेतुमद्वाक्यैर्नोत्तरंप्रतिपद्यत ॥ १ ॥

बाणसे पीडितहो वानर राज वालि श्रीरामचंद्रजीके हेतु युक्त वचन सुन फिर कुछ उत्तर न देसका ॥ १ ॥ एकतो सुग्रीवजीके मारेहुए पत्थरोंकी चोट व वृक्षोंकी चोटसे वालिके अंग छिन्न भिन्न और घायल होरहेथे. तिसपर श्रीरामचंद्रजीके बाणसे आहतहो दीर्घ श्वास लेताहुआ वह मरणान्तमें मोहको प्राप्त हुआ ॥ २ ॥ वालिकी भार्या तारानें रनवासमेंही यह वार्त्ता सुनी कि वानर शार्दूल वालि संग्राम स्थलमें श्रीरामचंद्रजीके चलाये हुए बाणसे मारागया ॥ ३ ॥ पुत्रके सहित तारा पतिके मारे जानेंकी दारुण वार्ता सुनकर उद्विग्न चित्तहो गिरि कंदरमें बसती हुई किष्किन्धापुरीसे सहसा चली ॥ ४ ॥ अंगदजीके सब जो महाबल रक्षा करनें वालेथे; वह धनुष धारण किये श्रीरामचंद्रजीको देख भयके मारे भागनें

लगे ॥ ५ ॥ फिर तारानें देखाकि निहत यूथपति और यूथसे बिछुडे हुए मृगगणोंकी नांई वानर गण डरकर भाग रहेहैं ॥ ६ ॥ दुःखिता तारा शर द्वारा शयन करते हुएकी समान श्रीरामचंद्रजी करके त्रासित वालिको देख भागते हुए वानरोंके निकट गमन करके कहने लगी ॥७॥ हे वानरगण ! तुम लोग जिस राजसिंहके आगे होकर युद्ध करतेथे. इस समय उसको त्याग चित्तमें भ्रमितहो क्यों भागे जातेहो? ॥ ८ ॥ राज्यके लिये उन वानर राजके क्रूर भ्राता सुग्रीवजीसे भेजे जाकर श्रीरामचंद्रजीनें दूर खडेहो दूर जानें वाले बाणसे क्या उन वानरराज वालिको मार डाला९॥ कपिकी स्त्रीके वचन सुनकर कामरूपी वानर गण वालिकी स्त्री तारासे कालोचित प्रबोध वचन कहनें लगे ॥ १० ॥ हे तारे ! आपका शत्रु अभी जीवितहै इसलिये आप लौट जाकर अंगदकी रक्षा और पालन कीजिये काल, राम रूप धर वालिको अपने पुरमें लिये जाताहै ॥ ११ ॥ वालिके द्वारा छोडे हुए बहुत सारे वृक्ष और शिलाओंको व्यर्थ करके श्रीरामचंद्रजीनें इन्द्रकी समान वालिको वज्र तुल्य बाणके प्रहारसे मार डाला ॥ १२ ॥ हे वानर राज प्रिये ! जब इन्द्र समान वह वानर राज वालि मारे गये; तब यह समस्त वानर गण श्रीरामचंद्रजीके बलसे भीत होकर चारोंओरको भागतेहैं ॥ १३ ॥ इस समय आप वीर गणोंसे नगरीकी रक्षा करके अंगदको राज्य सिंहासन पर बैठाल दीजिये, जब वह राज्यपर बैठ जायँगे तो सब वानर गण इन वालि पुत्रकी सेवा करेंगे ॥ १४ ॥ हे सुमुखी ! अथवा यह स्थान तुमको अच्छा न लगैगा तो सुग्रीवादि वानरगण शीघ्रतासे इस स्थानमें और किले आदिकमें प्रवेश करेंगे ॥ १५ ॥ जब यह लोग किलेमें चले जांयगे, तो भार्याहीन वा भार्यासहित टिके हुए जो वनचारी वानर गण इस स्थानमें टिकेहैं उनको सुग्रीवादि वानर गणोंसे महा भय प्राप्त होगी ? क्योंकि इन लोगोंनें पहले सुग्रीवादिसे बडा छल कियाहै ॥ १६ ॥ चारुहासिनी तारा थोडी दूर खडे हुए वानरोंके वचन श्रवण करके अपने योग्य वचन उनसे कहनें लगी ॥१७॥ उन महाभाग कपिश्रेष्ठ हमारे पतिके मर जानेंसे हमको पुत्र, राज्य वा, जीवनसे क्या प्रयोजनहै ॥ १८ ॥ जो हमारे पति श्रीरामचंद्रजीके छोडे हुए बाणसे मारे गयेहैं, हम उन्हीं महात्माके चरण कमलकी शरणमें गमन करेंगी ॥ १९ ॥ यह कहकर शोकसे

विह्वल हुई तारा, रोते २ दौड दुःखके मारे दोनों हाथोंसे शिर और छाती-को पीटनें लगी ॥ २० ॥ वह सती शीघ्रतासे चलते २ समरमें न भागनें वाले, भूमिमें गिरे, दैत्येन्द्रोंको मारनें वाले ॥२१॥ वज्र चलानें वाले इन्द्रकी समान, पर्वत समूहोंको उखाड कर फेंकनें वाले, महा प्रचंड पवन युक्त महामेघकी समान घोर शब्द करनें वाले ॥ २२ ॥ इन्द्र तुल्य पराक्रम वाण वृष्टि संयुक्त मेघकी समान वानरगणोंके मध्यमें श्रेष्ठ शूर भयंकर गर्जन करनें वाले श्रीरामचंद्रजीसे गिराये ॥ २३ ॥ मांसके लिये व्याघ्र द्वारा मारे हुए हाथीके समान गिरे ॥ २४ ॥ सर्व लोकसे पूजित पताका सहित वैदिक मंत्रसे अर्चित अंतरमें भुजंग युक्त वामीको सर्पके निमित्त गरुडनें जैसे उन्मथिता कियाहो ऐसे, विध्वंसित देवालयकी समान दुर्दशा ग्रस्त वालिको देखा ॥ २५ ॥ और भूमिमें खडे महा धनुष चढाये श्रीरामचंद्रजीके सहित लक्ष्मण और अपने पतिके छोटे भाई सुग्रीवको तारानें देखा ॥ २६ ॥ इन सबको लांघ रणस्थलमें गिरे अपनें स्वामीको देखकर व्यथित और उद्विग्नहो तारा गिर पडी ॥ २७ ॥ फिर तारा सोते हुएकी समान उठकर "हा आर्यपुत्र!" ऐसा कह पतिको मृत्युके पाशसे बँधा देख रोने लगी ॥ २८ ॥

तामवेक्ष्यतुसुग्रीवःक्रोशंतींकुररीमिव ॥
विषादमगमत्कष्टंदृष्ट्वाचांगदमागतम् ॥ २९ ॥

सुग्रीवजी कुररीकी समान रोती हुई ताराको और उसके पुत्र अंगदको देख विषादके मारे महा समुद्रमें डूबगये ॥ २९ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० कात्यायनकुमार पंडित ज्वालाप्रसाद मिश्रकृत भाषानुवादे किष्किन्धाकांडे एकोनविंशः सर्गः ॥ १९ ॥

विंशः सर्गः ॥

रामचापविसृष्टेनशरेणांतकरेणतम् ॥
दृष्ट्वाविनिहतंभूमौताराताराधिपानना ॥ १ ॥

चंद्रवदनी तारा श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे छूटे प्राण विनाशी बाणसे मरे हुए देख अपने पति ॥ १ ॥ वालिके निकट जाकर बाणसे हत हुए उस कुंजरकी समान गिरे हुएसे लिपट भली भांति मिली ॥ २ ॥ फिर

पर्वतकी समान दीप्तिमान. पडे हुए वृक्षकोनांई वालिको देखकर शोक और संतप्त हृदयसे विलाप करने लगी ॥ ३ ॥ हे दारुणविक्रम! वानर श्रेष्ठ वीरवर! इस समय तुम अत्यन्त अपराधिनी हमसे क्यों नहीं बोलते हो? ॥ ४ ॥ हे वानरश्रेष्ठ! उठकर उत्तम सेजपर शयन करो. नृपश्रेष्ठ इस प्रकार पृथ्वीके ऊपर शयन नहीं करतेहैं ॥ ५ ॥ हे वसुधाधिप! यह पृथ्वी तुमको अत्यन्त प्यारीहै. क्योंकि हमको छोडकरभी तुम शरीरसे पृथ्वीको चिपटाये हुएहो ॥ ६ ॥ हे वीर! हम जान गई कि तुम यहां धर्म और शास्त्रके अनुसारही चलतेथे. इससे कोई दूसरी अति रमणीक पुरी स्वर्ग सम किष्किन्धा नगरीकी तुल्य तुमनें बनालीहै ॥७॥ हमनें वसन्तके समयमें जो विहार सुगंधित वनोंमें आपके साथ किये हैं. उन सबका आपने शेष करदिया ॥ ८ ॥ हम निरानंद और निराश होकर सागरमें डूबीं, हे यूथपोंके नाथ!यह सब वातें आपहीके मर जानेंसे हुई ॥९॥ हमारा हृदय वडा कठिन है, जो आपको पृथ्वीपर पडे देखकरभी मारे शोकके संतापित हो विदीर्ण होकर सहस्र खंड नहीं होजाता ॥ १० ॥ हे वानर नाथ! आपनें सुग्रीवकी स्त्रीको हरण करके उनको जो राज्यसे निकाल दिया आज उसी कार्यका यह फल प्राप्त हुआ ॥११॥ हमनें आपकी कुशलकी वांछाकर और हितैषीहो जो हितकारी वचन कहेथे सो आपनें कहा न मानकर हमारी निन्दा कीथी ॥ १२ ॥ हेआर्य! इस समय हम समझती हैं कि आप रूप यौवन संपन्न अनुकूल नायका अप्सरा गणोंके चित्त मथोगे, इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ १३ ॥ हे वीर! हमनें निश्चय जानाकि जीवनका अंत करनेंवाला काल निश्चयहै क्योंकि सुग्रीवके वश करके जिस कालनें तुम्हारे प्राण हरण कर लियेहैं ॥ १४ ॥ यद्यपि तुम सुग्रीवके साथ युद्ध करनेंमें लगरहेथे. तथापि काकुत्स्थकुल तिलकजीनें अधर्मका अनुसरण करके तुम्हारा वध किया. और तिस परभी वह नहीं पछताते ॥ १५ ॥ इस्से पहले हमनें कभी कोई दुःख नहीं पायाहै, सो इस समय हम अत्यन्त दीन अनाथ व कृपाके योग्य हो शोक संतापित हृदयसे वैधव्ययंत्रणाका भोग करैंगी, इसमें कुछ संदेह नहींहै ॥ १६ ॥ हे वत्स अंगद! तुम्हारे कनिष्ठ तात सुग्रीव इस समय क्रोधसे मूर्च्छित होरहेहैं. हम नहीं कह सकतीं कि तुम कुमार उन सुग्री-

वसे सुखके योग्य होकर किस प्रकारकी दुःखावस्थाको भोगोगे ॥ १७ ॥ हे वत्स पुत्र! इस समय तुम अपनें धर्मवत्सल पिताको भली भांतिसे देखलो, क्योंकि इस समयसे उनका दर्शन महादुर्लभ हो जायगा ॥ १८ ॥ हे नाथ! हे वीरश्रेष्ठ इस समय तुम सदाके लिये परदेशको जातेहो इस-लिये इस अपने पुत्रको समझाते बुझाते जाओ और हमारे प्रति कुछ आज्ञा-करके पुत्रका मस्तक सूंघिये। ॥ १९ ॥ तुम्हें मारकर श्रीरामचंद्रजीनें बडा भारी कर्म किया,वह ऐसा करके उस प्रतिज्ञासे उऋण हुये जो उन्होंनें सुग्रीव-के साथ कीथी हे सुग्रीव!तुम्हारे शत्रु भ्राता अब मारे गये,इस समय तुम सफल मनोरथहो हमको प्राप्त करो,और उद्विग्नता छोडकर राज्य भोगो॥२०।२१॥ हे वानरेश्वर! हम आपकी प्रियभार्या आपके सन्मुखही रोदन कर रही हैं,सो तुम हमसे क्यों नहीं बोलते?यह देखिये तुम्हारी औरभी बहुतसारी स्त्रियां य-हां आकर विलाप कर रहीं हैं ॥ २२ ॥ वे वानरी ताराके इस भांति विलाप कलाप सुन और दूसरी वानरियें अंगदको ग्रहणकर दुःखित हो रोदन क-रनें लगीं ॥ २३ ॥ हे अंगदधारिन् वीरवर! इस गुण युक्त सुन्दरबाजूबंद वाले अंगद प्रिय पुत्र अंगदको परित्याग करकै तुम सदाके लिये विदेश जाते हो, सो यह अनंत अनुचित कर्म होता है ॥ २४ ॥ हे महाबाहो!यदि हमनें कोई अपराधकियाहो, तब उसका विचारकरकै क्षमा कर दीजिये । हे वानर–वंश–नाथ!देखिये,हम अपना शिर तुम्हारे चरणोंपर धरती हैं ॥२५॥

तथातुताराकरुणंरुदंतीभर्तुःसमीपेसह
वानरीभिः॥ व्यवस्यतप्रायमनिंद्यवर्णा
उपोपवेष्टुंभुवियत्रवाली ॥ २६ ॥

निन्दा रहित तारा सब वानरियोंके सहित करुणाके वचन कह विलाप कर,वालिके निकटही बैठ मरणव्रत ग्रहणकर प्राण त्यागनेका निश्चय करती हुई ॥ २६ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० कि० विंशः सर्गः ॥ २० ॥

एकविंशः सर्गः ॥

ततोनिपतितांतारांच्युतांतारामिवांबरात् ॥
शनैराश्वासयामासहनूमान्हरियूथपः ॥ १ ॥

फिर आकाशसे गिरे तारेकी समान ताराको पृथ्वीपर पडा हुआ देखकर वानर यूथपति हनुमानजी, उसको धीरे २ समझाने बुझानें लगे ॥ १ ॥ समस्त जीवजन्तुगण अपने कर्मके हेतु शमादिगुण और रागादि रोषकृतकार्य करके परलोकमें बलात्कार शुभ और अशुभ फलकी प्राप्ति करतेहैं॥२॥ तुमभी पाप पुण्यरूपी कर्मकी फाँसीसे बँधी हुईहो, इसलिये स्वयं शोचे जानेके योग्य होकर तुम किसके लिये शोक करतीहो ? और कर्मानुसार फल पाय दीनहो किस दीनके ऊपर दया कर रहीहो;इस पानीके बबूलेकी तुल्य देहका कौन शोच करतीहो ? सो तुम हमें बताओ ॥ ३ ॥ यह तुम्हारे पुत्र कुमार अंगद जीवितहैं, तुम इनका लालन पालन करो, और इस समय तुम अपने स्वामी वालिकी परलोकके लिये उचित क्रियाका यत्न करो ॥ ४ ॥ प्राणियोंकी सद्गति कुछ नियत नहींहै; इसलिये पंडित गण इस लोकमें लौकिक शुभ कर्मोंको किया करतेहैं ॥ ५ ॥ जिन वानरेन्द्रके जीवन समयमें शत २ सहस्र अर्बुद २ वानर इनकी आशा बांध कर जीवन धारण करतेथे. यह वही वानरश्रेष्ठ इस समय कालकवलमें पतित होतेहैं ॥ ६ ॥ जब कि यह नीतिशास्त्र द्वारा राजकार्य देखकर साम, दाम, क्षमादि परायण होकर धर्मजितोंके मार्गको प्राप्त हुये, तुम फिर इनके लिये शोक क्यों करतीहो ? ॥ ७ ॥ हे निन्दारहितचरित वाली ! समस्त वानर गण तुम्हारे पुत्र अंगद और वानर पतिका समस्त राज्य, तुम्हारेही वशमें होगा, इसमें कुछभी संदेह नहींहै ॥ ८ ॥ इसलिये इन शोकसे संतापित अंगदजीको और सुग्रीवजीको कुछ आज्ञा दीजिये; तुम करके प्रेरितहो यह अंगद यहांका राज्य करें ॥ ९ ॥ यह अंगद पुत्र तुम्हारा विद्यमानहै इसीलिये तुम शोक न करो और वालिकी समस्त क्रिया इन अंगदको करनी चाहिये, क्योंकि इस समय इन सब कर्मोंका करनाही ठीक २ होगा ॥ १० ॥ वानरराज वालिका अग्निसंस्कार करकै अंगदका राज्याभिषेक कीजिये इसमें कुछ संदेह नहीं है. कि जब आप अपने पुत्रको सिंहासन पर बैठे देखैंगी तब अवश्यही शान्ति प्राप्त करेंगी ॥ ११ ॥ हनुमानजीके यह वचन सुनकर स्वामीके मरणसे अति दुःखित तारा वहां खडे हुये हनुमानजीसे बोली ॥ १२ ॥ अंगदकी समान शतपुत्रोंसे अधिक इन प्राण दिये

वीरश्रेष्ठ हमारे स्वामीका शरीर स्पर्श करना निःसंदेह हमारे लिये श्रेष्ठ है ॥ १३ ॥ स्त्री होनेके कारणसे हम सुग्रीव या अंगदजीकी स्वामिनी अथवा राज्य योग्य नहीं हो सकतीं इन हमारे स्वामीके पीछे अंगदके कनिष्ठ तात सुग्रीव ही समस्त राज्य कार्यके स्वामी होंगे ॥ १४॥ हे हनुमान ! हम अंगदको राज्य पर अभिषिक करें इस प्रकारकी बुद्धि करना कदापि कर्तव्य नहीं है क्योंकि पिताही पुत्रका बन्धु है माता बन्धु नहीं हो सकती ॥ १५ ॥

नहिममहरिराजसंश्रयात्क्षमतरम
स्तिपरत्रचेहवा ॥ अभिमुखहतवीरसेवि
तंशयनमिदंममसेवितुंक्षमं ॥ १६ ॥

वानर राजके आश्रय विना इस लोक वा परलोकमें हमारा मंगल कर और कुछ भी नहींहै इन सन्मुख खडे हुये निहत वीर करके सेवित इस शय्याकी सेवा करना हमारे लिये निःसंदेह अति श्रेयस्कर है ॥ १६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे एकविंशः सर्गः ॥ २१ ॥

द्वाविंशः सर्गः ॥

वीक्ष्यमाणस्तुमंदासुःसर्वतोमंदमुच्छवसन् ॥
आदावेवतुसुग्रीवंददर्शानुजमग्रतः ॥ १ ॥

मृत्युसेज पर पडे हुए वालिने चारों ओर निहारते २ मंद २ श्वासले अंगदके आगे खडे हुए सुग्रीवजीको दखा ॥ १॥ वालि विजय प्रात किये उन वानर वर सुग्रीवजीसे स्नेह सहित यह वचन बोला॥२॥हे सुग्रीव! पहले किये हुए रोषके कारण इस समय वा आगेको हमारे प्रति दोष बुद्धिका तुम परित्याग करदेना ॥ ३ ॥ हम दोनो भाइयोंमें एकवारही भायपनका सुख और राज्य सुख नहीं रहा वरन इसके विपरीत वैर भाव रहा विधाताने राज्यसुख हम तुमको एक साथ सुख भोगना नहीं लिखाथा ॥४॥ तुम इस समय इन वनवासी लोगोंके राजा होवो और हम इस समय यमपुरको जाते हैं इसमें अब कुछभी विलंब नहीं है॥५॥हम इस समय जीवन राज्य विपुल राज्य लक्ष्मी और आनंदित यश समस्त ही परित्याग करते हैं ॥ ६ ॥ हे वीर!

हम इस मरणावस्थामें जोकुछ कहते हैं वह दुष्कर होनेसे भी तुमको अवश्य करना चाहिये क्योंकि ऐसे समयकी बात सब कोई मानते हैं ॥ ७ ॥ सुख के योग्य और सुखसेही पालनकर बडे हुये बुद्धिमान् बालक अंगदको देखो कि जो रोताहुआ पृथ्वीपर पडाहै ॥ ८ ॥ सो हमारे प्राणसेभी अधिक प्यारे गुणवान् इस पुत्रको अपने पुत्रकी समान पालन करना, पहले जिस प्रकार हम इसके समस्त प्रयोजन सिद्ध करतेथे वैसेही अब तुम करते रहना ॥ ९ ॥ हे वानरेश्वर! जैसे प्रथम हम इसके सब प्रकारसे पिता, दाता, परित्राता, रक्षक और भयमें अभय देने वालेथे, वैसेही इस समय तुम हो, कारण कि पिता और पितृव्य समानही हैं ॥ १० ॥ तुम्हारी तुल्य पराक्रमवान् यह श्रीमान् ताराकुमार अंगद राक्षसोंके वध करनेंके समय तुम्हारे आगे २ चलेगा ॥ ११ ॥ यह तेजस्वी युवा तारापुत्र बलवान अंगद रणमें विक्रम प्रगट करकै हमारीही समान समस्त कार्य करैगा ॥ १२ ॥ और सुषेणकी पुत्री तारा सूक्ष्मार्थके निर्णय करने, वा उत्पाती कामोंका विचार करनेंमें बडी निपुण है ॥ १३ ॥यह साध्वी जो कुछ कहै, उसको तुम संशयरहित होकर करना, देखो! इस ताराकी सम्मति कभी अन्यथा न जाय ॥ १४ ॥ तुम निःशंकाचित्त होकर श्रीरामचन्द्रजीके कार्यकी साधना करना, यदि न करोगे तो अधर्म होगा तब अपनी अपमानता और धर्मभ्रष्ट होनेसे यह रामचन्द्रजी तुमको मार भी डालेंगे ॥ १५ ॥ हे सुग्रीव! यह दिव्यकाञ्चनीयमाला तुम पहरलो, इसमें अतिउत्तम विजयलक्ष्मी वास करती है, सो हम मरे हुयेभी इस मालाको पहरे रहैंगे तो इसकी श्री जाती रहैगी, इस कारण तुम इसको अभी धारण करलो ॥ १६ ॥ जब वालिनें भायपनके मारे स्नेह युक्त हो ऐसा कहा तब सुग्रीवजी हर्ष परित्याग करकै राहुसे ग्रसे हुये चन्द्रमाकी समान मलीन मूर्ति होगये ॥ १७ ॥ सुग्रीवजीनें स्थिरचित्तसे वालिके कहे हुये वचनोंके अनुसार कार्यकर उसकी आज्ञा लेकर वह काञ्चनीमाला पहरली ॥ १८ ॥ मृत्युके निकट पहुंचा वालि वह काञ्चनीमाला सुग्रीवको दे आगे खडे हुये अपने पुत्र अंगदसे स्नेहके वशहो कहने लगा ॥ १९ ॥ तुम प्रिय अप्रिय वचन सहते, देश कालके अनुसार सुख दुःख भुगतते इन सुग्रीवके वश होवो ॥ २० ॥ हे महाबाहो ! पहले हम जिस प्रकार

तुम्हारे अपराध करने परभी तुम्हारा लालन पालन करतेथे। सो यदि अबभी वैसेही अपराध करोगे तो सुग्रीव तुमको अधिक प्यार नहीं करेंगे इसलिये सब भांतिसे इन सुग्रीवजीकी सेवा करना ॥ २१ ॥ हे अरिन्दम ! तुम इनके अमित्र वा शत्रुके साथ न मिलना सुग्रीवही तुम्हारे ईश्वर और पालन करता हैं सो तुम शांत हो इनके वशमें रहना ॥२२॥ अब तुम इनसे अतिस्नेह करना और न शत्रुता क्योंकि यह दोनोंही महा दोषकी खानिहैं; इसलिये इन दोनोंके मध्यमें होकर तुम चलते रहना ॥२३॥ इस प्रकार कहते हुए बाणसे पीडित वालिके नेत्र दांत घूमने और निकल कर भयंकराकार होगये और उसका प्राण वायु निकल गया ॥ २४ ॥ फिर समस्त वानर और वानरपतिगण ऊंचे स्वरसे विलाप और परिताप करनें लगे ॥ २५ ॥ जब वानरनाथ वालि स्वर्गको चलागया तब किष्किन्धा नगरी और वहांकी समस्त फुलवाडियां व पर्वत शूने होगये ॥ २६ ॥ वानरश्रेष्ठ गन्धर्वगणोंका पराजय करनेवाला वालि महात्मा जब मारागया तब समस्त वानर गण प्रभाहीन होगये जिस महात्मा वालिनें गन्धर्वके साथ महायुद्ध कियाथा ॥ २७ ॥ उस गन्धर्वका नाम गोलभथा, उस महा बलवानसे पंद्रह वर्षतक विना दिन रात्रिमें विश्राम लिये वालिने घोर युद्ध किया ॥ २८ ॥ फिर सोलहे वर्षमें वालिनें उसको माराथा, कराल डाढवाले वालिनें उस दुर्विनीत गन्धर्वको मार कर ॥ २९ ॥ हमारा सब काम महा भयसे उद्धार कियाथा । हाय ! वह वालि क्यों मारागया ॥ ३० ॥ जिस प्रकार सिंहयुक्त महावनमें गोयूथपति मरजाय तब वहांपर गायें सुख नहीं पातीं ऐसेही वानरनाथ वालिके मरजानेंसे वानरगण किसी प्रकारसे सुख न पासके ॥ ३१ ॥

ततस्तुताराव्यसनार्णवप्लुतामृतस्यभर्तुर्वदनंसमीक्ष्यसा ॥ जगामभूमिंपरिरभ्यवालिनंमहाद्रुमंछिन्नमिवाश्रितालता ॥३२ ॥

तब तारा महादुःखके समुद्रमें डूबकर अपने मृतक स्वामीका मुखनिहार जैसे आश्रित लताछिन्नमहावृक्षको चिपट कर पृथ्वीमें गिरतीहै. वैसेही वालिको लिपटाय भूमिपर गिरी ॥ ३२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे द्वाविंशःसर्गः ॥ २२ ॥

त्रयोविंशःसर्गः ॥

ततःसमुपजिघ्रंतीकपिराजस्यतन्मुखम् ॥
पतिंलोकश्रुतातारामृतंवचनमब्रवीत् ॥ १ ॥

फिर तारा कपिराज बालिका मुख चुम्बन करती जगविख्यात अपने मृतक स्वामीसे कहने लगी ॥ १ ॥ हे वीरश्रेष्ठ! तुम हमारे वचन न सुनकर पथरीली वा दुःख देनेवाली पृथ्वीपर शयन कर रहे हो॥२॥हे वानर नाथ!हम जानती हैं कि पृथ्वी तुमको हमसे अधिक प्यारी है क्योंकि उसको चिपट-कर शयन कर रहे हो और हमसे बोलतेतक नहीं ॥३॥यह राम रूप विधि सुग्रीवके वश में होगया वह सुग्रीव आजही अपनी भार्यासे मिल जायगा इसलिये सुग्रीवही विक्रमवान् और साहसी जान पडताहै ॥ ४ ॥ जो बडे२ ऋच्छ और मुख्य२वानर गण बलवान् आपकी सेवा करतेथे उनका और शोक करते हुये अंगदका रोदन ॥५ ॥ और हमारा यह विलाप श्रवण करके तुम क्यों नहीं जागते हो हे वीर ? जिस पर तुम संग्रा-ममें मरकर शयन किये हो यह वह स्थलहै ॥६॥ कि जहां तुम्हारे हाथोंसे मरकर शत्रु गण शयन किया करतेथे हे विशुद्धबलयुक्त लोकोंके व युद्धके प्रियकारी हमारे प्यारे ॥ ७ ॥ हमारा आदर मान करने वाले हम अनाथ हैं सो तुम हमको छोडकर कहांचले जातेहो पंडित लोगों-को उचित है कि शूर पुरुषको अपनी कन्या न विवाहे ॥ ८ ॥ क्योंकि देखो शूरकी भार्या हम शीघ्र ही विधवा हुई हाय हमारा मानभी गया और अधिक स्थिर सुख भी विनाशको प्राप्त हुआ ॥ ९ ॥ हम इस समय अगाध विपुल शोक सागरमें डूब गई हम जानती हैं कि हमारा हृदय अत्यन्त कठिन और लोहेका बना हुआ है ॥ १० ॥ जो लोहेका बना हुआ न होता तो प्राण प्यारे स्वामीको मरा हुआ देखकर अबतक शत खंड होजाता हाय हमारे प्रिय स्वामी स्वभावसेही हमको प्रिय व सुहृद ॥ ११ ॥ संग्राम करनेमें पराक्रमवान शूर वहभी मृत्युको प्राप्त हुये जो नारी पति हीना है वह पुत्रवती भी होय तौभी उसे॥१२॥पंडित गण विधवाही कहते हैं चाहे उसको कितनाही धन धान्य

हो हे वीर! अपने हो अंगोंसे निकले रुधिरके घेरमें तुम सोते हो*॥१३॥ मानों वोर वधुओंके समान रंगवाले अपनी शय्यापरही शयन कियेहो। हे वानरनाथ! तुम्हारे अंगोंमें धूल और रुधिर जहां तहां लग रहा है॥१४॥ इसकारण हम अपनी दोनों बाहोंसे तुमको लिपट नहीं सकतीं; इस अति दारुण शत्रुतामें सुग्रीव कृतार्थ हो गये॥ १५ ॥ क्योंकि श्रीरामचन्द्रजी-के छूटे हुये एकही बाणसे जिसका भय दूर होगया, हम उसी हृदयमें ल-गे हुये बाणके कारण तुम्हारे अंग स्पर्श नहीं कर सकतीं ॥ १६ ॥ हाय क्या कष्ट है! कि तुमारे मरनें परभी हम तुमको हृदयसे न लगा स-कें। तारा इस प्रकारसे विलाप कर रहीथी कि नील वीरनें वालिके हृद-यसे बाण निकाला॥ १७॥ वह बाण इस भांति निकला जैसे गिरि गुहा-में टिका हुआ सर्प निकलता है, उस बाणके निकलनेंके समय प्रभाभी हुई॥ १८॥ जिस प्रकार अस्ताचलके ऊपर उदय हुई सूर्य नारायणकी द्युतिशोभायमान होती है। तत्पश्चात् वालिके सब आहतस्थानोंमें रुधिरका प्रवाह निकला॥ १९॥ जैसे धराधरसे तांबा और गेरूसे मिलकर जल धारा निकलती है, रणकी धूलमें लोटते-हुये अपने पतिको॥ २०॥ नेत्र वारिसे तारा धोती हुई, और सब अंगोंमें रक्त लगे मृतक पतिको देख२१॥ तारा पिंगल नेत्र निज सुत अंगदसे कहनें लगी कि हे बेटा! अंतकालके समयको प्राप्त हुये अपनें पिताकी अतिदारुण अवस्थाको देखो ॥ २२ ॥ जो शत्रुता बलात्कारसे इन्होंनें की यह उसी कर्मका फल है, हे पुत्र! प्रातः कालीन सूर्य भगवानके समान ज्वलित देह, और यमसदनको जाते हुये अपनें पिताजीको भली भांति देखलो॥ २३॥ हे पुत्र! तुम मान देनेवाले राजा अपने पिताको प्रणाम करो, ऐसा सुनकर व उठ पिताजीके चरणों-को ग्रहण कर॥ २४॥ और गोल दोनों बाहोंसे चरण थामकर कहा, कि मैं अंगदहूं जिस प्रकार पहले प्रणाम करनेंपर आप कहतेथे कि, दीर्घा-

---

* जहँ पिय तहीं सबै सुख साज॥ पिय विहीन सुरपुरको सुख सखि आवे कौने काज। पिया बिना धन धाम काम किमि जर जाओ यहराज॥ पियविन तिय चाहै सुख संपति परै तासु परगाज॥ विधवा होय सजावत तनुको लागत जाहि न लाज॥ तापर दुःख पड़ैगो अतिही जाय कहां सो भाज॥ मिश्र यही कर्त्तव्य सबनको राम भजो शिरताज॥ ना हित पर मँझ धार सिन्धु विच डूबहि सकल समाज॥

यु होवो ' यह कहकर अब आशीर्वाद क्यों नहीं देते? फिर तारानें कहा! कि सिंहसे मारे हुये वृषभको देख बच्चा सहित गायके समान मृत्युको प्राप्त हुये तुम्हारे निकट अपने पुत्रके सहित हम बैठो हैं॥२५॥२६॥ तुम संग्राम यज्ञ पूर्णकर चुके हो. इस समय पत्नीके विना रामके अस्त्ररूप वारि द्वारा तुम्हारा ज्ञान स्नान किस प्रकारसे पूर्णहुआ॥२७॥देवराज इन्द्रनें संग्राममें सन्तुष्ट होकर जो सुवर्णकी माला तुमको दीथी, वह माला इस समय हम तुमको धारण किये नहीं देखती इसका कारण क्या है? ॥ २८ ॥ हे मानद चारों ओर घूमते हुये सूर्यकी प्रभा जिस प्रकार अस्ताचलको नहीं परित्याग करती है, वैसेही प्राण निकल जानेंपरभी राजश्री आपको नहीं छोडती है ॥ २९ ॥

नमेवचः पथ्यमिदंत्वयाकृतंनचास्मिश
क्ताहिनिवारणेतव ॥ हतासपुत्रास्मिहतेन
संयुगेसहत्वयाश्रीर्विजहातिमामपि ॥ ३० ॥

हाय! हमनें हितकारी जो वचन कहेथे उनको सुनकरभी आपने ग्रहण नहीं किया, इस समय युद्ध स्थलमें निहत आपके सहित पुत्रवती हमभी विनाशको प्राप्त हुई! हाय इस समय लक्ष्मी देवी हमको परित्याग कर गई ॥ ३० ॥ इत्यार्षे श्रीवाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रयोविंशः सर्गः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशः सर्गः ॥

तामाशुवेगेनदुरासदेनत्वभिप्लुतांशोकमहार्णवेन ॥
पश्यंस्तदावाल्यनुजस्तरस्वीभ्रातुर्वधेनाप्रतिमेनतेपे ॥ १

अत्यन्त वेगशाली अति कठिनसे तरने योग्य अतुल शोक समुद्रमें डूबती हुई ताराको विलाप करते देखकर वालिके छोटे भाई सुग्रीव अपने भ्राताके मारे जानेंसे अत्यन्त सन्तापको प्राप्त हुये ॥ १ ॥ ताराको रोती हुई निहार मनस्वी सुग्रीवजी अत्यन्त दुःखित और खिन्न मनहो सब नौकर चाकरोंके साथ धीरे २ श्रीरामचन्द्रजीके समीप चले ॥ २ ॥ सुग्रीवजी वहां पहुँचकर उग्र भुजंग समान बाण युक्त शरासन धारी शा-

स्त्रोंमें कहे हुये लक्षणों करके सहित यशस्वी रामचन्द्रजीको बैठे हुए देखकर बोले ॥ ३ ॥ हे नरनाथ ! आपनें जो प्रतिज्ञा कीथी, उसको तो आपने कार्य द्वारा पूरा करदिया, परन्तु अब हम इस निंदनीय जीवनके भोग करने की इच्छा नहीं करते ॥ ४ ॥ वालि हमारे भाई के मरजानेंसे यह तारा अंगद, और पुरवासी लोग दुःखित व संतप्त होकर रोदन कर रहे-हैं इसलिये राज्यके लाभ करनेंको हमारा मन सुख शान्ति प्राप्त नहीं करता ॥ ५ ॥ क्रोधके कारण, वैर अमर्षके हेतु, धर्षणा और अपमानता होनेंसे पहले भ्राताका वध हमारी मतिके अनुकूलथा । परन्तु हे इक्ष्वाकु श्रेष्ठ! वानरराज वालिके मारे जानेंसे इस समय हम अत्यन्तही तीव्रतासे संतापित होरहेहैं ॥ ६ ॥ उस पर्वतश्रेष्ठ ऋष्यमूक शैलपर वासकर, जैसे तैसे जीविका निर्वाह करना हम अच्छा समझते हैं, परन्तु भइयाको मारकर स्वर्ग प्राप्त होनाभी हमें अच्छा नहीं लगता ॥ ७ ॥ इन मतिमान महात्मानें हमसे कहाथा, कि हम तुमको मारनेंकी इच्छा नहीं रखते हैं; तुम जहां इच्छाहो वहां चले जाओ, यह उनके वचन उन्हीं महात्माके योग्यथे । परन्तु यह हमारे वचन और भ्राताके मारनेंका कर्म करानें वाली दुष्ट बुद्धि हमारे लायक हुई. कि हम नीचनें उनको मारही डाला ॥ ८ ॥ काम भोगमें अत्यन्त शक्तिमान हमनें भ्राता होकर भी राज्य और उसके सुखका, व भ्राताके वधरूप ! दुःखका अंतर न विचारा ! हाय ! महागुण संपन्न भाईका वध किस प्रकारसे सम्मत और रुचिकर हो सकताहै ॥ ९ ॥ हाय ! अपनें बडेपनका उल्लंघन होना विचार हमारा वध करनेंको, उन महात्मा की इच्छा नथी;परन्तु भ्राताके प्राण हरनें वाले हम नीचनें बुद्धि की दुष्टताके हेतु, निःसंदेह उस महात्माको उल्लंघन करदिया ॥ १० ॥ जब कि वालि युद्धमें हमको मारना प्रारंभ करता और हम जब भागकर रोया और चिल्लाया करते, तब वह हमसे समझा बुझाकर कहते कि जाओ,ऐसा कार्य फिर मत करना परंतु हमको वध नहीं करते ॥ ११ ॥ महात्मा वालिने अपनी श्रेष्ठताकी बडाई; और भायपनकी रक्षा की परंतु हमनें निःसंदेह काम क्रोध और वानरता दिखाईहै ॥ १२ ॥ देवराज इन्द्रजी-

विश्वकर्माके पुत्र विश्वरूप * ब्राह्मणको वध करके जिस प्रकार पापको प्राप्त हुएथे हमनेंभी भ्राताका वध कर वैसेही; यह दीनताके अयोग्य; तर्जनीय, दर्शनके अयोग्य, कामनाके अयोग्य, भ्रातृवधरूप, पाप बटोरा ॥ १३ पृथ्वी, जल, वृक्ष, और स्त्रियोंनें इन्द्रजीके उस पापको ग्रहण कियाथा, परंतु हम वानर जातिका पाप कौन ग्रहण करनें की इच्छा करेगा ॥ १४ ॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! इस प्रकारका अयुक्त कुल नाशक कर्म करके हमतो प्रजा गणोंका सन्मान और युवराज्य पदवीके भी योग्य नहींहैं; फिर भला, राज्य प्राप्तिके योग्य हम कैसे हो सकतेहैं?॥१५॥वृष्टिसे वर्षे हुये जलका वेग जिस प्रकार नीचेही की ओरको गिरताहै, वैसेही अतिनीच पापकारी; लोकोंके अपकार करनें वाला हमारा यह महान् शोक वेग हममें स्थिर हुआ है ॥ १६ ॥ सहोदर भ्राताका मारा जानाही जिसके शरीरके अन्यान्यभाग, व लोमहैं; और सहोदर भाईके विनाशसे उत्पन्न हुआ संताप जिसके हाथ, नेत्र, शिर, और दंतहैं, वह मतवाला पाप मय महाहाथी, नदीके किनारेकी समान हमको वोझसे गिराये देताहै॥१७॥हे पुरुष श्रेष्ठ! पीला सुवर्ण अग्निके मध्यमें तपाये जानेंसे नौसादरके द्वारा जिस प्रकार मैलको परित्याग कर देताहै. वैसेही इस असह पापके द्वारा जन्म जन्मांतरोंमें बटोरा हुआ हमारा पुण्य दूर होरहाहै ॥ १८ ॥ हे रामचंद्रजी ! अंगदजीके शोक संताप करनेंसे महा वलवान् वानर श्रेष्ठ गणोंके इसकुलका आधा भागतो नाशको प्राप्त हुआ, और आधा भाग हमारे पास जीवितरहा, ऐसा हम विचार करतेहैं. ॥ १९ ॥ हेवीर वर ! पुत्रका होना सुलभहै, अपने सब सुजन सुलभ वशमें हो सकतेहैं, परन्तु अंगदकी समान गुणवान पुत्र कहां प्राप्त होगा? क्योंकि यह रो रकर अपने प्राण दे रहेहैं और ऐसा देशभी कहीं नहीं हैं; जहांपर हम अपने उन भ्राता वालिको प्राप्त कर सकेंगे ॥ २० ॥ इस समय

* जब विश्वरूपको इन्द्रनें अपना पुरोहित किया, और पीछे उसे राक्षसोंसे मिला देख मारडाला तब इन्द्रको ब्रह्म हत्या लगी तब ब्रह्माजीनें उसे चार जगह बांटा, पृथ्वीको दिया जिस्से यह जहां तहां ऊसर होगई, वृक्षोंको एक भाग दिया जो गोंद रूप हुआ कीकडका गोंद छोड बाकी गोंद अशुद्धहैं,जलको एक भाग दिया जो काई रूपहै, एक भाग स्त्रीको दिया जो महीनेके महीने रजस्वला होकर छूनेंके अयोग्य होती हैं ।

वालिके विना हम जीवन धारण नहीं कर सकतेहैं। हां तारा यदि जीवित रहैं, तो वह केवल अंगदका प्रतिपालन करनेंहीके लिये वचेंगी। परन्तु पुत्रके विना वहभी कदापि न जियेंगी, यही हमारा स्थिर निश्चयहै॥ २१॥ इसलिये हम इस पापी जीवनको रखनेंकी इच्छा कदापि नहीं करते। हम अपने भ्रातावालि और अंगदजीसे मित्रताईकी इच्छा करके अग्निमें प्रवेश करेंगे, और यह समस्त वानर गण आपकी इच्छामें रह कर सीताजीको खोजेंगे॥ २२॥ हेमनुजेन्द्रनंदन! हमारे विद्यमान न रहनेंसेभी, यह वानर लोग आपके समस्त कार्यका साधन करेंगे।सो हम कुल नाशक जीवन धारण करनेंके अयोग्य पाप करनेंवालेको आप मरनेकी आज्ञा दीजिये॥ २३॥ सुग्रीवजीनें अत्यन्त कातर हो कर जव इस प्रकारसे कहा तव शत्रुओंके तपानें वाले श्रीरामचंद्रजी अश्रु पूर्ण नेत्र होकर एक मुहूर्ततक उदासरहे॥ २४॥ उस समय पृथ्वीकी समान क्षमावान्. भुवनके रक्षा करता श्रीरामचंद्रजी, शोकके मारे उत्सुक हुई अतिशय दुःखमें डूबी रोतीहुई ताराके प्रति वारंवार दृष्टि करनें लगे॥ २५॥ तव मुख्य २ मंत्रियोंनें उदार वुद्धि, कपिराज पत्नी सुन्दर नेत्रवाली ताराको वालिकी देहसे लिपटे हुये पडेदेख उसको पृथ्वीपरसे उठाया॥ २६॥ जव मंत्रीलोग पतिके निकटसे उसको लिये आतेथे. तव तारा हाथ पैर छट पटाकर पतिके निकट जानेकी इच्छा करनें लगी; और जव मंत्री उसको श्रीरामचंद्रजीके निकट लेही आये, तव अपनें तेजसे दीप्तिमान दिवाकरकी समान श्रीरामचंद्रजीको देखा॥ २७॥ मृग नयनी तारा, सुन्दर नेत्रवाले, पहलेकभी न देखे हुये सर्व लक्षण सम्पन्न पुरुष श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजीको देखकर यह वही रघुवीर रामचंद्रजीहैं, यह जानती हुई॥ २८॥ अति दुःखित तारा उन दुर्द्धर्ष इन्द्र तुल्य पराक्रमवान महानुभव श्रीरामचंद्रजीके निकट आरत और विह्वल होकर शीघ्र जा पहुंची॥२९॥शोकके मारे चंचल स्वभाव सम्पन्न मनस्विनी तारा शुद्धभाव युक्त, रणस्थलमें उत्कर्ष कर्म करनें वाले श्रीरामचंद्रजीके समीप कहनें लगी॥ ३०॥ आप दुर्द्धर्ष, आपके गुण किसीके प्रमाण करनेंके योग्य नहीं, इन्द्रियोंको वशमें रखनें वाले; उत्तम धर्म युक्त सावधान उदार कीर्ति, पृथ्वीके तुल्य क्षमा करनें वाले और दिव्य देह अरुणनयन॥ ३१॥ आपके अंग अतिशय दृढ आप महा वलवान् धनुष वाण धारण करनें वाले

दिव्य शरीर धारी लक्ष्मी युक्त राज्य छोड अपने अंगसे उत्पन्न मंगल कर्म युक्तहो ॥ ३२ ॥ आपनें जिस बाणसे हमारे प्राण सम प्यारे पति वालिको माराहै, उसी बाणसे आप हमको मार डालिये, इस बाणसे मरनेंके कारण हम उनके निकट पहुंच जांयगी, क्योंकि हमारे प्राणपति हमारे विना दूसरी स्त्रीसे रमण नहीं करते ॥ ३३ ॥ हे अमल कमलदल नेत्र! हमारे प्राणनाथ स्वर्गमें पहुंच हमको न देखकर अनेक प्रकारके फूल मणि और मुक्ता आदिकोंसे जूडागंधे विचित्र अप्सराओंकोभी भजना न करेंगे॥३४॥ हे वीर ! आप जिस प्रकारसे जानकीके विरहमें दुःखितहो हिमालयके मनोहर निम्न देशमेंभी रमण नहीं करते वैसेही हमारे विना वालि स्वर्गमें शोकके मारे निःसंदेह पीले पड जांयगे ॥ ३५ ॥ आप जानतेहैं कि स्त्रीके विना कुमार पुरुष दुःखको प्राप्त होताहै, सो यह जानकर आप हमको मार डालिये क्योंकि फिर वालिको हमारे न देखनेंका दुःख न मिलैगा ॥ ३६ ॥ हे राज पुत्र ! आप महात्मा होनेंसे कदाचित् विचार करें कि स्त्रीके मारनेंसे हमको स्त्री हत्यासे उत्पन्न पाप लग सकताहै, परन्तु यह पाप आपको कदापि नहीं लग सकेगा क्योंकि इस तारा और वालिकी आत्माको आप एकही समझिये, इसलिये आपको स्त्री वध करनेंका पाप नहीं लगेगा३७॥ आप जानतेहैं कि शास्त्रोंके प्रयोग और वेदोंके वचनोंसे स्त्री और पुरुषकी आत्मा अलग २ नहीं हो सकतीहै इसलिये ज्ञानी लोग कहा करतेहैं कि स्त्रीके दानसे अधिक लोकमें और कोई दान नहींहै ॥ ३८॥ हे वीर! आप धर्मको विचार हमको संहार वालिको स्त्रीका दान कीजिये जिस्से कि आपको स्त्री दान करनेंका फल प्राप्त होगा और स्त्री हत्याका पाप फिर किस प्रकारसे आपको लग सकताहै॥ ३९ ॥ हम अनाथाहैं ! इस्से अतिपीडित अनाथ पतिके आलिंगनसे छुटाकर और जगह ले आई गई, और-आरतैहैं सो हमको वध न करना आपका बडा अनुचित कर्महै ! क्योंकि हम मातंग सम विलास गामी, वानर श्रेष्ठ बुद्धिमान् ॥ ४० ॥ इन्द्रकीदी हुई सुवर्णकी माला धारण किये हुये वालिके विना जीवन धारण नहीं करसकती महात्मा विभु श्रीरामचंद्रजीसे जब ताराने ऐसा कहा तब श्रीरामचंद्रजी उसको समझाते हुए हितकारी वचन बोले ॥ ४१ ॥ हे वीरभार्यै! तुम उदास न होवो यह सब लोक ब्रह्माजीके बनाये हुए हैं । यहभी जानलो

सवही कहतेहैं कि समस्त सुख दुःख संयोग वियोग, यह सब ब्रह्माजीही करतेहैं ॥ ४२ ॥ इन तीनों लोकोंकी सृष्टि करके ब्रह्माजीनेंही इनकी सब विधि नियतकीहै, सो सब लोक उस विधिकेही वशमें रहतेहैं और किसी प्रकारसेभी उस विधिका उल्लंघन करनेंको समर्थ नहीं होते, जब तुम्हारा पुत्र युवराज पदवीको प्राप्त होगा, तिस्से तुम फिरभी वालिकी संयोग जनित प्रीतिको प्राप्त होगी और सुख भोग करती रहोगी ॥ ४३ ॥

धात्राविधानंविहितंतथैवनशूरपत्न्यःपरिदेवयंति ॥
आश्वासितातेनमहात्मनातुप्रभवयुक्तेनपरंतपेन॥
सावीरपत्नीध्वनतामुखेनसुवेषरूपाविररामतारा॥४४

विधाताने शूरलोगोंका विधानही इस प्रकारसे निर्माण कियाहै; तुम समझ लोकि वीरोंकी स्त्रियां कभी विलाप नहीं करतीं प्रभाव शाली और परवीरके हनन करने वाले महात्मा श्रीरामचंद्रजीने जब इस प्रकारसे समझाया तब सुवेश धारिणी वीरनारी तारानें विलाप करना छोड दिया ॥ ४४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धा-कांडे चतुर्विंशः सर्गः ॥ २४ ॥

पंचविंशः सर्गः ॥

ससुग्रीवंचतारांचसांगदांसहलक्ष्मणः
समानशोकःकाकुत्स्थःसांत्वयन्निदमब्रवीत् ॥ १ ॥

सुग्रीव,तारा,और अंगद इन समान शोक सम्पन्न को उन लक्ष्मण सहित श्रीरामचंद्रजी सबको समझानेके योग्य यह वचन बोले ॥ १ ॥ जिस्से मृतक जनका भला होवे तुम सबको वही करना चाहिये इसलिये शोक और संतापसे कुछ प्रयोजन नहीं अब तुम सब वालिकी परलौकिक क्रियाओंको करो ॥ २ ॥ लोकाचारकी रीतिको अवश्य करना चाहिये, इसलिये रो पीट-कर तुम सबनें लोकरीतको पाला किन्तु काल उल्लंघन करनेके लिये तुम्हारे किसी कर्मका साधन न होगा क्योंकि कालको उल्लंघन करनेंमें कोई समर्थ नहीं हो सकता ॥३॥ नियति अर्थात् कालही लोकके उत्पन्न करनेका का-रण है कालही कर्म साधन करनेका कारणहै और कालही सब प्राणियोंके

नियोग करनेमें कारण है ॥४॥ कोई भी किसीका कर्त्ता नहींहै कोईभी किसीके नियोग करनेमें ईश्वर नहींहै सब लोक पहले किये हुये कर्मोंके वशहो स्थिति कर रहेहैं ॥५॥ काल रूप ईश्वर कालको अर्थात् जन्म मरणादिरूप व्यवस्थाको उल्लंघन नहीं कर सकता भगवान् काल कभी हीन नहीं होते पहले किये हुये कर्म प्राप्तको कोई जीव देवतादिकोंको भी उल्लंघन नहीं कर सकता अर्थात् जो उत्पत्ति योगके से उत्पन्न होताहै जो नष्टवानहै सो नष्ट होजाताहै ॥ ६ ॥ काल किसीसे बंधुता नहीं रखता अर्थात् काल प्राप्त होनें पर सबही को संहार करता है कालका हेतु नहीं कालके ऊपर किसीका पराक्रम नहीं चल सकता अर्थात् महा पराक्रम शाली पुरुष भी कालको प्राप्त हो मर जाताहै काल किसीसे मित्र या जातिका सम्बन्ध नहीं रखता और कालहीके कारणसे काल किसीके वशमें नहीं रहता है ॥ ७ ॥ धर्म अर्थ और काम कालके परिपाक स्वरूप होकर काल चक्रके आधीन हो रहे हैं सो इसको विवेक वान जन देखते रहते हैं * ॥ ८ ॥ यह वानर राज वालि साम, दान, और अर्थके संयोगसे पवित्र क्रिया फलको प्राप्त यहांसे अपनी प्रकृतिमें चला गयाहै ॥ ९ ॥ महात्मा वालिनें काम धर्मको प्राप्त होकर स्वर्गको लाभ कियाहै, इसलिये निज धर्मसे संयोग होनेंके हेतु उसनें निःसन्देह जय पाईहै ॥ १० ॥ वानरराजवालि जिसको प्राप्त हुआहै; वह सर्वोपरि श्रेष्ठ कालहै, इसलिये संताप करनेंका कुछ प्रयोजन नहींहै ॥ इस समय कालोचित कर्तव्य कर्म तुमको करनें चाहिये ॥ ११ ॥ जब श्रीरामचंद्रजी यह वचन कहचुके तब परवीर घाती लक्ष्मणजी चेतना रहित वानर प्रभु सुग्रीवसे बोले ॥ १२ ॥ हे सुग्रीव ! तुम तारा और अंगदके साथ इस समय वालिके प्रेत कार्यकी क्रिया आरंभ कर पहले दाह कर्म निर्वाह करो ॥ १३ ॥ नौकर चाकरोंको आज्ञादो कि वह वालिकी दाह क्रिया करनेके लिये सूखे बहुत सारे दिव्य, चंदनादि काष्ठ ले आवें ॥ १४ ॥ तुम इस समय दीन अंगदको समझाओ बुझाओ तुम स्वयं इस समय मूढ बुद्धि न करो, और इस समय यह पुरी अपनेही आधीन जानो ॥ १५ ॥ इस समय, माला, और विविध प्रकारके वस्त्र, घृत तेल, और गन्धादि, जिस २ वस्तुका प्रयोजनहो वह सब अंगद

* तो पै काल अचानक टूटैगा (सावित्री सत्यवान) ॥

लावें ॥ १६ ॥ हे सचिव तार! तुम शीघ्र जाकर शिविका ले आओ शीघ्रता करना इस समय विशेष भांतिसे गुणका कार्य जानना (अर्थात् शिविका शीघ्रले आओगे तो अच्छा होगा॥१७॥ शिविकाको वहन करनेंके योग्य वानर गण बलवान वालिको उठानेंके लिये तैयार होवें ॥ १८ ॥ सुमित्राजीके आनंद वढानें वाले, परवीर घाती लक्ष्मणजी सुग्रीवसे यह कहकर अपने भाईके निकट खडे रहे ॥ १९ ॥ सचिव श्रेष्ठतार, लक्ष्मण-जीके यह वचन सुनकर शिविका लानेंके लिये शीघ्रतासे गुहामें प्रवेश करता हुआ॥ २० ॥ वह तार उसके उठानेंके योग्य शूर वानर गण करके उठाई हुई पालकीको लेकर फिर उस स्थानमें आया जहां श्रीरामचन्द्र-जीथे ॥ २१ ॥ वह पालकी बहुतही उत्तमथी, उसमें वैठनेंके लिये अच्छे२ आसन बनेथे, यह दिव्य और रथके तुल्यथी। उत्तम चित्रित काम इसमें किये गयेथे, पक्षियोंके आकार वन रहेथे, ॥ २२ ॥ वह सुघटित चित्रित पैदल सिपाहियोंसे भूषितथी, सिद्ध लोगोंके विमान की समान उसमें जा-लिये और झड़ोखे लग रहेथे, और प्रवेश करनेंके लिये सुन्दर द्वार वनेथे उसके सबही अंग सुडौलथे; वह वडी लंवी चौडीथी; कारीगरोंनें उसको काठका बनायाथा, और शोभाके लिये उसके भीतर एक क्रीडा पर्वत भी वन रहाथा, शिल्पियोंनें उसमें अपनी अति महीन, मनोहर कारीगरी दिखाईथी॥२३॥२४॥ बहु मूल्यवान भूषण व हार और चित्र विचित्र फूलोंके धरनेंसे वह शिविका शोभितथी, वन व कन्दरादिक सबही उसमें रचीगई-थीं, रक्त चंदनके कामसे वह सब जगह सजाई गईथी ॥ २५ ॥ पद्मादि पुष्पोंके हजारों हार उसमें टंग रहेथे, और लटक रहेथे, इस्से वह प्रातःकालीन सूर्य नारायणके समान प्रकाशित हो रहीथी ॥ २६ ॥ ऐसी शिविका अवलोकन करकै श्रीरामचन्द्रजीनें लक्ष्मणजीसे कहा कि शीघ्र वालिको इस शिविका अर्थात् (पालकी) पर चढाकर इसका प्रेत कार्य व दाह कार्य कराया जाय ॥२७॥ अंगदके सहित सुग्री-वजीने रोते २ वालिको उठाय उस पालकी पर लिटाया ॥ २८ ॥ गतप्राण वालिको विविध भांतिके उत्तमहार, वस्त्र, पुष्प, और गहनोंसे स-जायकर उस शिविका पर चढाया ॥ २९ ॥ वानरराज सुग्रीवजीनें यह अनुमतिकीथी कि हमारे भाई वालिकी क्रिया विधि विधानसे की जाय,उ-

समें किसी प्रकारका भेद न पडनें पावे॥ ३० ॥ विविध भांतिके बहुत सारे रत्नोंकी वखेर करते २ वानर गण आगे २ चलें, और उनके पीछे २ शिविका चले ॥ ३१ ॥ हे वानर गण ! जिस प्रकारसे पृथ्वीमें राजा लोगोंकी महान धन सम्पत्ति देखी जाती है, वैसेही हमारे भाई बालिकी सत्क्रियाका निर्वाह होवै ॥३२॥ ऐसी आज्ञाको प्राप्त कर तार आदि वानर अंगदजीको आगे लेकर, जैसा सुग्रीवजीनें कहाथा वैसेही क्रिया करनेंका प्रारंभ करनें लगे, जैसे महाराजाधिराजोंकी क्रिया की जाती है ॥ ३३ ॥ सब वानर गण रोते चिल्लाते २ पुकारते अपने परम बन्धु स्नेही मित्रके कारण चले जातेथे। तिनके पीछे वानरियें जोकि वालिके वशमें थीं चलीं ॥ ३४ ॥ जिनका प्राणपति मरगयाथा,ऐसी तारा इत्यादिक वानरी गण "वीर! वीर! प्यारे!प्यारे! " शब्द करके रोदन करनें लगीं ॥ ३५ ॥ वह सब करुणा भरे शब्दसे रोते२ पीछे२चलीं उन वानरियोंके रोने और चिल्लानेंके शब्दसे उस वनमेंके मानों३६॥सब वन और पर्वत रोदन करनें लगे, इस प्रकारसे गमन कर पर्वतके नीचे बहती हुई नदीके तीरमें कि जहांसे जल निकटहीथा ॥३७॥ ऐसे निर्जन स्थानमें वनचारी वानरोंने चिता बनाई, उन वानर श्रेष्ठोंनें अपने कन्धोंसे शिविका चिताके निकटही उतार दी ॥ ३८ ॥ और शोकके मारे व्याकुल हो सबके सब एकान्तमें खडे हो रहे, तब तारा अपने पतिको शिविका पर पडा हुआ देखकर ॥ ३९ ॥ उसका शिर अपनी गोदीमें रखकर महा दुःखित हो विलाप करनें लगी । हा वानर महाराज! हा हमारे प्यारे! ॥ ४० ॥ हा महाबाहो! हा हमारे प्रिय! तुम हमको देखो! यह सब वानरगण शोकसे पीडित हो रहे हैं, सो तुम इन सबको क्यों नहीं देखते हो? ॥ ४१ ॥ हे मानद! यद्यपि प्राण छूट गये हैं परन्तु तौ भी मानो तुम्हारा मुख हर्षितही होरहा है और जीवितकी समान अस्त होते हुये सूर्यकी भांति जान पड़ता है ॥ ४२ ॥ हे वानर राज! यह रामरूपकाल तुमको परलोकमें ले जानेंके लिये खेंच रहा है, इन रामचन्द्रजीनें रणस्थलमें एकही बाणको चलाय, इन सब वानरियोंके सहित हमको विधवा कर दिया ॥ ४३ ॥ हे राजेन्द्र! यह समस्त वानरियें झपटकर चलना नहीं जानतीहैं, यह पैदलही, इतनी दूर दौडी चली आई हैं, सो क्या इनको तुम नहीं देखतेहो? ॥ ४४ ॥ हे कपि श्रेष्ठ! यह सब चन्द्रवदना भार्या इष्ट

चाहनें वाली हैं, सो तुम इनको और सुग्रीवको क्यों नहीं देखते हो४५॥ हे राजन्! यह तारा इत्यादि महिषी गण सचिव लोग और पुरवासी तुमको घेरे हुये विषादित होरहे हैं सो तुम इनको क्यों नहीं देखते॥४६॥ हे शत्रुनाशक! आप सब मंत्रियोंको विदा दीजिये; फिर हम तुम सब मिलकर कामसे मत्तहो यहां विहार करेंगे ॥ ४७ ॥ पतिशोकसे व्याकुल हुई तारानें जब इस प्रकारसे विलाप किया, तब शोकसे आरत हुईं, और वानरियोंनें उसको उठाया ॥ ४८ ॥ फिर सुग्रीवजीके साथ अंगदजीनें रोते२ शोकके मारे व्याकुल इन्द्रिय होकर वालिको चिताके ऊपर धर दिया ४९॥ तिसके पीछे विकलेंद्रिय अंगदजीनें विधि पूर्वक लंबे मार्गमें गमन करनें वाले अपने पिता वालिको अग्नि प्रदानकर उनकी प्रदक्षिणा की५०॥ वानर श्रेष्ठगण विधि पूर्वक बालिका सत्कार करकै जल क्रिया करनेंके लिये पवित्र और निर्मल जलवाली नदीपर गये ॥५१॥वहां पहुँच अंगदजीको आगेकर सुग्रीव तारा इत्यादि सबही वालिके अर्थ जल देनें लगे ॥ ५२॥ महा बलवान् श्रीरामचंद्रजीनें सुग्रीवहीकी समान शोककर उनकेही साथ दीन भावसे वालिका प्रेतकार्य कराया ॥ ५३ ॥

शूरोथतंवालिनमग्र्यपौरुषंप्रकाशमिक्ष्वा
कुवरेषुणाहतम् ॥ प्रदीप्यदीप्ताग्निसमौ
जसंतदासलक्ष्मणंराममुपेयिवान्हरिः ॥ ५४ ॥

फिर अति बलवान् श्रीरामचंद्रजीके एक बाणसे निहत प्रदीप्त अग्नि तुल्य तेजस्वी वालिको अग्नि द्वारा प्रदीप्ति और दग्ध करके सुग्रीवजी श्रीराम लक्ष्मणके निकट आये ॥५४॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे पंचविंशः सर्गः ॥ २५ ॥

षड्विंशः सर्गः ॥

ततःशोकाभिसंतप्तंसुग्रीवंक्लिन्नवाससम् ॥
शाखामृगमहामात्राःपरिवार्योपतस्थिरे ॥ १ ॥

वालिकी दाह क्रियाकर शोककी आगसे संतापित हुए उदास मन सुग्रीवजी जब रामचंद्रजीके निकट आये, तब बडे २ वानर चारोंओरसे

उनको घेरकर खडे हुए ॥ १ ॥ सब वानर लोग महाबाहु सरलतासे कर्म करनें वाले श्रीरामचंद्रजीके निकट, ब्रह्माजीके समीपवर्ती ऋषियोंकी समान हाथ जोडे खडे रहे ॥ २ ॥ फिर तरुण सूर्यकी समान लाल मुख वाले सुवर्णके पर्वतकी तुल्य पवनपुत्र हनुमानजी हाथ जोडकर बोले ॥३॥ हे श्रीरामचंद्रजी ! आपके प्रसादसे इन सुग्रीवजीनें बडे २ दांत वाले बल और ऐश्वर्य सम्पन्न महात्मा वानर लोगोंका यह पितामहादिकोंका राज्य प्राप्त किया ॥ ४॥ हे प्रभो! आपही महात्माकी कृपा हुई जो यह दुष्प्राप्य राज्य इन्हें मिला, इसलिये अब यह आपकी आज्ञा पाय अपनी सुन्दर किष्किन्धा नगरीमें प्रवेशकर ॥ ५ ॥ सब सुहृद् गणोंके साथ समस्त कार्य सम्पन्न करेंगे फिर वह विविध भांतिकी सुगन्धि और औषधियोंसे विधि विधान सहित स्नान कर ॥ ६ ॥ रत्न मालादि द्वारा भली भांतिसे आपको पूजेंगे, सो इसलिये आप कृपा करके इस रमणीक गिरि गुहामें बसी किष्किन्धापुरीको चलिये ॥ ७ ॥ और स्वामी संबंध बांधकर इन सब वानरोंको हर्षित कीजिये शत्रु दमनकारी खरारी श्रीरामचंद्रजीसे जब हनुमानजीनें ऐसा कहा तो ॥ ८ ॥ अति बुद्धिमान वाक्य विशारद श्रीरामचंद्रजी हनुमानजीसे बोले कि हे साधो ! हम चौदह वर्षतक ग्राम या नगरमें ॥ ९ ॥ प्रवेश नहीं करेंगे, क्योंकि हमको पिताजीकी ऐसीही आज्ञाहै और हम उस आज्ञाके वशहैं। उस समृद्धि शाली दिव्य गुहामें वानर श्रेष्ठ सुग्रीव ॥ १० ॥ प्रवेश करें और तुम सब शीघ्रही विधि पूर्वक उनको राज्यपर अभिषेकित करो श्रीरामचंद्रजीनें हनुमानजीसे ऐसा कह फिर सुग्रीवसे कहा ॥ ११ ॥ कि तुम लोकाचारके जाननें वालेहो; इसलिये इन बल विक्रमशाली वीर अंगदको युवराज पदवी देदेना ॥ १२ ॥ यह तुम्हारे बडे भाई वालिका पुत्रहै विक्रम शालीभी तुम्हारी समानहै; इसलिये उदार आत्मा अंगद सब भांतिसें युवराज पदवीके योग्यहैं ॥१३॥ हे सौम्य ! जिसमें वर्षा होतीहै ऐसा जो चौमासाहै, सो उसमें जलका वर्षानें वाला यह श्रावण मास पहलाहै ! ॥ १४ ॥ इसलिये इस समय सीताजीके खोजनेंकी तैयारी नहीं होगी इसलिये तुम अपनी पुरीमें प्रवेश करो; और हम लक्ष्मणजीके सहित इस पर्वत पर वास करतेहैं ॥ १५ ॥ हे सौम्य ! यह गिरिगुहा पवनयुक्त, मनोहर, विशाल, जलयुक्त, और बहुत

सारे कमल जिस नीरमें खिले हुए ऐसे जलाशयोंसे शोभितहै, इसलिये यह सब भांतिसे हमारे वास करने योग्यहै ॥ १६ ॥ जब कार्तिक मास लगै तब तुम रावणका नाश होनेंके लिये यत्न करना हे सौम्य ! इसलिये अब तुम अपनी पुरीको चले जाओ ॥ १७ ॥ तुम राज्यपर स्थापित होकर सुहृद गणोंके हर्षको बढाओ; वानर श्रेष्ठ सुग्रीव श्रीरामचंद्रजीसे ऐसी आज्ञा पाकर ॥१८॥ वालिपालित मनोरम किष्किन्धा पुरीमें प्रवेश करते हुए वानरेन्द्र सुग्रीवजी जब कि किष्किन्धा पुरीमें प्रवेश करते हुए तब सहस्र २ वानरोंनें उनको घेरे हुए पुरीमें प्रवेश किया ॥१९॥ फिर समस्त प्रजाके लोग वानर श्रेष्ठ सुग्रीवजीको पुरीमें आये हुये देखकर ॥ २० ॥ मस्तक झुका पृथ्वीमें गिरकर प्रणाम करते हुए तब सुग्रीवजीने प्रेम सहित कुशल पूछ २ कर उन सबको उठाया ॥ २१ ॥ महा बलवान् वीर्यवान सुग्रीवजी फिर अपने भ्राताके रनवासमें गये, तब उन भीम विक्रम करनें वाले वानर श्रेष्ठ सुग्रीवजीको देख ॥ २२ ॥ सब इन्द्र तुल्य बन्दरों व सुहृदोंनें उनको राज्य पर स्थापित किया और सुवर्णकी डंडी लगा हुआ श्वेत छत्र उनके लिये ले आये ॥ २३ और केशोंके दो शुक्ल चमर लाये, उनमेंभी सुवर्णकी डंडी लगीथीं; अनेक प्रकारके रत्न, समस्तवीज, और सब औषधियें एकत्रित कीं ॥ २४ ॥ क्षीर वाले वृक्षोंके अंकुर सब भांतिके फूल शुक्ल वस्त्र, शुक्लही उवटन ॥ २५ ॥ सुगंधि युक्त हार, स्थलकमल, दिव्य चंदन, विविध भांतिकी सुगन्धें ॥ २६ ॥ अक्षत, सुवर्ण, प्रियङ्गु, मधु, सरसों, दही, व्याघ्रचर्म, बडे मोलकी दोनों उपानह, (जूता)॥ २७ ॥ और समालम्भन नामक अनुलेपन गोरोचन, मेनशिल; इत्यादि अभिषेककी सामग्रियें लाई जानें लगीं फिर सुलक्षण युक्त सोलह कन्या हर्षित होकर अभिषेकके स्थानमें आई॥ २८ ॥ फिर वानर श्रेष्ठका अभिषेक करानेंके लिये रत्न वस्त्र और भोजनसे, श्रेष्ठ ब्राह्मणोंको संतोषित किया गया ॥ २९ ॥ तत्पश्चात् वेदशास्त्रज्ञ जनोंनें किनारेपर कुश विछाय प्रदीत अग्निमें मंत्र पढ २ घृतकी आहुतिदी ॥ ३० ॥ पीछे जब होम होगया तब सुवर्ण युक्त श्रेष्ठ विछौनोंसे विछाहुआ चित्र और मालाओंसे शोभित रमणीय प्रसादके शिखापर ॥ ३१ ॥ श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्वको मुख करवाय सुग्रीवजीको वैठाय विविध मंत्र पढकर सवनदी,नद, व अनेक

प्रकारके तीर्थोंसे ॥ ३२ ॥ और सब समुद्रोंसे विमल जल लाकर सब वानर श्रेष्ठोंनें स्वर्णके कलशोंमें भरदिया ॥ ३३ ॥ पवित्र वृषभके सींगोंमें सुवर्णके कलशोंमें भरकर लाय२ शास्त्रके दिखाये मार्गानुसार, और महर्षियोंकी बताई हुई विधिके समान ॥ ३४ ॥गय, गवाक्ष, गवय,शरभ,गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, हनुमान और जाम्बवान॥३५॥इन्होंनें विमल सुगन्धि युक्त जलसे सुग्रीवजीको स्नान कराया जैसे आठों वसु इन्द्रजीको स्नान करातेहैं ॥ ३६ ॥ जब इस प्रकारसे सुग्रीवजीका अभिषेक होगया तब प्रधान २ सैकडों हजारों वानर गण हर्षितहो आनन्द ध्वनि करनें लगे ॥ ३७ ॥ वानरराज सुग्रीवजीनें श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञा प्रतिपालन करके अंगदजीको भेंट युवराज पदवी पर अभिषिक्त किया ॥ ३८ ॥ जब अंगदजीभी युवराजकी पदवीपर अभिषिक्त होचुके तब महात्मा वानर गण हर्षकी ध्वनि करकै"बहुत अच्छा, बहुत अच्छा" शब्द कर सुग्रीवजीकी बडाई करनें लगे॥३९॥ जब सुग्रीव और अंगदजीका अभिषेक होगया;तब सब कपिगण प्रसन्न होकर महात्मा श्रीराम लक्ष्मणजीकी स्तुति करनें लगे ॥४०॥गिरि गुहामें बसीहुई किष्किन्धा पुरी हृष्टपुष्ट जनोंके चलनें फिरनें और ध्वजा पताका ओंसे सुशोभित होकर मनोरम रूपवना शोभा पानें लगी ॥ ४१ ॥

निवेद्यरामायतदामहात्मनेमहाभिषेकंक
पिवाहिनीपतिः ॥ रुमांचभार्यामुपलभ्य
वीर्यवानवापराज्यंत्रिदशाधिपोयथा ॥ ४२ ॥

अभिषेकका सब वृत्तान्त श्रीरामचंद्रजीसे कह कपि सेनापति महावीर्यवान् सुग्रीवजी, अपनी स्त्री रूमाको प्राप्त होकर सुरराजकी समान वानर राज्य पर स्थापित हुये ॥ ४२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडेषड्विंशःसर्गः ॥ २६ ॥

सप्तविंशःसर्गः ॥

अभिषिक्तेतुसुग्रीवेप्रविष्टेवानरेगुहाम् ॥
आजगामसहभ्रात्रारामःप्रस्रवणंगिरिम्॥ १ ॥

सुग्रीवजीके अभिषेक होजानें पर श्रीरामचंद्रजीकी आज्ञाले सब वानरोंके सहित जब किष्किन्धा पुरीमें चलेगये तब श्रीरामचंद्रजी अपने भ्राताके सहित प्रस्रवण पर्वत पर चले गये ॥ १ ॥ यह पर्वत शार्दूल मृग गणोंके शब्दसे युक्त और भयंकर गर्जन करने वाले सिंहोंके झुन्डोंसे भरपूर अनेक प्रकारकी झाडी लता और वृक्षोंसे परिपूर्ण ॥ २ ॥ रीछ, वानर, गो पुच्छ और बिलावादि करकै सेवित मेघ राशि तुल्य दृष्टि आनें वाला पवित्र करनेंवाला कल्याण कर और शोभायमान था॥ ३ ॥ श्रीरामचंद्रजी नें लक्ष्मणजीके सहित उस पर्वतके शिखर पर येक बडी लम्बी चौडी गुफा अपने वास करनेंके लिये स्वीकारकी ॥ ४ ॥ विमलात्मा रघुनंदन श्रीरामचंद्रजी सुग्रीवसें वर्षाभर इस पर्वतपर रहनेंका नियमकर कालोचित महा वचन ॥ ५ ॥ विनीत लक्ष्मीके बढानें वाले भ्राता लक्ष्मणजीसें बोले कि यह पर्वतकी गुफा बहुत बडी है और इसमें चारों ओरसे पवन आतीहै ॥ ६ ॥ हे शत्रुघाती लक्ष्मण अब चौमासे भर यहीं बसेंगे हे राजकुमार! यह पर्वतकाशृङ्ग अति रमणीकहै ॥ ७ ॥ यह श्वेत काली और लाल वर्णोंकी शिला ओंसे शोभायमान है अनेक प्रकारके धातु द्रव्य इसमें पूर्ण हैं और नदीके मेढक भी इसमें हैं ॥ ८ ॥ विविध वृक्षोंके समूह से मनोहर विचित्र लता युक्त नाना विधि विहंगम व उत्तमोत्तम मोरोंके शब्दसे शब्दायमान॥९॥और खिली हुई मालती कुन्द, गुल्म, सिन्दुवार, शिरस, कदम्ब, अर्जुन, सर्जादि वृक्षों से सुशोभित हैं ॥१०॥खिले हुये कमल फूलोंसे भूषित यह जलाशय पानीके बढनेंसे हमारी गुहाके धोरेही हो जायगा॥ ११॥ यह गुफा पूर्वकी ओर को नीची है इस कारण वास करनेमें बडा सुख देगी और पश्चिमकी ओर को ऊंची है सो वर्षा होनेंपर पवनकी झकझोरसे इसमें जल भी नहीं आनें पावैगा ॥ १२ ॥हे लक्ष्मण! गुहाके द्वारपर नीचेमें शोभायमान लम्बी चौडी अलग अंजनकी समान काली शिला पडीहैं ॥ १३ ॥ हे वत्स लक्ष्मण यह देखो उत्तरकी ओर अंजनके ढेरकी तुल्य उदित मेघकी समान सुशोभित पर्वतकी शिखर विराज मानहैं॥१४॥दक्षिणके ओर भी कैलाश पर्वतके शिखरकी समान श्वेत मेघोंकी तुल्य अनेक प्रकारकी धातु ओंसे रँगा हुआ यह गिरि शृंग शोभा पा रहा है ॥ १५ ॥ यह देखो गुहाके

अग्रभागमें चित्रकूट पर्वतके निकट वहती हुई नदीके समान कीचड रहि-
त पूर्ववाहिनी मन्दाकिनी नामक नदी वहती है ॥ १६ ॥ इसके तटपर
चंदन, तिलक, शाल, तमाल अति मुक्तक, पद्मक और अशोक वृक्ष शो-
भित हो रहे हैं ॥ १७ ॥ वानीर, तिमिद व कुलकेतक, हिन्ताल, तिनिश
नीप, वेत, कृत मालक आदि वृक्ष शोभायमानहैं ॥ १८ ॥ यह नदी
किनारों पर लगे हुये अनेक प्रकारके वृक्षोंसे सब जगह ऐसी शोभायमान
है जैसे वस्त्राभूषण धारण किये हुये युवास्त्री शोभापाती हैं ॥१९॥ अनेक
रत्नों करकै युक्त यह नदी शत २ पक्षियोंके शब्दसे शब्दायमान और
परस्पर अनुराग करते हुये चकवा चकवियोंसे सुशोभित हो रहीं है॥२०॥
फिर यह नदी हंस और सारसों के द्वारा सेवित होनेंसे अनेक प्रकारके रत्नों-
से विभूपित हो अपने रमणीक किनारोंसे मानो हँसही रही है ॥ २१ ॥इस
नदीमें किसी २ जगह नीले कमल कहीं २ लाल कमल और कहीं २ दिव्य
शुक्ल वर्ण वाले कुमुदके फूलोंसे शोभा होरही है ॥ २२ ॥ यह रमणीया
सौम्य दर्शन नदी शत २ जल पक्षी मोर और क्रौंचों के कलरवसे शब्दा-
य मान होकर मुनि गणोंसे सेवित होतीहै ॥ २३ ॥ देखो यह स्थलमें
चंदन के पुष्पोंकी लंगार और दशो दिशा मानो सब हमारे मनके
अनुसारही उदित होकर शोभा पारही हैं ॥ २४ ॥अहो लक्ष्मण! यह क्या
परम रमणीय स्थानहै हे पर वीर घाती! आओ हम इस स्थानमें परम सुख
से वास करें ॥ २५ ॥हे राजकुमार सुग्रीवजीकी मनको रमण करनें वाली
पुरी चित्र विचित्र कानन वाली किष्किन्धा यहांसें निकटही वसतीहै॥२६॥
हे विजयि श्रेष्ठ! यह सुनो शब्द करनें वाले वानरों की मृदंग ध्वनिके
सहित गीत और वाजा वजानेका शब्द सुनाई आताहै ॥ २७ ॥ कपिवर
सुग्रीवजी राज्य और स्त्री और महत् राज्य लक्ष्मी प्राप्त करके सुहृद गणों-
के सहित प्रीति और महा आनंद प्राप्त करेंगे ॥ २८ ॥ यह कहकर श्रीरा-
मचन्द्रजी गुहा और कुंज युक्त उस प्रस्रवण पर्वत पर लक्ष्मणजीके सहित
वास करनें लगे ॥ २९ ॥ उस वहुत द्रव्य संपन्न, सुखाकर पर्वतकर वास
करकै श्रीरामचन्द्रजीको कुछभी प्रसन्नता न हुई ॥ ३० ॥ प्राणसेभी अ-
धिक प्यारी उन हरी हुई भार्या सीताजीको जब याद करते, और विशेष
करकै उस समय जब कि उदयाचलपर उदित होते हुये निशानाथ चंद्र-

माको अवलोकन करते ॥ ३१ ॥ तब सीताजीसे उत्पन्न हुए शोकके आंसुओंसे हत बुद्धिहो श्रीरामचन्द्रजी, सुखकी सेजपर शयन करके भी रात्रिमें निद्रा प्राप्त नहीं कर सकतेथे ॥ ३२ ॥ नित्य शोक परायण श्रीरामचन्द्रजीको शोक करते देखकर उनकीही समान दुःखी लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीसे विनय सहित वचन बोले ॥ ३३ ॥ हे वीरवर! आप व्यथित होकर शोक न कीजिये; कारण यह कि आप जानतेहैं, कि शोक करनें वाले लोग सदा कष्टही पाया करतेहैं ॥ ३४ ॥ हे रघुनंदन! आप लोकमें नित्यही कर्मके अनुष्ठान करनेंवाले, देव परायण आस्तिक, धर्मशील, और उद्यम शालीहैं ॥ ३५ ॥ जो आप किसी प्रकारका उद्योग न करके अपना चित्त ऐसाही व्याकुल किये रहेंगे तो वह कपटाचारी राक्षस रावण संग्राममें किस प्रकार आपके हाथसे मरैगा? ॥ ३६ ॥ आप अपने मानस क्षेत्रसे शोक वृक्ष जडसे उखाड डालिये और व्यवसाय बुद्धि स्थिर कीजिये, ऐसा करनेंसे आप सपरिवार रावणका संहार करनेंको समर्थ होसकेंगे ॥ ३७ ॥ हे रघुवीर! आप वन सागर और पर्वतोंके सहित इस पृथ्वीको उलट पलट कर सकतेहैं; फिर रावणका मारना तो एक साधारण बातहै ॥ ३८ ॥ अब वर्षाकाल आगयाहै; सो इसके बीतनेंपर आप शरत कालके आनेंकी बाट देखिये, जैसेही शरत काल आया कि रावणकी उसको सेना, व राज्य सहित वध कर डालिये ॥ ३९ ॥ हम भस्म से ढकी हुई अग्निको आहुति देकर प्रदीप्त करनेंकी समान आपके सोते हुये वीर्यको उकसातेहैं ॥ ४० ॥ लक्ष्मणजीके शुभकारी हितकारी उन वचनोंका आदर करकै सुहृद और स्नेही लक्ष्मणजीसे श्रीरामचन्द्रजी बोले ॥ ४१ ॥ हे लक्ष्मण तुमनें अनुरक्त स्निग्ध, हितकर, और सत्य विक्रमी लोगोंकी समानही वचन यथार्थही कहेहैं ॥ ४२ ॥ यह लो, हमनें समस्त कार्योंके विनाश करनें वाले शोकको परि त्यागकर, विक्रमके विषय में रुके हुए तेजको उत्साहित किया॥४३॥ हम सुग्रीव और सब नदियोंकी प्रसन्नता करते हुए (अर्थात् सुग्रीवभी बहुत दिनोंके दुःखपाये हुए विश्राम पालेंगे और नदियेंभी बरसात बीतनें पर उतर जायँगी) तुम्हारे, वचनको मान शरदकालकी बाट देखतेहैं ॥ ४४ ॥ वीर पुरुषोंके साथ जो कुछभी उपकार किया जाताहै; तो वेभी अवश्यही उसका प्रत्युपकार करतेहैं; इस्से निश्चयहै कि सुग्रीव

हमसे उपकार पाकर प्रत्युपकार करेंगे यदि अकृतज्ञ होकर वह प्रत्युपकार न करें तो उन महात्मा गणोंका मन (जिनके साथ पहले उपकार किया गयाहो) अर्थात् मित्रादि नाशको प्राप्त होजातेहैं ॥ ४५ ॥ फिर लक्ष्मणजी श्रीरामचन्द्रजीके वचन ठीक २ समझकर अपनी शोभित बुद्धि दिखाते हुए मनोज्ञ श्रीरामचन्द्रजीसे हाथ जोड कहनें लगे ॥४६॥ हे नरेन्द्र! आपनें जो कहा यही मेराभी मतहै; वानर वर सुग्रीव शीघ्रही सहायता करनेंमें नियुक्त होंगे आप वर्षाकालको विताते हुए शरद कालकी राह परखिये वर्षाकाल वीतनें पर शत्रुका वध करना ॥ ४७ ॥

नियम्यकोपंपरिपाल्यतांशरत्क्षमस्वमासांश्चतुरोमयासह ॥ वसाचलेस्मिन्मृगराजसेवितेसंवर्तयन्शत्रुवधेसमर्थः ॥ ४८ ॥

आप कोपको नियमित किये हुये हमारे सहित एकत्र वासकर वर्षाकालके चौमासेको विता शरद समयकी राह परखिये । आप अवश्यही शत्रुके मार डालनेंमें समर्थ हैं । इस समय आप मृगराज सेवित इस पर्वत पर वास कीजिये ॥ ४८ ॥ इ० श्री० वा० आ० कि० सप्तविंशः सर्गः ॥२७॥

अष्टविंशःसर्गः ॥

सतदावालिनंहत्वासुग्रीवमभिषिच्यच ॥
वसन्माल्यवतःपृष्ठेरामोलक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १ ॥

तब श्रीरामचन्द्रजी वालिको मारकर सुग्रीवको राज्य दे माल्यवान पर्वतपर वसकर लक्ष्मणजीसे कहनें लगे ॥ १ ॥ यहलो वर्षाकाल आ पहुंचा देखो। पर्वतोंके समान मेघोंके समूहोंसे आकाश मण्डल ढकगया ॥२॥ कार्तिकादि नव मासतक गर्भधारण करके लोकोंका जीवन स्वरूप जलरूप रसायन छोडती है ॥ ३ ॥ स्वर्गस्थली; समुद्रका जल रूपरस, सूर्यकी किरणोंके द्वारा पीकर, सूर्यभगवान आकाशमें आरोहण करकै कूटज और अर्जुन मालाकी समान मेघसोपान, श्रेणीसे उस गगन मण्डलको अलंकृत करते हैं ॥ ४ ॥ सन्ध्या समयकी ललाईसे और अंत भागमें श्वेत वर्णस्निग्ध मेघरूप छिन्न वस्त्रोंनें, मानों आकाशके घाव स्थानोंमें पट्टा बाँ-

ध रक्खी है ॥ ५ ॥ मन्द पवन रूप निःश्वास युक्त सन्ध्याकी ललाई मानों चन्दन लगाये हुये है, श्वेत वर्णके मेघोंसे युक्त आकाश मानों कामातुर होगयासा जान पडता है ॥ ६ ॥ ग्रीष्मके तापसे महा कष्टित नये पानीके छिडके जानेसे, शोकसे संतापित यह पृथ्वी, सीताजीकी समान आंसू छोडती है ॥ ७ ॥ मेघके उदरसे निकले हुये, कपूर लगे जलकी समान, शीतल, और केतकीकी सुगन्धि युक्त पवन अँजलि द्वारा पान करनेंके योग्य होगया है ॥ ८ ॥ उस पर्वतपर अर्जुनके सब वृक्ष कुसुमित होगये हैं केतकीकी सुगन्धिसे सुगन्धि युक्त और सुग्रीवकी समान शत्रु रहित होकर जलकी धारसे अभिषेकित हो रहे हैं ॥ ९ ॥ मेघरूप चीर वल्कल धारी, धारा रूप यज्ञोपवीत युक्त, गुहाके मुखमें पवन शब्द युक्त सब पर्वत, वेदाध्ययन करनें वाले बटुक गणोंकी समान शोभायमान हो रहे हैं ॥ १० ॥ इस वर्षाकालमें आकाश स्थल बीजलीरूप सुवर्णके कोडेसे ताडित होकर हृदयमें वेदना पाय घोर शब्द कर रहा है ॥ ११ ॥ हम विचार करते हैं कि नीलमेघकी गोदीमें बैठी हुई बिजली चमक कर रावणके अंकमें बैठी कृपा करनेंके योग्य तपस्विनी जानकीजीके समान प्रकाशित हो रही है ॥ १२ ॥ यह सब दिशायें मेघोंसे छा रही हैं; इसलिये तारागण और चन्द्रादि छिप गये हैं इसलिये इस समय यह सब दिशायें कामी गणोंको सुखकी देने वाली हो गई हैं ॥ १३ ॥ हे लक्ष्मण! कहीं २ नदी वारिके संयोगसे उत्पन्न हुई भाफ युक्त वर्षाके आनेंसे समुत्सुक पर्वतके शृङ्गोंपर, पुष्पित कूटज, वृक्ष सीताके शोकसे उत्पन्न हमको कामोदीपन कराते हुये टिके हैं, ॥ १४ ॥ हे लक्ष्मण! इस वर्षाकालमें धूल उडनी बंद होगई है वायु पाला युक्त हो चलता है, ग्रीष्म कालके समस्त दोष दूर हो शान्तिको प्राप्त हो जातेहैं; राजाओंकी यात्रा बंद होगई और परदेशी मनुष्य अपनी प्यारीके विरहमें रहनेंसे असमर्थहो अपने २ देशको चले आते हैं ॥ १५ ॥ इस समयमें सब चक्रवाक अपनी २ प्यारी चकवीके सहित बसनेंके लिये मानस सरोवरपर चले जाते हैं । और इस समय बराबर वर्षा होनेंके कारण से रथादि सवारियोंका चलनाभी बंद होगया है ॥ १६ ॥ इस समयमें कहीं प्रकाशहै कहीं अप्रकाशहै क्योंकि आकाश मंडल मेघ समूहसे छारहाहै,

और कहीं पर्वतोंसे संरुद्ध हो रहाहै इसलिये तरंगहीन महा समुद्रकी समान शोभाय मानहै ॥ १७ ॥ साखू और कदम्बके फूलोंसे युक्त, पर्वतकी धातुओंसे मिश्रित, ताम्रवर्ण मोरोंकी बोलीसे शब्दायमान, पहाडी नदियें शीघ्रतासे वही जातीहैं ॥ १८ ॥ इस समयमें सब जीवगण रस युक्त भ्रमरोंकी समान, अनेक जम्बू फूलोंको भक्षण करतेहैं; और पवनसे, सँचालित अनेक वर्णके पकेहुये आमफल पृथ्वीपर गिर रहेहैं ॥ १९ ॥ बिजली रूप पताका लगाये और बगलोंकी पंक्तियुक्त माला पहरे, शैल शिखर तुल्य भयंकर नाद करने वाले मेघगण रणमें खडेहुये मतवाले हाथियोंकी समान गर्जना कर रहेहैं ॥ २० ॥ जिनके तृणयुक्त सब स्थान वर्षाके जलसे तृप्त होगयेहैं और जिनमें मोर सदासेही नाच रहेहैं और मेघगण अतिवर्षा करके अब थम रहेहैं, सो ऐसे वन अपराह्न कालमें अधिक शोभा धारण किये हुयेहैं, ॥ २१ ॥ उस कालमें बकमाला युक्त सब मेघ बहुत सारे पानीका बोझ लादे हुये पर्वतोंके बडे २ शृङ्गो पर बार २ विश्राम करके फिर चले जातेहैं ॥ २२ ॥ गर्भ धारण करनेंके लिये मेघके प्रति काम युक्त बकपांति हर्षवतीहो वायुसे कंपायमान श्रेष्ठ श्वेत कमल फूलोंकी मालाके समान मनोहर आकाशके गलेमें पडकर शोभा पारहीहै ॥ २३ ॥ इस समयमें नई उत्पन्न हुई इन्द्रवधू, वीरबहूटियोंके मध्यमें पडनेंसे चित्रित तृणोंसे ढकी हुई भूमि, मध्य २ में लाखके रंगकी बिन्दियां लगाय श्वेत वर्णका कम्बल ओढे स्त्रीकी समान शोभितहै ॥ २४ ॥ इस वर्षाकालमें क्रम २ निद्राकशवको और नदियें द्रुतवेगसे सागरको, बक पांति हर्षित होकर मेघको, और कामनी स्त्रियां अपने प्रीतम पतिको प्राप्त होती हैं ॥ २५ ॥ इस समय बनोंमें मोर नाच रहेहैं, कदमके पेडोंकी डालियोंमें पुष्प खिल रहेहैं, वृषभ गाइयोंके ऊपर कामातुर हो रहेहैं, और मही अनाज और वनसे मनोहर होगईहै ॥ २६ ॥ इस समय नदियां वही जातीहैं. मतवाले हाथी गर्ज रहेहैं, वन चमक रहेहैं प्यारीके विरहमें विरही गण ध्यान कर रहेहैं, मोरगण नाच रहेहैं और वानर गण आशायुक्तहो श्वासले रहेहैं ॥ २७ ॥ नवीन झरनोपर हाथी, केतकी, पुष्पकी सुगन्धि सूंघकर मतवाले, हृष्ट और जल गिरनेंके शब्दसे आकुलितहो मोरगणोंके

सहित शब्द करतेहैं ॥ २८ ॥ कदम्बकी डालीपर अनुरागी हुये भौरोंके झुन्ड जलकी, धारा गिरनेंसे आहतहो पहले क्षणका इकट्ठा किया हुआ गाढ पुष्परस रूपमद परित्याग किये देतेहैं ॥ २९ ॥ जामनके वृक्षकी डालियें अंगार चूर्ण समूह तुल्य अधिक रसवाले फलके समूहसे, भ्रमर गणोंसे पी जाती हुईसी प्रकाश मान होरहीहैं ॥ ३० ॥ विद्युत रूप पताकासे अलंकृत गंभीर महा शब्द युक्त मेघ गण रण करनेको तैयार हाथियोंकी समान शोभित होतेहैं ॥ ३१ ॥ पर्वत वनके चलने वाले अपने मार्गमें टिके हुए युद्धकी कामना किये गजेन्द्र गण, मेघका गर्जना सुन, दूसरे शत्रु हाथीके गर्जनेंकी शंकाकर युद्ध करनेंके लिये लौट रहेहैं ॥ ३२ ॥ किसी २ जगह भ्रमर गण गुंजार कर रहेहैं, कहीं मोर नाच रहेहैं, कहीं हाथियोंके झुन्ड मतवाले होकर शोभा पा रहेहैं, इस प्रकारसे समस्त वन इन सब वस्तुओंसे प्रकाशित होतेहैं ॥ ३३ ॥ कदम्ब, सर्ज्ज अर्ज्जुन, कन्दल, युक्त मधु समान वारिसे पूर्ण वन भूमि मदमाते मोरोंके शब्द और नृत्यसे मद्यपान करनेंके स्थानकी समान जान पडतीहै॥३४॥ मोतीकी समान गिरा, पत्तोंपर लगा इन्द्रका दिया निर्मल जल, पीले विवर्ण पंखवाले प्यासे पक्षीगण हर्षित होकर पान कर रहेहैं ॥ ३५ ॥ भ्रमर ध्वनि रूप मधुर, गीत और उसमें वानरोंकी ध्वनि कंठताल, मेघ शब्द मृदंग ध्वनि, इस प्रकारसे वनमें मानों संगीत होना प्रारंभ हुआहै ॥३६॥ कभी नृत्य करके कभी शब्द करके कभी वृक्षकी डालियों पर बैठ करके कभी लंबे पंखोंको भूषण रूप विस्तार करकै मोर गण वनस्थलमें संगीत कर रहेहैं॥३७॥वानरगण मेघोंके शब्दसे वहुत दिनोंसे ग्रहण की हुई निद्राको परित्याग करकै जागरितहो, अनेक प्रकारका रूप धार व अनेक प्रकारका शब्द करकै नये जलकी धारासे पीडितहो किल २ कर रहेहैं ॥ ३८ ॥ समस्त नदियें, चक्रवाक समूहको अपने किनारोंसे हटातीं और अपने ढहेहुए करारोंको जल वेगसे वहाती; वर्षाके जलसे पूर्ण होनेंके कारण मदान्धहो भोग करानें की इच्छासे अपने स्वामी समुद्रके निकट चली जाती हैं॥३९॥ नील मेघोंके समूहमें आसक्त, नील जल भरे बादल, दावाग्निसे दग्ध हुये पहाडोंमें दावाग्नि दग्ध सब पर्वत एक दूसरे की जडमें बँधे हुयेसे ज्ञात होतेहैं ॥ ४० ॥ इस कालमें नीप और अर्ज्जुनके पुष्प की सुगन्धिसे वसे

हुए वनके रमणीक थलोंमें मोर मतवाले होकर नाच रहेहैं। हरी घास पर वीर वहूटियां शोभा पाय रहीहैं; और हाथीभी इधर उधर झूम २ कर फिर रहेहैं ॥ ४१ ॥ भ्रमर गण हर्षित होकर नये जलकी धारासे पुष्प रस विहीन कमल फूलोंको त्याग, पुष्प रस सहित कदम्बके नये पुष्पोंको पान कर रहेहैं ॥ ४२ ॥ इस कालके समय वनमें गजेन्द्र गण मत्त, वृषभ गण मुदित, सिंह गण अतिशय पराक्रम कर रहेहैं; पर्वत मनोहर हैं नृपति गण उद्योग विहीन हैं। और इन्द्रजी मेघोंसे क्रीडा करनेंमें लग रहेहैं॥४३॥ महाजलकी धार वाले गगनमें फैले हुए मेघगण समस्त समुद्रोंमें शब्द उठा रहेहैं, और नदी तडाग सरोवर वापियोंको पूर्ण करते पृथ्वीके ऊपर जल वहा रहेहैं ॥ ४४ ॥ इस कालमें अति वेग सहित वर्षाकी धार गिरतीहै पवनभी अति वेगसे चलतीहै नदियें किनारोंको तोडती फाडती कुमार्गमें दहाडती चली जातीहैं॥४५॥मनुष्यगण जिस प्रकारसे राजाको स्नान कराते हैं, वैसेही इन्द्रजीके दिये पवन करके आये मेघरूप घोडोंके द्वारा स्नान करके पर्वत गण मानों अपना रूप और श्री दिख लातेहैं॥४६॥इस कालमें मेघोंसे ढके हुए आकाशमें तारागण और सूर्यकेदर्शन नहीं होतेहैं; धरणी नवीन जलकी धारासे तृप्त होगई सब दिशाओंमें अंधकार छा जानेंके कारण उनमें कुछभी प्रकाश विदित नहीं होता॥४७॥पर्वतोंके बडे२शिखरजल धाराके गिरनेसे धोये जाकर और महा प्रभाव वाले विपुल लंबे मोती रूप झरनोंके द्वारा अधिक शोभायमान हो रहेहैं ॥ ४८ ॥ पर्वतोंके बडे २ झरनोंका पानी चटानोंपर वेग सहित वहता हुआ मोरोंके शब्दसे युक्त पर्वतकी गुफाओंमें टूटे हुए डोरे वाले हारकी समान छितराकर गिर रहा है ॥ ४९ ॥ पर्वतोंके विपुल वेगवान झरनें गिरि शृङ्गोंकी तली धोते हुए गिरकर महा गुफाओंमें मुक्ता समूहकी समान रोके जातेहैं ॥ ५० ॥ स्वर्गीय स्त्री गणोंके रति कार्यके मर्दनसे टूटकर अतुल मोतियोंके हारकी समान चारों ओर जल धारा गिर रहीहैं ॥ ५१ ॥ पक्षियोंके घोंसलोंमें चले जानेंसे और कमल फूलोंके बंद होनेंसे मालती पुष्पके खिलनेंसे, सूर्यका उदय अस्त जाना जाताहै; नहीं तो वरावर वादलोंके छाये रहनेंसे सूर्य भगवान्का उदय अस्त नहीं जाना जा सकता ॥ ५२ ॥ इस कालमें नृपति लोगोंकी यात्रा बंद हो रहीहै, जो किसी राजाकी सेना किसी शत्रु-

पर चढ चलीथी वहभी मार्गमें जहां की तहां रही । और वैर व मार्ग जलनें सबको समान कर दिया ॥ ५३ ॥ वेद पढनेंकी अभिलाषा किये साम जाननें वाले ब्राह्मणोंका यह भाद्रपद रूप वेद पढनेंका समय आ पहुंचाहै ॥५४॥ कौशलाधिपति भरतजी अब करलेनें आदिके सब कार्योंसे निवट, जीवन साधन करनेंकी समस्त वस्तुयें एकत्र कर आषाढी पूर्णिमासे कुछ विशेष अनुष्ठान करने लगे होंगे ॥ ५५ ॥ इस समय सरयू नदी वर्षाके जलसे पूर्ण होगई होगी; इस समय सरयू नदीका वेग ऐसा बढता होगा; कि जैसे हमको आये देख अयोध्या वासी प्रजा कुलाहल करैगी५६॥ वर्षाके गुण समूह भली भांति प्रकाशित हो रहेहैं ।इस समय सुग्रीव विजय करके वह बडा भारी राज्य पाय अपनी स्त्रियोंके साथ विविध भांतिके सुख भोगोंमें आसक्त होरहेहैं ॥ ५७ ॥ हे लक्ष्मण! परन्तु हमारी प्यारी हरी गईहैं; और हमारा बडाभारी राज्यभी छूट गया, सो जलसे कटते हुए नदीके किनारेकी समान इस समय हम कष्टितहैं ॥ ५८ ॥ हमारा शोक अति बडाहै, वर्षा अतिशय दुर्गमहै; रावण महा शत्रुहै; यह सबही हमको बडे अपार ज्ञात होतेहैं ॥ ५९ ॥ इस वर्षाहीके कारण शत्रुपर चढाई नहीं की जाती; क्योंकि मार्ग सब अति दुर्गम हो रहेहैं इस्से सुग्रीवजीनें सीताजीके ढूंढ भालनेंके विषयमें हमसे कहाभीथा परन्तु तब हमनें उनसे कुछभी न कहा ॥ ६० ॥ और सुग्रीव अत्यन्त कष्ट पाकर अपनी स्त्रियोंसे मिलेहैं, और हमारा कार्य अत्यन्त भारी थोडे समयमें नहीं होगा, इसी कारण हम उनसे कुछ कहनेंकी इच्छा नहीं करते ॥ ६१ ॥ इसमें कुछ संदेह नहींहै कि सुग्रीव विश्राम करके आपही समयको आया जान उपकारका स्मरण करैगा ॥ ६२ ॥ इसलिये हे लक्ष्मण ! हम सब नदियोंकी और सुग्रीवकी प्रसन्नताको चाहते यहां पर कालकी प्रतीक्षा किये टिके हुएहैं ॥ ६३ ॥ वीर लोग उपकार करनें वालेका अवश्यही प्रत्युपकार किया करतेहैं और जो उपकारको प्राप्त होकर उसको नहीं मानते तो वीर गणोंका मन असन्तुष्ट हो जाताहै; क्योंकि कोई किसीके साथ उपकार करनेंका उत्साह नहीं करते ॥ ६४ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीनें लक्ष्मणजीसे इस प्रकार कहा; तो वह हाथ जोड उन वचनोंका आदर करते हुए अपना विश्वास उनपर प्रगट करके मनकी जाननें वाले श्रीरामचंद्रजीसे बोले६५॥

यदुक्तमेतत्तवसर्वमीप्सितंनरेंद्रकर्तान
चिराद्धरीश्वरः ॥ शरत्प्रतीक्षःक्षमतामिदंभ
वान्नजलप्रपातंरिपुनिग्रहेधृतः ॥ ६६ ॥

हे महाराज ! आपनें जो कुछ कहा; उस सबकोही सुग्रीवजी करेंगे, इस समय आप शरदकालको परखतें हुये इस वर्षा कालको बिता दीजिये॥ ६६ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे अष्टविंशःसर्गः ॥ २८॥

एकोनत्रिंशः सर्गः ॥

समीक्ष्यविमलंव्योमगतविद्युद्बलाहकम् ॥
सारसाकुलसंघुष्टंरम्यज्योत्स्नानुलेपनम् ॥ १ ॥

विगत विद्युत और विगद वारिद, सारस समूहसे निनादित मनोहर चांदनीसे अनुलिप्त विमल आकाशको अवलोकन करकै सुग्रीवके निकट हनुमानजी गये ॥ १ ॥ सुग्रीव अत्यन्त समृद्धि शाली होकर धर्म और अर्थको इकट्ठा करनेंके विषय में शिथिल और असत पुरुषोंके मार्ग अर्थात् काम वृत्ति में अत्यन्त आसक्त चित्त ॥ २ ॥ और सब कार्यों में निवृत्त वालिके मारनें में कृतकार्य हुये, समस्त इष्ट और मनोरथ लाभ किये हुये राज्यको प्राप्त कर ॥ ३ ॥ अपनी स्त्री रुमा और वांछा करनें योग्य ताराको प्राप्त करकै व्यथा रहित हो ॥ ४ ॥ अप्सरा गणोंके सहित देवराज इन्द्रकी समान दिन रात विहार करतेंहैं सब राज्य भार मंत्रि लोगोंके ऊपर छोड करके फिर उसको देखते भी नहीं ॥ ५ ॥ वह मंत्री गणोंकी कार्यकी चतुरता से राज्यके पालन करनेके विषयमें संदेह न करके काम वृद्धकी नाईं टिके हुयेहैं ऐसे सुग्रीवको देख अर्थ तत्त्वके जाननें वाले सब अर्थों को निश्चित किये कालोचित धर्म तत्त्वको जानने वाले ॥ ६ ॥ वाक्य विशारद श्री हनुमानजी प्रीति युक्त मनोहर वचनों से वाक्य तत्त्वके जाननें वाले वानर पतिको ॥ ७ ॥ समझाय बुझाय प्रसन्न कर सत्य युक्त साधक साम, धर्म, अर्थ व नीति युक्त प्रेम प्रीति सम्पन्न विश्वास निश्चय

किये वचन ॥ ८ ॥ सुग्रीवजीके निकट जाकर हनुमानजी बोले कि आपने राज्य यश और कुलसे चली आई हुई विपुल राज्य लक्ष्मी प्राप्त कीहै ॥ ९ ॥ इस समय मित्र गणोंका शेष कार्य साधन करनें के कर्त्तव्यका यत्न करना आपको उचितहै । जो काल जानने वाला पुरुष मित्र लोगोंको सदाही साधुताके भावसे वर्त्तता है ॥ १० ॥ उसका राज्य कीर्ति और प्रताप वृद्धिको प्राप्त होताहै । जिसका खजाना, सेना और इन्द्रियादि युक्त देह और दंड मित्रोंके सहित समान हैं वह पुरुष बडे राज्यको भोगता है ॥ ११ ॥ इस कारण अच्छे चरित्र वाले आप हानि रहित मार्गमें टिक कर जाना हुआ मित्रका कार्य यथा विधि से कीजिये ॥ १२ ॥ जो मनुष्य समस्त कार्यको परित्याग करकें मित्रके कार्यको करनेंमें यत्नवान नहींहोता वह उत्साह हीन और चंचल चित्त होकर अनर्थकी परम्परासे रुक जाताहै॥ १३ ॥ जो समय को विताकर मित्रका कार्य करतेहैं वह चाहें बडे भारी अर्थको भी साधन करदें परन्तु कालके वीतनें से वह विना हुयेही की समान है इसलिये समय वीतनें पर कार्य का करना न करना बराबर है ॥ १४॥ इसलिये हे शत्रु वीरोंको मारनेंवाले! अब समय वीताही चाहताहै सो अब जानकी जीके ढूंडने भालने रूप श्रीरामचंद्रजी का कार्य पूरा कीजिये ॥ १५ ॥ समयके जानने वाले रामचंद्र तुमसे नहीं कहेंगे कि अब समय वीतताहै यद्यपि वह महात्मा श्रीरामचंद्रजी शीघ्रही अपने कार्यको साधन करनें की इच्छा करते हैं परन्तु आपके वश हो वह विलंब कर रहे हैं॥ १६ ॥आपके इस बडे कुल राज्यकी प्राप्तिके हेतु और दीर्घ कालके बन्धु उन श्रीरामचंद्रजीका अतुल प्रभावहै और वह गुण गणोंसे अनुपम हैं॥१७॥हे कपिनाथ! उन्होंने पहले ही आपका कार्य पूरा कर दियाहै सो इस समय आप उनका कार्य करनेके लिये वानर गणोंको आज्ञा दीजिये ॥१८॥ प्रेरणाके बिना स्वयंही विचार कर कार्य करनेसे, समयका उल्लंघन नहीं होता, जो कार्य कि आज्ञा किये जानें, अर्थात् प्रेरणा होनेंपर कियाजाता है, वह कार्य हो जानें परभी उस कार्यका काल व्यतीत हो जाता है इस्से हुआ न हुआ बराबर है ॥ १९ ॥ हे वानर नाथ! यदि आपका कोई पुरुष उपकार न करै तोभी आप उसका उपकार किया करते हैं; फिर श्रीराम-

चन्द्रजीनें तो वालिको मार करके आपको राज्य प्रदान किया है; सो आप जो उनका उपकार करेंगे उसमें कहनाही क्या! ॥ २० ॥ आप वानर और रीछोंके राजा हैं; और श्रीरामचन्द्रजी शक्तिमान और अतिशय विक्रम शाली हैं आप श्रीरामचन्द्रजीकी प्रसन्नताके हेतु उनका कार्य करनेंके लिये क्यों तैयार नहीं होते? ॥ २१ ॥ दशरथकुमार श्रीरामचन्द्रजी सुर असुर और भुजंगोंकोभी अपनें वशमें करनेंको समर्थ हैं; वह तो केवल आपकी प्रतिज्ञाको परखते हैं ॥ २२ ॥ उन्होंनें प्राण त्याग न करनेंकी अशंका न करके आपका वडा भारी कार्य किया है; इसलिये हम पृथ्वी व आकाशमें जहां कहीं भीहों जानकीजीको ढूंढ लावेंगे ॥ २३ ॥ देव दानव गन्धर्व, असुर, मरुदगण, और यक्षगण सवही रणमें रामचन्द्रजीसे भय करते हैं, फिर उनसे राक्षसगण क्यों भय नहीं करेंगे ॥ २४ ॥ इस प्रकारके शक्ति युक्त श्रीरामचन्द्रजीनें पहलेही आपका उपकार किया है; इस लिये हे कपिराज! इस समय सव प्रकारसे आपको उनका उपकार करना उचित है ॥ २५ ॥ हे कपीन्द्र! आपकी आज्ञासे हम वानरोंके मध्यमें,किसकी गति पृथ्वी के नीचे,जलमें, अथवा आकाशमें न होगी?॥२६॥ हे अनघ! करोडों दुर्द्धर्ष वानर आपके वशमें हैं; सो आप आज्ञा दीजिये कि कौन किस स्थानमें जाय? ॥ २७ ॥ यथाकालमें उत्तम रूपसे विरूपित हनुमानजीके यह वचन सुनकर बुद्धिमान सुग्रीवजीनें उन वचनोंमें उत्तम मतिकी ॥ २८ ॥ उस समय मतिमान सुग्रीवजीनें नित्य हितकारी और उद्यम शील नील वीरको समस्त दिशाओंसे सेना इकट्ठी करनेंके लिये आज्ञा दी ॥ २९ ॥ सुग्रीवनें कहा कि—जिससे समस्त यूथपाल गण अपने२सेनापतियोंके सहित अपनी समस्त सेनाले यहांपर चले आवें; तुमको ऐसा यत्न करना चाहिये ॥ ३० ॥ उनमेंसे जोकि शीघ्र चलनें वाले सब दिशाओंको जाननें वाले और दृढ संकल्प करनें वाले हैं; उनको तुम बहुतही शीघ्र हमारे पास भेज देना ॥ ३१ ॥ और तुम स्वयं सेनापति आदिकोंको देखते भालते रहो ॥ ३२ ॥ जो जो वानर लोग एक पखवाडेके बीचमें इस स्थानमें नहीं आवेगा; उसे विना विचारे प्राण दंड देदो ॥ ३३ ॥

कृत्यनिश्चितम् ॥ इतिव्यवस्थांहरिपुंगवेश्व
रोविधायवेश्मप्रविवेशवीर्यवान् ॥ ३४ ॥

हमारी आज्ञाके वशमें टिके वृद्ध वानर गणोंके निकट तुमही अंगदके साथ चले जाओ. वानर श्रेष्ठ वीर्यवान् सुग्रीवजी इस प्रकारकी व्यवस्था करके राज मंदिरमें प्रवेश करते हुये ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे श्रीवाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धा कांडे एकोनत्रिंशः सर्गः ॥ २९ ॥

त्रिंशःसर्गः ॥

गृहंप्रविष्टेसुग्रीवेविमुक्तेगगनेघनैः ॥
वर्षरात्रेस्थितोरामःकामशोकाभिपीडितः ॥ १ ॥

इधरतो सुग्रीव राजमंदिरमें गये उधर गगन मंडल मेघ रहित हुआ और, वसंतकी रातोंके वीत जानेंपर श्रीरामचंद्रजी काम शोकसे पीडित हुये ॥ १ ॥ वह आकाश मंडल निर्मल, विमल चंद्र मंडलकी चांदनीसे युक्त शरद ऋतुकी रात्रि देख ॥ २ ॥ जनककुमारी सीताको हरा हुआ, सुग्रीवको कामासक्त और कालको वीतजाता हुआ देख अत्यन्त कातर और मोहित हुये ॥ ३ ॥ अनन्तर मतिमान नृपति श्रीरामचंद्रजी एक मुहूर्त्त भरमें चित्तकी सावधानताको, प्राप्तकर, जानकीजीकी चिंता करनें लगे, क्योंकि वही बराबर इनके मनमें वसी रहतीथीं ॥ ४ ॥ आकाश मंडल मेघ और विजलीसे रहित होनेके कारण विमल हुआ, और सरोवरोंमें सारसकी पुकार सुन श्रीरामचंद्र अति आरत वाणीसे विलाप करनें लगे ॥ ५ ॥ वह हेम धातु विभूषित पर्वतके अग्रभागमें बैठ शरद ऋतुका आकाश देख मनहीं मनमें प्रियाका ध्यान करने लगे ॥ ६ ॥ जो सारस तुल्य शब्द करनें वाली, सारस गणोंके शब्द सुनकर आश्रममें आनंदित होती, वह इस समय किस प्रकारसे मन बहलातीहोंगी? ॥ ७ ॥ वह मृग शावक नयनी सुवर्णके पुष्प सदृश, पुष्प युक्त आसनके वृक्षोंको देखकर, हमको विनादेखे किस प्रकारसे मन मुदित करतीं होंगी ॥ ८ ॥ जो मधुर भाषण करनें वाली श्री जानकीजी प्रथम कलहंसोंके शब्दको श्रवण कर जागतीथीं, वह सर्वांगे श्रेष्ठ इस समय किस प्रकारसे आनंदको प्राप्त करती होंगी? ॥ ९ ॥ वह कमलदलकी समान आंखों वाली जानकी

जी चक्रवाकोंका कलशब्द श्रवण करके किस प्रकारसे जीवन धारण करनेंको समर्थ होंगी? ॥ १० ॥ हम उन मृगनयनी के विना, सरोवर, नदियें, वापी, वन और काननमें विचरण करके कुछभी सुख प्राप्त करनेंमें समर्थ नहीं होतेहैं ॥ ११ ॥ एकतो हमारा विरह, दूसरे सुकुमारताके हेतु अपने साथ शरदके गुणोंसे नित्य प्रकुत कामदेव उनको अतिशय पीडा देता होगा ॥ १२ ॥ सारंग नामक चातक पक्षी इन्द्रजीसे जिस प्रकार कातर होकर जलकी प्रार्थना करताहै, वैसेही राजकुमार श्रीरामचंद्रजी अनेक भांतिके विलाप करनें लगे ॥ १३ ॥ फिर लक्ष्मी युक्त लक्ष्मणजी जोकि भाईके दुःखसे दुःखी, फलोंको लानेंके लिये पर्वतोंके कँगूरों पर गयेथे, लौट आकर अपने बडे भाई साहबको देखते हुये ॥ १४ ॥ मनस्वी लक्ष्मणजी अति शीघ्रतासे दुस्सह चिन्तायुक्त ज्ञानहीन और अतिदीन श्रीरामचंद्रजीको देखकर उनका विषाद दूर करनेंके लिये अतिदीनतासे बोले ॥ १५ ॥ हे आर्य ! आप आत्म पौरुषको पराजितकर; और कामके वशहो क्या कर्म करतेहैं? आप शोक करके चित्तकी एकाग्रता दूरकर रहेहैं, ऐसे समयमें आप समाधि योगकर समस्त दुःखोंका नाशकीजिये ॥ १६ ॥ हे प्रभो ! आप धीरज धारण करके शौच स्नानादि क्रिया योगकर मनको निर्मल कर लीजिये; और यथा कालमें समाधि योगके अनुगतहो सब कार्योंका समाधान कीजिये ॥ १७ ॥ हे नरनाथ ! जानकीजी आपसेही सनाथ हो सकतीहैं; वह दूसरेसे कभी सनाथ नहीं हो सकती; क्योंकि प्रज्वलित अग्निकी ज्वालाको प्राप्त होकर कौन नहीं दग्ध होता अर्थात् अग्निवत् जानकीजीकी ज्वालासे रावण का नाश होजायगा ॥ १८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण युक्त दुर्द्धर्ष लक्ष्मणजीसे तत्त्वार्थ, नीति सम्मत, पथ्य और हितकारी व धर्म युक्त वचन बोले ॥ ॥ १९ ॥ हे लक्ष्मण कुमार ! तुमने जो कहाहै उस कर्म योग व ज्ञान योगका निश्चयही साधन करना उचितहै अति दुःखसे वृद्धिको प्राप्त हुए सहन करनेंके अयोग्य इस अपने वीर्य बलके फलकीभी अवश्य चिंता करनी चाहिये ॥ २० ॥ फिर कमलदल नेत्रवाली जानकीजीका स्मरण करकै रामचन्द्रजीका मुख विवर्ण होगया, और वह लक्ष्मणजीसे बोले२१॥ इन्द्रजी, वर्षाकी धारासे पृथ्वीको तृप्तकर अन्न उपजानेंके कार्यको पूराकर

अब सिद्ध काम हुए ॥ २२ ॥ हे राजकुमार ! मेघगण धीर गंभीर शब्द युक्त पर्वत व नदियोंके समीप आय २ जल वर्षायर अब थकगयेहैं॥२३॥ नीले कमलकी पखंडियोंके समान श्याम रंगके मेघ सब दिशाओंको श्याम रंग मय करते हुए मद रहित हाथीकी समान शान्त वेगसे चलनें लगे ॥ २४ ॥ कूटज और अर्जुन पुष्पकी सुगन्धि वाला जल अपने गर्भमें से वर्षाय पवनसे उठे हुए बादल, विचरण करकै अब शान्त होगयेहैं॥२५॥ हे पाप रहित लक्ष्मण! मेघ मातंग मोर और झरनें इन सबका शब्द एक बारही बंद होगयाहै ॥ २६ ॥ महा मेघके समूहोंसे धुए हुए विचित्र कँगूरे पर्वतोंके समूह चन्द्रमाकी किरणोंके पडनेंसे शोभायमान होरहेहैं; ॥ २७॥ इस समय शतावरीके वृक्षोंकी डालियोंमें, ताराचन्द्र और सूर्यकी प्रभामें; उत्तम गजेन्द्र गणोंकी लीलामें, अपनी लक्ष्मीका भाग करके शरतकाल आ पहुँचाहै ॥ २८ ॥ इस समय शरत कालकी गुण युक्त लक्ष्मीकी शोभानें अनेक वस्तुओंमें आश्रय लियाहै; वह लक्ष्मी सूर्य नारायणकी पहली किरणसे खिले हुए कमल फूलोंमें अधिक शोभायमान होरहीहै॥२९॥ यह शरतकाल शतावरीके फूलोंको सुगन्धि युक्त करता, भ्रमर गणोंमें ध्वनि उपजाता, पवनके पीछे २ चलता, मतवाले हाथियोंका दर्प चूर्ण करके अधिक शोभित होरहाहै ॥ ३० ॥ इस समय हंस गण, मनोहर विशाल पंखवाले, कामप्रिय, पद्म परागसे सने, महा नदियोंके किनारों पर खडे हुए चक्रवाकोंके झुन्ड सहित विहार कर रहेहैं ॥ ३१ ॥ मतवाले हाथियोंके झुन्डमें, घमंडी वृषभोंमें, और नदियोंके निर्मल जलमें शरद लक्ष्मी खंड २ होकर शोभायमान होरहीहै ॥ ३२ ॥ आकाश मंडलको बादलोंसे छूटा हुआ देख, वनोंमें भूषण रूप पंख पसार, प्रियामें अनुराग शून्य शोभा शून्य और उत्सव शून्य होकर समस्त मोर गण ध्यान कर रहे हैं ॥३३॥ मन हरण करनें वाली सुगन्ध, बहुत सारे सुवर्णकी समान रंगके उजले आसन वृक्षोंकी डालियें फूलोंके भारसे झुककर वनस्थलीको महा शोभायमान कर रहीं हैं ॥ ३४ ॥ तडाग प्रिय, अपनी २प्यारी हथनियोंके साथ रहनें वाले, वनवासी फूलोंके सूँघनें वाले, मदके भारसे आलसी हुये, मदसे उत्कट गजेन्द्र समूहोंकी गति अति धीमी पड गई है ॥ ३५ ॥ आकाश मण्डलका वर्ण विमल असिके तुल्य हो गया है, नदियोंके जल-

का प्रवाह अत्यन्त घट गया है; पवन कमल फूलकी गन्धसे युक्त और शीतल होकर चलती है; सब दिशायें अंधकारसे छूटकर प्रकाशित हो रहीं हैं ॥ ३६ ॥ सूर्य नारायणकी धूपका ताप लगनेंसे पृथ्वीपर की कीचडका नाश हो गया, धूल उडनें लगी यह शरदऋतु परस्पर वैर किये हुये नृपति लोगोंकी चढाई करनेंका समय है ॥ ३७ ॥ इस समय शरदके गुणसे बैलोंका रूप और शोभा बढ जाती है, बडे प्रसन्न,धूरि युक्त अंगवाले, मदमत्त वृषभ इस समय युद्धकी इच्छा करे हुये गायोंके बीचमें खडे शब्द करते हैं ॥ ३८ ॥ कामके व्याप्त होनेसे जिनका अनुराग बढ गया है, ऐसी अपनी परिवारके सहित धीरे २ गमन करनें वाली हथिनी वनमें मतवाले चलते हुये अपने पतिके पीछे, घेरती हुई चलती हैं॥३९॥अपने सुन्दर पंख रूप भूषणका त्याग किये,मोरगण नदीके किनारोंपर रहने वाले सारसोंसे धमकी पाकर दीनमलीन हो चले जाते हैं ॥ ४० ॥ गजेन्द्र गणोंके गलफुओंको भेदकर मदकी धार निकल रही है वह गजराज खिले हुये कमल फूलोंसे युक्त सरोवरमें बैठे हुये कारण्डव और चक्रवाकोंको पीडित करके जल पीरहे हैं ॥ ४१ ॥ सारस गणोंके शब्दसे शब्दायमान, कीचड रहित, वालुकासे पूर्ण बैल गायोंसे युक्त नदियोंके समूहमें हंसगण हर्षित होकर कूदते फांदते हैं ॥ ४२ ॥ इस समय नदी मेघ, झरनें, जल अति बढा हुआ पवन, मोर, और उत्सव रहित वानरोंका शब्द बंद हो गया है ॥ ४३ ॥ इस समय अनेक वर्ण वाले और नये मेघोंके उदय होनेंपर जो चल फिर नहीं सकतेथे, इस कारण मृतककी तुल्य घोर विषधर बहुत दिनोंसे भूखे सर्प गण, विलसे निकलकर घूम रहे हैं ॥ ४४ ॥ इस समय शोभायमान चन्द्रमाकी किरणोंका स्पर्श होनेंसे, तारा रूप नेत्र पुतलियोंके तारे धारण किये हर्षवती सन्ध्या आकाश स्थलको छोडे देती है ॥ ४५ ॥ इस समय उदय हुआ चन्द्रमा रात्रिके मुखकी समान; तारागण खुले हुये मनोहर नेत्रोंकी समान और चांदनी श्वेत वासनोंकी समान हैं इस कारणसे इस समय रात्रि वस्त्र धारण किये हुये अच्छे लक्षण वाली स्त्रीकी समान विराजमान है ॥ ४६ ॥ इस समय सारसगण पकेहुये धानोंकी बालें खाय, हर्षित होकर पवनसे चलायमान मालाकी समान वेग सहित आकाशमें उडे जारहे हैं ॥ ४७ ॥ इस

समय इस महा कुंडके जलमें एक हंस सो रहा है, और उसही सरोवरमें बहुत सारे बबूलेभी शोभा पा रहे हैं; इससे ऐसी शोभा हो रही है; मानों रात्रिके समय नक्षत्र गणोंसे युक्त मेघ सहित आकाशमें पूर्ण चन्द्रमा निकले हुये शोभा पारहे हैं॥४८॥इस शरद कालमें हंसगण वापियोंकेचंद्रहार स्वरूप;खिले हुये कमल फूल मानों उनकी माला हैंसो इन वस्तुओंसे शोभित होनेंके कारण वह वापियें विभूषितउत्तम स्त्रियोंकी समान उत्तम शोभाधारण किये हुयेहैं४९प्रभातकालमें बाँसोंका शब्द रूप नगाडेद्वारा मिला, पवनका किया हुआ शब्द गुफाओंकी ध्वनि और वनैले बैलोंके शब्दसे मिलकर मानों परस्पर एक दूसरेके शब्दको बढा रहाहै ॥ ५० ॥ जिनमें धोये हुए विमल महीन कपडेकी तुल्य खिले हुए फूल हैं, ऐसी हँसती हुई व मन्द कम्पाय मान नई काशके समूहोंसे नदियोंके किनारे शोभाय मान हो रहेहैं॥५१॥ वनके मध्य मधुपान करनेंमें चतुर मतवाले हर्षित भ्रमर गण, कमल फूल और आसन पुष्पके परागसे रँग, गौर वर्णहो सुगन्धिके लोभसे पवनमें उडे जा रहेहैं॥५२॥ निर्मल जल, खिले हुए फूलोंके समूह, क्रौंचका शोर, पके हुए धानोंका वन, मन्द पवन, और विमल चंद्रमा, यह सब वर्षाका जाना और शरद ऋतुका आना बता रहेहैं ॥ ५३ ॥ इस समय प्रभात कालमें अपनें पतियों करके भोगी जानेंसे आलस्य पाई हुई कामनियोंकी समान, मीन रूप तगडी धारण किये नंदी वधूटियोंकी गति मन्द होगईहै ॥५४॥ चक्रवाक व शिवार युक्त काश रूपी वसन पहरे हुए नदियोंके मुख पत्र रेखा युक्त और रोचन लगाये वधूटियोंके मुखकी समान शोभा धारण किये हुएहैं ॥ ५५ ॥ प्रफुल्ल बाण और आसन पुष्पोंसे चित्र विचित्र हर्षित भ्रमरोंकी गुंजारसे गुंजायमान, वनोंमें प्रचंड धनुष धारण किये कामदेव विरही जनोंको दंड देनेके लिये अत्यन्त प्रचंड होगया ॥ ५६ ॥ मेघ अति वृष्टिसे सब लोकोंको संतुष्ट कर, नदी तडागोंको पूर्ण और वसुधाको धान्यसे पूरित कर, उस समय आकाश मंडलको त्याग चले गये हैं ॥ ५७ ॥ इस समय नदियें धीरे २ अपने किनारे दिखातीहैं, जैसे नवीन आई हुई वधुयें नये संगमसे लज्जाशीलहो अपने २ पतिको अपने जांघादि अंग सहजसे दिखा देतीहैं ॥ ५८ ॥ हे सौम्य! निर्मल जल वाले सारसोंके शब्दसे शब्दायमान चक्रवाकोंसे पूर्ण समस्त जलसे शोभायमान होर-

हैहैं ॥ ५९ ॥ हे राजकुमार ! परस्पर वैर रखनें वाले और एक दूसरेके जीतनेंका अभिलाष किये राजा लोगोंके उद्योग करनेंका यह समय आगयाहै ॥ ६० ॥ राजा लोगोंकी यात्रा करनेंका यही प्रथम समयहै, परन्तु यात्राकी उपयोगी तैयारियोंको करते अबतक सुग्रीव दृष्टि नहीं आते६१॥ इस समय पर्वतके शिखरोंपर आसन; सतावरी कोविदार दुपहरिया, व श्याम आदि तरुगण फूले हुए दृष्टि आतेहैं ॥ ६२ ॥ हे लक्ष्मण ! देखो ! इस समय हंस, सारस, चक्रवाक और कुरर आदि पक्षी नदियोंकी रेतियोंमें बैठेहैं ॥ ६३ ॥ हम प्राणप्यारी सीताजीको न देखनेसे और उनके शोकसे अत्यन्त आरत होगयेहैं; इसलिये हमारे लिये तो यह वर्षाका चौमासा मानों चारसौ वर्षकी समान बीताहै* ॥६४॥ प्राण जीवनी भार्या सीताजी भयंकर दंडकारण्यको उद्यानकी समान जान करके चकवीकी नांई वन आनेके समय हमारे पीछे२आईथीं ॥६५॥हे लक्ष्मण! प्रिया विहीन राज्य हराये दुःख आरत वनमें निकाले हुये हमपर सुग्रीव क्यों नहीं कृपा करते६६ यह अनाथ राज्य खोय, रावणसे पीडित दीन, घरसे निकाले हुये कामी रामनें हमारी शरण ग्रहणकीहै ॥ ६७ ॥ यही कारण विचार कर दुरात्मा सुग्रीव तुच्छ व पराजित समझ कर हमारा निरादर करताहै ॥ ६८ ॥ सीताजीके ढूढनेंके समयका स्थिरकर और प्रतिज्ञाकर वह दुर्मति सुग्रीव कृतार्थ हो इस सयम उसको यादकर नहीं जागता ॥ ६९ ॥ तुम हमारे वचन सुन किष्किन्धा नगरीमें गमन कर उस मूर्ख व स्त्रीके सुखमें आसक्त वानर सुग्रीवसे कहना ॥ ७० ॥ कि जो पुरुष कार्यार्थी होकर आये हुए, और प्रथम अपना उपकार किये हुए पुरुषको आशा देकर फिर उसका कार्य पूरा नहीं करता वह इस लोकमें अधम पुरुष कहा जाताहै ॥ ७१ ॥ अच्छाहो, वा बुराहो, जो वचन दिया गयाहै; ऐसे वचनको जो पुरुष सत्य रूपमें ग्रहण करतेहैं, वही निःसंदेह वीर और

* जानकी विन जीवन अति भारी ॥ अस्ताई ॥ पल पख बाडे घडी महीने, दिवस वर्ष सम बीतें रात्रिकाल युगसे लागतहैं यह गति भई हमारी ॥ अवल जान घर जनते न्यारे लख यह काम सतावे । ताहूपर सुग्रीव विरतही हमरी सुरत विसारी ॥ जानकी० ॥ विमला काश सरोवर निर्मल भये शरदके आये । या अवसर मोहिं मैन सतावे सुमन बाणकर धारी ॥ जानकी० ॥ वरषत नीर नेत्रसों अविरल नेह महा दुख दाई । जनक लडैतीके विन देखे, हैं बलदेव दुखारी ॥ जानकी० ॥

पुरुषोंमें श्रेष्ठहैं ॥ ७२ ॥ जो लोग अपना काम निकाल लेते, और जिस-का कार्य सिद्ध नहीं हुआहै ऐसे मित्रके कार्य वा उपकारको साधन नहीं करते; उनके मरनें पर मांसके खाने वाले जन्तु गणभी उनके मांसको नहीं खाते ॥ ७३ ॥ तुम निश्चयही संग्राम स्थलमें, हमसे खेंचे हुए सुवर्ण-की पीठ वाले और बिजलीकी समान गुण युक्त धनुषका रूप देखनेंकी इच्छा करते हो ॥ ७४ ॥ तुम फिर यह श्रवण करनें की इच्छा करते हो कि हम संग्राम भूमिमें क्रोधित हो वज्रके शब्दकी समान प्रत्यंचाकी घोर टंकार करें ॥ ७५ ॥ जब कि हम उसका सब बल जानतेहैं; और वह तु-म्हारे सहाय युक्त हमारे पराक्रम कोभी जान्ताहै तौभी उस सुग्रीवको यह चिन्ता नहीं कि यह वालिकी तरह मुझे मार डालेंगे बडे आश्चर्य की बात है ॥ ७६ ॥ हे पराये पुरको जीतनें वाले लक्ष्मण ! वानर राज सुग्रीव कृ-तार्थ होकर किस कारण इस समय वालिके वध और इस मित्रताईको स्मरण नहीं करते हैं ॥ ७७ ॥ वर्षाके वीतने पर ही प्रतिज्ञाके पूर्ण करनें का समय है, सो यह चार मासभी बीत गये तथापि वह विहारके सुखमें आसक्त होकर हमारी प्रतिज्ञाको नहीं जानता ॥ ७८ ॥ वह सुग्रीव अपने मंत्री और इष्ट मित्र गणोंके सहित मधुपानमें मत्त होकर हमारे ऊपर दया नहीं प्रगट करते ॥ ७९ ॥ हे महा बलवान ! हे वीर श्रेष्ठ ! इस समय तुम जाकर सुग्रीवसे हमारे क्रोधका रूप निवेदन करो और यह सब कठोर वचनभी उनसे कहदेना ॥ ८० ॥ जिस मार्गमें मारा जाकर वालि गयाहै; वह मार्ग कुछ इस समय छोटा नहीं होगयाहै; वह सबही भांतिसे हमारे वशमें है। हे सुग्रीव ! तुम अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार कार्य करो अपने भाई वालिकी राहमें न जाओ ॥ ८१ ॥ हमनें रण स्थलमें केवल एकही वाणसे वालिको मार डाला, परन्तु तुम जो सत्यसे भ्रष्ट हुए तो तु-मको हम बन्धु बान्धवों सहित मार डालेंगे ॥ ८२ ॥ हे पुरुष श्रेष्ठ ! इस विषयमें और भी करनें लायक कार्य जोकि हितकारी हों वह २ सब उनसे कह देनां क्योंकि इस शीघ्रतासे करने योग्य कार्यमें विलंब होगयाहै॥८३॥ और यहभी कह देना कि हे वानरेश्वर ! नित्य, धर्म, दर्शन करके जो प्र-तिज्ञा तुमनें की है उसको तुम पूराकरो देखो ! कहीं तुम हमारे छोडे हुए वाणसे मरकर वालिको मत देखना ॥ ८४ ॥

सपूर्वजंतीव्रविवृद्धकोपंलालप्यमानं
प्रसमीक्ष्यदीनम् ॥ चकारतीव्रांमति
मुग्रतेजाहरीश्वरेमानववंशवर्धनः ॥ ८५ ॥

वह मानव वंशके वढानें वाले उग्र तेजवान लक्ष्मणजी; यह देखकर कि वडे भाई साहवका क्रोध अत्यन्त वढता जाताहै और यह दीन भावसे विलाप कर रहेहैं सुग्रीवके प्रति अत्यन्त क्रोधित हुए ॥ ८५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकाण्डे त्रिंशःसर्गः॥३०॥

एकत्रिंशःसर्गः ॥

सकामिनंदीनमदीनसत्त्वंशोकाभिपन्नंसमुदीर्णकामम् ॥
नरेंद्रसूनुर्नरदेवपुत्रंरामानुजःपूर्वजमित्युवाच ॥ १ ॥

श्रीरामचन्द्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणजी, अगाध वीर्य कामसे उत्पन्न हुये शोकसे युक्त नरेन्द्र पुत्र राजकुमार श्रीरामचन्द्रजीसे बोले ॥ १ ॥ वह वानर साधु लोगोंके चरित्र पर नहीं टिकेगा, वह मित्रताका मूल राज्य लाभ रूप फलभी मनमें न समझेगा, और वानर राज्य, लक्ष्मी काभी भोग नहीं करेगा और उसकी बुद्धि प्रतिज्ञाके प्रतिपालन करनेंमेंभी आगे नहीं बढेगी ॥२ ॥ वह अपनी नीतिक्षय हो जानेंके कारणसे स्त्री आदिकोंके सुखमें आसक्त होगयाहै आपको प्रसन्नताके हेतु उसकी यह बुद्धि नहीं होगी कि उनका प्रत्युपकार कर वह इस समय मरकर वालिको देखे ! इस दुष्ट बुद्धि सुग्रीवको राज्य देना कुछ उचित नहीं हुआ ॥ ३ ॥ हमारे क्रोधका वेग उकसा आताहै, कि जिसके धारण करनेंमें हम समर्थ नहींहैं आज हम उस मिथ्यावादी सुग्रीवको मार करके अंगदको राज्य दे देंगे, वह वालि पुत्र मुख्य २ वानर गणोंके सहित सीताजीको खोजेंगे ॥ ४ ॥ इतनाकह और धनुष धारण करके लक्ष्मणजी खडे होगये, तव परवीरघाती श्रीरामचंद्रजी रणस्थलमें प्रचंड कोप शाली लक्ष्मणजीकी ओर देखकर उनको नम्र करते हुये वोले ॥ ५ ॥ हे लक्ष्मणजी ! तुम सरीखे पुरुष मित्रवध रूप पापका आचरण नहीं करते; जो पुरुष उचित ज्ञानसे कोपका संहार कर डालताहै; वही वीर और पुरुषोंके मध्यमें श्रेष्ठहै॥ ६ ॥ हे लक्ष्मण! वह मित्रघातरूप अकार्य तुमको करना उचित नहींहै, तुम सुग्रीवके प्रति साधु

ताका वर्ताव करके पहलेकी समान प्रसन्न हो जाओ ॥ ७ ॥ तुम रूखे वचनोंको छोड करके समयका उल्लंघन करनें वाले सुग्रीवको समझाते बुझाते हुये हितकर वचन कहना ॥ ८ ॥ जब रामचंद्रजीनें ऐसाकहा तो पुरुष श्रेष्ठ, परवीर घाती, वीरवर लक्ष्मणजी अपने वडे भाईकी आज्ञासे किष्किन्धा पुरीमें प्रवेश करते हुये ॥ ९ ॥ फिर शुभमति बुद्धिमान भ्राताका हित करनेंमें रत लक्ष्मणजीनें कोप प्रगट करते हुये कपिराज सुग्रीवके भवनमें प्रवेश किया ॥ १० ॥ मन्दराचल पर्वतकी तुल्य लक्ष्मणजी इन्द्रके धनुषकी समान कालान्तक, यमकी समान पर्वतके शिखरकी तुल्य धनुष धारण करके गमन करते हुये ॥ ११ ॥ मनमें विचाराकि जैसे उत्तर प्रत्युतर भाई साहबनें सुग्रीवसे कहनेंको कहेहैं; उन्हीके अनुसार कार्य करना उचितहै, यही विचार बृहस्पतिजीके समान बुद्धिमान लक्ष्मणजीनें सब उत्तर शोचलिये ॥ १२ ॥और उसही मध्यमें अपने वडे भ्राताकी कामक्रोधाग्निसे युक्त लक्ष्मणजी वडे वेगसे चले, अति वेगसे चलनेंके कारण वृक्षोंको तोडते चले जातेथे ॥ १३ ॥ वेगवान लक्ष्मणजी शाल,ताल,अश्वर्ण इत्यादि वृक्षोंको गिराते जाते और पर्वतके शृंगोंको तोडते उखाड़ते इधर उधर फेंकते जाते ॥ १४ ॥ वह पर्वतकी शिला ओंको अपनें दोनों चरणोंसे खंड २ करते, दूर २ पर चरण धरते, कार्यके वशहो अति शीघ्रतासे चलनें लगे; उस समय ऐसा ज्ञात होताथा कि मानों कोई मतवाला हाथी तोडता फोडता चला आताहे ॥ १५ ॥ इक्ष्वाकुश्रेष्ठ लक्ष्मणजीनें वडे २ पर्वतोंके वीचमें वसी हुई सेना समूहसे परिपूर्ण दुर्गम कपिराज पुरी किष्किन्धा नगरीको देखा ॥ १६ ॥ सुग्रीवके ऊपर क्रोध करनेंसे लक्ष्मणजीके अधर फडकनें लगे; उन्होनें किष्किन्धा नगरीके बाहर घूमते हुये बहुतसे वडे २ वन्दरोंको देखा ॥ १७ ॥ कुंजरकी समान वानर गणोंनें पुरुष श्रेष्ठ लक्ष्मणजीको क्रोधित देख भयभीतहो पर्वतों पर जाय वडे २ पर्वतोंके शिखर और वृक्ष ग्रहण कर लिये और खडे होगये ॥ १८ ॥ लक्ष्मणजी उन वानर गणोंको आयुध ग्रहण किये हुये देखकर बहुत लकडी डालनेंसे प्रज्वलित हुई अग्निके समान दूने क्रोधित होगये ॥ १९ ॥ शत २ वानर गण प्रलयकालकी मृत्युके समान लक्ष्मणजीको अत्यन्त क्रोधित देखकर चारों ओर भाग खडे हुये ॥ २० ॥

उनमेंसे प्रधान २ वानरोंने सुग्रीवके भवनमें प्रवेश करके लक्ष्मणजीके क्रोधमें भरकर आनेंका समस्त वृत्तान्त निवेदन किया ॥ २१ ॥ कामसे आसक्त हुआ सुग्रीव उस समय ताराके सहित मिलकर सुखभोग रहाथा; उसने उन कपिश्रेष्ठोंके वह वचन नहीं सुने ॥ २२ ॥ जब सुग्रीव कुछ न बोले तब मंत्रियोंकी आज्ञासे पर्वत व हाथियोंकी अनुहार मेघ समान वानर गण रोम फुलाकर लक्ष्मणजीके रोकनेके लिये किष्किन्धापुरीसे निकले ॥ २३ ॥ वह सबही वानर विकटाकार और सबही सिंहकी समान भयंकर डाढवाले दृष्टि आतेथे ॥ २४ ॥ किसीमें दश हाथीका किसीमें शत हस्तीका और किसीमें हजार हस्तियोंका बलथा इन सब वानरोंकी एकसीहो कान्तिथी ॥ २५ ॥ जब यह बाहर आये तो क्रोधित हुये लक्ष्मणजी उन वृक्षधारी महाबलवान वानरोंसे व्याप्त किष्किन्धा नगरीको देखते हुये ॥ २६ ॥ तब महावीर्यवान समस्त वानर दुर्ग कोटकी बारह दिवारी से बाहर परिखाके पार आकर प्रकाशित भावसे लडनेको खडे होगये ॥ २७ ॥ जितेन्द्रिय वीरवर लक्ष्मणजी सुग्रीवका प्रमाद और अपने भ्राता श्रीरामचंद्रजीके कार्यको विचार कर बहुत क्रोध करते हुये ॥ २८ ॥ लंबे २ और गर्म २ श्वास ले क्रोधके मारे लाल २ नेत्र होनेंसे नरश्रेष्ठ लक्ष्मणजी धूमसहित अग्निकी समान प्रकाशित होनेलगे ॥ २९ ॥ फल लगे हुये बाण और लप लपाती हुई प्रज्वलित जीभ धारण किये विषभरे पांच शिरवाले भुजंगकी समान वह प्रकाशमान हुये ॥ ३० ॥ कालाग्निकी समान प्रदीप्त, और क्रोध किये हाथीके समान प्रकाशमान, लक्ष्मणजीको देखकर अंगदजी अत्यंत, शोकातुर हुये ॥ ३१ ॥ यशस्वी लक्ष्मणजीने क्रोधके मारे लाल २ नेत्र कर अंगदजीको आज्ञादी कि हे वत्स! हमारे आनेंकी वार्ता सुग्रीव से निवेदन करो ॥ ३२ ॥ उनसे कहना कि हे शत्रुनाशक श्रीरामचंद्रजीके छोटे भाई लक्ष्मण अपने भ्राताके संतापसे संतापित हो तुम्हारे पास आय द्वार पर खडे हैं ॥ ३३ ॥ हेपरवीरघाती! यदि तुम्हारी रुचि होय तो उनके वचनका प्रतिपालन

करो । हे वत्स ! इतनी वात कहकर तुम वहांसे लौट आना॥३४॥ अंगद लक्ष्मणजीके यह वचन सुन शोकोपहतचित्तहो अपने चचा सुग्रीवसे जाकर बोले कि हे तात ! रामचंद्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणजी यहां आये हैं ॥ ३५ ॥ कार्य करने में चतुर अंगदजी लक्ष्मणजीके तीव्र वचनोंसे दीन वदन और भ्रान्तचित्त हो सुग्रीवके निकट जाकर पहले उनके चरणोंकी वंदना करते हुये ॥ ३६ ॥ उग्र तेजवान अंगदजीने सुग्रीवजीके दोनों चरण ग्रहण करकें फिर रुमाके चरणोंमें प्रणामकर लक्ष्मणजीके आनेकी वार्त्ता कही ॥ ३७ ॥ वह मदनमोहित मदमत्त वानर सुग्रीव निद्रासे क्लान्तचित्त होनेंके कारण अंगदजीके वचन और प्रणामको न जान सका ॥ ३८ ॥ फिर भय मोहित वानर गण लक्ष्मणजीको क्रोधित देखकर उनको प्रसन्न करते २ किलकिला शब्द कर उठे ॥ ३९ ॥ उन वानर लोगोंने लक्ष्मणजीको देखकर सुग्रीवके निकट जाय उनको जगानेके लिये वज्रतुल्य और महा समुद्रके महा तरंगकी समान भयंकर शब्द करना प्रारंभ किया ॥ ४० ॥ उस बडे भारी शब्दसे वानरराज सुग्रीवकी नींद टूटी, उस समय मारे मदकें उनके नेत्र अरुण होरहे और माला आदि गहने खस रहेथे वह बहुत व्याकुल चित्तहो जाग पडे ॥४१॥जब सुग्रीव जागरित होगये तब अंगदजीके मुखसे समस्त वचन सुनकर परामर्श देनेमें चतुर व प्रियदर्शन दो मंत्री सुग्रीवजीके पास आये॥ ४२ ॥ वह प्रभाव शाली चतुर, धर्म, और अर्थके विषयमें ऊंच नीच कहनेंके निमित्त आये हुये दोनों मंत्री लक्ष्मणजीके आनेंके विषयमें कहनें लगे ॥ ४३ ॥ वह दोनों मंत्री अर्थ युक्त वचनोंसे सुग्रीवको प्रसन्न करकें बोले, कि जिस प्रकार सुरपतिको देवतागण प्रसन्न करते हैं॥४४॥हे राजन्! आपको राज्य दिलानेवाले वह त्रिलोकीका राज्य करने योग्य महाभाग सत्यप्रतिज्ञ, दोनों भाई श्रीराम लक्ष्मणजी मनुष्यभावको प्राप्त हुये हैं (अर्थात् मनुष्य नहीं ईश्वर हैं) ॥ ४५ ॥ उन दोनोंमेंसे एक जन लक्ष्मणजी धनुष धारण करकें पुरीके द्वारपर खडे हुये हैं, उनकेही निमित्त वानरगण भीत और कम्पित होकर शब्द कर रहे हैं ॥ ४६ ॥ वह यह श्रीरामचन्द्रजीके भ्राता लक्ष्मणजीकि जो अपने बडे भाईके वचनकोही सारथि बना और

कर्त्तव्य अर्थके निश्चय रूप रथपर श्रीरामचन्द्रजीके वचन मान यहांपर आये हैं ॥ ४७ ॥ हे राजन्! यह ताराके पुत्र अंगदजी उन्ही लक्ष्मणजीके भेजे हुये तुम्हारे पास अति शीघ्र आये हैं ॥ ४८ ॥ वह लक्ष्मणजीही क्रोधसे लाल नेत्र किये मानों अपनी लोनाग्निसे वानरगणको जलातेही हुये द्वारपर खडे हैं ॥ ४९ ॥ हे राजन्! आप इस समय पुत्र और बान्धव गणोंके सहित शीघ्र जाकर मस्तक झुकाकर प्रणाम करके उनके रोषको शान्त कीजिये ॥ ५० ॥

यथाहिरामोधर्मात्मातत्कुरुष्वसमाहितः ॥
राजंस्तिष्ठस्वसमयेभवसत्यप्रतिश्रवः ॥ ५१ ॥

हे राजन्! धर्मात्मा श्रीरामचन्द्रजीनें जिस प्रकारसे आपका कार्य साधन किया है, आप सत्यनिष्ठ हो सावधान चित्तसे उनकी प्रतिज्ञाका पालन कीजिये॥५१॥इ० श्री० वा० आ० किष्किन्धाकांडे एकत्रिंशः सर्गः ॥ ३१॥

द्वात्रिंशः सर्गः ॥

अंगदस्यवचःश्रुत्वासुग्रीवःसचिवैःसह ॥
लक्ष्मणंकुपितंश्रुत्वामुमोचासनमात्मवान् ॥ १ ॥

अंगदजीके वचन सुन उन मंत्रिगणोंके सहित सुग्रीवजी सचिव गणोंके सहित कोपायमान लक्ष्मणजीको प्रसन्न करनेके लिये आसनसे खडे हो गये ॥ १ ॥ मंत्रके विषयमें निष्ठावान मंत्र कुशल सुग्रीवजी गुरु लघु विचार कर मंत्र जाननें वाले मंत्रियोंसे कुछ न बोले ॥ २ ॥ हमनें कोई दुष्ट वचन नहीं कहा; और कोई दुष्ट कार्य नहीं किया; फिर श्रीरामचन्द्रजीके भ्राता लक्ष्मणजी किस निमित्त कुपित हुये हैं! इस बातकी हमें बडी चिंताहै ॥३॥ हम जानते हैं कि हमारे असुहृद् दोषोंके ढूंढने वाले शत्रु लोगोंनें हमारे दोष निःसन्देह रामानुज लक्ष्मणजीसे कहे हैं ॥ ४ ॥ इस विषयमें यथाविधि और यथाबुद्धि तुम सब लोग विचार करो कि यही बात है; अथवा कुछ और ॥ ५ ॥ हमको श्रीरामचन्द्र व लक्ष्मणजीसे कुछ भय नहीं है; परन्तु बिना अपराधसे कोपित हुये मित्रसेही भय हुआ करता है ॥ ६॥ मित्रताई करना सदाही सरल है. परन्तु मित्रताका निवाहनाही बडा कठिन कार्य है; क्योंकि चित्तकी अतिस्थिरतासे हुये अल्प कारणसे प्रीतिमें भेद प-

ड जाता है ॥ ७ ॥ इस निमित्त ही हम महात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे त्रासित हुये हैं; क्योंकि जो प्रत्युपकार करनेको हम समर्थहैं; वह अबतक हमनें पूरा नहीं किया ॥ ८ ॥ जब सुग्रीवजीनें इस प्रकार कहा, तो मंत्रिगणोंमें श्रेष्ठ हनुमानजी अपने तर्कसे बोले हुये मंत्रियोंके बीचमें बोले ॥ ९ ॥ हे कपिगणेश्वर ! आप जो उत्तम उपकारको नहीं भूलते यह कुछ आश्चर्यकी बात नहींहै क्योंकि महात्मा लोगोंका स्वभावही ऐसा होताहै॥१०॥ श्रीरामचन्द्रजीनें भयको छोड करके दूरसेही आपका प्रिय कार्य करनेंके लिये इन्द्र तुल्य पराक्रम शाली वालिको मारडाला ॥ ११ ॥ इसलिये श्रीरामचन्द्रजी प्रेमके हेतुसेही आपके प्रति क्रोधित हुएहैं, इसमें कुछभी संदेह नहींहै; उस प्रेमके कोपके हेतुही उन्होंने इन लक्ष्मीवान लक्ष्मणजीको आपके पास भेजाहै॥१२॥हे कालके जाननेंवालोंमें श्रेष्ठ! आपने भोगके समय मतवाले होकर समयको नहीं जाना, इस समय आप देखिये कि सीताजीके ढूंढनेंका काल सुशोभित शरदऋतु आईहै; इसलिये खिले हुए शतावरीके वृक्षोंसे पृथ्वी शोभायमान होरहीहै ॥ १३ ॥ आकाश मंडलमें ग्रह नक्षत्र सब निर्मल होगये; मेघ जहांके तहां विलाय गये, दिक् सरित, और समस्त सरोवर प्रसन्न होगयेहैं ॥ १४ ॥ हे कपिश्रेष्ठ ! सीताजीके ढूंढनेंके निमित्त उद्योग करनेंका समय आगया; और उसको आपने अबतक नहीं जाना; आप भोगसुखमेंही मतवालेहैं बस इसी कारणसे लक्ष्मणजी यहां पर आयेहैं ॥ १५ ॥ हृतभार्या, इसलिये अत्यन्त कातर महात्मा श्रीरामचंद्रजीके पुरुषान्तर (लक्ष्मणजी) से सुने हुये कठोर वचन आप सहन करें ॥ १६ ॥ आपनें अपराध कियाहै; इसलिये हाथ जोडकर लक्ष्मणजीकी प्रसन्नताके सिवाय और किसी कार्यसे हम आपका मंगल कार्य नहीं देखते ॥ १७ ॥ राजकार्यमें नियुक्त मंत्री लोगोंको उचितहै कि राजासे अवश्यही हितकर वचन कहैं; इस कारणसेही भय छोडकर हमनें यह निश्चित वचन आपसे कहे ॥ १८ ॥ श्रीरामचन्द्रजी क्रोधित हो धनुष चढाकर देव, असुर और गन्धर्वोंके सहित समस्त जगत् अपनें वशमें रख सकतेहैं ॥ १९ ॥ विशेष करके पहला उपकार स्मरण किये हुये कृतज्ञ पुरुष जिनको फिरभी प्रसन्न करना होगा; सो ऐसे पुरुषोंपर क्रोध करना उचित नहींहै ॥ २० ॥ हे राजन् ! आप पु

और इष्ट मित्रोंके सहित मस्तक झुका प्रणाम करके अपनी प्रतिज्ञामें टिकिये कि जैसे स्त्रीका कल्याण पतिके अधीनमें रहनेंहीसे होताहै॥२१॥

नरामरामानुजशासनंत्वयाकपींद्रयुक्तंमन
साप्यपोहितुम् ॥ मनोहितेज्ञास्यतिमानुषं
बलंसराघवस्यास्यसुरेंद्रवर्चसः ॥ २२ ॥

हे कपीन्द्र! श्रीराम और उनके भाई श्रीलक्ष्मणजीकी आज्ञाको मनके द्वाराभी उल्लंघन करना आपका कर्त्तव्य नहींहै; और आपका मन बालि वधके हेतु इन्द्र तुल्य पराक्रम शाली श्रीरामचन्द्रजीके अमानुषिक बलको तो जानताहीहै ॥ २२ ॥ इ० वा० आ० कि० द्वात्रिंशःसर्गः ॥३२॥

त्रियस्त्रिंशः सर्गः ॥

अथप्रतिसमादिष्टोलक्ष्मणःपरवीरहा ॥
प्रविवेशगुहांरम्यांकिष्किंधांरामशासनात् ॥ १ ॥

हनुमानजीनें तो इस प्रकारसे सुग्रीवको समझाया बुझाया, तब परवीर विनाशी लक्ष्मणजी अंगदजीके द्वारा सुग्रीवकी आज्ञाको प्राप्तकर श्री रामचंद्रजीकी आज्ञा पालन करनेंके हेतु मनोहर गुहामें बसी किष्किन्धा पुरीमें प्रवेश करते हुए ॥ १ ॥ द्वार पर खडे हुए महा बलवान् समस्त वानर लक्ष्मणजीको देख हाथ जोडकर खडे होगये ॥ २ ॥ दशरथ कुमार लक्ष्मणजीको क्रोधसे लम्बे २ श्वास लेते हुए देखकर कपिगण त्रासित होगये और इनको रोक न सके ॥ ३ ॥ श्रीमान् लक्ष्मणजीनें वह दिव्य रत्न मयी दिव्य रत्नसे बनी; फूले हुए वनवाली रमणीक गुफा देखी, ॥ ४ ॥ वह बडे २ धवर हरे और अटा अटारियोंसे अनेक विधिके रत्नोंसे, और सर्वदा उत्पन्न होते हुए वृक्षोंके समूहसे परिशोभित होतीथी ॥ ५ ॥ और इच्छानुसार रूप धारण करनेंवाले, वस्त्राभूषण पहरे, माला व अम्बरधारी प्रियदर्शन देव और गन्धर्वपुत्र वानर गणोंसे शोभायमानथी ॥ ६ ॥ चन्दन अगर और कमल आदि फूलोंकी सुगन्धिसे सुगन्धित; उसके मार्गोंमें मदिरा और मधु पीनेवाले लोग घूम रहेथे ॥ ७ ॥ लक्ष्मणजीनें उस स्थानमें विन्ध्याचल और मेरु पर्वतकी तुल्य बहुत सारे भूमि धवरहरे और विमल जलवाली नदियोंके समूह देखे ॥ ८ ॥ आगे चले

तो अंगदजीका रमणीक गृह देख और मैन्द,द्विविद,गवय, गवाक्ष,गज, शर-भ ॥९॥ विन्दुमाली, सम्पाति, सूर्याक्ष,हनुमान, वीरवाहु, सुबाहु,महात्मा नल ॥१०॥कुमुद, सुषेण, तार, जाम्बवान, दधिवक्र, नील, सुपाटल, सुने-त्र, ॥ ११ ॥इन सब मुख्य २वानरोंके अति विचित्र गृह महात्मा लक्ष्मण-जीनें राजमार्ग पर चलते हुये देखे॥ १२ ॥ यह सब गृह श्वेतवर्णके वाद-रकी समान उजले सुगन्धित चंदनादि वस्तु, और हारोंसे युक्त अति धन धान्यसे भरेपुरे व स्त्रीरूपी रत्नोंसे शोभायमानथे॥ १३ ॥ इस सब गृहोंके मध्यमें कुछेक अरुण व श्वेतरंग वाले पर्वतसे घिरे जानेके कारण मूढ व्यक्तिके प्रवेश करनेंके अयोग्य इन्द्र भवनकी सदृश सुग्रीवजीके गृहको लक्ष्मणजीने देखा ॥ १४ ॥ कैलासके शिखरकी समान श्वेतवर्ण धवरहरे और सर्वकालमें फल उत्पन्न कारी पुष्पित वृक्षोंसे परिशोभित१५॥व इनके अतिरिक्त औरभी इन्द्रके दिये धनादि और श्याम मेघघटाकी समान कल्पवृक्षादिसे शोभितथा इसकारण कि इन तरुवरोंकी छाया वडी शीतलकारिणी होतीथी ॥ १६ ॥ उस घरके द्वारपर बलवान हाथमें अस्त्र शस्त्र लिये हुये वानरगण खडेथे; उसका गुम्बज दिव्यमालासे ढका हुआ और सुवर्ण व तपाये हुये सुवर्णसे बना ॥ १७ ॥ जिस प्रकार सूर्य भगवान् महा मेघमें प्रवेश करतेहैं वैसेही महा वलवान् लक्ष्मणजी सुग्री-वके मनोहर गृहमें प्रवेश करते हुये; और किसी वानरनें उनको नहीं रोका ॥ १८ ॥ धर्मात्मा लक्ष्मणजी सुग्रीवकी सवारियें व आसनसे युक्त सात फाटक नांघकर शयन गृहके अंतःपुरमें पहुँचे ॥ १९ ॥ उस अंतः-पुरके अनेक स्थानोंमें महा मूल्यवान विस्तरोंसे विछिप्त बहुत सारे उत्तम२ आसन और सुवर्ण चांदीसे बनेहुये अनेक पर्यङ्कभी पडेथे॥ २० ॥ उस अंतःपुरमें प्रवेश करतेही लक्ष्मणजीनें बराबर अक्षरवाला समताल सहित वीणा आदि बाजोंसें उत्पन्न हुआ मधुर स्वर श्रवण किया॥ २१ ॥ महा बलवान् लक्ष्मणजी सुग्रीवके गृहमें रूप यौवन सम्पन्न अनेक आकार वाले बहुत स्त्रीरत्न देखते हुये ॥ २२॥ उनमें कोई २ उत्तम कुलमें उत्पन्न हुई, उत्तम माला, व उत्तम भूषण वसन धारण किये हुये, माला गूंधनेमें लग रहींथी॥ २३ ॥ श्रीरामचंद्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणजीनें सुग्रीवजीके सुख भोगमें परितृप्त, व्यग्रता रहित और अत्युत्तम भूषणधारी नौकर

चाकरोंको देखा ॥ २४ ॥ फिर श्रीमान् सुमित्राकुमार लक्ष्मणजी नूपुर धुन सुनकर व औरभी गहनें आदिकोंके शब्द सुन लज्जित हुये ॥ २५ ॥ वह गहनोंका शब्द श्रवण करके रोषके वेगसे अत्यन्त कुपित हुये और शब्दसे दशोंदिशा पूरित करते हुये प्रत्यंचाकी टंकार करनें लगे जिस्से कि स्त्रियोंके भूषणोंका शब्द बंदहो ॥ २६ ॥ उस रनवासमें प्रवेश करनेंके हेतु आचारको आगे किये हुये लक्ष्मणजी, श्रीरामचंद्रजीके कार्यमें सुग्रीवकी अप्रवृत्तिके हेतु कोप युक्त होकर आगे रनवासमें न बढकर एकान्त स्थानमें खडे रहे ॥ २७ ॥ कपिराज सुग्रीवजी उस धनुषकी टंकारको श्रवणकर त्रासितहो लक्ष्मणजीका आगमन जान अपने श्रेष्ठ आसनसे उठ खडे हुये ॥ २८ ॥ उन्होंनें विचाराकि अंगदजीनें जैसे पहले हमें इनके आगमनको बतायाथा सो इस समय भ्रातावत्सल लक्ष्मणजीका आगमन हमनें भली भांति जाना ॥ २९ ॥ अंगदजी करके कहे हुये सुग्रीवजी, धनुषकी टंकारके शब्दसे लक्ष्मणजीका आगमन जान विवर्ण मुख होगये ॥ ३० ॥ फिर वानरश्रेष्ठ व्यग्रता रहित सुग्रीवजी त्रासके मारे चंचलचित्तहो प्रियदर्शनवाली तारासे कहनें लगे ॥ ३१ ॥ हे शुभे ! श्रीरामचंद्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणजी स्वभावसे मृदुल चित्तहैं सो इसका क्या कारणहै कि यह क्रोधित होकर यहां आयेहैं सो तुम कहो? ॥ ३२ ॥ हे अनिन्दिते ! कुमारके रोषका कौन कारण दृष्टि आताहै? क्योंकि नरश्रेष्ठ लक्ष्मणजी कभी अकारण क्रोध नहीं करते ॥ ३३ ॥ हमने यदि उन लोगोंका कोई अपराध किया हो और यदि तुम समझती हो; तो उसको शीघ्र बुद्धिसे विचार कर हमसे कहो ॥ ३४ ॥ अथवा हे भामिनि! तुम स्वयंही उनके दर्शनकर और समझानें बुझानेंका वचन कह उन्हें प्रसन्न करो ॥ ३५ ॥ विशुद्धात्मा लक्ष्मणजी तुमको देखतेही क्रोध छोड देंगे, क्योंकि महात्मा लोग स्त्रियोंके निकट दारुण क्रोध नहीं करते हैं ॥ ३६ ॥ जब तुम समझा बुझाकर उनको प्रसन्न कर लोगी, तिसके पीछे हम कमल दल समान नेत्र वाले शत्रुनाशी लक्ष्मणजीके दर्शन करेंगे ॥ ३७ ॥ तब विह्वलनेत्रा, महामतवाली चाल चलती, मद पान करनेंसे विह्वल नेत्र हुई, और श्रेष्ठ लक्षणवाली तारा सुवर्णकी लम्बी क्षुद्रघंटिका पहरे लक्ष्मणजीके निकट गयी ॥ ३८ ॥ मनुजराजकुमार महात्मा

लक्ष्मणजी वानरराजकी स्त्री ताराको देखकर स्त्रीकी निकटताके हेतु क्रोध रहित हो नीचे मुखकर खडे हो गये ॥ ३९ ॥ तारा मदिरा पान करनेंके कारण मतवाली होरहीथी इस कारण लज्जाहीन होकर; राजपुत्रकी प्रसन्नताकी दृष्टिके हेतु महाअर्थयुक्त समझानें बुझानेंके वचन प्रेम सहित ढिठाईसे कहनें लगी ॥ ४० ॥ हे राजकुमार! आपके क्रोधका क्या कारण है? कौन पुरुष आपकी आज्ञामें नहीं टिका हुआ है? कौन जन सूखे वृक्षोंको जलानें वाली अग्निमें शंका रहित चित्त होकर गिराहै॥४१॥ लक्ष्मणजी ताराके प्रेम सहित सान्त्वना वाक्य सुनकर प्रणयके दिखानें वाले निःशंक भावसे बोले ॥ ४२ ॥ तुम्हारा पति धर्म और अर्थका लोप करके वेगही कामासक्त होरहा है; सो तुम उसके हितकारी कार्यमें लगी रहकर क्या इस बातको नहीं जानती हो ॥ ४३ ॥ वह राज्यकी रक्षा करनेंके लिये चिंता नहीं करता; और हम लोग जो शोकसे व्याकुल हो रहे हैं इसकोभी नहीं विचारता उसनें राज्यकी रक्षा करनेंके लिये एक साधारण सभा बनारक्खी है और आप केवल काम भोगमेंही लगा रहता है ॥ ४४॥ कपीश्वरनें हमारे कार्य करनेंके लिये चारमासको अवधि बांधकर प्रतिज्ञाकी; सो वह उस प्रतिज्ञाको तोड व इस अवधिको नांघकरभी कामके विहारमें ऐसा आसक्त हो रहा है;कि अपनी प्रतिज्ञा व हमारे कार्यको कुछभी नहीं जानता ॥ ४५ ॥ धर्म और अर्थकी सिद्धके लिये मधु मद्यादि पानकरना ठीक नहीं है क्योंकि इसको पानकरनेंके हेतु धर्म और अर्थ दोनोंका नाश हो जाता है ॥ ४६ ॥ उपकार करनेंवालेके साथ प्रत्युपकार न करनेंसे धर्म लोप होजाता है; और जब गुणवान मित्रका कार्य नाशको प्राप्त हो जाता है तब कृतज्ञके अर्थकाभी लोप होजाता है ॥ ४७ ॥ मित्रका कार्य साधन करना और सत्य धर्म परायणता इन दोनोंको छोड देनेंसे धर्मकी रक्षा नहीं होती॥४८॥ हे तारे! तुम कार्यके निश्चयको भली भांतिसे जानती हो, सो इस उपस्थित कार्यके लिये जो कुछ करना उचित हो, वही किया चाहिये, बस यही बात तुम सुग्रीवसे जाकर कहो ॥ ४९ ॥ तारा, लक्ष्मणजीके वह धर्मार्थ संबंध युक्त मधुर वचन सुनकर सुग्रीवसे कालको उल्लंघन होनेंके हेतु विश्वास युक्त वचन बोली ॥ ५० ॥ हे राजेन्द्रकुमार! मित्रके योग्य कार्य तो अभी नहीं बीता है, इस कारणसे आ-

पके कोपका समय अभी नहीं आ पहुँचा है और अपनेके ऊपर आ-पको क्रोध करना कर्त्तव्यभी नहीं है।आपका प्रयोजन साधन करनेंकी इच्छा किये अपने मित्रका कोई अपराधभी होजाय तोभी आप उसे सहलेंनेके योग्य हैं॥५१॥हे कुमार! आप गुणवान हैं इसलिये हीन पुरुषके ऊपर आपका क्रोध करना अनुचित है आप सरीखे पुरुष गण सतोगुण से क्रोधको वश किये हुये तपस्या पर आधार रखते हैं; इसलिये किस प्रकारसे आप क्रोध-के वशमें हो सकते हैं ॥ ५२ ॥ उस वानरबंन्धुके ऊपर क्रोधका कारण हम जानती हैं और हम यह भी जान चुकीहैं कि सीताके ढूंढनेका समय आगया है; और आपने हम लोगोंको जो कार्य कियाहै; और आपके प्रति हम लोगोंका जो कर्तव्य है उसकोभी हम जानती हैं॥५३॥ अबतक आपके क्रोध करनेंका कारण नहीं हुआ है; यह भी हम जानती हैं; हे नरश्रेष्ठ ! कामदेवका सहन करनेंके अयोग्य जो बल है, उसको भी हम जानतीहैं सुग्रीव जो स्त्रीजनोंके प्रति काममें लगे हुये व और कार्योंके करनेमें अनुरागी नहींहै यहभी ज्ञात है ॥ ५४ ॥ आपकी बुद्धि अबतक काम मंत्रके रसको नहीं जानती क्योंकि " दिनादशके अलबेले ललाहो "इसी कारणसे आप क्रोधके वश हुये हैं काममें आसक्त हुये मनुष्य गण देश काल और अर्थ किसीकी परवाह नहीं करते ॥ ५५ ॥ सो आपके भ्राता हमारे निकट तुम्हारे डरसे छिपे हुयेहैं इसलिये कामसे आसक्त और काम के वश होनेंसें लज्जाहीन वानर वंशोंके नाथका अपराध आप क्षमा करदें ॥ ५६ ॥ जिनका चित्त धर्म और तपस्या करनेमें ही केवल लगा रहता है; ऐसे महर्षि गण भी मोहित होकर कामके वश हो जाते हैं । फिर सुग्रीव तो वानर जाति तिसपर स्वभावसे ही चंचल चित्त और राजा इस लिये इसका काम भोगमें आसक्त होना कुछ आश्चर्यकी बात नहींहै ॥ ५७ ॥ मद भरनेके कारण आलस्ययुक्त हुई आँख वाली वानरी तारा अतुल बुद्धिम न लक्ष्मणजीसे ऐसा कह कर फिर अपने पतिका हित करने वाले यह वचन बोली ॥ ५८ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! यद्यपि सुग्रीव कामासक्त हो रहाहै तौ भी उसने आपका कार्य साधन करनेंके लिये पहलेहीसे आज्ञा देदीहै॥५९॥ विविध पर्वत वासी काम रूपी सहस्र २ करोड़ २ महावीर्य-

वान वानर गण यहांपर आय चुके हैं ॥ ६० ॥ हे महाबाहो ! आपनें अंतः- पुरमें प्रवेश न करके सदाचारकी रक्षाकी है अब आप इस समय रन- वासमें प्रवेश करिये क्योंकि छल रहित मित्र भावसे मित्रकी स्त्री देखने में कभी अधर्म नहीं होता ॥ ६१ ॥ शत्रुनाशक लक्ष्मणजी ताराकी अनुमति व शीघ्रता पाकर अंतःपुरमें प्रवेश करते हुये ॥६२॥ लक्ष्मणजीनें वहां प्रवेश करके महामूल्यका बिछौना बिछेहुये कांचनके बने आसनपर सुग्रीवको बैठे देखा ॥ ६३ ॥ दिव्य भूषण पहरे अति दिव्य रूपवान अति यशस्वी दिव्य माला और दिव्य वस्त्र धारण किये इन्द्रकी समान दुर्जय ॥ ६४ ॥ दिव्यमाला व दिव्याभरण इत्यादि पहरे स्त्रियों करके चारों ओरसे सेवित, कपिराज सुग्रीवको लक्ष्मणजीनें देखा तो वह लाल नेत्र अन्तककी समान हो गये ॥ ६५ ॥

रुमांतुवीरःपरिरभ्यगाढंवरासनस्थोवर
हेमवर्णः ॥ ददर्शसौमित्रिमदीनसत्त्वं
विशालनेत्रःसविशालनेत्रम् ॥ ६६ ॥

श्रेष्ठ हेम वर्ण, विशाल नेत्र, आसन पर बैठे वीरवर सुग्रीवनें रुमाको चिपटाये महावीर्यवान विशाल नेत्र वाले लक्ष्मणजीको देखा ॥ ६६ ॥ इ० श्री० वा० आ० कि० त्रयस्त्रिंशः सर्गः॥ ३३ ॥

चतुस्त्रिंशः सर्गः ॥

तमप्रतिहतंक्रुद्धंप्रविष्टंपुरुषर्षभम् ॥
सुग्रीवोलक्ष्मणंदृष्ट्वाबभूवव्यथितेंद्रियः ॥ १ ॥

उन अवारित क्रोध किये पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मणजीको अन्तःपुरमें आये हुये देख सुग्रीवजी अत्यन्त व्यथित हुये ॥ १ ॥ तेजसे देदीप्यमान क्रोधान्वि- त अपने भाईकी दुःखानलसे संतापित दशरथ कुमार लक्ष्मणजीको लंबे श्वास लेते हुये देखकर॥२॥कपिश्रेष्ठ सुग्रीवजी अपना स्वर्णासन त्यागकर इन्द्रकी अलंकृत ध्वजाके समान उठ खड़े हुये ॥३॥ सुग्रीवजीके उठनेपर रुमा इत्यादि सब स्त्रियें खडी होगईं; जिस प्रकार गगन मंडलमें चंद्रमाके निकल आनेपर तारागण उसके चारों ओर शोभित होतेहैं ॥ ४ ॥ श्री- मान् अरुणनेत्र सुग्रीवजी हाथ जोड महान् कल्पवृक्षकी समान

खडे रहगये ॥ ५ ॥ क्रोधित हुए लक्ष्मणजी नक्षत्रोंके बीचमें टिके हुये चंद्रमाकी समान रुमाके सहित नारियोंके बीचमें खडे हुए सुग्रीवसे बोले ॥ ६ ॥ श्रेष्ठकुलमें उत्पन्न, अगाध बुद्धि सम्पन्न जितेन्द्रिय, दयावान्, कृतज्ञ और सत्यवादी राजाही लोकमें पूजे जातेहैं ॥ ७ ॥ जो राजा अधर्ममें टिका हुआ उपकारी मित्रकी प्रतिज्ञा पूरण नहीं करताहै उससे अधिक निठुर पुरुष और कौनहै ॥ ८ ॥ पुरुष गण एक अश्वके लिये मिथ्या कहनेंसे; सौ घोडोंके मारनेंका दोष प्राप्त करतेहैं; और एक गौके मिथ्या कहनेंसे सहस्र गोवधके दोषी, और पुरुषके विषयमें मिथ्या कहनेसे अपने और स्वजनोंके विनाशका दोष प्राप्त करतेहैं ॥ ९ ॥ हे वानरश्रेष्ठ ! प्रथम मित्रसे उपकार प्राप्त होकर जो पुरुष मित्र गणोंका प्रत्युपकार नहीं करते, वह पुरुष कृतघ्न और सर्व जीवोंसे मार डालनेंके योग्य होतेहैं ॥ १० ॥ हे वानर ! सर्वलोकनमस्कृत ब्रह्माजीनें कृतघ्न पुरुषको देख क्रोधित होकर पहले यह श्लोक गाया-थाकि ॥ ११ ॥ गौके मारनें वाले, मदिरा पान करनेवाले, चोर, व्रतको तोडनें वाले इन सबका उद्धार सज्जनोंने कहाहै, परन्तु कृतघ्न पुरुषका उद्धार किसी प्रकारसे नहीं हो सकता ॥ १२ ॥ हे वानर ! तुम अनार्य, कृतघ्न और मिथ्यावादी बने जातेहो क्योंकि तुमनें पहले कृतार्थ होकर उसका प्रतिकार नहीं किया ॥ १३ ॥ जिस्से कि तुम्हारा कार्य सिद्ध होगयाहै इस कारणसे अब तुमको सीताजीके ढूँढनेंमें यत्न करना अवश्यकीयहै ॥ १४ ॥ तुम इस समय मिथ्यावादी होकर ग्रामीण भोग सुखमें आसक्त हो रहेहो; महाराज श्रीरामचंद्रजी तुम दुष्ट स्वभाव वाले मेंडककी बोली बोलते सर्पकी समानको नहीं जानतेथे ॥ १५ ॥ करुणामयमहाभाग महात्मा रामचंद्रजीनें वानरोंमें नीच, पाप करनेवाले तुमको वानरोंका राज्य दियाहै ॥ १६ ॥ यदि तुम महात्मा श्रीरामचंद्रजीका किया हुआ उपकार न मानोंगे तो शीघ्रही उनके बाणसे मारे जाकर वालिको देखोगे ॥ १७ ॥ हे सुग्रीव ! जिस बाणसे वालि मारागयाहै, वही बाण अब श्रीरामचंद्रजीके हाथमेंहै; इसलिये तुम प्रतिज्ञाका पालन करके वालिके मार्गका अनुसरण न करो ॥ १८ ॥

ननूनमिक्ष्वाकुवरस्यकार्मुकाच्छरांश्च

तान्पश्यसिवज्रसन्निभान् ॥ ततःसुखंनामनिषे
वसेसुखीनरामकार्यंमनसाप्यवेक्षसे ॥ १९ ॥

तुम श्रीरामचंद्रजीके धनुषसे छूटे हुये वज्र तुल्य बाणोंको न देखो, क्योंकि उन बाणोंका दर्शन करनेंसे सुखी होकर भोग सुख अनुभव कर सकोगे; इसलिये श्रीरामचंद्रजीका कार्य तुम अग्रहण न करो ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे चतुस्त्रिंशःसर्गः ॥ ३४ ॥

पञ्चत्रिंशःसर्गः ॥

तथाब्रुवाणंसौमित्रिंप्रदीप्तमिवतेजसा ॥
अब्रवील्लक्ष्मणंतारातारािधपनिभानना ॥ १ ॥

तेजसे देदीप्यमान लक्ष्मणजीनें जब इस प्रकारसे कहा तब चंद्रमुखी तारा लक्ष्मणजीसे बोली ॥ १ ॥ हे लक्ष्मण! इन सुग्रीवसे कर्कश वचन कहना आपको उचित नहीं है यह कपीश्वर! आपके मुखसे इस प्रकारके वचन श्रवण करनेंके योग्य नहीं हैं ॥ २ ॥ हे वीर! यह सुग्रीव, अकृतज्ञ, शठ, दारुण मिथ्यावादी और छलकारी नहीं हैं ॥ ३ ॥ श्रीरामचंद्रजीनें रणस्थलमें जो उपकार किया है; वह औरसे होनेंके अयोग्यहै; सो यह वानर, उसको भूले नहीं हैं ॥ ४ ॥ हे परवीरनाशी! रामचंद्रजीके प्रसादसे सुग्रीवजीनें कीर्ति, स्थिर राज्य, रुमा और हमको प्राप्त किया है ॥ ५ ॥ बहुत दिन दुःख भोगनेंके उपरान्त, अति उत्तम सुख पाकर विश्वामित्रजीकी समान इन्होंनें आये हुए समयको न जाना ॥ ६ ॥ इन माननीय धर्मात्मा महर्षि विश्वामित्रजीनें घृताची अप्सरापर अनुरागी होकर दशवर्ष वीतते हुए नहीं जानेथे ॥ ७ ॥ जबकि कालके जाननेवालोंमें श्रेष्ठ महातेजस्वी धर्मात्मा विश्वामित्रजीनें प्राप्त कालको नहीं जाना तब स्वभावसेही नीच जातिकी तो बातही क्याहै? ॥ ८ ॥ हे लक्ष्मणजी! देहधर्ममें टिके हुए, थके हुए कामभोगसे अतृप्त जनका अपराध आप श्रीरामचंद्रजीसे क्षमा कराइये ॥ ९ ॥ हे लक्ष्मण! आप नीच पुरुषकी समान विना निश्चित अर्थ जाने हुए सहसा क्रोधके वश न होवें ॥ १० ॥ हे पुरुषश्रेष्ठ! आपकी समान सतोगुणविशिष्ट पुरुष विना

विचारे क्रोधके वश नहीं होजाते ॥ ११ ॥ हे धर्मके जाननेंवाले! हम नम्रता सहित सुग्रीवके लिये आपको प्रसन्न कराती हैं; सो आप इस उत्पन्न हुए महा क्रोधको छोड दीजिये ॥ १२ ॥ हमको जान पडताहै कि यह सुग्रीव श्रीरामचंद्रजीके लिये रुमाको, हमको, अंगदको,राज्य, धन, धान्य, और पशु इत्यादि समस्तकोही परित्याग करदेंगे ॥ १३ ॥ सुग्रीव उस अधम राक्षसको मारकर रोहिणीके सहित चन्द्रमाकी समान सीताजीके सहित श्रीरामचन्द्रजीको ले आवेंगे ॥ १४ ॥ लंकामें रावणके पास इस समय एक अरब नव्वे सहस्र राक्षसोंकी सेना है ॥ १५ ॥ उन समस्त दुर्द्धर्ष कामरूपी सेनाको विना मार डाले सीताके हरण करनेंवाले रावणका वध न होसकैगा ॥ १६ ॥ हे लक्ष्मणजी! सुग्रीव बिना सहायके प्राप्त हुये उस सेना और विशेष करके उस क्रूर कर्म करनेंवाले रावणको मारनेंमें समर्थ न होंगे ॥ १७ ॥ उन देश कालके जाननेंवाले वालिनें हमसे यह सब वार्ता कहीथी, सो हमनें जैसी उनसे सुनी तैसेही कहती हैं; और उसके बलको हम जानती नहीं हैं ॥ १८ ॥ आपकी सहाय करनेंके वास्ते सेना बुलानेंके लिये प्रधान २ वानरगण भेजे गये हैं; वह लोग युद्धमें कुशल बहुतसे वीर्यवान वानरगणोंको दिशा विदिशाओंसे लेआमेंगे ॥ १९ ॥ यह कपीश्वर उन सब महाबलवान वानर गणोंकी राह देखरहेहैं; उन सबके बिना आये श्रीरामचन्द्रजीकी कार्य सिद्धिके लिये यह नहीं निकलतेथे ॥ २० ॥ सुग्रीवजीनें पहले जिस प्रकारकी सुव्यवस्था कीहै "कि एक पक्षमें जो वानर न आया वह मारडाला जायगा " सो इस्से अब समस्त महाबलवान् वानर सैना आयाही चाहतीहै ॥ २१ ॥ हे शत्रुनाशी! आप क्रोध परित्यागकरें; अतिशीघ्र आज ही हजार २ करोड़ २ ऋक्ष, सौ करोड़ गौ पुच्छ, और सैकडों करोड़ वानरों की सेना आवैगी ॥ २२ ॥

तवहिमुखमिदंनिरीक्ष्यकोपात्क्षतजसमे
नयनेनिरीक्षमाणा ॥ हरिवरवनितानयांतिशां
तिंप्रथमभयस्यहिशंकिताःस्मसर्वाः ॥ २३ ॥

हे लक्ष्मण! आपका क्रोधसे दीप्तिमान मुख और अरुणारे दोनों नेत्र देखकर वानरराजकी सब स्त्रियां शान्तिको नहीं प्राप्त कर सकतीं और

सबही शंकित होरहीहैं ॥ २२ ॥ इत्यार्पे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० किष्किन्धाकांडे पंचत्रिंशः सर्गः ॥ ३५ ॥

षट्त्रिंशः सर्गः ॥

इत्युक्तस्तारयावाक्यंप्रश्रितंधर्मसंहितम् ॥
मृदुस्वभावःसौमित्रिःप्रतिजग्राहतद्वचः ॥ १ ॥

जब तारानें विनीत भावसे इस प्रकारके धर्म संगत वचन कहे तब लक्ष्मणजी मृदुभावको धारणकर उनके वचन ग्रहण करते हुए ॥ १ ॥ जब लक्ष्मणजीनें ताराके वचन मान क्रोध त्याग करदिया तब सुग्रीवजीनें भी गीले वस्त्रकी समान वडा भारी भय त्याग दिया, जोकि उन्हें लक्ष्मणजीसे प्राप्त हुआथा ॥ २ ॥ फिर वानरराज सुग्रीवजीनें कंठमें पडी मादक गुणवाली अपनी विचित्रमाला तोड डाली; कि जिसके तोडतेही मद रहित होगये ॥ ३ ॥ तदनन्तर वानर श्रेष्ठ सुग्रीवजी महाबलवान् लक्ष्मणजीको हर्षित कराते हुए विनीत वाणीसे कहनें लगे ॥ ४ ॥ हे सुमित्रा नंदन ! हमनें, स्त्री,कीर्ति, वानरोंका राज्य जोकि छुटगयाथा, श्रीरामचन्द्रजीके प्रसादसे इन सबको फिर प्राप्त किया ॥ ५ ॥ हे राजकुमार! कौन पुरुष सुकर्म द्वारा विख्यात देव स्वरूप उन श्रीरामचंद्रजीके उपकारके किसी अंशकाभी बदला देनेंमें समर्थ होगा? ॥ ६ ॥ धर्मात्मा श्रीरामचंद्रजी हमारी सहायता केवल नाम मात्रसे प्राप्तकर अपने तेजसेही रावणको संहार सीताजीको प्राप्त होवेंगे; ॥ ७ ॥ जिन्होनें केवल एक बाणसेही सात तालके वृक्ष व पर्वत और पृथ्वीको विदीर्ण करदिया; उनको किसी की सहायताका क्या प्रयोजनहै? ॥८॥ हे लक्ष्मण ! जिनके धनुषकी टंकारके शब्दसे सशैल पृथ्वी कम्पितहोजातीहै; उनको किसीकी सहायका क्या प्रयोजनहै? ॥ ९ ॥ हे नरश्रेष्ठ ! नरवर रामचन्द्रजी जब अपने वैरी रावण का वध करनेंके लिये गमन करेंगे तब हमभी उनके पीछे २ चले जाँयगे ॥ १० ॥ हम उनके दासहैं; सो विश्वास और प्रेमके हेतु यदि कोई अपराध कियाभी हो तब इस आज्ञामें रहनेवालेका अपराध क्षमा करना चाहिये क्योंकि जिस दाससे अपराध नहीं होता ऐसा दास तो कहीं मिलताही नहीं ॥ ११ ॥ महात्मा सुग्रीवजीनें जब यह वचन कहे; तब उनको

सुनकर लक्ष्मणजी प्रसन्न हुये; और स्नेह सहित उनसे बोले ॥ १२ ॥ हे वानरनाथ ! हमारे भ्राता तुमको विनीत और सहाय प्राप्त होकर सर्वथा सनाथ हुएहैं ॥ १३ ॥ हे सुग्रीव ! जिस प्रकारका तुम्हारा प्रभाव और सरल भावहै; इस्से तुम कपिराज लक्ष्मीको भोगनेंके लिये बहुतही योग्यहो इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ १४ ॥ श्रीरामचन्द्रजी तुमको सहाय पाकर प्रतापवान हुएहैं इस्से वह निःसंदेह शीघ्रही शत्रुका नाश करनेंमें समर्थ होंगे ॥१५॥ हे सुग्रीव ! तुम धर्मज्ञ, कृतज्ञ, और संग्राममें विमुख होनेवाले नहींहो, सो, इस प्रकारके तुम्हारे वचन ठीकहीहैं ॥ १६ ॥ हमारे वडे भाई श्रीरामचंद्रजीके और तुम्हारे सिवाय कौन विद्वान पुरुष ऐसे वचन कहनेको समर्थ होसकताहै? ॥ १७ ॥ हे कपिवर ! क्या विक्रममें, क्या वलमें, सब भांतिसे रामचंद्रजीको समानहीं सहाय भाग्यसेही प्राप्त हुईहै॥१८॥परन्तु हेवीर! तुम हमारे साथ शीघ्रही इस स्थानसे चलकर; स्त्री हर जानेंके दुःखसे महाकातर श्रीरामचंद्रजीको सन्तोष प्राप्त कराओ १९

यच्चशोकाभिभूतस्यदृश्वारामस्यभाषितम् ॥
मयात्वंपरुषाण्युक्तस्तत्क्षमस्वसखेमम॥२०॥

हे सखे ! शोकसे व्याकुल श्रीरामचंद्रजीके वचन सुनकर, हमनें जो कुछ कठोर वचन कहेहैं वह तुम क्षमा करो ॥ २० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे षट्त्रिंशःसर्गः ॥ ३६ ॥

सप्तत्रिंशःसर्गः ॥

एवमुक्तस्तुसुग्रीवोलक्ष्मणेनमहात्मना ॥
हनूमंतंस्थितंपार्श्वेवचनंचेदमब्रवीत् ॥ १ ॥

सुग्रीव महात्मा लक्ष्मणजीसे इस प्रकार कहे जाकर एक ओर खडे हुये हनुमानजीसे बोले ॥ १ ॥ महेन्द्राचल, हिमालय और कैलास पर्वतके शिखर पर और मन्दराचल पाण्डु शिखर ; व पंच शैलपर जो वानर रहतेहों ॥ २ ॥ पश्चिमकी ओर तरुण सूर्य तुल्य वर्ण वाले नित्य दीप्यमान समुद्रके अन्तवाले पर्वतों पर जो टिक रहेहों ॥ ३ ॥ सन्ध्याकालमें उदय हुये मेघकी समान उदयाचल और अस्ताचल और पद्माचल पर जो भयंकर आकारवाले वानर गण वास करतेहैं ॥ ४ ॥ और अंजन पर्वत

परके रहने वाले अंजन वर्णके मेघकी तुल्य गजेन्द्र तुल्य बलशाली जो वानर रहतेहैं ॥ ५ ॥ और महाशैलकी गुहामें रहने वाले कनक समान वर्णवाले वानर समूह और मेरुपर्वतके पार्श्वमें रहनें वाले; और धूमा गिरिपर रहने वाले कपि वृन्द ॥ ६ ॥ और महारुण पर्वतके रहनेवाले, तरुण सूर्यकी समान प्रभावाले मधुपान कारी; भयंकर विक्रम करनेवाले वानर समूह ॥ ७ ॥ और सुगन्धि युक्त सुरम्य वनमें और तपस्वी गणोंके आश्रम वाले मनोहर बडे २ सब ओरके, बनोंमें जो वानर वसतेहों ॥ ८ ॥ अधिक क्या कहैं; वरन पृथ्वीपर जितने वानर वसतेहों तुम उन सबको, शीघ्र चलनेवाले, सामदानादिकी विधि जाननेवाले, वानरोंके द्वारा शीघ्रही इस स्थानपर बुलालो ॥ ९ ॥ यद्यपि हम जानतेहैं कि प्रथम वानरोंको बुलानेके लिये महावेगवान वानरगण भेजे गयेहैं; तथापि उनको शीघ्रता करानेके लिये और २ मुख्य २ वानरोंको भेजो ॥ १० ॥ जो २ वानर काम भोगमें आसक्त और बडे आलसीहैं उन सबकोही शीघ्रहो यहांपर लेआओ ॥ ११ ॥ हमारी आज्ञासे जो वानर लोग दशदिनके वीचमें यहांपर नहीं आजाँयगे; हम उन राजाज्ञाके न माननेंवाले दुरात्मा वानरोंको मारडालेंगे ॥ १२ ॥ जो कपिश्रेष्ठ हमारी आज्ञामें टिके हुयेहैं वह सब सहस्र २ कोटि २ वानर हमारी आज्ञासे अभी चले जांय विलंब न करें ॥१३॥ हमारी आज्ञाका प्रतिपालन करनेंके हेतु घोररूप मेघ और पर्वतोंकी समान वानरश्रेष्ठगण मानों आकाश मंडलको छायलेते हुये उन वानरोंको शीघ्रता करानेंके लिये यहांसे जांय ॥ १४ ॥ हमारी आज्ञा प्रतिपालन करनेंके लिये समस्त वानरगण शीघ्रतासे वेगभरी चाल चल कर समस्त वानरोंको लेआवें ॥ १५ ॥ पवनकुमार हनुमानजीनें सुग्रीवजीके यह वचन सुनकर सब दिशाओंमें विकाल वानर भेजदिये ॥ १६ ॥ कपिनाथके भेजे हुये वानरगण पक्षी और नक्षत्रोंके मार्गका अवलंबन करके आकाश स्थलमें उसी क्षण गमन करनें लगे ॥ १७ ॥ बडे २ मुख्य वानर लोग समस्त वानरोंको श्रीरामचंद्रजीका कार्य साधन करनेंके हेतु समुद्र, वन, और सरोवरोंपर भेजनें लगे ॥ १८ ॥ दंड आदि देनेमें मृत्युपतितुल्य वानरराज सुग्रीवकी आज्ञा श्रवण कर सब वानर शंकितहो प्रस्थान करते हुए ॥ १९ ॥ तिसके पीछे उस अंजन

गिरिसे तीन करोड महा बलवान् वानर आयकर श्रीरामचंद्रजीके निकट गये ॥ २० ॥ और जिस पर्वत पर सूर्य नारायण अस्त हो जातेहैं; उस स्थानके रहने वाले तपाये हुए सुवर्ण की समान वर्ण युक्त दश करोड वानर आये ॥ २१ ॥ कैलाश पर्वतके शिखरों परसे, सिंह केशर तुल्य वर्ण वाले हजार करोड वानर आपहुँचे ॥ २२ ॥ हिमालय पर्वत पर रहनें वाले,फल मूल भक्षण कारी करोड हजार वानर किष्किन्धामें आये॥२३॥ अंगार तुल्य वर्ण युक्त विकटाकार भयंकर कर्मकारी कोटि सहस्र वानर विन्ध्याचल पर्वतसे शीघ्र २ आगमन करनें लगे ॥ २४ ॥ क्षीर समुद्रकी वेला भूमिमें टिके तमाल वनवासी नारियल खानें वाले असंख्य वानर गण आनें लगे ॥ २५ ॥ वन, गुफा, और नदियोंके समूहसे महा बलवान् वानरी सेना, मानों सूर्य नारायणको पानही करती हुई सी आनें लगी॥२६॥ हनुमानजीके भेजे हुए जो समस्त वानर गण कपिसेनाको शीघ्रता करानें के लिये गयेथे, उन्होंनें हिमालय पर्वत पर महेश्वर यज्ञवाट स्थित भगवद्धाम महा वृक्षके दर्शन किये ॥ २७ ॥ पहले उस महा पर्वत पर समस्त देवता ओंका मन संतुष्ट करनें वाला महेश्वर दैवत मनोहर, अश्वमेध यज्ञ हुआथा ॥ २८ ॥ तिस यज्ञमें बहुत सारे अन्नादिकके पडनेंसे उत्पन्न हुए अमृत तुल्य स्वादु युक्त फल मूल वानर गणोंने उस स्थानपर देखे॥२९॥ जो पुरुप उस अन्नसे उत्पन्न हुए उन फल मूलोंको भक्षण करै तो वह एक मासतक आहार न करकै भी तृप्तही रहताहै ॥ ३० ॥ फल मूल भक्षण करनें वाले उन प्रधान २ वानरोंनें वह सब दिव्य फल मूल लिये और अनेक प्रकारकी ओषधियें भी जो वहांपर लगी हुईथी ग्रहणकी ॥३१॥ कपिगण सुग्रीवको संतोषित करनेंके लिये उस यज्ञस्थानसे सुगन्धिवान और मनोहर फूलभी लेते आये ॥ ३२ ॥ वह समस्त कपिश्रेष्ठ पृथ्वीके समस्त वानरोंको लेकर सब यूथोंके आगे आने लगे ॥ ३३ ॥ वह शीघ्रगामी वानरोंके झुन्ड मुहूर्त मध्यमें किष्किन्धामें जहां सुग्रीवजीथे आय पहुँचे ॥ ॥ ३४ ॥ उन्होंनें वह समस्त ओषधियें और मूल फल जोकि यज्ञ भूमिसे तोड लायेथे, सुग्रीवको देकर कहा ॥ ३५ ॥ महाराज ! आपकी आज्ञा पालन करनेंके हेतु पृथ्वी भरके समस्त वानरगण, पर्वत, वन, और नदियोंको नांघते हुए यहांपर चले आतेहैं ॥ ३६ ॥

एवंश्रुत्वाततोहृष्टःसुग्रीवःप्लवगाधिपः ॥
प्रतिजग्राहचप्रीतस्तेषांसर्वमुपायनम् ॥ ३७॥

जब उन वानरोंने ऐसा कहा, तो वानरनाथ सुग्रीवजीनें हर्षित और प्रसन्न होकर उनके दिये हुए सब उपहारके पदार्थ ग्रहण किये ॥३७॥ इ० श्रीम० वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडेसप्तत्रिंशः सर्गः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशः सर्गः ॥

प्रतिगृह्यचतत्सर्वमुपायनमुपाहृतम् ॥
वानरान्सांत्वयित्वाचसर्वानेवव्यसर्जयत्॥१॥

वानरनाथ सुग्रीवजीनें उन सबके दिये समस्त उपहार ग्रहण करके, व प्रशंसाकर उन सबको बिदा किया ॥ १ ॥ उन हजार २ कार्य किये हुए वानरगणोंको विदा देकर अपनेंको और महा बलवान श्रीरामचन्द्रजीको सुग्रीवजी कृतार्थ समझते हुए ॥ २ ॥ अनन्तर लक्ष्मणजी सुग्रीवको हर्षित देखकर; उन महा बलवान वानरोंके पति सुग्रीवजीसे मधुर वचन बोले ॥ ३ ॥ हे सौम्य ! यदि तुम्हारी इच्छा होतो हम इस समय किष्किन्धासे चले जाँयं । लक्ष्मणजीके ऐसे सुवचन सुनकर ॥ ४ ॥ सुग्रीवजी परम प्रसन्न होकर उनसे बोले कि आप चलिये हम सबभी आपकी आज्ञाके आधीन हैं ॥ ५ ॥ शुभ लक्षण सम्पन्न लक्ष्मणजीसे ऐसा कह सुग्रीवजीनें तारा आदि स्त्रियोंको गृहमें जानेंके लिये बिदा किया॥६॥ तब सुग्रीवनें " यहां आओ२; यह कहकर ऊंचे स्वरसे वानरोंको पुकारा, उनके वचन सुनकर वानरगण शीघ्र वहांपर आ पहुंचे ॥ ७ ॥ तारादि स्त्रियोंको देखनेंके योग्य वे वानरगण हाथ जोड खडे होगये तब सूर्य समान प्रभावाले सुग्रीवजीनें उनसे कहा ॥ ८ ॥ तुम शीघ्रतासे हमारी परम मनोहर पालकी ले आओ । सुग्रीवजीके वचन सुन शीघ्र विक्रम करनें वाले वानर ॥ ९ ॥ उनकी परम मनोहर शिविका ले आये, तब वानर नाथ सुग्रीवजीनें शिविकाको आयाहुआ देखकर ॥ १० ॥ लक्ष्मणजीसे कहा कि आप इसपर सवार हो जाइये ॥ यह कहकर उस सूर्यकी समान प्रभावाली सुवर्णकी शिविकापर सुग्रीवजी ॥ ११ ॥ लक्ष्मणजीके सहित सवार हुये; बहुतसे वानर उस पालकीको उठाये हुयेथे । सुग्रीवजीके ऊ-

पर श्वेत वर्णका छत्र लगाया गया ॥ १२ ॥ और शुक्ल वालोंका चमरभी चारों ओरसे होताथा। शंख भेरियोंके नादका शब्द होताथा बंदीगण स्तुति करतेथे ॥ १३ ॥ सुग्रीवजी अत्युत्तम राज लक्ष्मीको प्राप्त होकर शत शत महाबलवान् वानरगण कि जिनके हाथमें बडे पैने २ शस्त्र-थे ॥ १४ ॥ घेरे जाकर श्रीरामचन्द्रजीके निकट गमन करने लगे। राम करके सेवित उत्तम स्थानमें गमन करके ॥ १५ ॥ महा तेजवान सुग्री-वजी लक्ष्मणजीके सहित शिविका परसे उतर श्रीरामचन्द्रजीके निकट जाय हाथ जोडकर खडे होगये ॥ १६ ॥ सुग्रीवजीको हाथ जोडे हुये देख कर सब वानरगणभी श्रीरामचन्द्रजीको हाथ जोडकर खडे हुये तब सब वानर और सुग्रीवजीको हाथ जोड खडे हुये देख श्रीरामचन्द्रजी पंकज कलियोंसे युक्त तडागकी समान ॥ १७ ॥ वानरराजकी बडी सेनाको दे-ख सुग्रीवजीके प्रति प्रसन्न हुये। और चरणपर खडे हुये वानरनाथ सु-ग्रीवको श्रीरामचंद्रजीने उठाया ॥ १८ ॥ और अति आदरमान करकै प्रे-म सहित उनसे मिले, धर्मात्मा रामचंद्रजीनें सुग्रीवसे भेंटकर बैठने को क-हा ॥ १९ ॥ और जब सुग्रीवभी बैठगये तब श्रीरामचन्द्रजी, उनसे बोले कि धर्म, अर्थ, और कामका जो समय २ पर सेवन ॥ २० ॥ विभाग कर-के किया करता है, हे वीर! वानर श्रेष्ठ! वही राजा कहाता है। और जो ध-र्मको त्याग करके अर्थ और कामकी सेवा करता है ॥ २१ ॥ वह इस तर-हसे जागता है; कि जिस प्रकार वृक्षकी फुलंचीपर सोता हुआ जब गिर-ता है तभी जागता है; अमित्रोंके वधमें युक्त, मित्रोंके संग्रह करनेमें रत२२ राजा त्रिवर्गकी अर्थात् धर्म अर्थ और कामकी सेवा करता है वही धर्मसे संयुक्त होता है। हे शत्रु दमनकारी! सीताके ढूँढनेके लिये उद्योग करने-का यह समय आ गया है ॥ २३ ॥ सो तुम सब मंत्रिगणोंके सहित इस वि-षयमें सलाह करो सुग्रीवजी इस प्रकार कहे जाकर श्रीरामचन्द्रजीसे बो-ले ॥ २४ ॥ हे महाबाहो! आपके प्रसादसे हमनें नष्ट हुई, राज्य लक्ष्मी कीर्ति, और कुलके क्रमसे चले आये हुये कपिराजकोभी प्राप्त कियाहै २५ हे देव! जीतनें वालोंमें श्रेष्ठ! तुम्हारे प्रसादसे प्रसन्न आपके लक्ष्मणजीके किये उपकारका जो प्रत्युपकार न करै वह पुरुषोंके मध्यमें दूषित गिना जाता है ॥ २६ ॥ हे परवीरनाशी! यह सैकडों हजारों बडे २ वानर

पृथ्वीपर रहनें वाले समस्त महाबलवान् वानरोंको लेकर यहां उपस्थित हुये हैं ॥ २७ ॥ शूर श्रेष्ठ घोर दर्शन वानर ऋक्ष और गोपुच्छ सबही वन और पर्वतों परके दुर्गम मार्ग जानने वाले हैं ॥ २८ ॥ हे श्रीरामचन्द्रजी! देव और गन्धर्वोंके पुत्र कामरूपी वानरगण अपनी सेना गणोंके साथ मार्गमें टिक रहे हैं ॥ २९ ॥ हे शत्रुविनाशन! इन सैनापति वानरोंके साथ, शत् २,सहस्र२, कोटि२,अयुत २, शंकु२ (सौहजारका लाख, सौलाखका करोड,दश हजारका अयुत,करोड लाखका शंकुहोताहै) ॥३०॥ अर्बुद, सौ अर्बुद, मध्य मध्य और अन्त्य २ समुद्र २ परार्द्ध २ संख्या वाले वानर गणोंसे परिवृत (हजार शंकुका एक अरव, दश अरवका एक मध्य दश मध्यका एक अन्त्य वीस अन्त्यका एक समुद्र तीस समुद्रका एक परार्द्ध होताहै) ॥ ३१ ॥ वानरगण मेघ और पर्वतकी समान मेरु और विन्ध्याचलके रहने वाले, इन्द्रकी समान विक्रमकारी, यहांपर आवेंगे ॥ ३२ ॥ और सीताजीको खोजनें जांयगे, व राक्षसोंके साथ युद्ध करके रावणको मार जानकीको आपके निकट ले आवेंगे ॥ ३३ ॥

ततःसमुद्योगमवेक्ष्यवीर्यवान्हरिप्रवीर
स्यनिशवर्तिनः ॥ बभूवहर्षाद्वसुधाधि
पात्मजःप्रबुद्धनीलोत्पलतुल्यदर्शनः ॥ ३४ ॥

तब राजपुत्र वीर्यवान् श्रीरामचंद्रजी अपनो आज्ञामें टिके हुये कपिराजका भलीभांति उद्योग देख हर्षके हेतु खिले हुये नील कमलकी समान प्रफुल्लित होगये ॥ ३४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये किष्किन्धाकांडे अष्टत्रिंशः सर्गः ॥ ३८ ॥

एकोनचत्वारिंशः सर्गः ॥

इतिब्रुवाणंसुग्रीवंरामोधर्मभृतांवरः ॥
बाहुभ्यांसंपरिष्वज्यप्रत्युवाचकृताजलिम् ॥ १ ॥

सुग्रीवजीनें हाथ जोडकर जब इस प्रकारसे कहा तब धार्मिक श्रेष्ठ श्रीरामचंद्रजी; दोनों भुजा पसार उनसे मिलकर बोले ॥ १ ॥ कि यदि देवराज इन्द्रजी जल वर्षातेहैं तो कुछ आश्चर्य नहीं, सहस्र किरण वाले सूर्य भगवान जो अपनी किरणोंसे आकाशके अंधकारको दूरकर उसे

प्रकाशित करतेहैं, इसमें कुछ आश्चर्य नहीं ॥ २ ॥ और इसमेंभी कुछ आश्चर्य नहीं कि चंद्रमा जो अपनी विमल किरणोंसे आकाशको निर्मल करतेहैं। ऐसेही तुम्हारी समान सात्विक पुरुष जो मित्रगणोंकी प्रीति साधन करेंगे इसमें विचित्रताही क्याहै ? ॥ ३ ॥ हे सुग्रीव तुमसे जो शुभकारी कार्य होगा तो इसमें कुछ आश्चर्य नहींहै। हे सुग्रीव ! हम जानतेहैं कि तुम सदाही प्रिय बोलने वालेहो ॥ ४ ॥ हम तुम्हारे साथ मिलकर समरमें समस्त शत्रुगणोंके जीतनेंको समर्थ होंगे, तुम हमारे सुहृद और मित्रहो; इसलिये हमारी सहाय करना तुम्हारा सबसे बडा कर्तव्यहै ॥५॥ इस राक्षसने अपना नाश करनेके लिये जानकीको हरण कियाहै अनुह्लाद पहले जिस प्रकार छलसे पौलामी शचीको हरण करके नाशको प्राप्त हुआथा वैसेही निःसन्देह यह राक्षस विनाशको प्राप्त होगा ॥ ६ ॥ शत्रुओंके मारने वाले इन्द्रजीनें जिस प्रकार शचीके हरनें वाले और दैत्यको देनेंमें अनुमति करने वाले बलसे दर्पित शचीके पिताको मारडालाथा; हमभी वैसेही शीघ्र तीखे बाणोंसे उस राक्षस रावणका नाश करेंगे॥७॥श्रीरामचंद्रजी ऐसा कहही रहेथे कि इसी समयमें सूर्यकी किरणोंसे गरम हुई धूलराशि तीव्र प्रभाको ढककर आकाशमें उठी ॥ ८ ॥ उस अंधकारसे दूषित होकर सर्व दिशायें छाय गई और पर्वत वन काननके सहित पृथ्वी कंपायमान होनें लगी ॥ ९ ॥ फिर तेज दांत वाले बलवान पर्वताकार असंख्य वानरोंसे समस्त पृथ्वी परिपूर्ण होगई ॥ १० ॥ फिर पलक मारतेही सैंकडों करोड यूथनाथ वानरोंसे पृथ्वी परिपूर्ण होगई ॥ ११ ॥ नदियों परके रहने वाले, पर्वतोंके रहनें वाले समुद्रादिकोंके रहनें वाले और वनोंके रहनें वाले महाबलवान मेघ समान गर्जनकारी वानर आये ॥१२॥ दुपहरके सूर्यकी समान वर्ण वाले और शशि तुल्य गौर वर्ण वाले वानर बहुत कमल परागकी समान वर्ण वाले, बहुत श्वेत और सुवर्ण सम वर्ण वालेथे ॥१३॥ उनमें दश करोड हजार वानरोंको साथ लिये श्रीमान् शतवली नामक वानर दृष्टि आया ॥१४॥ तिसके पीछे कांचन पर्वतकी तुल्य वर्ण वाला ताराका पिता सुषेण अनेक बहुत सहस्र कोटि वानरोंकी सेनाके सहित आ पहुँचा ॥ १५ ॥ फिर सुग्रीवजीका श्वशुर रुमाका पिता तार नामक वानर यूथप, हजार करोड वानरोंकी सेनाके सहित आया ॥१६॥

फिर, पद्म पराग की समान वर्ण वाला. और घोर प्रभात कालीन सूर्यके रंगकी समान मुख वाला महा बुद्धिमान वानर श्रेष्ठ. और सब वानरोंमें अति उत्तम ॥ १७ ॥ बहुत सहस्र वानरोंकी सेनाके सहित. हनुमानजी-का पिता श्रीमान केशरी नामक वानर आया ॥ १८ ॥ गोपुच्छ वान-रोंका राजा भयंकर विक्रमकारी गवाक्ष, करोड सहस्र वानरोंको साथ लेकर आ पहुँचा ॥ १९ ॥ भयंकर वेगवान रीछोंका राजा शत्रुओंका मारने वाला धूम्र नामक ऋक्ष दो सहस्र किरोड ऋक्षोंकी सेना लिये हुये आया ॥ २० ॥ पनस नामक वीर्यवान यूथपति वानर महा बलवान घोर रूप तीन करोड वानर संग लिये वहां आगमन करता हुआ ॥२१॥ नील वर्णी अर्जुन पुंजकी समान द्युतिमान महा काय नील नामक यूथपति दशकोटि वानरोंको संग लिये हुये आया ॥२२॥ सुवर्ण पर्वतके तुल्य द्युतिवाला महा वीर्यवान गवय नामक यूथपति पांच करोड सेनाके संग उपस्थित हुआ ॥ २३ ॥ दरी मुख नामक बलवान यूथपति हजार कोटि वानरोंकी सेना संग लिये हुये सुग्रीवजीके निकट आय पहुँचा॥२४॥ मैन्द और द्विविद नामक महा बलवान वानर अश्विनीके पुत्र दोनों कोटि २ सहस्र वानरोंकी सेना संग लिये हुये आये ॥ २५ ॥ गज ना-मक बलवान वीर तीनकरोड वानरोंकी सेनाको ले आया और ऋक्षोंका राज महा तेजमान जाम्बवान॥२६॥दशकोटि ऋक्षोंकी सेनाले सुग्रीवजीके वशमें आया रूमण नामक तेजस्वी पराक्रमी वानर पति बहुतसे वानरोंके साथ ॥ २७ ॥ और महा बलवान सौ करोड वानर सैना संग लिये आया तिसके पीछे लक्ष २ करोड २ वानर संग लिये ॥२८॥ महा पराक्रम करने वाला गन्धमादन नामक यूथप आया तिसके पीछे हजार पद्म और हजार शंख कपियोंकी सेनाको साथ लिये ॥ २९ ॥ अपने पिता वालिके तुल्य पराक्रम करनें वाले अतिबुद्धिमान वानरसेना पतियोंके शिरमौर युव-राज अंगदजी आये फिर तारा गणोंके समान प्रकाशमान अतिभयं-कर पराक्रम करने वाले वानरोंको संग लिये तार नाम यूथ नाथ आ-या ॥ ३० ॥ उस तारके साथ अति प्रचंड पांच कोटि वानर सेनाथी तदनन्तर इन्द्र जनु नामक महावीर यूथनाथ ॥ ३१ ॥ ग्यारह कोटि वानरोंको संगलिये हुये दिखाई दिया फिर प्रभातकालके बालसूर्यके वर्णकी

समान रंभ नामक वानर यूथपति ॥२२॥ दशहजार एक शत् वानरोंकी सेनाको संग लिये हुये सुग्रीवजीके निकट उपस्थित हुआ; इसके पीछे महावीर यूथपति दुर्मुख नामक वानर ॥२३॥ महाबली दोकरोड वानरों-की सेनाको संग लिये हुये दिखाई दिया॥ फिर कैलाश पर्वतके शिखरकी तुल्य आकार वाले भयंकर पराक्रम कारी वानरों ॥ २४ ॥ की हजार करोड सैना संग लिये आते हुये हनुमानजी दिखाई दिये॥ फिर महा वीर्यवान् नल नामक यूथनाथ वृक्षोंपर रहने वाले ॥२५॥ शत कोटि एक सहस्र येक वानरों की सेना संग लिये हुये आया फिर श्रीमान दधि मुख नामक वानर पति नदि प्रदेशसे दशकोटि वानरोंकी अनी संगलि-ये हुये ॥ २६ ॥ महात्मा सुग्रीवजीके निकट प्राप्त हुआ शर कुमुद व-ह्नि और रंभ ॥ २७ ॥ व और भी बहुतसे इच्छानुसार रूप धारण करने वाले वानरोंके यूथप सब पृथ्वी वन और पर्वत आदिकोंको ढकते हुये आये ॥ ३८ ॥ व अनेक प्रकारके नाम धारी यूथप आये कि जिनकी संख्या नहीं है इन सब वानर दलोंके मध्यमें कोई कोई २ दल आता जाताथा, और कोई आय २ करकै बैठता जाताथा ॥ ३९ ॥ उन दलों के कोई २ वानर उन्हें घेरते छलांग मारते कोई २ गर्जते सुग्रीवजीके निकट पहुँचने लगे, जिस प्रकार मेघ सूर्यके निकट गमन करते हैं॥४०॥ और सबही वानर बहुत शब्द कर रहे थे वह सब महाबली सुग्रीवजीके निकट पहुँच कर मस्तक झुकाय २ अपना २ आना निवेदन कर रहे थे ॥ ४१ ॥ और कोई २ सुग्रीवजीके निकट पहुँचकर, उनका यथो-चित् आदर सन्मान कर हाथ जोड कर खडे होनें लगे ॥ ४२ ॥ तिसके पीछे धर्मात्मा सुग्रीवजीने शीघ्रताके सहित श्रीरामचंद्रजीके निकट जाय हाथ जोड उनसे समस्त वानर और वानर यूथ पतियोंका आगमन निवे-दन किया फिर वानर यूथपों से बोले ॥ ४३ ॥

यथासुखंपर्वतनिर्झरेषुवनेषुवर्षेषुचवानरेंद्राः ॥
निवेशयित्वाविधिवद्बलानिबलंबलज्ञःप्रतिपत्तुमीष्टे४४

हे समस्त वानरेन्द्र गण पर्वत, झरने, और वनके समूहोंमें उस सैना-को टिकाकर कि जिसका बल अच्छी तरहसे तुम सब जानते हो । विधि

पूर्वक इस बातका निर्णय करो कि कौन वानर आया और कौन नहीं आ-या ॥ ४४ ॥ इ० श्रीम० वा० आ० कि० एकोन चत्वारिंशः सर्गः॥३९॥

चत्वारिंशःसर्गः ॥

अथराजासमृद्धार्थःसुग्रीवःप्लवगेश्वरः ॥
उवाचनरशार्दूलंराममंपरबलार्दनम् ॥ १ ॥

फिर कपिराज सुग्रीवजी; नरश्रेष्ठ पर बल विनाशी श्रीरामचंद्रजीसे बोले ॥ १ ॥ कि हमारे राज्यमें रहनें वाले इन्द्रकी समान वलवान् काम-चारी वानर यूथप लोग यहां पहुंचकर अपनी२ सेनाओंमें टिके हुयेहैं ॥२॥ यह सब बहुत स्थानोंमें अपना परा विक्रम प्रगट कियेहैं; ऐसे भयंकर विक्रम कारी, दैत्य दानवोंकी तुल्य घोररूप बलवान् समस्त वानरोंकी सेना आय पहुँचीहै ॥ ३ ॥ यह सब कर्म करनेंमें विख्यात्, अपने वीर्यमें विख्यात बडे बलवान् युद्धमें कभी थकतेही नहीं,पराक्रम करनेंमें विख्यात् अर्थका निश्चय करनेमें स्थिर प्रतिज्ञावान ॥४॥ बडे श्रेष्ठ, समुद्रके तीरपर बसनें वाले, और अनेक पर्वतोंके वासी,आपके दास यह करोड २ वानर गण यहां पर आग-येहैं ॥ ५ ॥ हे शत्रुनाशी ! वह सब वानर देशोंके पालनें वाले स्वामीके हित कार्यमें रत आपके इच्छानुसार कार्यको साधन करनेंमें निःसन्देह समर्थ होंगे ॥ ६ ॥ वही यह हजार २ कोटि २ बहुत स्थानोंमें अपने पराक्रमको प्रकाश किये घोररूपी, दैत्य दानवोंकी समान वानर गण यहां पर आगयेहैं ॥ ७ ॥ हे नर श्रेष्ठ ! अब समय उपस्थितहै; अब जैसा आपका विचारहो वह कहिये, यह सब आपकी सेना आपके वशमेंहै; इस समय जो ठीक और उचित आज्ञाहो वह इनको दीजिये ॥ ८ ॥ हम इन लोगोंका ठीक बल जानतेहैं; तथापि आप इन सबको युक्तिसे युक्तहो वही आज्ञा दीजिये ॥ ९ ॥ जब सुग्रीवजीनें इस प्रकार कहा तब दशरथ कुमारश्रीरा-मचंद्रजी दोनों बाहें पसार उनसे भेंटकर बोले ॥ १० ॥ हे सौम्य ! हेमहा पंडित ! जनककुमारी सीताजी जीवितहैं; अथवा नहीं; और रावण किस देशमें रहताहै इस बातका पता लगाना उचितहै ॥ ११ ॥ जब यह बात जानली जायगी तब रावणके स्थानपर और वैदेही जीके निकट पहुंचकर तुम्हारे साथ परामर्श करके समयानुसार उचित्त कार्यका

विधान किया जायगा ॥ १२ ॥ हे वानरनाथ! हम या लक्ष्मण इस कार्यके साधन करनेंमें समर्थ नहींहैं! तुमही इस कार्यके कारणहो और तुम्ही इसके सिद्ध करनेंमें समर्थहो ॥ १३ ॥ हेवीर! तुम निःसन्देह हमारे कार्यको जानतेहो इसलिये तुमही इस विषयमें निश्चित कार्यको सोच विचार कर आज्ञादेदो ॥ १४ ॥ तुम हमारे अनुपम सुहृद, बलवान् पंडित, समयको भली प्रकारसे जाननें वाले अर्थ विचारनें वालोंमें अग्रगण्यहो और हमारा हितकारी कार्य करनेंमें लगे हुयेहो ॥ १५ ॥ जब सुग्रीवजीसे श्रीरामचंद्रजीनें ऐसा कहा तब सुग्रीवजी बुद्धिमान श्रीराम लक्ष्मणजीके आगेही वानर श्रेष्ठ ॥ १६ ॥ पर्वत सम आकार वाले मेघकी समान शब्दकारी विनत नाम यूथपसे बोलेकि हे वानरोत्तम! चंद्रमा व सूर्यकी समान वर्ण वाले वानर संगले ॥ १७ ॥ जो देश काल और नीति शास्त्रके जाननें वालेहों उनको साथले, कार्य करनेंमें निश्चय किये औरभी सैकडों सहस्रों वानरोंको साथ लिये ॥ १८ ॥ पूर्वदिशाको चलेजाओ. वहांपर पर्वत, वन इत्यादि स्थलोंमें जनककुमारी सीताजी और रावणके बसनेंके स्थानको ढूंडो (चारों दिशा ओंमें रावणके रहनेंके स्थानथे) ॥ १९ ॥ ढूँडनेंके समय सब पर्वतोंकी कन्दरा ओंमें दुर्गम स्थानोंमें, सब वनोंमें और नदियोंमें; रमणीय गंगा सरयू कौशिकी ॥ २० ॥ कालिन्दी, मनोहर यमुना और यमुनाके समीप वाले सब पर्वतोंको, और सरस्वती, सिन्धु, मणि तुल्य स्वच्छ जल वाला शोणभद्र ॥ २१ ॥ मही और शैल कानन सहित काल मही औरभी समस्त नदियोंमें और ब्रह्ममाल विदेह, मालव, काशिराज, और कौशलदेश ॥ २२ ॥ मागध, महाग्राम. पुण्ड्र अंग, इन समस्त देशोंमें और कोपाकार रेशमकेकीडे जहां होतेहैं, व चांदीकी खानि वाली भूमिमें जहाँ खानोंसे चांदी निकलतीहै ॥ २३ ॥ उन सब स्थानोंमें तुम लोग सीताजी और रावणका स्थान खोजते हुये, जहां कहींभी श्री रामचंद्रजीकी भार्या और दशरथजीकी पुत्र वधू जानकीजीहों देखना ॥ २४ ॥ और जो जो पर्वत और नगर समुद्रके टापुओंमें हों, और मन्दराचल पर्वतके किनारोंपर जो देश वसते हों, उन सबमें तुम भली प्रकार ढूँडना भालना ॥ २५ ॥ जो कानों तक वस्त्र लपेटेहों और जिनके कान अधर पर्यन्तहों, । और जिनका घोर लोह सम मुखहो, बडे वेगसे चलनें वाले व

एक पादक लोग जो टापुओंमेंहैं ॥ २६ ॥ और अक्ष संतान बलवान् राक्षस, किरात् तीक्षण चूडा वाले बडे बाल वाले सुवर्ण समान दीतिमान्, प्रियदर्शन ॥ २७ ॥ और जिन किरात देशोंमें कच्ची मछलियें भक्षण की जातीहैं, ऐसे किरात गण; नीचेके भागमें मनुष्योंकी समान आकार वाले और ऊपरके भागमें व्याघ्रकी समान आकार वाले नर व्याघ्र लोग जोकि जलके मध्यमें रहतेहैं ॥ २८ ॥ इन सब राक्षसोंके स्थानोंमें भली भांति देखना भालना पर्वतोंको देखते भालते, जिन देशोंमें अथवा द्वीपों-में उछल कूदकर जाना होसके, ऐसे सब देशोंमें ढूडना तुम्हारा परम क-र्त्तव्यहै ॥ २९ ॥ और तुम बडे यत्नके साथ सत्त राज्य सुशोभित यव द्वी-पमें जाना; और सुवर्ण कारी पुष्पोंसे शोभित रूपक द्वीपमें ढूँडना तुम्हारा कर्त्तव्यहै ॥ ३० ॥ जब सुवर्ण द्वीपको ढूंडकर आगे चलोगे, तब देव दा-नव गण करके सेवित शिशिर नामक पर्वत मिलैगा, उसके कँगूरे आका-शको भेद करके मानों स्वर्गको छू रहेहैं ॥ ३१ ॥ इन सब द्वीपादिकोंके पर्वतोंके दुर्गोंमें वनोंमें, और नदियोंके अप्रगट होनेंके स्थानोंमें, तुम यश-स्विनी राम भार्या जानकीजीको ढूंढना ॥ ३२ ॥ फिर समुद्रके उस पार जाकर, सिद्ध चारण सेवित लाल जल वाला शोण नामक नद मिले-गा ॥ ३३ ॥ वहां उसके रमणीक तीर्थमें, विचित्र वनोंमें, और कन्दरा युक्त सब पर्वतोंमें और वनोंमें खोज करना ॥ ३४ ॥ भयंकर अनेक उप-वनोंसे युक्त पर्वतोंसे निकली हुई समस्त नदियोंमें, और कन्दरा युक्त सब पर्वतोंमें और वनोंमें खोज करना तुम्हारा अवश्य कर्त्तव्यहै ॥ ३५ ॥ फिर भयंकर पवनके सन्नाटेसे भयंकर शब्द करता हुआ, अति उग्र तरंग युक्त समुद्रके द्वीप तुम लोग देखोगे॥३६॥इस इक्षु समुद्रमें ब्रह्माजीकी आज्ञा पाये हुये, भूंखसे सताये असुर गण नित्य २ परछांयी ग्रहण करके प्रा-णियोंको भक्षण किया करतेहैं, सो यहां पर बडी सावधानीसे जाना॥३७॥ इसलिये तिस समयमें मेघोंके समान गर्जते और बडे २ सर्पोंसे सेवित होनेंके कारण पार जानेंके अयोग्य उस समुद्रमें सुघाट पर उतरना ॥ ३८ ॥ जब इसके पार होजाओगे, तब लाल रंगके जलसे भरे भयंकर लोहित नामक सागर पर जाकर वहां एक बडा भारी शाल्मलीका वृक्ष देखोगे * ॥३९॥

* इससे शाल्मली द्वीपका अनमान होताहै ।

वहांपर पक्षीनाथ गरुडजीका, कैलाश पर्वतकी समान अनेक रत्नोंसे भूषित विश्वकर्माका बनाया हुआ गृह विराजमानहै ॥ ४० ॥ वहांपर सुरा समुद्रके पर्वतोंके शृंगोंपर पर्वत तुल्य भयंकर देह धारी, नाना रूपी, भया वह, मंदेह नाम वाले राक्षस गण नीचे मुख किये लटके रहते हैं ॥ ४१ ॥ यह राक्षस सूर्यके उदय होनेंपर उनसे युद्ध करनेंको आकर सूर्यके तेज-से तीनों वर्णोंके दिये हुये सन्ध्या समयके जलसे घायल होकर समुद्रके जलमें गिर पडते हैं; और फिर जीवित होकर इन पर्वतके कँगूरोंपर लट-कनें लगते हैं ॥ ४२ ॥ इन राक्षसोंको सन्ध्याके समय प्रतिदिन ब्राह्मण लोग मारते हैं; उनके मारनेंसे सूर्य रूपी भगवान प्रसन्न हो जाते हैं,इससे आगे बढकर उजले बादरकी समान क्षीर सागर देखोगे ॥ ४३ ॥ यह क्षीर सागर अपनी लहरोंसे ऐसा शोभायमान हो रहा है; मानों मोतियोंका हा-र पहर रहा हो;उस क्षीर सागरके मध्य में तुम अति श्वेत ऋषभ नामक प-र्वत देखोगे ॥ ४४ ॥ इस पर्वतके ऊपर सुवासित पुष्प युक्त अनेक प्रकार-के वृक्ष लगे हैं और वहीं पर एक तलावभी बडा उत्तम है जिसमें अनेक भांतिके पुष्प खिल रहे हैं ॥ ४५ ॥ इसका नाम सुदर्शनसर है, यह राज-हंसोंसे व्याप्त है और इसके किनारे २ देव,चारण, यक्ष, किन्नर, अप्सरा ग-ण ॥ ४६ ॥ ह[illegible]हो विहार करनेंके लिये उसी घरमें घूमा करते हैं। क्षी-र सागर उतरनेके बाद हे वानरगण! ॥ ४७ ॥ जलोद सागरको शीघ्रही दे-खोगे, यह समुद्र सब प्राणियोंको भय उपजानें वाला है । कारणकि वहां पर और्व्व ऋषिके क्रोधसे उत्पन्न तेजसे महा हय मुख तेज उत्पन्न हुआ है ॥ ४८ ॥ उस अद्भुत महा वेग हय मुख तेजका प्रलयकालमें सचराचर जगत् अन्न स्वरूप कहाता है। उस स्थानमें असमर्थ विनाशकी शंकासे डरे हुये प्राणियोंका महा आरत शब्द श्रवण आया करता है; यह प्राणी उस हय मुखके देखनेंसे डरकर रोया करते हैं ॥ ४९ ॥ स्वादु समुद्रके उत्तर तीरमें तेरह योजन विस्तार वाला कनक तुल्य प्रभाशाली सुवर्ण-की चट्टानोंसे युक्त एक महान पर्वत है ॥ ५० ॥ वहांपर हे वानरो! तुम चन्द्रमाकी तुल्य श्वेत वर्णवाले कमल दलकी समान विशाल नेत्र वाले धरणी धर भुजंगोंको देखोगे ॥ ५१ ॥ वहीं सहस्र शिरवाले नीलाम्बर धा-रण किये सब देवताओंके नमस्कार करनेंके योग्य अनन्तजी पर्वतके शि-

स्तरपर बैठे रहते हैं ॥ ५२ ॥ इनके शिरके निकट तीन स्कंध वाली सुवर्णकी केतु–स्वरूप ताल वृक्षके आधारसे बनी हुई वेदी विराजित है उस पर अनंतजी प्रतिष्ठित हैं ॥ ५३ ॥ इन्द्रजीनें उस तरुवरको पूर्व दिशाके चिह्न स्वरूप सीमाके अंतमें बिन्दुकी समान निर्माण कर रक्खा है उसके आगे परम हेममय देवता ओंका होता श्रीमान् उदय पर्वत है ॥ ५४ ॥ इस पर्वतकी एक कोटि सौ योजन चौडीहै, और उसके कँगूरे ऐसे ऊंचे हैं कि आकाशको स्पर्शही किये लेते हैं । वह सुवर्णकी बनी वेदी आधार पर्वतके सहित विराजमान है ॥ ५५ ॥ इस पर्वतपर फूले हुये सुवर्ण मय सूर्यकी समान ताल, तमाल, और कर्णिकारके वृक्ष शोभायमान हो रहे हैं ॥ ५६ ॥ वहांपर एक योजन विस्तार वाला और दश योजन ऊंचा सुवर्ण मय सौमनस शृङ्ग है ॥ ५७ ॥ पूर्वकालमें पुरुपोत्तम विष्णुजीनें राजा बलिको छलकर जब सब लोक नापेथे तब पहला चरण उन्होंने वहां रखकर दूसरा चरण मेरुके शिखर पर रक्खाथा ॥ ५८ ॥ सूर्य नारायण उत्तर दिशामें घूम जम्बूद्वीपकी परिक्रमा करकै फिर उसी ऊंचे शिखर वाले पहले कहे सौमनस शिखर पर टिके हुए फिर जम्बूद्वीपमें रहनेवाले मनुष्योंको दृष्टि आतेहैं॥५९॥और इसी शिखर पर, सूर्य समान प्रकाशमान तपस्वी, दीप्ति प्रयुक्त वैखानस वाल्यखिल्य महर्षि गण प्रकाशित होतेहैं ॥ ६० ॥ जिसके समीप सुदर्शन द्वीप प्रकाशित होताहै, और जब इस सौमनस शिखर पर सूर्य उदय होतेहैं; तभी सब प्राणियोंके नेत्रों में उजाला आताहै, इसका प्रकाश सबको ज्ञातहै ॥ ६१ ॥ उस पर्वतकी पीठ कन्दरा, और वनमें तुम लोग रावण सहित जानकीजीका अनुसन्धान करना ॥ ६२ ॥ सुवर्ण शैलके और महात्मा सूर्यके तेजसे युक्त हो अरुण वर्णकी पूर्व संध्या प्रकाशित होतीहै ॥ ६३ ॥ जिस्से कि समस्त भुवनोंमें प्रकाश करनेंके लिये सूर्यके उदयकी आवश्यकता देख प्रथमही ऊपरमें टिके हुए सब जनोंका प्रवेश द्वार स्वरूप उदय गिरिको ब्रह्माजीनें बनायाथा इससेही इसको पूर्व दिशा कहतेहैं ॥ ६४ ॥ उस पर्वतकी पीठपर झरनोंमें, और गुफाओंमें, तुम लोग रावण और जानकीजीका खोज करना ॥ ६५ ॥ उदयाचलके आगे इस पूर्व दिशामें जिसके अधिष्ठाता इन्द्रादि देवताहैं वहां सूर्य चंद्रमाका प्रकाश नहींहै इस कारणसे अंधेराही

अंधेराहै, इसलिये यहांसे आगे कोई नहीं देख सकता ॥ ६६ ॥ इन सब पर्वतोंमें, कन्दराओंमें, नदियोंमें, जितने कि समस्त स्थान हमनें कहे इन सब स्थानोंमें तुम लोग जानकी जीका पता लगाना ॥ ६७ ॥ हे कपि श्रेष्ठगण! बस यहीं तक तुमलोग जानेंको समर्थ हो; इसके आगे सूर्य भगवान रहित और सीमा रहित जो स्थान हैं उन सबको हम नहीं जानते ॥ ६८ जहां जानकीजी हों, और रावणके स्थान में उदयाचल पर्वत तक जाकर एक मासके पूर्ण होते २ तुम लोग फिर आना ॥ ६९ ॥ एक मासके ऊपर वहां पर न रहना यदि कोई एक मासके ऊपर रहेगा तो उसको हम मार डालेंगे, जाओ जनककुमारी जानकीजी को ढूंढभाल और उनका पता लगाकर आओ ॥ ७० ॥

महेंद्रकांतांवनषंडमंडितांदिशंचरित्वा
निपुणेनवानराः ॥ अवाप्यसीतांरघुवंश
जप्रियांततोनिवृत्ताःसुखिनोभविष्यथ ॥ ७१ ॥

इन्द्रकी स्त्री, वनादिकोंसे सुशोभित पूर्व दिशाको तुम चतुर वानर उत्तम रीतिसे खोज करके राघव प्रिया सीताजीको पायकर फिर सब जन सुखी होना ॥ ७१ ॥ इ०श्रीम० वा० आ० कि० चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४० ॥

एकचत्वारिंशः सर्गः ॥

ततःप्रस्थाप्यसुग्रीवस्तन्महद्वानरंबलम् ॥
दक्षिणांप्रेषयामासवानरानभिलक्षितान् ॥ १ ॥

वानर राज वीर वर सुग्रीवजीनें उस वानरोंकी सेनाको पूर्व दिशाकी ओर भेजकर कार्यके साधनका निर्णय करनेंमें चतुर वानरोंको दक्षिण दिशामें भेजा ॥ १ ॥ उनमें अग्नि पुत्र नील महा बलवान् हनुमानजी ब्रह्माका पुत्र महा बलवान् जाम्बवान् ॥ २ ॥ सुहोत्र, शरारि, शरगुल्म, गज, गवाक्ष, गवय, सुषेण, वृषभ ॥ ३ ॥ मैन्द, द्विविद, गन्धमादन, ताराके पिता सुषेण, उल्का मुख, अनंग, यह दोनों अग्निके पुत्र ॥ ४ ॥ व अंगद इत्यादि वेगसे चलनेंवाले महो महा पराक्रमी वानरोंको सब देशोंके जाननें वाले सुग्रीवजीनें दक्षिण दिशामें पठाया ॥ ५ ॥ जितनें वानर दक्षिण दिशाको भेजे गये उन समस्त वानरोंका मुखिया

बडे बली अंगदजीको करकै सुग्रीवजीनें दक्षिण दिशाको भेजा ॥ ६ ॥ कपीश्वर सुग्रीवजी, उस दिशामें जो जो देश दुर्गमथे, वह समस्तही इन वानर यूथपोंको बताने लगे ॥ ७ ॥ कि तुम लोग, सहस्र शिखर वाले विविध वृक्ष लताओंसे विराजमान विन्ध्याचल पर्वतको प्रथम देखोगे फिर महा भुजंग गण सेवित रमणीक नर्मदा नदी मिलैगी ॥ ८ ॥ फिर गोदावरी और रमणीक कृष्णवेणी नदी मिलैगी; तदनन्तर! मेकल, उत्कल, दशार्ण आदि देश मिलेंगे ॥ ९ ॥ फिर आब्रवन्ती, अवन्ती पुरी दिखलाई देगी। पश्चात् विदर्भ, ऋष्टिक, महीपक ॥ १० ॥ इत्यादि सब देश दृष्टि आवेंगे, फिर मत्स्य, कुलिंग, कौशिकादि देशोंको भली भांति खोजना; और नदी गुफा सहित दंडकारण्यमेंभी ढूडना ॥ ११ ॥ तिसके पीछे तुम सबोंको दूसरी गोदावरी नदी दिखाई देगी इसके आगे, अन्ध्र, पुन्ड्र, चोल, पाण्डय, केरल ॥ १२ ॥ आदि देश और अयोमुख नामक अनेक धातुओंसे युक्त पर्वत जिसपर बडे विचित्र शिखरहैं, मिलेगा; इसका वनभी सदा फूला फलाही रहताहै ॥ १३ ॥ चन्दनका वनभी इस पर लगा हुआहै; इस मलयाचलको भली भांति अनुसन्धान करना फिर स्वच्छ जलवाली दिव्य ॥ १४ ॥ अप्सरा ओंके झुन्डोंसे सेवित कावेरी नदी देखोगे, तिसके पीछे मलय पर्वतके अग्र भागमें बैठे हुए ॥ १५ ॥ महातेज सम्पन्न आदित्य तुल्य ऋषि श्रेष्ठ अगस्त्यजी को देखोगे. फिर प्रणामादि द्वारा उनको प्रसन्न करकै उनकी आज्ञासे चल ॥ १६ ॥ विविध ग्राह युक्त महानदी ताम्रपर्णीके पार होगे। चंदनके वनके द्वारा विचित्र ढकी हुई द्वीपोंसे युक्त, स्वच्छ जल वाली वह नदी ॥ १७ ॥ सर्व शृंगार किये स्त्रीकी समान अपनें पतिरूप समुद्रमें जा मिलती है। फिर हेममय दिव्य मुक्ता मणि विभूषित ॥ १८ ॥ कपाट युक्त पण्डय वंशियोंका फाटक देखोगे। हे वानरो! फिर तुम निश्चय समुद्रके निकट पहुंचोगे, उस समुद्र पार होनेंके विषयमें समर्थ और असमर्थ विचारकर उसके पार होना ॥ १९ ॥ उस समुद्रके पार होनेंका उपाय कहते हैं सो तुम श्रवण करो कि इसका उपाय अगस्त्यजी तुमको बतावेंगे उनसे सब समाचार जान महेन्द्र पर्वतपर जाय चित्र विचित्र शृङ्गोंपर चढ ॥ २० ॥ समुद्रके पार होजाना, यह पर्वत सुवर्णमय और समुद्रके एक पार्श्वमें डूबा हु-

आ है और नाना प्रकारके फूले फले वृक्षोंसे शोभायमान है ॥ २१ ॥ यह पर्वत देव, यक्ष, अप्सरा, सिद्ध और चारण गणोंसे सेवित होनेंके कारण परम मनोहर है ॥ २२ ॥ देवराज इन्द्रजी प्रत्येक अमावास्या और पूर्णमासीको इस पर्वतपर आगमन किया करते हैं। इसी समुद्रकी दूसरीपार सौ योजन विस्तार वाला एक द्वीप है ॥ २३ ॥ वहांपर कोई मनुष्य नहीं जा सकता वहांपर चारोंओर विशेष करके द्वीपमें सीताजीकोढूँढना२४॥ हम जानते हैं कि वही स्थान इन्द्रतुल्य दीप्तिमान राक्षस पति दुरात्मा और वध करनेंके योग्य रावणका वासस्थल है ॥ २५ ॥ इस दक्षिण समुद्रके बीचमें अङ्गारिका नाम विख्यात परछांई पकडकर जीवोंको खेंचकर भक्ष करनें वाली राक्षसी वास किया करती हैं॥२६॥ इस प्रकारके संशय युक्त देशोंमें विशेष ढूँढ भाल संशय रहित होकर अमित तेजवान नरेन्द्र श्रीरामचंद्रजीकी भार्याका पता लगाओ ॥ २७ ॥ उस लंकाद्वीपको नांघकर शत योजन वाले समुद्रके बीचमें परम सुन्दर पुष्पितक नाम पर्वत सिद्ध चारण गणोंसे सेवित ॥ २८ ॥ चंद्र सूर्यकी किरणोंसे प्रभावशाली सागरके जलका आश्रय लेकर अपने विपुल कंगूरोंसे मानों स्वर्गको छूलेता टिका हुआहै ॥ २९ ॥ उसके कांचन मय एक शृङ्ग की सेवा सूर्य भगवान् किया करतेहैं, कृतघ्न, नास्तिक और निर्लज्ज मनुष्य गण इन शृङ्गोंको नहीं देख सकते ॥ ३० ॥ हे वानरगण ! तुम लोग इस पर्वत श्रेष्ठको प्रणाम करके सीताजीको खोजना उस दुर्द्धर्ष पर्वतको नांघकर आगे सूर्यवान नाम पर्वत ॥ ३१ ॥ पर पहुँचोगे। इसका विस्तार चौदह योजनहै और यह अति दुर्गमहै, फिर इस्से आगे चलकर वैद्युत नाम पर्वतहै ॥ ३२ ॥ यह सर्वकालमेंही मनोहरहै और सब कामना युक्त फलोंको देनेंवाले वृक्ष इसपर लगे हुयेहैं। वहांपर उत्तम भोजन फल मूल खाय ॥ ३३ ॥ और मधु पीकर तृप्तहो तुम सब लोग आगे बढना तहां नेत्र और मनकों आराम देने वाला कुंजर नामक पर्वतहै ॥ ३४ ॥ वहांपर पहले विश्वकर्म्मा जीनें अगस्त्यजीका भवन बनायाथा। यह भवन विस्तारमें एक योजन और ऊंचाईमें दश योजनहै ॥ ३५ ॥ इस सुवर्ण मय गृहमें अनेक प्रकारके दिव्य रत्नभूषितहो रहेहैं। इसी कुंजर पर्वत पर सर्पोंके रहनेंका स्थान भोगवती नाम पुरीहै ॥ ३६ ॥ यह पुरी बडे मार्गवाली,

दुर्द्धर्षहै, और सब ओरसे रक्षितहै, और महा विषैले तेज दांत वाले घोर सर्पभी इसकी रक्षा करतेहैं ॥ ३७ ॥ जहांपर महा घोर सर्पराज वासुकीजी बसतेहैं, ऐसी भोगवती पुरीमें जाय सबलोग ॥ ३८ ॥ वहांपरके ढके ढकाये सब गुप्त देशोंको भली भांतिसे ढूंडना; उस देशको; नांघ आगे बढ़कर बैलके आकार वाला बडा भारी ॥ ३९ ॥ सर्व रत्नमय परम सुन्दर ऋषभ नामक पर्वत मिलैगा । इसपर गोशीर्षक, पद्मक; हरिश्यामा, ॥ ४० ॥ दिव्य विशेष २ चंदन अग्निसम प्रभाशीली उत्पन्न होतेहैं; उन चंदनोंको देखकर तुम कुछ बात न करना और उनको छूनाभी मत ॥ ४१ ॥ कारणकि उस बनकी रक्षा रोहित नामक घोर गन्धर्व किया करतेहैं वहांपर पांच गन्धर्वोंके पति सूर्यकी समान प्रभा वाले ॥ ४२ ॥ शैलूप, ग्रामणी, शिक्ष्य, शुक, और बभ्रु रहतेहैं उसपर सूर्य चंद्र और अग्निके समान प्रकाशित देह पुण्यात्मा लोगोंके रहनेंके स्थान बनेहैं ॥ ४३ ॥ ऐसे पृथ्वीके अंतमें दुर्द्धर्ष तथा स्वर्गके सुख जीतनें वाले लोग रहतेहैं इसके आगे दारुण पित्रलोकहै, जहांपर मनुष्य नहीं जा सकते ॥ ४४ ॥ यहां अंधकारसे ढकीहुई यमराजकी राजधानी संयमिनी नाम पुरीहै वहांपर तुम क्षण मात्रभी नहीं ठहर सकतेहो, हे वानर श्रेष्ठगण । तुमलोग यहीं तक ढूंडनेंको समर्थहो इस्से और फिर मनुष्यादिक किसीकीभी गति नहींहै ॥ ४५ ॥ जो जो स्थान हमनें बताये तुम सब इनमें व और स्थान भीजोकि दिखाईदें इन सबको देखभाल सीताजीकी गतिजान कर फिर आओ ॥ ४६ ॥ जो वानर एक मासके भीतर लौटकर" हमनें सीताजीको देखाहै" यह वचन कहैगा वह हमारी समान विभव शाली होकर [illegible] ॥ ४७ ॥ इस्से अधिक और कोईभी हमारा प्रिय न होगा, व अनेक बार [illegible] ॥ ४८ ॥

अमितबलपराक्रमाभवंतोविपुलगुणेषु
कुलेषुचप्रसूताः ॥ मनुजपतिसुतांयथा
लभध्वंतदधिगुणंपुरुषार्थमारभध्वम् ॥ ४९ ॥

हे वानर गण ! तुम लोग अमित बल विक्रम शाली और विपुल गुण सम्पन्न कुलमें उत्पन्न हुये हो, इस समय तुम सब, कि जिस्से जनक कुमारी

सीताजी प्राप्त होजाँय इस विषयमें अनुकूल पुरुषार्थ प्रकाशकर विशेष भांतिसे यत्न करते रहो ॥ ४९ ॥ इति श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे एकचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४१ ॥

द्वाचत्वारिंशः सर्गः ॥

अथप्रस्थाप्यसहरीन्सुग्रीवोदक्षिणांदिशम् ॥
अब्रवीन्मेघसंकाशंसुषेणंनामवानरम् ॥ १ ॥

अनन्तर सुग्रीवजी उन समस्त वानर वृन्दोंको दक्षिण दिशामें भेजकर सुषेण नाम वानरसे बोले ॥ १ ॥ यह सुषेण ताराके पिता, और वालि सुग्रीवके श्वशुर, भयंकर विक्रम करने वालेथे, इस्से उनके हाथ जोड प्रणाम कर सुग्रीवजी बोले ॥ २ ॥ और महर्षि मरीचिके पुत्र अर्चिष्मा नामक महावानरसे जो कि अति शूरवीर कपिगणोंसे सेवित, महेन्द्राचल सम आकार वाला और प्रकाश मानथा॥३॥और बुद्धिमें खगपति तुल्य द्युतिमान और मरीचिके सुन्दर माला धारण किये मारीच नाम अति गुण धाम और महावलवान ॥ ४ ॥ ऋषि पुत्रथे उन सबको पश्चिम दिशामें जानेके लिये सुग्रीवजीनें आज्ञादी, इनके साथ दो लक्ष यूथपथे व और वानरोंकी तो कुछ गिन्तीही नहीं ॥ ५ ॥ हे वानरो ! सुषेण सहित तुम लोग वैदेहीजीको जाय कर ढूंडो, प्रथम सौराष्ट्र देश फिर वाह्लीक, तिसके आगे चंद्रचित्र ॥ ६ ॥ इत्यादि मनोहर विभवशाली जन पद, और बहुतसे पुर और पुन्नाग, गहन, वकुल, उद्दालक ॥ ७ ॥ तथा केतक आदिके वृक्षोंसे व्याप्त कुक्षि देशको ढूंडना; हे वानर श्रेष्ठो ! पश्चिमकी ओरको वहनें वाली शीतल जल युक्त पवित्र नदियेंभी ढूडना ॥ ८ ॥ तपस्वियोंके वन बडे दुर्गम पर्वत, अति ऊँची वनस्थलियें, जल रहित देश, शीतल शिलायें ॥ ॥ ९ ॥ और अनेक भांतिके पर्वत समूहसे युक्त पश्चिम दिशाको खोजना फिर पश्चिम दिशाको आकर पश्चिम समुद्र देखोगे ॥ १० ॥ इस समुद्रमें बडे २ नाके मगर आदि जल जीव भरे हैं इसके आगे केतक खंड और गहन तमाल वनके मध्य ॥ ११ ॥ और नारियलके काननमें वानर गण विहरेंगे; इन सब स्थानोंमें दुष्ट रावणके स्थान सहित सीताजीको

ढूँडना ॥ १२ ॥ और समुद्रके किनारे की भूमि वाले सब पर्वत, वन, और मुरची पत्तन, और रमणीक जटापुर ॥ १३ ॥ अवंती, और दो पुरी, अंगलेपा व आलक्षित नामक समस्त वन विशाल राज्य और विशाल वाणिज्यके स्थान देखना ॥ १४ ॥ वहांपर सिन्धुनद और सगर संगमके स्थलमें महा तरु समूह समन्वित शत शिखर वाला, सोमगिरि नामक एक महान पर्वतहै ॥ १५ ॥ उस पर्वतके रमणीक प्रस्थ देशमें सिंह नामक पक्षी वास करतेहैं; वह पक्षी तिमि, मत्स्य, और हाथियोंको पंजेसे पकडकर अपने घोंसलेमें लेजाय भक्षण कर लेतेहैं ॥ १६ ॥ उन सिंह पक्षियोंमें गये और गिरि शृङ्गोपर संतापित व उद्दीप्त हाथी मेघोंके गर्जनकी समान शब्द किया करतेहैं ॥ १७ ॥ यह हाथियोंके झुन्ड उस पर्वतके किनारे जो समुद्रहै उस परभी विचरा करतेहैं उस पर्वतका एक सुवर्ण मय शृंग इतना ऊँचाहै मानों स्वर्गको चला गयाहै, और उसपर भांति २ के चित्र विचित्र वृक्ष लगेहैं; वहांपर तुम सब वानर लोग काम रूप धारण करके शीघ्रता सहित सब स्थानोंको ढूंडना। उसी समुद्रमें परिपात्र नाम पर्वतकी कोटि शत योजन विस्तारकीहै ॥ १८ ॥ १९ ॥ हे वानर गणो! उस कोटिका देखना दुर्गम होनें परभी तुम लोग उसे देखोगे। जहांपर चौवीस कोटि२४००००००० गन्धर्व और तपस्वी गण मिलकर तपस्या करते हैं ॥ २० ॥ यह सब अग्निकी तुल्य दीप्तमान घोर पापकारियोंके जलानेंको पावककी शिखाके तुल्य प्रकाशित चारों ओर घूमा करतेहैं ॥ २१ ॥ भयंकर कर्मकारी वानर गण ऐसे चले जांय कि मानो उनको देखाही नहीं और उनके साथ कोई छेड छाडभी न कीजाय और वहांका कोई फल भी न तोडा जाय ॥ २२ ॥ क्योंकि वह धीर्य वीर्य शाली महाबलवान दुर्द्धर्ष वीर गण उन फलोंकी रक्षा किया करते हैं ॥ २३ ॥ वहां पर जानकीजीके ढूँडनेमें यत्न करना कर्त्तव्यहै यद्यपि उन गन्धर्वोंका प्रभाव बडाहै तथापि विना अपराध किये उन लोगोंसे किसीको भयका कारण नहींहोता॥२४॥ वहीं पर वैदूर्य मणिके रंगका और हीरेकी चमककी समान अनेक भांतिके वृक्षोंसे शोभित ॥ २५ ॥ शत योजनका चौडा और शोभायमान वज्र नाम महा पर्वत है उस पर्वतकी समस्त बडी २ कन्दरायें देखना॥२६॥ उसके आगे समुद्रके चतुर्थ भागमें टिका हुआ चक्र वान नाम पर्वत

है; वहीं पर विश्वकर्मा जीने सहस्र आरागजका चक्र बनायाथा ॥२७॥ वहींपर पुरुपोत्तम विष्णु भगवानजीने पञ्चजन्य और हयग्रीव नामक दो दानवोंका संहार करके शंख और चक्र ग्रहण कियाथा ॥ २८ ॥ उस पर्वतके मनोहर शृङ्गों पर और समस्त विशाल गुफाओंमें वैदेही जी और रावणको ढूडना तुम्हारा कर्त्तव्य है ॥ २९ ॥ इसके आगे अगाध समुद्रमें चौंसठ योजनकी ऊँचाई वाला सुवर्ण शृङ्ग युक्त वराह नामक पर्वत है ॥ ३० ॥ उस पर्वत पर प्राज्ञ ज्योतिष नामक सुवर्ण मय पुरहै उसमें नरक नामक दुष्टात्मा दानव वास करता है ॥ ३१ ॥ उस पर्वतके रमणीक कँगूरों और गुफाओंमें रावणके सहित जानकीजीको ढूंडना तुम्हारा कर्त्तव्य है ॥ ३२ ॥ उस कांचन गर्भ शैल राज्यको नांघकर धारा और झरनो करके सहित सर्व सौवर्ण नाम पर्वत दिखाई देगा ॥ ३३ ॥ उस पर्वत पर वराह सिंह व्याघ्रादि जन्तु गण सर्वदाही अपने शब्दकी प्रति ध्वनि श्रवण कर दर्पित हो शीघ्रतासे फिर गर्जन करनें लगते हैं ॥३४॥ इसके आगे मेघ नामक पर्वत है इस पर्वतपर पाक शासन श्रीमान इन्द्रजीका देवता ओंनें सुरराज पर अभिषेक कियाथा ॥ ३५ ॥ इस महेन्द्र परिपालित अचल राज्यको नांघकर तुम सुवर्णके साठ हजार पर्वत देखोगे ॥३६॥ यह सब पर्वत प्रभात कालके सूर्यकी समान प्रकाशित हैं और फूले फले हुये सुवर्ण मय वृक्षोंके समूहसे शोभायमान हैं॥ ३७ ॥ उन साठ हजार पर्वतोंके मध्यमें येक अति उत्तम राजाकी समान सुवर्ण मय मेरु पर्वत है; पहले सूर्यनारायणने प्रसन्न होकर इसको वरदान दियाथा ॥ ३८ ॥ वह वरदान इस प्रकार दियाथा कि येक समय सूर्य नारायणने उस अचलसे कहाकि हमारे प्रसादसे तुम्हारे आश्रित समस्त पर्वत दिन रात्रिमें सुवण मय हो जांयगे ॥ ३९ ॥ और तुम्हारे ऊपर जो देव दानव और गन्धर्व गण वास करेंगे वह हमारे भक्त गण सुवर्णकी समान प्रभावान हो जायँगे ॥ ४० ॥ इस सावार्णि मेरु पर्वत पर विश्वदेव गण, वसुगण, मरुद गण, और सुरलोकके रहनें वाले देवता लोग आगमन करके पश्चिम सन्ध्यामें ॥४१॥ सूर्यदेवकी उपासना करते हैं सूर्यदेव उनसे पूजित और सर्व जीवोंकी दृष्टिसे अदृश्य हो अस्ताचल को प्राप्त होजातेहैं ॥ ४२ ॥ इसके आगे दशहजार योजनके विस्तार वाले अस्ता-

चल पर्वत पर सूर्य नारायण आधे मुहूर्तमें मेरु पर्वतसे पहुँचते हैं ॥ ४३ ॥ उसी पर्वतके शिखरपर बडे २ दिव्य, सूर्यकी समान प्रभावाला बहुत घ-वर हरे वाला भवन विश्वकर्माका बनाया हुआ है ॥ ४४ ॥ वह अनेक प्रकारके पक्षी और वृक्ष समूहके चित्रित होनेंसे शोभायमान है; यही पाश हस्त वरुण देवजी का स्थान है ॥ ४५ ॥ आगे मेरुकी चोटीमें दश शाखा वाला सुवर्ण मय परम सुन्दर एक ताल वृक्ष शोभायमान हो रहाहै, उस पर्वतके मूलमें विचित्र वेदी बनी हैं ॥ ४६ ॥ उस पर्वत के समस्त दुर्गम स्थानोंमें, सरोवरोंमें, और नदियोंमें, तुम सब जनोंको जानकी जी और रा-वणका ढूंडना उचित है ॥ ४७ ॥ इसी मेरु पर्वतपर ब्रह्माजी के तुल्य देदी-प्यमान अपने तेजसे प्रकाशित. धर्मात्मा मेरु सावर्णि नाम विख्यात तप-स्वी वास करते हैं ॥ ४८ ॥ उन सूर्यकी समान प्रकाशित महर्षि मेरु सा-वर्णिजी को शिर झुका प्रणाम करके जानकीजी का समाचार पूछना॥४९॥ रात्रिके वीत जानेपर सूर्य नारायण उदयाचल पर्वतसे मेरु सावर्णि तक-प्रकाश करके अस्त हो जातेहैं ॥ ५० ॥ हे कपि वर गण! वानर गण यहीं तक जासकतेहैं कि जहांतक सूर्यका प्रकाश और मर्यादा है ; और इसके आगे हम कुछभी नहीं जानते हैं ॥ ५१ ॥ रावणका स्थान और जानकी-जीके निकट गमन करनेंके लिये अस्ताचलतक चले जाकर एक मास पूर्ण होते २ लौट आओ ॥ ५२ ॥ एक माससे ऊपर वहांपर मत लगाना और जो एक माससे पीछे आवैगा उसको हम मार डालेंगे, हमारे श्वशुर महावीर्य सुषेण तुम लोगोंके साथ जाँयगे ॥ ५३ ॥ तुम सब उनकी आ-ज्ञामें रहना; और जो कुछ यह कहैं वह श्रवण करना क्योंकि यह हमारे श्वशुर महाबलवान् और महाबलशाली हैं इस्से गुरू हैं ॥ ५४ ॥ और तुम सबभी पराक्रमी और कर्त्तव्य कार्यका निश्चय करनें वाले हो; तथा-पि इनको नियम बतलानें वाला जानकर पश्चिम दिशाको खोजो ॥ ५५ ॥ जब उपकारका बदला प्रत्युपकार देदेंगे तब हम लोग कृतकार्य हो जां-यगे इसके सिवाय रावणका वध होनेंतक जो समस्त प्रिय कार्य हैं उन सबको तुम लोग देश काल और अर्थके अनुसार विचार लेना ॥ ५६ ॥

ततःसुषेणप्रमुखाःप्लवंगमाःसुग्रीववाक्यं

निपुणंनिशम्य ॥ आमंत्र्यसर्वेप्लवगाधिपा
स्तेजग्मुर्दिशंतांवरुणाभिगुप्ताम् ॥ ५७ ॥

तब सुषेणादि निपुण वानरगण सुग्रीवजीके विनीत वचनसुन उनसे बिदाले प्रीति सहित पश्चिम दिशाको चले गये ॥ ५७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे द्विचत्वारिंशः सर्गः ॥४२॥

त्रयश्चत्वारिंशः सर्गः ॥

ततःसंदिश्यसुग्रीवःश्वशुरंपश्चिमांदिशम् ॥
वीरंशतबलंनामवानरंवानरेश्वरः ॥ १ ॥

वानर श्रेष्ठ सुग्रीवजी; अपने श्वशुरको पश्चिम दिशामें भेजते हुये और शतबलनामक वानर नाथसे सुग्रीवजी ॥ १ ॥ बोले; सर्वज्ञ कपिराजनें जो वचन कहे वह सबही अपने और श्रीरामचन्द्रजीके हितके लियेथे॥२॥ सुग्रीवजी बोले कि हे विक्रम शालिन! तुम अपने मेलके शतसहस्र वनवासी वानरोंके साथ समस्त यमसुत मंत्रि गणोंके सहित यात्रा करो॥३॥ और हिमालय पर्वतको कर्ण फूल बनाये उत्तर दिशामें जायकर यशस्विनी श्रीरामचन्द्रजीकी भार्याको ढूँडो ॥ ४ ॥ हे कृतार्थोंके जानने वालोंमें श्रेष्ठ! श्रीरामचन्द्रजीका यह प्रियकार्य पूरा हो जानेंपर हम उनके ऋणसे छूट जाँयगे॥५॥महात्मा श्रीरामचन्द्रजीनें हमारा प्रियकार्य सिद्ध कियाहै सो यदि हम उनका कुछभी प्रत्युपकार कर सकें तो हमारा जीवन सफल हो जाय ६॥ जिसने अपने साथमें कोई उपकार नहीं कियाहो, यदि उसके साथभी कोई उपकार कर दिया जाय तोभी जीवन सफल हो जाता है फिर जोकि पहले ही उपकार कर चुका हो उसका कार्य सिद्ध करनेंमें और कहना ही क्या है ॥ ७ ॥ तुम लोग हमारे हितकी कामना करते हुए जिससे जानकीजी मिलजाँय या उनका पता लगजाय, इस प्रकारकी बुद्धि धारण करो, ऐसा करना सब भांतिसे तुमको उचित है ॥ ८ ॥ शत्रुओंके पुर जीतनें वाले श्रीरामचन्द्रजी सर्व प्राणियोंके मान्य और प्रियहैं; सो यह हमारे ऊपर परम प्रसन्न हो रहेहैं; तुम लोग अपनी बुद्धि और विक्रमसे जैसे होसके वैसे बहुतसे दुर्गम स्थान, नदी और पर्वत सबमें जानकीजीको ढूंडो॥९॥१०॥ उस उत्तर दिशाकी ओर जानेंमें म्लेक्ष, पुलिन्द, शूरसेन, प्रस्थल, भरत,

कुरु, मद्रक, ॥ ११ ॥ कम्बोज, वरद, यवन, और शकोंके नगर देखकर हिमालय पर्वतको खोजना ॥ १२ ॥ लोध्र और पद्मक वनमें और देव दारुके वनमें जानकीजी और रावण का अनुसन्धान करना तुम्हारा कर्त्तव्यहै ॥ १३ ॥ फिर सोमाश्रम परजाय देवता और गन्धर्व गणोंसे सेवित बडे २ कँगूरोंसे युक्त काल नामक पर्वतको तुम लोग देखोगे ॥ १४ ॥ उस पर्वतकी बडी कन्दरा ओंमें और सब दुर्गम स्थानोंमें उन निन्दा रहित श्रीरामचन्द्रजीकी भार्य्याको तुम लोग ढूडना ॥ १५ ॥ उस काल पर्वतको नाँवकर हेमगर्भ महा पर्वत सुदर्शनपर तुम लोग जाओगे ॥ १६ ॥ फिर अनेक भांतिके पक्षियोंसे परिपूर्ण और विविध प्रकारके वृक्षोंसे शोभायमान पक्षि लोगोंका वासस्थान देव सखा नाम महा पर्वतहै ॥ १७ ॥ उसकी सुवर्ण मय कन्दराओंमें, और समस्त निर्झरोंमें रावण और जानकीजीको तुम लोग ढूंडना ॥ १८ ॥ उस देव सखा पर्वतके आगे शत योजनका लंबा चाडा एक मयदानहै, जिसमें पर्वत, नदी, वृक्ष, और कोई जन्तुभी नहीं है ॥ १९ ॥ तुम सब इस रोम हर्षण मयदानको नांघकर श्वेत वर्णवाले कैलाश पर्वतको पाकर हर्षित चित्त होगे ॥ २० ॥ उस कैलाश पर्वतपर श्वेत वर्ण मेघकी प्रभाके समान सुवर्णसे सजाया हुआ मनोहर कुवेरजीका भवन विश्वकर्म्माजीनें बनायाहै ॥ २१ ॥ उस भवनमें बहुत सारे कमल फूलोंके सहित हंस और कारंडवादि जल पक्षियोंसे परिपूर्ण अप्सरा झुन्डोंसे सेवित एक तलैया विद्यमानहै ॥ २२ ॥ उस भवनमें धनद यक्षराज सर्व लोकोंके नमस्कार किये जानेंके योग्य विश्रवाके पुत्र श्रीमान् कुबेरजी गुह्यक गणोंके साथ आनंद सहित वास किया करतेहैं॥२३॥ उस कैलाश पर्वतकी चन्द्र तुल्य प्रकाशित, पर्वत श्रेणीमें और गुफाओंमें जरा जरा करके रावण और जानकीजीको तुम लोग ढूँडना ॥ २४ ॥ वहां से चलकर तुम लोग क्रौंचगिरि देखोगे; उस पर्वतके दुर्गम विलोंमें बडी सावधानीसे प्रवेश करना, क्योंकि उसके ऊपरके विल बडी कठिनाईसे प्रवेश करनेके योग्यहैं ॥ २५ ॥ और उस पर्वतपर सूर्यकी समान प्रभावाले महात्मा देवरूप, महर्षि गण देवता लोगोंसे प्रार्थना किये जानेपर वहां वास करतेहैं ॥ २६ ॥ क्रौञ्च पर्वतकी और दूसरी गुफायें, और कंगूरे, दरें व नितम्बोंको भली प्रकार ढूंडना ॥ २७ ॥ इसी पर्वतका एक

शिखर वृक्षोंसे रहित काम तप शैल और पक्षी गणोंका आश्रय स्थान मानस सरोवरहै, वहांपर देवता, राक्षस और मनुष्यादि जीव गणोंके पहुँचनेंकी गति नहींहै ॥ २८ ॥ इसकारणसे युक्ति पूर्वक तुम सब उस पर्वतके छोटे और बडे शृंगोंको देखना, क्रौञ्च पर्वतसे आगे चलनें पर मेनाक नाम पर्वत दिखाई देगा ॥ २९ ॥ उस पर मयदानवने आपही अपनें रहनेंके स्थानको बनायाहै । उस मेनाकके शृंग; प्रस्थ; और कन्दरा ओंमें सीताजीको ढूंडना ॥ ३० ॥ यह मेनाक पर्वत अश्वमुखी (किन्नरी) स्त्रियोंका भवनहै, इस देशको नांघकर सिद्ध सेवित आश्रमोंपर पहुँचोगें ॥ ३१ ॥ वहांपर सिद्ध, वैखानस, बालखिल्य, आदि तपस्वी गण वास करतेहैं; वह पाप रहित सिद्ध व तपस्वियों गणोंके वन्दन करनेके योग्यहैं ॥ ३२ ॥ इस कारण विनय सहित उन सब लोगोंसे सीताजीका समाचार पूछना उचितहै । वहांपर एक वैखानस नाम सरोवरहै । जिसमें सुवर्णके कमल खिल रहेहैं ॥ ३३ ॥ उस सरोवरपर प्रभात कालके सूर्यकी समान रंग वाले शुभ हंसगण भ्रमण किया करतेहैं और कुबेरजीकी सवारीका सार्वभौम नामक ॥ ३४ ॥ गज अपनी हथनियोंके साथ वहां विचरा करताहै; इस सरोवरके नांघनेपर सूर्य चंद्र विहीन और नक्षत्र व मेघोंसे रहित नित्य आकाश स्थलहै ॥ ३५ ॥ वहांपर तो केवल सूर्य नारायणकी किरणोंसे प्रकाश होता रहताहै; वहांपर अपनेही तेजकी प्रभासे दीप्तिमान देव समान सिद्ध लोग तप किया करतेहैं ॥ ३६ ॥ उस देशके आगे शैलोदा नामक नदी बहतीहै, उसके दोनों किनारोंपर कीचक नामक वांस उत्पन्न होते हैं ॥ ३७ ॥ वही वांस सिद्ध लोगोंको शैलोदके पार ले जातेहैं और फिर वही इस पारको ले आतेहैं । इसी नदीके दूसरी पार पुण्यात्मा जनोंके निवासका स्थान उत्तर कुरु देशहै ॥ ३८ ॥ उस उत्तर कुरुके रहनें वाले जन, सुवर्ण, पद्म समन्वित पुष्करणियोंके जलसे तर्पण किया करतेहैं॥३९॥ वहांपर नीलवर्णके जिनमें वैदूर्य मणियोंके पत्ते लगरहे ऐसे सुवर्णमय लाल कमल फूलोंसे विभूषित सहस्र २ नदियां विराजमानहैं ॥ ४० ॥ प्रभात कालके सूर्यकी समान प्रकाशित समस्त जलाशय, महामणि, महारत्न, और विचित्र सुवर्णकी केशर वाले ॥ ४१ ॥ नील वर्णके कमल फूलोंसे व वनोंके समूहसे बडे २ मोलके मुक्तामणियोंसे और धनसे यह

देश पूर्णहै ॥ ४२ ॥ वहांपर सब नदियोंके किनारे सुवर्णमय होरहेहैं जिस्से कि बडी शोभा होतीहै, और उनके किनारोंपर रत्नोंके तरुवर लग रहे-हैं ॥ ४३ ॥ उन सब अग्निसमान प्रकाशित वृक्षोंमें सुवर्णके फूल लगेहैं; उन वृक्षोंमें नित्य फल फूल लगे रहते और पक्षीगण मीठी वाणीसे बोला करतेहैं ॥ ४४ ॥ किसी २ वृक्षमें दिव्य रसकी सुगन्धि और समस्त कम-नीय पदार्थ उत्पन्न हुआ करतेहैं व और जितने उत्तम २ वृक्षहैं वह अनेक प्रकारके वसन उत्पन्न किया करतेहैं ॥ ४५ ॥ किसी २ श्रेष्ठ वृक्षमें स्त्री और पुरुषोंके पहरनें योग्य उत्तम गहनें उत्पन्न होतेहैं जो मुक्ता और वैदूर्य मणियोंसे चित्रित होतेहैं ॥ ४६ ॥ किसी २ वृक्षोंमें सब ऋतुओंमें पहरनेके योग्य वस्त्रही फला करतेहैं; और तरुवरमें बडे मोलके खिलौनें फला करतेहैं ॥ ४७ ॥ बहुतसे वृक्षोंमें चित्र विचित्र बिस्तरे फले करतेहैं किसी २ वृक्षोंमें मनोहर हार ॥ ४८ ॥ और बहुतसे वृक्षोंमें बडे मोलकी सवारियां और खानें पीनेंकी वस्तुयें उत्पन्न होतीहैं; उस स्थानमें रूप यौवन सम्पन्न गुण युक्त स्त्रियांभी फलतीहैं ॥ ४९ ॥ दीप्यमान गन्धर्वगण किन्नरगण, सिद्धगण, नागगण, विद्याधरगण, अपनी २ स्त्रियोंके सहित वहां विहार करतेहैं ॥ ५० ॥ वह सबही पुण्यवान्, सबही रति परायण सबही कामभोग युक्त होते और अपनी २ स्त्रियोंके सहित वास कर-तेहैं ॥ ५१ ॥ वहांपर समस्त जीव गणोंके रमणीक हास्य स्वरके सहित गीत, और बाजोंकी ध्वनि सदाही सुनाई आया करतीहै ॥ ५२ ॥ वहांपर कोईभी असन्तुष्ट नहीं, किसीको किसी प्यारी वस्तुका वियोग नहीं वहांपर दिन २ मनोहर गुणोंकी भरती हुआ करतीहै ॥ ५३ ॥ जब उस पर्वतसे तुम आगे चलोगे तो उत्तर समुद्र आवैगा वहांपर सुवर्ण-मय सोमनामक एक महा पर्वत विद्यमान है ॥ ५४ ॥ यद्यपि वहांपर सू-र्यका प्रकाश नहीं है तथापि सोम पर्वतकी प्रभासे ही वहां ऐसा प्रकाश रहता है कि जैसा सूर्य युक्त देशमें रहता है वहांपर विश्वात्मा एकादश रुद्रात्मक महादेवजी और देवेश्वर ब्रह्माजी सब ब्रह्मर्षि गणोंके साथ वास करते हैं ॥५५॥५६॥ कुरुके उत्तर देशमें तुम लोग कदापि मतजाना,क्यों कि वहांपर और कोई जीवधारी नहीं जा सकता॥ ५७ ॥वह सोमगिरि ना-मक पर्वत देवता लोगोंकेभी जानेंके योग्य नहीं है तुम लोग केवल उस-

का दर्शनही करकै लौट आना ॥ ५८ ॥ हे वानर श्रेष्ठगण! वानर लोग यहींतक जा सकते हैं; इसके आगे सीमा रहित और सूर्य रहित स्थानों को हम नहीं जानते ॥ ५९ ॥ हमनें जो स्थान बताये, उन सबही स्थानों को तुम लोग ढूंढना; और जो स्थान कि हमारे बतलानेंसे रह गये हों; उन सबको अपनी बुद्धिके अनुसार तुम लोग खोजना ॥ ६० ॥ ऐसा करनें-से श्रीरामचन्द्रजीका और हमारा अति प्रियकार्य हो जायगा। हे अनिल तुल्य और अनल तुल्य वानरगण! उन जनककुमारीका पता लगानेंसे हम तुम सबही निःसन्देह कृत्य २ हो जांयगे॥ ६१ ॥

ततःकृतार्थाःसहिताःसबांधवामयार्चिताः
सर्वगुणैर्मनोरमैः ॥ चरिष्यथोर्वींप्रतिशां
तशात्रवाःसहप्रियाभूतधराःप्लवंगमाः ॥ ६२ ॥

फिर कृतार्थ हो हमसे पूजित और शत्रुरहित हो सब मनोहर गुणोंसे विभूषित, और भूत गणोंसें आश्रम स्वरूप हो अपनी प्रियाके सहित सुख स्वच्छन्दतासे तुम लोग घूमना ॥ ६२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे त्रिचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४३ ॥

चतुश्चत्वारिंशः सर्गः ॥

विशेषेणतुसुग्रीवोहनूमत्यर्थमुक्तवान् ॥
सहितस्मिन्हरिश्रेष्ठेनिश्चितार्थोऽर्थसाधने ॥ १ ॥

यद्यपि सब वानरोंको सुग्रीवजीनें सब ओरको जानेंके लिये आज्ञादी तथापि सुग्रीवजीनें निश्चय कियाथा कि कार्यकी सिद्धि हनुमानजीसेही होगी इस कारण कपि श्रेष्ठ हनुमानजीसे ॥ १ ॥ वानर नाथ सुग्रीवजी परम प्रीतिसे बोले; क्योंकि यह हनुमानजी पवनके पुत्र और बडे पराक्रमी-थे ॥ २ ॥ हे वानर श्रेष्ठ! भूमिमें, वा पक्षियोंके उडनेंके स्थान अन्तरिक्षमें या मेघोंके चलनेंके स्थान अम्बरमें; अथवा स्वर्गमें किम्वा सलिलमें,कहीं भी तुम्हारी गति नहीं रुक सकती ॥ ३ ॥ असुर, गन्धर्व, नाग, नर, और देवता ओंके लोक व समुद्र पृथ्वी और पातालादि समस्त लोकोंको तुम जानते हो ॥ ४ ॥ हे महावीर! क्या गतिमें, क्या तेजमें, क्या शीघ्रतामें, सबमें तुम अपने पिता तेजस्वी पवनकीही समान हो ॥ ५ ॥ और तु-

म्हारी समान तेजशाली जीव तीनों लोकमें नहीं है; इस कारण जिस्से सीताजीका पता लगजाय ऐसा यत्न करनेमें तुमको विशेष यत्न करना उचित है ॥ ६ ॥ हे नीति पंडित हनुमन! तुममेंही बल बुद्धि, पराक्रम देश और कालज्ञान और नीति यह समस्तही विद्यमान हैं ॥ ७ ॥ तब श्रीरामचन्द्रजी हनुमान्‌जीसेही कार्यकी सिद्धि विचार करकै, और हनुमानजीके बल विक्रमकी ओर सीताजीके उद्धार करनेंकी गुरुताको मनहीमनमें विचार करनेलगें८श्रीरामचंद्रजीनें विचाराकि,कपिराजसुग्रीवजी यह समझेहुयेहैं कि हनुमानजीसेही कार्यकी सिद्धि होगी और हमाराभी अधिक तर यही विचार है कि इनसेही कार्यकी सिद्धिहोगी ॥ ९ ॥ यह हनुमानजी अपने कर्मोंसे प्रसिद्ध हुयेहैं और राजाभी इनके ऊपर कृपा करताहै, यदि यह वीरकेशरी सीताजीके ढूँडनेंको जांयगे तो अवश्यही कार्यकी सिद्धिहोगी ॥१०॥ महा तेजवान रामचंद्रजी हनुमानजीको कार्यके साधन करनेंमें श्रेष्ठ विचार करके कृतार्थकी समान सन्तुष्ट होगये हर्षके कारण उनकी सब इन्द्रियां प्रफुल्लित होगईं ॥ ११ ॥ तिसके पीछे पर वीर घाती श्रीरामचंद्रजीनें प्रसन्न होकर एक अंगूठी जिसपर उनका नाम खुदा हुआथा सीताजीको निशानी देनेंके लिये हनुमानजीको अर्पण करदी ॥ १२ ॥ हे वानर श्रेष्ठ! इस निशानीसे जानकीजी तुमको निश्चित हमारे निकटसे आया हुआ झटपट जान जांयगी ॥ १३ ॥ हे वीरेन्द्र! तुम्हारी दृढ चितता और अनुपम विक्रम और सुग्रीवजीका आदेश इन सबसेही हमको अपने कार्यकी सिद्धि जान पडतीहै ॥ १४ ॥ यह कपि श्रेष्ठ हनुमानजी उस अँगूठीको माथे चढा हाथ जोडकर श्रीरामचंद्रजीके दोनों चरणोंकी वन्दना करके गमन करनेको तैयार हुये ॥ १५ ॥ पवनपुत्र कपिवीर; वह बडी भारी सेना संगलेकर मेघ रहित विमल आकाशमें तारा गणोंसे शोभित विशुद्ध मंडल चंद्रमाकी समान शोभापाने लगे ॥ १६ ॥

अतिबलबलमाश्रितस्तवाहंहरिवरविक्रम
विक्रमैरनल्पैः ॥ पवनसुतयथाऽधिगम्य
तेसाजनकसुताहनुमंस्तथाकुरुष्व ॥ १७ ॥

हेसिंह विक्रम! अति बल शालीन! पवन पुत्र! हमनें तुम्हारेही बलका

आश्रय कियाहै; तुम इस समय ऐसा विधान विपुल विक्रमसे करोकि जिस्से जानकीजी प्राप्त हो जांय ॥ १७ ॥ इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०कि० चतुश्चत्वारिंशःसर्गः ॥ ४४ ॥

पञ्चचत्वारिंशःसर्गः॥

सर्वांश्चाहूयसुग्रीवःप्लवगान्प्लवगर्षभः ॥
समस्तांश्चाब्रवीद्राजारामकार्यार्थसिद्धये ॥ १ ॥

अनन्तर कपिराज सुग्रीवजी सब वानरोंको पुकारकर उनसे श्रीरामचंद्रजीके कार्यकी सिद्धि करनेंके लिये कहने लगे ॥ १ ॥ हे वानर श्रेष्ठ गण! तुम सवही हमारी अति उग्र आज्ञाको जानकर रावण और जानकीजीको खोजो ॥ २ ॥ टीडीकी समान पृथ्वीको छायकर समस्त वानर गण गमन करने लगे; श्रीरामचंद्रजी, लक्ष्मणजीके सहित उस प्रस्रवण पर्वतपर वसे ॥ ३ ॥ सीताजीका समाचार जाननेंमें एक महीनेंकी अवधि निश्चय कर रामचंद्रजी वहां वसे फिर हिमाचलसे युक्त रमणीक उत्तर दिशाको ॥ ४ ॥ कपिश्रेष्ठ शतवलि अपनी सेनाको लेकर गया और विनत नामक यूथनाथ उत्तर दिशाको चला ॥ ५ ॥ और तार अंगदादि सहित पवनपुत्र हनुमानजी अगस्त्यजीसे सेवित दक्षिण दिशाको गये ॥ ६ ॥ और वानर शार्दूल सुषेण वरुणजीसे पाली जातीहुई घोर पश्चिम दिशाकी ओर सिधारा, ॥ ७ ॥ तब सब ओरको यथानुरूप वानरोंकी सेनाको भेजकर कपिनाथ राजा सुग्रीवजी हर्षित चित्त हुये ॥ ८ ॥ इस प्रकार भेजे जाकर सकल वानर यूथप अपनी २ बताई हुई दिशाओंको शीघ्रतासे गमन करते हुये ॥ ९ ॥ महा बलवान् वानर दल, नाद उन्नाद, गर्जन और क्रोध पूर्वक अनेक प्रकारके शब्द करते हुये दौडे॥ १०॥ वानरराज सुग्रीवजी करके भेजे हुये सब वानर हाथ जोडकर "हमरावणको मार डालेंगे" हम जानकीजीको ले आमेंगे ॥ ११ ॥ कोई २ बोलेकि हम इकलेही रणस्थलमें रावणको पाय सहित सहाय उसको मार जानकीजीको ले आमेंगे ॥ १२ ॥ कोई बोलेकि यदि जानकीजी पातालमें भीहों तो उन श्रमसे कम्पमान होती हुई कामनीको "स्थिर होओ" इस प्रकारसे समझा दृढ सहित हम अकेलेही उनको वहांसे ले आमेंगे ॥ १३ ॥

हम वृक्षोंको उखाड डालेंगे, हम पर्वतोंको तोड फोड डालेंगे, हम पृथ्वी को विदीर्ण कर डालेंगे, हम समुद्रको खल बला डालेंगे ॥१४॥ हम एक छलांगमें येक योजन, हम येक शतसे भी अधिक योजन येक छलांगमें कूद जांयगे ॥ १५ ॥ हमारी गति पृथ्वीमें, समुद्रमें, पर्वतोंमें व वनोंमें पातालमें कहीं भी नहीं रुक सकती, हम सबही स्थानोंमें जा सकतेहैं ॥ १६ ॥

इत्येकैकस्तदातत्रवानराबलदर्पिताः ॥
ऊचुश्ववचनंतस्यहरिराजस्यसन्निधौ ॥ १७ ॥

उन वानरराज सुग्रीवजीके निकट येक २ वानर अपने बलके दर्प से ऐठते अकडते ऐसा कहनें लगे ॥ १७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे पंच चत्वारिंशः सर्गः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशः सर्गः ।

गतेषुवानरेंद्रेषुरामःसुग्रीवमब्रवीत् ॥
कथंभवान्विजानीतेसर्वंवैमंडलंभुवः ॥ १ ॥

जब चारों ओरको सब वानरोंके झुन्ड चले गये तब श्रीरामचंद्रजीने सुग्रीवसे कहाकि तुमनें समस्त पृथ्वी मण्डलका समाचार किसप्रकारसे जाना? ॥ १ ॥ जब श्रीरामचंद्रजीने ऐसा कहा तो सुग्रीवजी शिरनवाय श्रीरामचंद्रजीसे बोले कि आप श्रवण करें हम सब विस्तार सहित कहते हैं ॥ २ ॥ जब भैंसे की समान आकार वाले दुन्दुभी नामक दानवके पीछे धावमान होकर वालि मलया पर्यंत तक चलागया ॥ ३ ॥ जब वह महिष मलयाचलकी गुफामें प्रवेश करगया तब वालि भी उसके वध करने की वासना से उस पर्वतकी गुफामें बैठा ॥ ४ ॥ हम उस गुफाके द्वार पर विनीत हो टिके रहे और येक संवत वीत गया तौभी वालि नहीं लौटा ॥ ५ ॥ फिर रुधिर की धारासे वह विल परिपूर्ण होगया तिसको देख हम विस्मित और भाईके शोकसे जर्जरित हो गये ॥ ६ ॥ फिर हमने बुद्धि रहित होकर स्थिर किया कि बडा भाई वालि मारागया ऐसा समझ कर पर्वतकी समान येक शिला खंड विलके द्वार पर लगाय उसको वंद किया ॥ ७ ॥ हमने विचाराकि महिष इसमेंसे निकलनेंका उद्योग करेगा तो आपही इस्से दबकर मर जायगा ऐसा विचार, और भ्राता वालिके

जीवनसे निराशहो हम किष्किन्धाको चले आये ॥ ८ ॥ नगरमें आय तारा और रुमा व बडे राज्यको पाय बन्धु बान्धवोंके सहित हम सुखसे वास करने लगे ॥ ९ ॥ फिर वानर श्रेष्ठ वालि उस दानवको मारकर नगरमें आया तब हमनें भयसे भीतहो और गौरवके हेतु फिर उसको राज्य देदिया ॥ १० ॥ दुष्टात्मा वालि व्यथित हो हमारे मार डालनें की इच्छा करता हुआ हमारे पीछे दौडा तब हमभी अपने मंत्रियोंके सहित भागने लगे ॥ ११ ॥ वरन हमारे सबही साथी वालिके भयसें भागे हमनें भागते २ मार्गमें अनेक भांतिकी नदियें वन नगर इत्यादि देखे ॥ १२ ॥ इसी प्रकारसे सब भूमि जिसका आकार अलात चक्रकी समानहै, हमने गोपदके गढेकी समान अवलोकन करली ॥ १३ ॥ फिर पूर्व दिशामें जायकर विविध भांतिके वृक्ष गुफा सहित पर्वत और अनेक प्रकारके विविध रमणीक सरोवर देखे ॥ १४ ॥ वहांपर धातु मंडित उदय पर्वत और अप्सराओंके रहनेंका स्थान क्षीर समुद्रभी देखा॥१५॥ वहां भी हमारे पीछे२ वालि आया तब वहांसे हम भागते२ फिर उदयाचल पर्वत पर आये ॥ १६ ॥ पूर्व दिशासे हम विन्ध्याचल और विविध वृक्षोंसे युक्त चन्दन वृक्ष परिशोभित दक्षिण दिशाको भागे ॥ १७ ॥ वहां परभी दूसरे पर्वत पर हमनें अपने पीछे वालिको भागते हुए देखा तब हम वहांसेभी भागे और फिर पश्चिम दिशाको आये ॥ १८ ॥ पश्चिम दिशामें विविध देश अनेक पर्वत, और गिरिश्रेष्ठ अस्ताचलको देख, वहांभी वालिके आनेंका समाचार पाय फिर उत्तर दिशाको भागे ॥ १९ ॥ उत्तर दिशामें पहुँच हिमवान्, मेरु और उत्तर समुद्र तक हम चले गये, परन्तु वालिके भयसे हमको कहीं शरण नहीं मिली ॥२० ॥ तब बुद्धिमान हनुमानजीनें हमसे कहा कि हे राजन्! इस समय हमको याद आया कि यह वानरराज वालि ॥ २१ ॥ मतंग मुनिके शापसे शापित जब उस आश्रम मंडलमें प्रवेश करैगा तब उसके मस्तकके शत खंड हो जाँयगे ॥ २२ ॥ वहां पर वास करनेंसे हम सब वेखटके सुखसे वास कर सकेंगे; जब हनुमानजीनें ऐसा कहा तौ हम ऋष्यमूक पर्वत पर आये॥२३॥

नविवेशतदावालीमतंगस्यभयात्तदा ॥

एवंमयातदाराजन्प्रत्यक्षमुपलक्षितम् ॥
पृथिवीमंडलंसर्वंगुहामस्म्यागतस्ततः ॥ २४ ॥

वहां पर वालि मतंगजीके शाप भयसे भीत हो नहीं आया । हे राजन् इस प्रकारसे हम समस्त पृथ्वी मंडल दर्शन करकै इस गुफामें आयेथे॥२४॥
इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मी० आदि० कि० षटचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४६ ॥

सप्तचत्वारिंशः सर्गः ॥

दर्शनार्थंतुवैदेह्याःसर्वतःकपिकुंजराः ॥
व्यादिष्टाःकपिराजेनयथोक्तंजग्मुरंजसा ॥ १ ॥

जानकीजीके ढूंडनेंके निमित्त आज्ञा पायकर सब कपिश्रेष्ठ अपने लिये नियत की हुई दिशाको गये ॥ १ ॥ वह लोग, सरोवर, नदियें, तृणस्थान (काछा)आकाश,नगर,सरित,दुर्गम स्थान और सब देश खोजनें लगे॥२॥समस्त वानर गण सुग्रीवजीके बताये हुए पर्वत वन और कानन सहित सब देशोंको ढूंडनें लगे॥३॥वह दिनके समय सीताजीके ढूंडनेंको आकाश मार्गमें रह कर रात्रिके समय पृथ्वीपर आ जातेथे ॥ ४ ॥ वह सब वानर दिनके समय देशोंमें समस्त ऋतुओं फल पुष्पशाली वृक्षोंको प्राप्त होकर रात्रिमें फलादि खाते और सोते ॥ ५ ॥ जिस दिवससे गमन कियाथा उस दिवस को प्रथम लगा कर एक मास वीतनेपर प्रथम दिनही आय २ कर सुग्रीवजीके निकट एकत्र होने लगे ॥ ६ ॥ महावीर विनत अपनें मंत्रियोंके सहित पूर्वकी ओर सीताजीको ढूंड उनको न देख पाकर लौट आया॥७॥ महा कपि शतबलि समस्त उत्तर दिशाको छान वीन कर अपनी सब सेनाके सहित लौट आया ॥ ८ ॥ सुषेण एक मास वीत जानेपर अपनें सब वानरोंके सहित सीताजीको ढूंडकर सुग्रीवजीके निकट उपस्थित हुआ ॥९॥ उस प्रस्रवण गिरि पर सहित लक्ष्मण रामचन्द्रको प्रणाम कर सुग्रीवजीसे बोला ॥ १० ॥ हमनें समस्त पर्वत, गहन, वन, सागर, नदी, जनपद, ग्राम, पुरादि ढूंडे ॥ ११ ॥ आपके बताये हुए सब गुहादि स्थान ढूंडे और अनेक भांतिके कुंजभी वार २ खोजे ॥ १२ ॥ उनमें जो गहन देशथे उनको वारंवार ढूँढा जो दुर्ग गहन विषम स्थानथे वडे २ जीवोंके रहनेंके स्थानमें ढूंड और उन्हें मार जो रुरु देशहैं उन्हें वार २ देखा ॥ १३ ॥

उदारसत्वाभिजनोहनूमान्समैथिलींज्ञा
स्यतिवानरेंद्र ॥ दिशंतुयामेवगतातुसी
तातामास्थितोवायुसुतोहनूमान् ॥ १४ ॥

हे वानरेन्द्र ! महा वीर्यवान् और महाकुलमें उत्पन्न हुए हनुमानजी सीताको अवश्यही जान सकेंगे क्योंकि सीताजी जिस दिशाको गईहैं; पवनकुमार हनुमान्‌जी उसी दक्षिण दिशामें गयेहैं ॥ १४ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० किष्किन्धाकांडे सप्तचत्वारिंशःसर्गः॥४७॥

अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥

सहतारांगदाभ्यांतुसहसाहनुमान्कपिः ॥
सुग्रीवेणयथोद्दिष्टंगंतुंदेशंप्रचक्रमे ॥ १ ॥

इधर कपिवर हनुमानजी तार और अंगदजीके सहित सुग्रीवजीकी बताई हुई दिशामें गमन करने लगे ॥ १ ॥ वह समस्त कपिगणोंके सहित दूर गमन करके विन्ध्याचलकी सघन गुहादि खोजनें लगे ॥ २ ॥ पर्वत और उनके आगे बहती हुई नदी दुर्गम स्थान सरोवर अनेक तरुवर सघन वृक्षोंसे युक्त विविध पर्वत ॥ ३ ॥ भली भांति सब वानरोंनें दक्षिण दिशामें ढूँडा परन्तु कहीं जनककुमारी सीताजीको न पाया ॥ ४ ॥ वह वानर कंद मूल फलादि भक्षण करते जहां तहां उछल कर निर्जल, निर्जन शून्य गहन भयंकर दर्शन॥५॥गहन वन व औरभी वैसेही दूसरे अनेक स्थान ढूँड-कर बहुत पीडित हुये क्योंकि गुहा और सघन वह देश खोज करना अत्यन्त दुष्करहै ॥ ६ ॥ निडर वानरवीर यूथपोंने वह देश परित्याग पूर्वक और एक बडे देशमें प्रवेश किया जहां कोई जा नहीं सकताथा वहां यह निडर ढूँडनें लगे ॥ ७ ॥ उस स्थानके वृक्षोंमें फल फूल या पत्ते कुछभी नहींथे नदियोंमें जल नहींथा, और कंदभी नहीं पाया जाता ॥ ८ ॥ वहां-पर भैंसे नहीं फिरतेथे, मृग नहीं चरतेथे, वरन हाथी, सिंह, पक्षी इत्यादि औरभी कोई बनैले जीव नहींथे ॥ ९ ॥ वहांपर वृक्ष, औषधि, बेलें, वीरुध वहांपर स्थलोंमें दर्शनीय स्निग्ध पत्र वाले खिले कमल फूल ॥ १० ॥ सुगन्धि युक्त भ्रमर गणोंसे शोभित तडागभी नहीं दिखलाई देतेथे । उस स्थानमें कन्दु नामक महाभाग सत्यवादी तपोधन ॥ ११ ॥ क्रोधको जीते

हुए, दुर्द्धर्ष, नियमावलम्बी महर्षि रहतेथे । उनका इस वनमें एक दश वर्षका बालक पुत्र ॥ १२ ॥ मरणको प्राप्त होगया, तब धर्मात्मा उन मुनिनें क्रोधित होकर उस महावनको शाप दिया ॥ १३ ॥ कि यह बडा वन कठिनसे प्रवेश करनेंके योग्य मृग पक्षी इत्यादि और सब जीवोंको आश्रय देनेंके अयोग्य हो जायगा उन सब वानरोंनें उस वनके सब पर्वतोंकी कन्दरायें ॥ १४ ॥ व नदियें आदि सबही खोजे पर उन महात्माओंनें वहांभी जनककुमारी सीताजीको न पाया ॥ १५ ॥ अथवा सुग्रीवजीके प्रियकारी श्रीरामचंद्रजीकी वनिता हरण करनें वाले रावणकोभी नहीं देखा वह सब वानर लता और झाडियोंसे ढके उस भयंकर ॥ १६ ॥ वनमें प्रवेश करके देवताओंसे निर्भय हुए भयंकर कर्म करने वाले एक राक्षसको देखते हुए वानरोंनें उस पर्वताकार घोर असुरको देखकर ॥ १७ ॥ हढ रूपसे जांघिया आदि वस्त्र पहरे वह बली राक्षसभी उन समस्त पर्वताकार वानरोंको देखकर उनसे बोला कि देखो मैं अभी तुम सबको मारे डालताहूं ॥ १८ ॥ यह कहकर घूसातान क्रोधकर वह उन सब वानरों पै धाया उसको इस भांतिसे आता हुआ देखकर सहसा वालि कुमार अंगदजीने ॥ १९ ॥ यही रावणहै यह समझकर उसके एक चपेट लगाई वह वालि पुत्र अंगदजीके चपटाघातसे व्याकुल हो मुखमें रुधिर वमन करता ॥ २० ॥ उखडे हुए पर्वतकी समान वह राक्षस पृथ्वीपर गिरा, उस असुरके मृतक हो जानेंसे वानर गण विजय लक्ष्मी पाय परमानंदको प्राप्त हुए ॥ २१ ॥ फिर उन समस्त वानरोंनें पर्वतकी समस्त कंदराओंको और बनको ढूंढा पर वहांभी सीताजीको न पायकर एक दूसरे वनमें प्रवेश करते हुये ॥२२॥

अन्यदेवापरंघोरंविविशुर्गिरिगह्वरम् ॥
तेविचित्यपुनःखिन्नाविनिष्पत्यसमागताः ॥
एकांतेवृक्षमूलेतुनिषेदुर्दीनमानसाः ॥ २३ ॥

वहांपर उन्होंनें बडी घोर भयानक कई एक पर्वतकी कन्दरायेंभी देखीं उन सब वानरोंनें वहांभी जरा २ करकै ढूंढा और सीताजीको न देख वहांसे निकल श्रमसे कातरहो दीन भावसे एक वृक्षकी जडमें बैठ गये ॥ २३ ॥ इ० श्री० वा० आ० कि० अष्टचत्वारिंशः सर्गः ॥ ४८ ॥

एकोनपंचाशः सर्गः ॥

अथांगदस्तदासर्वान्वानरानिदमब्रवीत् ॥
परिश्रांतोमहाप्राज्ञःसमाश्वास्यशनैर्वचः ॥ १ ॥

फिर महा पंडित अंगदजी थक कर समस्त वानरोंको क्रम २ से समझाकर कहने लगे ॥ १ ॥ वन, पर्वत, दुर्गमस्थान, गहन दररे, पर्वतोंको गुफा, यह सब स्थान रत्ती २ करकै ढूंडे गये ॥ २ ॥ परन्तु इन सब जगह श्रीजानकीजो या दुष्कर्म करने वाले जानकीजीके हरणकारी राक्षस रावणको न पाया ॥ ३ ॥ हम लोगोंको दिया हुआ एक मासका समयभी कबका वीतगया सुग्रीवजीकी आज्ञा वडी कडी है, इस कारण तुम लोग फिर खोजो ॥ ४ ॥ इसलिये सब कोही आलस्य, शोक, निद्रा, परित्याग करके इस प्रकार ढूँढना चाहिये जिस्से जानकीजी मिल जांय ॥ ५ ॥ खेदित न रहना, चतुरता, और मनको जीतना, यह सबही कार्य सिद्धके कारण हैं, इसी कारण हम तुमसे ऐसा कहते हैं ॥ ६ ॥ हे वानरो इस कारण इस समय तुम सब आलस्यको छोडकर वन और जितनें दुर्गम स्थान हैं सबको जरा २ करकै खोजो ॥ ७ ॥ जो लोग कार्यको करते हैं उनको उस कार्यका फल अवश्यही मिलता है परन्तु एक वार खेद युक्त; होनेसे फिर उत्साह आना अत्यन्त कठिन हो जाता है ॥ ८ ॥ हे वानरगण! सुग्रीवजी वडे क्रोधी राजा हैं; वह वडा कडा दंड दिया करते हैं; इसलिये उनसे और महात्मा श्रीरामचन्द्रजीसे भय करना उचित है ॥ ९ ॥ तुम्हारे सबके हित करनेंहीके लिये हमनें ऐसा कहा है; यदि रुचि हो तो इस कार्यको करो; जिस्से जितना कार्य होसकै उतनाही कार्य करे; और तुमनें जो कुछ हितकारी बात विचारी हो वहभी कहो ॥ १० ॥ अंगदजीके वचन सुनकर गन्धमादन नामक वानर प्यासके मारे और परिश्रमसे व्याकुल हो कहने लगा ॥ ११ ॥ अंगदजीने जो कुछ कहा वह हितकारी और अनुकूल है इसलिये इनके कहनेंके अनुसार कार्य करो ॥ १२ ॥ हम सब जन पर्वत कन्दरायें, शिला, वन और पर्वतोंके शूने स्थान ढूंडे ॥ १३ ॥ जिस प्रकार सुग्रीवजीनें वताया है उसी प्रकारसे गिरि दुर्ग और पर्वतोंके झरनें

सब फिरकर ढूंडो ॥ १४ ॥ यह सुनकर समस्तही बलवान वानरगण फिर उठे और विन्ध्याचलकी कानन पूर्ण दक्षिण दिशामें घूमने लगे ॥ १५ ॥ घूमते २ उन्होंनें एक शरदकालको मेघकी तुल्य रंगवाला शिखर और गुफादि युक्त चांदीका एक पर्वत देखा उसपर चढ ॥ १६ ॥ और उसी गिरिपर सीताजीके देखनेंकी इच्छा किये समस्त वानरोंनें सात पत्ते वाले वृक्षोंका वन और लोध्र रमणीक वन देखा, उस सबमेंभी उन्होंने जानकीजीको देखा ॥ १७ ॥ विपुल विक्रमकारी वानर लोग थककर उस पर्वतकी चोटीपर चढे, परन्तु वहांपरभी श्रीरामचन्द्रजीकी प्राणप्यारी जानकीजीको उन्होंने न देखा ॥ १८ ॥ वह वानरगण उस पर्वतकी बहुत सारी कन्दराओंको देखते भालते इधर उधर चढनें लगे ॥ १९ ॥ जब बहुत देरतक परिश्रम करनें परभी कुछ फल न पाया तब भूमिपर आय थककर व्याकुल चित्त हो एक वृक्षकी जडका आश्रयकर बैठे रहे ॥ २० ॥ जब उन लोगोंकी कुछ एक थकावट दूर होगई और विश्रामभी मिलगया तब फिर उत्साहित हो दक्षिण दिशाको ढूँडने लगे ॥ २१ ॥

हनुमत्प्रमुखास्तावत्प्रस्थिताःप्लवगर्षभाः ॥
विंध्यमेवादितःकृत्वाविचेरुश्चसमंततः ॥ २२ ॥

हनुमानादि कपिगण प्रथम भली प्रकारसे विन्ध्याचल ढूँडकर फिर सुग्रीवजीकी बताई हुई समस्त दक्षिण दिशा ढूडने लगे ॥ २२ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये किष्किन्धा कांडे एकोन पंचाशःसर्गः ॥ ४९ ॥

पंचाशःसर्गः ॥

सहतारांगदाभ्यांतुसंगम्यहनुमान्कपिः ॥
विचिनोतिचविंध्यस्यगुहाश्चग[illegible]निच ॥ १ ॥

कपिश्रेष्ठ हनुमान तार और अंगदजीके स[illegible] विन्ध्याचल पर्वतकी गुफा और समस्त सघन वन ढूंडनें लगे ॥ १ ॥ [illegible] वानर सिंह शार्दूल युक्त गुफा विषम स्थान और पर्वती बडे २ झ[illegible] जिनमें विमल जल बहताथा ॥ २ ॥ और उस पर्वतके दक्षिण और [illegible]म वालेकोनों पर

खोज करनें लगे, तबतक सुग्रीवजीनें जो समय उनके लिये नियत कियाथा वह बीतगया ॥ ३ ॥ वह पर्वत बडी कठिनाईसे खोजनेंके योग्यथा कारण कि अनेक प्रकारकी गुफा व सघन विस्तारित वन विद्यमानथे; हनुमानजीनें उन समस्त पर्वतोंको ढूंडा ॥ ४ ॥ परस्पर एक दूसरेके निकट रहकर एक २ करके गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गंधमादन, ॥ ५ ॥ मैन्द ! द्विविद, हनुमान, जाम्बवान्, युवराज अंगद, तार, इन सबने वनमें फिरते हुये ॥ ६ ॥ पर्वतके समूहसे युक्त दक्षिण दिशाको ढूंडते भालते हुये एक अति ऐंडी गुफादेखी ॥७॥ उस का ऋक्ष बिल नामथा, वह अति दुर्गम और दानवोंसे रक्षित बेल पत्तोंसे ढक रहीथी. क्षुधा, और प्यास लगनेंके कारण थके जलपान करनेंकी इच्छा किये ॥८॥ लता पातादिकों से छाये उस महाबिलको देखते हुये, उसमें से क्रौञ्च, हंस, सारस आदि पक्षी निकल रहेथे ॥ ९ ॥ जलसे भीगे कमल परागसे रँगीले अरुण चकवा चकवीभी दृष्टि आये, उस सुगन्धिवान, बडे कठिनसे प्रवेश करने योग्य बिलको प्राप्त होकर ॥ १० ॥ सब वानर यूथपों का मन विस्मयसे व्याकुल होगया उन सब वानर श्रेष्ठोंको उस बिलके विषयमें बडी शंका उत्पन्न हुई ॥ ११ ॥ वह तेजस्वी महा बलवान् वानर गण अनेक प्रकार के जीवोंसे परिपूर्ण राजा बलिके स्थानके तुल्य उस बिल के द्वारपर आये ॥ १२ ॥ वह बिल बडे कष्टसे दर्शन करनेंके योग्य अतिघोर सब स्थानोंमें दुर्गम थी, तब पर्वतकी समान पवनकुमार हनुमानजी ॥ १३ ॥ जोकि वन पर्वतोंका विषय भली भांति जानतेथे घोर दर्शन वानरोंसे बोले कि हम सबनें दक्षिण दिशामें पर्वतोंसे घिरे हुये सब देश ढूंडडाले ॥ १४ ॥ और हम अब बहुतही थक गये, परन्तु जानकीजीको अबतक नहीं पाया; इस बिलसे हंस, क्रौञ्च, सारस॥१५॥ और जलसे भीगे चकवा चकवीभी इस स्थानसे निकल रहेहैं इस्से निश्चय होताहै, कि यह कूपहीहो; वा, ह्रदहीहो, परन्तु जल इसमें अवश्यहै ॥ १६ ॥ और देखो इस बिलके द्वारे पर हरे और चिकने पौधे उत्पन्न हो रहेहैं इतना कहकर सबही उस महा अँधियारे बिलमें प्रवेश करते हुये ॥ १७ ॥ वहां पर सूर्य चंद्रमाका प्रकाश नहीं था इस कारण उस बिलमें पैठतेही वानरोंके रोम खडे होगये उन वानरोंको उसमें सिंह, व्याघ्र, मृग, पक्षी, इत्यादि निकलते दिखाई पडे ॥ १८ ॥ परन्तु वह सब

वानर। निडरहो उस आँधियारे बिलमें प्रवेश करते चलेही गये परन्तु वानर गण अपनी दृष्टि या पराक्रम वहां प्रगट नहीं करसके॥ १९॥ उन वानरोंकी गतिके वायुकी गतिके समान दृष्टि नहीं आतीथी, वरन अंधकारमें डूबी जातीथी; वह कपिकुंजर वेगसे उस बिलमें प्रवेश करते हुये॥२०॥ जब उस बिलके भीतर पहुंचे तौ उन्होंनें मनोहर प्रकाशित उजाले सहित स्थान देखा उस भयंकर अनेक प्रकारके वृक्ष लगे बिलमें२१॥ एक दूसरेको पकडे चारकोश तक चले आये तिसके पीछे प्याससे आतुर जलके लिये वह भ्रान्त चित्त होगये ॥ २२॥ और थकावटके मारे उस बिलमें गिरपडे, मार्ग चलनेंके कारण थकितहो कुछ समयतक वैसेही पडे रहे क्योंकि वह बहुत दुर्बलहो रहेथे॥ २३॥ उन वानरोंनें इधर उधर देखकर समझा कि बस अब यहींपर हमारा मरण होगा फिर बडे कष्ट और यत्नसे चले तौ आगे एक बहुत प्रकाश मय वन दृष्टि आया॥ २४॥ उस वनके सुवर्ण मय वृक्षोंकी प्रभा अग्निकी प्रभाके तुल्यथी, उन वृक्षोंमें ताल, तमाल, पुन्नाग, वंजुल, धव,॥ २५॥ चंपक, नाग, कर्णिकार यह सब वृक्ष फूल रहेथे और विचित्र लाल वर्णके गुच्छे और कोंपल इन वृक्षोंमें लगेथे॥ २६॥ उन वृक्षोंपर जो बेलें छाई हुईथीं, वही उनके गहनें की समान शोभायमान हो रहीथीं, उन सबके थावले वैदूर्य्य मणिके बनाये गयेथे॥ २७॥ यह सब वृक्ष कांचन मय होनेंसे प्रकाशमानथे और सरोवरोंमें नील वैदूर्य मणिके सजीव पक्षी गुंजार कर रहेथे॥ २८॥ बालसूर्यके समान रंग वाले बडे २ वृक्ष सुवर्णके ही लग रहेथे,और सरोवरोंमें मीनभी सुवर्ण के होथे, कमलभी सब हेममयथे॥२९॥ इस प्रकारकी स्वच्छ जल वाली पुष्करिणियोंके देखनेंके अतिरिक्त शत२ विमान वहांथे जिनमें अनेक चांदीके बनेथे अनेक सोनेकेथे॥ ३०॥ सब सुवर्ण मय झरोखोंमें मोतियोंकी झालर लगीथीं; सुवर्ण व चांदीके बने वैदूर्य मणि युक्त॥ ३१॥ वहां अनेक प्रकारके गृह वानरोंने देखे और फल पुष्प युक्त मूंगे मणियोंके वृक्षभी देखते हुए॥ ३२॥ सुवर्ण मय भ्रमर और मधू और मणि काञ्चन सेवित सुवर्णके शयन करनें उठनें बैठनेंके आसन विराजमानथे॥ ३३॥ अनेक भांतिकी और अति विशाल यह सब वस्तुयें वानरोंनें देखीं और भोजन करनेंके सोने चांदी व कांसीके ब-

तेनोंके ढेरके ढेर देखे ॥ ३४ ॥ अगर और दिव्य चन्दनोंकी बड़ी २ राशियें देखीं । और अति पवित्र भोजन करनेंके लायक मूल और फल॥३५॥ बडे २ मूल्यवान् शिविकादियान और रसवान बहुत सारा मधु देखा बडे मोलके वस्त्र समूहभी इकट्ठे देखे ॥ ३६ ॥ और विचित्र शालदुशाले और मृग चर्मोंके पुंजके पुंज इधर उधर उस बिलमें पडे हुए उन महा कांति वाले ॥ ३७ ॥ शूरवीर वानरोंनें देखे; जब वह बहुत आगे बढे तब उन्होंनें दूरसे एक स्त्री देखी; उन वानरोंनें उस स्त्रीको कृष्ण मृग चर्मके वस्त्र धारण किये देखी ॥ ३८ ॥ वह नियमित आहार करनें वाली तपस्विनी मानों कि अपने तेजसे प्रज्वलित होरहीहै उसे देख सब वानर विस्मय युक्त हो उसको चारों ओरसे घेरकर खडे होगये । तब हनुमानजीनें उस्से पूँछाकि तुम कौनहो ? और यह बिल किसकाहै ? ॥ ३९ ॥

ततोहनूमान्गिरिसन्निकाशःकृतांजलिस्ता
मभिवाद्यवृद्धाम् ॥ पप्रच्छकात्वंभवनंबिलं
चरत्नानिचेमानिवदस्वकस्य ॥ ४० ॥

वह पर्वत तुल्य देहधारी हनुमानजी हाथ जोडकर उस वृद्ध तपस्विनीसें बूझनें लगे कि तुम कौनहो? और बिल भवन व यह समस्त रत्न किसकेंहैं ? सो तुम बताओ ॥ ४० ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे पंचाशः सर्गः ॥ ५० ॥

इकपंचाशः सर्गः ॥

इत्युक्त्वाहनुमांस्तत्रचीरकृष्णाजिनांबराम् ॥
अब्रवीत्तांमहाभागांतापसींधर्मचारिणीम् ॥ १ ॥

हनुमानजी यह कहकर फिर उस चीर और मृग चर्म धारण करनें वाले धर्मचारिणी महाभागा तपस्विनीसे बोले ॥१॥ हम लोग सब भांतिसे थकित प्यासे और खिन्न होकर सहसा इस अंधकारसे ढके हुए बिलमें चले आयेहैं२ हम लोग अधिक करके प्यासे होनेंके कारणही इस बडे भारी बिलमें प्रवेश कर आये हैं । परन्तु यहांपर आय यह विविध भांतिके अद्भुत पदार्थ देखे ॥ ३ ॥ जिनके देखते ही हम सब व्यथित, सम्भ्रान्त चित्त

और हत बुद्धि होगये हैं, यह प्रभात कालीन सूर्यकी समान प्रभावाले सुवर्ण मय वृक्ष किसके हैं? ॥ ४ ॥ यह पवित्र भोजन करनेके पदार्थ फल मूलादि किसके हैं? सुवर्ण मय विमान चांदीके बने गृह ॥ ५ ॥ सुवर्ण मय मणियोंके जाल लगे यह झरोखे पुष्पित फलवान पुण्य दायक सुगन्धि से महकते ॥ ६ ॥ जाम्बू नदके सुवर्ण मय वृक्ष किसके तेजसे उत्पन्न हुये हैं सुवर्ण मय कमल फूलसे विमल जलमें कैसे बने॥७॥ मछलियां और कछुये किसके तेजसे सुवर्ण मय हुये? यह सब आपके प्रभावसे अथवा और किसी तपस्याके बलसे बनेहैं? ॥ ८ ॥ हम सब इस बातको कुछ भी नहीं जानते आप अनुग्रह करके यह सब वृत्तान्त हमसे कहदीजिये, जब हनुमानजीने उस धर्मचारिणी तपस्विनीसे ऐसा कहा ॥ ९ ॥ तब सब प्राणियोंके ऊपर दया करने वाली वह तपस्विनी हनुमानजीको उत्तर देती हुई हेवानर श्रेष्ठ! महा तेजवान मय * नामक एक मायावीदानवथा ॥१०॥ उसने ही यह सब सुवर्ण मय वन मायासे बनाया पहले यह दानव मुख्य दानवोंका विश्वकर्मा अर्थात् शिल्पीथा ॥ ११ ॥ यह काञ्चनमय दिव्य भवन उसकाही बनाया हुआ है उसने हजार वर्ष तपस्या करके इस बडे वनको ॥ १२ ॥ ब्रह्माजीसे वर पायकर बनाया और शुक्राचार्यजीके समस्त शिल्प विद्यारूप धनको प्राप्त करता हुआ अर्थात् उसको सब प्रकारका काम बनाना आगया वह यह समस्त बनाय समस्त भोग वस्तु ओंका ईश्वर हो ॥ १३ ॥ कुछ काल तक सुखसे इस महावनमें वास कियाथा, तिसके पीछे वह दानव श्रेष्ठ हेमा नाम वाली अप्सरामें आसक्त हुआ ॥ १४ ॥ तब पुरन्दर इन्द्रजीने यह सब वृत्तान्त जानकर युद्धकर उसको अपने वज्रसे नाश कर दिया फिर ब्रह्माजीने यह उत्तम वन हेमाको देदिया ॥ १५ ॥ यथेच्छा भोग, और यह सुवर्ण मय गृहभी हेमाको देदिया । हम मेरु सावर्णिकी स्वयं प्रभा कन्याहैं॥ १६॥ हे वानर श्रेष्ठ! हम इस हेमाके भवनकी रक्षा किया करती हैं हमारी प्रिय सखी नृत्य और गीतमें विशारद हेमाहै ॥ १७ ॥ हम उसके दिये हुए वरसे इस बडे वनकी रक्षा करतीहैं तुम्हारा क्या कार्यहै और किस कारणसे तुम सब इस जंगलके मार्गमें आयेहो ? ॥ १८ ॥

* दैत्योंमें जो कारीगर होताहै उसे मयकी पदवी प्राप्तहोतीहै ॥

कथंचेदंवनंदुर्गंयुष्माभिरुपलक्षितम् ॥
शुचीन्यभ्यवहाराणिमूलानिचफलानिच ॥
भुक्त्वापीत्वाचपानीयंसर्वमेवक्तुमर्हसि ॥ १९ ॥

और किस प्रकारसे तुमनें यह दुर्गम वन देखा तुम सबही इस व्यवहार-के द्रव्योंको भोगकर फल मूल जल आदि भोजनकर पानी पी करके अ-पने आनेका समस्त वृत्तान्त हमसे कहो ॥ १९ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडेएकपंचाशः सर्गः ॥ ५१ ॥

द्विपंचाशः सर्गः ॥

अथतानब्रवीत्सर्वान्विश्रांतान्हरियूथपान् ॥
इदंवचनमेकाग्रातापसीधर्मचारिणी ॥ १ ॥

ऐसा श्रवण करके सब वानरोंनें विश्रामकर भोजन पान किया तब वह धर्मचारिणी तपस्विनी एकाग्र चित्तहो उन वानरोंसे इस प्रकार बोली॥१॥ हे वानरो यदि फल खायकर तुम्हारी थकावट मिट गईहो, और यदि हमारे श्रवण करनेंके अयोग्य नहो तो तुम्हारे आनेंकी कथाके श्रवण कर-नेंकी हम वासना करतीहैं ॥ २ ॥ पवनकुमार हनुमानजीनें उस तपस्वि-नीके यह वचन सुनकर सरल भावसे यथार्थ वृत्तान्त कहना आरंभ किया ॥ ३ ॥ इन्द्र और वरुण तुल्य सर्व लोकोंके राजा दशरथजीके पुत्र श्रीरामचंद्रजी दंडकवनमें आये ॥ ४ ॥ वह अपने भ्राता लक्ष्मण और अपनी भार्याके सहित वनमें आये; उनकी भार्याको जनस्थानसे बला-त्कार रावण हरण करके ले गया ॥ ५ ॥ उनके सखा वीर सुग्रीवजी वान-रोंके राजाहैं उन्होंनेंही हमको यहांपर भेजाहै ॥ ६ ॥ हम लोग अंगदादि प्रधान २ वानरोंके सहित अगस्त्यजीसे सेवित दक्षिण दिशामें आयेहैं॥७॥ उन सुग्रीवजीनें आज्ञादीहै कि तुम सब वानर मिलकर सीता और काम-रूपी राक्षस रावणको ढूंडो ॥ ८ ॥ उनकी आज्ञासे हम दक्षिण दिशाको समस्त वन और समुद्र खोज क्षुधितहो थककर वृक्षोंके नीचे बैठ गये॥९॥ हम सब वानर पीले वदन ध्यान परायणहो, चिन्ताके महासागरमें डूब गये और किसी प्रकार उसके पार न जाय सके ॥ १० ॥ तब चारों ओर

निहार २ कर देख रहेथे कि इतनेमें लता पत्रकादिकोंसे ढका छाया यह बडा बिल दृष्टि आया ॥ ११ ॥ उस समय इस बिलसे जलके भीगे जल और कमलकी रेणु जिनके पंखोंमें लगी, ऐसे हंस कुरर और सारस पक्षी निकल रहेथे ॥ १२ ॥ उनको देखकर हमनें कहाकि हम इस बिलमें प्रवेश करेंगे और सब वानर गणभी अनुमान करके इस बिलमें प्रवेश करनेंको सम्मत हुए ॥१३॥ फिर कार्य करनेंमें शीघ्रता युक्त वानर गण एक दूसरेका हाथ पकड बिलमें प्रवेश करनें लगे ॥ १४ ॥ इस प्रकारसे हम अंधकारसे ढके हुए बिलमें पैठेहैं हमारा यही कार्यहै इसी कार्यके हेतु हम यहां आयेहैं ॥ १५ ॥ हम सबही थकित और क्षुधित होकर आपके निकट आये और आपनें अतिशय धर्मानुसार हमें फल मूल खानेंको दिये ॥ १६ ॥ जिसको भक्षण करके हमनें जीव धारण किया हम मरनें पर हुए और आपनें हम लोगोंको बचाया ॥ १७ ॥ इसकारणसे यह वानरगण आपका क्या उपकार करें सो आप बताइये जब सब वानरोंनें सर्वज्ञा स्वयम्प्रभातापसीसे ऐसा कहा तो ॥ १८ ॥ वह समस्त वानर यूथपोंसे बोली कि हम समस्त कार्य करनेंमें चतुर वानरोंके प्रति अत्यन्त सन्तुष्ट हुई ॥ १९ ॥ अपने धर्मानुसार चलती हुई हमारा किसी बातसे कुछ प्रयोजन नहींहै जब इस प्रकार उस तपस्विनीनें धर्म संगत शुभ वचन कहे ॥ २० ॥ तब हनुमानजी उस अनिन्दिता शुभनेत्र वाली उस तपस्विनीसे बोले कि आप धर्मचारिणीहैं इसलिये हम सबनेंही आपकी शरण ग्रहणकी ॥ २१ ॥ जो महात्मा सुग्रीवजीनें एक मासका समय हमें दियाथा वह समयतो इस बिलमेंही रहते २ बीत गया ॥ २२ ॥ इसलिये आप शीघ्रता सहित हमको इस बिलसे बाहर निकालिये क्योंकि उन सुग्रीवका वचन उल्लंघन करनेसे हमको आयुहीन होना पडैगा २३॥ इसलिये आप सुग्रीवके भयसे हम लोगोंका उद्धार कीजिये हे धर्मचारिणी॥ हमको बडाभारी कार्य करना है ॥ २४ ॥ जो हम इस बिलमेंही बंद रहेंगे तो हमारा वह कार्य सिद्ध नहीं होगा जब हनुमानजीने यह कहा तो वह तपस्विनी बोली ॥ २५ ॥ कि जो यहांपर प्रवेश करता है, वह फिर जीवितही यहांसे निकलनेंको समर्थ नहीं होता परन्तु हम अपने नियमकी उपार्जन की हुई तपस्याके प्रभावसे ॥ २६ ॥ समस्तवानरों-

को इस बिलसे उद्धार करैंगी हे वानर श्रेष्ठो! तुम सब अपने २ नेत्र बंद करो ॥ २७ ॥ क्योंकि बिना नेत्र बंद किये इस स्थानसे निकलनेमें समर्थ नहीं हुआ जाता यह सुन सब वानरोंनें अपने सुकुमार हाथोंकी अंगुलियोंसे ॥ २८ ॥ अपने नेत्र झटपट बंद किये क्योंकि उनको उस बिलसे निकलनेंकी वासनाथी, जब सब महात्मा वानरोंनें अपने २ नेत्र अपने २ हाथोंसे बंद किये ॥ २९ ॥ तब उस तपस्विनीनें एक पलमें उन सब वानरोंका बिलसे उद्धार किया, जब वह सब बाहर आगये तब वह धर्म चारिणि तपस्विनी उन सबसे बोली ॥ ३० ॥ वह उस विषमस्थानसे वानरोंको निकाल उनको समझा बुझाकर कहनें लगी कि अनेक प्रकारके वृक्षलता आदिसे पूर्ण श्रीमान् विन्ध्याचल यही है ॥ ३१ ॥

एषप्रस्रवणःशैलःसागरोयंमहोदधिः ॥
स्वस्तिवोस्तुगमिष्यामिभवनंवानरर्षभाः ॥
इत्युक्तातद्बिलंश्रीमत्प्रविवेशस्वयंप्रभा ॥ ३२ ॥

यह दूसरा प्रस्रवण पर्वत है, यह महासागर दृष्टि आता है हे वानरगणो! तुम्हारा मंगल हो अब हम अपने स्थानको जांयगी यह कहकर स्वयम्प्रभा तपस्विनी उस परम सुन्दर बिलमें प्रवेश कर गई ॥३२॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडेद्विपंचाशःसर्गः ॥ ५२ ॥

त्रिपंचाशः सर्गः ॥

ततस्तेददृशुर्घोरंसागरंवरुणालयम् ॥
अपारमभिगर्जंतंघोरैरूर्मिभिराकुलम् ॥ १ ॥

जब सब वानर बिलके बाहर आये तब उन्होंने अपार घोर भयंकर तरंग उठता हुआ, गर्जता वरुणालय सागर देखा ॥ १ ॥ मय करकै मायासे बनाये हुये गिरि दुर्गको ढूंडतेही ढूंडते उन वानरोंका वह समय बीतगया जो सुग्रीवजीनें नियम कर दियाथा ॥ २ ॥ तब महात्मा वानर वृन्द, विन्ध्याचलके पुष्पित तरु शोभित एक पर्वतपर बैठ चिंता करने लगे॥ ३ ॥ फिर वह वानरगण फूलोंके बोझसे परिपूर्ण शत २ लता मंडित वसंतकालके वृक्षोंको देखकर बहुतही शंकित हुये ॥ ४ ॥ वह यह विचारकरकि

सुग्रीवजीका नियत किया समय बीतगया और वसंतकाल आगया, पृथ्वी पर गिर पड़े॥५॥तब उन अति श्रेष्ठ वृद्ध वानरोंका बड़ा आदर मान करते हुये यथावत अनुमान करके अति मधुर वाणीसे॥ ६ ॥ सिंह वृषभके कंधे वाले मोटी और बडी भुजा वाले युवराज अंगदजी बोले ॥ ७ ॥ कि हम कपिराज सुग्रीवजीकी आज्ञा पाय किष्किन्धासे निकले हैं सो तुमको यह नहीं जान पडता कि बिलमेंही पडे २ एक महीना होगया ॥ ८ ॥ हमनें क्वार मासके प्रारंभसे नियमित समयको निरूपण कियाहै, सो क्वारमास बीततेही वह समय बीतगया अब क्या कियाजाय?॥ ९ ॥ तुमसे इस कारण पूछतेहैं कि आप सब विनीत मार्गमें पंडित अपने स्वामीके हितमें निरत और समस्त कार्योंके करनेमें निपुण ॥ १० ॥ कार्य साधन करनेमें अनुपम सर्व दिशा विदिशाओंमें अपने पौरुषसे प्रसिद्ध हुये इसी कारणसे राजाज्ञाको प्राप्तकिये हमको आगेकर यहां आयेहो ॥ ११ ॥ जिस कार्यके लिये हम भेजेगये अभीतक वह कुछभी सिद्ध नहीं हुआ इस लिये बिना संशय सबका मरण हुआ क्योंकि वानरराज सुग्रीवजीका कार्य किये कौन पुरुष सुखी हो सकताहै ॥ १२ ॥ सुग्रीवजीका नियत किया हुआ समयतो बीतहीगया; इस समय हम सबको प्रायोपवेशन करके प्राण त्यागन करना सब भांतिसे ठीकहै ॥ १३ ॥ सुग्रीवजीका स्वभाव अति तीक्ष्णहै; तिसपर वह इस समय सब वानरोंके राजाहैं, सो उनका अपराध होनेपर किसी भांति क्षमा न करेंगे ॥ १४ ॥ सीताजीका पता न लगनेसे वह अवश्यही हम सबको मार डालेंगे, सो उस मरनेसे इस समय कहीं पुण्यस्थानमें प्राण दे देना हमारे लिये भलाहै ॥ १५ ॥ जो हम लोग यहांसे किष्किन्धाको चले जांयगे तो सुग्रीवजी निश्चयही हम सबको मार डालेंगे इस कारण इस समय यही पुत्र, स्त्री, धन, और गृहादि समस्तको छोड, प्राण त्याग करना हमें बहुत अच्छाहै इसमें कोई सन्देह नहीं ॥ १६ ॥ जो तुम कहोकि सुग्रीवनें तुमको युवराज कियाहै; वह तुम्हें नहीं मारेंगे, सो अबतक उन्होंनें हमको युवराज पदवी नहीं दीहै; इसलिये उस नीच पनकी मृत्यु होनेसे इसी स्थान पर मृत्यु पाना हम अच्छा समझतेहैं ॥१७॥ सर्व कार्य करनेमें चतुर श्रीरामचंद्रजीनें हमको युवराज पदवी पर अभिषेक किया, सुग्रीव तो प्रथमहीसे हमसे वैराचरण करतेहैं;

फिर वह जिस समय जानेंगे कि इन्होंनें कार्य पूरा नहीं किया ॥ १८ ॥ तौ उसी समय हमको वह तीक्ष्ण दंड देकर मार डालेंगे; अपनें सुहृद गणोंके निकट उस निन्दनीय मृत्युकी अपेक्षा, इस पवित्र समुद्रके तीर पर प्राण-त्याग करना हमारे अर्थ बहुत श्रेष्ठ होगा इसमें संशयही क्याहै? १९ ॥ युवराज कुमार अंगदजीके यह वचन सुनकर प्रधान २ वानर गण करुणा सहित वचन कहने लगे ॥ २० ॥ कि सुग्रीवजी तो ती-खे स्वभाव वाले, और रामचंद्रजीका प्रिय कार्य करनें में अनु-रक्त हैं यदि काम हो जाय और समयके वीत जानें पर भी ॥ २१ ॥ वह सुग्रीव नियत किये समयको बीता हुआ देख जानकी को देखनें और विना देखनें पर भी रामचंद्रजीका प्रिय करनेंको, निश्चय ही हम सबको मार डालेगा इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ २२ ॥ अपराधी जन अपने स्वामीके समीप गमन करनेंको समर्थ नहीं होते और तिसपै हम सुग्रीवजीके प्रधान पुरुष होकर आये हैं ॥ २३ ॥ हम विनाही सी-ताजीके देखे और उनका वृत्तान्त न पाय कदापि सुग्रीवके निकट न जांयगे; चाहै यमपुरको चले जाँय ॥ २४ ॥ भयसे पीडित वानर गणोंके यह वचन श्रवण करकै तार बोला कि तुम लोग विषाद न करो यदि तुम्हारी इच्छा हो तौ सबही इस बिलमें प्रवेश करेंगे और यहां रहैंगे ॥ २५ ॥यह बिल मायासें बना हुआ होनेंके कारण अत्यन्त दुर्गम है इसमें बहुतेरे पुष्प भोजन करनेंकी सामग्री, पीनेंकें पदार्थ जल इत्यादि हैं; यहांपर इन्द्रसे भी हम लोगोंको भय नहीं है फिर भला वानरराज और रामचंद्रजीसे हम लोगोंको क्या भय हो सकताहै ॥ २६ ॥

श्रुत्वांगदस्यापिवचोनुकूलमूचुश्चसर्वेह
रयःप्रतीताः ॥ यथानहन्येमतथावि
धानमसक्तमद्यैवविधीयतांनः ॥ २७॥

अंगदजीके अनुकूल वचन श्रवण कर सब वानर उन वचनोंकी प्रतीत करकै बोले कि युवराज जिसमें हमारे प्राण न जांय आपको शीघ्र ही उस कार्यका विधान करना चाहिये ॥ २७ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकिये आदिकाव्ये कि० त्रिपंचाशः सर्गः ॥ ५३ ॥

चतुःपंचाशः सर्गः ॥

तथाब्रुवतितारेतुताराधिपतिवर्चसि ॥
अथमेनेहृतंराज्यंहनूमानंगदेनतत् ॥ १ ॥

चंद्रमाकी समान प्रभाशाली तारने जब इस प्रकारसे कहा तो हनुमानजीनें अनुमानकिया कि बस अब अंगद करके सुग्रीवका राज्य गया॥१॥ हनुमानजीनें अंगदजीको शुश्रुशादि अष्ट विध गुण बुद्धि चतुरंग सेना और देश कालज्ञतादि चौदह गुण निधान विचारा ॥ २ ॥ हनुमानजीनें विचारा कि अंगद सदाही तेज बल और पराक्रम से शुक्ल पक्षकी आदि से लेकर प्रभा लक्ष्मी युक्त चंद्रमाकी समान वर्त्तमान होरहाहै ॥ ३ ॥ यह युवराज बुद्धिमें बृहस्पतिकी समान और विक्रममें अपने पिताकी समानहै, तार वानरसे सेवित है जैसे इन्द्रजी शुक्रके वचनोंसे सेवित होतेहैं ॥ ४ ॥ ऐसे अंगदजीको अपने स्वामीका प्रयोजन सिद्ध करनेमें थकित देख सर्व शास्त्र विशारद हनुमानजी उनसे बोले॥५॥वह हनुमानजी चार प्रकारोंके उपायों मेंसे दूसरा उपाय भेद वर्णन करके सार युक्त वचनोंसे उन समस्त वानरोंको भेद करते हुये॥६॥जब सब वानरोंमें भेद पडगया तब हनुमानजीने दंड सहित भयंकर वचनोंसे अंगदको भय दिखाकर कहा ॥ ७ ॥ हे ताराकुमार! तुम युद्ध करनेंमें पिताको तुल्य सामर्थ्य रखतेहो, यदि कपिगण तुमको राज्यमें अभिषेकित करें तो तुम पिताजीकी ही समान दृढ़तासे राज्य धारण करनेंमें समर्थ होगे ॥ ८ ॥ हे वानर श्रेष्ठ ! चंचल चित्त वानर लोग अपने स्त्री पुत्रोंको सुग्रीवके वशमें पडा देख तुम्हारी आज्ञाका बिना पुत्र दाराके यहांपर बैठे हुए मान्य न करेंगे ॥ ९ ॥ हम तुमसे इन सबके सामनेही कहतेहैं कि यह लोग पुत्र स्त्रीको छोडकर तुम्हारे पर अनुराग न करेंगे यह जाम्बवान्, नील महा कपि सुहोत्र, ॥१०॥ और हम व समस्तही वानर गणको, साम, दान, भेद व दंड द्वारा सुग्रीवजीके निकटसे तुम नहीं खेंच सकते ॥ ११ ॥ बलवान पुरुष दुर्बल को जीतकर आसन पाय सकताहै, इसलिये दुर्बलको अपनी रक्षा करते हुए बलवानसे वैर न करना चाहिये ॥ १२ ॥ और जो तुम इस गुफाको अपना रक्षण करनें वाला समझो सो यहभी वृथाहै, क्योंकि इस बिलका विदारण करना लक्ष्मणजीके

बाणोंका एक अति लघु कामहै ॥ १३ ॥ जब इन्द्रनें मयपर क्रोध करके इसमें वज्र माराथा तो इस्में एक छोटासा छेदही होगयाथा, परन्तु जब लक्ष्मणजी क्रोध करेंगे तो तीक्ष्ण बाणोंकी धारासे इसको पत्तोंके पुरको समान छिन्न भिन्न कर डालेंगे इसमें कुछभी संदेह नहीं ॥ १४ ॥ कारण कि लक्ष्मणके पास ऐसे पर्वतोंके तोडनें वाले वज्र तुल्य बाण बहुत सारे विद्यमानहैं ॥ १५ ॥ हे परवीर वाली! जैसेही कि इस बिलमें तुम अपना वास स्थान बनाओगे तबही यह सब वानर गण कृत निश्चय होकर निःसंदेह तुमको छोडकर चले जायँगे ॥ १६ ॥ यह सब वानर अपनेर स्त्री पुत्रोंकी याद करके व्याकुल हो भूखों मरेंगे। इस प्रकार दुःखके पानेसे खेद युक्त हो तुमको पीछे छोड चले जायँगे ॥१७॥ तुम हित चाहनें वाले बन्धु और सुहृद् जनोंसे रहित सदा चंचल चित्तहो एक तिनकेसेभी घवडा जाया करोगे ॥ १८ ॥ जो तुम विग्रह करोगे तो लक्ष्मणजीके महा भयंकर तेज,उग्र वेगवान दुर्द्धर्ष बाणोंका समूह तुमको संहार करेगा ❀ ॥ १९ ॥ तुम हमारे संग जो विनीत भावसे सुग्रीवजीके पास चलोगे, तो सुग्रीवजी आदिसे अंततक समस्त वृत्तान्त श्रवण करके तुमको अवश्य राज्यमें अभिषेकित करेंगे ॥ २० ॥ तुम्हारे पितृव्य सुग्रीवजी, धर्मराज,प्रीतिमान दृढव्रत,पवित्र और सत्य प्रतिज्ञहैं वह कदापि तुम्हारा विनाश नहींकरैंगे२१॥

प्रियकामश्चतेमातुस्तदर्थंचास्यजीवितम् ॥
तस्यापत्यंचनास्त्यन्यत्तस्मादंगदगम्यताम् ॥ २२॥

वह सुग्रीवजी तुम्हारी माताका प्रियकार्य करनें वाले हैं, उसकेही निमित्त उनका जीवन है और सुग्रीवके और कोई पुत्रभी नहीं है कि वह उसे राज्य देदेंगे इसलिये अंगद! तुम अवश्य किष्किन्धाको चलो ॥ २२ ॥
इ० श्रीम० वा० आदि० किष्किन्धाकांडे चतुष्पंचाशः सर्गः ॥ ५४ ॥

पंचपंचाशःसर्गः॥

श्रुत्वाहनुमतोवाक्यंप्रश्रितंधर्मसंहितम् ॥
स्वामिसत्कारसंयुक्तमंगदोवाक्यमब्रवीत् ॥ १ ॥

❀ दोहा—तासों मनमें शान्तिकर, ढूंढौ वन चित लाय ।
जनकसुता निज भाग्य वशजो कदापि मिलजाय॥

हनुमान्‌जीके धर्म संगत स्वामीका सत्कार करनेंके योग्य विनय समन्वित वचन सुनकर अंगदजी बोले ॥ १ ॥ हे हनुमन्! स्थिरता, मनकी पवित्रता, सलज्जता, सरलता, विक्रम, और धीरता सुग्रीवजीमें यह कुछभी दृष्टि नहीं आता ॥ २ ॥ जो पुरुष माताकी तुल्य धर्ममें वर्तमान वडे भ्राताकी प्यारी रानी स्त्रीको, उसके पुत्र हमारे जीवित रहते स्वीकारकरले अर्थात्-अपनी स्त्री वनाले, वह अत्यन्त घृणितहै और धर्मके विषयको कुछ नहीं जानता इसलिये वह अत्यन्त अधर्मिक है ॥ ३ ॥ जो दुरात्मा भ्राता युद्धमें लगे हुये अपने भ्राताके मार्गको विलमें शिला लगायकर रोक दे, वह किस प्रकारसे धर्मका जान्नें वाला हो सकताहै ॥ ४ ॥ महायशवान कृतकार्य श्रीरामचन्द्रजीको जो सत्यसे ग्रहण करके भूलगया वह किसकी सुकृति व उपकार याद रख सकता है ॥ ५ ॥ जो अधर्मका भय नहीं करते जिसनें केवल लक्ष्मणजीके भयसेही सीताजीके खोजनेंकी आज्ञादी है, उसको धर्मका भय किस प्रकारसे संभव है? ॥ ६ ॥ वह पाप रूप, कृतघ्न, स्मृतिमार्गके कहे हुये धर्मसे भ्रष्ट हुआ है चंचल चित्त सुग्रीवके प्रति विशेषतः उसकेही कुलमें जन्म लेकर कौन उत्तम पुरुष विश्वास कर सकता है ॥ ७ ॥ सुग्रीव गुणवान हो, अथवा गुणरहित हो, परन्तु वह शत्रुकुल पुत्र हमको राज्यमें प्रतिष्ठित करके किस प्रकारसे जीवित रख सकैगा ॥ ८ ॥ हमारी विलमें प्रवेश करनेंकी मंत्रणा भेद हो गई है इसलिये अपराधी, हीन, दुर्वल, और अनाथकी समान हम किष्किन्धामें गमन करके किस प्रकार जीवित रह सकेंगे ॥ ९ ॥ शठ क्रूर निठुर, सुग्रीव, राज्यके लिये यदि हमको प्राणोंसे न मारें, तोभी हमें वन्धुआ तो अवश्यही करलेंगे ॥ १० ॥ हे वानरगण! वन्धन और अपवादसे किसी पुण्यस्थानमें जाकर मरना हमारे लिये अच्छाहै; इसलिये हमें आज्ञा देकर आप सव जनें अपने२ घरोंको चले जाइये ॥ ११ ॥ हम आप लोगोंसे प्रतिज्ञा करतेहैं कि हम किष्किन्धामें न जाँयगे इस स्थानमेंही हम मरण व्रत ग्रहण करेंगे क्योंकि हमारा मरणही श्रेष्ठ होगा ॥ १२ ॥ प्रथम हमारी ओरसे राजाजीको प्रणाम करके कुशल पूछना और श्रीराम लक्ष्मणजीसेभी प्रणाम करके कुशल पूछना ॥ १३ ॥ और उन राजा व छोटे हमारे तात सुग्रीवजीसे प्रणाम करके कुशल पूछना और हमारी माता रुमासेभी अरोग्य पूर्वक कुशल

पूछना ॥ १४ ॥ और हमारी माता ताराकोभी आप भली भांति समझा देना क्योंकि वह करुणावती तपस्विनी स्वभावसेही हमको बहुत प्यार करतीहैं ॥ १५ ॥ क्योंकि वह वहांपर हमारा मरण सुनकर निश्चयही अपने प्राणोंको परित्याग करदेंगी प्रणाम सहित यह सब वृद्धोंसे कह ॥ १६ ॥ कर अंगदजी रोदन करते हुए भूमिपर कुश बिछाय मरनेंके लिये उदासीनहो बैठगये उनको इस प्रकार मरनेंपर उतारू देख सब वानर श्रेष्ठ रोने लगे ॥ १७ ॥ वह सबके सब रोदन कर नेत्रोंसे जल धारा गिराने और सुग्रीवकी निन्दा और वालिकी बडाई करने लगे ॥ १८ ॥ और अंगदजीके ऐसे वचन सुनकर सब वानर मरनेके लिये निश्चय तैयारहो उनको घेरकर बैठ गये ॥ १९ ॥ और सबही समुद्रके जलमें आचमन कर पूर्व मुखहो समुद्रके दक्षिण किनारेकी ओर कुशोंको चोटीकर उनपर मरनेंको बैठ गये ॥ २० ॥ मरनेंकी इच्छा किये वानर अपने मरणको श्रेष्ठही मानते हुए श्रीरामचंद्रजीका वनवास, राजा दशरथका मरण ॥ २१ ॥ जनस्थानका विध्वंश, जटायुका मरण, जानकीका हरण, वालिका वध और श्रीरामचंद्रजीका क्रोध कहते २ वानर गणोंको भय प्राप्त हुआ अर्थात् उनपर एक बडी विपत्ति आई ॥ २२ ॥

सर्संविशद्भिर्बहुभिर्महीधरोमहाद्रिकूटप्र
तिमैःप्लवंगमैः ॥ बभूवसन्नादितनिर्झरांत
रोभृशंनदद्भिर्जलदैरिवांबरम् ॥ २३ ॥

पर्वतकी समान बहुत बलवाले वानरोंके प्रवेश करनें और उस पर्वतके शिखरपर कूदकर चढनेंसे वह पर्वत झरनें सहित शब्दायमान हुआ जैसे आकाशमें मेघ शब्द करतेहों ॥ २३ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे पंचपंचाशः सर्गः ॥ ५५ ॥

षट्पंचाशः सर्गः ॥

उपविष्टास्तुतेसर्वेयस्मिन्प्रायंगिरिस्थले ॥
हरयोगृध्रराजश्चतंदेशमुपचक्रमे ॥ १ ॥

जिस पर्वतपर सब वानर लोग चढ गयेथे, उस पर्वतपर एक गृद्धराज आनकर उपस्थित हुआ, यही बडी भारी विपत्ति वानरोंके लिये आई १॥

उस संपाति नामक चिरंजीवी विहंगम श्रेष्ठका बल पौरुष विख्यातथा, और यह जटायुका बडा भाईथा कि जिसनें श्रीरामचंद्रजीके कार्यमें अपने प्राण देदियेथे ॥ २ ॥ वह उन वानरोंका बोल सुन विन्ध्याचल पर्वतको कन्दरामेंसे निकल सब वानरोंको वहां बैठे देख हर्षित होकर कहनें लगा ॥ ३ ॥ कर्मके फलसे प्राणियोंके भाग्य अदलते बदलते रह-तेहैं उसके अनुसारही यह सब भोजनकी सामग्री बहुत दिनोंके पीछे आज मेरे सामने आईहै ॥ ४ ॥ हम बराबर २ लंगारसे बैठे हुए इन वान-रोंको क्रम २ से मारकर भोग लगाते जाँयगे, पक्षी श्रेष्ठ सम्पातिनें वान-रोंसे इस प्रकार कहा ॥ ५ ॥ वानरोंको भक्षण करनेंके लिये लोभी हुए उस पक्षीके ऐसे वचन सुनकर अंगदजी दुःखित होकर हनुमानजीसे बोले ॥ ६ ॥ देखो ! सीताजीके भाग्यसे वानर लोगोंकी विपत्तिके लिये साक्षात् यमराजकी समान यह पक्षी इस स्थानमें आयाहै ॥ ७ ॥ श्रीरामचंद्रजीके कार्यकी सिद्धि न हुई, न राजाहीकी आज्ञाके अनुसार कार्य हुआ । यह देखो ! इस समय वानारोंके लिये यह अज्ञात विपद् आय पहुँची ॥ ८ ॥ देखो एक जटायु पक्षीनें श्रीजानकीजीका हित करनेको जो कार्य कियाथा वह समस्त हमने श्रवणकर रक्खाहै॥९॥ इस प्रकार तिर्यक योनिमें जन्म ग्रहण करकै हम वानरोंकी समान सबही प्राणी प्राणत्याग करकेभी श्रीरामचंद्रजीके हित करनेंका यत्न कर-तेहैं ॥ १० ॥ वह श्रीरामचंद्रजीके प्रति स्नेह और करुणाके वशहो उनका उपकार करतेहैं, इसलिये उनका उपकार करनेंके लिये तुम लोगभी अपना जीव दे डालो ॥ ११ ॥ धर्मज्ञ जटायुनें श्रीरामचंद्रजीका कैसा कार्य कियाथा हम सबभीतो श्रीरामचंद्रजीके कार्यके लिये थके थकाये जीव देनेको तैयार बैठेहैं ॥ १२ ॥ और हम गिरि दुर्गतक चले आये, परन्तु श्रीजानकीजीको कहीं न देख पाया ! वह गृध्रराज जटायु रावणके हाथसे मरकर * सुग्रीवके भयसे छूट परम गतिको प्राप्त हुआ ॥ १३ ॥ जटायुके और राजा दशरथजीके मरणसे, फिर जानकीजीके हरणकी इन सब घटना ओंसे वानर गणोंको इस समय प्राण संशय आपहुंचाहै ॥ १४ ॥ श्रीराम लक्ष्मणजीका सीताजीके सहित वनमें वास, और श्रीरामचंद्रजीके

* सब पक्षी आदि जीव मात्रके सुग्रीव राजाथे सबको आज्ञा माननी पडतीथी ।

वाणसे वालिका वध ॥ १५ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजीके क्रोधसे राक्षसोंका वध, और अब हमारा मरण यह सब बातें एक कैकेयीके वरदान मांगनें-हीके कारण हुई हैं ॥ १६ ॥ गृध्र राज महामति सम्पाति उन वानरोंके कहे हुये अपनें अनुजके विषयमें अकीर्तित्त कृपण वचन सुनकर अत्यन्त चकितहो बोले ॥ १७ ॥ गंभीर स्वरवाले तीक्ष्ण चोंच धारी गृध्र अंगद-जीके मुखसे निकले हुये वह वचन सुनकर बोला ॥ १८ ॥ भाई कौन हमारे प्राणोंकी समान प्यारे भ्राता जटायुके वधका समाचार प्रचार करताहै? कि जिसको सुनकर हमारा मन कंपायमान होताहै ॥ १९ ॥ जनस्थानमें रावण और जटायुका युद्ध किस प्रकारसे हुआ? हाय! वहुत दिनके पीछे हमनें अपने प्यारे भ्राताका नाम सुना ॥ २० ॥ परन्तु हम इच्छानुसार इस पर्वत परसे उतर नहीं सकते इसलिये यह इच्छाहै कि तुमलोग उतारलो, हम तुम सब परगुणज्ञ, विक्रमोंसे प्रशंसनीय अपने लघुभ्राताके ॥ २१ ॥ नामका कीर्तन वहुत दिनोंके पीछे श्रवण करनेंके कारण अत्यन्त प्रसन्न हुये ॥ हे वानरश्रेष्ठो! मैं उसका विनाश सुना चाहताहूं ॥ २२ ॥ कि जनस्थानका रहनेंवाला हमारा भाई कैसे मारा-गया । और वही हमारा भाई दशरथजीका सखा कैसे हुआ ॥ २३ ॥

यस्यरामःप्रियःपुत्रोज्येष्ठोगुरुजनप्रियः ॥
सूर्यांशुदग्धपक्षत्वान्नशक्नोमिविसर्पितुम् ॥ २४ ॥
इच्छयापर्वतादस्मादवतुंमरिंदमाः ॥ २५ ॥

कि जिन दशरथजीके वडे प्यारे ज्येष्ठ पुत्र गुरुजनके प्रिय श्रीरामचं-द्रजीहैं । सूर्यकी किरणोंसे अपने पर जलजानेंके कारण हम उड़ नहीं सकते ॥ २४ ॥ इसलिये हे शत्रुओंके मारनेंवाले वानरो हम इस पर्वत से उतरना चाहतेहैं ॥ २५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदि काव्ये किष्किन्धाकांडे षट्पंचाशःसर्गः ॥ ५६ ॥

सप्तपञ्चाशःसर्गः ॥

शोकाद्भ्रष्टस्वरमपिश्रुत्वावानरयूथपाः ॥
श्रद्दधुर्नैवतद्वाक्यंकर्मणातस्यशंकिताः ॥ १ ॥

वानर यूथपतियोंने शोकके हेतु उस गृध्रके टूटे फूटे वचन सुनकर भी उसका विश्वास न माना क्योंकि वह वानर उसके वध वचन रूप कर्मसे शंकित हो रहेथे ॥ १ ॥ उन मरनेके लिये व्रत धारण किये हुये वानरों ने गृध्रको देखकर मनमें समझा कि यह भयंकर पक्षी हम सबोंको ही भक्षण करैगा ॥ २ ॥ हमतो प्राणत्याग करनेके लिये प्रायोपवेशन किये ही हैं, सो यदि यह गृध्रजो हमको भक्षण करले तो हमने जो मरण वासना की है वह सिद्ध हो जायगी और हम कृतार्थ हो जांयगे ॥ ३ ॥ समस्त कपि यूथपोंने इस प्रकार बुद्धि करके संपातीको पर्वतसे नीचे उतारा तब फिर अंगदजी उस्से बोले ॥ ४ ॥ हे पक्षिन्! ऋक्षराज नामक पृथ्वीपति प्रतापवान वानरोंके राजा हमारे पितामहथे उनके दो पुत्र अति धार्मिक हुये ॥ ५ ॥ वह सुग्रीव और वालि अति विक्रमशाली हुये उनमें विख्यातकीर्ति हमारे पिता वालि वानरोंके राजा हुये ॥ ६ ॥ जब सब जगत्के राजा इक्ष्वाकुकुलमें उत्पन्न हुये दशरथजीके पुत्र रामचंद्रजी वनमें आये ॥ ७ ॥ वह श्रीरामचंद्रजी पिताकी आज्ञासे धर्ममार्गमें टिककर भ्राता लक्ष्मण और अपनी भार्या वैदेहीजीके सहित वनमें आये ॥ ८ ॥ जबकि रामचंद्रजी आश्रममें नहींथे तब रावण बलसे उन रामचंद्रजीकी स्त्री सीताजीको हरण करके लेगया उनके पिता दशरथजीके मित्र जटायु नाम गृध्रराजने ॥ ९ ॥ देखा कि आकाशमार्गमें होकर रावण जानकीको हरण किये लिये जाताहै, तो उन्होंने रावणको विरथ कर दिया और उस्से सीताजीको छीनलिया परन्तु वृद्ध होनेके कारण जब वह लडते २ थकगये तब रावणने संग्राममें उनको संहार कर दिया ॥ १० ॥ जब इस प्रकार गृध्र जटायु बलवान रावणके हाथसे मारागया तब श्रीरामचंद्रजीने अपने हाथोंसे जटायुकी दाहक्रियाकर उसे उत्तम गतिको पहुंचाया ॥ ११ ॥ फिर श्रीरामचंद्रजीने हमारे चचा सुग्रीवजीसे मित्रताकी जिस्से उन्होंने हमारे पिता वालिको मारडाला ॥ १२ ॥ हमारे पिताजीने सुग्रीवको उनके मंत्रियों सहित राज्यसे निकाल दियाथा जिस्से वह ऋष्यमूक पर्वत पर रहतेथे इसीलिये श्रीरामचंद्रजीने हमारे पिताको मार सुग्रीवको राजा बनाया ॥ १३ ॥ उन वानरनाथ सुग्रीवजीने अपने राज्य पर स्थापित होकर सब वानर यूथपोंको आज्ञादी जिस्सेकि हम यहांपर

आयेहैं ॥ १४ ॥ और रामचंद्रजीके कहनेसे हमनें इस कार्यमें लगे हुये अनेक स्थानोंमें जानकीजीको खोजा, परन्तु रात्रिकालमें सूर्यकी प्रभाके समान हमनें उनको कहीं न पाया ॥ १५ ॥ हम सब बडी सावधानीसे दंडकारण्यको ढूंड रहेथे कि अज्ञानके वश होकर एक बिलमें प्रवेश कर गये १६ ॥ वह मय दानवका बनाया हुआहै, उस बिलकोही ढूंडते २ सुग्रीवजीका नियत किया हुआ एक मासका समय बीतगया ॥ १७ ॥ हम लोग वानर राज सुग्रीवजीकी आज्ञाके प्रतिपालक, उनके नियत किये समयके बीत जानेंसे मरनेंके लिये प्रायोपवेशन व्रत धारण किये हुयेहैं॥१८॥

क्रुद्धेतस्मिंस्तुकाकुत्स्थेसुग्रीवेचसलक्ष्मणे ॥
गतानामपिसर्वेषांतत्रनोनास्तिजीवितम् ॥ १९ ॥

क्योंकि लक्ष्मण सुग्रीव और रामचंद्रजीके क्रोध करनेंसे हमें मरना पडेगा, इसलिये हम वहां न जाकर यहांही प्राण त्यागनेंको तैयार हुये-हैं ॥ १९ ॥ इ०श्रीम०वा०आ०कि०सप्तपंचाशःसर्गः ॥ ५७ ॥

अष्टपंचाशःसर्गः ॥

इत्युक्तःकरुणंवाक्यंवानरैस्त्यक्तजीवितैः ॥
सबाष्पोवानरान्गृध्रःप्रत्युवाचमहास्वनः ॥ १ ॥

जब जीवनको त्याग करनेंके लिये निश्चय किये वानरोंनें इस प्रकार करुणाके भरे वचन कहे तब गृध्र राज सम्पाति नेत्रोंमें जल भरकर गंभीर स्वरसे उन वानरोंसे बोले॥१॥ हे वानर यूथपो ! बलवान् रावणसें जिसको वध किया हुआ तुम कहतेहो वही हमारा छोटा भाई जटायु था॥२॥यह कठोर वार्त्ता हमनें बुढापे और पंखोंके न रहनेंसे सुनकर सहन करली क्योंकि इस समय रावणसे अपने छोटे भाईका वैर लेनेंके लिये हममें सामर्थ्य नहींहै ॥३॥पूर्वकालमें वृत्रासुरके वधके समय जयके अभिलाषी होकर हम दोनों भ्राता, जलती हुई किरणोंवाले सूर्य नारायणके निकट पहुँच गये ॥ ४ ॥ जब हम आकाशमार्गमें अति वेगसे गमन कर रहेथे, तब सूर्यके मध्य स्थलमें पहुँचकर जटायु सूर्यकी किरणोंसे बहुत व्याकुल हुआ॥५॥हमनें सूर्यकी किरणोंसे भ्राताको दुःखित देख स्नेहके मारे अतिशय कातर हो उस भ्राताको अपने दोनों पंखोंसे ढक लिया ॥ ६ ॥ हे वानरश्रेष्ठो ! तब

सूर्य नारायणकी किरणोंसे पंख जल गये, और हम इस विन्ध्याचल पर्वत पर गिरे तबसे इस स्थानमें रहते हुए हमनें भ्राता जटायुका कुछ समाचार नहीं जाना ॥ ७ ॥ जटायुके बडे भ्राता संपातीसे इस प्रकार कहे जाकर महाप्राज्ञ युवराज अंगदजी कहनें लगे ॥ ८ ॥ जो आपही जटायुके भ्राताहैं, तो हमारे वचन आपनें सुनेहीहैं, इस समय यदि ज्ञात होतो आप उस राक्षस रावणका स्थान बता दीजिये ॥ ९ ॥ यदि आप उस विचार रहित राक्षसोंमें नीच रावणको जानते हों तो दूरहो या निकट हो उसका स्थान हमें बता दीजिये ॥ १० ॥ जब अंगदजीनें ऐसा कहा तब जटायुका भ्राता महातेजवान सम्पाति वानरोंको हर्षित कराता हुआ अपने अनुरूप वचन बोला ॥ ११ ॥ हे वानरश्रेष्ठो ! हमारे पंख जल गयेहैं, इस समय बल वीर्य कुछभी नहींहै तथापि हम केवल वचनकेही सहारे श्रीरामचन्द्रजीकी उत्तम सहाय करेंगे ॥ १२ ॥ हम वरुण लोक और जहांतक लोक त्रिविक्रम वामनजीनें नापेहैं, वह भूरादि लोक सबको जानतेहैं और देवासुरोंका संग्राम, और समुद्रसे अमृतका मन्थन इत्यादि सब कुछ हमनें देखा है ॥ १३ ॥ जरा अवस्थाके आजानेंसे हमारा तेज हत होगया; और प्राण शिथिल होआये नहीं तौ श्रीरामचन्द्रजीका प्रथम कार्य हमकोही अवश्य करना चाहियेथा ॥ १४ ॥ सर्व गहनोंसे भूषित, रूपयौवन सम्पन्न श्रीरामचन्द्रजीकी भार्या सीताजीको रावण हरण किये लेजा रहाथा, तब हमनें उसको देखाहै ॥ १५ ॥ वह सीताजी, राम २ लक्ष्मण २ शब्द कह चिल्लाय २ अपने अंगोंके गहने निकाल २ पृथ्वीपर फेंकतीथी ॥ १६ ॥ उनका उत्तम रेशमीन वस्त्र पर्वतके आगेमें सूर्यकी प्रभाके समान शोभा पारहाथा, और वहभी स्वयं काले वर्ण वाले राक्षसोंके निकट आकाशमें रहती हुई बिजलीकी समान शोभा विस्तार करतीथीं ॥ १७ ॥ उन्होंनें जो राम २ अपनें मुखसे कहाथा सो अब हमनें जानाकि वह श्रीरामचन्द्रजीकी भार्या सीताजीथीं अब उस राक्षसके रहनेंका स्थान हम कहतेहैं तुम श्रवण करो ॥ १८ ॥ विश्वश्रवाका पुत्र; और कुबेरका साक्षात् भ्राता रावण नामक वह राक्षस लंका नगरीमें वास करताहै ॥ १९ ॥ वह लंका यहांसे चारसौ कोशकी दूरीपर एक समुद्रके द्वीपमें बसीहै, उस मनोहर लंका पुरीको विश्वकर्मानें बनायाहै ॥ २० ॥ उस पुरीमें सब सुवर्णमय

द्वार सुवर्णहीकी चित्र विचित्र वेदियां और बडे सुवर्णहीके राज मंदिर बने हैं, और उस पुरीकी भूमि सब जगहही समान है ॥ २१ ॥ उसकी बाहर दिवारीभी सुवर्णमय सूर्यकी प्रभाके समान झलकतीहै उस लंकानगरी में अतिदीना जानकीजो रेशमीन वस्त्र पहरे हुए वसतीहैं* ॥ २२ ॥ वह रावणके अंतःपुरमें रोकी हुई राक्षसियोंसे रक्षा की जाती हैं, तुम उस नगरीमें जनककुमारी सीताजीको देखोगे ॥ २३ ॥ दुर्ग और प्रचारादिसे रहित लंका पुरीके चारों ओर सागर है, उन शतयोजन समुद्रके पार होकर उस दक्षिण किनारेपर जाय फिर रावणको देख पाओगे, इस्से हे वानर श्रेष्टो! तुम शीघ्र वहां जाओ और अपना २ विक्रम दिखाओ! हम अपने ज्ञानसे निश्चय देखते हैं, कि तुम लोग जानकीजीको देखकर लौट आओगे। कबूतर आदि धान्य जीवी पक्षी जो आकाश मार्गमें उडतेहैं इसलिये प्रथम पंथ इनका ॥ २४ ॥ दूसरा मार्ग जो इस्से कुछही ऊँचा है वह फला दिखानेवाले काकोंकाहै, और बटेर क्रौञ्च कुरर आदि इनसेभी कुछ ऊंचे तीसरे मार्गमें उडते हैं ॥ २५ ॥ उनसे ऊंचे चतुर्थ मार्गमें बाज उडते हैं; इनसे ऊर्ध्व पांचवें मार्गमें बल वीर्य युक्त रूप यौवन सम्पन्न॥ २६॥ हंसोंका छठा मार्ग है, जो बाजोंकेभी मार्गसे ऊंचा है और गरुडोंकी गति सबसे श्रेष्ठ है, उनकी समान ऊपर आकाशमें और कोईभी जानेंको समर्थ नहीं होता,हे कपिवरो! हम लोगोंका जन्म वैनतेय अरुणसे हुआ है॥२७॥ जिस राक्षसनें पराई स्त्रीको हरण करके दुष्कार्य किया और हमारे भ्राता जटायुको मार डाला है, सो उसका पता बतानेंसेही मानों हमनें उस्से अपने भाईका वैर ले लिया ॥२८॥ हम यहां रहकरभी रावण और जानकीजीको देख रहे हैं क्योंकि हम लोगोंकी आंखोंका बल गरुडकी दिव्य आंखोंसे उत्पन्न है इसलिये यह दृष्टि बहुत दूरतक जाती है ॥२९॥ हे वानरो; इस कारण और मांसादि भक्षण करनेंके बलसे हम शतयोजनकी वरन इस्सेभी कुछ अधिक दूरकी वस्तु देख सकते हैं ॥ ३० ॥ स्वभावसेही हम गृध्रोंको वृत्ति दूरतक स्थित भोजनादि देखनेंकी बनी है और मुरगे आदिकी दृष्टि उस पेडकी जडही तक पहुँचतीहै जिसपर वह रहाकरते हैं३१॥ तुम लोग क्षार समुद्रको नांघनेंके लिये कोई उपाय खोज करो, इस्से जानकी-

* तहां वसत सिय जनकदुलारी। रामचन्द्र विन निपट दुखारी॥

जीके निकट पहुँचकर कार्य सिद्ध कर किष्किन्धाको लौट आना ॥ ३२ ॥ तुम हमको समुद्रके किनारे पर लेचलो हम वहांपर उस स्वर्गको गये हुये अपने महात्मा छोटे भाईको जलांजली देंगे ॥ ३३ ॥ जब सम्पातिने ऐसा कहा तो महात्मा वानरवृन्दोंने उस पंख जले हुये सम्पातिको नदनदी पति समुद्रके तीरपर ले आये ॥ ३४ ॥

तंपुनःप्रापयित्वाचतंदेशंपतगेश्वरम् ॥
बभूवुर्वानराहृष्टाःप्रवृत्तिमुपलभ्यते ॥ ३५ ॥

वानरगण उस पक्षिनाथको जब समुद्रके तीरपर ले गये और सीताजीका वृत्तान्त प्राप्तकर आनंदित हुये ॥ ३५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे अष्टपंचाशः सर्गः ॥ ५८ ॥

एकोनषष्टितमःसर्गः ॥

ततस्तदमृतास्वादंगृध्रराजेनभाषितम् ॥
निशम्यवदतोहृष्टास्तेवचःप्लवगर्षभाः ॥ १ ॥

फिर गृध्रराज सम्पाति करके कहे हुये अमृतमय वचन सुनकर वानर गण अत्यन्त हर्षित होनेंकी कथा बार २ कहनें लगे ॥ १ ॥ इसके पीछे वानरपति जाम्बवानजी समस्त वानरगणोंके सहित सहसा उठे और गृध्रराजसे कहनें लगे॥२॥कि यद्यपि आप सब बताय चुके तथापि फिर एकवार सीताजी इस समय कहांहै?किस पुरुषनें उनको देखा है?और किसनें उनको हरण कियाहै, यह सब कहकर बनवासी वानरोंका विशेष उपकार साधन कीजिये ॥३॥वह कौनहै कि जिस पुरुषनें दशरथकुमार श्रीराम और लक्ष्मणजीके धनुषसे छूटे हुए बाण समूहके विक्रमकी चिन्ता नहीं की ॥ ४ ॥ सम्पाति उन प्रायोपवेशन त्यागे हुए सीताजीका वृत्तान्त श्रवण करनेंकी इच्छा किये वानरोंको समझा बुझाकर फिर इस प्रकार वचन बोला ॥ ५ ॥ हे वानरो ! सीताजीके हरणका वृत्तान्त जैसे हमनें सुनाहै और वह बडे २ नेत्र वाली इस समय कहांपर रहतीहैं सो तुम श्रवण करो जिसनें हमसे कहा वहभी सुनो ॥ ६ ॥ हम क्षीणप्राण क्षीणपराक्रम और वृद्ध अवस्था युक्त इस पर्वतकी अनेक योजनकी चौडी गुफामें बहुत दिनोंसे गिरकर रहतेहैं ॥ ७ ॥ हमारा पुत्र सुपार्श्वनामक पक्षिश्रेष्ठ हमारी इस अव-

स्थाको जानकर यथा समयमें आहार देकर हमारा प्रतिपालन करता ॥८॥ गन्धर्व गणोंका काममें बडा अभिलाष, सर्प गणोंमें बडा क्रोध मृग गणोंमें बडा भय, और हमारी क्षुधा अत्यन्त तीक्ष्ण जाननी ॥ ९ ॥ एक समयमें हमारा पुत्र सूर्योदयके समयसे गया२सन्ध्याको विनाही आहारके हमारे पास आया उस समय हम भूंखके मारे व्याकुल हो आहारकी वाट देख रहेथे॥१०॥ भोजन न पानेके कारण हमनें अपने पुत्रको दुर्वचनोंसे परिपीडित किया तब प्रीतिका बढानेंवाला पुत्र हमारा सन्मान करता हुआ हमसे बोला ॥ ११ ॥ हम यथा समयमें मांसकी खोज करनेंके लिये आकाशमें उडकर महेन्द्र गिरिका द्वार रोककर खडेथे ॥ १२ ॥ हम नीचेको मुख करके समुद्रके अंतरमें चरनेंवाले सहस्र जीव गणोंका मार्ग रोककर टिके रहे ॥ १३ ॥ वहां पर देखा कि अंजनकी समान काले वर्णवाला कोई जीव उदित सूर्यकी समान प्रभायुक्त एक स्त्रीको संग लेकर जाय रहा है ॥ १४॥ तब हमने उसको देखकर विचार कियाकि यह स्त्री पुरुषही आज हमारे पिताके भोजन बनेंगे परन्तु उस जीवनें बहुत गिड़गिड़ाकर हमसे रास्ता मांगा ॥ १५ ॥ नीच पुरुषोंके निकट शान्ति भाव दिखानेंसे वहभी विनाश नहीं कर सकते फिर हमारी समान जीव भला कैसे इस बातको न करें१६॥ जब हमनें उस जीवको छोड दिया तब मानों वह आकाश मार्गको पीछे छोडता हुआही अति वेगसे चला । तब समस्त आकाशचारियोंनें हमारी पूजा व प्रशंसाकी ॥ १७ ॥ तब महर्षियोंनें हमसे कहा कि भाग्यके वशसेही सीताजी जीवित रहीहैं यह पुरुष इस स्त्रीके सहित भाग्यसेही तुमसे छूट गया तुम्हारा मंगलहो॥ १८ ॥ जब परम शोभायमान महर्षियोंने यह कहा तब हमनें जानाकि यह पुरुष राक्षसपति रावण ॥ १९ ॥ और यह स्त्री सीता रामचन्द्रजीकी भार्या हैं इस समय हमनें देखा कि मारे शोकके उनके सब आभरण गिरे पडतेहैं और उनका रेशमीन वस्त्रभी शिथिल हुआ जाताहै॥२०॥उनके शिरके बाल छूटे हुएथे राम लक्ष्मणजीका नाम लेले रोती चली जातीथीं।हे तात! इसलिये आज मुझको देरहुई ऐसा उस श्रेष्ठ वचन बोलनेंवालेनें कहा॥२१॥जब सुपार्श्वनें हमसे यह समस्त निवेदन किया, तब उसको सुनकर हमारी बुद्धि कुछभी फिर पराक्रम करनेंको न हुई *॥२२॥

*दोहा—पंखहीन अवसर गये,सुत बल कीन्ह धिकार॥गहि मम निकट न लायऊ,हती रामकीनार।

हम पक्षी होकर भी पक्षहीन हैं, इसलिये किस प्रकारसे युद्धादिके लिये उद्योग करें परन्तु हां जो कुछ वचन बुद्धिके गुणानुसार हम कर सकते हैं ॥ २३ ॥ सो तुम सुनो, वह कार्य तुम लोगोंके बल वीर्यसे पूरा होगा वचन और बुद्धिसे हम तुम्हारा सबका प्रिय और हितका कार्य करेंगे॥२४॥ इसमें कुछ सन्देह नहीं कि जो श्रीरामचंद्रजीका कार्यहै वह हमाराहीहै तिस पर तुमभी तो बुद्धिमान, बलवान मनस्वी ॥ २५ ॥ देवतालोगोंको भी बडे कष्टसे प्राप्त होनेंके योग्य हो क्योंकि तुम्हें कपिराज सुग्रीवजीने भेजाहै कंकपत्र युक्त श्रीराम लक्ष्मणजीके बाण ॥ २६ ॥ तीन लोकोंका उद्धार और उनका नाश करनेमें समर्थ हैं दशानन रावण तेज युक्त बलवान होनेपर भी सर्व कार्योंको करनेंकी सामर्थ्य रखनेंवाले तुम लोगोंको कुछ अजीत नहीं होगा ॥ २७ ॥

तदलंकालसंगेनक्रियतांबुद्धिनिश्चयः ॥
नहिकर्मसुसज्जंतेबुद्धिमंतोभवद्विधाः ॥ २८ ॥

अब कुछभी विलम्ब लगानेंका प्रयोजन नहीं है इस समय बुद्धिका निश्चय करो क्योंकि तुम्हारी समान बुद्धिमान् लोग कार्य सिद्ध करनें में कुछ भी आलस्य नहीं करते॥ २८ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे एकोनषष्टितमः सर्गः ॥ ५९ ॥

षष्टितमः सर्गः ॥

ततःकृतोदकंस्त्वातंतंगृध्रंहरियूथपाः ॥
उपविष्टागिरौरम्येपरिवार्यसमंततः ॥ १ ॥

जब सम्पाति स्नान और अपने भाईकी जलक्रिया करके बैठ गया तब वानर लोग भी रमणीक पर्वत पर उसको घेरकर बैठ गये ॥१॥समस्त वानरोंके साथ अंगदजी के समीप बैठा हुआ सम्पाति पंखोंके उपजने का हेतु निशाकर मुनिजीके वचनोंका विश्वास कर फिर हर्षित हो कहने लगा ॥ २ ॥ हे समस्त वानरो! तुम लोग चुपचाप रहकर ध्यान देकर सुनो हमनें उन जानकीजीको जिस प्रकारसे जाना है उसका सब वृत्तान्त ठीक २ कहते हैं ॥ ३ ॥ हे वानरो! पहले जब सूर्य नारायणकी किरणोंसे हमारे पंख जलगये और जब हम अति तापितअंग होकर इस विन्ध्या-

चल पर्वतकी चोटी पर गिरे ॥ ४ ॥ छे रात्रि तक विह्वल और अचेत पडे रहकर फिर कहीं हमें चेतना आई तब हम दशो दिशा ओंकी ओरको देखने लगे परन्तु कहीं भी कुछ दृष्टि न आया ॥ ५ ॥ फिर सागर, नदी पर्वत,सरोवर और वनादिकोंका दर्शन करते २हमारे बुद्धि आई और स्थिर हुई ॥ ६ ॥ तव कहीं हमने जानाकि शिखर युक्त और अनेक कन्दरावाले हृष्ट पुष्ट पक्षियोंसे परिपूर्ण विन्ध्याचल पर्वतके दक्षिण समुद्रके किनारे हम पडे हैं ॥७॥ उस स्थानमें देवताओंसे पूजित येक आश्रमथा उस आश्रममें निशाकर नामक उग्र तप करनें वाले येक ऋषि वास करतेथे॥८॥ उन ऋषिके साथ आठ हजार वर्ष हमने इस पर्वतपर वास किया फिर वह धर्मात्मा निशाकरमुनिजी स्वर्गको चले गये ॥ ९ ॥वह धर्मात्मा ऋषि जब इस स्थान पर रहतेथे तब हम विन्ध्याचल के भयंकर अग्रभागसे अति कष्ट सहित तीक्ष्ण कुशवाली पृथ्वी पर आये ॥ १० ॥ उन ऋषिका दर्शन करनेंकी लालसासे जटायुके सहित पहले भी हम बहुत वार उनसे मिलेथे तब बडे कष्टसे उनके पास पहुँचे ॥ ११ ॥ उनके आश्रमके निकट सदा सुगन्धि युक्त पवन चलाकरता वहांपर फूल हीन या फलहीनकोई वृक्ष दृष्टि नहीं आताथा॥ १२ ॥ उस आश्रममें आयकर एक पेडकी जडमें बैठे भगवान निशाकर मुनिके दर्शनका अभिलाष हम कर रहेथे ॥ १३॥ तिसके पीछे अपनें तेजसे दीप्तिमान दुर्द्धर्ष, स्नानकर उत्तरको मुखकर महर्षिजी आ रहेहैं ऐसा हमने दूरसे देखा ॥ १४ ॥ दरिद्र प्राणी जिस प्रकार दाताको घेरकर पीछे २ आतेहैं वैसेही शूकर, रीछ, सिंह, व्याघ्र और अनेक प्रकारके सर्प उनको घेरे हुये चले आतेहैं ॥ १५ ॥ राजाको रनवासमें पैठा जानकर मंत्री आदि जिस भांति अपनें २ स्थानको चले जातेहैं वैसेही ऋषि श्रेष्ठको आश्रममें आया हुआ जानकर सब प्राणी अपने २ स्थानको चलेगये ॥ १६ ॥ ऋषिजी हमको देख प्रसन्नहो आश्रममें चले गये और एक मुहूर्त्ततक आश्रमसे फिर बाहर आय हमसे अनेक कार्य पूछने लगे ॥ १७ ॥ कि हे सौम्य ! तुम्हारे पंखोंका विकार देखकर हम तुमको पहँचान नहीं सकतेहैं; तुम्हारे यह पंख अग्निसे जल गये और शरीर व प्राणभी जलेहीकी तुल्य होगयाहै ॥ १८ ॥ हमनें पहले पवनकी समान वेग वाले गृध्रोंके राजा कामरूपी दो भ्राता गृध्रोंको देखाथा॥१९॥

हे सम्पाते! उनमें तुम बडे और जटायु तुम्हारा छोटा भाई है; तुम लोगोंनें प्रथम मनुष्यका शरीर धारण करके कई वार हमारे चरण पकड लियेथे यह हमें सबही ज्ञातहै ॥ २० ॥

किंतेव्याधिसमुत्थानंपक्षयोःपतनंकथम् ॥
दंडोवाऽयंधृतःकेनसर्वमाख्याहिपृच्छतः ॥ २१ ॥

तुम्हें कौनसे रोगनें आकर घेर लिया? दोनों पंख कैसे गिर पड़े? अथवा किसीनें तुमको यह दंड दियाहै, सो हम पूछतेहैं यह सब वृत्तान्त ठीकर हमको बतलाओ॥२१॥इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०कि०षष्टितमः सर्गः ॥६०॥

एकषष्टितमः सर्गः ॥

ततस्तद्दारुणंकर्मदुष्करंसहसाकृतम् ॥
आचचक्षेमुनेःसर्वंसूर्यानुगमनंतथा ॥ १ ॥

मुनिजीके पूछे जानेंपर सम्पातिनें जो सूर्य भगवानके निकट पहुँचनेंका दारुण कठिन कर्म किया, वह उस समस्त वृत्तान्तको कहनें लगा॥१॥ हे भगवन्! हमारे शरीरमें बडे २घाव होजानेंके कारण लज्जाके मारे व्याकुलेन्द्रिय और थकित होनेंसे बोलनेंकी शक्ति हममें नहीं रहीहै ॥ २ ॥ हम और जटायु दोनों उडानके विषयमें गर्वकर और इन्द्रियोंके जय गर्वसे मोहित हो परस्पर पराक्रम दिखा जयकी कामना कर आकाश मार्गमें उडे ॥ ३ ॥ कैलासपर्वतके शिखरपर मुनिजनोंके सामने हम यह दावँ लगाकर उडे कि जबतक सूर्य अस्तनहों तब तक उनको छूकर फिर पृथ्वीमें चले आना चाहिये ॥ ४ ॥ हम उस समय ऊपर उडकर पृथ्वीमें नगरोंको इस प्रकारसे देखनें लगे मानों अलग २ रथके पहियेहैं ॥ ५ ॥ कहीं बाजोंका शब्द कहीं गहनोंकी झनकारका शब्द सुनते हुए कहीं अनेक गानेंवाली लाल वस्त्र धारण किये हुए स्त्रियोंको देखनें लगे ॥ ६ ॥ आकाशमें उडकर शीघ्रतासे हम दोनों भाई सूर्य भगवानके निकट जानेंको परिश्रम करते हुये और वहांपर हमने एक अतिविस्तार वाला दूबका वन देखा ॥ ७ ॥ पृथ्वी को देखा तो वह पर्वतोंसे घिरी हुईथी और नदी रूप डोरोंसे मानों गुंध रहीथी ॥ ८ ॥ हिमाचल विन्ध्याचल और सुमेरु पर्वत आकाशसे जल आकारवाली पृथ्वीमें सरोवरों में गजकी समान

दृष्टि आतेथे ॥ ९ ॥ तब ऐसा देखकर हम दोनोंकोही अति तीव्र स्वेद खेद, भय, मोह, और दारुण मूर्च्छा आनें लगी ॥ १० ॥ हम दोनों दक्षिण आग्नेय और पश्चिम दिशा कुछभी नहीं समझसके केवल प्रलय कालमें जले हुए पुरुषकी समान बुद्धिरहित होगये ॥ ११ ॥ हमारा मन नेत्रोंके सहित सूर्याग्निसे भस्म होनेंकी तुल्य होगया फिर हमनें अति कष्टसे मनके साथ नेत्रोंको मिलाय ॥ १२ ॥ अनेक यत्नकरकै सूर्यनारायणको देखा तो उस समय वह सूर्य पृथ्वीकी तुल्य प्रमाण वाले दिखाई दिये॥१३॥जटायु तो हमसे विनाही पूछे पाछे पृथ्वीपर गिर पडा उसको गिरते देख हमनेंभी आकाशसे अपनेको छुडाया॥१४॥हमनें अपने दोनों पंखोंसे जटायुको ढका इसलिये जटायुके पंख न जलकर हमारे पं-ख प्रमादके मारे जल गये और हम वायु मार्गसे गिरनें लगे ॥ १५ ॥ उस समय हमको ऐसा ज्ञात हुआ कि मानों जटायुतो जनस्थानमें गिरा और हम दग्धपंख और जड होकर इस विन्ध्याचल पर्वतपर गिरे ॥ १६ ॥

राज्याच्चहीनोभ्रात्राचपक्षाभ्यांविक्रमेणच ॥
सर्वथामर्तुमेवेच्छन्पतिष्येशिखराद्गिरेः ॥ १७ ॥

हम राज्यहीन, भ्राताहीन,पंखहीन और विक्रमहीन हो गये हैं, सो अब इस पर्वतके शिखरपरसे गिरकर अपने प्राण त्याग करेंगे यह हमारी इच्छा है॥१७॥ इ० श्री० वाल्मीकीये आदिकाव्ये कि०एकषष्टितमः सर्गः ॥६१॥

द्विषष्टितमः सर्गः ॥

एवमुक्त्वामुनिश्रेष्ठमरुदंभृशदुःखितः ॥
अथध्यात्वामुहूर्तंचभगवानिदमब्रवीत् ॥ १ ॥

हम अत्यन्त दुःखित हो मुनिश्रेष्ठ निशाकरजीसे इस प्रकार कह रोनें लगे तब महर्षि जी एक मुहूर्त तक ध्यान धरकर बोले॥१॥तुम्हारे दोनों पंख व दूसरे पंख दोचक्र फिर जम आवेंगे और प्राण, विक्रम, बलभी तुममें वैसाही होजायगा ॥ २ ॥ हमनें पुराणोंमें सुनाहै, और तपके बलसे जाना-भीहै कि आगेको एक बडी भारी घटना होगी ॥ ३ ॥ इक्ष्वाकु कुलके बढानेंवाले एक दशरथ राजा और राम नामक उनके एक महा तेजवान पुत्रहोंगे ॥ ४ ॥ वह सत्य पराक्रम श्रीरामचंद्रजी अपने पिताकी आज्ञासे

अपने छोटे भाई सहित बनको जांयगे ॥ ५ ॥ रावण नामक राक्षस उनकी भार्याको हरण करैगा, वह रावण जनस्थानवासी समस्त देव और दानवोंसे अवध्य होगा ॥ ६ ॥ उन सीताजीको रावण अनेक प्रकारकी भोज्य, भक्ष्य और भोग वस्तुओंसे ललचावैगा परन्तु वह महाभागा दृढव्रत धारण करनेंवाली दुःखसे ग्रसीहुई सीताजी किसीको ग्रहण या कार्यमें नहीं लावेंगी ॥ ७ ॥ देवराज इन्द्रजी यह वृत्तान्त जानकर उनको अमृत तुल्य देवता लोगोंकोभी दुर्लभ परमान्न देआवेंगे ॥ ८ ॥ सीताजी वह अन्न निश्चय इन्द्रजीका दिया हुआ जानकर उसका अग्रभाग उठाय मंत्र पाठकर पृथ्वीमें श्रीराम लक्ष्मणजीके लिये छोडदेगी ॥ ९ ॥ उस मंत्रका अर्थ यहथाकि यदि हमारे स्वामी और देवर लक्ष्मण जीवितहों अथवा देवलोकको चले गयेहों, यह अन्न उनके निमित्त दिया गया ॥ १० ॥ हे विहंगम संपाते ! रामदूत वानरगण सीताजीके ढूंडनेंको भेजे जाकर जब यहां आवेंगे, उस समय तुम उनसे सीताजीके समाचार बताओगे ॥ ११ ॥ तुम और कहीं न जाओ, ऐसी अवस्थामें कहां जाओगे; इस लिये यहीं देश कालकी बाट परख, तुम अपने दोनों पंख फिर प्राप्त करोगे ॥ १२ ॥ हम अभी तुमको पंख देसकतेहैं; परन्तु तुम इस अवस्थामें लोकोंका हित साधन करोगे, इस कारण हम तुमको पंख नहीं दिये ॥१३॥ तुम दोनों रघुवीर श्रीराम, लक्ष्मणका, ब्राह्मणोंका, गुरुजनोंका, मुनि समूहोंका और इन्द्रका कार्य कर सकोगे ॥ १४ ॥

इच्छाम्यहमपिद्रष्टुंभ्रातरौरामलक्ष्मणौ ॥
नेच्छेचिरंधारयितुंप्राणांस्त्यक्ष्येकलेवरम् ॥
महर्षिस्त्वब्रवीदेवंदृष्टतत्त्वार्थदर्शनः ॥ १५ ॥

श्रीराम,लक्ष्मण दोनों भाइयोंका दरशन करनेकी तो हमारीभी इच्छाथी परन्तु अब आगे हम इस शरीरके धारण करनेंको समर्थ नहींहैं इसलिये तनु त्याग करेंगे ! तत्त्वदर्शी मुनिजीनें हमसे ऐसा कहाथा ॥ १५ ॥ इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आ० किष्किन्धाकांडे द्विषष्टितमःसर्गः ॥६२॥

त्रिषष्टितमःसर्गः ॥

एतैरन्यैश्चबहुभिर्वाक्यैर्वाक्यविशारदः ॥

मांप्रशस्याभ्यनुज्ञाप्यप्रविष्टःसस्वमालयम् ॥ १ ॥

वाक्य विशारद मुनिवर इस प्रकार व औरभी बहुत वचनोंसे हमारी प्रशंसाकर और हमको आज्ञादे अपने आश्रममें चलेगये ॥ १ ॥ हम उस पर्वतकी कन्दरासे धीरे २ सरककर विन्ध्याचल पर्वतपर आयकर तुम्हारे आनेंकी राह परख रहेथे ॥ २ ॥ जब उन मुनिजीनें हमसे ऐसा कहाथा तबसे लेकर समय धरनेंसे इस समय शत * वर्षसेभी कुछ अधिक बीत गयेहैं हम उन मुनिका वचन हृदयमें धारण कर देशकालको परख रहेहैं ॥ ३ ॥ महायात्राको प्राप्तकर महर्षि निशाकर जब स्वर्गको चले गये तब हम बहुत तर्क करके अत्यन्त संतापित हुये ॥ ४ ॥ हमारी रक्षा करनेंके लिये मुनिवरनें जो बुद्धि हमको दीथी, उसके अनुसार मरण बुद्धि हमनें छोड़दी॥ ५॥जैसे अग्निकी शिखा अन्धकारका नाश कर देतीहै ऐसेही उस बुद्धिनें हमारे संतापका नाश करदिया दुरात्मा रावणके बलको अपने पुत्रके बलसे थोडाजान ॥ ६ ॥ हमनें अपनें पुत्रको फटकारा और कहाकि तैंनें सीताका विलाप सुन; और राम लक्ष्मणको सीतासे वियोगित सुन क्योंनहीं उनका उद्धार किया? तब उसनें कहा कि प्रथम हमनें उनको जानकी यह जानाही नहीं, जब वह चली गई तब सिद्ध लोगोंके मुखसे सुनाकि यह सीताजीथीं ॥ ७ ॥ इसीलिये दशरथजीके पुत्रका प्रिय कार्य मुझसे नहीं होसका, क्योंकि पुत्रनें वह श्रम न किया, जबकि सम्पाति वानरोंके साथ इस प्रकार वार्त्ता कह रहाथा ॥ ८ ॥ कि वानरोंके सामनेही उसके दोनों पंख जम आये वह अपनी देहमें अरुण वर्णके पंख उवे हुये देखकर ॥९॥ अतुलनीय हर्ष प्राप्त करके वानरोंसे बोलाकि अमिततेजमान महर्षि निशाकरजीके प्रसादसे ॥ १० ॥ हमारे सूर्यकी किरणोंसे जले हुये दोनों पंख फिर जम आये हम जिस समय युवा अवस्थाको प्राप्त थे उस समय जिसप्रकारका पराक्रम हममें था ॥ ११ ॥इस समय भी वैसाही बल पौरुष हमनें प्राप्त किया तुम सर्व प्रकारसे यत्न करो अवश्यही सीताजीको पाओगे ॥ १२ ॥ जब कि हमारे पंख जम आये, तब विश्वास होताहै कि तुम्हारा कार्यभी अवश्य सिद्ध होगा इस प्रकार पक्षिश्रेष्ठ सम्पाति उन समस्त वानरोंसे ऐसा

* यह शत शब्द बहुवाचीहै प्राचीनोंनें कहाहै आठ हजारसे कुछ अधिक वर्ष बीतगये.

कह ॥ १३ ॥ अपने जमे हुए पंखोंसे पहलेही की समान पक्षियोंकी गति जाननेंकी इच्छासे उस पर्वतके शिखरसे उडा उसके यह वचन सुन अत्यन्त हर्षित मनसे वानरश्रेष्ठगण सीताजीके ढूँडनेंमें अपना २ विक्रम दिखानेंको तैयार हुए ॥ १४ ॥

अथपवनसमानविक्रमाःप्लवगवराःप्रति
लब्धपौरुषाः ॥ अभिजिदभिमुखांदिशं
ययुर्जनकसुतापरिमार्गणोन्मुखाः ॥ १५ ॥

फिर पर्वत तुल्य विक्रमवान अति पौरुषी वानर गण जनककुमारी जानकीजीको खोजनेके लिये अभिजित् मुहूर्तमें दक्षिण दिशाको चले १५॥
इत्यार्षे श्रीम०वा०आ०कि०त्रिषष्टितमः सर्गः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमः सर्गः ॥

आख्यातागृध्रराजेनसमुत्प्लुत्यप्लवंगमाः ॥
संगताःप्रीतिसंयुक्ताविनेदुःसिंहविक्रमाः ॥ १ ॥

गृध्र राजसे इस प्रकार कहे हुए सिंहतुल्य विक्रमवान वानर गण प्रीतिसे प्रफुल्लित चित्तहो इधर उधर कूद फांद परस्पर मिलकर हर्षध्वनि करनें लगे ॥ १ ॥ रावणके नाशकारी सम्पातिके वचन सुनकर हर्ष युक्त वानर गण सीताजीका दर्शन करनेंके निमित्त समुद्रके तीरपर आये॥ २ ॥ भयंकर विक्रमकारी वानरलोग समुद्रके किनारे आये, वहां उन्होंने चन्द्र सूर्य समन्वित जिसमें सब लोकोंका प्रतिबिम्ब पडताथा ऐसा समुद्र देखा ॥ ३ ॥ महा बलवान् वानरवीरोंने दक्षिण समुद्रके उत्तर किनारे पर प्राप्त होकर उस स्थानमेंही सेनाको टिकाया ॥ ४ ॥ यह समुद्र किसी स्थानमें निद्रितकी नांई स्थितथा, कहीं बालकोंकी समान अपनी बडी तरंगोंसे खेल रहाथा, कहीं २ पर्वताकार जलराशिसे घिरा हुआथा ॥ ५ ॥ कपिवीरगण, पातालवासी दानवेन्द्रोंसे व्याप्त रोमहर्षणकारी समुद्र देखकर बडे विषादको प्राप्त हुए ॥ ६ ॥ वानरगण आकाशकी समान पार जानेंके अयोग्य समुद्रको देखकर 'किस प्रकार कार्यकी सिद्धि होगी किस प्रकार इसके पार जांयगे, आपसमें यह कहकर बडे व्याकुल हुए॥७॥ वानरश्रेष्ठ अंगदजी सब वानरोंको समुद्रके देखनेंसे भयभीत समझ सम-

झा बुझाकर कहनें लगे ॥ ८ ॥ तुम लोग विषाद न करो क्योंकि शोकमें मग्न होना अत्यन्त दोषका विषयहै क्रोधित विषैला सांप जिस प्रकार बालकोंको मार डालताहै इसी प्रकार शोकभी पुरुषको संहार करताहै ॥९॥ विक्रम प्रगट करनेंका अवसर आनेंपर जो पुरुष शोक किया करतेहैं, वह तेजहीन होजाते और उनका कार्य कभी सिद्ध नहीं होता ॥ १० ॥ इस प्रकार कहते २ रात्रि वीतगई, तब युवराज अंगदजी वृद्ध वानरोंके साथ मिलकर सलाह करनें लगे ॥ ११ ॥ देवताओंकी सैना जिस प्रकार इन्द्रजीके चारों ओर वैठतीहै वैसेही वानरोंकी सेना अंगदजीको घेरकर बैठी ॥ १२ ॥ वालिकुमार अंगदजी और हनुमानजीके सिवाय और कोई उस वानरी सैनाके स्थिर करनेंमें समर्थ नहीं होसकताथा ॥ १३ ॥ फिर शत्रुओंका नाश करनेंवाले श्रीमान् अंगदजी वृद्ध वानरोंका और सब सैनाका सन्मान करकै सार वचन बोले ॥ १४ ॥ कौन महा तेजवान् इस समय समुद्रको लांघेगा ? कौन वानर इस समय शत्रुओंके मारनेंवाले सुग्रीवजीकी प्रतिज्ञाको सत्य करैगा ? ॥ १५ ॥ कौन वीर चार शत कोशका मार्ग एक छलांगमें पार करैगा ? कौन वानर इन समस्त यूथप वानरोंको महाभयसे उद्धार करैगा ॥ १६ ॥ किसके प्रसादसे हम सब वानर गण कार्य सिद्धकर यहांसे घरको लौट अपने घर जाय स्त्री पुत्र और गृहको देखकर सुखी होंगे ॥ १७ ॥ किसके प्रसादसे यह समस्त वनवासी वानर गण हर्षित होकर, राम लक्ष्मण और वनचरोंके राजा सुग्रीवजीके निकट जायँगे ॥ १८ ॥ यदि कोई वानरश्रेष्ठ इस सागरके लाँघनेंको समर्थहो वह शीघ्रही हमको पुण्यकारी अभय दक्षिणा देवे ॥ १९ ॥ अंगदजीके वचन सुनकर किसी वानरनें कुछभी उत्तर न दिया, समस्त वानर सैना मौनभावको धारणकर चुपचाप होगई ॥ २० ॥ वानर श्रेष्ठ अंगदजी फिर उन सब वानरोंसे बोले, कि तुम सबही दृढ विक्रम करनेंवाले हो, और तुम कलंकरहित कुलमें जन्म ग्रहण करके सदाही लोकोंमें पूजे जाते हो ॥ २१ ॥

नहिवोगमनेसंगःकदाचित्कस्यचिद्भवेत् ॥
ब्रुवध्वंयस्ययाशक्तिःप्लवनेप्लवगर्षभाः ॥ २२ ॥

यदि तुम लोगोंमेंसे कदाचित् कोई शत योजनका समुद्र न लांघ स-कताहो, तब जो जितनी दूर जानेमें समर्थहै वह हमसे कहो ॥२२॥ इत्यार्षे श्रीम०वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धाकांडे चतुःषष्टितमः सर्गः ॥६४॥

पंचषष्टितमः सर्गः ॥

अथांगदवचःश्रुत्वातेसर्वेवानरर्षभाः ॥
स्वंस्वंगतौसमुत्साहमूचुस्तत्रयथाक्रमम् ॥ १ ॥

तब मुखिया २ वानरगण अंगदजीके यह वचन सुनकर उत्साहके सहित गतिके विषयमें अपनी २ सामर्थ्य कहने लगे ॥ १ ॥ गज, गवाक्ष, गवय शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, अंगद और जाम्बवान् इन वानरोंनें प्र-थम कहना आरंभ किया ॥ २ ॥ उनमेंसे प्रथम गजनें कहा कि हम-दशयोजन लांघ जानेमें समर्थ हैं गवाक्षने कहा हम वीस योजन चले जायँगे॥३॥तहां शरभ नाम वानर उन वानरोंसे बोला कि हम एक छलांग में तीस योजन जा सकते हैं ॥ ४ ॥ ऋषभ वानरनें वानरोंसे कहा कि हम येक कुदक्केमें चालीस योजनतक चले जांयगे इसमें कुछभी संदेह नहीं है ॥ ५ ॥ उनमें महातेजवान गन्धमादन वानरनें कहाकि हम कूदकर येक छलांगमें निःसंशय पचाश योजन तक जायँगे ॥ ६ ॥ मैन्द नामक वानरनें समस्त वानरोंसे कहाकि हम साठ योजन लाँघनेंको समर्थ हैं ॥ ७ ॥ तब महातेजवान् द्विविदने कहाकि हम सत्तर योजन तक जा सकते हैं इसमें कुछभी संशय नहीं है ॥ ८ ॥ अतिधीर वीर बलवान् कपिश्रेष्ठ सुषेणनें कहाकि हम प्रतिज्ञा करके कह सकते हैं कि हम अस्सी योजन तक चले जायँगे ॥ ९ ॥ जब सब वानरोंने ऐसा कहा, तब उनका सन्मान कर वृद्धकपि जाम्बवान् उनसें कहनें ल-गा ॥ १० ॥ पूर्वकालमें हम अपनी गतिके विषयमें विशेष पराक्रमी थे परन्तु इस समय हमारी आयु बहुत होगई है ॥ ११ ॥ इस समय जो कार्य आ पडाहै उसको हम त्याग नहीं सकते कि जिस कार्यके लिये श्रीरामचंद्रजी और कपिराज सुग्रीवजी कृतनिश्चय हुये हैं वह कार्य अवश्यही साधन करना पडैगा ॥ १२ ॥ इस समय जहांतक हमारे जानेकी गतिहै वह सुनो कि इस समय येक छलांगमें हम नव्वे योजनतक

जा सकते हैं इसमें कोई सन्देह नहीं॥ १३ ॥जाम्बवान्‌ने फिर उन वानर श्रेष्ठोंसे कहा कि पहले हमारा गमन करनेमें इतनाही पराक्रमनहीं था॥१४॥ वरन उस समय ऐसा पराक्रम था कि जब सनातन त्रिविक्रम वामन रूपी विष्णुजीनें राजा बलिके यज्ञमें तीन पदसे तीनों लोक नाप लिये तब हमनें उनकी प्रदक्षिणाकी थी ॥ १५ ॥ पहले हम ऐसे पराक्रमी थे परन्तु अब वृद्ध होगये इस समय हम पहलीसी छलांग नहीं मार सकते युवावस्थाके समय हमारी समान किसीमें बल नहीं था ॥ १६ ॥ हम इस समय नव्वे योजन लांघ सकतेहैं अधिक नहीं, परन्तु इतनेमें इस कार्यकी सिद्धि नहीं होती ॥ १७ ॥ इसके पीछे महाप्राज्ञ अंगदजी महा कपि जाम्बवानका आदर करते हुए महा अर्थयुक्त वचन बोले॥ १८ ॥ हम शतयोजन एक छलांगमें जासकतेहैं,परन्तु इसमें संदेहहै कि लौट सकेंगे अथवा नहीं॥ १९ ॥वाक्य विशारद जाम्बवान् उन कपिश्रेष्ठ अंगदजीसे बोला,—कपिवर ! तुम्हारी गतिकी शक्तिको हम जानतेहैं, कि तुमजाभी सकतेहो और लौटभी आ सकतेहो ॥ २० ॥ सो इतनीही दूर नहीं वरन सैकड़ों हजारों योजन कूदकर तुम ज़ा सकते और लौटकर आ सकतेहो ॥ २१ ॥ परन्तु हे तात ! स्वामी कभी भेजनेंके योग्य नहीं हो सकता, क्योंकि वह सबको प्रिय होताहै आप सबको भेज सकतेहैं। तुम हमारे स्वामीहो, इसलिये अपनी स्त्रीके समान प्रतिपालन् करनेंके योग्य हो, अर्थात् तुम्हारे प्राण और बलकी रक्षा करना हम लोगोंका अवश्य कर्त्तव्यहै, तुमको स्वामी भावमें टिककर सैनाको आज्ञा देनीं चाहिये यही लौकिक विधिहै॥२२॥ २३ ॥ हे शत्रुनाशी ! तुम इस कार्यके मूलहो, इसलिये सबकोही अपनी स्त्रीकी समान तुम्हारी रक्षा करनी उचित-है ॥ २४ ॥ कार्यके मूलकी रक्षा करनी चाहिये. यही कार्यवेत्ता लोगोंकी नीतिहै, यदि प्रधान मूल बना रहेगा तो प्रधान फलोदय रूप गुणसिद्ध हो सकताहै ॥ २५ ॥ हे शत्रुओंके तपानें वाले ! इसलिये सत्य विक्रम और बुद्धि सम्पन्न तुमही इस कार्यके साधन करनेंमें हेतु हो; इसमें कुछभी सन्देह नहींहै ॥ २६ ॥ हे कपिश्रेष्ठ ! तुम हम लोगोंके गुरुपुत्र और गुरुहो तुमको आश्रय करके हम लोग कार्यके साधन करनेंमें समर्थ हो सकतेहैं ॥ २७ ॥ महाप्राज्ञ जाम्बवान्‌नें जब इस प्रकारसे कहा तब महाकपि वालिके पुत्र अंगदजी जाम्बवान्‌को उत्तर देते हुए ॥ २८ ॥ यदि

हमभी न जांय व औरभी कोई वानर न जाय तौ फिर प्रायोपवेशन करके प्राणोंका छोड़नाही हमारे लिये अच्छाहै ॥ २९ ॥ उन बुद्धिमान कपिपति सुग्रीवजीकी आज्ञाका प्रतिपालन न करकै यदि किष्किंधाको चले जांय तो वहांभी प्राण रक्षाका कोई उपाय नहीं दृष्टि आता ॥३०॥ वह सुग्रीव निग्रह और अनुग्रहसे ईश्वरहैं उनकी आज्ञाका पालन बिना किये किष्किंधामें चले जानेंसे निश्चयही प्राणका विनाश होगा इसमें कुछभी सन्देह नहींहै ॥ ३१ ॥ इसलिये आप तत्त्वदर्शी समस्त वानर लोग ऐसा कुछ विचार कीजिये कि जिस्से सुग्रीवजीका कहा जानकीजीका दर्शन रूप कार्य अवश्यही होजाय ॥३२॥ तब कपिवीर जाम्बवान्‌जी अंगदजी करके इस प्रकार कहे जाकर उनको उत्तर देते हुये ॥ ३३ ॥ हे वीराइस कार्यके अनुष्ठानमें कुछ भी कसर नहीं होगी जो कि इस कार्यको पूरा करेगा सो यह देखो हम उसको भेजतेहैं ॥ ३४ ॥

ततःप्रतीतंप्लवतांवरिष्ठमेकांतमाश्रित्यसु
खोपविष्टम् ॥ संचोदयामासह
रिप्रवीरोहरिप्रवीरंहनुमंतमेव ॥ ३५ ॥

तिसके पीछे कपिवर जाम्ववान् वानर गणोंमें श्रेष्ठ एकान्त स्थानमें चुपचाप सुखसे बैठे हुए हनुमानजीसे बोले॥ ३५ ॥इत्यार्षे श्रीम०वा०आ० कि०पंचषष्टितमःसर्गः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमः सर्गः ॥

अनेकशतसाहस्रींविषण्णांहरिवाहिनीम् ॥
जांबवान्समुदीक्ष्यैवंहनुमंतमथाब्रवीत् ॥ १ ॥

जाम्बवान्‌जी अनेक शत सहस्र वानर सेनाको शोकाकुल देखकर हनुमानजीसे इस प्रकार कहने लगे ॥ १ ॥ हे समस्त वानर कुलमें श्रेष्ठ हनुमन् ! हे सर्व शास्त्र विशारद ! तुम इकले और चुप क्यों बैठेहो? इस लोकके कृत्यको देखकर तुम किस कारणसे कुछभी नहीं कहते ॥ २ ॥ हे हनुमन् ! तुम तेज और बलमें वानरराज सुग्रीव और श्रीराम लक्ष्मणजीकी तुल्यहो ॥ ३ ॥ भगवान कश्यपजीके पुत्र महाबलवान् विनता नंदन गरुडजी सर्व पक्षियोंमें श्रेष्ठहैं ॥ ४ ॥ हे महाबल ! हमनें बहुत बार देखाहैकि उस महाबलवान महाबाहु पक्षीनें सागरसे बडे २ सर्पोंको पकडाहै ॥ ५ ॥ उन गरुडजीके दोनों पंखोंमें जितना बलहै; तुम्हारी दोनों

बाहोंमेंभी वैसाही बलहै, तुम्हारा विक्रम और तेज किसी भांतिभी उनसे कम नहींहै ॥ ६ ॥ तुम समस्त जीवोंके मध्यमें एक विशेष पदार्थहो फिर तुम समुद्रको लांघनेंके लिये क्यों नहीं तैयार होते ॥७॥ अप्सरागणोंमें श्रेष्ठ पुञ्जिकस्थला नामक अप्सरा विशेष करके अंजना नामसे विख्यात, केशर नाम वानरकी स्त्रीहुई ॥ ८ ॥ उसस्त्रीकी तीनों लोकोंमें उपमा नहींथी, उसनें शापके हेतु काम रूप धारण करनें वाली वानरीहो जन्मलिया ॥९॥ वह अंजना, वानर श्रेष्ठ महात्मा कुञ्जरकी कन्या मनुष्य देह धारण किये रूप यौवन सम्पन्न हुई ॥ १० ॥ रेशमीन वस्त्र पहरे विचित्र माला और गहने पहने हुये एक दिन वह कामनी वर्षाकालके मेघकी समान पर्वतके शिखर पर विहार करतीथी ॥ ११ ॥ पवन देवतानें उस पर्वतके अग्र-भागमें बैठी हुई विशालाक्षीका अरुण अंचलका सूक्ष्म मनोहर वस्त्र उठा लिया ॥ १२ ॥ फिर पवन देवतानें उसकी सुगोल चढा उतारवाली दोनों ऊरु, ऊंचे २ दोनों पयोधर और सुशोभित मनोहर मुख देखा १३ ॥ तिस वृत्त नितम्बिनी, पतली कमर वाली शुभ सर्वाङ्गी परम यशस्विनीको देखतेही पवन देव कामसे मोहित होगये ॥ १४ ॥ काम-देवसे सब अंग मथित होनें कारण उस निन्दा रहित स्त्रीमें लीनहो पवन देवजीनें उसको अपनी लंबी भुजाओंसे पकड़ भली भांतिसे भेंटा ॥ १५ ॥ तब उस साधु चरित्र वाली स्त्रीनें सावधान होकर कहा कि कौन हमारा पातिव्रत्य भंग करताहै १६ ॥ तब अंजनाके वचन सुनकर पवन देव बोले कि हे श्रेष्ठ नितम्बो वाली! हमनें तुम्हारा व्रत भंग नहीं कियाहै; तुम कुछ भय न करो ॥ १७ ॥ हे यशस्विनी ! हम तुमको आलिंगन करके मनहीसे तुम्हारे पर अनुरागी हुयेहैं; इसलिये व्रत भंग न होकर तुम्हारे वीर्यवान बुद्धि सम्पन्न पुत्र उत्पन्न होगा॥१८॥वह पुत्र महास-त्त्व,महा तेजवान, महाबलवान,पराक्रमी होगा और लांघनें कूदनेमेंभी हमा-रेही समान होगा॥ १९ ॥ हे कपीन्द्र! पवनजीके यह वचन सुनकर तुम्हारी माता सन्तुष्ट हुई, और उन्होंने गुहामें जायकर तुमको उत्पन्न किया॥२०॥ तुम बालक पनसेही महावनमें रहतेथे, एक दिन प्रभात कालके समय सूर्य भगवानको उदय हुआ देख उनको फल विचार ग्रहण करनेंकी इच्छा किये तुम छलांग मार आकाशको चले ॥ २१ ॥ तीन शत योजन चले जानेंपर और सूर्यकी किरणोंके तेजसे संतापित होकर भी तुम विषादको नहीं प्राप्त हुए ॥ २२ ॥ हे कपि वर ! तुमको आकाशमें जाता

हुआ देख इन्द्रनें क्रोधकर तुम्हारे ऊपर वज्र चलाया ॥ २३ ॥ तब उस शिखरके अग्र भागपर तुम्हारी बाईं हनु टूट गई, इसी कारणसे तुम्हारा हनुमान नाम हुआ ॥ २४ ॥ गन्ध वह पवनजो तुमको वज्रसे घायल देखकर अत्यन्त कोपित हुए और उन्होंनें तीनों लोकका वहना बंद किया ॥ २५ ॥ पवनको न पायकर त्रिलोक मंडल क्षुभित होगया, भुवनेश्वर देवता लोग त्रासितहो घबडायकर चंचल चित्तसे पवन देवको प्रसन्न करनें लगे ॥ २६ ॥ जब पवनजी प्रसन्न हुए तब ब्रह्माजीनें वर दिया कि तुम्हारा यह सत्य विक्रम पुत्र किसी शस्त्रसे नहीं मरैगा ॥ २७ ॥ और तुमको वज्राघातसे भी व्यथाहीन देखकर सहस्र नेत्र देवपति इन्द्रजीनें प्रसन्न होकर उत्तम वरदान दिया ॥ २८ ॥ कि जब यह तुम्हारा पुत्र इच्छा करैगा तबही इसकी मृत्यु होगी; इस प्रकारसे तुम केशरी वानरके भयंकर विक्रमकारी क्षेत्रज्ञ पुत्र हुएहो ॥ २९ ॥ तुम मारुतके औरस पुत्रहो तेजमेंभी उनके समान और कूदनें फांदनेंमेंभी उनके ही समान हो ॥ ३० ॥ हम इस समय हीन वल और हीन वीर्य होगयेहैं, सो इस समय चतुर और विक्रम युक्त तुम हमारे निकट दूसरे कपिराज सुग्रीवजीकी समान विद्यमान हो ॥ ३१ ॥ हे वत्स ! जब वामनजीनें राजा बलिको छलकर तीन चरणसे तीनों लोक नाप लियेथे, तो उस समय हमनें शैल, वन, कानन सहित इस पृथ्वीकी इक्कीसवार प्रदक्षिणा कीथी ॥ ३२ ॥ जब देवता ओंकी आज्ञासे हमनें जिनको मथनेसे अमृत निकलताहै, उन सब औषधियोंका संग्रह कियाथा उस समय हमारे शरीरमें बड़ा बलथा ॥ ३३ ॥ सो वही इस समय हम अतिशय वृद्धहैं; इसलिये अत्यन्त हीनबल और विक्रम रहित होगयेहैं; इस समय तुमही हम सबके मध्यमें सर्व गुणवान् ॥ ३४ ॥ विक्रम करनें, और उछलनें कूदनेंमें सर्व श्रेष्ठहो, इसलिये तुम तैयार होवो; यह वानरोंकी सैना तुम्हारे बल वीर्य देखनेंका अभिलाष करतीहै ॥ ३५ ॥ इसलिये हे वानरश्रेष्ठ ! उठकर महा समुद्रको नांघ जाओ हनुमन् ! तुम्हारा लंकामें जाना सर्व जीवोंका भी हितकारीहै इसमें कुछ संदेह नहीं ॥ ३६ ॥ हे वानर श्रेष्ठ! हनुमन् सब वानर गण शोकाकुल होगये हैं अब क्यों देर करतेहो जैसे विष्णुजीनें त्रिविक्रमरूप धराथा वैसेही तुमभी महा वेगसे इस समय समुद्रको लांघ जाओ ॥ ३७ ॥

ततःकपीनामृषभेणचोदितःप्रतीतवेगः
पवनात्मजःकपिः ॥ प्रहर्षयंस्तांहरिवीर

वाहिनींचकाररूपंपवनात्मजस्तदा ॥ ३८ ॥

तब ऋक्ष श्रेष्ठ जाम्बवान् करके प्रेरित होकर महावीर पवन पुत्र हनुमानजी वानर सैनाको हर्षित करके उत्साह युक्तहो समुद्रके लांघने योग्य देहको धारण करते हुये॥३८॥इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे वाल्मीकीये आदिकाव्ये किष्किन्धा काण्डेभाषानुवादे पं० ज्वाला प्रसाद कृते षट् षष्टितमः सर्गः ६६॥

सप्तषष्टितमः सर्गः ॥

तंदृष्ट्वाजृंभमाणंतेक्रमितुंशतयोजनम् ॥
वेगेनापूर्यमाणंचसहसावानरोत्तमम् ॥ १ ॥

फिर शतयोजन समुद्रको लांघनेके लिये बढे हुये वानरोत्तम हनुमानजीको सहसा वेगसे परिपूर्ण देख ॥ १ ॥ एका एकी सब वानर गण शोकको छोड हर्ष युक्तहो महा बलवान हनुमानजीकी स्तुति करने लगे ॥२॥ बलिको छलने और त्रिलोकी को नांपने के लिये नारायणजीको उत्साहित देखकर सब प्रजा जिस प्रकार हर्षित और उत्साहित हुईथी सब वानर लोगभी हनुमानजीको देखकर वैसेही हर्षित और विस्मयको प्राप्त हुये ॥३॥ जब वानरोंने स्तुतिकी तब महा बलवान वानर हनुमानजी बढने लगे और पूंछको घुमाकर हर्षके हेतु बलको प्राप्त होने लगे॥ ४ ॥ जब वृद्ध वानर श्रेष्ठों नें इस प्रकारसे प्रशंसाकी तब हनुमानजी तेजसे परिपूर्ण, और बडी अनुपम देह युक्त हो गये ॥५॥ जिसप्रकार महा सिंह भारी पर्वतकी गुहामें जंभाई लेताहै वैसेही वायुके औरस पुत्र हनुमानजी भी जंभाई लेनें और बढनें लगे ॥ ६ ॥ जब बुद्धिमान हनुमानजी बढे तो उनका मुख प्रदीप्त और दूटे हुये पात्रकी समान होगया और वह धुंआ रहित अग्निकी समान शोभा पानें लगे ॥ ७ ॥ उनके रोम फूल गये तब हनुमान्जी वानरोंके बीचमेंसे उठे और वृद्ध कपियोंको प्रणाम करके कहनें लगे ॥ ८ ॥ आकाशमें टिके हुये बलवान अनुपम अग्निके सखा पवन जी पर्वतोंको अग्रभागको तोड डालते हैं ॥ ९ ॥ हम उन्हीं महात्मा शीघ्रगामी पवनजीके औरस पुत्र हैं और कूदनें फांदनें में उनकी ही समान हैं ॥ १० ॥ हम विस्तारित आकाशको छूनें वाले, मेरु पर्वतकी विना विश्रामकिये हुये सहस्र परिक्रमाकर सकते हैं॥११॥और हम अपनी बाहोंके वेगसे चलाय मान किये हुये समुद्रके द्वारा, पर्वत. कुन्ड और नदी सहित समस्त लोकोंके डुबानेको समर्थ हैं॥१२॥हमारी ऊरु और जांघोंके

वेगसे वरुणालय समुद्र उफन जायगा और उसमें के टिके हुये ग्रहादि जन्तु गण ऊपर तैर आवेंगे॥ १३ ॥पक्षियोंके कुलसे सेवित सर्पोंको भोजन करनें वाले गरुडजी जिस समयमें जितनी दूर जाय सकते हैं हम उतनी ही देरमें उनसे हजार गुण मार्ग चल सकतेहैं॥१४॥और उदयाचल पर्वतसे चले हुये प्रज्वलित किरण वाले सूर्य नारायणके निकट गमन करनेंको हम समर्थहैं और अस्त होनेंसे प्रथम हम उनके आगे जा सकतेहैं ॥१५॥ फिर पृथ्वी तक आकर उसकों विनाही छुये अति भीम वेगसे सूर्य-के निकट जा सकते हैं फिर सौ योजनका जाना क्या वडी वातहै?॥१६॥ हम समस्त आकाशचारी ग्रह नक्षत्रादिकोंको लांघजांय समुद्रको सोखलें और पृथ्वीको चीडफाड डालें ॥ १७ ॥ हे वानर गण ! छलांग मारकर पर्वत समूहको चूर्ण कर सकतेहैं; और अति वेगसे समुद्रकोभी सुखाय सकतेहैं ॥ १८ ॥ हम जव आकाशमें छलांग मारकर वेगसे गमन-करेंगे, तव वेगके वशसे विविध लता और वृक्षोंके पुष्प समूह हमारे पीछे २ उडकर चलेंगे ॥ १९ ॥ जवकि हम घोरतर आकाशमें उठकर गमन करेंगे तव हमारा मार्ग उन पहले कहे पुष्पादिकोंसे, वहुत सारे नक्षत्रोंसे शोभित छाया पथकीसमान शोभा धारण करेगा॥२०॥ हे वानर गण ! उस समयभी हमें सव प्राणी वरावर देखेंगे, देखो ! इस समय हमनें महामेरुकी तुल्य देह धारणकीहै ॥ २१ ॥ हम आकाश स्थलको ढकते हुये और अम्वर स्थलको ग्रास करतेही हुयेसे गमन करेंगे, तुमलोग देखते रहो ! हम गायन करनेंके समय मेघ समूहको छिन्नभिन्न, पर्वतोंको कम्पा-यमान, और समुद्रको शोपण करलेंगे तुमलोग देखते रहो ॥ २२ ॥ गरुड-जीकी, हमारी, और पवनजीकी शक्ति समस्त जीव गणोंसे वढकरहै, जवकि हम आकाशमें गमन करेंगे, तव सुपर्ण राज गरुडजी और पवनजीके सिवाय हमारे साथ चलनेंमें कोई प्राणीभी समर्थ नहीं होगा ॥ २३॥ हम वादलसे निकली हुई विजलीकी समान एक निमेषमेंही अवलम्ब रहित अम्वर स्थलमें एकाएकी प्रासहो जांयगे ॥ २४ ॥ हम जवकि समु-द्रको लांघेंगे तव वामनजीनें तीन चरणकी गतिसे जिस प्रकार तीनों लोक नांपेथे, हमारी गति और हमारा रूप वैसाही हो जायगा ॥ २५ ॥ हम अपनी वुद्धिसे देख रहेहैं, कि हमारी चेष्टा ऐसी होतीहै कि हम जान कीको देखेंगे ! इसलिये हे वानर ! तुमलोग इस समय आनंद मचाओ २६॥ हमारे मनमें ऐसा विचार होताहै कि इस समय वेगमें पवन और गरुड

जीके तुल्य होकर दशहजार योजन निराधारकोभी हम सरलतासे फलांग जायगे ॥ २७ ॥ हम वज्रधारी इन्द्रजी, और स्वयंभू ब्रह्माजीके हाथसेभी एकाएकी विक्रम सहित छलांग मारकर अमृत लाय सकतेहैं ॥ २८ ॥ हम समझते हैं कि यदि हम चाहें तो लंकापुरीको उखाड करभी यहां ले आ सकते हैं, अमित प्रभा वाले वानर श्रेष्ठ! हनुमानजी ऐसा कहकर बहुत गर्जे ॥ २९ ॥ तब सब वानर गण हर्षित और विस्मितहो उनको देखनें लगे। जातिके शोकका नाश करनें वाले हनुमानजीके ऐसे वचन सुनकर ॥ ३० ॥ कपीश्वर जाम्बवान वेगवान उन पवनात्मज केशरी पुत्र वीर हनुमानजीसे बोले ॥ ३१ ॥ हेतात ! तुमनें अपनी जाति वालोंका विपुल शोक नाश कर दियाहै, तुम्हारी कल्याणकी इच्छासे यह सब वानर यहां आयकर ॥ ३२ ॥ समस्त तुम्हारी यात्राके समय अर्थ सिद्ध होनेंके लिये मंगल कीर्त्तन करेंगे अब तुम वृद्ध कपि गणोंके मतसे और ऋषियोंकी प्रसन्नतासे॥३३॥ और गुरूगणोंके प्रसादसे महा समुद्रके पार जाओ हम सब वानर तुम्हारे आनेंके समय तक एक चरणसे खडे रहकर तपस्या करते रहेंगे॥३४॥ हे हनुमन्! समस्त वनवासियोंका जीवन इस समय तुम्हारे आनेंहीपरहै । तब वानरोंमें श्रेष्ठ हनुमानजी सब वानरोंसे बोले ॥ ३५ ॥ इस समुद्रको लांघनेंके विषयमें इस लोकमें कोईभी हमारा वेग धारण करनेंको समर्थ नहींहै. परन्तु इस शिलायुक्त बडे और स्थिर महेन्द्र पर्वतके शिखर दृढ होनेंके कारण हमारे वेगको धारण करनेंमें समर्थ है इसीपरसे हम कूदेंगे ॥३६॥३७॥ अनेक प्रकारके वृक्षोंसे व्याप्त और धातुओंसे परिशोभित यह बडा शिखर अवश्य हमारे गमन वेगको धारण करलेंगे॥३८॥ यह बडे शिखर यहांसे शतयोजनके लांघनेका वेग धारण करलेंगे यह कह

श्री पवनतुल्य पवनकुमार हनुमानजी पर्वतोंमें श्रेष्ठ महेन्द्र पर्वत पर चढे ॥ ३९ ॥ इस पर्वतपर भांति २ के पुष्पलग रहेथे, इस पर्वतके दूब संयुक्त श्याम वर्णके क्षेत्रोंमें मृगगण चररहेथे, इस पर्वतपर सबही ऋतुओंमें पुष्पफल लगेरहते और अनेक प्रकारकी लतायें फूल रहीथीं॥४०॥ इसपर सिंह शार्दूल और मतवाले हाथी सुखसे विहार करके घूम रहेथे, यह पर्वत मतवाले पक्षियोंसे पूर्णथा और इसपर झरनेभी बहुतथे ॥ ४१ ॥ महा बलवान महेन्द्रकी तुल्य विक्रमकारी कपिश्रेष्ठ हनुमानजी महेन्द्र पर्वतके एक २ शिखरपर घूमने लगे ॥ ४२ ॥ महात्मा हनुमानजीनें दोनों भुजाओंसे पीडित किया तब वह शैल अपनें ऊपर चरनें वाले प्राणियोंके

साथ सिंहसे डरते हुये हाथीकी समान मानों चिल्लानें लगा॥ ४३ ॥ जब हनुमानजीनें कूदनेंके लिये उस पर्वतको अजमाया तब उस पर्वतकी शिलाओंके टूट २ कर गिरनेंसे सब झरनें नष्ट होनें लगे । उस पर्वतके मृग और हाथी त्रासित होगये और बडे २ वृक्ष कांपनें लगे ॥ ... पीनेंके संसर्गसे रतिमें अत्यन्त आसक्त बहुत सारे गन्धर्वोंके ... विद्याधर और उडनेवाले पक्षियोंने इस पर्वतके कँगूरोंका त्याग ... वहांके सर्पभी उस महागिरिको छोड२ भागकर चले, और उस महेंद्र पर्वतके बहुत सारे शृङ्गभी गिरपडे ॥ ४६ ॥ उस समय सर्पगण आधे निकले हुए अपने २ फणोंसे वार २ फुफकार करनें लगे, तब ऐसा ज्ञात हुआ मानों महेन्द्र महीधर पताकाओंसे शोभायमान होरहाहै ॥४७॥ सब ऋषि लोग, अपने झुन्डसे विछुडे यात्रीकी समान घवडाय और व्याकुल चित्त हो उस पर्वतकी वडी कन्दराओंका दुःखीहो त्याग करनें लगे ॥ ४८ ॥

सवेगवान्वेगसमाहितात्माहरिप्रवीरः परवीरहंता ॥ मनःसमाधायमहानुभावोजगामलंकांमनसामनस्वी ॥ ४९ ॥

वह शत्रुसंहार कारी, वेगवान, मनस्वी, महानुभाव,महात्मा हनुमानजी सागर कूदनेंके लिये वेग युक्त होनेंके लिये सावधान चित्तहो मनही मनमें लंकापुरीका स्मरण कर मनसेही वहां पहुंचे॥ ४९ ॥इत्यार्षे श्रीमद्वा०आ०कि०पं०ज्वालाप्रसाद मि०भाषानुवादे सप्तषष्टितमःसर्गः ॥६७॥

अतःपरंसुंदरकांडंतस्यायमाद्यःश्लोकः॥ततोरावणनीताया। सीतायाःशत्रुकर्षणः॥इयेषपदमन्वेष्टुंचारणाचरितेपथि

इति किष्किन्धाकाण्ड समाप्त ।

दोहा—श्रीरघुपतिके दास शुभ,जे श्रीमारुतवीर॥कृपा अनुग्रह कर ... न मम पीर॥१॥जिमि सीता सुधि लैनको, छिनमें चले सुजान॥तिमि ज्वालाप्रसादव पीर मिटाओ आन ॥ २ ॥ प्रभु तुम सब जानत सदा, नित प्रति अगम अगाध कृपा अनुग्रह कीजिये, दूर करो अपराध ॥ ३ ॥ हौं सेवक तव चरणको, नित अनन्य हनुमान।क्यों नहि टारत कष्ट अति, तुम्हैं रामकी आन॥४॥आवहु दुःख मिटायकर, सुखी करहु निज दास॥तव गुण गावहुं मैं सदा, कीजिय नित्य हुलास॥५॥महवीर शंकट हरन,करन सकल आनंद।तुम्हें रामकी आन मम,काटहु सब दुख फंद॥६ दास जानकर कृपा कर,अपनी ओर निहार॥प्रभु ज्वालाप्रसादके दीजे शंकट टार॥७